श्रीगणेशाय नमः

गोस्वामि तुलसीदासकृत



'बालबोधिनी' टीकासहित

आठों काण्ड

पूर्णतया संशोधित और पुनःसंस्कृत

टीकाकार

स्वर्गीय पण्डित सूर्यदीन सुकुल

सम्पादक

पं० रूपनारायण पाण्डेय

बंबई

अक्षरों में पन्नालाल भार्गव द्वारा

तेजकुमार-यन्त्रालय में मुद्रित और प्रकाशित

चौदहवीं बार] [सन् १९५४

सूचीपत्र

सूचीपत्र

आरण्यकाण्ड

चित्रों का सूचीपत्र

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजी का जीवनचरित



जयन्तु ते कविवरा रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥



रत के प्रायः किसी प्राचीन कवि या लेखक ने अपने ग्रन्थ में अपना परिचय देने की आवश्यकता नहीं समझी, क्या व्यास और वाल्मीकि, क्या कालिदास और माघ कवि। सभी अपनी कविता की सौन्दर्यपूर्ण कुटी में छिपे बैठे हैं। जब भारत के ऐसे-ऐसे समुज्ज्वल रत्नों ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, तब भला 'भाषा भनिति मोरि मति थोरी' के कवि तुलसीदास अपना वृत्तान्त कैसे लिखते ?

यहाँवालों ने सिद्ध होकर, किसी कला में उत्कर्ष या व्यक्तिगत सम्मान को बिलकुल ही छिपा डाला है; लाख ढूँढ़ने पर भी उनका कोई कुछ पता नहीं पा सकता ! खोजनेवाले अनुमान का कच्चा धागा पकड़ अँधेरे में टटोलकर जो पा जाते हैं, उसी को साधक बाधक प्रमाणों से किसी प्रकार सत्य मान सन्तोष कर बैठते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि ये लोग जीवनी (Autobiography) लिखने की योग्यता न रखते थे, प्रत्युत उन्होंने अपनी जीवनी इस योग्य समझी ही नहीं। ये लोग तो फल की वासना छोड़ कर्तव्य समझकर अपनी धुन में मस्त रहते थे।

महात्मा तुलसीदास की रामायण, जो दरिद्र की झोपड़ी से लेकर नरेशों के राजमहलों तक में विद्यमान है, जो विद्वान् और गँवार सभी के निकट आदरणीय है, उसके निर्माता कौन थे, कब और कहाँ उत्पन्न हुए—इसका यथातथ्य विवरण पाना बड़ा कठिन है। गोसाईंजी के भक्तों ने खोजकर जो पता लगाया, उसका परिणाम एकसा न हुआ। किसी ने कुछ सिद्ध किया, किसी ने कुछ; पर मोटी बातों में सभी एकमत हैं।

गोस्वामीजी का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ था। यह ग्राम यमुनाजी के तीर पर करवी स्टेशन से १६ मील पर है। यहाँ पर गोसाईंजी की एक कुटी अब तक बनी है। यह उन्हीं के चेलों के अधिकार में है। अब सर्वसाधारण के धन और वहाँवालों के विशेष

उद्योग से वहाँ एक मन्दिर बन गया है और एक पुस्तकालय के खुलने की भी बात सुनी जाती है।

गोस्वामीजी ब्राह्मण थे, पर कौन? कोई इन्हें सरयूपारी कहता है और कोई कान्यकुब्ज। मिश्रबान्धव कहते हैं कि—"बाँदा और राजापुरके इर्दगिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है....। यदि गोस्वामीजी द्विवेदी थे तो उनका कान्यकुब्ज होना विशेष माननीय है। इनका विवाह पाठकों के यहाँ हुआ था, जिनका कुल सरवरिया ब्राह्मणों में बहुत ऊँचा है और द्विवेदियों का उनसे नीचा—पाठकों की कन्या द्विवेदियों के यहाँ नहीं ब्याही जा सकती। कनौजियों में पाठकों का घराना द्विवेदियों से नीचा है। सुतराम् हम गोस्वामीजी को भक्तकल्पद्रुम के लेखानुसार कान्यकुब्ज ब्राह्मण मानते हैं।" अस्तु।

इनके पिता का नाम था आत्माराम दुबे और माता का हुलसी। लोग स्वयं इनका नाम रामबोला बतलाते हैं। कुछ लोगों ने लिखा है कि अभुक्त मूलों में जन्म लेने के कारण पिता-माता ने इनको त्याग दिया था और विनयपत्रिका के इस पद से अपनी उक्ति की पुष्टि करते हैं—"जननिजनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहुँ सृज्यो अवडेरे।" पर इसमें और लोगों का मतभेद है। उनका कथन है कि तुलसीदासजी के बाल्यकाल में ही पिता-माता का अन्त हो चुका था, इस कारण वे अनाथ थे।

हम समझते हैं, तुलसीदासजी का जन्म अभुक्त मूल के चतुर्थ चरण में भले ही हुआ हो, पर ऐसे वज्रहृदय माता-पिता कदाचित् ही मिलें, जो "जातं सुतं तत्र परित्यजेत्" का अक्षरशः पालन करें। स्नेहमयी जननी शरीर में प्राण रहते अपने शिशु को कभी गोद से अलग कर सकती है? यदि अनन्त प्रेमी प्रभु ने माता के हृदय को इतना सरस और सुकोमल न बनाया होता, तो संसार का हरा-भरा बाग कभी का उजड़ चुका होता। फिर जिस सुमाता की कोख से तुलसीदास-जैसे भक्तशिरोमणि, कविरत्न ने जन्म लिया, उसके हृदय में नीरस मरुस्थल की झलक देखना सहृदयता को शोभा नहीं देता। इससे यह प्रतीत होता है कि उनका शीघ्र ही अन्त हो गया होगा।

बिना माता के बालक की जैसी शिक्षा-दीक्षा हो सकती है, तुलसीदासजी

की भी उससे अधिक हुई न होगी ; क्योंकि इनका कोई पालक न था। महात्मा नरहरिदासजी के यहाँ इनकी बाल्यावस्था बीती और वहीं पर विद्या पढ़कर इन्होंने कई बार रामकथा सुनी (मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सु सूकर खेत। समुझि नहीं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥)। भक्तिसागर की उत्तुङ्ग तरङ्गों में पड़कर उक्त महात्माजी से ही आपने राम-मन्त्र ग्रहण कर लिया ; पर आप तब बैरागी नहीं, ब्रह्मचारी थे, और पहले प्रवृत्त होकर फिर निवृत्त हुए।

जो आश्रमों को नाँघकर दूर कूद पड़ते हैं—प्रवृत्ति का ज्ञान पाये बिना ही निवृत्ति का तानपूरा तुनतुनाने लगते हैं, वे प्रायः गड़बड़झाले में पड़ जाते हैं। एकदम ब्रह्मचर्य से संन्यास में पहुँच अपना धर्म पालकर अमर हो जानेवाले संसार में हुए ही कितने हैं? और, जिन्होंने ऐसा किया, वे थीं दैवी विभूतियाँ। एक और युक्ति तुलसीदासजी को गृहस्थ सिद्ध करती है। कविता में उन्होंने स्त्रियों की भाव-भङ्गी, हास-विलास और बोल-चाल का जैसा जीता-जागता वर्णन किया है, वैसा भुक्तभोगी रसिक कवि के सिवा और कौन कर सकता है? क्या किसी जटाधारी, शुष्कहृदयवाले अरसिक कवि की लेखनी से ऐसी मनोहारिणी कमनीय उक्ति निकल सकती है—

कोटि मनोज लजावनहारे। सुमुखि, कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मञ्जुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकेउ धरनी। दुहुँ सकोच सकुचत बरबरनी॥
सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लषण लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनविधु आँचल ढाँकी। पिय तन चितय भौंह करि बाँकी॥
खञ्जनमञ्जु तिरीछे नैननि। निज पिय कहेउ तिन्हहिं सियसैननि॥

अस्तु, पाठक दीनबन्धु की बेटी रत्नावली के साथ इनका विवाह हुआ और तारक नामक एक बेटा भी हुआ, जो बचपन में ही जाता रहा। कहा जाता है, होनहार कवि के रसिक हृदय में प्रेम का अगाध सरोवर हिलोरें मारता था। रामबोलाजी अपनी गृहिणी रत्नावली को बहुत अधिक चाहते थे; बिना उसके इन्हें कल न पड़ती थी। बड़ी कठिनाई से तो एक बार

उसे नैहर भेजा, पर उसके बिना बेचैन हो आप वहीं जा पहुँचे। इस पर रत्नावली ने कहा—जैसा प्रेम आपका मुझ पर है, वैसा यदि भगवान् के चरणारविन्दों में होता, तो क्या कहना था! बस, यही वाक्य उन्हें विराग के बीहड़ मार्ग में घसीट ले गया। नहीं कह सकते कि यह वास्तविक घटना है, या किसी मनचले की सुन्दर कल्पना। जो हो, प्रेम की जो सरिता मृत्युलोक के मर्त्यसरोवर की ओर धावमान थी, वही परिवर्जित होकर स्वर्गीय सुखसिन्धु की ओर प्रवाहित हो गयी।

गोस्वामीजी विरक्त होकर ईश्वर के अनन्य प्रेमी हुए और उसी प्रेम का वह परिणाम है, जो उनसे ऐसी बेजोड़ रामायण बन गई, जिसकी वाह-वाह धरणीतल पर सर्वत्र हो रही है। यदि तुलसीदासजी का हृदय दिव्य प्रेम से आलोकित न होता, तो उनकी क्या बिसात थी, जो मामूली दोहा-चौपाइयों में इतना बड़ा ग्रन्थ लिखकर वह शाबाशी लूटते, जो आजकल नोबल प्राइज (श्रेष्ठ पुरस्कार) पानेवाले को भी दुर्लभ है। यदि उनकी कविता पार्थिव भावापन्न होती, तो उन्हें स्थायी यश कभी न मिलता। कलि के खद्योत-कवियों की क्षणिक चमक उनकी यशोराशि को फीका कर देती। पर ज्यों-ज्यों कविता की सूझ और बूझ होती जाती है, ज्यों-ज्यों कविता-रचना के अभिलाषियों की संख्या बढ़ रही है, त्यों-त्यों तुलसीदासजी का आदर दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। इन पंक्तियों के लेखक को भलीभाँति विदित है कि केवल तुलसीदासजी की वचनसुधा को पान करने की अभिलाषा से कितने ही बङ्गाली और मराठे विद्वान् हिन्दी सीखते और अभीष्टलाभ प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। यह तो सभी जानते होंगे कि रामायण के दर्जनों अनुवाद हो गये हैं। कुछ अनुवाद तो सात समुद्र के पार रहनेवाले योरपनिवासियों के किये हुए हैं। अभी सन् १६१४ में मध्यप्रदेश के एक मुंसिफ साहब ने तुलसीकृत रामायण का मराठी में अनुवाद किया है। इसे मराठीवालों ने बड़े प्रेम से अपनाया है। बिहार के घटवार जमींदारों की सरस प्रीति देख एक बङ्गाली सुलेखक ने लिखा था—

"हजारों वर्ष पहिले कवि ने सरयू नदी के पवित्र तट पर जो वीणा बजाई

थी, उसकी मधुर तान भारतीय नर-नारियों के कान में आज भी ध्वनित हो रही है। प्राचीन अयोध्या ध्वंस हो गई है, किन्तु हिन्दू-समाज केहृदय में रामायण की अयोध्या नित नयी के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित है। संसार में हिन्दूजाति का जब तक अस्तित्व रहेगा, तब तक उसके हृदय से रामायण का प्रभाव दूर न हो सकेगा।"

विरक्त होकर ये मथुरा, वृंदावन, काशी, कुरुक्षेत्र, जगन्नाथपुरी, प्रयाग और चित्रकूट प्रभृतिमें विचरा करते थे; पर अयोध्या से इन्हें स्वाभाविक प्रेम था। इससे वहाँ अधिक रहते थे। मुख्य स्थान था इनका काशी। काशीजी में अस्सी, गोपालमंदिर, प्रह्लादघाट और नगवा प्रभृति स्थानों में इनके स्मृतिचिह्न अब तक हैं। एक बार आप लखनऊ भी आये थे और यहाँ से मलिहाबाद गये थे। वहाँवाले कहते हैं कि गोस्वामीजी अयोध्याकाण्ड लिखकर एक भाट को दे गये थे। वह प्रति अब भी महन्त जनार्दनदासजी के पास है; पर लोग उसे गोस्वामीजी के हाथ की प्रति मानने में सन्देह करते हैं। हाँ, राजापुर में अयोध्याकाण्ड की प्रति अवश्य है। जो लोग वहाँ जाते हैं, वे उसके दर्शन अवश्य करते हैं।

संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इस चौपाई से रामायण के लिखे जाने की आदितिथि का तो पता लग गया; पर समाप्ति की तिथि का ठीक वृत्त अवगत नहीं। अयोध्या में रहकर रामायण का पूर्वार्ध ही लिखा गया था कि विरोध होने से ये काशी चले गये। इस प्रकार रामायण का प्रणयन अनेक स्थलों में हुआ।

गोस्वामीजी ने पैदल ही तीर्थों की यात्रा की थी, और सिवा एक-दो बार के वे कभी बीमार नहीं हुए। इससे प्रकट है कि उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था; पर उनके स्वरूप, कद और रङ्ग आदि के जानने का कोई साधन नहीं। चित्र तो उनके स्वरूप का परिचायक माना नहीं जा सकता क्योंकि वह तो चित्रकार की रुचि और प्रकाशक की इच्छा का नमूना है।

गोसाईंजी पक्के रामभक्त थे। इन्हें हनुमान्जी का इष्ट था। गाढ़े समय

में इन्हीं का स्मरण करते और छुटकारा भी पा जाते थे। स्वभाव इनका बड़ा सरल था। विवाद में थे कभी नहीं पड़े। सदा शान्ति से ऐसे कुअवसरों को टाल दिया करते थे। दीन-दरिद्रों पर दया करते थे। एक बार एक राम-नाम जपनेवाले हत्यारे के साथ भोजन कर उसे हत्या से मुक्त कर दिया। ये सभी बातें उनके निर्दोष चरित पर और भी प्रकाश डालती हैं। क्या यह कम गौरव की बात है कि इतना बड़ा महाकाव्य लिखकर भी उन्हें घमण्ड छू तक न गया था !

रामायण के सिवा विनयपत्रिका, कवितावली रामायण, गीतावली रामायण, छन्दावली रामायण प्रभृति कोई दो दर्जन ग्रन्थ आपके बनाये बतलाये जाते हैं।

कवितावली रामायण में प्रचण्ड महामारी का वर्णन देखकर अनुमान किया गया है कि गोसाईंजी की बाहुपीड़ा भी उसी के अन्तर्गत थी। पर यह रोग प्रायः बहुत दिनों तक नहीं रहता, और इसने उन्हें अधिक दिनों तक सताया था। इसी पीड़ा से मुक्त होने के लिए हनुमानबाहुक की रचना हुई थी। कुछ लोगों की राय है कि दुबारा इसी पीड़ा के होने पर, ९० वर्ष की आयु में कविता-कानन का यह जङ्गम तरु उसे उजाड़कर नन्दनवन की शोभा बढ़ाने के लिए सुरपुर को चल बसा। इस सम्बन्ध में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

संवत सोरह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
सावन सुक्ला सतमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

कहते हैं, अन्त समय इन्होंने यह दोहा कहकर कवितानिकुञ्ज पर शोक बरसाया था—

राम-नाम-जस बरनिकै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सौन॥

रामकलेवा

छन्द

भोर भये अपने कुमार को जनक बेगि बुलवाये।
सुनि पितु के सँदेश लक्ष्मीनिधि सखन सहित तहँ आये॥
सादर किये प्रनाम चरन छुइ लखि बोले मिथिलेसू।
गवनहु तात तुरत जनवासे जहँ श्रीअवधनरेसू॥
बिनय सुनाय राय दसरथ सों पाय रजाय सचेतू।
आनहु चारिउ राजकुमारहिं करन कलेऊ हेतू॥
यह सुनि सीस नाय लक्ष्मीनिधि भरि उर मोद उमंगा।
सखन समेत मंद हँसि गवने चढ़ि चढ़ि चपल तुरंगा॥
कलनि दिखावत हय थिरकावत, करत अनेक तमासे।
मृदु मुसकात, बतात परस्पर पहुँचि गये जनवासे॥
सखन सहित तहँ उतरि तुरँग ते मिथिलापति के बारे।
चारिहु सुत जुत अवधराज को सादर जाय जुहारे॥
अतिसुखनिधि लक्ष्मीनिधि को लखि सखन सहित सतकारे।
रघुकुलदीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥
तेहि छन सानुज निरखि रामछबि सखन सहित सुख माने।
लक्ष्मीनिधि मुखदरस पाइकै रामहु नैन जुड़ाने॥
तब श्रीनिधि कर जोरि भूप सों कोमल बैन उचारे।
करन कलेऊ हेत पठावहु चारिहु राजदुलारे॥
सुनि मृदु बचन प्रेमरससाने दसरथ मृदु मुसुकाने।
चारिहु कुँवर बुलाइ बेगि ही बिदा किये सुख माने॥
जनक-नगर की जानि तयारी सेवक सब सुखपागे।
निज निज प्रभुहिं सँवारन लागे लै भूषन बर बागे॥
रघुनंदन सिर पाग जरकसी लसी त्रिभंगी बाँधी।
तिमि नौरङ्गी झुकी कलङ्गी रुचि रुचि पेचनि साधी॥
कनककलित अति ललित मनिन की मंजुल मौर बिराजी।
सिंधुरमनि के सजे सेहरा जेहि होते मन राजी॥

ताके कोर कोर चहुँ ओरन लगी रतन की पाँती।
जगमग जोति होत चहुँ दिसि ते लखि आँखियाँ न अघाती॥
कुण्डल लोलै हलै कपोलै लगी अमोलै मोती।
जेवदार जगमगहिं जराऊ जुगल जँजीरन जोती॥
जालिम जोरी जुलफैं जहरी जुवतिन जोवनहारी।
छूटीं अलकैं दुहुँ दिसि झलकैं मनहुँ मैनतरवारी॥
रतनारी कारी कजरारी अति अनियारी आँखैं।
रसवारी बरबस बसकारी प्यारी आनन राखैं॥
अति अवरंगी रतिरसरंगी चढ़ी त्रिभंगी भौंहैं।
मनहुँ मदन के जुग धनु सोहैं जिहि जोहैं सोइ मोहैं॥
तिलक रसाल बिसाल भाल पर किमि बरनौं छवि ताकी।
जनु नवघन पर रीझ दामिनी नेक लियो थिर ताकी॥
अरुन अधर बिच दामिनि दुतिवर दमकै दसननपाँती।
सनमुख मुख कर जेहि दिसि बोलैं अजब छटा छहराती॥
जगमगात अति स्यामगात जरतारिन को है जामा।
ताके कोर कोर चहुँ ओरन जड़े रतन मनिग्रामा॥
पीत सुफेटा सुछबि समेटा कम्मर लपेटा राजै।
नवल पटूको करन लटूको काँधे पटुका भ्राजै॥
मनिमय कंकन सुखप्रद रंकन बंकन कर बिच बाँधे।
जनु पुरजुवतिन मन जीतन को जंत्र बसीकर साँधे॥
दो०—बरनि सकै को राम को, अनुपम दूलह वेष।
जेहि लखि सिव सनकादिको, रहत न तनहिं सरेष॥
इमि सजि अनुज सहित रघुनंदन चारो राजदुलारे।
बड़े उमंगन चढ़े तुरंगन अंगन बसन सँभारे॥
जे रघुबंसी कुँवर लाड़िले प्रभु कहँ प्रानपियारे।
चढ़े तुरंग संग तेउ गवने राम रंग मतवारे॥
बोले चोबदार लै नामन बिरदावली अलापैं।

चंचल चँवर चले दुहुँ दिसिते छत्र सखा सिर ढापैं ॥
रामबामदिसि श्रीलक्ष्मीनिधि सखन सहित तेउ सोहैं।
चंचल बागे किये तुरिन को बातें करत हँसोहैं ॥
जगबंदन जेहि नाम जाहिरो रघुनंदन को बाजी।
ताको गुन छबि कहँलौं बरनौं, जोहि होत मन राजी ॥
भूषित भूषन अंग अदूषन पूषन हय लखि लाजै।
चोटिन तनियाँ गुथीं सुमनियाँ पगु पैजनियाँ बाजै ॥
जड़ित जवाहिर जीन जड़ी की जरबीली अति सोहैं।
पूजि पटा को छटा कहैं को कामलटा मन मोहैं ॥
ललित लगाम दाम बहु केरी अंकित नाम बिराजै।
सुछबि उमंगी झुकी त्रिभंगी मनिन अलंगी छाजै ॥
जित रुख पावैं तित पहुँचावैं छन आवैं छन जावैं।
जिमि २ थमि २ थिरकि भूमि पर गति पगतिन दरसावैं ॥
खीनी खट पीनी खुरथालैं बँधी नवीनी नालैं।
लेत उतालैं सिंह उछालैं करैं समुद इक फालैं ॥
धावत पवन न पावत पीछू गरुड़हु गर्ब गँवावै।
रघुनंदन को बाजि लाड़िलो अनुपम कला दिखावै ॥
नाम समुद मुद देत जनन को जा पर भरत बिराजैं।
रघुनंदन के दाहिने दिसि सो चलत चपलगति साजैं ॥
रोकत बागे अति रिसिरागे गरबित फुरकन लागै।
झमक झमाकी लागति बाँकी दै झाँकी सुख पागै ॥
कहुँ नभ जीवन सुरन झँकावै कहुँ महि मोद मचावै।
अवनी ते अरु आसमान लौं जनु सोपान बनावै ॥
फाँदत चंचल चारु चौकड़ी चपला हू चख झापै।
भरत कुँवर को तुरँग रँगीलो बरनि जात कहु का पै ॥
चम्पा नाम चाल चटकीली जेहि पर रिपुहन भाये।
सब समाज के आगे निरतैं मोर कुरंग लजाये ॥

जो कहुँ नेकहुँ हाथ उठावत कई हाथ उठि जातो।
बार बार चुचुकार दुलारत ताहू पै न जुड़ातो॥
लक्खी घोड़ा लखनलाल को बाँको निपट चलाको।
उड़ि उड़ि जात वायुमंडल को परत न पग महि ताको॥
तरफराय उड़ि जाय परत है लक्ष्मीनिधि हय पाहीं।
उचित बिचारि हँसे रघुबंसी रामहु मृदु मुसुकाहीं॥
तोप तुपक जूटै जहँ छूटै तहाँ जाय सो टूटै।
फुलझरिया-सी झरत धरत डग करत अनेक तमासो॥
ठुरकन मुरकन थरकन थिरकन वरनि जाय कहु कासो।
लखि तुरंग की चंचलताई लखन की देखि चढ़ाई॥
निमिबंसी रघुबंसी सिगरे ठगि से रहे विकाई।
राम आदि जे कुँवर लाड़िले तेउ लखि भरे उछाहैं॥
रीझि रीझि तहँ लखनलाल को बारहिंबार सराहैं।
इमि मग होत बिलास बिबिध बिधि बिपुल बाजने बाजे॥
सुनत नकीब पुकार नगर तिय कढ़ि बैठीं दरवाजे।
कोउ तिय निरखि बन्नू की महिमा अति सुख महँ सो पागी॥
भरी सनेह देह सुधि भूली रामरूप अनुरागी।
कोउ तिय देखि अतूला दूलहा अति सनेह तनु भूला॥
फूला नैन सैन मन भूला लागि प्रीति को हूला।
कोउ घूँघट पट खोल सुन्दरी मनि-मुँदरी लै पानी॥
देखत दूलह रूप राम को आनँदसिंधु समानी॥
दो०—कोउ सूरति लखि साँवरी, तोरति तृन सुख पाग।
मधुरी मूरति में पगी, निज मूरति सुख त्याग॥
कोउ रघुनंदन छबि विलोकि कै बोली सुनु सखि बयना।
राजकुँवर ये करन कलेऊ जात जनक के अयना॥
इनको श्रीनिधि गये लिवाई आये चारिहुँ बेटा।
रँगभीने रघुबंसी छैला दशरथ राज दुलहेटा॥

धनि यह भाग हमारो प्यारी निज भरि नैन निहारे।
नतु दरसन दुर्लभ दूलह के रविकुल प्रानपियारे॥
भाग सोहाग आज भल पायो श्रीमिथिलेस की बेटी।
सुन्दरस्याम माधुरी मूरति निजनिज भुज भरि भेटी॥
बोली अपर सखी सुनु सजनी भली बात बनि आई।
हमहुँ चलैं सब जनक-महल को हँसिये इन्हैं हँसाई॥
इमि मृदु बातैं करत परस्पर भईं प्रेमबस बामा।
सुनत जात मुसुकात अनुजजुत कृपासिंधु श्रीरामा॥
तुरँग नचावत मन छबि छावत बाजत बिपुल नगारे।
चोपदार जागरे अलापत जनक-नगर पगु धारे॥
द्वार समीप देखि अति सुन्दर मनिमय चौक सँवारे।
राजकुँवर रघुबंसिन के तहँ ठाढ़ भये मतवारे॥
उतर जाय लहि सिया मातु की नगर सुवासिन नारी।
कंचन कलस सजे सिर ऊपर पल्लव दीप सँवारी॥
गावत मंगल गीत मनोहर कर लै कंचन थारी।
परछन हेत चलीं रघुबर को बहु आरती सँवारी॥
जाय समीप निहारि रामछबि दृग आनँदजल बाढ़ी।
छकित रहीं बर बदन बिलोकति चकित रहीं तहँ ठाढ़ी॥
रामरूप रँगि गईं रँगीली लखि दूलह सुख-सारा।
तन मन रह्यो सरेखन काहू करैं मंगलाचारा॥
प्रेमपयोधि-मगन सब प्यारी धरि पुनि धीरज भारी।
परछन अली भली बिधि कीन्हो रोकि बिलोचनबारी॥
लक्ष्मीनिधि तब उतरि तुरँग ते चारिउ कुँवर उतारे।
पानि पकरि रघुनन्दनजी को भीतर महल सिधारे॥
द्वीपद्वीप के जहँ महीप सब जनक समीप बिराजे।
बैठे सभा सकल निमिबंसी सुतअंसी इव छाजे॥
रघुनन्दन तहँ अनुज सखनजुत सादर जाय जुहारे।

देखत उठे सकल निमिबंसी जनक निकट बैठारे ॥
कर गजरा कजरा दृग में सेहराजुत मौर बिराजी।
दूलह वेस बिलोकि राम को भई सभा सब राजी ॥
तहँ करि कछु दरबार जनक ढिग दसरथ राजदुलारे।
लैके राय-रजाय नाय सिर सासु समीप सिधारे ॥
जहँ पिकबैना सब सुखदैना बैठि सुनैना रानी।
इन्द्रानी को कौन चलावै लखि रति रूप लुभानी ॥
चन्द्रमुखी चहुँ ओर विराजैं कोउ कर चँवर चलावैं।
कोउ सखि देखि राम की सोभा आरति मंगल गावैं ॥
तेहि छिन तहाँ गये रघुनन्दन मन फंदन वरवेषा।
देखत उठीं सकल रनिवासैं रह्यो न तनुहि सरेषा ॥
करि आरती वारि मनिभूषन सादर पाँव पखारे।
सारि रंग के चारि सिंहासन चारिहु वर बैठारे ॥
लखि छबिऐना सासु सुनैना नैना पलक तजै ना।
भूली चैना बोलि सकै ना कहत बनै ना बैना ॥
रामरूप रँगि रही रँगीली आँसू बहि दृग जाहीं।
ताके जाके रही तनक नहिं डोलै मन सुद माहीं ॥
इमि तहँ दसा बिलोकि सासु की राम गुनत मन माहीं।
काह भयो यह आजु रानि को पूछत में सकुचाहीं ॥
चतुर सखी चित चराचे राम सों बोली मधुरी वानी।
यह तुम्हार गुन है सब लालन और न कछु उर आनी ॥
सुनत बचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी।
बार-बार बहु लीन बलैया चूमि कपोलन पानी ॥
माधुरि मूरति साँवरि सूरति तकि तन तोरति रानी।
रीझि रीझि तहँ रामरूप पै बिनहीं मोल बिकानी ॥
पुनि कर जोरि राम सों रानी बोली अति मृदु बानी।
उठहु लाल अब करहु कलेऊ जो जो रुचि हिय मानी ॥

यह सुनि सखन समेत उठे तहँ चारिउ राजदुलारे।
भूरि भाग अनुराग सुनैना निजकर पाँय पखारे॥
रचना अधिक पदिक के पीढ़न बैठारे सब भाई।
कंचनथारी मृदुल सुहारी परसी बिबिध मिठाई॥
रुचि अनुरूप भूपसुत जेंवत पवन डुलावैं सासू।
बूझि बूझि रुचि व्यंजन परसैं बरनि न जाय हुलासू॥
स्वाद सराहि पाय पुनि अँचये सखियन पान खवाये।
बैठे पहिरि पोसाक सखनजुत बिबिध सुगंध लगाये॥
दो०—राजअयन सब चयन सत, राजत राजकुमार।
जिनको हास-बिलास लखि, लाजहिं लाखन मार॥
तेहि अवसर सुधि पाय सखी मुख लक्ष्मीनिधि की नारी।
नाम सिद्धि परसिद्ध जासु गुन रूप सील उजियारी॥
भाग सुहाग भरी उठि सुन्दरि नवजोवन मतवारी।
रसिकन रीति प्रीति परबीनी रतिहिं लजावनहारी॥
अति गुनवान निधान रूप की सब बिधि सुभग सयानी।
लक्ष्मीनिधि की प्रानपियारी निमिकुल की महरानी॥
अलबेली सरहज रघुबर की बड़ी सनेह सिंगारी।
प्रीतम प्रीति निबाहनहारी रामरूप रिझवारी॥
चंचल चपल चहूँ दिसि चितवत देखन को अतुराई।
भरी उमंग संग सखियन लै तुरत रामढिग आई॥
बदन चंद अरबिंद लिये कर बिहँसत मन्द रसोहैं।
राजकुँवर कर पकरि लाड़िली बोली ताकि तिरछौहैं॥
चित्त के चोर किसोर भूप के बड़े चोर तुम प्यारे।
सुरति हलारि भुलाय साँवरे सासु समीप सिधारे॥
उलटी बात कहौ जनि प्यारी आपन दोष दुराई।
तुमहीं रहिउ छिपाय छबीली सुनत हमारि अवाई॥
हम आये तुम महलन भीतर तुमहिं न पर्यो जनाई।

भलो सदन तुम्हरो है प्यारी जहँ सब जाइ समाई ॥
सुनत राम के बचन लाडिली बोली मृदु मुसुकाई ।
तुम्हरे घर की रीति लालजू इत नहिं चलै चलाई ॥
सासु सुनैना के समीप महँ देत जवाब बनै ना ।
पानि पकरि रघुनन्दनजी को गइ लेवाय निज ऐना ॥
चारि सिंहासन दै तहँ आसन भरी हुलासन प्यारी ।
बारहिबार निहारि बदनछबि बहु आरती उतारी ॥
मेलि सुकंठ मालती माला बसननि अतर लगायो ।
अंचल सों मुख पोंछि राम को निज कर पान खवायो ॥
जहँ रति रंभा सरिस सुन्दरी बैठीं किये सिंगारै ।
कोउ कुसुमन को करनफूल रचि कोउ कलँगी कोउ हारै ॥
ललित लवंग कपूर संग धरि कोउ सखि पान लगावैं ।
कोउ कर पीकदान लै ठाढ़ी कोउ सखि चँवर डुलावैं ॥
कोउ जल सीतल भरे सुराही कोउ दर्पन दरसावैं ।
निज निज साज सजे सब प्यारी रघुबर सनमुख आवैं ॥
कोउ जल तुरही ताल तमूरा कोउ करताल बजावैं ।
कोउ सितार लै तार तार प्रति गूढ़ गतिन दरसावैं ॥
कोउ उपंग मुरचंग मिलावैं दै मृदंग मुख थापैं ।
कोउ लै बीन नवीन सुरन ते मनहु बसीकर जापैं ॥
कोउ मृगनैनी कोकिलबैनी पंचमराग अलापैं ।
परत कान में मधुर तान निज बिरहिन के जिय काँपैं ॥
इमि अभिराम धाम सोभा लखि राम कुँवर अनुरागे ।
बातें करत सिद्धि सरहज सों परम प्रेमरसपागे ॥
जे निमिराज नेवत सुनि आईं कोटिन राजकुमारी ।
रामामिलन की बड़ी लालसा कहि न सकैं सुकुमारी ॥
तिन यह सुन्यो कि सिद्धिसदन में आये चारिहु भाई ।
तुरतहि तहँ पहुँचीं सब प्यारी जानि समय सुखदाई ॥

देखी राजकुँवरि सब आईं रामदरस की प्यासी।
अति सनमान कियो सब ही को सिद्धिसदन सुखरासी॥
राम सुछवि देखन ते लागीं दृग आनँदजल बाढ़े।
चख झुकि परे रूपसागर में कढ़हिं नहीं अब काढ़े॥
मनिन मोर पर मोतिन कलँगी अलबेली अति सोहैं।
राजतियन की कौन चलैहै, मुनियन को मन मोहैं॥
चिक्कन चिलकदार चुनवारी अलकैं मुख पर छूटी।
जोहत जहर चढ़त जुवतिन को जड़ी न लागत बूटी॥
लखि छबि बर की स्यामसुंदर की भईं मीन सुखसर की।
तरकी तनी कंचुकी करकी दरकी चूरी कर की॥
दो०—मन लोभा सोभा निरखि, भईं बिबस सुकुमारि।
चकित छकित सब रहि गईं, तन मन दसा बिसारि॥
जे तिय मानि अनूप रूप निज रहीं सरूप गुमानी।
ते लखि रामबदन की सुखमा बिनहीं मोल बिकानी॥
अति सुकुमारी राजकुमारी सिद्धि सहित अनुरागीं।
तहँ प्यारी गारी रघुबर को देन दिवावन लागीं॥
एक सखी कह, सुनहु लालजी, यह सरूप कहँ पायो।
कानन सुन्यो काम अति सुंदर, की तुमको सोइ जायो॥
बोली सिद्धि, सुनहु रघुनंदन तुम हमार ननदोई।
एक बात तुमसों हम पूछैं लाल न राखहु गोई॥
होत ब्याह सम्बन्ध सबन को अपनी जातिहि माँही।
निज बहिनी शृंगी ऋषि को तुम कैसे दियो बियाही॥
की उनको मुनीस लै भाग्यो की वोई सँग लागी।
एती बात बतावहु लालन तुम रघुबंस अदागी॥
लखन कह्यो, यह सुनहु लाड़िली जेहि बिधि जहँ लिखि दीना।
तहँ संजोग होत है ताको ब्याह तो कर्म अधीना॥
कहँ हम राजकुँबर रघुबंसी, कहँ विदेह बैरागी।

भयो हमार ब्याह तुम्हरे घर, बिधि गति गनै को भागी ॥
औरौ एक हास उर आवै, अचरज है सब काहू ।
तुम तो हो सिधि वे लक्ष्मीनिधि नारि नारि भो ब्याहू ॥
एक सखी कह, सुनहु लालजी, तुमहिं सकहि को जीती ।
जाहिर अहै सकल जग माहीं तुम्हरे घर की रीती ॥
अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की बामा ।
खीर खाय पैदा सुत करतीं, पतिकर कछु नहिं कामा ॥
सखी बचन सुनि तब रघुनंदन बोले मृदु मुसुकातें ।
आपनि चाल छिपावहु प्यारी कहहु आन की बातें ॥
कोउ नहिं जनमे मातपिता बिन बँधी वेद की नीती ।
तुम्हरे तौ महि ते सब उपजें अस हमरे नहिं रीती ॥
बोली चन्द्रकला तेहि अवसर परम चतुर सुकुमारी ।
सिद्धि कुँवरि की लहुरी भगिनी लक्ष्मीनिधि की सारी ॥
लरिकाई ते रह्यो लालजी तुम तपसिन सँग माहीं ।
ये छलछंद फंद कहँ पाये सत्य कहौ हम पाहीं ॥
की मुनिनारिन के सँग सीखे की निज भगिनी पासें ।
खाटो मीठो स्वाद लालजी बिन चाखे नहिं भासें ॥
बोले भरत, भली कह सजनी, तुमहुँ तो अबै कुमारी ।
बरनहु पुरुष संग की बातैं सो कहँ सीखेहु प्यारी ॥
रहे मुनिन सँग ज्ञान सिखन को सो सब सुने सुनाये ।
कामिनि कामकला अब सीखन हम तुम्हरे ढिग आये ॥
सिद्धि कह्यो, तब, सुनहु भरतजी, ऐसी तुम न बखानौ ।
तुमरी तौ गिनती साधुन में, लोक-बात का जानौ ॥
भरत कह्यो, तुम साँचि कहत हौ, हम साधू परकाजी ।
ऐसी सेवा करौ कामिनी जाते होयँ मन राजी ॥
आये अयन अपूरब जोगी अस निज मन गुनि लीजै ।
अधर सुधारस को दै भोजन अतिथी पूजन कीजै ॥

एक सखी कह, सुनहु सबै मिलि इनकी एक बड़ाई।
ऋषिमख राखन गये कुँवर ये तहँ हम अस सुधि पाई॥
इनको सुन्दर देखि कामबस त्रिया ताड़का आई।
सो करतूति न भई लाल सौं मारेहु तेहि खिसिआई॥
बोले रिपुहन, सुनहु भामिनी, नाहक दोष न दीजै।
जो करतूति बनी नहिं उनते सो हमसे भरि लीजै॥
बिन जाने करतूति सबन को तुम्हरे घर भो ब्याहू।
सोउ पछिताव न रहै पियारी अब करि लेहु समाहू॥
जाके हित तुम रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई।
बैसिन सेवा में तुम्हरे हम हाजिर चारिउ भाई॥
सुनि बानी रिपुदमन लाल की बोली कोउ सुकुमारी।
कहँ पाई एती चतुराई कहिए लाल बिचारी॥
की कहुँ मिली नारि गुन-आगरि की गनिकन सँग कीनो।
तीनों भाइन ते तुम्हरे महँ लखियतु चिह्न नवीनो॥
रिपुहन कह, भल कह्यो भामिनी, भेदिहि भेदहिं जानै।
गनिका नारिन हूँ ते सौगुन तुम्हैं अधिक हम मानैं॥
हमरो तुमरो चिह्न लाड़िली एकै भाँति लखाई।
ताते सखी हमारि तुम्हारी चाही अवसि सगाई॥
सुनि नव उक्ति जुक्ति की बातैं बोली सिधि सुकुमारी।
सुनिए रसिकराय रघुनंदन आनँदकंद बिचारी॥
अति अभिराम काम हू मोहत मूरति देखि तुम्हारी।
कैसे बची होयँगी तुम ते अवधपुरी की नारी॥
यों कहि रही चुपाय सुंदरी सिद्धि कुँवारि सुख अयना।
ताको हाथ पकरि रघुनंदन बोले अति मृदु बयना॥
दो०—जस मर्जादा जगत की, बाँधि दियो करतार।
राजा रंक जती सती, करत सोइ व्यवहार॥
अनुचित उचित बिचारि लोग सब तहँ तस राखत भाऊ।

तुम तौ अपनी अस जानति हौ सब ही केर सुभाऊ ॥
यह सुनि भरत, लखन, रिपुसूदन हँसे सकल दै तारी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी लेउ अति भईं सुखारी ॥
यहि बिधि हँसि हँसाय रघुबर सों दै-दिवाय मृदु गारी।
नाना भाँति मनोरथ मन के लगीं करन सब प्यारी ॥
कोउ सखि राम समीप जायकै कहत कछू लगि कानै।
कमल कपोल परसि कै प्यारी जन्म सफल करि मानै ॥
कोउ निज कोमल कमल करन ते चरनकमल प्रभु चापैं।
बार बार हिय लाय लाड़िली दूर करैं तन तापैं ॥
रसिकसिरोमनि श्रीरघुनंदन नवल नेह अभिलाखी।
जस जाके हिय रही लालसा तस तेहि की रुचि राखी ॥
रघुनंदन तब कह्यो सिद्धि सों, जो तुम देहु निदेसू।
तौ अब हम गवनैं जनवासे, जहँ श्रीअवधनरेसू ॥
सुनि यह बानी राम कुँवर की काँपि उठीं उर आली।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोलीं बिरह बिहाली ॥
नेह बढ़ाय छकाय रूपरस आपु अवध जब जैहैं।
हम बिरहिन के प्रान लाड़िले कहौ कौन विधि रैहैं ॥
सुनि इमि आरत बैन तियन के तब करुनारससाने।
कोमल चित कृपाल रघुनंदन प्रीति रीति भल जाने ॥
बोले बचन भक्तभयभंजन, सुनहु तियहु सब कोई।
अब मैं कहौं सुभाय आपनौ, तुम्हैं न राखहुँ गोई ॥
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक इनते और न भारी।
तिनहूँ ते तुम अधिक पियारी, सुनु सिधि राजकुमारी ॥
जो कोउ प्रीति करै मोरे पर होय सुजान अजानौ।
प्रानसमान सदा तेहि राखौं, औगुन एक न मानौं ॥
जिन-जिन प्रेमिन केरि जगत में सुनियतु बड़ी बड़ाई।
तिन-तिन में बिचारि जो देखो सबमें एक लुटाई ॥

कर्म धर्म अरु धीर बीरता जोग सिद्धि चतुराई।
ज्ञान ध्यान बिज्ञान सुजनता राजनीति निपुनाई॥
इनते जीति सकैं नहिं मोहीं कोटिन करैं उपाई।
हारि जाहुँ प्रेमी प्रानी ते, तहाँ न मोर बसाई॥
तुम तो सबै प्रेम की मूरति, सूरति की बलिहारी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहिं प्रानहु ते प्यारी॥
तुम्हरे हिय अभिलाख आजु जो सो सब भाँति पुजैहौं।
लौकिक लाज बचाय लाड़िली तुमते बिलग न ह्वैहौं॥
हम सब भाँति तुम्हार साँवली तुम सब भाँति हमारी।
सत्य सत्य ये सत्य बचन मम मानहु राजकुमारी॥
दो०—रघुनंदन के बचन सुनि, खुलिगे कपटकिवार।
बढ़यो प्रेम सब तियन के, तनक न तनहिं सँभार॥
पुनि धरि धीरज अली भली बिधि जोरि पङ्करुहपानी।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोलीं अति मृदुबानी॥
धन्य भाग हमरो रघुनंदन, हमते कोउ बड़ नाहीं।
बूड़त रहीं जगतसागर में राखि लीन्ह गहि बाहीं॥
हम नारी सब भाँति अनारी किये प्रीति मुद्दमोई।
राजकुमार रावरे के सम कीन्ह कृपा नहिं कोई॥
प्रतिउपकार होत नहिं हमते जस तुम कीन्हेउ प्यारे।
चन्द्रसमान होहिं नहिं कबहूँ जुरहिं हजारन तारे॥
जहँ-जहँ जौन करम-बस हमको जन्म बिधाता देहीं।
तहँ-तहँ रसिकराय रघुनंदन तुमहीं मिलेहु सनेही॥
बरु बिधि कोटिन करै जातना या तन छिन-छिन छूटै।
हमरी तुम्हरी लगन लाड़िले कौनहु जन्म न टूटै॥
सुनि बानी करुनारससानी रघुबर अन्तरजानी।
सनमान्यौ सब राजकुमारिन कहि-कहि कोमल बानी॥
सबसों बिदा माँगि रघुनंदन अनुज सहित पगु धारे।

निकसे मानहुँ सिद्धिमहल ते चारु चन्द्र छबिवारे ॥
राहिनि पान खवावत साथहि चली सिद्धि सुखऐना ।
आये राजमहल महँ सिगरे जहँ श्रीमातु सुनैना ॥
चरन प्रनाम कीन्ह रघुनंदन जोरि सरोरुहपानी ।
बिदा हेत पुनि बचन सुनाये कहि अति कोमल बानी ॥
सुनि ये बैना सासु सुनैना भरे प्रेमजल नैना ।
रहो कि जाहु, न कछु कहि आवै, भूलि गई सब चैना ॥
पुनि धरि धीर अनेक अभूषन जे बड़मोल के जानी ।
अनुज सखन जुत राम कुँवर को दीन्ह सुनैना रानी ॥
सब सन बिदा माँगि रघुनंदन चले जनक ढिग आये ।
जथाजोग करि मान बड़ाई बहुबिधि आनँद छाये ॥
दो०—अस सबकहँ आनंद दे, गये अवध नृप पास ।
कथा सुनाई नृपहिं सब, सुनि अति भयो हुलास ॥

इति श्रीरामकलेवा समाप्त ।



श्रीरामशलाका प्रश्न

दोहा—श्रीगणपति को ध्यान करि, राम सिया चित धारि।
प्रश्नोत्तर हित चौपदी, याते लेहु निकारि॥

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	ब	सु	नु	बि	घ	धि	ई	द
र	रु	फ	सि	सि	रे	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	कि	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	ई	ग	म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	र	स	ई	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	मा	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	ही	ा	जू
ता	रा	रे	री	ह्र	का	फ	खा	ज़ि	ई	र	रा	पू	द	ल
णि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मणि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	म	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सि	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	ा	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढ़ा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	हू	सु	म्ह	रा	र	स	हिं	र	त	न	ष	ा	जा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	जू	हू	हीं	षा	जू	ई	रा	रे

चौपाई निकालने की रीति

दोहा—जबहीं पृच्छक अंक पर, अँगुरी को धरि देत।
ताके अगिले अंक ते, नवमाक्षर गनि लेत॥
ऊपर को ऊपर लिखे, नीचे निम्न लिखेत।
रामशलाका प्रश्न यह, जथा उचित फल देत॥

श्रीरामशलाका प्रश्न में जो चौपाइयाँ निकलती हैं उनको फलसहित लिखते हैं

१ सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मन कामना तुम्हारी ॥१॥

प्रश्न उत्तम है, कार्य सिद्ध होगा ॥ १ ॥

२ प्रविशि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥२॥

भगवान् का स्मरण करके कार्य का आरंभ करो, सिद्ध होगा, फल शुभ है ॥ २ ॥

३ उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू ॥३॥

जो कार्य तुमने विचारा उसके अंत में भलाई नहीं, फल मध्यम है ॥३॥

४ बिधिबससुजनकुसंगतिपरहीं। फणिमणिसम निजगुण अनुसरहीं ४

खोटे मनुष्यों का साथ छोड़ो, कार्य में विलम्ब है ॥ ४ ॥

५ होइहै वहै जो राम रचिराखा। को करि तरक बढ़ावै साखा ॥५॥

अपने कार्य को भगवान् के ऊपर छोड़ो, कार्य होने में सन्देह है ॥ ५ ॥

६ मुदमंगलमय संत समाजू। जिमि जग जंगम तीरथ राजू॥६॥

प्रश्न अच्छा है, कार्य सिद्ध होगा ॥ ६ ॥

७ गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥७॥

प्रश्न अच्छा है, शत्रुओं का नाश अवश्य होगा ॥ ७ ॥

८ वरुण कुबेर सुरेस समीरा। रण सन्मुख धरि काहु न धीरा ॥८॥

कार्य सिद्ध होने में बहुत सन्देह है, फल मध्यम है ॥ ८ ॥

९ सफल मनोरथ होइँ तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे ॥९॥

सब मनोरथ सिद्ध होंगे, धन की प्राप्ति होगी, फल बहुत श्रेष्ठ है ॥९ ॥

* श्रीगणेशाय नमः *

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृत



माहात्म्य

(बालबोधिनी टीकासहित)


गुरु हरि हर गनईस धी, सुमिरौं तुलसीदास।
करत गोपाल महात्म्य श्रीरामायन सुखरास॥

गुरु, विष्णु, शिव, गणेश, सरस्वती तथा तुलसीदासजी का स्मरण करके सुख की राशि श्रीरामायणजी का माहात्म्य मैं 'गोपालदास' लिखता हूँ।

रामायन सुरतरु की छाया * दुख भये दूरि निकट जो आया
सप्तकाण्ड अस्कन्ध सोहाई * दोहा लघु साखा छबिछाई

यह रामायण कल्पवृक्ष की छाया है। जो इसके निकट आया उसके दुःख दूर हो गये। सात काण्ड इस कल्पतरु के सात स्तंभ हैं। दोहे छोटी-छोटी सुन्दर शाखाएँ हैं।

सुचि सोरठा सीटका कोई * पत्री बहु चौपाई जोई
छन्दन की सोभा अतिरूरी * जन नवीन अंकुर छबिपूरी

सोरठा कल्पतरु की डाली हैं और चौपाई उसके पत्ते। छन्दों की शोभा बहुत सुन्दर है, मानो छवि से भरे नवीन अंकुर हैं।

अच्छर सुमन रहे गहगाई * अति अद्भुत सुगन्ध कबिताई
बिबिध प्रकार अर्थ सोई फल * स्रोता सुमति स्वादु जानै भल

अक्षर इस कल्पवृक्ष के फूले हुए फूल और कविता उन फूलों की अद्भुत सुगन्ध है। अनेक प्रकार के जो अर्थ हैं, वेही उसके फल हैं। बुद्धिमान् श्रोता ही इसके स्वाद को जान सकते हैं।

भक्ति ज्ञान बैराग्य सरस रस * बीजदोय निर्गुन सु सगुन अस
मुनि भुसुण्डि सिवप्रथमहिंगाई * सोइ गाई जगहेत गोसाँई

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इसके सुन्दर रस हैं। निर्गुण और सगुण दो इसके बीज हैं। जो

कथा याज्ञवल्क्य मुनि, कागभुशुण्डि और शिवजी ने प्रथम कही थी, उसी कथा को जगत के हेतु गोसाईंजी ने कहा।



तुलसिदास रामायनहिं, नहिं करते अनुसार।
कलि के कुटिल सुजीव को, को करतो निस्तार॥

गोसाईं तुलसीदासजी यदि रामायण का प्रचार न करते तो कलियुग के कुटिल जीवों का निस्तार कौन करता?

रामायन सुरधेनु समाना * दायक अभिमत फल कल्याना
गुनसमूह कबि सकै कौन गनि * जासु प्रभाव सरिस चिंतामनि

यह रामायण कामधेनु के समान वांछित फल देनेवाली और कल्याण करनेवाली है। इस रामायण के गुणों की गणना कौन कवि कर सकता है, जिसका प्रभाव चिंतामणि के समान है।

राम अयन रामायन आही * बरनि पार पावै को ताही
रामायन अद्भुत फुलवारी * राम भ्रमर भूषित रुचि भारी

रामायण रामचन्द्रजी का स्थान है, इसका वर्णन करके कौन पार पा सकता है। यह रामायण अद्भुत फुलवारी है, जो रामरूपी भ्रमर (भौंरा) से भूषित है, इसलिए अत्यन्त मनोहर है।

श्रीरामायन जेहि घर माहीं * भूत प्रेत तहँ भूलि न जाहीं
नहिं गमि तहाँ दरिद्रहु केरी * तहँ श्रीमहावीर की फेरी

जिस घर में श्रीरामायण रहती है, वहाँ भूत-प्रेत भूलकर भी नहीं जाते। वहाँ दरिद्र भी नहीं जा सकता; क्योंकि वहाँ श्रीमहावीरजी की रखवारी रहती है।

जन्त्र मन्त्र सगुनौती जेती * रामायन महँ जानिय तेती
प्रीति करै रामायन माहीं * तेहिसम भागवन्त कोउ नाहीं

जितने यंत्र, मंत्र और सगुनौती हैं, वे सब रामायण में विद्यमान हैं। जो रामायण में प्रीति करता है, उसके समान भाग्यवान् कोई नहीं हो सकता।



रामायन समनाहिं कोउ, सब उपमा उपमेय।
उपमा भाषा और की, कैसे कोऊ देय॥

रामायण के समान और कोई ग्रन्थ नहीं है, इसमें सब उपमा और उपमेय हैं। इसकी भाषा की उपमा दूसरे ग्रन्थ की भाषा से कोई कवि कैसे दे सकता है।

त्रेतामहँ भे बालमीकि मुनि * ते कलिजुग भे तुलसिदास पुनि
सत करोरि रामायन भाखी * इन मथि सार सुसूछम राखी

त्रेता में वाल्मीकि मुनि हुए, वही फिर कलियुग में तुलसीदास हुए। वाल्मीकिजी ने सौ करोड़ रामायण कही, इन्होंने उसे मथकर सार भाग लेकर सूक्ष्मरूप रक्खा।

प्रथम काण्ड है बाल रसीला * जन्म विवाह राम की लीला
द्वितिय अजोध्याकाण्ड प्रकासा * पितु आज्ञा रघुवर बनवासा

इसमें प्रथम बालकांड है, जिसमें रामचन्द्रजी के जन्म और विवाह की लीला है। दूसरा अयोध्याकांड है, जिसमें पिता की आज्ञा से रामचन्द्र के वनवास की कथा है।

पुनि अरन्य किष्किन्धाभाख्यो * तहँ सुग्रीव सरनमहँ राख्यो
सुन्दर सुन्दरकाण्ड सुहावन * जुद्धकाण्ड महँ मारेउ रावन

फिर अरण्यकांड और किष्किंधाकांड है, इसमें रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को शरण में रख लिया है। पाँचवाँ सुन्दरकांड बहुत सुन्दर है। छठा युद्धकांड है, जिसमें रावण के मारने की कथा है।

सप्तम उत्तर परम अनूपा * उत्सव प्रभु कोसलपुर भूपा
अष्टम लवकुसकाण्ड बखाना * अस्वमेध कीन्हो भगवाना
तुलसीकृत रामायन येती * विविध प्रकार कथा है केती

सातवाँ उत्तरकाण्ड परम अनुपम है, इसमें रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक-उत्सव की कथा है। बस, इतनी ही तुलसीकृत रामायण है, इसमें अनेक प्रकार की कितनी ही कथाएँ हैं।



जगवारिधि को पार नहिं, ऐसो है फैलाव।
तुलसीदास कृपा करी, रचि रामायन नाव॥

संसार-सागर का ऐसा फैलाव है कि इसका कहीं पार नहीं है। तुलसीदासजी ने कृपा करके इसे संसार-सागर से पार उतारने के लिए रामायणरूपी नाव बना दी है।

श्रीरामायन स्वर्गनिसेनी * भक्तजनन कहँ आनँद देनी
श्रीरामायन सदगुन माता * अज्ञ जाहि पढ़ि होहिं सुज्ञाता

श्रीरामायण स्वर्ग लोक की सीढ़ी है और भक्तों को आनन्द देनेवाली है। श्रीरामायण सद्गुणों की माता है, जिसे पढ़कर मूर्ख भी ज्ञानी हो सकता है।

पाप समूह तूल की रासी * रामायन धनंज्यकनकासी
मोहपुंज तमकिरन तमारी * कामअग्नि कहँ सीतल वारी

पापसमूह रुई के ढेर के समान और उनको जलाने के लिए रामायण आग की चिनगारी है। अज्ञान का अन्धकार दूर करने को यह रामायण सूर्य की किरण के समान और काम-अग्नि शान्त करने को शीतल जल के समान है।

रामायन ससिकिरन सुहाई * संत चकोरन कहँ सुखदाई
धन्यधन्य श्रीतुलसिदासधनि * जगहित रामायन राखी भनि

यह रामायण चन्द्रमा की सुन्दर किरण के समान चकोररूपी सन्तों को सुख

देनेवाली है। तुलसीदासजी को बार-बार धन्यवाद है, जिन्होंने संसार के हित के लिए रामायण बनाई।

नीच ऊँच जेते नरनारी * श्रीरामायन सब कहँ प्यारी
रामायन सो नेह लगावैं * अधन अपत्य सो बित सुत पावैं

नीच-ऊँच जितने नर-नारी हैं, सबको श्रीरामायण प्यारी है। जो रामायण से प्रेम करता है, वह निर्धन हो तो धन पाता है और सन्तानरहित हो तो सन्तान पाता है।


रामायन सों नेह किय, सिद्ध होत सब काम।
है सबकी कल्यानदा, पढ़ि सुनि लहु बिसराम॥

रामायण से प्रेम करनेवाले के सब काम सिद्ध होते हैं। यह सबका कल्याण करनेवाली है। इसे पढ़ सुनकर विश्राम लीजिए।

निगमादिक तेइ ब्रह्मकमण्डल * रामायन तहँ थित गंगाजल
भागीरथ सम तुलसिदासपुनि * भाषाप्रचुरकीन्ह जनु सुरधुनि

वेद-शास्त्र ही ब्रह्मा का कमंडलु है, उनमें रामायण गंगाजल के समान स्थित है। तुलसीदासजी भगीरथ के समान हैं, जिन्होंने इसको गंगाजी के समान भाषामय किया।

होत रहै इक ठाँव रमायन * तेहि मग आवत पापपरायन
कछुक कानमहँ परिगइ बाता * चलत पंथ कहुँ भयो पपाता

एक स्थान पर रामायण की कथा होती थी। उस मार्ग से एक पापी आरहा था, रामायण की कुछ बातें उसके कानों में पड़ गईं। मार्ग में चलता हुआ वह कहीं गिर पड़ा।

गिरतहि तुरत छूटि तन गयऊ * तहँ अद्भुतइक अचरजभयऊ
ताहि लेन आये जमदूता * निजपासन बाँध्यो मजबूता

गिरते ही उसका शरीर छूट गया। तब वहाँ एक अद्भुत अचरज हुआ। यमदूत उसको लेने के लिए आये और अपने पाश से मज़बूत बाँधा।

अति आतुर हरिजन तहँआये * छीनि लीन्ह बहुत्रास दिखाये
रामायन पै सुनि यह काना * लै जैहैं बैठारि बिमाना

उसी समय भगवान् विष्णु के दूत भी शीघ्रता से आये और यमराज के दूतों को धमकाकर उसे छीन लिया। बोले कि इसने कानों से रामायण सुनी है, इसलिए विमान पर बैठाकर इसे ले जायँगे।


रामायन परताप सों, गयो पार्षदन साथ।
दूत चले जम के सदन, खीझत मींजत हाथ॥

रामायण के प्रताप से वह पापी पार्षदों के साथ वैकुण्ठ को गया और यमराज के दूत खिसियाकर हाथ मलते हुए यमलोक को चले।

निज दूतन देखेउ बिलखाता * पूछी भानुतनय कुसलाता
किन तुमकहँ दीन्हो दुख भाई * चार चतुर तुम देहु बताई

अपने दूतों को रोते हुए देखकर सूर्य के पुत्र यमराज ने उनसे कुशल पूछी—हे चतुर दूतो! तुमको किसने दुःख दिया है, हमको बताओ।

कहा कहैं तुमसों महराजा * पूछत तुमहिं न आवत लाजा
कोइ इक मृत्युलोक बड़भागी * तुलसीदास भयो वैरागी

दूतों ने कहा—महाराज! हमलोग तुमसे क्या कहें, पूछने में तुमको लाज नहीं आती। मृत्युलोक में एक कोई बड़ा भाग्यवान् वैरागी तुलसीदास हुआ है।

रामकथा रामायन भाखी * सो लोगन घर घर धरि राखी
जे जे विविध भाँति के पापी * मांसाहारी और सुरापी

उसने रामकथा रामायण बनाई है, उसे लोगों ने घर-घर में रख छोड़ा है। मांसाहारी और मदिरा पीनेवाले जितने अनेक प्रकार के पापी हैं—

ते सब मिलि रामायन सुनिहैं * कहिहैं लिखिहैं पढ़िहैं गुनिहैं
ते नहिं ऐहैं सदन तुम्हारे * सत्य सत्य नृप वचन हमारे

वे सब मिलकर रामायण सुनेंगे, कहेंगे, लिखेंगे, पढ़ेंगे और गुनेंगे। वे अब तुम्हारे लोक में नहीं आवेंगे। हे नृप! हमारे वचन सत्य मानो।



लेहु पास ये आपने, राखहु अपने पास।
अमल तुम्हारो अब उठो, सुनि जम भये उदास॥

ये अपने पाश लो, इनको अपने पास रक्खो। अब तुम्हारा अमल उठ गया। यह सुनकर यमराज उदास हुए।

अपनी बिथा कहै नहिं पाये * तब लगि दूत और तहँ आये
कहन लगे रबिसुत सों रोई * तुव चाकरी न हमसों होई

अपना दुख वे कहने भी नहीं पाये थे कि तब तक वहाँ और दूत आगये। वे रोकर यमराज से कहने लगे कि तुम्हारी नौकरी हमसे नहीं होगी।

जग में कहूँ न हुकुम तिहारो * यह सुनि यम जकिरहेउ बिचारो
अहो दूत मोहिं कहो बुझाई * किन दीन्हों मम हुकुम उठाई

संसार में अब कहीं तुम्हारा हुक्म नहीं चलता। यह सुनकर बेचारे यमराज चकित हो गये और बोले कि हे दूतो! समझाकर कहो कि मेरा हुक्म किसने उठा दिया।

कहा कहैं कछु कही न जाई * तुलसिदास इक भयो गोसाँई
तिनकी रामायन जग व्यापी * तेइ कीन्हें पवित्र सब पापी

दूतों ने कहा कि क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता। एक कोई तुलसीदास गोसाईं हुआ है। उसकी रामायण का प्रचार संसार भर में हो गया है और उसने सब पापियों को पवित्र कर दिया है।

गये हम एक अधम गृहमाहीं * अति दुख भयो जात कहिनाहीं
तहँ देखेउ यक कपि बलवाना * उग्र रूप जैसे हनुमाना

आज हम एक पापी के घर गये, वहाँ हमको जो अत्यन्त दुःख मिला वह कहा नहीं जाता। वहाँ एक बलवान् वानर देखा, जिसका उग्ररूप हनुमान् के समान था।


प्रानन को गाहक भयो, तब हम भये अति दीन।
सरन सरन तुव सरन हैं, अस्तुति बहुविधि कीन॥

हम तो उस पापी के प्राण लेने गये थे, किन्तु वह वानर हमारे प्राणों का गाहक हुआ। तब हम बहुत दुखी हुए और उसकी अनेक प्रकार से स्तुति की कि हम तुम्हारी शरण हैं।

तब तो है प्रसन्न कपिराई * हमसन पुनि परतीति कराई
धरी होइ रामायन जहँवाँ * कबहूँ भूलि न जायहु तहँवाँ

तब उस श्रेष्ठ वानर ने प्रसन्न होकर हमसे प्रतिज्ञा कराई कि जहाँ रामायण धरी हो वहाँ कभी भूलकर भी न जाना।

जे श्रोता वक्ता रामायन * कबहूँ मति जायहु तेहि आयन
अस हमसों कपि सपथ कराई * तब छूटन पायो सुनु राई

और जो लोग रामायण पढ़ते या सुनते हों, उनके घर कभी न जाना। हे महाराज! जब ऐसी शपथ हमसे करा ली, तब हम छूटने पाये।

सुनि जमराज बहुत घबराये * निकट बुलाइ दूत समुझाये
नाम रूप गुन कथा राम की * कियो न फेरी तौन धाम की

यह सुनकर यमराज बहुत घबराये और दूतों को समीप बुलाकर समझाया कि जहाँ रामचन्द्रजी के नाम, रूप और गुण की कथा होती हो, उस घर में न जाया करो।

अजामील की सुरति करौजू * और न कछु चितमाहिं धरौजू
थकि से रहे दूत सुनि बानी * धनि धनि रामायन महरानी

अजामिल की कथा का स्मरण करो और कुछ मन में न लाओ। दूत यह सुनकर चुप हो गये और बोले कि श्रीरामायण महारानी धन्य हैं।


रामायन तेजेस्वरी, सब भाषा सिरमौर।
जमपुर जाको सोर है, समता को नहिं और॥

रामायण बड़ी तेजस्विनी और श्रेष्ठ भाषा में शिरमौर ग्रन्थ है। यमपुर में जिसका शोर है, उसकी समता का और कोई ग्रन्थ नहीं है।

पातक महा लग्यो किन होई * रामायन सुनि रहै न कोई
चाहै चारौ फल का साधन * करु रामायन को आराधन

कैसा ही महापातक लगा हो, रामायण के सुनने से कोई नहीं रह जाता। जो चारो फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पाने की इच्छा हो तो रामायण की आराधना करो।

रामायन सुनि पाप पराने * जिमि हिमऋतुमहँमसकनसाने
कलिजुग तरन उपाय न कोई * रामभजन रामायन दोई

रामायण के सुनने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे सरदी की ऋतु में मच्छर नष्ट हो जाते हैं। कलियुग में तरने का और कोई उपाय नहीं है। एक रामनाम का भजन और दूसरा रामायण, यही दो उपाय हैं।

कथा रमायन की जहँ होई * सो गृह घर मति जानै कोई
सो घर तीर्थरूप सम भासै * तहाँ गये सब पातक नासै

जहाँ रामायण की कथा होती हो उस घर को कोई घर न समझे। वह घर तीर्थ के समान शोभित होता है और वहाँ जाने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

पाप वास देही महँ तब लगि * श्रीरामायन सुनै न जबलगि
उदय पुराने पुन्य होयँ जब * रामायन महँ मन लागै तब

पाप का वास देह में तभी तक रहता है, जब तक श्रीरामायण न सुने। जब पूर्वजन्म के पुण्य उदय होते हैं, तभी रामायण में मन लगता है।

दो० रामायन के सुनतही, छूटि जात प्रेतत्व।
जाके पढ़ते सुनत ते, सूझत है परतत्व॥

रामायण के सुनते ही प्रेतयोनि छूट जाती है और उसके पढ़ने-सुनने से परमात्म का ज्ञान होता है।

को जानै रामायन को रस * यह तो है सन्तन को सरबस
बनज सनेही अलिगन जैसे * भक्तन प्रिय रामायन तैसे

रामायण का रस कौन जाने ? यह तो सन्तों का सर्वस्व है। जैसे-फूलों के सनेही भौंरे हैं, वैसे ही रामायण के प्रेमी भक्तजन हैं।

त्यागि भक्तजन ग्रन्थ अनेकू * धारन किय रामायन एकू
भक्तन कहँ है भक्ति अनूपा * रसिक जनन कहँ है रसरूपा

भक्तजनों ने अनेक ग्रन्थों को त्यागकर केवल रामायण को धारण किया है। यह रामायण भक्तों को भक्तिरूप और रसिकों को रसरूप है।

ज्ञानमयी तिनकहँ जे ज्ञानी * तुलसी तारन तरन बखानी
काम क्रोध रुज बस संसारा * औषध रामायन अनुसारा

जो ज्ञानी हैं, उनको ज्ञानरूप है। तुलसीदास को तारण-तरणरूप है। संसार काम, क्रोध और रोग के वश है, उसकी औषध रामायण है।

रामायन महँ नेह न जाको * जीवत सवसम जानिय ताको
रामायन जाकहँ प्रिय नाहीं * वृथा जन्म ताको जगमाहीं

रामायण में जिसको प्रेम न हो, उसको जीवित ही मृतक के समान समझो। जिसे रामायण प्यारी नहीं है, उसका संसार में जीवन वृथा है।



रामायन अमृत कथा, लेत न ताको स्वाद।
तिनको निश्चय जानिये, हैं पूरे मनुजाद॥

जो मनुष्य रामायण की अमृतरूपी कथा का स्वाद नहीं लेते, उनको निश्चय करके पूरे राक्षस समझो।

रामायन विधि कहौं विसारद * सनत्कुमार सों भाखी नारद
सहित विधान सुनै जो कोई * सहज मुक्ति पावै नर सोई

अब रामायण के सुनने की विधि कहते हैं, जो सनत्कुमार से नारद ने कही थी। जो मनुष्य विधि से रामायण को सुनते हैं, वे सहज में ही मुक्ति पाते हैं।

कार्तिक माघ चैत चितलाई * नवदिन सुनै कथा सुखदाई
ब्रह्ममुहूर्त समय हो जबहीं * कर्म करै सौचादिक तबहीं

कार्तिक, माघ अथवा चैत के महीने में नव दिन इस सुखदायी कथा को कहे। ब्राह्म मुहूर्त (दो घड़ी रात से सूर्योदय तक ब्राह्म मुहूर्त रहता है) का समय जब हो, तभी उठकर शौच आदि नित्य कर्म करे।

करै दन्तधावन लटजीरा * मज्जन करै धरै मन धीरा
पुनि रामायन पुस्तक अरचै * प्रेम सहित गन्धादिक चरचै

लटजीरा (अपामार्ग) की दँतौन करके मन में धीरज रखकर स्नान करे। फिर रामायण पुस्तक की पूजा करे और प्रेम से चन्दन आदि चढ़ावे।

ॐनमोनारायन मन्त्र भनीजे * तीन आहुती होम करीजे
मन वच कर्म पाप तन केरे * छूटि जात नहिं आवत नेरे

'ॐ नमो नारायणाय' मंत्र पढ़कर तीन आहुति देकर होम करे। ऐसा करने से मन, वचन, कर्मजनित देह के सब पाप छूट जाते हैं, फिर समीप नहीं आते।



याविधि रामायन विधिहिं, जे करिहहिं चितलाय।
रामधाम ते जाइहैं, संसृति दुखहिं मिटाय॥

इस विधि से जो मनुष्य रामायण का पाठ करते हैं, वे संसार के आवागमन के दुःख को मिटाकर वैकुण्ठधाम को जाते हैं।

जो कछु कारज कहँ कोउ जाई * सुमिरि चलै सो यह चौपाई
प्रबिसि नगर कीजे सब काजा * हृदय राखि कोसलपुर राजा

जो कोई किसी काम को चलने लगे तो इस चौपाई का स्मरण करके चले, उसका काम सिद्ध हो जायगा। 'नगर में प्रवेश कर हृदय में कोशलपुर के राजा रामचन्द्र का स्मरण करता हुआ सब काम करे।'

जो बिदेस चाहै कुसलाई * तौ यह सुमिरि चलै चौपाई
रथचढ़ि सियासहित दोउभाई * चले बनहिं अवधहिं सिरनाई

जो विदेश में कुशल चाहे तो इस चौपाई का स्मरण करके चले। 'सीता के साथ दोनों भाई रथ पर चढ़कर, अयोध्या को सिर नवाकर, वन को चले।'

भूत पिसाच जाहि जब लागैं * यह सोरठा पढ़ै सो भागैं

जिसे भूत-पिशाच लगा हो सो वह यह सोरठा पढ़े, इसके पढ़ने से भूत-पिशाच भाग जाते हैं।



वन्दौं पवनकुमार, खलबन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर-चाप-धर॥

"हनुमान्‌जी की वन्दना करता हूँ जो दुष्टों के वन को जलाने के लिए अग्नि के समान और बड़े ज्ञानवान् हैं, जिनके हृदयरूपी घर में रामचन्द्रजी धनुष-बाण धारण किये निवास करते हैं।"

सत्रु निवारन चहौ जो भाई * भावसहित जपु यह चौपाई
जाके सुमिरन ते रिपु नासा * नाम सत्रुहन बेद प्रकासा

हे भाई! जो शत्रु का निवारण करना चाहो तो प्रेम से इस चौपाई का जप करो। 'जिसका स्मरण करने से शत्रु का नाश होता है उसका शत्रुहन नाम है, ऐसा वेद कहते हैं।'

यह चौपाई जपै जो कोई * अन्न आदि दुख ताहि न होई
बिस्वभरन पोषन करु जोई * ताकर नाम भरत अस होई

जो कोई इस चौपाई का जप करे, उसको अन्न आदि का दुःख न हो। 'जो संसार का भरण-पोषण करनेवाले हैं, उनका नाम भरत है।'

जो उत्सव चह बिबिध प्रकारा * करु यह चौपाई अनुसारा
जब ते राम ब्याहि घर आये * नित नवमङ्गल मोद बधाये

जो अनेक प्रकार के उत्सव चाहे वह इस चौपाई का जप करे। 'जब से रामचन्द्र ब्याह करके घर आये तब से नित्य नये मंगल हर्ष और बधाये होने लगे।'

जो चाहै जगमहँ जय भाई * तौ थिर ह्वै जपु यह चौपाई
सखा धर्ममय अस रथ जाके * जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके

हे भाई! जो संसार में अपनी विजय चाहते हो तो सावधानी से इस चौपाई को जपो। 'हे सखा! जिसके ऐसा धर्ममय रथ है, उसे कहीं कोई शत्रु जीतने को नहीं है, अर्थात् उसने सब शत्रुओं को जीत लिया।'

हैं बहु भाँति काज जगमाहीं * रामायन सों सब ह्वै जाहीं

संसार में अनेक प्रकार के कार्य हैं, वे सब रामायण से सिद्ध हो सकते हैं।



सकल भाँति मनकामना, यह दोहा दातार।
रामायन महँ खोजि करि, करु याको अनुसार॥

नीचे लिखा हुआ दोहा सब प्रकार की मनोकामनाओं का देनेवाला है। रामायण में ढूँढ़कर इसका जप करो।

यह सोभा सुसमाज सुख, कहत न बनै खगेस।
बरनै सारद सेस स्रुति, सो रस जान महेस॥

"काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़! रामराज्य की शोभा और समाज-सुख का वर्णन नहीं हो सकता, चाहे शेष और शारदा भी वर्णन करें। उस रस को शिवजी ही जानते हैं।"

बरनौं एक रुचिर इतिहासा * तुलसिदास जो कीन्ह तमासा
द्राविड़ अरु कासी महिपाला * कहुँ एकत्र रहे कछु काला

एक रुचिर इतिहास कहता हूँ, जो तुलसीदासजी ने तमाशा किया था। द्राविड़ और काशी के राजा कुछ समय तक एक स्थान में रहे थे।

अतिसय प्रीति बढ़ी दुहुँमाहीं * मन में कपट लेस कछु नाहीं
गर्भवती दोउ नृप नारी * चली बात दोउन कहि डारी

दोनों राजाओं में अत्यन्त प्रेम बढ़ा, मन में कपट का लेश नहीं था। दोनों रानियाँ गर्भवती थीं। दोनों राजाओं ने बातचीत के प्रसंग में ऐसा कहा।

द्राविड़ कही बात सुखरासी * सुनहु नृपति कासी के बासी
जन्मै तव सुत सुता हमारे * अथवा मम सुत सुता तिहारे

द्राविड़ के राजा ने यह सुखदायक बात कही कि हे काशी के राजा, सुनो, तुम्हारे पुत्र और मेरे कन्या हो अथवा मेरे पुत्र और तुम्हारे कन्या हो।

अस संजोग होइ जो नाहू * हम तुम करहिं बिवाह उछाहू
सौंहैं करि यह बात दृढ़ाई * सन्तत प्रीति रही अब भाई

जो ऐसा संयोग हो तो हे राजन्! हम तुम विवाह का उत्सव करें। दोनों राजाओं ने शपथ करके इस बात को दृढ़ किया और कहा कि सदैव प्रीति बनी रहे।

सुखद समय आयो जब सोऊ * निज निज भवन गये नृप दोऊ

जब कोई अच्छा समय आया, तब दोनों राजा अपने-अपने घर गये।

सो०—कन्या भइँ दुहुँ ओर, जानी जात न दैवगति।
कहि पठयो सुत मोर, द्रविड़ दूत कासी गये॥

दैवयोग से दोनों राजाओं के कन्या ही हुई, दैवगति जानी नहीं जाती। किन्तु द्राविड़ के राजा ने काशी के राजा के पास दूतों के हाथ यह सन्देश भेजा कि मेरे पुत्र हुआ है।

यह छल होत भयो जिहिलाई * सो वह हेतु कहौं मैं गाई
द्राविड़पतिनिजगृह आयो जब * रानी सों अस कहत भयो तब

यह छल जिस कारण से हुआ, उसे भी कहता हूँ। द्राविड़ का राजा जब अपने घर आया तो उसने रानी से ऐसा कहा।

जो होई कन्या दुहुँ ओरा * तो मैं प्रान तजब बरजोरा
सुनि रानी राजा-मुख बानी * मनमहँ बहुत भाँति भयमानी

यदि दोनों ओर कन्याएँ होंगी तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। रानी ने जब राजा के मुख से यह बात सुनी तो उसके मन में तरह-तरह के भय हुए।

उपरोहित कहँ लिहिसि बुलाई * नृप दुराय यह बात बुझाई
मम अहिवात तुम्हारे हाथा * नाहिं तो प्रभु मैं होब अनाथा

उसने अपने पुरोहित को बुलाया और राजा से छिपाकर उससे यह बात कही। हे प्रभु! मेरा अहिवात तुम्हारे हाथ है, नहीं तो मैं अनाथ हो जाऊँगी।

रानी द्रव्य दीन्ह नहिं थोरी * भइ मायावस द्विज मति भोरी
सेवक सेवकाइन बस कीन्हेसि * आदर मान दान बहु दीन्हेसि

रानी ने उसे बहुत धन दिया, तब लोभवश पुरोहित की बुद्धि बौरा गई। रानी ने सब दास-दासियों को भी आदर-सम्मान से बहुत दान देकर वश में किया।

दो०—सेवक एक दीन्ह तेहिं, वारानसी बसाय।
तेहि ते पायसि खबरिसब, तब यह किहिसि उपाय॥

और एक सेवक काशी को भेज दिया। उससे सब खबर पाकर कि वहाँ कन्या पैदा हुई है, तब यह उपाय किया।

पुत्र नाम धरि गुप्त रखायो * द्वादस बर्ष न द्वार दिखायो
विदुषन कहेउ न कोऊ देखै * ब्याह समय सब कोऊ पेखै

पुत्र का नाम रखकर उसे छिपा रक्खा। बारह वर्ष तक उसे द्वार भी नहीं दिखाया। पंडितों ने कहा कि इस बालक को बारह वर्ष तक कोई न देखे, व्याह के समय सब लोग देखें।

मित्रमिलनहित चितअनुराग्यो * नेगी पठै व्याह पुनि माँग्यो
अति आनन्द चल्यो मग बेगी * कासी नृप पहँ आयो नेगी

राजा के चित्त में मित्र से मिलने के लिए अनुराग उत्पन्न हुआ, तब उसने नेगी भेजकर व्याह माँगा। नेगी बड़े आनन्द से चलते-चलते काशी के राजा के पास आये।

नृप मनमुदित पत्रिका बाँची * लै आवौ बरात रँगराची
आयो व्याहन द्राविड़ राजा * खुली बात उपजी अति लाजा

पत्रिका पढ़कर राजा का मन प्रसन्न हुआ और उसने द्राविड़ के राजा को उत्तर दिया कि बरात साजकर लाओ। किन्तु जब वह व्याह करने आया और यह बात खुली कि वह भी कन्या है तो बड़ी लज्जा आई।

क्रोधातुर कासी अवनीसा * कह कटिहौं द्राविड़ कर सीसा
यह सुनि द्राविड़ अधिकडेरानेउ * निजछलसमुझिसमुझि पछितानेउ

काशी के राजा ने क्रोध करके कहा कि द्राविड़ के राजा का सिर काट लूँगा। यह सुनकर द्राविड़ के राजा बहुत डरे और अपने यहाँ का छल समझकर बहुत पछताये।


अति सभीत अति दीन ह्वै, गो जहँ तुलसीदास।
पाहि पाहि कहि पाँयपरि, कहेउ करो दुखनास॥

वे बड़े डर से दीन होकर तुलसीदासजी के पास गये और पाँवों में गिरकर बोले कि रक्षा करो, रक्षा करो, हमारा दुःख दूर करो।

तब कासीनृप कहँ बुलवायो * तुलसिदास हितकर समुझायो
सुतकहिसुता जो व्याहन आयो * होय पुत्र तौ होय बधायो

तब तुलसीदासजी ने काशी के राजा को बुलाकर हित की बात समझाई कि पुत्र कहकर जो पुत्री का व्याह करने आया है, जो वह पुत्र हो जाय, तब तो व्याह होगा?

जो यह पुत्र होय महराजा * करिय विवाह साजि सब साजा
तुलसिदास बेदी बिरचाई * तहँ गनेस गौरी पधराई

काशी के राजा ने कहा कि महाराज! जो यह पुत्र हो जाय तो हम सब साज सजाकर व्याह करेंगे। तब तुलसीदासजी ने वेदी बनवाई और गौरी-गणेश की स्थापना की।

सिंहासन पै धरि रामायन * नवदिन भरि कीन्हीं पारायन
जो कन्या बरबेष बनायो * ताही को सनमुख बैठायो

सिंहासन के ऊपर रामायण रखकर नव दिन तक पारायण किया। जिस कन्या ने वर का वेष बनाया था, उसी को सम्मुख बैठाया।

वक्ता आप सो स्रोता भई * दुनिया तहँ देखन सब गई
कथा सकल जब बाँचि सुनाई * तासु सीस कर धरेउ गोसाँई

आप वक्ता हुए; वह श्रोता हुई और सब प्रजा वहाँ देखने को गई। जब रामायण की सब कथा बाँचकर सुना दी, तब तुलसीदासजी ने उसके सिर पर हाथ रक्खा।



अरु यह चौपाई पढ़ी, रामै सुमिरि प्रसन्न।
तेहि अवसर वर ह्वै गयो, श्रीरामायन धन्न॥

रामचन्द्रजी का स्मरण करके प्रसन्नता से यह चौपाई पढ़ी। उसी समय वह कन्या वर हो गई।

मंत्रमहामनि विषय व्याल के * मेटत कठिन कुअंक भाल के
रामायन जब कही गोसाँई * प्रगटन हित कासी फिरि आई

"रामचन्द्र का नाम विषयरूपी सर्प का विष दूर करने के लिए महामणि है, प्रारब्ध के कठिन कुअंक भी मेट देता है।" गोसाईंजी ने जब रामायण बनाई तो प्रकट होने के लिए काशी में आई।

आदर कीन्ह न पण्डित काऊ * कहैं जो हम सो करौ उपाऊ
जहँ अस्थान कहैं तहँ जाहू * पोथी अब न देखावहु काहू

वहाँ किसी पण्डित ने इस रामायण का आदर नहीं किया और कहा कि जो हम कहें वह उपाय करो। जहाँ हम कहें वहाँ जाओ, अब और किसी को पोथी न दिखाओ।

श्रीआनँदकानन ब्रह्मचारी * हम सिरमौर सुमहिमा भारी
जो याको वह आदर करिहैं * तौ हम सब लै सीसहि धरिहैं

श्रीआनन्दकान्ह-ब्रह्मचारी हम सबके सिरमौर हैं, उनकी बड़ी महिमा है। यदि वे इसका आदर करेंगे तो हम सब लोग भी इसे शीश चढ़ावेंगे—सम्मान करेंगे।

गन आनँदकानन पहँ ततपर * करत प्रसंस प्रसन्न परसपर
पोथी की चरचा पुनि कीन्ही * देखन हेतु सो लै धरि लीन्ही

तब गोसाईंजी आनन्दकान्ह के पास गये। उनसे मिलकर प्रसन्न हुए। दोनों साधुओं ने एक दूसरे की प्रशंसा की। फिर गोसाईंजी ने पोथी की चर्चा की तो उन्होंने देखने के लिए रख ली।

कछु दिनपढ़ी सहित अनुरागन * गये गोसाईं पोथी माँगन

कुछ दिनों तक पोथी को बड़े अनुराग से पढ़ा। फिर गोसाईंजी पोथी माँगने गये।



पोथी दइ अरु अस कहेउ, होई आदर लोक।
निजप्रमानकरिलिखिदियो, अतिअदभुतयहस्लोक॥

पोथी देकर उन्होंने कहा कि संसार में इसका आदर होगा। और अपने प्रमाण के लिए एक सुन्दर श्लोक लिख दिया।

श्लोक

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता-मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

इस आनन्दकानन में तुलसी जंगम वृक्ष है, जिसकी कवितारूपी मंजरी रामरूपी भ्रमर से भूषित है।

छन्द

धनि धन्य तुलसीदास जिन जगहेतु रामायन भनी।
माहात्म्य अमित न कहि सकौं रस विषय महँमोमतिसनी॥
निज बुद्धि के अनुसार कहि गोपाल सतगुरु की दया।
रघुबीर जस की अधिकता श्रीसंतजन करिहैं मया॥

तुलसीदासजी धन्य हैं, धन्य हैं, जिन्होंने संसार के उपकार के लिए रामायण रची। मैं रामायण का अपार माहात्म्य कह नहीं सकता, क्योंकि मेरी मति विषय-रस में सनी है। गोपालदास ने सद्गुरु की दया से अपनी बुद्धि के अनुसार रामायण का माहात्म्य कहा। इसमें रामचन्द्रजी के यश की बड़ाई कही है, इसलिए सन्तजन इससे प्रेम करते हैं।



श्रीमत तुलसीदासजी, ह्वै प्रसन्न वर देहु।
रामायन-माहात्म्य सों, हरिजन करहिं सनेहु॥

हे श्रीमान् तुलसीदासजी! प्रसन्न होकर यह वरदान दो कि इस रामायण-माहात्म्य से हरिजन प्रेम करें।

संबत वसु नभ नन्द इक, मार्गसुक्ल गुरुवार।
एकादसि कहँ कीन्ह मैं, अपनी मति अनुसार॥

संवत् १६०८ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी गुरुवार को रामायण का यह माहात्म्य अपनी बुद्धि के अनुसार लिखा।

रामकोट श्रीअवधपुर, स्वामी रामप्रसाद।
तिनकी महिमा को कहै, बिस्वबिदित मरजाद॥

श्रीअयोध्यापुरी में रामकोट में स्वामी रामप्रसादजी रहते हैं, उनकी महिमा कौन कह सकता है? संसार में उनकी मर्यादा विदित है।

तिन ते गादी पाँचईं, सो स्वामी मैं दास।
लषनपुरी मम जन्मछिति, रामनगर के पास॥

मैं उनसे पाँचवीं गद्दी पर उन स्वामी (रामप्रसादजी) का दास हूँ। रामनगर के पास लछिमनपुर में मेरा जन्म हुआ था।

मोजमनगर प्रसिद्ध द्विज, उत्तम पूरनदास।
तस्यात्मज गोपालकृत, यह महात्म इतिहास॥

मोजमनगर में प्रसिद्ध ब्राह्मणश्रेष्ठ पूरनदासजी रहते थे, उनके पुत्र गोपालदास ने यह रामायण-माहात्म्य बनाया।

रामायण-माहात्म्य समाप्त



एकश्लोकी रामायण

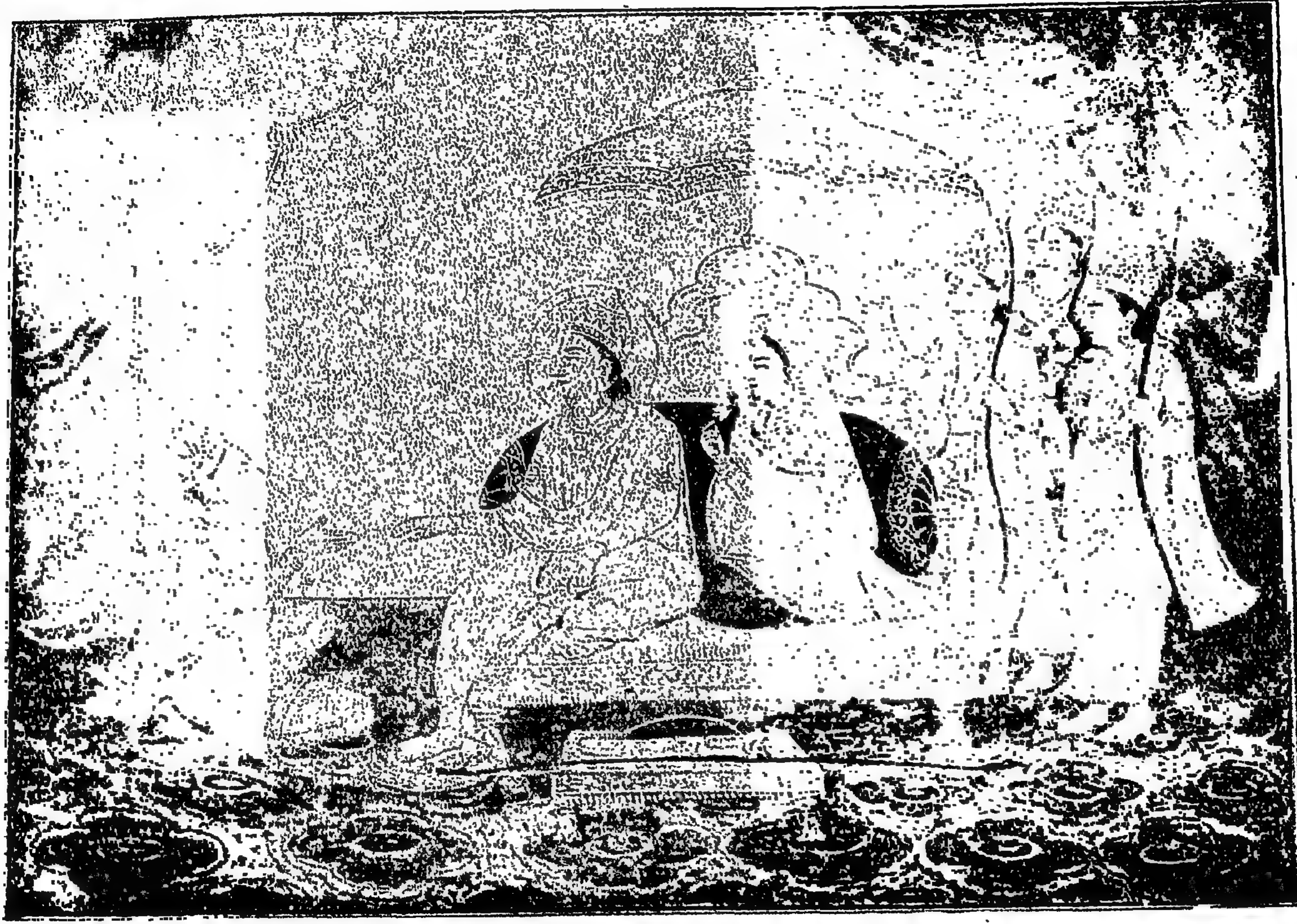
आदौ रामतपोवनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम्।
बालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनं
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धिरामायणम्॥

आदि में श्रीरामचन्द्रजी का (जन्म, ब्याह और) तपोवन में जाना, वहाँ सुवर्ण मृग को मारना, फिर सीताहरण, जटायु का मरण, सुग्रीव से बातचीत, बालि को मारना, हनुमान्‌जी का समुद्र लाँघना और लंकापुरी को जलाना, फिर रामचन्द्रजी का रावण और कुम्भकर्ण को मारना, बस, इतनी ही रामायण कथा है।





रामपंचायतन ।

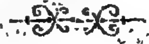


जोरि पाणि कह तव हनुमन्ता । सुनिए दीनबन्धु भगवन्ता ॥ नाथ भरत कछु पूछन चहहीं । प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण बालकाण्ड

बालबोधिनीटीकासहित





सकलसिद्धिविधायक विघ्नहा सुवनगौरिसहेश गणेश को।
प्रणवहूँ कर जोरि अनेकधा रदन एक गजेशमुखाब्ज जो॥
जननि वाणि सरस्वति बुद्धि दे दुरितहन्तृ गिरा जगदम्बिके।
तव पदाब्जपराग नमोनमः करहु मोपर दृष्टि दयाभरी॥



गौरव पद जहँ लगि जगत, अन्त होत जेहि माहिं।
ऐसे गुरुपदपद्म को, असकृत नमोनमाहिं॥
तुलसीहृदि अभिलषित जो, रामायण को अर्थ।
प्राकृत भाषा गद्य में, होवहुँ कहन समर्थ॥
बहुरि रुचिर अतिसरल हो, भावहि सबको नीक।
स्वल्पहु विद्यावान जन, समुझि आदरहिं ठीक।

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

अर्थ से भरे हुए अक्षरों, रसभेद * से मिले हुए छन्दों, और मंगलों के करनेवाले सरस्वती और गणेशजी की मैं वन्दना करता हूँ।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

उन श्रद्धाविश्वासरूपी उमाशंकर की वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्ध पुरुष भी अपने हृदय में स्थित ईश्वर को नहीं देखते। तात्पर्य यह कि श्रद्धा विश्वास के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

अब मैं ज्ञानमय, नित्य (जो सदा एक-सा बना रहे), साक्षात् शिवस्वरूप गुरुजी की वन्दना करता हूँ। जैसे महादेवजी के आश्रय टेढ़ा भी द्वितीया का चन्द्रमा सब जगह पूजा जाता है, वैसे ही गुरुजी के आश्रय से कुटिल पुरुष भी वन्दनीय हो जाता है।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

---

* शृंगार १ हास्य २ करुणा ३ रौद्र ४ वीर ५ भयानक ६ बीभत्स ७ अद्भुत ८ और शान्त ९ ये नव रस हैं।

श्रीसीतारामजी के गुणसमूहरूपी पवित्र वन में विहरनेवाले अधिक शुद्ध बुद्धि कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजी और वानरों में श्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जी की वन्दना करता हूँ। सबसे पहले श्रीरामचरित्र की आदिकवि वाल्मीकिमुनिने ही कविता में रचना की। इसीप्रकार श्रीरामचरित्रको सबसेप्रथम सांसारिक पदार्थ छोड़कर श्रीहनुमान्‌जी ने धारणकिया। इसीसे श्रीहनुमान्‌जी भक्तों में प्रथम कहलाते हैं।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

संसार की सृष्टि को रचने, पालने और नाश करनेवाली, जन्ममरण के क्लेश से छुड़ानेवाली और सब प्रकार का कल्याण करनेवाली श्रीरामप्रिया सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाः सुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

जिस ईश्वर की माया के वश में ब्रह्मादिक देवता पर्यन्त सब संसार है, जिसकी सत्यता से रस्सी में सर्प के भ्रम की नाईं यह सारा मायामय जगत् सत्य ही सा जान पड़ता है, संसारसागर तरनेवालों के लिए जिसके चरण ही एक नाव हैं, उस सम्पूर्ण जगत् और कारण से परे * पाप हरनेवाले रामनाम परमेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं य-
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

अठारहों पुराणों, चारों वेदों, छहो शास्त्रों का श्रीपरमात्मा राम के विषय में जो सम्मत है, अध्यात्म अथवा वाल्मीकीय रामायण में तथा कुछ और ग्रन्थों में जो कहा गया है, उनका और कुछ अपने हृदय का अनुभव लेकर मैं तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुखी होने के लिए अति मनोहर भाषाप्रबन्ध में श्रीरघुनाथजी की कथा की रचना करता हूँ।



जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभगुणसदन॥

जिनके सुमिरने ही से सब काम सिद्ध होते हैं वे बुद्धि की राशि, अच्छे गुणों की खान गजमुख श्रीगणेशजी हमारे ऊपर कृपा करें।

* कार्य संसार है, कारण माया है, और परमात्मा कार्यकारण अर्थात् संसार और माया दोनों से परे है।

मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन ।
जासु कृपासुदयाल, द्रवौ सकलकलिमलदहन ॥

जिनकी कृपा से गूँगा बोलने लगता है, लँगड़ा बड़े-बड़े दुर्गम पर्वतों पर चढ़ता है, वही कलियुग के सम्पूर्ण पापों को भस्म करनेवाले परमदयालु श्रीरघुनाथजी मेरे ऊपर दया करें।

नीलसरोरुह श्याम, तरुणअरुणवारिजनयन ।
करहु सो मम उरधाम, सदा क्षीरसागरशयन ॥

नीले कमल के समान श्याम-शरीर, तुरन्त के फूले हुए लाल कमल के समान नेत्रोंवाले और सदा क्षीर-सागर में शयन करनेवाले श्रीविष्णुजी मेरे हृदय में निवास करें।

कुन्दइन्दुसम देह, उमारमण करुणाअयन ।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दनमयन ॥

कुन्द के फूल और चन्द्र के समान गौरवर्ण, श्रीपार्वतीजी के पति, करुणा-निधि, दीनों पर स्नेह रखनेवाले, कामदेव को जलानेवाले श्रीशिवजी मेरे ऊपर कृपा करें।

वन्दौं गुरुपदकञ्ज, कृपासिन्धु नररूप हरि ।
महामोह तमपुञ्ज, जासु वचन रविकरनिकर ॥

मैं श्रीगुरुदेव के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। जो कृपा के समुद्र और मनुष्यरूप साक्षात् हरि हैं। जैसे सूर्यनारायण की किरणों से घोर अन्धकार का समूह दूर हो जाता है, वैसे ही श्रीगुरुदेव के उपदेश से महामोह (अविद्या) नष्ट हो जाती है।

वन्दौं गुरुपदपद्मपरागा * सुरुचि सुवास सरस अनुरागा
अमियमूरिमय चूरण चारू * शमन सकल भवरुजपरिवारू

मैं गुरुजी के चरणकमलों की रज की वंदना करता हूँ। जैसे कमल-पुष्प का पराग शोभा, सुगन्ध और रस से भरा होता है, वैसे ही श्रीगुरुदेव के चरणों की रज भी है। वह सजीवन मूल के चूर्ण के समान है। उसका सेवन करने से जन्म-मरणरूपी संसार का रोग परिवारसहित नाश हो जाता है।

सुकृत शम्भुतन विमल विभूती * मञ्जुल मङ्गल मोदप्रसूती
जनमन मञ्जु मुकुरमलहरणी * किये तिलकगुणगणवशकरणी

फिर वह रज पुण्यमयी श्रीशिवजी की देह की निर्मल विभूति के समान है, जिसके लगाने से अंतःकरण स्वच्छ होता है—अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और ईर्ष्या, ये छहों विकार दूर होते हैं—मङ्गल (योग-क्षेम की करनेवाली, क्योंकि परमेश्वर के भजन में अनेक विघ्न होते हैं, उनके दूर करनेवाली है) और मोद (ब्रह्मानन्द) देनेवाली है। इसी से श्रीगुरुदेव के पैरों की धूल मञ्जुल, मङ्गल और मोद की प्रसूति (उत्पन्न करने-

वाली) है। शिष्य के दर्पणरूपी मन को स्वच्छ रखती है और उस रज का तिलक लगाने से गुणसमूह * (जो कि न्यायशास्त्र में कहे गये हैं) वश हो जाते हैं।

श्रीगुरुपदनख मणिगण जोती * सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती
दलन मोहतम सो सुप्रकासू * बड़े भाग उर आवहिं जासू

रत्नों के ढेर के-से प्रकाशवाले श्रीगुरुदेव के चरणों के नखों का स्मरण करने से हृदय में दिव्यदृष्टि † होती है। जिसके हृदय में ध्यानमार्ग से मोहमय अन्धकार को मिटानेवाला श्रीगुरुजी के चरणों के नखों का सुन्दर प्रकाश प्राप्त हो, उसके बड़े भाग्य हैं।

उघरहिं विमल विलोचन ही के * मिटहिं दोष दुख भवरजनी के
सूझहिं रामचरित मणिमानिक * गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक

हृदय के निर्मल नेत्र (ज्ञान-वैराग्य) खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रि के दोष और दुःख दूर हो जाते हैं। ऐसा होने से मणि (सर्प आदि जंगम जीवों से उत्पन्न) और माणिक (पर्वत आदि स्थावर से उत्पन्न) के समान श्रीरघुनाथजी के चरित्र दिखाई पड़ते हैं, चाहे किसी गुप्तस्थान में छिपे हों या प्रत्यक्ष प्रकट हों। श्रीरामचरित्र में मणि अनुभव ज्ञान है, जो कि स्वयं अपनी बुद्धि से और माणिक शास्त्र से उत्पन्न ज्ञान, जो कि पढ़ने पर गुरुजी के बतलाने से जाना जाता है।



यथा सुअञ्जन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरिनिधान॥

जैसे सुजान (अञ्जन बनाने की विधि जाननेवाले), साधक (विधि से लगानेवाले), और सिद्ध (अञ्जन बनाने और लगानेवाले) अच्छे अञ्जन को आँखों में लगाकर पर्वत, वन और पृथ्वी में बहुत-सी निधियों को खेल सरीखे देखते हैं, इसी तरह सुजान (श्रीगुरुजी के चरणों की धूल का प्रभाव जाननेवाले),साधक (नियम से धारण करनेवाले). और सिद्ध (प्रभाव में पूरा विश्वास रखनेवाले और नियम में आलस्यरहित) पर्वत, वन. पृथ्वी आदि के भीतर बाहर छिपे हुए इनसबकेभूरिनिधान (सबसे बड़ी निधि या स्थान या धारणकरनेवाले श्रीरघुनाथजी) को आश्चर्य के समान देखते हैं।

गुरुपदरज मृदु मंजुल अञ्जन * नयनअमिय दृगदोषविभञ्जन
तेहि करि विमलविवेकविलोचन * वरणौं रामचरित भवमोचन

श्रीगुरुदेव के चरणों की रज कोमल और स्वच्छ अञ्जन के समान है, जोकि ज्ञानरूप नेत्रों को अमृत (सदाज्ञान रहे, कभी अज्ञान बाधा न करे) के समान फलदेनेवाली और दृष्टि के सब दोषों (कामादि छहों विकारों) का नाश करनेवाली है। उसी अञ्जन से अपने ज्ञानमय नेत्रों को शुद्ध करके संसार से छुड़ानेवाले अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्त करानेवाले श्रीरघुनाथजी के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

* शब्द १, स्पर्श २, रूप ३, रस ४, गन्ध ५, संख्या ६, परिमाण ७, पृथक्त्व ८, संयोग ९, विभाग १०, परत्व ११, अपरत्व १२, गुरुत्व १३, द्रवत्व १४, स्नेह १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३ और संस्कार २४, ये गुणसमूह कहलाते हैं।

† दिव्यदृष्टि का वर्णन योगसूत्र पातंजल शास्त्र में है कि यहीं से देवलोक में अप्सराओं का नाच और पृथिवी के छिपे हुए रत्न आदि दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु ज्ञान-वैराग्य की दृष्टि से परमपद पानेवालों को ये सब विघ्न हैं। महात्मा पुरुष इनको तुच्छ मायाजाल समझकर इनकी ओर नहीं देखते।

वन्दौं प्रथम महीसुरचरणा * मोहजनित संशय सब हरणा
सुजनसमाज सकल गुणखानी * करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी

पहले ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो मोह से उत्पन्न सब सन्देहों के दूर करनेवाले हैं। सब अच्छे-अच्छे गुणों को उत्पन्न करनेवाली सज्जनों की सभा को मधुर वाणी से स्तुतिपूर्वक बड़े प्रेम के साथ प्रणाम करता हूँ।

साधुचरित शुभ सरिस कपासू * निरस विशद गुणमय फल जासू
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा * वन्दनीय जेहि जग यश पावा

सज्जनों का चरित कपास के समान है। जैसे कपास नीरस होता है, वैसे ही साधु पुरुषों में स्वार्थ नहीं होता। जैसे कपास स्वच्छ उज्ज्वल होता है, वैसे ही सन्तजन क्रोधादि विकारों से स्वच्छ होते हैं। जैसे कपास में फल बहुत गुणवाला है कि उससे अनेक प्रकार के वस्त्र बनाये जाते हैं, जो पहिनने के काम आते हैं, वैसे ही साधुमहात्माओं में बहुत गुणवाला फल होता है, अर्थात् उनका संग करने से जाति का छिद्र (उच्छिष्ट, अपावन, पतित), देह का छिद्र (अन्ध, पंगु आदि), और अन्तःकरण का छिद्र (बदचलनी) दूर होकर मनुष्य साधु स्वभाववाला हो जाता है। जैसे कपास दुःखों (ओटना, कातना, बुनना आदि) को सहकर वस्त्र होकर पर (शत्रु) के अंग के छिद्रों को ढकता है, वैसे ही सज्जन पुरुषों को चाहे जैसा दुःख दे, परन्तु वे उन दुःखों को सहकर भी शत्रु के साथ भलाई ही करते हैं। इससे संसार में जिसको यश मिल गया है, वह स्तुति करने के योग्य है।

मुदमङ्गलमय सन्तसमाजू * ज्यों जग जङ्गम तीरथराजू
रामभक्ति जहँ सुरसरिधारा * सरस्वति ब्रह्मविचार प्रचारा

मुद और मंगलमय * साधुसभा जंगम तीर्थराज प्रयाग के समान है। प्रयाग में गंगा यमुना के बीच सरस्वती छिपी हैं, ऐसे ही साधुसभा में भक्ति और कर्मोपासना के मध्य में ब्रह्मविचार छिपा है।

विधिनिषेधमय कलिमलहरणी * कर्मकथा रविनन्दिनि वरणी
हरिहर कथा विराजत बेनी * सुनत सकल मुद मङ्गल देनी

जैसे प्रयागराज में कलियुग के पापों को दूर करनेवाली श्रीसूर्य की पुत्री यमुना हैं, वैसे ही साधुसभा में अच्छे कर्मों का ग्रहण और बुरे कर्मों का त्याग यह कर्मोपासना है। गंगा यमुना सरस्वती मिलकर त्रिवेणी हुईं। इसी प्रकार साधुसभा में सुनने से आनन्द और मंगल को देनेवाली श्रीरामचन्द्रजी और शिवजी की वे अभेद कथाएँ हैं, जिनके मनन से ब्रह्मसाक्षात्कार होता है।

वट विश्वास अचल निजधर्मा * तीरथराज समाज सुकर्मा
सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा * सेवत सादर शमन कलेशा
अकथ अलौकिक तीरथराऊ * देय सद्य फल प्रकट प्रभाऊ

* मुद और मंगल का अर्थ पहली अष्टपदी की तीसरी चौपाई में हो चुका है।

प्रयागजी में अक्षयवट है। उसकी जगह साधुसभा में अपने धर्म पर अटल विश्वास है। प्रयागराज में यात्रियों का समाज है ऐसे ही सन्तसभा में सुकर्म का समाज है। यह प्रयागरूप साधुसभा सब देश में सदैव सबको सुलभ है। आदरसहित सेवन करने से क्लेश का नाश कर देती है। इस साधुसभारूपी प्रयाग का प्रभाव ऐसा अलौकिक है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। वह शीघ्र फल देनेवाला है।

दो० सुनि समुझैं जन मुदितमन, मज्जैं अति अनुराग।
लहैं चारि फल अछत तन, साधुसमाज प्रयाग॥

साधुसभारूपी प्रयाग में जाकर जो लोग उपदेशों को सुनते, विचार करते, फिर आनन्दमग्न होकर उसी में स्नान करते हैं, उसी शिक्षा पर चलते हैं, तो इसी देह में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों फल पाते हैं।

मज्जन फल देखिय ततकाला * काक होहिं पिक बकहु मराला
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई * सतसङ्गतिमहिमा नहिं गोई

साधुसमाजरूपी प्रयाग में मज्जन करने (उपदेश पर चलने) का फल उसी समय दिखलाई पड़ता है। कौवे के समान कठोर बोलनेवाले कोकिला के समान मीठे वचन बोलने लगते हैं और बगला के समान मांसभक्षी मोती चुगनेवाले हंस के समान हो जाते हैं। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे; क्योंकि सत्संगति की महिमा छिपी नहीं है।

बालमीकि नारद घटयोनी * निजनिज मुखन कही निजहोनी
जलचर थलचर नभचर नाना * जे जड़ चेतन जीव जहाना

वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने-अपने मुख से अपनी-अपनी होनी (उत्पत्ति) कही है*। जलचर (जलवासी), थलचर (पृथ्वीनिवासी) और नभचर (आकाशवासी) आदि जितने संसार में जड़ (पर्वत आदि) और चैतन्य (श्वास लेनेवाले) जीवधारी हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई * जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई
सो जानब सतसङ्गप्रभाऊ * लोकहु वेद न आन उपाऊ

उन सबमें से जब कभी किसी ने किसी उपाय से कहीं पर बुद्धि, यश, मोक्ष या स्वर्ग आदि गति, ऐश्वर्य और परोपकार, इन पाँचों में से एक, दो अथवा सबको पाया, सो सब केवल सत्संग के प्रभाव से; क्योंकि वेद में, और लोक में भी, सत्संग के सिवा इनके मिलने का और कोई उपाय नहीं है।

* वाल्मीकिजी पहले राह चलनेवालों को मारकर लूट लिया करते थे। एक दिन ऋषियों से भेंट हुई। उनको भी लूटने-मारने चले। ऋषियों ने कहा पहले अपने कुटुम्बियों से पूछ लो कि हम लूटमार से जो पाप इकट्ठा होगा उसमें भी वे साझी होंगे या केवल खाने, पहिनने और आराम ही करने भर को हैं। पूछने पर किसी ने भी पाप में भाग लेना स्वीकार न किया। वाल्मीकि उन ऋषियों की शरण आये और उन्होंने उलटा रामनाम 'मरा' जपने की शिक्षा दी। वाल्मीकि भी वैसा करने से अच्छे मुनि हो गये। नारदजी दासी के पुत्र थे। परन्तु महात्माओं के संग रहने से ब्रह्मा के पुत्र हुए। ऐसे ही अगस्त्यजी भी महात्माओं के संग से उन्नत हुए हैं।

बिनु सतसङ्ग विवेक न होई * रामकृपा बिनु सुलभ न सोई
सतसङ्गति मुद मङ्गलमूला * सोइ फलसिधि सब साधनफूला

बिना सत्सङ्ग के ज्ञान नहीं होता और श्रीरामजी की कृपा के बिना सत्सङ्ग सुलभ नहीं है। आनन्द और मङ्गल का मूल सत्सङ्ग है। वही सब सिद्धियों का फल है, दूसरे साधन फूल के समान हैं।

शठ सुधरहिं सतसङ्गति पाई * पारस परसि कुधातु सुहाई
विधिवश सुजन कुसङ्गति परहीं * फणिमणिसमनिजगुणअनुसरहीं

शठ भी सत्सङ्गति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस में छू जाने से लोहा भी सोना हो जाता है। दैवयोग से कभी सज्जन भी कुसङ्गति में पड़ जाते हैं; परन्तु तब भी अपने गुण का अनुसरण करते हैं; अर्थात् वहाँ भी साँप की मणि के समान अपनी साधुता दिखाते हैं।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी * कहत साधुमहिमा सकुचानी
सो मोसन कहि जात न कैसे * शाकबणिक मणिगुणगण जैसे

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कवि (शुक्र), कोविद (बृहस्पति), और वाणी (सरस्वती) भी साधुओं की महिमा कहते सकुचती हैं। उसे मैं कैसे कह सकता हूँ ? जैसे साग का बेचनेवाला हीरा, पन्ना आदि रत्नों के गुण नहीं कह सकता।



वन्दौं सन्त समानचित, हित अनहित नहिं कोय।
अञ्जलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध करदोय॥

मैं समदर्शी साधुओं की स्तुति करता हूँ, जिनके मित्र या शत्रु कोई नहीं है। जैसे अञ्जली में सुगन्धित फूल भरने से दोनों हाथ सुगन्धित होते हैं, वैसे ही साधुजन सबको एक दृष्टि से देखते हैं।

सन्त सरलचित जगतहित, जानि सुभाव सनेहु।
बालविनय सुनि करि कृपा, रामचरणरति देहु॥

महात्माओं का सीधा और संसार का हितकर स्वभाव और स्नेह जानकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझ बालक (छोटी बुद्धिवाले) की विनय सुन, कृपा करके, मुझे श्रीरघुनाथजी के चरणों में भक्ति दीजिए।

बहुरि बन्दि खलगण सतिभाये * जे बिनु काज दाहिने बाँये
परहित हानि लाभ जिनकेरे * उजरे हर्ष विषाद बसेरे

अब मैं दुष्ट पुरुषों का स्वभाव ठीक-ठीक कहकर उनकी वंदना करता हूँ, जो बिना प्रयोजन शत्रु या मित्र हो जाते हैं, पराये हित में अपनी हानि समझते हैं और पराई हानि में अपना लाभ मानते हैं, जिन्हें दूसरे के उजड़ने में सुख और बसने में शोक होता है।

हरिहरयश राकेश राहु से * पर अकाज भट सहसबाहु से

जे परदोष लखहिं सहसाखी * परहित घृत जिनके मन माखी

विष्णुभगवान् और श्रीशिवजी के चन्द्रमा के समान यश के लिए दुष्टजन राहु के समान हैं। वे पराया काम बिगाड़ने में सहस्रबाहु के समान योद्धा हैं। जिन्हें पराये दोष का देखना और उसकी गवाही देना प्रिय है। वे घी के समान पराये हित में मक्खी की तरह गिर पड़ते हैं, अर्थात् पराया काम बिगाड़ने में अपना जीव भी देने को तैयार रहते हैं।

तेज कृशानु रोष महिषेशा * अघ अवगुण धन धनिक धनेशा
उदय केतुसम हित सबही के * कुम्भकरण सम सोवत नीके

दुर्जन पुरुषों का तेज पराया काम बिगाड़ने में अग्नि के समान और क्रोध यमराज का सा होता है। जैसे धन लक्ष्मी के धनी कुबेरजी हैं, वैसे ही ये पाप और अवगुणों के धनी हैं। ये पराये हित के लिए केतु के समान हैं। सभी के हित को नष्ट करने के लिए उनका उदय केतु के उदय के समान है। इसलिए यदि दुष्टजन कुम्भकर्ण के समान सोया करें तभी अच्छा है।

पर अकाज लगि तनु परिहरहीं * जिमि हिमउपल कृषी दलिगरहीं
बन्दौं खल जस शेष सरोषा * सहस वदन वरणैं परदोषा

जैसे ओले खेती का नाश कर आप भी गल जाते हैं, वैसे ही दुर्जन पराये अकाज के लिए अपनी देह तक छोड़ देते हैं। हजार फनों से फुफकार छोड़नेवाले शेषजी के समान क्रोधी दुष्टों की वन्दना करता हूँ, जो पराये दोष कहने में हजार मुखवाले हो जाते हैं।

पुनि प्रणवौं पृथुराजसमाना * पर अघ सुनहिं सहसदस काना
बहुरि शक्रसम बिनवौं तेही * सन्तत सुरानीक हित जेही
वचनवज्र जेहि सदा पियारा * सहस नयन परदोष निहारा

फिर राजा पृथु के समान उन दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो पराये पाप को हज़ारों कान लगाकर सुनते हैं। सदा देवसमूह में स्नेह करनेवाले इन्द्र के समान उन दुष्टों की विनती करता हूँ, जिनको वज्र के समान कठोर वचन सदा प्रिय हैं, जो पराये दोष को हज़ार नेत्रों से देखते हैं।



उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खलरीति।
जानि पाणियुग जोरि करि, विनती करौं सप्रीति ॥

उदासीन (वैर या स्नेह से रहित), शत्रु या मित्र चाहे जिसका हित हो, उसे सुनकर दुष्टों का हृदय जल जाता है। उनकी यह रीति जानकर मैं दोनों हाथ जोड़ प्रीति सहित उनकी विनती करता हूँ।

मैं अपनी दिशि कीन्ह निहोरा * ते निज ओर न लाउब भोरा
पायस पालिय अति अनुरागा * होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा

यद्यपि मैंने अपनी ओर से प्रणाम स्तुति आदि करके दुष्टों पर निहोरा किया, तथापि वे

अपनी ओर से बुराई करने में न चूकेंगे; जैसे कौवा खीर खिलाकर पाले जाने पर भी मांस खाना कभी नहीं छोड़ता।

बन्दौं सन्त असज्जन चरना * दुखप्रद उभय बीच कछु बरना
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं * मिलत एक दारुण दुख देहीं

मैं सज्जन और दुर्जन दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ; क्योंकि दोनों दुःख देने-वाले हैं। सज्जन बिछुड़ने पर और दुर्जन मिलते ही घोर दुःख देते हैं।

उपजहिं एकसङ्ग जलमाहीं * जलजजोंक जिमिगुणबिलगाहीं
सुधा सुरा सम साधु असाधू * जनक एक जग जलधि अगाधू

जैसे जल में एक ही साथ कमल और जोंक उत्पन्न होते हैं, परन्तु सुगन्ध देना और रक्त खींचना आदि उनके गुण न्यारे होते हैं। जैसे अमृत और मदिरा दोनों एक ही अगाध समुद्र से उत्पन्न हैं, वैसे ही संसार में सज्जन और दुर्जन भी एक ही माता-पिता से उत्पन्न हो सकते हैं।

भल अनभलनिजनिज करतूती * लहत सुयश अपलोक बिभूती
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू * गरलअनलकलिमलसरिव्याधू
गुण अवगुण जानत सब कोई * जो जेहिं भाव नीक तेहि सोई

भले और बुरे अपनी-अपनी करनी से सुयश और अपयश को पाते हैं। जैसे अमृत और विष, चन्द्रमा और अग्नि, तथा गंगाजी और कर्मनाशा के गुणों में अन्तर है, वैसे ही साधु और दुष्ट पुरुषों के गुणों में भी अन्तर है। सज्जन और दुर्जन सभी गुण और अवगुण को जानते हैं; परन्तु जिसमें जिसकी भावना है, उसको वही अच्छा लगता है।



भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥

भले मनुष्य भलाई ही से शोभा और नीच अपनी निचाई ही से नाम पाते हैं। अमृत वही सराहा जायगा, जिससे मृत्यु न हो और विष वही सराहा जायगा, जिससे शीघ्र मृत्यु हो जाय।

खल गह अगुण साधु गुण गाहा * उभय अपार उदधि अवगाहा
तेहिते कछु गुण दोष बखाने * संग्रह त्याग न बिनु पहिंचाने

दुष्ट अवगुणों को ग्रहण करते हैं और साधु गुणों को। ये दोनों ही अवगुणों और गुणों के अथाह तथा अपार समुद्र हैं। परन्तु बिना पहचाने सज्जनों का संग और दुर्जनों का त्याग नहीं हो सकता। इसलिए साधुओं के कुछ गुण और दुष्टों के कुछ अवगुण वर्णन किये हैं।

भलेउ पोच सब बिधि उपजाये * गनि गुण दोष वेद बिलगाये
कहहिं वेद इतिहास पुराना * बिधि प्रपंच गुण अवगुण साना

विधाता ने भले-बुरे सबको पैदा किया है। सज्जन और दुर्जन का बिलगाव गुणों और

अवगुण को गिनकर वेद ने किया है, अर्थात् जिसमें गुण अधिक और अवगुण कम हैं, वह सज्जन और जिसमें अवगुण अधिक और गुण कम हैं, वह दुर्जन है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की इस जगज्जालरचना में गुण और अवगुण दोनों मिले हुए हैं।

दुख सुख पाप पुण्य दिन राती * साधु असाधु सुजाति कुजाती
दानव देव ऊँच अरु नीचू * अमिय सजीवन माहुर मीचू

दुःख, सुख, पाप, पुण्य, दिन, रात्रि, सज्जन, दुर्जन, ऊँची जाति, नीची जाति, दैत्य, देवता, ऊँचा, नीचा, अमृत, विष, जीना, मरना—

माया ब्रह्म जीव जगदीशा * लक्ष्य अलक्ष्य रंक अवनीशा
काशि मगह सुरसरि क्रमनासा * मरु मालव महिदेव गवासा
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा * निगमागम गुणदोषविभागा

माया, ब्रह्म, जीव, ईश्वर, लक्ष्मी, दारिद्र्य, निर्धन, राजा, काशी (जहाँ मरनेवाले को मुक्ति मिलती है), मगहर (जहाँ मरनेवाले को नरक होता है), गंगाजी, कर्मनाशा नदी (जिसका जल छूने से अच्छे कर्म नष्ट हो जाते हैं), मरुदेश (जहाँ पानी का क्लेश हो), मालवदेश (जहाँ पानी का सुख हो), ब्राह्मण, कसाई, स्वर्ग, नरक, विषयानुराग और वैराग्य आदि भले-बुरे से संसार मिला हुआ है। इन सबके गुणों और दोषों का विभाग वेद और शास्त्रों ने किया है।



जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

परमात्मा ने जड़ और चैतन्य, दोनों में गुण और दोष मिलाकर संसार की रचना की है। परन्तु जैसे हंस जल में मिले हुए दूध को जल से निकाल लेते हैं, ऐसे ही सज्जन पुरुष गुण अवगुण मिले हुए इस संसार से अवगुण को छोड़कर गुण को ले लेते हैं।

अस विवेक जब देइ विधाता * तब तजि दोष गुणहिं मन राता
काल सुभाव कर्म बरिआई * भलेउ प्रकृतिवश चूक भलाई

जब विधाता ऐसा ज्ञान दे, तब दोष छोड़कर गुण में मन लगे। परन्तु गुणवान् सज्जन भी जब तक माया के वश में हैं, तब तक काल, स्वभाव और कर्म के प्रभाव से भलाई करने में चूक जाते हैं। तात्पर्य यह कि सज्जनों का अन्तःकरण यद्यपि शुद्ध सतोगुणी होता है, तो भी बिना अविद्या के दूर हुए और ब्रह्माकार वृत्ति के उदय हुए माया में अच्छे-बुरे के व्यवहार होने से काल, कर्म और स्वभाव का प्रभाव नहीं मिटता।

सो सुधारि हरिजन इमि लेहीं * दलि दुख दोष विमल यश देहीं
खलहु करहिं भल पाय सुसंगू * मिटहिं न मलिन स्वभाव अभंगू

परन्तु श्रीरामभक्त उस चूक को इस प्रकार सुधारते हैं कि दुःख और दोष को दूर कर उज्ज्वल यश देते हैं। दुष्ट लोग सुसंग पाकर कभी भलाई भी कर देते हैं; परन्तु उनका दुष्ट

स्वभाव नहीं छूटता। तात्पर्य यह कि जैसे दुर्जन कभी भलाई करने से सज्जन नहीं हो सकते, वैसे ही सज्जन कोई चूक हो जाने से दुर्जन नहीं होते।

लखि सुवेष जगवञ्चक जेऊ * वेषप्रताप पूजियत तेऊ
उघरे अन्त न होय निबाहू * कालनेमि जिमि रावण राहू

जो संसार को ठगनेवाले हैं, वे भी साधु पुरुषों के वेष में होने से पूजे जाते हैं परन्तु भेद खुल जाने पर अन्त को उनका निर्वाह नहीं होता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु की दशा हुई।

किये कुवेष साधु सनमानू * जिमि जग जामवन्त हनुमानू
हानि कुसंग सुसंगति लाहू * लोकहु वेद विदित सब काहू

कुवेष में भी साधु पुरुषों का आदर होता है। जैसे कुवेष ही में साधु आचरणवाले हनुमान्‌जी और ऋक्षराज जाम्बवान् का हुआ। तात्पर्य यह कि वेष की आवश्यकता नहीं है, केवल आचरण चाहिए। लोक और वेद में सब किसी को मालूम है कि कुसंग से हानि और सुसंग से लाभ होता है।

गगन चढ़ै रज पवनप्रसंगा * कीचहि मिलै नीच जल संगा
साधु असाधु सदन शुक सारी * सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी

देखो, जो धूल ऊपर बहनेवाले वायु के संग से आकाश में चढ़ जाती है, वहीं नीचे बहनेवाले जल के संग से कीचड़ में आकर मिल जाती है। साधुओं के घर में पले हुए तोता, मैना सुसंग के कारण राम-राम कहते और दुष्टों के यहाँ कुसंग से खूब गाली देते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई * लिखिय पुराण मञ्जुमसि सोई
सोइ जल अनल अनिल संघाता * होइ जलद जगजीवनदाता

वही धुआँ कुसंग से काजल, वही सुसंग से स्याही, जिससे पुराण आदि ग्रन्थ लिखे जाते हैं, और वही जल, अग्नि और वायु के मेल से संसार का जीवन देनेवाला बादल हो जाता है।

दो० ग्रह भेषज जल पवन पट, पाय कुयोग सुयोग।
होय कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग॥

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र, ये सब संग ही से अच्छे और बुरे होते हैं, जिनको लक्षण पहचाननेवाले लोग देखते हैं। सूर्य आदि ग्रह शुभग्रह के साथ से अच्छा और क्रूरग्रह के साथ से बुरा फल देते हैं। ऐसे ही ओषधि, जल, वायु और वस्त्र भी संग ही से अच्छे और बुरे होते हैं।

समप्रकाश तम पाख दुहुँ, नामभेद विधि कीन।
शशिपोषकशोषक समुझि, जगयश अपयश दीन॥

देखो, महीने के दोनों पक्षों में अँधेरा और उजेला बराबर होता है। ब्रह्मा ने केवल नाम में भेद कर दिया है और यह नामभेद इसलिए है कि उजेला पक्ष चन्द्रमा की कलाओं को बढ़ानेवाला और अँधेरा घटानेवाला है। यह समझकर संसार में दोनों को यश और अपयश दिया गया है।

जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।
बन्दौं सबके पदकमल, सदा जोरि जुग पानि॥

संसार में जड़ और चैतन्य जितने जीव हैं, सबको श्रीरघुनाथजी का स्वरूप जानकर उन सबके चरणारविन्दों की दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गन्धर्व।
बन्दौं किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व॥

देवता, दानव, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितृगण, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस आदि की वंदना करता हूँ। अब सब कृपा करो।

आकर चारि लाख चौरासी * जाति जीव नभजलथलबासी
सीयराममय सब जग जानी * करौं प्रणाम जोरि जुग पानी

आकाश, जल और पृथ्वी में रहनेवाले सब चौरासी लाख जीव चार प्रकार के हैं—अण्डज (अण्डे से उत्पन्न), स्वेदज (पसीने से उत्पन्न), उद्भिज्ज (पृथ्वी से उत्पन्न) और जरायुज (पेट से उत्पन्न)। अतएव संसार को सीताराममय जान दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू * सब मिलि करहु छाँड़ि छलछोहू
निजबलबुधि भरोस मोहिं नाहीं * ताते बिनय करौं सब पाहीं

सब मिलकर छलकपट छोड़ अपनी कृपा का दास जानकर मेरे ऊपर स्नेह के साथ कृपा करो; क्योंकि मुझे अपने बल और बुद्धि का भरोसा नहीं है। इसलिए सबसे विनती करता हूँ।

करन चहौं रघुपतिगुण गाहा * लघुमति मोरि चरित अवगाहा
सूझ न एकौ अंग उपाऊ * मन मति रंक मनोरथ राऊ

श्रीरघुनाथजी के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ; परन्तु उनका चरित्र बहुत गहरा है और मेरी बुद्धि बहुत छोटी है। मुझे किसी अंग से अर्थात् मन, वचन, कर्म से एक भी उपाय नहीं दिखाई पड़ता; क्योंकि मेरे मन और बुद्धि बहुत छोटे हैं और मनोरथ राजा के समान बड़ा है।

मति अतिनीच ऊँचरुचि आछी * चहिय अमिय जग जुरै न छाछी
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई * सुनिहहिं बालवचन मन लाई

रुचि तो मेरी अच्छी और ऊँची है, परन्तु बुद्धि अत्यन्त नीच है। मेरा वही हाल है, जैसे संसार में जिसको मट्ठा भी नहीं मिल सकता, वह अमृत की चाहना करे। ऐसे लड़कों के से वचन सुनकर सज्जन पुरुष मेरी इस ढिठाई को क्षमा करेंगे और सुनने में ध्यान देंगे।

ज्यों बालक कह तोतरि बाता * सुनहिं मुदितमनपितु अरु माता
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी * जे परदूषण भूषणधारी

जैसे छोटा बालक तोतले वचन बोलता है और माता-पिता आनन्द के साथ उन्हें सुनते

हैं। क्रूर, टेढ़े और बुरे विचारवाले, जो पराये दोष को भूषण की तरह धारण करते हैं, मेरे वचन सुनकर हँसेंगे।

निज कवित्त केहि लाग न नीका * सरस होउ अथवा अतिफीका
जे परभणित सुनत हरषाहीं * ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं

अपनी कविता चाहे रस से भरी हो अथवा फीकी, किसको अच्छी नहीं लगती? ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसार में बहुत नहीं हैं, जो दूसरे की कविता को सुनकर प्रसन्न होते हों।

जग बहु नर सरसरिसम भाई * जे निज बाढ़ बढ़हिं जल पाई
सज्जन सुकृत सिन्धुसम कोई * देखि पूर विधु बाढ़हि जोई

संसार में तालाब और नदी के समान मनुष्य बहुत हैं जो जल पाकर अपनी ही बाढ़ से बढ़ते हैं, परन्तु समुद्र के समान पुण्यात्मा सज्जन विरले ही हैं, जो चन्द्रमा को बढ़ते देखकर बढ़ता है।


भाग्य छोट अभिलाष बड़, करहुँ एक विश्वास।
पैहैं सुख सुनि सुजनजन, खल करिहैं उपहास॥

मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बड़ी है; परन्तु एक यह विश्वास है कि सज्जन पुरुष मेरे कहे हुए श्रीरघुनाथजी के चरित्र को सुनकर सुख पावेंगे और दुष्ट लोग हँसी उड़ावेंगे।

खल परिहास होय हित मोरा * काक कहहिं कलकंठ कठोरा
हंसहि बक दादुर चातकही * हँसहिंमलिनखलविमलबतकही

दुष्टों की हँसी से भी मेरा हित होगा; क्योंकि कौवे कोकिला के शब्द को कठोर ही कहते हैं। जैसे बगले हंस की चाल पर और मेढक पपीहे की बोली को हँसते हैं, वैसे ही दुष्ट परमार्थ की बातों पर हँसते हैं।

कवितरसिक न रामपद नेहू * तिनकहँ सुखद हास्यरस येहू
भाषा भणित मोरि मति थोरी * हँसिबे योग्य हँसे नहिं खोरी

जो केवल कविता के रसिक हैं, श्रीरामजी के चरणों में भक्ति नहीं करते, उन्हें यह हास्यरसमयी कविता सुख देगी। मेरी छोटी बुद्धि और कविता हँसने ही योग्य है। हँसने में कोई दोष नहीं।

प्रभुपदप्रीति न सामुझ नीकी * तिन्हहिं कथासुनि लागिहि फीकी
हरिहरपदरति मति न कुतरकी * तिनकहँ मधुर कथा रघुवर की

जिन पुरुषों में न तो अच्छी समझ है; और न श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दों में प्रीति, उनको यह कथा सुनने में फीकी लगेगी। और, जिनकी श्रीरामजी और शिवजी के चरणों में भक्ति है और बुद्धि में कोई कुतर्क (वेदशास्त्र के विरुद्ध विचार) नहीं है, उनको श्रीरघुनाथजी की कथा मीठी लगेगी।

रामभक्तिभूषित जिय जानी * सुनिहहि सुजन सराहि सुबानी

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना * सकल कला सब विद्याहीना

साधु पुरुष अपने जी में इस कथा को श्रीरघुनाथजी की भक्ति से भूषित जानकर अपनी प्यारी वाणी से सराहना करके सुनेंगे। न तो मैं कवि हूँ और न चतुर पंडित। मैं तो सब कलाओं और विद्याओं से हीन हूँ।

आखर अर्थ अलंकृत नाना * छन्दप्रबन्ध अनेक विधाना
भावभेद रसभेद अपारा * कवितदोषगुण विविध प्रकारा
कवितविवेक एक नहिं मोरे * सत्य कहौं लिखि कागद कोरे

अक्षर, अर्थ, भाँति-भाँति के अलंकार, अनेक प्रकार के छन्दों का प्रबन्ध, भाव के भेद, रस के भेद आदि होने से कविता में अनेक प्रकार के दोष और गुण होते हैं। कविता करने की योग्यता या कविता के किसी अंग का ज्ञान मुझमें कुछ भी नहीं है। यह मैं कोरे कागज पर लिखकर सत्य ही कहता हूँ।



भणित मोरि सब गुणरहित, विश्वविदित गुण एक।
सो विचारि सुनिहैं सुजन, जिनके विमल विवेक॥

मेरी यह रचना कविता के सब गुणों से हीन है। इसमें केवल जग जाहिर एक गुण रामचरित्र है *। यह विचारकर जिनके निर्मल ज्ञान हैं, वे सज्जन पुरुष इसे सुनेंगे।

यहिमहँ रघुपतिनाम उदारा * अतिपावन पुराण श्रुति सारा
मङ्गलभवन अमङ्गलहारी * उमासहित जेहि जपत पुरारी

इसमें श्रीरघुनाथजी का उदार, अति पवित्र, वेद और पुराणों का सारांश राम (सत्, चित्, आनन्द का बोधक) नाम है, जो सब मंगलों का घर और अमंगलों को हरनेवाला है; जिसे पार्वतीसहित शिवजी जपा करते हैं।

भणित विचित्र सुकविकृत जोऊ * रामनाम बिन सोह न सोऊ
विधुवदनी सब भाँति सँवारी * सोह न वसन विना वरनारी

जिस कविता में चित्रविचित्र विषय का वर्णन हो और अच्छे चतुर कवि की बनाई भी हो, वह भी बिना रामनाम के शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमा के समान मुखवाली और सब प्रकार से सजी हुई सुन्दर स्त्री बिना कपड़ा पहिने शोभित नहीं होती।

सब गुणरहित कुकविकृत बानी * रामनामयशअंकित जानी
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही * मधुकरसरिस सन्त गुणग्राही

जिस कविता में कविता का कोई भी गुण न हो और मूर्ख कवि की बनाई हो, परन्तु

* रामचरित्र के मनन से मिथ्या दुःखों का नाश और तदाकारवृत्ति का साक्षात्काररूप परम सुख होता है। यही परम पुरुषार्थ है

उसमें रामनाम का यश हो, उसे बुद्धिमान् पुरुष आदर के साथ कहते और सुनते हैं ; क्योंकि साधुजन भौंरे के समान गुण के ग्राहक होते हैं। जैसे भौंरा फूल की सुगन्ध को लेता है, उसकी सुन्दरता से सम्पर्क नहीं रखता, ऐसे ही सज्जन पुरुष श्रीरामचरित्र को कहते-सुनते हैं, कविता के गुण-दोष नहीं देखते।

यदपि कवितगुण एको नाहीं * रामप्रताप प्रकट यहि माहीं
सोइ भरोस मोरे मन आवा * को न सुसंग बड़ाई पावा

यद्यपि इसमें कविता का एक भी गुण नहीं है तो भी इसमें श्रीरामजी का प्रताप प्रकट है, और उसी से मेरे मन में पूरा विश्वास है। अच्छी संगति से किसने बड़ाई नहीं पाई।

धूमहु तजै सहज करुआई * अगरप्रसंग सुगंध बसाई
भणित भदेस वस्तु भलि वरणी * रामकथा जगमंगलकरणी

धुआँ भी अगुरु के संग से अपना स्वाभाविक गुण कड़वापन छोड़कर सुगन्ध देने लगता है। यद्यपि मेरी कविता भद्दी है ; परन्तु इसमें विषय अच्छा वर्णन किया गया है, जो मंगल करनेवाला श्रीरामचरित्र है।

हरिगीतिका छन्द

मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गतिकूर कविता सरित की ज्यों परमपावन पाथ की॥
प्रभुसुयशसंगति भणित भलि होइहिसुजनमनभावनी।
भवअंग भूति मशान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की कथा सब मंगलों को करनेवाली है। यह कलियुग के पापों को दूर करती है। जैसे नदी की चाल टेढ़ी होती है, परन्तु उसमें जल बहुत पवित्र होता है, वैसे ही मेरी कविता कविता के लक्षणों से हीन है, परन्तु इसमें गंगा-जल के समान पवित्र श्रीरामचरित्र है, जिसके साथ से मेरी कविता अच्छी होकर सज्जनों को मनभावनी होगी। जैसे श्मशान की भस्म श्रीमहादेवजी के अंग में लगने से पवित्र होकर भक्तों को ध्यान करने में सुहावनी और पवित्र करनेवाली होती है।



प्रियलागिहिअति सबहि मम, भणित रामयशसंग।
दारु विचार कि करै कोउ, वन्दिय मलयप्रसंग॥

श्रीरामयश के साथ मेरी कविता सबको प्रिय लगेगी। जैसे मलयाचल में चन्दन के संग से और वृक्ष भी सुगन्धित हो जाते हैं। लकड़ी का विचार कोई नहीं करता। मलयाचल के संग से सबकी चन्दन ही की सी बड़ाई या वंदना की जाती है।

श्यामसुरभिपयविशद अति, गुणद करैं तेहि पान।

गिराग्राम सिय रामयश, गावहिं सुनहिं सुजान ॥

लोग काली गऊ का भी सफेद और गुणकारी दूध पीते हैं। गौ के रंग का विचार नहीं करते। ऐसे ही सज्जन श्रीरामचरित्र कहते-सुनते हैं, कविता का विचार नहीं करते।

मणि माणिक मुक्ता छवि जैसी * अहिगिरिगजशिर सोह न तैसी
नृपकिरीट तरुणीतनु पाई * लहैं सुयश शोभा अधिकाई
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं * उपजैं अनत अनत छवि लहहीं

सर्प की मणि, पर्वत के रत्न और गजमुक्ता, इनकी शोभा सर्प, पर्वत और हाथियों के शिर में वैसी नहीं होती। वही राजाओं के मुकुट और नवयौवना स्त्री की देह में अधिक शोभा पाकर प्रशंसा पाते हैं। ऐसे ही पंडित लोग अच्छे कवि की बनाई हुई कविता को कहते हैं कि बनती दूसरी जगह और शोभा दूसरी जगह पाती है।

भक्तिहेतु विधिभवन विहाई * सुमिरत शारद आवत धाई
रामचरितसर बिन अन्हवाये * सो श्रम जाय न कोटि उपाये

कवियों की प्रीति के लिए ध्यान करते ही सरस्वतीजी ब्रह्माजी का घर (मूलाधार चक्र) छोड़कर दौड़ आती हैं। बिना श्रीरघुनाथजी के चरित्ररूपी तालाब में स्नान कराये सरस्वती (वाणी) का वह परिश्रम करोड़ों उपाय करने से भी नहीं जाता।

कवि कोविद असहृदय विचारी * गावहिं हरिगुण कलिमलहारी
कीन्हें प्राकृत जन गुणगाना * शिर धुनि गिरा लगत पछिताना

ऐसा मन में विचारकर कवि और पंडितजन कलियुग के पापों को दूर करनेवाले श्रीरघुनाथजी के गुणानुवाद ही गाते हैं। मनुष्यों के गुण वर्णन करने से वाणी शिर पीटकर पछताने लगती है।

हृदय सिन्धु मति सीप समाना * स्वाती शारद कहहिं सुजाना
जो बरषे वर वारि विचारू * होहिं कवित मुक्ता मणि चारू

अच्छे पुरुष कवियों के हृदय को समुद्र के समान, बुद्धि को सीप के समान और वाणी को स्वाती के समान कहते हैं। अच्छे विचाररूपी स्वाती का जल बरसे तो सुन्दर श्रेष्ठ कवितारूपी मोती उत्पन्न हों।



युक्ति बेधि पुनि पोहिये, रामचरित वर ताग।
पहिरहिं सज्जन विमलउर, शोभा अति अनुराग ॥

उन कवितारूप मोतियों को युक्तियों से छेदकर श्रीरघुनाथजी के चरित्ररूपी श्रेष्ठ तागे में गुहना चाहिए। तब उस कवितामय मोतियों की माला को सज्जन पुरुष अपने निर्मल हृदय में स्नेह से पहनते हैं। अधिक स्नेह होना ही उसकी शोभा है।

जो जनमे कलिकाल कराला * करतब वायस वेष मराला

चलत कुपंथ वेदमग छाँड़े * कपटकलेवर कलिमल भाँड़े

घोर कलियुग में उत्पन्न मनुष्यों के वेष हंसों के से और काम कौवों के से हैं। वे वेद की राह छोड़कर कुराह में चलते हैं और छलकपट ही उनकी देह है। वे कलियुग के घोर पापों की खान हैं।

वंचक भक्त कहाय राम के * किंकर कञ्चन कोह काम के

तिनमहँ प्रथम रेख जग मोरी * धिक धर्मध्वज धन्धक धोरी

नाम से तो वे राम के दास पुकारे जाते हैं; परन्तु संसार को ठगते हैं और रुपये, पैसे, क्रोध और कामदेव के दास हो रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनमें सबसे पहले मेरी गिन्ती है। मुझे धिक्कार है। मैं पाखण्डियों में सबसे बड़ा हूँ।

जो अपने अवगुण सब कहऊँ * बाढ़े कथा पार नहिं लहऊँ

ताते मैं अति अल्प बखाने * थोरे महँ जानिहैं सयाने

जो मैं अपने सब अवगुण कहूँ तो इतनी कथा बढ़ जाय कि अन्त न मिले। इसलिए मैंने अपने बहुत थोड़े अवगुण कहे हैं। थोड़े ही में बुद्धिमान् लोग समझ जायँगे।

समुझिविविधविधिबिनती मोरी * कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी

एतेहु पर करिहैं जे शंका * मोहिते अधिक ते जड़मतिरंका

यह मेरी अनेक प्रकार की विनय समझकर कथा सुनकर कोई दोष न दे। इतना कहने पर भी जो कोई सन्देह करेंगे वे मुझसे भी अधिक मतिमंद हैं।

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ * मति अनुरूप रामगुण गाऊँ

कहँ रघुपति के चरित अपारा * कहँ मति मोरि निरत संसारा

न मैं कवि हूँ, न मुझे चतुर कहलाने की इच्छा है। मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीरामजी के गुण गाता हूँ। कहाँ रघुनाथजी के अपार चरित्र और कहाँ माया में फँसी मेरी बुद्धि।

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं * कहहु तूल केहि लेखे माहीं

समुझत अधिक रामप्रभुताई * करत कथा मन अतिकदराई

जिस प्रचण्ड वायु के वेग से सुमेरु पर्वत उड़ जाता है, उसके सामने रुई का क्या लेखा! श्रीरघुनाथजीकी ऐसी अधिक प्रभुता समझकर मेरा मन उनकी कथा कहने में बहुत संकुचित हो रहा है।

दो० शारद शेष महेश बिधि, आगम निगम पुरान।
नेतिनेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान॥

शारदा, शेष, महादेव, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण जिस परमात्मा के गुणानुवाद को नेतिनेति (यह नहीं यह नहीं) कहकर सदा गाया करते हैं।

सब जानत प्रभुप्रभुता सोई * तदपि कहे बिन रहा न कोई

तहाँ वेद अस कारण राखा * भजनप्रभाव भाँति बहु भाखा

प्रभुजी की प्रभुता को ये सब जानते हैं कि मन, वाणी, कर्म किसी की गति नहीं है, जो वहाँ पहुँच सके, परन्तु तो भी बिना कहे नहीं रहे। कारण, वेद ने भजन का प्रभाव कई प्रकार से कहा है।

एक अनीह अरूप अनामा * अज सच्चिदानन्द परधामा
व्यापक विश्वरूप भगवाना * तेइ धरि देह चरित कृत नाना

* सत्, चित् और आनन्द, जिसमें ये तीन लक्षण हों, जो मन, नेत्र और वाणी का विषय न हो, जो इच्छा, रूप और नाम से रहित तथा उत्पत्ति और मरण से रहित हो, जो परधाम (सबसे श्रेष्ठ स्थान, जहाँ बुद्धि न पहुँच सकती हो), ऐसा परमात्मा एक है। वही सब संसार भर में व्याप्त हैं, और उसने ही देह धारण कर बहुत प्रकार के चरित्र किये हैं।

सो केवल भक्तन हितलागी * परम कृपालु प्रणतअनुरागी
जेहि जनपर ममता अति छोहू * तेहि करुणाकर कीन्ह न कोहू

उसका यह देह धारण करना और चरित्र करना केवल भक्तों के कल्याण के लिए है; क्योंकि रघुनाथजी शरणागत पर स्नेह करते हैं और बड़े दयालु हैं। जिस शरण आये भक्त पर स्नेह किया उस पर श्रीरामजी ने फिर कभी क्रोध नहीं किया। अर्थात् शरणागत पुरुष कभी पतित नहीं होता।

गई बहोरि गरीबनिवाजू * सरल सबल साहिब रघुराजू
बुध बरणहिं हरियश अस जानी * करन पुनीत हेतु निज बानी

श्रीरघुनाथजी ऐसे सबल और साहब (स्वामी जिनकी आज्ञा में माया रहती है) होकर भी कैसे सरल स्वभाववाले हैं कि जो पुरुष माया से अपनी आत्मा को भूल गये हैं और बड़े दुःखी हो रहे हैं, उनको भी शरण आने से फिर आत्मलाभ देते हैं और गरीब को निवाजते हैं। ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष अपनी वाणी पवित्र करने के लिए परमेश्वर के चरित्र कहते हैं।

तेहि बल मैं रघुपतिगुणगाथा * कहिहौं नाय रामपद माथा
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई * तेहिमग चलत सुगम मोहिं भाई

उन्हीं के भरोसे मैं श्रीरघुनाथजी की कथा उन श्रीरामजी के चरणकमलों में अपना शिर रखकर वर्णन करूँगा। वाल्मीकि आदि मुनियों ने पहले भगवान् का यश वर्णन किया है। उसी राह पर चलने से मुझे सुबीता होगा।



अति अपार जे सरित वर, जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिका परमलघु, बिन श्रम पारहि जाहिं॥

जो बड़ी नदियाँ अथाह भरी हों, उन्हीं में यदि कोई राजा पुल बँधवा दे तो बहुत छोटी-छोटी चीटियाँ भी बिना मेहनत पार उतर जाती हैं।

* सत्य, चैतन्य सुख=सच्चिदानन्द परमात्मा में ये गुण कल्पित हैं। वास्तव में तो वह निर्गुण है, अतः अनीह, अरूप, अनाम है। मिथ्या, जड़, दुःख ये गुण माया में हैं। वह अनंत गुणमयी है। इन दोनों की प्रतीति होना ही परमपुरुषार्थ है।

यहि प्रकार बल मनहिं दृढ़ाई * करिहौं रघुपतिकथा सुहाई
व्यास आदि कविपुङ्गव नाना * जिन सादर हरिचरित बखाना

ऐसे विश्वास के बल से अपने मन को दृढ़ करके मैं श्रीरघुनाथजी की सुहावनी कथा का वर्णन करूँगा। वेदव्यास आदि जिन श्रेष्ठ कवियों ने आदरके साथ श्रीभगवान् के चरित्र वर्णन किये हैं—

चरणकमल वन्दौं तिन केरे * पुरवहु सकल मनोरथ मेरे
कलिके कविन करौं परणामा * जिन बरणे रघुपतिगुणग्रामा

उन सबके चरणारविन्दों की मैं वंदना करता हूँ। वे मेरे सब मनोरथ पूरे करें। जिन कलियुग के कवियों ने श्रीरघुनाथजी के गुणों का वर्णन किया है, उन सबको भी मैं प्रणाम करता हूँ।

जे प्राकृत कवि परम सयाने * भाषा जिन हरिचरित बखाने
भये जे अहहिं जे ह्वैहैं आगे * प्रणऊँ सबहिं कपटछलत्यागे

और बड़े चतुर प्राकृत कवि, जिन्होंने देशभाषा में श्रीरामजी के चरित्रों का वर्णन किया है, उनमें से जो हो गये हैं, इस समय हैं और जो आगे होंगे, उन सबको छल-कपट छोड़कर मैं प्रणाम करता हूँ।

होउ प्रसन्न देहु वरदानू * साधुसमाज भणित सनमानू
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं * सो श्रम बादि बालकवि करहीं

वे सब मेरे ऊपर प्रसन्न होकर यह वरदान दें कि सज्जनों के समाज में मेरी कथा का आदर हो; क्योंकि जिस कथा का बुद्धिमान् लोग आदर नहीं करते, उसमें परिश्रम वृथा है। वह बच्चों की कविता है।

कीरति भणित भूतिभलि सोई * सुरसरिसम सबकर हित होई
रामसुकीरति भणित भदेशा * असमंजस अस मोहिं अँदेशा

यश, कविता और ऐश्वर्य वे ही भले हैं, जिनसे गंगाजी के समान सबका हित हो। श्रीरामचन्द्र का यश सुन्दर है, और मेरी कविता भद्दी है, इस असमंजस से मुझे संदेह है।

तुम्हरी कृपा सुलभ सब मोरे * सियनि सुहावनि टाट पटोरे
करहु अनुग्रह अस जिय जानी * विमल यशहि अनुहरै सुबानी

यदि आप सज्जन कृपा करेंगे तो मुझको सब सहज हो जायगा। टाट में भी रेशम की सींवन शोभा देती है, ऐसा मन में जानकर कृपा कीजिए जिससे श्रीरघुनाथजी के उज्ज्वल यश के समान मेरी वाणी भी अच्छी हो जाय।



सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वैर बिसराय रिपु, जे सुनि करहिं बखान॥

उसी सीधी कविता का, जो सबकी समझ में आ जावे और निर्मल यश का सज्जन आदर करतेहैं जिसे सुनकर शत्रु भी अपने स्वाभाविक वैर को छोड़कर बड़ाई करते हैं।

सो न होय बिन विमल मति, मोहिं मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरियश कहौं, पुनि पुनि करहुँ निहोर॥

परन्तु वैसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के नहीं होती और मुझमें बुद्धि का बल बहुत कम है। इससे आप लोगों को बार-बार निहोरा करता हूँ कि कृपा करिए, जिससे मैं श्रीरघुनाथजी का यश कह सकूँ।

कवि कोविद रघुवरचरित, मानस मंजु मराल।
बालविनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल॥

कवि और पण्डित लोग श्रीरघुनाथजी के यशरूप मानसरोवर में रमनेवाले हंस होते हैं। वे मुझ बालक की विनती सुनकर और अच्छी रुचि देख मेरे ऊपर दयालु हों।



बन्दौं मुनिपदकंजु, रामायण जिन निर्मयो।
सखर सुकोमल मंजु, दोषरहित दूषणसहित॥

अब मैं श्रीवाल्मीकि मुनि के चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण बनाई वह रामायण कोमल है, उसमें कठोरता है तो केवल खर (कठोर) राक्षस का नाम है वह ऐसी निर्दोष है, उसमें दोष का नाम है तो केवल दूषण राक्षस का।

बन्दौं चारौं वेद, भववारिधिबोहित सरिस।
जिनहिं न सपनेहु खेद, बरणत रघुपतिविशद यश॥

संसाररूपी समुद्र के पार उतारने के लिए जहाज के समान ऋग, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेदों की वन्दना करता हूँ जो श्रीरघुनाथजी का निर्मल यश वर्णन करने में स्वप्न में भी नहीं थकते

बन्दौं विधिपदरेनु, भवसागर जिन कीन यह।
सन्त सुधा शशि धेनु, प्रकटे खल विष वारुणी॥

मैं श्रीब्रह्माजी के चरणों की रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने यह संसारसागर बनाया इस संसारसागर में साधु पुरुष अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु के समान और दुष्टजन विष औ मदिरा के समान पैदा हुए हैं।



विबुध विप्र बुध ग्रहचरण, बन्दि कहौं करजोरि।
है प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि॥

देवता, ब्राह्मण और सूर्य आदि ग्रहों के चरणारविन्दों की वन्दना करके हाथ जो कहता हूँ, वे प्रसन्न हो मेरे सब मनोरथ पूरे करें।

पुनि बन्दौं शारद सुरसरिता ❋ युगल पुनीत मनोहर चरित

मज्जन पान पाप हर एका * कहत सुनत इक हर अविवेका

फिर मैं सरस्वती और गंगाजी की वन्दना करता हूँ; क्योंकि ये दोनों पवित्र और मनोहर यशवाली हैं। गंगाजी तो स्नान, पान करने से पाप हर लेती हैं और सरस्वतीजी (कथा) कहने और सुनने से अज्ञानरूपी पाप को नाश करती हैं।

गुरु पितु मातु महेश भवानी * प्रणवहुँ दीनबन्धु दिनदानी
सेवक स्वामि सखा सिय पीके * हितनिरुपधिसबविधि तुलसी के

मैं गुरु, पिता और माता के समान श्रीशिव और पार्वतीजी को प्रणाम करता हूँ, जो दीनबन्धु और मनोरथ पूरे करनेवाले हैं। वे सीतापति श्रीरामजी के सेवक, स्वामी और सखा हैं, और मेरा तो सब तरह से बिना प्रयोजन हित करनेवाले हैं।

कलिबिलोकिजगहितहरगिरिजा * शाबरमन्त्रजाल जिन सिरिजा
अनमिल अक्षर अर्थ न जापू * प्रकटत भाव महेश प्रतापू

श्रीशिव और पार्वती ने कलियुग को देखकर संसार का हित करने के लिए ऐसा शाबर मन्त्र-जाल बनाया, जिसमें न तो अक्षरों का मेल है, न उसका कुछ अर्थ ही समझ पड़ता और न उसके जपने का कोई नियम है—केवल कहने ही से उसका प्रभाव शिवजी की कृपा से दिखलाई देता है।

सो महेश मोपर अनुकूला * करौं कथा मुदमंगलमूला
सुमिरि शिवा शिव पाय पसाऊ * वरणहुँ रामचरित चितचाऊ

वह महादेवजी मुझ पर अनुकूल हों, क्योंकि मैं आनन्द और मंगल की मूल श्रीरामकथा का वर्णन करता हूँ। श्रीपार्वती और शिवजी का स्मरण करके और उनकी प्रसन्नता पाकर अपने चित्त की भावना से श्रीरघुनाथजी का चरित्र वर्णन करता हूँ।

भणित मोरि शिवकृपा विभाती * शशिसमाज मिलि सोह सुराती
जो यह कथा सनेह समेता * कहिहैं सुनिहैं समुझि सचेता
होहैं रामचरणअनुरागी * कलिमलरहित सुमंगलभागी

श्रीमहादेवजी की कृपा से मेरी कथा ऐसी सुशोभित होगी, जैसे नक्षत्रसमाजसहित चन्द्रमा से रात्रि शोभित होती है। जो लोग इस कथा को प्रेमसहित कहेंगे अथवा सुनेंगे और मन लगाकर समझेंगे, उनका श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दों में स्नेह होगा और वे कलियुग के पापों से छूटकर सुमंगल (ब्रह्म) के भागी होंगे, अर्थात् उनको आत्मलाभ होगा।


सपनेहुँ साँचेहु मोहिं पर, जो हरगौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहहुँ सब, भाषाभणित प्रभाउ॥

यदि सपने में भी सत्य ही मेरे ऊपर श्रीशिवजी और पार्वतीजी की कृपा हो तो जो कुछ मैं अपनी भाषा की कविता में श्रीरामचरित्र का प्रभाव कहता हूँ सो सब सत्य हो।

बन्दौं अवधपुरी अतिपावनि * सरयूसरि कलिकलुषनशावनि
प्रणाउँ पुरनरनारि बहोरी * ममता जिनपर प्रभुहिं न थोरी

अब मैं बहुत पवित्र अयोध्यापुरी की वन्दना करता हूँ, जहाँ कलियुग के पापों को नष्ट करनेवाली सरयू नदी है। फिर वहाँ के स्त्री-पुरुषों को प्रणाम करता हूँ, जिनपर प्रभु श्रीरामजी का बहुत स्नेह है।

सियनिन्दक अघओघ नशाये * लोक विशोक बनाय बसाये
बन्दौं कौशल्या दिशि प्राची * कीरति जासु सकल जग माची

अयोध्यावासी होने से सीताजी की निन्दा भी करनेवाले धोबी आदि के पापों को नष्ट करके भगवान ने उन्हें बिना शोकवाला बनाकर साकेतलोक में बसाया। पूर्वदिशा के समान कौशल्याजी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनका यश सारे संसार में फैला हुआ है।

प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारू * विश्वसुखद खलकमलतुषारू
दशरथ राउ सहित सब रानी * सुकृत सुमंगलमूरति जानी

जिनकी कोख में पवित्र चन्द्रमा के समान श्रीरामचन्द्रजी उत्पन्न हुए, जो संसार को सुख देनेवाले हैं; कमल के समान दुष्टों को नाश करनेवाले पाले के समान हैं। सब रानियों सहित राजा दशरथजी का पुण्य और मंगलों की मूर्ति जानकर—

करहुँ प्रणाम कर्म मन बानी * करहु कृपा सुतसेवक जानी
जिनहिंविरचिबड़भयउ विधाता * महिमा अवधि रामपितु माता

मन, वचन और कर्म से मैं प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्र का दास जानकर वे मुझ पर कृपा करें। दशरथ और कौशल्या को उत्पन्न करके ब्रह्माजी भी श्रेष्ठ हुए; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के माता-पिता होने के कारण उनकी महिमा की अवधि नहीं है, अर्थात् उनसे बढ़कर और किसी की महिमा नहीं है।



बन्दौं अवधभुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृणइवपरिहरेउ॥

अवध के महाराजाधिराज श्रीदशरथजी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में सच्चा स्नेह था; क्योंकि दीनदयालु रघुनाथजी के बिछुड़ते ही उन्होंने अपने प्यारे शरीर को भी तृण के समान छोड़ दिया।

प्रणवहुँ परिजनसहित विदेहू * जाहि रामपद गूढ़ सनेहू
योग भोग महँ राखेहु गोई * रामविलोकत प्रकटेउ सोई

सपरिवार राजा जनक को प्रणाम करता हूँ, जिनका श्रीरघुनाथजी के चरणों में गूढ़ स्नेह था। जनक ने जिस भक्तियोग को विषयभोग में छिपा रक्खा था, वह श्रीरामजी को देखते ही प्रकट हो गया।*

* जैसे—सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा—आदि।

वन्दौं प्रथम भरत के चरणा * जासु नेम व्रत जाय न वरणा
रामचरणपंकज मन जासू * लुब्ध मधुप इव तजै न पासू

श्रीरामचन्द्रजी के भाइयों में मैं पहले भरतजी के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनके नियमव्रत वर्णन नहीं किये जा सकते। लोभी भौंरे के समान भरतजी का मन रघुनाथजी के चरणकमलों को नहीं छोड़ता।

वन्दौं लच्छमणपदजलजाता * शीतल सुभग भक्तसुखदाता
रघुपतिकीरति विमल पताका * दण्डसमान भयो यश जाका

मैं लच्छमणजी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ जो भक्तों के काम, क्रोध आदि ताप को दूरकर उन्हें ऐश्वर्य (ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, सन्तोष, शांति और भक्ति) और सुख देते हैं। उज्ज्वल पताका के समान रघुनाथजी का यश ऊँचा करने के लिए लच्छमणजी का यश डण्डे के समान हुआ।

शेष सहस्रशीश जगकारन * सो अवतरेउ भूमिभयटारन
सदा सो सानुकूल रहु मोपर * कृपासिन्धु सौमित्रि गुणाकर

संसार को उत्पन्न करनेवाले हजार सिरवाले शेषजी ने ही पृथ्वी का भय दूर करने के लिए यह अवतार लिया था। हे कृपा के समुद्र, गुणों की खानि सुमित्रानन्दन, मेरे ऊपर सदा अनुकूल रहिए।

रिपुसूदन पदकमल नमामी * शूर सुशील भरतअनुगामी
महावीर प्रणवौं हनुमाना * राम जासु यश आप बखाना

फिर मैं शत्रुघ्नजी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो बड़े शूरवीर, सुशील और भरतजी के आज्ञाकारी थे। मैं महावीर हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ, जिनका यश श्रीरघुनाथजी ने स्वयं वर्णन किया है।

सो० वन्दौं पवनकुमार, खलबनपावक ज्ञानघन।
जासुहृदय आगार, बसहिं राम शरचापधर॥

मैं दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान पवनकुमार हनुमानजी की फिर वन्दना करता हूँ जिनके हृदयरूपी मंदिर में धनुषबाण लिये रघुनाथजी वास करते हैं।

कपिपति ऋक्ष निशाचरराजा * अङ्गदादि जे कीशसमाजा
वन्दौं सबके चरण सुहाये * अधम शरीर राम जिन पाये

वानरों के राजा सुग्रीव, रीछों के राजा जाम्बवान्, निशाचरों के राजा विभीषण और अङ्गद आदि वानर जिन्होंने अधम योनि में भी श्रीरामजी को पाया, उन सबके सुहावने चरणों की वन्दना मैं करता हूँ।

रघुपतिचरणउपासक जेते * खग मृग सुर नर असुर समेते
बन्दौं पदसरोज सब केरे * जे बिन काम राम के चेरे

पक्षी, मृग, देवता, मनुष्य, असुर आदि जितने श्रीरघुनाथजी के चरणों की उपासना करनेवाले हैं उन सबके चरणारविन्दों की मैं वन्दना करता हूँ, जो बिना किसी कामना के श्रीरामजी के दास हैं।

शुकसनकादि आदि मुनिनारद * जे मुनिवर विज्ञानविशारद
बन्दौं सबहिं धरणि धरि शीशा * करहु कृपा जन जानि मुनीशा

शुकदेव, सनक, सनन्दन और नारद आदि मुनि तथा और भी जो ज्ञानी मुनि हैं, उन सब को मैं पृथ्वी में माथा टेककर प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो, मुझे अपना दास जानकर कृपा कीजिए।

जनकसुता जगजननि जानकी * अतिशय प्रिय करुणानिधानकी
ताके युग पदकमल मनाऊँ * जासु कृपा निर्मल मति पाऊँ

कृपानिधान श्रीरघुनाथजी की अत्यन्त प्यारी जनककुमारी जगन्माता जानकीजी के दोनों चरणारविन्दों को मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँगा।

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक * चरणकमल बन्दौं सब लायक
राजिवनयन धरे धनुसायक * भक्तविपद भंजन सुखदायक

मैं फिर मन, वचन और कर्म से श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ। जो सब कुछ करने को समर्थ हैं। कमलनयन, धनुष-बाण धारण किये रामचन्द्रजी भक्तों की विपत्ति दूर करनेवाले और सुखदायक हैं।



गिराअर्थ जलवीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीतारामपद, जिनहिं परमप्रियखिन्न॥

जैसे शब्द से अर्थ और जल से लहरें न्यारी नहीं हैं केवल उनके नाम न्यारे हैं, वैसे ही सीता और राम ये दो शब्द केवल कहने को न्यारे हैं यथार्थ में एक ही हैं। मैं उन सीताराम के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनको खिन्न (अपने को छोटा माननेवाले या दुखी जन) बहुत प्यारे हैं।

बन्दौं रामनाम रघुवर को * हेतु कृशानु भानु हिमकर को
विधिहरिहरमय वेदप्राणसे * अगुण अनूपम गुणनिधानसे

मैं श्रीरघुनाथजी के रामनाम की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा को उत्पन्न करनेवाला है *, ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमय † व ॐकार के समान है, और सत्, रज, तम इन गुणों से रहित है, इससे इसकी कोई उपमा नहीं है। वह तीनों गुणों को धारण करनेवाला है।

* र अग्नि का बीज है, अ सूर्य का और म चन्द्रमा का, जिनके जपने से मन का ताप दूर होकर शांति उत्पन्न होती है। † चन्द्रमा का बीज मकार, उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मा; सूर्य का बीज अकार, पालन करनेवाला विष्णु और अग्नि का बीज रकार नाश करनेवाला शिव है। इससे रामनाम इन तीनों देवतों का रूप है।

महामंत्र जेहि जपत महेशू * काशी मुक्तिहेतु उपदेशू
महिमा जासु जान गणराऊ * प्रथम पूजियत नामप्रभाऊ

उस रामनाम महामंत्र को श्रीशिवजी जपते हैं, और काशीपुरी में मरनेवालों को मुक्ति के लिए तारकमंत्र के रूप से उसी को सुनाते हैं। उसका माहात्म्य श्रीगणेशजी जानते हैं; क्योंकि रामनाम के ही प्रभाव से वह सबसे पहले पूजे जाते हैं।

जान आदिकवि नामप्रतापू * भयउ शुद्ध करि उलटा जापू
सहसनामसम सुनि शिवबानी * जपि जेईं शिवसंग भवानी

आदिकवि वाल्मीकिजी नाम का प्रताप जानते हैं, जो उल्टा नाम (मरा) जपने से शुद्ध हो गये। रामनाम का माहात्म्य सहस्रनाम के बराबर शिवजी से सुनकर पार्वतीजी ने इसी को जपकर शिवजी के संग भोजन किया।

हरषे हेतु हेरि हर ही को * किय भूषण तियभूषण तीको
नाम प्रभाव जान शिव नीके * कालकूट फल दीन्ह अमीके

पार्वतीजी के हृदय का यह भाव देख श्रीशिवजी ने प्रसन्न होकर स्त्रियों में रत्न अपनी प्यारी स्त्री पार्वतीजी को अपना भूषण बनाया—आधे अंग में स्थापित किया। श्रीशिवजी रामनाम का माहात्म्य अच्छी तरह जानते हैं; क्योंकि इसी के प्रभाव से हलाहल विष भी पीने पर उनके लिए अमृत हो गया।



वर्षा ऋतु रघुपतिभगति, तुलसी शालि सुदास।
रामनाम वर वर्ण युग, सावन भादों मास॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजी का दास तुलसीदास धान है, भक्ति वर्षाऋतु है और 'रा म' ये दोनों अक्षर सावन और भादों के महीने हैं।

आखर मधुर मनोहर दोऊ * वर्णविलोचन जनजिय जोऊ
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू * लोकलाहु परलोकनिबाहू

ये दोनों अक्षर कहने में मीठे और मनोहर हैं तथा अक्षरों के नेत्र और भक्तों के जीवात्मा हैं। स्मरण करने से सुख तथा इस लोक में सब कामनाओं का लाभ और परलोक में अच्छी रीति से निर्वाह सहज ही में होता है।

कहत सुनत समुझत सुठिनीके * रामलषण सम प्रिय तुलसी के
वर्णत वर्णप्रीति बिलगाती * ब्रह्मजीव सम सहज सँघाती

इन दोनों अक्षरों का कहना, सुनना और समझना बहुत अच्छा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ये दोनों अक्षर मुझे तो राम और लक्ष्मण के समान ही प्यारे हैं। यदि इन दोनों अक्षरों का माहात्म्य न्यारा-न्यारा वर्णन करें तो इनका आपस में जो स्नेह है, उसमें भेद पड़ जायगा; क्योंकि इन दोनों का ब्रह्मात्मा और जीवात्मा के समान सहज ही संग रहता है।

नरनारायण सरिस सुभ्राता * जगपालक विशेष जनत्राता
भक्तिसुतिय कलकरण विभूषण * जगहित हेतु विमल विधुपूषण

ये अच्छा भाईपन का बर्ताव करनेवाले नर और नारायण के समान हैं, संसार का पालन और विशेषकर भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं। ये भक्तिरूपी सुन्दरी स्त्री के मनोहर कर्णफूल और संसार का हित करनेवाले निर्मल चन्द्रमा और सूर्य के समान हैं।

स्वाद तोष सम सुगतिसुधा के * कमठशेषसम धर वसुधा के
जनमनमंजुकंज मधुकर-से * जीह यशोमति हरि हलधर-से

रा और म ये दोनों अक्षर अच्छी गति रूप सुधा (अन्न) के स्वाद और संतोष के समान हैं। ये कूर्म और शेष के समान पृथ्वी को धारण किये हैं। भक्तों के निर्मल मनरूपी कमल में भौंरों के समान रहते हैं और यशोदा सरीखी भक्तों की जिह्वा को कृष्ण और बलराम के समान प्यारे हैं।



एक छत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, वर्ण विराजत दोउ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी के नाम के दोनों अक्षर रा और म सब अक्षरों के ऊपर (॒) और मुकुट की मणि (ं) के समान विराजमान हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी * प्रीति परस्पर प्रभुअनुगामी
नाम रूप दोउ ईशउपाधी * अकथ अनादि सुसामुझिसाधी

विचार करने से नाम और रूप दोनों बराबर हैं; क्योंकि इनकी प्रीति आपस में समान है और ये दोनों श्रीप्रभु के अनुगामी हैं, अर्थात् इन्हीं के द्वारा परमात्मा की उपासना होती है। अथवा स्वामी और सेवक के समान नाम और रूप में परस्पर स्नेह है। नाम और रूप दोनों परमेश्वर की पदवी हैं और परमेश्वर अकथ व अनादि है और अच्छी समझ से साध्य अर्थात् ज्ञानगम्य है।

को बड़ छोट कहत अपराधू * सुनि गुणभेद समुझिहहिं साधू
देखिय रूप नाम आधीना * रूपज्ञान नहिं नाम विहीना

अब इन नाम और रूप दोनों उपाधियों में बड़ा और छोटा कह देने में लोग दोष देंगे इसलिए मैं दोनों के गुणों का भेद वर्णन करता हूँ, जिसे सुन सज्जन लोग आप ही समझ लेंगे। देखो रूप नाम के अधीन है और विना नाम जाने रूप का ज्ञान नहीं होता।

रूप विशेष नाम बिन जाने * करतलगत न परत पहिंचाने
सुमिरिय नाम रूप बिन देखे * आवत हृदय सनेहविशेखे

यदि कोई पदार्थ हथेली पर रक्खा हो तो भी विना नाम जाने पहचान में नहीं आ सकता; परन्तु विना रूप देखे भी नाम स्मरण करने से स्नेह के वश स्मरण किया हुआ रूप ध्यान में आ जाता है।

नामरूप अति अकथ कहानी * समुझत सुखद न परत बखानी
अगुणसगुण बिच नाम सुसाखी * उभयप्रबोधक चतुर दुभाखी

यह नाम और रूप की कहानी अत्यन्त अकथ है, इससे कहते नहीं बनती। हृदय में समझने से सुख मिलता है। निर्गुण और सगुण दोनों के बीच में नाम ही साक्षी है; क्योंकि नाम ही से निर्गुण और सगुण ब्रह्म का ज्ञान होता है। यह चतुर दुभाखिये के समान दोनों का बोध कराता है।



रामनाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहसि उजियार॥

यह देह घर है, जिसमें जिह्वा बाहर की देहरी है। जैसे बिना दीप उजेला नहीं होता, वैसे बिना रामनाम जपे काम क्रोधादि दूर नहीं होते। इसलिए यदि भीतर और बाहर उजेले की चाह हो तो जिह्वा रूप देहरी में मणि के दीपक के समान श्रीरामनाम को रखिए।

नाम जीह जपि जागहिं योगी * विरति विरञ्चिप्रपञ्च वियोगी
ब्रह्मसुखहिं अनुभवहिं अनूपा * अकथ अनामय नाम न रूपा

योगी पुरुष भी, जिन्होंने ब्रह्मा की जगज्जालरचना से इन्द्रियों को खींच लिया है और इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य प्राप्त कर लिया है, जिह्वा से नाम (तस्य वाचकः प्रणवः) जपते हुए इस मोहमयी रात्रि में जागते रहते हैं और समाधि में उपमा से रहित, अकथ, राग-द्वेष आदि विकारों से रहित तथा बिना नाम और रूप के ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ * नाम जीह जपि जानहिं तेऊ
साधक नाम जपहिं लय लाये * होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये

जो माया की गूढ़ गति जानना चाहते हैं, वे भी जिह्वा के द्वारा नाम ही को जपकर उसे जानते हैं। यदि साधना करनेवाले एकाग्रचित्त हो प्रीति से नाम को जपते हैं, तो अणिमा आदि सिद्धियों को (जिनका वर्णन योगसूत्र में है) पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

जपहिं नाम जन आरत भारी * मिटहिं कुसङ्कट होहिं सुखारी
रामभक्त जग चारि प्रकारा * सुकृती चारिउ अनघ उदारा

आर्तलोग बहुत दुखी हो रामनाम जपते हैं, जिससे उनका घोर क्लेश मिट जाता और वे सुखी होते हैं। संसार में श्रीरामजी के भक्त चार प्रकार के हैं। चारो पुण्यात्मा, पापरहित और परोपकारी हैं।

चहुँ चतुरन कहँ नाम अधारा * ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा
चहुँयुग चहुँश्रुति नामप्रभाऊ * कलि विशेष नहिं आन उपाऊ

चारो प्रकार के भक्त चतुर होते हैं; क्योंकि मूलवस्तु परमेश्वर का नाम ही उन चारो का आधार है। इनमें ज्ञानी भक्त परमेश्वर को अधिक प्यारा होता है। चारो युगों और चारो वेदों में नाम

का प्रभाव है, पर कलियुग में दूसरा उपाय न होने से नाम का प्रभाव और भी अधिक है।

सकल कामनाहीन जे, रामभक्तिरस लीन।
नाम सुप्रेम पियूषहृद, तिनहुँ किये मनमीन॥

जो पुरुष सब कामनाओं से रहित और श्रीरामजी के भक्तिरस में लीन हैं, उन्होंने भी प्रेम से नामरूपी अमृत के कुण्ड में अपने मन को मछली के समान डुबा रक्खा है।

अगुण सगुण दोउ ब्रह्मस्वरूपा * अकथ अनादि अगाध अनूपा
मोरे मत बड़ नाम दुहूँते * किये जे जुग निज वश निज बूते

निर्गुण और सगुण इन दोनों का स्वरूप न कहा जा सकता है, न उसका आदि है, न उसकी थाह है, और न उसकी कोई उपमा ही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मत से निर्गुण और सगुण दोनों से नाम बड़ा है; क्योंकि उसने अपने बल से निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्मों को अपने अधीन कर लिया है।

प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जन की * कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी
पावक युग सम ब्रह्म विवेकू * एक दारुगत देखिय एकू

सयाने सज्जन पुरुष भक्तों की विचित्र भावना को जानते हैं। अब मैं अपने मन की रुचि, प्रीति अथवा विश्वास को कहता हूँ। निर्गुण ब्रह्म काष्ठ में छिपी अग्नि के समान गुप्त होने के कारण इन्द्रियों से नहीं जाना जाता और सगुण ब्रह्म रगड़ने आदि से प्रकट हुए अग्नि के समान प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

उभय अगम युग सुगम नामते * कहहुँ नाम बड़ ब्रह्म रामते
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी * सत चेतन घन आनँदराशी

परन्तु निर्गुण और सगुण ब्रह्म दोनों का ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति के बाहर है, तो भी नाम से सुगम हो जाता है। इसी से कहता हूँ कि नाम निर्गुण और सगुण ब्रह्म श्रीरामजी से बड़ा है। निर्गुण ब्रह्म सबमें व्यापक है और अविनाशी होने के कारण सदा एक रस सत् चित् आनन्दघन की राशि है।

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी * सकल जीव जग दीन दुखारी
नामनिरूपण नाम यतन ते * सो प्रकटत जिमि मोल रतनते

ऐसा प्रभु साक्षात् हृदय में विराजमान होने पर भी संसार में सब जीवधारी दुःख से खिन्न हो रहे हैं। जब नाम की युक्ति से निर्गुण ब्रह्म के नाम का निरूपण किया जाता है, तब निर्गुण ब्रह्म प्रकट होता है, जैसे रत्न से मूल्य।

निर्गुण ते यहि भाँति बड़, नामप्रभाव अपार।
कहहुँ नाम बड़ राम ते, निज विचार अनुसार॥

इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नाम का अनन्त प्रभाव बड़ा है। अब सगुण ब्रह्म श्रीरामजी से जिस प्रकार नाम बड़ा है, वह भी अपने विचार के अनुसार कहता हूँ।

राम भक्तहित नरतनु धारी * सहि संकट किय साधु सुखारी
नाम सप्रेम जपत अनयासा * भक्त होहिं मुदमंगलवासा

श्रीरामजी ने भक्तों के लिए मनुष्य की देह रखकर साधु पुरुषों को सुखी किया। पर नाम को प्रेम सहित जपने से भक्तजन बिना परिश्रम आनन्द और मङ्गल पा जाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी * नाम कोटि खल कुमति सुधारी
ऋषिहित राम सुकेतुसुता की * सहित सेन सुत कीन्ह बेवाकी

श्रीरामजी ने केवल एक तपस्वी गौतमजी की स्त्री अहल्या को तारा, पर नाम ने करोड़ों दुष्टों की दुर्बुद्धियाँ सुधारीं। श्रीरामजी ने विश्वामित्र ऋषि का हित करने के लिए सुकेतु की पुत्री ताड़का को उसके पुत्र और सेना सहित मारा।

सहित दोष दुख दास दुराशा * दलै नाम जिमि रवि निशिनाशा
भंजेउ राम आप भवचापू * भवभयभंजन नामप्रतापू

पर नाम भक्तों की दुराशा (बुरी आशा), उनके लोभ, क्रोध, अभिमान आदि दोषों और दुःखों को इस तरह नष्ट करता है, जैसे रात्रि को श्रीसूर्यनारायण मिटाते हैं। श्रीरामजी ने शिवजी का धनुष तोड़ा, पर नाम में ऐसा प्रताप है कि उससे जन्म-मरण का भय मिट जाता है।

दण्डकवन प्रभु कीन्ह सुहावन * जनमन अमित नाम किय पावन
निशिचरनिकर दलेउ रघुनन्दन * नामसकल कलिकलुष निकन्दन

श्रीरामजी ने दण्डकारण्य को सुशोभित किया; पर नाम ने अनगिनत लोगों को पवित्र किया। श्रीरघुनन्दनजी ने राक्षसी सेना को मारा; पर नाम कलियुग के सब पापों को नाश करता है।



शबरी गीध सुसेवकन, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेदविदित गुणगाथ॥

श्रीरामजी ने शबरी, जटायु आदि अच्छे सेवकों को मुक्ति दी, पर नाम ने अनगिनत दुष्टों का उद्धार किया; उसके गुण की कथा वेद में प्रसिद्ध है।

राम सुकंठ विभीषण दोऊ * राखे शरण जान सब कोऊ
नाम अनेक गरीब निवाजे * लोक वेद वर विरद विराजे

श्रीरामजी ने सुग्रीव और विभीषण को शरण में रक्खा, यह सब कोई जानता है। पर नाम ने बहुत से दीनों का निर्वाह किया। यह नाम का उत्तम और स्वच्छ यश लोक और वेद में विराजमान है।

राम भालुकपिकटक बटोरा * सेतुहेत श्रम कीन्ह न थोरा
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं * करहु विचार सुजन मन माहीं

श्रीरामजी ने रीछों और वानरों की सेना एकत्र करके समुद्र में सेतु बाँधने के लिए बहुत परिश्रम किया। पर हे सज्जनो, मन में विचार कीजिए कि नाम लेते ही संसारसागर सूख जाता है।

राम सकुल रण रावण मारा ※ सीयसहित निज पुर पगु धारा
राजा राम अवध रजधानी ※ गावत गुण सुर मुनिवर बानी

श्रीरामजी ने संग्राम में परिवारसहित रावण को मार जानकीजी के साथ अयोध्या को आकर उसे राजधानी बनाया, जिनका गुण देवता और मुनि लोग अपनी उत्तम वाणी से गाते हैं।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती ※ बिन श्रम प्रबल मोहदल जीती
फिरत सनेहमगन सुख अपने ※ नाम प्रसाद सोच नहिं सपने

पर नाम को स्नेह से स्मरणकर भक्त लोग बिना परिश्रम मायामोह की बड़ी बलवती सेना को जीतकर आत्मानन्द में स्नेह लगा मगन होकर घूमा करते हैं, नाम की प्रसन्नता से स्वप्न में भी सोच नहीं रहता।



ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदान।
रामचरित शतकोटि महँ, लिय महेशजिय जान॥

इसलिए निर्गुण और सगुण ब्रह्म श्रीरामजी से नाम बड़ा है; क्योंकि नाम वर देनेवाले इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों को भी वरदान देनेवाला है। यही मन में समझकर श्रीशिवजी ने सौ करोड़ रामायण में से दो अक्षर (रा म) चुन लिये हैं।

नाम प्रभाव शम्भु अविनाशी ※ साज अमङ्गल मङ्गलराशी
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी ※ नामप्रसाद ब्रह्मसुखभोगी

नाम की महिमा से श्रीशिवजी अविनाशी हैं; चिता की भस्म लगाकर, मनुष्यों की मुण्डमाला धारणकर अमङ्गल वेश होने पर भी वे मङ्गल की राशि हैं। शुकदेव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि सिद्ध, मुनि और योगी नाम ही के प्रसाद से ब्रह्मसुख को भोगते हैं।

नारद जानेउ नामप्रतापू ※ जगप्रिय हरिहर हरिप्रिय आपू
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू ※ भक्तशिरोमणि भे प्रहलादू

नारदजी नाम का प्रताप जानते हैं; क्योंकि वे जगत्प्रिय विष्णु और शिवजी को भी प्यारे हैं। नाम ही के जपने से श्रीप्रभुजी प्रह्लाद भक्त पर प्रसन्न हुए, जिससे वे भक्तों में श्रेष्ठ हुए।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनामू ※ पायउ अचल अनूपम ठामू
सुमिरि पवनसुत पावन नामू ※ अपने वश करि राखेउ रामू

ध्रुवजी ने सौतेली माता और पिता से अनादर पाकर ग्लानि में नाम को जपा, और ऐसा उत्तम स्थान पाया जो अचल और अनुपम है। पवनसुत हनुमान्जी ने पवित्र नाम ही के स्मरण से श्रीरामजी को अपने वश कर रक्खा है।

अपर अजामिलगजगणिकाऊ * भये मुक्त हरिनामप्रभाऊ
कहौं कहाँ लग नामबड़ाई * राम न सकहिं नामगुण गाई

इनके सिवा अजामिल, हाथी (जिसे ग्राह ने पकड़ा था) और वेश्या पिङ्गला आदि भी नाम ही के प्रभाव से मुक्त हुए हैं। मैं नाम की कहाँ तक बड़ाई करूँ। नाम के अपार गुण को श्रीरामजी भी नहीं कह सकते।



राम नाम को कल्पतरु, कलि कल्याण निवास।
जो सुमिरत भयं भागयते, तुलसी तुलसीदास॥

श्रीरामनामरूपी कल्पवृक्ष कलियुग में सब कल्याणों की खान है, जिसको स्मरण करने से भाग्यवश मैं तुलसी नाम का साधारण मनुष्य श्रीरामभक्त तुलसीदास हो गया।

चहुँयुग तीनिकाल तिहुँलोका * भये नाम जपि जीव विशोका
वेद पुराण सन्तमत एहू * सकल सुकृतफल रामसनेहू

चारों युगों[1], तीनों समयों[2] और तीनों लोकों[3] में माया से दुखी जीव नाम ही के जपने से क्लेशरहित हुए हैं। वेद, पुराण और साधु पुरुषों का भी यही मत है कि सब पुण्यों का फल श्रीरामजी में स्नेह होना है, जो नाम पर निर्भर है।

ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे * द्वापर परितोषित प्रभु पूजे
कलि केवल मलमूल मलीना * पापपयोनिधि जनमनमीना

सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा करने से श्रीप्रभु संतुष्ट होते हैं; पर तमोगुणरूपी मैल से ढबैले पानीवाले पाप के समुद्ररूपी कलियुग में मनुष्यों का मन मछली हो रहा है। उनके लिए केवल नाम ही गति है।

नाम कामतरु काल कराला * सुमिरतशमन सकलजगजाला
रामनाम कलि अभिमतदाता * हित परलोक लोकपितुमाता

इस भयानक समय में श्रीरामजी का नाम कल्पवृक्ष है। इसका स्मरण करते ही सब जगज्जाल नष्ट हो जाता है। रामनाम कलियुग में मनोरथ देनेवाला है। जैसे मातापिता अपनी सन्तान पर सदा हित करते हैं, ऐसे ही इस लोक और परलोक में रामनाम भलाई करनेवाला है।

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू * रामनाम अवलम्बन एकू
कालनेमि कलि कपटनिधानू * नाम सुमति समरथ हनुमानू

कलियुग में कर्मोपासना, ब्रह्मज्ञान और भक्ति आदि नहीं है, इसलिए रामनाम का जप करना ही एक सहारा है। छल-कपटधारी कलियुग कालनेमि राक्षस के समान और रामनाम में सुमति होना प्रबल हनुमान्‌जी के समान है। जैसे कालनेमि को हनुमान्‌जी ने पहचान कर मार डाला था

१ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। २ भूत, भविष्य, वर्तमान। ३ भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक।

वैसे ही नाम को जपनेवाला कलियुग के छली पुरुषों को पहिचानकर उनसे न्यारा रहता है।



रामनाम नरकेहरी, कनककशिपु कलिकाल।
जापकजनप्रह्लादजिमि, पालहिं दलि सुरशाल॥

रामनाम नरकेहरी (नृसिंह भगवान्) के समान, कलियुग हिरण्यकशिपु दैत्य के समान और नाम का जप करनेवाला भक्त प्रह्लाद के समान है। जैसे देवताओं को दुःख देनेवाले हिरण्यकशिपु को मार नृसिंहजी ने प्रह्लाद का पालन किया, वैसे ही नाम कलियुग के दोषों को नष्ट करके भक्तों का सदा पालन करता है।

भाव कुभाव अनख आलसहू * नाम जपत मंगल दिशि दशहू
सुमिरि सो रामनामगुणगाथा * करौं नाय रघुनाथहिं माथा

जीवात्मा माया के वश में रहता है--अर्थात् सतोगुण के वेग में मन की प्रसन्नता से हृदय की भावना शुद्ध होती है, रजोगुण के वेग से अनेक प्रकार की कामनाओं में मन के चञ्चल होने से हृदय मलिन हो जाता है और तमोगुण के वेग से अनख (क्रोध) और आलस्य घेर लेते हैं। रजोगुण और तमोगुण के वेग में हृदय की भावना अच्छी नहीं रहती। इससे नाम के जप को मुख्य समझकर जो साधक भक्त सदा नाम की चिन्ता करते हैं, उनको दशो दिशाओं में मंगल मिलता है। उसी राम-नाम को स्मरणकर व श्रीरघुनाथजी के चरणों में शिर नवाकर मैं श्रीरामजी के गुणों की गाथा रचता हूँ।

मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती * जासु कृपा नहिं कृपा अघाती
राम सुस्वामि कुसेवक मोसे * निजदिशि देखि दयानिधि पोसे

मेरी भूलचूक को सब प्रकार से वही सुधारेंगे, जिनकी कृपा से कृपा भी नहीं अघाती। कहाँ श्रीरघुनाथजी-जैसे अच्छे स्वामी और कहाँ मुझ सरीखा कुसेवक। अब अपनी ही मर्यादा की ओर देखकर उन्हें मेरा पालन करना पड़ेगा—मुझसे कुछ नहीं बन पड़ेगा।

लोकहु वेद सुसाहब रीती * विनय सुनत पहिचानत प्रीती
गनी गरीब ग्रामनर नागर * पंडित मूढ़ मलीन उजागर

वेद में, लोक में भी अच्छे स्वामी की यह रीति है कि वह विनती सुनते ही स्नेह को पहचान लेता है। धनवान्, कंगाल, ग्रामवासी, नगरवासी, पंडित, मूर्ख, मैले चित्तवाले, शुद्ध अन्तःकरणवाले,

सुकवि कुकवि निजमतिअनुसारी * नृपहिं सराहत सब नरनारी
साधु सुजान सुशील नृपाला * ईशअंशभव परमकृपाला

अच्छे और बुरे कवि, वे सब स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की बड़ाई करते हैं और राजा सब लोकपालों के अंश से उत्पन्न होने के कारण साधु, चतुर, सुशील और दयालु होता है।

सुनि सन्मानहिं सबहिं सुबानी * भणित भक्ति मतिगति पहिचानी
यह प्राकृत महिपाल स्वभाऊ * जानि शिरोमणि कोशलराऊ
रीझत राम सनेह निसोते * को जग मन्द मलिनमति मोते

राजा इन सबकी बातें सुनकर और स्नेह देखकर सबमें बुद्धि की कम या अधिक गति पहचान सबका अपनी मीठी वाणी से यथोचित सम्मान करता है। यह स्वभाव तो प्राकृत राजाओं का है। फिर कोशलाधीश श्रीरघुनाथजी के स्वभाव का, जो सबमें शिरोमणि हैं, क्या कहना है। श्रीरामजी तो स्नेह ही से प्रसन्न हो जाते हैं। भला संसार में मुझसे अधिक मंद और मलिन बुद्धिवाला कौन है।

दो० शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलयान जेहि, सचिव सुमति कपिभालु॥

परन्तु मुझे विश्वास है कि मुझ नासमझ सेवक की रुचि को वह अवश्य रक्खेंगे। श्रीरामजी कृपालु हैं। उन्होंने पत्थरों का पुल तथा वानरों और रीछों को अपना मंत्री बनाया।

हौंहुँ कहावत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥

मुझे सब श्रीरामजी का दास कहते हैं और मैं भी कहलाता हूँ और यह उपहास श्रीरामजी सहते हैं। कहाँ जगन्माता श्रीसीताजी के स्वामी जैसे मालिक और कहाँ मैं तुच्छ तुलसीदास उनका सेवक!

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी * सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी
समुझिसहमिमोहिंअपडरअपने * सो सुधि राम कीन्ह नहिं सपने

मेरी बहुत बड़ी ढिठाई के साथ अपराध सुनकर उसके पातक से नरक ने भी मुझसे घृणा की। यह समझकर मुझे संकोच और अपने अपराध का बहुत डर हुआ कि अब न जाने मेरी क्या दशा हो, परन्तु श्रीरामजी ने मेरे अपराध का स्मरण स्वप्न में भी नहीं किया।

सुनिअवलोकि सुचितचखुचाही * भक्ति मोरि मति स्वामि सराही
कहत नशाय होय अति नीकी * रीझत राम जानि जनजीकी

क्योंकि गुरुजनों से सुना और शास्त्रों में देखा है कि 'अच्छे हृदय के नेत्रों से भक्ति की चाहना हो' ऐसी मेरी बुद्धि की स्वामी श्रीरामजी ने बड़ाई की है। ऊपर से कहने में बुरे चालचलनवाला भी हो; परन्तु हृदय का अच्छा हो तो श्रीरामजी जन के हृदय की भावना जानकर प्रसन्न होते हैं।

रहत न प्रभु चित चूक कियेकी * करत सुरत सौ बार हियेकी
जेहिअघवधेउव्याधजिमि बाली * सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली

कर्म में जो भूल हो जाय; वह प्रभु के चित्त में नहीं रहती, किन्तु हृदय के भाव को वह सदा सम्हारा रखते हैं। जिस पाप से भगवान् ने बालि को व्याध के समान निठुर हो मार डाला, वही दुराचार सुग्रीव ने किया।

सोइ करतूति विभीषण केरी * सपनेहु सो न राम हियहेरी
ते भरतहि भेंटत सन्माने * राजसभा रघुराज बखाने

और वही करतूत विभीषण की भी थी; परन्तु इस ओर श्रीरामजी ने स्वप्न में भी ध्यान न दिया। उन्हीं सुग्रीव और विभीषण का भरतमिलाप में सम्मान किया और राजसभा में उनकी बड़ाई की।


प्रभु तरुतर कपि डार पर, किये ते आपुसमान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहब शीलनिधान॥

देखो, वृक्ष के नीचे प्रभु और वृक्ष की डालियों पर वानर! परन्तु उन्हें अपने बराबर कर लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजी के समान शीलनिधान स्वामी और कोई कहीं नहीं है।

राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥

हे श्रीरामजी, 'आपकी अच्छाई सबके लिए अच्छी है' यदि यह विचार सच्चा है तो मुझ तुलसीदास के लिए भी अच्छा है।

यहिविधिनिजगुणदोषकहि, बहुरि सबहिं शिरनाय।
बरणौं रघुबरविशद यश, सुनिकलिकलुषनशाय॥

इस प्रकार अपने गुणदोष कहकर और फिर सबको शिर नवाकर मैं अब श्रीरघुनाथजी के निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जिसे सुनकर कलियुग के दोष नष्ट हो जाते हैं।

याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई * भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई
कहिहौं सोइ संवाद बखानी * सुनहु सकल सज्जन सुखमानी

याज्ञवल्क्यजी ने जिस सुहावनी कथा को मुनियों में श्रेष्ठ भरद्वाजजी को सुनाया है, उसी को उनके संवाद के रूप में वर्णन करूँगा। हे सज्जनो, उसे सुखपूर्वक सुनो।

शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा * बहुरि कृपाकरि उमहिं सुनावा
सो शिव काकभुशुण्डिहिदीन्हा * रामभक्ति अधिकारी चीन्हा

पहले इस सुहावने चरित्र को महादेवजी ने बनाया, फिर कृपाकर पार्वतीजी को सुनाया। उसी रामचरित्र को शिवजी ने काकभुशुण्डि को श्रीरामजी की भक्ति का अधिकारी जानकर सुनाया।

तेहिसन याज्ञवल्क्य मुनि पावा * तिन पुनि भरद्वाज प्रति गावा
ते श्रोता वक्ता समशीला * समदर्शी जानहिं हरिलीला

उनसे याज्ञवल्क्य मुनि ने सुना और उन्होंने भरद्वाजजी से कहा। वे समशीलवाले और सबको समान देखनेवाले श्रोता भरद्वाज और वक्ता याज्ञवल्क्य भगवान् के चरित्र को जानते हैं।

जानहिं तीनिकाल निजज्ञाना * करतलगत आमलकसमाना
औरौ जे हरिभक्त सुजाना * कहहिंसुनहिंसमुझहिंबिधिनाना

जो तीनों कालों में हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान आत्मज्ञान को जानते हैं। इनके सिवा और भी जो भगवान् के भक्त हैं, वे भी अनेक प्रकार से इसे कहते, सुनते और समझते हैं।

दो० मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सुशूकरखेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

मैंने वाराहक्षेत्र में अपने गुरुजी से यह कथा सुनी थी, परन्तु उस समय लड़कपन के कारण बहुत नासमझ था, इससे समझ में नहीं आई थी।

श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ़।
किमिसमुझौं यह जीव जड़, कलिमलग्रसित विमूढ़॥

श्रीरघुनाथजी की कथा गूढ़ अभिप्रायवाली है। इसके सुनने और कहनेवाले ज्ञान से पूर्ण हों, तभी यह समझ में आती है। फिर जीवात्मा एक तो जड़माया को अपना रूप मानता है दूसरे कलियुगकी मलिनता से घिरा है और इसी से अज्ञानी भी है फिर वह गूढ़ अभिप्राय को कैसे समझ सके।

तदपि कही गुरु बारहिंबारा * समुझि परी कछु मति अनुसारा
भाषाबन्ध करब मैं सोई * मोरे मन प्रबोध जेहि होई

तिस पर भी गुरुजी ने कई बार कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ पड़ी। उसी को मैं देशभाषा में कवितारूप से बनाऊँगा, जिससे मेरे मन में प्रबोध (आत्मज्ञान का साक्षात्कार) हो।

जस कछु बुधिबिवेकबल मेरे * तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे
निज सन्देह मोह भ्रमहरणी * करौं कथा भवसरितातरणी

जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और ज्ञान का बल है और जैसी हृदय में भगवान् की प्रेरणा होगी, वैसा कहूँगा। अपने सन्देह, मोह और मिथ्या भ्रम को हरनेवाली और संसाररूपी नदी से पार उतारनेवाली श्रीरामकथा को वर्णन करता हूँ।

बुध बिश्राम सकल जनरञ्जनि * रामकथा कलिकलुषबिभञ्जनि
रामकथा कलिपन्नग भरणी * पुनि बिबेकपावक कहँ अरणी

श्रीरामजी की कथा बुद्धिमान् पण्डितों के रमने का स्थान, सबमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली और कलियुग के पातकों का नाश करनेवाली है। सर्परूपी कलियुग के विष को मिटानेवाली और अग्निरूपी ज्ञान को उत्पन्न करनेवाली अरणी (वे लकड़ियाँ, जिनको रगड़कर यज्ञ के लिए पहले जमाने में आग पैदा की जाती थी) के समान है।

रामकथा कलि कामद गाई * सुजन सजीवनमूरि सुहाई
सोइ वसुधातल सुधातरङ्गिनि * भवभञ्जनि भ्रमभेकभुवङ्गिनि

श्रीरामजी की कथा कलियुग में कामधेनु के समान है और सज्जनों को तो सजीवनमूरि-सी सुहावनी है। वही कथा पृथ्वीतल में अमृत की तरङ्गोंवाली नदी है और आवागमन को नष्ट करनेवाली है। यह कथा मेढकरूपी मिथ्या संसारभ्रम को खानेवाली नागिनि है।

असुरसेनसम नरकनिकन्दिनि * साधुविबुधकुलहितगिरिनन्दिनि
सन्तसमाज पयोधि रमासी * विश्वभार धर अचल क्षमासी

दैत्यों की सेना के समान नरकों का नाश करनेवाली और साधु तथा पण्डितों के कुल का हित करनेवाली जगन्माता श्रीदुर्गाजी के समान है। साधुसमाजरूपी समुद्र में उत्पन्न हुई लक्ष्मी के समान और संसार के भार को धारण करनेवाली अचल पृथ्वी के समान है।

यमगण मुँहमसि जग यमुनासी * जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी
रामहिं प्रिय पावन तुलसीसी * तुलसिदासहित हिय हुलसीसी

यमुना के समान यमगणों के मुख में स्याही लगानेवाली है—जैसे यमद्वितीया को यमुनास्नान से नरक नहीं होता वैसा ही इस कथा का प्रभाव है—और जीवन्मुक्ति के लिए मानों काशी ही है। श्रीरामजी को तुलसी के समान प्यारी और तुलसीदास का हित करने के लिए उसके हृदय में हुलसी-सी है।

शिवप्रिय मेकलशैलसुतासी * सकल सिद्धिप्रद सम्पतिरासी
सद्गुणसुरगणअम्बअदितिसी * रघुवरभक्ति प्रेमपरिमितिसी

श्रीशिवजी को मेकलपर्वत की पुत्री नर्मदा के समान प्यारी है। यह सब सिद्धियों की देनेवाली और सम्पत्ति की राशि है। अच्छे गुणरूपी देवगणों को उत्पन्न करनेवाली देवमाता अदिति के समान है और श्रीरघुनाथजी की भक्ति और प्रेम की सीमा है।


रामकथा मन्दाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेहवन, सिय रघुबीर बिहारु॥

चित्रकूट पर्वतरूपी भक्त के मन में रामकथा मन्दाकिनी नदी है और भक्त का कथा में स्नेह होना ही श्रीसीतारामजी का विहारस्थान सुन्दर तुलसी का वन है।

रामचरित चिन्तामणि चारू * सन्त सुमति तिय सुभग सिंगारू
जगमंगल गुणग्राम राम के * दानि मुक्ति धन धर्म काम के

श्रीरामजी की कथा साधुबुद्धिरूपी सौभाग्यवती स्त्री के शृंगार करने की सुन्दर चिन्तामणि है। श्रीरामजी के गुणसमूह संसार का मङ्गल करनेवाले तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के देनेवाले हैं।

सद्‌गुण ज्ञान विराग योग के * विबुधवैद्य भवभीमरोग के
जननि जनक सियराम प्रेम के * बीज सकल व्रत धर्म नेम के

श्रीरामचरित्र के गुण ज्ञान, वैराग्य और योग के अच्छे गुणों के समान और भयानक संसाररूपी रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार सरीखे हैं। ये गुण श्रीसीताराम में स्नेह उत्पन्न करने के लिए माता-पिता के समान और सब नियमों, व्रतों और धर्मों के बीज हैं।

शमन पाप सन्ताप शोक के * प्रिय पालक परलोक लोक के
सचिवसुमति भूपति विचार के * कुम्भज लोभ उदधि अपार के

पाप, सन्ताप और दुःख को मिटानेवाले तथा इसलोक और परलोक में प्यारे रक्षक हैं। विचाररूपी राजा के बुद्धिरूपी मन्त्री और अपार लोभसमुद्र को अगस्त्यजी के समान सुखानेवाले हैं।

काम क्रोध कलिमल करिगण के * केहरिशावक जनमन वन के
अतिथि पूज्य प्रीतम पुरारि के * कामद घन दारिद दवारि के

भक्त के मनरूपी वन में कलियुग के पापरूपी हाथियों के झुण्डों को नष्ट करनेवाले सिंह के बच्चों के समान हैं। श्रीशिवजी के पूज्य प्यारे अतिथि के समान और सब कामनाओं के बरसनेवाले तथा दरिद्ररूपी दावानल को नष्ट करने के लिए बादलों के समान हैं।

मन्त्र महामणि विषय व्याल के * मेटत कठिन कुअङ्क भाल के
हरण मोहतम दिनकरकरसे * सेवक शालिपाल जलधर से

विषयरूपी सर्प के विष को नाश करनेवाले महामणि और मन्त्र के समान हैं। ये मस्तक में लिखे हुए ब्रह्मा के कठिन और बुरे लेख को मेटते हैं। मोहरूपी अन्धकार को हरनेवाली सूर्य की किरणों के समान और धानरूपी दास का पालन करने के लिए मेघों के समान हैं।

अभिमतदानि देवतरुवरसे * सेवत सुलभ सुखद हरिहर से
सुकवि शरद नभ मन उडुगनसे * रामभक्ति जनजीवनधनसे

कल्पवृक्ष के समान भक्तों के मनोरथों को देनेवाले और सेवा करने से सहज ही सुख के देनेवाले और सुलभ श्रीरामजी और शिवजी के समान हैं। अच्छे कविरूपी शरद् ऋतु के मनरूपी आकाश में उजाला और ठण्ढक करनेवाले नक्षत्रों के समान और भक्तों के लिए जीवनधन श्रीरामभक्ति के समान हैं।

सकल सुकृतफल भूरिभोगसे * जगहित निरुपधि साधुलोगसे
सेवक मन मानस मरालसे * पावन गङ्गतरङ्गमाल से

सब पुण्यों के फलरूपी बहुत प्रकार के आनन्दभोग और संसार का हित करने के लिए छलकपट से रहित साधु लोगों के समान हैं। भक्त के मनरूपी मानसरोवर में रहनेवाले हंसों के समान और पवित्र करने में गङ्गा की तरङ्गों के झुण्ड से हैं।



कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखण्ड।
दहन रामगुणग्राम इमि, ईंधन अनल प्रचण्ड॥

श्रीरामजी के गुणसमूह ईंधनरूपी कलियुग के कुराह, बुरी तर्कणा, बदचलनी, कपट, अभिमान और पाखण्ड को भस्म करनेवाले प्रचण्ड अग्नि के समान हैं।

रामचरित राकेशकर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुदचकोर चित, हित विशेष बड़ लाहु॥

श्रीरामजी की कथा सबको सुख देनेवाली चन्द्रमा की किरणों के समान है। उनमें भी कुमुद और चकोर पक्षी के समान चित्तवाले सज्जनों को विशेष कल्याण का लाभ होता है।

कीन्ह प्रश्न जेहि हेतु भवानी * जेहि विधि शङ्कर कहा बखानी
सो सब हेतु कहब मैं गाई * कथाप्रबन्ध विचित्र बनाई

जिस कारण से पार्वतीजी ने प्रश्न किया और जिस प्रकार महादेवजी ने वर्णन किया, वह सब कारण मैं विचित्र कथा के रूप में कहूँगा।

जिन यह कथा सुनी नहिं होई * जनि आश्चर्य करै सुनि सोई
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी * नहिं आश्चर्य करहिं अस जानी

जिन लोगों ने यह कथा न सुनी हो, वे सुनकर आश्चर्य न करें। ज्ञानवान् अलौकिक (संसार से बाहर, ब्रह्मविषयक) कथा सुनकर यह जानकर आश्चर्य नहीं करते—

रामकथा की मिति जग नाहीं * अस प्रतीति तिनके मन माहीं
नाना भाँति राम अवतारा * रामायण शतकोटि अपारा

कि संसार में रामकथा का अन्त नहीं है, यह उनके मन में विश्वास है। श्रीरामजी के अवतार बहुत प्रकार से हैं, इसी से रामायणें भी सैकड़ों करोड़ों हैं।

कल्पभेद हरिचरित सुहाये * भाँति अनेक मुनीशन गाये
करिय न संशय अस उर आनी * सुनिय कथा सादर रतिमानी

मुनियों ने कल्प के भेद से भगवान के सुहावने चरित्र अनेक प्रकार से कहे हैं। ऐसा मन में लाकर सन्देह नहीं करना चाहिए। कथा को आदर और स्नेह से सुनना चाहिए।



राम अनन्त अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार।
सुनि आश्चर्य न मानिहैं, जिनके विमल विचार॥

रामजी का अन्त नहीं है और न उनके गुणों का अन्त है, इसी से कथा का विस्तार बहुत है। जिनके विचार शुद्ध हैं वे सुनकर आश्चर्य न करेंगे।

यहि विधि सब संशय करि दूरी * शिरधरि गुरुपदपङ्कजधूरी

पुनि सबहीं बिनवौं कर जोरी * करत कथा जेहि लाग न खोरी

इस प्रकार सब सन्देह दूर करके और श्रीगुरुजी के चरणारविन्दों का रज सिर पर रखकर फिर सबको हाथ जोड़कर विनती करता हूँ, जिससे कथा वर्णन करने में दोष न लगे।

सादर शिवहिं नाय अब माथा * बरणौं विशद रामगुणगाथा
संवत सोरह सौ इकतीशा * करौं कथा हरिपद धरि शीशा

आदर सहित शिवजी को सिर नवाकर श्रीरामजी के निर्मल गुण वर्णन करता हूँ। भगवान् के चरणों में सिर रखकर संवत् १६३१ में इस रामकथा का आरंभ करता हूँ।

नौमी भौमवार मधुमासा * अवधपुरी यह चरित प्रकासा
जेहि दिन राम जन्म श्रुति गावहिं * तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं

चैत्रमास, नवमी तिथि, मङ्गलवार को अयोध्यापुरी में यह रामचरित्र प्रकाशित (उत्पन्न) हुआ। जिस दिन वेद श्रीरामजी का जन्म कहते हैं, उस दिन सब तीर्थ यहाँ चले आते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा * आय करहिं रघुनायक सेवा
जन्ममहोत्सव रचहिं सुजाना * करहिं रामकलकीरति गाना

दैत्य, सर्प, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता आकर श्रीरघुनाथजी की सेवा करते हैं। साधु लोग श्रीरामजन्म के महोत्सव में अनेक भाँति की रचना करते और मनोहर यश गाते हैं।



मज्जहिं सज्जनबृन्द बहु, पावन सरयूनीर।
जपहिं राम धरिध्यान उर, सुन्दर श्याम शरीर॥

सरयू के पवित्र जल में सज्जनों के बहुत से झुण्ड स्नान करते हैं और ध्यान से श्रीरघुनाथजी का सुन्दर श्याम शरीर हृदय में रखकर मन्त्र का जप करते हैं।

दरश परश मज्जन अरु पाना * हरै पाप कह वेद पुराना
नदी पुनीत अमित महिमा अति * कहि न सकै शारदा विमलमति

वेद और पुराण कहते हैं, सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और पान करने से पाप दूर हो जाते हैं। यह पवित्र नदी अपार माहात्म्यवाली है जिसे निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती भी नहीं कह सकतीं।

रामधामदा पुरी सुहावनि * लोक समस्त विदित जगपावनि
चारि खानि जग जीव अपारा * अवध तजे तनु नहिं संसारा

श्रीरघुनाथजी का परमधाम देनेवाली, चौदहों लोकों में प्रसिद्ध, संसार को पवित्र करनेवाली रमणीय अयोध्यापुरी है। संसार में चारो प्रकार (अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज) के जीवों में से जो अयोध्या में मरता है, वह फिर संसार में नहीं आता।

सब विधि पुरी मनोहर जानी * सकल सिद्धिप्रद मङ्गलखानी
विमल कथा कर कीन अरम्भा * सुनत नशायँ काम मद दम्भा

सिद्धियों की देनेवाली और मङ्गलों की खानि अयोध्या को सब प्रकार मनोहर जानकर मैंने यही स्वच्छ कथा प्रारम्भ की है, जिसे सुनने से कामनाएँ, देहाभिमान और मायामय पाखण्ड नाश होते हैं।

रामचरितमानस यह नामा * सुनत श्रवण पाइय विश्रामा
मनकरि विषय अनल वन जरई * होय सुखी जो यहि सर परई

'रामचरितमानस' यह नाम कान लगाकर सुनने से सुख मिलता है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है। यदि इस मानसरोवर में डूबे तो सुखी हो।

रामचरितमानस मुनिभावन * विरचेउ शम्भु सुहावन पावन
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन * कलिकुचालकलिकलुषनशावन

मुनियों के मन को प्यारा यह सुहावना और पवित्र रामचरितमानस श्रीशिवजी ने बनाया है। यह असन्तोष के दुःखों, तीनों प्रकार के दोषों तथा कलियुग की कुचाल और पापों को मिटाता है।

रचि महेश निज मानस राखा * पाय सुसमय शिवासन भाखा
ताते रामचरितमानस वर * धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर
कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई * सादर सुनहु सुजन मनलाई

श्रीशिवजी ने इसे बनाकर अपने मन ही में रहने दिया। फिर अच्छा समय पाकर श्रीपार्वतीजी से कहा। इसी से श्रीशिवजी ने अपने हृदय में ढूँढ़कर प्रसन्न होकर इसका 'रामचरितमानस' नाम रखा। वही सुख की देनेवाली सुहावनी कथा मैं कहता हूँ; हे सज्जनो, मन लगाकर आदर से सुनो।


जस मानस जेहि विधिभयो, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौं प्रसङ्ग सब, सुमिरि उमावृषकेतु॥

संसार में इस मानसरामायण का प्रचार जिस कारण और जिस प्रकार हुआ, अब वही सब प्रसङ्ग श्रीमहादेवजी और श्रीपार्वतीजी का स्मरण करके कहता हूँ।

शम्भुप्रसाद सुमतिहिय हुलसी * रामचरितमानसकवि तुलसी
करौं मनोहर मतिअनुहारी * सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी

श्रीशिवजी की प्रसन्नता से मेरे हृदय में अच्छी बुद्धि की उमंग हुई, जिससे मैं तुलसीदास इस रामचरितमानस का कवि हुआ। अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूँ। हे सज्जनो, अच्छे मन से इसे सुनकर जो कुछ मुझसे भूल हो, उसे सुधार लीजिएगा।

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू * वेद पुराण उदधि घन साधू
वरषहिं रामसुयश वर वारी * मधुर मनोहर मङ्गलकारी

अच्छी बुद्धि भूमि है, हृदय गम्भीरता है, श्रीरघुनाथजी का यश उज्ज्वल, मीठा, मनोहर और मङ्गल करनेवाला जल है, जिसे साधुरूपी बादल वेद-पुराणरूपी समुद्र से लेकर बरसते हैं।

लीला सगुण जो कहहिं बखानी * सोइ स्वच्छता करै मलहानी
प्रेम भक्ति जो वरणि न जाई * सोइ मधुरता शीतलताई

सगुण ब्रह्म की लीला जो कहते हैं, वही जल के मैल को दूर करके शुद्ध करती है। प्रेम और भक्ति, जो वर्णन नहीं हो सकते, वही जल की शीतलता और मीठापन हैं।

सो जल सुकृत शालिहित होई * रामभक्त जगजीवन सोई
मेधामहिगत सो जल पावन * सिमिटिश्रवणमगचलेउसुहावन
भरेउ सो मानस सुथल थिराना * सुखद शीत रुचि चारु चिराना

वही संसार का जीवनरूप है और उसी पुण्यमय जल से धानरूपी भक्तों का हित होता है। वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वी में पड़कर इकट्ठा हो कानरूपी मार्ग से मनरूपी मानसरोवर को चला। उस सुन्दर स्थल में जाकर रुक गया और ज्यों-ज्यों पुराना हुआ, त्यों-त्यों सुख देनेवाला, शीतल (शान्त), रुचि (तेज) और चारु (सुन्दर, पवित्र) हुआ।



सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचेउ बुद्धि विचारि।
ते यहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

बुद्धि में विचारकर उत्तम और सुन्दर जो संवाद हुए हैं, वे ही इस सुन्दर पवित्र मानसर के चार घाट हैं।

सप्तप्रबन्ध सुभग सोपाना * ज्ञाननयन निरखत मनमाना
रघुपतिमहिमा अगुण अबाधा * वरणब सोइ वर वारि अगाधा

सात काण्ड ही सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जिन्हें ज्ञान के नेत्रों से देखते ही मन स्थिर होता है। तीनों गुणों से परे, विघ्नरहित श्रीरघुनाथजी के माहात्म्य का वर्णन करना ही उत्तम जल की गहराई है।

रामसीययश सलिल सुधासम * उपमा वीचिविलास मनोरम
पुरइनि सघन चारु चौपाई * युक्ति मञ्जुमणि सीप सुहाई

सीतारामजी का यश ही अमृत के समान जल है और उपमा देना मनोरम तरङ्गों का कल्लोल करना है। मानसरोवर की सघन पुरइन के समान इस काव्य में चौपाइयों के सुन्दर झुण्ड हैं और मानसरोवर में सुन्दर सुहावने रत्न, मणि और सीपियों के समान रामायण में कविता की युक्तियाँ हैं।

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा * सोइ बहुरङ्गकमलकुल सोहा
अर्थ अनूप सुभाव सुभासा * सोइ पराग मकरन्द सुवासा

जैसे मानसरोवर में बहुत रंग के कमल शोभित हैं, वैसे ही मानस रामायण में सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं। जैसे कमल के फूलों में पराग, रस और सुगंध है, वैसे ही दोहादि में अर्थ, भाव और भाषा हैं।

सुकृतपुञ्ज मञ्जुल अलिमाला * ज्ञान विराग विचार मराला

धुनि अवरेब कवित गुण जाती * मीन मनोहर ते बहुभाँती

कमलों पर मनोहर भँवरों के झुण्ड बैठकर रस लेते हैं और हंस मोती चुगते हैं, वैसे ही इन्हीं का भावार्थ पुण्यात्मा पुरुष लेते हैं, और ज्ञानी, वैरागी और विचारवान अर्थ समझते हैं। ध्वनि, अवरेब, गुण और जाति—ये चार प्रकार की कविताएँ * ही बहुत प्रकार की मछलियाँ हैं।

अर्थ धर्म कामादिक चारी * कहब ज्ञान विज्ञान विचारी

नवरस जप तप योग विरागा * ते सब जलचर चारु तड़ागा

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान और विज्ञान को विचार के साथ कहूँगा। नवरस, जप, तप, योग और वैराग्य मानसरोवर के सुन्दर जलचरों के समान हैं।

सुकृती साधु नामगुण गाना * ते विचित्र जलविहँग समाना

सन्तसभा चहुँदिशि अमराई * श्रद्धा ऋतुबसन्तसम गाई

पुण्यात्मा, साधु और श्रीरामनाम के गुणों का गान करना मानस के रङ्ग-बिरङ्गे जल के पक्षियों के समान हैं। साधुओं की सभा मानस के चारों ओर की फुलवाई है और श्रद्धा वसन्तऋतु है।

भक्तिनिरूपण विविध विधाना * क्षमा दया द्रुम लता बिताना

संयम नियम फूल फल ज्ञाना * हरिपदरति रस वेद बखाना

औरौ कथा अनेक प्रसङ्गा * ते शुक पिक बहु वर्ण विहङ्गा

अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण, क्षमा और दया वृक्षों को ढकनेवाली लताएँ हैं। वेद भी वर्णन करते हैं कि संयम और नियम साधुरूपी वृक्षों के फूल, ज्ञान फल और श्रीराम के चरणों में प्रेम होना फलों का रस है। अनेक प्रकार के प्रसंग पाकर दूसरी कथाएँ कहना अनेक रङ्ग और जाति के तोता-पपीहा आदि पक्षी हैं।



पुलकबाटिका बाग बन, सुख सुबिहङ्ग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु॥

भक्ति कर्म और ज्ञान, इन तीनों उपासनाओं की पुलकावलियाँ ही क्रम से फुलवारी, बाग और वन हैं, और तीनों के सुख अच्छे पक्षियों का विहार करना है। साधुओं का अच्छा मन माली है, स्नेह होना जल है और सुन्दर नेत्र घड़े हैं। उनसे सींचते हैं †।

* १—जिसमें अक्षरार्थ लिया जाय, वह ध्वनि काव्य है। जैसे—पुनि आउब यहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी इक आली॥

२—अवरेब काव्य में शब्दों को पलटकर अर्थ लगाया जाता है। जैसे—आगे चले बहुरि रघुराई।

३—गुण काव्य—(क) ओज (कठोर वाणी में) भट भट भाट भाट भट भाट।
(ख) प्रसाद (कोमल वाणी में) लागे बिटप मनोहर नाना।
(ग) माधुर्य (मीठी वाणी में) रामचन्द्रमुख चन्द्रछबि, लोचन चारु चकोर

४—जिसमें रूप गुण अथवा स्वभाव के समान ही कहा जाय, वह जाति-काव्य है जैसे—लागे फल मोहिं लागी भूखा। कपि स्वभाव ते तोरेउ रूखा॥

† जैसे फुलवाड़ी नित्य सींची जाती है, वैसे ही भक्ति-उपासना में प्रेम से नित्य ही अश्रुपात होता है। जैसे बाग कुछ समय का अन्तर देकर सींचा जाता है, वैसे ही कर्मोपासना में कभी-कभी प्रेम के अश्रुपात होते हैं। और जैसे वन कभी नहीं सींचा जाता वैसे ही ज्ञानोपासना में महाज्ञानी सदा आत्मानन्द में रमण करता है।

जे गावहिं यह चरित सँभारे * ते यहि ताल चतुर रखवारे
सदा सुनहिं सादर नर नारी * ते सुरवर मानस अधिकारी

जो पुरुष इस रामचरित्र को सँभालकर गाते हैं, वे इस तालाब के चतुर रखवाली करनेवाले हैं और जो स्त्री-पुरुष सदा इसे आदरसहित सुनते हैं, वे इस मानस के अधिकारी श्रेष्ठ देवता हैं

अतिखल जे विषयी बक कागा * यहि सर निकट न जायँ अभागा।
शम्बुक भेक सिवारसमाना * यहाँ न विषयकथा रस नाना।

जो बगलों और कौओं के समान दुष्ट और विषयी हैं, वे अभागे इस तालाब के निकट नहीं जाते क्योंकि शम्बुक (घोंघी), मेढक और सिवार के समान इसमें विषय रसभरी कथाएँ नहीं हैं

तेहि कारण आवत हियहारे * कामी काक बलाक बिचारे
आवत यहि सर अति कठिनाई * रामकृपा बिन आय न जाई

इस कारण कौए और बगले के समान वेचारे कामी पुरुष यहाँ आने में हृदय से हार जाते हैं। इस मानसरोवर में एक तो आनाही कठिन है, फिर बिना श्रीरामजी की कृपा और भी नहीं आया जाता।

कठिन कुसङ्ग कुपन्थ कराला * तिनके वचन व्याघ्र हरि व्याला
गृहकारज नाना जञ्जाला * ते यहि दुर्गम शैल विशाला
वन बहु विषय मोह मद माना * नदी कुतर्क भयङ्कर नाना

कठिन बुरा संग भयंकर मार्ग हैं और उन कुसङ्गियों के वचन ही मार्ग के व्याघ्र, सिंह और सर्प आदि हैं। घर के जगज्जाल के काम ही दुःख से पार जाने में बड़े-बड़े पर्वत हैं। मोह, अभिमान, मान और विषय आदि अनेक प्रकार के वन और बुरे विचार ही भयंकर नदियाँ हैं।


जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं सन्तन कर साथ।
तिनकहँमानसअगमअति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ॥

जिनके श्रद्धारूपी मार्गव्यय नहीं है, और साधुओं का संग नहीं है, जिन्हें श्रीरघुनाथजी प्रिय नहीं हैं, उनको यह मानस बहुत ही अगम है।

जो करि कष्ट जाय पुनि कोई * जातहि नींद जुड़ाई होई
जड़ता जाड़ विषम उर लागा * गयहु न मज्जन पाव अभागा।

यदि कोई कष्ट करके जाय भी तो जाते ही नींद और जाड़ा लगते हैं। जड़तारूपी विषम जाड़ा हृदय में लगता है, जिससे जाने पर भी वह अभागा इसमें स्नान नहीं करने पाता।

करि न जाय सर मज्जन पाना * फिरि आवैं समेत अभिमाना
जो बहोरि कोउ पूछन आवा * सर निन्दा करि ताहि बुझावा

उनसे मानस में स्नान-पान नहीं करते बनता और वे अभिमानसहित लौट आते हैं। फिर यदि कोई पूछने आता है, तो मानस की निन्दा कर उसको समझाते हैं।

सकल विघ्न नहिं व्यापहिं तेही * राम सुकृपा विलोकहिं जेही
सोइ सादर सर मज्जन करई * महाघोर त्रयताप न जरई

श्रीरामजी जिसके ऊपर कृपा करके देखते हैं, उसको कोई विघ्न नहीं होते । वही आदर से मानस में स्नान करता है और तीनों घोर तापों से नहीं जलता ।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ * जिनके रामचरण भल भाऊ
जो नहाय चह यहि सर भाई * सो सतसङ्ग करै मन लाई

वे मनुष्य इस मानसरोवर को कभी नहीं छोड़ते, जिनके मन में श्रीरामचरणों की अच्छी भावना है। हे भाइयो, जिसे इस रामायणरूपी मानसरोवरमें स्नान करना हो, वह मन लगाकर सत्संग करे।

अस मानस मानसचषु चाही * भइ कविबुद्धि विमल अवगाही
भयो हृदय आनन्द उछाहू * उमग्यो प्रेम प्रमोद प्रवाहू

जब ऐसे मानस को मन के नेत्रों ने चाहना की, तब इसमें नहाकर कवि की बुद्धि निर्मल हुई । हृदय में आनन्द का उत्साह हुआ और परमानन्द के प्रेम की धारा उमड़ी ।

चली सुभग कविता सरितासों * राम विमलयश जल भरि तासों
सरयू नाम सुमङ्गल मूला * लोक वेदमत मञ्जुल कूला
नदी पुनीत सुमानसनन्दिनि * कलिमल तृणतरुमूलनिकन्दिनि

जैसे मानसरोवरसे नदी बही, वैसे ही मनके परमानन्दरूपसे श्रीरामजी के यश से भरी हुई सुन्दर कविता बह चली। तब उसका सरयू नाम हुआ, जो कि अच्छे मङ्गलोंकी जड़ है और जिसके लोक और वेदमत ही दोनों मनोहर कगार हैं। मानसरोवर की पुत्री सरयू नदी और मन की पुत्री कविता दोनों पवित्र हैं, और कलियुग के पापों को किनारे के वृक्षों के समान जड़ से उखाड़नेवाली हैं।



श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।
सन्त सभा अनुपम अवध, सकल सुमङ्गलमूल ॥

तीन प्रकार के श्रोताओं—मुक्त (माया से छूटे), मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छावाले) और विषयी (जो संसारी विषय में हैं)—के समाज सरयू के किनारों पर बसे हुए पुर, गाँव और नगर के समान हैं; और श्रोताओं में उपमारहित साधुओं की सभा अयोध्या है, जो सब मङ्गलों की जड़ है।

रामभक्ति सुरसरि तेहि जाई * मिली सुकीरति सरयु सुहाई
सानुज रामसमर यश पावन * मिलेउ महानद शोण सुहावन

जैसे सरयू गंगा में मिली है, वैसे ही सुन्दर यशवाली सुहावनी कविता श्रीरामभक्ति में मिली है । भाई लक्ष्मण सहित श्रीरामजी के युद्ध का पवित्र यश महानद शोणभद्र के समान इसमें आकर मिला है ।

युगबिच भक्ति देवधुनिधारा * सोहति सहित सुविरति विचारा

त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी * रामस्वरूप सिन्धु समुहानी

सरयू और शोणभद्र के बीच गंगा के समान वैराग्य और विचार के बीच में भक्ति सोहती है। तीनों प्रकार के तापको दुःख देनेवाली तीन मुँहवाली गंगा समुद्ररूपी श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें जा मिली।

मानसमूल मिली सुरसरिही * सुनत सुजनमन पावन करिही
बिचबिच कथा विचित्रविभागा * जनु सरितीर तीर वन बागा

जिसका मानसरोवर मूल है और जिसमें गङ्गा मिली हैं, ऐसी मानसकवितारूपी सरयू सुनते ही सज्जनों के मनको पवित्र करती है। बीच बीच में अनेक कथाएँ मानो सरयू किनारे के वन बगीचे हैं।

उमा महेश विवाह बराती * ते जलचर अगणित बहुभाँती
रघुवरजन्म अनन्द बधाई * भँवर तरङ्ग मनोहरताई

शिव पार्वती के विवाह के बराती ही नाना प्रकार के अनगिनत जलचर हैं और श्रीरघुनाथजी के जन्म की बधाई भँवरों और लहरों की सुन्दरता है।



बालचरित चहुँ बन्धु के, वनज विपुल बहुरङ्ग।
नृप रानी परिजनसुकृत, मधुकर वारिविहङ्ग॥

चारों भाइयों के बालचरित्र रंगबिरंगे कमल हैं तथा राजा, रानी और परिवारवालों के पुण्य भौंरे और जलपक्षी हैं।

सीयस्वयंवर कथा सुहाई * सरित सुहावनि सो छवि छाई
नदी नाव बटु प्रश्न अनेका * केवट कुशल उत्तर सविवेका

सीता के स्वयंवर की सुहावनी कथा ही सुन्दर छविवाली नदी है। अनेक प्रश्न नावें हैं और उनका विचार से उत्तर देना ही चतुर खेनेवाला है।

सुनि अनुकथन परस्पर होई * पथिकसमाज सोह सरि सोई
घोर धार भृगुनाथ रिसानी * घाट सुबन्ध राम वर बानी

कथा सुनकर श्रोताओं का परस्पर बातचीत करनाही यात्रियों का समाज है। परशुरामजी का क्रोध करना उसकी भयङ्कर धारा है और श्रीरामजी के उत्तम नम्र वचन सुन्दर बँधे हुए घाट हैं।

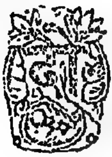
सानुज रामविवाह उछाहू * सो शुभ उमँग सुखद सब काहू
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं * ते सुकृतीजन मुदित नहाहीं

सबको सुख देनेवाला छोटे भाइयों सहित श्रीरामजी के विवाह का शुभ उत्सव सरयू की बाढ़ है। जो लोग कथा कहते-सुनते प्रसन्न होते हैं और जिनकी देह पुलकित हो उठती है वे पुण्यवान् जन प्रसन्न होकर उसमें स्नान करते हैं।

रामतिलक हित मङ्गल साजा * पर्वयोग जनु जुरेउ समाजा

काई कुमति केकई केरी * परी जासु फल विपति घनेरी

श्रीरामजी के राज्यतिलक के लिए मङ्गलों का साज पर्व के अवसर पर भीड़ों का इकट्ठा होना है। कैकेयी की दुर्बुद्धि काई है, जिसके कारण बहुत विपत्ति हुई।



शमन अमित उत्पात सब, भरतचरित जप याग।
कलिअघखलअवगुण कथन, ते जलमल बक काग॥

सब उत्पातों को मिटानेवाला भरतजी का चरित्र ही जप और यज्ञ है। कलियुग के पापों और दुष्टों के अवगुणों का वर्णन ही जल का मैल तथा बगले और कौए हैं।

कीरति सरित छहों ऋतु रूरी * समय सुहावन पावन भूरी
हिम हिमशैलसुता शिवव्याहू * शिशिर सुखद प्रभुजन्मउछाहू

यह कीर्ति की नदी छहो ऋतुओं से युक्त है। समय-समय पर विशेष पवित्र और शोभायमान है। हिमवान् पर्वत की पुत्री पार्वती और शिवजी का विवाह हेमन्तऋतु है। श्रीरामजी के जन्म का उत्साह सुख देनेवाली शिशिरऋतु है।

वर्णब रामविवाह समाजू * सो मुदमङ्गलमय ऋतुराजू
ग्रीषम दुसह रामबनगमनू * पन्थकथा खर आतप पवनू

श्रीरामजी के विवाह के समाज का वर्णन करना आनन्दमङ्गलमय वसन्तऋतु है। श्रीरामजी का वन में जाना दुस्सह ग्रीष्मऋतु है, उसमें वन के मार्ग का वर्णन कठोर धूप और लू है।

वर्षा घोर निशाचररारी * सुरकुल शालि सुमङ्गलकारी
रामराज सुख विनय बड़ाई * विशद सुखद सोइ शरद सुहाई

राक्षसों का घोर युद्ध वर्षाऋतु है, जो देवगणरूपी धानों को सुख और मङ्गल देनेवाला है। श्रीरामजी के राज्य का सुख, नम्रता और बड़ाई आदि ही सुख देनेवाली स्वच्छ शरद्ऋतु है।

सतीशिरोमणि सियगुणगाथा * सोइगुण अमल अनूपम पाथा
भरत स्वभाव सुशीतलताई * सदा एकरस वरणि न जाई

पतिव्रताओं में शिरोमणि जानकीजी के गुणों की कथा इस निर्मल जल का अनुपम गुण है, भरतजी का स्वभाव शीतलता है, जो सदा एकसा रहता है। उसे कोई कवि वर्णन नहीं कर सकता।



अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहुँ बन्धु की, जल माधुरी सुवास॥

चारो भाइयों का अच्छा भाईपन का बर्ताव—आपस में स्नेह, हँसी, देखना, बोलना, मिलना आदि—जल की मधुरता और सुगन्ध है।

आरति विनय दीनता मोरी * लघुता ललित सुवारि न खोरी
अद्भुत सलिल सुनत गुणकारी * आस पियास मनोमलहारी

मेरी दुखियई, गरीबी, निचाई और विनय जल का निर्दोष हलकापन (पचानेवाला) है। यह मानसचरित्ररूप सरयू का जल ऐसा अद्भुत है कि सुनने मात्र से गुण करता है—आशा, तृष्णा और मन के मैल को दूर कर देता है।

राम सुप्रेमहिं पोषत पानी * हरत सकल कलिकलुषगलानी
भवश्रम शोषक तोषक तोषा * शमन दुरित दुख दारिद दोषा

यह जल श्रीरामजी की भक्ति को पुष्ट करता है और कलियुग के सब पापों की ग्लानि को हर लेता है। संसार के जन्ममरणरूपी परिश्रम को सुखा डालता है, सन्तोष को भी बढ़ानेवाला और पातक, दुःख, दरिद्रता आदि दोषों को मिटाता है।

काम क्रोध मद मोहनशावन * विमल विवेक विरागबढ़ावन
सादर मज्जन पान किये ते * मिटहिं पाप परिताप हिये ते

काम, क्रोध, अहङ्कार और मोह को नष्ट करता तथा निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढ़ाता है। आदरसहित इसमें स्नान करने और इसे पीने से पातक और पछतावा हृदय से दूर होता है।

जिन यहि वारि न मानस धोये * तिन कायर कलिकाल बिगोये
तृषित निरखि रविकर भववारी * फिरहिं मृगा जिमि जीव दुखारी

जिन्होंने इस जल से अपने मन को नहीं धोया, उन कायरों को कलियुग ने बहका रखा है। जैसे प्यासा हरिण सूर्य की किरणों में जल मानकर दौड़ता है, वैसे ही वे दुखी जीव अन्यत्र भटकते फिरते हैं।



मति अनुहारि सुवारिगुण, गण गुनि मन अन्हवाय।
सुमिरि भवानी शङ्करहि, कह कवि कथा सुहाय॥

बुद्धि के अनुसार इस उत्तम जल के गुणों को विचारकर, उसमें मन को नहलाकर, शिवपार्वती का स्मरणकर, कवि सुहावनी श्रीरामकथा को कहता है।

अब रघुपति पदपङ्करुह, हिय धरि पाय प्रसाद।
कहौं युगल मुनिवर्यकर, मिलन सुभग संवाद॥

अब श्रीरामजी के चरणकमलों को हृदय में रखकर, उनकी प्रसन्नता पाकर, दोनों मुनिवरों का मिलना और सुन्दर संवाद होना कहता हूँ।

भरद्वाज जिमि प्रश्न किय, याज्ञवल्क्य मुनि पाय।
प्रथम मुख्य संवाद सो, कहिहौं हेतु बुझाय॥

याज्ञवल्क्य मुनि को पाकर भरद्वाजजी ने जिस प्रकार प्रश्न किया है, पहले उसी मुख्य संवाद को उसका कारण समझाकर कहूँगा।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा * जिनहिं रामपद अति अनुरागा
तापस शम दम दयानिधाना * परमारथपथ परम सुजाना

प्रयाग में भरद्वाज मुनि रहते हैं। जिनको श्रीरामजी के चरणों में बहुत प्रीति है। वह तपस्वी (अपने धर्म में रत), शम (अन्तःकरण की चारो वृत्तियों को वश में रखना), दम (जितेन्द्रिय होना) और कृपा की खान तथा परमार्थ के मार्ग को बहुत ही अच्छी रीति से जानते हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई * तीरथपतिहिं आव सब कोई
देव दनुज किन्नर नरश्रेणी * सादर मज्जहिं सकल त्रिवेणी

माघ में जब मकरराशि के सूर्य होते हैं, तब सब कोई प्रयाग में आते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यों के झुण्ड आदर से त्रिवेणीजी में स्नान करते हैं।

पूजहिं माधवपदजलजाता * परशि अक्षयवट हर्षित गाता
भरद्वाजआश्रम अति पावन * परम रम्य मुनिवरमनभावन

अक्षयवट को भेंटकर, पुलकित हो, श्रीलक्ष्मीपति माधव के चरणकमलों की पूजा करते हैं। वहाँ अति पवित्र, परम रमणीक, मुनियों के मन को भानेवाला भरद्वाजजी का आश्रम है।

तहाँ होय मुनि ऋषयसमाजा * जाहिं जे मज्जन तीरथराजा
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा * कहहिं परस्पर हरिगुणगाहा

वहाँ उन ऋषि-मुनियों की सभा होती है। जो प्रयाग में स्नान को जाते हैं, वे प्रातःकाल उत्साह के साथ स्नान करते और परस्पर भगवान् के गुणानुवाद करते हैं।


ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि, वर्णहिं तत्त्वविभाग।
कहहिं भक्ति भगवन्त की, संयुत ज्ञान विराग॥

वे ब्रह्मनिरूपण (जीव और ब्रह्म की एकता का वर्णन), धर्म सेवन करने का विधान और तत्त्वों का अलग-अलग भेद वर्णन करते हैं और ज्ञान-वैराग्य सहित श्रीरघुनाथजी की भक्ति का स्वरूप कहते हैं।

यहि प्रकार भरि मकर नहाहीं * पुनिसबनिज निज आश्रमजाहीं
प्रति संवत अस होय अनन्दा * मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा

इसी प्रकार मकर भर स्नानकर सब अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। ऐसा आनन्द हरसाल होता है और मुनियों के झुण्ड मकर स्नानकर अपनी-अपनी कुटी को लौट जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाये * सब मुनीश आश्रमन सिधाये
याज्ञवल्क्य मुनि परम विवेकी * भरद्वाज राखेउ पद टेकी

एक बार सब मुनिश्रेष्ठ मकर भर स्नानकर अपने स्थान को चले गये। बड़े ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाजजी ने उनके चरणों में अपना मस्तक टेककर रख छोड़ा।

सादर चरणसरोज पखारे * अति पुनीत आसन बैठारे
करि पूजा मुनि सुयश बखानी * बोले अति पुनीत मृदु बानी

और आदर से चरणारविन्दों को धोकर बहुत पवित्र आसन पर बैठाया। मुनि की पूजा कर और उनका सुन्दर यश सबसे कह वह बहुत पवित्र और मीठी वाणी से बोले—

नाथ एक संशय बड़ मोरे * करतल वेदतत्त्व सब तोरे
कहत मोहिं लागत भय लाजा * जो न कहौं बड़ होय अकाजा

हे नाथ, मुझे एक बड़ा सन्देह है। वेद का तत्त्व (सारांश) आपका समझा है। उसको कहते मुझे डर और लज्जा लगती है। यदि न कहूँ तो बड़ा अकाज होता है।



सन्त कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुतिपुराण जो गाव।
होय न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव॥

हे स्वामी, वेद और पुराणों के कहनेवाले साधु पुरुष ऐसी नीति कहते हैं कि गुरु से कुछ छिपाने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

अस विचारि प्रकटौं निज मोहू * हरहु नाथ करि जन पर छोहू
रामनाम कर अमित प्रभावा * सन्त पुराण उपनिषद गावा

ऐसा विचारकर अपना मोह प्रकट करता हूँ। हे नाथ, सेवक पर कृपा करके उसे दूर कीजिए। वह सन्देह यह है कि रामनाम का प्रभाव बहुत है, यह सन्त, पुराण और उपनिषद् भी कहते हैं।

सन्तत जपत शम्भु अविनाशी * शिव भगवान ज्ञान गुणराशी
आकर चारि जीव जग अहहीं * काशी मरत परम पद लहहीं

जिसको ज्ञान (ब्रह्म) और गुण (माया) की राशि, शिव (कल्याणरूप), नाशरहित महादेवजी सदा जपते हैं। संसार में चारो प्रकार के जीव काशी में मरने से परमपद पाते हैं।

सोपि नाममहिमा मुनिराया * शिव उपदेश करत करि दाया
राम कौन प्रभु पूछौं तोहीं * कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं

हे मुनिराज, यह भी रामनाम ही का माहात्म्य है; क्योंकि श्रीशिवजी अन्त समय कृपा करके सबको इसी नाम का उपदेश देते हैं। हे प्रभो, हे कृपानिधे, आपसे मैं पूछता हूँ, राम कौन हैं, यह मुझसे समझाकर कहिए।

एक राम अवधेशकुमारा * तिनकर चरित विदित संसारा
नारिविरह दुख सहेउ अपारा * भयो रोष रण रावण मारा

एक राम तो अयोध्या के राजकुमार हैं, जिनका यश संसार में विदित है। उन्होंने स्त्री के वियोग में अपार दुःख सहे और युद्ध में क्रोध करके रावण को मारा।



प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि॥

हे प्रभो, ये वही राम हैं जिनको महादेवजी जपते हैं या कोई दूसरे ? आप सत्य के धाम हैं और सब जानते हैं। विवेक से विचारकर कहिए।

जैसे मिटै मोह भ्रम भारी * कहहु सो कथा नाथ विस्तारी
याज्ञवल्क्य बोले मुसुकाई * तुम्हहिं विदित रघुपतिप्रभुताई

हे नाथ, जिस प्रकार मेरा यह भारी सन्देह मिटे, वैसे ही विस्तार से कथा कहिए। तब श्रीयाज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले कि तुमको श्रीरघुनाथजी का प्रभाव विदित है।

रामभक्त तुम मन क्रम बानी * चतुराई तुम्हारि मैं जानी
चाहहु सुना रामगुण गूढ़ा * कीन्हेउ प्रश्न मनहुँ अतिमूढ़ा

मन, वचन और कर्म से तुम श्रीरामजी के भक्त हो। मैं तुम्हारी चतुरता जानता हूँ। तुम श्रीरामजी के गूढ़ (छिपे हुए) गुण सुनना चाहते हो; इसी से तुमने प्रश्न ऐसे किया, जैसे कोई मूर्ख हो।

तात सुनहु सादर मन लाई * कहौं राम की कथा सुहाई
महामोह महिषेश विशाला * रामकथा कालिका कराला

हे तात, मन लगाकर आदर से सुनो। मैं श्रीरामजी की सुहावनी कथा कहता हूँ। हृदय में सन्देह होना बड़ी देहवाला महिषासुर है। उसको नष्ट करने के लिए श्रीरामकथा ही विकराल कालिकादेवी है।

रामकथा शशिकिरण समाना * सन्तचकोर करहिं तेहि पाना
ऐसहि संशय कीन भवानी * महादेव तब कहा बखानी

श्रीरामजी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है, जिसको चकोर के समान साधु लोग पीते हैं। यही सन्देह पार्वतीजी ने किया था, तब शिवजी ने बखान के साथ कहा था।



कहौं सो मति अनुहारि अब, उमाशम्भु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनि मुनि मिटहिं विषाद॥

जिस समय जिस कारण वह शिवपार्वती का संवाद हुआ, सो अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। हे मुने, इसे सुनने से दुःख मिट जाते हैं।

एक बार त्रेतायुग माहीं * शम्भु गये कुम्भज ऋषि पाहीं
सङ्ग सती जगजननि भवानी * पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी

त्रेतायुग में एक बार शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। साथ में जगन्माता शिव

की मित्रा सतीजी भी थीं। अगस्त्य ऋषि ने जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया।

रामकथा मुनिवर्य बखानी * सुनी महेश परम सुख मानी
ऋषि पूछा हरिभक्ति सुहाई * कही शम्भु अधिकारी पाई

मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी ने श्रीरामजी की कथा कही। उसे बहुत सुख मानकर श्रीशिवजी ने सुना। फिर अगस्त्य ऋषि के पूछने पर श्रीशिवजी ने उन्हें अधिकारी पाकर भगवान् की सुहावनी भक्ति कही।

कहत सुनत रघुपतिगुणगाथा * कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा
मुनिसन बिदा माँगि त्रिपुरारी * चले भवन सँग दक्षकुमारी

कैलास के स्वामी शिवजी रघुनाथजी के गुणानुवाद कहते-सुनते वहाँ कुछ दिन रहे। फिर अगस्त्य मुनि से बिदा माँग दक्षपुत्री को साथ ले त्रिपुरासुर के मारनेवाले शिवजी अपने भवन कैलास को चले।

तेहि अवसर भञ्जन महिभारा * हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा
पितावचन तजि राज उदासी * दण्डकवन विचरत अविनासी

उसी समय पृथ्वी का भार दूर करने के लिए विष्णु ने रघुकुल में अवतार लिया था। जन्ममरण रहित श्रीरामजी पिता का वचन सत्य करने को राज्य छोड़ उदासीन हो दण्डकारण्य में घूमते थे।



हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होय।
गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु, गये जानि सब कोय॥

श्रीशिवजी हृदय में विचारते चले जाते थे कि किस तरह भगवान् के दर्शन हों; क्योंकि प्रभु ने अपने को छिपाकर मनुष्य का अवतार लिया है और मेरे जाने से सब उन्हें जान जायँगे।



शङ्करउर अति छोभ, सती न जानहिं मर्म सो।
तुलसी दर्शन लोभ, मन डर लोचन लालची॥

महादेवजी के हृदय में यह बड़ा सङ्कोच था और सतीजी यह बात नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी कहते हैं, शिवजी के मन में डर था कि मेरे जाने से सब लोग भगवान् के रहस्य को जान लेंगे और नेत्रों को रघुनाथजी के दर्शन की लालसा थी।

रावण मरण मनुजकर याँचा * प्रभु विधिवचन कीन्ह चहसाँचा
जो नहिं जाउँ रहे पछितावा * करत विचार न बनत बनावा

रावण ने मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु माँगी थी। ब्रह्मा के उसी वचन को प्रभु सत्य किया चाहते हैं। यदि न जाऊँगा तो हृदय में पछतावा रहेगा, ऐसा शिवजी सोचते थे। परन्तु कुछ निश्चय न कर सके।

यहि विधि भये शोचवश ईशा * ताही समय जाय दशशीशा

लीन्ह नीच मारीचहि सङ्गा * भयउ तुरत सोइ कपट कुरङ्गा

इस प्रकार शिवजी सोच विचार में पड़ गये। उसी समय रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ लिया, जो शीघ्र ही कपटमृग बन गया (और उसके छल में पड़कर रामजी उसे मारने चले गये)।

करि छल मूढ़ हरी वैदेही * प्रभुप्रभाव जस विदित न तेही
मृगवधि बन्धुसहित प्रभु आये * आश्रम देखि नयन जल छाये

मूर्ख रावण सीताजी को हर ले गया; क्योंकि प्रभु का प्रभाव उसे मालूम न था। मृग को मारकर जब भाई लछमण के साथ प्रभु आये, तब आश्रम में जानकी को न देख नेत्रों में आँसू भर आये।

विरहविकल नर इव रघुराई * खोजत विपिन फिरत दोउ भाई
कबहूँ योग वियोग न जाके * देखा प्रकट विरहदुख ताके

स्त्री के विछोह में व्याकुल मनुष्य के समान दोनों भाई वन में सीताजी को खोजने फिरने लगे। जिन रामजी के कभी माया-कृत संयोग-वियोग नहीं हैं, उनके विछोह का दुःख प्रत्यक्ष देखा।


अतिविचित्र रघुपतिचरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमन्द विमोहवश, हृदयधरहिं कछु आन॥

श्रीरघुनाथजी के चरित्र बहुत विचित्र हैं। उन्हें परम ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। जो मन्दबुद्धि हैं, वे मोह के वश हो अपने हृदय में कुछ और ही सोचते हैं।

शम्भु समय तेहि अवसर देखा * उपजा हिय अतिहर्ष विशेखा
भरिलोचन छविसिन्धु निहारी * कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी

उसी समय महादेवजी ने श्रीरामजी के दर्शन किये। उनके हृदय में बहुत ही अधिक आनन्द उत्पन्न हुआ। उन्होंने शोभा के सागर श्रीरामजी को देखा; परन्तु कुसमय समझकर भेंट नहीं की।

जय सच्चिदानन्द जगपावन * अस कहि चल्यो मनोज नशावन
चले जात शिव सती समेता * पुनि पुनि पुलकित कृपानिकेता

"हे सच्चिदानन्द, हे जगत् को पवित्र करनेवाले, आपकी जय हो"—ऐसा कह कामदेव को भस्म करनेवाले श्रीशिवजी चले। सतीजी के साथ श्रीशिवजी चले जाते थे। बारंबार कृपानिधान शिवजी के आनन्द के कारण रोमांच हो आता था।

सती सुदशा शम्भु की देखी * उर उपजा सन्देह विशेखी
शङ्कर जगतवन्द्य जगदीशा * सुरनर मुनि सब नावहिं शीशा

महादेवजी की यह दशा देख सतीजी के हृदय में यह बड़ा सन्देह हुआ कि शिवजी की सारा संसार वन्दना करता है, यह जगत् के स्वामी हैं, इनको देवता, मनुष्य, मुनि सभी सिर नवाते हैं।

तिन नृपसुतहि कीन्ह परणामा * कहि सच्चिदानन्द परधामा

भये मगन छवि तासु विलोकी * अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी

इन्होंने राजकुमार राम को सच्चिदानन्द और परमधाम (सर्वोपरि तेज या स्थान) कहकर प्रणाम किया और उनकी शोभा देख मग्न हो गये। इनकी प्रसन्नता अभी तक हृदय में रोके नहीं रुकती।



ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, निर्गुण अकल अभेद।
सोकि देह धरि होय नर, जाहि न जानहिं वेद॥

सतीजी विचारने लगीं कि यदि रामजी ब्रह्म हैं, तो जो ब्रह्म सबमें व्याप्त, विरज (तीनों गुणों से रहित), अज (जन्म-मरण से रहित) निर्गुण (२४,गुणों से रहित), अकल (स्वरूपरहित) और अभेद है, जिसको वेद भी नहीं जानते, वह देह धारणकर मनुष्य कैसे हो सकता है।

विष्णु जो सुरहित नरतनुधारी * सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी
खोजहिं सोकि अज्ञ इव नारी * ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी

यदि यह समझा जाय कि विष्णुजी ने ही देवताओं के काम के लिए मनुष्य की देह धारण की है तो वह भी शिवजी की ही तरह सर्वज्ञ हैं। ज्ञान के स्थान, दैत्यों के शत्रु विष्णुजी अज्ञानी की भाँति कैसे स्त्री को ढूँढ़ेंगे।

शम्भुगिरा पुनि मृषा न होई * शिव सर्वज्ञ जान सब कोई
अस संशय मन भयउ अपारा * होय न हृदय प्रबोध प्रचारा

फिर श्रीशिवजी की भी बात झूठ नहीं होती; क्योंकि महादेवजी सर्वज्ञ हैं, यह सब कोई जानता है। सतीजी के मन में ऐसा अपार सन्देह हुआ। किसी प्रकार उनके हृदय में प्रबोध का प्रचार नहीं हो पाता था।

यद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी * हर अन्तरयामी सब जानी
सुनहु सती तव नारिस्वभाऊ * संशय अस न धरिय उरकाऊ

यद्यपि सतीजी ने यह सन्देह प्रकट नहीं कहा; परन्तु श्रीशिवजी तो अन्तर्यामी हैं, वह सब जान गये। उन्होंने कहा—हे सती, सुनो। तुम्हारा स्त्रियों का स्वभाव है। ऐसा सन्देह हृदय में कभी न रखना चाहिए।

जासु कथा कुम्भज ऋषि गाई * भक्ति जासु मैं मुनिहिं सुनाई
सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा * सेवहिं जाहि सदा मुनि धीरा

जिनकी कथा अगस्त्य ऋषि ने कही और मैंने जिनकी भक्ति मुनि को सुनाई, वही श्रीरघुवीरजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनकी धीर मुनि लोग सदा सेवा किया करते हैं।

हरिगीतिका छन्द

मुनिधीर योगी सिद्ध सन्तत विमलमन जेहि ध्यावहीं।

कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवननिकायपति मायाधनी ।
अवतरेउ अपने भक्तहित निजतन्त्र नित रघुकुलमनी ॥

जिन परमात्मा का सदा धीर मुनि, योगी और सिद्ध निर्मल मन से ध्यान करते हैं और वेद, पुराण, धर्मशास्त्र नेति-नेति कहकर जिनके यश को गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापी ब्रह्म, ब्रह्माण्डसमूह के स्वामी ने, जो इस सारी माया के स्वामी और सदा स्वतन्त्र हैं, अपने भक्तों का हित करने को रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजी होकर अवतार लिया है।


लाग न उर उपदेश, यदपि कह्यो शिव बारबहु ।
बोले बिहँसि महेश, हरिमायाबल जानि जिय ॥

यद्यपि शिवजी ने बहुत बार कहा; परन्तु सतीजी के हृदय में उनके उपदेश ने जगह न पाई। तब श्रीशिवजी अपने मन में भगवान् की माया का बल जान, प्रकट में हँसकर बोले—

जो तुम्हरे मन अति सन्देहू * तब किन जाय परीक्षा लेहू
तब लगि बैठ रहौं बट छाहीं * जब लगि तुम ऐहहु मोहिं पाहीं

जो तुम्हारे मन में अधिक सन्देह है तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेती हो ? जब तक तुम मेरे पास लौटकर न आओगी, तब तक मैं यहीं बरगद की छाया में बैठा हूँ।

जैसे जाय मोह भ्रम भारी * करहु सो यतन विवेक विचारी
चलीं सती शिवआयसु पाई * करहिं विचार करौं का भाई

जिस प्रकार तुम्हारा यह मोह और भारी भ्रम दूर हो, वही उपाय बुद्धि से विचारकर करना। शिवजी की यह आज्ञा पाकर सतीजी चलीं और विचार करने लगीं कि क्या करूँ।

यहाँ शम्भु अस मन अनुमाना * दक्षसुता कहँ नहिं कल्याना
मोरेहु कहे न संशय जाहीं * विधि विपरीत भलाई नाहीं

यहाँ शिवजी ने अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्षपुत्री सती का कल्याण नहीं है। यदि मेरे कहने पर भी सन्देह नहीं जाता तो इसमें भलाई नहीं। इन पर विधाता ही वाम है।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा * को करि तर्क बढ़ावहि शाखा
अस कहि जपन लगे हरिनामा * गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा

जो कुछ श्रीरामजी करेंगे वही होगा। इसमें तर्क करके कौन शाखा बढ़ावे। ऐसा कह श्रीशिवजी तो परमेश्वर का नाम जपने लगे और सतीजी जहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु श्रीरामजी थे, वहाँ गईं।



पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पन्थ तेहि, जेहि आवत सुरभूप॥

बारंबार हृदय में विचारकर सतीजी सीताजी का स्वरूप रखकर जिस मार्ग में सुरराज श्रीरामजी आ रहे थे, उसी मार्ग में आगे होकर चलीं।

लछमण दीख उमाकृत वेखा * चकित हृदय भ्रम भयउ विशेखा
कहि न सकत कछु अति गम्भीरा * प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा

लछमणजी सतीजी को जानकीजी का वेष किये देख हृदय में चकित हुए कि सतीजी को भी ऐसा अधिक मोह-भ्रम हुआ। धीरबुद्धि, अति गम्भीर स्वभाव लछमणजी कुछ भी न कह सके; क्योंकि वह प्रभु श्रीरामजी के प्रभाव को जानते थे।

सतीकपट जानेउ सुरस्वामी * समदर्शी सब अन्तरयामी
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना * सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना

सबके अन्तर्यामी और समदर्शी देवतों के स्वामी श्रीरामजी ने सती का छल जान लिया; क्योंकि जिसके स्मरण करने से अज्ञान मिट जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान् श्रीरामजी थे।

सती कीन्ह चह तहउँ दुराऊ * देखहु नारिस्वभाव प्रभाऊ
निजमायाबल हृदय बखानी * बोले विहँसि राम मृदु बानी

उनको भी सतीजी धोखा देना चाहती थीं। देखो, यह स्त्री के स्वभाव का प्रभाव है। "मेरी माया बड़ी प्रबल है," यह अपने हृदय में सोचकर श्रीरामजी हँसे, और फिर मीठी वाणी से बोले।

जोरि पाणि प्रभु कीन्ह प्रणामू * पिता समेत लीन्ह निज नामू
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू * विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू

प्रभु रामजी ने पिता दशरथजी के सहित अपना नाम लेकर, दोनों हाथ जोड़कर सती को पहले प्रणाम किया; फिर कहा, शिवजी कहाँ हैं, तुम अकेली वन में किस कारण घूमती हो?



रामवचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति सङ्कोच।
सती सभीत महेश पहँ, चलीं हृदय बड़ सोच॥

श्रीरामजी के मीठे और गूढ़ वचन सुनकर सतीजी को बहुत सङ्कोच हुआ। वे हृदय में बहुत सोच करती हुई डर के साथ श्रीशिवजी के पास चलीं।

मैं शङ्कर कर कहा न माना * निज अज्ञान राम पहँ आना
जाय उतर अब देहौं काहा * उर उपजा अति दारुण दाहा

मैंने शिवजी का कहा न माना, अज्ञानवश श्रीरामजी के पास उनकी परीक्षा लेने आई। अब मैं जाकर शिवजी को क्या उत्तर दूँगी। यह सोचकर उनके हृदय में दारुण दाह उत्पन्न हुआ।

जाना राम सती दुख पावा * निज प्रभाव कछु प्रकट जनावा
सती दीख कौतुक मग जाता * आगे राम सहित सिय भ्राता

श्रीरामजी ने जाना कि सती को दुःख हुआ है। तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके जताया। मार्ग में जाती हुई सतीजी ने यह खेल देखा कि आगे सीता और भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामजी हैं।

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा * सहित बन्धु सिय सुन्दर बेखा
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना * सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना

फिर पीछे देखा तो भाई लक्ष्मण और सीता सहित सुन्दर वेषवाले श्रीप्रभुजी देख पड़े। जहाँ देखती हैं, वहीं श्रीरामजी बैठे हैं और बड़े प्रवीण सिद्ध मुनिराज उनकी सेवा करते हैं।

देखे शिव विधि विष्णु अनेका * अमित प्रभाव एक ते एका
वन्दत चरण करत प्रभु सेवा * विविध वेष देखे सब देवा

एक से एक बढ़कर प्रभाववाले बहुत-से शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे। और भी सब देवताओं को भाँति-भाँति के वेष में श्रीरामजी के चरणों की वन्दना और सेवा करते उन्होंने देखा।



सती विधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादिसुर, तेहितेहि तनु अनुरूप॥

और जिस-जिस वेष के ब्रह्मादिक देवता देखे, उसी उसी वेष के अनुरूप उनकी शक्तियाँ अगणित सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी भी उन्होंने देखीं।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते * शक्तिनसहित सकल सुर तेते
जीव चराचर जे संसारा * देखे सकल अनेक प्रकारा

सती ने जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी के जितने स्वरूप देखे, उनकी सेवा करते हुए अपनी-अपनी शक्तियों सहित ब्रह्मादिक देवता भी उतने ही देखे। संसार के जड़-चेतन जीवधारी भी भाँति-भाँति के देखे।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेखा * रामस्वरूप न दूसर देखा
अवलोके रघुपति बहुतेरे * सीतासहित न रूप घनेरे

न्यारे-न्यारे वेषवाले बहुत-से देवतों को श्रीरामजी की पूजा करते देखा। परन्तु श्रीरामजी का स्वरूप दूसरा नहीं देखा; सीतासहित श्रीरामजी दिखलाई तो बहुत-से दिये, परन्तु उनके वेष में कोई अन्तर न था।

सोइ रघुबर सोइ लक्ष्मण सीता * देखि सती अति भई सभीता
हृदय कम्प तनु सुधि कछु नाहीं * नयन मूँदि बैठीं मग माहीं

सब जगह वही लक्ष्मण, वही सीता और वही श्रीरामजी हैं—यह देख सतीजी बहुत

डर गईं। उनका हृदय काँपने लगा। देह की कुछ भी सुध न रही। वे आँखें बन्द करके मार्ग में बैठ गईं।

बहुरि विलोकेउ नयन उघारी * कछु न दीख तहँ दक्षकुमारी
पुनि पुनि नाय रामपद शीशा * चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीशा

दक्षपुत्री सतीजी ने फिर आँख खोलकर वहाँ देखा तो कुछ भी न दिखलाई पड़ा। तब बारंबार श्रीरामजी के चरणों को प्रणाम करके जहाँ शिवजी थे, वहाँ चलीं।


गईं समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात।
लीन्ह परीक्षा कौनविधि, कहहु सत्य सब बात॥

जब शिवजी के पास पहुँचीं, तब उन्होंने हँसकर कुशल पूछी और कहा—तुमने किस प्रकार परीक्षा ली, सब बात सच-सच कहो।

सती समुझि रघुवीर प्रभाऊ * भयवश शिवसन कीन्ह दुराऊ
कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाईं * कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं

सतीजी ने श्रीरघुवीरजी का प्रभाव समझकर भी मारे डर के शिवजी से सच्ची बात छिपाई। वे बोलीं—हे स्वामी, कुछ भी परीक्षा नहीं ली, केवल तुम्हारी ही भाँति प्रणाम किया।

जो तुम कहा सो मृषा न होई * मोरे मन प्रतीति अस सोई
तब शङ्कर देखेउ धरि ध्याना * सती जो कीन्ह चरित सब जाना

जो तुम कहते हो वह झूठ नहीं, मेरे मन में पूरा विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान धरके देखा और जो चरित्र सतीजी ने किया था, सब जान गये।

बहुरि राममायहि शिरनावा * प्रेरि सती जेहि झूठ कहावा
हरिइच्छा भावी बलवाना * हृदय विचारत शम्भु सुजाना

तब शिवजी ने श्रीरामजी की माया को शिर नवाया, जिसने सती से ऐसी प्रेरणा करके झूठ कहलाया। भगवान् की इच्छारूप भावी बलवान् है, ऐसा समझकर महाज्ञानी श्रीशिवजी अपने हृदय में विचारने लगे—

सती कीन्ह सीता कर वेषा * शिव उर भयो विषाद विशेषा
जो अब करौं सतीसन प्रीती * मिटै भक्तिपथ होय अनीती

सती ने सीताजी का वेष बनाया है (यह जानकर शिवजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ), यदि अब मैं सती से स्त्री का स्नेह करता हूँ तो भक्ति का मार्ग मिट जायगा और अन्याय होगा।


परमप्रेम नहिं जाय तजि, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रकट न कहत महेश कछु, हृदय अधिक सन्ताप॥

सती में बहुत स्नेह है, इससे छोड़ी नहीं जातीं और स्नेह करने से बड़ा पातक है। इस प्रकार श्रीशिवजी के हृदय में सन्ताप तो बड़ा हुआ, परन्तु प्रकट रूप से उन्होंने सतीजी से कुछ कहा नहीं।

तबहिं शम्भु प्रभुपद शिरनावा * सुमिरत राम हृदय अस आवा
यहि तनु सती भेंट अब नाहीं * शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं

तब श्रीशिवजी ने प्रभु श्रीरामजी के चरणों को प्रणाम किया। श्रीरामजी को स्मरण करते ही उनके हृदय में यह विचार आया कि इस देह में सती से भेंट नहीं हो सकती। अर्थात् पत्नी के रूप में उन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। शिवजी ने यह सङ्कल्प अपने मन में किया।

अस विचारि शङ्कर मतिधीरा * चले भवन सुमिरत रघुवीरा
चलत गगन भइ गिरा सुहाई * जय महेश भलि भक्ति दृढ़ाई

धीरबुद्धि शिवजी ऐसा विचार श्रीरघुवीरजी का स्मरण करते हुए घर को चले। चलते ही सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे महेश, तुम्हारी जय हो! आपने अच्छी भक्ति दृढ़ की।

अस प्रण तुम बिन करै को आना * रामभक्त समरथ भगवाना
सुनि नभगिरा सती उर शोचू * पूछा शिवहिं समेत सँकोचू

ऐसा प्रण तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है? आप श्रीरामजी के भक्त और समर्थ भगवान् हैं। यह आकाशवाणी सुन सतीजी के हृदय में शोच हुआ और वे सङ्कोचसहित शिवजी से पूछने लगीं।

कीन्ह कौन प्रण कहहु कृपाला * सत्यधाम प्रभु दीनदयाला
यदपि सती पूछा बहुभाँती * तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती

हे प्रभो, हे कृपालो, कहिए; आपने कौन प्रण किया? आप सत् चित् स्वरूप हैं, और दीनजनों पर दया करते हैं। यद्यपि सतीजी ने बहुत प्रकार से पूछा, परन्तु त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी ने अपना प्रण नहीं बतलाया।


सती हृदय अनुमान किय, सब जाना सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं शम्भुसन, नारि सहज जड़ अज्ञ॥

तब सतीजी ने हृदय में यह अनुमान किया कि शिवजी सर्वज्ञ हैं, मेरा सब चरित्र जान गये। जड़ (अच्छा बुरा न समझना) और अज्ञान होना स्त्रियों का स्वभाव है। मैंने शिवजी से भी छल किया।


जल पयसरिस बिकाय, देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होय रस जाय, कपट खटाई परत ही॥

देखो, स्नेह की कैसी अच्छी रीति है कि जल दूध के मेल से उसी के समान मूल्य में बिकता

है; परन्तु जब कपटरूपी खटाई पड़ जाती है तो दूध फट जाता है, जल अलग हो जाता है।

हृदयशोच समुझत निजकरणी * चिन्ता अमित जाय नहिं बरणी
कृपासिन्धु शिव परम अगाधा * प्रकट न कह्यो मोर अपराधा

अपनी करनी समझने पर सतीजी के हृदय में शोच हुआ और ऐसी अधिक चिन्ता हुई कि कही नहीं जाती। वह सोचने लगीं कि देखो श्रीशिवजी कैसे महा गम्भीर और कृपा के सागर हैं कि मेरे अपराध को खोलकर नहीं कहा।

शङ्कररुख अवलोकि भवानी * प्रभु मोहिं तज्यो हृदय अकुलानी
निजअघसमुझिनकछुकहि जाई * तपै अवाँ इव उर अधिकाई

महादेवजी का रुख देख यह समझकर कि प्रभु ने मुझे छोड़ दिया, वह हृदय में व्याकुल हुई। अपना अपराध समझकर कुछ कहा नहीं जाता, हृदय आवाँ के समान तप रहा है।

सतिहि सशोच जानि वृषकेतू * कही कथा सुन्दर सुखहेतू
वरणत पन्थ विविध इतिहासा * विश्वनाथ पहुँचे कैलासा

श्रीशिवजी ने सती को व्याकुल जान उनके सुख के लिए सुन्दर कथा वर्णन की। मार्ग में अनेक प्रकार की कथाएँ कहते हुए शिवजी कैलाश पहुँचे।

तहँपुनिसमुझिशम्भुप्रण आपन * बैठे बटतर करि कमलासन
शङ्कर सहज स्वरूप सँभारा * लागि समाधि अखण्ड अपारा

वहाँ श्रीशिवजी अपना प्रण स्मरण कर वटवृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। शिवजी ने अपना स्वाभाविक स्वरूप सँभालकर कभी न छूटनेवाली समाधि लगा दी।



सती बसहिं कैलास तब, अधिक शोच मन माहिं।
मर्म न कोऊ जान कछु, युगसम दिवस सिराहिं॥

और सतीजी मन में अधिक शोकयुक्त हो कैलास में रहने लगीं। इस रहस्य को किसी ने कुछ भी नहीं जाना। दिन युग के समान बीतने लगे।

नितनव शोच सती उर भारा * कब जैहौं दुखसागर पारा
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना * सुनि पतिवचन मृषा करि जाना

सतीजी के हृदय में नित्य नया शोच होता था कि कब इस दुःखरूप समुद्र के पार जाऊँगी। मैंने जो श्रीरघुनाथजी का अपमान किया था कि अपने स्वामी के वचन सुनकर भी उन्हें झूठा जाना—

सो फल मोहिं विधाता दीन्हा * जो कछु उचित रहा सो कीन्हा
अब विधि अस न बूझिए तोहीं * शङ्करविमुख जियावसि मोहीं

उसका फल विधाता ने मुझे दिया—जो कुछ उचित था, वही किया। परन्तु हे विधाता, अब तुमको ऐसा न चाहिए कि शिवजी के विमुख मुझे जिलाओ।

कहि न जाय कछु हृदय गलानी * मनमहँ रामहिं सुमिरि सयानी।
जो प्रभु दीनदयालु कहावा * आरतिहरण वेद यश गावा।

सतीजी के हृदय की ग्लानि कुछ भी नहीं कही जाती। वह मन में श्रीरामजी को स्मरण कर बोलीं कि यदि श्रीरामजी दीनदयालु कहलाते हैं और दुःख के हरनेवाले कहकर वेद उनका यश गाते हैं—

तौ मैं विनय करौं कर जोरी * छूटै वेगि देह यह मोरी
जो मोरे शिवचरण सनेहू * मन क्रम वचन सत्यव्रत येहू

तो मैं हाथ जोड़ विनती करती हूँ कि यह मेरी देह शीघ्र छूट जाय। यदि मेरे मन में श्रीशिवजी के चरणों का स्नेह है और मन, वचन, कर्म से शिवजी में स्नेह करना ही सच्चा नियम है—

तौ समदर्शी सुनहु प्रभु, करिय सो वेगि उपाय।
होय मरण जेहि विनहिं श्रम, दुस्सह विपति विहाय॥

तो हे प्रभो! सुनिए, आप समदर्शी हैं। वह उपाय शीघ्र कीजिए, जिससे विना परिश्रम मृत्यु हो जाय और यह बड़ी दुस्सह विपत्ति दूर हो।

यहि विधि दुखित प्रजेशकुमारी * अकथनीय दारुण दुख भारी
बीते संवत सहस सतासी * तजी समाधि शम्भु अविनाशी

इस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्री सतीजी दुःखित हुई कि उनका बहुत कठोर दुःख कहा नहीं जाता। ऐसे ही सतासी हजार वर्ष बीत गये। तब अविनाशी श्रीशिवजी ने समाधि छोड़ी।

रामनाम शिव सुमिरन लागे * जाना सती जगतपति जागे
जाय शम्भुपद वन्दन कीन्हा * सम्मुख शङ्कर आसन दीन्हा

श्रीशिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे। तब सतीजी ने जाना कि संसार के स्वामी श्रीशिवजी समाधि से जागे। जाकर श्रीशिवजी के चरणों की वन्दना की और शिवजी ने सामने बैठने को आसन दिया।

लगे कहन हरिकथा रसाला * दक्ष प्रजेश भये तेहि काला
देखा विधि विचारि सब लायक * दक्षहि कीन्ह प्रजापतिनायक

वह भगवान की भक्तिरस से भरी कथा कहने लगे। उसी समय सतीजी के पिता दक्षजी प्रजाओं के स्वामी हुए। ब्रह्मा ने विचारकर सब प्रकार से योग्य देख दक्ष को प्रजापतियों का स्वामी बनाया।

बड़ अधिकार दक्ष जब पावा * अति अभिमान हृदय तब आवा
नहिं अस कोउ जन्मेउ जगमाहीं * प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं

जब दक्ष को बहुत अधिकार मिला, तब उनके हृदय में बहुत अहङ्कार आया। संसार में ऐसा कोई नहीं जनमा, जिसको प्रभुता पाकर अभिमान न हुआ हो।


दक्ष लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ याग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावहिं मखभाग॥

दक्षजी सब मुनियों को बुलाकर बड़ा भारी यज्ञ करने लगे। जो यज्ञ में भाग पाते थे उन सब देवतों को आदरसहित न्योता दिया।

किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्वा * बधुन समेत चले सुर सर्वा
विष्णु विरञ्चि महेश बिहाई * चले सकल सुर यान बनाई

किन्नर, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व और देवता—सब अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित चले। विष्णु, ब्रह्मा और शिव को छोड़ सब देवता विमान साज-साजकर चले।

सती बिलोकेउ व्योम बिमाना * जात चले सुन्दर विधि नाना
सुरसुन्दरी करहिं कल गाना * सुनत श्रवण छूटहिं मुनिध्याना

सतीजी ने देखा कि आकाश में बहुत प्रकार के सुन्दर विमान चले जाते हैं, जिनमें अप्सराएँ मनोहर गान करती हैं, जिसे कानों से सुन मुनियों के ध्यान छूट जाते हैं।

पूछेउ तब शिव कहा बखानी * पिता यज्ञ सुनि कछु हरषानी
जो महेश मोहिं आयसु देहीं * कछु दिन जाय रहौं मिसु येहीं

सतीजी ने पूछा, तब शिवजी ने वर्णन किया। पिता के यहाँ यज्ञ होना सुनकर सतीजी कुछ प्रसन्न हुई। सोचने लगीं कि यदि शिवजी मुझे आज्ञा दें तो इसी बहाने कुछ दिन जाकर वहाँ रहूँ।

पतिपरित्याग हृदय दुख भारी * कहैं न निज अपराध विचारी
बोलीं सती मनोहर बानी * भय सङ्कोच प्रेमरससानी

पति के त्याग देने का दुःख हृदय में बहुत था, परन्तु अपना ही अपराध विचारकर कुछ नहीं कहती थीं। अन्त में सतीजी डरके साथ सङ्कोच कर स्नेह के रस से सनी हुई मनोहर वाणी बोलीं।


पिताभवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होय।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोय॥

हे कृपानिधि, पिताजी के यहाँ बड़ा उत्सव है; यदि प्रभु की आज्ञा हो तो मैं उसे देखने जाऊँ।

कहेउ नीक मोरे मन भावा * यह अनुचित नहिं नेवत पठावा
दक्ष सकल निज सुता बुलाई * हमरे बैर तुमहिं बिसराई

शिवजी ने कहा, यह तुमने अच्छा कहा। मुझे भी अच्छा लगा। परन्तु तुम्हारे पिता ने निमन्त्रण नहीं भेजा, यह उचित नहीं। दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है, परन्तु हमारे वैर से तुमको भुला दिया।

ब्रह्मसभा हम सन दुख माना * तेहि ते अजहुँ करत अपमाना

जो बिन बोले जाहु भवानी * रहै न शील सनेह न कानी

उन्होंने ब्रह्माजी की सभा में मुझसे द्वेष माना था, उसी से आज तक मेरा अपमान करते हैं। तुम भवानी (शिव की स्त्री) होकर यदि बिना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और आदर नहीं रहेगा।

यद्यपि मित्र पितु प्रभु गुरु गेहा * जाइय बिन बोले न सँदेहा
तदपि विरोध मान जहँ कोई * तहाँ गये कल्याण न होई

यद्यपि मित्र, पिता, स्वामी और गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं, तो भी जहाँ पर कोई वैर माने, वहाँ जाने से कल्याण नहीं होता।

भाँति अनेक शम्भु समुझावा * भावीवश न ज्ञान उर आवा
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बुलाये * नहिं भलि बात हमारे भाये

शिवजी ने बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु भावी के वश सती के हृदय में ज्ञान न आया तब प्रभु शिवजी ने कहा कि बिना बुलाये जाओगी तो मेरे विचार से अच्छी बात न होगी।



कहि देखा हर यत्न बहु, रहै न दक्षकुमारि।
दिये मुख्यगण सङ्ग तब, बिदा किये त्रिपुरारि॥

जब शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देख लिया कि अब दक्षपुत्री सती बिना गये नहीं रहेंगी, तब त्रिपुरासुर के मारनेवाले शिवजी ने अपने मुख्य गण साथ में देकर उनको बिदा किया।

पिताभवन जब गईं भवानी * दक्षत्रास काहु न सनमानी
सादर भलेहि मिली इक माता * भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता

जब भवानी पिता के घर गईं, तब वहाँ दक्ष के डर से किसी ने उनका आदर न किया। एक माता तो भले आदर से मिलीं, पर सब बहनें (व्यंग से) बहुत मुस्कराती हुई मिलीं।

दक्ष न कछु पूछी कुशलाता * सतिहि बिलोकि जरे सब गाता
सती जाय देख्यो तब यागा * कतहुँ न दीख शम्भु कर भागा

दक्ष ने क्षेम-कुशल आदि कुछ भी न पूछा, वरन् सती को देख उसके सब अंग जैसे जल उठे। सती ने तब जाकर यज्ञ का देखा, वहाँ कहीं शिवजी का भाग न देख पड़ा।

तब चित चढ़ेउ जो शङ्कर कहेऊ * प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ
पाछिलदुख अस हृदय न व्यापा * जस यह भयो महापरितापा

तब शिवजी ने जो कहा था वह याद आया और स्वामी का अपमान समझ हृदय जलने लगा। पिछला (शिव के त्यागने का) दुःख ऐसा हृदय में नहीं समाया था, जैसा कि यह भारी पश्चात्ताप हुआ।

यद्यपि जग दारुण दुख नाना * सबते कठिन जाति अपमाना

समुझिसोसतिहिभयो अतिक्रोधा * बहुविधि जननी कीन्ह प्रबोधा

यद्यपि संसार में नाना प्रकार के कठोर दुःख हैं, परन्तु जाति में अपमान होना सबसे कठिन है। यह समझ सतीजी को बड़ा क्रोध हुआ, यद्यपि माता ने बहुत प्रकार समझाया।



शिव अपमान न जाय सहि, हृदय न होय प्रबोध।
सकलसभहिं हठि हटकि तब, बोलीं वचन सक्रोध॥

परन्तु शिवजी का अपमान सहा नहीं गया। इससे हृदय में माता के समझाने का कुछ प्रभाव न हुआ। सब सभा को हठ से झिड़ककर वह क्रोधभरे वचन बोलीं—

सुनहु सभासद सकल मुनिन्दा * कही सुनी जिन शङ्करनिन्दा
सो फल तुरत लहब सब काहू * भली भाँति पछिताब पिताहू

हे सभासदो! हे श्रेष्ठ मुनियो! सुनो, जिन्होंने शिवजी की निन्दा कही या सुनी है, वे सब उसका फल शीघ्र ही पावेंगे और पिताजी भी अच्छी तरह पछतायँगे।

सन्त शम्भु श्रीपति अपवादा * सुनिय जहाँ तहँ अस मर्यादा
काटिय जीभ जो बूत बसाई * श्रवण मूँदि नतु चलिय पराई

साधु, शिव और विष्णु का अपमान जहाँ सुन पड़े, वहाँ की यह मर्यादा है कि अपना वस चले तो निन्दा करनेवाले की जीभ काट ले, नहीं तो कानों में उँगली देकर वहाँ से हट जाय।

जगदातमा महेश पुरारी * जगतजनक सबके हितकारी
पिता मन्दमति निन्दत तेही * दक्षशुक्रसम्भव यह देही

त्रिपुरासुर के मारनेवाले श्रीशिवजी जगत् के आत्मा और सारे संसार के पिता हैं, इससे सबके हितैषी हैं। मेरा पिता मंदमति है, इससे उनकी निन्दा करता है। दक्ष के वीर्य से मेरी यह देह उत्पन्न है—

तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू * उरधरि चन्द्रमौलि वृषकेतू
अस कहि योगअग्नि तनु जारा * भयो सकल मख हाहाकारा

इससे नन्दीश्वर पर चढ़नेवाले और मस्तक में चन्द्रमा को धारण करनेवाले श्रीशिवजी का हृदय में ध्यान कर इसे अभी छोड़ दूँगी। ऐसा कह योगाभ्यास से अग्नि उत्पन्न कर सती ने देह भस्म कर दी। तब सारे यज्ञमण्डप में हाहाकार मच गया।



सतीमरण सुनि शम्भुगण, लगे करन मखखीश।
यज्ञविध्वंस विलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीश॥

सतीजी का मरना सुन श्रीशिवजी के गण यज्ञ का नाश करने लगे। तब यज्ञ का विध्वंस देख मुनियों में श्रेष्ठ भृगुजी ने यज्ञ की रक्षा की।

समाचार जब शङ्कर पाये * वीरभद्र करि कोप पठाये
यज्ञविध्वंस जाय तिन्ह कीन्हा * सकलसुरनविधिवतफल दीन्हा

जब यह समाचार श्रीशिवजी ने सुना तो क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने जाकर यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और सब देवताओं को उचित फल दिया।

भइ जग विदित दक्षगति सोई * जस कछु शम्भुविमुख की होई
यह इतिहास सकल जग जाना * तांते मैं संक्षेप बखाना

दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही कुगति हुई, जैसी कि शिव के विमुख की होती है। सारा संसार इस कथा को जानता है, इससे मैंने इसका संक्षेप से वर्णन किया है।

सती मरत हरिसन वर माँगा * जन्मजन्म शिवपद अनुरागा
तेहि कारण हिमगिरिगृह जाई * जन्मी पारवती तनु पाई

सतीजी ने मरने के समय भगवान् से यह वरदान माँगा था कि जन्म-जन्म में मेरा स्नेह शिवजी के चरणों में हो। इसी कारण वह हिमवान् पर्वत के घर में जा पार्वती के नाम से उत्पन्न हुई।

जब ते उमा शैलगृह जाई * सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई
जहँ तहँ मुनिनसुआसन कीन्हा * उचित वास हिमभूधर दीन्हा

जबसे श्रीपार्वतीजी हिमवान् के यहाँ उत्पन्न हुईं, तबसे वहाँ सब सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गईं। जहाँ तहाँ मुनियों ने अपने सुन्दर आसन लगा दिये और हिमवान् ने उन्हें उचित स्थान दिए।



सदा सुमनफलसहितसब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटीं सुन्दर शैल पर, मणिआकर बहु भाँति॥

अनेक प्रकार के नये-नये सब वृक्ष फूलों, फलों से भरे-पुरे हो गये और बहुत प्रकार की मणियों की सुन्दर खानें पर्वत पर प्रकट हुईं।

सरिता सब पुनीत जल बहईं * खग मृग मधुप सुखी सब रहईं
सहज वैर सब जीवन त्यागा * गिरि पर सकल करहिं अनुरागा

सब नदियों में पवित्र जल बहने लगा तथा पक्षी, हरिण और भौंरे आदि सब प्रसन्न रहने लगे। सब जीव-जन्तुओं ने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया और हिमवान् पर्वत से सब स्नेह करने लगे।

सोह शैल गिरिजा गृह आये * जिमि नर रामभक्ति के पाये
नित नूतन मङ्गल गृह तासू * ब्रह्मादिक गावहिं गुण जासू

श्रीपार्वतीजी के आने से हिमवान् पर्वत ऐसा शोभित हुआ, जैसे श्रीरामभक्ति के पाने से मनुष्य। उसके मन्दिर में नित्य नया आनन्द-मङ्गल होता था, उसका गुण ब्रह्मादिक गाते हैं।

नारद समाचार सब पाये * कौतुक हिमगिरि शैल सिधाये

शैलराज बड़ आदर कीन्हा * चरण पखारि वरासन दीन्हा

नारदजी ने सब समाचार पाया और कौतुक से हिमवान् पर्वत के घर गये। पर्वतराज हिमवान् ने उनका बहुत आदर किया—चरण धोकर उत्तम आसन दिया।

नारि सहित मुनिपद शिरनावा * चरणसलिलसब भवन सिंचावा
निज सौभाग्य बहुत गिरिवरणा * सुता बोलि मेली मुनिचरणा

अपनी स्त्री मेनका सहित हिमवान् ने मुनि के चरणों में शिर नवाकर उनका चरणामृत अपने घर में छिड़काया। मुनि के आने से अपना बड़ा भाग्य कहकर हिमवान् ने पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों में प्रणाम कराया।



त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोषगुण, मुनिवर हृदय विचारि॥

हे मुनिवर, आप जो हो चुका है, जो हो रहा है और जो होनेवाला है, सो सब जानते हैं; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं—सब कुछ जानते हैं। आप सब जगह जा सकते हैं। इससे अपने हृदय में विचारकर इस पुत्री के दोष-गुण कहिए।

कहमुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी * सुता तुम्हारि सकलगुणखानी
सुन्दरि सहज सुशील सयानी * नाम उमा अम्बिका भवानी

तब नारदजी हँसकर गूढ़ अभिप्रायवाले और कोमल वचन यों कहने लगे कि तुम्हारी पुत्री सब गुणों की खान है। यह सहज सुन्दर, सुशील और चतुर है—उमा, अम्बिका और भवानी आदि इसके नाम हैं।

सब लक्षण सम्पन्न कुमारी * होइहि सन्तत पियहि पियारी
सदाअचल यहिकर अहिवाता * यहिते यश पैहहिं पितुमाता

यह पुत्री सब लक्षणों से भरी-पुरी है। यह अपने स्वामी को सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग अचल रहेगा और माता-पिता भी इससे यश पावेंगे।

होइहि पूज्य सकल जग माहीं * यहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं
यहिकर नाम सुमिरि संसारा * तियचढ़िहहिंपतिव्रतअसिधारा

यह सारे संसार में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में स्त्रियाँ इसका नाम स्मरणकर तलवार की धार के समान कठिन पातिव्रत धर्म पर चलेंगी।

शैल सुलक्षणि सुता तुम्हारी * सुनहुजे अब अवगुण दुइचारी
अगुण अमान मातुपितुहीना * उदासीन सब संशयछीना

हे हिमवान्, तुम्हारी पुत्री में सब सुलक्षण हैं। अब जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें

सुनिए। गुणों से रहित, देहाभिमान से रहित, माता-पिता से रहित, रागद्वेष से परे और माया के सब विकाररूपी संशयों से रहित,



योगी जटिल अकाम मन, नग्न अमङ्गल वेख।
अस स्वामी यहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख॥

योगी, जटाधारी, इच्छा से रहित, नग्न और देखने में अशुभ वेष धारण करनेवाला पति इसको मिलेगा; क्योंकि इसके हाथ में ऐसी रेखा ही पड़ी है।

सुनि मुनिगिरा सत्य जिय जानी * दुख दम्पतिहि उमा हरषानी
नारदहू यह भेद न जाना * दशा एक समुझत बिलगाना

मुनि की वाणी सुनकर और उसे सत्य जान (परन्तु उसका गूढ़ अभिप्राय न समझ) हिमवान् और मैना को तो दुःख हुआ, पर पार्वतीजी प्रसन्न हुईं। दशा एक ही थी, पर समझ में भेद था। पार्वती इस वर्णन से अगुण आदि त्रिगुणातीत शिव को समझीं, और उनके माता-पिता गुणहीन आदि किसी साधारण मनुष्य को समझे। तो भी दुःख और सुख के आँसू आदि की देहदशा दोनों ओर एक सी थी। इसलिए दुखी और प्रसन्न होने का भेद नारद ने भी नहीं जान पाया।

सकल सखी गिरिजा गिरिमयना * पुलक शरीर भरे जल नयना
होय न मृषा देवऋषि भाखा * उमा सो वचन हृदय धरि राखा

सब सखियों, पार्वती, हिमवान् और मैना के नेत्रों में जल भरा है और देह में पुलकावली छाई है। 'देवर्षि नारद का कहा झूठा नहीं होता' पार्वतीजी ने ये वचन अपने हृदय में रख लिये।

उपज्यो शिवपदकमल सनेहू * मिलन कठिन मन यह सन्देहू
जानि कुअवसर प्रीति दुराई * सखी उछङ्ग बैठि पुनि जाई

उनके मन में शिवजी के चरणारविन्दों में स्नेह उत्पन्न हुआ। परन्तु उनके मिलने में पहले जो कठिनाई है, उसका मन में सन्देह है कि उससे कैसे पार होऊँगी परन्तु अभी उस क्लेश के साधन का समय नहीं है, यह जान शिवजी के स्नेह को हृदय में छिपाकर पार्वतीजी सखी की गोद में जा बैठीं।

झूठि न होय देवऋषि बानी * सोचहिं दम्पति सखी सयानी
उर धरि धीर कहै गिरिराऊ * कहहु नाथ का करिय उपाऊ

हिमवान् और मैना तथा उनकी चतुर सखियाँ सोचने लगीं कि देवर्षि नारद की बात झूठी नहीं होगी। फिर हृदय में धीरज धर हिमवान् बोले, हे नाथ! क्या उपाय करूँ, कहिए।



कह मुनीश हिमवन्त सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥

मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने कहा कि हे हिमवन्त, सुनो, विधाता ने जो कुछ मस्तक में लिख दिया है, उसका मेटनेवाला देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प और मुनि आदि कोई नहीं है।

तदपि एक मैं कहौं उपाई * होय करै जो दैव सहाई
जस वर मैं वरणेउँ तुम पाहीं * मिलिहिउमहिंकछु संशय नाहीं

तो भी मैं एक उपाय कहता हूँ, यदि दैव सहाय करेगा तो हो जायगा। जैसा वर मैंने तुमसे वर्णन किया, पार्वती को वैसा ही मिलेगा; इसमें कोई सन्देह नहीं।

जे जे वर के दोष बखाने * ते सब शिवपहँ मैं अनुमाने
जो विवाह शङ्कर सन होई * दोषौ गुणसम कह सब कोई

जो-जो वर के दोष कहे हैं, वे सब मैंने शिवजी में अनुमान किये हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो तो दोष भी गुण के समान सब कहेंगे।

जो अहिसेज शयन हरि करहीं * बुध कछु तिनकहँ दोष न धरहीं
भानु कृशानु सर्वरस खाहीं * तिनकहँ मन्द कहत कोउ नाहीं

विष्णुजी शेषनाग पर सोते हैं, पर पण्डित लोग उसमें कुछ भी दोष नहीं मानते तथा सूर्य और अग्नि अच्छा-बुरा सभी रस खींचते हैं, परन्तु उनको कोई नीच नहीं कहता।

शुभअरुअशुभसलिलसबबहई * सुरसरि कोउ न अपावन कहई
समरथ कहँ नहिं दोष गुसाईं * रवि पावक सुरसरि की नाईं

गङ्गा में अच्छा-बुरा सब जल बहता है, परन्तु गंगा को कोई अपवित्र नहीं कहता। इससे सूर्य, अग्नि और गंगा की भाँति समर्थ को दोष नहीं होता।


जो अस हिसका करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं कल्प भरि नरक महँ, जीव कि ईश समान॥

यदि जड़बुद्धि मनुष्याभिमानी जीव इनकी बराबरी करे, तो कल्प भर तक नरक में पड़े; क्योंकि जीव ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकते।

सुरसरि जल कृत वारुणि जाना * कबहुँ न सन्त करहिं तेहि पाना
सुरसरि मिले सो पावन कैसे * ईश अनीशहि अन्तर तैसे

यदि गङ्गाजल में मदिरा मिला दी जाय तो साधु पुरुष उसे कभी न पियें। परन्तु मदिरा गङ्गाजी में मिलने से पवित्र हो जाती है। ऐसे ही ईश्वर और जीव में अन्तर है।

शम्भु सहज समरथ भगवाना * यहि विवाह सबविधि कल्याना
दुराराध्य पै अहहिं महेशू * आशुतोष पुनि किये कलेशू

भगवान् श्रीशिवजी सहज ही समर्थ हैं इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है। परन्तु महादेवजी की आराधना बहुत कठिन है और क्लेश उठाने से वह शीघ्र ही प्रसन्न भी होते हैं।

जो तप करै कुमारि तुम्हारी * भाविउ मेटि सकैं त्रिपुरारी
यद्यपि वर अनेक जग माहीं * यहिकहँ शिवतजि दूसर नाहीं

यदि तुम्हारी पुत्री तपस्या करे तो त्रिपुरारि शिवजी बुरी होनी भी मेट सकते हैं। यद्यपि संसार में वर बहुत हैं, परन्तु इसके लिए शिवजी को छोड़ दूसरा नहीं है।

वरदायक प्रणतारतिभञ्जन * कृपासिन्धु सेवकमनरञ्जन
इच्छित फल बिन शिव आराधे * लहै न कोटि योग जप साधे

श्रीशिवजी आर्तजनों के क्लेश को नाश करने और इच्छानुसार वरदान देते हैं। वह कृपा के सागर हैं और दास के मन का उत्साह बढ़ाते हैं। बिना शिवजी की सेवा किये करोड़ों योग जप से भी यथेष्ट फल नहीं मिल सकता।



असकहिनारदसुमिरिहरि, गिरिजहिंदीन्ह अशीश।
होइहि यहि कल्याण अब, संशय तजहु गिरीश॥

ऐसा कह नारदजी ने भगवान् का स्मरण किया और पार्वती को आशीर्वाद देकर कहा—हे हिमवान्, इसका कल्याण होगा, अब सोच और संशय छोड़िए।

अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गयऊ * आगिल चरित सुनहु जस भयऊ
पतिहि इकान्त पाय कह मैना * नाथ न मैं समुझिउँ मुनिबैना

याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं कि ऐसा कह नारदमुनि ब्रह्मलोक को चले गये। आगे जो चरित्र हुआ, उसे सुनो। मैना ने एकान्त में अपने पति को पाकर कहा—हे नाथ, मैं नारद मुनि का कहना नहीं समझी।

जो घर वर कुल होय अनूपा * करिय विवाह सुताअनुरूपा
नतु कन्या वरु रहै कुमारी * कन्त उमा मम प्राणपियारी

यदि कन्या के समान ही घर, वर और कुल उत्तम हों तो विवाह करना, नहीं तो न करना, चाहे कन्या कुमारी ही रहे। हे स्वामी, उमा मुझको प्राणों के समान प्यारी है।

जो न मिलहि वर गिरिजहि योगू * गिरिजड़सहजकहहिंअसलोगू
सोइ विचारि पति करहु विवाहू * जेहि न बहोरि होय उरदाहू

यदि पार्वती को योग्य वर न मिलेगा तो लोग कहेंगे कि हिमवान् जड़ स्वभाववाला पत्थर ही तो है। हे नाथ, यह विचारकर ऐसा विवाह कीजिए, जिससे फिर हृदय में दाह न हो।

अस कहि परी चरण धरि शीशा * बोले सहित सनेह गिरीशा

बरु पावक प्रकटै शशि माहीं * नारदवचन अन्यथा नाहीं

ऐसा कह मैना हिमवान् के चरणों में अपना सिर रख गिर पड़ी। तब हिमवान् स्नेह के साथ बोले—चन्द्रमा से अग्नि भले ही उत्पन्न हो जाय, परन्तु नारदजी के वचन झूठे नहीं हो सकते।


प्रिया शोच परिहरहु अब, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारवती जिन निरमयउ, सोइ करिहैं कल्यान॥

प्रिये, अब सोच छोड़ ईश्वर का स्मरण करो। जिन्होंने पार्वती को उत्पन्न किया है, वे ही कल्याण करेंगे।

अब जो तुमहिं सुता पर नेहू * तौ यह जाय सिखावन देहू
करै सो तप जेहि मिलैं महेशू * आन उपाय न मिटिहि कलेशू

अब यदि तुम्हें पुत्री पर स्नेह है तो जाकर उसे यह सीख दो कि वह तपस्या करे, जिससे शिवजी मिलें। दूसरे उपाय से क्लेश न मिटेगा।

नारद वचन सगर्भ सहेतू * सुन्दर सब गुणनिधि वृषकेतू
अस विचारि सब तजहु अशङ्का * सबहिं भाँति शङ्कर निकलङ्का

नारद के वचन सगर्भ (छिपे अभिप्रायवाले) और कारण सहित हैं—शिवजी सुन्दर और सब गुणों के निधान हैं—ऐसा विचार सब सन्देह छोड़ दो। शिवजी सब प्रकार कलङ्करहित हैं।

सुनि पतिवचन हर्ष मन माहीं * गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं
उमहिं विलोकि नयन भरि वारी * सहित सनेह गोद बैठारी

पति के वचन सुन मैना मन में प्रसन्न हो शीघ्र पार्वती के पास गईं। वह उमा को देख आँखों में जल भर और स्नेह के साथ गोद में बिठाकर—

बारहिं बार लेति उर लाई * गदगद कण्ठ न कछु कहि जाई
जगतमातु सर्वज्ञ भवानी * मातुसुखद बोलीं मृदु बानी

बारंबार हृदय में लगा लेती थीं और कण्ठ गद्गद होने के कारण कुछ कहा नहीं जाता था। जगन्माता श्रीपार्वतीजी तो सब कुछ जाननेवाली थीं ही। माता को सुख देनेवाली मीठी वाणी वह बोलीं—


सुनहु मातु मैं दीख अस, स्वप्न सुनावहुँ तोहिं।
सुन्दर विप्र सुगौर वर, अस उपदेशेउ मोहिं॥

हे माता, सुनो। मैंने एक स्वप्न देखा है, वह तुम्हें सुनाती हूँ। स्वप्न में गौरवर्ण, सुन्दर शरीर एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है—

करहु जाय तप शैलकुमारी * नारद कहा सो सत्य विचारी

मातु पितहिं पुनि यह मत भावा * तप सुखप्रद दुख दोष नशावा

कि हे पार्वती, जाकर तप करो। नारद ने जो विचारकर कहा है, वह सत्य है। फिर यह मत माता-पिता को भी अच्छा लगा है कि तप सुख को देता तथा दुःखों और दोषों को मिटाता है।

तपबल रचहिं प्रपंच विधाता * तपबल विष्णु सकलजगत्राता
तपबल शम्भु करहिं संहारा * तपबल शेष धरहिं महि भारा

तप के बल से ब्रह्मा जगत् को रचते, विष्णु पालने, शिव संहार करते और शेष पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

तप अधार सब सृष्टि भवानी * करहु जाय तप अस जियजानी
सुनत वचन विस्मित महतारी * स्वप्न सुनायहु गिरिहि हँकारी

तप ही सब सृष्टि का आधार है। इसलिए हे भवानी, ऐसा जान जाकर तप करो। यह वचन सुनते ही माता मैना ने आश्चर्यित हो हिमवान को बुलाकर स्वप्न सुनाया।

मातु पितहिं बहुविधि समुझाई * चलीं उमा तपहित हरषाई
प्रिय परिवार पिता अरु माता * भये विकल मुख आव न बाता

इस तरह बहुत प्रकार से माता-पिता को समझा-बुझाकर प्रसन्न हो पार्वती तप के लिए चलीं। पिता, माता और परिवार के प्रियजन व्याकुल हो उठे। मारे स्नेह और व्याकुलता के उनके मुख से बात नहीं निकलती थी।



वेदशिरा मुनि आय तब, सबहिं कहा समुझाय।
पारवती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाय॥

तब वेदशिरा मुनि ने आकर समझाया, उनसे पार्वती की महिमा सुन सबको प्रबोध हुआ।

उरधरि उमा प्राणपतिचरना * जाय विपिन लागीं तप करना
अति सुकुमारि न तनु तपयोगू * पतिपद सुमिरि तज्यो सब भोगू

प्राणपति शिवजी के चरणों को हृदय में रख उमा वन में जाकर तप करने लगीं। देह सुकुमार होने से तप के योग्य नहीं थी, परन्तु पति के चरणों को स्मरण कर उन्होंने सब भोग छोड़ दिये।

नित नव चरण उपज अनुरागा * बिसरी देह तपहि मन लागा
संवत सहस मूल फल खाये * शाक खाय शत वर्ष गँवाये

शिवजी के चरणों में नित्य नया स्नेह उत्पन्न होता था, जिससे तप में ऐसा मन लगा कि देह की सुध भूल गई। हजार वर्ष मूल-फल खाये और सौ वर्ष शाक खाकर बिताये।

कछु दिन भोजन बारि बतासा * किये कठिन कछु दिन उपवासा
बेलपात महि परे सुखाई * तीन सहस संवत सो खाई

कुछ दिन जल और वायु भक्षण कर और कुछ दिन कठिन निराहार रहकर उपवास किया। तीन हज़ार वर्ष तक पृथ्वी में पड़े सूखे बेलपत्र खाये।

पुनि परिहरे सुखानेउ पर्णा * उमानाम तब भयो अपर्णा
देखि उमहिं तपक्षीण शरीरा * ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा

फिर सूखे पत्ते भी छोड़ दिये। तब उमा का अपर्णा नाम हुआ। पार्वती की देह तप से दुर्बल देख आकाश में यह गम्भीर वाणी सुनाई पड़ी।


भयो मनोरथ सफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलिहैं त्रिपुरारि॥

हे गिरिराजपुत्री, तुम्हारे मनोरथ पूरे हुए। अब सब दुस्सह क्लेश छोड़ दो। तुमको त्रिपुरारि शिवजी मिलेंगे।

अस तप काहु न कीन्ह भवानी * भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी
अब उर धरहु ब्रह्मवर बानी * सत्य सदा सन्तत शुचि जानी

हे भवानी, ऐसा तप किसी ने नहीं किया, यद्यपि धैर्यवान्, ज्ञानवान् मुनि बहुत हुए। अब यह ब्रह्मवरदान का वाक्य सदा सत्य और पवित्र जान हृदय में धारण करो।

आवैं पिता बुलावन जबहीं * हठ परिहरि गृह जाएहु तबहीं
मिलें तुमहिं जब सप्तऋषीशा * तब जानेहु प्रमाण वागीशा

जब पिता बुलाने आवें, तब हठ छोड़ घर चली जाना। जब तुमको सप्तर्षि मिलें, तब इस देववाणी के सिद्ध होने का समय जानना।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी * पुलकगात गिरिजा हरषानी
उमाचरित सुन्दर मैं गावा * सुनहु शम्भुकर चरित सुहावा

आकाश में कही हुई ब्रह्मा की वाणी सुन पार्वतीजी के शरीर में रोमांच हो आया, वह प्रसन्न हुईं। मैंने यह पार्वतीजी का सुन्दर चरित्र कहा, अब शिवजी का मनोहर चरित्र सुनिए।

जब ते सती जाय तनु त्यागा * तब ते शिवमन भयो विरागा
जपहिं सदा रघुनायक नामा * जहँ तहँ सुनहिं रामगुणग्रामा

जब से सतीजी ने यज्ञ में देह छोड़ी, तब से शिवजी के मन में वैराग्य हुआ। सदा श्रीरघुनाथजी का नाम जपते और जहाँ-तहाँ श्रीरामजी के गुण सुनते।


चिदानन्द गुणधाम शिव, विगत मोह मद काम।
विचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकललोक अभिराम॥

चैतन्यानन्दस्वरूप, गुणों के धाम, मोह-मद और काम से रहित, सब लोग जिनमें रमते हैं, ऐसे शिवजी हृदय में भगवान् को धारण कर पृथ्वी में घूमते फिरते रहते।

कतहुँ मुनिन उपदेशहिं ज्ञाना * कतहुँ रामगुण करहिं बखाना
यद्यपि अकाम तदपि भगवाना * भक्तविरहदुख दुखित सुजाना

कहीं मुनियों को ज्ञान सिखलाते और कहीं श्रीरामगुण वर्णन करते। यद्यपि कामनाओं से रहित थे, तो भी भगवान् होने से अपना भक्त सती के वियोगरूपी दुःख से दुःखित रहते।

यहि विधि गयो काल बहु बीती * नित नव होय रामपद प्रीती
नेम प्रेम शङ्कर कर देखा * अविचल हृदय भक्ति की रेखा

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया और नित्य नया स्नेह श्रीरामजी के चरणों में होने लगा। तब शिवजी का स्नेहयुक्त नियम और हृदय में भक्ति का निश्चल मार्ग देख—

प्रकटे राम कृतज्ञ कृपाला * रूपशीलनिधि तेज विशाला
बहु प्रकार शङ्करहिं सराहा * तुमबिन अस व्रत को निरबाहा

कृतज्ञ, कृपालु तथा रूप और शील के स्थान महातेजस्वरूप श्रीरामजी प्रकट हुए और बहुत प्रकार से शिव की बड़ाई की कि तुमको छोड़ ऐसा नियम कौन निबाह सकता है।

बहु विधि राम शिवहिं समुझावा * पारवती कर जन्म सुनावा
अति पुनीत गिरिजा की करणी * विस्तरसहित कृपानिधि बरणी

श्रीरामजी ने शिव को बहुत प्रकार से समझाया और पार्वती का अवतार लेना सुनाया। कृपानिधि श्रीरामजी ने पार्वती की अतिपवित्र करणी विस्तार के साथ वर्णन की।

दो० अब विनती मम सुनहु शिव, जो मोपर निजनेहु।
जाय विवाहहु शैलजहि, यह मोहिं माँगे देहु॥

फिर कहा—हे शिव, अब यदि मेरे ऊपर स्नेह है, तो मेरी विनय सुन पार्वती को व्याहो। यह मुझे माँगे दो।

कहशिवयदपिउचितअस नाहीं * नाथवचन पुनि मेटि न जाहीं
शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा * परमधर्म यह नाथ हमारा

शिवजी ने कहा कि यद्यपि ऐसा उचित नहीं है तो भी प्रभु के वचन मेटे नहीं जा सकते। हे नाथ, मेरा तो यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है कि आपकी आज्ञा शिर पर रखकर उसका पालन करूँ।

मातु पिता प्रभु गुरु की बानी * बिनहिं विचार करिय शुभ जानी
तुम सब भाँति परम हितकारी * आज्ञा शिर पर नाथ तुम्हारी

माता, पिता, स्वामी और गुरु के वचन शुभ जानकर विना विचार किये ही उनका पालन करना चाहिए। फिर हे स्वामिन्, आप तो सब प्रकार से मेरे हितकारी हैं, आपकी आज्ञा शिर पर है।

प्रभु तोषे सुनि शङ्करवचना * भक्ति विवेक धर्मयुत रचना
कह प्रभु हर तुम्हार प्रण रहेऊ * अब उर राखेहु जो हम कहेऊ

भक्ति, ज्ञान, धर्म से पूर्ण शिवजी के वचन सुन प्रभु श्रीरामजी प्रसन्न हुए। प्रभु ने कहा—हे शिव, तुम्हारा प्रण (यहि तनु सती भेंट अब नाहीं) पूरा हो गया। अब जो हमने कहा उसे हृदय में रखना।

अन्तर्द्धान भये अस भाखी * शङ्कर सोइ मूरति उर राखी
तबहि सप्तऋषि शिवपहँ आये * बोले हर अति वचन सुहाये

ऐसा कह श्रीरामजी अन्तर्द्धान हो गये और शिवजी ने वही मूर्ति अपने हृदय में रख ली। उसी समय शिवजी के पास सप्तर्षि आये। उनसे शिवजी ने ये अति सुहावने वचन कहे—


दो० पारवती पहँ जाय तुम, प्रेमपरीक्षा लेहु।
गिरिहिप्रेरिपठयहु भवन, दूरि करेहु सन्देहु॥

पार्वती के पास जाकर तुम लोग उनके स्नेह की परीक्षा लो और फिर हिमवान् को भेज पार्वती को घर भेजवा दो। उनका सन्देह दूर कर देना।

सुनि शिववचन परम सुख मानी * चले हर्षि जहँ रहीं भवानी
ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी * मूरतिवन्त तपस्या जैसी

शिवजी के वचन सुन बहुत प्रसन्न हो जहाँ पार्वतीजी थीं, वहीं सप्तर्षि गये। वहाँ ऋषियों ने गौराङ्गी पार्वतीजी को देखा, जैसे साक्षात् तपस्या ही तप करती हो।

बोले मुनि सुनु शैलकुमारी * करहु कौन कारण तप भारी
केहि आराधहु का अब चहहू * हमसन सत्य मर्म सब कहहू

मुनियों ने कहा—हे शैलकुमारी, बताओ, किसलिए यह बड़ा भारी तप कर रही हो? किसकी आराधना करती हो? क्या चाहती हो? हमसे सत्य-सत्य हृदय का सब भेद कहो।

सुनत ऋषिन के वचन भवानी * बोलीं गूढ़ मनोहर बानी
कहत मर्म मन अति सकुचाई * हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई

ऋषियों के वचन सुन पार्वतीजी मनोहर वाणी से गूढ़ वचन बोलीं कि मन का भेद कहते हुए मुझे बड़ा सङ्कोच होता है; क्योंकि आप लोग मेरी जड़ता सुनकर हँसेंगे।

मनहठ परेउन सुनत सिखावा * चहत वारि पर भीति उठावा
नारद कहा सत्य सब जाना * बिन पङ्खन हम चहहिं उड़ाना
देखहु मुनि अविवेक हमारा * चाहत सदा शिवहिं भर्त्तारा

ऐसे हठ में मन पड़ गया है कि दूसरी शिक्षा नहीं सुनता—और हठ भी इस प्रकार का कि जैसे

कोई जल में दीवार उठाना चाहे। नारदजी का कहा सत्य जान मैं विना पर उड़ना चाहती हूँ। हे मुनियो, मेरा अज्ञान तो देखो कि सदाशिवजी को अपना पति बनाना चाहती हूँ।



सुनत वचन बिहँसे ऋषय, गिरिसम्भव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ केहि गेह॥

ये वचन सुन ऋषि लोग हँसे और कहा—ठीक है जड़ पर्वत से तुम्हारी देह उत्पन्न हुई है न, फिर समझ कहाँ से आवे? नारद की शिक्षा सुनकर कहो, किसका घर बसा है?

दक्षसुतन उपदेशिनि जाई * तिन पुनि भवन न देखा आई
चित्रकेतु कर घर उन घाला * कनककशिपु कर पुनि असहाला

देखो, नारद ने वन में तप करते हुए दक्ष के पुत्रों को जाकर ऐसा उपदेश दिया कि फिर उन्होंने लौटकर अपना घर नहीं देखा। राजा चित्रकेतु का घर नारद ने नष्ट कर दिया और हिरण्यकशिपु का भी यही हाल किया।

नारदशिष जु सुनहिं नर नारी * अवशिहोहिंतजि भवन भिखारी
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा * आप सरिस सबहीं चह कीन्हा

जो स्त्री या पुरुष नारद की शिक्षा सुनते हैं वे अवश्य घर छोड़ भिक्षुक हो जाते हैं। नारदजी मन के कपटी और देखने में सज्जन जान पड़ते हैं, और अपने ही समान सबको बनाना चाहते हैं।

तिनके वचन मानि विश्वासा * तुम चाहहु पति सहज उदासा
निर्गुण निलज कुवेष कपाली * अकुल अगेह दिगम्बर व्याली

उनके वचन में विश्वास कर तुम सहज ही उदासीन वृत्तिवाले उन शिव को पति बनाना चाहती हो; जो गुणों से रहित निर्लज्ज, कुवेष, मुण्डमाल धारण करनेवाले हैं, जिसके कुल का कोई ठिकाना नहीं। वह वे घरवार के, नंगे और सर्पों को धारण करनेवाले हैं।

कहहु कौन सुख अस वर पाये * भलि भूलिहु ठग के बौराये
पञ्च कहें शिव सती विवाही * पुनि अवडेरि मरायनि ताही

कहो ऐसा वर पाकर कौन सुख होगा? कपटी नारद के बहकाने से तुम भी भली भूलीं। लोग कहते हैं कि शिव ने पहिले तो सती से विवाह किया और फिर उसे दोष लगाकर मरवा डाला।



अब सुख सोवत शोचनहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज इकाकिन के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥

अब शिवजी भीख माँग खाकर सुख से सोते हैं। उन्हें कोई सोच नहीं है। जिनका अकेले रहने का स्वभाव है, उनके घर में भी कभी स्त्रियाँ खटाती हैं?

अजहूँ मानहु कहा हमारा * हम तुमकहँ वर नीक विचारा

अतिसुन्दर शुचिसुखदसुशीला * गावहिं वेद जासु यश लीला

अब भी हमारा कहना मानो। हमने तुम्हारे लिए अच्छा वर विचारा है, जो बहुत सुन्दर, पवित्र, सुख देनेवाला और सुशील है, जिसका यश और चरित्र वेद गाते हैं।

दूषण रहित सकल गुणरासी * श्रीपति पुर वैकुण्ठनिवासी
असवर तुमहिं मिलाउब आनी * सुनत वचन कह बिहँसि भवानी

सब दोषों से रहित, सब गुणों के राशि, वैकुण्ठ के रहनेवाले, लक्ष्मीपति—ऐसा वर लाकर हम तुम्हें मिलावेंगे। ये वचन सुन पार्वतीजी ने हँसकर कहा—

सत्य कहहु गिरिभव तनुएहा * हठ न छूट छूटै वरु देहा
कनकौ पुनि पषाण ते होई * जारे सहज न परिहर सोई

आप लोग सत्य कहते हैं। मेरी यह देह पहाड़ से उत्पन्न है, इसीलिए चाहे देह जाती रहे परन्तु हठ नहीं छूट सकता। फिर सोना भी तो पत्थर ही से उत्पन्न है, जो जलने पर भी अपनारूप नहीं छोड़ता।

नारदवचन न मैं परिहरऊँ * बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊँ
गुरु के वचन प्रतीति न जेही * स्वप्नेहु सुगम न सुख सिधि तेही

मैं नारदजी के वचन न छोड़ूँगी, चाहे घर बसे चाहे उजरे, इसको मैं नहीं डरती; क्योंकि जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं, उसको स्वप्न में भी सुख और सिद्धि सुगम नहीं।

दो० महादेव अवगुणभवन, विष्णु सकल गुणधाम।
जेहिकर मनरम जाहिसन, ताहिताहि सन काम॥

यह माना कि महादेव अवगुणों और विष्णु सब गुणों की खान हैं; परन्तु तो भी जिसका मन जिससे लगे, उसको उसी से काम।

जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीशा * सुनतेउँ शिष तुम्हारि धरिशीशा
अब मैं जन्म शम्भु सन हारा * को गुण दूषण करै विचारा

हे मुनिवरो, यदि तुम पहले मिलते तो तुम्हारी ही शिक्षा सिर पर रखकर सुनती। अब तो मैं यह देह शिवजी को अर्पण कर चुकी। अब गुण-दोष का विचार कौन करे?

जो तुम्हरे हठ हृदय विशेखी * रहि न जाय बिन किये बरेखी
तौ कौतुकियन्ह आलस नाहीं * वर कन्या अनेक जग माहीं

यदि तुम्हारे हृदय में ऐसा ही बड़ा हठ है कि बिना बरदेखी किये नहीं रहा जाता तो कौतुकी पुरुषों को आलस्य नहीं होता—संसार में वर और कन्याएँ बहुत हैं।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी * बरौं शम्भु नतु रहौं कुमारी
तजौं न नारद कर उपदेशू * आप कहैं शत बार महेशू

करोड़ों जन्म तक मेरी यह रगड़ है कि वरूँगी तो शिवजी को, नहीं तो क्वाँरी ही रहूँगी। नारद की शिक्षा नहीं छोड़ूँगी, चाहे शिवजी भी आकर सौ बार कहें।

मैं पा परौं कहैं जगदम्बा * तुम गृह गमनहु भयो बिलम्बा
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी * जय जय जय जगदम्ब भवानी

पार्वतीजी कहती हैं कि मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम सब घर जाओ; क्योंकि बड़ी देर हुई। तब ज्ञानवान् मुनियों ने शिवजी में पार्वती का ऐसा स्नेह देख कहा—हे जगदम्बे, हे भवानी, तुम्हारी जय हो।



तुम माया भगवान शिव, सकल जगत पितुमात।
नाय चरण शिर मुनि चले, पुनि पुनि हर्षित गात॥

तुम माया हो और शिव भगवान् हैं। आप दोनों सारे संसार के माता-पिता हैं। यह कह मुनि लोग पार्वतीजी के चरणों में बारंबार सिर नवाकर पुलकित होकर चल दिये।

जाय मुनिन हिमवन्त पठाये * करि बिनती गिरिजहि गृह लाये
बहुरि सप्तऋषि शिव पहँ जाई * कथा उमा की सकल सुनाई

मुनियों ने जाकर हिमवान् को भेजा कि वह बिनती करके पार्वती को घर लिवा लावें, फिर सप्तर्षि शिवजी के पास गये और पार्वती की सब कथा सुनाई।

भये मगन शिव सुनत सनेहू * हर्षि सप्तऋषि गमने गेहू
मन थिर करि तब शम्भु सुजाना * लगे करन रघुनायक ध्याना

शिवजी पार्वती का स्नेह सुन मग्न हो गये और सप्तर्षि अपने घर गये। तब ज्ञानवान् शिवजी मन स्थिर कर श्रीरघुनाथजी का ध्यान करने लगे।

तारक असुर भयो तेहि काला * भुजप्रताप बल तेज विशाला
ते सब लोक लोकपति जीते * भये देव सुख सम्पति रीते

उसी समय बड़ी भुजा, प्रताप बल और तेजवाला तारकासुर हुआ। उसने सब लोकों और लोकपतियों को जीत लिया। देवता लोग सुख-सम्पत्ति से हीन हो गये।

अजर अमर सो जीति न जाई * हारे सुर करि विविध लराई
तब विरञ्चि सन जाय पुकारे * देखे विधि सब देव दुखारे

तारकासुर अजर अमर था, उसे कोई जीत नहीं सकता था। देवता लोग बहुत बार लड़कर हार गये। उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर पुकार की। ब्रह्माजी ने देखा, सब देवता दुखी हैं।



सबसन कहा बुझाय विधि, दनुजनिधन तब होय।
शम्भुशुक्रसम्भूत सुत, यहि जीतै रण सोय॥

ब्रह्मा ने सबसे समझाकर कहा कि इस दैत्य का नाश तभी होगा, जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो और रण में इसको जीते।

मोर कहा सुनि करहु उपाई * होइहि ईश्वर करहि सहाई
सती जो तजा दक्षमख देहा * जन्मी जाय हिमाचल गेहा

अब मेरा कहना सुन इसका उपाय करो, ईश्वर सहाय करेगा तो काम पूरा होगा। वह उपाय यह है कि सती ने दक्ष के यज्ञ में देह छोड़कर हिमवान् के घर जाकर अवतार लिया है।

तेहिं तप कीन्ह शम्भु हित लागी * शिव समाधि बैठे सब त्यागी
यदपि अहै असमञ्जस भारी * तदपि बात यक सुनहु हमारी

उन्होंने शिव के लिए तप किया है और शिव सब लोकव्यवहार छोड़कर समाधि लगाकर बैठे हैं। यद्यपि काम होने में बड़ा सन्देह है, तो भी मेरी एक बात सुनो।

पठवहु काम जाय शिवपाहीं * करै छोभ शङ्कर मन माहीं
तब हम जाय शिवहिं समुझाई * करवाउब विवाह बरियाई

कामदेव को शिव के पास भेजो। वह उनके मन में क्षोभ उत्पन्न करे। तब हम जाकर शिव को समझा बुझाकर विवाह करा देंगे।

यहि विधि भलहि देवहित होई * मत अति नीक कहा सब कोई
अस्तुति सुरन कीन्ह अस हेतू * प्रकटेउ विषम बारिचरकेतू

इस प्रकार देवताओं का हित होगा। तब सबने कहा, यह सलाह बहुत अच्छी है। देवताओं ने इस काम के लिए कामदेव की स्तुति और प्रार्थना की। तब प्रतापी, दुर्जय कामदेव प्रत्यक्ष हुआ।



सुरन कही निजविपति तब, सुनि मन कीन्ह विचार।
शम्भुविरोधनकुशलमोहिं, बिहँसि कहेउ अस मार॥

तब देवताओं ने अपनी विपत्ति कही और कामदेव ने सुनकर मन में विचार किया। फिर उसने हँसकर कहा, शिवजी से वैर कर मेरी कुशल न होगी।

तदपि करब मैं काज तुम्हारा * श्रुति कह परमधर्म उपकारा
परहित लागि तजै जो देही * सन्तत सन्त प्रशंसहिं तेही

तो भी मैं तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि वेद उपकार करने को परम धर्म कहते हैं। जो पराये हित के लिये अपनी देह छोड़ता है, उसकी साधु पुरुष सदा बड़ाई करते हैं।

अस कहि चलेउ सबहिं शिरनाई * सुमनधनुष कर सहित सहाई
चलत मार अस हृदय विचारा * शिवविरोध ध्रुव मरण हमारा

ऐसा कह सबको सिर नवाकर हाथ में फूलों का धनुष ले अपनी सहायक सेनासहित

कामदेव चल दिया। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार कर लिया कि शिवजी से वैर करने में निश्चय मेरी मृत्यु होगी।

तब आपन प्रभाव विस्तारा * निजवश कीन्ह सकल संसारा
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू * क्षण महँ मिटे सकल श्रुतिसेतू

तब उसने अपनी प्रभुता फैलाकर सारे संसार को अपने अधीन कर लिया। कामदेव के क्रोध करते ही क्षण भर में सब वेद की मर्यादा मिट गई।

ब्रह्मचर्य व्रत संयम नाना * धीरज धर्म ज्ञान विज्ञाना
सदाचार जप योग विरागा * सभय विवेक कटक सब भागा

ब्रह्मचर्य (वीर्यरक्षा), इन्द्रियों का वश करना, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान (ब्रह्मज्ञान), सदाचार, जप, अष्टाङ्गयोग, विषय वैराग्य आदि ज्ञान की सारी सेना मारे डर के भगी।

हरिगीतिका छन्द

भागेउ विवेक सहाय सहित सो सुभट संयुग महि मुरे।
सद्ग्रन्थ पर्वत कन्दरन महँ जाय तेहि अवसर दुरे॥
होनहार का करतार को रखवार जग खरभर परा।
दुइमाथ केहि रतिनाथ जेहिकहँ कोपि धनुशर कर धरा॥

जब ज्ञान अपने सहायकों सहित भागा तो ब्रह्मचर्य आदि योद्धा पीठ दिखाकर सद्ग्रन्थरूपी पर्वतों की खोहों में जा छिपे। संसार में खलभली पड़ी कि हे विधाता, क्या होनहार है? कौन रक्षा करेगा? और वह कौन दो सिरवाला है, जिस पर क्रोध करके कामदेव ने हाथ में धनुषबाण लिया है?



जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मर्याद तजि, भये सकल वश काम॥

संसार में स्त्रीलिङ्ग और पुँलिङ्ग संज्ञावाले स्थावर-जङ्गम में जितने सजीव (चैतन्य) थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर काम के वश हुए।

सबके हृदय मदन अभिलाखा * लता निहारि नवहिं तरुशाखा
नदी उमँगि अम्बुधिकहँ धाई * सङ्गम करहिं तलाव तलाई

सबके हृदय में काम की इच्छा हुई—लताओं को देखकर वृक्ष की शाखाएँ झुकने लगीं, नदियाँ उमड़कर समुद्र को दौड़ीं और तालाब तलइयों से सङ्गम करने लगे।

जहँ अस दशा जड़न की वरणी * को कहि सकै सचेतन करणी
पशु पक्षी नभ जल थलचारी * भये कामवश समय बिसारी

जहाँ जड़ों की ऐसी दशा वर्णन की, वहाँ चैतन्य जीवों की करनी कौन कह सके? पशु-

पक्षी आदि आकाश, जल और पृथ्वी में चलनेवाले सब जीव समय को भूल काम के वश हो गये।

मदनअन्ध व्याकुल सब लोका * निशिदिननहिंअवलोकहिं कोका
देव दनुज नर किन्नर व्याला * प्रेत पिशाच भूत बेताला

सब लोगों को कामदेव ने अंधा कर दिया। वे व्याकुल हो उठे। चकई-चकवा रात-दिन का विचार नहीं करते। देवता, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और बेताल—

इनकी दशा न कहेउँ बखानी * सदा काम के चेरे जानी
सिद्ध विरक्त महामुनि योगी * तेपि कामवश भये वियोगी

इनको सदा कामदेव के दास जानकर इनकी दशा नहीं वर्णन की। सिद्ध, विरक्त महामुनि, योगी और वैरागी भी काम के वश हो गये।

हरिगीतिका छन्द

भये कामवश योगीश तापस पामरन की को कहे।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला विलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्माण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

योगेश्वर तपस्वी भी जब काम के वश हो गये, तब पामरों (पशुओं) की कौन कहे? जो सारे संसार को ब्रह्ममय देखते थे, वे भी अब उसे स्त्रीमय देखने लगे! स्त्रियों को संसार में सब पुरुष ही और पुरुषों को सब स्त्रियाँ ही देख पड़ने लगीं। दो घड़ी तक कामदेव का किया यह कौतुक ब्रह्माण्ड के भीतर रहा।



धरा न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जेहि राखेउ रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥

किसी ने धैर्य नहीं धारण किया। कामदेव ने सबके मन हर लिये। जिनकी श्रीरघुनाथजी ने रक्षा की, वे ही उस समय इस कामदेव के प्रभाव से बचे।

उभयघरी अस कौतुक भयऊ * जब लगि काम शम्भु पहँ गयऊ
शिवहिं विलोकि सशङ्केउ मारू * भयो यथाथित सब संसारू

जब तक शिवजी के पास कामदेव गया, तब तक दो घड़ी तक ऐसा ही खेल हुआ। शिवजी को देख कामदेव डर गया। तब सब संसार पहले ही की भाँति स्वस्थ हुआ।

भये तुरत जगजीव सुखारे * जिमि मद उतरि गये मतवारे
रुद्रहिं देखि मदन भय माना * दुराधर्ष दुर्गम भगवाना

फिर तुरन्त ही संसार के सब जीव वैसे ही सुखी हुए, जैसे मद उतर जाने पर मतवाला।

जिन पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता, जिनके पास तक कोई नहीं आ सकता, उन भगवान् शिवजी को देख कामदेव डर गया ।

फिरत लाज कछु नहिं कहि जाई * मरण ठानि मन रचेसि उपाई
प्रकटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा * कुसुमित नव तरुराज विराजा

कामदेव को लौटते भी लज्जा लगती थी, इससे कुछ कहा नहीं जाता । अन्त में मरना मन में ठान उसने उपाय रचा । तुरन्त सुन्दर वसन्तऋतु उत्पन्न कर दी, जिससे नये-नये वृक्ष फूलों से हरे-भरे हो गये ।

वन उपवन वापिका तड़ागा * परम सुभग सब दिशा विभागा
जहँ तहँ जनु उमँगत अनुरागा * देखि मुयहु मन मनसिज जागा

वन, बगीचा, बावली और तालाब शोभायमान हुए, जिससे सब दिशाएँ सुन्दर हो गईं । जहाँ-तहाँ वृक्षों में मानो स्नेह उमँगता था, जिसको देख कामदेव से रहित बूढ़ों के भी मन में कामदेव जग उठा ।

हरिगीतिका छन्द

जागेउ मनोभव मुयहु मन वन सुभगता न परै कही ।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनलसखा सही ॥
विकसे सरन बहु कञ्ज गुंजत पुञ्ज मञ्जुल मधुकरा ।
कलहंस पिक शुक सरस रव करि गान नाचहिं अप्सरा ॥

वन की सुन्दरता कहते नहीं बनती, जिसे देख बूढ़ों के मन में भी कामदेव जगा । कामाग्नि का मित्र शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगा । तालाबों में कमल फूल उठे, जिनमें मनोहर भौंरों के झुण्ड गूँजने और हंस, पपीहा, तोता आदि मनोहर बोली बोलने लगे । अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं ।



सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत ।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदयनिकेत ॥

करोड़ों प्रकार से सब कलाएँ करके सेनासहित कामदेव हार गया, परन्तु शिवजी की निश्चल समाधि चलायमान न हुई । तब हृदय में रहनेवाला कामदेव क्रोधित हुआ ।

देखि रसाल विटप वर शाखा * तेहि पर चढ़ेउ मदन मनमाखा
सुमनचाप निज शर सन्धाने * अतिरिसताकि श्रवणलगिताने

एक अच्छी शाखाओंवाला आम का वृक्ष देख मन में क्रोध कर कामदेव उसी पर चढ़ गया और फूलों के धनुष में अपना बाण चढ़ा बहुत क्रोधकर, निशाना लगाकर उसे कानों तक खींचा ।

छाँड़ेसि विषमविशिख उर लागे * छूटि समाधि शम्भु तब जागे
भयो ईशमन छोभ विशेखी * नयन उघारि सकल दिशि देखी

फिर घोर बाण छोड़े, जो शिवजी की छाती में लगे, जिससे समाधि छूट गई और शिवजी जाग उठे। ऐसा होने से श्रीशिवजी के मन में बड़ा क्षोभ हुआ। तब नेत्र खोल उन्होंने सब ओर देखा—

सौरभपल्लव मदन बिलोका * भयो कोप कम्पेउ त्रयलोका
तब शिव तीसर नयन उघारा * चितवत काम भयो जरि छारा

आम के पत्तों में कामदेव दिखलाई दिया। उसे देख शिवजी को क्रोध आ गया, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोला, जिससे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयो जग भारी * डरपे सुर भये असुर सुखारी
समुझि कामसुख शोचहिं भोगी * भये अकण्टक तापस योगी

तब संसार में बड़ा हाहाकार हुआ। देवता लोग डर गये और दैत्य प्रसन्न हुए। स्त्रियों के भोगी कामसुख समझकर शोच करने लगे और योगाभ्यास करनेवाले तपस्वी निष्कण्टक हो गये।

हरिगीतिका छन्द

योगी अकण्टक भये पतिगति सुनत रति मूर्च्छित भई।
रोदति वदति बहुभाँति करुणा करति शङ्कर पहँ गई॥
अतिप्रेम करि बिनती विविधविधि जोरि कर सम्मुख रही।
प्रभु आशुतोष कृपालु शिव अबला निरखि बोले सही॥

योगी लोग तो निष्कण्टक हो गये और रति अपने पति की दशा सुन मूर्च्छित हो गई। वह करुणा (जिसे सुन हृदय पिघल उठे) करती, और रोती कलपती हुई श्रीशिवजी को पास जा बड़े प्रेम से भाँति-भाँति की विनती कर हाथ जोड़ सामने खड़ी हुई। श्रीशिवजी तो शीघ्र प्रसन्न होते ही हैं और कृपालु हैं। स्त्री को देख बोले—

दो० अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनङ्ग।
बिन वपु व्यापिहि सबन उर, सुनु निज मिलन प्रसङ्ग॥

हे रति, अब से तेरे पति का अनङ्ग (बिना देहवाला) नाम होगा। वह सबके हृदय में बिना शरीर ही व्यापेगा। अब अपने मिलने का प्रसंग सुन।

जब यदुवंश कृष्ण अवतारा * होइहि हरण महा महिभारा
कृष्णतनय होइहि पति तोरा * वचन अन्यथा होय न मोरा

जब यदुवंश में पृथ्वी का भार हरने के लिए कृष्णावतार होगा, तब तेरा पति कृष्ण का पुत्र (प्रद्युम्न) होगा। यह मेरा वचन झूठा नहीं।

रति गमनी सुनि शङ्करवानी * कथा अपर अब कहौं बखानी

देवन समाचार सब पाये * ब्रह्मादिक बैकुण्ठ सिधाये

यह महादेवजी की वाणी सुन रति चली गई। अब दूसरी कथा वर्णन करता हूँ। यह सब हाल देवताओं ने सुना। तब ब्रह्मादिक बैकुण्ठ को गये।

सब सुर विष्णु विरञ्चि समेता * गये जहाँ शिव कृपानिकेता
पृथक पृथक तिन कीन्ह प्रशंसा * भये प्रसन्न चन्द्रअवतंसा

विष्णुजी और ब्रह्माजीसहित सब देवता जहाँ कृपानिधान शिवजी थे, वहाँ गये और अलग-अलग उन सबों ने शिवजी की स्तुति की तब चंद्रमा को, मस्तक पर धारण करनेवाले श्रीशिवजी प्रसन्न हुए।

बोले कृपासिन्धु वृषकेतू * कहहु अमर आयहु केहि हेतू
कह विधि प्रभु तुम अन्तरयामी * तदपि भक्तिवश विनवौं स्वामी

कृपा के सागर और नन्दीश्वर पर चढ़नेवाले श्रीशिवजी बोले कि हे देवताओ, किस कारण आना हुआ? ब्रह्माजी ने कहा--हे प्रभो, आप अन्तर्यामी हैं। यद्यपि हम लोगों के आने का कारण जानते हैं तो भी भक्ति के वश होने से यदि आप पूछते हैं तो हे स्वामिन, हम विनय करते हैं।



सकल सुरन के हृदय अस, शङ्कर परम उछाह।
निज नयनन देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह॥

हे शंकर, सब देवताओं के हृदय में ऐसा बड़ा उत्साह है कि अपनी आँखों से आपका विवाह देखें।

यह उत्सव देखिय भरि लोचन * सो कछु करिय मदनमदमोचन
काम जारि रति कहँ वर दीन्हा * कृपासिन्धु यह अतिभल कीन्हा

हे कामदेव के अभिमान को मिटानेवाले, ऐसा कुछ कीजिए, जिसमें यह उत्सव हम आँख भरके देखें। कामदेव को भस्मकर जो कृपासिन्धु ने रति को वरदान दिया, यह बहुत अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ * नाथ बड़ेन कर सहज स्वभाऊ
पारवती तप कीन्ह अपारा * करहु तिनहिं अब अङ्गीकारा

हे नाथ, दण्ड देकर, फिर कृपा करना बड़ों का सहज स्वभाव ही है। पार्वतीजी ने बहुत तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिए।

सुनि विधि वचनसमुझिप्रभुबानी * ऐसइ होउ कहा सुखमानी
तब देवन दुन्दुभी बजाई * बरषि सुमन जयजय सुरसाई

ब्रह्मा के वचन सुन और नारायण की वाणी को समझकर सुख मान शिवजी ने कहा--ऐसा ही होगा। तब देवताओं ने नगाड़े बजाये और फूलों की वर्षा कर कहा--हे सुरश्रेष्ठ, तुम्हारी जय हो, जय हो।

अवसर जानि सप्तऋषि आये * तुरतहि विधि गिरिभवन पठाये
प्रथम गये जहँ रहीं भवानी * बोले वचन मधुर छलसानी

अवसर जानकर सप्तर्षि आये और ब्रह्मा ने उन्हें तुरन्त ही हिमवान् के घर भेजा। पहले वे जहाँ पार्वती थीं, वहाँ गये और छल से युक्त मीठे वचन बोले।



कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार प्रण, जारेउ काम महेश॥

तब तो नारद के उपदेश से हमारा कहना नहीं सुना। अब देखो, तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी हो गई। महादेव ने कामदेव को भस्म कर डाला।

सुनि बोलीं मुसुकाय भवानी * उचित कहेउ मुनिवर विज्ञानी
तुम्हरे जान काम हर जारा * अब लगि शम्भु रहे सविकारा

यह सुन पार्वतीजी मुस्कराकर बोलीं कि हे मुनिश्रेष्ठो, हे ज्ञानियो, आपने ठीक ही कहा। ऐसी समझ आप ही की है कि शिवजी ने कामदेव को जलाया और अब तक विकारसहित रहे।

हमरे जान सदा शिव योगी * अज अनवद्य अकाम अभोगी
जो मैं शिव सेयउँ अस जानी * प्रीति समेत कर्म मन बानी

परन्तु मेरी समझ में तो शिवजी सदा से जन्मरहित, निर्दोष, निष्काम, सब भोगों के त्यागी और योगी हैं। यदि मैंने ऐसा ही समझकर मन, वचन और कर्म से स्नेहसहित सेवा की होगी—

तौ हमार प्रण सुनहु मुनीशा * करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा
तुम जो कहा हर जारेउ मारा * सो अतिबड़ अविवेक तुम्हारा

तो हे मुनीश्वरो, सुनो। मेरी प्रतिज्ञा को कृपानिधि भगवान् शिवजी सत्य करेंगे। तुमने जो यह कहा कि शिव ने काम को जला डाला, यह तुम्हारी बहुत बड़ी नासमझी है।

तात अनलकर सहज स्वभाऊ * हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ
गये समीप सो अवशि नशाई * तस मनमथ महेश की नाँई

हे तात, अग्नि का यह सहज स्वभाव है कि उसके समीप पाला कभी नहीं जाता। यदि पास जाय भी तो पिघलकर अवश्य ही नष्ट हो जाय। ऐसे ही कामदेव और शिवजी की बात है।



हिय हरषे मुनिवचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास।
चले भवानिहि नाय शिर, गये हिमाचल पास॥

मुनि लोग यह सुन तथा शिवजी में स्नेह और विश्वास देख हृदय में प्रसन्न हुए। वे पार्वतीजी को सिर नवाकर चले और हिमाचल के पास गये।

सब प्रसङ्ग गिरिपतिहि सुनावा * मदनदहन सुनि अतिदुख पावा

बहुरि कहेउ रतिकर बरदाना * सुनि हिमवन्त बहुत सुख माना

उन्होंने पर्वतों के स्वामी हिमवान् को सब समाचार सुनाया। उन्होंने कामदेव का भस्म होना सुन बहुत दुःख पाया। फिर रति को वरदान देना कहा, जिसे सुन हिमवान् को सुख हुआ।

हृदय बिचारि शम्भुप्रभुताई * सादर मुनिवर लिये बुलाई
सुदिन सुनखत सुघरी सुहाई * बेगि वेदविधि लगन धराई

हिमवान् ने अपने हृदय में शिवजी का प्रभाव विचार आदरसहित श्रेष्ठ मुनियों को बुलाया और वेद की विधि से शीघ्र लग्न धराई, जिसमें दिन, नक्षत्र और घड़ी सब अच्छे थे।

पत्री सप्तऋषिन सोइ दीन्हीं * गहिपदविनयहिमाचल कीन्हीं
जाय बिधिहिं तिन दीन्ह सोपाती * बाँचत प्रीति न हृदय समाती

वही चिट्ठी सप्तर्षियों को दे चरण छूकर हिमवान् ने विनती की, तब सप्तर्षियों ने जाकर वह चिट्ठी ब्रह्मा को दी। उसे पढ़ते हुए ब्रह्मा के हृदय में आनन्द नहीं समाता था।

लगन बाँचि अज सबहिं सुनाई * हरषे सुनि सब सुरसमुदाई
सुमनवृष्टि नभ बाजन बाजे * मङ्गलकलशदशहुँ दिशि साजे

फिर ब्रह्मा ने लग्न बाँच सबको सुनाई, जिसे सुन सब देवगण प्रसन्न हुए। आकाश में फूलों की वर्षा हुई, बाजे बजने लगे और दशों दिशाओं में मङ्गल के कलश साजे गये।



लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होहिं शकुन मङ्गल सुभग, करहिं अप्सरा गान॥

देवता (बरात में जाने के लिये) भाँति-भाँति केवाहन साजने लगे। सुन्दर मङ्गलमय सगुन होने लगे। अप्सराएँ गाने लगीं।

शिवहिं शम्भुगण करहिं शृँगारा * जटामुकुट अहिमौर सँवारा
कुण्डल कङ्कण पहिरे ब्याला * तनु बिभूति पट केहरि छाला

शिव के गण महादेवजी का शृङ्गार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाया, सर्पों का मौर, सर्पों ही के कुण्डल और कङ्कण पहनाये। देह में विभूति लगा बाघम्बर के वस्त्र पहनाये।

शशि ललाट सुन्दर शिर गङ्गा * नयन तीन उपवीत भुजङ्गा
गरल कण्ठ उर नर शिरमाला * अशिव बेष शिवधाम कृपाला

मस्तक में सुन्दर चन्द्रमा और शिर में गङ्गाजी विराजमान थीं। तीन नेत्र थे। सर्प का जनेऊ था। गले में विष और छाती में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहने, अशुभ वेष, परन्तु कल्याण के धाम, कृपालु—

कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा * चले बसह चढ़ि बाजन बाजा

देखि शिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं * बरलायक दुलहिनि जग नाहीं

शिवजी हाथ में त्रिशूल और डमरू लिये बैल पर चढ़कर चले। बाजे बजने लगे। शिवजी का वेष देख देवताओं की स्त्रियाँ मुस्कराती और कहती थीं कि वर के योग्य संसार में कोई दुलहिन नहीं है।

विष्णु विरञ्चि आदि सुरव्राता * चढ़ि चढ़ि वाहन चले बराता
सुरसमाज सब भाँति अनूपा * नहिं बरात दूलह अनुरूपा

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवगण अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़ बरात को चले। यद्यपि देवताओं का समाज सब प्रकार अनुपम था, परन्तु तो भी दूलह (शिवजी) के अनुरूप नहीं था।



विष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज।
बिलग बिलग ह्वै चलहु सब, निज निज सहित समाज॥

विष्णुजी ने सब दिक्पालों को बुला हँसकर कहा कि सब लोग समाज सहित अलग-अलग चलें।

वर अनुहारि बरात न भाई * हँसी करैहहु पर पुर जाई
विष्णुवचन सुनि सुर मुसुकाने * निज निज सेनसहित बिलगाने

हे भाइयो, वर के अनुरूप बरात नहीं है। क्या पराये गाँव में जाकर हँसी कराओगे? विष्णु के वचन सुन देवता मुस्कराये और अपनी-अपनी सेना साथ ले अलग हो गये।

मन ही मन महेश मुसुकाहीं * हरि के व्यङ्ग वचन नहिं जाहीं
अतिप्रिय वचन सुनत हरि केरे * भृङ्गी प्रेरि सकल गण टेरे

शिवजी मन ही मन मुस्कराते और कहते थे कि भगवान् विष्णु के व्यङ्ग (कूट) वचन नहीं छूटते। भगवान् के बहुत प्यारे वचन सुन शिवजी ने अपने गण भृङ्गी को भेजकर सब गणों को बुलाया।

प्रभु अनुशासन सुनि सब आये * प्रभुपदजलज शीश तिन नाये
नाना वाहन नाना वेखा * बिहँसे शिव समाज निज देखा

वे सब शिवजी की आज्ञा सुन आये और उन्होंने प्रभु के चरणारविन्दों में शिर नवाया। अपने समाज के नाना प्रकार के वेष और सवारियाँ देख शिवजी हँसने लगे।

कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू * बिन पदकर कोउ बहुपद बाहू
विपुल नयन कोउ नयनविहीना * हृष्टपुष्ट कोउ अति तनुछीना

किसी के मुख ही न था, किसी के बहुत मुख थे। किसी के हाथ-पैर नहीं, किसी के हाथ-पैर बहुत थे। किसी के बहुत आँखें थीं, कोई बिना आँख का था। कोई बहुत मोटा था और कोई बहुत ही दुबला।

हरिगीतिका छन्द

तनुखीन कोउ अतिपीन पावन कोउ अपावन तनु धरे।
भूषण कराल कपाल कर सब सद्य शोणित तनुभरे॥
खर-श्वान-सुअर-शृगालमुखगण वेष अगणित को गनै।
बहुजिनिस प्रेत पिशाच योगि जमात वरणत नहिं बनै॥

कोई दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र देह धारण किये था। सब भयङ्कर गहने पहने, हाथ में खोपड़ी लिये और रुधिर से देह भरे थे। कोई गधे, कोई कुत्ते, कोई सुअर और कोई सियार के से मुखवाले अनगिनत वेषों को बनाये थे, जिनको कोई नहीं गिन सकता। बहुत जाति के प्रेतों, पिशाचों, योगिनियों और योगियों की जमात थी, जिसका वर्णन नहीं करते बनता।



नाचहिं गावहिं गीत, परम तरङ्गी भूत सब।
देखत अतिविपरीत, बोलत वचनविचित्रअति॥

सब भूत और प्रेत, जो बड़े तरङ्गी होते हैं, नाचते और गाते थे। देखने में विचित्र आकृति के थे और वचन बड़े विचित्र बोलते थे।

जस दूलह तस बनी बराता * कौतुक विविध होहिं मग जाता
यहाँ हिमाचल रचेउ विताना * अतिविचित्र नहिं जाय बखाना

जैसा दुलहा विचित्र था, वैसी ही विचित्र बरात बन गई। राह में भाँति-भाँति की हँसी-मसखरी और कौतुक होते जाते थे। यहाँ हिमाचल ने बहुत विचित्र मण्डप बनवाया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

शैलसकलजहँ लगि जग माहीं * लघुविशाल नहिं बरणि सिराहीं
वन सागर सब नदी तलावा * हिमगिरि सब कहँ न्योत पठावा

जहाँ तक संसार में छोटे-बड़े पहाड़ हैं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, उन सबको तथा वन, समुद्र, नदी और तालाब आदि को हिमवान् ने न्योता भेजा।

कामरूप सुन्दर तनुधारी * सहित समाज सहित निज नारी
गये सकल सुहिमाचल गेहा * गावहिं मङ्गल सहित सनेहा

इच्छानुसार रूप और सुन्दर देह धारण किये अपने-अपने समाज और स्त्रियों सहित सब हिमवान् के घर आये और स्नेहसहित मङ्गलगीत गाने लगे।

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये * यथायोग्य जहँ तहँ सब छाये
पुरशोभा अवलोकि सुहाई * लागै लघु विरञ्चिनिपुणाई

हिमवान् ने पहले ही बहुत-से घर सजा रक्खे थे। उनमें सब यथायोग्य ठहराये गये। नगर की सुहावनी शोभा देख ब्रह्मा की निपुणता भी छोटी लगती थी।

हरिगीतिका छन्द

लघु लागि विधि की निपुणता अवलोकि पुरशोभा सही।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मङ्गल विपुल तोरण पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
वनिता पुरुष सुन्दर चतुर छवि देखि मुनिमन मोहहीं॥

उस पुर की शोभा देख ब्रह्मा की निपुणता छोटी लगी, जिसमें वन, बाग, कुएँ, तालाब और नदी सब सुन्दर रमणीक थे। हर घर में मङ्गलाचार के बन्दनवार बँधे थे। ऊँची पताकाएँ फहराती थीं और स्त्री-पुरुष सुन्दर और चतुर थे, जिनकी छवि देख मुनियों के मन मोहते थे।



जगदम्बा जहँ अवतरी, सो पुर बरणि न जाय।
ऋद्धि सिद्धिसम्पतिसकल, नित नूतन अधिकाय॥

जहाँ जगन्माता श्रीपार्वतीजी ने अवतार लिया है, उस पुर का वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ सब ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ नित्य नई अधिक होती हैं।

नगर निकट बरात जब आई * पुर खरभर शोभा अधिकाई
करि बनाव सजि वाहन नाना * चले लेन सादर अगवाना

नगर के पास जब बरात आई, तब पुर भर में खलबली पड़ी कि शोभा अधिक बढ़ाई जाय। सब लोग अनेक प्रकार की सवारियाँ साज अपना-अपना बनावकर आदरसहित अगवानी लेने चले।

हिय हरषे सुरसेन निहारी * हरिहिं देखि अति भये सुखारी
शिवसमाज जब देखन लागे * बिडरि चले वाहन सब भागे

देवताओं की सेना देख सब मन में प्रसन्न हुए। भगवान् विष्णुजी को देख और भी सुखी हुए। परन्तु जब शिवजी के गणों को देखा तो सब सवारियाँ मारे डर के भाग चलीं।

धरि धीरज तहँ रहे सयाने * बालक सब लै जीव पराने
गये भवन पूछहिं पितु माता * कहहिं वचन भयकम्पितगाता

तब वहाँ सयाने तो धैर्य धरके रहे, बाकी सब लड़के अपने प्राण लेकर भाग गये। जब घर गये तो बरात का हाल उनके माँ-बापों ने पूछा। तब वे भय से काँपते हुए बोले—

कहिय कहा कहि जाय न बाता * यमकर धार किधौं बरिआता
बर बौरहा बरद असवारा * व्याल कपाल विभूषण छारा

क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता। बरात है कि यमराज की सेना! वर तो पागल है; क्योंकि बैल पर चढ़ा, सर्प लपेटे, खोपड़ी पहने और भस्म लगाये है।

हरिगीतिका छन्द

तनु छार ब्याल कपाल भूषण नगन जटिल भयङ्करा ।
सँग भूत प्रेत पिशाच योगिनि विकटमुख रजनीचरा ॥
जो जियत रहिहि बरात देखत पुण्य बड़ तिनकर सही ।
देखहि सो उमाविवाह घर घर बात अस लरिकन कही ॥

देह में भस्म रमाये, सर्प और मनुष्यों की खोपड़ियों का गहना पहने, नंगा, जटा रखाये, भयानक रूप ; साथ में भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनी और राक्षस लिये हैं, जिनके भयङ्कर मुख हैं । जो कोई इस बरात के देखते हुए जीते रहेंगे, उनके बड़े पुण्य हैं, सत्य-सत्य वही पार्वतीजी का विवाह देखेंगे, यह बात घर-घर में लड़कों ने कही ।



समुझि महेशसमाज सब, जननिजनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाये विविधविधि, निडर होहु डर नाहिं ॥

ये सब शिवजी के गण हैं, समझ माता-पिता मुस्कराते और अनेक प्रकार से लड़कों को समझाते थे कि निडर होओ, डर नहीं है ।

लै अगवानि बरातहिं आये * दिये सबहिं जनवास सुहाये
मैना शुभ आरती सँवारी * सङ्ग सुमङ्गल गावहिं नारी

अगवानी ले सबको सुन्दर जनवासा दिया । पार्वतीजी की माता मैना ने शुभ आरती सँवारी । साथ की स्त्रियाँ मङ्गलाचार गाने लगीं ।

कञ्चन थार सोह बर पानी * परिछन चलीं हरहिं हरषानी
विकटबेष जब रुद्रहिं देखा * अबलन उर भय भयो विशेखा

मैना सुन्दर हाथों में सोने का थार ले प्रसन्न हो शिवजी की परिछन करने चलीं । जब भगवान् रुद्र का भयङ्कर वेष देखा तो स्त्रियों के हृदय में बहुत भय हुआ ।

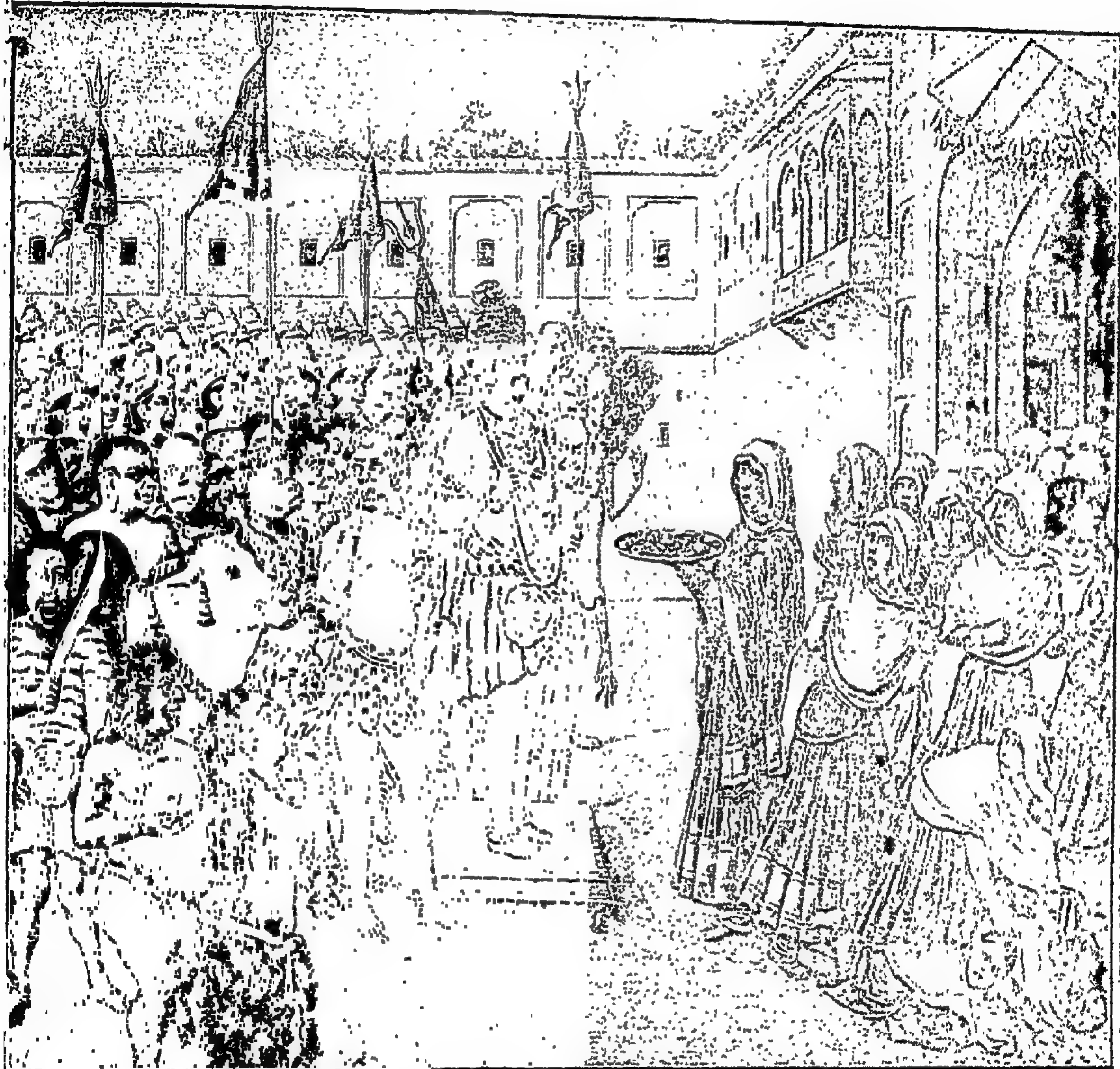
भागि भवन पैठीं अति त्रासा * गये महेश जहाँ जनवासा
मैना हृदय भयो दुख भारी * लीन्हीं बोलि गिरीशकुमारी

बड़े दुःख से भागकर घर में घुस गई और शिवजी जहाँ जनवासा था, वहाँ चले गये । मैना के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ । उन्होंने पार्वती को बुला लिया—

अधिक सनेह गोद बैठारी * श्यामसरोज नयन भरि बारी
जेहिंविधि तुम्हहिंरूपअसदीन्हा * तेहिं जड़ बर बाउर कस कीन्हा

और बड़े स्नेह से गोद में बिठाकर काले कमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर बोलीं— जिस विधाता ने तुमको ऐसा रूप दिया, उसने तुम्हारा जड़ पागल वर कैसे बनाया ?

शिव-विवाह



कञ्चन थार सोह वर पानी । परिछन चलीं हरहिं हरपानी ॥ बिकट बेष जब रुद्रहिं देखा । अबलन उर भय भयउ बिशेखा ॥

हरिगीतिका छन्द

कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई॥
तुम सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं।
घर जाउ अपयश होउ जग जीवित विवाह न हौं करौं॥

बड़े दुःख की बात है कि जिस विधाता ने तुमको सुन्दरता दी, उसने कैसे तुम्हारा पागल वर बनाया! जो फल कल्पवृक्ष में होना चाहिए, वह बरबस से बबूल में लगता है। अब क्या करूँ, तुमको लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँ या अग्नि में जल जाऊँ या समुद्र में डूब मरूँ? चाहे घर बिगड़े या संसार में बदनामी हो, परन्तु अपने जीते यह विवाह मैं नहीं करूँगी।



भई विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि विलाप रोदति बदति, सुतासनेह सँभारि॥

हिमवान की स्त्री मैना को दुःखित देख सब स्त्रियाँ व्याकुल हुई और मैना पुत्री के स्नेह को स्मरण कर दुःख से रोती-कलपती विलाप करने लगी—

नारद कर मैं कहा बिगारा * भवन मोर जिन बसत उजारा
अस उपदेश उमहिं जिन दीन्हा * बौरे बरहि लागि तप कीन्हा

नारद का मैंने क्या बिगाड़ा था, जो उन्होंने मेरा बसा-हुआ घर उजाड़ दिया; क्योंकि उन्होंने पार्वती को ऐसी शिक्षा दी, जिससे पागल वर के लिए उसने तपस्या की।

साँचहु उनके मोह न माया * उदासीन धन धाम न जाया
परघरघालक लाज न भीरा * बाँझ कि जान प्रसव की पीरा

सत्य ही नारद के मायामोह नहीं है, न घर, न स्त्री, न धन; वे तो उदासीन हैं। वे पराये घर का नाश करनेवाले हैं; क्योंकि न उनके कुटुम्ब और न कुटुम्ब की लज्जा, फिर भला बाँझ कैसे प्रसव की पीड़ा (पुत्र पैदा करने के क्लेश) को जान सकता है।

जननिहिं विकल विलोकि भवानी * बोलीं युत विवेक मृदुबानी
अस विचारि शोचहु मति माता * सो न टरै जो रचा विधाता

माता को व्याकुल देख पार्वती ज्ञानसहित मीठी वाणी से बोलीं—हे माता, ऐसा विचार-कर सोच मत करिए कि जो विधाता ने रच रक्खा है, वह टल नहीं सकता।

कर्म लिखा जो बाउर नाहू * तौ कत दोष लगाइय काहू
तुमसन मिटहिं कि विधि के अङ्का * मातु व्यर्थ जनि लेहु कलङ्का

यदि मेरे कर्म में पागल ही पति लिखा है तो किसी को क्यों दोष लगाना चाहिए? क्या तुम ब्रह्मा के लिखे अक्षर मिटा सकती हो? माताजी, नारद को दोष लगाकर व्यर्थ कलङ्क न लीजिए।

हरिगीतिका छन्द

जनि लेहु मातु कलङ्क करुणा परिहरहु अवसर नहीं ।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमावचन विनीत कोमल सकल अबला शोचहीं ।
बहुभाँति विधिहिं लगाय दूषण नयनवारि विमोचहीं ॥

हे माता, कलङ्क न लीजिए, दुःख छोड़िए; क्योंकि समय नहीं है । जो कुछ दुःख-सुख मेरे भाग्य में लिखा है, वह जहाँ जाऊँगी वहीं पाऊँगी । पार्वती के ये नीति से भरे नम्र वचन सुन सब स्त्रियाँ सोच करने लगीं और बहुत प्रकार से विधाता को दोष देती हुई नेत्रों से आँसू बहाने लगीं ।



तेहि अवसर नारद सहित, औ ऋषि सप्त समेत ।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गमने तुरत निकेत ॥

यह समाचार सुन उसी समय सप्तर्षियों सहित नारद ऋषि हिमवान् के घर गये ।

तब नारद सबहीं समुझावा * पूरब कथा प्रसङ्ग सुनावा
मैना सुनहु सत्य मम बानी * जगदम्बा तव सुता भवानी

नारदजी ने आकर सबको समझाया और पार्वती के पूर्वजन्म की कथा का प्रसंग सुनाया । बोले—हे मैना, सुनो । यह मेरा वचन सत्य है कि तुम्हारी पुत्री जगन्माता भवानी हैं ।

अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि * सदा शम्भुअर्द्धाङ्गनिवासिनि
जग सम्भवपालनलयकारिणि * निज इच्छा लीलावपुधारिणि

वह जन्मरहित, अनादि, विनाशरहित, सदा शिवजी के आधे अंग में बसनेवाली, संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाली, अपनी इच्छा से लीला करने के लिए देह धारण करती हैं ।

जन्मी प्रथम दक्षगृह जाई * नाम सती सुन्दर तनु पाई
तहउँ सती शङ्करहिं बिवाहीं * कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं

पहले भी दक्षप्रजापति के घर में सुन्दर देह धारण कर इन्होंने सती के नाम से अवतार लिया था । वहाँ भी सतीजी शिवजी से ब्याही गई थीं, जिनकी कथा सारे संसार में प्रसिद्ध है ।

एक बार आवत शिवसङ्ग * देखेउ रघुकुलकमलपतङ्ग
भयो मोह शिव कहा न कीन्हा * भ्रमवश वेश सीय कर लीन्हा

एक समय शिवजी के साथ आ रही थीं कि रघुकुलरूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यरूपी श्रीरामजी को इन्होंने देखा । तब श्रीरामजी के ईश्वर होने के बारे में इनको मोह हुआ । इन्होंने शिवजी का भी कहना नहीं माना । भ्रमवश सीताजी का वेश धारण किया ।

हरिगीतिका छन्द

सियवेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शङ्कर परिहरी।
हरविरह जाय बहोरि पितु के यज्ञयोगानल जरी॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुण तप किया।
अस जानि संशय तजहु गिरिजा सर्वदा शङ्करप्रिया॥

सती ने सीताजी का वेष बनाया था, इस अपराध से शिवजी ने उन्हें छोड़ दिया। तब शिवजी के विरह के दुःख से पिता दक्ष के यज्ञ में वह योग की आग से जल मरीं। अब तुम्हारे घर में अवतार ले अपने पति शिवजी के लिए इन्होंने घोर तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह छोड़ो। यह तुम्हारी पुत्री सदा से शिवजी की प्यारी शक्ति हैं।


सुनि नारद के वचन तब, सबकर मिटा विषाद।
क्षण महँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद॥

तब नारदजी के वचन सुन सबका दुःख मिट गया। क्षणमात्र में सारे नगर में घर-घर यह संवाद फैल गया।

तब मैना हिमवन्त अनन्दे * पुनि पुनि पारवती पद वन्दे
नारि पुरुष शिशु युवा सयाने * नगर लोग सब अतिहरषाने

तब मैना और हिमवान् आनन्दित हुए। उन्होंने वारंवार पार्वती के चरणों की वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, सयाने सब नगर के लोग बहुत प्रसन्न हुए।

लगे होन पुर मङ्गल गाना * सजे सबहिं हाटक घट नाना
भाँति अनेक भई जेवनारा * सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा

नगर में मङ्गलगान होने लगा। सबोंने भाँति-भाँति के सोने के कलश सजाकर द्वार पर रक्खे। अनेक प्रकार से जेवनार हुई, जैसा कुछ सूपशास्त्र (रसोई बनाने के शास्त्र) का व्यवहार है।

सो जेवनार कि जाय बखानी * बसहिं भवन जेहि मातु भवानी
सादर बोले सकल बराती * विष्णु विरञ्चि देव सब जाती

जिस घर में माता पार्वतीजी रहती हैं, वहाँ की जेवनार का कैसे वर्णन किया जा सकता है? बराती विष्णु, ब्रह्मा आदि सब देवता आदरसहित बुलाये गये।

विविध भाँति बैठी जेवनारा * लगे परोसन निपुण सुआरा
नारिवृन्द सुर जेंवत जानी * लगीं देन गारी मृदुबानी

अनेक भाँति की पङ्क्ति जेवनार में बैठाई और चतुर भोजन परोसनेवाले परोसने लगे। देवताओं को भोजन करते जान बहुत-सी स्त्रियाँ मीठी वाणी से गालियाँ देने लगीं।

हरिगीतिका छन्द

गारी मधुर स्वर देहिं सुन्दरि व्यङ्ग वचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अतिविलम्ब विनोद सुनि सुख पावहीं ॥
जेंवत जो बढ़्यो अनन्द सो सुख कोटिहू न परै कह्यो।
अँचवाय दीन्हें पान गमने वास जहँ जाको रह्यो ॥

स्त्रियाँ मीठे स्वर से व्यङ्ग वचन सुनाकर गालियाँ देती थीं और देवतालोग बहुत देर से भोजन करते और गालियों का आनन्द प्राप्त करते थे। भोजन के समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ मुखों से भी नहीं कहा जा सकता। फिर अँचवाकर पान दिये गये। जहाँ जिसका डेरा था, वहाँ वह गया।


बहुरि मुनिन हिमवन्त कहँ, लगन जनाई आय।
समय बिलोकि विवाह कर, पठये देव बुलाय ॥

फिर मुनियों ने आकर हिमवान् को लग्न का समय जताया और ब्याह का समय देख देवताओं को बुला भेजा।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे * सबहिं यथोचित आसन दीन्हे
बेदी बेद विधान सँवारी * सुभग सुमङ्गल गावहिं नारी

आदरसहित देवताओं को बुलाकर सबको उचित आसन दिया। वेद-विधि से वेदी रची गई और सौभाग्यवती स्त्रियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं।

सिंहासन अति दिव्य सुहावा * जाय न बरणि विरञ्चि बनावा
बैठे शिव विप्रन शिरनाई * हृदय सुमिरि निजप्रभु रघुराई

ब्रह्मा ने बहुत दिव्य सुहावना सिंहासन बनाया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उस पर ब्राह्मणों को शिर नवा और हृदय में अपने स्वामी श्रीरघुनाथजी का स्मरण कर शिवजी बैठे।

बहुरि मुनीशन उमा बुलाई * करि शृङ्गार सखी लै आई
देखत रूप सकल सुर मोहे * बरणै छवि अस जग कवि को है

फिर उन श्रेष्ठ मुनियों ने पार्वतीजी को बुलाया। सखी शृङ्गार करके उन्हें ले आईं। उनका रूप देखते ही देवता लोग भी मोहित हो गये। फिर संसार में ऐसा कौन कवि है जो उस स्वरूप का वर्णन कर सके।

जगदम्बिका जानि भववामा * सुरन मनहिं मन कीन्ह प्रणामा
सुन्दरता मर्याद भवानी * जाय न कोटिहु बदन बखानी

उन्हें जगन्माता और श्रीशिवजी की वामाङ्गी जान देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया। पार्वतीजी सुन्दरता की हद हैं, इसी से करोड़ों मुख से भी उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता।

हरिगीतिका छन्द

कोटिहु वदन नहिं बनै बरणत जगजननि शोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति शेष शारद मन्दमति तुलसी कहा॥
छविखानि मातु भवानि गमनी मध्य मण्डप शिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुचिपतिपद कमल मनमधुकर तहाँ॥

जगन्माता की बहुत बड़ी शोभा करोड़ों मुख से भी वर्णन नहीं करते बनती। वेद, शेष और सरस्वती कहते सङ्कोच करती हैं तब छोटी बुद्धिवाला मैं क्या कहूँ? मण्डप के बीच में, जहाँ शिवजी थे, शोभा की खान माता भवानी चलीं। लज्जा के सङ्कोच से पति को देख नहीं सकतीं, परन्तु भौंरारूपी मन उनके चरणारविन्दों में लगा है।



मुनिअनुशासन गणपतिहिं, पूजे शम्भु भवानि।
कोउ सुनि संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि॥

मुनि की आज्ञा से शिव-पार्वती ने गणेशजी का पूजन किया। यह सुनकर कोई सन्देह न करे; क्योंकि पञ्चदेवों (श्रीविष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और दुर्गाजी) का आदि और अन्त नहीं।

जस विवाह की विधि श्रुतिगाई * महामुनिन सो सब करवाई
गहि गिरीश कुश कन्या पानी * शिवहिं समर्पी जानि भवानी

वेद में जैसी विवाह की विधि कही है, वह सब महामुनियों ने करवाई। हिमवान् ने कुश, कन्या और जल लेकर शिवजी की शक्ति जान पार्वती का हाथ शिवजी को सौंप दिया।

पाणिग्रहण जब कीन्ह महेशा * हिय हरषे तब सकल सुरेशा
वेदमन्त्र मुनिवर उच्चरहीं * जय जय जय शङ्कर सुर करहीं

जब शिवजी ने पार्वतीजी का पाणिग्रहण किया, तब सब देवताओं के स्वामी विष्णु, ब्रह्मा आदि मन में प्रसन्न हुए। मुनिवर लोग वेदमन्त्र पढ़ते और देवता लोग 'शङ्कर की जय हो, जय हो, जय हो' कहने लगे।

बाजहिं बाजन विविध विधाना * सुमनवृष्टि नभ भइ विधिनाना
हरगिरिजा कर भयो विवाहू * सकल भुवन भरि रहा उछाहू

भाँति-भाँति के बाजे बजे और आकाश से अनेक प्रकार के फूलों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का विवाह होने से सब लोकों में उत्साह भर गया।

दासी दास तुरँग रथ नागा * धेनु वसन मणि वस्तु विभागा
अन्न कनकभाजन भरि याना * दायज दीन्ह न जाय बखाना

हिमवान् ने दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गौ, कपड़े, आभूषण, सोना और बर्तन आदि अनेक भाँति की वस्तुएँ सवारियों में लादकर दायज में दीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

हरिगीतिका छन्द

दायज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो ।
का देउँ पूरणकाम शङ्करचरणपङ्कज गहि रह्यो ॥
शिव कृपासागर श्वशुर कर परितोष सब भाँतिन कियो ।
पुनि गह्यो पदपाथोज मैना प्रेमपरिपूरण हियो ॥

बहुत भाँति का दायज देकर हिमवान् हाथ जोड़ 'हे शङ्कर, आप तो सब कामनाओं से पूर्ण हैं, मैं क्या दूँगा ?' कहकर चरणारविन्दों में गिर पड़े। तब कृपा के सागर शिवजी ने ससुर को सब प्रकार से सन्तुष्ट किया। फिर स्नेह से भरे हुए हृदय से मैना ने शिवजी के चरणारविन्द पकड़े—


नाथ उमा मम प्राणसम, गृहकिङ्करी करेहु ।
क्षमेहु सकल अपराध अब, है प्रसन्न वर देहु ॥

और कहा—हे नाथ, उमा मेरे प्राणों के समान है। इसे घर की दासी बनाना और इसके सब अपराध क्षमा करना। प्रसन्न होकर यही वर दीजिए।

बहुविधि शम्भु सासु समुझाई ❋ गमनी भवन चरण शिरनाई
जननी उमा बोलि तब लीन्हीं ❋ लै उछङ्ग सुन्दर शिष दीन्हीं

फिर शिवजी ने अपनी सास को बहुत प्रकार से समझाया। तब मैना चरणों में सिर नवा घर को चली गई और पार्वती को बुला गोद में बिठाकर उन्होंने अच्छी शिक्षाएँ दीं।

करेहु सदा शङ्करपदपूजा ❋ नारिधर्म पतिदेव न दूजा
वचन कहत भरि लोचन वारी ❋ बहुरि लाय उर लीन्ह कुमारी

कहा—शिवजी के चरणों की सदा पूजा करना; क्योंकि पति ही स्त्री का देवता है। इसको छोड़ दूसरा धर्म उसके लिए नहीं है। ये वचन कहकर आँखों में आँसू भर पार्वती को हृदय से लगा लिया।

कत विधि सृजी नारि जग माहीं ❋ पराधीन स्वप्नेहु सुख नाहीं
भइ अति प्रेमविकल महतारी ❋ धीरज कीन्ह कुसमय विचारी

ब्रह्मा ने स्त्री को संसार में क्यों बनाया ? पराधीन के लिए स्वप्न में भी सुख नहीं है। माता मैना मोह से व्याकुल हो गईं, परन्तु 'यह मोह का समय नहीं है' विचारकर धीरज धरा।

पुनिपुनि मिलत परत गहि चरणा ❋ परम प्रेम कछु जाय न वरणा
सब नारिन मिलि भेंटि भवानी ❋ जाय जननिउर पुनि लपटानी

पार्वतीजी बारंबार पैरों में गिरती पड़ती मिलती थीं। वह परम प्रेम कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सब स्त्रियों को मिल भेंट पार्वतीजी जाकर माता की छाती में फिर लिपट गईं।

हरिगीतिका छन्द

जननिहिं बहुरि मिलि चलीं उचित अशीश सबकाहू दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातुतन तब सखी लै शिव पहँ गई॥
याचक सकल सन्तोषि शङ्कर उमासह भवनहिं चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निशान नभ बाजहिं भले॥

फिर माता को मिलकर चलीं। सबने उनको यथायोग्य आशीर्वाद दिया। पार्वती घूम-घूमकर माता की ओर देखती थीं, इतने में सखी उनको शिवजी के पास ले गई। महादेवजी सब भिक्षुकों को दान-मान से सन्तुष्ट कर पार्वतीसहित अपने घर कैलास को चले। तब सब देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे। आकाश में भली भाँति बाजे बजने लगे।


चले सङ्ग हिमवन्त तब, पहुँचावन अति हेतु।
विविध भाँति परितोषकरि, बिदा कीन्ह वृषकेतु॥

तब बड़े हित से हिमवान् साथ पहुँचाने चले। शिवजी ने अनेक प्रकार से उन्हें सन्तोष दे बिदा किया।

तुरत भवन आये गिरिराई * सकल शैल सर लिये बुलाई
आदर दान विनय बहु माना * सब कहँ बिदा कीन्ह हिमवाना

शीघ्र हिमवान् घर आये तथा सब पर्वत और तालाब आदि को बुला लिया। फिर आदर, दान और विनती आदि से उनका सम्मान कर हिमवान् ने सबको बिदा किया।

जबहिं शम्भु कैलासहिं आये * सुर सब निज निज लोक सिधाये
जगतमातुपितु शम्भु भवानी * तेहि शृंगार न कहौं बखानी

जब शिवजी कैलास को आये, तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गये। श्रीशिवपार्वती-जी जगत् के पिता-माता हैं, इसलिए अनुचित समझकर उनके शृङ्गार का वर्णन नहीं किया।

करहिं विविधविधि भोगविलासा * गणन समेत बसहिं कैलासा
हरगिरिजाविहार नित नयऊ * यहिविधिविपुल कालचलिगयऊ

वे अनेक प्रकार के भोगविलास करते हुए अपने गणोंसहित कैलास में रहते हैं। श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजी का नित्य नया विहार होता था। इसी प्रकार बहुत समय बीत गया।

तब जन्मे षटवदन कुमारा * तारक असुर समर जिन मारा
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना * षण्मुख जन्म कर्म जग जाना

तब छः मुख के कुमार स्वामिकार्त्तिकजी ने जन्म लिया, जिन्होंने युद्ध में तारकासुर को मारा। षण्मुखजी का जन्म और कर्म संसार जानता है और वेद-शास्त्रों में भी प्रसिद्ध है।

हरिगीतिका छन्द

जगजान षण्मुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतुसुत कर चरित संक्षेपहि कहा॥
यह उमाशम्भुविवाह जो नर नारि सुनहिं जो गावहीं।
कल्याण काज विवाह मङ्गल सर्वदा सुख पावहीं॥

स्वामिकार्त्तिकजी का जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ संसार जानता है, इस कारण मैंने श्रीशिवजी के पुत्र (कार्त्तिकेयजी) का चरित्र बहुत थोड़ा वर्णन किया। यह शिव-पार्वतीजी के विवाह की कथा जो स्त्री-पुरुष कल्याण के लिये विवाहादि मङ्गलकार्य में सुनें और कहेंगे, वे सदा सुख पावेंगे।



चरितसिन्धुगिरिजारमण, वेद न पावहिं पार।
बरणै तुलसीदास किमि, अतिमतिमन्दगँवार॥

पार्वती पति शिवजी के चरित्ररूपी समुद्र का पार वेद भी नहीं पाते ; फिर छोटी बुद्धिवाला गँवार तुलसीदास उन्हें कैसे वर्णन कर सकता है ?

शम्भुचरित सुनि सरस सुहावा * भरद्वाज मुनि अति सुख पावा
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी * नयन नीर रोमावलि ठाढ़ी

श्रीमहादेवजी का सरस और सुहावना चरित्र सुन भरद्वाज मुनि ने बहुत सुख पाया। कथा सुनने की बहुत लालच बढ़ी ; आँखों में आँसू भर आये और देह के रोम खड़े हो गये।

प्रेमाविवश मुख आव न बानी * दशा देखि हरषे मुनि ज्ञानी
अहो धन्य तव जन्म मुनीशा * तुमहिं प्राणसम प्रिय गौरीशा

प्रेम के वश हो मुख से वचन नहीं निकलते। यह दशा देख ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि प्रसन्न हुए। बोले—हे मुनिश्रेष्ठ, तुम्हारा जन्म धन्य है ; क्योंकि शिव और पार्वतीजी तुम्हें प्राणों के समान प्यारे हैं।

शिवपदकमल जिन्हहिं रति नाहीं * रामहिं ते स्वप्नेहु न सुहाहीं
बिन छल विश्वनाथ पद नेहू * रामभक्त कर लक्षण येहू

जिनके शिवजी के चरणकमलों में भक्ति नहीं है, वे श्रीरामजी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। बिना कपट शिवजी के चरणों में स्नेह होना ही श्रीरामजी के भक्त का लक्षण है।

शिवसम को रघुपतिव्रतधारी * बिन अघ तजी सतीअसि नारी
प्रणकरि रघुपतिभक्ति दृढ़ाई * को शिवसम रामहिं प्रिय भाई

शिवजी के समान कौन रामभक्ति का नियम धारण करनेवाला है, जिन्होंने निरपराध सती जैसी पतिव्रता स्त्री को छोड़ दिया—सेवक सेव्यधर्म को विचार प्रण करके श्रीरामजी की भक्ति

को और भी पुष्ट किया। हे भाइयो, श्रीरामजी को शिव के समान कौन प्यारा है?



प्रथम कहे मैं शिवचरित, बूझा मर्म तुम्हार।
शुचिसेवक तुम राम के, रहित समस्त विकार॥

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि पहले शिवजी का चरित्र कहकर मैंने तुम्हारा मर्म जान लिया। तुम श्रीरामजी के सब विकारों से रहित पवित्र सेवक हो।

मैं जाना तुम्हार गुण शीला * कहौं सुनौ अब रघुपतिलीला
सुनु मुनि आजु समागम तोरे * कहि न जाय जस सुख मन मोरे

मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब श्रीरघुनाथजी के चरित्र कहता हूँ सुनो। हे मुने, आज तुम्हारे मिलने से जैसा सुख मेरे मन में हुआ है, वह कहा नहीं जाता।

रामचरित अति अमित मुनीशा * कहि न सकहिं शतकोटिअहीशा
तदपि यथाश्रुत कहौं बखानी * सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी

हे मुनीश, रामजी के अनगिनत चरित्र हैं। सैकड़ों करोड़ों शेष भी उन्हें नहीं कह सकते। तो भी वाणी के स्वामी और हाथ में धनुष लिए प्रभु का स्मरणकर, जैसा सुना है, वर्णन करता हूँ।

शारद दारुनारिसम स्वामी * राम सूत्रधर अन्तरयामी
जेहिपर कृपा करहिं जन जानी * कविउर अजिर नचावहिं बानी

कठपुतली के समान सरस्वती को उसके स्वामी अन्तर्यामी श्रीरामजी सूत्रधर के समान नचाते हैं। वे अपना सेवक जान जिस कवि के ऊपर कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी अँगनाई में उस वाणी को नचाते हैं।

प्रणऊँ सोइ कृपालु रघुनाथा * वरणौं विशद जासु गुणगाथा
परमरम्य गिरिवर कैलासू * सदा जहाँ शिवउमानिवासू

मैं उन्हीं श्रीरघुनाथजी को प्रणाम करता हूँ, जिनका उज्ज्वल गुणानुवाद वर्णन करता हूँ। पर्वतों में श्रेष्ठ अति मनोरम कैलास है, जहाँ सदैव शिवपार्वतीजी रहते हैं।



सिद्ध तपोधन योगिजन, सुर किन्नर मुनिवृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं शिव सुखकन्द॥

वहाँ पुण्यात्मा सिद्ध, तपोधन, योगी पुरुष, देवता, किन्नर और मुनियों के झुण्ड रहते और सुख के मूल श्रीशिवजी की सेवा करते हैं।

हरिहरविमुख धर्मरत नाहीं * ते नर तहँ न स्वप्नेहु जाहीं
तेहि गिरि पर वटविटपविशाला * नित नूतन सुन्दर सब काला

जो श्रीरामजी और शिवजी से विमुख हैं, जो धर्म में लगे नहीं रहते, वे वहाँ स्वप्न में भी नहीं

जा सकते। उस पर्वत पर एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष है, जो सदा सुन्दर और नया बना रहता है।

त्रिविध समीर सुशीतल छाया * शिव विश्रामविटप श्रुति गाया
एक बार तेहितर प्रभु गयऊ * तरुविलोकि उर अतिसुखभयऊ

वहाँ शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चलती है और शीतल छाया है; शिवजी के विश्राम का यही वृक्ष वेदों ने कहा है। एक समय प्रभु शिवजी उसके नीचे गये और वृक्ष को देख मन में बहुत सुखी हुए।

निजकर डासि नागरिपुछाला * बैठे सहजहि शम्भु कृपाला
कुन्द इन्दु दर गौर शरीरा * भुजप्रलम्ब परिधनमुनिचीरा

अपने हाथ से बाघम्बर बिछाकर सहज ही कृपालु शिवजी वहाँ बैठ गये। उनका शरीर कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शङ्ख के समान गौरवर्ण था, लम्बी भुजाएँ थीं, मुनियों के से वस्त्र थे।

तरुणअरुण अम्बुजसम चरणा * नखद्युति भक्तहृदयतमहरणा
भुजग भूति भूषण त्रिपुरारी * आनन शरदचन्द्र छविहारी

ताजे खिले हुए लाल कमल के समान चरण थे, नखों की आभा भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर करनेवाली थी। सर्प और भस्म आदि भूषण धारण किये त्रिपुरासुर के शत्रु शिव का मुख शरद्‌ऋतु के चन्द्रमा की शोभा को हरनेवाला था।



जटा मुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल।
नीलकण्ठ लावण्यनिधि, सोह बालविधु भाल॥

शिर में जटाओं का मुकुट और गङ्गाजी विराजमान थीं। कमल के समान बड़े नेत्रवाले, नीले कण्ठवाले, सुन्दरता की खान शिवजी के मस्तक में द्वितीया का चन्द्रमा शोभायमान था।

बैठे सोह कामरिपु कैसे * धरे शरीर शान्तरस जैसे
पारवती भल अवसर जानी * गईं शम्भु पहँ मातु भवानी

ऐसे कामदेव के शत्रु शिवजी उस समय कैसे शोभायमान थे? जैसे शरीर धारण किये शान्तरस हो। अच्छा अवसर जानकर माता भवानी पार्वती शिवजी के पास गईं।

जानि प्रिया अति आदर कीन्हा * वाम भाग आसन हर दीन्हा
बैठीं शिवसमीप हरषाई * पूरब जन्मकथा चित आई

शिवजी ने अपनी प्यारी जानकर उनका बड़ा आदर किया और अपने आसन में बाईं ओर बैठाया। पार्वतीजी प्रसन्न हो शिवजी के पास बैठीं। उनको अपने पहिले जन्म की कथा याद आई।

पतिहियहेतु अधिक अनुमानी * बिहँसि उमा बोलीं प्रियबानी

कथा जो सकल लोकहितकारी * सोइ पूछन चह शैलकुमारी

स्वामी के हृदय के भाव (श्रीरामजी में अधिक स्नेह) का अधिक अनुमानकर पार्वतीजी हँसकर प्यारी वाणी बोलीं । जो कथा सब लोकों का हित करनेवाली है, उसी को पार्वतीजी पूछना चाहती थीं ।

विश्वनाथ ममनाथ पुरारी * त्रिभुवनमहिमा विदित तुम्हारी
चर अरु अचर नाग नर देवा * सकल करहिं पदपङ्कज सेवा

पार्वतीजी ने कहा—हे जगन्नाथ, हे मेरे स्वामी, हे त्रिपुरारि, तुम्हारी महिमा तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । देवता, मनुष्य, सर्प, जड़, जङ्गम सभी आपके चरणारविन्दों की सेवा करते हैं ।



प्रभु समर्थ सर्वज्ञ शिव, सकल कला गुणधाम ।
योग ज्ञान वैराग्यनिधि, प्रकट कल्पतरु नाम ॥

आप सबके स्वामी, समर्थ, सब कुछ जाननेवाले, कल्याणरूप, सब गुणों और कलाओं के धाम तथा योग, ज्ञान और वैराग्य की खान हैं । आपका नाम कल्पवृक्ष (सब मनोरथ पूरे करनेवाला) है, यह सबको विदित है ।

जो मोपर प्रसन्न सुखरासी * जानिय सत्य मोहिं निजदासी
तो प्रभु हरहु मोर अज्ञाना * कहि रघुनाथकथा विधिनाना

हे सुख की राशि, यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और सचमुच अपनी दासी मुझे जानते हैं तो हे प्रभो, श्रीरघुनाथजी की अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिए ।

जासु भवन सुरतरुतर होई * सह कि दरिद्रजनित दुख सोई
शशिभूषण अस हृदय विचारी * हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी

जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो वह भी क्या दरिद्रता के दुःख को सहेगा ? हे चन्द्रभूषण, हे नाथ, ऐसा हृदय में विचार मेरी बुद्धि के बहुत बड़े भ्रम को दूर कीजिए ।

प्रभु जे मुनि परमारथवादी * कहहिं रामकहँ ब्रह्म अनादी
शेष शारदा वेद पुराना * सकल करहिं रघुपति गुणगाना

हे स्वामिन्, जो ब्रह्मवादी मुनि हैं, वे राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं तथा शेष, शारदा, वेद और पुराण भी श्रीरघुनाथजी के गुण गाते हैं—

तुम पुनि राम राम दिनराती * सादर जपहु अनङ्गअराती
राम जो अवधनृपतिसुत सोई * की अजअगुणअलखगति कोई

और हे कामदेव के शत्रु, आप भी दिनरात आदरसहित रामनाम जपते हैं । ये अवधराज दशरथ के पुत्र हैं या अज, निर्गुण और समझ में न आनेवाली गतिवाले कोई दूसरे हैं ?



जो नृपतनय तो ब्रह्म किमि, नारिविरह मतिभोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमत बुद्धि अति मोरि ॥

यदि राजकुमार हैं तो ब्रह्म कैसे हो सकते हैं? क्योंकि स्त्री के वियोग में उनकी बुद्धि भ्रम गई, इससे उनका माहात्म्य सुन और चरित्र देख मेरी बुद्धि बहुत चक्कर में पड़ जाती है।

जो अनीह व्यापक विभु कोऊ * कहहु बुझाय नाथ मोहिं सोऊ
अज्ञ जानि रिसजनि उर धरहू * जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू

यदि अनीह (चेष्टारहित), व्यापक (तिल में तैल की भाँति माया में व्याप्त) और विभु (समर्थ) कोई और है तो हे नाथ, उसे भी मुझे समझाकर कहिये। मुझे मूर्ख जानकर हृदय में क्रोध न रख जिस प्रकार मेरा मोह दूर हो, वही कीजिए।

मैं बन दीख रामप्रभुताई * अतिभयविकल न तुमहिं सुनाई
तदपि मलिनमन बोध न आवा * सो फल भली भाँति मैं पावा

मैंने वन में श्रीरामजी का प्रभाव देखा और डर से बहुत व्याकुल हो, तुमको नहीं सुनाया। तब भी मन मलिन होने के कारण ज्ञान न हुआ। उसका फल भी अच्छी तरह मैंने पाया।

अजहूँ कछु संशय मन मोरे * करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे
प्रभु तब मोहिं बहु भाँति प्रबोधा * नाथसोसमुझिकरहु जनि क्रोधा

आज भी मेरे मन में कुछ सन्देह है। इससे कृपा कीजिए मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। उस समय स्वामी ने बहुत प्रकार मुझे समझाया था, हे नाथ, यह खयालकर क्रोध न कीजियेगा।

तबकर अस विमोह मोहिं नाहीं * रामकथा पर रुचि मन माहीं
कहहु पुनीत रामगुणगाथा * भुजगराजभूषण सुरनाथा

तब का सा अज्ञान अब मेरे नहीं है, मन में श्रीरामजी की कथा पर रुचि है। हे शेषनाग को भूषण बनानेवाले, हे देवताओं के स्वामी, श्रीरामजी के पवित्र गुणों की कथा कहिए।



वन्दौं पद धरिधरणिशिर, विनय करौं करजोरि ।
बर्णहु रघुवरविशद यश, श्रुति सिद्धान्त निचोरि ॥

पृथ्वी में सिर रखकर चरणों की वन्दना और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि वेद का सारांश निचोड़कर श्रीरघुनाथजी का उज्ज्वल यश वर्णन कीजिए।

यदपि योषिता अनअधिकारी * दासी मन क्रम वचन तुम्हारी
गूढ़ो तत्त्व न साधु दुरावहिं * आरत अधिकारी जहँ पावहिं

यद्यपि स्त्री को वेद सुनने का अधिकार नहीं है, परन्तु मैं तो मन, वचन और कर्म से आपकी दासी हूँ। जहाँ आरत (माया से दुखी हो परमात्मा के जानने की इच्छा करने-

वाला) को अधिकारी (पात्र) पाते हैं, वहाँ साधु लोग गूढ़तत्त्व (आत्मज्ञान) भी नहीं छिपाते।

अति आरत पूछौं सुरराया * रघुपतिकथा कहहु करि दाया
प्रथम सो कारण कहौ विचारी * निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी

हे देवताओं के राजा, मैं दुखी होकर पूछती हूँ, श्रीरघुनाथजी की कथा कृपा करके कहिए। पहले वह कारण विचारकर कहिए कि निर्गुण ब्रह्म देह धारणकर सगुण क्यों हुए।

पुनि प्रभु कहहु रामअवतारा * बालचरित पुनि कहहु उदारा
कहहु कथा जानकीविवाहा * राज तजा सो दूषण काहा

हे प्रभो, फिर श्रीरामजी का अवतार और उदार (सब मनोरथों के देनेवाले) बालचरित्र कहिए। श्रीजानकीजी के विवाह की कथा कहिए। रामचन्द्र ने राज्य को छोड़ दिया सो उसमें क्या दोष था?

वन बसि कीन्ह्यो चरित अपारा * कहहु नाथ जिमि रावण मारा
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला * सकल कहहु शङ्कर सुखशीला

हे नाथ, जिस प्रकार वन में रहकर उन्होंने अनगिनत चरित किये और जिस प्रकार रावण को मारा सो भी कहिए। हे कल्याणकारी, हे आनन्दरूप, सिंहासन पर बैठ रामचन्द्रजी ने जो बहुत चरित किये, वे सब भी कहिए।



बहुरि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजासहित रघुवंशमणि, किमि गमने निजधाम॥

हे कृपा के मन्दिर, फिर रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने जो आश्चर्यजनक चरित्र किया—अर्थात् कैसे प्रजासहित अपने परमधाम को गये?—वह कहिए।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्वबखानी * जेहि विज्ञान मगन मुनिज्ञानी
भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा * पुनि सब वर्णहु सहितविभागा

हे प्रभो, फिर वह तत्त्व वर्णन कीजिए, जिस विज्ञान में ज्ञानी मुनि डूबे रहते हैं। फिर भेदोंसहित भक्ति, ज्ञान विज्ञान और वैराग्य का वर्णन कीजिए।

औरो रामरहस्य अनेका * कहहु नाथ अति विमल विवेका
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई * सोउ दयालु राखहु जनि गोई

हे नाथ, और भी श्रीरामजी के बहुत प्रकार के रहस्य (छिपे हुए चरित्र), जो कि बहुत ही निर्मल ज्ञान होने पर जाने जा सकते हैं, कहिए। हे दयालो, जो मैंने न पूछा हो, वह भी छिपा न रखिएगा।

तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना * आन जीव पामर का जाना
प्रश्न उमा के सहज सुहाये * छलविहीन सुनि शिव मनभाये

आप तीनों लोकों के गुरु हैं, यह वेद कहते हैं। दूसरे जीवात्मा अधम हैं—वे क्या जानें ? पार्वतीजी के अच्छे लगनेवाले, छलकपट से रहित प्रश्न सुनकर श्रीशिवजी को भले लगे।

हरहिय रामचरित सब आये ❋ प्रेम पुलक लोचन जल छाये
श्रीरघुनाथरूप उर आवा ❋ परमानन्द अमित सुख पावा

शिवजी के हृदय में सब श्रीरामचरित्र आ गये। तब स्नेह से देह में पुलकावली हो आई, नेत्रों में जल भर आया। हृदय में श्रीरामजी का स्वरूप आते ही शिवजी ने परमानन्द में अथाह सुख पाया।



मगन ध्यानरस दण्ड युग, पुनि मन बाहर कीन्ह।
रघुपतिचरित महेश तब, हर्षित बरणै लीन्ह॥

दो घड़ी तक तो ध्यान के रस में डूबे रहे। फिर मन को बाहर कर शिवजी प्रसन्न हो श्रीरघुनाथजी के चरित्र वर्णन करने लगे।

झूठो सत्य जाहि बिन जाने ❋ जिमि भुजङ्ग बिन रजु पहिचाने
जेहि जाने जग जाय हेराई ❋ जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई

श्रीशिवजी बोले—जिनके न जानने से झूठा संसार सत्य जान पड़ता है, जैसे बिना पहचाने सर्प में रस्सी और रस्सी में सर्प का भ्रम होता है तथा जिस सच्चिदानन्द को जान लेने से भ्रममय संसार खो जाता है ; जैसे जागने पर स्वप्न के सब भ्रम जाते रहते हैं—

वन्दौं बालरूप सोइ रामू ❋ सब विधि सुलभ जपत जेहि नामू
मङ्गलभवन अमङ्गलहारी ❋ द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी

उन्हीं माया में रमण करनेवाले श्रीरामजी के बालस्वरूप की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सब प्रकार परमात्मा सुलभ है। मङ्गलों के घर अमङ्गलों के हरनेवाले और दशरथजी के आँगन में विहरनेवाले श्रीरामजी मेरे ऊपर दया करें।

करि प्रणाम रामहिं त्रिपुरारी ❋ हर्षि सुधासम गिरा उचारी
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी ❋ तुमसमान नहिं कोउ उपकारी

त्रिपुरासुर के मारनेवाले शिवजी श्रीरामजी को प्रणाम कर प्रसन्न हो अमृत के समान वाणी बोले—हे पर्वतराज की कन्या, तुम धन्य हो। तुम्हारे समान उपकारी कोई नहीं है।

पूछेहु रघुपति कथा प्रसङ्गा ❋ सकल लोक जगपावनि गङ्गा
तुम रघुवीरचरणअनुरागी ❋ कीन्हो प्रश्न जगत हित लागी

तुमने जो श्रीरघुनाथजी की कथा का प्रसङ्ग पूछा, वह संसार को गङ्गा के समान सब लोकों को पवित्र करता है। तुम्हें श्रीरामचरणों में बहुत स्नेह है, इसी से तुमने यह प्रश्न संसार के हित के लिए किया है।



रामकृपा ते गिरिसुता, स्वप्नेहु तव मन माहिं।
शोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥

हे पार्वती, मेरे विचार से श्रीरामजी की कृपा से स्वप्न में भी तुम्हारे मन में दुःख, मोह, सन्देह और भ्रम आदि नहीं है।

तदपि अशङ्का कीन्हेउ सोई * कहत सुनत सबकर हित होई
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना * श्रवणरन्ध्र अहिभवनसमाना

तब भी तुमने यह सन्देह इसलिए किया है कि इस बहाने राम की महिमा कहने और सुनने में सबका हित हो। जिन्होंने भगवान् की कथा कानों से नहीं सुनी, उनके कानों के छेद सर्प के बिल के समान हैं।

नयनन सन्त दरश नहिं देखा * लोचन मोरपक्ष के लेखा
ते शिर कटु तूमरिसम तूला * जे न नमहिं हरिगुरुपदमूला

जिन आँखों ने साधुओं के दर्शन नहीं किये, वे मोरपक्ष में बनी हुई आँखों के समान हैं। वे शिर कड़वी तोंबी के समान हैं, जो भगवान् और गुरुजी के चरणों के आगे नहीं झुकते।

जिनहरिभक्ति हृदय नहिं आनी * जीवत शवसमान ते प्रानी
जे नहिं करहिं रामगुणगाना * जीह सो दादुरजीहसमाना

जो भगवान की भक्ति हृदय में नहीं लाये, वे प्राणी जीते ही मुर्दे के समान हैं। जो श्रीरामजी के गुणों को नहीं कहते, उनकी जीभ मेंढक की जीभ के समान है।

कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती * सुनि हरिचरित न जो हरषाती
गिरिजा सुनहु राम की लीला * सुरहित दनुजविमोहनशीला

वह निठुर छाती वज्र के समान कठोर है, जो भगवान् के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होती। हे पार्वती, श्रीरामजी की लीला सुनो, जो देवताओं को अच्छी लगती और राक्षसों को मोहित करती है।



रामकथा सुरधेनुसम, सेवत सब सुखदानि।
सन्तसभा सुरलोकसम, को न सुनै अस जानि॥

देवलोक के समान साधुसभा में श्रीरामकथारूपी कामधेनु सेवा करने से सब भाँति के सुख देती है। ऐसा जानकर उसे कौन नहीं सुनेगा?

रामकथा सुन्दर करतारी * संशयविहँग उड़ावनहारी
रामकथा कलिविटप कुठारी * सादर सुनु गिरिराजकुमारी

श्रीरामजी की कथा सन्देहरूपी पक्षियों को उड़ानेवाली सुन्दर हाथों की ताली और कलियुगरूपी वृक्ष को काटने की कुल्हाड़ी है। इससे हे पर्वतराज की पुत्री, उसे आदर सहित सुनो।

राम नाम गुण चरित सुहाये * जन्म कर्म अगणित श्रुति गाये
यथा अनन्त राम भगवाना * तथा कथा कीरति गुण नाना

वेदों ने श्रीरामजी के सुहावने नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म अनगिनत कहे हैं। जैसे भगवान् श्रीरामजी का अन्त नहीं है, वैसे ही उनकी कथा, यश और गुण भी अनन्त हैं।

तदपि यथाश्रुत जस मति मोरी * कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी
उमा प्रश्न तव सहज सुहाये * सुखद सन्तसम्मत मोहिं भाये

तो भी, जैसा सुना है, और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार, तुम्हारा बहुत स्नेह देखकर वह कथा कहूँगा। हे उमा, तुम्हारे प्रश्न सन्तों के मनभाये, सहज ही सुहावने सुखदायक हैं, और मुझे भी भाते हैं।

एक बात नहिं मोहिं सुहानी * यदपि मोहवश कहेउ भवानी
तुम जो कहा राम कोउ आना * जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना

परन्तु हे पार्वती, तुम्हारी एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि तुमने मोह के वश होकर कही है। वह यह कि जिसको वेद गाते हैं और मुनि लोग ध्यान करते हैं, वह राम कोई दूसरे हैं।



कहहि सुनहिं अस अधमनर, ग्रसे जो मोहपिशाच।
पाखण्डी हरिपदविमुख, जानहिं झूठ न साँच॥

ऐसा तो वे अधम मनुष्य कहते और सुनते हैं, जिनको मोहरूपी पिशाच ने ग्रस लिया है, जो पाखण्डी, भगवान् के चरणों से विमुख, और झूठ-सच की तमीज नहीं रखते,

अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी * काईविषय मुकुर मन लागी
लम्पट कपटी कुटिल विशेखी * स्वप्नेहु सन्तसभा नहिं देखी

वे अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और अभागी हैं तथा उनके मनरूप दर्पण में काई (मैल) की भाँति विषय लिपटा हुआ है। कामी, छली, कुटिल और जिन्होंने स्वप्न में भी साधुओं की सभा नहीं देखी,

कहहिं ते वेदअसम्मत बानी * जिनहिं न सूझ लाभ अरु हानी
मुकुरमलिन अरु नयनविहीना * रामरूप देखहिं किमि दीना

जिनको लाभ और हानि नहीं सूझती, वे वेदविरुद्ध वचन कहते हैं। जिनकी आँखें फूट गई हैं और मन के दर्पण पर मैल चढ़ा है, वे बेचारे श्रीरामजी के सच्चे स्वरूप को कैसे देख सकते हैं?

जिनके अगुण न सगुण विवेका * जल्पहिं कल्पित वचन अनेका
हरिमायावश जगत भ्रमाहीं * तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं

जिनको निर्गुण और सगुण का ज्ञान नहीं है, जो मनमाने अनेक कल्पित वचन कहा करते हैं, जो भगवान् की माया के अधीन होकर संसार में जन्मते मरते-भरमते हैं वे ऐसी कोई बात नहीं, जिसे न कह सकें, अर्थात् वे अनुचित से अनुचित बात भी कह सकते हैं।

बातुल भूतविवश मतवारे * ते नहिं बोलहिं वचन सँभारे
जिन कृत महामोहमदपाना * तिनकर कहा करिय नहिं काना

बावले, जिनके भूत-प्रेत लगा हो और मतवाले सँभालकर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोहरूपी मदिरा का पान किया है, उनका कहना न सुनना चाहिए।



सो० असनिज हृदय विचारि तजि संशय भजु रामपद।
सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रमतम रविकरवचनमम ॥

ऐसा अपने मन में विचार, सन्देह छोड़, श्रीरामजी के चरणों की सेवा करो। हे गिरिराज-कुमारी, भ्रमरूप अन्धकार को मिटानेवाली सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो।

सगुणहिंअगुणहिंनहिं कछु भेदा * गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा
अगुण अरूप अलख अज जोई * भक्त प्रेमवश सगुण सो होई

मुनि, पुराण, पंडित और वेद कहते हैं कि सगुण और निर्गुण में कुछ भेद नहीं। निर्गुण ब्रह्म रूपरहित है, दिखाई नहीं पड़ता और न उत्पन्न होता है। वही भक्त के प्रेम के वश होकर सगुण हो जाता है।

जो गुणरहित सगुण सो कैसे * जलहिमउपल विलग नहिं जैसे
जासु नाम भ्रम तिमिरपतङ्गा * तेहि किमि कहिय विमोह प्रसङ्गा

जैसे जल, पाला और उपल (ओले) एक दूसरे से न्यारे नहीं हैं वैसे ही निर्गुण और सगुण ब्रह्म भी न्यारे नहीं हैं। भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने के लिए जिन श्रीरामजी का नाम सूर्य के समान है, उनको मोह होना कैसे कहा जा सकता है?

राम सच्चिदानन्द दिनेशा * नहिं तहँ मोहनिशा लवलेशा
सहज प्रकाशरूप भगवाना * नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना

श्रीरामजी सत्, चित्, आनन्दरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात का लेशमात्र भी नहीं है। भगवान् का सहज स्वभाव ही प्रकाश (विज्ञान) रूप है। वहाँ विज्ञान का फिर सवेरा नहीं होता; किन्तु सदा विज्ञानरूपी दिन बना रहता है। अर्थात् मायारूपी रात होती ही नहीं, फिर सवेरा कैसे हो?

हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना * जीवधर्म अहमिति अभिमाना
राम ब्रह्मव्यापक जग जाना * परमानन्द परेश पुराना

प्रसन्नता, दुःख, ज्ञान, अज्ञान और देह में अहंभाव का अभिमान करना जीव का धर्म है। परब्रह्म

श्रीरामजी तो संसार में व्यापक, ज्ञानस्वरूप, परमानंद, माया से परे, ईश और आदि-अंत से रहित हैं।



पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रकट परावरनाथ।
रघुकुलमणि ममस्वामिसोइ, कहिशिवनायोमाथ॥

जो पुरुष चैतन्यज्ञान के प्रकाश की खान, परावर (इस लोक और परलोक या छोटे-बड़े) का स्वामी प्रत्यक्ष प्रसिद्ध है, वही रघुकुलमणि श्रीराम मेरे स्वामी हैं। यह कहकर शिवजी ने माथा नवाया।

निज भ्रम नहिं समुझहिंअज्ञानी * प्रभुपर मोह धरहिं जड़ प्रानी
यथा गगन घनपटल निहारी * झाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी

फिर शिवजी ने कहा—अज्ञानी और जड़ यह नहीं समझते कि सुख-दुःख आदि देह के धर्म हैं, किन्तु परमात्मा में इनके दोष रखते हैं। जैसे मूर्ख लोग आकाश में बादल के एक टुकड़े को देख करोड़ों योजन के लम्बे-चौड़े सूर्य को कहते हैं कि उससे ढक गया—यह नहीं जानते कि हमारी आँखें उस बादल की ओट में हो गई हैं इससे सूर्यनारायण नहीं देख पड़ते।

चितवत लोचन अंगुलि लाये * प्रकट युगल शशि तिनके भाये
उमा रामविषयक अस मोहा * नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा

नेत्रों में उँगली लगाकर देखने से उनको दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। हे उमा, श्रीरामजी के विषय में भी ऐसा ही मोह है। जैसे आकाश में अँधेरा, धुआँ और धूल का आरोप किया जाता है, वैसे ही निर्विकार परमात्मा में त्रिगुणात्मिका माया का आरोप करना है।

विषय करण सुर जीव समेता * सकल एक ते एक सचेता
सबकर परम प्रकाशक जोई * राम अनादि अवधपति सोई

इन्द्रियों के विषयरूप कर्म, इन्द्रियाँरूप करण, इनके देवता और जीवसहित क्रमशः उत्तरोत्तर एक दूसरे से सचेत होते हैं। जो इन सबका परम प्रकाशक परमात्मा है, वही आदि-अन्तरहित अयोध्या के राजा श्रीरामजी हैं।

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू * मायाधीश ज्ञान गुण धामू
जासु सत्यता ते जड़ माया * भास सत्य इव मोह सहाया

संसार प्रकाश्य है और प्रकाशक श्रीरामजी। वह माया के स्वामी, ज्ञानस्वरूप और गुणों के धाम हैं। उनकी सत्यता से जड़माया अपने सहायक मोह सहित सत्य सी प्रकाशित होती है—



रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकरवारि।
यदपि मृषा तिहुँकाल महँ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥

जैसे सीपी में चाँदी और सूर्य की किरणों में जल का आभास होता है। यद्यपि तीनों कालों में सीपी में चाँदी और किरणों में जल का आभास झूठा है, तथापि उनमें चाँदी और जल के भ्रम को कोई हटा नहीं सकता।

यहिविधि जगहरिआश्रितरहई * यदपि असत्य देत दुख अहई
ज्यों सपने शिर काटै कोई * बिन जागे दुख दूरि न होई

इसी प्रकार मायारूपी संसार परमात्मा के आश्रित है। यद्यपि झूठा है, परन्तु दुःख देता है। जैसे स्वप्न में कोई सिर काटे तो उसका दुःख बिना जागे दूर नहीं होता।

जासु कृपा अस भ्रम मिटिजाई * गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई
आदि अन्त कोइ जासु न पावा * मति अनुमान निगम अस गावा

हे पार्वती, जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है, वही परम कृपालु श्रीरघुनाथजी हैं। जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं पाया, वेद भी अपनी बुद्धि के अनुमान से ऐसा कहते हैं।

बिन पद चलै सुनै बिन काना * कर बिन कर्म करै विधिनाना
आननरहित सकल रसभोगी * बिन वाणी वक्ता बड़ योगी

वह बिना पैर चलता, बिना कान सुनता, बिना हाथ भाँति-भाँति के काम करता है। बिना मुख सब रसों का स्वाद लेता और बिना जीभ वर्णों का परस्पर योग कर बोलता है।

तनु बिन परश नयन बिन देखा * गहै घ्राण बिन गन्ध अशेखा
अससबभाँति अलौकिककरणी * महिमा जासु जाय नहिं वरणी

बिना देह स्पर्श करता, बिना आँख देखता और बिना नाक सब प्रकार की गन्ध को सूँघता है। सब प्रकार से ऐसे ही अलौकिक काम करता है कि उसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

दो० जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भक्तहित, कोशलपति भगवान॥

वेद और पंडित जिनको इस भाँति गाते हैं तथा मुनि लोग जिनका ध्यान धरते हैं, वही परमात्मा अपने भक्तों के हित के लिए राजा दशरथ के पुत्र अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीरामजी हुए हैं।

काशी मरत जन्तु अवलोकी * जासु नाम बल करौं विशोकी
सोइ प्रभु मोर चराचरस्वामी * रघुवर सब उर अन्तरयामी

काशी में प्राणियों को मरते देख मैं जिस रामनाम के बल से उन्हें विशोकी (जन्ममरण रूपी दुःख से रहित) कर देता हूँ, वही चराचर जगत् के स्वामी और सबके हृदय की जाननेवाले श्रीरघुनाथजी मेरे भी स्वामी हैं।

विवशहु जासु नाम नर कहहीं * जन्म अनेक सँचित अघ दहहीं
सादर सुमिरण जो नर करहीं * भववारिधि गोपद इव तरहीं

जिसका नाम विवश होकर भी जो मनुष्य कहते हैं, उनके बहुत जन्मों के इकट्ठा किये हुए पाप भस्म हो जाते हैं और जो मनुष्य आदरसहित श्रीरामनाम का स्मरण करते हैं, वे संसारसागर को गौ के खुर के गढ़े के समान तर जाते हैं।

राम सो परमातमा भवानी * तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी
अस संशय आनत उर माहीं * ज्ञानविराग सकल गुण जाहीं

हे भवानी, रामजी परमात्मा हैं। उनके विषय में भ्रम होना, यह तुम्हारा वचन बहुत ही अनुचित है। हृदय में ऐसा सन्देह लाते ही ज्ञान; वैराग्य आदि सब गुण चले जाते हैं।

सुनि शिव के भवभञ्जन वचना * मिटि गइ सब कुतर्क की रचना
भइ रघुपतिपद प्रीति प्रतीती * दारुण असम्भावना बीती

महादेवजी के ये संसार-(जन्म-मरण) नाशक वचन सुनकर पार्वतीजी के हृदय में सब कुतर्क की रचना दूर हो गई। तब उनको श्रीरघुनाथजी के चरणों में स्नेह और विश्वास हुआ तथा कठिन असम्भावना (होनी को अनहोनी समझना) दूर हो गई।



पुनि पुनि प्रभुपदकमल गहि, जोरि पङ्करुहपानि।
बोलीं गिरिजा वचन वर, मनहुँ प्रेमरस सानि॥

बारंबार अपने स्वामी श्रीशिवजी के चरणारविन्दों को पकड़ तथा अपने कमलसरीखे हाथ जोड़ पार्वती मानो स्नेहरूपी रस में सानकर ऐसे श्रेष्ठ वचन बोलीं—

शशिकरसम सुनि गिरा तुम्हारी * मिटा मोह शरदातप भारी
तुम कृपालु सब संशय हरेउ * रामस्वरूप जानि मोहिं परेउ

चन्द्रमा की किरणों के समान (शान्तिदायक) आपकी वाणी सुन शरद्ऋतु की धूप की अधिक गर्मी के समान मेरा सन्देह दूर हो गया। हे कृपालो, आपने सब सन्देह दूर कर दिया, अब मुझको श्रीरामजी का स्वरूप जान पड़ा।

नाथ कृपा अब गयो विषादा * सुखी भइउँ प्रभुचरणप्रसादा
अब मोहिं आपनि किङ्करि जानी * यदपि सहज जड़ नारि अयानी

हे स्वामिन्, आपकी कृपा से अब मेरा दुःख गया और मैं प्रभु के प्रसन्न वचनों से सुखी हुई। यद्यपि स्त्री स्वभाव से ही जड़ और मूर्ख होती है, तो भी अब मुझे अपनी दासी जानकर—

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू * जो मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी * सर्वरहित सब उरपुरबासी

यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो जो मैंने पहले पूछा था, उसे कहिए। अविनाशी, चैतन्यमय, ब्रह्म, विश्व के सारे प्रपंच से परे और सबके हृदयरूपी पुर में बसनेवाले श्रीरामजी हैं।

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू * मोहि समुझाय कहहु वृषकेतू
उमावचन सुनि परम विनीता * रामकथा पर प्रेम पुनीता

हे वृषकेतु नाथ, उन्होंने मनुष्य की देह किस कारण धारण की? मुझसे समझाकर कहिए। पार्वती के बहुत नम्र वचन सुन और श्रीरामजी की कथा में पवित्र प्रेम देखकर


दोहा—हिय हरषे कामारि तब, शङ्कर सहज सुजान।
बहु विधि उमहिं प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान॥

कामदेव के शत्रु, सहज ज्ञानी, कृपा के धाम, शिवजी हृदय में प्रसन्न हो बहुत प्रकार से पार्वती की प्रशंसा करके बोले—


सो०—सुनु शुभकथा भवानि, रामचरितमानस विमल।
कहा भुशुण्डि बखानि, सुना विहँगनायक गरुड़॥

हे भवानी, अब निर्मल और शुभ श्रीरामचरितमानस नाम की कथा, जिसको काकभुशुण्डि ने वर्णन किया और पक्षियों के राजा गरुड़ ने सुना है, सुनो।

सो संवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ॥

वह दोनों का परोपकारक संवाद तो जिस प्रकार हुआ है, आगे कहेंगे। इस समय श्रीरामअवतार के पापनाशक निर्मल सुन्दर चरित्र सुनो।

हरिगुण नाम अपार, कथा रूप अगणित अमित।
मैं निजमति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु॥

भगवान् के गुण, नाम, कथा और रूप अपार और अनगिनत हैं; परन्तु हे उमा, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हें कहता हूँ, आदरसहित सुनो।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाये * विपुल विशद निगमागम गाये
हरि अवतार हेतु जेहि होई * इदमित्थं कहि जाय न सोई

हे गिरिजा, भगवान् के उज्ज्वल और अनगिनत सुहावने चरित्र, जिनका कि वेद और स्मृतियों ने गान किया है, सुनो। भगवान् का अवतार जिस कारण होता है, वह ठीक यही है, यह नहीं कहा जा सकता।

राम अतर्क बुद्धि मन बानी * मत हमार अस सुनहु सयानी
तदपि सन्त मुनि वेद पुराना * जस कछु कहहिंस्वमतिअनुमाना

हे भवानी, मेरा मत तो यह है कि श्रीरामजी वाणी, मन और बुद्धि से विचार में आनेवाले नहीं हैं। तो भी साधु, मुनि, वेद जैसा अपनी बुद्धि के अनुमान से कहते हैं,

तस मैं सुमुखि सुनावौं तोहीं * समुझि परै जस कारण मोहीं
जब जब होय धर्म की हानी * बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी

और जैसा कारण मुझे समझ पड़ता है, हे सुन्दर मुखवाली, वैसा ही मैं तुमको सुनाता हूँ। जब-जब धर्म की हानि और दुष्ट अधम अहङ्कारी दैत्यों की बढ़ती होती है,

करहिं अनीति जाय नहिं बरणी * सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा * हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जो कहने योग्य नहीं, तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी दुखी होते हैं, तब-तब परमात्मा, कृपा की खान, प्रभु अनेक प्रकार के शरीर धारण कर (अवतार लेकर) सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।


असुर मारि थापहिं सुरन, राखहिं निज श्रुतिसेतु।
जगविस्तारहिं विशदयश, रामजन्म कर हेतु॥

दैत्यों को मार देवताओं को बसाना, वेद की मर्यादा को ठीक रखना और संसार में उज्ज्वल यश फैलाना ही श्रीरामजी के जन्म के कारण हैं।

सोइ यश गाय गाय भव तरहीं * कृपासिन्धु जनहित तनु धरहीं
रामजन्म के हेतु अनेका * परम विचित्र एकते एका

उसी यश को गाकर मनुष्य संसार के पार होते हैं, इसलिए कृपा के सागर भगवान् भक्तों के हित के लिए देह धारण करते हैं। श्रीरामजी के जन्म लेने के कारण बहुत हैं और एक से एक अधिक विचित्र हैं।

जन्म एक दुइ कहौं बखानी * सावधान सुनु सुमति भवानी
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ * जय अरु विजय जान सब कोऊ

उनमें से दो-एक अवतार वर्णन करता हूँ। हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी, सावधान होकर सुनो। भगवान् के दोनों प्यारे द्वारपाल जय और विजय थे, जिनको सब कोई जानता है।

विप्रशाप ते दोनों भाई * तामस असुर देह तिन पाई
कनककशिपु अरु हाटकलोचन * जगतविदित सुरपतिमदमोचन

उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण के शाप से तमोगुणी दैत्य की देह पाई। एक हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष हुआ। दोनों दैत्य देवराज इन्द्र के अभिमान को मिटानेवाले संसार में प्रसिद्ध हुए।

विजयी समरवीर विख्याता * धरि वराहवपु एक निपाता
है नरहरि पुनि दूसर मारा * जन प्रह्लाद सुयश विस्तारा

वे युद्ध में बड़े वीर और जीतनेवाले प्रसिद्ध थे। परन्तु भगवान् श्रीरामजी ने वाराह का अवतार ले एक (हिरण्याक्ष) को और नृसिंह का अवतार ले दूसरे (हिरण्यकशिपु) को मार भक्त प्रह्लाद का सुयश संसार में फैलाया।


भये निशाचर जाय ते, महावीर बलवान।
कुम्भकर्ण रावण सुभट, सुरविजयी जगजान॥

तब वे दूसरे जन्म में बड़े वीर और बलवान्, देवताओं को जीतनेवाले, योद्धा रावण और कुम्भकर्ण नाम के निशाचर हुए, जिनको संसार जानता है।

मुक्त न भये हते भगवाना * तीनि जन्म द्विजवचन प्रमाना
एक बार तिनके हित लागी * धरेउ शरीर भक्तअनुरागी

वे भगवान् के भी मारने पर मुक्त नहीं हुए; क्योंकि तीन जन्मों में मुक्त होने के लिए ब्राह्मण के वचन का प्रमाण था। इस बार उनके हित के लिए भक्तों पर प्रेम करनेवाले भगवान् ने श्रीरामजी का अवतार लिया।

कश्यप अदिति तहाँ पितु माता * दशरथ कौशल्या विख्याता
एक कल्प यहि विधि अवतारा * चरित पवित्र किये संसारा

इस अवतार में कश्यप और अदिति, जो पृथ्वी में दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध थे, उनके पिता-माता हुए। एक कल्प में तो इस प्रकार भगवान् का अवतार हुआ, जिसमें संसार को पवित्र करनेवाले चरित्र किये।

एक कल्प सुर देखि दुखारे * समर जलन्धर सन सब हारे
शम्भु कीन्ह संग्राम अपारा * दनुज महाबल मरै न मारा
परम सती असुराधिप नारी * तेहि बल ताहि न जीत पुरारी

दूसरे और एक कल्प में जलन्धर दैत्य से युद्ध करके सब देवता हार गये, तब उन्हें दुखी देख शिवजी ने उस दैत्य से बहुत घोर युद्ध किया। परन्तु वह दैत्य बड़ा बली था, शिवजी के मारे न मरा; क्योंकि दैत्यराज जलन्धर की स्त्री बिंदा बड़ी पतिव्रता थी। उसके बल से शिवजी उस दैत्य को न जीत सके।


छलकरि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेइँ जान्यो मर्म सब, शाप कोप करि दीन्ह॥

तब भगवान् ने छल-कपट करके उसका पातिव्रत मिटाकर देवताओं का कार्य किया। जब बिंदा ने यह सब हाल जाना, तब क्रोध करके भगवान् को शाप दिया।

तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना * कौतुकनिधि कृपालु भगवाना
तहाँ जलन्धर रावण भयऊ * रणहति राम परमपद दयऊ

भगवान् ने उसका शाप सत्य किया; क्योंकि वह कौतुक की खान और कृपालु हैं। तब जलन्धर रावण हुआ और बिंदा के शाप से भगवान् ने रामावतार ले उसे युद्ध में मारा और अपना परमपद दिया।

एक जन्म कर कारण एहा * जेहि लगि राम धरी नरदेहा
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी * सुनि मुनि वरणी कविन घनेरी

एक जन्म का कारण यह है जिससे श्रीरामजी ने मनुष्य का शरीर धारण किया। मुनियों और कवियों ने प्रभु के हर अवतार की कथाएँ सुनकर अनेक प्रकार से वर्णन की हैं।

नारद शाप दीन्ह यक बारा * कल्प एक तेहि लगि अवतारा
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी * नारद विष्णुभक्त मुनि ज्ञानी

एक बार नारदजी ने शाप दिया था, इस कारण एक कल्प में राम अवतार हुआ। यह वचन सुन पार्वती चक्कर में आईं, वह बोलीं--नारद तो भगवान् विष्णु के बड़े भक्त, मुनि और बड़े ज्ञानी हैं।

कारण कौन शाप मुनि दीन्हा * का अपराध रमापति कीन्हा
यह प्रसङ्ग मोहिं कहहु पुरारी * मुनिमनमोह सो अचरज भारी

फिर क्या कारण है कि नारद मुनि ने शाप दिया? लक्ष्मीपति भगवान ने क्या अपराध किया था? हे त्रिपुरारि, यह कथा मुझसे कहिए। नारद मुनि के मन में ऐसा मोह होना बड़ा आश्चर्य है।



कहौं रामगुणगाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भवभञ्जन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मानमद॥

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं---हे भरद्वाज, श्रीरामजी के गुणानुवाद कहता हूँ, आदरसहित सुनिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी भवभयभंजन हैं, इससे अभिमान के मद को छोड़ उन्हें भजिए।

हिमगिरिगुहा एक अति पावनि * वह समीप सुरसरित सुहावनि
आश्रम परम पुनीत सुहावा * देखि देवऋषिमन अतिभावा

हिमवान् पर्वत की एक गुफा जो बहुत पवित्र थी और जिसके पास ही गङ्गाजी बहती थीं, वहाँ बहुत पवित्र और सुहावना आश्रम देख देवर्षि के मन में बहुत अच्छा लगा।

निरखि शैलसरिविपिनविभागा * भयो रमापति पद अनुरागा
सुमिरतहरिहि श्वासगतिबाधी * सहजविमल मन लागि समाधी

पर्वत, नदी और वन के सब भाग देख नारदजी के मन में लक्ष्मीपति भगवान के चरणों में प्रेम हुआ। श्वास की चाल रोक (प्राणायाम कर) भगवान् का स्मरण करते ही समाधि लग गई; क्योंकि नारदजी का मन स्वभाव ही से निर्मल था।

मुनिगति देखि सुरेश डराना * कामहिं बोलि कीन्ह सम्माना
सहित सहाय जाहु मम हेतू * चलेउ हर्षि हिय जलचरकेतू

नारद मुनि की दशा देख इन्द्र डर गया, इससे कामदेव को बुलाया और आदर करके कहा कि अपने सहायकों सहित मेरे लिए नारद के पास जाइए। तब कामदेव मन में प्रसन्न हो चला।

सुनासीर मन महँ अति त्रासा * चहत देवऋषि मम पुरवासा
जे कामी लोलुप जग माहीं * कुटिल काक इव सबहिं डराहीं

इन्द्र के मन में बड़ा भय है कि नारदजी मेरा स्थान (इन्द्रपद) छीनकर उसमें रहना चाहते हैं। संसार में जो कामी और लोभी हैं, वे कुटिल कौवे की तरह सबसे डरा करते हैं।



सूख हाड़ लै भाग शठ, श्वान निरखि मृगराज।
छीनलेइजनिजानिजड़, तिमिसुरपतिहि न लाज॥

जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देख सूखी हड्डी ले भागे कि यह उससे छीन न ले, ऐसी ही निर्लज्ज इन्द्र की यह समझ थी।

तेहि आश्रमहिं मदनजबगयऊ * निज माया वसन्त निर्मयऊ
कुसुमित विविध विटप बहुरङ्गा * कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृङ्गा

जब कामदेव उस आश्रम में गया तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्तऋतु उत्पन्न कर दी। भाँति-भाँति के वृक्षों में रंग-बिरंगे फूल खिल उठे। भौंरे गूँजने लगे और कोयल कुहकने लगी।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी * कामकृशानु बढ़ावनहारी
रम्भादिक सुरनारि नवीना * सकल असमशरकलाप्रवीना

शीतल, मन्द, सुगन्ध—तीनों प्रकार की सुहावनी और काम की आग को बढ़ानेवाली हवा चलने लगी। रम्भा आदि जवान अप्सराएँ, जो सब कामकलाओं में चतुर हैं,

करहिं गान बहु तानतरङ्गा * बहुविधि क्रीड़हिं पाणिपतङ्गा
देखि सहाय मदन हरषाना * कीन्हेसि पुनि प्रपञ्च विधिनाना

तानें लेकर गाने और हाथ से गेंद उछालती हुई क्रीड़ा करने लगीं। तब तो कामदेव रम्भा आदि को अपनी सहायता करते देख प्रसन्न हुआ और नारद को तप से डिगाने के लिए फिर बहुत प्रकार के उपाय करने लगा।

कामकला कछु मुनिहिं न व्यापी * निज भय डरेउ मनोभव पापी
सीम कि चांपि सकै कोउ तासू * बड़ रखवार रमापति जासू

पर कामदेव की कोई कला मुनि को नहीं डिगा सकी। तब पापी कामदेव अपने लिए डरा। जिसके सबसे बड़े रखवाले लक्ष्मीपति भगवान् हैं, उसके पास भी क्या कोई फटक सकता है?



सहित सहाय सभीत अति, हारि मानि मन मैन।
गहेसि जाय मुनिवरचरण, कहि सुठि आरतबैन॥

तब कामदेव अपने सहायकों सहित मन में हार मान बहुत डरके साथ मुनिवर के पास गया और बहुत ही दीन वचन कहकर उनके पैर पकड़ लिये।

भयो न नारदमन कछु रोषा * कहि प्रिय वचन काम परितोषा
नाइ चरण शिर आयसु पाई * गयो भवन तब सहित सहाई

नारदके मनमें कुछ क्रोध न हुआ। उलटे उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेवको सन्तुष्ट किया। तब अपने सहायकों सहित कामदेव नारदजीके चरणों में सिर नवाकर और आज्ञा पाकर चला गया।

मुनि सुशीलता आपनि करणी * सुरपतिसभा जाय सब वरणी
सुनि सबके मन अचरज आवा * मुनिहिं प्रशंसि हरिहिं शिरनावा

मुनिने अपनी सुशीलता और कामदेव को जीतने की करनी इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन की। यह हाल सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ। नारद की प्रशंसा कर सबने भगवान को सिर नवाया।

तब नारद गमने शिव पाहीं * जीति काम अहमिति मन माहीं
मारचरित शङ्करहिं सुनावा * अतिप्रिय जानि महेश सिखावा

तब नारदजी वहाँ से शिवजी के पास गये। उनके मन में कामदेव को जीतने का अहङ्कार था। शिवजी को भी नारद ने कामदेव का चरित्र सुनाया। तब शिवजी ने उन्हें अत्यंत प्रिय जानकर यह सीख दी।

बार बार बिनऊँ मुनि तोहीं * जिमि यह कथा सुनायहु मोहीं
तिमि जनि हरिहिं सुनायहु कबहूँ * चलै प्रसङ्ग दुरायहु तबहूँ

हे मुनिवर, मैं तुमसे बारंबार बिनती करता हूँ कि जैसे यह कथा मुझे सुनाई है, वैसे कहीं भगवान् विष्णु को न सुनाना; किन्तु यदि इसका प्रसङ्ग छिड़े तो भी छिपाना।



शम्भु दीन्ह उपदेशहित, नहिं नारदहिं सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरिइच्छा बलवान॥

महादेवजी ने तो हित के लिए शिक्षा दी, परन्तु नारद को वह अच्छी नहीं लगी। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि हे भरद्वाज, भगवान् की इच्छा बड़ी बलवान है। अब जो आगे इसका कौतुक हुआ, वह सुनिए।

राम कीन्ह चाहैं सोइ होई * करै अन्यथा अस नहिं कोई
शम्भुवचन मुनि मनहिं न भाये * तब विरञ्चि के लोक सिधाये

श्रीरामजी जो कुछ किया चाहते हैं, वही होता है। ऐसा कोई नहीं, जो उनके विपरीत कर सके। महादेवजी के वचन मुनि के मन को नहीं भाये। तब वह ब्रह्मा के लोक को चले गये।

एक बार करतल कर वीणा * गावत हरिगुण परम प्रवीणा
क्षीरसिन्धु गमने मुनिनाथा * जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिनाथा

एक बार हाथ में वीणा लिये भगवान् के गुण गाते हुए परम प्रवीण मुनिराज नारदजी क्षीरसागर को गये, जहाँ लक्ष्मीनिवास, वेदों के स्वामी भगवान् रहते थे।

हरषि मिले उठि रमानिकेता * बैठे आसन ऋषिहि समेता
बोले बिहँसि चराचरराया * बहुत दिनन कीन्हीं मुनि दाया

लक्ष्मीनिवास विष्णु भगवान् प्रसन्न हो उठकर मिले और आसन पर नारद ऋषिसहित बैठे

चराचर जगत् के स्वामी हँसकर बोले कि हे मुनिराज, बहुत दिनों पर आज आपने कृपा की।

कामचरित नारद सब भाखे * यद्यपि प्रथम बरजि शिव राखे
अतिप्रचण्ड रघुपति की माया * जेहि न मोह अस को जगजाया

नारद ने सब कामदेव के चरित्र कहे, यद्यपि शिवजी ने पहिले ही से मना कर रक्खा था। रघुनाथजी की माया बहुत प्रबल है—संसार में ऐसा कौन उत्पन्न हुआ है, जो माया में मोहित न हुआ हो।



रूख वदन करि वचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरण ते मिटहिं, मोह मार मद मान॥

श्रीभगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले कि तुम्हारे स्मरण करने से माया, मोह, काम आदि का मद तथा अभिमान मिट जाता है।

सुनु मुनि मोह होय मन ताके * ज्ञान विराग हृदय नहिं जाके
ब्रह्मचर्य व्रतरत मति धीरा * तुमहिं कि करै मनोभव पीरा

हे मुनिवर, मोह तो उसी के मन में होता है जिसके हृदय में ज्ञान और वैराग्य नहीं है। फिर आप तो बड़े धीर बुद्धिवाले हैं और ब्रह्मचर्यव्रत में लगे रहते हैं। भला आपको कामदेव कैसे पीड़ा पहुँचा सकता?

नारद कहेउ सहित अभिमाना * कृपा तुम्हारि सकल भगवाना
करुणानिधि मन दीख विचारी * उर अंकुरेउ गर्वतरु भारी

तब नारद ने अहङ्कारसहित कहा कि हे भगवन्, सब आपकी कृपा है। कृपा की खान श्रीभगवान् ने मन में विचारकर देखा कि इनके हृदय में बहुत बड़ा अभिमानरूपी वृक्ष उगा है।

वेगि सो मैं डारिहौं उपारी * प्रण हमार सेवकहितकारी
मुनिकर हित मम कौतुक होई * अवशि उपाय करब मैं सोई

उसे मैं जल्द उखाड़ डालूँगा; क्योंकि अपने भक्त का हित करना मेरा प्रण है। ऐसा करने से मुनि का तो हित होगा और मेरा खेल होगा, इसलिए अवश्य मैं वही उपाय करूँगा।

तब नारद हरिपद शिर नाई * चले हृदय अहमिति अधिकाई
श्रीपति निज माया तब प्रेरी * सुनहु कठिन करणी तेहिकेरी

नारदजी भगवान् के चरणों में शिर नवाकर हृदय में बहुत अभिमान कर चले। तब लक्ष्मीपति भगवान् ने अपनी माया को प्रेरणा की। अब उसकी कठिन करनी सुनिए।



विरचेउ मग महँ नगर इक, शतयोजन विस्तार॥
श्रीनिवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार॥

उस माया ने मार्ग में एक नगर बनाया, जो चार सौ कोस लम्बा था। उसमें बैकुण्ठ से भी अधिक भाँति-भाँति की रचना (बनावट) थी।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी * जनु बहु मनसिज रतितनुधारी
तेहि पुर बसै शीलनिधि राजा * अगणित हय गय सेनसमाजा

उस नगर में बहुत से स्त्री पुरुष कामदेव और रति के समान सुन्दर देह धारण किये रहते थे। उसी पुर में अनगिनत घोड़े, हाथी और बहुत सी सेनावाला शीलनिधि राजा रहता था।

शत सुरेशसम विभव विलासा * रूप तेज बल नीति निवासा
विश्वमोहिनी तासु कुमारी * श्री बिमोह जेहि रूप निहारी

उसके सौ इन्द्र के समान ऐश्वर्य का सुख था तथा रूप, प्रताप, बल और न्याय का तो वह घर ही था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक कन्या थी, जिसका रूप देख लक्ष्मीजी भी मोह जाती थीं।

सो हरिमाया सब गुणखानी * शोभा तासु कि जाय बखानी
करै स्वयंवर सो नृपबाला * आये तहँ अगणित महिपाला

वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी। उसकी शोभा कैसे वर्णन की जा सकती है ? वह राजकुमारी स्वयंवर करनेवाली थी, इसलिए वहाँ अनगिनत राजा लोग आये थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ * पुरबासिन सन बूझत भयऊ
सुनि सब चरित भूपगृह आये * करि पूजा नृप मुनि बैठाये

नारद मुनि तो कौतुकप्रिय थे ही। वह उस नगर में गये और पुरवासियों से उत्साह का कारण पूछा। सब चरित्र सुनकर वह राजभवन में आये। तब राजा शीलनिधि ने पूजन करके मुनि को बैठाया।



आनि दिखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुण दोष सब, यहिकर हृदय बिचारि ॥

राजा ने राजकुमारी को लाकर नारद को दिखाया और कहा, हे नाथ, इसके गुण-दोष सब मन में विचारकर कहिए।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी * बड़ी बार लगि रहे निहारी
लक्षण तासु बिलोकि भुलाने * हृदय हर्ष नहिं प्रकट बखाने

नारद मुनि उसका रूप देख अपने वैराग्य को भूल बड़ी देर तक उसे देखते ही रहे और उसके लक्षण देख अपने को भूल गये। उन्होंने हृदय में प्रसन्न हो प्रकट लक्षण नहीं वर्णन किये।

जो यहि बरै अमर सो होई * समरभूमि तेहि जीत न कोई
सेवहिं सकल चराचर ताही * बरै शीलनिधिकन्या जाही

लक्षण ये थे कि जो इस राजा शीलनिधि की कन्या को व्याहेगा, वह अमर होगा, संग्रामभूमि में उसे कोई जीत नहीं सकेगा और स्थावर-जङ्गम सब उसकी सेवा करेंगे।

लक्षण सब विचारि उर राखे * कछुक बनाय भूप सन भाखे
सुता सुलक्षणि कहि नृप पाहीं * नारद चले शोच मन माहीं

ये सब लक्षण विचारकर मुनि ने मन ही में रहने दिये और राजा से कुछ बनाकर कह दिया। 'तुम्हारी कन्या सुन्दर लक्षणोंवाली है' यह राजा से कहकर नारदजी मन में सोचते हुए चले।

करौं जाय सोइ यत्न विचारी * जेहि प्रकार मोहिं वरै कुमारी
जप तप कछु न होय यहिकाला * हे विधि मिलै कौन विधि बाला

अब विचारकर वही उपाय करूँ, जिससे मुझे राजकुमारी अपना पति बनावे। इस समय जप, तप कुछ भी नहीं हो सकता। हे विधाता! किस प्रकार यह कन्या मिलेगी।


यहि अवसर चाहिय परम, शोभा रूप विशाल।
जो विलोकि रीझै कुँवरि, अरु मेलै जयमाल॥

इस समय तो बहुत शोभा और बड़ा रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी प्रसन्न हो और जयमाला पहना दे।

हरिसन माँगौं सुन्दरताई * होइहि जात गहरु अति भाई
मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ * यहि अवसर सहाय सो होऊ

भगवान् से सुन्दरता माँगूँ तो उनके पास जाने में बड़ी देर लगेगी। मेरा हितू तो भगवान् के समान कोई नहीं है। वही इस समय सहाय हों।

बहुविधिविनयकीन्हतेहि काला * प्रकटे प्रभु कौतुकी कृपाला
प्रभु विलोकि मुनिनयन जुड़ाने * होइहि काज हिये हरषाने

उस समय नारद ने बहुत प्रकार से हरि की विनती की तब कौतुकी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। भगवान् को देख मुनि के नेत्र शीतल हो गये और काम हो जायगा, यह समझ वह मन में प्रसन्न हुए।

अति आरत कहि कथा सुनाई * करहु कृपा प्रभु होहु सहाई
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं * आन भाँति नहिं पावहुँ वोहीं

उन्होंने बहुत व्याकुल होकर सब कथा कह सुनाई। फिर बोले--हे प्रभो, कृपा करो इस काम में सहाय होइए। हे स्वामिन्! अपना रूप मुझे दीजिए, दूसरे प्रकार से उसे नहीं पाऊँगा।

जेहि विधि होय नाथ हित मोरा * करौ सो वेगि दास मैं तोरा
निज माया बल देखि विशाला * हिय हँसि बोले दीनदयाला

हे नाथ, जिस तरह मेरा हित हो, वही शीघ्र कीजिए। मैं आपका दास हूँ। तब दीन पुरुषों पर दया करनेवाले भगवान् अपनी माया का प्रबल बल देख मन में हँसकर बोले--



जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार॥

हे नारद, जिस प्रकार तुम्हारा हित होगा, वही मैं करूँगा, और कुछ नहीं। मेरा कहना झूठ नहीं होता।

कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी * वैद्य न देय सुनहु मुनियोगी
यहिविधि हित तुम्हार मैं ठयऊ *कहिअस अन्तरहित प्रभु भयऊ

हे मुने, हे योगी, सुनो। जैसे रोगी अपने रोग से व्याकुल हो कुपथ्य माँगता है; परन्तु वैद्य नहीं देता, वैसे ही मैंने यह तुम्हारा हित ठाना है। ऐसा कह भगवान अन्तर्धान हो गये।

मायाविवश भये मुनि मूढ़ा * समुझी नहिं हरिगिरा निगूढ़ा
गमने तुरत तहाँ ऋषिराई * जहाँ स्वयंवरभूमि बनाई

माया के वश नारदमुनि मूढ़ हो ही रहे थे। भगवान की गूढ़ अभिप्रायवाली वाणी को उन्होंने नहीं समझा। जहाँ सुहावनी स्वयंवरभूमि थी, वहाँ ऋषिराज नारदजी तुरन्त गये।

निज निज बैठे आसन राजा * बहु बनाव करि सहित समाजा
मुनिमन हर्ष रूप अतिमोरे * मोहिं तजि आनहि बरहि नहिं भोरे

राजालोग बहुत ठाटकर समाजसहित अपने-अपने आसन पर बैठे थे। नारदमुनि के मन में यह प्रसन्नता थी कि मुझमें बहुत रूप है, इससे मुझे छोड़ दूसरे को भूल से भी कन्या नहीं ब्याहेगी।

मुनिहित कारण कृपानिधाना * दीन्ह कुरूप न जाय बखाना
सो चरित्र लखि काहु न पावा * नारद जानि सबहिं शिरनावा

मुनि की भलाई के लिए कृपानिधान भगवान ने उनको ऐसा रूप कर दिया, जो कहने योग्य नहीं। पर उस चरित्र अर्थात् मुनि के कुरूप को कोई देख भी नहीं सका। सबने नारद जानकर उन्हें सिर नवाया।



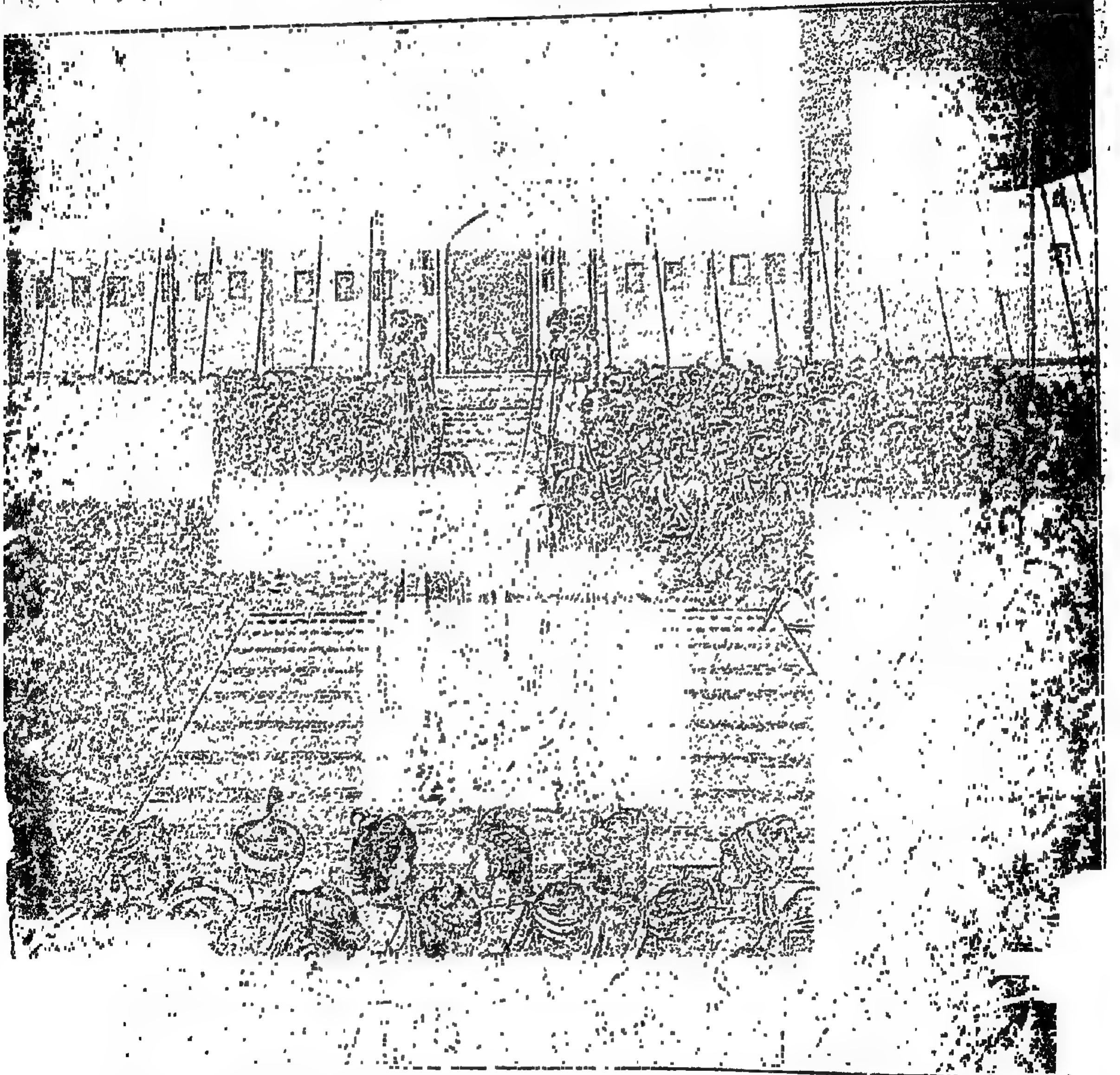
रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्ररूप देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥

वहाँ महादेवजी के दो गण थे, जो सब हाल जानते थे। वे ब्राह्मण के रूप में सब देखते फिरते थे: क्योंकि वे भी बड़े कौतुकी थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई * हृदय रूप अहमिति अधिकाई
तहँ बैठे महेशगण दोऊ * विप्रवेश गति लखै न कोऊ

जिस मंडली में नारदजी अपने रूप के अभिमान से जा बैठे थे, वहीं शिवजी के दोनों गण बैठ गये। ब्राह्मण के भेष में होने से उनको कोई पहचानता न था।

विश्वमोहिनी स्वयंवर ।



सखीं सङ्ग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल । देखत फिरै महीप सब, करसरोज जयमाल ॥
जेहि दिशि बैठे नारद फूली । सो दिशि तेहूँ न विलोकेउ भूली ॥

करहिं कूट नारदहिं सुनाई * नीकि दीन्ह हरि सुन्दरताई
रीझहि राजकुँवरि छबि देखी * इनहिं बरहि हरि जानि विशेखी

नारद को सुनाकर कूट वचन कहते थे कि भगवान् ने अच्छी सुन्दरता दी है। राज-कुमारी शोभा देखकर प्रसन्न हो जायगी और इनको भगवान् ही जानकर पति बनावेगी।

मुनिहि मोह मन हाथ पराये * हँसहिं शम्भुगण अतिसचुपाये
यदपि सुनहिं मुनिअटपटि बानी * समुझि न परै बुद्धिभ्रमसानी

नारद के मन में तो मोह था, इसलिए वह उनका कहना ठीक समझकर कहते थे कि पराये हाथ की बात है, तब रुद्रगण चुपके-से हँसते थे। यद्यपि नारदमुनि उनके कूट सुनते थे; परन्तु बुद्धि तो भ्रम से लिपटी थी, इसलिए उन्हें समझ नहीं पड़ती थी।

काहु न लखा सो चरित विशेखा * सो स्वरूप मुनि कन्या देखा
मरकटवदन भयङ्कर देही * देखत हृदय क्रोध भा तेही

उस विशेष चरित्र को कोई न देख सका। कन्या ने मुनि के उस रूप को देखा। बन्दर का मुँह और डरावनी देह थी। जिसके देखते ही उसके हृदय में क्रोध हुआ।



सखी सङ्ग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखति फिरै महीप सब, करसरोज जयमाल॥

तब सखी को साथ लिये राजहंसिनी-सी राजकुमारी चली और कमल-सरीखे हाथ में जयमाला लिये सब राजाओं को देखती फिरने लगी।

जेहि दिशि बैठे नारद फूली * सो दिशि तेइँ न विलोकेउ भूली
पुनिपुनिमुनिउकसहिंअकुलाहीं * देखि दशा हरगण मुसुकाहीं

जिस ओर नारद अभिमान में फूले बैठे थे, उस ओर भूल से भी उस राजकुमारी ने न देखा। नारद मुनि बारबार व्याकुल हो उचकते थे। इनकी दशा देख रुद्र के गण मुस्कराते थे।

धरि नृपतनु तहँ गये कृपाला * कुँवरि हरषि मेली जयमाला
दुलहिनि लैगे लक्ष्मिनिवासा * नृपसमाज सब भयो निरासा

कृपालु भगवान् भी राजा बनकर वहाँ गये। राजकुमारी ने प्रसन्न हो उन्हें जयमाला पहना दी। लक्ष्मीनिवास भगवान् जब दुलहिन को ले गये, तब राजसमाज निराश हो गया।

मुनि अति विकलमोहमतिनाठी * मणि गिरि गई छूटि जनु गाँठी
तब हरगण बोले मुसुकाई * निज मुख मुकुर विलोकहु जाई

नारद मुनि बहुत व्याकुल हुए। मोह से उनकी बुद्धि नष्ट हो गई, मानो गाँठ से मणि छूटकर गिर गई। तब शिवजी के गण मुस्कराकर बोले, अपना मुँह तो शीशे में जाकर देखो।

असकहि दोउ भागे भय भारी * वदन दीख मुनि बारिनिहारी
वेष विलोकि क्रोध अतिबाढ़ा * तिनहिं शाप दीन्हा अतिगाढ़ा

ऐसा कह दोनों बहुत डरकर भाग गये। नारद मुनि ने जल में झाँककर मुख देखा। अपना रूप देखकर उनके मन में बहुत ही क्रोध बढ़ा। तब उन्होंने रुद्र के गणों को बहुत कठिन शाप दिया—



होहु निशाचर जाय तुम, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेउ मुनि कोउ॥

तुम दोनों कपटी, पापी राक्षस होओ। मुझको हँसा, उसका फल लो। अब फिर किसी मुनि को हँसना।

पुनि जल दीख रूप निज पावा * तदपि हृदय सन्तोष न आवा
फरकत अधर कोप मन माहीं * सपदि चले कमलापति पाहीं

नारद ने फिर जल में देखा तो अपना पहले का स्वरूप पाया। परन्तु तब भी हृदय को सन्तोष न हुआ। मन में क्रोध होने से उनके होंठ फड़कते थे। वह जल्दी से लक्ष्मीपति भगवान् के पास चले।

देहौं शाप कि मरिहौं जाई * जगत मोर उपहास कराई
बीचहि पन्थ मिले दनुजारी * सङ्ग रमा सोइ राजकुमारी

सोचते थे, या तो शाप दूँगा या जाकर मरूँगा; क्योंकि उन्होंने संसार में मेरी हँसी कराई है। बीच राह में दैत्यों के मारनेवाले भगवान् मिले, साथ में लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थी।

बोले मधुर वचन सुरसाईं * मुनि कहँ चलेउ विकल की नाईं
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा * माया वश न रहा मन बोधा

देवताओं के स्वामी भगवान् मीठे वचन बोले कि हे मुने, व्याकुल से कहाँ जाते हो? यह वचन सुनते ही नारद के बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। वह माया के वश तो थे ही, मन में बोध नहीं रहा।

परसम्पदा सकहु नहिं देखी * तुम्हरे ईर्षा कपट विशेखी
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायहु * सुरन प्रेरि विषपान करायहु

नारद ने कहा—तुम्हारे ईर्ष्या कपट बहुत है; तुम पराई सम्पदा या बढ़ती नहीं देख सकते। समुद्र मथने के समय महादेव को पागल बना दिया, देवताओं को भेज उन्हें विष पिलाया।



असुर सुरा विष शङ्करहिं, आप रमा मणिचारु।
स्वारथसाधक कुटिल तुम, सदा कपट व्योहारु॥

दैत्यों को मदिरा, महादेव को विष दिया तथा आप सुन्दर कौस्तुभमणि और लक्ष्मी ले ली। तुम सदा से कुटिल, कपट व्यवहारवाले तथा अपने मतलब के साधनेवाले हो।

परम स्वतन्त्र न शिर पर कोई * भावै मनहिं करहु तुम सोई
भले मन्द मन्दहि भल करहू * विस्मय हर्ष न मन कछु धरहू

बड़े स्वतन्त्र हो, सिर पर कोई नहीं है, इससे जो मन में अच्छा लगता है वही करते हो। अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा करते हो तथा मन में कुछ भी विस्मय और हर्ष नहीं रखते।

डहकि डहकि परचेहु सब काहू * अति अशङ्क मन सदा उछाहू
कर्म शुभाशुभ तुमहिं न बाधा * अब लगि तुम्हैं न काहू साधा

सबको डहक-डहककर परके हो। सदा ऐसे ही कामों के लिए तुम्हारे मन में उत्साह रहता है; क्योंकि तुम बहुत निःशङ्क हो। अच्छा और बुरा कर्म तुमको बाधा नहीं पहुँचाता और अब तक किसी ने तुम्हें सीधा भी नहीं किया।

भले भवन अब बायन दीन्हा * पावहुगे फल आपन कीन्हा
बञ्चेउ मोहिं जौन धरि देहा * सोइ तनु धरहु शाप मम एहा

अब भले घर बायन दिया है; अपने किये का फल पाओगे। जो देह रखकर मुझे ठगा है, वही देह धारण करो—यह मेरा शाप है।

कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी * करिहहिं कीश सहाय तुम्हारी
मम अपकार कीन्ह तुम भारी * नारिविरह तुम होब दुखारी

तुमने हमारी आकृति बन्दर की सी कर दी थी, इसलिए बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने हमारा बहुत निरादर किया, इससे स्त्री के विरह में दुखी होगे।

दो० शाप शीशधरि हर्षिहिय, प्रभु सुरकारज कीन्ह।
निज माया की प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्ह॥

मन में प्रसन्न हो नारद का शाप सिर पर रख प्रभु ने देवताओं का काम किया। फिर कृपानिधि श्रीभगवान् ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली।

जब हरि माया दूरि निवारी * नहिं तहँ रमा न राजकुमारी
तब मुनि अतिसभीत हरिचरणा * गहे पाहि प्रणतारतिहरणा

जब भगवान् ने माया दूर कर दी, तब वहाँ न लक्ष्मीजी रहीं और न वह राजकुमारी। तब मुनि बहुत डरे। मुनि ने भगवान् के चरण छुए और कहा हे शरणागत के दुःख हरनेवाले, रक्षा कीजिए।

मृषा होउ मम शाप कृपाला * मम इच्छा कह दीनदयाला
मैं दुर्वचन कहेउँ बहुतेरे * कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे

हे कृपालु, मेरा शाप झूठा हो जाय। तब भगवान् ने कहा—मेरी ही इच्छा ऐसी थी। नारद मुनि ने कहा—मैंने आपको बहुत से दुर्वचन कहे हैं; ये मेरे पाप कैसे दूर होंगे।

जपहु जाय शङ्कर शत नामा * होइहि हृदय तुरत विश्रामा
कोउ नहिं शिवसमान प्रिय मोरे * अस प्रतीति त्यागहु जनि भोरे

भगवान् ने कहा—महादेवजी के एकसौ नाम जपो, शीघ्र मन को शान्ति मिलेगी। मुझको शिवजी के समान कोई प्यारा नहीं है—भूल से भी ऐसा विश्वास न छोड़ना।

जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी * सो न पाव मुनि भक्ति हमारी
अस उर धरि महि विचरहु जाई * अब न तुमहिं माया नियराई

'जिसके ऊपर शिवजी कृपा नहीं करते, हे मुनि, वह हमारी भक्ति नहीं पा सकता'—ऐसा विश्वास मन में रख पृथ्वी में घूमो ; अब तुम्हारे पास माया नहीं आवेगी।


बहुविधि मुनिहिं प्रबोधिप्रभु, तब भये अन्तर्द्धान।
सत्यलोक नारद चले, करत रामगुणगान॥

नारद मुनि को भली भाँति समझाकर प्रभु तो अन्तर्द्धान हो गये और नारदजी श्रीरामजी के गुणानुवाद गाते सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को चले।

हरगण मुनिहिं जात पथ देखी * विगत मोह मन हर्ष विशेखी
अति सभीत नारद पहँ आये * गहि पद आरतवचन सुनाये

रुद्र के गणों ने नारद को मोहरहित, बहुत प्रसन्नमन राह में जाते देखा। वे बहुत डरते हुए नारद के पास आये। उन्होंने मुनि के चरण पकड़ दुःख से भरे हुए वचन यों सुनाये—

हरगण हम न विप्र मुनिराया * बड़ अपराध कीन्ह फल पाया
शाप अनुग्रह करहु कृपाला * बोले नारद दीनदयाला

हे मुनिराज, हम ब्राह्मण नहीं, महादेव के गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया और उसका फल भी पाया। हे कृपालु, अब जिसमें शाप मिटे, वह अनुग्रह कीजिए। तब दीनदयालु नारदजी बोले—

निशिचर जाय होउ तुम दोऊ * वैभव विपुल तेज बल होऊ
भुजबल विश्व जितब तुम जबहीं * धरिहैं विष्णु मनुजतनु तबहीं

तुम दोनों जाकर बड़े ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी और बली राक्षस होओ। जब अपनी भुजाओं के बलसे संसार को जीत लोगे तब (तुम्हें मारने के लिए) श्रीविष्णु भगवान् मनुष्य की देह धारण करेंगे।

समर मरण हरिहाथ तुम्हारा * होइहहु मुक्त न पुनि संसारा
चले युगल मुनिपद शिरनाई * भये निशाचर कालहि पाई

युद्ध में भगवान् के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी और तुम मुक्त हो जाओगे। फिर संसार में जन्ममरण न होगा। तब वे दोनों नारदमुनि के चरणों में सिर नवाकर चले गये और समय पाकर राक्षस हुए।


एक कल्प यहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुररञ्जन सज्जन सुखद, हरि भञ्जन भूभार॥

प्रभु ने एक कल्प में इस कारण से मनुष्य का अवतार लिया; क्योंकि भगवान् अवतार ले, देवताओं से प्रीति कर उनका काम करते, साधुओं को सुख देते और पृथ्वी का भार दूर करते हैं।

यहि विधि जन्म कर्म हरि केरे * सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं * चारु चरित नाना विधि करहीं

इस प्रकार भगवान् के जन्म और चरित्र सुन्दर और सुख देनेवाले बहुत विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प में भगवान् अवतार लेते और अनेक प्रकार के सुन्दर चरित्र करते हैं।

तब तब कथा मुनीशन गाई * परम पुनीत प्रबन्ध बनाई
विविध प्रसङ्ग अनूप बखाने * करहिं न सुनि आश्चर्य सयाने

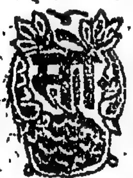
उन उन कल्पों की बहुत पवित्र कथा को ग्रंथ रचकर मुनिश्रेष्ठों ने गाया है। उस अनुपम कथा के प्रसङ्ग भाँति-भाँति से वर्णन किये गये हैं। लोग उन्हें सुन आश्चर्य नहीं करते।

हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता * कहहिं सुनहिं बहुविधि सबसन्ता
रामचन्द्र के चरित सुहाये * कल्प कोटि निगमागम गाये

जैसे भगवान् का अन्त नहीं, वैसे ही उनकी कथा का अन्त नहीं है, जिसे सब सज्जन बहुत प्रकार से कहते-सुनते हैं। वेदों और स्मृतियों ने श्रीरामजी के सुहावने चरित्र करोड़ों कल्पों के कहे हैं।

यह प्रसङ्ग मैं कहा बखानी * हरिमाया मोहे मुनि ज्ञानी
प्रभु कौतुकी प्रणत हितकारी * सेवत सुलभ सकल दुखहारी

यह प्रसङ्ग मैंने वर्णन किया कि भगवान् की माया में ज्ञानी नारद भी मोहित हुए। प्रभु भक्तों का हित और कौतुक करनेवाले हैं। वह सेवा करने से सहज में प्राप्त होने और सब दुःखों को हर लेते हैं।


सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मनमाहिं, भजिय महा मायापतिहिं॥

देवता, मनुष्य, मुनि, कोई ऐसा नहीं है, जिसको हरि की प्रबल माया न मोह सके। ऐसा मन में विचारकर महामाया के स्वामी श्रीरामजी की सेवा करनी चाहिए।

अपर हेतु सुनु शैलकुमारी * कहौं विचित्र कथा विस्तारी
जेहि कारण अज अगुण अनूपा * ब्रह्म भयो कोशलपुरभूपा

हे पार्वती, अब भगवान् के अवतार का दूसरा कारण सुनो। उस आश्चर्य भरी कथा को विस्तार के साथ कहता हूँ, जिस कारण जन्मरहित, निर्गुण और उपमारहित ब्रह्म अयोध्यापुरी के राजा हुए।

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा * बन्धु समेत किये मुनिवेखा
जासु चरित अवलोकि भवानी * सतीशरीर रहिउ बौरानी

तुमने भाई लक्ष्मणसहित मुनि का वेष बनाये जिन प्रभु को वन में घूमते हुए देखा था और हे भवानी, जिनका चरित्र देख तुम पूर्वजन्म में, सती की देह में पागलसी हो गयी थीं।

अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी * तासु चरित सुनु भ्रमरुजहारी
लीला कीन्ह जो तेहि अवतारा * सो सब कहिहौं मतिअनुसारा

जिस भ्रम से पागलपन की छाया तुममें आज भी नहीं मिटती, उस भ्रमरूपी रोग को दूर करनेवाले उस परमात्मा के चरित्र सुनो। उस अवतार में भगवान ने जो लीलाएँ की हैं, सो सब मैं बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

भरद्वाज सुनि शङ्करबानी * सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी
लगे बहुरि बरणै वृषकेतू * सो अवतार भयो जेहि हेतू

हे भरद्वाज, पार्वतीजी महादेवजी के वचन सुन पूर्वजन्म के सन्देह के सङ्कोच और भ्रम के दूर हो जाने से स्नेह सहित मुसकराईं। तब वह अवतार जिस कारण से हुआ था, उसे शिवजी वर्णन करने लगे।


सो मैं तुम सन कहहुँ सब, सुनु मुनीश मन लाय।
रामकथा कलिमलहरणि, मङ्गलकरणि सुहाय॥

हे मुनीश भरद्वाज, मैं तुमसे वह सब कहता हूँ, मन लगाकर सुनो; क्योंकि श्रीरामजी की कथा कलियुग के पाप हरने और मङ्गल करनेवाली तथा सुहावनी है।

स्वायम्भुव मनु अरु शतरूपा * जिनते भइ नरसृष्टि अनूपा
दम्पतिधर्म आचरण नीका * अजहुँ गाव श्रुति जिनकी लीका

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा, जिनसे यह उत्तम मनुष्यों की सृष्टि हुई, जिनका स्त्री-पुरुष के धर्म का आचरण बहुत अच्छा था और आज भी वेद जिनकी लीक (वर्णाश्रमों का धर्मरूप मार्ग) को कहते हैं—

नृप उत्तानपाद सुत तासू * ध्रुव हरिभक्त भयो सुत जासू
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही * वेद पुराण प्रशंसत जाही

उनके बड़े पुत्र राजा उत्तानपाद थे, जिनके पुत्र ध्रुवजी भगवान के भक्त हुए। छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, जिनकी प्रशंसा वेद-पुराण करते हैं।

देवहुती पुनि तासु कुमारी * जो मुनि कर्दम की अति प्यारी
आदिदेव प्रभु दीनदयाला * जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला

उन्हीं मनु के देवहूति नाम की पुत्री थी, जो कर्दम मुनि की बहुत प्यारी स्त्री थी। देवहूति ने अपने गर्भ में आदिदेव दीनदयालु भगवान् कपिलदेव को धारण किया।

सांख्यशास्त्र जिन प्रकट बखाना * तत्त्वविचार निपुण भगवाना
तेहि मनु राज्य कीन्ह बहुकाला * प्रभुआयसुबहुविधिप्रतिपाला

तत्त्वज्ञान के विचारमें चतुर उन भगवान कपिलदेवजी ने सांख्यशास्त्र को प्रकट किया। स्वायम्भुव

मनु ने बहुत समय तक राज्य किया और भगवान् की आज्ञा का पालन बहुत प्रकार से किया।



होय न विषयविराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयो हरिभक्ति बिन॥

घर में रहते चौथापन (वृद्धावस्था) आया, परन्तु उनको विषयों से वैराग्य नहीं हुआ। यह सोच उनके मन में बहुत दुःख हुआ कि भगवान् की भक्ति के विना यह जन्म व्यर्थ चला गया।

बरबस राज्य सुतहिं तब दीन्हा * नारिससेत गमन बन कीन्हा
तीरथवर नैमिष विख्याता * अतिपुनीत साधक सिधिदाता

तब विरक्त होकर इच्छा न रहने पर भी पुत्र को राज्य दे रानी शतरूपा सहित वह वन को चले गये। तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य, जो बहुत पवित्र और साधन करनेवालों को सिद्धि का देनेवाला प्रसिद्ध है—

बसहिं जहाँ मुनि सिद्धसमाजा * तहँ हिय हरषि चले मनुराजा
पन्थ जात सोहहिं मतिधीरा * ज्ञान भक्ति जनु धरे शरीरा

और जहाँ पर सिद्धों की मंडली रहती है, वहाँ राजा मनु मन में प्रसन्न हो चले। मार्ग में जाते हुए वे दोनों धीरमति पति-पत्नी देह धारण किये ज्ञान और भक्ति के समान शोभायमान हुए।

पहुँचे जाय धेनुमतितीरा * हरषि नहाने निर्मल नीरा
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी * धर्मधुरन्धर ऋषि मुनि जानी

वे गोमती के किनारे जा पहुँचे और प्रसन्न हो निर्मलजल में स्नान किया। सिद्ध, मुनि और आत्मज्ञानी लोग राजा को धर्म की धुरी धरनेवाले ऋषि-मुनि जानकर मिलने आये।

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये * मुनिन सकल सादर करवाये
कृशशरीर मुनिपट परिधाना * सन्तसभा नित सुनहिं पुराना

मुनियों ने जहाँ-तहाँ जितने सुहावने तीर्थ थे, सो सब राजा को आदरसहित करवाये। राजा मनु दुर्बल देह में मुनियों के से वस्त्र पहने साधुओं की सभा में नित्य पुराण सुनने लगे।



द्वादश अक्षर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पङ्करुह, दम्पति मन अति लाग॥

वे बारह अक्षरों का श्रेष्ठ मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) भक्तिसहित जपने लगे। स्त्री-पुरुष दोनों का मन भगवान् वासुदेव के चरणारविन्दों में खूब लग गया।

करहिं अहार शाक फल कन्दा * सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा
पुनि हरिहेतु करन तप लागे * वारिअहार मूल फल त्यागे

साग, फल और मूल भोजन करते तथा सत्-चिद्-आनन्द-स्वरूप ब्रह्म का स्मरण करते।

फिर फल-मूल आदि छोड़ केवल जल-पान करते हुए भगवान् के लिए तपस्या करने लगे।

उर अभिलाष निरन्तर होई * देखिय नयन परम प्रभु सोई
अगुण अखण्ड अनन्त अनादी * जेहि चिन्तहिं परमारथवादी

मन में नित्य यह इच्छा होती थी कि उसी तीनों गुणों से परे, अद्वितीय, अन्त और आदि से रहित परमेश्वर को आँखों से देखें, जिसका ब्रह्मवादी पुरुष चिन्तन करते हैं—

नेति नेति जेहि वेद निरूपा * चिदानन्द निरुपाधि अनूपा
शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना * उपजहिं जासु अंश ते नाना

वेदों ने जिस उपमा और नामरूपरहित चैतन्यानन्दस्वरूप परमात्मा को नेति-नेति कहकर लक्षित किया है और जिसके अंश से अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं।

ऐसे प्रभु सेवकवश अहहीं * भक्तहेतु लीला तनु गहहीं
जौ यह वचन सत्य श्रुतिभाषा * तौ हमारि पूजहिं अभिलाषा

वह ऐसे स्वामी हैं कि सेवक के अधीन रहते और भक्तों के लिए लीला देह धारण करते हैं। यदि वेद ने यह वचन सत्य कहा होगा तो हमारे मनोरथ सिद्ध होंगे।


यहि विधि बीते वर्ष षट, सहस वारि आहार।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार॥

इस प्रकार केवल जल का आहार करते हुए छः हजार वर्ष बीत गये। फिर जल भी छोड़ दिया और सात हजार वर्ष तक हवा फाँककर रहे।

वर्ष सहसदश त्यागेउ सोऊ * ठाढ़े रहे एक पद दोऊ
विधि हरि हर तप देखि अपारा * मनुसमीप आये बहुबारा

फिर दस हजार वर्ष तक उसे भी छोड़ एक पैर से खड़े रहे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपार तप (अखण्ड समाधि) देख मनु के पास बहुत बार आये—

माँगहु वर बहुभाँति लुभाये * परमधीर नहिं चलहिं चलाये
अस्थिमात्र ह्वै रहे शरीरा * तदपि मनागपि नहिं मनपीरा

और बहुत प्रकार से लुभाया कि वरदान माँगो; परन्तु वे तो बड़े धीर थे। विषयवासना में चलायमान न हुए। किन्तु भक्ति में दृढ़ रहे। उनके शरीर हड्डी का ढाँचा हो रहे थे तो भी मन में कुछ पीड़ा नहीं थी।

प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी * गति अनन्य तापस नृपरानी
माँगु माँगु वर भै नभवानी * परम गँभीर कृपामृतसानी

प्रभु तो सर्वज्ञ हैं। तप करते हुए राजा रानी को अपना अनन्य दास जान उन्होंने 'वरदान माँगो' यह कृपारूपी अमृत से सनी हुई बहुत गम्भीर आकाशवाणी की।

मृतक जियावनि गिरा सुहाई * श्रवणरन्ध्र ह्वै उर जब आई
हृष्ट पुष्ट तनु भये सुहाये * मानहुँ अबहिं भवन ते आये

मुर्दे को भी जिलानेवाली यह सुहावनी वाणी जब कानों के छिद्र में होकर हृदय में आई, तब उनके शरीर ऐसे सुन्दर हृष्टपुष्ट हो गये, मानों अभी घर से आये हैं।



श्रवण सुधासम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात॥

कानों से अमृत के समान वचन सुन उनके अंग प्रसन्नता से फूल उठे। प्रेम उनके हृदय में नहीं समाता था। तब राजा मनु दण्डवत् करके बोले—

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू * विधि हरि हर वन्दित पदरेनू
सेवत सुलभ सकल सुखदायक * प्रणतपाल सचराचर नायक

आप भक्तों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु के समान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके चरणों की रज की वन्दना करते हैं। आप सेवा करने से सहज में ही प्राप्त होने और सब प्रकार के सुख देते हैं। आप शरणागत की रक्षा करनेवाले और सब चराचर संसार के स्वामी हैं।

जो अनाथहित हम पर नेहू * तौ प्रसन्न ह्वै यह वर देहू
जो स्वरूप बस शिव मनमाहीं * जेहि कारण मुनि यतन कराहीं

हे अनाथों का हित करनेवाले, यदि आपका मेरे ऊपर स्नेह हो तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए कि आपका जो स्वरूप शिवजी के मन में रहता है, जिसके लिए मुनि लोग उपाय करते हैं।

जो भुशुण्डि मनमानससहंसा * सगुणअगुणजेहिनिगमप्रशंसा
देखहिं सो स्वरूप भरिलोचन * कृपा करहु प्रणतारतिमोचन

जो कागभुशुण्डि के मानसरोवररूपी मन में हंस के समान रहता है, वेद जिसकी प्रशंसा सगुण और निर्गुण के भेद से करते हैं, वह रूप हम आँख भर के देखें। हे शरणागत के दुःख छुड़ानेवाले, कृपा कीजिए।

दम्पति वचन परमप्रिय लागे * मृदुल विनीत प्रेमरस पागे
भक्तवत्सल प्रभु कृपानिधाना * विश्ववास प्रकटे भगवाना

मनु और शतरूपा के नम्र, नीतियुक्त और स्नेहरस से भरे ये वचन भगवान् को बहुत प्यारे लगे। तब सारे संसार में रहने तथा भक्तों पर स्नेह करनेवाले, स्वामी कृपानिधान भगवान् प्रकट हुए।



नीलसरोरुह नीलमणि, नीलनीरधर श्याम।
लाजहिं तनुशोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम॥

नीलकमल, नीलमणि और नीले बादल के समान श्याम शरीर की शोभा देख सैकड़ों करोड़ काम लजाते थे।

शरदमयङ्क वदन छवि सींवा * चारु कपोल चिबुक दरग्रीवा
अधर अरुण रद सुन्दर नासा * विधुकरनिकर विनिन्दक हासा

शोभा की खान मुख शरदऋतु के चन्द्रमा के समान था। गाल और ठोढ़ी बहुत सुन्दर तथा कण्ठ शंख के समान था। ओठ लाल, दाँत और नासिका सुन्दर तथा मुसकिराना चन्द्रमा की किरणों के समूह की निन्दा करनेवाला था।

नवअम्बुज अम्बकछवि नीकी * चितवनि ललित भावती जीकी
भृकुटि मनोजचाप छविहारी * तिलक ललाटपटल द्युतिकारी

नये कमल के समान नेत्रों की शोभा बहुत ही अच्छी थी। उनकी प्यारी चितवन मनभावनी थी। भौंहें कामदेव के धनुष की शोभा को हरती थीं। मस्तक में बिजली के प्रकाश के समान तिलक था।

कुण्डलमकर मुकुट शिर भ्राजा * कुटिलकेश जनु मधुपसमाजा
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला * पदिकहार भूषण मणिजाला

कानों में मकराकृति कुण्डल और शीश में मुकुट विराजमान था। घुँघुवारे बाल मानों भौंरों के समूह थे। हृदय में श्रीवत्स चिह्न (भृगु के पदाघात का चिह्न) था। सुन्दर वनमाला, हीरों के हार और रत्नजटित गहने शोभायमान थे।

केहरिकन्धर चारु जनेऊ * बाहुविभूषण सुन्दर तेऊ
करिकरसरिस सुभग भुजदण्डा * कटि निषङ्ग कर शर कोदण्डा

सिंह के समान ऊँचे कंधे, मनोहर जनेऊ और हाथों के गहने भी सुन्दर थे। हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर भुजदण्ड थे। कमर में तरकस बाँधे और हाथों में धनुषबाण लिये थे।



तड़ितविनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, यमुनभँवर छविछीनि॥

बिजली की निन्दा करनेवाला पीताम्बर धारण किये थे। पेट में तीन त्रिवली पड़ी थीं। और नाभि ऐसी मनोहर थी, मानों यमुना के भँवर की शोभा छीन लेती है।

पद राजीव वरणि नहिं जाहीं * मुनिमनमधुप वसहिं जिनमाहीं
वामभाग शोभित अनुकूला * आदिशक्ति छविनिधि जगमूला

जिनमें मुनियों के मन भौंरों के समान रहते हैं, उन चरणारविन्दों की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। बाईं ओर संसार की मूल, शोभा की खान, आदिशक्ति सीताजी भगवान् के अनुकूल शोभायमान थीं।

जासु अंश उपजहिं गुणखानी * अगणित उमा रमा ब्रह्मानी
भृकुटिविलास जासु जग होई * रामवामदिशि सीता सोई

जिसके अंश से अनगिनत गुणों की खान पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती उत्पन्न होती हैं, जिसकी भौंहों के इशारे से संसार की सृष्टि, पालन और संहार होता है, वही सीताजी श्रीरामजी के बाईं ओर विराजमान थीं।

छविसमुद्र हरिरूप विलोकी * इकटक रहे नयनपट रोकी
चितवहिं सादर रूप अनूपा * तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा

शोभा के सागर भगवान् का रूप देख मनु व रानी आँखों के पट रोक एकटक देखते रहे। मनु और शतरूपा आदरसहित उत्तम स्वरूप देख रहे थे, पर उन्हें तृप्ति नहीं होती थी।

हर्षविवश तनुदशा भुलानी * परे दण्डइव गहि पद पानी
शिर परसे प्रभु निजकरकञ्जा * तुरत उठाये करुणापुञ्जा

वे आनन्द की अधिकता से देह की दशा भूल गये। हाथों से भगवान् के चरण पकड़ दण्ड की भाँति गिर पड़े। तब कृपानिधान भगवान् ने अपना कमल के समान हाथ मनु के शिर पर रख उनको शीघ्र उठाया।

दो० बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहिं जानि।
माँगहु वर जो भावमन, महादानि अनुमानि॥

फिर कृपानिधान भगवान् बोले—मुझे बहुत प्रसन्न जान और दानी अनुमान कर जो मन को भावे, वह वरदान माँग लो।

सुनि प्रभुवचन जोरि युग पाणी * धरि धीरज बोले मृदुवाणी
नाथ देखि पदकमल तुम्हारे * अब पूजे सब काम हमारे

प्रभु के वचन सुन राजा मनु दोनों हाथ जोड़ धैर्य धर मीठी वाणी से बोले—हे नाथ, तुम्हारे चरणारविन्दों के दर्शन पाकर सब काम सिद्ध हो गये।

एक लालसा बड़ि मन माहीं * सुगम अगम कहिजात सो नाहीं
तुमहिं देत अति सुगम गुसाँई * अगम लाग मोहिं निजकृपणाई

अब मन में एक बड़ी लालसा है। वह सहज है, या कठिन, यह नहीं कहा जा सकता। हे इन्द्रियों के स्वामी, तुम्हारे लिए देना तो बहुत सहज है, परन्तु मुझको अपनी कृपणता (दीनता) से (उसका माँगना) कठिन लगता है—

यथा दरिद्र कल्पतरु पाई * बहु सम्पति माँगत सकुचाई
तासु प्रभाव न जानत सोई * तथा हृदय मम संशय होई

जैसे दरिद्र पुरुष कल्पवृक्ष को पाकर बहुत सम्पत्ति माँगने में सङ्कोच करे। कल्पवृक्ष का प्रभाव वह नहीं जानता कि जो कुछ माँगूंगा, वही मिलेगा। ऐसे ही मेरे हृदय में सन्देह है।

सो तुम जानहु अन्तरयामी * पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी

सकुच विहाय माँगु नृप मोहीं * मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं

हे अन्तर्यामी, इसे आप जानते हैं। हे स्वामी, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये। तब भगवान् ने कहा—हे राजन्, सङ्कोच छोड़ मुझसे माँगिये। कुछ भी ऐसा नहीं, जो मैं तुमको न दे सकूँ।



दानिशिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहौं सतभाव।
चाहौं तुमहिं समान सुत, प्रभु सन कौन दुराव॥

हे दानियों में शिरोमणि, हे कृपानिधि, हे नाथ, अपने मन का सद्भाव कहता हूँ। आप जो स्वामी हैं फिर आपसे क्या छिपा सकता हूँ। आपके समान पुत्र चाहता हूँ।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले * एवमस्तु करुणानिधि बोले
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई * नृप तव तनय होब मैं आई

राजा के अमूल्य वचन सुन और अपने ऊपर स्नेह देख कृपा की खान भगवान् 'ऐसा ही होगा' कहकर बोले—अपने समान मनुष्य कहाँ ढूँढूँ? हे राजन्, मैं ही आकर तुम्हारा पुत्र होऊँगा।

शतरूपहि विलोकि करजोरे * देवि माँगु वर जो रुचि तोरे
जो वर नाथ चतुर नृप माँगा * सोइ कृपालु मोहिं अतिप्रिय लागा

फिर शतरूपा को हाथ जोड़े देख भगवान् ने कहा—हे देवी, जो वर तुम्हें अच्छा लगे, माँगो। रानी ने कहा—हे नाथ, हे कृपालो, चतुर राजा ने जो वरदान माँगा है, वह मुझे बहुत ही प्यारा लगा।

प्रभु परन्तु सुठि होत ढिठाई * यदपि भक्तहित तुमहिं सुहाई
तुम ब्रह्मादि सकल जगस्वामी * ब्रह्म सकल उर अन्तरयामी

परन्तु हे स्वामी, यह ढिठाई अच्छी होती है कि सब संसार के पिता-माता आपके माता-पिता हों, यद्यपि भक्त के लिए आपको यह भी अच्छा लगता है। आप ब्रह्मा आदि सारे संसार के स्वामी और सबके हृदय की जाननेवाले परब्रह्म हैं।

अस समुझत मन संशय होई * कहो जो प्रभु प्रमाण सो होई
जो निज भक्त नाथ तव अहहीं * जो सुख पावहिं जो गति लहहीं

ऐसा समझने से मन में संशय होता है कि आप हमारे पुत्र कैसे होंगे? पर अब जो स्वामी ने कहा है वही सत्य हो। हे स्वामी, आपके भक्त जो सुख और जो गति पाते हैं—



सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निजचरणसनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, मोहिं कृपा करि देहु॥

वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही चरणों में स्नेह, वही ज्ञान, वही रहनि, हे प्रभो, मुझे कृपा करके दीजिए।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना * कृपासिन्धु बोले मृदु बचना
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं * मैं सो दीन्ह सब संशय नाहीं

कोमल और गूढ़ सुन्दर उत्तम रचना के साथ कहे हुए शतरूपा के वचन सुन कृपासिन्धु भगवान् कोमल वाणी से बोले—जो कुछ तुम्हारे मन में इच्छा है वह सब मैंने दिया, इसमें संदेह नहीं।

मातु विवेक अलौकिक तोरे * कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे
बन्दि चरण मनु कह्यो बहोरी * अपर एक बिनती प्रभु मोरी

हे माता, मेरी कृपा से तेरे हृदय से अलौकिक ज्ञान (संसाररूपी माया से परे आत्मज्ञान) कभी नहीं दूर होगा। फिर मनु ने चरणों की वंदना कर कहा—हे प्रभो, मेरी एक और विनय है—

सुत विषयक तव पद रति होऊ * मोहिं बरु मूढ़ कहै किन कोऊ
मणिबिनफणिजिमिजलबिनमीना * ममजीवनतिमितुम्हहिं अधीना

वह यह है कि तुम्हारे चरणों में मेरी प्रीति पुत्र ही की सी हो, अर्थात् मैं तुमको पुत्र ही समझूँ; चाहे मुझे कोई मूर्ख क्यों न कहे। जैसे बिना मणि के सर्प और बिना जल के मछली नहीं रह सकती, वैसे ही मेरा जीवन भी तुम्हारे ही अधीन रहे।

अस वर माँगि चरण गहि रहेऊ * एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ
अब तुम मम अनुशासन मानी * बसहु जाय सुरपतिरजधानी

ऐसा वरदान माँग राजा मनु चरण पकड़कर चुप हो रहे। तब कृपा की खान भगवान् ने कहा—एवमस्तु (ऐसा ही हो)। अब आप मेरी आज्ञा मान इन्द्र की राजधानी अमरावती पुरी में जाकर रहिए—



सो०—तहँ करि भोग बिशाल, तात गये कछु काल पुनि।
होइहहु अवधभुवाल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥

हे तात, वहाँ सुख भोग कुछ समय बीतने पर आप अयोध्या के राजा होंगे। तब मैं आपका पुत्र होऊँगा।

इच्छामय नर वेष सँवारे * होइहौं प्रकट निकेत तुम्हारे
अंशन सहित देह धरि ताता * करिहौं चरित भक्तसुखदाता

आपकी इच्छा के अनुसार मनुष्य का वेष बनाकर आपके घर में उत्पन्न होऊँगा। हे तात, अपने अंशों सहित देह धारण कर भक्तों को सुख देनेवाले चरित्र करूँगा।

जेहि सुनि सादर नर बड़भागी * भव तरिहैं ममता मद त्यागी
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया * सोउ अवतरिहि मोरि यह माया

जिन चरित्रों को आदरसहित सुन भाग्यवान् मनुष्य मोह और अहङ्कार छोड़ संसारसागर को तर जायँगे। यह आदिशक्ति मेरी माया भी, जिसने संसार को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा * सत्य सत्य प्रण सत्य हमारा
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना * अन्तर्द्धान भये भगवाना

मैं आपका मनोरथ पूरा करूँगा—मेरा यह प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान बारंबार ऐसा कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

दम्पति उर धरि भक्ति कृपाला * तेहि आश्रम निवसे कछु काला
समय पाय तनु तजि अनयासा * जाय कीन्ह अमरावति वासा

पति-पत्नी शतरूपा और मनु हृदय में कृपालु भगवान की भक्ति धारण कर कुछ समय तक उस आश्रम में रहे। फिर यथासमय एकाएक देह छोड़ अमरावती में जाकर उन्होंने वास किया।



यह इतिहास पुनीत अति, उमहिं कहेउ वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, रामजन्म कर हेतु॥

महादेवजी ने यह पवित्र कथा पार्वतीजी से कही। हे भरद्वाज, श्रीरामजन्म का और कारण सुनो।

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी * जो गिरिजा प्रति शम्भु बखानी
विश्वविदित यक केकय देशू * सत्यकेतु तहँ बसै नरेशू

हे मुनि, पवित्र और पुरानी कथा सुनो, जिसे महादेवजी ने पार्वती से कहा था। संसार में एक केकय देश प्रसिद्ध है। उसमें सत्यकेतु राजा रहता था,

धर्मधुरन्धर नीतिनिधाना * तेज प्रताप शील बलवाना
तेहि के भये युगल सुत वीरा * सब गुणधाम महा रणधीरा

जो धर्म की धुरी धरनेवाला (परम धर्मात्मा), नीतिनिधान, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान् और बलवान् था। उसके सब गुणों की खान, घोर संग्राम में भी विचलित न होनेवाले दो वीर पुत्र हुए।

रजधानी जेठे सुत आही * नाम प्रतापभानु अस ताही
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा * भुजबल अतुल अचल संग्रामा

बड़े पुत्र को राज्य मिला। उसका नाम भानुप्रताप था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था जो अपनी भुजाओं के अतुल बल के कारण युद्ध से नहीं हटता था।

भाइहि भाइहि परम प्रतीती * सकल दोष छल वर्जित प्रीती
जेठे सुतहि राज्य नृप दीन्हा * हरिहित आप गमन वन कीन्हा

परस्पर दोनों भाइयों में बहुत विश्वास तथा सब दोष और छल-कपट से रहित प्रीति थी। राजा ज्येष्ठ पुत्र भानुप्रताप को राज्य देकर आप भगवान् के भजन के लिए वन को चले गये।



जब प्रतापरवि भयेउ नृप, फिरी दुहाई देश।
प्रजापाल अति वेदविधि, कतहुँ नहीं अघलेश॥

देश में भानुप्रताप के राजा होने की दुहाई फिर जाने पर वेद की विधि से प्रजाओं का अच्छी तरह पालन किया जाने लगा ; कहीं पाप का लेश भी नहीं रह गया ।

नृपहितकारक सचिव सुजाना * नाम धर्मरुचि शुक्रसमाना
सचिव सयान बन्धु बलवीरा * आप प्रतापपुञ्ज रणधीरा

राजा का हित करनेवाला मन्त्री भी अच्छा ज्ञानी और शुक्राचार्य के समान नीति-निपुण* था, जिसका नाम धर्मरुचि था । राजा का मन्त्री चतुर, भाई बलवान् और वह आप युद्ध में धीर और प्रताप का समूह था ।

सेन सङ्ग चतुरङ्ग अपारा * अमितसुभट सब समरजुझारा
सेन विलोकि राउ हरषाना * अरु बाजे गहगहे निशाना

उसके साथ बेशुमार चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें बहुत योद्धा थे । वे सब युद्ध में जूझने-वाले थे । राजा अपनी सेना देख प्रसन्न हुआ । युद्ध के मारू बाजे खूब जोर से बजे ।

विजय हेतु कटकाइ बनाई * सुदिन साधि नृप चल्यो बजाई
जहँ तहँ परीं अनेक लराई * जीते सकल भूप बरिआई

दिग्विजय करनेके लिए सेनाओं को सजाकर अच्छे दिन और शुभ मुहूर्तमें वह राजा युद्धके बाजे बजवाता हुआ चला । जहाँ-तहाँ बहुत लड़ाइयाँ पड़ीं और राजा ने सबको जबरदस्ती से जीत लिया ।

सप्तद्वीप भुजबल वश कीन्हा * लैलै दण्ड छाँड़ि नृप दीन्हा
सकल अवनिमण्डल तेहिकाला * एक प्रतापभानु महिपाला

उसने अपनी भुजाओं के बल से सातों द्वीप वश में कर लिये, और 'दण्ड' ले-लेकर राजाओं को छोड़ दिया । उस समय सारे पृथ्वीमण्डल का एक छत्र राजा भानुप्रताप हुआ ।

दो०
स्ववश विश्वकरि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेश ।
अर्थ धर्म कामादि सुख, सेवहिं समै नरेश ॥

भुजाओं के बल से संसार को अपने वश में कर राजा ने अपने पुर में प्रवेश किया । धर्म, अर्थ, काम आदि सब सुख राजा की समय-समय पर सेवा करते थे ।

भूप प्रतापभानु बल पाई * कामधेनु भइ भूमि सुहाई
सब दुख वर्जित प्रजा सुखारी * धर्मशील सुन्दर नर नारी

राजा भानुप्रताप का सहारा पाकर पृथ्वी कामधेनु के समान सुहावनी हुई, अर्थात् सबकी इच्छा के अनुसार पैदावार होने लगी । सारी प्रजा—सब नर-नारी—दुःखों से रहित, धर्मवान्, शीलवान्, सुन्दर और सुखी थी ।

सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीती * नृप हित हेतु सिखावत नीती

* न्याय में शुक्राचार्य बहुत निपुण हैं, जैसा कि उनकी बनाई शुक्रनीति से ज्ञात होता है ।

गुरु सुर सन्त पितर महिदेवा * करै सदा नृप सबकी सेवा

धर्मरुचि मन्त्री भगवान् के चरणों का भक्त था। वह राजा की भलाई के लिए उनको नीति सिखाया करता था। राजा भी गुरु, देवता, साधु, पितर और ब्राह्मण सबकी सदा सेवा करता था।

भूपधर्म जे वेद बखाने * सकल करै सादर सुख माने
दिनप्रति देइ विविधविधि दाना * सुनै शास्त्र वर वेद पुराना

वेद ने जिन राजधर्मों का वर्णन किया है, उन सबको राजा सुखपूर्वक सादर करता था। नित्य भाँति-भाँति के दान देता तथा शास्त्र, पुराण और वेद सुनता था।

नाना वापी कूप तड़ागा * सुमनवाटिका सुन्दर बागा
विप्रभवन सुरभवन सुहाये * सब तीरथन विचित्र बनाये

उसने बहुत प्रकार के सुन्दर बावली, कुएँ, तालाब, फुलवारी, बाग, सुहावने और चित्र-विचित्र ब्राह्मणों के घर और देवमन्दिर सब तीर्थों में बनवा दिये।



जहँ लगि कहे पुराण श्रुति, एक एक सब याग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग॥

वेद और पुराणों ने जितने प्रकार के यज्ञ कहे हैं, वे सब राजा ने हज़ार-हज़ार बार श्रद्धा के साथ किये।

हृदय न कछु फल अनुसन्धाना * भूप विवेकी परम सुजाना
करै जो धर्म कर्म मन बानी * वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी

राजा बहुत सज्जन और ज्ञानी था। उसके मन में फल की कुछ भी इच्छा नहीं थी। वह मन, वाणी और कर्म से जो धर्म करता था, वह भगवान् वासुदेव को अर्पण कर देता था।

चढ़ि वरवाजि बार यक राजा * मृगयाकर सब साजि समाजा
विन्ध्याचल गँभीर वन गयऊ * मृगपुनीत बहु मारत भयऊ

एकबार राजा उत्तम घोड़े पर चढ़ शिकार खेलने का सब समाज साजकर विन्ध्याचल के सघन वन में गया और वहाँ उसने बहुत से पवित्र हरिण मारे।

फिरत विपिन नृप दीख बराहू * जनु वन दुरेउ शशिहि ग्रसिराहू
बड़विधु नहिं समात मुख माहीं * मनहुँ क्रोध वश उगिलत नाहीं

राजा ने वन में घूमते-घूमते एक सुअर देखा। जान पड़ता था, मानो चन्द्रमा को निगलकर राहु वन में छिप गया है। उसके निकले हुए बड़े दाँत को देखकर यह भासित होता था, चन्द्रमा बड़ा है, इससे मुँह में नहीं समाता, और मारे क्रोध के वह उसे उगलता भी नहीं है।

कोल कराल दशन छबि गाई * तनु विशाल पीवर अधिकाई
घुरघुरात हय आरव पाये * चकित विलोकत कान उठाये

उस भयङ्कर शूकर के दाँत की यह शोभा कही गई। उसकी देह बहुत बड़ी और मोटी थी। घोड़े की आहट पा घुरघुराकर कान उठा चौकन्ना हो वह देखने लगा।



नील महीधर शिखर सम, देखि विशाल वराह।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाह॥

राजा ने नीले पर्वत की चोटी के समान बड़ा सुअर देख घोड़े को दबाकर, चाबुक मार चला दिया; क्योंकि हाँकने से निबाह नहीं होता।

आवत देखि अधिक रव बाजी * चलेउ वराह मरुतगति भाजी
तुरत कीन्ह नृप शर सन्धाना * महि मिलिगयउ बिलोकत बाना

घोड़े को बड़े शब्द के साथ आते देख हवा की तरह वह सुअर भाग चला। राजा ने शीघ्र बाण चढ़ाया, जिसको देख वराह पृथ्वी में चिपक गया।

तकि तकि तीर महीश चलावा * छल करि सुअर शरीर बचावा
प्रकटत दुरत जाइ मृग भागा * रिसबश भूप चलेउ सँग लागा

राजा ने निशाना ताककर बाण चलाया, परन्तु सुअर ने छल कर अपनी देह बचा ली। प्रकट होता और छिपता हुआ वह भागता चला जाता था। राजा ने क्रोध के वश हो उसका पीछा किया।

गयउ दूरि बन गहन वराहू * जहाँ नाहिं गजबाजि निबाहू
अति अकेल बन बिपुल कलेशू * तदपि न मृगमग तजै नरेशू

सघन वन में वराह बहुत दूर तक चला गया। वहाँ ऐसी विकट जगह मिली, जहाँ हाथी और घोड़े का निवाह नहीं हो सकता। यद्यपि राजा अकेले थे और वन में बहुत ही क्लेश थे तो भी वह शिकार का पीछा न छोड़ते थे।

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा * भागि पैठ गिरिगुहा गँभीरा
अगम देखि नृप अति पछिताई * फिरेउ महावन परेउ भुलाई

शूकर राजा को बड़ा धीर देख भागकर पहाड़ की गहरी गुफा में घुस गया। तब उसमें अपनी पहुँच न देख राजा भानुप्रताप बहुत पछताकर लौटे और महावन में भटक गये।



खेद खिन्न तिरषित क्षुधित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिन भयेउ अचेत॥

राजा भानुप्रताप एक तो वराह के न मिलने के पछतावे से खिन्न थे, दूसरे वह और उनका घोड़ा, दोनों बहुत ही भूखे प्यासे थे। राजा व्याकुल हो नदी तालाव ढूँढ़ने लगे। पानी न पाकर वह अचेत हो गये।

फिरत बिपिन आश्रम यक देखा * जहँ बस नृपति कपटमुनि वेखा

जासु देश नृप लीन्ह छुड़ाई * समर सेन तजि गयउ पराई

वन में घूमते हुए राजा ने एक आश्रम देखा, जहाँ एक राजा छल से साधुवेष बनाये रहता था। उसका देश राजा भानुप्रताप ने छीन लिया था और वह युद्ध में अपनी सेना छोड़ भाग गया था।

समय प्रतापभानु कर जानी * आपन अति असमय अनुमानी
गयउ न गृह मन परम गलानी * मिला न राजहिं नृप अभिमानी

राजा भानुप्रताप का अच्छा समय जान और अपने बुरे दिन समझ मन में बहुत लज्जित हो वह राजा घर नहीं गया, और अभिमानी होने के कारण राजा भानुप्रताप से भी नहीं मिला।

रिस उर मारि रङ्क जिमि राजा * विपिन बसै तापस के साजा
तासु समीप गमन नृप कीन्हा * यह प्रतापरवि तेइँ तब चीन्हा

मन में क्रोध को दबाकर वह राजा निर्धन की भाँति तपस्वी के वेष में वन में रहता था। राजा भानुप्रताप उसी के पास गया। तब उसने पहचान लिया कि यह भानुप्रताप है।

राउ तृषित नहिं तेहिं पहिंचाना * देखि सुवेश महामुनि जाना
उतरि तुरँग ते कीन्ह प्रणामा * परमचतुर न कहेउ निजनामा

राजा भानुप्रताप प्यासा था। उसने उसे नहीं पहचाना। किन्तु साधु का वेष देख महा-मुनि समझा। उसने शीघ्र घोड़े से उतर प्रणाम तो किया, परन्तु बड़ी चतुरता से अपना नाम नहीं बताया।


भूपति तृषित विलोकि तेइँ, सरवर दीन्ह दिखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हर्षाइ॥

शत्रु ने राजा को प्यासा देख सरोवर दिखा दिया, जिसमें प्रसन्न हो राजा ने घोड़े सहित स्नान-पान किया।

गा श्रम सकल सुखी नृप भयऊ * निज आश्रम तापस लै गयऊ
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी * पुनि तापस बोला मृदुबानी

राजा की सब थकावट दूर हो गई और वह सुखी हुए। तब तपस्वी उन्हें अपने आश्रम में लिवा ले गया। सूर्य को अस्त हुआ जान तपस्वी ने विश्राम करने को आसन दिया। फिर मीठी वाणी से बोला—

को तुम कस बन फिरहु अकेले * सुंदर युवा जीव पर हेले
चक्रवर्ति के लक्षण तोरे * देखत दया लागि अति मोरे

तुम कौन हो? वन में अकेले क्यों फिरते हो? इस सुन्दर युवावस्था में जान पर क्यों खेलते हो? तुम्हारे तो चक्रवर्ती राजा के से चिह्न हैं, जिन्हें देख मुझे दया आती है।

नाम प्रतापभानु अवनीशा * तासु सचिव मैं सुनहु मुनीशा

फिरत अहेरहि परेउँ भुलाई * बड़े भाग्य देखेउँ पद आई

तब भानुप्रताप ने कहा—हे मुनीश, सुनिए, भानुप्रताप नाम का एक राजा है, उसी का मैं मन्त्री हूँ। शिकार में घूमता हुआ भूल पड़ा। बड़े भाग्य थे जो आपके चरण देख पड़े।

हमकहँ दुर्लभ दरश तुम्हारा * जानत हौं कछु भल होनहारा

कह मुनि तात भयउ अँधियारा * योजन सत्तर नगर तुम्हारा

हम जैसों को आपका दर्शन दुर्लभ ही है। मुझे आपके दर्शन मिले, इससे जान पड़ता है, कुछ भला होनेवाला है। मुनि ने कहा—हे तात, अब अँधेरा हुआ और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन है।



निशा घोर गम्भीर वन, पन्थ न सूझ सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम, जायहु होत बिहान॥

रात घोर अँधेरी है, वन बहुत सघन है, इससे रास्ता नहीं सूझता। आप तो समझदार हैं, आज यहाँ रहिए, प्रातःकाल चले जाइएगा।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसइ मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

तुलसीदासजी कहते हैं, जैसी होनहार होती है, वैसा ही सामान बन जाता है। होनी आप उसके पास नहीं आती, किन्तु उसे वहाँ ले जाती है।

भलेहि नाथ आयसु धरि शीशा * बाँधि तुरँग तरु बैठ महीशा

नृप सब भाँति प्रशंसेउ ताही * चरणवन्दि निज भाग्य सराही

'अच्छा स्वामी' कह राजा भानुप्रताप ने कपटमुनि की आज्ञा शिर पर धर घोड़ा वृक्ष में बाँधा और बैठे। राजा ने बहुत प्रकार से उसकी प्रशंसा की और चरणों की वन्दनाकर अपने भाग्य सराहे।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई * जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई

म्वहिं मुनीश सुत सेवक जानी * नाथ नाम निज कहहु बखानी

फिर मीठी और सुहावनी वाणी से बोले—हे प्रभु, आपको पिता के समान जान ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश, हे नाथ, मुझे अपनी सेवा करनेवाला पुत्र जान अपना नाम बताइए।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना * भूप सुहृद सो कपट सयाना

बैरी पुनि क्षत्रिय पुनि राजा * छलबल कीन्ह चहै निजकाजा

राजा उसको नहीं जानते थे, परन्तु वह राजा को जानता था। राजा अच्छे हृदयवाले थे और वह मुनि छल-कपट करने में चतुर था। एक तो वैरी, फिर क्षत्रिय, फिर राजा—छल से अपना काम करना चाहता था।

समुझि राज सुख दुखित अराती * अवाँ अनल इव सुलगै छाती
सरल वचन नृप के सुनि काना * वैर सँभारि हृदय हरषाना

राज्य का सुख याद कर और वैरभाव से दुखी होने के कारण आवें की आग की तरह उसकी छाती सुलगती थी। राजा के सीधे वचन कानों से सुन अपना वैर याद कर वह हृदय में प्रसन्न हुआ।



कपटबोरि बाणी मृदुल, बोलेउ युक्ति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहितनिकेत॥

कपट से भरे कोमल वचन युक्ति के साथ बोला कि मेरा नाम भिखारी है; क्योंकि अब मैं धन और घर से रहित हूँ।

कह नृप जे विज्ञाननिधाना * तुम सारिखे गलित अभिमाना
सदा अपनपौ रहहिं दुराये * सब विधि कुशल कुवेष बनाये

राजा ने कहा, जिनका अभिमान मिट गया है और जो तुम्हारे समान विज्ञान (आत्मज्ञान) की खान हैं। वे सब प्रकार से चतुर हैं; परन्तु कुवेष बनाये सदा अपने को छिपाये रहते हैं।

तेहिते कहहिं सन्त श्रुति टेरे * परम अकिञ्चन प्रिय हरि केरे
तुम सम अधन भिखारि अगेहा * होत विरञ्चि शिवहिं सन्देहा

इससे वेद और सन्त पुकारकर कहते हैं कि बहुत ही अकिञ्चन (जिनके पास कुछ नहीं है) जन भगवान् के प्यारे हैं। तुम्हारे पास धन और घर से रहित भिक्षुकों में शिव और ब्रह्मा होने का सन्देह होता है।

योसिसोसि तव चरण नमामी * मोपर कृपा करिय अब स्वामी
सहज प्रीति भूपति की देखी * आप विषे विश्वास विशेखी

जो हो सो हो, तुम्हारे चरणों में मेरा नमस्कार है। हे स्वामी, मेरे ऊपर अब कृपा कीजिए। सहज ही राजा की अपने में प्रीति और अधिक विश्वास देख—

सब प्रकार राजहिं अपनाई * बोलेउ अधिक सनेह जनाई
सुनु सतिभाव कहौं महिपाला * इहाँ बसत बीते बहुकाला

और सब प्रकार से राजा को अपने अधीनकर बहुत स्नेह जताकर यह बोला, हे राजन्, मैं अपने सच्चे भाव से कहता हूँ कि मुझे यहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया।



अब लग मोहिं न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु।
लोकमान्यता अनलसम, कर तप काननदाहु॥

अब तक मुझे न कोई मिला और न मैंने किसी से अपना हाल कहा; क्योंकि लोक में मान कराना वनरूपी तपस्या को भस्म करनेवाले अग्नि के समान है।


सो० तुलसी देखि सुवेख, भूलैं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकी पेख, वचन सुधासम अशन अहि॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छा वेष देख मूर्ख ही भूलते हैं, चतुर नहीं; क्योंकि वे जानते हैं कि यह मोर के समान देखने ही में सुन्दर और अमृत के समान बोलता है, पर भोजन सर्प ही को करता है।

ताते गुप्त रहौं जग माहीं * हरितजि किमपि प्रयोजन नाहीं
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये * कहहु कवन सिधि लोकरिझाये

मैं इसी से संसार में छिपा रहता हूँ, भगवान् के सिवा मुझे किसी से प्रयोजन नहीं, अथवा मुझे कुछ न चाहिए। प्रभु बिना जनाये ही सब जानते हैं, फिर लोक को रिझाने से कहो क्या सिद्धि है?

तुम शुचि सुमति परमप्रियमोरे * प्रीति प्रतीति मोहिं पर तोरे
अब जो तात दुरावौं तोहीं * दारुण दोष बढ़ै अति मोहीं

तुम शुद्ध, सुन्दर बुद्धिवाले और मुझको बहुत प्यारे हो; क्योंकि मुझ पर तुम्हारा स्नेह और विश्वास है। हे तात, फिर भी मैं जो तुमसे कुछ छिपाऊँ तो मुझे बड़ा दोष लगेगा।

जिमि जिमि तापस कथै उदासा * तिमितिमि नृपहिं होइ विश्वासा
देखा स्ववश कर्म मन बानी * तब बोला तापस बकध्यानी

ज्यों ज्यों तपस्वी उदासीन के से वचन कहता था, त्यों त्यों राजा का विश्वास दृढ़ होता था। जब देख लिया कि मन, वचन और कर्म से राजा मेरे वश है, तब बगले के समान कपटध्यानी तपस्वी बोला—

नाम हमार एकतनु भाई * सुनि नृप बोले पद शिरनाई
कहहु नाम कर अर्थ बखानी * मोहिं सेवक अति आपन जानी

भाई, मेरा तो नाम एकतनु है। यह सुन राजा सिर झुकाकर बोला कि मुझे अपना सबसे अधिक दास जान इस नाम का अर्थ वर्णन कीजिए।


दो० आदिसृष्टि उपजी जबै, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥

मुनि ने कहा—जब सृष्टि हुई थी तभी मैं उत्पन्न हुआ था, तब से दूसरी देह नहीं धरी। इसी से मेरा एकतनु नाम है।

जनि आश्चर्य करहु मन माहीं * सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं
तपबल ते जग सृजै विधाता * तपबल विष्णु भये परित्राता

मन में आश्चर्य न करना। हे पुत्र, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तप के बल से ब्रह्मा संसार को उत्पन्न करते हैं, तप के बल से विष्णु उसकी रक्षा करनेवाले हुए हैं।

तपबल शम्भु करहिं संहारा * तप ते अगम न कछु संसारा
भयहु नृपहिं सुनिअतिअनुरागा * कथा पुरातन कहै सो लागा

और तप के ही बल से महादेवजी संहार करते हैं। तपस्या करने से संसार में ऐसा कुछ नहीं, जो न मिल सके या जो न किया जा सके। यह सुन राजा को बहुत अनुराग हुआ। तब वह कपटमुनि पुरानी कथा कहने लगा।

कर्म धर्म इतिहास अनेका * करै निरूपण विरति विवेका
उद्भव पालन प्रलय कहानी * कहेसि अमित आश्चर्य बखानी

उसने अनेक प्रकार के कर्म, धर्म, इतिहास, वैराग्य और आत्मज्ञान कहे। संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार की कथाएँ तथा बहुत सी आश्चर्य की बातें वर्णन कीं।

सुनि महीश तापसवश भयऊ * आपन नाम कहन तब लयऊ
कह तापस नृप जानौं तोहीं * कीन्हेउ कपट लाग भल मोहीं

उन्हें सुन राजा तपस्वी के वश हो गया। उसने अपना नाम कहा। तपस्वी ने कहा—हे राजन्, मैं तुम्हें जानता हूँ और जो तुमने अपना नाम न बतलाकर कपट किया था, सो भी मुझे अच्छा लगा;


सुनु महीश अस नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहिंतोहिंपरअतिप्रीति, परमचतुरता निरखि तव॥

क्योंकि राजन्, सुनिए, ऐसी नीति है कि जहाँ-तहाँ राजा लोग अपना नाम नहीं कहते। यह तुम्हारी बड़ी चतुरता देख मैं तुम पर परम प्रसन्न हुआ।

नाम तुम्हार प्रतापदिनेशा * सत्यकेतु तव पिता नरेशा
गुरुप्रसाद सब जानौं राजा * कहौं न आपन जानि अकाजा

तुम्हारा नाम भानुप्रताप है और तुम्हारे पिता का राजा सत्यकेतु। राजन्, गुरुजी की कृपा से मैं सब जानता हूँ, परन्तु अपनी हानि समझ किसी से कहता नहीं।

देखि तात तव सहज सुधाई * प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई
उपजि परी ममता मन मोरे * कहेउँ कथा निज बूझे तोरे

हे तात, तुम्हारा साधारण सीधापन, स्नेह, विश्वास और चतुरता देख मेरे मन में ममता उत्पन्न हुई, इसी से तुम्हारे पूछने पर मैंने अपनी कथा कही।

अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं * माँगु जो भूप भाव मन माहीं

सुनि सुवचन भूपति हरषाना * गहिपद विनय कीन्ह विधिनाना

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं। राजन्, जो मन में अच्छा लगे, वह माँगो। राजा भानुप्रताप यह सुन्दर वचन सुन प्रसन्न हुआ और चरण पकड़ बहुत प्रकार से विनती की—

कृपासिन्धु मुनि दर्शन तोरे * चारि पदारथ करतल मोरे
प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी * माँगि अगम वर होउँ विशोकी

हे कृपासिन्धु मुनि, तुम्हारे दर्शन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ मेरे हाथ में आ गये, तो भी स्वामी को प्रसन्न देख दुर्लभ वरदान मैं माँगकर दुःखरहित होऊँगा।

दोहा—जरामरण दुखरहित तनु, समर न जीतै कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कल्पशत होउ॥

बुढ़ापा, मृत्यु और सब दुःखों से रहित देह हो; युद्ध में मुझे कोई जीत न सके तथा पृथ्वी में सौ कल्प तक शत्रुरहित एकछत्र राज्य हो।

कह तापसनृप ऐसेइ होऊ * कारण एक कठिन सुनु सोऊ
कालहु तव पद नाइहि शीशा * एक विप्रकुल छाँड़ि महीशा

कपटी मुनि ने कहा, हे राजन्, ऐसा ही हो; परन्तु इसमें भी एक कारण कठिन है, उसे सुनिए। राजन्, एक ब्राह्मणों का वंश छोड़ काल भी तुम्हारे चरणों में शिर नवावेगा।

तपबल विप्र सदा बरियारा * तिनके कोप न कोउ रखवारा
जो विप्रन वश करहु नरेशा * तौ तव वश विधि विष्णु महेशा

तपस्या के बल से ब्राह्मण सदा प्रबल रहते हैं, इससे उनके क्रोध करने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता। हे राजन्, आप अगर ब्राह्मणों को वश कर लीजिए तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी आपके वश हो जायँगे।

चल न ब्रह्मकुल से बरिआई * सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई
विप्रशाप बिन सुनु महिपाला * तोर नाश नहिं कौनेउ काला

दोनों हाथ उठाकर मैं यह सच कहता हूँ कि ब्राह्मणों के कुल से प्रबलता नहीं चलती। हे राजन्, सुनिए, ब्राह्मण के शाप को छोड़ और किसी तरह आपका नाश कभी नहीं होगा।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू * नाथ न होइ मोर अब नासू
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना * मो कहँ सर्वकाल कल्याना

उसके वचन सुन राजा प्रसन्न हुआ। राजा ने कहा, हे नाथ, अब मेरा नाश न होगा। हे प्रभो, हे कृपानिधान, आपकी प्रसन्नता से सब समय मेरा कल्याण है।



एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाबनिज, कहहु तौ मोरि न खोरि॥

तब कपटीमुनि 'ऐसा ही हो' कहकर फिर कुटिलता से बोला कि मेरा मिलना और अपना वन में भटकना किसी से न कहना। यदि कहोगे तो फिर मेरा दोष नहीं है।

ताते मैं तोहिं बरजौं राजा * कहे कथा तव परम अकाजा
छठे श्रवण यह परत कहानी * नाश तुम्हार सत्य मम बानी

हे राजन्, इससे मैं तुम्हें मना करता हूँ कि यह हाल कहने पर तुम्हारी बहुत बड़ी हानि होगी। यह कथा छठे (यानी तीसरे आदमी) के कान में पड़ते ही तुम्हारा नाश होगा। मेरा कहना सत्य ही समझना।

यह प्रकटै अथवा द्विजशापा * नाश तोर सुनु भानुप्रतापा
आन उपाय निधन तव नाहीं * जो हरि हर कोपहिं मन माहीं

हे भानुप्रताप, सुनो, हमारे तुम्हारे मिलने का हाल प्रकट हो या ब्राह्मण का शाप हो तभी तुम्हारी मृत्यु हो सकती है। अन्यथा यदि विष्णु और शिव भी मन में तुम पर क्रोध करें तो भी तुमको मार नहीं सकते।

सत्य नाथ पदगहि नृप भाखा * द्विज गुरुकोप कहहु को राखा
राखै गुरु जो कोप विधाता * गुरुविरोध नहिं कोउ जगत्राता

तब राजा ने चरण पकड़कर कहा—हे नाथ, सत्य है। ब्राह्मण और गुरु के शाप ने किसको रहने दिया है? ब्रह्मा क्रोध करें तो गुरु बचाता है, परन्तु गुरु के विरोध करने पर संसार में कोई नहीं रक्षा कर सकता।

जो न चलब हम कहे तुम्हारे * होइ नाश नहिं शोच हमारे
एकहि डर डरपत मन मोरा * प्रभु महिदेवशाप अति घोरा

यदि तुम्हारे कहने पर मैं न चलूँ तो मेरा नाश होगा; पर इसके लिए मुझे शोच नहीं है। हे प्रभो, केवल एक ही डर (ब्राह्मणों के शाप) से मेरा मन डर रहा है। कारण, ब्राह्मणों का शाप बहुत ही घोर होता है।



होहिं विप्र वश कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयालु निज, हितू न देखौं कोउ॥

किस प्रकार से ब्राह्मण मेरे वश में होंगे, वह उपाय कृपाकर कहिए। हे दीनदयालु, तुम्हारे सिवा अपना हितू मुझे कोई नहीं देख पड़ता।

सुनु नृप विविधयतन जग माहीं * कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं
अहै एक अति सुगम उपाई * तहाँ परन्तु एक कठिनाई

कपटमुनि ने कहा—राजन्, सुनिए, संसार में अनेक उपाय हैं, जिनके करने में कष्ट और सिद्धि में सन्देह होता है। एक उपाय बहुत सहज है। पर उसमें भी एक कठिनाई है।

मम आधीन युक्ति नृप सोई * मोर जाव तव नगर न होई
आजु लगे अरु जब ते भयऊँ * काहू के गृह ग्राम न गयऊँ

हे राजन्, वह युक्ति मेरे अधीन है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगर में नहीं हो सकता। कारण, जब से उत्पन्न हुआ हूँ तब से आज तक मैं किसी के घर या किसी के गाँव नहीं गया—

जो न जाव तव होइ अकाजू * बना आय असमञ्जस आजू
सुनि महीप बोलेउ मृदुबानी * नाथ निगम अस नीति बखानी

पर जो न जाऊँगा तो तुम्हारा अकाज होगा, यह आज असमञ्जस आ पड़ा है। यह सुन राजा ने कोमल वाणी में कहा—हे नाथ, वेदों ने ऐसी नीति कही है—

बड़े सनेह लघुन पर करहीं * गिरि निजशिरन सदातृणधरहीं
जलधि अगाध मौलि बह फेनू * सन्तत धरणि धरत शिररेनू

बड़े आदमी छोटों पर स्नेह करते हैं। देखो, पहाड़ अपने सिर पर सदा तृण रखते हैं, अगाध भरे हुए समुद्र के ऊपर फेना बहता है और पृथ्वी सदा अपने ऊपर धूल धारण करती है।



अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपालु।
मोहिंलागि दुखसाहिय प्रभु, सज्जन दीनदयालु॥

ऐसा कह राजा ने चरण पकड़ लिये कि हे स्वामी, हे सज्जन, हे दीनदयालु, कृपालु हो मेरे लिए इतना कष्ट सहिए।

जानि नृपहिं आपन आधीना * बोला तापस कपटप्रवीना
सत्य कहौं भूपति सुनु तोहीं * जग महँ नहिं दुर्लभ कछु मोहीं

राजा को अपने अधीन जान कपट करने में चतुर वह तपस्वी बोला—हे राजन्, सुनो। तुमसे सच कहता हूँ, संसार में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है—

अवशि काज मैं करिहौं तोरा * मन क्रम वचन भक्त तैं मोरा
योगयुक्ति तप मन्त्र प्रभाऊ * फलै तबहिं जब करिय दुराऊ

तथा मन, वचन और कर्म से तू मेरा भक्त है इससे मैं तेरा काम अवश्य करूँगा। योग की युक्ति, तपस्या और मन्त्र का प्रभाव तभी फलते हैं, जब छिपाकर किये जायँ।

जो नरेश मैं करउँ रसोई * तुम परसहु मोहिं जान न कोई
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई * सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई

राजन्, यदि मैं रसोई करूँ और आप परोसें, परन्तु मुझे कोई न जान पावे, तो उस अन्न को जो-जो खायगा, वह तुम्हारी आज्ञा मानेगा।

पुनि तिनके गृह जेवें जोई * तव वश होय भूप सुनु सोई
जाय उपाय रचहु नृप येहू * संवत भरि सङ्कल्प करेहू

हे राजन्, फिर उनके घर में जो कोई भोजन करेगा, वह भी तुम्हारे वश होगा। अब तुम जाकर यह उपाय करो कि साल भर के लिए यह सङ्कल्प करो—



नितनूतन द्विज सहसशत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे सङ्कल्प लगि, दिनहिं करब जेवनार॥

नित्य एक लाख नये ब्राह्मण परिवार सहित न्योतो। मैं तुम्हारे सङ्कल्प को पूरा करने के लिए दिन को जेवनार करूँगा।

यहि विधि भूप कष्ट अति थोरे * होइहहिं सकल विप्र वश तोरे
करिहहिं विप्र होम मख सेवा * तेहि प्रसङ्ग सहजहि वश देवा

हे राजन्, इस प्रकार थोड़े ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश हो जायँगे। फिर ब्राह्मण होम, यज्ञ और पूजा करेंगे, इस उपाय से देवता भी सहज ही में तुम्हारे वश हो जायँगे।

और एक तोहिं कहौं लखाऊ * मैं यहि वेष न आउब काऊ
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया * हरिआनब मैं करि निज माया

और भी एक पहचान तुम्हें बतलाता हूँ कि मैं इस वेष से कभी नहीं आऊँगा। तुम्हारे पुरोहित को अपनी माया से मैं पहले हर लाऊँगा।

तपबल तेहि कर आपु समाना * रखिहौं इहाँ वर्ष परमाना
मैं धरि तासु वेष सुनु राजा * सब विधि तोर सँवारब काजा

उसे तपोबल से अपने रूप में वर्ष भर यहाँ रक्खूँगा। हे राजन्! मैं उसका वेष रखकर सब प्रकार से तुम्हारा काम बनाऊँगा।

गइ निशि बहुत शयन अब कीजे * मोहिं तोहिं भूप भेंट दिन तीजे
मैं तपबल तोहिं तुरँग समेता * पहुँचैहौं सोवतहि निकेता

रात बहुत बीती है, अब जाकर सो रहो। राजन्, अब मेरी और तुम्हारी भेंट तीसरे दिन होगी। मैं अपनी तपस्या के बल से तुम्हें घोड़े समेत सोते ही घर पहुँचा दूँगा।



मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेहु तब मोहिं।
जब एकान्त बुलाय नृप, कथा सुनाउब तोहिं॥

मैं वही वेष रखकर आऊँगा। तब मुझे पहचान लेना, जब एकान्त में बुलाकर सब कथा सुनाऊँगा।

शयन कीन्ह नृप आयसु मानी * आसन जाइ बैठ छलज्ञानी
श्रमित भूप निद्रा अति आई * सो किमि सोव शोच अधिकाई

राजा ने तो आज्ञा मान शयन किया और वह कपटी मुनि अपने आसन पर जा बैठा। राजा थका था, इससे उसे गहरी नींद आई। परन्तु उस कपटी को तो भारी चिन्ता थी; उसे कैसे नींद आती?

कालकेतु निशिचर तहँ आवा * जेहि शूकर होइ नृपहिं भुलावा
परममित्र तापसनृप केरा * जानै सो अति कपट घनेरा

इतने में कालकेतु राक्षस वहाँ आया, जिसने सुअर बनकर राजा को भटकाया था। वह कपटी मुनि का बहुत मित्र था और खूब कपट जानता था।

तेहिके शत सुत अरु दश भाई * खल अति अजय विबुध दुखदाई
प्रथमहिं भूप समर सब मारे * विप्र सन्त सुर देखि दुखारे

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े दुष्ट, देवताओं को दुःख देनेवाले और अजेय थे। राजा भानुप्रताप ने ब्राह्मण, साधु और देवताओं को दुखी देख उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था।

तेहि खल पाछिल बैर सँभारा * तापसनृप मिलि मन्त्र विचारा
जेहि रिपुक्षय सोइ रचेसि उपाऊ * भावीवश न जान कछु राऊ

वह दुष्ट राक्षस पिछला वैर स्मरण कर तपस्वी राजा से मिलकर विचारने लगा कि किस प्रकार शत्रु का नाश हो। फिर वही उपाय रचा। राजा भानुप्रताप होनहार के वश कुछ नहीं जानते थे।



रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रविशशिहि, शिर अवशेषित राहु॥

अकेले भी तेजस्वी शत्रु को छोटा न गिनना चाहिए; क्योंकि आज भी सूर्य और चन्द्रमा को राहु दुःख देता है, जिसका केवल सिर ही बच रहा है।

तापसनृप निज सखहिं निहारी * हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी
मित्रहिं कहि सब कथा सुनाई * यातुधान बोला सुखपाई

तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठा और उससे मिलकर सुखी हुआ। फिर मित्र से सब कथा सुनाई। तब राक्षस प्रसन्न हो बोला—

अब साधेउ रिपु सुनहु नरेशा * जो तुम कीन्ह मोर उपदेशा
परिहरि शोच रहहु अब सोई * बिन औषधहि व्याधि विधि खोई

हे राजन्, सुनो, अब तुमने मेरे कहे पर अमल करके शत्रु (राजा) को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। अब चिन्ता छोड़ दो और सोओ। विधाता ने बिना औषध के ही रोग का नाश कर दिया।

कुल समेत रिपु मूल बहाई * चौथे दिवस मिलब मैं आई
तापसनृपहिं बहुत परितोषी * चला महाकपटी अतिरोषी

वंशसहित शत्रु (राजा) की जड़ उखाड़ आज के चौथे दिन मैं तुमसे आकर मिलूँगा। फिर तपस्वीराजा को बहुत सन्तुष्ट कर महाकपटी और क्रोधी कालकेतु राक्षस चला।

भानुप्रतापहिं बाजिसमेता * पहुँचायसि सोवतहिं निकेता
नृपहिं नारिपहँ शयन कराई * हयगृह बाँधेसि बाजिहिं जाई

सोते हुए राजा भानुप्रताप को घोड़े सहित उसने उनके घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर घोड़े को घुड़साल में बाँध दिया।

दो० राजा के उपरोहितहिं, हरि लै गयेउ बहोरि।
लै राखेसि गिरिखोह महँ, माया करि मति भोरि॥

फिर राजा भानुप्रताप के पुरोहित को वह हर ले गया और माया से उसकी बुद्धि हरकर उसे पर्वत की कन्दरा में ले जाकर रख छोड़ा।

आप विरंचि उपरोहित रूपा * परा जाय तेहि सेज अनूपा
जागेउ नृप अनभये बिहाना * देखि भवन अति अचरज माना

स्वयं पुरोहित का रूप रखकर वह राक्षस उसकी सुन्दर सेज में जाकर पड़ रहा। यहाँ राजा भानुप्रताप प्रातःकाल से पहले ही जाग पड़े। अपना घर देख उनको बड़ा आश्चर्य हुआ।

मुनिमहिमा मन महँ अनुमानी * उठेउ गँवहिं जेहि जान न रानी
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही * पुर नर नारि न जानेउ केही

मन में इसे कपटी मुनि की महिमा समझ राजा उठ बैठा, जिसमें यह हाल रानी न जाने। फिर घोड़े पर चढ़ उसी वन को गया। नगर के किसी नर-नारी ने नहीं जाना।

गये याम युग भूपति आवा * घर घर उत्सव बाज बधावा
उपरोहितहि दीख जब राजा * चकितविलोकिसुमिर सोइ काजा

फिर दोपहर के बाद राजा आये। तब घर-घर में उत्सव होने लगा, बधाई बजने लगी। जब राजा ने पुरोहित को देखा तो चकित होकर उस काम को याद करने लगा।

युगसम नृपहि गये दिन तीनी * कपटी मुनिपद रहि मतिलीनी
समय जानि उपरोहित आवा * नृपहि मते महँ कहि समुझावा

राजा भानुप्रताप को तीन दिन युग के समान बीते; क्योंकि कपटी मुनि के चरणों में उनका मन लगा था। अवसर जानकर पुरोहित आया और राजा को एकान्त में समझाया।



नृपहर्षें पहिचानि गुरु, भ्रमवश रहा न चेत ।
बरे तुरत शत सहस वर, विप्र कुटुम्ब समेत ॥

गुरु को पहचान राजा प्रसन्न हुए—भ्रम के वश उन्हें चेत नहीं रहा । उन्होंने शीघ्र ही एक लाख अच्छे-अच्छे ब्राह्मण मय कुटुंब के न्यौते ।

उपरोहित जेवनार बनाई ✻ छरस चारि विधि जस श्रुतिगाई
मायामय तेइँ कीन्ह रसोई ✻ व्यञ्जन बहु गनि सकै न कोई

पुरोहित ने रसोई बनाई । उसमें छहों रस (खट्टा, मीठा, कड़ुवा, नमकीन, तीखा और कसैला) और चारों प्रकार (भक्ष्य—चबाने योग्य, भोज्य—खाने योग्य, लेह्य—चाटने योग्य और चोष्य—चूसने योग्य) का खाने का सामान था जैसा कि पाकशास्त्र में कहा है । वह सब माया से बनाई गई थी । उसमें बहुत-से व्यञ्जन थे, जिनको कोई गिन नहीं सकता ।

विविध मृगन कर आमिष राँधा ✻ तेहि महँ विप्रमांस खल साँधा
भोजन कहँ सब विप्र बुलाये ✻ पद पखारि सादर बैठाये

दुष्ट ने बहुत प्रकार के मृगों का मांस पकाकर उसमें ब्राह्मण का मांस मिला दिया । तब राजा ने भोजन करने के लिए सब ब्राह्मण बुलाये और चरण धोकर आदर सहित बैठाया ।

परसन लाग जबहिं महिपाला ✻ भइ अकाशवाणी तेहि काला
विप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू ✻ है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू

जब राजा परोसने लगा, तब आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मणो, उठ-उठकर घर जाओ । अन्न न खाओ, खाने से बड़ी हानि होगी ।

भयउ रसोई भूसुरमांसू ✻ सब द्विज उठे मानि विश्वासू
भूप विकल मति मोह भुलानी ✻ भावीवश न आव मुखवानी

'इस रसोई में ब्राह्मण का मांस पकाया गया है' सब ब्राह्मण इस पर विश्वास कर उठ खड़े हुए । राजा की बुद्धि मोह में पड़ व्याकुल हुई और होनी के कारण उनके मुख से बात नहीं निकली ।



बोले विप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह विचार ।
जाय निशाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार ॥

तब ब्राह्मणों ने कुछ विचार नहीं किया । वे क्रोधित हो बोले—हे मूर्ख राजा, तू परिवारसहित राक्षस हो जा ।

क्षत्रिबन्धु तैं विप्र बुलाई ✻ घालै लिये सहित समुदाई
ईश्वर राखा धर्म हमारा ✻ जैहसि तैं समेत परिवारा

तूने क्षत्रिय होकर धर्म नष्ट करने के लिए ब्राह्मणों को परिवारसहित बुलाया था, परन्तु ईश्वरने हमारा धर्म रक्खा। अब तू परिवारसहित नष्ट हो।

संवत मध्य नाश तव होऊ * जलदाता न रहहि कुल कोऊ
नृपसुनि शाप विकल अतित्रासा * भइ बहोरि वर गिरा अकासा

एक साल के बीच में तेरा नाश हो, और कुल में पानी देनेवाला कोई न रहे। राजा भानुप्रताप यह शाप सुन दुःख से व्याकुल हुए। तब फिर आकाशवाणी हुई—

विप्रहु शाप विचार न दीन्हा * नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा
चकित विप्र सब सुनि नभबानी * भूप गये जहँ भोजनखानी

'हे ब्राह्मणो, तुमने भी विचार करके शाप नहीं दिया; राजा ने कुछ अपराध नहीं किया है।' यह आकाशवाणी सुन ब्राह्मण लोग चकर में आये। राजा जहाँ रसोई थी, वहाँ गये।

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा * फिरेउ राउ मन शोच अपारा
सब प्रसङ्ग महिसुरन सुनाई * त्रसित परेउ अवनी अकुलाई

परन्तु वहाँ न तो भोजन थे और न रसोई बनानेवाला (राक्षस)। तब राजा के मन में अपार शोक हुआ। वह लौटे और सब समाचार ब्राह्मणों को सुनाया। राजा दुःखित हो विकलता से पृथ्वी पर गिर पड़े।



भूपति भावी मिटै नहिं, यदपि न दूषण तोर।
किये अन्यथा होइ नहिं, विप्रशाप अतिघोर॥

ब्राह्मण बोले—राजन्, यद्यपि तुम्हारा अपराध नहीं है, परन्तु होनहार नहीं मिटता, ब्राह्मणों का शाप बहुत कठिन है, वह भी अन्यथा नहीं हो सकता।

अस कहि सब महिदेव सिधाये * समाचार पुरलोगन पाये
शोचहिं दूषण दैवहिं देहीं * विरचत हंस काक किय जेहीं

ऐसा कह सब ब्राह्मण चले गये। यह समाचार पुरवासियों ने सुना। वे अफसोस करने और दैव को दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते हुए कौआ बनाया।

उपरोहितहि भवन पहुँचाई * असुर तापसहि खबरि जनाई
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये * सो सजि सेन भूप सब आये

कालकेतु राक्षस ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया और तपस्वीराजा को खबर दी। उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे। सब शत्रुराजा सेनाएँ साज-साज चढ़ दौड़े।

घेरिनि नगर निशान बजाई * विविध भाँति तहँ परी लराई
जूझे सकल सुभट करि करणी * बन्धु समेत परे नृप धरणी॥

और भाग्वाला बजाकर भानुप्रताप के नगर को घेर लिया। भाँति-भाँति की लड़ाई होने लगी। राजा के सब योद्धा विकट युद्ध करके जूझ गये। राजा भानुप्रताप भी अपने भाई अरिमर्दन के साथ पृथ्वी पर गिर गये।

सत्यकेतुकुल कोइ न बाँचा * विप्रशाप किमि होइ असाँचा
रिपुहि जीति नृप नगर बसाई * निज पुर गवने जय यश पाई

राजा सत्यकेतु के वंश में कोई न रह गया। ब्राह्मणों का शाप कैसे झूठा हो सकता है? राजा लोग शत्रु को जीत नगर बसाकर विजय का यश पाकर अपने-अपने नगर को गये।


भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत विधाता वाम।
धूरि मेरुसम जनक यम, ताहि व्यालसम दाम॥

हे भरद्वाज, सुनो। विधाता जब जिसके विरुद्ध होता है तब उसे धूल पहाड़ हो जाती है। पिता यमराज बन जाता है और रस्सी साँप हो जाती है।

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा * भयो निशाचर सहितसमाजा
दशशिर ताहि बीस भुजदण्डा * रावण नाम वीर बरिबण्डा

हे मुनि, सुनो, वही राजा भानुप्रताप समय पाकर परिवारसहित राक्षस हुआ। वह दश सिर और बीस भुजाओंवाला प्रचण्ड वीर रावण नाम से प्रसिद्ध हुआ

भूप अनुज अरिमर्दन नामा * भयउ सो कुम्भकर्ण बलधामा
सचिव जो रहा धर्मरुचि जासू * भयउ विमात्र बन्धु लघु तासू

राजा का छोटा भाई अरिमर्दन बल का धाम कुम्भकर्ण हुआ। मन्त्री धर्मरुचि उसका वैमात्र (दूसरी मा से उत्पन्न) छोटा भाई हुआ—

नाम विभीषण जेहि जग जाना * विष्णुभक्त विज्ञाननिधाना
रहे जे सुत सेवक नृप केरे * भये निशाचर घोर घनेरे

उसका नाम विभीषण था। वह विष्णुभगवान् का भक्त तथा ज्ञान की खान संसार में प्रसिद्ध था। राजा भानुप्रताप के पुत्र, सेवक आदि सब घोर राक्षस हुए।

कामरूप खल जिनिस अनेका * कुटिल भयङ्कर विगतविवेका
कृपारहित हिंसक सब पापी * बरणि न जाय विश्वपरितापी

वे सब दुष्टराक्षस इच्छानुसार अनेक रूप धारण करनेवाले, विवेकहीन, भयङ्कर, खोटे, निर्दय, हत्यारे, पापी और संसार को दुःख देनेवाले थे। उनकी दुष्टता का वर्णन नहीं किया जा सकता।


उपजे यदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुरशापवश, भये सकल अघरूप॥

यद्यपि निर्मल सुन्दर, पवित्र पुलस्त्य के कुल में राजा और उसके भाई पैदा हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण सब पापरूप हुए।

कीन्ह विविध तप तीनों भाई * परम उग्र सो बरणि न जाई
गये निकट तप देखि विधाता * माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता

फिर तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार की तपस्याएँ कीं, जो ऐसी उग्र थीं कि कहते नहीं बनतीं। ऐसी तपस्या देख ब्रह्माजी ने पास जाकर कहा—हे तात, मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।

करि बिनती पदगहि दशशीशा * बोलेउ वचन सुनहु जगदीशा
हम काहू के मरहिं न मारे * वानर मनुज जाति दुइ बारे

तब रावण चरण पकड़कर बिनती करता हुआ बोला—हे जगदीश, सुनिए। वानर और मनुष्य, इन दो जातियों को छोड़कर, हम किसी के मारे न मरें।

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा * मैं ब्रह्मा मिलि तोहिं वर दीन्हा
पुनि प्रभु कुम्भकर्ण पहँ गयऊ * तेहिं बिलोकिमन बिस्मयभयऊ

ब्रह्मा ने कहा—तुमने बड़ी तपस्या की है, इससे मैं (ब्रह्मा) ने तुम्हें दर्शन देकर यह वरदान दिया। ऐसा ही हो। फिर प्रभु ब्रह्माजी कुम्भकर्ण के पास गये, उसे देख उनके मन में विस्मय हुआ।

जो यहखलनित करिहि अहारा * होइहि सब उजारि संसारा
शारद प्रेरि तासु मति फेरी * माँगेसि नींद मास षट केरी

ब्रह्मा ने अपने मन में सोचा कि जो यह दुष्ट नित्य भोजन करेगा तो संसार ही उजड़ जायगा। यह सोच ब्रह्माजी ने सरस्वती को भेज उसकी बुद्धि उलट दी। उसने ब्रह्मा से छः महीने की नींद माँगी।


गये बिभीषण पास पुनि, कह्यो पुत्र वर माँग।
तेहि माँगेउ भगवन्तपद, कमल अमल अनुराग॥

फिर विधाता विभीषण के पास गये और कहा—हे पुत्र, वरदान माँगो। विभीषण ने भगवान् श्रीरामजी के चरणारविन्दों में निर्मल भक्ति माँगी।

तिनहिं देइ वर ब्रह्म सिधाये * हर्षित ते अपने गृह आये
मयतनुजा मन्दोदरि नामा * परम सुन्दरी नारि ललामा

उनको वरदान दे ब्रह्माजी चले गये। तीनों भाई प्रसन्न हो अपने घर को आये। मय दैत्य की पुत्री, जिसका नाम मन्दोदरी था, बड़ी सुन्दरी और मनभावनी थी।

सोइ मय दीन्ह रावणहिं आनी * भई सो यातुधानपति रानी
हर्षित भयउ नारि भलि पाई * पुनि दोउ बन्धु बिबाहेसि जाई

मय दानव ने वह कन्या लाकर रावण को ब्याह दी । मंदोदरी रावण की पटरानी हुई। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ । उसने दोनों भाइयों के भी विवाह किये * ।

गिरि त्रिकूट इक सिन्धु मँझारी * विधिनिर्मित दुर्गम अतिभारी
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा * कनकरचित मणिभवन अपारा

समुद्र में एक त्रिकूट पहाड़ है । वहाँ ब्रह्मा का बनाया एक गढ़ है, जो बहुत बड़ा और दुर्गम है । उसी को मय दानव ने फिर सुधारा । उसमें रत्नजटित सोने के अनगिनत घर थे ।

भोगवती जस अहिकुलवासा * अमरावति जस शक्र निवासा
तिनते अधिक रम्य अतिबङ्का * जगविख्यात नाम तेहि लङ्का

जैसे सर्पों के कुल की बस्ती भोगवतीपुरी और इंद्र का निवासस्थान अमरावती है, वैसे ही, बल्कि उनसे भी अधिक मनोहर बहुत बाँकी संसार में प्रसिद्ध वह लङ्कापुरी थी ।



खाईं सिन्धु गँभीर अति, चारिहुदिशि फिरि आव ।
कनककोटमणिखचितदृढ़, वरणि न जाय बनाव ॥

उसके चारों ओर मणियों से जड़ा सोने का दृढ़ कोट था । उस कोट के चारों ओर खाईं (गहरी नहर) थी, जिसके चारों ओर अगाध समुद्र था । उस पुरी का बनाव वर्णन नहीं करते बनता ।

हरिप्रेरित जेहि कल्प जोइ, यातुधानपति होय ।
शूर प्रतापी अतुल बल, दलसमेत बस सोय ॥

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा होता था वह शूरवीर, प्रतापी और बलवाला अपनी सेनाओं सहित उस लङ्का में रहता था ।

रहे तहाँ निशिचर भट भारे * ते सब सुरन समर संहारे
अब तहँ रहहिं शक्र के प्रेरे * रक्षक कोटि यक्षपति केरे

वहाँ बड़े योद्धा राक्षस रहते थे, जिन सबको युद्ध में देवताओं ने मार डाला । अब वहाँ इंद्र के भेजे यक्षपति श्रीकुबेरजी के कोट के रक्षक एक करोड़ यक्ष रहते थे ।

दशमुख कवहुँ खबरि असिपाई * सेनसाजि गढ़ घेरेसि जाई
देखि विकट भट बड़ि कटकाई * यक्ष जीव लै चले पराई

रावण ने कहीं यह समाचार पाकर सब सेना तैयार की और लङ्का के कोट को जाकर घेर लिया । भयङ्कर योद्धाओं की बड़ी भारी सेना देख वहाँ के रहनेवाले यक्ष प्राण लेकर भाग गये ।

फिरि सब नगर दशानन देखा * गयउ शोच सुख भयउ विशेखा
सुन्दर सहज अगम अनुमानी * कीन्ह तहाँ रावण रजधानी

* दैत्यकन्या वज्रज्वाला के साथ कुम्भकर्ण का और गन्धर्वकन्या सरमा के साथ विभीषण का विवाह हुआ ।

फिर रावण ने सब लङ्कापुरी को घूमकर देखा तो उसकी सुन्दरता देख वह बहुत सुखी हुआ। उसको सहज ही सुन्दर और अगम जानकर रावण ने उसे अपनी राजधानी बनाया।

जेहि जस योग्य बाँटि गृह दीन्हे * सुखी सकल रजनीचर कीन्हे
एक बार कुबेर पहँ धावा * पुष्पकयान जीति लै आवा

जो जिस योग्य था, उसे उसी के अनुसार सब घर बाँट दिये। सब राक्षसों को सुखी किया। रावण ने एक बार श्रीकुबेरजी पर चढ़ाई की और उनको जीत पुष्पकविमान ले आया।



कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाय उठाय।
मनहुँ तौलिभट बाहुबल, चला अधिक सुखपाय॥

राह में कौतुकवश खेल की तरह रावण ने कैलास पर्वत को उठा लिया, मानो उसने अपनी भुजाओं का बल तौल लिया। इस सफलता से परम सुखी होकर वहाँ से फिर चला।

देव यक्ष गन्धर्व नर, किन्नर नागकुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल, बहु सुन्दरि बरनारि॥

देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर, सर्प आदि की बहुत सुन्दरी और उत्तम कन्याओं को बाहुबल से जीतकर रावण ने उनसे विवाह किया।

सुख सम्पति सुत सेन सहाई * जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई
नित नूतन सब बाढ़त जाई * जिमि प्रतिलाभलोभ अधिकाई

सुख, धन, सन्तान, सेना, सहायक, विजय, प्रताप, बल, बुद्धि और यश—ये सब नित्य नये बढ़ते जाते थे, जैसे हर बार लाभ होने पर और अधिक के लिए लोभ बढ़ता है।

अतिबल कुम्भकर्ण अस भ्राता * जेहिकहँ नहिं प्रतिभटजगजाता
करि मदपान सोव षटमासा * जागत होइ तिहूँपुर त्रासा

बड़ा बलवान् कुम्भकर्ण जैसा रावण का भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा संसार में नहीं उत्पन्न हुआ। वह मदिरा पीकर छः महीने सोता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में भय छा जाता था।

जो दिनप्रति अहार कर सोई * विश्व वेगि सब चौपट होई
समरधीर नहिं जाइ बखाना * तेहि सम अमितबीर बलवाना

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता तो सारा संसार शीघ्र चौपट हो जाता। वह युद्ध में ऐसा अटल था कि कहा नहीं जाता। उसके समान महाबली कोई नहीं था।

वारिदनाद जेठ सुत तासू * भट महँ प्रथम लीक जग जासू
जेहि न होइ रण सम्मुख कोई * सुरपुर नितहिं परावन होई

रावण का बड़ा लड़का मेघनाद था। जिसकी संसार के योद्धाओं में सबसे पहले गिनती होती थी। युद्ध में जिसके सामने कोई नहीं ठहरता था और देवलोक में जिसके डर से नित्य भगदड़ पड़ा करती थी।



दुमुख अकम्पन कुलिशरद, धूम्रकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥

दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूम्रकेतु, अतिकाय आदि दैत्य ऐसे थे कि इनमें से कोई भी अकेला ही संसार को जीत सकता था। ऐसे ही बहुत-से योद्धाओं के समूह रावण के यहाँ थे।

कामरूप जानहिं सब माया ॥ सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया
दशमुख बैठि सभा इक बारा ॥ देखि अमित आपन परिवारा

वे सब मनमाना रूप रखनेवाले तथा सब मायाओं में प्रवीण थे। उनमें स्वप्न में भी स्नेह और दया का लेश नहीं था। एक समय रावण सभा में बैठा था। अपना असंख्य परिवार,

सुतसमूह जन परिजन नाती ॥ गनै को पार निशाचरजाती
सेन विलोकि सहजअभिमानी ॥ बोला वचन क्रोधमदसानी

अनेक पुत्र, अगणित कुटुम्बी और नाती तथा राक्षसों की अपार सेना देखकर सहज अभिमानी रावण क्रोध और अहङ्कार से भरे ये वचन बोला—

सुनहु सकल रजनीचरजूथा ॥ हमरे वैरी विबुधवरूथा
ते सम्मुख नहिं करहिं लराई ॥ देखि सबलरिपु जाहिं पराई

हे राक्षसगण, सुनो, देवता हमारे वैरी हैं। परन्तु वे सामने आकर युद्ध नहीं करते; मुझ महाबली शत्रु को देख भाग जाते हैं।

तिनकर मरण एक विधि होई ॥ कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई
द्विजभोजन मख होम सराधा ॥ सबकर जाइ करहु तुम बाधा

उनका मरना एक प्रकार से हो सकता है, अब उसी को समझाकर कहता हूँ, सुनो। तुम लोग जाकर ब्रह्मभोज, यज्ञ, हवन और श्राद्ध—इन सब कामों में बाधा डालो।



क्षुधाक्षीण बलहीन सुर, सहजहिं मिलिहैं आइ।
तब मारिहौं कि छाँड़िहौं, भली भाँति अपनाइ॥

तब देवता लोग भूख से क्षीण और निर्बल हो सहज ही आ मिलेंगे। उस समय यदि हमारे विरुद्ध होंगे तो मार डालूँगा, नहीं तो भली प्रकार अपने अधीन कर छोड़ दूँगा।

मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा ॥ दीन्ह सीख बल वैर बढ़ावा
जे सुर समरधीर बलवाना ॥ जिनके लरिबे का अभिमाना

फिर रावण ने मेघनाद को बुलाया। उसे खूब सिखाया-पढ़ाया, उसका उत्साह और देवताओं के प्रति वैरभाव बढ़ाया। रावण ने कहा—जितने देवता युद्ध करने में धीर और बलवान् हैं जिनको योद्धा होने का घमंड है—

तिनहिं जीतिरण आनेसि बाँधी * उठि सुत पितुअनुशासनकाँधी
यहि विधि सबहीं आज्ञा दीन्हा * आपहु चलेउ गदा कर लीन्हा

उनको युद्ध में जीत बाँधकर ले आओ। तब पुत्र मेघनाद ने उठकर पिता की आज्ञा को सिर पर लिया। इस प्रकार सबको आज्ञा दे आप भी हाथ में गदा लेकर रावण चल दिया।

चलत दशानन डोलत अवनी * गर्जत गर्भ स्रवत सुररवनी
रावण आवत सुनेउ सकोहा * देवन तकेउ मेरुगिरि खोहा

रावण के चलने में पृथ्वी हिलती थी और गर्जने में देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते थे। रावण को क्रोधसहित आते सुन देवताओं ने सुमेरु पर्वत की कन्दराओं की राह पकड़ी।

दिगपालन के लोक सिधाये * सूने सकल दशानन पाये
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी * देत देवतन गारि प्रचारी
रण मदमत्त फिरै जग धावा * प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा

रावण इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि दिक्पालों के लोकों को गया, पर सबको सूना पाया। तब बारंबार सिंह के समान गर्जकर वह देवताओं को ललकार गालियाँ देने लगा। रावण युद्ध करने के अभिमान में मतवाला फिरता था। वह संसार में घूम-घूमकर खोजता था, पर उसने अपनी बराबरी का योद्धा कहीं नहीं पाया।

रवि शशि पवन वरुण धनधारी * अग्नि कालयम सब अधिकारी
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा * हठि सबही के पन्थहि लागा

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम आदि अधिकारी तथा किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और सर्प आदि सभी की राह का रोड़ा वह बन गया—सबको सताने लगा।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी * रावणवशवर्ती नर नारी
आयसु करहिं सकल भयभीता * नवहिं आय नित चरणपुनीता

ब्रह्मा की सृष्टि में जहाँ तक देहधारी स्त्री-पुरुष हैं, सब रावण के वश हो चलने लगे। वह पूरे ब्रह्माण्ड का राजा हुआ। सब नित्य रावण के पवित्र चरणों में सिर झुका भयभीत हो आज्ञा का पालन करते थे


भुजबल विश्व वश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र।
मण्डलीकमणि रावण, राज्य करहि निज मन्त्र॥

अपनी भुजाओं के बल से संसार को वश कर उसने किसी को स्वतन्त्र नहीं रक्खा। राजमण्डलियों में शिरोमणि रावण अपनी ही इच्छा के अनुसार राज्य करने लगा।

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ * सो सब जनु पहिले करि रहेऊ
प्रथमहिं जिनकहँ आयसु दीन्हा * तिनके चरित सुनहु जो कीन्हा

रावण ने मेघनाद से जो कुछ कहा था, वह सब उसने मानो पहले ही कर रक्खा था। पहले जिन राक्षसों को उसने आज्ञा दी थी, उन्होंने जो कुछ किया, वह सुनो।

देखत भीमरूप सब पापी * निशिचरनिकर देवपरितापी
करहिं उपद्रव असुरनिकाया * नाना रूप धरहिं करि माया

सब राक्षस देखने में भयङ्कर, देवताओं को दुःख देनेवाले और पापी थे। वे माया से अनेक प्रकार के रूप रख उपद्रव करते फिरते थे।

जेहि विधि होय धर्मनिर्मूला * सो सब करहिं वेदप्रतिकूला
जेहि जेहि देश धेनु द्विज पावहिं * नगर ग्राम पुर आगि लगावहिं

जिस प्रकार धर्म की जड़ उखड़ जाय, वही वेद के विरुद्ध काम वे करते थे। जहाँ गउओं और ब्राह्मणों को पाते थे, उस देश, नगर, गाँव और पुर में वे आग लगा देते थे।

शुभ आचरण कतहुँ नहिं होई * वेद विप्र गुरु मान न कोई
नहिं हरि भक्ति यज्ञ जप दाना * सपनेहु सुनिय न वेदपुराना

अच्छे काम कहीं नहीं होते थे। वेद, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। भगवान की भक्ति, यज्ञ, जप और दान कहीं न दिखलाई पड़ते थे। वेद-पुराण तो स्वप्न में भी नहीं सुनाई देते थे।

चौपैया छन्द

जपयोग विरागा तप मख भागा श्रवण सुनै दशशीशा।
आपुहि उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीशा॥
अस भ्रष्टअचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहुविधि त्रासै देश निकासै जो कह वेद पुराना॥

यदि रावण अपने कानों से कहीं जप, योग, वैराग्य, तपस्या और अनेक प्रकार के यज्ञों का होना सुनता तो स्वयं उठ दौड़ता। इनका करनेवाला रहने नहीं पाता था। रावण सब सामग्री नष्ट-भ्रष्ट कर देता था। सारा संसार आचार में भ्रष्ट हो गया। कानों से भी कहीं धर्म का नाम नहीं सुनाई पड़ता था। जो कोई वेद-पुराण कहता, उसे रावण बहुत प्रकार के दुःख देकर देश से निकाल देता था।



बरणि न जाय अनीति, घोरनिशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापन कवनमिति॥

भयङ्कर राक्षस जो अन्याय करते थे वह कहा नहीं जाता; क्योंकि जिनके जीवहिंसा करने में बहुत प्रीति है उनके पाप की हद ही क्या!

बाढ़े बहु खल चोर जुआरी * जे लम्पट परधन परनारी
मानहिं मातु पिता नहिं देवा * साधुन सों करवावहिं सेवा

दुष्ट, चोर, जुआरी तथा पराये धन और स्त्री के लोभी बहुत बढ़ गये। लोग माता, पिता और देवताओं का आदर नहीं करते। तथा साधुओं से अपनी सेवा करवाते थे।

जिनके अस आचरण भवानी * ते जानहु निशिचरसम प्रानी
अतिशय देखि धर्म की हानी * परम सभीत धरा अकुलानी

हे पार्वती, जिनके ऐसे आचरण हों, उन प्राणियों को राक्षसों के समान जानना चाहिए। धर्म की बहुत ही हानि देख पृथ्वी भयभीत और व्याकुल हुई।

गिरिसरसिन्धुभार नहिं मोही * जस मोहिं गरुअ एक परद्रोही
सकल धर्म देखै विपरीता * कहि न सकै रावण भयभीता

वह कहने लगी—पर्वत, नदी, समुद्र आदि का भार उतना मुझे नहीं खलता, जितना जीवों से द्रोह रखनेवाले का भार। पृथ्वी सब उलटे धर्म (अधर्म) को देखती थी; परन्तु रावण के डर से कुछ कह नहीं सकती।

धेनुरूप धरि हृदय विचारी * गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी
निज सन्ताप सुनायसि रोई * काहू ते कछु काज न होई

फिर मन में विचारकर गऊ का रूप रखकर जहाँ सब देवता और मुनि थे, वहाँ पृथ्वी गई और अपना दुःख रो करके सुनाया। परन्तु किसी से कुछ काम न निकला।

चौपैया छन्द

सुर मुनि गन्धर्वा मिलि करि सर्वा गे विरञ्चि के लोका।
सँगगोतनुधारी भूमिबिचारी परमबिकल भय शोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मेरो कछु न बसाई।
जाकी तैं दासी सो अविनाशी हमरो तोर सहाई॥

तब देवता, मुनि, गन्धर्व आदि सब मिलकर ब्रह्मलोक को गये। उनके साथ गऊ का रूप धारण किये बेचारी पृथ्वी भी थी। वह भय और शोक से बहुत व्याकुल थी। ब्रह्मा ने सब हाल जान लिया और मन में यह अनुमान किया कि इसमें मेरा भी कुछ वश नहीं चलेगा। तब वह बोले—जिसकी तू दासी है वह अविनाशी ईश मेरा-तेरा सबका सहायक है।



धरणि धरहु मन धीर, कह विरञ्चि हरिपद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भञ्जिहिं दारुण विपति॥

ब्रह्मा ने भगवान् के चरणों का स्मरण करके कहा—हे धरणी, मन में धीरज धरो। प्रभु अपने भक्त के दुःख को जानते और उसकी कठिन विपत्तियों को दूर करते हैं।

बैठे सुर सब करहिं विचारा * कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई * कोइ कह पयनिधि महँ बस सोई

सब देवता विचार करने लगे कि भगवान् कहाँ मिलेंगे, जहाँ जाकर उनको पुकारें। कोई कहता था, वैकुण्ठ में जाना चाहिए, कोई कहता था, क्षीरसागर में भगवान् रहते हैं।

जाके हृदय भक्ति जस प्रीती * प्रभु तहँ प्रकट सदा यह रीती
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ * अवसर पाय वचन इक कहेऊँ

जिसके मन में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, उसके लिए भगवान् उसी प्रकार प्रकट होते हैं—भगवान् की यह सदा की रीति है। हे गिरिजा, उस समाज में मैं भी था। समय पाकर मैंने कहा—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना * प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना
देशकाल दिशिविदिशहु माहीं * कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं

भगवान् सब कहीं बराबर व्यापक हैं, और मैं जानता हूँ कि वह प्रेम से प्रकट होते हैं। बताओ, देश, समय, दिशा और उपदिशाओं में वह कौनसा स्थान है, जहाँ भगवान् नहीं हैं।

अगजगमय सबरहित विरागी * प्रेमतेप्रकटहिंप्रभुजिमि आगी
मोर वचन सबके मन माना * साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना

चराचर जगत् में व्याप्त, माया के प्रपंच से रहित, विरक्त होकर भी भगवान् प्रेम की रगड़ से अग्नि के समान प्रकट होते हैं। मेरा कहना सबको अच्छा लगा। ब्रह्मा ने "वाह वाह!" कहकर बड़ाई की।



सुनि विरञ्चि मन हर्ष तन, पुलक नयन बह नीर।
अस्तुति करत सुजोरिकर, सावधान मतिधीर॥

मेरे वचन सुन ब्रह्मा मन में प्रसन्न हुए। उनकी देह में रोएँ खड़े हो गये, उनके नेत्रों से प्रेम के आँसू बहने लगे। तब बुद्धि को स्थिर कर बड़ी सावधानी से हाथ जोड़कर वह स्तुति करने लगे—

चौपैया छन्द

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रणतपाल भगवन्ता।
गोद्विजहितकारी जय असुरारी सिन्धुसुताप्रियकन्ता॥
पालन सुरधरणी अद्भुतकरणी मर्म न जाने कोई।
जो सहजकृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई॥

हे देवताओं के स्वामी, हे भक्तों को सुख देनेवाले, हे शरणागतों के रक्षक, हे भगवन्, आपकी जय हो। आप दैत्यों का विनाशकर गो-ब्राह्मणों का हित करते हैं। आप लक्ष्मीजी के प्यारे पति हैं। देवताओं का और पृथ्वी का पालन करने के लिए आप अद्भुत चरित्र करते हैं, जिनका अभिप्राय कोई नहीं जानता। आप स्वभाव ही से कृपालु और दुखियों पर दया करनेवाले हैं। इसलिए वही अनुग्रह कीजिए।

जय जय अविनासी सब घटबासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुन्दा॥
जेहिलागि बिरागी अतिअनुरागी बिगतमोह मुनिबृन्दा।
निशिबासर ध्यावहिं गुणगण गावहिं जयतिसच्चिदानन्दा॥

हे अविनाशी, घट-घट के वासी, सर्वव्यापी, आपकी जय हो। हे सच्चिदानन्दरूप, आप इन्द्रियों से परे हैं। आपके चरित्र पवित्र हैं। आप माया से रहित व मोक्ष देनेवाले हैं। वैरागी मुनियों के समूह संसार का मोह छोड़कर आपकी भक्ति करते हैं। वे रात-दिन आपका ध्यान करते और आपके गुण गाते हैं। ऐसे सच्चिदानन्दस्वरूप आपकी जय हो, जय हो।

जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई सङ्ग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥
जो भवभयभञ्जन मुनिमनरञ्जन गञ्जनविपतिबरूथा।
मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी शरण सकल सुरयूथा॥

जिसने किसी दूसरे की सहायता बिना सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन तरह की यह सारी सृष्टि रची है, वह पापों का नाश करनेवाला ईश्वर हमारी खबर ले। हम भक्ति और पूजा नहीं जानते। जो मिथ्या संसारभ्रम के भय के नाशक, विचारशील मुनियों के मन में भक्तिरूपी रंग के रँगनेवाले और अगणित विपत्तियों के नाशक हैं, हम सब देवसमूह चालाकी छोड़कर मन वचन कर्म से उन्हीं आपकी शरण हैं।

शारद श्रुतिशेषा ऋषयअशेषा जा कहँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीनपियारे वेद पुकारे द्रवो सो श्रीभगवाना॥
भववारिधिमन्दर सबबिधि सुन्दर गुणमन्दिर सुखपुञ्जा।
मुनि सिद्ध सकलसुर परम भयातुर नमत नाथपदकञ्जा॥

जिनको सरस्वती, वेद, शेष भगवान् और ऋषि आदि कोई नहीं जानते, जिनके विषय में वेद कहते हैं कि उसे दीन पुरुष अधिक प्यारे हैं, वह भगवान् हमारे ऊपर कृपा करें। आप संसारसमुद्र के मथने को मन्दराचल के समान, सब प्रकार से सुन्दर गुणों के मन्दिर और आनन्द के समूह हैं। हे नाथ, मुनि, सिद्ध और सब देवता इस समय बहुत दुखी हो आपके चरणारविन्दों में नमस्कार करते हैं।


जानि सभय सुर भूमि सुनि, वचन समेत सनेह।
गगनगिरा गम्भीर भइ, हरनि शोकसन्देह॥

तब देवता, पृथ्वी और मुनियों को भयभीत जानकर और उनके विनीत वचन सुनकर भगवान् की ओर से दुःख और संदेह को दूर करनेवाली यह गम्भीर आकाशवाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा * तुमहिं लागि धरिहौं नरवेशा
अंशन सहित मनुज अवतारा * लेहौं दिनकरवंश उदारा

हे मुनियो, सिद्धो और देवताओ, मत डरो। तुम्हारे लिए मैं मनुष्य का शरीर धारण करूँगा। अपने सब अंशों सहित उत्तम सूर्यवंश में मेरा अवतार होगा।

कश्यप अदिति महातप कीन्हा * तिनकहँ मैं पूरब वर दीन्हा
ते दशरथ कौशल्या रूपा * प्रकटत भये अवधपुरभूपा

कश्यप और अदिति ने बहुत तप किया था। उनको मैं पहले वर दे चुका हूँ। वे दोनों दशरथ और कौशल्या के रूप से अयोध्यापुरी के राजा और रानी हुए हैं।

तिनके गृह अवतरिहौं जाई * रघुकुल तिलक सु चारिहु भाई
नारदवचन सत्य सब करिहौं * परमशक्ति समेत अवतरिहौं

रघुवंशियों में श्रेष्ठ चार भाई होकर उनके घर में अवतार लूँगा। नारद के वचन सत्य करने को अपनी परम शक्ति सीता के साथ मैं पृथ्वी पर प्रकट होऊँगा।

हरिहौं सकल भूमि गरुआई * निर्भय होहु देव समुदाई
गगन ब्रह्मवाणी सुनि काना * तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना
तब ब्रह्मा धरणिहिं समुझावा * अभय भई भरोस जिय आवा

पृथ्वी का सब भार दूर कर दूँगा। हे देवगण, निर्भय होओ। देवता लोग अपने कानों से आकाश में हुई यह ब्रह्मवाणी सुन वहाँ से लौटे। ताप दूर हो जाने से उनका हृदय ठण्डा हो गया। तब ब्रह्मा ने पृथ्वी को समझाया, जिससे पृथ्वी के मन में भरोसा हुआ।


निज लोकहि विरञ्चि गये, देवन इहै सिखाय।
वानरतनु धरि धरणि महँ, हरिपद सेवहु जाय॥

ब्रह्माजी देवताओं को यह समझाकर अपने स्थान को चले गये कि पृथ्वी में वानररूप से प्रकट होकर तुम सब भगवान् के चरणों की सेवा करना।

गये देव सब निज निज धामा * भूमिसहित पाये विश्रामा
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा * हर्षे देव विलम्ब न कीन्हा

तब पृथ्वीसहित सब देवताओं के मन को शान्ति मिली, वे अपने-अपने लोक को गये।

ब्रह्मा ने जो कुछ आज्ञा दी थी, देवतों ने प्रसन्न हो उसके अनुसार काम करने में देरी नहीं की।

बनचरदेह धरी क्षिति माहीं * अतुलितबल प्रताप तिनपाहीं
गिरि तरु नख आयुध सबबीरा * हरिमारग जोवहिं रणधीरा
गिरि कानन जहँ तहँ महिपूरी * रहे निजनिज अनीक रचिरूरी

पृथ्वीतल में वे देवता वनचरों (वानर, लंगूर, रीछ आदि) की देह धारण कर प्रकट हुए। उनके बल और प्रताप की थाह नहीं थी। वे सब शूरवीर, धीर थे। पहाड़, वृक्ष और नाखून ही उनके शस्त्र थे। वे भगवान् के अवतार की बाट जोहने लगे। अपने जत्थे बनाकर वे जहाँ-तहाँ पहाड़ों और वनों में रहने लगे।

अवधपुरी रघुकुलमणि राऊ * वेदविदित तेहि दशरथ नाऊ
धर्मधुरन्धर गुणनिधि ज्ञानी * हृदय भक्ति मति शारँगपानी

अयोध्यापुरी में रघुवंशियों में रत्न के समान श्रेष्ठ दशरथ नाम के एक राजा हुए। वह बड़े धर्म-धुरन्धर, गुणों की खान और ज्ञानी थे। उनका हृदय और बुद्धि भगवान् की भक्ति में तल्लीन थी।



कौशल्यादि नारि प्रिय, सब आचरण पुनीत।
पतिअनुकूल सुप्रेमदृढ़, हरिपदकमल विनीत॥

उनके परम पतिव्रता, सुशीला कौशल्या आदि प्यारी स्त्रियाँ थीं। वे अपने पति के अनुकूल थीं। भगवान् के चरणारविन्दों की वे परम भक्त थीं।

एक बार भूपति मन माहीं * भै गलानि मोरे सुत नाहीं
गुरुगृह गये तुरत महिपाला * चरण लागि करि विनय विशाला

एक समय राजा के मन में यह ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। वह तुरन्त गुरु वशिष्ठजी के घर गये और उनके चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की।

निजदुखसुखरूप गुरुहिं सुनायो * कहि वशिष्ठ बहुविधि समुझायो
धरहु धीर होइहैं सुत चारी * त्रिभुवनविदित भक्तभयहारी

राजा ने अपना दुःखसुख सब गुरुजी को सुनाया। तब वशिष्ठजी ने बहुत प्रकार से समझाया कि हे राजन्, धीरज धरिए। तीनों लोकों में प्रसिद्ध, भक्तों के भय को दूर करने-वाले आपके चार पुत्र होंगे।

शृङ्गीऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा * पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा
भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हें * प्रकटे अनल चरू कर लीन्हें

फिर गुरु वशिष्ठजी ने शृङ्गी ऋषि को बुलाकर पुत्रों के लिए शुभ पुत्रेष्टि यज्ञ राजा से कराया। मुनि ने बड़ी भक्ति के साथ जब अन्त में आहुति दी, तब हाथ में खीर का पात्र लिए अग्निदेव हवन के कुंड से प्रकट हुए।

जो वशिष्ठ कछु हृदय बिचारा * सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई * यथायोग्य जेहि भाग बनाई

और कहा—हे राजन्, जो कुछ वशिष्ठजी ने मन में विचारा था, वह आपका सब काम सिद्ध हुआ। अब यह खीर लीजिए और जैसा उचित समझिए, भाग लगाकर रानियों को बाँट दीजिए।



तब अदृश्य पावक भये, सकल सभहि समुझाय।
परमानन्द मगन नृप, हर्ष न हृदय समाय॥

अग्निदेव इस तरह सारी सभा को समझाकर अन्तर्धान हो गये। राजा दशरथ कार्य सिद्ध होने से आनन्द में मग्न हो गये। आनन्द हृदय में नहीं समाता था।

तबहिं राउ प्रिय नारि बुलाईं * कौशल्यादि तहाँ चलि आईं
अर्द्धभाग कौशल्यहि दीन्हा * उभय भाग आधे कर कीन्हा

तब राजा ने प्यारी स्त्रियों को बुलाया। कौशल्या आदि तीनों रानियाँ वहाँ आईं। राजा ने खीर का आधा भाग कौशल्या को दिया। फिर आधे के दो भाग किये।

कैकेयी कहँ नृप सो दयऊ * रह्यो सो उभयभाग पुनि भयऊ
कौशल्या कैकयी हाथ धरि * दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि

उनमें से एक भाग राजा ने कैकयी को दिया। शेष एक भाग के फिर दो भाग किये। उनमें से एक भाग कौशल्या के हाथ से और एक कैकयी के हाथ से प्रसन्न मन होकर सुमित्रा को दिला दिया।

यहि विधि गर्भसहित सब नारी * भयउ हृदय हरषित सुखभारी
जा दिन ते हरि गर्भहि आये * सकल लोक सुख सम्पति छाये

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती और प्रसन्न हुईं। जिस दिन से भगवान् गर्भ में आये, उस दिन से सब लोक सुख और ऐश्वर्य से पूर्ण हो गये।

मन्दिर महँ सब राजहिं रानी * शोभा शील तेज की खानी
सुखयुत कछुककाल चलिगयऊ * जेहिप्रभुप्रकटसोअवसर भयऊ

शोभा, शील, तेज और गुणों की खान सब रानियाँ अपने-अपने महल में सुशोभित हुईं। कुछ समय ऐसे ही सुख से व्यतीत हुआ। तब वह समय आया, जिसमें भगवान उत्पन्न हुए।



योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षयुत, रामजन्म सुखमूल॥

योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सब अनुकूल हुए। सुख के मूल श्रीरामजी के जन्म में चराचर सारा संसार प्रसन्नता से भर गया।

नवमी तिथि मधुमास पुनीता * शुक्लपक्ष अभिजित हरिप्रीता
मध्यदिवस अति शीत न घामा * पावन काल लोक विश्रामा

भगवान् के अवतार का समय आया। नवमी तिथि, पवित्र चैत्र का महीना, शुक्लपक्ष, भगवान् के प्यारे अभिजित् मुहूर्त में, दोपहर के समय, जब कि न बहुत शीत था और न घाम, किन्तु लोगों के विश्राम का पवित्र समय था,

शीतल मन्द सुरभि बह बाऊ * हरषित सुर सन्तन मन चाऊ
बनकुसुमितगिरिगणमणिआरा * स्रवैं सकल सरितामृतधारा

शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चल रही थी, देवता प्रसन्न थे, सन्तजनों के मन में चाव था। वन फूल उठे, पर्वतगण रत्नमय दीखने लगे और सब नदियाँ अमृत की धारा बहाने लगीं।

सो अवसर विरञ्चि जब जाना * चले सकल सुर साजि विमाना
गगन विमल संकुल सुरयूथा * गावहिं गुण गन्धर्ववरूथा

वह समय जब ब्रह्माजी ने जाना तो सब देवताओं सहित विमान साजकर चले। विमल आकाश में टिके सब देवताओं और गन्धर्वों के झुण्ड भगवान् के गुण गाने—

बर्षहिं सुमन सुअञ्जलि साजी * गहगह गगन दुन्दुभी बाजी
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा * बहुविधि लावहिं निजनिज सेवा

और सुन्दर अंगुलियों से फूल भर बरसाने लगे। आकाश में खूब गहगहे नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि, देवता आदि बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा जनाते हुए स्तुति करने लगे।



सुर समूह बिनती करी, पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रकटभे, अखिल लोक विश्राम॥

देवगण विनती कर अपने-अपने धाम को पहुँचे। इसी समय विश्व में व्याप्त जगन्निवास प्रभु ने जन्म लिया।

चौपैया छन्द

भे प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्याहितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचनअभिरामा तनघनश्यामा निजआयुधभुजचारी।
भूषणवनमाला नयनविशाला शोभा सिन्धु खरारी॥

दीनों पर दया करनेवाले, कौशल्याजी के हितकारी, कृपालु श्रीरामजी जब उत्पन्न हुए तब मुनियों के मन हरनेवाले भगवान् का अद्भुतरूप देख माता कौशल्या प्रसन्न हुईं। भगवान् की देह नेत्रों को सुख देनेवाली, जले बादलों के समान श्याम थी। चार भुजाएँ और तिनमें

वह अपने शस्त्र शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये थे। वनमालाधारी, विशाल लोचन, शोभा के समुद्र, खर आदि राक्षसों को मारने के लिये रामचन्द्र उत्पन्न हुए।

कह दुहुँ करजोरी अस्तुति तोरी केहिविधि करौं अनन्ता।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेदपुराण भनन्ता॥
करुणासुखसागर सब गुणआगर जेहि गावैं श्रुति सन्ता।
सो ममहितलागी जनअनुरागी प्रकट भये श्रीकन्ता॥

माता कौशल्या दोनों हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हे अनन्त, आपकी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ? क्योंकि आप मन, वाणी और बुद्धि से परे हैं। वेद, पुराण कहते हैं कि परमेश्वर अमान (तौल से रहित) और त्रिगुणात्मिका माया से परे ज्ञानस्वरूप है तथा कृपा और आनन्द का समुद्र है, सब माया के गुणों को साक्षीरूप से जानता है। जिसके ऐसे अलौकिक लक्षणों को वेद और सन्तजन गाते हैं, वही अपने भक्तों पर स्नेह करनेवाले लक्ष्मीपति मेरे हित के लिए उत्पन्न हुए हैं।

त्रिभङ्गी छन्द

ब्रह्माण्डनिकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै॥

वेद कहते हैं कि आपके हर एक रोएँ में माया से बने ब्रह्माण्डसमूह हैं। फिर आपने मेरे पेट में दस मास तक वास किया, यह एक हँसी की बात है। इसे सुनकर धैर्यवानों की भी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। जब कौसल्या के यह निर्गुण और सगुण ब्रह्म में अभेद होने का ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु ने यह समझकर कि माता मुझे पहचान गई, मुस्करा दिया। अभी इस अवतार में बहुत प्रकार के चरित्र किया चाहते हैं, इससे माता को ऐसी सुहावनी कथाएँ कहकर समझाया जिस प्रकार से पुत्र का स्नेह प्राप्त हो।

चौपैया छन्द

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजे शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

वह बुद्धि हट जाने पर माता बोली कि हे तात, यह स्वरूप छोड़िए और बहुत प्यारी बाल-लीला कीजिए, क्योंकि उसका सुख बहुत उत्तम है। यह सुन्दर ज्ञानयुक्त वचन सुन देवताओं के स्वामी श्रीरामजी बालक बन गये और रोने लगे। जो इस चरित्र को गावेंगे, वे भवकूप में न पड़ेंगे, हरि के चरणों में स्थान पावेंगे।



विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार॥

अपनी इच्छा से देह धारण करनेवाले तथा माया के सत्, रज, तम आदि गुणों और इन्द्रियों से परे भगवान् ने ब्राह्मण, गऊ, देवता और साधुओं के हित के लिए मनुष्ययोनि में अवतार लिया।

सुनिशिशुरुदन परमप्रिय बानी * सम्भ्रम चलि आईं सब रानी
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी * आनँदमगन सकल पुरवासी

अचानक बहुत प्रिय स्वर में बालक का रोना सुन सब रानियाँ कौशल्या के पास दौड़ी आईं। दासियाँ प्रसन्न हो इधर-उधर दौड़ीं और सब अयोध्यापुरवासी श्रीरामजी का जन्म सुन आनन्द में मग्न हो गये।

दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना * मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना
परम प्रेम मन पुलक शरीरा * चाहत उठन करत मतिधीरा

कानों से पुत्र का जन्म सुन दशरथ तो मानो ब्रह्मानन्द में समा गये, मग्न हो गये। मन में बहुत ही स्नेह हुआ और देह में पुलकावली छा गई। देखने को उसी समय उठना चाहते हैं, परन्तु फिर भी बुद्धि में धीरज लाते हैं।

जाकर नाम सुनत शुभ होई * मोरे गृह आवा प्रभु सोई
परमानन्द पूरि मन राजा * कहा बुलाइ बजावहु बाजा

'जिसका नाम सुनने से कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आये हैं', यह सोचकर राजा का मन परम आनन्द से भर गया और उन्होंने अनुचरों को बुलाकर कहा कि (खुशी के) बाजे बजाओ।

गुरु वशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा * आये द्विजन सहित नृपद्वारा
अनुपम बालक देखेन्हि जाई * रूपराशि गुण कहि न सिराई

गुरु वशिष्ठ के यहाँ बुलावा गया। वे ब्राह्मणों सहित राजा के द्वार पर आये। उन्होंने अनुपम तेजस्वी बालक को देखा, जो रूप की राशि है और जिसका गुण कहने से समाप्त नहीं हो सकता।



तब नान्दीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मणि, नृप विप्रन कहँ दीन्ह॥

तब राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके जातकर्मसंस्कार किया और ब्राह्मणों को सोना, गौ, वस्त्र, रत्नादि दिये।

ध्वज पताक तोरण पुर छावा * कहि न जाय जेहि भाँति बनावा

सुमनवृष्टि आकाश ते होई * ब्रह्मानन्द मगन सब लोई

ध्वजा, पताका, तोरण, वन्दनवार आदि अयोध्यापुर भर में लगाये गये। वह सजावट वर्णन नहीं की जा सकती। आकाश से फूलों की वर्षा होती थी। सब कोई ऐसे सुख में, मानो ब्रह्मानन्द में मग्न थे।

वृन्द वृन्द मिलि चलीं लुगाईं * सहज शृँगार किये उठि धाईं

कनककलश मङ्गल भरि थारा * गावत पैठहिं भूपदुआरा

झुंड की झुंड स्त्रियाँ (श्रीरामजी का जन्म सुन) साधारण शृंगार किये ही उठ दौड़ीं। वे मङ्गल की वस्तुओं से भरे सोने के थाल और कलश लिए गाती हुई राजद्वार में पैठती थीं।

करि आरती निछावरि करहीं * बार बार शिशु चरणन परहीं

मागध सूत वन्दिगण गायक * पावन गुण गावहिं रघुनायक

बालरूप भगवान् की आरती उतारती, न्योछावर करती और बार-बार उनके चरणों में पड़ती थीं। मागध, सूत, वन्दी और गायकों के गण श्रीरघुनाथजी के पवित्र यश को गाने लगे।

सर्वस दान दीन्ह सबकाहू * जेहि पावा राखा नहिं ताहू

मृगमद चन्दन कुंकुम कीचा * मची सकल वीथिन बिचबीचा

राजा ने सबको अपना सर्वस्व ही दान कर दिया और जिसने राजा से जो कुछ पाया, उसने भी श्रीरामजी के ऊपर वह सब न्योछावर कर दिया। अयोध्या की सब गलियों में कस्तूरी, चन्दन, केसर आदि की कीच रच गई।

दो० गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रकट भये सुखकन्द।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नरवृन्द॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी के उत्पन्न होने पर अयोध्या के घर-घर में मंगल-बधाई बजने लगी। नगर भर में जहाँ-तहाँ सब स्त्री और पुरुष बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ते थे।

केकयसुता सुमित्रा दोऊ * सुन्दरसुत जन्मत भईं सोऊ

वह सुखसम्पति समय समाजा * कहि न सकैं शारद अहिराजा

कैकेयी और सुमित्रा, इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये। वह सुख, वह धनसम्पत्ति का लुटाया जाना, वह शुभ समय और वह समाज अपूर्व था। उसका बखान सरस्वती और शेष भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी सोहै यहि भाँती * प्रभुहि मिलन आई जनु राती

देखि भानु जनु मन सकुचानी * तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी

अयोध्यापुरी इस प्रकार शोभायमान थी, मानो श्रीरामजी से भेंट करने के लिये रात आई है; परन्तु दिन होने के कारण सूर्यनारायण को देख लजा गई—तो भी सन्ध्या बनकर रह गई।

अगर धूप जनु बहु अँधियारी * उड़ै अबीर मनहुँ अरुणारी
मन्दिर मणिसमूह जनु तारा * नृपगृह कलशसो इन्दु उदारा

अगर और धूप का धुआँ ही मानो साँझ के समय का हलका अँधेरा है और अबीर का उड़ना साँझ की लाली (जो पश्चिम के आकाश में दिखाई पड़ती है) है। राजमन्दिर में जड़े रत्न मानो तारे और राजमन्दिर में लगा सोने का कलश ही मानो पूर्ण चन्द्रमा था।

भवन वेदध्वनि अतिमृदु बानी * जनुखगमुखर समय अनुमानी
कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना * एक मास तेहि जात न जाना

मन्दिर में बहुत मीठे स्वर से वेदध्वनि होती थी, वही मानो साँझ के समय पक्षियों का शब्द था। यह तमाशा देख सूर्य भी अपनी राह भूल गये और एक महीना बीतते नहीं जाना।


मासदिवसकर दिवसभा, मर्म न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकयऊ, निशा कवन विधि होइ॥

यह दिन एक महीने का हुआ, परन्तु किसी ने मारे आनन्द के यह मर्म नहीं जाना। सूर्यनारायण अपने रथसहित थके से टिके रहे तो रात कैसे होती ?

यह रहस्य काहू नहिं जाना * दिनमणि चले करत गुणगाना
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा * चले भवन वर्णत निज भागा

यह गुप्त बात किसी ने नहीं जानी। फिर सूर्यनारायण श्रीरामजी के गुण गाते चले। श्रीरामजी के जन्म का भारी उत्सव देख देवता, मुनि, नाग आदि अपना-अपना भाग्य सराहते अपने-अपने घर चले।

औरो एक कहौं निज चोरी * सुनु गिरिजा अतिदृढ़मति तोरी
काकभुशुण्डि सङ्ग हम दोऊ * मनुजरूप जानै नहिं कोऊ

और भी एक अपनी चोरी कहता हूँ। हे पार्वती, सुनो। तुम्हारी बुद्धि बहुत दृढ़ है। काकभुशुण्डि और हम, दोनों मनुष्य का रूप धारण किये थे, परन्तु हमें कोई जानता न था।

परमानन्द प्रेम सुख फूले * वीथिन फिरहिं मगन मन भूले
यह शुभचरित जान पै सोई * कृपा राम की जापर होई

हम विषयों में चञ्चल मन की वृत्ति को भुला, परमानन्दस्वरूप श्रीरामजी के स्नेहसुख में प्रफुल्लित और मग्न हो, अयोध्या की गलियों में घूमते थे। इस चरित्र को वही जानता है, जिस पर श्रीरामजी की कृपा हो।

तेहिअवसर जो जेहिविधि आवा * दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा
गज रथ तुरग हेम गो हीरा * दीन्हें नृप नानाविधि चीरा

उस समय जो कोई आया और जिसे जो मन भाया, वही उसे राजा ने दिया। हाथी, रथ, घोड़ा, सोना, गौ, हीरा और अनेक प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।



मन सन्तोष सबन्ह के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस॥

सबके मन में सन्तोष था। जहाँ-तहाँ सब लोग आशीर्वाद देते थे कि गुरु तुलसीदास के स्वामी, सब राजकुमारों की बड़ी उमर हो।

कछुक दिवस बीते यहि भाँती ॥ जात न जानहिं दिन अरु राती
नामकरण कर अवसर जानी ॥ भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी

कुछ दिन इसी प्रकार आनन्द में बीते कि रात दिन जाते नहीं जान पड़ा। नामकरण का समय जान राजा ने परम ज्ञानी वशिष्ठ मुनि को बुला भेजा।

करि पूजा भूपति अस भाखा ॥ धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा
इनके नाम अनेक अनूपा ॥ मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा

पूजा करके राजा ने उनसे कहा—हे मुनि, जो अपने मन में विचार रक्खा हो वही नाम (इन लड़कों के) रखिए। मुनि ने कहा—हे राजन्, इनके तो बहुत नाम हैं, परन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

जो आनन्दसिन्धु सुखरासी ॥ सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी
सो सुखधाम राम अस नामा ॥ अखिल लोकदायक विश्रामा

जो सुख की राशि और आनन्द का समुद्र है, जिसके सीकर (जलकण) से अर्थात् कृपा कणमात्र से तीनों लोक सुखी हैं, वह सब लोकों को विश्राम देनेवाला, सुख का धाम बालक, राम नाम धारण करेगा।

विश्वभरण पोषण कर जोई ॥ ताकर नाम भरत अस होई
जाके सुमिरण ते रिपुनाशा ॥ नाम शत्रुहन वेदप्रकाशा

जो संसार भर का पालन-पोषण करेगा, उसका नाम भरत होगा। जिसका स्मरण करते ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उसका वेदों में शत्रुघ्न नाम प्रकट किया है।



लच्छणधाम रामप्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ, लछमण नाम उदार॥

जो अच्छे लक्षणों का घर, श्रीरामजी को प्यारा, सब संसार का आधार और उदार (भक्तों को सर्वस्व देनेवाला) है, उसका गुरु वशिष्ठजी ने लक्ष्मण नाम रक्खा।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी ॥ वेदतत्व नृप तव सुत चारी
मुनिजन धन सर्वस शिव प्राना ॥ बालकेलिरस तेहि सुख माना

गुरु ने हृदय में विचारकर इस प्रकार बालकों के नाम रक्खे। फिर कहा—राजन्, तुम्हारे चारों पुत्र चारो वेदों के तत्त्व अर्थात् ब्रह्म हैं। मुनियों के सर्वस्व धन और शिवजी के प्राण हैं; क्योंकि इन्होंने बालक्रीड़ा की भक्ति ही को मुख्य माना है।

बारेहि ते निज हित पति जानी * लछमण रामचरण रति मानी
भरत शत्रुहन दोनों भाई * प्रभु सेवक अस प्रीति बढ़ाई

अपना हित और स्वामी जान लछमण ने लड़कपन से ही श्रीरामजी से स्नेह किया तथा स्वामी और सेवक की भाँति भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने स्नेह बढ़ाया।

स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी * निरखहिं छवि जननी तृण तोरी
चारिउ शील रूप गुणधामा * तदपि अधिक सुखसागर रामा

दोनों जोड़ियाँ सुन्दर श्याम और गौरवर्ण की थीं जिनकी सुन्दरता देखकर सब माताएँ तृण तोड़ डालती थीं, जिसमें नजर न लगे। चारो भाई शील, रूप और गुण के घर थे, परन्तु तो भी श्रीरामजी आनन्द का समुद्र होने के कारण सबसे अधिक थे।

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा * सूचत किरण मनोहर हासा
कबहुँ उछङ्ग कबहुँ वरपालन * मातु दुलारहिं कहि प्रियलालन

श्रीरघुनाथजी के हृदय में कृपारूपी चन्द्रमा का प्रकाश रहता है। मनोहर मुस्कान ही उसकी किरणें जान पड़ती हैं। माता कभी गोद में और कभी उत्तम पालने में प्यारे ललना कह दुलराती थीं।


व्यापक ब्रह्म निरञ्जन, निर्गुण विगतविनोद।
सोइ अज प्रेम भक्तिवश, कौशल्या की गोद॥

जो निर्गुण, सर्वव्यापी और रागद्वेष से रहित है और माया के प्रपंच से लिप्त नहीं होता, वही जन्मरहित सबका स्वामी ब्रह्म प्रेमभक्ति के वश होकर कौशल्याजी की गोद में विराजमान है।

काम कोटि छवि श्याम शरीरा * नीलकञ्ज वारिद गम्भीरा
अरुण चरण पङ्कज नख जोती * कमलदलन बैठे जनु मोती

नीले कमल और जलभरे बादलों के समान श्याम शरीर की करोड़ों कामदेवों की शोभा से बढ़कर छवि है। श्रीरामजी के चरणारविन्दों में लाल नाखून ऐसे चमकते हैं, जैसे लाल कमल के पत्तों पर मोती बैठाये गये हों।

रेख कुलिश ध्वज अंकुश सोहैं * नूपुर धुनि सुनि मुनिमन मोहैं
कटि किङ्किणी उदर त्रय रेखा * नाभि गँभीर जान जेहि देखा

वज्र, ध्वजा और अंकुश की रेखाएँ चरणों में शोभायमान हैं। नूपुरों का शब्द सुन मुनियों का मन मोहित होता है। कमर में करधनी पहने हैं। पेट में त्रिवली पड़ी हैं। नाभि की गहराई तो वही जान सकता है, जिसने उसे देखा हो।

भुज विशाल भूषणयुत भूरी * हिय हरिनख शोभा अतिरूरी
उर मणिहार पदिक की शोभा * विप्रचरण देखत मन लोभा

बहुत गहनों से सुशोभित बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं। हृदय में बाघ के नाखून की शोभा है, जो कठुले में पड़ा है। हृदय में मणियों का हार है, जिसके बीच में पदिक (जड़ाऊ चौकोना नग) की शोभा न्यारी है। हृदय में ब्राह्मण के चरण का चिह्न श्रीवत्स देख उसमें मन लुभा जाता है।

कम्बुकण्ठ अति चिबुक सुहाई * आनन अमित मदन छवि छाई
दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे * नासा तिलक को बरणै पारे

शङ्ख-सा घुमावदार कण्ठ और ठोढ़ी सुहावनी है। अनगिनत कामदेव की छवि मुख पर छाई है। दो-दो दाँत, होठों की ललाई, नासिका और तिलक की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ?

सुन्दर श्रवण सुचारु कपोला * अतिप्रिय मधुर तोतरे बोला
चिक्कणकच कुञ्चित गभुवारे * बहुप्रकार रचि मातु सँवारे

सुन्दर कान, मनोहर गाल और बहुत प्यारे मीठे तोतरे बोल हैं। चिकने और घुँघराले गभुवारे बाल हैं, जिन्हें माता ने बहुत प्रकार से रच और सुधारकर बाँधा है।

पीत झँगुलिया तनु पहिराई * जानु पाणि विचरत मोहि भाई
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा * सो जानै सपनेहु जेहि देखा

पीली झँगुली देह में पहने सब भाई हाथ और घुटनों के बल पृथ्वी पर चलते हैं। वेद और शेष भी भगवान् के स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकते। किन्तु स्वप्न में भी जिसने देखा हो वह जानता है।

दो० सुख सन्दोह मोहपर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेमवश, कर शिशुचरित पुनीत॥

संसारी मायामोह से परे, बुद्धि, वाणी और इन्द्रियों से न्यारे, परमानन्दस्वरूप श्रीरामजी पति-पत्नी कौशल्या और दशरथ के परम प्रेम के वश में हो पवित्र बालचरित करने लगे।

यहि विधि राम जगत पितुमाता * कोशलपुरवासिन सुखदाता
जिन रघुनाथ चरण रति मानी * तिनकी यह गति प्रकट भवानी

संसार के माता-पिता श्रीरामजी इस प्रकार अयोध्यावासियों को सुख देने लगे। हे पार्वती, जिन्होंने श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम किया है, उनकी ऐसी ही (राजा-रानी की-सी) गति प्रत्यक्ष है, अर्थात् उन्हें ऐसा ही अलौकिक लाभ होता है।

रघुपतिविमुख यतन कर कोरी * कवन सकै भवबन्धन छोरी
जीव चराचर वश करि राखे * सो माया प्रभु सों भय भाखे

श्रीरघुनाथजी से विमुख पुरुष करोड़ों उपाय करें, पर उनके संसारबन्धन को कौन छुड़ा सकता है?

जिसने स्थावर-जङ्गम सब जीवोंको अपने वशकर रखा है वह माया भी प्रभुसे भयभीत हो बोलती है।

भृकुटिविलास नचावै जाही * अस प्रभु छाँड़ि भजिय कहु काही
मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई * भजतहि कृपा करैं रघुराई

अपनी भौंहकेइशारेसे जो मायाको नचाते हैं, ऐसे स्वामी को छोड़ कहो किसकी सेवा की जाय? किसे भजा जाय? चतुराई छोड़ मन, वचन और कर्म से भजन करो तो श्रीरघुनाथजी कृपा करते हैं।

यहि विधि शिशुविनोद प्रभु कीन्हा * सकल नगरवासिन सुख दीन्हा
लै उछङ्ग कबहूँ हलरावैं * कबहुँ पालने घालि झुलावैं

प्रभु ने इस प्रकार बालक्रीड़ा कर सब नगरवासियों को सुख दिया। माताएँ कभी गोद में ले हिलरातीं और कभी झूले में लिटाकर झुलाती थीं।



प्रेममगन कौशल्या, निशिदिन जात न जान।
सुतसनेहबश मातु सब, बालचरित कर गान॥

कौशल्याजी प्रेम में मग्न हो दिन-रात का बीतना नहीं जानतीं। सब माताएँ पुत्र-स्नेह के वश हो श्रीरामजी के बालचरित्र गाती हैं।

एक बार जननी अन्हवाये * करि शृँगार पलना पौढ़ाये
निजकुलइष्टदेव भगवाना * पूजाहेतु कीन्ह पकवाना

एक बार माता ने श्रीरामजी को नहलाया, शृंगार किया और फिर झूले में लिटा दिया। इसके बाद अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा करने के लिए पकवान बनाया।

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा * आपु गई जहँ पाक बनावा
बहुरि मातु तहँवा चलि आई * भोजन करत दीख सुत जाई

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और आप जहाँ कि पाक बनाया था, वहाँ गई। फिर माता कौशल्या वहीं आईं जहाँ कि नैवेद्य चढ़ाया था तो अपने पुत्र श्रीरामजी को भोजन करते देखा।

गइ जननी शिशु पहँ भयभीता * देखा बालक तहँ पुनि सूता
बहुरि आइ देखा सुत सोई * हृदय कम्प मन धीर न होई

माता भयभीत हो पुत्र के पास (झूले में जहाँ झुलाया था) गईं तो वहाँ उन्हें सोते देखा। फिर पूजा के स्थान में आकर वही पुत्र देखा तो हृदय धड़कने लगा और मन में धीरज न हुआ।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा * मतिभ्रम मोरिकि आनविशेखा
देखि राम जननी अकुलानी * प्रभु हँसि दील मधुर मुसुकानी

वहीं वहाँ दो पुत्रों को देख सोचने लगीं कि यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या यह सत्य है और इसका कोई विशेष कारण है? श्रीरामजी ने माता को व्याकुल देख मधुर मुस्कान से हँस दिया—


दिखरावा निज मातहीं, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥

और माता को अपना अद्भुत अखण्ड रूप दिखाया, जिसके रोयें-रोयें में करोड़ों ब्रह्माण्ड विराजमान हैं।

अगणितरविशशिशिवचतुरानन * बहुगिरिसरितासिन्धुमहिकानन
काल कर्म गुण ज्ञान स्वभाऊ * सो देखा जो सुना न काऊ

अनगिनत सूर्य, चन्द्रमा, शिव और ब्रह्मा तथा बहुत-से पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, दोष, स्वभाव आदि सब कुछ कौशल्या ने उस रूप के भीतर देखे। उन्होंने उस समय वह देखा जो कभी कानों से सुना भी न था।

देखी माया सब विधि गाढ़ी * अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी
देखा जीव नचावै जाही * देखी भक्ति जो छोरै ताही

प्रबल माया को देखा, जो श्रीरामजी के सामने हाथ जोड़े डरी-सी खड़ी थी। फिर जीव को देखा, जिसे माया नचाती है तथा भक्ति को देखा जो जीव को छुड़ाती है।

तनुपुलकित मुख वचन न आवा * नयनमूँदि चरणन शिरनावा
विस्मयवन्त देखि महतारी * भये बहुरि शिशुरूप खरारी

यह सब देखकर कौशल्याजी की देह में रोयें खड़े हो गये। मारे आनन्द के मुख से बात नहीं निकलती थी। तब उन्होंने आँखें मूँद चरणों में सिर नवाया। माता को आश्चर्यित देख श्रीरामजी फिर बालरूप हो गये।

अस्तुति करि न जाय भयमाना * जगतपिता मैं सुत करि जाना
हरि जननिहिं बहुविधि समुझाई * यह जनि कतहुँ कहसि सुनुमाई

माता भय के मारे स्तुति नहीं कर सकतीं, किन्तु सोचती हैं कि संसार के पिता को मैंने पुत्र करके जाना। तब श्रीरामजी ने माता को बहुत प्रकार समझाया कि मय्या, यह कहीं कहना मत।


बार बार कौशल्या, विनय करै करजोरि।
अब जनि कबहूँ व्यापै, प्रभु मोहिं माया तोरि ॥

कौशल्या हाथ जोड़ बारंबार विनय करती हैं कि हे प्रभु, आपकी माया मुझे कभी न व्यापे।

बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा * सकल नगरवासिन सुखदीन्हा
कछुक काल बीते सब भाई * बड़े भये परिजन सुखदाई

श्रीरामजी ने बहुत प्रकार के बालचरित किये और अपने भक्तों को बहुत आनन्द दिया। कुछ समय बीतने पर परिवार और प्रजा आदि को सुख देनेवाले सब भाई बड़े हुए।

चूड़ाकरण कीन्ह गुरु आई * विप्रन बहुत दक्षिणा पाई
परम मनोहर चरित अपारा * करत फिरत चारिउ सुकुमारा

तब गुरुजी ने आकर मुण्डन किया, जिसमें ब्राह्मणों ने बहुत दक्षिणा पाई। सुकुमार चारों भाई बहुत मनोहर अपार चरित्र करते फिरते थे।

मन क्रम वचन अगोचर जोई * दशरथ अजिर विहर प्रभु सोई
भोजन करत बुलावत राजा * नहिं आवत तजि बालसमाजा

जो परमेश्वर मन, कर्म, वाणी आदि इन्द्रियों के व्यवहार में नहीं आता, वही आज दशरथ की अँगनाई में खेलता है। जब भोजन करते राजा बुलाते हैं तो रामचन्द्र बालसमाज को छोड़कर आते नहीं।

कौशल्या जब बोलन जाई * ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई
निगम नेति शिव अन्त न पाई * ताहि धरै जननी हठि धाई
धूसर धूरि भरे तनु आये * भूपति विहँसि गोद बैठाये

जब कौशल्याजी बुलाने जाती हैं तो प्रभु ठुमुक-ठुमुककर भाग चलते हैं। जिसकी इति वेदों ने नहीं पाई और शिवजी ने भी जिसका अन्त नहीं पाया, उसे माता कौशल्या हठ से दौड़कर पकड़ती हैं। धूल भरी देह से रामचन्द्र जब पास आये तब राजा ने हँसकर उन्हें गले से लगा लिया।



भोजन करत चपलचित, इत उत अवसर पाइ।
भाजिचले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ॥

चञ्चल मन से भोजन करने लगे और इधर-उधर अवसर पाते ही दही और भात मुख में लगाये हँसते हुए भाग चले।

बालचरित अति सरल सुहाये * शारद शेष शम्भु श्रुति गाये
जिनकर मनयहि चरित न राता * ते जग वंचित किये विधाता

श्रीरामजी के बालचरित्र बहुत ही सरल और सुहावने हैं, जिन्हें सरस्वती, शेष, शिव और वेदों ने गाया है। जिनका मन इस बालचरित्र में नहीं लगता, उन्हें ब्रह्मा ने ठग लिया है।

भये कुमार जबहिं सब भ्राता * दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता
गुरुगृह गये पढ़न रघुराई * अल्पकाल विद्या सब पाई

जब सब भाई कुमार अवस्था में आये तब गुरु, माता और पिता ने उनका जनेऊ किया। श्रीरघुनाथजी गुरुकुल में पढ़ने गये और थोड़े ही समय में सब विद्या (चौंसठों कला) पढ़ ली।

जाकी सहज श्वास श्रुति चारी * सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी
विद्या विनय निपुण गुणशीला * खेलहिं खेल सकल नृपलीला

चारों वेद जिसकी सहज साँस हैं, उन भगवान् का विद्या पढ़ना एक बड़ी भारी विचित्रता है। विद्या, नम्रता, गुण, शील और चतुरता की खान सब भाई राजाओं के खेल (शिकार आदि) खेलते थे।

करतल बाण धनुष अति सोहा * देखत रूप चराचर मोहा।
जिन बीथिन विहरैं सब भाई * थकित होहिं सब लोग लुगाई।

उनके हाथों में धनुष और बाण अधिक शोभा देते थे। रूप देख सब चराचर संसार मोहित हो जाता था। जिन गलियों में चारों भाई खेलते थे वहाँ सब स्त्री-पुरुष थक के खड़े हो उन्हें देखने लगते थे।



कोशलपुरवासी नर, नारि वृद्ध अरु बाल।
प्राणहुँ ते प्रिय लागहिं, सब कहँ राम कृपाल॥

स्त्री, पुरुष, बालक, बूढ़े सब अयोध्यावासियों को कृपालु श्रीरामजी प्राणों से भी प्यारे लगते थे।

बन्धु सखा सब लेहिं बुलाई * बन मृगया नित खेलहिं जाई।
पावन मृग मारहिं जिय जानी * दिनप्रति नृपहिं देखावहिं आनी।

रामचन्द्रजी सब भाइयों और मित्रों को बुलाकर उनके साथ वन में जाकर नित्य शिकार खेलते थे। मृगों को पवित्र जानकर उनका शिकार करते थे—उन्हें लाकर राजा को दिखाते थे।

जे मृग राम बाण के मारे * ते तनु तजि हरिलोक सिधारे।
अनुज सखायुत भोजन करहीं * मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं।

श्रीरामजी के बाणों से जो मृग मरते थे वे देह छोड़ वैकुण्ठ चले जाते थे। श्रीरामजी अपने छोटे भाइयों और मित्रों सहित भोजन करते तथा माता-पिता की आज्ञा के अनुसार चलते थे।

जेहि विधि सुखी होहिं सब लोगा * करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा।
वेद पुराण सुनहिं मन लाई * आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई।

भगवान् रामचन्द्र वही सब काम करते थे, जिनसे सब लोग सुखी होते थे। रामचन्द्रजी मन लगाकर वेद-पुराण सुनते और स्वयं भाइयों को समझाकर उनकी व्याख्या करते थे।

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा * मातु पिता गुरु नावहिं माथा।
आयसु माँगि करहिं पुरकाजा * देखि चरित हर्षहिं मन राजा।

प्रातःकाल उठकर श्रीरामजी माता, पिता और गुरु को माथा नवाकर प्रणाम करते, फिर उनकी आज्ञा ले राजकाज करते थे। यह देख राजा मन में प्रसन्न होते थे।



व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप।
भक्तहेत नाना विधिहि, करत चरित्र अनूप॥

सर्वव्यापी, अखंड, इच्छारहित, जन्मरहित, जिसके नाम-रूप कुछ नहीं, ऐसे निर्गुण ब्रह्म का अवतार रामचन्द्रजी भक्तों के लिए अनेक प्रकार के असाधारण चरित्र करते थे।

यह सब चरित रुचिर मैं गाई ❋ आगिल कथा सुनहु मन लाई
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी ❋ बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी

यह सब रोचक चरित्र मैंने कहा। अब आगे की कथा मन लगाकर सुनो। बड़े ज्ञानी विश्वामित्र मुनि बन में एक आश्रम को उत्तम जानकर उसमें रहते थे।

जहँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं ❋ अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं
देखत यज्ञ निशाचर धावहिं ❋ करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं

जहाँ विश्वामित्र मुनि जप, यज्ञ और योगाभ्यास करते थे। पर मारीच और सुबाहु नाम के राक्षसों को बहुत डरते थे; क्योंकि यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ते और उपद्रव करते थे जिससे मुनि दुःख पाते थे।

गाधितनय मन चिन्ता व्यापी ❋ हरिबिन मरहिं न निशिचरपापी
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा ❋ प्रभु अवतरेउ हरण महिभारा

गाधि के पुत्र विश्वामित्रजी के मन में यह चिन्ता समाई कि भगवान् के बिना पापी राक्षस नहीं मरेंगे। तब मुनिश्रेष्ठ ने मन में विचार किया कि पृथ्वी का भार दूर करने के लिए प्रभु ने अवतार लिया है।

यहि मिस देखौं प्रभुपद जाई ❋ करि बिनती आनौं दोउ भाई
ज्ञान बिराग सकल गुणअयना ❋ सो प्रभु मैं देखहुँ भरि नयना

इसी बहाने जाकर प्रभु के चरणों के दर्शन देखूँ और विनती करके दोनों भाइयों को लिवा लाऊँ। ज्ञान, वैराग्य आदि सब गुणों की खान प्रभु को मैं आँख भरकर देखूँगा।



यहिविधि करत मनोरथ, जात न लागी बार।
करि मज्जन सरयूसलिल, गये भूपदरबार ॥

इस प्रकार मनोरथ करके मुनि चटपट चल दिये। अयोध्या पहुँचकर उन्होंने सरयू में स्नान किया और राजदरबार में गये।

मुनिआगमन सुना जब राजा ❋ मिलन गये लै बिप्रसमाजा
करिदण्डवत मुनिहिं सनमानी ❋ निज आसन बैठायो आनी

राजा ने जब मुनि के आने की खबर सुनी तो ब्राह्मणों को साथ लेकर आगे से उनसे मिलने गये। दण्डवत् कर मुनि का सम्मान किया और अपने आसन पर लाकर बिठाया।

चरण पखारि कीन्ह अति पूजा ❋ मोसम आजु धन्य नहिं दूजा
बिबिध भाँति भोजन करवावा ❋ मुनिवर हृदय हर्ष अति छावा

फिर चरण धोकर बहुत पूजा की और कहा—आज मेरे बराबर धन्य कोई दूसरा नहीं

है। राजा ने मुनि को अनेक प्रकार के भोजन करवाये। तब मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र हृदय में बहुत प्रसन्न हुए।

पुनि चरणन मेले सुत चारी * राम देखि मुनि विरति बिसारी
भये मगन देखत मुखशोभा * जनु चकोर पूरण शशि लोभा

राजा ने फिर चारों पुत्रों को मुनि के चरणों में डाल दिया। राम को देख मुनि ने वैराग्य का भाव भुला दिया। राम के मुख की शोभा देखते ही पूर्णमासी के चन्द्रमा में लुभाये चकोर के समान हो गये।

तब मन हर्षि वचन कह राऊ * मुनिअस कृपा कीन्ह नहिं काऊ
केहि कारण आगमन तुम्हारा * कहहु सो करत न लाऊँ बारा

तब राजा ने मन में प्रसन्न होकर कहा—मुनिवर, ऐसी कृपा कभी नहीं की थी। कहिए, आपका आना किसलिए हुआ ? जो कहिए, उसे करने में देर न करूँगा।

असुरसमूह सतावहिं मोहीं * मैं याचन आयों नृप तोहीं
अनुजसमेत देहु रघुनाथा * निशिचरवध मैं होब सनाथा

तब मुनि ने कहा—मुझे राक्षस सताते हैं। इसलिए हे राजन्, मैं तुमसे यह माँगने आया हूँ कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी को मुझे दीजिए। यह राक्षसों का वध करेंगे और मैं सनाथ होऊँगा।


देहु भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुयश नृप तुम कहँ, इन कहँ अतिकल्यान॥

हे राजन्, प्रसन्न मन हो दे दीजिए—झूठा माया मोह छोड़िए। हे नरपाल, आपको इसमें धर्म और सुयश प्राप्त होगा तथा इनका कल्याण होगा।

सुनि राजा अति अप्रियबानी * हृदय कम्पमुखद्युति कुम्हिलानी
चौथेपन पायों सुत चारी * विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी

यह बहुत अप्रिय वचन सुन राजा का हृदय काँप उठा और मुख का तेज फीका पड़ गया। उन्होंने कहा—हे विप्र, चौथेपन में मैंने चार पुत्र पाये हैं। आपने विचारकर यह बात नहीं कही।

माँगहु भूमि धेनु धनकोषा * सर्बस देउँ आजु सहरोषा
देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं * सोउ मुनिदेउँनिमिष इक माहीं

पृथ्वी, गऊ, धन, सारा खज़ाना आदि माँगिए तो आज मैं अपना सर्वस्व आपको खुशी से दे दूँगा। देह और प्राणों से तो अधिक कुछ प्यारा नहीं है—हे मुनि, वह भी पल भर में आपको दे सकता हूँ।

सब सुतप्रिय मोहिं प्राण कि नाहीं * राम देत नहिं बनै गोसाईं

कहँ निशिचर अतिघोर कठोरा * कहँ सुन्दर सुत परमकिशोरा

मुझे सभी पुत्र प्राणों के समान प्यारे हैं। (फिर राम तो सबसे बढ़कर प्रिय हैं) हे स्वामी, राम को देते नहीं बनता। कहाँ बहुत भयङ्कर कठोर राक्षस और कहाँ ये अति सुकुमार सुन्दर बालक !

सुनि नृपगिरा प्रेमरससानी * हृदय हर्ष माना मुनि ज्ञानी
तब वशिष्ठ बहु विधि समुझावा * नृपसन्देह नाश कहँ पावा

स्नेह से सनी हुई राजा की वाणी सुन ज्ञानवान् मुनि मन में प्रसन्न हो हुए कि राजा का श्रीरामजी में बड़ा स्नेह है। तब वशिष्ठजी ने बहुत प्रकार समझाया कि मुनि के साथ जाने में श्रीरामजी का कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता, जिससे राजा का संदेह मिट गया।

अति आदर दोउ तनय बुलाये * हृदय लाय बहुभाँति सिखाये
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ * तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ

तब राजा ने बड़े आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और छाती से लगाकर उनको बहुत प्रकार की शिक्षाएँ दीं। फिर कहा—हे मुनि, ये दोनों पुत्र मेरे प्राणों के स्वामी हैं। अर्थात् इनके बिना मैं जी नहीं सकता। अब तुम्हीं इनके पिता हो, दूसरा कोई नहीं।


सौंपे भूपति ऋषिहि सुत, बहु विधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पदशीश॥

राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दे दोनों पुत्र ऋषि को सौंप दिये। प्रभु श्रीरामजी माता के घर जा उनके चरणों में सीस नवाकर चल दिये।


पुरुषसिंह दोउ वीर, हर्षि चले मुनिभयहरण।
कृपासिन्धु मतिधीर, अखिल विश्वकारण करण॥

पुरुष-सिंह दोनों वीर मुनि विश्वामित्र का भय दूर करने के लिए प्रसन्न हो चले: क्योंकि धीरबुद्धिवाले कृपा-सागर श्रीरामजी और सब संसार के कारण और उपादान भी हैं।

अरुणनयन उर बाहु विशाला * नीलजलज तनु श्याम तमाला
कटि पट पीत कसे वरभाथा * रुचिर चाप शायक दुहुँ हाथा

लालनेत्र, चौड़ी छाती, लम्बी भुजाएँ और नील कमल या तमाल के समान श्याम शरीरवाले, कमर में पीताम्बर कसे और श्रेष्ठ तरकस बाँधे दोनों हाथों में सुन्दर धनुष-बाण लिये—

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई * विश्वामित्र महानिधि पाई
प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना * मोहिंहित पिता तजे भगवाना

श्याम और गौरवर्ण के सुन्दर दोनों भाइयों को विश्वामित्र ने बड़ी निधि-सी पाया।

वह विचारने लगे कि मैं जानता हूँ, प्रभु ब्राह्मण को अपना देवता मानते हैं। इसी कारण भगवान् ने मेरे लिए पिता को भी छोड़ दिया।

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई * सुनि ताड़का क्रोध कर धाई
एकहि बाण प्राण हरि लीन्हा * दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा

मार्ग में जाते हुए मुनि ने ताड़का राक्षसी को दिखलाया, जो मुनि का शब्द सुनते ही क्रोध करके दौड़ी। भगवान् ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिये, और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।

तब ऋषि निजनाथहिं जिय चीन्हा * विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्हा
जाते लाग न क्षुधा पियासा * अतुलितबल तनु तेज प्रकासा

तब विश्वामित्र ने अपने स्वामी को पहचाना। उन्होंने सब विद्याओं के स्वामी भगवान् को बला अतिबला नाम की दो विद्याएँ सिखाईं, जिनके प्रभाव से भूख-प्यास नहीं लगती तथा देह में अतुल बल-तेज होता है।



आयुध सकल समर्पिकै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन, दिये भक्तहित जानि॥

मुनि ने प्रभु को भक्तहितकारी जानकर अपने आश्रम में लाकर सब अस्त्र-शस्त्र देकर बड़ी भक्ति से कन्द-मूल-फल भोजन करने को दिये।

प्रात कहा मुनिसन रघुराई * निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई
होम करन लागे मुनि झारी * आपु रहे मख की रखवारी

सवेरा होते ही श्रीरघुनाथजी ने मुनि से कहा—अब आप जाइए और निर्भय होकर यज्ञ करिए। तब सब मुनि लोग होम करने लगे, और आप (श्रीरामजी) यज्ञ की रखवाली में रहे।

सुनि मारीच निशाचर क्रोही * लै सहाय धावा मुनिद्रोही
बिन फर बाण राम तेहि मारा * शतयोजन गा सागर पारा

मुनियों का वैरी मारीच राक्षस यज्ञ में वेदध्वनि सुनते ही क्रोध कर अपने सहायकों सहित दौड़ा। श्रीरामजी ने उसे विना गाँसी का बाण मारा, जिसके लगने से वह समुद्र के पार चार सौ कोस पर जा गिरा।

पावकशर सुबाहु पुनि मारा * अनुज निशाचर कटक सँहारा
मारि असुर द्विजनिर्भयकारी * अस्तुति करहिं देव मुनि झारी

फिर अग्निबाण से सुबाहु को मार डाला। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने राक्षसों की सेना का संहार किया। तब सब देवता और मुनि राक्षसों को मार ब्राह्मणों को निर्भय करनेवाले रामचन्द्र की स्तुति करने लगे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया * रहे कीन्ह विप्रन पर दाया
भक्तिहेतु बहु कथा पुराना * कहैं विप्र यद्यपि प्रभु जाना

फिर श्रीरघुनाथजी ब्राह्मणों पर कृपाकर कुछ दिन वहाँ रहे। श्रीरामजी में भक्ति होने के लिए ब्राह्मण लोग बहुत कथा, पुराण आदि कहते थे, यद्यपि प्रभु उन सब कथाओं और पुराणों को जानते थे।

तब मुनि सादर कथा बुझाई * चरित एक देखिय प्रभु जाई
धनुषयज्ञ सुनि रघुकुलनाथा * हरषि चले मुनिवर के साथा

फिर मुनि ने आदर सहित समझाकर कहा—हे स्वामी, चलिए, एक चरित्र देखें। रघुवंशियों के स्वामी श्रीरामजी धनुषयज्ञ का समाचार सुन मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र के साथ प्रसन्न हो चले।

आश्रम एक दीख मग माहीं * खग मृग जीवजन्तु तहँ नाहीं
पूछा मुनिहिं शिला प्रभु देखी * सकलकथा ऋषि कही विशेखी

मार्ग में एक आश्रम देखा, जहाँ पक्षी, हरिण आदि जीवजन्तु नहीं थे। प्रभु ने एक पत्थर की शिला देख उसके बारे में मुनि से पूछा। तब ऋषि ने विस्तारसहित सब कथा ठीक-ठीक कही।



गौतमनारी शापवश, उपलदेह धरि धीर।
चरणकमलरज चाहती, कृपा करहु रघुवीर॥

मुनि बोले—हे रघुवीर, गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शाप के कारण पत्थर की शिला हो गई है। वह धीरज धरे तुम्हारे चरणारविन्दों की रज चाहती है। उस पर कृपा करो।

त्रिभंगी छन्द

परसतपदपावन शोकनशावन प्रकट भई तपपुञ्जसही।
देखतरघुनायक जनसुखदायक सम्मुख ह्वै कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलकशरीरा मुखनहिं आवै वचन कही।
अतिशय बड़भागी चरणनलागी युगलनयनजलधारबही॥

पवित्र चरणों के लगते ही ठीक तपस्या की राशि-सी अहल्या उस शिला से निकल आई और भक्तों को सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजी को देखती सामने आ हाथ जोड़ खड़ी हुई। बहुत प्रेम से अधीर होने के कारण उसकी देह में पुलकावली छा गई। मुख से वचन नहीं निकलते थे। वह दोनों आँखों से प्रेम के आँसू बहाती हुई प्रभु के चरणों में गिर पड़ी। अहो, बड़ी भाग्यशालिनी थी वह, जिसके ऐसी प्रेमलक्षणा भक्ति हुई।

धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपा भक्ति पाई।
अतिनिर्मलबानी अस्तुति ठानी ज्ञानगम्य जय रघुराई॥

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीवसुलोचन भवभयमोचन पाहि पाहि शरणहिं आई ॥

जब श्रीरघुनाथजी की कृपा से मोक्षरूपा गति पाई, तब अहल्या ने प्रभु को पहचाना। वह धीरज धर बहुत निर्मल वाणी से स्तुति करने लगी—हे ज्ञान से मिलनेवाले रघुनाथ, आपकी जय हो। मैं अपवित्र स्त्री हूँ और आप संसार भर को पवित्र करनेवाले हैं। आप रावण को मार भक्तों को सुख देंगे। आपके कमलसमान नेत्र देख संसार का भय छूट जाता है। मैं शरण आई हूँ, रक्षा कीजिए।

मुनिशापजोदीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरिलोचन हरिभवमोचन यहै लाभ शङ्कर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी मैं मतिभोरी नाथ न वर माँगौं आना ।
पदपद्मपरागा रसअनुरागा मम मनमधुप करै पाना ॥

मुनि ने शाप दिया, यह बहुत अच्छा किया। मैंने उसे उनका परम अनुग्रह माना; क्योंकि संसार के छुड़ानेवाले भगवान् को आँखों भर देखा। इसी को श्रीशिवजी जीवन का लाभ समझते हैं। हे प्रभु, मैं थोड़ी बुद्धिवाली हूँ, इससे मैं वर न माँगकर यही चाहती हूँ कि मेरा भौंरारूपी मन आपके चरणकमलों की रज के रस को प्रेम से पिया करे—मेरी यही विनती है।

जेहि पदसुरसरिता परमपुनीता प्रकट भई शिवशीश धरी ।
सोई पदपङ्कज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी ॥
यहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरिचरण परी ।
जो अतिमनभावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनन्दभरी ॥

जिनके चरणों से बड़ी पवित्र गङ्गाजी उत्पन्न हुईं, और उन्हें शिवजी ने अपने सिर पर धारण किया। वही चरणारविन्द, जिन्हें ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु भगवान् ने मेरे सिर पर रक्खा। इसी प्रकार गौतम की स्त्री अहल्या बार-बार पापहारी भगवान् के चरणों में गिर पड़ी। और जो मन में बहुत अच्छा लगा, वह वरदान पाकर आनन्द से भरी हुई अपने पति के लोक को चली गई।



अस प्रभु दीनदयालु हरि, कारण रहित कृपाल ।
तुलसिदास शठ ताहि भजु, छाँड़ि कपट जञ्जाल ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि दीनदयालु भगवान् बिना कारण ही कृपा करनेवाले ऐसे स्वामी हैं। हे शठ, उन्हें यह कपटरूपी जगत् का जंजाल छोड़ भज।

चले राम लछमन मुनि सङ्गा * गये जहाँ जगपावनि गङ्गा
अनुजसहितप्रभु कीन्ह प्रणामा * बहु प्रकार सुख पायउ रामा

फिर श्रीराम-लक्ष्मण मुनि के साथ चले और जहाँ संसार को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी थीं, वहाँ गये। छोटे भाई लक्ष्मण सहित गङ्गाजी को प्रणामकर श्रीरामजी ने बहुत प्रकार से सुख पाया।

पुनि सुरसरिउत्पति रघुराई * कौशिक सन पूछा शिर नाई

फिर श्रीरामजी ने सिर नवाकर विश्वामित्र से गङ्गाजी की उत्पत्ति पूछी।

अथ गङ्गाजी की कथा (क्षेपक)

कह मुनि प्रभु तव कुल इकराजा * नाम सगर तिहुँ लोक विराजा
तेहि के युग भामिनि सुकुमारी * प्रथम केशिनी सुमति पियारी

मुनि ने कहा—हे प्रभु, तुम्हारे कुल में एक राजा सगर तीनों लोक में प्रसिद्ध थे। उनके दो सुकुमार प्यारी स्त्रियाँ थीं—पहली केशिनी, दूसरी सुमति।

सब प्रकार सम्पति सुर भ्राजा * सुतविहीन मन विस्मय राजा
एक समय भामिनि दोउ साथा * गये वन तनय हेतु रघुनाथा

राजा सब तरह ऐश्वर्य से देव-समान विराजमान थे, परन्तु पुत्र न रहने के कारण उनके मन में सोच था। हे रामजी, एक समय राजा दोनों रानियों को साथ लेकर पुत्र के लिए तप करने वन में गये।

सघन सफल तरु सुन्दर नाना * तहँ भृगु मुनि तपतेजनिधाना

वहाँ फल लगे हुए बहुत-से सुन्दर सघन वृक्ष थे तथा तप और तेज के निधान भृगु मुनि का निवास था।



सहितनारिनृपमुदित मन, रहे वर्ष शतएक।
कीन्हें तपबल देखि भृगु, अस्तुति कीन्ह अनेक॥

स्त्रियों समेत प्रसन्न मन हो राजा वहाँ एकसौ वर्ष तप करते रहे। तब तपोबल देख भृगुजी ने उनकी बहुत बड़ाई की।

कहि निजदुख प्रणाम नृप कीन्हा * दे अशीश तब मुनि वर दीन्हा
नृपरानी सन मुनि अस भाषा * लेहु स्ववर जो जेहि अभिलाषा

राजा ने अपना दुःख कह प्रणाम किया, तब मुनि ने आशीर्वाद और वरदान दिया। मुनि ने राजा और रानी से कहा—जिसकी जो इच्छा हो, वरदान माँग लो।

सुनि मुनिवचन शीश तिन नावा * देहु नाथ जो अति मन भावा
एकहि कह्यो एक सुत होना * दूसर साठि सहसगुण लोना

रानियों ने मुनि के वचन सुन सिर नवाकर कहा—हे नाथ, जो बहुत मनभाया हो, वही दीजिए। एक ने एक पुत्र और दूसरी ने ६०००० पुत्र माँगे।

हर्षित भयो सुभग वर पाई * पाणि जोरि चरणन शिर नाई
सहितभामिनी अवधहि आये * तपसहित कछु दिवस गँवाये

मनचाहा वरदान पाकर प्रसन्न हो हाथ जोड़ सिर नवाकर स्त्रियों सहित राजा नगर अयोध्या लौट आये। फिर प्रसन्नता के साथ कुछ दिन बीते।

जानि सुघरि सुन्दरि सुखदाई ॥ नाम केशि असमञ्जस जाई ॥
सुमति प्रसव इक तुम्बरि सोई ॥ भये सुत प्रकट कहे मुनि जोई ॥

सुन्दर सुख देनेवाली अच्छी बड़ी जान केशिनी ने असमञ्जस को पैदा किया। दूसरी रानी सुमति के गर्भ से एक तोंबी पैदा हुई, जिससे मुनि के कहे अनुसार ६०००० पुत्र हुए।

निरखे सुत हर्षित सब होई ॥ मङ्गलचार किये सब कोई ॥
हर्ष सहित दिये दान नरेशू ॥ पूजि विप्र गुरु गौरि गणेशू ॥

पुत्रों को देख सब प्रसन्न हुए और सभी ने मङ्गलाचार किये। राजा ने प्रसन्न हो गणेश, गौरी, गुरु और ब्राह्मणों को पूजकर दान दिया।

घृतघट सुन्दर विविध मँगाये ॥ ते सब सुत नृप तिन महँ नाये ॥

फिर राजा ने ६०००० अच्छे घी से भरे हुए घड़े मँगाकर उन्हीं में सब पुत्रों को छोड़ दिया।


यहि विधि भयउ सकल सुत, पूजे सब मन काम।
जाइ दिवस निशि हर्षवश, सुनहु राम घनश्याम ॥

घनश्याम रामजी, सुनिए, इसी तरह सब पुत्र हुए। राजा का मनोरथ पूरा हुआ— प्रसन्नता के साथ रात-दिन बीतने लगे।

पुरजन सब घर घरनि नरेशू ॥ अति आनँद मन मिटा अँदेशू ॥
बालकेलि कर भये कुमारा ॥ लीला करैं अगम संसारा ॥

नगरवासी, सब घर की स्त्रियाँ और राजा बहुत प्रसन्न हुए—मन की सब चिन्ता दूर हुई। बाललीला कर जब राजकुमार असमंजस कुमार अवस्था में आये पन्द्रह वर्ष के हुए तो, ऐसे खेल, जो कि साधारण लोगों की समझ के बाहर थे, खेलने लगे।

होइँ सो काज सकल मन चीते ॥ यहि सुख बसत बहुत दिन बीते ॥
सरयू नदी अवध जो अहई ॥ विमल सलिल उत्तरतट बहई ॥

जो मन में विचारते थे सब काम होते थे। इस तरह सुख से बसते बहुत दिन बीते। अयोध्या में निर्मल जल की सरयू नदी है, जो उत्तर ओर बहती है।

प्रजा लोक के बालक नाना ॥ नित उठि तहाँ करैं अस्नाना ॥
असमञ्जस तहँ तरणी आनी ॥ तिनहिं चढ़ाइ बोरि निज पानी ॥

नगरवासियों के लड़के नित्य उठकर वहाँ स्नान करते थे। एक दिन असमञ्जस ने नाव लाकर उन्हें चढ़ाकर अपने हाथ से पानी में डुबा दिया।

भये प्रजा सब परम दुखारी * बालकवध सुनि सुनहु खरारी
सकल गये जहँ बैठ नृपाला * बोले वचन नाइ पद भाला

हे राम, सुनो। तब सब प्रजा लड़कों का मरना सुन बहुत दुखी हुई। जहाँ राजा सगर बैठे थे, वहाँ जाकर सबने उनके चरणों में सीस नवाया।

तुम नृप चहहु प्रजा प्रतिपाला * सुत तुम्हार भा सबकर काला
तजब देश सब सुनहु नरेशू * बिना तजे नहिं मिटै कलेशू

और कहा—राजन्, तुम तो प्रजा को पालना चाहते हो, पर तुम्हारा पुत्र सबका काल हुआ। हम लोग आपका देश छोड़ देंगे; क्योंकि बिना छोड़े दुःख न दूर होगा।


तवसुत कीन्हे पाप बहु, मारे बालकवृन्द।
तुमकहँ प्राणसमान यह, सकल प्रजन कहँ मन्द॥

तुम्हारे पुत्र ने बहुत से बालकों को मारकर बड़ा पाप किया है। यद्यपि तुमको यह प्राणों के समान प्यारा है, परन्तु सब नगरवासियों को बुरा अथवा दुख देनेवाला शनिश्चर ही है।

प्रजागिरा सुनि धीरज दीन्हा * सुतहिं देश ते बाहर कीन्हा
तासु तनय जग बिदित प्रभाऊ * गुणनिधि अंशुमान तेहि नाऊ

प्रजा की वाणी सुन राजा ने उन्हें धीरज दिया और अपने पुत्र (असमञ्जस) को देश से निकाल बाहर किया। उस (असमञ्जस) के एक पुत्र था, जिसका प्रभाव संसार में प्रसिद्ध है। उस सब गुणों की खान बालक का नाम अंशुमान था।

बसत हृदय नृप के सो कैसे * अतिप्रिय मीन सलिल रह जैसे
गये प्रजा सब निजनिज धामा * भे विलोकि मन गुण विश्रामा

वह राजा सगर के हृदय में ऐसे बसता था—जैसे जल में मछली; अर्थात वह राजा को प्राणों से प्रिय था। सब प्रजा अपने-अपने घर गई और अंशुमान के गुण देख राजा के मन को धीरज हुआ।

बहुरि नृपति मन कीन्ह विचारा * आइ भयो पन चौथ हमारा
हित मन्त्री गुरु सुतहु बुलाये * हिमगिरिविन्ध्यमध्य तब आये

फिर राजा ने मन में विचार किया कि मेरा चौथापन (बुढ़ापा) आ गया। तब अपने हितैषी, मन्त्री, गुरु और पुत्र को भी बुलाकर यज्ञ करने के लिए राजा हिमालय व विन्ध्याचल के बीच के स्थान में आये।

रुचिर वेदिका एक बनाई * देखत बनै वरणि नहिं जाई
मख आरम्भ छाँड़े तब तुरगा * वेगवन्त जिमि देखिय उरगा

वहाँ एक सुन्दर वेदी बनाई, जो कि देखते ही बनती थी, उसका बखान नहीं किया जा सकता। फिर यज्ञ के आरम्भ होते ही राजा ने घोड़ा छोड़ा, जो कि सर्प के समान वेग से चलता था।



सुरपति सुन भय दारुणहिं, मन महँ करि अनुमान।
आन तुरग तब लीन्हेउ, मर्म न काहू जान॥

इन्द्र ने जब राजा का यज्ञ करना सुना तो वह बहुत डरे। उन्होंने मन में सोचा कि राजा मेरा पद लेने का ही यज्ञ कर रहे हैं। और आकर घोड़ा चुरा लिया। परन्तु यह हाल किसी ने नहीं जाना।

राखेहु आनि कपिलमुनि पाहीं * कोउ न जान काहुहि गम नाहीं
जुगवत रहे जे सुभट सयाने * ले तुरङ्ग रहे किनहु न जाने

उस घोड़े को फिर कपिल मुनि के पास लाकर बाँध दिया। कोई नहीं जानता था कि घोड़ा कहाँ है; क्योंकि वहाँ कोई नहीं जा सकता था। चतुर योद्धा लोग जो कि उसकी रक्षा करते थे और जो लोग उसे ले गये थे, किसी ने नहीं जाना।

तिन सब आय कही नृप पाहीं * महाराज हम कहत डराहीं
लीन्ह तुरग कोइ जान न कोई * कहा करिय जो आयसु होई

अन्त में राजा से आकर सबने कहा कि महाराज, हम सब कहते डरते हैं। कोई घोड़ा ले गया। कोई उसे नहीं जान सका। अब आज्ञा दीजिए क्या करें।

सुनत वचन नृप विस्मय पाये * सकल सुतन कहँ तुरत बुलाये
जाहु तुरग तुम हेरहु जाई * सकल चले चरणन शिर नाई

राजा ने सुनकर सोच लिया, फिर तुरन्त सब पुत्रों को बुलाया और कहा—तुम लोग जाकर घोड़े को खोजो। तब सब राजा के चरणों में शीश नवाकर चले।

सुरपतिसम देखिय सब वीरा * सकल धनुर्द्धर अतिरण धीरा
तिनहिं चलत धरणी अकुलाई * बलि पशु खोजत भे सब आई

सब योद्धा इन्द्र के समान शूरवीर दिखलाई पड़ते थे। सब धनुष बाँधे और युद्ध में बड़े धीर थे। उनके चलने से पृथ्वी व्याकुल हो उठी। यज्ञ में जिसकी बलि दी जानेवाली थी; उस घोड़े को वे सब खोजने लगे।

सुमन वाटिका उपवन बागा * सरित कूप वापिका तड़ागा
नगर गाँव मुनीश थल नाना * गिरिकन्दर कानन अस्थाना

फुलवाड़ी, बाग, छोटे-बड़े वन, नदी, कुएँ, बावली, तालाब, नगर, गाँव, मुनियों की कुटी, पहाड़ों की खोह और वन के सब स्थान ढूँढे।



यहि विधि खोजेहु तुरँग तिन, आये भूपति पाहिं।
चरणनि माथहि नाइ कहि, खोज अश्व की नाहिं॥

इस प्रकार उन्होंने घोड़े को खोजा, पर कहीं न पाकर फिर राजा के पास आये और चरणों में माथा नवाकर कहा—घोड़े का पता नहीं लगता।

खोदहु महि सुत बहुरि पठाये * चले सकल पूरब दिशि आये
तिनके कर जिमि कुलिशसमाना * योजन भरि खोदहिं बलवाना

राजा ने फिर पुत्रों को भेजा कि जाकर पृथ्वी को खोदो। तब सब पूर्व की ओर चलकर आये। उनके हाथ वज्र के समान थे तथा बली ऐसे थे कि चार कोस रोज खोदते थे।

शोधत महि पताल सब आये * दिग्गज देखि एक शिर नाये
तिन पूछा सब कथा सुनायो * बहुरि सकल दक्षिणदिशि आयो

पृथ्वी में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सब पाताल में आये। वहाँ एक दिग्गज देख उसे सिर नवाया। दिग्गज ने पूछा तो उन्होंने सब हाल कह सुनाया। फिर सब दक्षिण की तरफ़ आये।

इहि विधि पुनि दूसर गज देखा * अति उतङ्ग गज विमल विशेखा
ताहू बहु प्रणाम तिन कीन्हे * चले सुनत पश्चिम चित दीन्हे

इसी तरह दूसरा दिग्गज देखा जो कि बड़ा ऊँचा और सफ़ेद हाथी था। उसको सभी ने प्रणाम किया और फिर पश्चिम की ओर चित्त दे चले।

तीसर देखि प्रदक्षिण कीन्ही * पुनि उत्तर दिशि शोधहि लीन्ही
दिग्गज श्वेत निरखि सुख पाये * सकल कपिलमुनिपहँपुनि आये

तीसरे दिग्गज को देख उसकी परिक्रमा की और फिर उत्तर की ओर खोजा। वहाँ सफ़ेद हाथी देख सुखी हुए। फिर सब कपिलमुनि के पास आये।

खोजत मही पार नहिं पावा * शोभा चहुँदिशि जलधि सुहावा

ढूँढ़ते हुए उनको पृथ्वी का अन्त नहीं मिला और पृथ्वी खोदने से चारों ओर सुन्दर समुद्र * हो गया।



देखिन आइ तुरङ्ग तब, बाँधा मुनिवर पास।
बोले वचन सकोप करि, भा चह सबकर नास॥

तब आकर देखा कि कपिलमुनि के पास घोड़ा बँधा हुआ है तब वे क्रोध करके बोले—(क्योंकि सबका नाश होनेवाला था)

खोदी महि हम चारिउ कोधा * रे रे दुष्ट बहुत तोहिं शोधा

* राजा सगर के पुत्रों ने समुद्र खोदा है, इसी से उसका नाम सागर है।

कोउ कह चोर दीख बहु होई * अहि सम छली और नहिं कोई

अरे दुष्ट ! तुझे हम लोगों ने बहुत ढूँढ़ा और पृथ्वी के चारों कोने खोद डाले। कोई बोला—मैंने चोर बहुत देखे, लेकिन इसके बराबर छली दूसरा कोई नहीं पाया।

परधन लै पताल पुनि आयो * तस्कर मुनिवर भेष बनायो
कोउ कहै यह मुनिवर नाहीं * समुझि देखि लक्षण मन माहीं

पराया धन ले पाताल में भाग आया और चोरी करके साधु का वेष बनाया है। किसी ने कहा—मन में समझके इसके लक्षण देखो, यह साधु नहीं मालूम होता।

कोउ कह बक तप कीन्ह अपारा * अहो दुष्ट लै तुरग हमारा
सुनत वचन मुनि चितवा जबहीं * भये भस्म सब क्षण महँ तबहीं

कोई बोला—अहो यह बड़ा दुष्ट है, हमारा घोड़ा लेकर बगले का सा भूठा ध्यान लगाये बड़ा तप कर रहा है। ऐसे वचन सुनते ही जब कपिलदेवजी ने उन सबों की ओर देखा तो क्षण भर में सब जलकर भस्म हो गये।

उमा वचन जेहि समुझि न बोला * सुधा होय विष तिक्त मखोला
पावक जानि धरहिं कर प्रानी * जरहिं काहि नहिं अति अभिमानी

श्रीशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जो समझकर बात नहीं करता, उसको अमृत भी विष का सा दुःख देनेवाला हो जाता है और मीठा महुआ भी तीखा बन जाता है। जो कोई बड़े अभिमान से अग्नि में जान-बूझकर हाथ रक्खें तो वे क्यों न जलेंगे।

जानि गरल जे संग्रह करहीं * सुनहु राम ते काहे न मरहीं
क्रोध करे बिन किये विचारा * भये सकल तेहि ते जरि छारा

ऐसे ही विष का सेवन जो जानकर करें तो हे राम ! सुनिए, वे क्यों न मरें ? बिना समझकर उन्होंने क्रोध किया, इसी से जलकर भस्म हो गये।

इहाँ नृपति अंशुमान बोलाये * नहिं आये सब तिनहिं पठाये

अब यहाँ जब ये ६०००० लड़के लौटकर न आये तब राजा सगर ने अंशुमान को बुला उन्हें घोड़ा ढूँढ़ने को भेजा।



दीन्हीं नृपति अशीश तब, अतिहित बारहिंबार।
वेगि फिरहु लै तुरग सुत, मेरे प्राण अधार॥

तब बड़ा स्नेह कर राजा ने बारम्बार आशीर्वाद दिया और कहा—मेरे प्राणों के समान प्यारे पुत्र, घोड़े को लेकर जल्द लौटना।

चले नाइ पद शीश कुमारा * विष्णुभक्त हित कुल उजियारा
जहँ तहँ देखि मुनिन के धामा * पूछि खबरि करि दण्ड प्रणामा

तब भगवान् के भक्त अपने कुल में उजागर राजकुमार अंशुमान् राजा के चरणों में सिर नवाकर चले। उन्होंने जहाँ-तहाँ मुनियों के आश्रम देख दण्डप्रणाम कर खबर पूछी।

पुनि मुनिजन सन पाइ अशीशा * चहुँदिग्गज कहँ नायउ शीशा
अहि विधि शोधतमग महँ जाता * मिले गरुड़ सुमतीकर भ्राता

फिर मुनिजनों से आशीर्वाद पाकर चारों दिग्गजों को सिर नवाया। इसी तरह रास्ते में ढूँढ़ते जाते थे कि सुमति के भाई गरुड़ मिल गये।

चरण परत तब आशिष दयऊ * जरेसकलजेहि विधि सो कह्यऊ
सुनतहि वचन शोच भयो भारी * लिये खगेश दिखायउ वारी

पैरों में गिरते ही गरुड़ ने आशीर्वाद दिया और जिस तरह सब ६०००० सगर के पुत्र भस्म हुए, वह हाल कहा। यह सुनते ही अंशुमान को बड़ा सोच हुआ। तब गरुड़ ने ले जाकर वहाँ जल दिखलाया।

अंशुमान तहँ मज्जन कीन्हा * क्रमक्रमसबहिं जलाञ्जलिदीन्हा
बहुरि गरुड़ बोले सुनु भ्राता * मैं तोहिं कहौं करिय इक बाता

वहाँ अंशुमान् ने स्नान किया और क्रम से एक-एक चाचा को जलाञ्जलि दी। फिर गरुड़ ने कहा—भैया, सुनो, मैं एक बात तुमसे कहता हूँ, वह करो।



करु सुत सोइ उपाय, गङ्गा आवहिं अवनि महँ।
दर्शन ते अघ जाय, मज्जन कीन्हे परमसुख॥

हे पुत्र, वही उपाय करो, जिससे पृथ्वी में गङ्गाजी आवें। जिनके देखने से पाप चले जाते हैं और स्नान करने से तो परम सुख प्राप्त होता है।

षष्टि सहस तरिहैं येही विधि * गङ्गा पाय परम पावननिधि
सुनि अस वचन हृदय मनभाये * सहितगरुड़ मुनिवर पहँ आये

परम पवित्रता की खान गङ्गाजी को पाकर यह भी ६०००० राजकुमार अच्छी तरह तर जायँगे। ये वचन सुन अंशुमान के मन को भाये। फिर वह गरुड़सहित कपिल मुनि के पास आये।

तब खगेश मुनिचरणन नायउ * पूरब कथा सकल मुनि गायउ
आयसु देइ तुरग पुनि दीन्हा * हर्षि हृदय निजअश्वहिं चीन्हा

गरुड़ ने मुनि के चरणों में सिर नवाया और मुनि ने जब सब हाल, जो पहले हुआ था, (इन्द्र का घोड़ा लाकर बाँध जाना और सगर के पुत्रों का क्रोध करके भस्म होना आदि) कहा। फिर मुनि ने ले जाने की आज्ञा के साथ घोड़ा दे दिया। अंशुमान अपना घोड़ा पहचान प्रसन्न हुए।

नगर समीप गरुड़ पहुँचाई * गये भवन निज तब रघुराई

इहाँ तुरग लै नृप सिर नाई * षष्टि सहस्र मुनि कथा सुनाई

हे राम, फिर गरुड़ तो नगर के पास पहुँचाकर अपने घर चले गये, और यहाँ अंशुमान घोड़ा लेकर राजा सगर के पास पहुँचे, उनको सिर नवाया तथा कपिल मुनि और साठ हज़ार राजकुमारों का हाल सुनाया।

विस्मय हर्ष विवश नृप भयऊ * कीन्हा यज्ञ दान बहु दयऊ
बहुविधि नृपतिराज पुनिकीन्हा * प्रजा लोग कहँ अतिसुख दीन्हा

राजा सगर घोड़ा पाकर प्रसन्न हुए और पुत्रों का मरना सुन सोच किया। यज्ञ समाप्त करके बहुत-सा दान दिया। फिर राजा सगर ने बहुत तरह राज्य कर प्रजाओं को बहुत सुख दिया।



अंशुमान कहँ राज दै, निज मन हरिपद लाग।
गयउ सगर तपकाज वन, हृदय अधिक अनुराग॥

फिर राजा सगर ने अंशुमान को राज्य देकर भगवान् के चरणों में मन लगाया। वह तपस्या करने के लिए वन चले गये। उनके हृदय में भगवान के प्रति परम प्रेम था।

तासु तनय दिलीप नृप भयऊ * बन तपहेतु उतर दिसि गयऊ
वहाँ अगम तप कीन्ह नृपाला * भये कालवश गये कछु काला

उस अंशुमान् के पुत्र राजा दिलीप हुए। उन्हें राज्य दे उत्तर की ओर वन में तपस्या के लिए अंशुमान् भी चले गये। राजा ने वहाँ घोर तप किया। फिर कुछ समय के पीछे मर गये।

कहहु कवन दिलीप प्रभुताई * सेवैं सकल नृपति जेहि आई
जुगवत जेहि नितसुरपति रहहीं * महिमा तासु कौन कवि कहहीं

कहिए, राजा दिलीप की प्रभुता की बराबरी करनेवाला दूसरा कौन है, जिनकी सेवा सब राजा लोग आकर करते थे। इन्द्र भी जिनके सदा रक्षक थे, उनकी महिमा कौन कवि कह सकता है।

भयो भगीरथ अस सुत जासू * पितुसम प्रीति अधिक उरतासू
तिनहिं बोलि नृप दीन्हेउ राजू * आपु चले उठि तप के काजू

जिनके भगीरथ-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। भगीरथ भी अपने पिता के समान हृदय में सबसे अधिक स्नेह रखनेवाले थे। राजा दिलीप ने भगीरथ को बुलाकर राज्य दे दिया और आप तप करने चले गये।

मन महँ करत पन्थ अनुमाना * सुरसरि आव तजउँ ननु प्राना

रास्ते में मन में विचार करते थे कि गङ्गाजी आवें, नहीं तो प्राण छोड़ दूँगा।



यहि विधि करत विचार, नृप कीन्हे अति प्रबलतप।
बीते कछु यक काल, देह तजी कोउ प्रकट नाहिं॥

इस प्रकार विचार करते हुए राजा ने बड़ी कठिन तपस्या की। फिर कुछ समय बीतने पर शरीर छोड़ दिया। वरदान देने को कोई प्रकट नहीं हुआ।

जेहिसुरसरिलगितजि तनुभूपा * सो तजि मूढ़ पियहिं जलकूपा
इहाँ भगीरथ अस मन भयऊ * पितु न आव बहुदिन चलिगयऊ

जिनके लिए राजा ने शरीर छोड़ दिया, उन गङ्गा को छोड़ मूर्ख कुएँ का जल पीते हैं। यहाँ भगीरथ के मन में यह हुआ कि बहुत दिन बीत गये, पिताजी नहीं आये।

नाम ककुत्स्थ तनय यक रहेऊ * दीन्हा राज नीति बहु कहेऊ
कहि तब पूर्व कथा सुत पाहा * दीन्ह अशीश चले नरनाहा

उनके एक पुत्र ककुत्स्थ था। भगीरथ ने उसे राज्य दे बहुत-सी नीति की शिक्षा दी। फिर पहले का हाल कहकर पुत्र को आशीर्वाद देकर राजा चले।

निकसत नगर शकुन भल पाये * अतिहिनिविड़वन जहँ नृप आये
देखि भगीरथ वन सुख पावा * सुरसरि हित तप कहँ मन लावा

नगर से निकलते ही अच्छे सगुन पाये। चलकर बड़े सघन वन में राजा आये। वन को देख भगीरथ ने बहुत सुख पाया और गङ्गाजी के लिए तपस्या में मन लगाया।

एक चरण दोउ भुजा उठाये * रवि सम्मुख चितवहिं मन लाये
वर्ष सहस बीते यहि भाँती * जात न जाने दिन अरु राती

एक पैर और दोनों हाथ ऊपर उठाये मन लगाकर ध्यान करते हुए श्रीसूर्यनारायण की ओर देखने लगे। इसी प्रकार हजार वर्ष बीत गये—रात-दिन जाते नहीं जाना।

देखि उग्र तप अज चलि आये * बोले वचन नृपहिं मन भाये
चहहि नृपति जो ले वरदाना * बोले नृप करि अजहिं प्रणामा

घोर तपस्या देख ब्रह्माजी वहाँ आये और राजा के मन को भानेवाले वचन बोले—हे राजन्! जो चाहते हो, वह वरदान लो। तब राजा ब्रह्मा को प्रणाम कर बोले—

जो माँगौं सो जानत अहहू * मोसन माँगन प्रभु किमि कहहू

हे प्रभो, आप मुझसे वर माँगने को क्यों कहते हैं? जो माँगना है, उसे तो आप जानते ही हैं।



तदपि कहौं प्रभु देहु वर, सब सन्तन कहँ वृद्धि।
दूसर माँगहुँ जोरि कर, गङ्गा आवहिं सिद्धि॥

तो भी कहता हूँ कि हे स्वामी, एक तो सब साधु पुरुषों की बढ़ती हो और दूसरे हाथ जोड़कर माँगता हूँ कि गङ्गाजी आवें। यह वर सिद्ध हो।

एवमस्तु कहि पुनि विधि कहही * सुरसरि वेगु राखि को सकही

छूटि जाहिं पुनि तुरत रसातल * फिरहिं न नृपति बहुरि सुनु भूतल

'यही होगा' ऐसा कह फिर ब्रह्माजी ने कहा कि गङ्गाजी को तो दूँगा, परन्तु उनको कौन सँभाल सकेगा ? कौन धारण कर सकेगा ? हे राजन्! सुनो, वह छूटने ही बिना सँभाले तुरन्त रसातल को चली जायेंगी, फिर पृथ्वी में नहीं लौटेंगी।

तेहिते कहौं एक तोहि पाहीं * अति दयालु शङ्कर मन माहीं
सोइ शङ्कर रखि सुरसरि आजू * उनहिं जपे तब होइहै काजू

इसलिए तुमको एक उपाय बताता हूँ। श्रीशिवजी बड़े दयालु हैं। आज गङ्गाजी को वही सँभालकर रक्खेंगे। उन्हीं का नाम जपने से तुम्हारा काम होगा।

अस कहि विधि अन्तरहित भये * बहुरि भगीरथ शिव पहँ गये
विबुधवर्ष अंगुष्ठ अधारा * बारबार शिव नाम उचारा

ऐसा कह ब्रह्माजी तो अन्तर्द्धान हो गये। तब भगीरथ शिवजी के पास गये और देवताओं के एक वर्ष (मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन-रात्रि होता है। इस हिसाब से एक वर्ष) तक अँगूठे के बल खड़े हो बारंबार शिवजी का नाम जपने लगे।

शिव दयालु प्रकटे तब आई * हाथ जोरि नृप विनय सुनाई
मैं रखब सुरसरि कह ईशा * बहुरि रमापति ध्यान करीशा

तब कृपालु शिवजी ने आकर दर्शन दिया और राजा ने हाथ जोड़ विनती सुनाई। तब शिवजी ने कहा कि मैं गङ्गा को रोक रक्खूँगा। फिर शङ्कर भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे।



उहाँ देवसरि शिववचन, सुनि मन कीन्ह विचार।
जाउँ रसातल शिवसहित, जात न लावौं वार॥

वहाँ गङ्गाजी ने शिवजी के वचन सुन मन में विचार किया कि मैं शिव के सहित रसातल चली जाऊँगी और जाने में देरी नहीं करूँगी।

अन्तर्यामी शिवहिं उपाई * निज शिरजटा सो अगम बनाई
यहाँ भगीरथ अस्तुति कीन्ही * सुनि मृदु गिरा छाँड़ि विधि दीन्ही

श्रीशिवजी तो अन्तर्यामी हैं यह जान उन्होंने उपाय किया कि अपने सिर के जटा-जूट को अगम (जिससे निकल न सकें) बनाया। यहाँ भगीरथ ने स्तुति की। उस कोमल वाणी को सुन ब्रह्माजी ने गङ्गाजी को छोड़ दिया।

छूटे शोर भयउ जग भारी * चकित देव अहि दिग्गज नारी
सुरसरि पुनि हरजटा समानी * वर्ष एक तहँ रहीं भुलानी

गङ्गाजी के छूटते ही संसार में बहुत बड़ा शब्द (हहराहट) हुआ और देवता, शेष,

वासुकि आदि सर्प तथा चारों दिग्गज चौकन्ने हुए। फिर गङ्गाजी वहाँ से छूट शिवजी की जटा में समाकर एक वर्ष तक वहाँ भूली पड़ी रहीं।

कौतुक देखि सकल सुर हर्षे * कहि जयजयति सुमन बहु वर्षे
बहुरि भगीरथ सुमिरण कीन्हा * डारि जटा शिव बुन्दक दीन्हा

यह खेल देख सब देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने शिवजी को जय-जय कहकर बहुत से फूल बरसाये। फिर भगीरथ ने स्मरण किया, तब शिवजी ने जटा से एक बूँद डाल दिया।

तेहि ते भईं तीनि पुनि धारा * एक गई नभ एक पतारा
गङ्गनभसोइकि भङ्गअघनाशिनि * देवन धरा नाम मन्दाकिनि

फिर उस बूँद से तीन धाराएँ हुईं—एक आकाश गई, दूसरी पाताल। जो पापनाश करनेवाली धारा आकाश को गई, उसका देवताओं ने मन्दाकिनी नाम रक्खा।



दूसरि गई पताल में, नाम प्रभावति हरण दुख।
तीसरि भइ गङ्गा सोई, सब सन्तन को करणसुख॥

दूसरी धारा पाताल में गई, उस दुःख हरनेवाली का नाम प्रभावती हुआ। तीसरी वही धारा सब साधुजनों को सुख करनेवाली गङ्गाजी हुई।

जल प्रवाह निकसत नृपति, उर अति भयो अनन्द।
जैसे उमड़त सिन्धु तब, पूर्ण कला लखि चन्द॥

जैसे पूरी सोलहों कलाओं सहित चन्द्रमा को देख समुद्र आनन्द से उमड़ पड़ता है, वैसे ही जल की धारा निकलते ही राजा के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।

आय भगीरथ पुनि शिर नाये * बोली सुरसरि वचन सुहाये
वेगवन्त नृप रथ ले आनू * तुरततुरग शुभगति जिमि भानू

फिर भगीरथ ने आकर सिर नवाया, तब गङ्गाजी सुन्दर वचन बोलीं—हे राजन्! जल्द चलनेवाला रथ लाइए, जिसमें सूर्यनारायण के घोड़ों के समान तेज चालवाले घोड़े हों।

तेहिरथचढ़िनृप चलु मम आगे * चलिहौं मैं तव पाछे लागे
सुनि नृप दिव्य तुरग रथ आना * चले हृदय सुमिरत भगवाना

हे राजन्! उसी रथ पर चढ़कर मेरे आगे चलिए। मैं तुम्हारे पीछे लगी हुई चलूँगी। यह सुनते ही राजा दिव्य घोड़ों सहित रथ लाकर भगवान् को हृदय में स्मरण कर चले।

चली अग्र करि नृपहिं सुरसरी * देवन मुदित सुमन झरि करी
चलत तेज कछु बरणि न जाई * टूटि गिरहिं तरु शैल सुहाई

राजा को आगे कर गङ्गाजी चलीं। तब देवताओं ने प्रसन्न हो फूलों की वर्षा की।

चलते हुए गङ्गाजी का तेज कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। उस वेग से पर्वत, इत्यादि शिला आदि टूट-टूट गिरते थे।

करैं कुलाहल सब बहुभाँती * कच्छ नक्र अरु ब्याल कि पाँती
मज्जन करहिं देव तहँ आई * सुनि गति सिद्ध रहे सब छाई

कछुआ, घड़ियाल, मछली, और सर्प आदि झुण्ड के झुण्ड सब बहुत तरह से कोलाहल और कलोल करने लगे। वहाँ आकर देवता लोग स्नान करने लगे तथा गङ्गास्नान से अच्छी गति होना सुनकर सब ओर सिद्ध पुरुष जमा हुए।



सो० तर्पण कर मन लाय, हर्ष हृदय नहिं जात कहि।
दर्शन से अघ जाय, तरैं सकल मुनिजन कहैं॥

वे सब मन लगाकर तर्पण करते थे। उनके हृदय में ऐसी प्रसन्नता थी, जो कही नहीं जा सकती। सब मुनि लोग कहते हैं कि गङ्गाजी के दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं और दर्शन करनेवाले तर जाते हैं।

मज्जन कर हरषाय, सुर अजादि सनकादि ऋषि।
पान करत अघ जाय, अस मन सब कोऊ कहैं॥

ब्रह्मा आदि देवता तथा सनक, सनन्दन आदि ऋषि लोग प्रसन्न होकर गङ्गाजी में स्नान करने लगे। सब कोई मन में कहते हैं कि केवल गङ्गाजल के पीने ही पाप चले जाते हैं।

करैं जे मज्जन जप मन लाई * तिनकी महिमा कहि न सिराई
रथ पर जात सोह नृप कैसे * तेजवन्त रवि देखिय जैसे

जो कोई श्रीगङ्गाजी में स्नानकर मन लगाकर जप करते हैं, उनकी महिमा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। रथ पर जाते हुए राजा कैसे शोभित हैं, जैसे तेजस्वी श्रीसूर्यनारायण देख पड़ें।

लाँघत शैल सुहावन देशा * पाछे सुरसरि आगे नरेशा
हरद्वार समीप जब आये * तीर्थ देखि सुरसरि मन भाये

सुन्दर देश और पर्वत लाँघते हुए आगे राजा और पीछे गङ्गाजी चली जाती थीं। जब हरद्वार के पास आये तो तीर्थ देख गङ्गाजी का मन प्रसन्न हुआ।

तीर्थ निरखि मन भो सुखसारी * आदिप्रयाग पहुँचि अघहारी
तहँ मज्जन कीन्हें अघ जाई * बहुरि देवनदि काशी आई

फिर पापों के नाश करनेवाले आदि प्रयाग में पहुँच तीर्थ को देख मन प्रसन्न हुआ। वहाँ स्नान करने से पाप चला जाता है। फिर गङ्गाजी काशी में आईं।

सो शिवपुरी सहज सुखदाई * वरणि न जाइ मनोहरताई

औरो तीर्थ विविध विधि जानी * गई तहाँ किमि कहौं बखानी

साधारण सुख देनेवाली उस शिवपुरी काशी की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती। इसी तरह और भी अनेक प्रकार के तीर्थों को जान गङ्गाजी वहाँ-वहाँ गई। उनका विस्तार कहाँ तक वर्णन करूँ।

मग लोगन कहँ करत सनाथा * जाइ चली इहि विधि रघुनाथा

हे रामजी, गङ्गाजी इसी तरह रास्ते में लोगों को सनाथ करती चली जाती थीं।


मिली जाइ पुनि उदधि महँ, उदधि हृदय सुख मान।
लगे कहन भागीरथहिं, तुमसम धन्य न आन॥

फिर जाकर वह समुद्र में मिल गईं। तब समुद्र मन में सुखी हुआ और भगीरथ से कहने लगा कि तुम्हार बराबर दूसरा कोई धन्य नहीं है।

कीन्हों अस जो करहि न कोई * तप महिमा बल कस नहिं होई
सगरतनय तारे ततकाला * हर्षवन्त तब भयो नृपाला

जो तुमने किया, उसे कोई नहीं कर सकता। क्यों न हो, तप के बल की ऐसी ही महिमा है। तपोबल से क्या नहीं हो सकता? राजा सगर के सब पुत्र तुरन्त ही तार दिये, यह सुन राजा प्रसन्न हुए।

अब लौं रहे जे कुल महँ कोऊ * तिनके सङ्ग तरे अब सोऊ
सकल सुरन सँग तहाँ विधाता * नृप सन आय कही अस बाता

अब तक जो कोई कुल में बाकी थे, वे भी उन राजकुमारों के साथ तर गये। तब सब देवताओं के साथ ब्रह्माजी वहाँ आये और राजा से कहा—

धन्य भगीरथ जग यश लयऊ * तुमसमान नृप अवर न भयऊ
आपनि सत्य प्रतिज्ञा कियऊ * सम्मत वेद जनन सुख दयऊ

हे भगीरथ, तुम धन्य हो। तुमने संसार में यश पाया। तुम्हारे समान और कोई राजा नहीं हुआ। तुमने अपनी प्रतिज्ञा, जो कि वेद के सम्मत थी, पूरी की और सब जनों को सुख दिया।

गङ्गासागर सब कोइ कहहीं * अघ उलूक देखत रवि डरहीं
भागीरथी नाम अरु कहहीं * सुनि सुर सिद्ध नाग यश लहहीं

इस स्थान को सब कोई गङ्गासागर कहेंगे। जैसे सूर्यनारायण को देख उल्लू पक्षी डरता है, वैसे ही गङ्गासागर को देख पाप डरेंगे। लोग गङ्गाजी को भागीरथी कहेंगे। इस नाम को सुन देवता, सिद्ध, नाग आदि यश पावेंगे।

असविधिकहिनिजलोकहिआये * यहाँ भगीरथ अतिसुख पाये

ऐसा कह ब्रह्माजी अपने लोक में चले आये और यहाँ भगीरथ ने बड़ा सुख पाया।

सुमनवृष्टि आकाश ते होई * ब्रह्मानन्द मगन सब कोई

ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार आदि अयोध्यापुर भर में लगाये गये। वह सजावट वर्णन नहीं की जा सकती। आकाश से फूलों की वर्षा होती थी। सब कोई ऐसे खुश थे, मानो ब्रह्मानन्द में मग्न थे।

वृन्द वृन्द मिलि चलीं लुगाई * सहज शृँगार किये उठि धाई
कनककलश मङ्गल भरि थारा * गावत पैठहिं भूपदुआरा

झुंड की झुंड स्त्रियाँ (श्रीरामजी का जन्म सुन) साधारण शृंगार किये ही उठ दौड़ीं। वे मङ्गल की वस्तुओं से भरे सोने के थाल और कलश लिए गाती हुई राजद्वार में पैठती थीं।

करि आरती निछावरि करहीं * बार बार शिशु चरणन्ह परहीं
मागध सूत बन्दिगण गायक * पावन गुण गावहिं रघुनायक

बालरूप भगवान् की आरती उतारती, न्योछावर करती और बार-बार उनके चरणों में पड़ती थीं। मागध, सूत, बन्दी और गायकों के गण श्रीरघुनाथजी के पवित्र यश को गाने लगे।

सर्वस दान दीन्ह सबकाहू * जेहि पावा राखा नहिं ताहू
मृगमद चन्दन कुंकुम कीचा * मची सकल बीथिन बिचबीचा

राजा ने सबको अपना सर्वस्व ही दान कर दिया और जिसने राजा से जो कुछ पाया, उसने भी श्रीरामजी के ऊपर वह सब न्योछावर कर दिया। अयोध्या की सब गलियों में कस्तूरी, चन्दन, केसर आदि की कीच मच गई।



गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रकटे भये सुखकन्द।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नरवृन्द॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी के उत्पन्न होने पर अयोध्या के घर-घर में मंगल-बधाई बजने लगी। नगर भर में जहाँ-तहाँ सब स्त्री और पुरुष बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ते थे।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ * सुन्दरसुत जन्मत भईं सोऊ
वह सुखसम्पति समय समाजा * कहि न सकैं शारद अहिराजा

कैकेयी और सुमित्रा, इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये। वह सुख, वह धनसम्पत्ति का लुटाया जाना, वह शुभ समय और वह समाज अपूर्व था। उसका बखान सरस्वती और शेष भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी सोहै यहि भाँती * प्रभुहि मिलन आई जनु राती
देखि भानु जनु मन सकुचानी * तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी

अयोध्यापुरी इस प्रकार शोभायमान थी, मानो श्रीरामजी से भेंट करने के लिये रात आई है; परन्तु दिन होने के कारण सूर्यनारायण को देख लजा गई—तो भी सन्ध्या बनकर रह गई।



सुमनवाटिका बाग बन, विपुल विहङ्गनिवास।
फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँपास॥

फुलवारी, बाग और वन में बहुत-सी चिड़ियों ने रहने को घोंसले बनाये थे, और नगर के निकट चारों ओर फूल-फल और नये पत्तों से युक्त वृक्ष शोभायमान थे।

बनै न बरणत नगरनिकाई * जहाँ जाय मन तहाँ लुभाई॥
चारु बजार विचित्र अटारी * मणिमयविधि जनु स्वकर सँवारी॥

नगर की शोभा वर्णन करते नहीं बनती; क्योंकि जिधर मन जाता है, वहीं लुभाकर रम जाता है। बाजार बहुत सुन्दर थे जिनके कोठे मणियों से चित्र-विचित्र बने थे, मानों ब्रह्मा ने अपने ही हाथ से बनाया हो।

धनिक वणिक वर धनद समाना * बैठे सकल वस्तु लै नाना॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई * सन्तत रहहिं सुगन्ध सिंचाई॥

अनेक प्रकार की वस्तुएँ लिए उत्तम धनी बनिये धनेश्वर श्रीकुबेरजी के समान बैठे थे। सुन्दर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्ध से सींची हुई रहती थीं।

मङ्गलमय मन्दिर सबकेरे * चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सकल शुचि सन्ता * धर्मशील ज्ञानी गुणवन्ता॥

सबके मन्दिर मङ्गलमय थे और नक्काशी व रँगाई ऐसी थी, मानों कामदेव ही ने चितेरा होकर उन्हें बनाया था। नगर के सब स्त्री-पुरुष पवित्र, साधुस्वभाव, धर्मात्मा, सुशील, ज्ञानी और गुणी थे।

अतिअनूप जहँ जनकनिवासू * विथकहिं विबुध विलोकि विलासू॥
होत चकितचित कोट विलोकी * सकल भुवन शोभा जनु रोकी॥

जनकजी के रहने का स्थान बहुत ही अनुपम था। उनका भोगविलास देख देवता लोग भी ललचाते थे। परकोट (शहरपनाह) देख मन चकित हो जाता था। जान पड़ता था, मानों सब लोकों की शोभा उसी ने मिथिलापुरी में रोक रक्खी है।



धवल धाम मणि पुरटपट, सुघटित नाना भाँति।
सियनिवास सुन्दर सदन, शोभा किमिकहि जाति॥

श्वेत मन्दिरों में अनेक प्रकार के सुघटित (जैसा जिसमें चाहिए) रत्नों से जड़े हुए सोने के किवाड़े लगे थे। सीताजी के रहने का सुन्दर मन्दिर ऐसा मनोहर था कि उसकी शोभा नहीं कही जा सकती।

सुभगद्वार सब कुलिशकपाटा * भूरि भीर नट मागध भाटा॥

उस समय जो कोई आया और जिसे जो मन भाया, वही उसे राजा ने दिया। हाथी, रथ, घोड़ा, सोना, गौ, हीरा और अनेक प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।



मन सन्तोष सबन के, जहँ तहँ देहिं अशीश।
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसिदास के ईश॥

सबके मन में सन्तोष था। जहाँ-तहाँ सब लोग आशीर्वाद देते थे कि प्रभु तुलसीदास के स्वामी, सब राजकुमारों की बड़ी उमर हो।

कछुक दिवस बीते यहि भाँती * जात न जानहिं दिन अरु राती
नामकरण कर अवसर जानी * भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी

कुछ दिन इसी प्रकार आनन्द में बीते कि रात दिन जाते नहीं जान पड़ा। नामकरण का समय जान राजा ने परम ज्ञानी वशिष्ठ मुनि को बुला भेजा।

करि पूजा भूपति अस भाखा * धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा
इनके नाम अनेक अनूपा * मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा

पूजा करके राजा ने उनसे कहा—हे मुनि, जो अपने मन में विचार रक्खा हो वही नाम (इन लड़कों के) रखिए। मुनि ने कहा—हे राजन्, इनके तो बहुत नाम हैं, परन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

जो आनन्दसिन्धु सुखरासी * सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी
सो सुखधाम राम अस नामा * अखिल लोकदायक विश्रामा

जो सुख की राशि और आनन्द का समुद्र है, जिसके सीकर (जलकण) से अर्थात् कृपा कणमात्र से तीनों लोक सुखी हैं, वह सब लोकों को विश्राम देनेवाला, सुख का धाम बालक, राम नाम धारण करेगा।

विश्वभरणपोषण कर जोई * ताकर नाम भरत अस होई
जाके सुमिरण ते रिपुनाशा * नाम शत्रुहन वेदप्रकाशा

जो संसार भर का पालन-पोषण करेगा, उसका नाम भरत होगा। जिसका स्मरण करते ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उसका वेदों में शत्रुघ्न नाम प्रकट किया है।



लक्षणधाम रामप्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ, लक्ष्मण नाम उदार॥

जो अच्छे लक्षणों का घर, श्रीरामजी को प्यारा, सब संसार का आधार और उदार (भक्तों को सर्वस्व देनेवाला) है, उसका गुरु वशिष्ठजी ने लक्ष्मण नाम रक्खा।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी * वेदतत्त्व नृप तव सुत चारी
मुनिजन धन सर्वस शिव प्राना * बालकेलिरस तेहि सुख माना

श्याम गौर मृदु वयस किशोरा * लोचनसुखद विश्वचित चोरा
उठे सकल जब रघुपति आये * विश्वामित्र निकट बैठाये

जब साँवले और गोरे रङ्ग के सुकुमार, किशोर अवस्था के, नेत्रों को सुख देनेवाले और संसार के चित्त को चुरानेवाले श्रीराम-लक्ष्मण आये तो सब उठ खड़े हुए और विश्वामित्र ने उनको पास बिठा लिया।

भे सब सुखी देखि दोउ भ्राता * वारिविलोचन पुलकित गाता
मूरति मधुर मनोहर देखी * भये विदेह विदेह विशेखी

दोनों भाइयों को देख सब सुखी हुए। उनके रोमांच हो आया और नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे। मनोहर और मधुर मूर्ति देख विदेह (देहाभिमानरहित जनक) अधिक विदेह हो गये—देह की सुध भूल गये।


प्रेममगन मन जानि नृप, करि विवेक मतिधीर।
बोलेउ मुनिपद नाय शिर, गद्गद गिरा गँभीर॥

धीरबुद्धि राजा ने अपने मन को श्रीरामजी के प्रेम में डूबा हुआ जान उसे आत्मज्ञान में ला मुनि के चरणों में सिर नवाया। फिर गम्भीर और गद्गदवाणी से बोले—

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक * मुनिकुलतिलक किनृपकुलपालक
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा * उभय वेषधरि सोइ कि आवा

हे नाथ, कहिए, ये दोनों सुन्दर बालक मुनियों के कुल के तिलक हैं या राजकुल के रक्षक (राजकुमार) हैं। अथवा वेद जिस ब्रह्म को नेति कहकर गाते हैं, वही दो स्वरूप धरकर आया है।

सहज विरागरूप मन मोरा * थकित होत जिमि चन्द्रचकोरा
ताते प्रभु पूछौं सतभाऊ * कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ

क्योंकि स्वभाव ही से विरक्त मेरा मन भी, चन्द्रमा को देख चकोर पक्षी के समान, इनके स्नेह में बँध गया है। इससे मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ, हे प्रभो, कहिए, छिपाइएगा नहीं।

इनहिं विलोकत अतिअनुरागा * बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा
कह मुनि विहँसि कहेउ नृपनीका * वचन तुम्हार न होय अलीका

इन्हें देख मन को ऐसी अधिक प्रीति होती है कि वह बुद्धि आदि से परे ब्रह्मानन्द को छोड़ देता है। तब मुनि ने हँसकर कहा—राजन्, तुमने बहुत ठीक कहा, तुम्हारा कहना झूठ नहीं है।

ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्राणी * मन मुसकाहिं राम सुनि बाणी
रघुकुलमणि दशरथ के जाये * मम हित लागि नरेश पठाये

भुज विशाल भूषणयुत भूरी * हिय हरिनख शोभा अतिरूरी
उर मणिहार पदिक की शोभा * विप्रचरण देखत मन लोभा

बहुत गहनों से सुशोभित बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं। हृदय में बाघ के नाखून की शोभा है, जो कठुले में पड़ा है। हृदय में मणियों का हार है, जिसके बीच में पदिक (जड़ाऊ चौकोना नग) की शोभा न्यारी है। हृदय में ब्राह्मण के चरण का चिह्न श्रीवत्स देख उसमें मन लुभा जाता है।

कम्बुकण्ठ अति चिबुक सुहाई * आनन अमित मदन छबिछाई
दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे * नासा तिलक को बरणै पारे

शङ्ख-सा घुमावदार कण्ठ और ठोड़ी सुहावनी है। अनगिनत कामदेव की छवि मुख पर छाई है। दो-दो दाँत, होठों की ललाई, नासिका और तिलक की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है?

सुन्दर श्रवण सुचारु कपोला * अतिप्रिय मधुर तोतरे बोला
चिक्कणकच कुञ्चित गभुवारे * बहुप्रकार रचि मातु सँवारे

सुन्दर कान, मनोहर गाल और बहुत प्यारे मीठे तोतरे बोल हैं। चिकने और घुँघवारे गभुवारे बाल हैं, जिन्हें माता ने बहुत प्रकार से रच और सुधारकर बाँधा है।

पीत झँगुलिया तनु पहिराई * जानु पाणि विचरत मोहि भाई
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा * सो जानै स्वप्नेहु जेहि देखा

पीली झँगुली देह में पहने सब भाई हाथ और घुटनों के बल पृथ्वी पर चलते हैं। वेद और शेष भी भगवान् के स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकते। किन्तु स्वप्न में भी जिसने देखा हो वह जानता है।

दोहा—सुख सन्दोह मोहपर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेमवश, कर शिशुचरित पुनीत॥

संसारी मायामोह से परे, बुद्धि, वाणी और इन्द्रियों से न्यारे, परमानन्दस्वरूप श्रीरामजी पति-पत्नी कौशल्या और दशरथ के परम प्रेम के वश में हो पवित्र बालचरित्र करने लगे।

यहि विधि राम जगत पितुमाता * कोशलपुरवासिन सुखदाता
जिन रघुनाथ चरण रति मानी * तिनकी यह गति प्रकट भवानी

संसार के माता-पिता श्रीरामजी इस प्रकार अयोध्यावासियों को सुख देने लगे। हे पार्वती, जिन्होंने श्रीरघुनाथजी के चरणों में प्रेम किया है, उनकी ऐसी ही (राजा-रानी की-सी) गति प्रत्यक्ष है, अर्थात् उन्हें ऐसा ही अलौकिक लाभ होता है।

रघुपतिविमुख यतन कर कोरी * कवन सकै भवबन्धन छोरी
जीव चराचर वश करि राखे * सो माया प्रभु सों भय भाखे

श्रीरघुनाथजी से विमुख पुरुष करोड़ों उपाय करे, पर उसके संसारबन्धन को कौन छुड़ा सकता है?

प्रभुभयबहुरि मुनिहिं सकुचाहीं * प्रकट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं

लक्ष्मणजी के मन में बड़ी इच्छा थी कि जाकर जनकपुर देख आवें ; किन्तु एक तो श्रीरामजी का डर, दूसरे मुनि का सङ्कोच था इससे प्रकट कहते नहीं थे ; मन में मुस्कराते थे, अर्थात् जनकपुर जाना चाहते थे।

राम अनुजमन की गति जानी * भक्तवछलता हिय हुलसानी
परम विनीत सकुचि मुसकाई * बोले गुरुअनुशासन पाई

छोटे भाई के मन की बात जान श्रीरामजी के हृदय में भक्तवत्सलता उमड़ आई। रामचन्द्र ने बड़ी नम्रता के साथ सकुचते हुए पहले विश्वामित्रजी से कुछ कहने की आज्ञा माँगी। फिर मुस्कराकर बोले—

नाथ लषण पुर देखन चहहीं * प्रभुसकोच डर प्रकट न कहहीं
जो राउर अनुशासन पाऊँ * नगर दिखाइ तुरत लै आऊँ

हे नाथ, लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं ; परन्तु स्वामी के सङ्कोच और डर के मारे प्रकट नहीं कहते। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो इनको नगर दिखाकर तुरत ही ले आऊँ।

सुनि मुनीश कह बचन सप्रीती * कस न राम राखहु तुम नीती
धर्मसेतुपालक तुम ताता * प्रेमविवश सेवकसुखदाता।

यह सुन विश्वामित्र ने स्नेहसहित कहा—हे राम, क्यों न हो, नीति को बरतना तुम्हें उचित ही है। हे तात, तुम धर्म की मर्यादा का पालन करनेवाले हो। प्रेम के वश हो अपने सेवक को सुख देते हो।



जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सफल सबके नयन, सुन्दर बदन दिखाइ॥

जाओ सुख के धाम दोनों भाई नगर देख आओ और सुन्दर मुख दिखाकर सबके नेत्र सफल करो।

मुनिपदकमल बन्दि दोउभ्राता * चले लोकलोचनसुखदाता
बालकवृन्द देखि अति शोभा * लगे सङ्ग लोचनमनलोभा

लोगों के नेत्रों को सुख देनेवाले दोनों भाई मुनि के चरणारविन्दों की बन्दना करके चले। बालकों के झुण्ड इनकी परम शोभा देख इनके साथ हो लिये। उनके नेत्र और मन इनके रूप पर लुभा गये।

पीतवसन परिकर कटि भाथा * चारुचाप शर सोहत हाथा
तनु अनुहरत सुचन्दन खोरी * श्यामल गौर मनोहर जोरी

पीताम्बर का फेंटा कमर में कसे, तरकस बाँधे, हाथों में सुन्दर धनुष-बाण लिये, देह


सब शिशु यहि मिसु प्रेमबश, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात॥

सब बालक इसी बहाने स्नेह से दोनों भाइयों को देख-देख तथा उनके मनोहर अङ्गों को छू-छूकर मन में बड़े प्रसन्न होते थे। उनकी देह में आनन्द से रोमांच हो आता था।

शिशु सब राम प्रेमबश जाने * प्रीति समेत निकेत बखाने
निज-निज रुचि सब लेहिं बुलाई * सहित सनेह जाहिं दोउ भाई

सब बालकों ने श्रीरामजी को प्रेम के वश जान स्नेह सहित अपने-अपने घर बतलाये। अपनी-अपनी रुचि से सब बुला लेते और दोनों भाई प्रीतिसहित उनके घरों में जाते थे।

राम दिखावहिं अनुजहिं रचना * कहि मृदु मधुर मनोहर बचना
लव निमेष महँ भुवन निकाया * रचै जासु अनुशासन माया

श्रीरामजी कोमल, मीठे और मनोहर वचन कह लक्ष्मण को धनुषयज्ञ की रचना दिखाते थे। जिनकी माया आज्ञा पाते ही पलभर में ही अगणित ब्रह्माण्डों को बना डालती है—

भक्तहेतु सोइ दीनदयाला * चितवत चकित धनुषमखशाला
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं * जानि बिलम्ब त्रास मन माहीं

वही दीनदयालु अपने भक्तों के लिए आज धनुषयज्ञ का स्थान चकित हो देखते थे। यह कौतुक देख देर हो गई जानकर मन में डरते हुए भगवान् गुरुजी के पास चले।

जासु त्रास डरकहँ डर होई * भजनप्रभाव दिखावत सोई
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई * किये बिदा बालक बरिआई

जिनके डर से डर को भी डर होता है वह भगवान् डरें—यह कुछ नहीं, भगवान् अपने भजन का प्रभाव दिखाते हैं। कोमल, मीठी और सुहावनी बातें कह रामचन्द्र ने बालकों को जबरदस्ती बिदा किया।


सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुचसहित दोउ भाइ।
गुरुपदपङ्कज नाइ शिर, बैठे आयसु पाइ॥

डर, स्नेह और सङ्कोच के साथ बहुत नम्र हो दोनों भाइयों ने गुरुजी के चरणारविन्दों में सिर नवाया और आज्ञा पाकर बैठ गये।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा * सबहीं सन्ध्यावन्दन कीन्हा
कहत कथा इतिहास पुरानी * रुचिर रजनि जुगयाम सिरानी

रात होते ही मुनि ने आज्ञा दी; तब सबने सन्ध्यावन्दन किया। फिर पुराने इतिहास और कथा कहते आधी रात बीत गई।

के हैं। फिर हे सखी, इनके सिवा दूसरा संसार में ऐसा है ही कौन, जिसकी उपमा इस छवि से दी जाय।



वयकिशोर सुषमासदन, श्याम गौर सुखधाम।
अङ्ग अङ्ग पर वारिए, कोटिकोटि शतकाम॥

ये किशोर अवस्थावाले, शोभा के धाम, साँवले और गोरे दोनों भाई सुख की खान हैं, जिनके हरएक अंग पर सैकड़ों-करोड़ों कामदेव न्योछावर हैं।

कहहु सखी अस को तनुधारी * जो न मोह यह रूप निहारी
कोउ सप्रेम बोली मृदुबानी * जो मैं सुना सो सुनहु सयानी

कहो सखी, ऐसा कौन देहधारी प्राणी है, जो यह रूप देखकर मोहित न हो? तब कोई सखी प्रेमसहित कोमल वाणी से बोली कि हे चतुर सखी, जो मैंने सुना है उसे सुनो।

ये दोउ नृप दशरथ के ढोटा * बालमरालन के कल जोटा
मुनि कौशिक मख के रखवारे * जिन रण अजय निशाचर मारे

मनोहर हंसों के बच्चों के से जोड़े ये दोनों महाराज दशरथ के पुत्र और विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करनेवाले हैं, जिन्होंने युद्ध में कभी न हारनेवाले राक्षसों को मारा है।

श्यामगात कलकञ्जविलोचन * जो मारीच सुभुज मदमोचन
कौशल्यासुत सो सुखखानी * नाम राम धनुशायक पानी

साँवली देह और मनोहर कमल से नेत्रोंवाले इन्होंने मारीच और सुबाहु के अहङ्कार को दूर किया है। यह हाथ में धनुषबाण लिए सुख की खान कौशल्या के पुत्र हैं और उनका नाम राम है।

गौर किशोर वेष वर काछे * कर शर चाप राम के पाछे
लक्ष्मण नाम रामलघुभ्राता * सुनु सखि तासु सुमित्रा माता

और यह गोरे रङ्ग के उत्तम वेषवाले हाथ में धनुष-बाण लिए जो श्रीरामजी के पीछे हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। यह रामजी के छोटे भाई हैं। हे सखी, सुनो, इनकी माता सुमित्राजी हैं।



विप्रकाज करि बन्धु दोउ, मग मुनिवधू उधारि।
आये देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि॥

दोनों भाई मुनि का काम कर राह में अहल्या को तार धनुषयज्ञ देखने आये हैं। यह सुन सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं।

देखि रामछवि कोउ इक कहई * योग्य जानकी यह वर अहई
जो सखि इनहिं देख नरनाहू * प्रण परिहरि हठि करहिं विवाहू

का शब्द सुन श्रीरामजी मन में विचार लक्ष्मण से कहने लगे। मानो कामदेव ने संसार के जीतने का विचार करके युद्ध का डंका बजाया है।

अस कहिफिरि चितये तेहिओरा * सियमुखशशिभयेनयन चकोरा
भये विलोचन चारु अचञ्चल * मनहुँसकुचिनिमितजेउद्दगञ्चल

ऐसा कह फिर उस ओर देखा तो जानकीजी के मुखचन्द्र में चकोर-सी आँखें गिड़ गईं। सुन्दर नेत्र एकटक उधर ही लग गये, मानो निमि ने सकुचकर पलकों को छोड़ दिया।

देखि सीय शोभा सुख पावा * हृदय सराहत वचन न आवा
जनु विरञ्चि सब निज निपुणाई * विरचि विश्व कहँ प्रकट दिखाई

जानकीजी की शोभा देख राम ने सुख पाया। मन में सराहना करने लगे, किन्तु प्रकट मुँह से कोई बात न निकली। वह अपने मन में सोचने लगे—मानो ब्रह्मा ने सीता को बनाने में अपनी सब चतुराई खर्च करके संसार को प्रकट दिखलाई है।

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई * छविगृह दीपशिखा जनु बरई
सब उपमा कवि रहे जुठारी * केहि पटतरिय विदेहकुमारी

जो सुन्दरता को भी सुन्दर करती है। मानो शोभारूपी घर में जलती हुई दीपक की लौ हैं। सब उपमाएँ कवियों ने जूठी कर दी हैं, अर्थात् कह डाली हैं। जनककुमारी को किसकी उपमा दें?



सियशोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि।
बोले शुचिमन अनुज सन, वचन समय अनुहारि॥

प्रभु श्रीरामजी अपने मन में सीता की शोभा का वर्णन कर और अपनी दशा पर विचारकर शुद्धमन हो लक्ष्मण से समय के अनुकूल वचन बोले—

तात जनकतनया यह सोई * धनुषयज्ञ जेहि कारण होई
पूजन गौरि सखी लै आई * करति प्रकाश फिरति फुलवाई

हे तात, यह वही जनककुमारी है, जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियों को लिये पार्वतीजी को पूजने आई है, और फुलवारी में अपने रूप के प्रकाश से उजेला करती फिरती है।

जासु विलोकि अलौकिक शोभा * सहज पुनीत मोर मन छोभा
सो सब कारण जान विधाता * फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता

जिसकी अनोखी शोभा देख स्वभाव ही से शुद्ध मेरे मन में भी क्षोभ हुआ। वह सब कारण विधाता जानें। परन्तु हे भाई सुनो, मेरे दाहने अङ्ग फड़कते हैं।

रघुबंशिन कर सहज स्वभाऊ * मन कुपन्थ पग धरै न काऊ
मोहिं अतिशय प्रतीति जियकेरी * जेहि स्वप्नेहु परनारि न हेरी

परसि जासु पदपङ्कजधूरी * तरी अहल्या कृतअघभूरी
सो कि रहैं बिन शिवधनु तोरे * यह प्रतीति परिहरिय न भोरे

क्योंकि जिनके चरणारविन्दों की धूल छू जाने से महापाप करनेवाली अहल्या तर गई, वे क्या बिना शिवधनुष तोड़े रहेंगे ? यह विश्वास भूल से भी न छोड़िए।

जेहिं विरञ्चि रचि सीय सँवारी * तेहिं श्यामलवर रचेउ विचारी
तासु वचन सुनि सब हरषानी * ऐसइ होउ कहहिं मृदुबानी

जिस विधाता ने सीता को रच-रचकर बनाया है, उसी ने विचारकर यह साँवला दूलह भी बनाया है। उसके वचन सुन सब प्रसन्न हुईं और कोमल वाणी से कहने लगीं कि परमेश्वर करे, ऐसा ही हो।



हियहरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनिवृन्द।
जाहिं जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द॥

सुन्दर मुख और नेत्रोंवाली झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ मन में प्रसन्न हो फूल बरसाती थीं और जहाँ दोनों भाई जाते थे, वहाँ बहुत आनन्द होता था।

पुर पूरबदिशि गे दोउ भाई * जहाँ धनुषमख भूमि बनाई
अति विस्तार चारु गच ढारी * विमल वेदिका रुचिर सँवारी

दोनों भाई नगर के पूर्व की ओर गये, जहाँ धनुषयज्ञ का स्थान बनाया गया था। बहुत लम्बी चौड़ी सुन्दर ढालू चिकनी गच (फ़र्श) थी, जिसमें उज्ज्वल चमकीली वेदी बनी थी।

चहुँ दिशि कञ्चन मञ्च विशाला * रचे जहाँ बैठहिं महिपाला
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा * अपर मञ्चमण्डली बिलासा

चारों ओर सोने के बड़े-बड़े मचान बने थे, जिनमें राजा लोग बैठते थे। उसके पीछे पास ही चारों ओर और भी मचानों की कतारें शोभायमान थीं।

कछुक ऊँच सब भाँति सुहाई * बैठहिं नगरलोग सब आई
तिनके निकट विशाल सुहाये * धवलधाम बहुबरण बनाये

जो कि सब प्रकार सुहावने और आगेवालों से कुछ ऊँचे थे। उनमें नगर के सब लोग आकर बैठते थे, उनके पास ही ऊँचे स्वच्छ रङ्ग-बिरङ्ग सुहावने मन्दिर बनाये गये थे,

जहँ बैठी देखहिं पुरनारी * यथायोग निज कुलअनुहारी
पुरबालक कहि कहि मृदुवचना * सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना

जहाँ नगर की स्त्रियाँ अपने कुल के अनुसार, जैसा जिसे चाहिए, बैठकर देखती थीं। नगर के बालक कोमल वचन कह-कहकर श्रीरामजी को आदरसहित धनुषयज्ञ की रचना दिखाते थे।

जय जय जय गिरिराजकिशोरी * जय महेशमुखचन्द्रचकोरी
जय गजवदनषडाननमाता * जगतजननि दामिनिद्युतिगाता

हे पर्वतराज की कन्या, तुम्हारी जय हो। हे शिवजी के मुखचन्द्र को चकोरी सी देखनेवाली, तुम्हारी जय हो। हे गणेश और स्वामिकार्तिकजी की माता, तुम्हारी जय हो। तुम सारे संसार की माता हो। तुम्हारी देह बिजली-सी चमकती है। तुम्हारी जय हो।

नहिं तव आदि मध्य अवसाना * अमित प्रभाव वेद नहिं जाना
भवभव विभव पराभवकारिणि * विश्वविमोहिनि स्ववशविहारिणि

तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त नहीं है, तुम्हारे अपार प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। तुम संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाली तथा संसार को मोहनेवाली हो। तुम स्वतन्त्र विहार करनेवाली हो।



पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेख॥

हे माता, पतिव्रता स्त्रियों में तुम्हारी सबसे पहले गिनती होती है। तुम्हारी महिमा अपार है, जिसे सहस्रों शारदा और शेष भी नहीं कह सकते।

सेवत तोहिं सुलभ फल चारी * वरदायिनि त्रिपुरारिपियारी
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे * सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे

हे वर देनेवाली, हे शिव की प्यारी, तुम्हारी सेवा करने से चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सहज ही में मिलते हैं। हे देवि, देवता, मनुष्य, मुनि आदि तुम्हारे चरणारविन्दों को पूजकर सुखी होते हैं।

मोर मनोरथ जानहु नीके * बसहु सदा उरपुर सबही के
कीन्हेउँ प्रकट न कारण तेही * अस कहि चरण गहे बैदेही

मेरे मनोरथ को तुम अच्छी तरह जानती हो; क्योंकि सदा सबके हृदय में निवास करती हो। इसी कारण मैंने अपना मनोरथ प्रकट नहीं किया। ऐसा कह वैदेही ने श्रीपार्वतीजी के चरण पकड़ लिये।

विनय प्रेमवश भईं भवानी * खसी माल मूरति मुसुकानी
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ * बोलीं गौरि हर्ष हिय भरेऊ

विनती और प्रेम से श्रीपार्वतीजी उनके वश हो गईं। मूर्ति मुस्कराने लगी। प्रसाद की माला मूर्ति पर से सीता की ओर खिसक पड़ी। तब सीताजी ने माला के उस प्रसाद को आदरसहित हृदय में धारण किया। तब प्रसन्नतापूर्ण हृदय से श्रीगौरीजी मत्यक्ष बोल उठीं—

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई * लगे चरण चापन दोउ भाई
जिनके चरणसरोरुह लागी * करत विविध जप योग विरागी

तब मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके पैर दाबने लगे। जिनके चरणारविन्दों के लिए विरक्त पुरुष अनेक प्रकार के जप और योगाभ्यास करते हैं।

ते दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते * गुरुपदकमल पलोटत प्रीते
बार बार मुनि आज्ञा दीन्हा * रघुवर जाय शयन तब कीन्हा

वे दोनों भाई मानो स्नेह से जीत लिये गये हैं, इसी से तो वे गुरुजी के चरणारविन्दों को प्रीति से दबाते थे। मुनि ने बारंबार आज्ञा दी, तब श्रीरामजी ने जाकर शयन किया।

चापत चरण लषण उर लाये * सभय सप्रेम परम सुख पाये
पुनिपुनि प्रभु कह सोवहु ताता * पौंढ़े धरि उर पदजलजाता

तब लक्ष्मण अपने हृदय में श्रीरामजी के चरणों को लगाकर डर* और प्रीतिसहित बड़े सुख से दबाने लगे। प्रभु ने बारंबार कहा कि हे तात, सो जाओ। तब हृदय में उन चरणारविन्दों का ध्यान धरकर लक्ष्मणजी लेट गये।


उठेलषणनिशिविगतसुनि, अरुणशिखाधुनि कान।
गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान॥

रात बीतने पर कानों में मुर्गे का शब्द पड़ते ही लक्ष्मण उठ बैठे। फिर गुरुजी से पहले ही जगन्नाथ सुजान श्रीरामजी जागे।

सकल शौचकरि जाय नहाये * नित्य निबाहि गुरुहिं शिरनाये
समय जानि गुरु आयसु पाई * लेन प्रसून चले दोउ भाई

सब शौचकर जाकर स्नान किया और नित्य-कर्म कर गुरुजी को सिर नवाया। पूजन का समय जान गुरुजी की आज्ञा पा दोनों भाई फूल लेने चले।

भूपबाग वर देखेउ जाई * जहँ वसन्तऋतु रही लुभाई
लागे विटप मनोहर नाना * वरण वरण वर वेलि विताना

राजा का उत्तम बाग जाकर देखा, जहाँ वसन्तऋतु लुभाई हुई सदा रहती थी। बहुत-से मनोहर वृक्ष लगे थे, जिनमें रङ्ग-रङ्ग की उत्तम बेलें चँदवा सी छा रही थीं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाये * निजसम्पति सुरतरुहि लजाये
चातक कोकिल कीर चकोरा * कूजत विहग नचत कलमोरा

नये पत्ते, फल, फूल शोभायमान थे और अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को भी लज्जित

* डर इस बात का था कि रामचन्द्र के सुकोमल चरणों को पीड़ा न पहुँचे।

किये थे। पपीहा, कोकिला, तोता, चकोर आदि पक्षी बोलते और मनोहर मोर नाचते थे।

मध्य बाग सर सोह सुहावा * मणिसोपान विचित्र बनावा
विमलसलिल सरसिज बहुरङ्गा * जलखग कूजत गुञ्जत भृङ्गा

बाग के बीच में सुन्दर तालाब शोभित था, जिसकी विचित्र सीढ़ियाँ रत्नों की बनी थीं। निर्मल जल और बहुत रङ्ग के कमल थे जिनमें जलपक्षी बोलते और भौंरे गूंजते थे।



बाग तड़ाग विलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

बाग और तालाब को देख भाई सहित प्रभु प्रसन्न हुए। यह फुलवारी, जो श्रीरामजी को सुख देती थी, बहुत ही रमणीय थी।

चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन * लगे लेन दलफूल मुदितमन
तेहि अवसर सीता तहँ आई * गिरिजा पूजन जननि पठाई

चारों ओर देख मालियों से पूछ प्रसन्न मन हो दोनों भाई फूल-पत्ती लेने लगे। उसी समय वहाँ सीता भी आईं, जिन्हें माता ने पार्वतीजी की पूजा करने को भेजा था।

सङ्ग सखी सब सुभग सयानी * गावहिं गीत मनोहर बानी
सरसमीप गिरिजागृह सोहा * बरणि न जाय देखि मन मोहा

साथ में सब सुन्दरी और चतुर सखियाँ मनोहर वाणी से गीत गाती थीं। तालाब के पास पार्वतीजी का मन्दिर ऐसा शोभायमान था कि कहते नहीं बनता। वह देखने ही मन को मोह लेता था।

मज्जनकरि सर सखिन समेता * गईं मुदितमन गौरिनिकेता
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा * निजअनुरूप सुभग बर माँगा

सखियों सहित सीताजी तालाब में स्नानकर प्रसन्न मन हो गौरीजी के मन्दिर में गईं और बड़ी प्रीति से पूजाकर अपने समान सुन्दर वर माँगा।

एक सखी सियसङ्ग विहाई * गई रही देखन फुलवाई
तेइ दोउ बन्धु विलोकेउ जाई * प्रेमविवश सीता पहँ आई

एक सहेली सीता का सङ्ग छोड़ फुलवारी देखने गई थी। उसने जाकर दोनों भाइयों को देखा और उनके प्रेम से बेसुध हो सीता के पास आई।



तासु दशा देखी सखिन, पुलक गात जलनैन।
कहु कारण निजहर्षकर, पूछहिं सब मृदुबैन॥

दूसरी सखियों ने उसकी दशा देखी कि शरीर में पुलकावली छाई है और आँखों में

आनन्द के आँसू भरे हैं। तब सब कोमल वाणी से पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नता का कारण तो कहो ?

देखन बाग कुँवर दोउ आये * वय किशोर सब भाँति सुहाये
श्याम गौर किमि कहौं बखानी * गिरा अनयन नयन बिन बानी

उसने कहा कि सब प्रकार के सुहावने थोड़ी अवस्था के दो कुँअर बाग देखने आये हैं। एक साँवले, दूसरे गोरे हैं। उनकी सुन्दरता कैसे वर्णन करूँ ? कारण, देखनेवाली आँखों के बोल नहीं और वाणी देख नहीं सकती।

सुनि हरषीं सब सखी सयानी * सियहिय अति उत्कण्ठा जानी
एक कहहिं नृपसुत ते आली * सुने जे मुनिसँग आये काली

सब चतुर सखियाँ यह सुनकर और सीताजी के मन की इच्छा जान प्रसन्न हुईं। एक बोली—हे सखी, ये वही राजकुमार हैं, जिन्हें सुना है कि कल मुनि के सङ्ग आये हैं।

जिन निज रूप मोहिनी डारी * कीन्हे स्ववश नगर नर नारी
बरणत छवि जहँ तहँ सब लोगू * अवशि देखिए देखनयोगू

जिन्होंने अपने रूप की मोहनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुषों को अपने वश में कर लिया है। सब लोग जहाँ-तहाँ उनकी छवि का बखान करते हैं। इससे अवश्य देखना चाहिए, क्योंकि वे देखने ही योग्य हैं।

तासु वचन अति सियहिं सुहाने * दरश लागि लोचन अकुलाने
चलीं अग्र करि प्रिय सखि सोई * प्रीति पुरातन लखै न कोई

उसके वचन सीताजी को बहुत अच्छे लगे। रामचन्द्रजी के दर्शनों को नेत्र व्याकुल हो उठे। उसी प्यारी सखी को आगे करके सीताजी चलीं। रामचन्द्रजी से सीता का प्रेम इस जन्म का नहीं, पुरातन था। उसे कोई सखी लख न पाई।


सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकितविलोकतिसकलदिशि,जनुशिशुमृगीसभीत॥

फिर नारद के वचन स्मरणकर सीता के मन में राम के प्रति पवित्र प्रेम उत्पन्न हुआ। वह चौकन्नी हो मृगी की बच्ची-सी भय (कि कोई दूसरा देख न ले) के साथ चकित दृष्टि से चारों ओर देखने लगीं।

कङ्कण किङ्किणि नूपुर धुनि सुनि * कहत लषणसन रामहृदयगुनि
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं * मनसाविश्वविजय कहँ कीन्हीं

सीताजी के हाथ के कंगन, कमर की घुँघरूदार करधनी और पैरों के बजनेवाले बिछुओं



राजत राजसमाज महँ, कोशलराजकिशोर।
सुन्दर श्यामल गौरतनु, विश्वविलोचनचोर॥

राजाओं की मंडली में सुन्दर साँवली और गोरी देहवाले, संसार भर के नेत्रों को चुरानेवाले (मोहनेवाले) कोशलराजकुमार श्रीरामजी और लक्ष्मणजी शोभित हो रहे थे।

सहज मनोहर मूरति दोऊ * कोटिकाम उपमा लघु सोऊ
शरदचन्द्रनिन्दक मुख नीके * नीरजनयन भावते जी के

दोनों के स्वरूप सहज ही मन के हरनेवाले थे। करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके आगे तुच्छ थी। शरद्‌ऋतु के चन्द्रमा को लजानेवाले सुन्दर मुख और कमल के समान मनभावने नेत्र थे।

चितवनि चारु मारमदहरणी * भावत हृदय जाय नहिं बरणी
कलकपोल श्रुतिकुण्डल लोला * चिबुक अधर सुन्दर मृदुबोला

कामदेव के अभिमान को दूर करनेवाली सुन्दर चितवन थी, जो हृदय को भाती, परन्तु वर्णन नहीं की जा सकती थी। कानों के कुण्डल सुन्दर गालों पर हिलते थे। ठोड़ी और होठ सुन्दर थे और बोल कोमल थे।

कुमुदबन्धुकरनिन्दक हासा * भृकुटी विकट मनोहर नासा
भाल विशालतिलक झलकाहीं * कचविलोकि अलिअवलि लजाहीं

चन्द्रमा की किरणों को लजानेवाली मुस्कान, कमान-सी टेढ़ी भौंहें और मनोहर नासिका थी। माथा ऊँचा और चौड़ा था, जिसमें तिलक झलक रहा था। बालों को देख भौंरों के झुण्ड लजाते थे।

पीत चौतनी शिरन सुहाई * कुसुमकली बिच बीच बनाई
रेखा रुचिर कम्बुकल ग्रीवा * जनु त्रिभुवनसुषमा की सीवा

सिरों में पीली चौगोशिया टोपियाँ शोभायमान थीं, जिनके बीच-बीच फूलों की कलियाँ कढ़ी थीं। शङ्ख के समान गुलावदार सुन्दर गले की रेखाएँ मानो तीनों लोकों की शोभा की मर्यादा-सी विधाता ने खींच दी थीं।



कुञ्जरमणिकण्ठाकलित, उर तुलसी की माल।
वृषभकन्ध केहरिठवनि, बलनिधिबाहुविशाल॥

गजमुक्ताओं का कण्ठा पहने थे। हृदय में तुलसी की माला विराजमान थी। बैल के से ऊँचे कन्धे थे। सिंह की-सी बैठक थी। बल की खान लम्बी भुजाएँ थीं।

कटि तूणीर पीतपट बाँधे * करशर धनुष वाम वर काँधे
पीत यज्ञउपवीत सुहाई * नखशिख मञ्जु महाछवि छाई

रघुवंशियों का यह सहज स्वभाव है कि वे कुराह में मन से भी कभी पैर नहीं रखते। तिस पर मुझे तो अपने मन का बहुत ही अधिक विश्वास है कि उसने स्वप्न में भी पराई स्त्री की ओर नहीं देखा।

जिनके लहहिं न रिपु रणपीठी * नहिं लावहिं परतिय मनदीठी
मङ्गन लहहिं न जिनके नाहीं * ते नरवर थोरे जग माहीं

जिनके यहाँ युद्ध में शत्रु कभी पीठ नहीं पाते, जो मन से भी पराई स्त्रियों की ओर आँख नहीं उठाते और जिनके यहाँ भिक्षुक 'नाहीं' नहीं पाते—विमुख नहीं जाते—संसार में वे श्रेष्ठ पुरुष थोड़े ही हैं।



करत बतकही अनुजसन, मन सियरूप लुभान।
मुखसरोज मकरन्द छवि, करत मधुप इव पान॥

रामचन्द्रजी इस तरह छोटे भाई से बातचीत तो करते हैं, परन्तु मन सीताजी के रूप में लुभा गया है; क्योंकि उनके मुखारविन्द के शोभारूपी रस को भौंरे की भाँति पीते हैं (देखते हैं)।

चितवति चकित चहूँदिशिसीता * कहँ गये नृपकिशोर मन चीता
जहँ विलोकि मृगशावकनैनी * तहँ जनु वरष कमलसित श्रेनी

सीताजी चारों ओर चौकन्नी हो देखती हैं कि मन के चेते हुए राजकुमार कहाँ गये? हरिण के बच्चे के से नेत्रोंवाली सीता जहाँ देखती हैं, अर्थात् रामचन्द्र को नहीं देख पाती हैं, वहाँ मानो उन्हें ब्रह्मा के हजारों वर्ष बीतते हैं।

लता ओट तब सखिन लखाये * श्यामल गौर किशोर सुहाये
देखि रूप लोचन ललचाने * हरषे जनु निज निधि पहिचाने

तब सखियों ने लता की ओट में सुहावने श्याम और गौर राजकुमारों को दिखलाया। श्रीरामजी का रूप देख जानकीजी के नेत्र ललचा उठे, मानो अपनी निधि पहचानकर प्रसन्न हो गये।

थके नयन रघुपतिछवि देखी * पलकन्हू परिहरी निमेखी
अधिक सनेह देह भइ भोरी * शरदशशिहिंजनु चितवचकोरी

श्रीरघुनाथजी की शोभा देख नेत्र थके-से उसी में लग गये; पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। बहुत स्नेह से देह शिथिल हो गई। जैसे शरदृऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती है, उसी प्रकार सीताजी एकटक देखने लगीं।

लोचन मग रामहिं उर आनी * दीन्हें पलक कपाट सयानी
जब सिय सखिन प्रेमवश जानी * कहि न सकें कछु मन सकुचानी

फिर चतुर जानकीजी ने नेत्रों की राह से श्रीरामजी को हृदय में लाकर पलकरूपी

किवाड़ बन्द कर लिये। जब सखियों ने जानकीजी को प्रेम के वश जाना, तब मन में सकुचकर कुछ न कह सकीं।



लताभवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलदपटल बिलगाइ॥

उसी समय दोनों भाई लताभवन (लताकुञ्ज) से प्रकट हुए, मानों बादल के टुकड़े को हटाकर दो निर्मल चन्द्रमा निकल आये हों।

शोभासींव सुभग दोउ बीरा * नील पीत जलजात शरीरा
काकपक्ष शिर सोहत नीके * गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के

नीले और पीले कमल-सी देहवाले दोनों सुन्दर वीर शोभा की सीमा थे, सिर में काकपक्ष (जुल्फें) शोभित थे, जिनके बीच-बीच फूलों की कलियों के गुच्छे लगे थे।

भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाये * श्रवण सुभग भूषण छवि छाये
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे * नव सरोज लोचन रतनारे

मस्तक में तिलक और पसीने के बूँद शोभित थे और कानों में सुन्दर कुण्डलों की शोभा छाई थी। टेढ़ी भौंहें, घुँघराले बाल, नये कमल से रतनारे नेत्र,

चारु चिबुक नासिका कपोला * हास विलास लेत मन मोला
मुखछवि कहि न जाय मोहिं पाहीं * जेहि विलोकि बहु काम लजाहीं

ठोढ़ी, नाक और गाल सुन्दर थे तथा हास-विलास मन को मोल ही लिये लेता था। मुख की शोभा मुझसे नहीं कही जाती, जिसे देख बहुत-से कामदेव लज्जित होते हैं।

उर मणिमाल कम्बुकल ग्रीवा * काम कलभकर भुजबलसींवा
सुमन समेत वामकर दोना * साँवर कुँवर सखी सुठि लोना

हृदय में रत्नों का हार, शंख-सा सुन्दर गला और कामदेव के हाथी की सूँड़-सी भुजायें थीं, जिनमें अपार बल भरा था। सीताजी कहने लगीं—हे सखी, बायें हाथ में फूलों का दोना लिए साँवला कुमार अच्छा सलोना है।



केहरिकटि पट पीतधर, सुषमा शीलनिधान।
देखि भानुकुलभूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥

सिंह की-सी कमर में पीताम्बर धारण किये, शोभा और शील की खान, सूर्यकुल के भूषण श्रीरामजी को देख सखियों को अपनी देह की सुध भूल गई।

धरि धीरज इक सखी सयानी * सीतासन बोली गहि पानी
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू * भूपकिशोर देखि किन लेहू

एक चतुर सखी धीरज धर हाथ पकड़ सीताजी से (कटाक्षपूर्वक, क्योंकि वे राम का ध्यान किये थीं) बोली कि पार्वतीजी का ध्यान फिर कर लेना; अभी राजकुमार को क्यों नहीं देख लेती हो ?

सकुचि सीय तब नयन उघारे * सम्मुख दोउ रघुवंश निहारे
नखशिख देखि राम की शोभा * सुमिरिपिताप्रणमन अति छोभा

तब (कटाक्ष समझ) सीताजी ने सकुच कर आँखें खोलीं और सामने दोनों रघुवंशियों को देखा। एड़ी से चोटी तक श्रीरामजी की शोभा देख और पिता का प्रण स्मरण कर सीताजी का मन बहुत छोटा पड़ गया।

परवश सखिन लखी जब सीता * भई गहरु सब कहहिं सभीता
पुनि आउब यहि बिरिया काली * असकहि मनविहँसी इकआली

जब सखियों ने सीता को पर (राम) के वश देखा तो सब डरकर कहने लगीं कि देर हो गई। अब चलो, इसी समय कल फिर आवेंगी ऐसा कह एक सखी मन में हँसने लगी।

गूढ़गिरा सुनि सिय सकुचानी * भयो बिलम्ब मातु भयमानी
धरि बड़धीर राम उर आनी * फिरि आपन प्रण पितुवश जानी

यह व्यङ्ग वचन सुन सीताजी सकुच गईं और देर हुई जानकर माता को भी डरीं। बड़े धीरज के साथ हृदय में श्रीरामजी को स्थापित कर लिया; पर अपने को पिता के प्रण के वश जाना।


देखन मिसु मृग बिहग तरु, फिरैं बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि॥

रामजी की शोभा देखकर उनका जी नहीं भरा ; मन में उनके प्रति इतनी प्रीति बढ़ी कि मृग, पक्षी आदि देखने के बहाने बार-बार घूम-घूमकर देखती थीं।

जानि कठिन शिवचाप बिसूरति * चली राखि उर श्यामल मूरति
प्रभु जब जात जानकी जानी * सुख सनेह शोभा गुणखानी

श्रीशिवजी का धनुष कठिन (भारी और मजबूत) जानकर सोचती हुई हृदय में साँवली मूर्ति रखकर चलीं। श्रीरामजी ने जब सुख, स्नेह और शोभा आदि गुणों की खान जानकी को जाते जाना—

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं * चारुचित्र भीतर लिख लीन्हीं
गई भवानी भवन बहोरी * वन्दि चरण बोली कर जोरी

तब कोमल प्रेम ही की स्याही से जानकीजी का सुन्दर चित्र अपने हृदय में लिख लिया। फिर सीताजी पार्वतीजी के मन्दिर में गईं और उनके चरणों की वन्दना कर हाथ जोड़ बोलीं—

चतुर सखियाँ साथ लेकर मनोहर स्वर से गीत गाती हुई चलीं। सीताजी की देह में सुन्दर नई आरी विराजमान थी। जगदम्बा सीता की छवि अपार और अतुल थी।

भूषण सकल सुदेश सुहाये * अङ्ग अङ्ग रचि सखिन बनाये
रङ्गभूमि जब सिय पगुधारी * देखि रूप मोहे नर नारी

सब सुडौल गहने शोभायमान थे, जिन्हें अङ्ग अङ्ग में सखियों ने रच-रचकर सँवारा था। जब सीताजी ने रङ्गभूमि में पैर रक्खा तो उनका रूप देख स्त्री-पुरुष सब मोहित हो गये।

हरषि सुरन दुन्दुभी बजाई * बर्षि प्रसून अप्सरा गाई
पाणिसरोज सोह जयमाला * औचक चितै सकल महिपाला

देवताओं ने प्रसन्न हो नगाड़े बजाये और अप्सराएँ फूलों की वर्षा कर गाने लगीं। कमल के समान हाथ में जयमाला लिये सीता को एकाएक सब राजाओं ने देखा।

सीय चकित चित रामहिं चाहा * भये मोहवश सब नरनाहा
मुनि समीप बैठे दोउ भाई * लगे ललकि लोचन निधिपाई

सीताजी ने भी चकित हो चित्त से श्रीरामजी की ओर देखा। इतने में सब राजा लोग मोह के वश हो गये। मुनि के पास बैठे दोनों भाइयों को अपनी निधि के समान पाकर उन्हीं में ललक के साथ आँखें लग गईं।



गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि।
लगी बिलोकन सखिनतन, रघुबीरहि उर आनि॥

फिर सीताजी अपने गुरुजनों (बड़े-बूढ़ों) और भारी भीड़ को देख लज्जा से सकुच-कर हृदय में श्रीरघुनाथजी को रखकर सखियों की ओर देखने लगीं।

रामरूप अरु सियछवि देखी * नर नारिन परिहरेउ निमेखी
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं * बिधिसन बिनय करहिंमनमाहीं

श्रीरामजी का स्वरूप और सीताजी की शोभा देख पुरुषों ने पलक भाँजना छोड़ दिया। मन में सब सोचते हैं, परन्तु कहते सकुचते हैं और विधाता से विनती करते हैं—

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई * मति हमारि असि देहु सुहाई
बिन बिचार प्रण तजि नरनाहू * सीय राम कर करै बिवाहू

हे ब्रह्मन्, जनक की जड़ता जल्दी दूर करके हमारी-सी सुहावनी बुद्धि दीजिए कि राजा बिना विचार किये ही अपना प्रण छोड़ सीताजी का विवाह श्रीरामजी से कर दें।

जग भल कहहि भाव सब काहू * हठ कीन्हें अन्तहु उरदाहू
यहि लालसा मगन सब लोगू * बर साँवरो जानकी योगू

सुनु सिय सत्य अशीश हमारी * पूजिहि मन कामना तुम्हारी
नारदवचन सदा शुचि साँचा * सो वर मिलिहि जाहि मन राँचा

हे सीते, अब मेरा सत्य आशीर्वाद सुनो। तुम्हारे मन की कामना पूरी होगी। नारद का कहना सदा पवित्र और सत्य है—वही वर मिलेगा, जिसको तुम्हारा मन चाहता है।

हरिगीतिका छन्द

मन जाहि राँचो मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो॥
यहि भाँतिगौरिअशीशसुनि सियसहितहियहर्षितअली।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनिपुनि मुदितमन मन्दिर चली॥

जिस सहज ही सुन्दर साँवले वर को तुम्हारा मन चाहता है, वही मिलेगा; क्योंकि वे कृपानिधान, सुजान रामजी शील और स्नेह को जानते हैं। इस प्रकार श्रीगौरीजी का आशीर्वाद सुन सखियों सहित सीताजी मन में प्रसन्न हुईं और बारंबार देवीजी को पूज आनन्दमग्न होकर घर चलीं।


जानि गौरि अनुकूल, सियहियहर्ष न जाय कहि।
मञ्जुल मङ्गलमूल, वाम अङ्ग फरकन लगे॥

श्रीगौरीजी को अनुकूल जान सीताजी के मन की प्रसन्नता कही नहीं जाती। उनके सुन्दर बायें अङ्ग मङ्गल की सूचना देते हुए फड़कने लगे।

हृदय सराहत सीयलुनाई * गुरुसमीप गमने दोउ भाई
राम कहा सब कौशिक पाहीं * सरलस्वभाव छुवा छल नाहीं

दोनों भाई मन में सीताजी की सुन्दरता को सराहते हुए गुरुजी के पास गये। श्रीरामजी ने विश्वामित्रजी से सब हाल कह दिया; क्योंकि उनका सीधा स्वभाव था, उसमें छल का लेश भी नहीं।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं * पुनि अशीश दोउ भाइन दीन्हीं
सुफल मनोरथ होयँ तुम्हारे * राम लषन सुनि भये सुखारे

मुनि ने फूल पाकर पूजा की फिर दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुन राम और लक्ष्मण सुखी हुए।

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी * लगे कहन कछु कथा पुरानी
विगत दिवस मुनि आयसु पाई * सन्ध्या करन चले दोउ भाई

मुनियों में श्रेष्ठ आत्मज्ञानी विश्वामित्रजी भोजन कर कुछ पुरानी कथाएँ कहने लगे। दिन के बीत जाने पर मुनि की आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्यावन्दन करने चले।

प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा * सियमुखसरिस देखि सुख पावा
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं * सीयबदन सम हिमकर नाहीं

पूर्वदिशा में सुहावना चन्द्रमा निकल आया। उसे सीताजी के मुख के समान देख राम ने सुख पाया। फिर मन में विचार किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के समान नहीं है;


जन्मसिन्धु पुनि बन्धु बिष, दिनमलीन सकलङ्क।
सियमुखसमता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥

क्योंकि चन्द्रमा खारी समुद्र से उत्पन्न और विष का भाई है। वह दिन को मलीन हो जाता है और रात में भी कलङ्कसहित है। बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजी के मुख की समता कैसे पा सकता है?

घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई * ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई
कोकशोकप्रद पङ्कजद्रोही * अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही

चन्द्रमा घटता-बढ़ता और विरहियों को दुःख देता है और राहु भी अपनी सन्धि पाकर उसे ग्रस लेता है (ग्रहण पड़ता है)। चन्द्रमा चकवा-चकई को दुःख देता और कमल से वैर रखता है। इससे हे चन्द्र, तुममें बहुत अवगुण हैं।

वैदेही मुख पटतर दीन्हे * होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे
सियमुखछवि बिधुब्याजबखानी * गुरु पहँ चले निशा बड़ि जानी

यदि जानकी के मुख की उपमा दी जाय तो इस अनुचित काम से बहुत से दोष होंगे। चन्द्रमा के बहाने सीताजी के मुख की शोभा की बड़ाई कर बहुत रात बीती जान रामचन्द्रजी गुरु के पास चले।

करि मुनिचरणसरोज प्रणामा * आयसु पाय कीन्ह बिश्रामा
बिगतनिशा रघुनायक जागे * बन्धुबिलोकि कहन अस लागे

मुनि के चरणारविन्दों को प्रणाम कर आज्ञा पाकर राम ने विश्राम किया। रात बीतने पर श्रीरघुनाथजी जागे और भाई को देख कहने लगे—

उगेउ अरुण अवलोकहु ताता * पङ्कज कोक लोक सुखदाता
बोले लषण जोरि जुगपाणी * प्रभुप्रभावसूचक मृदुबाणी

हे तात, देखो कमल, चकवा-चकई और संसार को सुख देनेवाला अरुण (सूर्य की लाली) निकल आया। तब लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़ श्रीरामजी का प्रभाव जतानेवाली कोमल बाणी से बोले—


अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडुगणज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥

अरुणोदय होते ही कुमुद (कोकाबेली) सकुच गये और तारागण का तेज फीका पड़ गया, ऐसे ही आपका आना सुनकर राजा लोग बल से हीन हो गये हैं।

नृप सब नखत करहिं उजियारी * टारि न सकहिं चापतम भारी
कमल कोक मधुकर खग नाना * हरषे सकल निशा अवसाना

तारों से सब राजा लोग चमककर उजेला तो करते हैं, परन्तु अँधेरे की भाँति धनुष को नहीं टाल सकते। कमल, चकवा-चकई, भौंरे और नाना प्रकार के पक्षी रात बीतने से प्रसन्न हुए हैं।

ऐसेहि प्रभु सब भक्त तुम्हारे * होइहहिं टूटे धनुष सुखारे
उदय भानु बिनश्रम तमनाशा * दुरे नखत जग तेज प्रकाशा

हे प्रभो, ऐसे ही आपके सब भक्त धनुष टूटने से सुखी होंगे। सूर्यनारायण का उदय होते ही बिना परिश्रम अँधेरा मिट गया, नक्षत्र छिप गये और संसार में तेज फैल गया।

रवि निज उदय ब्याज रघुराया * प्रभुप्रताप सब नृपन दिखाया
तव भुजबल महिमा उदघाटी * प्रकटी धनुविघटन परिपाटी

हे रघुराज, सूर्य ने अपने उदय के बहाने स्वामी का प्रताप सब राजाओं को दिखलाया है। आपके अथाह बाहुबल की महिमा प्रकट करने के लिए ही राजा जनक ने धनुषभंग का प्रण किया है।

बन्धुवचन सुनि प्रभु मुसुकाने * होइ शुचि सहजपुनीत अन्हाने
नित्यक्रिया करि गुरु पहँ आये * चरणसरोज सुभग शिरनाये

श्रीरामजी भाई के वचन सुन मुस्कराने लगे। फिर सहज ही पवित्र दोनों भाइयों ने शौचकर स्नान किया। नित्यक्रिया कर गुरुजी के पास आये और उनके चरणारविन्दों में सिर नवाया।

शतानन्द तब जनक बुलाये * कौशिकमुनि पहँ तुरत पठाये
जनकविनय तिन आय सुनाई * हरषे बोलि लिये दोउ भाई

उधर राजा जनक ने शतानन्द को बुलाकर शीघ्र विश्वामित्र मुनि के पास भेजा। उन्होंने आकर जनक की विनती सुनाई। तब प्रसन्न हो मुनि ने दोनों भाइयों को बुला लिया।

शतानन्दपद बन्दि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाय।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाय॥

राम और लक्ष्मण शतानन्द के चरणों की वन्दनाकर गुरु के पास जा बैठे। विश्वामित्र ने कहा—हे तात, राजा जनक ने बुलाया है, चलो।

सीयस्वयंवर देखिय जाई * ईश काहि धौं देहि बड़ाई

लषण कहा यशभाजन सोई * नाथ कृपा तव जापर होई

अब सीताजी के स्वयंवर में चलकर देखें, परमेश्वर किसे बड़ाई देता है। लक्ष्मण ने कहा—हे नाथ, जिस पर आपकी कृपा होगी, वही इस यश का पात्र होगा।

हरषे मुनि सब सुनि वर बानी * दीन्ह अशीश सबहिं सुखदानी
पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला * देखन चले धनुषमखशाला

लक्ष्मण की उत्तम वाणी सुन सब मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने सुखी होकर आशीर्वाद दिया। फिर कृपालु श्रीरामजी सहित सब मुनिगण धनुषयज्ञशाला देखने चले।

रङ्गभूमि आये दोउ भाई * अस सुधि सब पुरवासिन पाई
चले सकल गृहकाज बिसारी * बालक युवा जरठ नर नारी

पुरवासियों ने समाचार पाया कि रङ्गभूमि में दोनों भाई आये हैं। बालक, जवान और बूढ़े सब स्त्री-पुरुष घर का काम छोड़कर चले।

देखी जनकभीर भइ भारी * शुचि सेवक सब लिये हँकारी
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू * आसन उचित देहु सब काहू

जनक ने देखा, बड़ी भीड़ हुई है। तब सब पवित्र (यज्ञ में जाने योग्य) सेवकों को बुला लिया और कहा कि शीघ्र सब लोगों के पास जाकर सबको उचित आसन दो।



कहि मृदु वचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निजनिजथलअनुहारि॥

उन्होंने जाकर कोमल और नम्र वचन कह उत्तम, मध्यम, नीच और नन्हे छोटे स्त्री-पुरुषों को उनके योग्य स्थानों और आसनों पर बैठाया।

राजकुँवर तेहि अवसर आये * मनहुँ मनोहरता छवि छाये
गुणसागर नागर वर बीरा * सुन्दर श्यामल गौरशरीरा

उसी समय राजकुमार आये, मानो मन को हरनेवाली शोभा उनके शरीर में भरी थी। वे गुण के सागर, चतुर शूरवीरों में श्रेष्ठ थे। उनके शरीर साँवले और गोरे रंग के थे।

राजसमाज विराजत रूरे * उडुगण महँ जनु युगविधु पूरे
जिनके रही भावना जैसी * प्रभुमूरति देखी तिन तैसी

राजाओं की मंडली में वे इस तरह विराजमान हुए, जैसे तारागण के बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों। जिन लोगों की जैसी भावना थी, उन्होंने स्वामी श्रीरामजी के स्वरूप को वैसा ही देखा।

देखहिं भूप महारणधीरा * मनहुँ वीररस धरे शरीरा

डरे कुटिलनृप प्रभुहिं निहारी * मनहुँ भयानक मूरति भारी

राजा लोगों ने बहुत रणधीर देखा, मानो वीररस ही देह धरकर आया हो। दुष्ट राजा श्रीरामजी को देख डर गये। उनको भगवान् की मूर्ति बड़ी भयानक दिखलाई दी।

रहे असुर छल जो नृपवेखा * तिन प्रभु प्रकट कालसम देखा
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई * नरभूषण लोचनसुखदाई

जो माया से राजाओं का वेष बनाये दैत्य आये थे, उन्होंने श्रीप्रभुजी को अत्यन्त काल के समान देखा। पुरवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों में रत्न और नेत्रों को सुख देनेवाला देख पाया।



नारि विलोकहिंहरषिहिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृङ्गार धरि, मूरति परम अनूप॥

स्त्रियाँ प्रसन्न हो रुचि के अनुसार देखती थीं, मानो शृंगाररस ही बहुत सुन्दर मूर्ति रखकर विराजमान है।

विदुषन प्रभु विराटमय दीशा * बहुमुख कर पग लोचन शीशा
जनकजाति अवलोकहिं कैसे * सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे

पण्डितों ने प्रभु को विराट्रूप में देखा—उनके मुख, हाथ, चरण, नेत्र, शिर आदि हजारों हैं। जनक के जाति भाइयों को रामचन्द्र और लक्ष्मण अपने सगे प्यारे से लगे।

सहित विदेह बिलोकहिं रानी * शिशुसमप्रीति न जाय बखानी
योगिन परमतत्त्वमय भाशा * शान्त शुद्ध सम सहजप्रकाशा

राजा जनक सहित सब रानियों ने पुत्र के समान स्नेह से उनको देखा। वह प्रीति मुख से कहते नहीं बनती। योगीजनों ने परब्रह्ममय जाना जो स्वभाव ही से शान्त, शुद्ध, एकरस, तेजस्वरूप है।

हरिभक्तन देखे दोउ भ्राता * इष्टदेव इव सब सुखदाता
रामहिं चितव भाव जेहि सीया * सो सनेह सुख नहिं कथनीया

भगवान् के भक्तों ने दोनों भाइयों को अपने इष्टदेव के समान सब सुख का देनेवाला देखा। सीताजी ने जिस भाव से श्रीरामजी को देखा, वह स्नेह और सुख कहा नहीं जा सकता।

उरअनुभवति न कहिसक सोऊ * कौन प्रकार कहै कवि कोऊ
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ * तेइ तस देखेउ कोशलराऊ

क्योंकि जिन सीताजी ने उसका अनुभव किया, वे भी मुख से उसे नहीं कह सकतीं तो कोई कवि किस प्रकार कहे? जिसके मन में जैसी भावना थी, उसने कोशलराज को वैसा ही देखा।

स्वभाव के अनुसार कहता हूँ, कुछ अभिमान से नहीं। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो पूरे ब्रह्माण्ड को गेंद की भाँति उठा लूँ।

काचे घट जिमि डारौं फोरी * सकौं मेरु मूलकइव तोरी
तव प्रतापमहिमा भगवाना * का बापुरो पिनाक पुराना

और कच्चे घड़े की भाँति फोड़ डालूँ तथा सुमेरु पर्वत को मूली की भाँति तोड़ डालूँ। हे भगवन्, आपके प्रताप की महिमा के आगे बेचारा पुराना धनुष क्या है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ * कौतुक करौं विलोकिय सोऊ
कमलनाल इमि चाप चढ़ावों * शत योजन प्रमाण लै धावौं

हे नाथ, ऐसा जानकर आज्ञा हो। मैं खेल करूँ, और उसे आप देखिए। कमल की डण्डी के समान धनुष चढ़ाकर चार सौ कोस तक दौड़ूँ,

दो॰ तोरौं छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभुपदशपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

और हे नाथ! आपके प्रताप के बल से धरती के फूल की डण्डी के समान सहज ही में उसे तोड़ डालूँ। आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि ऐसा न करूँ तो फिर धनुष हाथ में न धारण करूँ।

लषण सकोप वचन जब बोले * डगमगानि महि दिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डराने * सियहियहर्ष जनक सकुचाने

जब लछमणजी ने क्रोधसहित ये वचन कहे तो पृथ्वी डगमगाने लगी और दिग्गज काँप उठे। सब लोक और सब राजा डर गये, सीताजी मन में प्रसन्न हुईं और राजा जनक सकुचा गये।

गुरु रघुपति सबमुनि मन माहीं * मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं
सैनहि रघुपति लषण निवारे * प्रेमसमेत निकट बैठारे

गुरु, श्रीरामजी और सब मुनि लोग मन में प्रसन्न हुए; और उनकी देह में बार-बार रोमांच होने लगा। श्रीरामजी ने सैन (इशारा) से लछमण को मना किया और प्रेम-सहित पास बिठा लिया।

विश्वामित्र समय शुभ जानी * बोले अतिसनेह मृदु बानी
उठहु राम भञ्जहु भवचापू * मेटहु तात जनकपरितापू

विश्वामित्र ने अच्छा समय जान बड़े स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहा—हे राम, हे तात, उठो, शिव के धनुष को तोड़ो और जनक का दुःख दूर करो।

सुनि गुरुवचन चरण शिरनावा * हर्ष विषाद न कछु उर आवा

कमर में तरकस कसे और पीताम्बर लपेटे थे। हाथ में बाण लिये बायें कन्धे पर धनुष डाले थे। पीला जनेऊ शोभायमान था। एड़ी से चोटी तक मनोहर बड़ी शोभा छाई हुई थी।

देखि लोग सब भये सुखारे * इकटक लोचन टरहिं न टारे
हरषे जनक देखि दोउ भाई * मुनिपदकमल गहे तब जाई

सब लोग देखकर सुखी हुए। नेत्र एकटक उन्हीं की ओर लग गये; उधर से टाले नहीं टलते थे। दोनों भाइयों को देख जनक प्रसन्न हुए। उन्होंने जाकर मुनि के चरणारविन्द छुए।

करि बिनती निज कथा सुनाई * रङ्ग अवनि सब मुनिहिं दिखाई
जहँ जहँ जाहिं कुँवरवर दोऊ * तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ

विनती करके अपने प्रण की कथा सुनाई और सब रङ्गभूमि मुनि को दिखलाई। जहाँ-जहाँ दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जाते थे, वहाँ-वहाँ सब कोई चकित होकर उन्हें देखने लगते थे।

निजनिज रुचि रामहिं सब देखा * कोउ न जान कछु मर्म बिशेखा
भलि रचना नृपसन मुनि कहेऊ * राजा मुदित परमसुख लहेऊ

सभी ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार श्रीरामजी को देखा। किसने रामचन्द्रजी को किस रूप में देखा, इसका मर्म किसी ने नहीं जाना। मुनि ने राजा से कहा कि यज्ञशाला की रचना बहुत अच्छी है तब राजा ने प्रसन्न हो बहुत सुख पाया।


सब मञ्चन ते मञ्च यक, सुन्दर बिशद बिशाल।
मुनिसमेत दोउ बन्धुतहँ, बैठारे महिपाल॥

सब मंचों से एक मञ्च सुन्दर और बड़ा था। उसी पर मुनिसहित दोनों भाइयों को राजा ने बिठाया।

प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे * जनु राकेश उदय भये तारे
अस प्रतीत सबके मन माहीं * राम चाप तोरब शक नाहीं

सब राजा लोग श्रीरामजी को देख सीता को पाने के बारे में हिम्मत हार गये, जैसे चन्द्रमा के निकलने पर नक्षत्र फीके पड़ जाते हैं। सबके मन में ऐसा विश्वास हुआ कि श्रीरामजी धनुष तोड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

बिन भञ्जेहु भवधनुष बिशाला * मेलिहि सीय राम उर माला
अस बिचारि गमनहु घर भाई * जय प्रताप बल तेज गँवाई

और अगर वह शिवजी के इस बड़े धनुष को न तोड़ेंगे तो भी सीताजी श्रीराम ही के हृदय में जयमाला डाल देंगी। भाइयो, ऐसा विचारकर घर चलो, नहीं तो जय, प्रताप, बल और तेज खो बैठोगे।

बिहँसे अपर भूप सुनि बानी * जे अबिबेक अन्ध अभिमानी

तोरेहु धनुष ब्याह अवगाहा * बिन तोरे को कुँवरि बियाहा

यह सुन दूसरे राजा, जो कि अज्ञान से अन्धे और अभिमानी थे, कहने लगे कि धनुष तोड़ने पर भी ब्याह करना कठिन है; फिर बिना तोड़े राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है?

एक बार कालहु किन होई * सियहित समर जितब हम सोई
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने * धर्मशील हरिभक्त सयाने

काल भी क्यों न हो सीताजी के लिए हम उसे भी एक बार युद्ध में जीतेंगे। यह सुन दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, भगवान् के भक्त और चतुर थे, मुस्कराने लगे।


सीय बिवाहब राम, गर्व दूरि करि नृपन कर।
जीति को सक संग्राम, दशरथ के रणबाँकुरे॥

वे कहने लगे—श्रीरामजी राजाओं का अभिमान दूर करके सीता को ब्याहेंगे। दशरथ के पुत्र युद्ध में बाँके हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?

वृथा मरहु जनि गाल बजाई * मनमोदक नहिं भूख बुताई
सिख हमारि सुनु परम पुनीता * जगदम्बा जानहु जिय सीता

वृथा गाल बजाकर न मरो—मन के लड्डुओं से भूख नहीं बुझेगी। हमारी यह परम पवित्र सीख सुनो। अपने मन में सीताजी को तो संसार की माता जानो।

जगतपिता रघुपतिहि विचारी * भरि लोचन छवि लेहु निहारी
सुन्दर सुखद सकल गुणरासी * ये दोउ बन्धु शम्भुउरबासी

श्रीरघुनाथजी को संसार के पिता विचारकर आँख भरकर उनकी शोभा देख लो। ये सुन्दर, सुख देनेवाले और सब गुणों की राशि दोनों भाई श्रीशिवजी के हृदय में बसते हैं।

सुधासमुद्र समीप बिहाई * मृगजल निरखि मरहु कत धाई
करहु जाय जा कहँ जो भावा * हम तौ आजु जन्मफल पावा

अमृत का समुद्र पास ही छोड़कर मृग-जल (ऊसर में सूर्य की किरणों की झलक वा चमक) देख क्यों दौड़कर जान देते हो? जिसको जो अच्छा लगे करो। हमने तो आज अपने जन्म का फल पाया।

अस कहि भले भूप अनुरागे * रूप अनूप बिलोकन लागे
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना * बरषहिं सुमन करहिं कलगाना

ऐसा कहकर अच्छे राजा लोग स्नेह से भगवान् का अनूप स्वरूप देखने लगे। देवता लोग आकाश में विमानों पर चढ़े देखते थे और फूल बरसाकर सुन्दर गान करते थे।



जानि सुअवसर सीय तब, पठवा जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुन्दरि सकल, सादर चलीं लिवाइ॥

जनक ने सुअवसर जानकर सीता को बुला भेजा। सब सुन्दरी चतुर सखियाँ उनको आदर से लिवा लाईं।

सियशोभा नहिं जाइ बखानी * जगदम्बिका रूपगुणखानी
उपमा सकल मोहिं लघु लागी * प्राकृत नारि अङ्ग अनुरागी

संसार की माता, रूप और गुणों की खान सीताजी की उस समय की शोभा कहते नहीं बनती; क्योंकि संसार की साधारण स्त्रियों के अंग में लगनेवाली सब उपमाएँ मुझे तुच्छ लगती हैं।

सीय बरणि तेहि उपमा देई * को कवि कहै अयश को लेई
जो पटतरिय तीय महँ सीया * जग अस युवति कहाँ कमनीया

उन उपमाओं के साथ सीताजी का वर्णन करके कौन कवि अपयश ले। यदि स्त्रियों से सीताजी की उपमा दें तो संसार में ऐसी सुन्दरी स्त्री ही कहाँ है?

गिरा मुखर तनुअर्द्ध भवानी * रतिअतिदुखितअतनुपतिजानी
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही * कहिय रमासम किमि वैदेही

सरस्वती बहुत बोलनेवाली हैं, पार्वती पति का आधा ही अंग हैं, और रति अपने पति कामदेव को बिना देह का जानकर बहुत दुखी हैं। फिर विष और मदिरा जिसके प्यारे भाई-बहन हैं, उस लक्ष्मी के समान जानकी को कैसे कहें?

जो छबि सुधा पयोनिधि होई * परमरूपमय कच्छप सोई
शोभा रजु मन्दर शृंगारू * मथै पाणिपङ्कज निज मारू

यदि शोभामय अमृत के समुद्र को परम रूपमय कछुए पर शृंगाररूप मन्दराचल को रखकर शोभा की रस्सी द्वारा कामदेव अपने कमलरूपी हाथों से मथे—



यहिबिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल॥
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीयसमतूल॥

और उससे सुन्दरता और सुख की खान लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि संकोच के साथ उन्हें सीता के समान कह सकते हैं।

चलीं संग लै सखी सयानी * गावत गीत मनोहर बानी
सोह नवलतनु सुन्दर सारी * जगतजननिअतुलितछबि भारी

सीताजी की माता श्रीरामजी को प्रेमसहित देख स्नेहवश हो सखियों को पास बुला बिलखकर बोलीं—

सखि सब कौतुक देखनहारे * जोउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाय कहै नृप पाहीं * ये बालक अस हठ भल नाहीं

हे सखी, जो हमारे हितू कहाते हैं, वे भी सब तमाशा देखनेवाले हैं, क्योंकि राजा से कोई समझाकर नहीं कहता कि ये बालक हैं, ऐसा धनुष तोड़ने का हठ अच्छा नहीं।

रावण बाण छुआ नहिं चापा * हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राजकुँवर कर देहीं * बाल मराल कि मन्दर लेहीं

जिसको रावण और बाणासुर ने नहीं छुआ और सब राजा दर्प (बल का घमंड) करके हार गये, वह धनुष राजकुमार के हाथ में देते हैं। क्या हंस के बच्चे मन्दराचल को उठा लेंगे?

भूपसयानप सकल सिरानी * सखिविधिगतिकछु जाइनजानी
बोली चतुर सखी मृदु बानी * तेजवन्त लघु गनिय न रानी

राजा की सब चतुरता जाती रही। हे सखी, विधाता की गति कुछ जानी नहीं जाती। तब चतुर सखी मीठी वाणी से बोली कि हे रानी, तेजस्वी को छोटा न गिनना चाहिए।

कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा * शोषेउ सुयश विदित संसारा
रविमण्डल देखत लघु लागा * उदय तासु त्रिभुवनतम भागा

देखिए, कहाँ अगस्त्य और कहाँ अपार समुद्र जिसे उन्होंने पी डाला, और उनका यश संसार में जाहिर है। सूर्यमण्डल देखने में छोटा है, परन्तु उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अन्धकार भाग जाता है।



मन्त्र परम लघु जासु वश, विधिहरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, वश कर अंकुश खर्व॥

मन्त्र बहुत ही छोटा होता है, परन्तु उसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और सब देवता रहते हैं। छोटा अंकुश बड़े मतवाले हाथी को भी वश में कर लेता है।

काम कुसुमधनुशायक लीन्हे * सकल भुवन अपने वश कीन्हे
देवि तजिय संशय अस जानी * भञ्जब धनुष राम सुनु रानी

कामदेव फूलों का धनुष-बाण लिये उसी से सब लोकों को अपने वश में किये है। हे देवि, ऐसा जान संशय छोड़िए। हे रानी! श्रीरामजी जरूर धनुष को तोड़ डालेंगे।

सखीवचन सुनि भइ परतीती * मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती
तब रामहिं बिलोकि वैदेही * सभयहृदय बिनवति जेहि तेही

ऐसा करने से संसार राजा को भला कहेगा और यह सबको अच्छा लगेगा। इसमें हठ करने से हृदय में जलन ही होगी, क्योंकि सब लोग इस लालसा में मग्न हैं कि साँवला वर जानकी के योग्य है।

तब वन्दीजन जनक बुलाये * बिरदावली कहत चलि आये
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा * चले भाट हिय हर्ष न थोरा

तब जनक ने वन्दीजनों को बुलाया और वे यश वर्णन करते हुए आये। राजा ने कहा—मेरा प्रण जाकर सबके आगे कह दो। तब वे भाट मन में प्रसन्न हो चले।

दो०—**बोले वन्दी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल।**
प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाय विशाल॥

भाट बोले—हे राजाओ, सुनो, हम भुजा उठाकर राजा जनक का प्रण कहते हैं।

नृप भुज बल विधु शिवधनु राहू * गरुअ कठोर विदित सब काहू
रावण बाण महाभट भारे * देखि शरासन गवहिं सिधारे

सभी जानते हैं कि चन्द्रमा के समान राजाओं के बाहुबल को ग्रसनेवाला शिवधनुषरूपी राहु भारी और मजबूत है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी जिसे देख बहाना करके चले गये।

सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा * राजसमाज आजु जोइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत वैदेही * बिनहि विचार बरै हठि तेही

उसी शिवजी के कठोर धनुष को जो कोई आज राजसभा में तोड़ेगा, उसे बिना विचार किये ही तीनों लोकों की विजय के साथ सीताजी वरण करेंगी।

सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे * भट मानी अतिशय मनमाखे
परिकर बाँधि उठे अकुलाई * चले इष्टदेवन शिर नाई

प्रण को सुन सब राजाओं ने सीताजी को पाने की इच्छा की। उनमें जो अपने को भारी योद्धा समझते थे, उनके मन में रोष हुआ। फेंटा बाँध हड़बड़ाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले।

तमकिताकितकि शिवधनु धरहीं * उठै न कोटि भाँति बल करहीं
जिनके कछु विचार मन माहीं * चाप समीप महीप न जाहीं

ताककर तमककर जोम के साथ वे शिव के धनुष को पकड़ते थे, करोड़ों प्रकार से जोर लगाते थे; परन्तु शिव का धनुष टस से मस नहीं होता था। जिन राजाओं के मन में कुछ समझ थी, वे धनुष के पास ही नहीं गये।



तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठै न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिकअधिक गरुआइ॥

पर मूर्ख राजा जोर लगाकर धनुष को पकड़ते थे और जब वह नहीं उठता था तो लज्जित हो चल देते थे, मानों योद्धाओं की भुजाओं का बल पाकर धनुष और भी अधिक अधिक भारी होता जाता था।

भूप सहस दश एकहिबारा * लगे उठावन टरै न टारा
डगै न शम्भुशरासन कैसे * कामीबचन सती मन जैसे

तब एकबारगी दश सहस्र * राजा मिलकर धनुष को उठाने लगे, परन्तु तो भी वह तनिक भी नहीं हिला। जैसे पतिव्रता स्त्री का मन कामी पुरुषों के वचनों से नहीं चलायमान होता, वैसे ही शिवजी का वह धनुष नहीं हिलता था।

सब नृप भये योग्य उपहासी * जैसे बिनु बिराग संन्यासी
कीरति बिजय बीरता भारी * चले चापकर सर्बस हारी

जैसे वैराग्य के बिना संन्यासी उपहास का पात्र होता है, वैसे ही सब राजा लोग हँसाई के पात्र बने। राजा लोग धनुष के हाथ अपनी बड़ी भारी कीर्ति, विजय और वीरता आदि सब गँवाकर चले।

श्रीहत भये हारि हिय राजा * बैठे निज निज जाइ समाजा
नृपन बिलोकि जनक अकुलाने * बोले बचन रोष जनु साने

राजा लोग मन में हार तेज से हीन हो अपनी-अपनी मंडली में जा बैठे। सब राजाओं की यह दशा देख जनक व्याकुल हुए और क्रोध से मिले हुए ये वचन बोले—

द्वीप द्वीप के भूपति नाना * आये सुनि हम जो प्रण ठाना
देव दनुज धरि मनुज शरीरा * बिपुल बीर आये रणधीरा

हमने जो प्रण किया, उसे सुन द्वीप-द्वीप के बहुत राजा तथा युद्ध में धीर और बड़े वीर देवता तथा दैत्य भी मनुष्यों की देह धरकर आये।



कुँवरि मनोहरि बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनहार बिरञ्चि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥

सुन्दरी कुँवरि, बड़ी विजय और भारी यश पाने के लिए धनुष तोड़नेवाला वीर मानों ब्रह्मा ने बनाया ही नहीं।

कहहु काहि यह लाभ न भावा * काहु न शङ्करचाप चढ़ावा

* सबके मिलकर उठा लेने पर युद्ध द्वारा सबसे अधिक बलवान् को जान [illegible] निश्चय करके।

रहा चढ़ाउब तोरब भाई * तिलभरि भूमि न सकेउ छुड़ाई

कहो यह लाभ किसे नहीं अच्छा लगता? परन्तु किसी ने भी शिवजी के धनुष को न चढ़ाया। हे भाइयो, चढ़ाना और तोड़ना तो दूर, आप लोग धनुष से तिल भर भी धरती न छुड़ा सके।

अब जनि कोउ माखै भट मानी * वीरविहीन मही मैं जानी
तजहु आश निज निज गृह जाहू * लिखा न विधि वैदेहि विवाहू

अब अपने को योद्धा माननेवाला कोई बुरा न माने। मैंने जान लिया कि पृथ्वी पर कोई वीर ही नहीं है। तुम सब सीता की आशा छोड़ अपने-अपने घर जाओ—विधाता ने जानकी का ब्याह नहीं लिखा।

सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ * कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ
जो जनतेउँ बिन भट महि भाई * तो प्रण करि करतेउँ न हँसाई

यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है। क्या करूँ, राजकुमारी क्वाँरी ही रहेगी। भाइयो! यदि मैं जानता कि पृथ्वी पर कोई शूरवीर नहीं है तो मैं प्रण करके हँसी न कराता।

जनकवचन सुनि सब नर नारी * देखि जानकी भये दुखारी
माखे लषण कुटिल भईं भौंहैं * रदपुट फरकत नैन रिसौंहैं

जनक के वचन सुन सब स्त्री-पुरुष जानकीजी को देख दुखी हुए। लक्ष्मण के रोष हो आया—भौंहें तिरछी हो गईं, होंठ फड़कने लगे और नेत्रों में क्रोध भर आया।



कहि न सकत रघुबीरडर, लगे वचन जनु बाण।
नाइ रामपदकमल शिर, बोले गिरा प्रमाण॥

श्रीरघुनाथजी के डर से कह नहीं सकते, परन्तु जनक के ये वचन उनके हृदय में बाण के समान लगे। अन्त में श्रीरामजी के चरणारविन्दों में सिर नवाकर वह जनक की वाणी ही के समान उसका उत्तर देते हुए बोले—

रघुबंशिन महँ जहँ कोउ होई * तेहि समाज अस कहै न कोई
कही जनक जस अनुचितबानी * विद्यमान रघुकुलमणि जानी

जहाँ पर कोई भी रघुवंशियों में से होता है उस समाज में ऐसा कोई नहीं कहेगा, जैसा अनुचित रघुवंशियों में शिरोमणि श्रीरामजी को यहाँ विद्यमान जानकर भी जनक ने कहा है।

सुनहु भानुकुलपङ्कजभानू * कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू
जो राउर अनुशासन पाऊँ * कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ

हे कमल के समान सूर्यवंशियों को प्रसन्न करनेवाले सूर्य (रामजी), सुनिये, मैं अपने

अति परिताप सीय मन माहीं * लवनिमेष युगसम चलिजाहीं

अपनी ही जड़ता (कठोरता) इन लोगों पर डाल दे और श्रीरामजी को देख हलका हो जा। सीताजी के मन में बड़ा दुःख था—उन्हें एक पल युग के समान बीतता था।



प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधुमण्डलडोल॥

स्वामी की ओर देख फिर अपनी माता पृथ्वी की ओर देखती हुई सीताजी के नेत्र इधर-उधर हिलते हुए ऐसे शोभित थे, मानो कामदेव की दो मछलियाँ चन्द्रमण्डल में चंचल होकर खेलती हों।

गिराअलिनि मुखपङ्कज रोकी * प्रकट न लाजनिशा अवलोकी
लोचनजल रह लोचनकोना * जैसे परम कृपण कर सोना

मुखरूपी कमल ने लज्जारूपी रात को देख वाणीरूपी भौंरी को रोक लिया। आँसू किसी महाकृपण के सोने की भाँति नेत्र के एक कोने में छिपे पड़े थे।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी * धरि धीरज प्रतीति उर आनी
तन मन वचन मोर मन साँचा * रघुपतिपदसरोज मनराँचा

फिर अपनी बड़ी व्याकुलता जान सीताजी ने लज्जा से सङ्कोच किया। अपनी यह दशा प्रकट न हो, इसलिए मन में धीरज धर विश्वास लाई कि यदि देह, मन और वाणी के किये कर्मों से मेरा अन्तःकरण सच्चा है और श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दों में मन लगा है,

तौ भगवान सकल उरवासी * करिहहिं मोहिं रघुपतिकी दासी
जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू * सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू

तो सबके हृदय में रहनेवाले अन्तर्यामी भगवान् अवश्य मुझे श्रीरघुनाथजी की दासी बनायेंगे ; क्योंकि जिसकी जिस पर सच्ची प्रीति होती है, वह उसे मिलता ही है ; इसमें कुछ सन्देह नहीं।

प्रभुतन चितै प्रेमप्रण ठाना * कृपानिधान राम सब जाना
सियहिं विलोकि तकेउ धनु कैसे * चितवगरुड़लघुव्यालहि जैसे

फिर सीताजी ने प्रभु श्रीरामजी की ओर देख प्रेम से यह प्रण किया, और उसे कृपा-निधान श्रीरामजी जान गये। उन्होंने सीताजी को देख फिर धनुष की ओर देखा, जैसे गरुड़ छोटे सर्प को देखते हैं।



लषण लखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हरकोदण्ड।
पुलकिगात बोले वचन, चरणचापि ब्रह्मण्ड॥

ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये * ठवनि युवा मृगराज लजाये

गुरुजी के वचन सुन राम ने गुरु के चरणों में सिर नवाया—मन में आनन्द या विषाद कुछ न आया। वह सहज स्वभाव से उठ खड़े हुए। उनका निर्भय खड़ा होना देख जवान सिंह भी लजा गये।



उदित उदयगिरिमञ्च पर, रघुवरबालपतङ्ग।
विकसे सन्तसरोजवन, हरषे लोचनभृङ्ग॥

उदयाचल के समान मञ्च पर प्रातःकाल के सूर्य के समान श्रीरामजी को खड़े देख कमल-रूपी सब साधुजन आनन्द से फूल उठे और भौंरों के समान उनकी आँखें हर्ष से खिल उठीं।

नृपन केरि आशानिशि नाशी * वचननखतअवली न प्रकाशी
मानी महिपकुमुद सकुचाने * कपटी भूपउलूक लुकाने

रात के समान राजाओं की आशा मिट गई और तारागण के समान उनके अनेक प्रकार के वचन फिर न प्रकट हुए। कुमुद-से अभिमानी राजा सकुच गये और उल्लू पक्षी के समान छली राजा छिप गये।

भये विशोक कोक मुनि देवा * वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा
गुरुपद वन्दि सहितअनुरागा * राम मुनिन सन आयसु माँगा

चकई-चकवा के समान मुनि और देवता प्रसन्न हुए तथा फूलों की वर्षाकर अपनी सेवा जताने लगे। श्रीरामजी ने प्रीतिसहित गुरुजी के चरणों की वन्दना कर मुनियों से आज्ञा माँगी।

सहजहिं चले सकलजगस्वामी * मत्तमञ्जु कुञ्जर वरगामी
चलत राम सब पुरनरनारी * पुलकपूरितनु भये सुखारी

सुन्दर मस्त हाथी की उत्तम चाल से चलनेवाले सब संसार के स्वामी श्रीरामजी अपनी सहज चाल से चले। राम के चलते ही जनकपुर के सब स्त्री-पुरुषों के शरीर में रोमांच हो आया और वे सुखी हुए।

वन्दि पितर सुर सुकृत सँभारे * जो कछु पुण्यप्रभाव हमारे
तौ शिवधनुष मृणाल कि नाईं * तोरहिं राम गणेश गोसाईं

देवताओं और पितरों की वन्दना कर अपने पुण्यों का स्मरण कर सब नर-नारी कहने लगे कि जो कुछ हमारे पुण्य का प्रभाव हो तो हे गणेश गोसाईं, श्रीरामजी शिवजी के धनुष को कमल की दण्डी के समान सहज में तोड़ डालें।



रामहिं प्रेमसमेत लखि, सखिन समीप बुलाइ।
सीतामातु सनेहवश, वचन कहै बिलखाइ॥

धनुष टूटने से राजा लोग ऐसे तेज से हीन हो गये, जैसे दिन को दीपक की छवि फीकी पड़ जाय। सीता के हृदय का सुख किस प्रकार वर्णन करें। वे तो स्वाती का जल पाने से चातकी के समान सुखी हुईं।

रामहिं लषण विलोकत कैसे * शशिहि चकोरकिशोरक जैसे
शतानन्द तब आयसु दीन्हा * सीता गमन राम पहँ कीन्हा

लछमणजी श्रीरामजी को कैसे देखते हैं, जैसे चकोर का बच्चा चन्द्रमा को देखे। तब शतानन्द ने आज्ञा दी और सीताजी श्रीरामजी के पास चलीं।

सङ्ग सखी सुन्दरि चतुर, गावहिं मङ्गलचार।
गवनी बालमरालगति, सुषमा अङ्ग अपार॥

उनके साथ सुन्दरी चतुर सखियाँ मङ्गलाचार गाती चलीं। उनके अंगों में अपार शोभा थी और उनकी चाल बालहंसिनी के समान थी।

सखिन मध्य सिय सोहत कैसी * छविगण मध्य महाछवि जैसी
करसरोज जयमाल सुहाई * विश्वविजय शोभा जनु छाई

सखियों के बीच में सीताजी कैसी सोह रही थीं, जैसे छवियों के बीच में महाछवि साक्षात् शोभायमान हो। उनके करकमलों में जयमाला सोहाई थी—मानो उसी में संसार भर के विजय की शोभा भरी हुई थी।

तनु सकोच मन परम उछाहू * गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू
जाइ समीप रामछवि देखी * रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी

देह में संकोच था, परन्तु मन में बड़ा उत्साह था। उनका ऐसा गूढ़ प्रेम था कि किसी को देख नहीं पड़ता था। पास जाकर जानकीजी ने श्रीरामजी की शोभा देखी तो चित्रलिखित-सी जहाँ की तहाँ रह गईं।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई * पहिरावहु जयमाल सुहाई
सुनत युगल कर माल उठाई * प्रेमविवश पहिराइ न जाई

यह देख चतुर सखी ने समझाकर कहा कि इनको सुन्दर जयमाला पहना दो। यह सुनकर सीता ने दोनों हाथों से माला उठाई, परन्तु प्रेम से विवश होने के कारण पहनाई नहीं जाती थी।

सोहत जनु युग जलज सनाला * शशिहि सभीत देत जयमाला
गावहिं छवि अवलोकि सहेली * सिय जयमाल रामउर मेली

जान पड़ा, जैसे डंडीसहित दो कमल डरते हुए चन्द्रमा को जयमाला देते हैं। यह शोभा देख सखियाँ गाने लगीं। तब सीताजी ने श्रीरामजी के गले में जयमाला डाल दी जो उनके हृदय पर शोभायमान हुई।

सखी के ये वचन सुन रानी को विश्वास आया। तब सोच मिटा और बहुत प्रीति बढ़ी। उधर सीताजी श्रीरामजी को देख मन में डरती हुई हरएक से विनती करने लगीं।

मन ही मन मनाय अकुलानी * होहु प्रसन्न महेश भवानी
करहु सफल आपनि सेवकाई * करि हित हरहु चापगरुआई

मन ही मन मनाकर व्याकुल होकर कहने लगीं कि हे शिव और पार्वतीजी, प्रसन्न हो अपनी सेवा को सफल कीजिए। मेरे ऊपर कृपा करके धनुष की गरुआई हर लीजिए।

गणनायक वरदायक देवा * आजु लगे कीन्ही तव सेवा
बार बार विनती सुनि मोरी * करहु चापगरुता अति थोरी

हे वर देनेवाले देव गणेशजी, आज तक मैंने आपकी सेवा की है, अब बारंबार मेरी यह विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत कम कर दीजिए।


देखि देखि रघुवीरतन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे विलोचन प्रेमजल, पुलकावली शरीर॥

सीताजी श्रीरामजी की ओर देख-देख धीरज धर देवताओं को मनाती थीं। उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू भरे हुए थे और देह में पुलकावली छाई थी।

नीके निरखि नयन भरि शोभा * पितुप्रण सुमिरि बहुरि मनछोभा
अहह तात दारुण हठ ठानी * समुझत नहिं कछु लाभ न हानी

अच्छी तरह आँख भर राम की शोभा देख फिर पिता का प्रण स्मरण कर उनके मन में हलचल मच गई। वह कहने लगीं—अहो, बड़े दुःख की बात है! पिता ने कठिन हठ ठाना है। वह कुछ लाभ-हानि नहीं समझते।

सचिव सभय सिख देइ न कोई * बुधसमाज बड़ अनुचित होई
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा * कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा

मंत्री भी डरते हैं, कोई सीख नहीं देते, उनको नहीं समझाते। बुद्धिमानों की सभा में यह बहुत अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्र से भी अधिक कठोर धनुष और कहाँ ये कोमल गात के साँवले बालक!

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा * सिरससुमन किमि बेधहि हीरा
सकल सभा की मति भइ भोरी * अब मोहिं शंभुचाप गतितोरी

हे विधाता, किस प्रकार मन में धीरज धरूँ? सिरस के कोमल फूल से कठिन हीरा कैसे वेधा जायगा? क्या सारी सभा की बुद्धि नष्ट हो गई है? हे शिवधनुष, अब मुझे तेरा ही आसरा है।

निज जड़ता लोगन पर डारी * होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी

तब सीताजी को देख क्रूर, कुपूत और मूर्ख राजा उनके पाने की इच्छा कर बिगड़ उठे—मन में इस आनन्द को न सह सके। वे अभागे वहाँ से उठ-उठकर कवच आदि पहन इधर-उधर इस प्रकार गाल बजाने लगे।

लेहु छुड़ाइ सीय कहँ कोऊ * धरि बाँधहु नृपबालक दोऊ
तोरे धनुष काज नहिं सरई * जीवत हमहिं कुँवरि को बरई

कोई कहने लगा कि सीता को छीन लो और राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो। धनुष के तोड़ने से काम नहीं चल सकता—हमारे जीतेजी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है?

जो विदेह कछु करैं सहाई * जीतहु समरसहित दोउ भाई
साधु भूप बोले सुनि बानी * राजसमाजहि लाज लजानी

जो राजा जनक इनकी कुछ सहायता करें तो दोनों भाइयोंसहित उन्हें भी युद्ध में जीत लो। यह वाणी सुन साधु राजा बोले कि राजसमाज ने लज्जा को भी लज्जित कर दिया।

बल प्रताप वीरता बड़ाई * नाक पिनाकहि सङ्ग सिधाई
सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई * असबुधितौविधि मुँहमसिलाई

तुम्हारी नाक (अभिमान या प्रतिष्ठा), बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई आदि धनुष के साथ ही चल दिये। क्या वही शूरता है जिससे धनुष को टस से मस नहीं कर सके? या अब फिर कहीं से नई वीरता पा गये हो? यदि ऐसी ही बुद्धि है तो विधाता तुम्हारे मुँह में स्याही लगा देगा, तुम्हारा घमंड चूर होगा।



देखहु रामहिं नयन भरि, तजि ईर्षा मद मोहु।
लषणरोषपावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु॥

ईर्ष्या, अभिमान और अज्ञान छोड़ आँखों भर श्रीरामजी को देखो; क्योंकि लक्ष्मण का क्रोध अग्नि के समान प्रचंड है, उसमें जान-बूझकर पाँखी के समान भस्म न होओ।

वैनतेयबलि जिमि चह कागू * जिमिशशचहहि नागअरिभागू
जिमिचह कुशलअकारणकोही * सुख सम्पदा चहहि शिवद्रोही

जैसे कौआ गरुड़ के भाग को, खरगोश सिंह के भाग को, अकारण क्रोध करनेवाला अपनी कुशल को, महादेवजी से वैर करनेवाला सुख और ऐश्वर्य को तथा—

लोभी लोलुप कीरति चहई * अकलङ्कता कि कामी लहई
हरिपदविमुख परमगति चाहा * तस तुम्हार लालच नरनाहा

लोभी और लाँय-लाँय करनेवाला यश को, कामी पुरुष निष्कलंक होने को और भगवान् के चरणों से विमुख मुक्ति को चाहे, हे राजाओ, वैसे ही तुम्हारा (सीता को पाने का) लालच है।

कोलाहल सुनि सीय सकानी * सखी लिवाय गई जहँ रानी

लक्ष्मणजी ने देखा कि रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजीने श्रीशिवजी के धनुष पर दृष्टि डाली है। तब वह चरणों से ब्रह्माण्ड को दबाकर पुलकित हो बोले—

दिशिकुञ्जरहु कमठ अहि कोला * धरहु धरणि धरिधीर न डोला
राम चहहिं शङ्करधनु तोरा * होहु सजग सुनि आयसु मोरा

हे दिग्गजो, हे कच्छप, हे शेष, हे वाराह, तुम सब एकाग्र होकर पृथ्वी को धारण करो, वह हिलने न पावे। श्रीरामजी महादेवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं, इसलिए मेरी आज्ञा सुन सावधान हो जाओ।

चापसमीप राम जब आये * नरनारिन सुर सुकृत मनाये
सब कर संशय अरु अज्ञानू * मन्द महीपन कर अभिमानू

जब श्रीरामजी धनुष के पास आये तो स्त्री-पुरुषों ने अपने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सबका सन्देह और अज्ञान तथा दुष्ट राजाओं का अभिमान—

भृगुपति केरि गर्वगरुआई * सुर मुनिवरन केरि कदराई
सिय कर शोच जनकपछितावा * रानिन कर दारुण दुखदावा

परशुरामजी के गर्व का गरुआपन, देवता और मुनीश्वरों का कायरपन या भय, सीताजी का सोच, राजा जनक का पछतावा और रानियों का घोर दुःख-दावानल का सन्ताप,

शम्भुचाप बड़ बोहित पाई * चढ़े जाइ सब सङ्ग बनाई
राम बाहुबल सिन्धु अपारा * चहत पार नहिं कोउ कनहारा

ये सब शिवजी के धनुषरूपी जहाज पर एक साथ ही जा चढ़े। श्रीरामजी का बाहुबल सागर के समान अपार—अथाह था। ये सब उसको पार होना चाहते थे, परन्तु कोई खेनेवाला नहीं था।



राम विलोके लोग सब, चित्रलिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विशेखि॥

श्रीरामजी ने सब लोगों को देखा तो सब चित्रलिखित से दिखलाई दिये। फिर सीताजी की ओर देखा तो कृपा के मन्दिर श्रीरामजी ने उनको बहुत ही व्याकुल पाया।

देखी विपुल विकल वैदेही * निमिष विहात कल्पसम तेही
तृषित वारि बिन जो तनु त्यागा * मुये करै का सुधातड़ागा

श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी को अधिक व्याकुल देखा। उनका एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा था। तब भगवान् ने विचारा कि यदि प्यासा बिना जल के देह छोड़ दे तो मरने पर उसे मीठे जल का तालाब भी क्या सुख-सन्तोष दे सकता है?

का वर्षा जब कृषी सुखाने * समय चूकि पुनि का पछिताने

अस जिय जानि जानकी देखी * प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेखी

जब खेती सूख गई तो वर्षा होने ही से क्या लाभ ? ऐसे ही समय पर चूककर फिर पछताने से क्या होता है ? श्रीरामजी मन में ऐसा जान, जानकी को देख अपने में उनकी बड़ी प्रीति समझकर प्रसन्न हुए।

गुरुहिं प्रणाम मनहिंमन कीन्हा * अतिलाघव उठाय धनु लीन्हा
दमकेउ दामिनि जिमि घन लयऊ * पुनि धनु नभमण्डलसम भयऊ

श्रीराम ने मन ही मन अपने गुरुदेव को प्रणाम किया और बड़ी फुर्ती से धनुष उठा लिया। जैसे बादल में बिजली चमक जाती है। फिर धनुष आकाशमण्डल के समान गोल हो गया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े * काहु न लखा देख सब ठाढ़े
तेहि क्षण मध्य राम धनु तोरा * भरेउ भुवन ध्वनि घोर कठोरा

लोग खड़े देखते रहे, परन्तु किसी ने श्रीरामजी को धनुष उठाते, चढ़ाते और खींचते नहीं लख पाया। उसी क्षण श्रीरामजी ने धनुष तोड़ डाला। तब उसका घोर कठोर शब्द सब लोकों में भर गया।

हरिगीतिका छन्द

भरि भुवन घोर कठोर रव रविबाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं।
कोदण्ड खण्डेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि घोर कठोर शब्द सब लोकों में भर गया। सूर्य के घोड़े अपनी राह छोड़ भाग चले। दिग्गज चिग्घारने लगे। पृथ्वी हिलने लगी। शेष, वाराह, कच्छप आदि डावाँडोल हुए तथा देवता, दैत्य और मुनि लोग कानों में हाथ दिये व्याकुल हो विचारने लगे कि यह क्या हुआ ? फिर सबने जाना कि श्रीरामजी ने धनुष तोड़ा है। यह जानकर वे 'श्रीरामजी की जय हो' कहने लगे।



शङ्करचाप जहाज, सागर रघुवरबाहुबल।
बूड़ी सकल समाज, चढ़ी जो प्रथमहिं मोहबश॥

श्रीरघुनाथजी की भुजाओं का बल समुद्र था। उसमें शिवजी का धनुष जहाज के समान था। उसके टूटने से वे लोग डूब गये, जो पहिले मोह के वश उस पर चढ़े थे।

प्रभु दोउ खण्ड चाप महि डारे * देखि लोग सब भये सुखारे
कौशिकरूप पयोनिधि पावन * प्रेमवारि अवगाह सुहावन

प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी में डाल दिये, जिन्हें देख सब लोग सुखी हुए। उस समय पवित्र समुद्र के समान विश्वामित्रजी में प्रेम का अथाह जल भरा हुआ था।

रामरूप राकेश निहारी * बढ़ी बीचि पुलकावलि भारी
बाजे नभ गहगहे निशाना * देववधू नाचहिं करि गाना

चन्द्रमा के समान श्रीरामचन्द्र को देख उस प्रेम के सागर में लहरें उठने लगीं। आकाश में बाजे बजने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा * प्रभुहिं प्रशंसहिं देहिं अशीशा
बरषहिं सुमन रङ्ग बहु माला * गावहिं किन्नर गीत रसाला

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर लोग प्रभु की बड़ाई करते और आशीर्वाद देते तथा बहुत रङ्ग के फूलों की वर्षा करते थे। किन्नर लोग रसीले गीत गाते थे।

रही भुवनभरि जय जय बानी * धनुषभङ्ग ध्वनि जात न जानी
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी * भञ्जेउ राम शम्भु धनु भारी

सब लोगों में जय हो, जय हो, यही वाणी भर रही थी। उसमें धनुष तोड़ने का शब्द भी डूब गया। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर कहते थे कि श्रीरामजी ने महादेव के बहुत भारी धनुष को तोड़ डाला।



बन्दी मागध सूतगण, बिरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गज धन मणि चीर॥

झुंड के झुंड धीर बुद्धिवाले बन्दी-मागध, सूत आदि श्रीरामजी की वंशावली कहने लगे। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, रत्न और वस्त्र श्रीरामजी पर न्योछावर करने लगे।

झाँझ मृदङ्ग शङ्ख सहनाई * भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई
बाजहिं बहु बाजने सुहाये * जहँ तहँ युवतिन मङ्गल गाये

सुहावनी झाँझ, मृदङ्ग, शंख, शहनाई, डफ, ढोल, नगाड़े आदि बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे और जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ मंगलाचार गाने लगीं।

सखिनसहित हर्षित अतिरानी * सूखत धान परा जनु पानी
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई * पैरत थके थाह जनु पाई

जनक की धर्मपत्नी रानी सुनैना सखियोंसहित बहुत प्रसन्न हुईं। मानो सूखते हुए धानों में पानी पड़ा। राजा जनक ने सोच छोड़ ऐसा सुख पाया, जैसा कोई पैरते में थक गया हो और थाह पा जाय।

श्रीहत भये भूप धनु टूटे * जैसे दिवस दीपछबि छूटे
सियहियसुखबरणियकेहिभाँती * जनु चातकी पाइ जल स्वाती

वह अपने कारण दधीचि की हड्डियों से कड़ा होता है, और अपने कारण पत्थर से उसका कार्य लोहा कड़ा होता है, वैसे ही अपने कारण कैकेयी से पैदा हुआ कार्यरूपी मैं क्यों न कठोर होऊँ ?

कैकेयीभव तनु अनुरागे * पामर प्राण अघाइ अभागे
जो प्रियविरह प्राण प्रिय लागे * देखब सुनब बहुत अब आगे

कैकेयी से उत्पन्न शरीर में रमनेवाले ये नीच प्राण बड़े अभागे हैं। जो प्यारे रामजी का वियोग प्राणों को प्रिय लगा तो ये अब आगे बहुत कुछ देखें-सुनेंगे।

लषण राम सिय कहँ वनदीन्हा * पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा
लीन्ह विधवपन अपयश आपू * दीन्हेउ प्रजहिं शोक सन्तापू

कैकेयी ने लक्ष्मण, राम और जानकीजी को वन दिया ; पति को स्वर्ग में भेजकर हित किया; आप विधवा हो अपयश लिया; प्रजा को शोक व सन्ताप दिया।

मोहिं दीन्ह सुख सुयश सुराजू * कीन्ह केकयी सब कर काजू
यहिते मोर काह अब नीका * तेहिपर देन कहहु तुम टीका

और मुझको सुख, सुयश और सुन्दर राज्य दिया। इस प्रकार कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अधिक मेरी और कौन भलाई बाकी है ? उस पर तुम राजतिलक देने को कहते हो ?

केकयिजठरजन्मि जग माहीं * यहमोहिंकहँकछुअनुचित नाहीं
मोरि बात सब विधिहि बनाई * प्रजा पाँच कत करहु सहाई

संसार में कैकेयी के पेट से उत्पन्न होकर मुझको कुछ अनुचित नहीं है। ब्रह्मा ने ही मेरी सब बातें बना दी हैं ! अब प्रजा और तुम सब पंच क्यों उसमें सहायता करते हो ?



ग्रहगृहीत पुनि बातवश, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुणी, कहहु कवन उपचार॥

जिसको ग्रह पकड़े हो, फिर सन्निपात के वश हो, फिर बीछी मारे और उसी को मदिरा पिलाइए तो कहो, उसकी क्या दवा है ? कुछ नहीं। भरतजी ऊपर कही चारों बातें अपने ऊपर यों घटित करते हैं कि कैकेयी के पेट में रहना ग्रह की पकड़ है, राम, जानकी, लक्ष्मण का वनगमन सन्निपात है, राजा का मरना बीछी का मारना है। ये तो हो चुके, अब जो मुझे राज्यरूपी मदिरा पिलाते हो तो मेरे बचने का क्या उपाय है ?

केकयिसुवनयोग जग जोई * चतुर विरञ्चि दीन्ह मोहिं सोई
दशरथतनय राम लघु भाई * दीन्ह मोहिं विधि बादि बड़ाई

कैकेयी के पुत्र के योग्य संसार में जो था, चतुर ब्रह्मा ने मुझको वही दिया। परन्तु दशरथ के पुत्र और राम के छोटे भाई भरत हैं—यह प्रशंसा मुझको ब्रह्मा ने वृथा ही दी



रघुबरउर जयमाल, देखि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुवाल, जनु विलोकि रवि कुमुदगण॥

श्रीरघुनाथजी की छाती पर जयमाला देख देवता फूल बरसाने लगे। सब राजा लोग वैसे ही मुरझा गये, जैसे सूर्य को देख कोकावेली।

पुर अरु व्योम बाजने बाजे * खल भये मलिन साधु सब गाजे
सुर किन्नर नर नाग मुनीशा * जय-जय कहि सब देहिं अशीशा

नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्टों के चेहरे फीके पड़ गये और सब साधु लोग प्रसन्न हो उठे, उनका तेज बढ़ गया। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर सब 'जय-जय' कहकर असीस देने लगे।

नाचहिं गावहिं विबुधवधूटी * बार बार कुसुमावलि छूटी
जहँ तहँ विप्र वेदध्वनि करहीं * वन्दी विरदावलि उच्चरहीं

अप्सराएँ गाने और नाचने लगीं। बार बार आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। ब्राह्मण लोग जहाँ-तहाँ वेदध्वनि और भाट लोग यश का बखान करने लगे।

महि पाताल नाक यश व्यापा * राम वरी सिय भञ्जेउ चापा
करहिं आरती पुर नर नारी * देहिं निछावरि वित्त बिसारी

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में यश फैल गया कि श्रीरामजी ने शिवजी का धनुष तोड़ डाला और सीता ने उन्हें वरण किया। नगर के स्त्री-पुरुष श्रीरामजी की आरती करते और वित्त-बाहर न्योछावर देते थे।

सोहत सीय राम की जोरी * छवि शृङ्गार मनहु इकठोरी
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता * करति न चरण परस अतिभीता

सीता और राम की जोड़ी ऐसी शोभित थी, मानो छवि और शृंगार एक साथ विराजमान हैं। सखियों ने कहा—सीताजी, प्रभु के चरण छुओ। परन्तु सीताजी मारे डर के चरण नहीं छूतीं।



गौतमतियगति सुरति करि, नहिं परसति पदपानि।
मन बिहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि॥

अहल्या की दशा (चरण छूने से स्वर्ग को जाना) स्मरणकर सीताजी हाथों से चरण नहीं छूतीं। यह अलौकिक प्रेम जान रघुवंशियों में रत्न श्रीरामचन्द्रजी मन में हँसे।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे * कूर कपूत मूढ़ मन माषे
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे * जहँ तहँ गाल बजावन लागे

हृदय में एक ही न सहने योग्य बड़ी दावानल लगी है कि मेरे कारण राम और जानकी दुखी हुए।

जीवन लाहु लषण भल पावा * सब तजि रामचरण मनलावा
मोर जन्म रघुबर वन लागी * झूठ काह पछिताउँ अभागी

लक्ष्मणजी ने जीवन का लाभ अच्छा पाया कि सब छोड़कर रामजी के चरणों में मन लगाया। मेरा तो रामजी के वनवास के लिए ही जन्म हुआ है। मैं अभागा हूँ। व्यर्थ क्यों पछताऊँ ?


आपनि दारुण दीनता, सबहिं कहौं समुझाइ।
देखे बिनु रघुबीरपद, जिय की जरनि न जाइ॥

मैं अपनी कठिन दीनता को सबसे समझाकर कहता हूँ कि बिना रामजी के चरणों को देखे मेरे जी की जलन न जायगी।

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा * को जियकी रघुबर बिनु बूझा
एकहि आँक यही मनमाहीं * प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं

मुझको और कोई उपाय नहीं देख पड़ता है। रामजी के बिना मेरे जी का हाल कौन जानेगा ? मेरे मन में यही एक बात है कि प्रातःकाल रामजी के समीप चलूँगा।

यद्यपि मैं अनभल अपराधी * भइ मोहिं कारण सकल उपाधी
तदपि शरणसम्मुख मोहिं देखी * सब क्षमि करिहैं कृपा विशेखी

यद्यपि मैं बुरा और अपराधी हूँ ; क्योंकि मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ, तो भी मुझे शरण में देख रामजी सब क्षमा कर विशेषरूप से कृपा करेंगे।

शीलसकुच सुठिसरल स्वभाऊ * कृपा सनेह सदन रघुराऊ
अरिहुक अनहित कीन्ह न रामा * मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा

क्योंकि रामजी शील, संकोच, अच्छे सीधे स्वभाव तथा दया और प्रेम की खान हैं। रामजी ने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया, यद्यपि मैं बालक सेवक होकर उनसे विमुख हूँ। तो भी वह मुझ पर कृपा ही करेंगे।

तुम पै पाँच मोर भलमानी * आयसु आशिष देहु सुबानी
जेहि मुनि विनय मोहिं जनजानी * आवहिं बहुरि राम रजधानी

और तुम सब पंच भी मेरा भला मानकर अच्छी वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दो, जिससे मेरी विनती सुन और जानकर रामजी फिर राजधानी में लौट आवें।


यद्यपि जन्म कुमातु ते, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं, मोहिं रघुबीरभरोस॥

राम सुभाय चले गुरु पाहीं * सिय सनेह बरणत मन माहीं

कोलाहल सुन सीताजी सकुच गईं। तब सखियाँ उन्हें वहाँ लिवा ले गईं जहाँ रानी सुनैना थीं। श्रीरामजी मन में सीताजी के स्नेह का वर्णन करते हुए अपने सहज स्वभाव से गुरुजी के पास चले।

रानिनसहित शोचवश सीया * अब धौं विधिहि कहा करणीया
भूपवचन सुनि इतउत तकहीं * लषण रामडर बोलि न सकहीं

रानियोंसहित सीताजी सोचवश हुईं कि अब विधाता क्या करनेवाला है! लक्ष्मणजी राजाओं के वचन सुन इधर-उधर देखते हैं, परन्तु श्रीरामजी के डर से बोल नहीं सकते।



अरुण नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहु मत्तगजगण निरखि, सिंहकिशोरहि चोप॥

उनकी आँखें लाल पड़ गईं, भौंहें टेढ़ी हो गईं और वह क्रोधसहित राजाओं को देखने लगे, मानो मतवाले हाथियों के झुण्ड को देख सिंह के बच्चे को उत्साह हुआ हो।

खरभर देखि विकल नरनारी * सब मिलि देहिं महीपन गारी
तेहि अवसर सुनि शिवधनु भङ्गा * आये भृगुकुलकमलपतङ्गा

राजाओं में खलभली मचते देख सब स्त्री-पुरुष व्याकुल हो उनको गालियाँ देने लगे। उसी समय शिवधनुष के टूटने का शब्द सुन भृगुवंशरूपी कमल को प्रसन्न करनेवाले सूर्य परशुरामजी वहाँ आये।

देखि महीप सकल सकुचाने * बाज झपट जनु लवा लुकाने
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा * भाल विशाल त्रिपुण्ड्र विराजा

उनको देख सब राजा सिटपिटा गये, जैसे बाज पक्षी की झपेट से बटेर छिप जाते हैं। परशुराम के गौर शरीर में विभूति बहुत अच्छी शोभा दे रही थी और चौड़े मस्तक में त्रिपुण्ड्र विराजमान था—

शीश जटा शशिवदन सुहावा * रिसवश कछुक अरुण होइ आवा
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते * सहजहि चितवत मनहुँ रिसाते

शिर में जटाएँ थीं। चन्द्रमा के समान सुहावना मुख था, जो कि क्रोध से कुछ लाल हो आया था। टेढ़ी भौंहें और क्रोध से भरे रतनारे नेत्र थे, जिनसे साधारण ही देखने पर भी क्रुद्ध जान पड़ते थे।

वृषभकन्ध उर बाहु विशाला * चारु जनेउ माल मृगछाला
कटिमुनिवसन तूण दुइ बाँधे * धनुशर कर कुठार कल काँधे

उनके बैल के-से कन्धे, चौड़ी छाती और लम्बी भुजाएँ थीं। वह सुन्दर जनेऊ, रुद्राक्ष

की माला और मृगछाला धारण किये थे तथा कमर में मुनियों के वस्त्र से दो तरकस बाँधे हाथ में धनुष-बाण और कन्धे पर फर्सा रक्खे थे।



सन्तवेष करणी कठिन, बरणि न जाय स्वरूप।
धरि मुनितनु जनु वीररस, आयो जहँ सब भूप॥

वेष सन्तों का-सा सतोगुणी था और काम वीरों के-से कठोर तमोगुणी थे। उनका स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो जहाँ सब राजा लोग थे, वहाँ मुनि की देह धर वीररस आया हो।

देखत भृगुपतिवेष कराला * उठे सकल भयविकल भुवाला
पितुसमेतकहिकहि निजनामा * लगे करन सब दण्डप्रणामा

परशुरामजी का भयानक वेष देखते ही सब राजा लोग डर से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पितासहित अपना-अपना नाम कह-कहकर उनको दंडप्रणाम करने लगे।

जेहि स्वभावचितवहिंहितजानी * सो जानै जनु आयु खुटानी
जनक बहोरि आय शिर नावा * सीय बुलाय प्रणाम करावा

हितू समझकर भी जिसकी ओर वह सहज ही देखते थे, वह जानता था कि अब मेरी आयु समाप्त हो गई—मैं अब न बचूँगा। फिर राजा जनक ने आकर शिर नवाया और सीता को बुलाकर उनसे मुनि को प्रणाम कराया।

आशिष दीन सखी हरषानी * निज समाज लै गईं सयानी
विश्वामित्र मिले पुनि आई * पदसरोज मेले दोउ भाई

परशुरामजी ने आशीर्वाद दिया। तब चतुर सखियाँ प्रसन्न हो अपनी मंडली में सीता को लिवा ले गईं। फिर विश्वामित्रजी आकर परशुरामजी से मिले और दोनों भाइयों को उनके चरणारविन्दों में डाल दिया—

राम लषण दशरथ के ढोटा * दीन्ह अशीश जानि भल जोटा
रामहिं चितै रहे थकि लोचन * रूप अपार मारमदमोचन

और कहा कि ये महाराज दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण हैं। तब परशुरामजी ने अच्छी जोड़ी जानकर उन्हें आशीर्वाद दिया तथा उनके नेत्र अनगिनत कामदेवों का अभिमान मिटानेवाले रामजी को देख थके-से रह गये।



बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु कहा अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर॥

फिर इधर-उधर देख मुनि ने जनक से कहा—कहिए, यह बड़ी भारी भीड़ क्यों है? जानकर भी ऐसा पूछते हैं, जैसे कोई न जानता हो। शरीर में क्रोध व्याप गया।

समाचार कहि जनक सुनाये * जेहि कारण महीप सब आये
सुनत वचन फिरि अनत निहारे * देखे चापखण्ड महि डारे

राजा जनक ने जिस कारण से सब राजा लोग आये थे, वह समाचार कह सुनाया। सुनते ही मुनि ने फिर दूसरी ओर देखा तो पृथ्वी में धनुष के टुकड़े पड़े देखे।

अति रिस बोले वचन कठोरा * कहु जड़ जनक धनुष केइँ तोरा
वेगि दिखाउ मूढ़ नतु आजू * उलटौं महि जहँ लगि तव राजू

तब बड़े क्रोध से परशुरामजी कठोर वचन बोले—रे जड़ जनक! कह, किसने धनुष तोड़ा है? उसे शीघ्र दिखला, नहीं तो अरे मूढ़, जहाँ तक तेरा राज्य है, पृथ्वी को उलट दूँगा।

अति डर उतर देत नृप नाहीं * कुटिल भूप हरषे मन माहीं
सुर मुनि नाग नगर नर नारी * शोचहिं सकल त्रास उर भारी

बहुत डर से राजा उत्तर नहीं देते। तब दुष्ट राजा लोग मन में प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सोच में पड़ गये। और सबके मनमें बड़ा भय था।

मन पछिताति सीयमहतारी * विधि सँवारि सब बात बिगारी
भृगुपति कर स्वभाव सुनि सीता * अर्द्ध निमेष कल्पसम बीता

सीताजी की माता मन में पछताती हैं कि विधाता ने सब बात बनाकर बिगाड़ डाली। परशुरामजी का स्वभाव सुन जानकी को आधा पल एक कल्प के समान बीता।



सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर॥

रामचन्द्रजी के मन में तो परशुराम के भय से विषाद या धनुष तोड़ डालने के कारण आनन्द कुछ भी न था; किन्तु सब लोगों को डरा हुआ देख और जानकी को भी व्याकुल जानकर श्रीरघुनाथजी सहज भाव से बोले—

नाथ शम्भुधनु भञ्जनहारा * होइहि कोउ यक दास तुम्हारा
आयसु कहा कहिय किन मोही * सुनि रिसाय बोले मुनि कोही

हे नाथ, शिव के धनुष को तोड़नेवाला कोई एक तुम्हारा दास ही होगा। क्या आज्ञा है? मुझसे क्यों नहीं कहते। यह सुन क्रोधी मुनि परशुरामजी क्रोध करके बोले—

सेवक सो जो करै सेवकाई * अरिकरणी करि करिय लराई
सुनहु राम जेइँ शिवधनु तोरा * सहसबाहुसम सो रिपु मोरा

दास वह है, जो सेवा करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई करना चाहिए; क्योंकि वह दास नहीं, शत्रु है। हे राम, सुनो। जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाय बिहाय समाजा * नतु मारे जैहैं सब राजा
सुनि मुनिवचन लषण मुसुकाने * बोले परशुधरहिं अपमाने

वह समाज को छोड़ न्यारा हो जाय; नहीं तो उसके साथ सब राजा मारे जायँगे। परशुरामजी के वचन सुन लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुराम का निरादर कर बोले—

बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं * कबहुँ न अस रिस कीन्ह गोसाईं
यहि धनु पर ममता केहि हेतू * सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू

महाराज, लड़काई में मैंने बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, पर कभी आपने ऐसा क्रोध नहीं किया। इसी धनुष पर आपकी क्यों इतनी ममता है? यह सुन भृगुवंश की पताका परशुरामजी ने क्रोध करके कहा—


रे नृपबालक कालवश, बोलत तोहिं न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार॥

अरे राजपुत्र, संसार में प्रसिद्ध शिवजी का धनुष क्या धनुहीं के बराबर है? तू सँभालकर नहीं बोलता! जान पड़ता है काल तेरे सिर पर सवार है।

लषण कहा हँसि हमरे जाना * सुनहु देव सब धनुष समाना
का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे * देखा राम नये के भोरे

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा, सुनिये देव, मेरी समझ में तो सब धनुष बराबर हैं। फिर पुराने धनुष के तोड़ने से क्या हानि-लाभ है? श्रीरामजी ने तो भूल से उसे नया जानकर देखा था;

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू * मुनि बिन काज करिय कत रोषू
बोले चितै परशु की ओरा * रे शठ सुनेसि प्रभाव न मोरा

परन्तु वह धनुष छूते ही टूट गया। इसमें श्रीरघुनाथजी का कुछ दोष नहीं है। मुनिवर, आप वृथा ही क्रोध क्यों करते हैं? तब परशु की ओर देख परशुरामजी बोले—अरे शठ, तूने मेरा प्रभाव नहीं सुना?

बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं * केवल मुनि जड़ जानेसि मोहीं
बालब्रह्मचारी अतिकोही * विश्वविदित क्षत्रियकुलद्रोही

रे मूर्ख! तुझे बालक जानकर नहीं मारता। तू मुझे कोरा मुनि ही जानता है! मैं बड़ा क्रोधी, बालब्रह्मचारी और क्षत्रियों के वंश का शत्रु जग-जाहिर हूँ।

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्हीं * विपुलबार महिदेवन दीन्हीं
सहसबाहु भुज छेदनहारा * परशु बिलोकु महीपकुमारा

मैंने अपने बाहुबल से अनेक बार राजों को मारकर विना राजा की पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी है। रे राजकुमार! सहस्रबाहु राजा की भुजाओं को काटनेवाले इस फर्से को देख।



मातुपितहि जनि शोचवश, करसि महीपकिशोर।
गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अतिघोर॥

हे राजकुमार! अपने माता-पिता को शोक से व्याकुल मत कर। क्षत्रिय नारियों के गर्भों के बच्चों को गिरा देनेवाला यह मेरा फर्सा बड़ा घोर है।

विहँसि लषण बोले मृदुबानी * अहो मुनीश महाभटमानी
पुनि पुनि मोहिं दिखाव कुठारा * चहत उड़ावन फूँकि पहारा

लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वचन बोले कि अहो मुनिराज, आप अपने को बड़ा वीर मानते हैं। बार-बार मुझे यह फर्सा दिखाकर शायद आप पहाड़ को मुँहकी फूँक से उड़ाना चाहते हैं?

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं * जो तर्जनि देखत मरि जाहीं
देखि कुठार शरासन बाना * मैं कछु कहा सहित अभिमाना

पर याद रखिए, यहाँ भी कोई कुम्हड़े की बतिया नहीं है जो उँगली देखते ही मुरझा जाय। मैंने जो कुछ अभिमानसहित आपसे कहा, उसका कारण यही था कि आपके पास फर्सा, धनुष और बाण मैंने देखा।

भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी * जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई * हमरे कुल इन पर न शुराई

भृगुवंशी जान और जनेऊ देखकर, मैं जो कुछ आप कहते हैं, उसे रिस रोककर सह रहा हूँ; क्योंकि देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और गौवें—इन पर हमारे कुल के लोग वीरता नहीं दिखाते—हाथ नहीं चलाते।

बधे पाप अपकीरति हारे * मारतहू पाँ परिय तुम्हारे
कोटिकुलिशसम वचन तुम्हारा * वृथा धरहु धनु बाण कुठारा

देखिए, इनको मारने से पाप और इनसे हारने पर अपयश होता है, दोनों तरह अपनी ही हानि है। इसलिए अगर आप हम पर प्रहार भी करें तो हम आपके पैरों पर ही गिरेंगे। फिर आपका वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है—ये धनुष, बाण और परशु वृथा ही रखते हो।



जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, क्षमहु महामुनिधीर।
सुनि सरोष भृगुवंशमणि, बोले गिरा गँभीर॥

हे धीर, हे महामुनि, आपका वेष देख जो कुछ मैंने अनुचित कहा हो, उसे क्षमा कीजिए। यह सुनकर भृगुवंशियों में श्रेष्ठ परशुरामजी क्रोधित होकर गम्भीर वाणी से बोले—

कौशिकसुनहु मन्द यह बालक * कुटिलकालवशनिजकुलघालक
भानुवंश राकेश कलंकू * निपट निरंकुश अबुध अशंकू

हे विश्वामित्र, सुनो, यह लड़का बड़ा खोटा, टेढ़ा, काल के वश और अपने वंश का नाशक है। चन्द्रमा के समान निर्मलसूर्य वंश में कलङ्क के समान, निलज्ज, निरंकुश, मूर्ख और निडर है

कालकवल होइहि क्षण माहीं * कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं
तुम हटकहु जो चहहु उबारा * कहि प्रताप बल रोष हमारा

पुकारकर कहता हूँ कि क्षण भर में यह काल का ग्रास हो जायगा; अब मेरा दोष नहीं है। यदि आप इसको बचाना चाहते हो तो मेरा प्रताप, बल और क्रोध बताकर इसे हटक दीजिए

लषण कहेउ मुनिसुयश तुम्हारा * तुमहिं अछत को बरणै पारा
अपने मुख तुम आपनि करणी * बार अनेक भाँति बहु बरणी

लक्ष्मण ने कहा कि मुनिवर, आपके रहते आपके सुयश को दूसरा कौन कहकर उसका पार पावेगा? फिर आप तो अपनी करनी का बखान अपने ही मुँह से बहुत बार बहुत प्रकार से कर चुके हैं।

नहिं सन्तोष तो पुनि कछु कहहू * जनि रिस रोकि दुसहदुख सहहू
वीरव्रत्ति तुम धीर अछोभा * गारी देत न पावहु शोभा

अगर इतने पर भी सन्तोष न हुआ हो तो फिर कुछ कहिए। रिस रोककर कठिन दुःख मत सहिए। आप वीरों की वृत्तिवाले, धैर्यवान् और क्षोभ से रहित हैं। यह गाली देना आपको शोभा नहीं देता।



शूर समरकरणी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर करहिं प्रलापु॥

शूर लोग अपना बखान नहीं करते; युद्ध में काम कर दिखाते हैं। युद्ध में शत्रु को पाकर बकवास करना कायरों का काम है।

तुम तो काल हाँकि जनु लावा * बार बार मोहिं लागि बुलावा
सुनत लषण के वचन कठोरा * परशु सुधारि धरेउ कर घोरा

जान पड़ता है, तुम जैसे काल को हाँककर ले आये हो, और बार-बार उसे मेरे लिए बुलाते हो! लक्ष्मणजी के ये कठोर वचन सुन परशुरामजी ने घोर परशु को सुधारकर हाथ में धारण किया—

अब जनि देहु दोष मोहिं लोगू * कटुवादी बालक वधयोगू
बाल विलोकि बहुत मैं बाँचा * अब यह मरणहार भा साँचा

और कहा—लोगो, अब मुझे दोष मत देना; क्योंकि यह कड़वे वचन बोलनेवाला बालक मारने ही योग्य है। मैंने बालक देख इसे बहुत कुछ बचाया, परन्तु अब यह सचमुच मरनेवाला है।

कौशिक कहा क्षमिय अपराधू * बालदोषगुण गणहिं न साधू
कर कुठार मैं अकरुण कोही * आगे अपराधी गुरुद्रोही

यह सुन विश्वामित्र ने कहा—अपराध क्षमा कीजिए; क्योंकि साधु लोग लड़कों के गुण और दोष नहीं गिनते। परशुरामजी बोले—बिना कारण ही क्रोध करनेवाला मैं हाथ में फर्सा लिये खड़ा हूँ और अपराध करनेवाला, सो भी मेरे गुरु का शत्रु, आगे है।

उतर देत छाँड़ौं बिन मारे * केवल कौशिक शील तुम्हारे
नतु इहि काटि कुठार कठोरे * गुरुहिं उऋण होतेउँ श्रम थोरे

यह बराबर उत्तर दे रहा है; पर मैं इसे नहीं मारता; सो हे विश्वामित्र, केवल तुम्हारा शील करके। नहीं तो इसे इस घोर फर्से से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु के ऋण से छुटकारा पा जाता।



गाधिसुवन कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरिअरे सूझ।
अजगव खण्डेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥

विश्वामित्र ने मन में हँसकर कहा कि (सावन के अंधे) मुनि को हरा ही हरा सूझता है। ऐसे नासमझ हैं कि शिवजी के धनुष को ऊख की नाईं तोड़ डालने पर भी नहीं समझ पाते कि यह साक्षात् विष्णु हैं।

कह्यो लषण मुनि शील तुम्हारा * को नहिं जान विदित संसारा
मातहिं पितहिं उऋण भये नीके * गुरुऋण रहा शोच बड़ जीके

लक्ष्मण ने फिर कहा—हे मुनि, तुम्हारा शील कौन नहीं जानता? संसार में प्रसिद्ध है कि माता-पिता से तो अच्छे उऋण हुए। अब गुरु का ऋण रह गया है, जिससे जी को बड़ा सोच है।

सो जनु हमरे माथे काढ़ा * दिनचलिगयउ ब्याज बहुबाढ़ा
अब आनिय ब्योहरिया बोली * तुरत देउँ मैं थैली खोली

वह ऋण मानो हमारे ही माथे काढ़ा था। बहुत दिन बीत जाने से ब्याज अधिक बढ़ गया होगा। अब ब्यौहरिया को बुला लाइए, मैं शीघ्र थैली खोलकर वह ऋण आपका चुका दूँ।

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा * हा हा कहि सब लोग पुकारा
भृगुवर परशु देखावहु मोही * विप्र विचारि बचौ नृपद्रोही

ये कड़वे वचन सुन परशुराम ने फर्सा सुधारा, तब सब लोगों ने हाहाकार किया। लक्ष्मण ने कहा—हे क्षत्रियों के द्रोही अर्थात् शत्रु परशुराम, मुझको फर्सा दिखलाते हो। याद रक्खो, मैं ब्राह्मण जानकर तुमको नहीं मारता, इसी से अब तक बचे हो।

मिले न कबहुँ सुभट रण गाढ़े * द्विज देवता घरहि के बाढ़े

अनुचित कहि सब लोग पुकारे * रघुपति सैनहिं लषण निवारे

कठिन युद्ध में आपका अच्छे योद्धाओं से कभी सामना नहीं पड़ा, क्योंकि ब्राह्मण देवता घर ही के बड़े हैं, युद्ध में नहीं। सब लोग अनुचित कहकर पुकार उठे। तब श्रीरघुनाथजी ने इशारे से लक्ष्मण को मना कर दिया।



लषण उतर आहुतिसरिस, भृगुपति कोप कृशानु।
बढ़त देखि जलसम वचन, बोले रघुकुलभानु॥

परशुरामजी के क्रोधरूपी अग्नि को घी की आहुति के समान लक्ष्मण के उत्तरों से बढ़ते हुए देख रघुकुलसूर्य श्रीरामजी उसे बुझाने के लिए जल के समान शीतल वचन बोले—

नाथ करहु बालक पर छोहू * शुद्ध दूधमुख करिय न कोहू
जोपै प्रभुप्रभाव कछु जाना * तौ कि बराबरि करत अयाना

हे नाथ, बालक पर दया कीजिए। अभी यह दुधमुहा अर्थात नासमझ है। इसका भाव शुद्ध है। क्रोध न कीजिए। यह अजान यदि प्रभु के प्रभाव को कुछ भी जानता होता तो क्या बराबरी करता?

जो लरिका कछु अनुचित करहीं * गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं
करिय कृपा शिशु सेवक जानी * तुम सम शील धीर मुनि ज्ञानी

यदि बालक कुछ अनुचित कर डालते हैं तो माता, पिता गुरु आदि प्रसन्न ही होते हैं। इससे बालक व सेवक जान कृपा कीजिए, आप तो स्वयं समदर्शी, सहनशील, धीर, मुनि और आत्मज्ञानी हैं।

रामवचन सुनि कछुक जुड़ाने * कहि कछु लषण बहुरि मुसुकाने
हँसत देखि नखशिखरिसव्यापी * राम तोर भ्राता बड़पापी

श्रीरामजी के वचन सुन परशुरामजी कुछ ठण्ढे पड़े। तब तक कुछ कहकर लक्ष्मण ने फिर मुस्करा दिया। उन्हें हँसते देख एड़ी से चोटी तक परशुराम के फिर क्रोध व्याप गया। तब उन्होंने कहा—हे राम, तेरा भाई बड़ा खोटा है।

गौर शरीर श्याम मन माहीं * कालकूटमुख पयमुख नाहीं
सहज टेढ़ अनुहरै न तोहीं * नीच मीचसम लखै न मोहीं

इसका शरीर ही गोरा है, मन काला है। यह दुधमुहा नहीं, किन्तु इसके मुख में विष है। यह सहज ही कुटिल है, इससे तेरा भाई नहीं जान पड़ता। यह नीच मृत्यु के समान मुझे सामने देखकर भी नहीं देखता।



लषण कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहिवश जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्वप्रतिकूल॥

तब लक्ष्मण ने हँसकर कहा—हे मुनिवर, सुनिए, क्रोध पाप की जड़ है। इसके वश होकर लोग अनुचित कर डालते हैं और संसार के विरुद्ध चलते हैं।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया * परिहरि कोप करिय अब दाया
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने * बैठिय होइहिं पाँय पिराने

इससे हे मुनिराज, अब क्रोध छोड़ दया करिए। मैं तो आपका दास हूँ। फिर क्रोध करने से टूटा हुआ धनुष भी तो जुड़ नहीं सकता, इसलिए बैठ जाइए—पैर दुखते होंगे।

जो अतिप्रिय तौ करिय उपाई * जोरिय कोउ बड़गुणी बुलाई
बोलत लषणहिं जनक डराहीं * मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं

और यदि धनुष बहुत प्यारा है तो कुछ उपाय कीजिए—किसी बड़े गुनी को बुलाकर उसे जुड़वाइये। लक्ष्मण ऐसे व्यंग्य वचन बोलते थे और जनक डर रहे थे। उन्होंने कहा—भया, चुप रहो। अनुचित बातें कहना अच्छा नहीं है।

थरथर काँपहिं पुरनरनारी * छोट कुमार खोट अतिभारी
भृगुपति सुनि सुनि निर्भयबानी * रिस तनु जरै होय बलहानी

जनकपुर के स्त्री-पुरुष थरथर काँपते और कहते थे कि छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है। परशुरामजी की देह लक्ष्मण की निडर वाणी सुन-सुनकर क्रोध से जली जाती थी और उतना ही बल घट रहा था।

बोले रामहिं देइ निहोरा * बचै विचारि बन्धु लघु तोरा
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे * विषरस भरा कनकघट जैसे

फिर श्रीरामजी को निहोरा देकर वह बोले कि तुम्हारा छोटा भाई है, यही समझकर मैं इसे नहीं मारता, यह अब तक बच रहा है। यह वैसे ही मन का मैला और देह का सुन्दर है, जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घड़ा हो।


सुनि लक्ष्मण बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरुसमीप गमने सकुचि, परिहरि वाणी वाम॥

यह सुनकर लक्ष्मण फिर हँसे। तब श्रीरामजी ने आँखें टेढ़ी कीं, जिससे सकुचकर टेढ़े वचन बोलना छोड़कर वह गुरुजी के पास चले गये।

अतिविनीत मृदु शीतल वाणी * बोले राम जोरि युग पाणी
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना * बालकवचन करिय नहिं काना

फिर श्रीरामजी दोनों हाथ जोड़ बहुत नम्र, कोमल और शीतल वचन बोले। उन्होंने कहा—हे नाथ, सुनिए, आप तो स्वभाव ही से सुजान—समझदार हैं। बालक के वचनों पर कुछ ध्यान न दीजिए।

बरैं बालक एक स्वभाऊ * इनहिं न सन्त विदूषहिं काऊ
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा * अपराधी मैं नाथ तुम्हारा

क्योंकि बरैया और बालक एक ही स्वभाव के होते हैं; साधु पुरुष इन्हें कोई दोष नहीं देते। फिर उसने तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा, हे नाथ, आपका अपराधी तो मैं हूँ।

कृपा कोप वध बन्ध गोसाईं * मोपर करिय दास की नाईं
कहिय वेगि जेहि विधि रिसजाई * मुनिनायक सोइ करिय उपाई

नाथ! कृपा, कोप, वध और बन्धन—इन चारों दंडों में से जो मुझ सेवक को उचित हो, वह दीजिए। हे मुनिराज, जिस प्रकार से क्रोध दूर हो, वही उपाय कीजिए।

कह मुनि राम जाय रिस कैसे * अजहुँ बन्धु तव चितव अनैसे
यहिके कण्ठ कुठार न दीन्हा * तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा

मुनि ने कहा—हे राम, क्रोध कैसे जाय, तेरा भाई तो अब भी टेढ़ी नजर से देखता है। इसके गले पर यदि परशु न चलाया तो मैंने क्रोध करके किया ही क्या?


गर्भ स्रवहिं अवनिपरमणि, सुनि कुठारगति घोर।
परशु अछत देखौं जियत, वैरी भूपकिशोर॥

जिस भयङ्कर परशु की घोर गति सुन राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, उस परशु के होते हुए मैं अपने वैरी राजकुमार को जीता देखता हूँ।

बहै न हाथ दहै रिस छाती * भा कुठार कुण्ठित नृपघाती
भयो वाम विधि फिरेउ स्वभाऊ * मोरे हृदय कृपा कस काऊ

क्रोध से हृदय जलता है, परन्तु हाथ नहीं चलता; जान पड़ता है, राजाओं को मारनेवाले फरसे की धार कुंठित हो गई है। विधाता मेरे प्रतिकूल हो गया है या मेरा स्वभाव ही पलट गया है; क्योंकि मेरे हृदय में किसी पर दया कैसी!

आजु दैव दुख दुसह सहावा * सुनि सौमित्रि विहँसि शिरनावा
वाउ कृपा मूरति अनुकूला * बोलत वचन झरत जनु फूला

दैव ने आज दुस्सह दुःख सहाया। यह सुन लक्ष्मण ने हँसकर सिर नवाया और कहा वाह, कृपा तो आपकी सूरत से ही टपकती है! वचन क्या बोलते हैं, मानो फूल झरते हैं।

जो पै कृपा जरै मुनि गाता * क्रोध भये तनु राखु विधाता
देखु जनक हठि बालक येहू * कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू

हे मुनि, जो कृपा होने पर देह जलती है तो क्रोध होने से विधाता ही शरीर की रक्षा करे। यह सुन परशुराम बोले—देखो जनक, इस बालक को हटक दो। यह मूर्ख यमपुरी को अपना घर बनाना चाहता है।

बेगि करहु किन आँखिन ओटा * देखत छोट खोट नृपढोटा
बिहँसे लषण कहा मुनि पाहीं * मूँदिय आँख कतहुँ कोउ नाहीं

इसे क्यों नहीं शीघ्र आँखों की ओट करते ? यह राजा का पुत्र देखने में छोटा है, परन्तु मन का तो बड़ा ही खोटा है। यह सुन लक्ष्मण हँसे और मुनि से कहा कि भगवन्, इसका तो सहज उपाय है, आँखें मूँद लीजिए तो कहीं कोई नहीं।



परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शम्भुशरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध॥

तब परशुराम ने श्रीरामजी से क्रोध में कहा—अरे शठ ! शिव का धनुष तोड़कर मुझे समझाता है ?

बन्धु कहै कटु सम्मत तोरे * तू छलविनय करसि करजोरे
करु परितोष मोर संग्रामा * नाहिंत छाँडु कहाउब रामा

तेरा छोटा भाई तेरी सम्मति से कड़वे वचन कहता है और तू हाथ जोड़े छल से झूठ-मूठ विनय करता है। युद्ध करके मेरा सन्तोष कर; नहीं तो राम कहाना छोड़ दे।

छलतजि करसि समर शिवद्रोही * बन्धुसहित नतु मारौं तोही
भृगुपति तमकि कुठार उठाये * मनमुसुकाहिं राम शिरनाये

हे शिव के द्रोही, यह छल छोड़कर युद्ध कर, नहीं तो तेरे भाई सहित तुझे मार डालूँगा। परशुराम ने क्रोध कर फर्सा उठाया, पर श्रीरामचन्द्रजी सिर झुकाये मन में मुसकराते थे।

गुणहु लषण कर हम पर रोषू * कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू
टेढ़ जानि शङ्का सब काहू * वक्र चन्द्रमहिं ग्रसै न राहू

रामजी ने कहा—लक्ष्मण के ऊपर का क्रोध हम पर उतार रहे हो। सच है, कहीं सीधेपन से भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा समझकर सबको शङ्का रहती है—द्वितीया से चतुर्दशी तक चन्द्रमा के टेढ़े रहते राहु उसे नहीं ग्रसता।

राम कहेउ रिस तजिय मुनीशा * कर कुठार आगे यह शीशा
जेहिरिसजाय करियसोइस्वामी * मोहिं जानि आपन अनुगामी

श्रीरामजी ने फिर प्रकट में कहा—हे मुनीश, क्रोध छोड़िए। आपके हाथ में फर्सा है और यह मेरा सिर भी आपके आगे है। हे स्वामी, मुझे अपना दास जान जैसे क्रोध जाय, वही कीजिए।



प्रभु सेवकहिं समर कस, तजहु विप्रवर रोष।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष॥

स्वामी और सेवक का युद्ध कैसा ? हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, क्रोध छोड़िए। लक्ष्मण का भी कुछ दोष नहीं है, क्योंकि जो कुछ इसने कहा है, वह आपका वीरों का-सा वेष ही देखकर।

देखि कुठार बाण धनुधारी * भै लरिकहिं रिस वीर विचारी
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा * वंशस्वभाव उतर तेहि दीन्हा

आपको फर्सा, बाण और धनुष लिये देख वीर समझकर लड़के को क्रोध हुआ। यद्यपि आपका नाम जानता था; परन्तु आपको पहचाना नहीं, इस कारण वंश के स्वभाव से इसने उत्तर दिया।

जो तुम अवतेउ मुनि की नाईं * पदरज शिर शिशु धरत गोसाईं
क्षमहु चूक अनजानत केरी * चहिय विप्रउर कृपा घनेरी

यदि आप मुनि की भाँति आते तो यद्यपि यह लड़का था तो भी आपके चरणों की धूल अपने सिर पर चढ़ाता। इसलिए इस अनजान का अपराध क्षमा कीजिए; क्योंकि ब्राह्मण के हृदय में बहुत कृपा होनी चाहिए।

हमहिं तुमहिं सरवरि कस नाथा * कहहु तो कहाँ चरण कहँ माथा
राममात्र लघु नाम हमारा * परशुसहित बड़ नाम तुम्हारा

हे नाथ, मेरी आपके साथ बराबरी कैसे हो सकती है ? कहिए, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक ! दो अक्षरों का छोटा-सा मेरा 'राम' नाम है और परशु मिलाकर आपका नाम बड़ा है।

देव एक गुण धनुष हमारे * नव गुण परम पुनीत तुम्हारे
सब प्रकार हम तुम सन हारे * क्षमहु विप्र अपराध हमारे

फिर हे देव, मुझमें तो धनुष ही एक गुण है और आपमें बड़े पवित्र नव गुण (सीधा १ तपस्वी २ सन्तोषी ३ सहनशील ४ इच्छारहित ५ जितेन्द्रिय ६ दाता ७ ज्ञानी ८ दयालु ९) हैं। मैं तो सब तरह से हारा हुआ हूँ। हे विप्र, मेरे अपराध क्षमा कीजिए।



बार बार मुनि विप्रवर, कहा रामसन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूँ बन्धुसम बाम॥

श्रीरामजी ने परशुरामजी से बारंबार मुनि और ब्राह्मण कहा, इसी पर परशुरामजी क्रोधित हो बोले कि तू भी अपने भाई के समान कुटिल है।

निपटहिं द्विज करि जानहु मोहीं * मैं जस विप्र सुनाऊँ तोहीं
चाप स्रुवा शर आहुति जानू * कोप मोर अतिघोर कृशानू

मुझे निरा ब्राह्मण ही जान लिया ? मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, वैसा तुम्हें सुनाता हूँ। मेरे धनुष को स्रुवा, बाण को आहुति और क्रोध को प्रचण्ड अग्नि जानो।

समिध सेन चतुरंग सुहाई * महामहीप भये पशु आई
मैं यहि परशु काटि बलि दीन्हे * समरयज्ञ जग कोटिन कीन्हे

उसमें सुहावनी चतुरंगिणी सेना हवन की लकड़ी और बड़े-बड़े राजा बलि के पशु बने हैं। उन्हें मैंने इसी परशु से काटकर बलि दिया है। ऐसे समरयज्ञ मैंने संसार में करोड़ों किये हैं।

मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे * बोलसि निदरि विप्र के भोरे
भञ्जेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा * अहमिति मनहु जीति जग ठाढ़ा

मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं, जो कोरा ब्राह्मण समझकर भ्रम से मेरा अनादर करनेवाले वचन बोलता है। धनुष को तोड़ डाला, इसी से बड़ा अभिमान बढ़ गया, मानो संसार भर को जीत लिया है।

राम कहा मुनि कहहु विचारी * रिस अतिबड़ि लघुचूक हमारी
छुवतहि टूट पिनाक पुराना * मैं केहि हेतु करौं अभिमाना

श्रीरामजी ने कहा—हे मुनिवर, विचारकर कहिए। मेरी चूक थोड़ी, पर आपकी रिस बहुत बड़ी है। यह पुराना धनुष तो छूते ही टूट गया। फिर मैं अभिमान किसलिए करूँगा?



जो हम निदरहिं विप्रबदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जगसुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ॥

हे भृगुनाथ, सुनिए, सच कहता हूँ, यदि मैं ब्राह्मण जानकर निरादर करूँ तो फिर संसार में ऐसा कौन भारी योद्धा है, जिसे भयभीत होकर माथा नवाऊँगा?

देव दनुज भूपति भट नाना * समबल अधिक होउ बलवाना
जो रण हमहिं प्रचारै कोऊ * लरहिं सुखेन काल किन होऊ

देवता, दैत्य और पृथ्वी के राजा आदि शूरवीरों में से यदि मेरे समान या मुझसे अधिक भी बलवान् हो तो भी, यदि कोई युद्ध के लिए मुझे बुलावे, तो वह काल ही क्यों न हो, मैं उससे प्रसन्नतापूर्वक लड़ूँगा।

क्षत्रियतनु धरि समर सकाना * कुलकलङ्क तेहि पामर जाना
कहहुँ स्वभाव न कुलहि प्रशंसी * कालहु डरहिं न रण रघुवंसी

जो क्षत्रिय की देह धर युद्ध से डरा, वह कुल-कलंक और बड़ा नीच है। मैं अपने कुल की कुछ प्रशंसा नहीं करता, सत्य ही कहता हूँ कि रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।

विप्रवंश की असि प्रभुताई * अभय होइ जो तुमहिं डराई
सुनि मृदु गूढ़वचन रघुपति के * उघरे पटल परशुधरमति के

और ब्राह्मणवंश का तो ऐसा प्रभाव है कि जो तुमसे डरे वह निर्भय हो जाय। ये कोमल और गूढ़ वचन सुन परशुरामजी की बुद्धि के किवाड़ खुल गये।

राम रमापति कर धनु लेहू * खैंचहु चाप मिटै सन्देहू
देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ * परशुराममन विस्मय भयऊ

वह बोले—हे राम! इस विष्णुजी के धनुष को लीजिए और खींचिए तो सन्देह दूर हो। वह धनुष देते ही अपने आप चढ़ गया। तब परशुरामजी के मन में सोच हुआ कि मैंने भगवान् को दुर्वचन कहे।



जाना रामप्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात॥

रामजी का प्रभाव जान देह रोमांच से मानो फूल उठी। प्रेम हृदय में नहीं समाता। हाथ जोड़ वह बोले—

जय रघुवंशवनजवन भानू * गहन दनुजकुलदहनकृशानू
जय सुर विप्र धेनु हितकारी * जय मद मोह कोह भ्रमहारी

हे कमलवनरूप रघुवंश को प्रसन्न करनेवाले सूर्य, आपकी जय हो। सघन वन के समान राक्षसों के वंश को भस्म करनेवाले अग्नि, आपकी जय हो। हे देवता, ब्राह्मण और गौओं का हित करनेवाले, हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम आदि को दूर करनेवाले, आपकी जय हो।

विनय शील करुणा गुणसागर * जयति वचनरचना अतिनागर
सेवकसुखद सुभग सब अङ्गा * जय शरीर छवि कोटि अनङ्गा

नम्रता, शील, दया आदि गुणों के सागर और वचनरचना में चतुर श्रीराम, आपकी जय हो, सुन्दर सेवकों को सुख देनेवाले और करोड़ों कामदेवों की शोभा धारण करनेवाले राम, आपकी जय हो।

करौं कहा मुख एक प्रशंसा * जय महेश मन मानस हंसा
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता * क्षमहु क्षमामन्दिर दोउ भ्राता

एक मुख से मैं आपकी क्या बड़ाई करूँ। हंस के समान शिवजी के मनमानस में रहनेवाले, आपकी जय हो। अज्ञान से मैंने बहुत अनुचित वचन कहे। क्षमा के घर दोनों भाई, मेरा अपराध क्षमा करो।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू * भृगुपति गये वनहिं तपहेतू
अपभय कुटिल महीप डराने * जहँ तहँ कायर गवहिं पराने

हे रघुकुलकेतु, आपकी जय हो। यह कह परशुरामजी तप करने के लिए वन को चले गये। फिर तो दुष्ट राजा लोग डर गये और कायर जहाँ तहाँ भाग गये।



देवन दीन्हीं दुन्दुभी, प्रभु पर बरसहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटा मोह भय शूल॥

देवताओं ने नगाड़े बजाये। श्रीरामजी पर फूलों की वर्षा करने लगे। जनकपुर के सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए। मोह और भय से जो क्लेश था, वह सब जाता रहा।

अतिगहगहे बाजने बाजे * सबहिं मनोहर मङ्गल साजे
यूथ यूथ मिलि सुमुखि सुनैनी * करहिं गान कल कोकिल बैनी

खूब गहगहा के बाजे बजने लगे और सब लोग मनोहर मङ्गल के साज सजने लगे। सुन्दर मुख और नेत्रोंवाली तथा कोकिला के समान मीठी बोली बोलनेवाली झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ गाने लगीं।

सुख विदेहकर बरणि न जाई * जन्मदरिद्र मनहु निधि पाई
बिगतत्रास भइ सीय सुखारी * जनु बिधु उदय चकोरकुमारी

राजा जनक को इतना सुख हुआ कि मुख से नहीं वर्णन किया जाता। मानो जन्म का दरिद्री कोई खजाना पा गया हो। सीताजी दुःख के दूर होने से वैसे ही सुखी हुईं जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चकोर की बालिका।

जनक कीन्ह कौशिकहिं प्रणामा * प्रभुप्रसाद धनु भञ्जेउ रामा
मोहिं कृतकृत्य कीन्ह दोउ भाई * अब जो उचितसो कहियगोसाँई

राजा जनक ने विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा—स्वामी, आपकी कृपा से श्रीरामजी ने धनुष तोड़ डाला और दोनों भाइयों ने मुझे कृतकृत्य किया। हे नाथ, अब जो करना उचित हो, वह कहिए।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना * रहा विवाह चाप आधीना
टूटत ही धनु भयो विवाहू * सुर नर नाग विदित सब काहू

मुनि ने कहा—हे चतुर महाराज, विवाह तो धनुष टूटने के अधीन था। धनुष के टूटते ही विवाह हो गया—यह देवता, मनुष्य, नाग आदि सबको विदित है।



तदपि जाइ तुम करहु अब, यथावंश व्यवहार।
बूझि विप्र कुलवृद्ध गुरु, वेदविहित आचार॥

तब भी अब आप जाकर अपने वंश का जैसा व्यवहार हो और वेद में जैसा कहा है वही ब्राह्मणों से, कुल के बड़े-बूढ़ों से तथा अपने आचार्य से पूछकर कीजिए।

दूत अवधपुर पठवहु जाई * आनैं नृप दशरथहिं बुलाई
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला * पठये दूत अवध तेहि काला

जाकर अयोध्या को दूत भेजिए; वे राजा दशरथ को बुला लावें। 'हे कृपालु, बहुत अच्छा' कहकर प्रसन्न हो उसी समय अयोध्या को दूत भेजे।

बहुरि महाजन सकल बुलाये * आय सबन सादर शिर नाये

हाट बाट मन्दिर पुर वासा * नगर सँवारहु चारिहु पासा

फिर सब बड़े लोगों या धनियों को बुलाया और उन सबोंने आकर आदरसहित सिर नवाया। राजा ने कहा—नगर के चारो ओर जितनी बाजारें, सड़कें और देवमन्दिर हैं, सब खूब सजाये जायँ।

हरषि चले निज निज गृह आये * पुनि परिचारक बोलि पठाये
रचहु विचित्र वितान बनाई * शिरधरि वचन चले सचुपाई

वे सब प्रसन्न हो चले, अपने-अपने घर आये। फिर राजा ने धावन बुला भेजे और उन्हें आज्ञा दी कि विवाह-मंडप की रचना बड़ी विचित्र बनाई जाय। वे लोग चुपचाप राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर चल दिये।

पठये बोलि गुणी तिन नाना * जे वितानविधिकुशल सुजाना
विधिहिवन्दि तिन कीन्ह अरम्भा * विरचे कनक कदली खम्भा

उन्होंने बहुत-से गुणी बुला भेजे जो मंडप बनाने की विधि अच्छी प्रकार जानते थे। उन्होंने आकर ब्रह्मा की वन्दना कर मंडप बनाना आरम्भ किया। पहले सोने के केले के खम्भे बनाये।


हरित मणिन के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन बिरञ्चि कर भूल॥

जिनमें हरी मणियों के पत्ते और फल तथा लाल मणियों के फूल बनाये। जिनकी बड़ी विचित्र बनावट देख ब्रह्मा का भी मन मोह जाय।

वेणु हरित मणिमय सब कीन्हे * सरल सपर्ण परहिं नहिं चीन्हे
कनक कलित अहिबेलि बनाई * लखि नहिं परै सपर्ण सुहाई

पत्तोंसहित सीधे बाँस भी हरी मणियों के बनाये, जो यह नहीं जान पड़ते थे कि असली बाँस नहीं हैं। सोने की सुहावनी पत्तियोंसहित सुन्दर नागवेलि बनाई, जो पहचान नहीं पड़ती थी।

तेहिके रचि पचि बन्ध बनाये * बिच बिच मुक्तादाम सुहाये
माणिक मरकत कुलिशपिरोजा * चीरि कोरि पचि रचे सरोजा

उसी नागवेलि की रचकर गाँठें दीं और बीच-बीच मोतियों की लड़ियाँ लटका दीं। मानिक (लालमणि), मरकत (पन्ना), हीरा और फीरोजा की कोरों को चीर पच्चीकारी करके कमल बनाये।

किये भृङ्ग बहुरङ्ग विहङ्गा * गुञ्जहिं कूजहिं पवन प्रसङ्गा
सुर प्रतिमा खम्भन गढ़ि काढ़ीं * मङ्गलद्रव्य लिये सब ठाढ़ीं
चौकैं भाँति अनेक पुराईं * सिन्धुरमणिमय सहज सुहाईं

उनमें भौंरे और बहुत रङ्ग के पक्षी बनाये, जो हवा लगने से बोलने लगते थे। देव-मूर्तियाँ खम्भों में गढ़कर काढ़ी गई थीं, जो सब मंगल की वस्तुएँ लिये खड़ी थीं। चौकें यों ही सोहती थीं, फिर यहाँ तो गजमुक्ताओं से बहुत प्रकार की पूरी गईं। उनका क्या कहना है!

सौरभपल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि॥

नीलमणि के कोरों से सुन्दर माङ्गलिक आम के पत्ते बनाये, जिनमें सोने के बौर और हरी मणियों की अँवियों के गुच्छे थे। उनको रेशमी पाटम्बरकी डोरियों से बाँधकर वन्दनवार बनाये।

रचे रुचिर वर बन्दनवारे * मनहु मनोभव फन्द सँवारे
मङ्गल कलश अनेक बनाये * ध्वज पताक पट चमर सुहाये

ऐसे उत्तम वन्दनवार बनाये गये, मानो कामदेव ने दर्शकों के मन फाँसने के लिए फन्दे डाले हों। कलश, ध्वजा, पताका, वस्त्र, चवँर आदि सुहावनी मङ्गल की वस्तुएँ बहुत-सी बनाई गईं।

दीप मनोहर मणिमय नाना * जाइ न बरणि विचित्र विताना
जेहि मण्डप दुलहिनि वैदेही * सो बरणै अस मति कवि केही

अनेक मणियों के मनोहर दीपक बनाये। ऐसा विचित्र मंडप देखते ही बनता था—उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस मंडप में जानकीजी दुलहिन थीं, उसे वर्णन करने की बुद्धि किस कवि में है।

दूलह राम रूपगुणसागर * सो वितान तिहुँलोक उजागर
जनकभवन की शोभा जैसी * गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी

फिर रूप और गुणों के सागर श्रीरामजी दूलह हैं। उस मंडप का तीनों लोकों में उजागर होना योग्य ही है। यही नहीं, जैसी शोभा राजा जनक के राजमहल की थी, वैसी ही जनकपुर के हर घर की थी।

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी * तेहि लघु लगे भुवन दशचारी
जो सम्पदा नीच गृह सोहा * सो विलोकि सुरनायक मोहा

उस समय जिसने तिरहुत प्रान्त (जहाँ जनक का राज्य था) को देखा, उसे चौदहों लोकों की शोभा और सम्पदा उससे कम दिखलाई पड़ी। बड़ों की कौन कहे, नीच जातियों के घर में भी जो सम्पदा थी, उसे देख तीनों लोकों के स्वामी इन्द्र भी मोहित होते थे।

बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारिवर वेष।
तेहि पुर की शोभा कहत, सकुचैं शारद शेष॥

जिसमें साक्षात् लक्ष्मीजी अपनी माया से उत्तम स्त्री का वेष करके (सीता के रूप से) रहती हैं, उस पुर की शोभा कहते हुए सरस्वती और शेषजी भी सकुचते हैं।

पहुँचे दूत रामपुर पावन * हरषे नगर बिलोकि सुहावन
भूपद्वार तिन खबरि जनाई * दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई

उधर पवित्र अयोध्या में दूत पहुँचे और सुहावना नगर देखकर प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने राजद्वार में खबर दी, जिसे सुन महाराज दशरथ ने उन्हें अपने पास बुला लिया।

करि प्रणाम तिन पाती दीन्हीं * मुदित महीप आपु उठि लीन्हीं
वारि विलोचन बाँचत पाती * पुलकगात आई भरि छाती

उन्होंने प्रणाम कर पत्र दिया और प्रसन्न हो राजा ने आप उठकर उसे लिया। पत्र पढ़ते ही राजा के नेत्रों में आनंद के आँसू भर आये और देह के रोम खड़े हो गये—छाती भर आई।

राम लषण उर कर वर चीठी * रहि गये कहत न खाटी मीठी
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची * हरषी सभा बात सुनि साँची

हृदय में राम और लक्ष्मण थे और हाथ में वह जनक का उत्तम पत्र था। महाराज दशरथ चित्रलिखे से रह गये—आनंद की अधिकता से अच्छा या बुरा कुछ कहते न बना। फिर धीरज धरके पत्र पढ़ा तो सच्ची बात सुनकर सारी सभा प्रसन्न हुई।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई * आये भरत सहित लघु भाई
पूछत अति सनेह सकुचाई * तात कहाँ ते पाती आई

राम के छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजी खेल रहे थे। वह यह समाचार पाकर आये और सङ्कोच के साथ बड़े स्नेह से पूछने लगे कि हे तात, यह पत्र कहाँ से आया है?


कुशल प्राणप्रिय बन्धु दोउ, अहहिं कहहु केहि देश।
सुनि सनेहसाने वचन, बाँची बहुरि नरेश॥

हमारे प्राणों से प्यारे दोनों भाई कुशल से तो हैं? कहिए, किस देश में हैं? ये स्नेह-भरे वचन सुन राजा ने फिर उस पत्र को पढ़ा।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता * अधिक सनेह समात न गाता
प्रीति पुनीत भरत की देखी * सकल सभा सुख लहेउ विशेखी

दोनों भाई पत्र सुनकर बड़े प्रसन्न हुए—इतना अधिक स्नेह बढ़ा कि वह देह में नहीं समाता था। रामचन्द्र में भरत की पवित्र प्रीति देखकर सारी सभा ने बड़ा सुख पाया।

तब नृप दूत निकट बैठारे * मधुर मनोहर वचन उचारे
भैया कहहु कुशल दोउ बारे * तुम नीके निज नयन निहारे

तब राजा ने दूतों को पास बिठाकर यों मीठे मनोहर वचन कहे—भैया, कहो, हमारे दोनों कुमार कुशल से हैं न? तुमने उनको अच्छी तरह अपनी आँखों से देखा तो है?

श्यामल गौर धरे धनु भाथा * वयकिशोर कौशिक मुनि साथा
पहिँचानेउ तौ कहहु स्वभाऊ * प्रेमविवश पुनि पुनि कह राऊ

वे श्याम और गोरे रंग के धनुष-बाण लिये, कुमार अवस्थावाले, विश्वामित्रजी के साथ हैं। प्रेम से बेसुध हो राजा ने बारंबार कहा कि अच्छा, यदि तुम उन्हें पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ।

जा दिन ते मुनि गये लिवाई * तब ते आजु साँचि सुधि पाई
कहहु विदेह कवन विधि जाने * सुनि नृपवचन दूत मुसुकाने

जिस दिन से मुनि विश्वामित्रजी लिवा ले गये हैं, तब से आज उनका सच्चा समाचार मैंने पाया है। कहो, राजा जनक ने उन्हें किस प्रकार जाना कि ये मेरे पुत्र हैं? राजा के ये वचन सुनकर दूत मुस्कराने लगे।



सुनहु महीपतिमुकुटमणि, तुम सम धन्य न कोउ।
रामलषण जिनके तनय, विश्वविभूषण दोउ॥

फिर बोले—हे राजाओं के शिरोमणि, सुनिए। आपके समान धन्य कोई नहीं है; क्योंकि संसार को शोभित करनेवाले त्रिभुवन-सुन्दर राम और लक्ष्मण आपके पुत्र हैं।

पूछन योग न तनय तुम्हारे * पुरुषसिंह तिहुँपुर उजियारे
जिनके यश प्रताप के आगे * शशि मलीन रवि शीतल लागे

आपके पुत्र पूछने के योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे तो तीनों लोकों को अपने यश से उज्ज्वल करनेवाले पुरुष-सिंह हैं, जिनके यश के आगे चन्द्रमा मैला और प्रताप के आगे सूर्य ठंढे लगते हैं।

तिनकहँकहियनाथकिमि चीन्हे * देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे
सीयस्वयंवर भूप अनेका * सिमिटे सुभट एक ते एका

हे स्वामी, उनको आप पूछते हैं कि कैसे पहचाने गये? क्या सूर्यनारायण भी हाथ में दीपक लेने से दिखलाई पड़ते हैं? जानकीजी के स्वयंवर में एक से एक श्रेष्ठ वीर अनगिनत राजा इकट्ठे हुए थे।

शम्भुशरासन काहु न टारा * हारे सकल भूप बरियारा
तीनि लोक महँ जे भटमानी * सबकी शक्ति शम्भुधनु भानी

परन्तु शिवजी के धनुष को कोई उठा न सका। सब सुभट बलवान् राजा लाचार होकर हार गये। जो तीनों लोकों में शूरवीर होने का अभिमान रखते थे, उन सबकी शक्ति का घमंड शिवजीके धनुष ने मिटा दिया।

सकै उठाय सुरासुर मेरू * सोउ हिय हारि गयो करि फेरू
जेहि कौतुक शिव शैल उठावा * सोउ तेहि सभा पराभव पावा

वे देवता और दैत्य भी, जो कि सुमेरुपर्वत को भी उठा सकते थे, मन में हार मानकर लौट गये। जिस रावण ने खेल ही खेल में कैलास को उठा लिया था, उसने भी उस सभा में हार पाई।



तहाँ राम रघुवंशमणि, सुनिय महामहिपाल।
भञ्जेउ चाप प्रयास बिन, जिमि गज पङ्कजनाल॥

हे राजराजेश्वर, सुनिए। उस सभा में जैसे हाथी कमल की डण्डी तोड़ डाले, वैसे ही रघुवंशियों में शिरोमणि श्रीरामजी ने विना परिश्रम ही धनुष को तोड़ डाला।

सुनि सरोष भृगुनायक आये * बहुत भाँति तिन आँखि दिखाये
देखि रामबल निज धनु दीन्हा * करि बहुविनय गमन वन कीन्हा

फिर धनुष टूटने का शब्द सुन क्रोधित हो परशुरामजी आये और उन्होंने बहुत प्रकार से आँखें दिखाई। परन्तु श्रीरामजी का बल देखकर उन्होंने भी हार मानी। वह भी अपना धनुष दे बहुत विनती कर वन को चले गये।

राजत राम अतुलबल जैसे * तेजनिधान लषण पुनि तैसे
कम्पत भूप विलोकत जाके * जिमि गज हरिकिशोर के ताके

फिर जैसे श्रीरामजी अतुल बल की खान हैं, वैसे ही लक्ष्मणजी भी तेज के निधान हैं। राजा लोग उनको देखते ही ऐसे काँपते हैं, जैसे सिंह के बच्चे को देखकर हाथी।

देव देखि तव बालक दोऊ * अवनि आँखितर आव न कोऊ
दूतवचनरचना प्रिय लागी * प्रेम प्रताप वीररस पागी

हे देव, आपके दोनों पुत्रों को देख, हमें उनकी बराबरी का पृथ्वीतल में कोई नहीं जँचता। दूतों के वचनों की रचना, जो कि प्रेम, प्रताप और वीरता—तीनों रसों से पगी हुई थी, राजा को बहुत प्यारी लगी।

सभासमेत राउ अनुरागे * दूतन देन निछावरि लागे
कहि अनीति तिन मूँदेउ काना * धर्मविचारि सबहिं सुख माना

सभा सहित राजा बड़े प्रेम से दूतों को न्योछावर (इनाम) देने लगे; परन्तु उन्होंने 'अनुचित' कह कान मूँद लिये—लेना क्या, सुनना भी स्वीकार न किया। तब सब लोगों ने इसे उनका धर्म समझकर सुख माना।



तब उठि भूप वशिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाय।
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बुलाय॥

राजा ने जाकर वशिष्ठजी को वह पत्र दिया और आदर से दूतों को बुलाकर उनके सामने ही गुरुजी को सब हाल सुनाया।

सुनि बोले मुनि अतिसुख पाई * पुण्यपुरुष कहँ महि सुख छाई

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं * यद्यपि ताहि कामना नाहीं

उसे सुन सुख पाकर वशिष्ठ मुनि बोले कि पुण्यात्मा पुरुष के लिए पृथ्वी सुख से भरी है। जैसे यद्यपि समुद्र को इच्छा नहीं है तो भी नदियाँ उसमें जाती ही हैं।

तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये * धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये

तुम गुरु विप्र धेनु सुरसेवी * तस पुनीत कौशल्या देवी

ऐसे ही धर्मवान् पुरुषों के पास बिना बुलाये ही सुख, सम्पदा आदि जाते हैं। आप गुरु, ब्राह्मण, गऊ और देवताओं की सेवा करनेवाले हैं और वैसे ही पवित्र देवी कौशल्या भी हैं।

सुकृती तुमससमान जग माहीं * भयो न है कोउ होनेउ नाहीं

तुमते अधिक पुण्य बड़ काके * राजत रामसरिस सुत जाके

संसार में तुम्हारे समान पुण्यात्मा न हुआ है, न है और न होनेवाला है। तुमसे अधिक पुण्य किसके हैं, जिसके कि राम-जैसे पुत्र विराजमान हैं।

वीर विनीत धर्म ब्रतधारी * गुणसागर बालक वर चारी

तुम कहँ सर्व काल कल्याना * सजहु वरात बजाय निशाना

तुम्हारे चारो कुमार शूरवीर, नम्र, धर्मात्मा, सत्य का व्रत धारण करनेवाले और गुणों के सागर हैं। तुमको सब समय कल्याण है। अब बाजे बजवाकर बरात साजो।



चले वेगि सुनि गुरुवचन, भलेहि नाथ शिर नाइ।

भूपति गमने भवन तब, दूतन्ह वास दिवाइ॥

गुरु के वचन सुन 'बहुत अच्छा' कह सिर झुकाकर महाराज दशरथ वहाँ से शीघ्र चले और दूतों को टिकाकर घर गये।

राजा सब रनिवास बुलाई * जनकपत्रिका बाँचि सुनाई

सुनि सन्देश सकल हरषानी * अपर कथा सब भूप बखानी

राजा ने सब रानियों को बुलाया और जनक का पत्र पढ़कर उन्हें सुनाया। उसे सुन सब प्रसन्न हुईं। फिर राजा ने और सब समाचार कहे।

प्रेमप्रफुल्लित राजा रानी * मनहुँ शिखिन सुनि बारिदवानी

मुदित अशीष देहिं गुरुनारी * अति आनन्दमगन महतारी

राजा और रानियाँ प्रेम से फूल उठीं, जैसे बादल का शब्द सुन मोर प्रसन्न होते हैं। गुरुपत्नी अरुन्धतीजी प्रसन्न हो आशीर्वाद देने लगीं और माता कौशल्या आदि बड़े आनन्द में मग्न हुईं।

लेहिं परस्पर अतिप्रिय पाती * हृदय लगाय जुड़ावहिं छाती

राम लषण की कीरति करणी * बारहिं बार भूपवर वरणी

वह परम प्रिय पत्र लेकर सब रानियाँ हृदय से लगाकर छाती को जुड़ाती थीं। राजा ने राम-लक्ष्मण का यश और कृत्य बार बार अच्छी तरह वर्णन किया।

मुनिप्रसाद कहि द्वार सिधाये * रानिन तब महिदेव बुलाये
दिये दान आनन्द समेता * चले विप्रवर आशिष देता

'यह सब विश्वामित्र मुनि की कृपा है' यह कह राजा तो बाहर चले गये और रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाकर आनन्दसहित दान दिया। वे उत्तम ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर गये।



याचक लिये हँकारि, दीन्ह निछावरि कोटि विधि।
चिरजीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दशरत्थ के॥

फिर रानियों ने भिक्षुकों को बुला लिया और करोड़ों तरह की न्योछावरें उनको दीं। वे असीसने लगे कि चक्रवर्ती महाराज दशरथ के चारो पुत्र चिरञ्जीवी हों।

कहत चले पहिरे पट नाना * हरषि हने गहगहे निशाना
समाचार सब लोगन पाये * लागे घर घर होन बधाये

वे अनेक प्रकार के वस्त्र, जो पाये थे, पहने हुए बखान करते चले। बाजेवालों ने प्रसन्न हो खूब गहगहाकर बाजे बजाये। जब सब लोगों ने ये समाचार पाये तो घर-घर बधाये होने लगे।

भुवन चारिदश भरेउ उछाहू * जनकसुता रघुवीर विवाहू
सुनि शुभकथा लोग अनुरागे * मग गृह गली सँवारन लागे

जनककुमारी के साथ श्रीरामजी के विवाह का उत्साह चौदहों भुवनों में भर गया। यह शुभ कथा सुनकर लोगों को बड़ा प्रेम हुआ—सड़कें, घर और गलियाँ सजाई जाने लगीं।

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि * रामपुरी मङ्गलमय पावनि
तदपि प्रीति की रीति सुहाई * मङ्गल रचना रची बनाई

यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी रहती थी तथा श्रीरामजी की पुरी होने के कारण मङ्गलमयी और पवित्र थी, तो भी प्रजा की राम-लक्ष्मण आदि पर प्रीति अधिक होने के कारण वह इस समय और भी शोभायमान हुई—लोगों ने मङ्गलमयी रचना से उसे खूब सजाया।

ध्वज पताक पट चामर चारू * छावा परम विचित्र बजारू
कनककलश तोरण मणिजाला * हरद दूब दधि अक्षत माला

सुन्दर ध्वजा, पताका, वस्त्र और चामरों से बाजार बहुत विचित्र रूप से छाया गया। सोने के कलश, वन्दनवार, रत्नखचित जालियाँ, हल्दी, दूब, दही, चावल और फूलों की मालाएँ—



मङ्गलमय निजनिज भवन, लोगन रचे बनाय।
वीथी सींची चतुर सब, चौकैं चारु पुराय॥

ये मङ्गलमयी वस्तुएँ लोगों ने अपने-अपने घरों में सजाईं तथा चतुर जनों ने सब गलियाँ छिड़कवाइ और सुन्दर चौकें पुराईं।

जहँतहँ यूथयूथ मिलि भामिनि * सजिनवसप्तसकलद्युतिदामिनि
विधुवदनी मृगशावकलोचनि * निजस्वरूपरतिमान विमोचनि

जहाँ-तहाँ चन्द्रमा के-से मुख और हरिण के बच्चे के-से नेत्रोंवाली तथा अपने रूप से रति का अभिमान तोड़नेवाली झुंड की झुंड स्त्रियाँ सोलहों शृङ्गार किये, बिजली-सी चमकतीं,

गावहिं मङ्गल मञ्जुल बानी * सुनि कलरव कलकण्ठ लजानी
भूपभवन किमि जाइ बखाना * विश्वविमोहन रचेउ विताना

कोमल वाणी से मङ्गल गाने लगीं, जिनके मनोहर शब्द को सुन कोकिला भी लज्जित हो जाती थीं। राजमन्दिर की बड़ाई कैसे की जाय, जहाँ संसार भर को मोहनेवाला चँदोवा ताना गया था या बनाया गया था।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना * राजत बाजत विपुल निशाना
कतहुँ विरद वन्दी उच्चरहीं * कतहुँ वेदध्वनि भूसुर करहीं

वहाँ बहुत प्रकार की मनोहर माङ्गलिक वस्तुएँ रक्खी थीं और बहुत-से बाजे बज रहे थे। कहीं भाट लोग विरदावली कहते और कहीं ब्राह्मण लोग वेद-ध्वनि कर रहे थे।

गावहिं सुन्दरि मङ्गल गीता * लै लै नाम राम अरु सीता
बहुत उछाह भवन अति थोरा * मानहुँ उमँगि चला चहुँओरा

स्त्रियाँ राम और सीता का नाम ले-लेकर मङ्गल के गीत गा रही थीं। जान पड़ता था, उत्साह बहुत है, और उसके सामने मन्दिर छोटा है, इसलिए मानो उत्साह उमड़कर चारों ओर बह चला है।


शोभा दशरथभवन की, को कवि बरणै पार।
जहाँ सकल सुरशीशमणि, राम लीन्ह अवतार॥

जहाँ पर सब देवताओं के शिरोमणि श्रीरामजी ने अवतार लिया है, उस महाराज दशरथ के मन्दिर की शोभा को कौन कवि वर्णन करके पार पा सकता है?

भूप भरत पुनि लिये बुलाई * हय गज स्यन्दन साजहु जाई
चलहु बेगि रघुवीर बराता * सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता

फिर राजा ने भरत को बुलाया और कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ साजो और शीघ्र रामचन्द्र की बरात में चलो। यह सुन दोनों भाई आनन्द से पुलकित हो उठे।

भरत सकल साहनी बुलाये * आयसु दीन्ह मुदित उठिधाये
रुचि रुचि जीन तुरँग तिन साजे * बरण बरण बर बाजि बिराजे

भरत ने सब सरदारों को बुलाकर आज्ञा दी, वे प्रसन्न हो उठ दौड़े। फिर उन्होंने रुचि के अनुसार रचकर जीन आदि से घोड़ों को सजाया, जिससे रङ्गबिरङ्ग उत्तम घोड़े शोभायमान हुए।

सुभगसकल सुठि चञ्चल करणी * अय इव जरत धरत पगु धरणी
नाना भाँति न जायँ बखाने * निदरि पवन जनु चहत उड़ाने

सब अच्छे सुन्दर चाल के घोड़े जलते हुए लोहे की भाँति पृथ्वी पर पैर रखते थे, अर्थात् जैसे उनके पाँव पृथ्वी पर पड़ते ही न थे। वे बहुत प्रकार के थे, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वायु को हराकर उड़ना चाहते हों।

तिन पर छैल भये असवारा * भरतसरिस सब राजकुमारा
सब सुन्दर सब भूषणधारी * कर शर चाप तूण कटि भारी

उन पर भरत के समान छैल राजकुमार सवार हुए। वे सब सुन्दर आभूषण पहने, हाथ में धनुष-बाण लिए और कमर में बड़े तरकसों को कसे थे।

दो० छरे छबीले छैल सब, शूर सुजान नवीन।
युग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रवीन॥

सब छैल छटे हुए छबीले, नई अवस्था के, शूरवीर और चतुर थे। प्रत्येक सवार के साथ दो पैदल थे, जो तलवार चलाने की कला में चतुर थे।

बाँधे विरद वीर रण गाढ़े * निकसि भये पुरबाहर ठाढ़े
फेरहिं चतुर तुरँग गति नाना * हरषहिं धुनि सुनि पणव निशाना

युद्ध में पीठ न दिखलानेवाले शूरवीर वीरता की विरद बाँधे नगर के बाहर निकल खड़े हुए। चतुर पुरुष नाना प्रकार की चालों से घोड़ों को फेरते और ढोल आदि बाजों का शब्द सुन प्रसन्न होते थे।

रथ सारथिन विचित्र बनाये * ध्वज पताक मणि भूषण छाये
चमरचारुकिङ्किणिध्वनि करहीं * भानुयान शोभा अपहरहीं

सारथियों ने रथों को ध्वजा, पताका और रत्नों के आभूषणों से छाकर चित्र-विचित्र बना दिया, जिनमें सुन्दर फुलरे लगे थे और छोटी-छोटी घंटियाँ बजती थीं, जो सूर्य के रथ के समान शोभायमान थे।

श्यामकर्ण अगणित हय होते * ते तिन रथन सारथिन जोते
सुन्दर सकल अलंकृत सोहैं * जिनहिं विलोकत मुनिमन मोहैं

अनगिनत श्यामकर्ण घोड़े थे, जिन्हें सारथियों ने रथों में जोता था। सब सुन्दर और सजे हुए शोभायमान थे, जिनको देखते ही मुनियों का मन भी ध्यान से उचट मोहित हो जाता था।

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं * टाप न बूड़ वेग अधिकाई

अस्त्र शस्त्र सब साज सजाई * रथी सारथिन लिए बुलाई

वे भूमि की ही भाँति जल में भी चलते हैं और वेग की तेजी के कारण टापें नहीं डूबतीं। रथों पर अस्त्र (फेंककर मारनेवाले), शस्त्र (हाथ से मारनेवाले) और सब साज सजाकर सारथियों ने रथियों को बुलाया।



चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात।
होत शकुन सुन्दर सबहिं, जो जेहि कारज जात॥

योद्धा लोग रथों पर चढ़-चढ़कर नगर के बाहर गये और बरात जुड़ने लगी। उस समय जो जिस काम को जाता था, सबको अच्छे सगुन होते थे।

कलित करिवरन्ह परीं अँबारी * कहि न जाय जहि भाँति सँवारी
चले मत्त गज घण्ट विराजी * मनहु सुभग सावन घनराजी

हाथियों पर सुन्दर अंबारियाँ पड़ी हैं। उनकी रचना का वर्णन नहीं किया जा सकता। गले में जिनके घण्टे बँधे हैं, ऐसे मतवाले हाथी चले, मानो सावन के सुन्दर बादलों के दल थे।

वाहन अपर अनेक विधाना * शिविका सुभग सुखासनयाना
तिन्ह चढ़ि चले विप्रवरवृन्दा * जनु तनुधरे सकल श्रुतिछन्दा

सुन्दर पालकी, सुखपाल, विमान और दूसरी भी बहुत प्रकार की सवारियाँ थीं। उन पर उत्तम ब्राह्मण चढ़कर चले, मानो सब वेदों की ऋचाएँ और छन्द ही ब्राह्मणों का वेष रक्खे हुए थे।

मागध सूत वन्दि गुणगायक * चले यान चढ़ि जो जेहि लायक
बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती * चले वस्तु भरि अगणित भाँती

मागध, सूत, वन्दी आदि गुण गानेवाले जो जिस योग्य थे, वैसी ही सवारियों पर चढ़कर चले। तरह-तरह के खच्चर, ऊँट और बैल अनगिनत प्रकार की वस्तुएँ लादकर चले।

कोटिन काँवरि चले कहारा * विविध वस्तु को बरणै पारा
चले सकल सेवक समुदाई * निज निज साज समाज बनाई

कहार लोग करोड़ों बहँगियाँ ले-लेकर चले, जिनमें भरी हुई बहुत प्रकार की वस्तुओं का वर्णन कर कौन पार पा सकता है? अपना-अपना साज और मंडली बनाकर बड़े ठाट से सब सेवकों के झुंड चले।



सबके उर निर्भर हरष, पूरित पुलक शरीर।
कबहिं देखिहैं नयनभरि, राम लषण दोउ वीर॥

सबके मन में बड़ी ही प्रसन्नता थी। शरीर में आनन्द के मारे रोमांच हो आया था। कहते थे कि दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मण को हम कब आँख भर देखेंगे।

गरजहिं गज घण्टाध्वनि घोरा * रथरव बाजिहिंस चहुँ ओरा
निदरि घनहिं घूमरहिं निशाना * निजपराव कछु सुनिय न काना

हाथियों का गरजना, घंटाओं की भारी ध्वनि, रथों का झमझमाना और घोड़ों का हिनहिनाना चारो ओर सुनाई देता था। बादलों के शब्द को परास्त करनेवाले बाजे घमघमाते थे, जिससे अपना-पराया शब्द कुछ कानों नहीं सुनाई देता।

महाभीर भूपति के द्वारे * रज होइ जाय पषाण पँवारे
चढ़ीं अटारिन देखहिं नारी * लिये आरती मङ्गल थारी

राजा के द्वार पर इतनी अधिक भीड़ थी कि वहाँ जड़े हुए पत्थर चलने से घिसकर धूल हुए जाते थे। अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ थालियों में मङ्गलाचार की आरतियाँ लिये बरात की शोभा देखतीं,

गावहिं गीत मनोहर नाना * अति आनन्द न जाइ बखाना
तब सुमन्त दुइ स्यन्दन साजी * जोते रविहयनिन्दक बाजी

और नाना प्रकार के मनोहर गीत गाती थीं। ऐसा अधिक आनन्द था कि कहते नहीं बनता। तब सुमन्त्र ने दो रथ साजकर तैयार किये और उनमें सूर्य के घोड़ों को भी शरमानेवाले घोड़े जोते।

दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने * नहिं शारद प्रति जाहिं बखाने
राजसमाज एक रथ साजा * दूसर तेजपुञ्ज अति राजा

वह दोनों सुन्दर सजे हुए रथों को राजा के पास लाये, जिनका बखान सरस्वती देवी भी नहीं कर सकतीं। एक रथ तो राजसी साज-सामान से शोभायमान था और दूसरा तेज का पुंज (ढेर)-सा जान पड़ता था।



तेहि रथ रुचिर वशिष्ठ कहँ, हरषि चढ़ाय नरेश।
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिरि, हर गुरु गौरि गणेश॥

दूसरे रथ पर तो राजा ने, प्रसन्न हो, वशिष्ठजी को चढ़ाया और फिर पहले रथ पर आप स्वयं शिव, गुरु, पार्वती और गणेशजी का स्मरण करके चढ़े।

सहित वशिष्ठ सोह नृप कैसे * सुरगुरुसङ्ग पुरन्दर जैसे
करि कुलरीति वेदविधि राऊ * देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ

वशिष्ठजी सहित राजा कैसे शोभायमान हुए, जैसे देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी के साथ इन्द्र शोभित हों। राजा वेद की विधि से अपने कुल की रीति कर, सबका सब प्रकार बनाव देख,

सुमिरि राम गुरु आयसु पाई * चले महीपति शङ्ख बजाई
हरषे विबुध विलोकि बराता * बरषहिं सुमन सुमङ्गलदाता

श्रीरामजी का स्मरण कर और गुरु की आज्ञा लेकर शंख बजाकर चले। बरात को देख देवता प्रसन्न हुए और मङ्गलों के देनेवाले फूल बरसाने लगे।

भयो कोलाहल हय गज गाजे * व्योम बरात बाजने बाजे
सुर नर नारि सुमङ्गल गाईं * सरस राग बाजहिं सहनाई

घोड़े और हाथियों के गरजने का कोलाहल हुआ। आकाश में भी देवताओं की बरात के बाजे बजने लगे। देवाङ्गनाएँ और मनुष्यों की स्त्रियाँ मङ्गल गाती थीं और रसीले राग से शहनाई बजाती थीं।

घण्टघण्टिध्वनि बरणि न जाई * सरव करैं पायक फहराई
करहिं विदूषक कौतुक नाना * हासकुशल कलगान सुजाना

घण्टा और घण्टियों का शब्द तो वर्णन नहीं किया जाता। पताकाएँ भी हवा से फड़फड़ाती हुई फहरा रही थीं। विदूषक (भाँड़), जो कि हँसाने और अच्छा गाने में चतुर थे, तरह-तरह के कौतुक कर रहे थे।



तुरँग नचावहिं कुँवर वर, अकनि मृदङ्ग निशान।
नागरनर चितवहिं चकित, डिगहिं न तालविधान॥

श्रेष्ठ कुँवर भरत और शत्रुघ्न घोड़ों को मृदङ्ग की लय पर नचाते थे, जिसे चकित होकर नगर के लोग देखते थे कि वे ताल से नहीं चूकते।

बनै न बरणत बनी बराता * होइँ शकुन सुन्दर शुभदाता
चाश चाख वाम दिशि लेई * मनहु सकल मङ्गल कहि देई

ऐसी बरात बनी थी कि कहते नहीं बनती। कल्याण के देनेवाले सुन्दर सगुन बराबर हो रहे थे। बाइं ओर नीलकण्ठ पक्षी चारा लिए मानो यह कह रहा था कि सब मंगल ही मंगल हैं।

दाहिन काग सुखेत सुहावा * नकुल दरश सबकाहू पावा
सानुकूल बह त्रिविध बयारी * सघट सबाल आव वर नारी

दाहिनी ओर खेत में कौआ बैठा था। नेवले का दर्शन सब किसी ने पाया। शीतल, मन्द, सुगन्ध, तीनों प्रकार की हवा सामने से आ रही थी और घड़ा लिये अपने बालक के साथ सोहागिन सुन्दरी स्त्री सामने आ रही थी।

लोवा फिरि फिरि दरश दिखावा * सुरभी सम्मुख शिशुहिं पियावा
मृगमाला दाहिन दिशि आई * मङ्गलगण जनु दीन्ह दिखाई

लोमड़ी ने लौट-लौटकर दर्शन दिया। सामने गऊ अपने बछड़े को दूध पिलाती देख पड़ी। दाहिनी ओर हरिणों के झुण्ड आये, मानो मङ्गलों के गण दिखलाई पड़े।

क्षेमकरी कह क्षेम विशेखी * श्यामा वाम सुतरु पर देखी

सन्मुख आयो दधि अरु मीना * कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना

चील्ह ने बोलकर मानो बतलाया कि सब कुशल है। बाईं ओर अच्छे वृक्ष पर श्यामा चिड़िया देख पड़ी। सामने से दही और मछली आई तथा हाथ में पुस्तक लिये दो विद्वान् ब्राह्मण देख पड़े।



मङ्गलमय कल्याणमय, अभिमत फलदातार।
जनु सब साँचे होन हित, भये शकुन इकबार॥

मङ्गल और कल्याण के सूचक, मनचाहा फल देनेवाले सब सगुन मानो सच्चे होने के लिए एक साथ ही देख पड़े।

मङ्गल शकुन सुगम सब ताके * सगुण ब्रह्म सुन्दर सुत जाके
रामसरिस वर दुलहिनि सीता * समधी दशरथ जनक पुनीता

सच तो यह है कि उसके लिए सभी मंगल और सगुन सहज सुलभ हैं, जिनका सुन्दर पुत्र सगुण ब्रह्म ही है। जिसमें राम-जैसा दूलह और जानकी-सी दुलहिन तथा दशरथ और जनक-जैसे पवित्र समधी हैं।

सुनि अस ब्याह शकुन सब नाचे * अब कीन्हे विरञ्चि हम साँचे
यहि विधि कीन्ह बरात पयाना * हय गज गाजहिं हनहिं निशाना

ऐसा ब्याह सुनकर सब सगुन प्रसन्नता से मानो नाचने लगे कि ब्रह्मा ने अब हमको सच्चा किया—सब लोग हमें सच मानेंगे। इस प्रकार बरात चली, जिसमें घोड़े, हाथी गरजते और बाजे बजते थे।

आवत जानि भानुकुलकेतू * सरितन जनक बँधाये सेतू
बीच बीच बर बास बनाये * सुरपुरसरिस सम्पदा छाये

सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ महाराज दशरथजी को आते जान राजा जनक ने नदियों में पुल बँधवा दिये। रास्ते में टिकने को उत्तम स्थान बनवा दिये, जो इन्द्र की नगरी अमरावती के समान सम्पदाओं से भरे थे।

असन शयन वर वसन सुहाये * पावहिं सब निज निज मनभाये
नित नूतन सुख लखि अनुकूला * सकल बरातिन मन्दिर भूला

उत्तम सुहावने भोजन, पलँग और वस्त्र सब अपने मनभाये पाते चले जाते थे। अपनी रुचि के अनुसार नित्य नया सुख देख सब बरातियों को अपना घर भूल गया।



आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निशान।
सजि गज रथ पदचर तुरँग, लेन चले अगवान॥

बाजों का गहगहाना सुन जनकपुर के लोग उत्तम बरात आती जान घोड़े, हाथी, रथ और पैदलों को साज अगवानी लेने चले।

कनक कलश कल कोपर थारा * भोजन ललित अनेक प्रकारा
भरे सुधासम सब पकवाना * भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाना

सोने के मनोहर कलश, कटोरा, थाल आदि अनेक प्रकार के सुन्दर बर्तन, जिनमें भाँति-भाँति के पकवान अमृत के समान भरे थे, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

फल अनेक बर वस्तु सुहाईं * हरषि भेंटहित भूप पठाईं
भूषण वसन महामणि नाना * खगमृगहयगज बहुबिधियाना

तथा बहुत-से फल और सुहावनी उत्तम वस्तुएँ राजा जनक ने प्रसन्न हो भेंट के लिए भेजीं। बहुत-से आभूषण, वस्त्र, बड़े-बड़े रत्न, पक्षी, हरिण, घोड़े, हाथी और बहुत प्रकार की सवारियाँ,

मङ्गल शकुन सुगन्ध सुहाये * बहुत भाँति महिपाल पठाये
दधि चिउरा उपहार अपारा * भरि भरि काँवरि चले कहारा

तथा बहुत प्रकार की सुहावनी केवड़ा, गुलाब आदि सुगन्धित वस्तुएँ मंगल और शकुन के लिए राजा ने भेजीं। दही और चूड़े आदि बहुत-सा नज़राना बहँगियों में भरकर कहार लोग ले चले *।

अगवानन जब दीख बराता * उर आनन्द पुलक भर गाता
देखि बनावसहित अगवाना * मुदित बरातिन हने निशाना

अगवानी लेने को आये हुए जनातियों ने जब बरात देखी तो उनके मन में आनन्द हुआ और देह में रोमांच हो आया। बरातियों ने जनातियों को सजकर आते देख प्रसन्न हो बाजे बजवाये।



हरषि परस्पर मिलनहित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनन्दसमुद्र दुइ, मिलत बिहाय सुबेल॥

और प्रसन्न होकर परस्पर मिलने के लिए कुछ बगमेल (आड़ी पाँति या अस्त-व्यस्त) होकर चले। उस समय जान पड़ा, मानो आनन्द के दो समुद्र अपनी-अपनी सीमाएँ छोड़ मिलने जा रहे हैं।

बरषि सुमन सुरसुन्दरि गावहिं * मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं
वस्तु सकल राखीं नृप आगे * बिनय कीन्ह तिन अति अनुरागे

अप्सराएँ फूल बरसाकर गाने लगीं और देवता प्रसन्न होकर नगाड़े बजाने लगे। कन्यापक्ष के लोगों ने सब वस्तुएँ राजा के आगे रख दीं और बड़े प्रेम से विनती की।

* मिथिला में दही-चूड़ा अब भी उत्तम भोजन माना जाता है और इसका बहुत चलन है।

प्रेम समेत राउ सब लीन्हा * भै बखशीश याचकन दीन्हा
करि पूजा मान्यता बड़ाई * जनवासे कहँ चले लिवाई

राजा ने सब सामग्री प्रेमसहित स्वीकार की और मँगतों को बकसीस-निछावर दी। फिर राजा की पूजा, सत्कार और बड़ाई कर जनवासे को लिवा ले चले।

बसन विचित्र पाँवड़े परहीं * देखि धनद धनमद परिहरहीं
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा * जहँ सबकहँ सब भाँति सुपासा

राह में चित्र-विचित्र कपड़ों के पाँवड़े पड़ रहे थे; जिन्हें देख कुबेर ने भी अपने धनी होने का अभिमान छोड़ दिया। जनवासा बहुत सुन्दर दिया गया, जहाँ कि सबको सब प्रकार का सुपास था।

जानी सिय बरात पुर आई * कछु निजमहिमा प्रकट जनाई
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई * भूप पहुनई करन पठाई

सीताजी ने जब जाना कि जनकपुर में बरात आ गई तो कुछ अपनी महिमा प्रकट करके जनाइ। उन्होंने सब सिद्धियों को याद करके बुला लिया और उन्हें राजा दशरथ की पहुनाई करने को भेज दिया।


सियआयसु शिर सिद्धिधरि, गईं जहाँ जनवास।
लिये सम्पदा सकल सुख, सुरपुरभोगविलास॥

सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सिर-आँखों पर रख देवपुरी का-सा भोग-विलास तथा सम्पदा और सब तरह का सुख लिये जनवासे में पहुँच गईं।

निजनिज वास विलोकि बराती * सुरसुखसकलसुलभसब भाँती
विभव भेद कछु काहु न जाना * सकल जनककर करहिं बखाना

बरातियों ने अपना-अपना स्थान देखा तो उन्होंने वहाँ देवलोक के सब सुख सब प्रकार सहज सुलभ पाये। इस विभव के होने का रहस्य किसी ने नहीं जाना। सब राजा जनक की ही बड़ाई करने लगे; क्योंकि उन्हें यह नहीं मालूम था कि यह सब लक्ष्मी का अवतार जानकीजी की करामात है।

सियमहिमा रघुनायक जानी * हरषे हृदय हेतु पहिंचानी
पितुआगमन सुनत दोउ भाई * हृदय न अति आनन्द समाई

श्रीरघुनाथजी ने सीताजी की महिमा जानी तो उसका कारण जान मन में प्रसन्न हुए। दोनों भाइयों को पिता का आना सुन बड़ा आनन्द हुआ। वह आनन्द इतना अधिक था कि हृदय में नहीं समाता।

सकुचन कहि न सकत गुरुपाहीं * पितु दर्शन लालच मन माहीं

विश्वामित्र विनय बड़ि देखी * उपजा उर सन्तोष विशेषी

मन में तो पिताजी को देखने की बड़ी उत्कण्ठा थी, परन्तु संकुच के मारे गुरुजी से कुछ कह नहीं सकते थे। विश्वामित्रजी उनके मन का भाव जान और बड़ी नम्रता देख हृदय में बहुत सन्तुष्ट हुए।

हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये * पुलकि अङ्ग लोचन जल छाये
चले जहाँ दशरथ जनवासे * मनहु सरोवर तकेउ पियासे

मुनि ने दोनों भाइयों को प्रसन्न होकर छाती से लगाया, जिससे उनकी देह में रोमांच हो आया और नेत्रों में आनन्द के आँसू छा गये। तब वह जनवासे में जहाँ महाराज दशरथ थे वहाँ राम और लक्ष्मण को लेकर चले, मानो प्यासे ने तालाब की राह ली।


भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतनसमेत।
उठे हरषि सुखसिन्धुमहँ, चले थाहसी लेत॥

राजा दशरथ ने जब देखा कि पुत्रों (राम और लक्ष्मण)-सहित विश्वामित्र मुनि आते हैं, तो वह प्रसन्नता से उठ खड़े हुए और सुखरूपी समुद्र में थाह-सी लेते हुए धीरे-धीरे चले।

मुनिहिं दण्डवत कीन्ह महीशा * बार बार पदरज धरि शीशा
कौशिक राउ लिये उर लाई * कहि अशीश पूछी कुशलाई

मुनि के चरणों की रज बार बार सिर से लगाकर राजा ने दण्डवत् प्रणाम किया। विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगाया और असीस देकर कुशल पूछी।

पुनि दण्डवत करत दोउ भाई * देखि नृपतिउर सुख न समाई
सुत हिय लाय दुसह दुख मेटे * मृतक शरीर प्राण जनु भेंटे

फिर दोनों भाइयों को दण्डवत् करते देख राजा के हृदय में सुख न समाया। उन्होंने पुत्रों को छाती से लगाकर उनके वियोग का कठिन दुःख दूर किया, मानो मरी हुई देह को फिर प्राणों से भेंट हुई।

पुनि वशिष्ठपद शिर तिन नाये * प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये
विप्रवृन्द वन्दे दुहुँ भाई * मनभावति अशीश तिन पाई

फिर राम-लक्ष्मण ने वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया, और मुनिश्रेष्ठ ने प्रेम से प्रसन्न हो उन्हें छाती से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने और सब ब्राह्मणों की वंदना की और उनसे भी मनभावने आशीर्वाद पाये।

भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा * लिये उठाय लाय उर रामा
हरषे लषण देखि दोउ भ्राता * मिले प्रेमपरिपूरण गाता

भरत ने छोटे भाई शत्रुघ्नसहित रामजी को प्रणाम किया और रामजी ने उन्हें उठाकर

हृदय से लगा लिया। लक्ष्मण भी दोनों भाइयों को देख प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्ण हृदय से उनसे मिले।



पुरजन परिजन जातिजन, याचक मन्त्री मीत।
मिले यथाविधि सबहिं प्रभु, परम कृपालु विनीत॥

नगरवासी, प्रजा, जाति के लोग, मँगता, मंत्री, मित्र आदि सबको जैसा चाहिए, उसी प्रकार श्रीरामजी मिले; क्योंकि वह बड़े कृपालु और नम्र थे।

रामहिं देखि बरात जुड़ानी * प्रीति कि रीति न जाय बखानी
नृपसमीप सोहहिं सुत चारी * जनु धनधर्मादिक तनुधारी

श्रीरामजी को देख बरात के सभी लोगों का हृदय शीतल हुआ। स्नेह की रीति ही ऐसी है जो कही नहीं जा सकती। चारो पुत्र राजा के पास ऐसे सोहते थे, मानो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देह धारण किये विराजमान हों।

सुतनसहित दशरथकहँ देखी * मुदित नगरनरनारि विशेखी
सुमन बरषिसुरहनहिं निशाना * नाकनटी नाचहिं करि गाना

नगर के स्त्री-पुरुष पुत्रोंसहित महाराज दशरथ को देख बहुत प्रसन्न हुए। देवता लोग फूलों की वर्षा कर बाजे बजाने लगे और स्वर्ग की नटियाँ (अप्सराएँ) गा-गाकर नाचने लगीं।

शतानन्दअरु विप्रसचिवगन * मागध सूत विदुष वन्दीजन
सहित बरात राउ सनमाना * आयसु माँगि चले अगवाना

अगवानी के लिए आये हुए राजा जनक के पुरोहित शतानन्द, ब्राह्मणों और मन्त्रियों के झुंड, पुराण बाँचनेवाले, भाट, भाँड़, जागा आदि ने बरातसहित राजा का सम्मान किया और उनसे आज्ञा लेकर लौट गये।

प्रथम बरात लगन ते आई * ताते पुर प्रमोद अधिकाई
ब्रह्मानन्द लोग सब लहहीं * बढ़हु दिवसनिशिविधिसन कहहीं

लगन से पहले बरात आई थी, इससे जनकपुर में आनन्द अधिक था। सब लोग श्रीरामचन्द्र को देखकर ब्रह्मानन्द के समान परम आनन्द में मगन थे और विधाता से कहते थे कि रात-दिन बड़े कर दीजिए।



राम सीय शोभाअवधि, सुकृतअवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहँ अस, मिलि नरनारिसमाज॥

जनकपुर के स्त्री-पुरुषों के झुंड मिलकर जहाँ-तहाँ ऐसा कहते थे कि शोभा की हद तो श्रीरामजी और सीताजी हैं और पुण्य की सीमा दशरथ और जनक दोनों राजा हैं।

जनक सुकृतमूरति वैदेही * दशरथसुकृत राम धरि देही
इनसम काहु न शिव आराधे * काहु न इनसमान फलसाधे

राजा जनक के पुण्य की मूर्ति तो जानकीजी हैं और राजा दशरथ के पुण्य ने श्रीरामजी की देह धरी है। इन राजाओं के समान किसी ने शिवजी की आराधना नहीं की और न किसी ने इतना फल ही पाया।

इनसम कोउ न भयो जगमाहीं * है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं
हम सब सकल सुकृत की रासी * भये जग जनमि जनकपुरवासी

संसार में इनके समान न कोई हुआ है, न है, और न होगा। हम सब लोगों ने भी बड़े पुण्य किये हैं जो संसार में जन्म लेकर जनकपुर के निवासी हुए।

जिन जानकीरामछवि देखी * को सुकृती हम सरिस विशेखी
पुनि देखब रघुवीर विवाहू * लेब भली विधि लोचनलाहू

हमने श्रीजानकीजी और श्रीरामजी की शोभा देखी है। हमारे बराबर पुण्यात्मा कौन है? फिर हम श्रीरघुनाथजी का विवाह देखेंगे और अच्छी तरह नेत्रों का लाभ उठावेंगे।

कहहिं परस्पर कोकिलबयनी * यहि विवाह बड़लाहु सुनयनी
बड़े भाग विधि बात बनाई * नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई

कोयल की-सी मीठी वाणीवाली और सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ परस्पर कहती थीं कि इस विवाह में बड़ा लाभ है। विधाता ने बड़े भाग्य से यह बात बनाई है—अब ये दोनों भाई कुछ दिन हमारी आँखों के आगे रहेंगे—हम इनको देखकर अपने नेत्रों को सफल करेंगी।


बारहिं बार सनेहवश, जनक बुलाउब सीय।
लेन आइहैं बन्धु दोउ, कोटि काम कमनीय॥

फिर व्याह के बाद भी राजा जनक स्नेह के वश हो बारंबार जानकीजी को बुलावेंगे। तब करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर दोनों भाई अवश्य सीताजी को विदा कराने आवेंगे।

विविध भाँति होइहि पहुनाई * प्रिय न काहि अस सासुर माई
तब तब रामलषणहिं निहारी * होइहहिं सब पुरलोग सुखारी

भाँति-भाँति की पहुनाई होगी। मैया, ऐसी ससुराल किसको प्यारी नहीं लगती; तब-तब श्रीराम-लछमण को देख पुर के सब लोग सुखी होंगे।

सखि जस रामलषणकर जोटा * तैसेइ भूपसङ्ग दुइ ढोटा
श्याम गौर सब अङ्ग सुहाये * ते सब कहहिं देखि जे आये

हे सखी, जैसी जोड़ी राम-लछमण की है, वैसे ही राजा दशरथ के साथ दो कुमार और हैं। साँवले और गोरे तथा सब अङ्गों से सुहावने हैं। उन्हें जो देख आये हैं, वे सब ऐसा कहते हैं।

कहा एक मैं आजु निहारे * जनु विरञ्चि निज हाथ सँवारे
भरत राम एकहि अनुहारी * सहसा लखि न सकहिं नरनारी

एक ने कहा कि मैंने आज देखा है, मानो ब्रह्मा ने उनको अपने हाथ से बनाया है। भरत और श्रीरामजी एक ही प्रकार के हैं, इससे एकाएक स्त्री-पुरुष उन्हें पहचान नहीं सकते।

लषण शत्रुसूदन इक रूपा * नखशिख ते सब अङ्ग अनूपा
मनभावहिं मुखबरणि न जाहीं * उपमाकहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं

लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक स्वरूप के हैं, जिनके एड़ी से चोटी तक सब अङ्ग अनुपम हैं। ऐसे मनभावने हैं कि मुख से कहे नहीं जाते—उनकी उपमा के लिए तीनों लोकों में कोई नहीं है।

हरिगीतिका छन्द

उपमा न कोउ कह दासतुलसी कतहुँ कवि कोविद कहैं।
बल विनय विद्या शील शोभासिन्धु इन सम ये अहैं॥
पुरनारि सकल पसारि अञ्चल विधिहिं वचन सुनावहीं।
ब्याहिय सुचारिउ भाइ यहि पुर हम सुमङ्गल गावहीं॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जब इनकी उपमा का कहीं कोई नहीं है, तब कवि और पण्डित कैसे वर्णन करें? ये बल, नम्रता, विद्या, शील और शोभा के सागर हैं। इससे इनके समान ये ही हैं। जनकपुर की सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाता को ये वचन सुनाती थीं कि इसी पुर में सुन्दर चारो भाई ब्याहे जायँ और हम सुन्दर मङ्गल गावें।



कहहिं परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलकतनु।
सखि सब करब पुरारि, पुण्यपयोनिधि भूप दोउ॥

जिनके नेत्रों में आनन्द के आँसू और देह में पुलकावली छाई हुई थी, वे स्त्रियाँ परस्पर कहती थीं कि हे सखी, महादेवजी सब पूरा करेंगे; क्योंकि दोनों राजा पुण्य के सागर हैं।

यहिविधि सकलमनोरथ करहीं * आनँद उमँगि उमँगि उरभरहीं
जे नृप सीय स्वयंवर आये * देखि बन्धु सब तिन सुख पाये

इस प्रकार सब मनोरथ करती और आनन्द से उमँग-उमँगकर हृदय भरती हैं। सीताजी के स्वयंवर में जो राजा लोग आये थे, उन सबोंने दोनों भाइयों को देख सुख पाया।

कहत रामयश विशद विशाला * निज निज भवन गये महिपाला
गये बीति कछु दिन यहि भाँती * प्रमुदित पुरजन सकल बराती

राजा लोग श्रीरामजी का बड़ा निर्मल यश कहते हुए अपने-अपने घर गये। इसी प्रकार सब बरातियों और जनकपुर के लोगों को आनन्द से कुछ दिन बीते।

मङ्गलमूल लगनदिन आवा * हिमऋतु अगहन मास सुहावा
ग्रह तिथि नखत योग वरवारू * लगन शोधिविधिकीन्ह विचारू

फिर हेमन्तऋतु में सुहावना अगहन का महीना, जिसमें मङ्गलों का मूल विवाह की लग्न का दिन था, आया। ब्रह्मा ने ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, वार और लग्न सब उत्तम शोधकर विचार किया।

पठै दीन्ह नारद सन सोई * गुणी जनक के गणकन जोई
सुनी सकल लोगन यह बाता * कहहिं ज्योतिषी अहहिं विधाता

और नारद के द्वारा वही मुहूर्त भेज दिया जो राजा जनक के गुणी गणित करनेवालों ने भी विचारा और ठीक किया था। सबोंने यह बात सुनी तो कहने लगे कि इसमें ज्योतिषी साक्षात् ब्रह्मा ही हैं।



धेनुधूलि बेला विमल, सकल सुमङ्गल मूल।
विप्रन कहेउ विदेह सन, जानि समय अनुकूल॥

मङ्गलों की मूल निर्मल गोधूलि की वेला को उचित समय जान ब्राह्मणों ने राजा जनक को यही लग्न बताई।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा * अब विलम्ब कर कारण काहा
शतानन्द तब सचिव बुलाये * मङ्गलकलश साजि सब लाये

राजा ने पुरोहितजी से कहा कि अब विलम्ब करने का क्या कारण है? तब पुरोहित शतानन्दजी ने मन्त्रियों को बुलाया और वे लोग मङ्गलाचार के लिए सब कलश साज लाये।

शङ्ख निशान पणव बहु बाजे * मङ्गलकलश सगुन सब साजे
सुभग सुवासिनि गावहिं गीता * करहिं वेदध्वनि विप्र पुनीता

शंख और ढोल आदि बहुत-से बाजे बजने लगे और सब लोग सगुन के लिए मङ्गल के कलश साजने लगे। सौभाग्यवती सुहागिनें गीत गाने लगीं और ब्राह्मण पवित्र वेदध्वनि करने लगे।

लेन चले सादर यहि भाँती * गये जहाँ जनवास बराती
कोशलपति कर देखि समाजू * अतिलघु लाग तिनहिं सुरराजू

इस प्रकार दशरथसहित रामचन्द्र को आदरसहित लेने चले और जहाँ जनवासे में बराती थे, वहाँ गये। महाराज दशरथ के समाज को देखकर उन्हें इन्द्र भी बहुत छोटे लगते थे।

भयो समय अब धारिय पाऊ * यह सुनि परा निशानन घाऊ
गुरुहि पूछि करि कुलविधि राजा * चले सङ्ग मुनि साजि समाजा

उन्होंने कहा—राजन्, अब समय हो गया, पधारिये। यह सुनते ही बाजों पर चोटें

पड़ने लगीं। राजा ने गुरुजी से पूछ अपने कुल की रीति भाँति की और समाज साज वशिष्ठ मुनि के साथ चले।



भाग्य विभव अवधेशकर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहसमुख, जानि जन्म निज बादि॥

अवधराज महाराज दशरथजी का भाग्य और ऐश्वर्य देख ब्रह्मा आदि देवता अपने जन्म को तुच्छ जान उन्हें सहस्रों मुखों से सराहने लगे।

सुरन सुमङ्गल अवसर जाना * बरषहिं सुमन बजाइ निशाना
शिव ब्रह्मादिक विबुधवरूथा * चढ़े विमानन नाना यूथा

जब देवताओं ने सुन्दर मङ्गल का समय जाना तो वे बाजे बजाकर फूल बरसाने लगे। श्रीशिवजी और ब्रह्मा आदि देवगण बहुत प्रकार के विमानों पर चढ़े—

प्रेम पुलक तनु हृदय उछाहू * चले विलोकन रामविवाहू
देखि जनकपुर सुर अनुरागे * निजनिजलोक सबहिं लघुलागे

तथा प्रेम से रोमाञ्चित देह और उत्साहपूर्ण हृदय से श्रीरामजी का विवाह देखने चले। जनकपुर देवताओं को प्यारा लगा—सबको अपने-अपने लोक उसके आगे तुच्छ जान पड़े।

चितवहिं चकित विचित्रविताना * रचना सकल अलौकिक नाना
नगर नारि नर रूपनिधाना * सुघर सुधर्म सुशील सुजाना

देवगण चित्र-विचित्र मंडप को चकित से देखने लगे, जिसकी सब प्रकार की रचना अलौकिक थी। नगर के स्त्री-पुरुष भी रूप की खान, सुघर, धर्मात्मा, सुन्दर, सुशील और सज्जन थे।

तिनहिं देखि सब सुर नर नारी * भये नखत जनु विधु उजियारी
विधिहिं भयो आश्चर्य विशेखी * निजकरणी कछु कतहुँ न देखी

उन्हें देख सब स्त्री-पुरुष और देवता ऐसे फीके पड़ गये, जैसे चन्द्रमा के प्रकाश में नक्षत्र। ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि उन्हें वहाँ अपना बनाया हुआ कहीं कुछ भी न देख पड़ा।



शिव समुझाये देव सब, जनि आश्चर्य भुलाहु।
हृदय विचारहु धीर धरि, सियरघुवीरविवाहु॥

तब श्रीशिवजी ने सब देवताओं को समझाया कि इस आश्चर्य में मत भूलो, किन्तु धीरज धर श्रीसीतारामजी के विवाह पर मन में विचार करो।

जिनकर नाम लेत जग माहीं * सकल अमङ्गल मूल नशाहीं
करतल होहिं पदारथ चारी * ते सिय राम कहेउ कामारी

शिवजी ने कहा—संसार में जिनका नाम लेते ही सब अमङ्गल जड़ से मिट जाते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ हाथ आते हैं, ये वही सीतारामजी हैं।

यहि विधि शम्भु सुरनसमुझावा * पुनि आगे वर बसह चलावा
देवन देखे दशरथ जाता * महामोद मन पुलकित गाता

इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाया, फिर आगे उत्तम बैल (नन्दीश्वर) को बढ़ाया। देवताओं ने महाराज दशरथ को बहुत प्रसन्नमन और प्रफुल्लित देह जाते हुए देखा।

साधु समाज सङ्ग महिदेवा * जनु तनु धरे करहिं सुर सेवा
सोहत साथ सुभग सुत चारी * जनु अपवर्ग सकल तनुधारी

साधुओं और ब्राह्मणों की मंडली उनके साथ थी, मानो देवता देह धारण किये उनकी सेवा में उपस्थित हैं। चारो सुन्दर पुत्र साथ में ऐसे सोहते थे, मानो देह धारण किये चारो मुक्तियाँ (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) हैं।

मरकत कनकवरण वर जोरी * देखि सुरन भइ प्रीति न थोरी
पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे * नृपहिं सराहि सुमन तिनवरषे

नीलम और सोने के रङ्ग की उत्तम जोड़ियाँ देख देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर श्रीरामजी को देख मन में प्रसन्न होकर उन देवताओं ने राजा की बड़ाई कर फूल बरसाये।



रामरूप नखशिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलकगात लोचन सजल, उमासमेत पुरारि॥

एड़ी से चोटी तक सुन्दर श्रीरामजी के स्वरूप को बारम्बार देख पार्वतीसहित श्रीशिवजी के नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आये और देह में पुलकावली छा गई।

केकिकण्ठद्युति श्यामल अङ्गा * तड़ितविनिन्दक बसन सुरङ्गा
ब्याह बिभूषण बिबिध बनाये * मङ्गलमय सब भाँति सुहाये

रामचन्द्रजी के साँवले अंग मोर के कण्ठ के समान चमकते थे, जिनमें बिजली को लजानेवाला सुन्दर पीताम्बर वह धारण किये थे। ब्याह के आभूषण अनेक प्रकार के थे, जो सब मङ्गलमय और सुहावने थे।

शरदविमल विधुवदन सुहावन * नयन नवल राजीवलजावन
सकल अलौकिक सुन्दरताई * कहि न जाय मन ही मन भाई

शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान सुहावना मुख था और कमल को लजानेवाली आँखें थीं। सब सुन्दरता ऐसी अनोखी और मनभावनी थी कि कही नहीं जाती।

बन्धु मनोहर सोहहिं सङ्गा * जात नचावत चपल तुरङ्गा

राजकुँवर वर बाजि नचावहिं * वंशप्रशंसक विरद सुनावहिं

मनोहर भाई लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न साथ में शोभायमान थे, जो चञ्चल घोड़ों को नचाते चले जाते थे। राजकुमार उत्तम घोड़ों को नचाते थे। वंश की बड़ाई करनेवाले भाट लोग विरदावली सुनाते थे।

जेहि तुरंग पर राम विराजे * गति विलोकि खगनायक लाजे
कहि न जाय सब भाँति सुहावा * बाजिवेष जनु काम बनावा

जिस घोड़े पर श्रीरामजी विराजमान थे, उसकी चाल देख गरुड़ भी लज्जित होते थे। वह सब प्रकार से ऐसा सुहावना था कि उसका बखान नहीं किया जा सकता। मानो घोड़े का वेष बनाये साक्षात् कामदेव ही हो।

हरिगीतिका छन्द

जनु बाजिवेष बनाय मनसिज रामहित अति सोहही।
अपने सुवय बल रूप गुण गति सकल भुवन विमोहही॥
जगमगति जीनजड़ावज्योति सुमोतिमाणिक तेहि लगे।
किङ्किणिललाम लगामललितविलोकि सुर नर मुनिठगे॥

मानो घोड़े का वेष बनाकर कामदेव ही श्रीरामजी के लिए अधिक शोभायमान था। वह अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चाल से सब लोकों को मोहित कर रहा था। जड़ाऊ जीन की ज्योति जगमगा रही थी; क्योंकि उसमें सुन्दर मोती और मणि लगे थे तथा सुन्दर घुँघुरू बँधे थे। मनोहर लगाम लगी थी, जिसे देवता, मनुष्य और मुनि ठग-से देखते रह जाते थे।



प्रभुमनसहिं लवलीनमन, चलत बाजि छबिपाव।
भूषण उडुगण तड़ितघन, जनु वर बर्हि नचाव॥

श्रीरामजी की इच्छा के अनुसार चलता हुआ घोड़ा ऐसा शोभायमान था, मानो आभूषणरूपी तारों और पीताम्बररूपी बिजलीसहित रामरूपी बादल को देख उत्तम मोर नाच रहा हो।

जेहि वर बाजि राम असवारा * तेहि शारदहु न वरणै पारा
शङ्कर रामरूप अनुरागे * नयन पंचदश अतिप्रिय लागे

जिस उत्तम घोड़े पर श्रीरामजी सवार थे, उसका वर्णन करके सरस्वतीजी भी पार नहीं पा सकतीं। श्रीरामजी के स्वरूप में शिवजी की ऐसी प्रीति हुई कि अपनी (पाँच मुख होने के कारण) पन्द्रह आँखें उन्हें बहुत प्यारी लगीं।

हरि हित सहित राम जब जोहे * रमासमेत रमापति मोहे

निरखि रामछबि विधि हरषाने * आठै नयन जानि पछिताने

जब लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुजी ने स्नेहसहित श्रीरामजी को देखा तो लक्ष्मीसहित मोहित हो गये। ब्रह्माजी श्रीरामजी की शोभा देख प्रसन्न हुए, परन्तु अपने केवल आठ ही नेत्र जान पछताने लगे कि मेरे और अधिक नेत्र क्यों न हुए।

सुरसेनप उर बहुत उछाहू * विधि के डेवढ़े लोचन लाहू
रामहिं चितव सुरेश सुजाना * गौतमशाप परमहित माना

देवताओं के सेनापति स्वामिकार्त्तिकजी के मन में बड़ा उत्साह था; क्योंकि उनके ब्रह्माजी से ड्योढ़े बारह नेत्र थे। श्रीरामजी को देखते हुए चतुर इन्द्र ने गौतमजी के (हजार नेत्र होने के) शाप को अपना बड़ा हित समझा।

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं * आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं
मुदित देवगण रामहि देखी * नृपसमाज दुहुँ हर्ष विशेखी

सब देवता इन्द्र को सिहाते थे कि आज सहस्राक्ष इन्द्र के बराबर कोई नहीं है। देवगण श्रीरामजी को देख प्रसन्न हुए तथा महाराज दशरथ और जनक दोनों के समाजों में बड़ा आनन्द छा गया।

हरिगीतिका छन्द

अतिहर्ष राजसमाज दुहुँ दिशि दुन्दुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमनसुरहरषिकहि जयजयति जयरघुकुलमनी ॥
यहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुबासिन बोलि परिछनहेतु मङ्गल साजहीं ॥

दोनों राजसमाजों में बड़ी प्रसन्नता थी। बहुत-से नगाड़े बज रहे थे। देवता प्रसन्न हो फूलों की वर्षा करते और कहते थे कि रघुवंशियों में रत्न श्रीरामजी की जय हो। इसी प्रकार बहुत-से बाजे बजने के शब्द से बरात आती हुई जान रानी सुनयना सौभाग्यवती स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिए मंगल साज सजने लगीं।


सजि आरती अनेक विधि, मङ्गल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछन करन, गजगामिनिवरनारि ॥

अनेक प्रकार की आरती साज और सब मंगल की वस्तुएँ उनमें रखकर गजगामिनी सुन्दर स्त्रियाँ प्रसन्न हो परछन करने चलीं।

बिधुबदनी मृगशावकलोचनि * सबनिजतनुछबिरतिमदमोचनि
पहिरे बरण बरण बर चीरा * सकल विभूषण सजे शरीरा

सब स्त्रियाँ चन्द्रमुखी, मृगनयनी तथा अपनी देह की शोभा से रति का अभिमान मिटानेवाली थीं। वे रङ्गविरङ्ग अच्छे कपड़े पहने और देह में सब आभूषण सजे थीं।

सकल सुमङ्गल अङ्ग बनाये * करहिं गान कलकण्ठ लजाये
कङ्कण किङ्किणि नूपुर बाजहिं * चालविलोकि कामगज लाजहिं

वे नारियाँ सब अङ्गों को सुन्दर मङ्गलमय सिंगारों से सजाये, कोकिला को लजाती-सी गान करती चली जाती थीं। उनके कंगन, करधनी, नूपुर आदि गहने बजते थे तथा चाल देखकर कामदेव के सुन्दर हाथी भी लज्जित होते थे।

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा * नभ अरु नगर सुमङ्गलचारा
शची शारदा रमा भवानी * जे सुरतिय शुचि सहज सयानी

अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा आकाश और नगर में सुन्दर मङ्गलाचार हो रहे थे। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती तथा सहज ही पवित्र और भी जो चतुर देवतों की स्त्रियाँ हैं,

कपट नारि वर वेष बनाई * मिलीं सकल रनिवासहि आई
करहिं गान कल मङ्गलबानी * हरषविवश सब काहु न जानी

वे सब माया से उत्तम स्त्रियों का वेष बनाकर आकर जनक के रनिवास में मिल गईं और मनोहर वाणी से गाने लगीं। सब स्त्रियाँ आनन्द में बेसुध थीं, इससे किसी ने उन्हें जाना नहीं।

हरिगीतिका छन्द

को जान केहि आनन्दवश सब ब्रह्म वर परिछन चलीं।
कलगान मधुर निशान वरषहिं सुमन सुर शोभा भलीं॥
आनन्दकन्द विलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भईं।
अम्भोज अम्बक अम्बु उमँगि सुअङ्ग पुलकावलि छईं॥

कौन किसे जाने? सब आनन्द के वश हो दूलह परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी की परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा था और मधुर ध्वनि से बाजे बज रहे थे। देवता लोग फूल बरसाते जाते थे। ऐसी सुन्दर शोभा उस समय हो रही थी। आनन्द के मूल दूलह श्रीरामजी को देख सब मन में प्रसन्न हुईं। उनके कमल के समान नेत्रों से आनन्द के आँसू उमड़ चले तथा सुन्दर अङ्गों में पुलकावली छा गई।



जो सुख भा सियमातुमन, देखि राम वरवेष।
सो न सकहिं कहि कल्पशत, सहस शारदा शेष॥

दूलह के वेष में श्रीरामजी को देख सीताजी की माता के मन में जो सुख हुआ, उसे सहस्रों सरस्वती और शेषजी भी सैकड़ों कल्पों तक नहीं कह सकते।

नयननीर हठि मङ्गल जानी * परिछन करहिं मुदितमन रानी

वेदविहित अरु कुलआचारू * कीन्ह भलीविधि सब व्यवहारू

मङ्गल का समय जान नेत्रों का जल (आनन्द के आँसू) रोककर रानी सुनयना प्रसन्नमन हो परछन करने लगीं। जैसा वेद में लिखा है और जैसा कुल का व्यवहार है सो सब अच्छी तरह उन्होंने किया।

पञ्चशब्द धुनि मङ्गल गाना * पट पाँवड़े परहिं विधि नाना
करि आरती अर्घ्य तिन दीन्हा * राम गमन मण्डप तब कीन्हा

पाँच शब्दों की ध्वनियाँ (वेद १, विरदावली २, जयध्वनि ३, शङ्ख ४, बाजे ५) और गान होने लगे तथा राह में कपड़ों के पाँवड़े पड़ने लगे। उन्होंने आरती करके अर्घ्य दिया। तब श्रीरामजी मण्डप को गये।

दशरथ सहितसमाज विराजे * विभव विलोकि लोकपति लाजे
समय समय सुर वर्षहिं फूला * शान्ति पढ़हिं महिसुर अनुकूला

वहाँ अपने समाजसहित महाराज दशरथ विराजमान हुए। उनके ऐश्वर्य को देख इन्द्र आदि लोकपाल लज्जित हुए। समय-समय पर देवता फूल बरसाते और ब्राह्मण उसी के अनुसार शान्ति और स्वस्त्ययन का पाठ करते थे।

नभ अरु नगर कोलाहल होई * आपन पर कछु सुनै न कोई
यहि विधि राम मण्डपहि आये * अर्घ्य देइ आसन बैठाये

आकाश और नगर में ऐसी धूम मची कि अपना या पराया कुछ भी शब्द कानों नहीं सुनाई देता था। इस प्रकार श्रीरामजी मंडप में आये और अर्घ्य देकर आसन पर बिठाये गये।

हरिगीतिका छन्द

बैठारि आसन आरती करि निरखि वर सुख पावहीं।
मणि वसन भूषण भूरि वारहिं नारि मङ्गल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुर वर विप्रवेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुलकमलरविछवि सफल जीवन लेखहीं॥

रानी और स्त्रियाँ आसन पर बिठाकर आरती कर दूलह श्रीरामजी को देख सुख पाती तथा रत्न, वस्त्र, आभूषण बहुत-सा न्योछावर करती और मङ्गल गाती हैं। ब्रह्मादिक देवता श्रेष्ठ ब्राह्मणों का वेष बनाकर कौतुक देखते हैं और रघुवंशरूप कमल के सूर्य श्रीरामजी की शोभा देख अपने जीवन को सफल मानते हैं।



नाऊ बारी भाट नट, रामनिछावरि पाइ।
मुदित अशीशहिं नाइशिर, हर्ष न हृदय समाइ॥

नाई, बारी, भट, नट आदि श्रीरामजी की न्योछावर पाकर प्रसन्न हो सिर नवाकर असीसते हैं। उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता।

मिले जनकदशरथ अतिप्रीती * करि वैदिक लौकिक सब रीती
मिलत यथा दोउ राज विराजे * उपमा खोजि खोजि कवि लाजे

वेद और लोकरीति सब करके राजा जनक और दशरथ बड़े प्रेम से मिले। मिलते समय जिस प्रकार वे दोनों राजा शोभायमान हुए, उसकी उपमा खोज-खोजकर कवि लजा गये।

लही न कतहुँ हारि हिय मानी * इनसम यइ उपमा उर आनी
समधी देखि देव अनुरागे * सुमन बरषि यश गावन लागे

क्योंकि उसकी उपमा उनको कहीं नहीं मिली। तब वे मन में हार मान यह उपमा मन में लाये कि इनके समान यही हैं। दोनों समधियों को देख देवताओं को प्रेम हुआ। वे फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे।

जग विरञ्चि उपजावा जब ते * देखे सुने ब्याह बहु तब ते
सकल भाँति सब साज समाजू * सम समधी देखे हम आजू

देवगण आकाश में कहने लगे कि संसार में जब से ब्रह्मा ने पैदा किया, तब से बहुत ब्याह देखे-सुने हैं, परन्तु सब प्रकार से साज-समाजसहित बराबरी के समधी हमने आज ही देखे हैं।

देवगिरा सुनि सुन्दरि साँची * प्रीतिअलौकिकदुहुँदिशिमाची
देत पाँवड़े अर्घ्य सुहाये * सादर जनक मण्डपहिं ल्याये

देवताओं की यह सुन्दर और सत्य वाणी सुन दोनों ओर अनोखी प्रीति छा गई। सुहावने पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकजी महाराज दशरथ को आदरसहित मंडप में ले आये।

हरिगीतिका छन्द

मण्डप विलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनिमन हरे।
निजपाणि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे॥
कुलइष्ट सरिस वशिष्ठ पूजे विनयकरि आशिष लही।
कौशिकहि पूजत परमप्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

मंडप की विचित्र रचना और सुन्दरता देख मुनियों के मन भी मोहित हो गये थे। सुजान जनक ने स्वयं सबको लाकर सिंहासनों पर बिठाया तथा वशिष्ठजी को कुलदेवता के समान पूजकर विनती की और उनसे आशीर्वाद पाया। फिर स्नेह की विधि से विश्वामित्रजी की पूजा की जिसका वर्णन नहीं हो सकता।



वामदेव आदिक ऋषय, पूजे मुदित महीश।
दिये दिव्यआसन सबहिं, सबसन लही अशीश॥

राजा ने प्रसन्न हो वामदेव आदि ऋषियों की पूजा की और दिव्य आसन देकर सबसे आशीर्वाद पाये।

बहुरि कीन्ह कोशलपतिपूजा * जानि ईशसम भाव न दूजा
कीन्ह जोरि कर विनय बड़ाई * कहि निज भाग्यविभवबहुताई

फिर कोशलराज महाराज दशरथजी को परमेश्वर के समान जान, दूसरा भाव न मानकर पूजा की। अपने 'अहोभाग्य' कह हाथ जोड़ विनती की और उनके ऐश्वर्य को बहुत सराहा।

पूजे भूपति सकल बराती * समधीसम सादर सब भाँती
आसन उचित दिये सबकाहू * कहौं कहा मुख एक उछाहू

राजा ने सब बरातियों का समधी ही के समान सब प्रकार से आदर सहित पूजन किया। सबको जैसे उचित थे वैसे बैठनेको आसन दिये। इस उत्साह को मैं एक मुख से कैसे कहूँ।

सकल बरात जनक सनमानी * दान मान विनती वर बानी
विधिहरिहर दिशिपति दिनराऊ * जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ

राजा जनक ने दान, सम्मान, विनती और उत्तम वचनों से सारी बरात का सत्कार किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि दिक्पाल और सूर्य, जो कि श्रीरामजी के प्रभाव को जानते हैं,

कपट विप्रवर वेष बनाये * कौतुक देखहिं अति सचुपाये
पूजे जनक देवसम जाने * दिये सुआसन बिन पहचाने

छिपकर उत्तम ब्राह्मणों का वेष किये चुपचाप तमाशा देख रहे थे। राजा जनक ने उन्हें भी देवताओं के समान जान बिना पहचाने आसन दिया और उनकी पूजा की।

हरिगीतिका छन्द

पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भई।
आनन्दकन्द विलोकि दूलह उभय दिशि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये।
अवलोकि सरल सुभाव प्रभु को विबुध मन प्रमुदित भये॥

कौन किसे जाने और पहचाने? आनन्दकन्द दूलह श्रीरामजी को देख सबको अपनी ही सुध भूल गई। दोनों ओर आनन्द ही आनन्द था। श्रीरामजी ने देवताओं को पहचान लिया और उन्हें मानसिक पूजन कर आसन दिया। देवगण श्रीरामजी का सरल स्वभाव देख मन में प्रसन्न हुए।



रामचन्द्र मुखचन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर॥

सब लोगों के सुन्दर नेत्र चकोर थे। वे चन्द्रमा के समान श्रीरामजी के मुख की शोभा को बड़े प्रेम और आनन्द से आदरसहित पी रहे थे।

समय बिलोकि बशिष्ठ बुलाये * सादर शतानन्द मुनि आये
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई * चले मुदित मन आयसु पाई

विवाह का समय आया देख वशिष्ठजी ने शतानन्दजी को बुलाया और वह सुनकर आदरसहित आये। वशिष्ठजी ने उनसे कहा कि अब जाकर कुँअरि को शीघ्र लाइए। तब शतानन्दजी आज्ञा पा मन में प्रसन्न होकर चले।

रानी सुनि उपरोहित बानी * प्रमुदित सखिनसमेत सयानी
बिप्रबधू कुलवृद्ध बुलाई * करि कुलरीति सुमङ्गल गाई

पुरोहितजी की वाणी सुन महारानी सुनयना चतुर सखियोंसहित प्रसन्न हुईं। उन्होंने ब्राह्मणियों और कुल की बड़ी बूढ़ियों को बुलाया, जो कुलाचार कर सुन्दर मंगल गीत गाने लगीं।

नारिवेष जे सुरवरवामा * सकल सुभाय सुन्दरी श्यामा
तिनहिं देखि सुख पावहिं नारी * बिन पहिचान प्राण ते प्यारी

वहाँ जो उत्तम अप्सराएँ या इन्द्राणी आदि देवताओं की स्त्रियाँ साधारण स्त्रियों के वेष में थीं, वे सब साधारण सुन्दरी और श्यामा (सोलह वर्षवाली) थीं। उन्हें देख स्त्रियाँ सुख पाती थीं। बिना पहचान के भी वे उन्हें प्राणों से प्यारी लगती थीं।

बार बार सनमानहिं रानी * उमा रमा शारद सम जानी
सीय सँवारि समाज बनाई * मुदित मण्डपहिं चलीं लिवाई

रानी उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जान बारंबार उनका आदर करती थीं। सब देवाङ्गनाएँ अपना समाज बनाकर सीताजी का ब्याह के समय का शृङ्गार कर प्रसन्न हो उन्हें मंडप में लिवा ले चलीं।

हरिगीतिका छन्द

चलि ल्याइ सीतहिं सखी सादर सजि सुमङ्गल भामिनी।
नव सप्त साजे सुन्दरी सब मत्त कुञ्जरगामिनी॥
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं कामकोकिल लाजहीं।
मञ्जीर नूपुर कलित कङ्कण तालगति वर बाजहीं॥

सखियाँ और देवाङ्गनाएँ सुन्दर मंगल साज सीताजी को ले चलीं। सब सुन्दर स्त्रियाँ सोलहों शृङ्गार सजे मस्त हाथी के समान धीमी चाल से चलीं। उनका मनोहर गाना सु

मुनियों के ध्यान छूट गये और कामदेव की कोयल लजा गई। उनके पायजेब, नूपुर और कंगन आदि गहने गाने की ताल पर बज रहे थे।



सोहति बनितावृन्द महँ, सहज सुहावनि सीय।
छबिललनागणमध्यजनु, सुषमा अति कमनीय॥

सहज सुहावनी सीताजी उन स्त्रियों के झुंड में वैसे ही सोहती थीं, जैसे छविरूपी ललनाओं के बीच में बहुत सुन्दर शोभा शोभित हो।

सिय सुन्दरता बरणि न जाई * लघुमति बहुत मनोहरताई
आवत देखि बरातिन सीता * रूपराशि सब भाँति पुनीता

सीताजी की सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती; क्योंकि मुझमें बुद्धि थोड़ी है और उनमें मनोहरता बहुत है। सब प्रकार से पवित्र, तेज की राशि सीताजी को बरातियों ने आते देखा।

सबन मनहिमन कीन्ह प्रणामा * देखि राम भये पूरणकामा
हरषे दशरथ सुतनसमेता * कहि न जाइ उर आनँद जेता

सभी ने मन ही मन सीताजी को प्रणाम किया। उन्हीं के साथ श्रीरामजी को देख सबकी कामनाएँ पूरी हुई। पुत्रोंसहित राजा दशरथ सीताजी को देख प्रसन्न हुए। उस समय उनके हृदय में जितना आनंद हुआ, वह कहा नहीं जा सकता।

सुर प्रणाम करि वर्षहिं फूला * मुनि अशीशध्वनि मङ्गलमूला
गान निशान कोलाहल भारी * प्रेमप्रमोदमगन नरनारी

देवता लोग प्रणाम करके फूल बरसाने लगे और मुनि लोग मङ्गलमय आशीर्वाद देने लगे। गाना-बजाना हो रहा था। बाजे बज रहे थे। शोर-गुल मच रहा था। स्त्री-पुरुष सब प्रेम और आनन्द में मग्न हो रहे थे।

यहि विधि सीय मण्डपहि आई * प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई
तेहि अवसर करि विधि व्यवहारू * दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू

इस प्रकार सीताजी मण्डप में आई। तब मुनिराज प्रसन्न होकर स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ करने लगे। दोनों कुलों के गुरुओं ने विधि से सब शिष्टाचार और वेद की रीति से आचार किये।

हरिगीतिका छन्द

आचार करि गुरु गौरि गणपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रकट पूजा लेहिं देहिं अशीश अतिसुख पावहीं॥
मधुपर्क मङ्गल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन में चहैं।
भरे कनक कोपर कलश सब कर लिये परिचारक रहैं॥

गुरु ने प्रसन्न हो आचारकर गौरी, गणेश और ब्राह्मणों की पूजा वर-वधू से करवाई और देवतों ने प्रत्यक्ष हो पूजा ले आशीर्वाद देकर बड़ा सुख पाया। शतानन्द और वशिष्ठ जो मधुपर्क आदि मंगल की वस्तुएँ मन में चाहते हैं, उन सबको सेवक सोने के कटोरों और कलशों में भरे हाथों में लिये हाजिर रहते हैं।

कुलरीति प्रीतिसमेत रवि कहि देत सब सादर किये।
यहि भाँति देव पुजाइ सीतहिं सुभग सिंहासन दिये॥
सियरामअवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै।
मन बुद्धि वर वाणी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै॥

सूर्यजी अपने वंश की रीति स्नेहसहित कह देते हैं और सब लोग उसे आदरसहित करते हैं। पुरोहितों ने इस प्रकार देवताओं को पुजवाकर सीताजी को सुन्दर सिंहासन पर बिठाया। सीताजी और श्रीरामजी परस्पर देखकर प्रेम में मग्न हो रहे थे। उनके उस प्रेम को कोई नहीं लख पाया; सिया-राम का प्रेम मन, बुद्धि और वाणी से परे है। उसे कवि कैसे प्रकट कर सकता है?



होमसमयतनुधरिअनल, अतिसुख आहुति लेहिं।
विप्रवेष धरि वेद सब, कहि विवाहविधि देहिं॥

अग्नि भगवान् होम के समय सशरीर प्रकट होकर बड़े सुख से आहुतियाँ लेते थे और सब वेद ब्राह्मणों का वेष धरकर विवाह की विधि कह देते थे।

जनक पाटमहिषी जग जानी * सीयमातु किमि जाय बखानी
सुयश सुकृत सुख सुन्दरताई * सब समेटि विधि रची बनाई

राजा जनक की पटरानी और सीताजी की माता संसार में प्रसिद्ध हैं। वे कैसे वर्णन की जा सकती हैं; क्योंकि यश, पुण्य, सुख और सुन्दरता, इन सबको संसार भर से समेटकर विधाता ने उन्हें रचा है।

समय जानि मुनिवरन बुलाईं * सुनत सुवासिनि सादर ल्याईं
जनकवामदिशि सोह सुनैना * हिमगिरिसंग बनी जनु मैना

कन्यादान का समय जान मुनीश्वरों ने उनको बुलाया। तब सुनते ही सुहागिनें आदरसहित रानी को ले आईं। रानी सुनयना राजा जनक की बाईं ओर शोभायमान हुईं, जैसे हिमवान् के साथ उनकी पत्नी मैना।

कनककलश मणिकोपर रूरे * शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे
निजकर मुदित राउ अरु रानी * धरे राम के आगे आनी

सोने के कलश, जिन पर रत्नों के कटोरे रखे थे, जो पवित्र सुगन्धित मंगलमय जल से

भरे थे, राजा और रानी ने प्रसन्न हो अपने हाथ से श्रीरामजी के आगे लाकर रख दिये।

पढ़हिं वेद मुनि मंगलबानी * गगनसुमनझरि अवसर जानी
बर विलोकि दम्पति अनुरागे * पाँय पुनीत पखारन लागे

मुनि लोग मंगलवाणी से स्वरसहित वेद पढ़ने लगे और समय जान आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। राजा और रानी वर को देख बहुत प्रेम से रामचन्द्र के पवित्र चरणों को पखारने लगे।

छन्द

लागे पखारन पाँय पंकज प्रेमतनु पुलकावली।
नभनगरगाननिशानजयधुनिउमँगिजनुचहुँदिशिचली॥
जे पदसरोज मनोजअरिउरसर सदैव विराजहीं।
जे सकृत सुमिरत विमलतामनसकलकलिमल भाजहीं॥

जब महाराज जनक रामचन्द्रजी के चरणारविन्दों को पखारने लगे, तब प्रेम से उनकी देह में रोमांच हो आया। उस समय आकाश और नगर में गाने, बजाने और जयजयकार की ध्वनि मानो चारों ओर उमड़ चली। जो चरणारविन्द श्रीशिवजी के मनरूपी सरोवर में सदा विराजते हैं, जिनको एक बार भी स्मरण करने से मन निर्मल हो जाता है और सब कलियुग के पाप भाग जाते हैं—

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरन्द जिनको शम्भुशिर शुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुपमन मुनि योगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनजनक जय जय सब कहैं॥

जिनके लगते ही गौतम मुनि की स्त्री पापिन अहल्या ने अच्छी गति पाई, जिनका मकरंद अर्थात् धोवन गंगाजी श्रीशिवजी के सिर में विराजमान हैं—ऐसा देवता कहते हैं तथा मुनि और योगीजन अपने मन को भौंरा बनाकर जिनकी सेवा से मनोवाञ्छित गति पाते हैं, उन्हीं रामजी के चरणारविन्दों को भाग्यशाली जनकजी पखारते हैं और सब लोग जय-जय कहते हैं।

बरकुँवरि करतल जोरि शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं।
भयो पानिगहन विलोकिविधिसुरमनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलह देखि दम्पति पुलकि तनु हुलसैं हिये।
करि लोकबेद विधान कन्यादान नृपभूषण दिये॥

दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या का हाथ तले-ऊपर रखकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण की विधि देख देवता, मनुष्य, मुनि आदि आनन्द से भर गये। राजा जनक और रानी सुनयना आनन्दकन्द दूलह श्रीरामचन्द्र को देख इतने आनन्दित हुए कि उनके हृदय में हुलास और शरीर भर में रोमांच हो आया। फिर लोक और वेदरीति कर राजाओं में रत्न जनक ने कन्यादान किया।

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहिं हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक सिय रामहिं समर्पी विश्वकलकीरति नई॥
किमि करैं विनय विदेह कीन्ह विदेह मूरति साँवरी।
करि होम विधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भाँवरी॥

जैसे हिमवान् ने शिव को पार्वती और समुद्र ने विष्णु को लक्ष्मी दी थी, वैसे ही जनक ने श्रीरामजी को सीता सौंपी। संसार में यह सुन्दर नई कीर्ति फैल गई। जनक कैसे विनती करें; क्योंकि घनश्याम श्रीरामजी ने आज उन्हें सचमुच विदेह (अर्थात् देह की सुधबुध से रहित) कर दिया। विधिपूर्वक होम करके गाँठ जोड़ दी गई और भाँवरें होने लगीं।



जयध्वनि बन्दी वेदध्वनि, मंगलगान निशान।
मुनि हरषहिं बरषहिं विबुध, सुरतरुसुमन सुजान॥

जयध्वनि, भाटों के कवित्तों का शब्द, वेदध्वनि, मङ्गलाचारों के गाने का शब्द और बाजों का शब्द सुन चतुर देवता प्रसन्न होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाते थे।

कुँवरि कुँवर कल भाँवरि देहीं * नयनलाभ सब सादर लेहीं
जाइ न बरणि मनोहर जोरी * जो उपमा कछु कहिय सो थोरी

कन्या और वर मनोहर भाँवरें देते और सब लोग आदरसहित नेत्रों का लाभ लेते थे, अर्थात् देखकर नेत्रों को सफल बनाते थे। ऐसी मनोहर जोड़ी थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो उपमा कही जाय, वही थोड़ी या तुच्छ है।

राम सीय सुन्दर परछाहीं * जगमगाहिं मणिखंभन माहीं
मनहु मदन रति धरि बहुरूपा * देखहिं रामविवाह अनूपा

श्रीराम और सीताजी की सुन्दर परछाहीं मणियों के खम्भों में जगमगाती थी; मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धरकर श्रीरामजी का सुन्दर विवाह देख रहे थे।

दरश लालसा सकुच न थोरी * प्रकटत दुरत बहोरि बहोरी
भये मगन सब देखनहारे * जनकसमान अपान बिसारे

देखने की इच्छा तो है, परन्तु सकुच (भय) भी थोड़ी नहीं है (क्योंकि कामदेव को

जलानेवाले शिवजी भी तो बैठे थे), इससे बारंबार झाँकते और फिर छिप जाते थे। राजा जनक के समान सब दर्शक अपना आपा भूल मगन हो गये।

प्रमुदित मुनिन भाँवरी फेरी * नेगसहित सब रीति निबेरी
राम सीयशिर सिन्दुर देहीं * शोभा कहि न जात विधि केहीं

मुनियों ने प्रसन्न हो भाँवरें फिरवाईं और नेग-जोग के साथ सब रीति का निबटारा किया। श्रीरामजी ने सीताजी की माँग में सेंदुर भरा, जिसकी शोभा किसी प्रकार नहीं कही जा सकती।

अरुणपराग जलज भरि नीके * शशिहिभूष अहि लोभ अमीके
बहुरि वशिष्ठ दीन्ह अनुशासन * वर दुलहिनि बैठे इक आसन

मानो सर्प अमृत के लोभ से कमल में उसका लाल पराग अच्छी तरह भरकर उससे चन्द्रमा को भूषित करता है। फिर वशिष्ठजी ने आज्ञा दी तो दूलह और दुलहिन एक ही आसन पर बैठे।

छन्द

बैठे वरासन रामजानकि मुदितमन दशरथ भये।
तनु पुलकि पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरुफल नये॥
भरि भुवन रहा उछाह राम विवाह भा सबही कहा।
केहि भाँति वरणि सिरात रसना एकमुख मंगल महा॥

श्रीराम और सीताजी को अच्छे आसन पर बैठे देख महाराज दशरथ प्रसन्न हुए और अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष में नये फल देख उनके शरीर भर में रोमांच हो आया। संसार भर में उत्साह भर गया, सबने कहा कि श्रीरामजी का विवाह हुआ। मुख एक ही था और मंगल बहुत थे, फिर अकेली जीभ वर्णन करके कैसे पार पावे।

तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याहसाज सँवारिकै।
माण्डवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँवरि लईं हँकारिकै॥
कुशकेतुकन्या प्रथम जो गुण शील सुख शोभामई।
सब रीति प्रीति समेतकरि सो ब्याहि नृप भरतहिं दई॥

फिर वशिष्ठजी की आज्ञा पा राजा जनक ने विवाह का साज बनाकर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला नाम की कुमारियों को बुला लिया। अपने भाई कुशकेतु की पहली कन्या (माण्डवी) जो कि गुण, शील, सुख और शोभा से भरी थी, स्नेह और सब विधि के साथ भरत को ब्याह दी।

जानकीलघुभगिनी सकलसुन्दरिशिरोमणि जानिकै।
सो जनक दीन्हीं ब्याहि लषणहिं सकलविधिसनमानिकै॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सबगुण आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूपशीलउजागरी॥

जानकीजी की छोटी बहन (उर्मिला) को सब सुन्दरियों में शिरोमणि जान उसे जनक ने सब प्रकार आदर करके लक्ष्मण को ब्याह दिया तथा सुमुखी, सुलोचनी, सब गुणों में श्रेष्ठ, रूप और शील में पवित्र श्रुतिकीर्ति को राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया।

अनुरूप वर दुलहिनि परस्पर लखि सकुचि हिय हर्षहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहीं॥
सुन्दरी सुन्दर बरन युत सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चारिहु अवस्था विभुनसहित विराजहीं॥

दुलहे और दुलहनें अपने को परस्पर समान देख सकुचकर मन में प्रसन्न होते तथा एक दूसरे की सुन्दरता सराहते और देवता लोग फूलों की वर्षा करते थे। सुन्दरी दुलहनें और सुन्दर वर एक ही मंडप में ऐसे विराजमान थे, मानो चारो अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय) अपने स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ, अन्तर्यामी) सहित शोभायमान हों।



मुदित अवधपति सकलसुत, बधुनसमेत निहारि।
जनु पाये महिपालमणि, क्रियनसहित फलचारि॥

महाराजशिरोमणि अवधराज दशरथजी सब पुत्रों को बहुओंसहित देख, प्रसन्न हुए, मानो क्रियाओं (श्रद्धा, तपस्या, सेवा, भक्ति)-सहित चारो फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पाये हों।

जस रघुवीर ब्याहविधि वरणी * सकल कुँवर ब्याहे तेहि करणी
कहि न जाय कछु दायज भूरी * रहा कनक मणि मण्डप पूरी

जैसे श्रीरघुनाथजी के ब्याह की विधि वर्णन की गई, उसी विधि से सब कुँअर ब्याहे गये। जो कुछ दहेज दिया गया, वह इतना अधिक था कि वर्णन नहीं हो सकता। सोने और रत्नों से मण्डप भर गया।

कम्बल वसन विचित्र पटोरे * भाँति भाँति बहुमोल न थोरे
गज रथ तुरँग दास अरु दासी * धेनु अलंकृत कामदुहासी

भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे ऊनी और रेशमी कपड़े बड़े मूल्य के बहुत-से दिये। हाथी, रथ, घोड़े, दास, दासी और सजी हुई कामधेनु-सी सब कामनाएँ पूरी करनेवाली गउएँ दीं।

वस्तु अनेक करिय किमि लेखा * कहि न जाय जानहिं जिन देखा
लोकपाल अवलोकि सिहाने * लीन्ह अवधपति सब सुखमाने

बहुत-सी वस्तुएँ थीं, कैसे गिनी जावें, वही जानें जिन्होंने देखा है; कही नहीं जा सकतीं; इन्द्र और कुबेर आदि लोकपाल भी उन्हें देख सिहाते हैं। वह सब अवधराज दशरथ ने स्वीकार कर लिया और बहुत सुख माना।

दीन्ह याचकन जो जेहि भावा * उबरा सो जनवासहि आवा
तब करजोरि जनक मृदुबानी * बोले सब बरात सनमानी

भिक्षुकों को, जो जिसे अच्छा लगा, बाँट दिया और जो बचा, वह जनवासे आया। फिर राजा जनक हाथ जोड़ मीठी वाणी से सब बरात का सम्मानकर बोले।

छन्द

सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइकै।
प्रमुदित महामुनिवृन्द बन्दे पूजि प्रेम लड़ाइकै॥
शिरनाइ देव मनाइ सबसन कहत कर सम्पुट किये।
सुर साधु चाहत भावसिन्धु कि तोष जलअंजलि दिये॥

सब बरात का दान, मान, विनती और बड़ाई से सम्मान किया तथा प्रसन्न हो प्रीति से महामुनियों के समाज की वन्दना कर पूजन किया। फिर सिर नवाकर देवताओं को मना सबसे हाथ जोड़ कहने लगे—साधु देवता तो मन का सच्चा भाव चाहते हैं। क्या चुल्लू भर पानी से समुद्र संतुष्ट होता है?

करजोरि जनक बहोरि बन्धुसमेत कोशलरायसों।
बोले मनोहर वचन सानि सनेह शील सुभायसों॥
सम्बन्ध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये।
यह राज साजसमेत सेवक जानबी बिनु गथ लये॥

फिर भाई कुशकेतुसहित राजा जनक हाथ जोड़ कोशलराज दशरथजी से शील और स्नेह से मिले हुए मनोहर वचन सच्चे मन से बोले। उन्होंने कहा—राजन्, आपके सम्बन्ध से अब हम सब प्रकार बड़े हुए और ठाटबाटसहित यह सारा राज्य आपका है और हमें बिना दाम का गुलाम जानिये।

ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुणामयी।
अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीठी दयी॥
सुनि भानुकुलभूषण सकल सनमान विधि समधी किये।
कहिजात नहिं बिनती परस्पर प्रेमपरिपूरण हिये॥

दया करने योग्य इन कन्याओं को दासी समझकर पालना। महाराज, मैंने बड़ी ढिठाई की, जो इतनी दूर से आपको बुला भेजा, यह अपराध क्षमा करना। फिर सूर्यवंशियों में रत्न महाराज दशरथ ने समधी का सब प्रकार से आदर किया। दोनों राजाओं के हृदय प्रेम से भरे थे, वाणी गद्‌गद हो रही थी, गला रुँधा हुआ था, इससे बिनती नहीं की जाती थी।

वृन्दारकागण सुमन बरषहिं राउ जनवासहिं चले।
दुन्दुभि जयध्वनि वेदध्वनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखी मङ्गलगान करत मुनीश आयसु पाइकै।
दूलहदुलहिनिन सहित सुन्दरि चलीं कुहबर ल्याइकै॥

फिर महाराज दशरथ जनवासे चले, देवगण फूल बरसाने लगे तथा नगाड़े, जयजयकार और वेदध्वनि से आकाश और नगर में अच्छा उत्साह हुआ। तब गान करती हुई सुन्दरी सखियाँ मुनिराज शतानन्द की आज्ञा पा दुलहिनोंसहित दुलहों को कुहबर (लहकौरि के स्थान) में लिवा ले चलीं।



पुनिपुनि रामहिं चितव सिय, सकुचतिमन सकुचैन।
हरति मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन॥

सीताजी बारंबार श्रीरामजी को देखती और सकुचती हैं; परन्तु मन नहीं सकुचता, अर्थात् रामचन्द्र की मुख-छवि को देखना ही चाहता है। उस समय प्रेम की प्यासी आँखें मनोहर मछली की शोभा को हरती हैं।

श्याम शरीर सुभाय सुहावन * शोभा कोटि मनोजलजावन
जावक युत पदकमल सुहाये * मुनिमन मधुप रहत जहँ छाये

स्वभाव ही से सुहावनी साँवली देह की शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाती है। फिर महावर लगे हुए चरणारविन्द तो और भी सोहते हैं, जहाँ मुनियों के मन भौंरे के समान छाये रहते हैं।

पीत पुनीत मनोहर धोती * हरत बालरवि दामिनि ज्योती
कल किंकिणि कटिसूत्रमनोहर * बाहु विशाल विभूषण सोहर

पवित्र पीली धोती ऐसी मनोहर है कि सवेरे के सूर्य और बिजली की चमक-दमक को हरे लेती है। कमर में सुन्दर तागड़ी और मनोहर कटिसूत्र तथा लम्बी भुजाओं में गहने शोभायमान हैं।

पीत जनेउ महाछवि देई * कर मुद्रिका चोरि चित लेई
सोहत ब्याह साज सब साजे * उर आयत सब भूषण राजे

पीला जनेऊ बड़ी शोभा देता है और हाथ की अँगूठी तो देखनेवालों के मन को चुराये ही लेती है। ब्याह का सब साज सजे शोभायमान हैं। विशाल वक्षःस्थल में सब गहने विराजमान हैं।

पीत उपरना काँखा सोती * दुहुँ आँचरन्ह लगे मणि मोती
नयन कमल कल कुंडल काना * वदन सकल सौन्दर्यनिधाना

पीले उपरने को यज्ञोपवीत की भाँति कन्धे में किये, जिसके दोनों छोरों में मणि और मोती लगे हुए हैं। कमल के समान नेत्र हैं, कानों में सुन्दर कुण्डल पहने हैं, और मुख सुन्दरता की खान है।

सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा * भाल तिलक रुचिरुचिर निवासा
सोहत मौर मनोहर माथे * मंगलमय मुक्तामणि गाथे

सुन्दर भौंहें, मनोहर नाक तथा मस्तक में पवित्र चमकता हुआ तिलक, मांगलिक मणि और मोती जिसमें गुँथे हैं, ऐसा मनोहर मौर मस्तक पर विराजमान है।

छन्द

गाथे महामणि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुन्दर वर विलोकहिं निरखि छवि तृण तोरहीं॥
मणि वसन भूषण वारि आरति करहिं मङ्गल गावहीं।
सुर सुमन बरषहिं सूत मागध वन्दि सुयश सुनावहीं॥

मौर में बड़े-बड़े रत्न पिरोये हैं। सब अंग ऐसे मनोहर हैं कि मन को चुराये लेते हैं। जनकपुर की स्त्रियाँ सुन्दर वरों को देखती हैं और शोभा देख नजर न लग जाय, इसलिए तिनका तोड़ती हैं। वे रत्न, कपड़े और गहनों की न्योछावर कर मङ्गल गाती हुई आरती करती हैं। देवता फूल बरसाते और सूत, मागध, भाट आदि यश सुनाते हैं।

कुहवरहिं आने कुँवर कुँवरि सुवासिनिन सुखपाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइकै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीयसन शारद कहैं।
रनिवास हास विलास रसवश जन्म को फल सब लहैं॥

फिर सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुख पाकर वरों और कन्याओं को लहकौरि के स्थान में ले गई और बड़ी प्रीति से मंगलाचार गाती हुई लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्रीरामजी को और सरस्वतीजी सीताजी को लहकौरि सिखाती थीं। सब रनिवास हँसी-दिल्लगी के रस में मग्न होकर नरजन्म का फल पा रहा था।

निज पाणिमणि महँ देखि प्रतिमूरति स्वरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकति विरहभयबस जानकी॥
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अली।
वर कुँवरि सुन्दरि सकल सखिन लिवाइ जनवासहि चलीं॥

जानकीजी हाथ की मणियों में स्वरूप की खान श्रीरामजी का प्रतिबिम्ब देख विरह के भय से भुजा को नहीं हिलाती थीं; क्योंकि हाथ हिलानेसे रामचन्द्र की मूर्ति न देख पड़ती। उस समय सीताजी का कौतुक, विनोद, आनन्द और प्रेम कहा नहीं जाता—उसे सखियाँ ही जानती हैं। इसके बाद सुन्दरी सखियाँ वरों और कन्याओं को जनवासे लिवा ले चलीं।

तेहि समय सुनिय अशीश जहँ तहँ नगरनभ आनँदमहा।
चिरंजियहु जोरी चारु चारिउ मुदितमन सबही कहा॥
योगीन्द्र सिद्ध मुनीश देव बिलोकि प्रभु दुन्दुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निजनिजलोक जयजयजयभनी॥

उस समय जहाँ-तहाँ आशीर्वाद सुनाई देता था। नगर और आकाश में बड़ा आनन्द छाया हुआ था। सबोंने प्रसन्नमन होकर कहा कि सुन्दर चारो जोड़ियाँ चिरंजीवी रहें। योगेश्वर, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओं ने प्रभु श्रीरामजी को देख नगाड़े बजाये और प्रसन्न हो फूल बरसाकर जय हो, जय हो, कहते हुए अपने-अपने लोक को गये।



सहित बधूटिन कुँवर सब, तब आये पितुपास।
शोभा मंगल मोद भरि, उमँगेउ जनु जनवास॥

तब सब राजकुमार बहुओंसहित पिताजी के पास आये; मानो शोभा, मंगल और आनन्द से जनवासा भरकर उमँग चला।

पुनि जेवनार भयो बहु भाँती * पठये जनक बुलाय बराती
परत पाँवड़े वसन अनूपा * सुतन समेत गमन किय भूपा

फिर जनक ने बरातियों को बुला भेजा और बहुत प्रकार से जेवनार हुई। राह में सुन्दर कपड़ा पड़ते जाते थे, जिन पर पुत्रोंसहित महाराज दशरथ चले।

सादर सबके पाँव पखारे * यथायोग्य पीढ़न बैठारे
धोये जनक अवधपति चरणा * शील सनेह जाइ नहिं बरणा

जनक ने आदरसहित सबके पैर धोये और हरएक को उसके योग्य पीढ़े या आसन पर बैठाया। राजा जनक ने अवधराज दशरथजी के चरण धोये। उनका शील और स्नेह कहते नहीं बनता।

बहुरि रामपदपंकज धोये * जे हर हृदयकमल महँ गोये
तीनों भाइ रामसम जानी * धोये चरण जनक निजपानी

फिर श्रीरामजी के चरणारविन्द धोये, जिन्हें श्रीशिवजी अपने हृदयकमल में छिपाये रहते हैं। तीनों भाइयों को भी श्रीरामजी के समान जान जनक ने अपने हाथ से उनके भी चरण धोये।

आसन उचित सबहिं नृप दीन्हे * बोलि सूपकारी सब लीन्हे
सादर लगे परन पनवारे * कनककील मणिपरण सँवारे

राजा ने सबको जैसे चाहिए वैसे ही आसन दिये। फिर सब रसोई बनानेवालों को बुला लिया। बरातियों के आगे आदरसहित पनवारे (पत्तल) पड़ने लगे, जो कि मणियों के पत्ते बनाकर सोने की कीलों से गाँठे गये थे।

सूपोदन सुरभीसरपि, सुन्दर स्वादु पुनीत।
क्षणमहँ सबके परसिगे, चतुर सुआर विनीत॥

चतुर रसोई बनानेवाले झुककर सबके आगे सुन्दर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात तथा गौ का घी क्षण भर में परोस गये।

पाँच कौर करि जेंवन लागे * गारिगान सुनि अतिअनुरागे
भाँति अनेक परे पकवाना * सुधासरिस नहिं जाहिं बखाना

बराती लोग पंचप्राणाहुति देकर भोजन करने लगे और बड़े प्रेम से गालियों के गीत सुने। बहुत प्रकार के पकवान परोसे गये, जो कि खाने में अमृत के समान थे, और जिनकी प्रशंसा नहीं करते बनती।

परुसन लगे सुआर सुजाना * व्यञ्जन विविध नाम को जाना
चारिभाँति भोजनविधि गाई * एक एक विधि बरणि न जाई

चतुर रसोई बनानेवाले परोसने लगे। बहुत प्रकार के भोजन थे, जिनके नाम कौन जान सकता है? भोजन की सामग्री चार प्रकार की कही गई है। उनमें से एक-एक इतने प्रकार के थे कि गिनाये नहीं जा सकते।

छरस रुचिर व्यञ्जन बहुजाती * एक एक रस अगणित भाँती
जेंवत देहिं मधुरध्वनि गारी * लै लै नाम पुरुष अरु नारी

छहों रसों के सुन्दर बहुत भाँति के व्यंजन हैं और एक-एक रस के व्यंजन भी अनगिनत प्रकार के बने थे। भोजन करते समय स्त्रियाँ मीठी वाणी से समधियाने के पुरुषों और स्त्रियों के नाम ले-लेकर गालियाँ देती थीं।

समय सुहावनि गारि विराजा * हँसत राउ सुनि सहितसमाजा

यहि विधि सबही भोजन कीन्हा * आदरसहित आचमन लीन्हा

समय पाकर गालियाँ भी सुहावनी लगती हैं, जिन्हें सुन राजा दशरथ समाजसहित हँसते थे। इस प्रकार सबोंने भोजन और आदरसहित आचमन किया।



देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहितसमाज।
जनवासे गमने मुदित, सकल भूपशिरताज॥

तब राजा जनक ने पान देकर समधी आदि का सम्मान किया। फिर सब राजाओं के सिरताज महाराज दशरथ अपने समाजसहित प्रसन्न हो जनवासे चले गये।

नित नूतन मंगल पुरमाहीं * निमिषसरिसदिनयामिनिजाहीं
बड़े भोर भूपतिमणि जागे * याचक गुणगण गावन लागे

जनकपुर में नित्य नये मंगल होते थे, जिससे रात-दिन पल के समान बीतते थे। राजाधिराज महाराज दशरथ बड़े सबेरे जागे। भिक्षुक लोग उनके गुण गाने लगे।

देखि कुँवर वर बधुन समेता * किमि कहिजात मोद मन जेता
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं * महाप्रमोद प्रेम मनमाहीं

राजकुमारों को दुलहिनोंसहित देख महाराज के मन में जितना आनन्द हुआ, वह कैसे कहा जाय? प्रातःकाल की सन्ध्यादि क्रिया करके महाराज दशरथ बड़े आनन्द और प्रेम के साथ गुरुजी के पास गये।

करि प्रणाम पूजा कर जोरी * बोले गिरा अमिय जनु बोरी
तुम्हरी कृपा सुनिय मुनिराजा * भयो आजु मम पूरण काजा

हाथ जोड़ प्रणाम कर पूजन किया, फिर मानो अमृत से सनी हुई वाणी से बोले—सुनिये मुनिराज, आपकी कृपा से आज मेरा काम पूरा हुआ।

अब सब विप्र बुलाय गोसाँई * देहु धेनु सब भाँति बनाई
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई * पुनि पठये मुनिवृन्द बुलाई

नाथ, अब ब्राह्मणों को बुलाइए। मैं उनको सब प्रकार से सजी हुई गउएँ दूँगा। यह सुन गुरु वशिष्ठजी ने राजा की बड़ाई की। फिर मुनियों के झुण्ड बुला भेजे।



वामदेव अरु देवऋषि, बालमीकि जाबालि।
आये मुनिवरनिकर तब, कौशिकादितपशालि॥

तब वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि बड़े तपस्वी मुनीश्वरों के समूह आये।

दण्ड प्रणाम सबहिं नृप कीन्हा * पूजि सप्रेम बरासन दीन्हा

चारि लक्ष वर धेनु मँगाई * कामसुरभिसम शील सुहाई

राजा ने सबको दण्डप्रणाम किया और स्नेहसहित पूजा कर उत्तम आसन दिये। चार लाख अच्छी गौवें मँगाईं, जो कि स्वभाव में कामधेनु के समान और सुहावनी थीं।

सबविधि सकल अलंकृत कीन्हीं * मुदितमहीप महीसुरन्ह दीन्हीं
करत विनय बहुविधि नरनाहू * लहेउँ आजु जगजीवनलाहू

वे सब प्रकार से अलंकृत करके प्रसन्न हो राजा ने ऋषियों को दान कर दीं। फिर राजा ने बहुत प्रकार से विनती की कि मैंने आज संसार में जीने का फल पाया।

पाइ अशीश महीश अनन्दा * लिये बोलि पुनि याचकवृन्दा
कनकवसन मणिहयगयस्यन्दन * दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन

आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। फिर मँगनों के झुण्ड बुला भेजे। सूर्यवंश-नन्दन उदार दशरथजी ने सबकी रुचि पूछ-पूछकर सोना, कपड़े, मणियाँ, घोड़े, हाथी, रथ आदि दिये।

चले पढ़त गावत गुणगाथा * जयजयजय दिनकरकुलनाथा
यहि विधि रामविवाहउछाहू * सकै न बरणि सहसमुख जाहू

वे लोग बिरद पढ़ते और 'सूर्यवंशियों के महाराज दशरथ की जय हो' कहकर गुण गाते चले गये। इस प्रकार श्रीरामजी के विवाह का उत्साह हुआ कि जिसे शेषजी भी अपने हजार मुखों से नहीं कह सकते।


बार बार कौशिकचरण, शीश नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपाकटाक्ष प्रभाउ॥

फिर राजा दशरथ ने बारंबार विश्वामित्रजी के चरणों में सिर नवाकर कहा—हे मुनिराज, आपके ही कृपाकटाक्ष के प्रभाव से यह सब सुख मुझे प्राप्त हुआ है।

जनक सनेह शील करतूती * नृप सब भाँति सराह विभूती
दिन उठि विदा अवधपति माँगा * राखहिं जनक सहित अनुरागा

जनक के स्नेह, शील, करतूत और ऐश्वर्य को महाराज दशरथ ने सब प्रकार से सराहा। अवधराज दशरथजी नित्य उठकर विदा माँगते हैं; परन्तु राजा जनक स्नेह के मारे उन्हें नहीं जाने देते।

नित नूतन आदर अधिकाई * दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई
नित नव नगर अनन्द उछाहू * दशरथगमन सुहाइ न काहू

नित्य नया और अधिक आदर होता है, हजारों तरह से नित्य पहुनाई होती है। नगर में नित्य नया आनन्द और उत्साह होता है। महाराज दशरथ का जाना किसी को नहीं सोहाता

बहुत दिवस बीते यहि भाँती * जनु सनेहरजु बँधे बराती
कौशिक शतानन्द तब जाई * कहा विदेह नृपहिं समुझाई

इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। बराती मानो स्नेह की रस्सी से बँध गये थे। तब विश्वामित्र और शतानन्द ने जाकर राजा जनक से समझाकर कहा—

अब दशरथ कहँ आयसु देहू * यद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू
भलेहि नाथ कहि सचिव बुलाये * कहि जयजीव शीश तिन नाये

यद्यपि आप स्नेह नहीं छोड़ सकते; परन्तु अब महाराज दशरथ को जाने की आज्ञा दीजिए। तब 'बहुत अच्छा' कह जनक ने मन्त्रियों को बुलाया और उन्होंने 'जयजीव' कह सिर नवाया।



अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाव।
भये प्रेमवश सचिव सुनि, विप्र सभासद राव॥

राजा ने कहा—भीतर जना दो कि अवधराज महाराज दशरथजी जाना चाहते हैं। सुनते ही मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद् और राजा, सभी प्रेम के वश हो गये।

पुरवासिन सुनि चली बराता * पूछत विकल परस्पर बाता
सत्य गमन सुनि सब बिलखाने * मनहु साँझ सरसिज सकुचाने

पुरवासियों ने सुना कि बरात चली तो व्याकुल होकर एक दूसरे से पूछने लगे कि क्या यह खबर सच है? जैसे सन्ध्या को कमल मुरझा जाते हैं, वैसे ही बरात के चलने का समाचार सत्य सुन सब व्याकुल हुए।

जहँ जहँ आवत बसे बराती * तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती
विविध भाँति मेवा पकवाना * भोजनसाज न जाइ बखाना

आते समय जहाँ-जहाँ बराती टिके थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकार का सीधा (भोजन का सामान) चला। अनेक प्रकार के मेवा, पकवान आदि भोजन की सामग्री, जो कही नहीं जा सकती

भरि भरि बसह अपार कहारा * पठये जनक अनेक सुआरा
तुरँग लाख रथ सहस पचीसा * सकल सँवारे नख अरु शीसा

अनगिनत कहारों और बैलों पर लादकर जनक ने भेजी तथा बहुत से रसोई बनाने-वाले साथ कर दिये। नीचे से ऊपर तक सजे हुए एक लाख घोड़े, पचास सहस्र रथ,

मत्त सहस दश सिन्धुर साजे * जिनहिं देखि दिशिकुंजर लाजे
कनकवसन मणि भरिभरियाना * महिषी धेनु वस्तु विधि नाना

दश सहस्र मतवाले हाथी, जिन्हें देख दिग्गज लजाते थे। सोना, कपड़ा और मणियाँ सवारियों में भर-भरकर तथा गौवें, भैंसें और अनेक प्रकार की वस्तुएँ राजा जनक ने भेजीं।


दायज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोकसम्पदा थोरि॥

जनक ने फिर बहुत दायज दिया, जो कहा नहीं जा सकता। उसे देखकर इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल भी अपने लोकों की सम्पदा को थोड़ी समझते थे।

सब समाज यहि भाँति बनाई * जनक अवधपुर दीन्ह पठाई
चलिहि बरात सुनत सब रानी * विकलमीनगण जिमि लघुपानी

राजा जनक ने इस प्रकार सब सामान अयोध्या को भेज दिया। सब रानियाँ बरात का चलना सुनते ही ऐसी व्याकुल हुईं जैसे थोड़े जल में मछलियाँ।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं * देइ अशीश सिखावन देहीं
होइहहु सन्तत पियहि पियारी * चिर अहिवात अशीश हमारी

बारंबार सीताजी को गोद में लेती और असीस दे सिखलाती हैं, फिर कहती हैं कि सदा अपने पति की प्यारी रहोगी, और तुम्हारा सुहाग सदा बना रहे—यही हमारी असीस है।

सासु ससुर गुरु सेवा करेहू * पतिरुख लखि आयसु अनुसरेहू
अतिसनेहवश सखी सयानी * नारिधर्म सिखवहिं मृदुबानी

सास, ससुर और गुरु की सेवा करना तथा पति का रुख देख उसकी आज्ञा मानना। चतुर सखियाँ बहुत स्नेह के वश हो मीठी वाणी से स्त्रियों के धर्म सिखलाती हैं।

सादर सकल कुँवरि समुझाई * नारिन बार बार उर लाई
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी * कहहिं विरंचि रची कत नारी

स्त्रियों ने बारंबार सब राजकुमारियों को हृदय से लगाकर आदरसहित समझाया। माता सुनयना फिर-फिर भेंटती हैं और कहती हैं कि विधाता ने स्त्री को क्यों बनाया?


तेहि अवसर भाइनसहित, राम भानुकुलकेतु।
चले जनकमन्दिर मुदित, बिदा करावन हेतु॥

उसी समय सूर्यवंश की पताका श्रीरामजी भाइयोंसहित बिदा कराने के लिए राजा जनकजी के मन्दिर को प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाये * नगर नारि नर देखन धाये
कोउ कह चलन चहत हैं आजू * कीन्ह विदेह बिदा कर साजू

स्वभाव ही से सुहावने चारों भाइयों को नगर के स्त्री-पुरुष देखने को दौड़े। कोई कहता है कि आज ये चलना चहते हैं, इससे राजा जनक ने बिदा का सामान किया है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी * प्रिय पाहुने भूप सुत चारी

को जाने केहि सुकृत सयानी * नयनअतिथि कीन्हे विधि आनी

ये चारो राजकुमार प्यारे अतिथि हैं ; आँखों भरकर इनका स्वरूप देख लो। कोई स्त्री कहती है कि सजनी, कौन जाने, किस पुण्य से विधाता ने इन्हें हमारी आँखों के आगे लाकर उपस्थित किया है।

मरणशील जिमि पाव पियूखा * सुरतरु लहै जन्मकर भूखा
पाव नारकी हरिपद जैसे * इन कर दर्शन हम कहँ तैसे

जैसे जो मनुष्य मर रहा हो, वह अमृत पा जाय या जन्म का दरिद्री कल्पवृक्ष पावे अथवा जैसे नरक में रहनेवाला वैकुण्ठ पावे, वैसे ही हमने इनके दर्शन पाये हैं।

निरखि रामशोभा उर धरहू * निजमनफणि मूरति मणि करहू
इहि विधि सबहिं नयनफल देता * गये कुँवर सब राजनिकेता

श्रीरामजी की शोभा देख हृदय में धारण करो और सर्प के समान अपने मन में मणि के समान इनकी मूर्ति को लगा लो। इसी प्रकार राजकुमार सबको आँखों का फल देते हुए राजभवन को गये।


रूपसिन्धु सब बन्धु लखि, हरषि उठेउ रनिवास।
करहिं निछावरि आरती, महामुदित मन सास॥

रूप के सागर सब भाइयों को देखकर रनिवास भर प्रसन्न हो उठा और सासें बहुत प्रसन्नमन हो आरती और न्योछावर करने लगीं।

देखि रामछवि अति अनुरागीं * प्रेमविवश पुनि पुनि पद लागीं
रही न लाज प्रीति उर छाई * सहज सनेह बरणि किमि जाई

श्रीरामजी की शोभा देख बड़ा स्नेह हुआ, इससे प्रेम में बेसुध हो वे बारंबार उनके चरण छूने लगीं। हृदय में ऐसी प्रीति भर गई कि लाज का सँभाल न रहा। श्रीरामजी में उनका सहज स्नेह कैसे वर्णन किया जाय ?

भाइन सहित उबटि अन्हवाये * छरस अशन अतिहेतु जेंवाये
बोले राम सुअवसर जानी * शील सनेह सकुचमय बानी

भाइयोंसहित श्रीरामजी को उबटकर स्नान कराया। फिर बड़े हित से छहों रस के भोजन कराये। अच्छा अवसर जान श्रीरामजी शील, स्नेह और सकुच से मिली हुई वाणी बोले—

राउ अवधपुर चहत सिधाये * बिदा होनहित हमहिं पठाये
मातु मुदितमन आयसु देहू * बालक जानि करब नित नेहू

महाराज अयोध्या जाना चाहते हैं और हमें विदा होने के लिए भेजा है। इससे हे माता, प्रसन्नमन हो आज्ञा दीजिए। हमें अपना पुत्र जानकर सदा स्नेह करती रहिएगा।

सुनत वचन बिलखेउ रनिवासू * बोलि न सकहिं प्रेमवश सासू
हृदय लगाय कुँवरि सब लीन्हीं * पतिनसौंपि बिनती अतिकीन्हीं

ये वचन सुनते ही रनिवास भर बिलख उठा। सासें प्रेम के वश हो बोल नहीं सकीं। उन्होंने सबराजकुमारियों को छाती से लगा लिया और उन्हें उनके पतियों को सौंप बड़ी बिनतीकी।

छन्द

करि बिनय सिय रामहिं समर्पी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलिजाउँ तात सुजान तुम कहँ बिदित गति सबकी अहै॥
परिवार पुरजन मोहिंराजहिं प्राणप्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुशील सनेह लखि निजकिङ्करी करि मानबी॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रानियों ने विनती कर, श्रीरामजी को जानकी सौंप, बारंबार हाथ जोड़कर कहा—पुत्र, बलि जाऊँ। तुम्हें सबकी दशा ज्ञात है; क्योंकि तुम सुजान हो। सीता परिवारवालों को, पुरवासियों को, राजा को तथा हमें प्राणों के समान प्यारी है। यह जानकर तथा शील और स्नेह देख इसे अपनी दासी करके मानना।



तुम परिपूरणकाम, ज्ञानशिरोमणि भावप्रिय।
जनगुणग्राहक राम, दोषदलन करुणायतन॥

हे राम, तुम पूर्णकाम हो—तुम्हें कोई कमी नहीं तथा ज्ञानियों में शिरोमणि हो। मन का भाव तुम्हें प्रिय है। अपने भक्तों के गुणों को लेते और उनके दोषों को मिटाते हो। तुम करुणानिधान हो।

अस कहि रही चरण गहि रानी * प्रेमपङ्क जनु गिरा समानी
सुनि सनेहसानी वर बानी * बहु विधि राम सासु सनमानी

ऐसा कह रानी सुनयना चरण पकड़कर चुप हो रहीं। मानो प्रेमरूपी कीचड़ में उनकी वाणीरूपी गौ समा गई। स्नेह से मिली हुई उत्तम वाणी सुन श्रीरामजी ने सास का बहुत प्रकार से सम्मान किया।

राम बिदा माँगी करजोरी * कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी
पाइ अशीश बहुरि शिर नाई * भाइन सहित चले रघुराई

फिर श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर बिदा माँगी और बारंबार प्रणाम किया। फिर आशीर्वाद पा सिर नवाकर भाइयोंसहित चल दिये।

मंजु मधुर मूरति उर आनी * भईं सनेहशिथिल सब रानी
पुनि धीरजधरि कुँवरि हँकारी * बार बार भेंटहिं महतारी

रामचन्द्र की मनोहर मधुर मूर्ति हृदय में रखकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल (बेसुध-सी) हो गईं। फिर धीरज धर राजकुमारियों को बुलाकर माताएँ बारंबार भेंटने लगीं।

पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी * बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी
पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई * बालवत्स जनु धेनु लवाई

बार-बार पहुँचाती और फिर लौटकर मिलती हैं; ऐसे ही परस्पर बड़ी प्रीति बढ़ी। माताएँ बारंबार सखियों को हटाकर सीताजी से मिलती हैं, जैसे जल्दी की ब्याई गौ छोटे बछड़े को (छोड़ना नहीं चाहती)।



प्रेमविवश नरनारि सब, सखिन सहित रनिवास।
मानहु कीन्ह विदेहपुर, करुणा विरह निवास॥

सब नर-नारी और सखियोंसहित रानियाँ प्रेम में बेसुध हो गईं, मानो जनकपुर में बिछुड़ने के दुःख ही ने आकर बसेरा किया है।

शुक सारिका जानकी ज्याये * कनकपींजरन राखि पढ़ाये
व्याकुल कहहिं कहाँ वैदेही * सुनि धीरज परिहरै न केही

जानकीजी ने तोते और मैनाएँ पाल रक्खी थीं और उन्हें सोने के पींजड़ों में रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कहती हैं कि जानकी कहाँ हैं? उनका यह कहना सुन किसका धीरज नहीं छूटता?

भये विकल खगमृग यहि भाँती * मनुजदशा कैसे कहि जाती
बन्धुसमेत जनक तब आये * प्रेम उमँगि लोचनजल छाये

जब पशु-पक्षी इस प्रकार व्याकुल हुए तो मनुष्यों की दशा कैसे कही जाय? फिर भाई सहित राजा जनक आये, जिनकी आँखों में प्रेम से उमड़े हुए आँसू भरे थे।

सीय विलोकि धीरता भागी * रहे कहावत परमविरागी
लीन्ह राव उर लाइ जानकी * मिटी महामर्याद ज्ञान की

उनका भी धीरज सीताजी को देख भाग गया, जो कि बड़े विरक्त कहलाते थे। राजा ने जानकी को हृदय से लगा लिया। उस समय मोह के कारण ज्ञान की मर्यादा जाती रही, मतलब यह कि महाज्ञानी जनक भी ममता मोह के वश हो गये।

समुझावत सब सचिव सयाने * कीन्ह विचार अनवसर जाने
बारहिंबार सुता उर लाई * सजि सुन्दरि पालकी मँगाई

सब चतुर मन्त्रियों के समझाने पर जनक ने सोचा, यह मोह का समय नहीं है। उन्होंने बारंबार पुत्री को हृदय से लगाकर सजी हुई सुन्दर पालकी मँगाई।



प्रेमविवश परिवार सब, जानि सुलगन नरेश।
कुँवरि चढ़ाईं पालकिन, सुमिरे सिद्धिगणेश॥

सब परिवार तो प्रेम से बेसुध था, जिससे राजा जनक ने ही अच्छा मुहूर्त जान सिद्धि-दाता गणेश का स्मरण कर राजकुमारियों को पालकियों पर चढ़ाया।

बहुविधि भूप सुता समुझाईं * नारिधर्म कुलरीति सिखाईं
दासी दास दिये बहुतेरे * शुचि सेवक जे प्रिय सियकेरे

राजा ने पुत्री को बहुत प्रकार से समझाया तथा स्त्रियों का धर्म और अपने कुल की रीति सिखलाई। बहुत-से दासी और दास दिये, जो ईमानदार और सीताजी को प्रिय थे।

सीय चलत व्याकुल पुरवासी * होहिं शकुन शुभ मङ्गलरासी
भूसुर सचिव समेत समाजा * संग चले पहुँचावन राजा

सीताजी के चलते ही पुरवासी व्याकुल हुए और मङ्गल की सूचना देनेवाले अच्छे सगुन होने लगे। ब्राह्मणों और मन्त्रियों के समाजसहित राजा जनक साथ पहुँचाने चले।

समय विलोकि बाजने बाजे * रथ गज बाजि बरातिन साजे
दशरथ विप्र बोलि सब लीन्हे * दान मान परिपूरण कीन्हे

समय देख बाजे बजने लगे तथा बरातियों ने रथ, हाथी और घोड़े साजे। महाराज दशरथ ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन्हें आदर से दान देकर सन्तुष्ट किया।

चरणसरोजधूरि धरि शीशा * मुदित महीपति पाइ अशीशा
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना * मङ्गलमूल शकुन भे नाना

विप्रों के चरणारविन्दों की रज मस्तक पर धर आशीर्वाद पाकर राजा प्रसन्न हुए। फिर गणेशजी का स्मरण कर चल दिये। तब मङ्गलमूल बहुत से सगुन हुए।



सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाइ निशान॥

जब अवधराज दशरथजी प्रसन्न हो बाजे बजवाकर अयोध्यापुरी को चले, तब प्रसन्न हो देवता फूल बरसाने लगे, अप्सराएँ गाने लगीं।

नृप करि विनय महाजन फेरे * सादर सकल माँगने टेरे
भूषण वसन बाजि गज दीन्हे * प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे

राजा दशरथ ने विनती कर बड़े-बूढ़े पुरुषों को लौटा दिया और आदरसहित सब मँगतों को बुलाया तथा आभूषण, कपड़े, घोड़े, हाथी आदि देकर और प्रेम से संतुष्ट कर सबको रोक दिया।

बार बार विरदावलि भाखी * फिरे सकल रामहिं उर राखी
बहुरि बहुरि कोशलपति कहहीं * जनक प्रेमवश फिरा न चहहीं

वे सब श्रीरामजी को हृदय में रख और बारंबार सूर्यवंश की बड़ाई करते हुए लौटे। महाराज दशरथ बार-बार कहते हैं; परन्तु राजा जनक प्रेमवश होने के कारण लौटना नहीं चाहते।

पुनि कह भूपति वचन सुहाये * फिरिय महीप दूरि बड़ि आये
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े * प्रेमप्रवाह विलोचन बाढ़े

फिर महाराज दशरथ सुहावने वचन कहने लगे कि हे राजन्, आप बहुत दूर निकल आये; अब लौटिए। फिर महाराज दशरथ रथ से उतरकर खड़े हो गये। नेत्रों में प्रेम के आँसू भर आये।

तब विदेह बोले कर जोरी * वचन सनेहसुधा जनु बोरी
करौं कवन विधि विनय बनाई * महाराज मोहिं दीन्ह बड़ाई

तब राजा जनक हाथ जोड़ स्नेह के अमृत में जैसे बोरकर मधुर वचन बोले कि हे महाराज, मैं किस प्रकार आपकी विनती करूँ। आपने स्वयं मुझे बड़ाई दी है।



कोशलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥

कोशलराज दशरथ ने अपने समधी सज्जन राजा जनक का सब प्रकार से सम्मान किया। दोनों समधी परस्पर मिल-भेंटकर अत्यन्त विनय दिखा रहे थे। प्रीति इतनी बढ़ी कि वह हृदय में नहीं समाती थी।

मुनिमण्डलिहि जनक शिरनावा * आशिर्वाद सबहि सन पावा
सादर पुनि भेंटे जामाता * रूपशीलगुणनिधि सब भ्राता

राजा जनक ने मुनियों की मंडली को सिर नवाया और सबसे आशीर्वाद पाया। फिर आदरसहित अपने सब जामाताओं से मिले, जो सब भाई रूप, शील और गुणों की खान थे।

जोरि पङ्करुहपाणि सुहाये * बोले वचन प्रेम जनु जाये
राम करौं केहि भाँति प्रशंसा * मुनि महेश मनमानस हंसा

राजा जनक कमल के समान सुन्दर हाथ जोड़ मानो प्रेम से भरे हुए वचन बोले—हे राम, हे मुनियों और श्रीशिवजी के मनरूपी मानसरोवर के हंस, किस प्रकार मैं आपकी बड़ाई करूँ?

करहिं योग योगी जेहि लागी * कोह मोह ममता मद त्यागी
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी * चिदानन्द निर्गुण गुणराशी

जिसे पाने के लिए योगीजन क्रोध, मोह, ममता, अहंकार आदि छोड़ अष्टांगयोग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) को करते हैं, वह

चैतन्य और आनन्दरूप से सबमें व्याप्त ब्रह्म आप ही हैं, जो निर्गुण होने से दिखलाई नहीं पड़ते और गुणों की राशि होने पर भी नाशरहित हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी * तरकि न सकहिं सकल अनुमानी
महिमा निगम नेति करि कहहीं * जो तिहुँकाल एकरस रहहीं

जिनको मन और वाणी नहीं जान सकती और अनुमान करनेवाले तर्कणा नहीं कर सकते, जो तीनों कालों में एकरस रहते हैं और तब भी चारों वेद जिनके माहात्म्य को केवल 'नेति' करके कहते हैं; साक्षात् निरूपण नहीं कर पाते।



नयनविषय मोकहँ भयउ, सो समस्त सुखमूल।
सबहिं सुलभ जगजीवकहँ, भये ईश अनुकूल॥

उन्हीं सब सुखों के मूल आपको आज मैं अपनी आँखों के आगे देख रहा हूँ। सच है, ईश्वर के अनुकूल होने पर जगत् में जीवों को सभी सुलभ होता है, कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।

सबहि भाँति मोहिं दीन्ह बड़ाई * निजजन जानि लीन्ह अपनाई
होहिं सहसदश शारद शेखा * करहिं कल्पकोटिक भरि लेखा

मुझे तो आपने सब तरह से बड़ाई दी—अपना दास जानकर अपना लिया। यदि दश सहस्र भी सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पभर लेखा करें—

मोर भाग्य राउर गुणगाथा * कहि न सिराहिं सुनिय रघुनाथा
मैं कछु कहौं एक बल मोरे * तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे

तो भी हे रघुनाथजी, मेरे भाग्य और आपके गुणों की कथा कहकर अन्त नहीं पा सकते। परन्तु मुझे एक बल है, इससे मैं कुछ कहता हूँ। आप थोड़े से भी सच्चे स्नेह से रीझ जाते हैं।

बार बार मागौं कर जोरे * मन परिहरै चरण जनि भोरे
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे * पूरणकाम राम परितोषे

इसलिए बारंबार हाथ जोड़कर मैं यही माँगता हूँ कि मेरा मन आपके चरणों को भूल से भी न छोड़े। जनकजी के स्नेह से पुष्ट किये गये ये उत्तम वचन सुनकर पूर्णकाम श्रीरामजी संतुष्ट हुए।

करि वर विनय ससुर सनमाने * पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही * मिलि सप्रेम पुनि आशिष दीन्ही

उन्होंने विनती कर ससुर को पिता, विश्वामित्र और वशिष्ठ के समान जान सम्मान किया। फिर राजा जनक ने भरत से विनती की। तब वे भी प्रेम से मिले और राजा ने उनको आशीर्वाद दिया।



मिलेलषणरिपुसूदनहिं, दीन्ह अशीष महीश।
भये परस्पर प्रेमवश, फिरिफिरि नावहिं शीश॥

फिर लक्ष्मण और शत्रुघ्न को मिले। दोनों परस्पर प्रेम के वश हुए। उन्होंने बारंबार शिर नवाया और राजा ने आशीर्वाद दिया।

बार बार करि विनय बड़ाई * रघुपति चले संग सब भाई
जनक गहे कौशिकपद जाई * चरणरेणु शिर नयनन लाई

बारंबार बिनती और बड़ाई कर श्रीरामजी सब भाइयों के साथ चल दिये। फिर राजा जनक ने जाकर विश्वामित्र के चरण छुए और पैरों की रज शिर और आँखों में लगाई।

सुनु मुनीशवर दरशन तोरे * अगम न कछु प्रतीति मन मोरे
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं * करत मनोरथ सकुचत अहहीं

हे मुनीश्वर, सुनिए, मेरे मन में विश्वास है कि आपके दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं। जिस सुख और यश को इन्द्र, कुवेर आदि लोकपाल चाहते हैं और मनोरथ करते सकुचते हैं—

सोसुखसुयशसुलभमोहिं स्वामी * सब विधि तव दर्शन अनुगामी
कीन्ह विनय पुनि पुनि शिरनाई * फिरे महीपति आशिष पाई

हे स्वामिन्, वही सुख और सुयश मुझको आपके दर्शन से सब प्रकार सुलभ है। राजा ने बारंबार सिर नवाकर विनती की और विश्वामित्र का आशीर्वाद पाकर लौटे।

चली बरात निशान बजाई * मुदित छोट बड़ सब समुदाई
रामहिं निरखि ग्रामनरनारी * पाइ नयनफल होहिं सुखारी

फिर बरात बाजे बजाकर चली, जिसमें छोटे-बड़े सभी प्रसन्न थे। रास्ते में जो गाँव पड़ते थे, उनके नर-नारी श्रीरामजी को देखकर मानो आँखों का फल पाकर सुखी होते थे।



बीच बीच वर वास करि, मगलोगन सुखदेत।
अवधसमीप पुनीतदिन, पहुँची आय जनेत॥

बीच में अच्छे-अच्छे स्थानों में टिकते और मार्ग में लोगों को सुख देते हुए अयोध्या के पास अच्छे दिन बरात आ पहुँची।

हने निशान पणव वर बाजे * भेरि शंखध्वनि हय गय गाजे
झाँझ मृदँग डिमडिमी सुहाई * सरस राग बाजैं सहनाई

ढोल और नगाड़े बजने लगे, शंखध्वनि होने लगी तथा घोड़े और हाथी चिग्घाड़ने लगे। सुहावनी झाँझें, मृदंग, डिमडिमी और शहनाइयाँ रसीले राग से बजने लगीं।

पुरजन आवत अकनि बराता * मुदित सकल पुलकावलिगाता

निज निज सुन्दर सदन सँवारे * हाट बाट चौहट पुरद्वारे

नगर के लोग बरात का आना सुनकर प्रसन्न हुए। सबके शरीर में रोमांच हो आया। सब अपने-अपने घरों को अच्छी तरह से साजने लगे तथा बाजारें, सड़कें, चौराहे, नगर के द्वार

गलीं सकल अरगजा सिंचाई * जहँ तहँ चौकें चारु पुराई

बना बजार न जाय बखाना * तोरण केतु पताक बिताना

और सब गलियाँ अरगजा से छिड़की गईं। जहाँ-तहाँ सुन्दर चौकें पूरी गईं। बाजार ऐसा बनाया गया कि प्रशंसा नहीं करते बनती। तोरण, वन्दनवार, ध्वजा, पताका और चँदोवा आदि लगाये गये।

सफल पूगफल कदलि रसाला * रोपे बकुल कदम्ब तमाला

लगे सुभग तरु परसत धरणी * मणिमय आलवाल कलकरणी

सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमाल के वृक्ष फलसहित लगाये गये। फलों के बोझ से झुकी हुई डालें पृथ्वी को छूती थीं। मणियों के सुन्दर थाल्हे बने थे।



विविधभाँति मंगलकलश, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवरपुरी निहारि॥

अनेक प्रकार के कलश मंगल के लिए घर-घर रचकर साजे गये। श्रीरामजी की पुरी की शोभा देख ब्रह्मा आदि सब देवता भी सिहाते थे कि ऐसे तो हमारे भी किसी के लोक नहीं हैं।

भूपभवन तेहि अवसर सोहा * रचना देखि मदन मन मोहा

मंगल शकुन मनोहरताई * ऋधिसिधि सुख सम्पदा सुहाई

उस समय राजभवन ऐसा शोभित हो रहा था कि उसकी बनावट देख कामदेव का भी मन मोहित होता था। मंगल, सगुन, सुन्दरता, आठों सिद्धियाँ, नवों निधियाँ, सुख, सम्पदा—ये सब वहाँ विराजमान थे।

जनु उछाह सब सहज सुहाये * तनु धरि धरि दशरथगृह आये

देखनहेतु राम वैदेही * कहहु लालसा होइ न केही

मानो उस उत्सव में ये सब देह धर-धरकर राजा दशरथ के घर सहज ही आकर शोभायमान हुए। श्रीराम और जानकीजी को देखने के लिए, कहिए, किसकी इच्छा नहीं होती?

यूथयूथ मिलि चलीं सुवासिनि * निजछबिनिदरहिं मदनविलासिनि

कलश सुमंगल सजी आरती * गावहिं जनु बहु वेष भारती

सौभाग्यवती स्त्रियाँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर अपनी शोभा से रति को लजाती हुई चलीं। मानो सरस्वतीजी बहुत-से वेष बनाकर सुन्दर मंगल के कलश और आरतियाँ सजे गाती हैं।

भूपतिभवन कोलाहल होई * जाइ न बरणि समयसुख सोई

कौशल्यादि रामम‍हतारी * प्रेमविवश तनुदशा बिसारी

राजमन्दिर में कोलाहल होता था। उस समय का वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। कौशल्या आदि श्रीरामजी की माताएँ प्रेम में बेसुध हुई और देह की दशा भूल गई।



दिये दान विप्रन विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥

उन्होंने गणेश और शिवजी का पूजन कर ब्राह्मणों को बहुत से दान दिये और वे सब ऐसे प्रसन्न हुई कि मानो बड़ा दरिद्री चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पा गया हो।

प्रेमप्रमोदविवश सब माता * चलहिं न चरणशिथिलसबगाता
रामदरशहित अति अनुरागीं * परिछनसाज सजन सब लागीं

सब माताएँ प्रेम और आनन्द में बेसुध थीं। उनके सब अंग ढीले पड़ गये थे, पैर आगे नहीं पड़ते थे। श्रीरामजी का दर्शन करने के लिए बड़े स्नेह के साथ सब परछन का सामान सजने लगीं।

विविध विधान बाजने बाजे * मंगल मुदित सुमित्रा साजे
हरद दूब दधि पल्लव फूला * पान पूगफल मंगलमूला

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और सुमित्राजी ने प्रसन्न होकर सब मंगल की वस्तुएँ साजीं। मंगल-मूल हल्दी, दूब, दही, आम आदि के पत्ते, फूल, पान, सुपारी,

अक्षत अंकुर रोचन लाजा * मंजुलमंजरि तुलसि विराजा
छुहे पुरटघट सहज सुहाये * मदनशकुनि जनु नीड़ बनाये

अक्षत, अँखुवा निकले जौ, रोली या गोरोचन, खीलें और सुन्दर मंजरीसहित तुलसी-दल विराजमान थे। रँगे हुए सोने के अच्छे घड़े रक्खे थे, मानो कामदेवपक्षी ने छिपने के लिए घोंसले बनाये हैं।

शकुन सुगंध न जाहिं बखानी * मंगल सकल सजहिं सबरानी
रची आरती विविध विधाना * मुदित करहिं कलमंगलगाना

सगुन के लिए केसर-कस्तूरी आदि सुगन्ध की वस्तुएँ इतनी थीं कि उनका बखान नहीं हो सकता। रानियाँ मंगल की सामग्री साजती हैं। बहुत विधि से आरतियाँ रची गई और आनन्द से मंगलाचार हुए।



कनकथार भरि मंगलन, कमलकरन लिय मात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवित गात॥

सोने के थारों में मंगल की सामग्री भर माताएँ अपने कमल के समान हाथों में उन्हें लिये

प्रसन्न हो परछन करने चलीं। उनके अंग-अंग में आनन्द के मारे रोएँ खड़े हो रहे थे।

धूप धूम नभ मेचक भयऊ * सावन घन घमंड जनु छयऊ
सुरतरु सुमनमाल सुर वर्षहिं * मनहुँ बलाकअवलि मनकर्षहिं

धूप के धुएँ से आकाश काला हो गया। मानो सावन के महीने में बादल घुमड़कर छा गये हों। देवता कल्पवृक्ष के श्वेत फूलों की मालाएँ बरसाते थे, जो बगलों की पाँति-सी मन को अपनी ओर खींचती थीं।

मंजुल मणिमय बंदनवारे * मनहु पाकरिपु चाप सँवारे
प्रकटैं दुरैं अटन पर भामिनि * चारु चपल जनु दमकै दामिनि

स्वच्छ मणियों के रंग-बिरंगे बन्दनवार बँधे थे, वही मानो इन्द्रधनुष थे। अटारियों पर सुन्दरी स्त्रियाँ दौड़-दौड़कर आती जाती थीं। उनकी चमक-दमक ही मानो बिजली थी।

दुन्दुभिध्वनि घन गरजहिं घोरा * याचक चातक दादुर मोरा
शुचि सुगंध बहु बरषहिं वारी * सुखी सकल ससि पुरनरनारी

घोर बादलों के गर्जने के समान नगाड़े बजते थे और मँगता पपीहों की भाँति माँगते, मेढकों की भाँति जय-जयकार करते और मोरों की भाँति प्रसन्न होकर नाचते थे। पवित्र सुगन्धित वस्तुओं का छिड़काव हो रहा था, वही मानो वर्षा थी, जिससे खेती की भाँति नगर के सब स्त्री-पुरुष सुखी होते थे।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा * पुरप्रवेश रघुकुलमणि कीन्हा
सुमिरि शम्भु गिरिजा गणराजा * मुदित महीपति सहित समाजा

गुरुजी ने समय जानकर आज्ञा दी, तब रघुवंशियों में रत्न राजा दशरथ ने नगर में प्रवेश किया। गणेश, पार्वती और शिवजी का स्मरण कर समाजसहित राजा प्रसन्न हुए।



होहिं शकुन बरषहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाइ।
विबुधवधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ॥

सगुन होने लगे, देवता नगाड़े बजाकर फूल बरसाने लगे, और देवतों की स्त्रियाँ मंगल गाती हुई नाचने लगीं।

मागध सूत बन्दि नट नागर * गावहिं यश तिहुँलोक उजागर
जयध्वनि विमल वेद वर बानी * दशदिशि सुनिय सुमंगलसानी

चतुर जागा, पौराणिक, भाट और नट तीनों लोकों में निर्मल यश गाने लगे। दशो दिशाओं में जय-जय की ध्वनि हुई। मंगल-सूचक वेद की निर्मल उत्तम वाणी सुनाई देती थी।

विपुल बाजने बाजन लागे * नभ सुर नगरलोग अनुरागे

बने बराती बरणि न जाहीं * महामुदितमन सुख न समाहीं

बहुत-से बाजे बजने लगे। आकाश में देवता और नगर में मनुष्यों को बड़ा उत्साह हुआ। बराती लोग ऐसे बने थे कि वर्णन नहीं किया जाता। बड़े प्रसन्नमन थे। सुख हृदय में नहीं समाता था।

पुरवासिन तब राउ जुहारे * देखत रामहिं भये सुखारे
करहिं निछावरि मणिगण चीरा * वारिविलोचन पुलक शरीरा

तब पुरवासियों ने राजा से जुहार की और श्रीरामजी को देखकर सब सुखी हुए। नेत्रों में आनन्द के आँसू भरे थे और देह पुलकित हो रही थी। वे मणियाँ और कपड़े न्योछावर करने लगे।

आरति करहिं मुदित पुरनारी * हरषहिं निरखि कुँवरवर चारी
शिविका सुभग उघारि उघारी * देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी

नगर की स्त्रियाँ प्रसन्न हो आरती करतीं और चार दूलह राजकुमारों को देखकर आनंद मनाती थीं। सुन्दर पालकियाँ खोल-खोलकर दुलहिनों को देख सुखी होती थीं।



यहि विधि सबही देत सुख, आये राजदुवार।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुनसमेत कुमार ॥

इस प्रकार सबको सुख देते हुए वर और वधू राजद्वार पर आये। माताएँ प्रसन्न हो बहुओं सहित पुत्रों की परछन करने लगीं।

करहिं आरती बारहिं बारा * प्रेम प्रमोद कहै को पारा
भूषण मणि पट नाना जाती * करहिं निछावरि अगणित भाँती

माताएँ बारबार आरती करती थीं। भाँति-भाँति के रत्नों, गहनों और वस्त्रादि को तरह-तरह से न्योछावर करती थीं। उस समय का प्रेम और आनन्द कहकर कौन पार पा सकता है।

बधुन समेत देखि सुत चारी * परमानन्द मगन महतारी
पुनि पुनि सीयरामछवि देखी * मुदित सफल जगजीवन लेखी

बहुओंसहित चारों पुत्रों को देख माताएँ बड़े आनन्द में मग्न हुईं। बारंबार सीता और रामजी की शोभा देख प्रसन्न होकर वे संसार में अपने जीवन को सफल मानती थीं।

सखी सीयमुख पुनि पुनि चाही * गान करहिं निज सुकृत सराही
बरषहिं सुमन क्षणहिंक्षण देवा * नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा

सखियाँ बारंबार जानकीजी के मुख को देख अपने पुण्यों की सराहना कर गीत गाती थीं। देवता क्षण-क्षण में फूलों की वर्षा करते, नाचते, गाते और सेवा जताते हैं।

देखि मनोहर सुन्दर जोरी * शारद उपमा सकल ढँढोरी

देख न सकहिं निपट लघु लागी * इकटक रहीं रूप अनुरागी

सरस्वती ने मनोहर सुन्दर जोड़ी देख सब उपमाएँ ढूँढ़ीं ; परन्तु वे बहुत ही छोटी लगीं और कोई उपमा देते नहीं बनी। इसलिए हार मानकर राम और सीता के रूप को प्रीति-सहित एकटक देखती रह गईं।



निगमनीति कुलरीति करि, अरघ पाँवड़े देत।
बधुनसहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाय निकेत॥

वेद और कुल की रीति से परछन कर अर्घ्य और पाँवड़े देती हुई माताएँ बहुओंसहित पुत्रों को घर लिवा ले चलीं।

चारि सिंहासन सहज सुहाये * जनु मनोज निज हाथ बनाये
तिनपर कुँवर कुँवरि बैठारे * सादर पाँय पुनीत पखारे

माताओं ने सहज ही शोभायमान चार सिंहासनों पर, जिन्हें मानो कामदेव ने अपने हाथों से बनाया है, वरों और कन्याओं को बिठाया और आदरसहित पवित्र चरण धोये।

धूप दीप नैवेद्य वेदविधि * पूजे वर दुलहिनि मंगलनिधि
बारहिं बार आरती करहीं * व्यजन चारुचामर शिर ढुरहीं

फिर वेद की विधि से धूप, दीप, नैवेद्य आदि से मंगलों की खान वरों और दुलहिनों का पूजन किया। बारंबार आरती करती थीं। सुन्दर पंखे और चँवर वरों और बहुओं के सिर पर ढुल रहे थे।

वस्तु अनेक निछावरि होहीं * भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं
पावा परमतत्त्व जनु योगी * अमृत लहेउ जनु सन्ततरोगी

बहुत-सी वस्तुएँ न्योछावर हो रही थीं। सब माताएँ आनन्द से भरी हुई ऐसी शोभायमान थीं जैसे योगी ने मोक्ष या सदा के रोगी ने अमृत पाया हो।

जन्मरंक जनु पारस पावा * अन्धहि लोचनलाभ सुहावा
मूकवदन जस शारद छाई * मानहु समर शूर जय पाई

अथवा जन्म के दरिद्री ने पारस पाया हो या अन्धे को नेत्रों का लाभ हुआ हो ; जैसे गूँगे के मुख में वाणी छा जाय या शूरवीर ने युद्ध में विजय पाई हो।



यहि सुखते शतकोटिगुण, पावहिं मातु अनन्द।
भाइन सहित बिवाहि घर, आये रघुकुलचन्द॥

जब रघुकुलचन्द्र श्रीरामजी भाइयोंसहित ब्याहकर घर आये, तब इस सुख से करोड़ों गुना आनन्द माताओं ने पाया।

लोकरीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहिं मुसकाहिं॥

माताएँ लोकरीति करती थीं और वर-दुलहिनें सकुचती थीं। यह बहुत आनन्द का विनोद देखकर श्रीरामजी मन से मुसकराते थे।

देव पितर पूजे विधि नीकी * पूजी सकल वासना जीकी
सबहिं वन्दि माँगहिं वरदाना * भाइन सहित राम कल्याना

इस प्रकार माताओं ने देवतों और पितरों का अच्छी विधि से पूजन किया और उनके मन की सब कामनाएँ पूरी हुईं। माताएँ सबको वन्दना कर वरदान माँगती हैं कि भाइयों-सहित श्रीरामजी का कल्याण हो।

अन्तरहित सुर आशिष देहीं * मुदित मातु अँचल भरि लेहीं
भूपति बोलि बरातिन लीन्हे * यान वसन मणि भूषण दीन्हे

अन्तरिक्ष में देवता आशीर्वाद देते हैं और माताएँ प्रसन्न हो आँचल फैलाकर उन्हें लेती हैं। राजा ने बरातियों को बुलाया और उन्हें सवारी, कपड़े, रत्न और गहने दिये।

आयसु पाय राखि उर रामहिं * मुदित गयेसबनिजनिजधामहिं
पुरनरनारि सकल पहिराये * घर घर बाजहिं अनँद बधाये

वे सब आज्ञा पाकर श्रीरामजी को हृदय में रखकर प्रसन्न हो अपने-अपने घर गये। राजा ने नगर के सब स्त्री-पुरुषों को गहने और वस्त्र पहनाये। उस समय घर-घर आनन्द की बधाई बजी।

याचकगण याचहिं जोइ जोई * प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई
सेवक सकल बजनिया नाना * पूरण किये दान सनमाना

मँगता लोग जिस-जिस वस्तु को माँगते थे, महाराज प्रसन्न होकर उन्हें वही-वही वस्तु देते थे। सब बजनियों और सब सेवकों के भी मनोरथ दान-सत्कार से पूरे किये।

दो० देहिं अशीश जुहारि सब, गावहिं गुणगणगाथ।
तब गुरु भूसुरसहित गृह, गमन कीन्ह नरनाथ॥

वे जुहारकर अशीश देने और राजा के गुण गाने लगे। तब गुरु और ब्राह्मणों-सहित राजा दशरथ अपने घर गये।

जो वशिष्ठ अनुशासन दीन्हा * लोक वेद विधि सादर कीन्हा
भूसुरभीर देखि सब रानी * सादर उठीं भाग्य बड़ि जानी

वशिष्ठजी ने जो-जो आज्ञाएँ दीं वे सब राजा ने आदर सहित लोक और वेद की विधि से

पूरी कीं। सब रानियाँ ब्राह्मणों की भीड़ देख बड़े भाग्य जान आदरसहित उठ खड़ी हुईं।

पाँय पखारि सकल अन्हवाये * पूजि भलीविधि भूप जेंवाये
आदर दान प्रेम परितोषे * देत अशीश चले मन तोषे

राजा ने चरण धोकर सबको स्नान कराया, अच्छी विधि से पूजन कर भोजन कराया तथा आदर, दान और प्रेम से उन्हें सन्तुष्ट किया। वे सब मन में प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए गये।

बहुविधि कीन्ह गाधिसुत पूजा * नाथ मोहिं सम धन्य न दूजा
कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी * रानिनसहित लीन्ह पगधूरी

राजा ने बहुत प्रकार से विश्वामित्रजी का पूजन किया और कहा—हे नाथ, मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं। फिर राजा ने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियोंसहित उनके चरणों की रज माथे से लगाई।

भीतर भवन दीन्ह वरवासू * मन जुगवत रह नृप रनिवासू
पूजे गुरुपदकमल बहोरी * कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी

फिर घर के भीतर टिकने को उत्तम स्थान दिया। राजा और रानियाँ मुनि का मन लिये रहते थे, अर्थात् जब जो वह चाहते थे, उसे पूरा करते थे। फिर राजा ने गुरु वशिष्ठजी के चरणारविन्द पूजे और बड़ी प्रीति से विनती की।



वधुनसमेत कुमार सब, रानिनसहित महीश।
पुनिपुनि वन्दत गुरुचरण, देत अशीश मुनीश॥

बहुओंसहित सब राजकुमार और रानियोंसहित राजा ने बारंबार गुरुजी के चरणों की वन्दना की और मुनिराज ने आशीर्वाद दिये।

विनय कीन्ह उर अति अनुरागे * सुत सम्पदा राखि सब आगे
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा * आशिरवाद बहुतविधि दीन्हा

राजा ने मन में बड़ा प्रेम करके विनती की और पुत्रोंसहित सब सम्पदा आगे रख दी कि सब आपही की है। मुनिराज ने अपना नेग माँग लिया और उन्हें सब प्रकार से आशीर्वाद दिया।

उरधरि रामहिं सीयसमेता * हरषि कीन्ह गुरु गमन निकेता
विप्रवधू सब भूप बुलाईं * चैल चारु भूषण पहिराईं

सीताजीसहित श्रीरामजी को हृदय में रख गुरुजी प्रसन्न हो अपने आश्रम को गये। फिर राजा ने ब्राह्मणों की स्त्रियों को बुलाया और उन्हें रेशमी वस्त्र और गहने पहनाये।

बहुरि बुलाइ सुवासिनि लीन्हीं * रुचि विचारि पहिरावनि दीन्हीं
नेगी नेगजोग सब लेहीं * रुचिअनुरूप भूपमणि देहीं

फिर सौभाग्यवती स्त्रियों को बुला लिया और उनकी रुचि के अनुसार पहिरावन दिये। नेगी लोग अपना सब नेगजोग लेते हैं और राजशिरोमणि दशरथजी उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें देते हैं।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने * भूपति भलीभाँति सनमाने
देखि देखि रघुवीरविवाहू * बरषि प्रसून प्रशंस उछाहू

प्रियजनों, अतिथियों, मान्यों और जान-पहिचानवालों का राजा ने अच्छी तरह सम्मान किया। देवता श्रीरघुनाथजी का ब्याह देख फूलों की वर्षा कर सबके उत्साह की बड़ाई करते हैं।



चले निशान बजाइ सुर, निज निज पुर सुखपाइ।
कहत परस्पर रामयश, हर्ष न हृदय समाइ॥

फिर सब देवता बाजे बजाकर परस्पर श्रीरामजी का यश कहते हुए सुखी हो अपने-अपने लोकों को चले। उनके हृदय में हर्ष नहीं समाता था।

सबविधि सबहि समदि नरनाहू * रहा हृदय भरि पूरि उछाहू
जहँ रनिवास तहाँ पगुधारे * सहित बधूटिन कुँवर निहारे

राजा ने सबका सब प्रकार सम्मान किया। उनके हृदय में उत्साह भरा हुआ था। फिर जहाँ रनिवास था, वहाँ गये और बहुओंसहित कुँअर देखे।

लिये गोद करि मोदसमेता * को कहि सकै भयो सुख जेता
बधू सप्रेम गोद बैठारी * बार बार हिय हरषि दुलारी

राजा ने आनन्दसहित उन्हें गोद में ले लिया। उस समय जितना सुख हुआ, उसे कौन कह सकता है? प्रेमसहित बहुओं को गोद में बैठाकर राजा ने बारंबार प्रसन्न होकर उन्हें दुलराया, उनका प्यार किया।

देखि समाज मुदित रनिवासू * सबके उर आनन्द विलासू
कहेउ भूप जिमि भयो विवाहू * सुनि सुनि हरष होत सब काहू

भीड़ देख रनिवास प्रसन्न था। सबके मन में आनन्द की लहरें उठ रही थीं। जिस प्रकार राम आदि का ब्याह हुआ सो सब वृत्तान्त राजा ने कहा, उसे सुन सबको प्रसन्नता हुई।

जनकराज गुण शील बड़ाई * प्रीति रीति सम्पदा सुहाई
बहुविधि भूप भाट जिमि बरणी * रानी सब प्रमुदित सुनि करणी

राजा जनक के गुण, शील, बड़ाई, प्रीति की रीति और सम्पदा आदि का वर्णन राजा ने भाट की भाँति बहुत प्रकार से किया। जनक के व्यवहार को सुनकर सब रानियाँ प्रसन्न हुईं।



सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि लिये कुलज्ञाति।
भोजनकिये अनेकविधि, घरी पाँच गइ राति॥

फिर राजा ने पुत्रोंसहित स्नानकर जाति के बड़े-बूढ़ों को बुलाया और बहुत भाँति के भोजन किये कराये। उस समय पाँच घड़ी रात बीती थी।

मङ्गलगान करहिं वरभामिनि * भइ सुखमूल मनोहर यामिनि
अँचै पान सबकाहुन पाये * स्रगसुगन्धभूषित छवि छाये

श्रेष्ठ स्त्रियाँ मंगल के गीत गाती थीं, इससे वह रात सुखदायक और मनोहर हुई। सबने आचमन करके पान खाये और सुगन्धित मालाएँ पहनकर शोभित हुए।

रामहिं देखि रजायसु पाई * निज निज भवन चले शिर नाई
प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई * समय समाज मनोहरताई

फिर सब श्रीरामजी को देख, आज्ञा पाकर, सिर नवाकर अपने-अपने घर को चले। उस समय के प्रेम, आनन्द, उत्साह, बड़ाई, समय के अनुकूल समाज और मनोहरता को—

कहि न सकहिं शत शारद शेशू * वेद विरञ्चि महेश गणेशू
सो मैं कहौं कवन विधि वरणी * भूमिनाग शिर धरै कि धरणी

सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेव और गणेश भी नहीं कह सकते। फिर मैं किस प्रकार उसका वर्णन कर सकता हूँ? कहीं पृथ्वी का साधारण सर्प (शेषनाग की तरह) सिर पर पृथ्वी रख सकता है?

नृप सबभाँति सबहिं सनमानी * कहि मृदुवचन बुलाईं रानी
बधू लरिकिनी परघर आईं * राखेहु नयन पलक की नाईं

राजा ने सबका सब प्रकार से आदर किया। फिर कोमल वचन कह रानियों को बुलाया और उनसे कहा कि ये आई हुई बहुएँ पराये घर की बेटियाँ हैं। इन्हें वैसे ही रखना जैसे पलकों में आँखें रहती हैं।



लरिका श्रमित उनींदवश, शयन करावहु जाइ।
अस कहि गे विश्रामगृह, रामचरण चितलाइ॥

लड़के भी थके और औंघाई के वश हैं, इससे इन्हें जाकर सुलाओ। ऐसा कह राजा श्रीरामजी के चरणों में मन लगाकर सोने के कमरे में गये।

भूपवचन सुनि सहज सुहाये * जड़ितकनकमणि पलँग डसाये
सुभग सुरभिपयफेन समाना * कोमल कलित सुपेती नाना

राजा के सहज सुहावने वचन सुनकर रानियों ने रत्नजटित सोने के पलँग बिछवाये,

जिन पर सुन्दर गऊ के दूध के फेन-सी कोमल और मनोहर सफ़ेद चादरें पड़ी थीं—

उपबरहन वर बरणि न जाहीं * स्रगसुगन्धमणि मन्दिर माहीं
रतन दीप सुठि चारु चँदोवा * कहत न बनै जान जेहि जोवा।

तकियों का वर्णन नहीं हो सकता। रत्नजटित मन्दिर में मालाएँ और इत्र आदि रखे थे। रत्नों के दीपक थे और मनोहर चँदोवा तना था, जो कि कहते नहीं बनता, जिसने देखा हो, वही जान सकता है।

सेज रुचिर रचि राम उठाये * प्रेम समेत पलँग पौढ़ाये
आज्ञा पुनि पुनि भाइन दीन्हीं * निजनिज सेजशयन तिन कीन्हीं

सुन्दर सेज रचकर श्रीरामजी को उठाया और प्रेमसहित पलँग पर लिटाया। श्रीरामजी ने भाइयों को बार-बार आज्ञा दी, तब वे अपनी-अपनी सेजों पर जाकर सो रहे।

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता * कहहिं सप्रेम वचन सब माता
मारग जात भयावनि भारी * केहि विधि तात ताड़का मारी

सब माताएँ श्रीरामजी को सुन्दर, साँवले और कोमल अंग के देख प्रेमसहित वचन कहती हैं कि हे तात, राह में जाते हुए तुमने भयावनी ताड़का को किस तरह मारा?



घोरनिशाचर विकट भट, समर गनैं नहिं काहु।
मारे सहितसहाय किमि, खल मारीच सुबाहु॥

भयानक और कठिन वीर, जो कि युद्ध में अपने समान किसी को नहीं गिनते थे, ऐसे दुष्ट मारीच और सुबाहु को उनके सहायक राक्षसोंसहित तुमने कैसे मारा?

मुनिप्रसादबल तात तुम्हारे * ईश अनेक करवरें टारे
मखरखवारी करि दुहुँ भाई * गुरुप्रसाद सब विद्या पाई

हे तात, मुनि की कृपा के बल से परमेश्वर ने तुम्हारी बहुत-सी करवरें (संकट या आफतें) दूर कीं। तुम दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा कर गुरु विश्वामित्रजी की कृपा से सब दुर्लभ विद्याएँ पाईं।

मुनितिय तरी लगत पगधूरी * कीरति रही भुवन भरिपूरी
कमठपीठ पविकूट कठोरा * नृपसमाज महँ शिवधनु तोरा

तुम्हारे चरणों की धूल लगते ही मुनि की स्त्री अहल्या तर गई, जिसका संसार भर में यश व्याप्त हो रहा है। कछुए की पीठ और वज्र के समान कठिन और कठोर महादेवजी के धनुष को तुमने राजों की भरी सभा में तोड़ डाला।

विश्वविजययश जानकि पाई * आये भवन ब्याहि सब भाई

सकल अमानुष कर्म तुम्हारे * केवल कौशिककृपा सुधारे

संसार भर को जीतने का यश और जानकी तुमने पाई और सब भाई विवाह कर घर आये। तुम्हारे सब कर्म अलौकिक हैं, उन्हें कोई मनुष्य नहीं कर सकता। यह सब केवल विश्वामित्रजी की कृपा से तुमने किया है।

आजु सफल जग जन्म हमारे * देखि तात विधुबदन तुम्हारे
जे दिन गये तुमहिं बिन देखे * ते विरंचि जनि पारहिं लेखे

हे तात, चन्द्रमा के समान तुम्हारा (भाइयों और बहुओं-सहित) मुख देख संसार में आज हमारा जन्म सफल हुआ। जितने दिन तुमको बिना देखे बीते उनको ब्रह्मा गिनती में न लावें।



राम प्रतोषीं मातु सब, कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि शम्भु गुरु बिप्रपद, किये नींदबश नैन॥

श्रीरामजी ने उत्तम नम्र वचन कह सब माताओं को संतुष्ट किया तथा शिव, गुरु और ब्राह्मणों के चरणों का ध्यान कर आँखें नींद के वश कीं अर्थात् सो गये।

नींदहु बदन सोह सुठि लोना * मनहु साँझ सरसीरुह सोना
घर घर करहिं जागरण नारी * देहिं परस्पर मंगलगारी

सोने पर भी भगवान् का मुख वैसा ही परम सुन्दर लगता था, मानो साँझ को मुंद हुआ कमल का फूल हो। स्त्रियाँ घर में जागरण करतीं और परस्पर ब्याह के अवसर की मंगलमय गालियाँ (समधी-समधिन को) देती हैं।

पुरी बिराजति राजत रजनी * रानी कहहिं बिलोकहु सजनी
सुन्दर बधुन सासु लै सोई * फणिकनि जनु शिरमणि उर गोई

उजेली रात प्रकाशित होने से अयोध्या शोभित हुई। रानियाँ कहती हैं कि सजनी, देखो तो कैसी शोभा है। सासें बहुओं को छाती से लगाकर ऐसे सोईं, मानो नागिनों ने हृदय में मणि छिपा रक्खी हो।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे * अरुणचूड़ वर बोलन लागे
बन्दी मागध गुणगण गाये * पुरजन द्वार जुहारन आये

पवित्र प्रातःकाल में जब मुर्ग बोलने लगे, तब श्रीरामजी जागे। भाट और मागध लोग गुण गाने लगे और नगर के लोग जुहार करने राजद्वार पर आये।

बन्दि बिप्र सुर गुरु पितु माता * पाइ अशीश मुदित सब भ्राता
जननिन सादर बदन निहारे * भूपतिसंग द्वार पगु धारे

ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता, माता आदि की वन्दना कर और आशीर्वाद पा सब भाई

प्रसन्न हुए। माताओं ने आदरसहित उनके मुख देखे। फिर राजा के साथ सब कुँवर राजद्वार पर आये।



कीन्ह शौच सब सहजशुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहँ, आये चारिउ भाइ॥

सहज ही पवित्र चारों भाइयों ने शौच कर पवित्र नदी में स्नान किया और संध्या आदि कर पिता के पास आये।

भूप विलोकि लिये उर लाई * बैठे हरषि रजायसु पाई
देखि राम सब सभा जुड़ानी * लोचन लाभ अवधि अनुमानी

राजा ने देखकर उन्हें छाती से लगा लिया। तब आज्ञा पा प्रसन्न होकर चारों भाई बैठे। श्रीरामजी को देख आँखों के लाभ की यही चरम सीमा है, ऐसा अनुमान कर सारी सभा के लोग परम प्रसन्न हुए।

पुनि वशिष्ठमुनि कौशिक आये * सुभग आसनन मुनि बैठाये
सुतन समेत पूजि पद लागे * निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे

फिर मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्रजी आये तथा सुन्दर आसनों पर बिठाये गये। राजा ने पुत्रोंसहित पूजाकर उनके चरण छुए और दोनों गुरुओं ने श्रीरामजी को देख बड़ा प्रेम किया।

कहहिं वशिष्ठ धर्म इतिहासा * सुनहिं महीप सहित रनिवासा
मुनिमनअगम गाधिसुतकरणी * मुदित वशिष्ठविपुलविधिवरणी

वशिष्ठजी धर्मशास्त्र की कथा कहते और राजा रनिवाससहित सुनते थे। विश्वामित्रजी के अद्भुत कर्म वशिष्ठ मुनि के मन में बेशुमार भरे पड़े थे। वशिष्ठजी ने प्रसन्न होकर बहुत प्रकार से उनका वर्णन किया।

बोले वामदेव सब साँची * कीरतिकलितलोक तिहुँ माची
सुनि आनन्द भयो सबकाहू * राम लषण उर अधिक उछाहू

वामदेवजी ने कहा—सब सच है। इनका सुन्दर यश तीनों लोकों में फैला है। यह सुन सबको आनन्द हुआ तथा श्रीरामजी और लक्ष्मण के मन में तो बड़ा ही उत्साह हुआ।



मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस यहि भाँति।
उमँगी अवध अनंदभरि, अधिकअधिकअधिकाति॥

इसी प्रकार नित्य मंगल, आनन्द और उत्साह में दिन बीतते जाते थे। अयोध्या में आनन्द भरकर उमड़ चला; क्योंकि आनन्द अधिक से अधिक बढ़ता जाता था।

सुदिन शोधि कर कंकण छोरे * मंगल मोद विनोद न थोरे

निंत नव सुख सुर देखि सिहाहीं * अवध जन्म याचहिं विधिपाहीं

अच्छा दिन देखकर मुनि ने राम-लक्ष्मण आदि के हाथ के कंगन खुलवाये। मंगल और आनन्द का उत्साह बहुत हुआ। देवता नित्य नया सुख देख सिहाते थे और अयोध्या में हमारा जन्म हो, यह ब्रह्मा से माँगते थे।

विश्वामित्र चलन नित चहहीं * राम सप्रेम विनयवश रहहीं
दिन दिन सद्‌गुण भूपतिभाऊ * देखि सराह महामुनिराऊ

विश्वामित्रजी नित्य जाना चाहते हैं; परन्तु श्रीरामजी के प्रेमसहित विनती करने पर रह जाते हैं। नित्यप्रति राजा दशरथ के अच्छे गुण और मन का भाव देख महामुनिराज विश्वामित्रजी उन्हें सराहते हैं।

माँगत बिदा राउ अनुरागे * सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे
नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी * मैं सेवक समेत सुत नारी

विश्वामित्रजी के विदा माँगते समय राजा प्रेम से पुत्रोंसहित आगे खड़े हो गये और कहा— हे स्वामी, यह सब सम्पदा आप ही की है। मैं तो पुत्रों और स्त्रियोंसहित आपका सेवक हूँ।

करब सदा लरिकन पर छोहू * दरशन देत रहब मुनि मोहू
अस कहि राउ सहित सुत रानी * परेउ चरण मुख आव न बानी

हे मुनिवर, लड़कों पर सदा कृपा करिएगा और मुझे भी दर्शन देते रहिएगा। ऐसा कहकर राजा पुत्रों और स्त्रियोंसहित मुनि के चरणों पर गिर पड़े और मुख से कुछ बोल नहीं सके।

दीन्ह अशीश विप्र बहुभाँती * चले न प्रीतिरीति कहिजाती
राम सप्रेम संग सब भाई * आयसु पाइ फिरे पहुँचाई

विश्वामित्रजी ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया और चल दिये। उस समय की प्रीति की रीति नहीं कही जा सकती। सब भाइयों को साथ लिये श्रीरामजी प्रेमसहित पहुँचाने गये और फिर गुरु से आज्ञा पाकर लौटे।



रामरूप भूपतिभगति, ब्याहउछाहअनन्द।
जात सराहत मनहिमन, मुदित गाधिकुलचन्द॥

राजा गाधि के वंश को कीर्ति से उज्ज्वल बनानेवाले चन्द्रमा विश्वामित्रजी प्रसन्न हो श्रीरामजी के रूप और राजा की भक्ति तथा ब्याह के उत्सव के आनन्द को मन ही मन सराहते चले जाते हैं।

वामदेव रघुकुलगुरु ज्ञानी * बहुरि गाधिसुतकथा बखानी
सुनि मुनिसुयश मनहिमनराऊ * बरणत आपन पुण्य प्रभाऊ

ज्ञानी वामदेव और रघुवंशियों के गुरु वशिष्ठजी ने फिर विश्वामित्रजी की कथा कही। मुनि का सुन्दर यश सुन राजा मन ही मन अपने पुण्य का प्रभाव वर्णन करने लगे।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ * सुतन समेत नृपति गृह गयऊ
जहँ तहँ रामब्याहयश गावा * सुयश पुनीत लोक तिहुँ छावा

फिर और लोगों को जाने की आज्ञा हुई। राजा भी पुत्रोंसहित घर गये। जहाँ-तहाँ श्रीरामजी के ब्याह का यश गाया गया, जिससे तीनों लोक पवित्र और सुन्दर यश से पूर्ण हो गये।

आये ब्याहि राम घर जबते * बसे अनन्द अवध सब तबते
प्रभुविवाह जस भयो उछाहा * सकहिं न बरणि गिरा अहिनाहा

जब से श्रीरामजी का ब्याह कर घर आये, तब से अयोध्या में सब आनन्दों का निवास हुआ। प्रभु श्रीरामजी के विवाह का जो उत्सव हुआ, उसे सरस्वती और शेषजी भी नहीं वर्णन कर सकते।

कविकुल जीवन पावन जानी * राम सीय यश मंगलखानी
तेहिते मैं कछु कहा बखानी * करन पुनीत हेतु निज बानी

मैं श्रीरामजी और सीताजी के यश को मंगलों की खान, कवियों के कुल का जीवन और पवित्र करनेवाला जानता हूँ। इसी से मैंने अपनी वाणी पवित्र करने के लिए उसका कुछ वर्णन किया है।

छन्द

निज गिरा पावन करण कारण रामयश तुलसी कह्यो।
रघुवीरचरित अपार वारिधि पार कवि कवने लह्यो॥
उपवीत ब्याह उछाह मङ्गल सुनहिं सादर गावहीं।
वैदेहि राम प्रसादते जन सर्वदा सुख पावहीं॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने अपनी वाणी पवित्र करने के लिए श्रीरघुनाथजी का यश वर्णन किया है। ऐसा कौन कवि है, जिसने समुद्र के समान अपार श्रीरामजी के चरित्रों का अन्त पाया है? जो लोग आदरसहित श्रीरामजी के जनेऊ और विवाह के मंगल करनेवाले उत्साह को सुनें और कहेंगे वे श्रीसीतारामजी की प्रसन्नता से सदा सुख पावेंगे।

सुनि गाय कहौं गिरीशकन्या धन्य अधिकारी सही।
नित प्रीति अनुपम सुनत हरिगुण भक्ति अनुपम ते लही॥
रघुवीरपद अनुराग जल लोभाग्नि वेगि बुझावई।
यह जानि तुलसीदास मन क्रम वचन हरिगुण गावई॥

महादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं—हे गिरिराजकुमारी, तुम इसके सुनने की अधिकारिणी हो, इसी से मैं कहता हूँ। तुमको धन्य है, जो सुनते ही भगवान् के गुणानुवाद में तुम्हारी प्रीति हुई और तुमने अनुपम भक्ति पाई। क्यों न हो, श्रीरामचरणों का स्नेहरूपी जल लोभ की आग को शीघ्र बुझा देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह जान सब लोग भगवान् के गुणों को मन, वचन और कर्म से गाते हैं।



कठिन काल मलग्रसित तनु, साधन कछुक न होइ।
यह विचारि विश्वासकरि, हरिसुमिरै बुध सोइ॥

समय कठिन है और देह अज्ञानरूपी मैल से घिरी है, इससे कुछ भी साधना नहीं होती। यह विचारकर जो विश्वास करके भगवान् का स्मरण करे, वही बुद्धिमान् है।



मन हरिपद अनुरागु, करहु त्याग नाना कपट।
महामोह निशि जागु, सोवत बीता काल बहु॥

हे मन, भगवान् के चरणों में स्नेह कर, छल-कपट छोड़ दे, और इस महामोहरूपी रात्रि से जाग; क्योंकि इसमें सोते हुए तुझे बहुत समय बीत गया।

सिय रघुबीर बिबाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिनकहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश॥

जो लोग प्रेमसहित श्रीसीतारामजी का विवाह कहेंगे और सुनेंगे, उनको सदा उत्साह प्राप्त होगा; क्योंकि श्रीरघुनाथजी का यश मंगलों का घर है।

बालकाण्ड समाप्त



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण अयोध्याकाण्ड

बालबोधिनी टीकासहित





गणप गौरि हर हरि अनल, रविपद पाय प्रसाद।
अवधराज उर धरि करौं, अवधकाण्ड अनुवाद॥
प्रभु प्रभुता तजि वनगमन, उदासीन किय जौन।
रागद्वेषकृत मलिन मन, शान्त करै मम तौन॥
सूर्य दीन अतिदीन है, प्रभु तव मायाधीन।
निज पदाब्जरस प्यायकै, करिय कृपा करि पीन॥

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्॥

जिनकी बाईं गोद में पार्वतीजी, शिर में गंगाजी, मस्तक में द्वितीया का चन्द्रमा, गले में विष और हृदय में नागराज विराजमान हैं, वही विभूति रमाये, देवताओं में उत्तम, सबके स्वामी, सदा रहनेवाले, माया के नाशक, सबमें व्याप्त, कल्याणरूप और चन्द्रमा के समान गौर कांतिवाले श्रीमहादेवजी मेरी रक्षा करें।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सामञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

रघुराजकुमार श्रीरामजी के मुखारविन्द की शोभा, जो कि न राजतिलक से खिली और न वनवास के दुःख से मुरझाई, वह मुझे निर्मल मङ्गलों की देनेवाली हो।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गंसीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महाशायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

नीले कमल के समान साँवले अंगोंवाले, बायें भाग में सीताजी को अच्छी प्रकार बिठाये, हाथों में बहुत बड़े और सुन्दर धनुष-बाण लिये रघुवंशियों के स्वामी श्रीरामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।



श्रीगुरुचरणसरोज रज, निज मनमुकुर सुधारि।
बरणौ रघुवरविमल यश, जो दायक फल चारि॥

मैं गुरुजी के चरणकमलोंकी रज से अपने मनरूपी दर्पण को शुद्ध करके श्रीरामजी के पवित्र यश का वर्णन करता हूँ, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों फलों का देनेवाला है।

जबते राम ब्याहि घर आये * नित नव मंगल मोद बधाये
भुवन चारि दश भूधर भारी * सुकृतमेघ वर्षहिं सुखवारी

जब से श्रीरामचन्द्र विवाह कर घर आये, तब से नित्य नये मंगल, आनन्द और बधाये होते हैं। चौदहों लोकरूपी पर्वतों में पुण्यरूपी बादल सुखरूपी जल बरसाते हैं।

ऋधि सिधि सम्पतिनदीसुहाई * उमँगि अवधअम्बुधिकहँ आई
मणिगण पुर नर नारि सुजाती * शुचि अमोल सुन्दर सब भाँती

ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति की सुन्दर नदियाँ उमँग-उमँग कर अयोध्यारूपी समुद्र को आई हैं। जिनमें पुरवासी जाति-जाति के स्त्री-पुरुष ही पवित्र मूल्यवान् और भाँति-भाँति की मणियाँ हैं।

कहि न जाय कछु नगरविभूती * जनु इतनी विरंचि करतूती
सब विधि सब पुरलोग सुखारी * रामचन्द्र मुखचन्द्र निहारी

नगर का ऐश्वर्य कुछ कहने में नहीं आता। मानो ब्रह्मा की करतूत इतनी ही है। सब प्रकार से पुर के सब लोग चन्द्रमा के समान श्रीरामजी के मुख को देख सुखी रहते हैं।

मुदित मातु सब सखी सहेली * फलित विलोकि मनोरथ बेली
रामरूप गुण शील सुभाऊ * प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ

सखी-सहेलियोंसहित सब माताएँ अपने मनोरथों की बेलियों को फली देखकर प्रसन्न रहती हैं। रामचन्द्र के रूप, गुण, शील और स्वभाव सुन और देखकर राजा भी बहुत प्रसन्न रहते हैं।


सबके उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेश।
आप अछत युवराजपद, रामहिं देहिं नरेश॥

सबके मन में ऐसी इच्छा है और वे महादेवजी को मनाकर कहते हैं कि महाराज दशरथ अपने जीतेजी रामचन्द्रजी को युवराजपद दे दें।

एक समय सब सहित समाजा * राजसभा रघुराज विराजा
सकल सुकृति मूरति नरनाहू * रामसुयश सुनि अतिहि उछाहू

एक समय मंत्री और सेनापतियोंसमेत राजसभा में रघुराज दशरथजी विराजमान थे। सब पुण्यों की मूर्ति राजा को रामचन्द्र का सुयश सबके मुखसे सुन बड़ा ही उत्साह हुआ।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखी * लोकप रहहिं प्रीति रुख राखी

त्रिभुवन तीनि काल जगमाहीं * भूरिभाग दशरथ सम नाहीं

सब राजा जिनकी कृपा चाहते हैं, और इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल जिनका रुख देखकर प्रसन्न रहते हैं, ऐसे महाराज दशरथ के समान भाग्यवान् तीनों लोकों और तीनों समयों में कोई नहीं है।

मंगलमूल राम सुत जासू * जो कछु कहिय थोर सब तासू
राउ स्वभाव मुकुर करलीन्हा * वदनविलोकिमुकुट सम कीन्हा

सब मंगलों के देनेवाले भगवान् राम जिनके पुत्र हैं, उनको जो कुछ कहिए, सो सब थोड़ा ही है। राजा ने सहज ही एक दिन दर्पण हाथ में लिया और मुख देखकर मुकुट बराबर किया।

श्रवणसमीप भये सितकेशा * मनहु जरठपन अस उपदेशा
नृप युवराज राम कहँ देहू * जीवन जन्म लाहु जग लेहू

फिर कानों के पास श्वेतबाल देखे, मानो बुढ़ापा राजा के कानों में उपदेश करता है कि राजन्, अब युवराजपद राम को दीजिए और संसार में जीने और जन्म लेने का फल लीजिए।



यह विचार उरआनि नृप, सुदिन सुअवसर पाय।
प्रेम पुलकितनु मुदितमन, गुरुहिं सुनायो जाय॥

फिर राजा ने यह विचार मन ही में रहने दिया। जब सुन्दर दिन और अच्छा समय पाया, तब प्रेम से पुलकित और प्रसन्नमन हो गुरु वशिष्ठजी को जाकर सब हाल सुनाया।

कहेउ भुवाल सुनियमुनिनायक * भये राम सब विधि सबलायक
सेवक सचिव सकल पुरवासी * जे हमार अरि मित्र उदासी

राजा ने कहा—हे मुनिराज, अब तो रामचन्द्र सब प्रकार से सब योग्य हुए। जितने हमारे सेवक, मंत्री और पुरवासी हैं और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं—

सबहिं रामप्रियजेहिविधिमोहीं * प्रभुअशीश जनु तनु धरि सोहीं
विप्र सहित परिवार गोसाईं * करहिं छोह सौरेहि की नाईं

सबको वह ऐसे ही प्यारे हैं, जैसे मुझको। पुत्र क्या हैं, मानो आपकी असीस ही देह धारण किये सोहती है। आपही के समान सब ब्राह्मण भी परिवारसहित राम पर कृपा करते हैं।

जे गुरुचरणरेणु शिर धरहीं * ते नर सकल विभव वशकरहीं
मोहिं समान भयो नहिं दूजा * सब पायउँ पद पावन पूजा

जो गुरुदेव के चरणों की रज को सिर पर धारण करते हैं, वे सब ऐश्वर्यों को वश में कर लेते हैं। मेरे समान कोई नहीं हुआ; क्योंकि मैंने आपके पवित्र चरणों की पूजा से सब कुछ पाया।

अब अभिलाष एक मन मोरे * पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू * कहेउ नरेश रजायसु देहू

अब एक ही इच्छा मेरे मन में और है। वह भी आपकी कृपा से पूरी होगी। फिर गुरुदेव वशिष्ठजी को प्रसन्न देख और अपने ऊपर उनका स्नेह जान राजा ने आज्ञा माँगी।


राजन राउर नाम यश, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी भूपमणि, मन अभिलाष तुम्हार॥

वशिष्ठजी ने कहा—राजन्, आपका नाम और यश सब मनोरथों का देनेवाला है। फिर हे राजाओं में शिरोमणि, तुम्हारे मन की अभिलाषा का फल अनुचर-सा अभिलाषा की सेवा करता है।

सब विधि गुरु प्रसन्नमन जानी * बोले राउ बिहँसि मृदु बानी
नाथ राम करिये युवराजू * कहिय कृपाकरि करिय समाजू

सब प्रकार गुरु को प्रसन्नमन जानकर राजा भी हँसकर कोमल वाणी में बोले—नाथ, अब रामचन्द्र को युवराज कीजिए। यदि कृपा करके आज्ञा दीजिए तो सब तिलक का साज साजा जाय।

मोहिं अछत यह होइ उछाहू * लहहिं लोग सब लोचनलाहू
प्रभुप्रसाद शिव सबै निबाहीं * यह लालसा एक मन माहीं

मेरे जीते हुए यह उत्साह भी हो जाय और सब लोग नेत्रों का लाभ उठा लें। आपकी कृपा से शिवजी ने मेरी सब निबाह दी है; केवल यही एक लालसा मन में रह गई।

पुनि न शोच तनु रहै कि जाऊ * जेहि न होय पाछे पछिताऊ
सुनि मुनि दशरथवचनसुहाये * मङ्गल मोद मूल मन भाये

फिर मुझको सोच नहीं है कि शरीर रहे या न रहे, जिससे पीछे पछतावा न हो। राजा के ऐसे सुन्दर वचन मंगल और आनन्द के मूल होने से वशिष्ठजी को बहुत ही अच्छे लगे। फिर वे बोले—

सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं * जासु भजन बिन जरनि न जाहीं
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी * राम पुनीतप्रेम अनुगामी

हे राजन्, सुनिए। जिससे विमुख पछताते हैं और जिसकी सेवा के बिना जीव की जलन नहीं जाती, वही सबका स्वामी राम तुम्हारा पुत्र हुआ है जो शुद्ध प्रेम ही के पीछे चलता है।


बेगि बिलम्ब न करिय नृप, साजिय सकल समाज।
सुदिन सुमङ्गल तबहिं जब, राम होहिं युवराज॥

इससे यह कार्य शीघ्र कीजिए, विलम्ब न हो। जाकर सब साज सजाइए। सुन्दर दिन और मङ्गल तभी हैं, जब राम युवराज हों, अर्थात् इसके लिए मुहूर्त विचारने की जरूरत नहीं है।

मुदित महीपति मन्दिर आये * सेवक सचिव सुमन्त बुलाये
कहि जयजीव शीश तिन नाये * भूप सुमङ्गल वचन सुनाये

राजा प्रसन्न हो अपने घर आये और अपने सेवकों और मन्त्रिराज सुमन्त को बुलाया। उन सबोंने 'जयजीव' कहकर सिर नवाया। तब राजा ने मंगल के समाचार सुनाये—

प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू * रामहिं राज देहु युवराजू
जो पाँचहिं मत लागहि नीका * करहु हर्षि हिय रामहिं टीका

कि आज मुझसे प्रसन्न होकर गुरुजी ने कहा है कि हे राजन्, अब राम को युवराजपद दीजिए। यदि यह मत आप सब पंचों को अच्छा लगे तो प्रसन्न होकर रामचन्द्र का तिलक कीजिए।

मन्त्री मुदित सुनत नृपबानी * अभिमत बिरव परा जनु पानी
बिनती सचिव करहिं करजोरी * जियहु जगतपति वर्ष करोरी

राजा के ये वचन सुनते ही सब मन्त्री प्रसन्न हो गये, मानो उनके मनोरथ के वृक्ष में जल सींच दिया गया। हाथ जोड़कर मन्त्री कहने लगे कि महाराज, आप करोड़ों वर्ष जियें।

जगमङ्गल भल काज विचारा * वेगिहिं नाथ न लाइय बारा
नृपहिं मोद सुनिसचिवसुभाखा * बढ़त बिटप जनु लही सुशाखा

यह संसार को मंगल देनेवाला काम आपने अच्छा विचारा है। इसे जल्दी ही कर डालिए; विलम्ब न कीजिए। मन्त्रियों के ये अच्छे वचन सुन राजा को ऐसा आनन्द हुआ, मानो बढ़ते हुए वृक्ष ने शाखाएँ पाईं।



कहेउ भूप मुनिराजकर, जोइ जोइ आयसु होइ।
रामराजअभिषेकहित, वेगि करहु सोइ सोइ॥

राजा ने मन्त्रियों से कहा—मुनिराज वशिष्ठजी की जो-जो आज्ञा हो, रामचन्द्र के तिलक के लिए वही शीघ्र करो।

हरषि मुनीश कहेउ मृदुबानी * आनहु सकल सुतीरथ पानी
औषध मूल फूल फल नाना * कहेउ नाम गनि मङ्गल जाना

वशिष्ठजी ने प्रसन्न होकर मीठी वाणी से कहा—सब तीर्थों का जल लाओ। फिर उन्होंने बहुत प्रकार की मांगलिक औषधों तथा मूल, फल और फूलों के नाम कह गिनाये।

चामर चमर वसन बहुभाँती * रोमपाट पट अगणित जाती
मणिगण मंगलवस्तु अनेका * जो जग योग भूप अभिषेका

जैसे चँवर, मृगछाला, बहुत प्रकार के ऊनी और रेशमी वस्त्र, मणियों के ढेर और मंगल की बहुत-सी वस्तुएँ, जो संसार में राजतिलक के योग्य थीं।

वेदविहित कहि सकलविधाना * कह्यो रचहु पुर विविध विताना
पनस रसाल पुङ्गिफल केरा * रोपहु वीथिन पुर चहुँ फेरा

इस प्रकार वेद में कही हुई सब विधि कहकर मुनि ने कहा—नगर में भाँति-भाँति के चँदोवे तनाये जायँ और कटहल, आम, सुपारी, केला आदि के वृक्ष नगर के चारों ओर की गलियों में लगाये जायँ।

रचहु मंजु मणि चौकैं चारू * कहेउ बनावन वेगि बजारू
पूजहु गणपति गुरुकुलदेवा * सब विधि करहु भूमिसुरसेवा

सुन्दर मणियों की चौकें पूरी जायँ और नगर के बाजार शीघ्र सजाये जायँ। गणेशजी, गुरुजनों और अपने कुलदेव का पूजन करके सब प्रकार से ब्राह्मणों की सेवा करो।


ध्वज पताक तोरण कलश, सजहु तुरँग रथ नाग।
शिर धरि मुनिवर वचन सब, निज निज काजहिं लाग॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सब सजाये जायँ। वशिष्ठजी के ऐसे वचन सुनकर सब अपने-अपने कामों में लग गये।

जो मुनीश जेहि आयसु दीन्हा * तेहि सो काज प्रथम जनु कीन्हा
विप्र साधु सुर पूजत राजा * करत रामहित मंगल काजा

वशिष्ठ ने जिसको जो आज्ञा दी, उसको उसने ऐसी शीघ्रता से किया, मानो पहले ही से कर लिया था। राजा ब्राह्मणों, सन्तजनों और देवताओं का पूजन तथा राम के लिए मंगल के काम करने लगे।

सुनत रामअभिषेक सुहावा * बाजहिं घरघर अवध बधावा
राम सीय तनु शकुन जनाये * फरकहिं मंगल अंग सुहाये

अयोध्या में रामचन्द्र का राज्याभिषेक सुन घर-घर बधावा बजने लगा। रामचन्द्र और सीता की देह में सगुन होने लगे--दोनों के सुहावने मांगलिक अंग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं * भरत आगमनसूचक अहहीं
भये बहुत दिन अति अवसेरी * शकुनप्रतीति भेंट प्रियकेरी

पुलकित अंग होकर प्रेम से दोनों कहने लगे कि ये सगुन भरत के आने की सूचना देते हैं। भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल गये बहुत दिन बीते, इससे बड़ी चिन्ता है। इन सगुनों से प्रियजन के मिलने का विश्वास होता है।

भरतसरिस प्रिय को जगमाहीं * यही शकुन फल दूसर नाहीं

रामहिं बन्धुशोच दिनराती * अंडन कमठ हृदय जेहि भाँती

फिर संसार में भरत के बराबर हमको प्यारा कौन है? इससे इन सगुनों का यही फल है, दूसरा नहीं। राम को दिन-रात भरत ही का ध्यान लगा रहता है, जैसे कछुए के हृदय में अण्डों का।



तेहि अवसर मंगल परम, सुनि हरषे रनिवास।
शोभितलखिविधुबढ़ैजिमि, वारिधिवीचिविलास॥

उसी समय यह परम मंगल सुनकर रनिवास ऐसे ही प्रसन्न हो उठा, जैसे चन्द्रमा को बढ़ते देख समुद्र की लहरें उमँगती हैं।

प्रथम जाइ जेहि वचनसुनावा * भूषण वसन भूरि तेहिं पावा
प्रेमपुलकि तनु मन अनुरागीं * मंगलसाज सजन सब लागीं

सबसे पहले जिसने जाकर यह राजतिलक होने की बात रानियों को सुनाई, उसने उनसे गहने, वस्त्र आदि बहुत-से पाये। उनके शरीर प्रेम से पुलकित हो उठे और मन में बड़ा स्नेह हुआ। वे सब मंगल के साज सजने लगीं।

चौकें चारु सुमित्रा पूरीं * मणिमय विविध भाँति अतिरूरीं
आनँदमगन राममहतारी * दिये दान बहु विप्र हँकारी

सुमित्रा ने बहुत प्रकार की मणियों से सुन्दर चौकें पूरीं। रामचन्द्र की माता कौशल्या ने आनन्द में मग्न होकर ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें बहुत से दान दिये।

पूजे ग्रामदेव सुर नागा * कहे बहोरि देन बलिभागा
जेहि विधि होइ रामकल्याना * देहु दया करि सो वरदाना

गाँव के देवता, देवता और नागों की पूजा की, उनकी विनती करके उन्हें बलिदान देने को कहा और यह माँगा कि जिस प्रकार रामचन्द्र का कल्याण हो कृपा करके वही वरदान दीजिए।

बार बार गणपतिहिं निहोरा * कीजे सफल मनोरथ मोरा
गावहिं मङ्गल कोकिलबयनी * विधुवदनी मृगशावकनयनी

बारंबार गणेशजी को निहोरा कियाकिहमारे मनोरथसफलकीजिए। कोकिला के समान वाणी, चन्द्रमा के समान मुख और हरिण के बच्चे के-से नेत्रोंवाली स्त्रियाँ मंगल गाने लगीं।



रामराजअभिषेक सुनि, हिय हरषे नरनारि।
लगे सुमङ्गल सजन सब, विधिअनुकूलविचारि॥

राम का राजतिलक सुन सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए, और विधाता को अनुकूल जान मंगल के साज सजने लगे।

तब नरनाह बशिष्ठ बुलाये * रामधाम सिख देन पठाये
गुरुआगमन सुनत रघुनाथा * द्वार आइ पद नायउ माथा

तब राजा ने वशिष्ठ मुनि को बुलाया और राम के मन्दिर में राजधर्म-शिक्षा और राज्याभिषेक की सूचना देने को भेजा। रामचन्द्र ने गुरु का आना सुनते ही द्वार पर आकर उनके चरणों में सिर नवाया।

सादर अर्घ्य देइ घर आने * षोडश भाँति पूजि सनमाने
गहे चरण सियसहित बहोरी * बोले राम कमलकर जोरी

फिर अर्घ्य देकर आदरसहित उन्हें भवन के भीतर लिवा ले गये और सोलहों प्रकार से पूजन करके उनका बड़ा सम्मान किया। फिर सीतासमेत रामचन्द्र ने उनके चरण छुए और कमल के समान हाथ जोड़ बोले—

सेवकसदन स्वामिआगमनू * मङ्गलमूल अमङ्गलदमनू
तदपिउचितजनबोलिसप्रीती * पठइय काज नाथ अस नीती

सेवक के घर स्वामी का आना यद्यपि मंगलों का मूल और अमंगलों का नाशक होता है, तो भी उचित तो यही है कि स्वामी सेवक को बुलाकर प्रीतिपूर्वक काम करने की आज्ञा दे।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू * भयउ पुनीत आजु यह गेहू
आयसु होय सो करिय गोसाँई * सेवकु लहै स्वामिसेवकाई

सो आपने प्रभुता छोड़कर स्नेह ही किया कि स्वयं चले आये, जिससे आज यह घर पवित्र हुआ। अब जो आज्ञा हो सो किया जाय, जिसमें सेवक स्वामी की सेवा करने का अवसर पावे।

सुनि सनेहसाने वचन, मुनि रघुबरहि प्रशंस।
कस न राम तुम कहहु अस, हंसवंशअवतंस॥

ऐसे स्नेहभरे वचन सुनकर मुनि ने रामचन्द्र की बहुत बड़ाई की और कहा—हे राम, तुम ऐसा क्यों न कहो; ये वचन तुम्हारे योग्य ही हैं। सूर्यवंश तो सदा से गुरुभक्त होता चला आया है; फिर तुम तो इस वंश के सिरमौर हो।

बरणि रामगुणशीलस्वभाऊ * बोले प्रेमपुलकि मुनिराऊ
भूप कीन्ह अभिषेकसमाजू * चाहत तुमहिं देन युवराजू

इस प्रकार राम के गुण, शील और स्वभाव की बड़ाई कर प्रेम से पुलकित होकर वशिष्ठ मुनि बोले कि राजा ने राजतिलक का साज साजा है—तुमको युवराजपद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संयम आजू * जेहि विधि कुशल निबाहै काजू

गुरु सिख देइ राउ पहँ गयऊ * रामहृदय अतिविस्मय भयऊ

इससे हे राम, आज संयम (ब्रह्मचर्य) से रहो, जिससे विधाता इस कार्य को कुशल से निबाहे। यह कहकर वशिष्ठजी तो राजा के पास गये, पर राम के मन में बड़ा विस्मय हुआ।

जनमे एक संग सब भाई * भोजन शयन केलि लरिकाई
कर्णवेध उपवीत विवाहा * संग संग सब भये उछाहा

कि हम चारो भाई एक ही साथ जन्मे और लड़कपन में साथ ही भोजन किया, साथ ही खेले। एक ही साथ हमारे कनछेदन, जनेऊ, विवाह आदि भी हुए।

विमलवंश यह अनुचित एका * अनुजबिहाय बड़ेहि अभिषेका
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई * हरेउ भक्तमन की कुटिलाई

इस निर्मल वंश में एक यही बात अनुचित है कि छोटे भाइयों को छोड़कर बड़े ही को राजतिलक होता है। प्रभु के प्रेमपूर्ण इस पछतावे ने भक्तों के हृदय की कुटिलता को हर लिया।


तेहि अवसर आये लषण, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रविकुलकैरवचन्द ॥

उसी समय लक्ष्मण यह मंगल समाचार सुनकर प्रेम और आनन्द में मग्न हो रामजी के पास आये। कोकाबेली के समान सूर्यकुल को प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा रामजी ने प्रिय वचनों से उनका सम्मान किया।

बाजहिं बाजन विविध विधाना * पुरप्रमोद नहिं जाय बखाना
भरतआगमन सकल मनावहिं * आवहिं वेगि नयनफल पावहिं

बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे। उस समय नगर में जैसा आनन्द हुआ, वह कहा नहीं जाता। भरत का आना सब पुरवासी मनाते हैं कि शीघ्र आवें तो नेत्रों का फल पावें।

हाट बाट घर गली अथाई * कहहिं परस्पर लोग लुगाई
कालिह लगन भलि केतिकबारा * पूजिहि विधि अभिलाष हमारा

हाटों, बाटों, घरों, गलियों और अथाइयों में परस्पर स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ यह चर्चा करते थे कि कल जाने किस समय लग्न है, जब विधाता हमारा मनोरथ पूरा करेगा।

कनक सिंहासन सीयसमेता * बैठहिं राम होइ चितचेता
सकल कहहिं कब होइहि काली * विघ्न मनावहिं देव कुचाली

जब सोने के सिंहासन पर सीतासमेत रामचन्द्र बैठेंगे, तभी हमारे चित्त का चेता होगा। पुरवासी तो कहते हैं कि कल न जाने कब होगा, परन्तु कुचाली देवता विघ्न मनाते हैं।

तिनहिं सुहाय न अवध बधावा * चोरहि चाँदनि राति न भावा

शारद बोलि विनय सब करहीं * बारहिंबार पाँय लै परहीं

उनको यह अयोध्या का आनन्द बधावा नहीं सुहाता, जैसे चोर को चाँदनी रात। सरस्वती को बुलाकर सब उनकी बिनती कर बारंबार उनके पैरों पर गिरकर बोले—



बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सो आजु।
राम जाहिं बन राज तजि, होइ सकल सुरकाजु॥

हे माता, हमारी इस बड़ी बिपत्ति को देखकर आप ऐसा कुछ कीजिए कि रामचन्द्र इस राज्य को छोड़कर वन को चले जायँ, जिससे हम सब देवताओं का सब काम बन जाय।

सुनि सुरबचन ठाढ़ि पछिताती * भइउँ सरोजबिपिनहिमराती
देखि देव सब कहहिं बहोरी * मातु तोहिं नहिं थोरिउ खोरी

देवताओं के वचन सुनकर सरस्वती खड़ी पछताती हैं कि मैं फूले हुए कमलों के वन के लिए पाले की रात हुई। यह दशा देख देवता फिर कहने लगे कि हे माता, तुम्हारा इसमें कुछ भी दोष नहीं।

बिस्मयहर्षरहित रघुराऊ * तुम जानहु सब रामस्वभाऊ
जीव कर्मबश दुखसुखभागी * जाइय अवध देवहितलागी

रामचन्द्र के स्वभाव को तो तुम जानती ही हो कि दुःख-सुख से रहित हैं। फिर जीव अपने-अपने कर्मों के वश सदा दुःख-सुख के भागी होते हैं। इससे हम देवताओं के लिए अयोध्या को जाइए।

बार बार गहि चरण सकोची * चली बिचारि बिबुधमतिपोची
ऊँच निवास नीच करतूती * देखि न सकहिं पराइ बिभूती

इस प्रकार बारंबार देवताओं के चरण पकड़ने पर सरस्वती संकोचवश उनकी बुद्धि को छोटी जानकर अयोध्या को चलीं। वह अपने मन में कहने लगीं कि ये रहते तो इतने ऊँचे स्वर्ग में हैं, परन्तु इनकी करतूत महानीच है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते।

आगिल काज बिचारि बहोरी * करिहैं चाह कुशलकबि मोरी
हर्षि हृदय दशरथपुर आई * जनु ग्रहदशा दुसह दुखदाई

फिर शारदा ने आगे का काम विचारा कि वन में राम के किये हुए चरित्रों को गाने के लिए चतुर कवि मेरी चाह या आराधना करेंगे। इसलिए वह हृदय में प्रसन्न होकर अयोध्या में आईं, मानो ग्रहों की महा दुःखदायक दशा ही हो।



नाम मन्थरा मन्दमति, चेरि केकयी केरि।
अयशपिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥

कैकेयी की एक मन्थरा नाम की महामन्दमति दासी थी। उसी को इस महाअपयश की पिटारी करके सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गई।

देखि मन्थरा नगरबनावा * मंगल मंजुल बाज बधावा
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू * रामतिलक सुनि भा उर दाहू

मन्थरा ने नगर में सुन्दर मंगल की सजावट बधावा आदि बजते देख सुनकर लोगों से पूछा कि यह कैसा उत्सव है? जब सबके मुख से रामचन्द्र का राजतिलक होने की बात सुनी तो उसके हृदय में बड़ी ही जलन हुई।

करै विचार कुबुद्धि कुजाती * होइ अकाज कौन विधि राती
देखिलागि मधु कुटिल किराती * जिमि गवँ तकै लेउँ केहिभाँती

बड़ी कुमति और कुजाति मंथरा विचारने लगी कि आज ही की रात बीच में है। इसी रात को कैसे अकाज हो? जैसे कोई भिल्लिनी वृक्ष पर शहद लगा देखकर दाँव तके कि इसको कैसे लूँ।

भरतमातुपहँ गइ बिलखानी * का अनमनि हसि हँसि कह रानी
उतर न देइ सो लेइ उसासू * नारिचरित करि ढारति आँसू

फिर सोच-विचारकर वह भरत की माता के पास गई और रोने लगी। तब कैकेयी ने हँसकर पूछा—तू क्यों अनमनी है? उसने सुनकर कुछ उत्तर न दिया; किन्तु गहरी उसासें लेने और त्रियाचरित्र रचकर आँसू गिराने लगी।

हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे * दीन्ह लषण सिख अस मन मोरे
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि * छाँड़ै श्वास कारि जनु साँपिनि

रानी ने हँसकर कहा कि तेरे गाल बड़े हैं (बड़ी मुँहफट है), इसी से मैं समझती हूँ कि लक्ष्मण ने तुझे दण्ड दिया होगा। इस पर भी पापिनी दासी न बोली और काली नागिन की तरह साँसें छोड़ने लगी।



सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लषण रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उरशाल॥

तब रानी कैकेयी भयभीत होकर कहने लगी कि तू कहती क्यों नहीं? राम, राजा, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ये सब कुशल तो हैं? रानी के ऐसे वचन सुनकर उस कुब्जा के हृदय में दुःख हुआ।

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई * गाल करब केहिकर बल पाई
रामहिं छाँड़ि कुशल केहि आजू * जाहि नरेश देत युवराजू

मन्थरा बोली—मैया, हमको कोई किसलिए दण्ड देगा? और मैं किसके बल पर

गाल बजाऊँगी (गजूँगी) ! राम को छोड़ आज किसको कुशल है, जिनको राजा युवराज का पद दे रहे हैं।

भाकौशल्यहिविधिअतिदाहिन * देखत गर्व रहत उर नाहिन
देखहु कस न जाइ असि शोभा * जो अवलोकि मोर मन क्षोभा

आज तो विधाता कौशल्या के ही बहुत अनुकूल है। उसको देखकर मेरे मन में जो तुम्हारा घमंड था, वह नहीं रह गया। उस शोभा को जाकर क्यों नहीं देखती हो, जिसे देखकर मेरे मन में यह क्षोभ और दुःख हुआ है।

पूत विदेश न शोच तुम्हारे * जानतिहौ वश नाह हमारे
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई * लखहु न भूपकपटचतुराई

पुत्र विदेश में पड़ा है और तुमको इसका कुछ भी सोच नहीं। जानती हो कि राजा मेरे वश में हैं। तुम्हें तो नींद अधिक प्यारी है। सेज को छोड़ तुम्हें कुछ सूझता ही नहीं। राजा की कपट-भरी चतुराई को तुम नहीं देखती हो।

सुनि प्रियवचनमलिनमनजानी * झुकी रानि अरहू अरगानी
पुनि अस कहसिकबहुँ घरफोरी * तौ धरि जीह कढ़ावहुँ तोरी

राम का राजतिलक होगा, ऐसे प्रिय वचन सुन और मंथरा को मलिनमन की जानकर रानी कैकेयी मंथरा पर खीझ उठीं और मंथरा भी चुप हो रही। रानी ने कहा—घर का फोड़नेवाली दुष्टा, यदि ऐसा फिर कहेगी तो तेरी जीभ खिचवा लूँगी।


कानी खोरी कूबरी, कुटिल कुचाली जानि।
तेहिविशेषिपुनिचेरिकहि, भरतमातु मुसुकानि॥

फिर कानी, लँगड़ी, कुबड़ी, कुटिल, कुचाली जान और उस पर अधिक करके चेरी कहकर भरत की माता कैकेयी ने मुसकरा दिया। फिर कहा—

प्रियवादिनि सिख दीन्हेउँ तोही * सपनेहुँ तोपर कोह न मोही
सुदिन सुमङ्गलदायक सोई * तोर कहा फुर जादिन होई

हे प्रिय वचन बोलनेवाली, मैंने तुझे शिक्षा देने के लिए ही ये कटु वचन कहे हैं—सिखाया है कि ऐसा न कहना चाहिए। क्रोध तो तेरे ऊपर मुझे स्वप्न में भी नहीं है। मङ्गलदायक सुदिन वही होगा, जिस दिन तेरा कहना सच हो।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई * यह दिनकरकुलरीति सुहाई
रामतिलक जो साँचेहु काली * माँगु देउँ मनभावत आली

सदा से बड़े भाई स्वामी और छोटे भाई सेवक होते आये हैं। यह इस सूर्यवंश की उत्तम

रीति है। इससे यदि रामचन्द्र को सचमुच कल राजतिलक होगा तो हे सखी, जो तुझे अच्छा लगे, वह माँग ले, मैं दूँगी।

कौशल्यासम सब महतारी * रामहिं सहज स्वभाव पियारी
मोपर करहिं सनेह विशेखी * मैं करि प्रीति परीक्षा देखी

रामचन्द्र का यह सहज स्वभाव है कि उन्हें सब माताएँ कौशल्या के समान प्यारी हैं। मुझ पर तो वह कौशल्या से भी अधिक स्नेह करते हैं—यह मैंने उनकी परीक्षा करके देख लिया है।

जो विधि जन्म देइ करि छोहू * होहिं राम सिय पूत पतोहू
प्राणते अधिक राम प्रिय मोरे * तिनके तिलक क्षोभ कस तोरे

मैं तो विधाता से मनाती हूँ कि यदि विधाता कृपा करके मनुष्य का जन्म दे तो राम और सीता के समान ही पुत्र और बहुएँ हुआ करें। राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। उनको तिलक होने में तुझे यह कैसा क्षोभ है?



भरतशपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव।
हर्षसमय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाव॥

तुझको भरत की सौगन्द है, कपट छोड़कर सच ही कहना, इस आनन्द के समय में जो तू रंज करती है, इसका कारण मुझको सुना।

एकहिबार आश सब पूजी * अब कछु कहब जीह करि दूजी
फोरै योग कपार अभागा * भलेउ कहत दुख रौरेहु लागा

मंथरा ने कहा—बस-बस रानीजी, आशा तो मेरी एक ही बार में पूरी हो गई। अब क्या मैं दूसरी जीभ करके कहूँ? मेरा तो यह अभागा कपार फोड़ने ही योग्य है, क्योंकि भलाई करते भी आपको दुःख लगा।

कहइ झूठ फुर बात बनाई * सो प्रिय तुमहिं करुइ मैं माई
हमहुँ कहब अब ठकुरसुहाती * नाहिंत मौन रहब दिनराती

मैया, तुम्हें तो जो झूठ को सच बनाकर कहता है, वही प्यारा है। फिर मैंने तो कभी ऐसा किया नहीं, इसी से कड़वी हूँ। तो मैं भी अब ठकुरसुहाती कहा करूँगी, नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी।

करिकुरूप विधि परवश कीन्हा * बवा सो लुना पाव जो दीन्हा
कोउ नृप होउ हमैं का हानी * चेरी छाँड़ि न होइब रानी

हमको तो विधाता ने कुरूप करके पराये अधीन कर दिया है; हमने जो बोया था, वह

काटा—जो दिया था, वह पाया। कोई भी राजा हो, उसमें हमारी क्या हानि है? हम तो दासी छोड़ रानी हो नहीं सकतीं।

जारै योग स्वभाव हमारा * अनभल देखि न जाय तुम्हारा
तातें कछुक बात अनुसारी * क्षमब देवि बड़ चूक हमारी

हमारा स्वभाव जलाने ही के योग्य है कि हमसे तुम्हारा अनभला देखा नहीं जाता। इससे कुछ बात निकल गई। अपराध तो बड़ा है, परन्तु हे देवी, कृपा करके क्षमा करो।


गूढ़ कपट प्रियवचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुरमायावश बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि॥

ऐसे गूढ़ और कपटभरे प्यारे वचन सुनकर स्त्री स्वभाव के कारण ओछी बुद्धिवाली रानी कैकेयी ने देवताओं की माया के वश हो बैरिन को मित्र जानकर उसकी बातों पर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि पूछत ओही * शबरीगान मृगी जनु मोही
लस भति फिरी अहै जसिभावी * रहसी चेरि घात भलि फावी

तब आदर करके कैकेयी बार-बार मंथरा से पूछने लगी। उसे छल से ऐसा मोह हो गया, जैसे भिल्लिनी के राग को सुनकर हरिणी मोह जाती है—उसके जाल में फँस जाती है। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि फिर गई। यह देखकर मंथरा मन में हँसी कि मेरी घात खूब चल गई।

तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ * धरेउ मोर घरफोरनि नाऊँ
सजिप्रतीतिबहुविधिगढ़िछोली * अवध साढ़साती तब बोली

वह बोली—तुम तो पूछती हो, पर मैं कहते डरती हूँ; क्योंकि मेरा नाम तो तुमने घरफोरी पहले ही रख दिया है। ऐसे बहुत प्रकार से गढ़-छोलकर, अपने में विश्वास कराकर, अयोध्या के ऊपर शनैश्चर की साढ़साती दशा के समान मन्थरा बोली—

प्रिय सियराम कहा तुम रानी * रामहिं तुम प्रिय सो फुर बानी
रहे प्रथम अब ते दिन बीते * समय फिरे रिपु होहिं पिरीते

हे रानी, तुमने सीता और राम को प्यारा कहा और तुम भी राम को सबसे अधिक प्यारी हो, यह सत्य है। परन्तु जो दिन पहले थे, वे अब बीत गये, और तुम जानती हो कि समय फिरने से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमलकुल पोषणहारा * बिनु जल जारि करै सोइ छारा
जर तुम्हारि चह सवतिउपारी * रूँधहु करि उपाय बरबारी

जो सूर्य कमल के कुल का वर्षाऋतु में पोषक होता है, वही ग्रीष्म में जल बिना

उसे जलाकर भस्म कर देता है। तुम्हारी जड़ को सौत कौशल्या उखाड़ना चाहती है। उसको उपायरूपी उत्तम बाड़ से रूँधो।



तुमहिं न शोच सुहाग बल, निज वशजानहु राउ।
मनमलीन मुख मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ॥

तुमको सुहाग (पति के प्यार) के बल से कुछ शोच नहीं है। तुम राजा को अपने वश जानती हो, पर राजा मुख ही से मीठे हैं, मन के बड़े मैले हैं। तुम्हारा तो सीधा स्वभाव है, तुम उनके कपट को नहीं जानतीं।

चतुर गँभीर राममहतारी * बीच पाइ निजबात सँभारी
पठये भरत भूप ननिओरे * राममातुमत जानब रौरे

चतुर और गंभीर तो राम की माता हैं, जिन्होंने अवसर पाकर अपनी बात सँभाल ली—अपना काम बना लिया। भरत को जो राजा ने ननिहाल भेजा है, वह सब कौशल्या ही का मत आप जानिए।

सेवहिं सकल सवतिमोहिंनीके * गर्वित भरतमातु बल पीके
शाल तुम्हार कौशलहि माई * कपट चतुर नहिं होत लखाई

कौशल्या ने विचारा है कि सब सौतें तो मेरी अच्छी प्रकार सेवा करती हैं, केवल कैकेयी पति के बल से उन्मत्त रहती है। यह कौशल्या को सालता है, परन्तु वे कपट में चतुर हैं, इससे प्रकट दिखाई नहीं देता।

राजहिं तुमपर प्रीति विशेखी * सवति स्वभाव सकै नहिं देखी
रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई * रामतिलकहित लगन धराई

राजा को जो तुममें बहुत प्रेम है, उसे सौत के स्वभाव से कौशल्या नहीं देख सकतीं। इसलिए यह प्रपञ्च रचकर उन्होंने राजा को अपने वश में कर लिया है—राम के तिलक की लग्न धराई है।

यहि कुल उचित राम कहँ टीका * सबहिं सुहाइ मोहिं सुठि नीका
आगिलबात समुझि डर मोहीं * दैव देव फल सो फिर ओहीं

राम को तिलक होना तो कुल के उचित ही है और सबको, मुझे भी, सुहाता है। परन्तु जो मैं अभी कह चुकी हूँ, वह समझकर मुझको बड़ा डर है। पर उस कपट का फल दैव फिरकर उसी को देगा।



रचिपचिकोटिककुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोध।
कहेसिकथाशतसवतिकी, जेहि विधि बाढ़ विरोध॥

इस प्रकार से करोड़ों छल-कपट रचकर मन्थरा ने कैकेयी को समझाया और सैकड़ों

सौतों की ऐसी कथाएँ कहीं, जिससे कौशल्या और कैकेयी में परस्पर वैर बढ़ जाय।

भावीवश प्रतीति उर आई * पूछि रानि निजशपथ दिवाई
का पूछहु तुम अजहुँ न जाना * निज हित अनहित पशुपहिंचाना

होनी के वश रानी के मन में विश्वास आ गया। वह अपनी सौगन्द दिलाकर पूछने लगी कि तूने यह कैसे जाना? मन्थरा ने कहा—पूछती क्या हो? तुमने अब भी नहीं जाना—शत्रु और मित्र को तो पशु भी पहचानते हैं।

भये पाख दिन सजत समाजू * तुम पायहु सुधि हमसन आजू
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे * सत्य कहे नहिं दोष हमारे

इस समाज को सजते तो पन्द्रह दिन बीत गये, पर तुमने आज मुझसे ये समाचार पाये हैं। मैं तो तुम्हारे ही राज में खाती-पहनती हूँ, इससे तुमसे सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं।

जो असत्य कछु कहब बनाई * तौ विधि देइहि हमहिं सजाई
रामहिंतिलक कालिहजोभयऊ * तुम कहँ विपतिबीज विधिबयऊ

इस पर भी यदि तुमसे झूठ को सच बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देगा। ऐसा कह फिर बोली कि यदि कल राम को तिलक हो गया तो मानो तुम्हारे दुःख का बीज विधाता ने बो दिया।

रेखा खैंचि कहौं बलभाखी * भामिनि भइउ दूध की माखी
जो सुतसहित करहु सेवकाई * तौ घर रहहु न आन उपाई

मैं तुमसे लकीर खींचकर जोर देकर कहती हूँ कि हे भामिनी, तुम दूध की-सी माखी निकाल दी जाओगी। हाँ, यदि अपने पुत्र के साथ कौशल्या की सेवा करोगी तो घर में रहने पाओगी, नहीं तो और कोई उपाय नहीं।


कद्रूविनतहिं दीन्ह दुख, तुमहिं कौशला देव।
भरत बन्दिगृह सेइहैं, राम लखण कर नेव॥

जैसे-जैसे दुःख सर्पों की माता कद्रू ने गरुड़ की माता विनता (अपनी सौत) को दिये हैं, वैसे ही वैसे दुःख कौशल्या तुमको देंगी। भरत तो जन्म भर कारागार में रहेंगे। राम-लक्ष्मण तो एक ही हैं।

केकयसुता सुनत कटुबानी * कहि न सकै कछु सहमि सुखानी
तन पसेव कदली जिमि काँपी * कुबरी दशन जीह तब चाँपी

राजा केकय की बेटी कैकेयी ये कटु वचन सुनते ही सहमकर सूख गई, किन्तु कुछ भी न कह सकी। शरीर में पसीना निकल आया और केले की नाईं काँपने लगी। तब मन्थरा ने दाँतों से जीभ को दबा लिया।

कहि कहि कोटिक कपटकहानी * धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी
कीन्हेसि कठिन पढ़ाय कुपाठू * जिमि न नवै फिरि उकठा काठू

और करोड़ों कपट-कहानियाँ कह-कहकर समझाया कि हे रानी, धीरज धरो। फिर बुरे पाठ पढ़ाकर रानी को ऐसा कठिन कर दिया, जैसे सूखी लकड़ी, जो फिर नहीं झुकती।

फिरा कर्म प्रिय लागि कुचाली * बकिहिं सराहत मनहु मराली
सुनु मन्थरा बात फुर तोरी * दहिन आँख फरकत नित मोरी

कैकेयी का भाग्य फिर गया, उसे कुचाली मन्थरा बहुत प्यारी लगी। वह उसको सराहने लगी, जैसे बगली को हंसिनी सराहे। कैकेयी ने कहा—सुन मन्थरा, तेरी बात सच है। मेरी दाहनी आँख सदा फड़का करती है।

दिनप्रति देखौं राति कुसपने * कहौं न तोहिं मोहवश अपने
काह करौं सखि शुद्ध सुभाऊ * दहिनबाम नहिं जानौं काऊ

नित्य रात को बुरे सपने देखती हूँ; परन्तु मोह के वश हूँ, इससे कभी तुझसे नहीं कहा। क्या करूँ? हे सखी, मैं तो सीधे स्वभाव की हूँ। कौन हितू है और कौन शत्रु, यह नहीं जानती हूँ।


अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहिबार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥

अपने चलते तो मैंने आज तक कभी किसी का अनभला नहीं किया, फिर न जाने किस पाप से यह कठिन दुःख दैव ने मुझको एकबारगी दिया है।

नैहर जन्म भरब बरु जाई * जियत न करब सवतिसेवकाई
अरिवश दैव जियावत जाही * मरण नीक तेहि जीव न चाही

मैं अपने जन्म को मायके में जाकर भले ही बिता दूँगी; परन्तु जीतेजी सौत की सेवा नहीं करूँगी। वैरी के वश दैव जिसको जिलाता है, उस जीने से तो मर जाना अच्छा।

दीनवचन कह बहुविधि रानी * सुनि कुबरी तियमाया ठानी
अस कस कहहु मानि मन ऊना * सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना

जब रानी ने ऐसे ओछे वचन कहे, तब मन्थरा ने स्त्रियों के छलछन्द ठानकर कहा—हे रानी, मन में हीनता मानकर ऐसा क्यों कहती हो? तुमको तो सुख-सुहाग दिन-दिन दूना ही प्राप्त होगा।

जेहि राउर अस अनभल ताका * सोइ पाइहि यह फल परिपाका
जबते कुमति सुना मैं स्वामिनि * भूख न वासर नींद न यामिनि

जिसने तुम्हारा ऐसा अनभला विचारा है, वही अंत में इसका बुरा फल पावेगा। हे रानी, सुनो। मैंने जब से इस कुमत को सुना है, तब से न तो मुझको दिन में भूख लगती और न रात में नींद आती है।

पूछा गुणिन रेख तिन खाँची * भरत भुआल होहिं यह साँची
भामिनि करहु तौ कहौं उपाऊ * हैं तुम्हरी सेवावश राऊ

मैंने गुणी ज्योतिषियों से जाकर पूछा तो उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य है। हे रानी, यदि तुम करना चाहो तो मैं उपाय कहूँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं।



परौं कूप तव वचन लगि, सकौं पूतपति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हितलागि॥

रानी बोली—मन्थरा, मैं तेरे कहने से कुएँ में भी गिर सकती हूँ और पति-पुत्र को भी छोड़ सकती हूँ। तू तो मेरा यह बड़ा दुःख देखकर ऐसा कहती है और मैं अपने हित के लिए यह भी न करूँगी।

कुबरी करी कुबलि कैकेई * कपटछुरी उरपाहन टेई
लखै न रानि निकट दुख कैसे * चरत हरिततृण बलिपशु जैसे

कुबरी ने कैकेयी को बुरी भाँति बलि देने का पशु बना लिया और उसे मारने के लिए कपट की छुरी हृदयरूपी पत्थर पर पैनी की। पास आये दुःख को रानी वैसे ही नहीं देखती, जैसे हरी घास चरता हुआ बलि-पशु खड्ग को नहीं देखता।

सुनत बात मृदु अन्त कठोरी * देति मनहुँ मधु माहुर घोरी
कहै चेरि सुधि अहै कि नाहीं * स्वामिनि कहेउ कथा मोहिं पाहीं

मन्थरा की बात सुनने में तो कोमल है, परन्तु वास्तव में कठोर है। वह मानो शहद में विष घोलकर देती है। दासी मन्थरा बोली कि हे स्वामिनी, तुमने जो मुझसे कथा कही थी, वह तुम्हें याद है या नहीं?

दुइ वरदान भूप सन थाती * माँगहु आजु जुड़ावहु छाती
सुतहिं राज रामहिं बनवासू * देहु लेहु सब सवतिहुलासू

जो दो वरदान तुम्हारे राजा के पास थाती हैं, उन्हें आज माँगकर अपनी छाती ठंढी करो। एक वर से तो अपने पुत्र भरत को राज्य और दूसरे से राम को वनवास देकर सौत की सब प्रसन्नता हर लो।

भूपति रामशपथ जब करहीं * तब माँगेहु जेहि वचन न टरहीं
होइ अकाज आजु निशि बीते * वचन मोर प्रिय मानहु जीते

परन्तु जब राजा राम की सौगन्द करें, तभी माँगना, जिसमें वचन से टल न सकें। यदि आज की रात बीत गई तो अनर्थ हो जायगा। इससे आज ही माँगना और इन मेरे वचनों को प्राण से भी अधिक प्यारे मानना।



बड़ कुघातकरिपातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग ह्वै, सहसा जनि पतियाहु॥

महापापिनी मन्थरा ऐसी बड़ी कुघात करके बोली कि अभी कोपभवन में चली जाओ और अपने इस काम को बड़ी चतुरता से करना। एकाएक राजा को पतियाना नहीं।

कुबरिहिं रानि प्राणप्रिय जानी * बार बार बड़ि बुद्धि बखानी
तोहिं सम हित न मोर संसारा * बहेजात कर भयेसि अधारा

कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्यारी जानकर बारंबार उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की। फिर कहा कि तेरे समान मेरा हितकारी संसार में कोई नहीं। मुझ बही जाती को तू ही सहारा हुई।

जो विधि पुरव मनोरथ काली * करौं तोहिं चषपूतरि आली
बहुविधि चेरिहि आदर देयी * कोपभवन गवनी कैकेयी

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा करेगा, तो हे सखी, तुझको आँखों की पुतली बनाकर रक्खूँगी। बहुत प्रकार चेरी को आदर देकर कैकेयी कोपभवन को चली गई।

बिपतिबीज वर्षाऋतु चेरी * भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी
पाइ कपट जल अंकुर जामा * वर द्वय दल फल दुखपरिणामा

इस विपत्तिवीज को अंकुरित करने के लिए मन्थरा तो वर्षा-ऋतु और कैकेयी की कुबुद्धि धरती है। कपटरूपी जल पाकर उस बीज का अंकुर फूटा और उसमें दोनों वरदान पत्ते हुए, उसका अंत में दुःख ही फल हुआ।

कोप समाज साजि सब सोई * राज करत निज कुमति बिगोई
राउरनगर कुलाहल होई * यहि कुचालि कछु जान न कोई

कैकेयी कोपभवन में जाकर सब कोप का साज साजकर सो रही। राज करते हुए अपनी ही कुबुद्धि से नष्ट हुई। राजा के नगर में आनन्द का कोलाहल हो रहा था और इस कुचाल की किसी को खबर न थी।



प्रमुदित पुरनरनारि सब, साजि सुमंगलचार।
इकप्रविशहिं इकनिकसहीं, भीर भूपदरबार॥

नगर के सब स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हो सुन्दर मंगलाचार साजकर राजमन्दिर में एक आते और एक जाते थे। राजदरबार में भीड़ हो रही थी।

बालसखा सुनि हिय हरषाहीं * मिलि दसपाँच राम पहँ जाहीं
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी * पूछहिं कुशलक्षेम मृदुबानी

बालसखा राम का तिलक सुनकर प्रसन्न होते और दस-पाँच मिलकर उनके पास जाते थे। रामजी प्रेम पहचानकर उनका बड़ा आदर करते और कोमल वाणी से कुशलक्षेम पूछते थे।

फिरहिं भवन प्रभु आयसु पाई * करत परस्पर राम बड़ाई
को रघुवीरसरिस संसारा * शीलसनेह निबाहनहारा

फिर रामचन्द्र की आज्ञा पाकर वे घर को लौटते और राह में परस्पर राम की बड़ाई करते थे कि शील और स्नेह का निबाहनेवाला रामचन्द्र के समान संसार में दूसरा कौन है ?

जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं * तहँ तहँ ईश देहिं यह हमहीं
सेवक हम स्वामी सियनाहू * होइ नाथ यह और निबाहू

हे नाथ, इतना और निबाह हो कि जिस-जिस योनि में अपने कर्मों के वश हम जन्म लें, वहाँ-वहाँ ईश्वर हमको यह दिया करें कि हम सेवक और राम स्वामी हों।

अस अभिलाष नगर सबकाहू * केकयसुता हृदय अतिदाहू
को न कुसंगति पाइ नशाई * रहै न नीच मते गरुआई

ऐसी इच्छा नगर में सबको थी; परन्तु कैकेयी के मन में बड़ी जलन हो रही थी। कुसंगति पाकर कौन नहीं मिटता ? नीचों की सलाह मानने से गम्भीरता नहीं रहती।


साँझ समय सानन्द नृप, गयउ केकयीगेह।
गमननिठुरतानिकटकिय, जनु धरि देह सनेह ॥

सन्ध्या के समय आनन्दसमेत राजा कैकेयी के घर गये। मानो निठुरता के पास देह धरकर स्नेह गया हो।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ * भयवश आगे परै न पाऊ
सुरपति बसैं बाहुबल जाके * नरपति रहहिं सकल रुखताके

रानी को कोपभवन में गई सुनते ही राजा सकुच गये। डर के मारे आगे पैर नहीं पड़ता। जिसकी भुजाओं के बल से इन्द्र वैरियों से निडर हो बसता है और सब राजा जिसका मुख देखा करते हैं,

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई * देखहु काम प्रताप बड़ाई
शूल कुलिश असि अँगवनहारे * ते रतिनाथ सुमनशर मारे

वही राजा दशरथ स्त्री का रिसाना सुनते ही सूख गये। काम के प्रताप की बड़ाई तो देखो ! जो त्रिशूल, वज्र और खड्ग के घाव सहनेवाले हैं, उन्हें भी कामदेव ने फूलों ही के बाणों से मार लिया है।

सभय नरेश प्रिया पहँ गयऊ * देखि दशा दुख दारुण भयऊ
भूमिशयन पट मोट पुराना * दिये डारि पटभूषण नाना

डर सहित राजा रानी के पास गये। उसकी दशा देखते ही उन्हें कठिन दुःख हुआ। रानी पृथ्वी में लेटी थी, पुराने मोटे कपड़े पहने थी, और अनेक प्रकार के राजसी वस्त्र, भूषण उतारकर फेंक दिये।

कुमतिहि कसि कुवेषता फावी * अनअहिवात सूच जनु भावी
जाइ निकट नृप कह मृदुबानी * प्राणप्रिया केहि हेतु रिसानी

उस कुमति को अमंगलवेष करना ऐसा फबता था, मानो आगे ही से विधवा होना जताता था। पास जाकर राजा ने कोमल वाणी से पूछा कि 'प्राणप्रिये! तू क्यों रिसानी है?'

छन्द

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुवङ्गभामिनि विषम भाँति निहारई॥
द्वय वासना रसना दशनवर मर्म ठाहर देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यतावश कामकौतुक लेखई॥

हे रानी, क्यों रिसानी हो—यह कह ज्यों ही राजा ने उसके छूने को हाथ बढ़ाया, त्यों ही उसने हाथ को हटा दिया और रिसभरी नागिन की तरह बुरी तरह से देखने लगी। भरत को राज्य और राम को वनवास ये दो इच्छाएँ तो उसकी दोनों जीभ हैं और दोनों वरदान दाँत हैं। डसने के लिए मर्मस्थल को देखती है; पर राजा भावी के वश इसे कामकौतुक जानता है।


सो० बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबयनि।
कारण मोहिं सुनाउ, गजगामिनि निज कोपकर॥

बार-बार राजा ने कहा कि हे सुमुखी, हे सुलोचनी, हे कोकिलबयनी, हे गजगामिनी! अपने कोप का कारण तो मुझे सुना।

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा * केहिद्वयशिर केहियमचहलीन्हा
कहु केहि रंकहि करौं नरेशू * कहु केहि नृपति निकारौं देशू

हे प्यारी, तेरा अनहित किसने किया है, किसके दो सिर हैं और यमराज किसको लिया चाहते हैं? बतला, किस गरीब को राजा कर दूँ और किस राजा को देश से निकाल दूँ?

सकौं तोर अरि अमरहु मारी * कहा कीट बपुरे नरनारी
जानसि मोर स्वभाव बरोरू * तवमुख समदृग चन्द्र चकोरू

तेरे वैरी देवता को भी मार सकता हूँ, बेचारे कीड़ों के समान अन्य नर-नारियों की क्या गिनती है ? हे सुन्दरी, तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि चन्द्रमा के समान तेरे मुख को मेरे नेत्र चकोर की भाँति देखा करते हैं।

प्रिया प्राण सुत सर्वस मोरे * परिजन प्रजा सकल वश तोरे
जो कछु कहौं कपट करि तोहीं * भामिनि रामशपथ शत मोहीं

हे प्यारी, मेरे प्राण, पुत्र, प्रजा, परिजन और सर्वस्व सब तेरे ही वश हैं। हे भामिनी, मुझे रामचन्द्र की सौ सौगन्दें हैं, यदि मैं तुमसे कुछ कपट करके कहता होऊँ।

बिहँसि माँगु मनभावति बाता * भूषण सजहु मनोहर गाता
घरी कुघरी समुझि जिय देखू * वेगि प्रिया परिहरहु कुवेखू

इससे उठो और हँसकर मनभावती बात माँगो तथा मनोहर अंगों में आभूषण पहनो। अच्छी-बुरी घड़ी मन में विचारकर देखो। हे प्रिये, इस कुवेश को शीघ्र त्याग करो।



यहसुनिमनगुनि शपथबड़ि, बिहँसि उठी मतिमन्द।
भूषण सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनिफन्द॥

राजा के ये वचन सुन और मन में श्रीरामजी की सौगन्द का न टलना समझ बुद्धि की छोटी कैकेयी हँस उठी। वह आभूषणों को ऐसे सजने लगी जैसे हरिण को देखकर भिल्लिनी फंदे तयार करे।

पुनि कह राउ सुहृदजिय जानी * प्रेम पुलकि तनु मंजुल बानी
भामिनि भयउ तोर मनभावा * घर घर नगर अनन्द बधावा

फिर राजा ने उसे अच्छे हृदयवाली जानकर प्रेम से पुलकित हो निर्मल वाणी से कहा—हे भामिनी, आज तुम्हारे मन का भाया हुआ। देखो, नगर में घर-घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

रामहिं देउँ कालिह युवराजू * सजहु सुलोचनि मंगल साजू
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरा * जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा

कल मैं रामचन्द्र को युवराज करूँगा। इससे हे सुलोचनी, तुम भी मंगलसाज साजो। ये वचन सुनते ही उसका महाकठोर हृदय ऐसे धधक उठा, जैसे पका बलतोड़ किसी चीज से छूकर दुख गया हो।

ऐसी पीर बिहँसि उर गोई * चोरनारि जिमि प्रकट न रोई
लखी न भूप कपटचतुराई * कोटि कुटिल गुण गुरू पढ़ाई

ऐसी पीड़ा भी उसने हँसकर छिपा ली, जैसे चोर की स्त्री सबके आगे नहीं रोती। उसके कपट की चतुरता को राजा न जान सके ; क्योंकि वह करोड़ों गुना टेढ़ी गुरु की पढ़ाई थी।

यद्यपि नीतिनिपुण नरनाहू * नारिचरित जलनिधि अवगाहू
कपटसनेह बढ़ाइ बहोरी * बोली बिहँसि नयन मुख मोरी

यद्यपि राजा नीति में चतुर थे, परन्तु स्त्री-चरित्र भी तो अथाह समुद्र है। बहुत-सा कपट का स्नेह बढ़ाकर नेत्र और मुख मटकाकर फिर कैकेयी बोली—


माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ देहु न लेहु।
देन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु॥

प्यारे! 'माँगो-माँगो' तो तुम सदा कहा करते हो, परन्तु देते-लेते कभी कुछ नहीं। मुझे दो वरदान देने को कहे थे, उनके पाने में भी सन्देह है।

जानेउ मर्म राउ हँसि कहई * तुमहिं कोहाब परमप्रिय अहई
थाती राखि न माँगेउ काऊ * बिसरि गयो मोहिं भोर सुभाऊ

राजा ने हँसकर कहा कि मैंने सब बात जान ली—तुमको रूठना बहुत प्रिय है। धरोहर रखकर फिर कभी माँगी नहीं और भुलक्कड़ स्वभाव के कारण मैं भी उनको भूल गया।

झूठहि हमहिं दोष जनि देहू * दुइ के चारि माँगि किन लेहू
रघुकुलरीति सदा चलि आई * प्राण जाइ बरु वचन न जाई

झूठ ही हमको दोष न दो; किन्तु दो के बदले अब चार वर माँग लो। रघुवंश की तो यह रीति ही सदा से चली आई है कि प्राण भले ही चले जायँ; परन्तु झूठ न हो।

नहिं असत्यसम पातकपुंजा * गिरिसम होहिं कि कोटिकगुंजा
सत्यमूल सब सुकृत सुहाई * वेदपुराण विदित मुनि गाई

झूठ के समान पापों के समूह भी नहीं होते; जैसे करोड़ों घुँघुचियाँ पहाड़ के बराबर नहीं होतीं। सत्य ही सब पुण्यों की सुहावनी जड़ है, यह वेद-पुराणों में प्रकट है और मुनियों ने भी कहा है।

तेहिपर रामशपथ करि आई * सुकृत सनेह अवधि रघुराई
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली * कुमतकुविहँगकुलह जनु खोली

इतने पर भी रामचन्द्र की सौगन्द खा चुका हूँ; जो मेरे सब पुण्य और स्नेह की अवधि हैं। बात को इतना दृढ़ करके कुबुद्धि कैकेयी कैसे हँसकर बोली, मानो बुरे विचाररूप बाज पक्षी की टोपी खोल दी हो।


भूपमनोरथ सुभग वन, सुख सुविहंगसमाज।
भीलिनि जिमि छाँड़न चहति, वचन भयङ्कर बाज॥

कैकेयी सुखरूपी पक्षियों से भरे राजा के मनोरथरूपी सुन्दर वन पर भिल्लिनी की तरह महाभयंकर वचनरूपी बाज को छोड़ना चाहती है।

सुनहु प्राणपति भावत जीका * देहु एक वर भरतहिं टीका
माँगहुँ दूसर वर कर जोरे * पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे

हे प्राणपति, मेरे मन को अच्छी लगनेवाली बात सुनिए। एक वर तो भरत को राजतिलक दीजिए और दूसरा, मैं हाथ जोड़कर आपसे माँगती हूँ कि हे नाथ, मेरे मनोरथ को आप पूरा करें—

तापस वेष विशेष उदासी * चौदह वर्ष राम वनवासी
सुनि सो वचन भूपउर शोकू * शशिकरछुवतविकलजिमिकोकू

कि तपस्वी के वेष में विशेषरूप से उदासी बनकर चौदह वर्ष तक राम वन में रहें। यह बात सुनते ही राजा के मन में ऐसा दुःख हुआ, जैसे चन्द्रमा की किरणों के छूते ही चकई-चकवा व्याकुल हो जाते हैं।

गयउसहमिनहिंकछुकहिआवा * जनु शचानवन झपटेव लावा
विवरण भयउ निपट महिपालू * दामिनि मनहु हने तरु तालू

राजा सहम गये, मुख से कुछ भी न कहते बना, मानो बाज ने बटेर को झपट लिया हो। राजा का तेज अत्यन्त फीका हो गया, मानो बिजली ने ताड़ का वृक्ष फाड़ डाला हो।

माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन * तनुधरि शोच लागु जनु शोचन
मोर मनोरथ सुरतरुफूला * फरत करिणि जनु हतेउसमूला

राजा मस्तक पर हाथ रख, आँखें मूँद सोच करने लगे, मानो सोच ही शरीर रखकर सोच कर रहा है। कल्पवृक्ष-सा मेरा मनोरथ कैसा सुन्दर फूला था, परन्तु फलते समय मानो हथिनी ने जड़ से उसे उखाड़ लिया।



कवने अवसर का भयउ, गयउ नारिविश्वास।
योगसिद्धिफल समय जिमि, यतिहि अविद्यानास॥

कैसे समय में क्या हो गया! इस घटना से स्त्री का विश्वास उठ गया। जैसे योग-सिद्धि के फल के समय योगी को माया भ्रष्ट कर दे, वैसे ही स्त्री ने मुझे कहीं का न रक्खा।

इहिविधि राउ मनहिमन झाखा * देखि कुभाँति कुमति मनमाखा
भरत कि राउर पूत न होहीं * आनेहु मोल बिसाहि कि मोहीं

इस प्रकार राजा मन ही मन झखने और राजा का कुढंग देखकर कुमति कैकेयी के मन में बड़ा क्रोध हुआ। वह बोली—क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? और क्या मुझे आप मोल बिसाह लाये हैं?

जो सुनि शर अस लाग तुम्हारे * काहे न बोलेहु वचन सँभारे
देहु उतर नहिं कहहु कि नाहीं * सत्यसिन्धु तुम रघुकुल माहीं

जो भरत के राजतिलक की बात सुनते ही आपके बाण-सा लगा। पहले ही से आप विचारकर क्यों न बोले! अब भी देने को कहो, नहीं तो कह दो कि न देंगे; क्योंकि रघुकुल में आप सत्य के सागर हैं।

देन कहेउ वर अब जनि देहू * तजहु सत्य जग अपयश लेहू
सत्य सराहि कहेउ वर देना * जानेहु लेइहि माँगि चबेना

देने को कहा था, परन्तु अब न दो; सत्य को छोड़कर संसार में अपयश लो। सत्य की बड़ी प्रशंसा करके वर देने को कहा था तो क्या यह समझे थे कि यह चबेना माँग लेगी!

शिबिदधीचिबलि जो कछु भाखा * तन धन तजा वचन प्रण राखा
अति कटुवचन कहति कैकेयी * मानहु लवण ज़रे पर देयी

देखो, राजा शिबि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, उस वचन को—प्रण को तन, धन और सर्वस्व तजकर भी रक्खा, पूरा किया। ऐसे कटु वचन कैकेयी ने कहे, मानो जले पर लोन लगाया।


धर्मधुरन्धर धीर धरि, नयन उघारे राउ।
शिरधुनिलीन्हउसासअति, मारेसि मोहिं कुठाउ॥

तब तो धर्मधुरन्धर राजा धीरज धरकर नेत्र खोल और सिर पीटकर बड़ी उसासें लेने लगे। फिर बोले—हाय, मुझे इस पापिन ने कुठौर में मारा!

आगे दीखि जरति रिस भारी * मनहु रोष तरवारि उघारी
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई * धरी कूबरी शान बनाई

जो राजा ने आँख खोली तो उसको बड़ी रिस से जलती हुई सामने देखा, मानो क्रोध से भरी नङ्गी तलवार थी, जिसकी मूठ कुबुद्धि और धार निठुरता थी, और उसे कुबड़ी ने सान पर पैनी कर रक्खी थी।

लखी महीप कराल कठोरा * सत्य कि जीवन लेइहि मोरा
बोलेउ राउ कठिन करि छाती * बाणी विनय न ताहि सुहाती

राजा ने उसको बहुत कठोर और कराल देखकर सोचा कि यह क्या सचमुच मेरे प्राणों को ही ले लेगी। तब राजा छाती कड़ी कर नम्रतापूर्वक विनती कर बोले; परन्तु उसे कुछ अच्छा न लगा।

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती * प्रीति प्रतीति राति करि हाँती
मोरे भरत राम दुइ आँखी * सत्य कहौं करि शंकर साखी

राजा ने कहा—हे प्रिये, तू कैसे बुरे प्रकार से ये वचन कहती है? मेरी प्रीति और विश्वास की रीति तूने सब भुला दी? मैं शिवजी को साक्षी करके कहता हूँ कि मुझे भरत और राम; दोनों आँखों के समान ही प्यारे हैं।

अवशि दूत मैं पठउब प्राता * अइहहिं वेगि सुनत दोउ भ्राता
सुदिन साधि सब साज सजाई * देहौं भरतहि राज वड़ाई

प्रातःकाल मैं दूतों को भरत के पास अवश्य भेजूँगा। सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आ जायँगे। तब शुभ दिन साध और सब साज सजाकर मैं राजपद भरत ही को दूँगा।


लोभ न रामहिं राजकर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़छोट विचार करि, करत रहेउँ नृपनीति॥

राम को राज्य का लोभ नहीं है, वह भरत पर बड़ी प्रीति रखते हैं। मैं ही छोटे-बड़े का विचार कर राजनीति के अनुसार राम का राजतिलक करना चाहता था।

रामशपथ शत कहौं स्वभाऊ * राममातु मोहिं कहा न काऊ
मैं सब कीन्ह तोहिं बिनु पूछे * ताते परेउ मनोरथ छूछे

रामचन्द्र की सौ सौगन्द खाकर सच्चे स्वभाव से कहता हूँ कि राम की माता ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। मैंने यह सब तेरे बिना पूछे किया, इसी से यह मेरा मनोरथ खाली गया।

रिस परिहरि अब मङ्गलसाजू * कछु दिन गये भरत युवराजू
एकहि बात मोहिं दुख लागा * वर दूसर असमंजस माँगा

इससे क्रोध छोड़कर अब मंगल साज सजाओ! कुछ दिनों में भरत ही युवराज होंगे। मुझे दुःख तो एक ही बात का है कि दूसरा वर तुमने कठिन माँगा है।

अजहूँ हृदय दहत त्यहि आँचा * रिस परिहास कि साँचहु साँचा
कहु तजि रोष राम अपराधू * सब कोउ कहै राम सुठि साधू

अब भी मेरा हृदय उसकी आँच से जला जाता है। बताओ, क्या तुम क्रोध से कह रही हो या हँसी कर रही हो, अथवा सर्वथा सत्य ही कह रही हो? भला रिस को छोड़ राम का अपराध तो बताओ। राम को तो सभी बहुत अच्छा कहते हैं।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू * अब सुनि मोहिं भयउ सन्देहू
जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला * सो किमि करहि मातुप्रतिकूला

तू भी तो उनको सराहती और बड़ा स्नेह करती थी। आज तेरी ये बातें सुनकर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। जिन राम का स्वभाव वैरियों के भी अनुकूल है, वे भला माता के विरुद्ध कैसे कोई बात करेंगे?



प्रिया हासरिस परिहरहु, माँगु विचारि विवेक।
जेहिदेखौं अब नयनभरि, भरतराजअभिषेक ॥

इससे हे प्रिये, जो हँसी है तो उसे छोड़ो, और जो रिस है तो उसे भी छोड़ो और समझ-बूझकर वर माँगो, जिससे नयन भरकर अब मैं भरत का राजतिलक देखूँ।

जियै मीन बरु वारिविहीना * मणिबिनु फणिक जियै दुखदीना
कहौं स्वभाव न छल मनमाहीं * जीवन मोर राम बिनु नाहीं

मछली जल बिना भले ही जिये और सर्प भी मणि बिना दुखी होकर भले ही जिये, परन्तु मन में छल न रखकर स्वाभाविक रूप से सच कहता हूँ कि मेरा जीवन राम के बिना न होगा।

समुझि देखु चित प्रियाप्रवीना * जीवन रामदरश आधीना
सुनिमृदुवचनकुमति अतिजरई * मनहु अनल आहुतिघृत परई

हे चतुर प्रिये, अपने चित्त ही में समझ कि मेरा जीवन तो राम के दर्शन ही के अधीन है। राजा के ऐसे कोमल वचन सुनकर कुमति कैकेयी और भी जल उठी, मानो आग में घी की आहुति पड़ गई।

कहहु करहु किन कोटि उपाया * इहाँ न लागिहि राउरि माया
देहु कि लेहु अयश करि नाहीं * मोहिं न बहुत प्रपंच सुहाहीं

वह बोली कि तुम करोड़ों उपाय क्यों न करो, तुम्हारी माया यहाँ न चलेगी। या तो वरदान दो या नाहीं करके अपयश लो। मुझे ये बहुत-से प्रपंच नहीं सुहाते।

राम साधु तुम साधु सयाने * राममातु हम भल पहिंचाने
जस कौशला मोर भल ताका * तस फल देहुँ उनहिं करिशाका

राम साधु हैं, तुम साधु हो, और राम की माता साधु हैं। मैंने तीनों साधुओं को अच्छी तरह पहचान लिया है। कौशल्या ने जैसा मेरा भला ताका है, वैसा ही फल उनको दूँगी, यह मैं प्रण करके कहती हूँ।



होत प्रात मुनिवेष धरि, जो न राम वन जाहिं।
मोर मरण राउर अयश, नृपसमभेउ मनमाहिं ॥

हे राजन्, यह समझ रखना कि सवेरा होते ही मुनि का वेष धरके जो राम वन को न जायँगे तो मेरी मृत्यु और आपका अपयश निश्चित है।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी * मानहु रोषतरङ्गिणि बाढ़ी
पापपहार प्रकट भइ सोई * भरी क्रोधजल जाइ न जोई

ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठकर खड़ी हो गई, मानो रोष की नदी बढ़ी है। जो पापरूप पहाड़ से उत्पन्न है और क्रोधरूप जल से ऐसी भयंकर भरी है कि देखी नहीं जाती।

दोउ बर कूल कठिन हठधारा * भँवर कूबरी बचन प्रचारा
ढाहति भूपरूप तरु मूला * चली बिपतिबारिधि अनुकूला

दोनों वरदान जिसके किनारे हैं, कठिन हठ घोर धारा है और मंथरा के सिखाये वचन भँवर हैं। ऐसी क्रोधरूपी नदी दशरथरूपी वृक्ष की जड़ को ढहाती हुई विपत्ति-सागर की ओर चली।

लखी नरेश बात सब साँची * तियमिस मीच शीश पर नाची
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी * जनि दिनकरकुल होसि कुठारी

राजा ने देखा, सभी बात सच है, हँसी नहीं है। तब उन्होंने जान लिया कि स्त्री के बहाने से यह मेरी मृत्यु सिर पर नाच रही है। तब उन्होंने उसको बैठाया और पाँव पकड़ बिनती करके कहा कि इस सूर्यवंश को काटनेवाली कुल्हाड़ी मत बन।

माँगु माथ देउँ मैं तोहीं * रामबिरह जनि मारसि मोहीं
राखु रामकहँ जेहि तेहि भाँती * नाहिंत जरहि जन्मभरि छाती

माँगने से मैं तुझे अपना सिर भी दे सकता हूँ; परन्तु राम के वियोग से तू मुझे मत मार। जैसे-तैसे किसी प्रकार तू राम को घर में रहने दे, नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी।



देखी ब्याधि असाध्य नृप, परेउ धरणि धुनिमाथ।
कहत परम आरतवचन, राम राम रघुनाथ॥

जब राजा ने इस व्याधि को असाध्य देखा, तब "हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!" ऐसे आर्त वचन कहकर सिर पीटते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।

ब्याकुल राउ शिथिल सब गाता * करिणि कल्पतरु मनहु निपाता
कण्ठसूख मुख आव न बानी * जिमि पाठीन दीन बिन पानी

राजा व्याकुल थे, उनके सब अंग शिथिल हो गये थे, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ गिराया। कंठ सूख गया, मुख से बोला नहीं जाता, जैसे पढ़ना मछली जल के बिना अधमरी हो जाती है।

पुनि कह कटु कठोर कैकेयी * मनहु घाव महँ माहुर देयी
जो अन्तहु अस करतब रहेऊ * माँगु माँगु तुम केहिबल कहेऊ

इस पर भी कठोर कैकेयी ने कटु वचन कहे, मानो घाव में विष लगाया। उसने कहा कि आखिर जो तुम्हें ऐसा ही करना था, तो मुझसे "माँग-माँग" तुमने किस बिरते पर कहा था?

दुइ कि होइँ यकसमय भुवालू * हँसब ठठाइ फुलाउब गालू
दानि कहाउब अरु कृपणाई * चाहिय कुशल क्षेम रौताई

हे राजन्, ठठाकर हँसना और गालों का फुलाना, दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं ? कंजूसी करो और दानी कहाना चाहो, शूर भी बना चाहो और कुशल-क्षेम चाहो, यह नहीं हो सकता।

छाँड़हु वचन कि धीरज धरहू * जनि अबला जिमि कारन करहू
तन तिय तनय धाम धन धरणी * सत्यसन्ध कहँ तृणसम बरणी

इससे या तो सत्य छोड़ो, नहीं तो धीरज धरो। स्त्रियों की भाँति विलाप मत करो। सत्यवादी पुरुषों के लिए तो देह, स्त्री, पुत्र, घर, धन, पृथ्वी सभी तिनके के समान कहे हैं।



मर्मवचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लागेउ तोहिं पिशाच जिमि, काल कहावत मोर॥

ऐसे हृदय को चोट पहुँचानेवाले वचन सुनकर राजा ने कहा—तेरा कुछ भी दोष नहीं है। यह तो मेरा काल तुझे पिशाच की तरह लगा है, वही तुझसे ऐसा कहला रहा है।

चहत न भरत भूपपद भोरे * विधिवश कुमति बसी उर तोरे
सो सब मोर पाप परिणामू * कछु न बसाइ भयउ विधि वामू

भरत तो राजपद को सपने में भी नहीं चाहते। तेरे ही हृदय में यह कुबुद्धि विधाता की प्रेरणा से आ बसी है। यह सब मेरे पापों का ही फल है। जब विधाता प्रतिकूल (खिलाफ़) होता है, तब कुछ भी वश नहीं चलता।

सुबसबसिहि फिरि अवध सुहाई * सब गुणधाम रामप्रभुताई
करिहैं भाइ सकल सेवकाई * होइहि तिहुँ पुर रामबड़ाई

फिर भी अयोध्या अच्छी तरह सुहावनी होकर बसेगी और सब गुणों के धाम राम ही का राज्य होगा, तीनों भाई राम की सेवा करेंगे और तीनों लोकों में राम ही की बड़ाई होगी।

तोर कलङ्क मोर पछिताऊ * मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ
अब तोहिं नीक लाग करु सोई * लोचन ओट बैठु मुख गोई

परन्तु तेरा कलङ्क और मेरा पछतावा मरने पर भी न मिटेगा और न कभी जायगा। अब तुझे जो रुचे; वही कर। जा, मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट में बैठ।

जबलगि जियौं कहौं करजोरी * तबलगि जनि कछु कहेसि बहोरी
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी * मारेसि गाय नाहरू लागी

अब तुझसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न

कहना। हे अभागिनी ! अन्त में तू फिर पछतावेगी। तूने ताँत के लिए गाय को मारा।



परे राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदान।
कपटचतुर नहिं कहति कछु, जागति मनहु मसान॥

करोड़ों तरह से राजा ने समझाकर कहा कि क्यों इस घराने का नाश किये देती है; परन्तु कपट में चतुर कैकेयी कुछ भी नहीं कहती, मानो मसान जगाती है।

राम राम रटि विकल भुवाला * जनु विन पंख विहंग विहाला
हृदय मनाव भोर जनि होई * रामहिं जाइ कहै जनि कोई

विना पंख के पखेरू की भाँति व्याकुल को राजा "राम-राम" रटते हैं और हृदय में यह मनाते हैं कि सवेरा न हो और कोई राम से जाकर यह अशुभ समाचार न कहे।

उदय करहु जनि रवि रघुकुलगुर * अवध विलोकि शूल होइहि उर
भूप प्रीति कैकयि कठिनाई * उभय अवधि विधि रची वनाई

सूर्य से कहते हैं कि हे रघुकुल के गुरु, आप निकलें ही नहीं; क्योंकि अयोध्या को देख आपके हृदय में शूल होगा। विधाता ने राजा की प्रीति और कैकेयी की कठोरता दोनों को रचकर बनाया है, अर्थात् दोनों नहीं मिट सकतीं।

बिलपत नृपहिं भयउ भिनसारा * वीणा वेणु शंखध्वनि द्वारा
पढ़हिं भाट गुणगावहिं गायक * सुनत नृपहिं लागहिं जनु शायक

राजा को विलाप करते-करते सवेरा हो गया। द्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख बजने लगे, भाट विरदावली पढ़ने लगे और गवैये यश गाने लगे, जो राजा के हृदय में बाण से कसकने लगे।

मंगल सकल सुहाइँ न कैसे * सहगामिनिहि विभूषण जैसे
तेहि निशि नींद परी नहिं काहू * रामदरश लालसा उछाहू

राजा को सब मंगल वैसे ही नहीं सुहाते, जैसे मृतपति के साथ जानेवाली सती को गहने नहीं भाते। उस रात को राम के दर्शन की लालसा के उत्साह में किसी को नींद भी नहीं आई।



द्वारभीर सेवक सचिव, कहहिं उदयरवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारण कवन विशेखि॥

राजा के सेवक और मंत्री द्वार पर बड़ी भीड़ और सूर्योदय को देखकर कहने लगे कि आज किस विशेष कारण से राजा अभी तक नहीं जागे ?

पछिले पहर भूप नित जागा * आजु हमहिं बड़ अचरज लागा
जाहु सुमन्त जगावहु जाई * कीजिय काज रजायसु पाई

राजा तो रात के पिछले पहर सदा जागते थे। आज उनके न जागने से हमें बड़ा आश्चर्य है। इससे हे सुमन्त, आप जाकर राजा को जगाइए और आज्ञा माँगकर सब काम करिए।

गे सुमन्त नृपमन्दिर माहीं * देखि भयानक जात डराहीं
धाइ खाइ जनु जात न हेरा * मानहु विपति विषाद बसेरा

तब सुमन्त राजमहल में गये, पर उसमें भयानक सन्नाटा देख जाते हुए डरने लगे। राजभवन देखा नहीं जाता, मानो दौड़कर खाये लेता है। क्लेश तथा दुःखों ने तो मानो उसमें बसेरा ही कर लिया है।

पूछत कोउ न उत्तर देयी * गे जेहि भवन भूप कैकेयी
देखि भूपगति गयउ सुखाई * कहि जयजीव बैठ शिरनाई

पूछने पर कोई कुछ उत्तर नहीं देता। तब सुमन्त उस घर में गये, जिसमें राजासहित कैकेयी थी। राजा की दशा देखते ही सुमन्त सूख-से गये, और 'जयजीव' कह सिर नवाकर बैठ गये।

शोकविकल विवरण महिपरेऊ * मानहु कमल मूल परि हरेऊ
सचिव सभीत सकै नहिं पूँछी * बोली अशुभ भरी शुभ छूँछी

दुःख से व्याकुल उदास राजा पृथ्वी पर पड़े थे, मानो कमल जड़ से उखड़ा पड़ा हो। मंत्री डर के मारे कुछ पूछ भी नहीं सकते। तब अमंगल से भरी मंगल से खाली कैकेयी बोली—


परी न राजहि नींद निशि, हेतु जान जगदीश।
राम राम रटि भोर किय, कहेउ न मर्म महीश॥

आज रात भर राजा को नींद नहीं आई; इसका कारण भगवान् जानें, क्या है। इन्होंने राम-राम रटकर सवेरा किया है, पर अपने मन का हाल कुछ नहीं कहा।

आनहु रामहिं वेगि बुलाई * समाचार तब पूछेहु आई
चले सुमन्त राउ रुख जानी * लखी कुचाल कीन्ह कछु रानी

राम को शीघ्र बुला लाओ, तब आकर हाल पूछना। सुमन्त यह जानकर चले कि राजा की भी यही इच्छा है; परन्तु यह तो जान ही गये कि इसमें रानी ही की कुछ कुचाल है।

शोचविवश मगु परै न पाऊ * रामहिं बोलि कहहिं का राऊ
उर धरि धीरज गयउ दुआरे * पूछहिं सकल देखि मनमारे

सुमन्त सोच से व्याकुल हो रहे थे। राह में आगे उनके पैर नहीं पड़ते कि न जाने राम को बुलाकर राजा क्या कहेंगे। मन में धीरज धर द्वार पर गये, तब उनको मनमारे देखकर सब पूछने लगे।

समाधान मन करि सबहीका * गयउ जहाँ दिनकरकुलटीका

राम सुमन्तहिं आवत देखा * आदर कीन्ह पितासम लेखा

सुमन्त उन सबके मन सावधान कर वहाँ गये, जहाँ सूर्यवंश के तिलक श्रीरामजी थे। रामचन्द्र ने सुमन्त को आते देख आदर किया और पिता के समान जाना।

निरखि वदन कहि भूप रजाई * रघुकुलदीपहिं चलेउ लिवाई
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं * देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं

सुमन्त ने राम का मुख देख राजा की आज्ञा कही और राम को साथ लिवाकर ले चले। राम को राजा के सोच से मंत्री के साथ उदास जाते देखकर लोग जहाँ-तहाँ बिलखते हैं।



जाइ दीख रघुवंशमणि, नृपतिहिंनिपटकुसाज।
सहमिपरेउलखिसिंहिनिहि, मनहु वृद्ध गजराज॥

रघुवंशमणि रामचन्द्र ने जाकर राजा को बहुत ही बुरे वेश में देखा, मानो सिंहिनी को देखकर बूढ़ा हाथियों का राजा सहम गया हो।

सूखे अधर जरे सब अंगा * मनहु दीन मणिहीन भुजंगा
सरुष समीप देखि कैकेयी * मानहु मीच घरी गनि लेयी

ओठ सूख रहे थे और सब अंग जल रहे थे, मानो मणि के बिना सर्प दुखी हो रहा है। पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानो मृत्यु की घड़ी गिन रही है।

करुणामय रघुनाथ सुभाऊ * प्रथम दीख दुख सुना न काऊ
तदपि धीर धरि समय विचारी * पूछा मधुर वचन महतारी

रामचन्द्र का स्वभाव ही दयावान् है। फिर उन्होंने पहलेपहल यही दुःख देखा, पहले कभी दुःख का नाम भी नहीं सुना था। तो भी समय को विचार धीरज धर उन्होंने मीठे वचनों से माता से पूछा—

मोहिं कहु मातु तात दुखकारण * करिय यतन जेहि होइ निवारण
सुनहु राम सब कारण येहू * राजहिं तुम पर बहुत सनेहू

माताजी, पिता के दुःख का कारण मुझसे कहिए। जिस उपाय से वह दूर हो, सो किया जाय। यह सुन कैकेयी ने कहा—सुनो राम, कारण यही है कि राजा का तुम पर बड़ा प्रेम है।

देन कहे मोहिं दुइ वरदाना * माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना
सो सुनि भयउ भूप उर शोचू * छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू

मुझे राजा ने दो वरदान देने को कहे थे; जो मुझे अच्छे लगे, मैंने माँग लिये। यह सुनकर राजा को बड़ा सोच हो गया है। वह तुम्हारे संकोच को छोड़ नहीं सकते।



सुतसनेह इत वचन उत, सङ्कट परेउ नरेश।
सकहु तो आयसु धरहु शिर, मेटहु कठिन कलेश॥

इधर तो पुत्र का प्रेम और उधर सत्यवचन का निर्वाह—इसी संकट में राजा पड़े हैं। जो तुमसे हो सके तो उनकी आज्ञा को सिर पर धर उनका यह कठिन क्लेश दूर करो।

निधरक बैठि कहति कटुबानी * सुनत कठिनता अति अकुलानी
जीह कमान वचन शर नाना * मनहु भूप मृदु लक्ष्य समाना

कैकेयी बैठी हुई निधड़क ऐसे कटु वचन कहती है, जिनको सुनकर कठिनता भी बहुत व्याकुल होती है। उसकी जीभ तो धनुष है, कठोर वचन भाँति-भाँति के बाण हैं और राजा कोमल निशाना है।

जनु कठोरपन धरे शरीरा * सिखै धनुषविद्या वर वीरा
सब प्रसङ्ग रघुपतिहि सुनाई * बैठि मनहु तनु धरि निठुराई

कठोरपन ही मानो बड़ा वीर है, जो देह धरे धनुषविद्या सीखता है। कैकेयी ने सब हाल (मैंने भरत को राज्य और तुमको वनवास राजा से माँगा है) श्रीरामजी को ऐसे सुनाया, मानो देह धरे निठुराई ही बैठी हो।

मन मुसुकाइ भानुकुलभानू * राम सहज आनन्दनिधानू
बोले वचन विगत सब दूषण * मृदुमञ्जुल जनु बागविभूषण

सूर्यकुल के सूर्य (रामचन्द्र) स्वभाव ही से आनन्द-निधान थे। वह मन में मुसकराकर सब दोषों से रहित बहुत कोमल वचन बोले, मानो वाणी के आभूषण ही हैं।

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी * जो पितुमातुचरण अनुरागी
तनय मातु पितु पोषणहारा * दुर्लभ जननि सकल संसारा

हे माता, सुनिए, वही पुत्र बड़ा भाग्यवान् है, जो माता-पिता के चरणों में अनुराग रखता हो। माता-पिता की सेवा करनेवाला पुत्र तो सारे संसार में भी दुर्लभ है।



मुनिगणमिलन विशेष वन, सबहिं भाँति भल मोर।
तेहिमहँ पितुआयसु बहुरि, सम्मति जननी तोर॥

वन में मुनियों का मिलन होगा, वहाँ मेरा सब भाँति से भला होगा। उस पर पिता की आज्ञा है, फिर माताजी, तुम्हारी भी तो सलाह है।

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू * सबहि भाँति विधिसन्मुख आजू
जो न जाउँ वन ऐसेहु काजा * प्रथम गनिय मोहिं मूढ़समाजा

मेरे प्राणप्यारे भरत भाई राज्य पावेंगे। मुझको तो विधाता आज सभी तरह अनुकूल

है। ऐसे काम के लिए भी जो मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में पहले मेरा नाम लिया जायगा।

सेव अरण्ड कल्पतरु त्यागी * परिहरि अमिय लेहिं विष माँगी
तेउ न पाय अस समय चुकाहीं * देखु विचारि मातु मनमाहीं

जो मूढ़ कल्पवृक्ष को छोड़ रेंड़ के पेड़ की सेवा करते हैं और अमृत के बदले विष माँग लेते हैं, वे मूर्ख भी तो ऐसा समय पाकर नहीं चूकते। हे माता, तुम अपने मन में विचारकर तो देखो।

एकहि दुख मोहिं मातु विशेखी * निपट विकल नरनायक देखी
थोरिहि बात पितहिं दुखभारी * होति न मोहिं प्रतीति महतारी

हे माता, राजा को बहुत व्याकुल देख मुझे तो एक ही बात का बड़ा दुःख है कि यह बात तो बहुत ही थोड़ी है, पर पिता को भारी दुःख है। इससे हे माता, तुम्हारी बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

राउ धीर गुणउदधि अगाधू * भा मोते कछु बड़ अपराधू
जातें मोहिं न कहत कछु राऊ * मोरि शपथ तोहिं कहु सति भाऊ

राजा तो बड़े धीर और गुणों के अगाध समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है, जो मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगन्द है, सत्य कहो।



सहज सरल रघुवरवचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलैजोंकजिमिवक्रगति, यद्यपि सलिल समान॥

रामचन्द्र के साधारण सीधे वचनों को भी कुमति कैकेयी ने टेढ़ा ही जाना, जैसे कि यद्यपि जल बराबर होता है; परन्तु उसमें भी जोंक तिरछी ही चलती है।

रहसी रानि राम रुख पाई * बोली अधिक सनेह जनाई
शपथ तुम्हारि भरत की आना * हेतु न दूसर मैं पहिंचाना

तब तो कैकेयी राम का वन जाने में रुख पा प्रसन्न हुई और बड़ा स्नेह जताकर बोली— हे राम, तुम्हारी और भरत की सौगन्द है, दूसरा कारण मैंने नहीं जान पाया।

तुम अपराध योग नहिं ताता * जननी जनक बन्धु सुखदाता
राम सत्य सब जो कछु कहहु * तुम पितु मातु वचनरत अहहू

और हे तात, तुम तो सदा माता, पिता और भाइयों को आनन्द देनेवाले हो, अपराध करने के योग्य नहीं। हे राम, तुम जो कुछ कहते हो, सब सत्य है। तुम सदैव माता-पिता के आज्ञाकारी हो।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई * चौथेपन जेहि अयश न होई

तुमसम सुवन सुकृत जिन दीन्हे * उचित न तासु निरादर कीन्हे

इससे मैं तुम्हारी बलि जाऊँ, पिता को समझाकर कहो, जिससे चौथेपन में इनका अपयश न हो। जिन्होंने तुम-सरीखे पुण्यात्मा पुत्र हमें दिये हैं, उनका निरादर करना उचित नहीं है।

लागहिं कुमुखि वचन शुभ कैसे * मगह गयादिक तीरथ जैसे
रामहिं मातुवचन सब भाये * जिमिसुरसरिगतसलिल सुहाये

उसके कुमुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं, जैसे मगहर (कुदेश) में गया आदि शुभ तीर्थ। रामचन्द्रजी को माता के सभी वचन अच्छे लगे, जैसे गंगाजी में मिलने से अपवित्र जल भी पवित्र हो जाता है।



गइ मूर्च्छा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव रामआगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह॥

इतने में राजा की मूर्च्छा जागी तो फिरकर "राम-राम" कहते हुए उन्होंने करवट ली। तब सुमन्त ने राम के आने की सूचना देकर समयानुसार विनती की।

जब नृप अकनि राम पग धारे * धरि धीरज तब नयन उघारे
सचिव सँभारि राउ बैठारे * चरण परत नृप राम निहारे

जब राजा ने राम का आना सुना, तो धीरज धरकर नेत्र खोले। सुमन्त ने सँभालकर राजा को बैठाया और राजा ने पैरों पड़ते राम को देखा।

लिये सनेह विकल उर लाई * गइमणि फणिक बहुरि जनु पाई
रामहिं चितै रहे नरनाहू * चला विलोचन वारिप्रवाहू

स्नेह में व्याकुल राजा ने राम को छाती से लगा लिया, मानो सर्प ने खोई मणि फेर पाई। राजा राम को एकटक देखते ही रह गये। उनके दोनों नेत्रों से जल की धारा बह चली।

शोकविकल कछु कहै न पारा * हृदय लगावत बारहिंबारा
विधिहि मनाव राउ मनमाहीं * जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं

वह शोक से ऐसे व्याकुल थे कि कुछ कहा नहीं जाता। वारंवार हृदय से लगाते और विधाता को राजा मन ही मन मनाते थे कि रामचन्द्र वन को न जायँ।

सुमिरि महेशहिं कहहिं निहोरी * बिनती सुनहु सदाशिव मोरी
आशुतोष तुम औघड़ दानी * आरति हरहु दीनजनजानी

राजा ने महादेवजी का भी स्मरण कर निहोरा कर कहा कि आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले और सब कुछ देनेवाले हैं। हे सदाशिव, मेरी विनती सुनो, मुझे अपना गरीब भक्त जानकर मेरा दुःख दूर करिए।



तुम प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु।
वचन मोरतजिरहहिं गृह, परिहरि शीलसनेहु॥

आप सबके हृदय में प्रेरणा करनेवाले हैं। ऐसी बुद्धि राम को दीजिए कि वह मेरे वचन, शील और स्नेह को छोड़कर घर ही में रहें, वन को न जायँ।

अयश होइ बरु सुयश नशाऊँ * नरक परहुँ बरु सुरपुर जाऊँ
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं * लोचन ओट राम जनि होहीं

भले ही अपयश हो और सुयश मिट जाय; चाहे नरक में पड़ूँ या स्वर्ग भी मेरा जाता रहे। हे विधाता, ये सब कठिन दुःख मुझे भले सहाइए; परन्तु राम मेरे नेत्रों की ओट न हों।

अस मनगुणत राउ नहिं बोला * पीपरपात सरिस मन डोला
रघुपति पितहिं प्रेमवश जाना * पुनि कछु कहेउ मातु अनुमाना

इस प्रकार राजा मन ही में गुनते हैं, पर बोलते कुछ नहीं। पीपल के पत्ते के समान मन चंचल हो रहा है। रामचन्द्र पिता को प्रेम के वश जान और माता की बात का अनुमान कर—

देश काल अवसर अनुसारी * बोले वचन विनीत विचारी
तात कहौं कछु करहुँ ढिठाई * अनुचित क्षमेहु जानि लरिकाई

स्थान, समय और अवसर के अनुसार विचारकर नम्र वचन बोले—हे पिताजी, मैं कुछ ढिठाई करके कहता हूँ; मेरे इस अनुचित को लड़कपन जान क्षमा करना।

अतिलघु बात लागि दुखपावा * काहे न कहि मोहिं प्रथम जनावा
देखि गोसाइहिं पूछेउँ माता * सुनि प्रसङ्ग भा शीतल गाता

बहुत छोटी बात के लिए आपने इतना दुःख क्यों पाया? पहले ही कहकर मुझको क्यों न जता दिया? स्वामी की यह दशा देख माता से पूछा और हाल सुनने से अंग शीतल हो गये—प्रसन्नता हुई।



मङ्गलसमय सनेहवश, शोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हर्षि हिय, कहि पुलके प्रभुगात॥

हे तात, मंगल के समय स्नेह से उत्पन्न सोच को छोड़िए, प्रसन्नमन होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहकर रामचन्द्र देह से पुलकित हो उठे।

धन्य जन्म जगतीतल तासू * पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू
चारि पदारथ करतल ताके * प्रिय पितु मातु प्राणसम जाके

फिर रामजी ने कहा—हे तात, पृथ्वीतल में उसी पुत्र का जन्म धन्य है जिसके चरित्रों

को सुनकर पिता को आनन्द हो। चारों पदार्थ उस पुत्र के हाथ ही में हैं, जिसे माता-पिता प्राणों के समान प्यारे हों।

आयसु पालि जन्मफल पाई * ऐहौं बेगिहि होइ रजाई
बिदा मातुसन आवहुँ माँगी * चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी

आपकी आज्ञा को पूर्ण कर और जन्म का फल पा शीघ्र ही मैं वन से लौट आऊँगा, आज्ञा दीजिए। अब मैं माता से बिदा हो आऊँ, फिर आपके चरण छूकर वन को जाऊँगा।

अस कहि राम गमन तब कीन्हा * भूप शोकवश उतर न दीन्हा
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी * छुवत चढ़ै जिमि सब तन बीछी

यह कहकर श्रीरामजी माता के पास गये; शोक के वश राजा ने कुछ उत्तर न दिया। नगर में यह बड़ी कठोर बात तुरन्त ऐसे फैल गई, जैसे बिच्छू का डंक लगते ही विष सब अङ्ग में चढ़ जाता है।

सुनि भये विकल सकल नरनारी * बेलि विटप जिमि लागि दवारी
जो जहँ सुनै धुनै शिर सोई * बड़ विषाद नहिं धीरज होई

सुनते ही नगर के सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये, जैसे वन में दावानल लगने से वृक्ष और बेलि जलने लगते हैं। जो जहाँ सुनता है वहीं सिर पीटता है, मारे दुःख के धीरज होता ही नहीं।



मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, शोक न हृदय समाइ।
मानहु करुणारसकटक, उतरेउ अवध बजाइ॥

सबका मुख सूख गया और आँखों से जल बहने लगा। दुःख हृदय में नहीं समाता। मानो करुणारस की सेना अयोध्या में डंका बजाकर उतरी है।

भलि बनाइ विधि बात बिगारी * जहँ तहँ देहिं केकयिहिं गारी
यहि पापिनिहिं सूझि का परेऊ * छाय भवन पर पावक धरेऊ

लोग कहते हैं—देखो, विधाता ने कैसी भली बात बनाकर बिगाड़ी है। जहाँ-तहाँ सब लोग कैकेयी को गालियाँ देते और कहते हैं कि अरे, देखो, इस पापिन को क्या सूझा है, जो छाये हुए घर पर आग रख दी।

निजकर नयन काढ़ि चह दीखा * डारि सुधा विष चाहत चीखा
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी * भइ रघुवंशवेणुवन आगी

अपने हाथों आँखें निकालकर देखा चाहती है, अमृत छोड़ विष खाया चाहती है। यह तो बड़ी ही कठोर, कुबुद्धि, हृदय की टेढ़ी, अभागिन है। रघुवंशरूपी बाँस के वन को जलाने के लिए आग बन गई।

पल्लव बैठि पेड़ यह काटा * सुखमहँ शोकठाट यहि ठाटा

सदा राम यहि प्राणसमाना * कारण कवन कुटिल प्रण ठाना

यह पलई पर बैठ पेड़ को काटा चाहती है। इसने आनंद में दुःख का ठाट ठाटा है। इसे तो राम सदा प्राणों के समान प्यारे थे। क्या कारण है, जो इसने यह कुटिल प्रण ठाना है?

सत्य कहहिं कवि नारिस्वभाऊ * सब विधि अगम अगाध दुराऊ
निजप्रतिबिम्ब मुकुर गहिजाई * जानि न जाइ नारिगति भाई

कवि लोग स्त्रियों के स्वभाव को सब तरह से अगम्य (न जानने योग्य), अथाह और छिपा हुआ कहते हैं, सो सत्य ही है। शीशे में अपनी छाया पकड़ी जा सकती है; परन्तु स्त्री की गति किसी प्रकार जानी नहीं जाती।



का नहिं पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल, केहि जगकाल न खाय॥

सच है, आग में क्या नहीं जल सकता? समुद्र में क्या नहीं समा सकता? बलवती अर्थात् स्वतन्त्र स्त्री क्या नहीं कर सकती? और काल किसको नहीं खा सकता?

का सुनाय विधि काह सुनावा * का दिखाय चह काह दिखावा
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा * वर विचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा

क्या सुनाकर विधाता ने क्या सुना दिया, क्या दिखाया चाहता था और क्या दिखाया? कोई कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, जो इस कुबुद्धि कैकेयी को बिना विचारे वर दे दिया,

जो हठिभयउ सकलदुखभाजन * अबलाविवश ज्ञान गुण गाजन
एक धर्मपरमिति पहिचाने * नृपहिं दोष नहिं देहिं सयाने

जो जानबूझकर सब दुःखों के पात्र हो गये। जिन राजा का ज्ञान और गुण संसार भर में छाया था, वह स्त्री के अधीन हो गये। कोई लोग धर्म ही को श्रेष्ठ जाननेवाले सयाने राजा को दोष नहीं देते।

शिवि दधीचि हरिचन्द कहानी * एकएकसन कहहिं बखानी
एक भरतकर सम्मत कहहीं * एक उदासभाइ सुनि रहहीं

राजा शिवि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र की कथा परस्पर वर्णन करते हैं। कोई कहते हैं कि इसमें भरत की सलाह है। यह सुनकर कोई बेचारे उदास हो रहते हैं, कुछ भी नहीं कह सकते।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा * एक कहहिं यह बात अलीहा
सुकृत जाइ असकहत तुम्हारे * राम भरत कहँ प्राणपियारे

कुछ लोग हाथों से कानों को मूँद और दाँतों से जीभ को दबाकर इस बात को निरा झूठ कहते हैं कि भरत की सलाह से यह अनर्थ हुआ है। वे कहते हैं कि अरे, ऐसा कहते

ही तुम्हारे सब पुण्य मिट जायँगे; क्योंकि भरत को तो रामचन्द्र प्राणों से भी प्यारे हैं।



चन्द्र चुवै बरु अनलकण, सुधा होइ विषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु, भरत रामप्रतिकूल॥

चन्द्रमा अँगारे भले ही बरसावे और अमृत विष के समान भले ही हो जावे, परन्तु भरत तो स्वप्न में भी राम के विरुद्ध कभी कुछ काम नहीं कर सकते।

एक विधातहिं दूषण देहीं * सुधा दिखाइ दीन्ह विष जेहीं
खरभर नगर शोच सबकाहू * दुसह दाह उर मिटा उछाहू

कोई विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। इस प्रकार नगर भर में हलचल है। सबको सोच है। सबके हृदय में कठिन दाह हो रहा है। सबका उत्साह मिट गया।

विप्रवधू कुलमान्य जठेरी * जे प्रिय परम कैकयी केरी
लगीं देन सिख शील सराही * वचन बाणसम लागत ताहीं

नगर की घबराहट सुन ब्राह्मणी और कुलपूज्य कैकेयी की प्यारी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ उसके शील की प्रशंसा कर शिक्षा देने लगीं। पर ये वचन उसे बाणों के समान लगते हैं।

भरत न मोहिंप्रियराम समाना * सदा कहहु यह सब जग जाना
करहु राम पर सहज सनेहू * केहि अपराध आजु वन देहू

तुम तो सदा कहती थीं कि भरत मुझे राम के समान प्यारे नहीं हैं, यह सब संसार जानता है। तुम सदैव राम पर सत्य स्नेह करती थीं। फिर आज किस अपराध से उन्हें वनवास देती हो?

कबहुँ न कीन्ह सवति अवरेशू * प्रीति प्रतीति जान सब देशू
कौशल्या अब काह बिगारा * तुम जेहिलागि वज्र पुर पारा

तुमने कभी सवतियाडाह नहीं किया। तुम्हारी उनकी प्रीति और विश्वास को देश जानता है। अब कौशल्या ने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है, जिससे तुमने नगर पर वज्र गिरा दिया?



सीयकिपियसँगपरिहरिहि, लषण कि रहिहैं धाम।
भरत कि भूजब राजपद, नृपकिजियहिंबिनराम॥

सीता क्या राम के साथ को छोड़ेगी, और लछमण क्या फिर घर में रहेंगे, तथा भरत क्या राम के विना इस राज्य को भोगेंगे? राजा क्या राम के वियोग में जियेंगे? कभी नहीं।

अस विचारिजिय छाँड़हु कोहू * शोककलङ्ककोट जनि होहू

भरतहिं अवशि देहु युवराजू * कानन कवन रामकर काजू

ऐसा जी में विचारकर रिस छोड़ दुःख और कलंक का कोट मत बनो। अच्छा, भरत को युवराज का पद अवश्य दो; परन्तु राम का वन में कौन काम है।

नाहिंन राम राज के भूखे * धर्मधुरीण विषयरस रूखे
गुरुगृह बसहिं राम तजिगेहू * नृपसन अस वर दूसर लेहू

राम तो राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्मधुरंधर और विषय-भोग से विरक्त हैं। इससे यह दूसरा वर राजा से माँगो कि राम घर को छोड़कर गुरुजी के घर में रहें।

रामसरिस सुत कानन योगू * कहा कहहिं सुनि तुमकहँ लोगू
जो न मानिहौ कहे हमारे * नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे

राम-सा सुशील, सुन्दर, सुकुमार पुत्र भला वन के योग्य है? संसार ऐसा सुनकर तुमको क्या कहेगा? यदि तुम हमारा कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा।

जो परिहास कीन्ह कछु होई * तौ कहि प्रकट जनावहु सोई
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई * जेहिविधि शोककलङ्क नशाई

और जो परिहास (मसखरी) किया हो तो उसे प्रकट करो। उठकर शीघ्र वह उपाय करो, जिससे इस दुःख और कलंक का नाश हो।

छन्द

जेहि भाँति शोक-कलङ्क जाय उपाय करि कुल पालहू।
हठि फेरि रामहिं जात वन जनि बात दूसरि चालहू॥
जिमि भानु बिन दिन प्राण बिन तनु चन्द्र बिन जिमि यामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं मनभामिनी॥

जिस प्रकार दुःख और कलंक दूर हो, वह उपाय करके अपने कुल का पालन करो और राम को वन जाने से जबरदस्ती रोको। दूसरी बात मत कहो। जैसे सूर्य बिना दिन, प्राण बिना देह और चन्द्र बिना रात होती है, वैसे ही तुलसीदास के स्वामी राम के बिना अयोध्या को जानो।



सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिणाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥

सखियों ने ऐसा सुन्दर सिखावन दिया, जो सुनने में मीठा और अन्त में हितकर था, परन्तु उसने कुछ न सुना; क्योंकि वह बड़ी कुटिल कूबरी की पढ़ाई हुई थी।

उतर न देइ दुसह रिस रूखी * मृगिन्हचितवजनुबाघिनि भूखी

ब्याधि असाधि जानि तिन त्यागी * चलीं कहति मतिमन्द अभागी

कैकेयी उनकी बात का कुछ उत्तर नहीं देती, कठिन रिस में रूखी बैठी है और उनको ऐसे कोप से देखती है, मानो हिरनियों को भूखी बाघिन देखती हो। उन्होंने असाध्य रोग जान उसे छोड़ दिया और 'मतिमन्द अभागी' कहती हुई अपने-अपने घरों को चली गईं।

राज करत यहि दैव बिगोई * कीन्हेसि अस जस करै न कोई
यहि विधि विलपहिं पुरनरनारी * देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी

राज्य करते हुए दैव ने इसे मिटा दिया। इसने ऐसा बुरा किया, जैसा कोई भी न करता। इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष रोते हैं और कुचालिन कैकेयी को गालियाँ देते हैं।

जरहिं विषमज्वर लेहिं उसासा * कवन राम बिन जीवन आसा
विकल वियोग प्रजा अकुलानी * जिमिजलचरगण सूखत पानी

राजा विषमज्वर (सन्ताप) से जले जाते हैं, उसाँसें लेते हैं, और कहते हैं कि राम के बिना मेरे जीने की कौन आशा है ? राम के वियोग से प्रजा ऐसी व्याकुल हुई, जैसे जलजीव पानी के सूखने से विकल होते हैं।

अति विषादवश लोग लुगाई * गये मातुपहँ राम गोसाई
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ * यहै सोच जनि राखहिं राऊ

स्त्री-पुरुष बहुत ही दुःख के वश हो रहे हैं। उसी समय रामचन्द्र माता कौशल्या के पास गये। उनका मुख प्रसन्न था और चित्त में चौगुना उत्साह था। केवल यही सोच था कि राजा वन जाने से कहीं रोक न लें।



नव गयन्द रघुवंशमणि, राज अलान समान।
छूटजानि वन गमन सुनि, उर आनँद अधिकान॥

जवान हाथी के समान रघुवंशमणि श्रीरामजी थे और राज्य पैर की जंजीर के समान था। वन जाने की आज्ञा सुनकर उस बन्धन को छूटा जानकर रामचन्द्र के हृदय में अधिक आनन्द हुआ।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा * मुदित मातुपद नायउ माथा
दीन्ह अशीश लाइ उर लीन्हे * भूषण वसन निछावर कीन्हे

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्र ने दोनों हाथ जोड़ प्रसन्न हो माता के चरणों में प्रणाम किया। माता ने असीस देकर हृदय से लगा लिया तथा गहने और कपड़े उन पर न्योछावर किये।

बारबार मुख चूमति माता * नयन नेह जल पुलकित गाता
गोद राखि पुनि हृदय लगाये * स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये

माता बार-बार उनका मुख चूमती हैं, नेत्रों में जल भरा है और देह पुलकित हो रही है। उन्होंने राम को गोद में बिठाकर फिर हृदय से लगा लिया। पुत्र के प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा।

प्रेम प्रमोद न कछु कहिजाई * रंक धनदपदवी जनु पाई
सादर सुन्दर बदन निहारी * बोली मधुर वचन महतारी

कौशल्या का प्रेम और आनन्द कुछ कहा ही नहीं जाता; मानो कंगाल ने कुबेर का पद पाया। बड़े आदर के साथ रामचन्द्र का सुन्दर मुख देख कौशल्याजी इस प्रकार मधुर वचन बोलीं—

कहहु तात जननी बलिहारी * कबहिं लगन मुद मङ्गलकारी
सुकृतशील सुखसींव सुहाई * जन्मलाभ की अवधि अघाई

हे तात, मैं बलि जाऊँ, यह तो कहो कि आनन्द और मङ्गल करनेवाली लग्न किस समय है, जो मेरे लिए पुण्य का फल, सुख की सुन्दर सीमा और जन्म लेने के लाभ होने की अवधि है, अर्थात् मेरे जीवन का सबसे बड़ा लाभ है।


जेहि चाहत नरनारि सब, अतिआरत यहि भाँति।
जिमि चाहतचातकतृषित, वृष्टि शरदऋतु स्वाति॥

जिस लग्न को अति आरत सब स्त्री-पुरुष ऐसे चाहते हैं, जैसे शरदऋतु (कार, कार्त्तिक) में प्यासा चातक स्वाती नक्षत्र की वर्षा को।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू * जो मनभाव मधुर कछु खाहू
पितु समीप तब जायहु भय्या * प्रेमविवश सादर कह मय्या

हे तात, बलि जाऊँ, शीघ्र स्नान करो और जो मन भावे सो कुछ मीठा भोजन कर लो। भय्या, तब पिता के पास जाना। माता कौशल्याजी प्रेम के वश हो बार-बार सादर ऐसा कहती हैं।

मातुवचन सुनि अति अनुकूला * जनु सनेह सुरतरु के फूला
सुख मकरन्द भरे श्रीमूला * निरखि राम मन भ्रमर न भूला

माता के अनुकूल वचन, जो मानो राज्यलक्ष्मी जिसकी जड़ है, उस स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं और सुखरूपी पराग से भरे हैं, सुनकर उनकी ओर देख रामचन्द्र का भ्रमर-सा मन मोहित न हुआ।

धर्मधुरीण धर्मगति जानी * कहेउ मातु सन अतिमृदुबानी
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू * जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू

धर्मधुरन्धर राम धर्म की गति जानकर माता से बहुत कोमल वाणी बोले कि माताजी,

पिता ने तो मुझे वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम होगा।

आयसु देहु मुदित मन माता * जेहि मुद मङ्गल कानन जाता
जनि सनेहवश डरपसि भोरे * आनँद अम्ब अनुग्रह तोरे

हे माता, प्रसन्नमन से मुझे आज्ञा दीजिए, जिसमें वन जाने से मुझे आनन्दमङ्गल प्राप्त हो। स्नेह के वश भूल से भी न डरना। माता, तुम्हारी कृपा से मुझको वन में आनन्द ही प्राप्त होंगे।



वर्षचारिदशविपिनबसि, करि पितुवचनप्रमान।
आइ पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥

पिता के वचन के अनुसार चौदह वर्ष वन में रह, फिर आकर तुम्हारे चरणों के दर्शन करूँगा। तुम अपने मन को उदास मत करो।

वचन विनीत मधुर रघुवर के * शरसम लगे मातु उर करके
सहमि सूखि सुनि शीतलबानी * जिमि जवासपर पावस पानी

श्रीरामचन्द्रजी के ये मधुर और नम्र वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे। यह शीतल वाणी सुनते ही कौशल्या सहमकर सूख गई, जैसे जवासा वर्षा के जल से सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदयविषादू * जनु सहमेउ करि केहरिनादू
नयनसलिल तनु थरथर काँपी * माँजा मनहु मीनकहँ व्यापी

कौशल्या के हृदय का दुःख कुछ कहा नहीं जाता, मानो सिंह के गर्जने से हथिनी सहम गई हो। नेत्रों में आँसू भर आये, देह थरथर काँपने लगी। मानो मछली को माँजा (पहले बुसैल का जल) लगा हो।

धरि धीरज सुतवदन निहारी * गदगद वचन कहति महतारी
तात पितहि तुम प्राणपियारे * देखि मुदित नित चरित तुम्हारे

तब कौशल्याजी धीरजधर और राम का मुख देखकर गद्‌गद वचन बोलीं—हे तात, पिता को तुम प्राणों के समान प्यारे हो। तुम्हारे चरित्रों को देख-सुनकर वे सदा प्रसन्न रहते हैं।

राज देनकहँ शुभ दिन साधा * कहेउ जान वन केहि अपराधा
तात सुनावहु मोहिं निदानू * को दिनकरकुल भयउ कृशानू

उन्होंने तुम्हारे राज्य देने का शुभ दिन विचारा था। अब तुमको किस अपराध से वन जाने को कहते हैं? हे तात, मुझे इसका कारण सुनाओ कि सूर्यवंश को जलाने के लिए कौन अग्नि हुआ?



निरखि राममुख सचिवसुत, कारण कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसङ्ग रहि मूकगति, दशा बरणि नहिं जाइ॥

सुमन्त्र के पुत्र सुमति ने राम का रुख देख सब कारण समझाकर कह दिया। सुनते ही कौशल्या गूँगी-सी हो गई। उनकी दशा कही नहीं जाती।

राखि न सकहिं न कहि सक जाहू * दुहूँ भाँति उर दारुण दाहू
लिखत सुधाकर लिखिगा राहू * विधिगति बाम सदा सबकाहू

न तो राम को रोक सकती हैं। और न जाने को कह सकती हैं। दोनों तरह से हृदय में कठिन दाह है। चन्द्रमा लिखते राहु लिख गया और विधाता की गति सदा सबको टेढ़ी है, अर्थात् किसी की समझ में नहीं आती।

धर्म सनेह उभय मति घेरी * भइ गति साँप छछूँदरि केरी
राखौं सुतहिं होइ अनुरोधू * धर्म जाइ अरु बन्धुविरोधू

धर्म और स्नेह, दोनों ने कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया। उनकी गति छछूँदर को पकड़े हुए साँप* की-सी हो गई। विचारा कि हठ कर रखती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है—

कहौं जान बन तौ बड़ि हानी * सङ्कट शोच विकल भइ रानी
बहुरि समुझि तियधर्म सयानी * राम भरत दोउ सुत सम जानी

और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि है, अर्थात् राजा के प्राण न बचेंगे। इस संकट के सोच में कौशल्या व्याकुल हो गई। फिर धर्म में चतुर रानी राम और भरत दोनों पुत्रों को समान समझकर—

सरल स्वभाव राम महतारी * बोली वचन धीर धरि भारी
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका * पितु आयसु सब धर्मकटीका

सीधे स्वभाववाली राम की माता बड़ा धीरज धरकर बोलीं कि हे तात, बलि जाऊँ, तुमने बहुत अच्छा किया। पिता की आज्ञा सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

राजदेन कहि दीन्ह बन, मोहिं न शोच लवलेश।
तुमबिन भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश॥

राज्य देने को कहकर राजा ने तुमको वनवास दिया, इसका मुझे तनिक भी सोच नहीं है; परन्तु तुम्हारे बिना भरत को, प्रजा को और राजा को बड़ा कठिन क्लेश होगा।

जो केवल पितु आयसु ताता * तौ जनि जाहु जाय बलि माता
जो पितु मातु कहेउ बन जाना * तौ कानन शत अवध समाना

हे तात, जो केवल पिता ही की आज्ञा है तो मैं बलि जाऊँ, तुम वन को न जाओ। और

* साँप छछूँदर को पकड़ लेता है तो निगलने से मर जाता है और छोड़ देने से अन्धा हो जाता है, इसलिए वह न उसे निगल सकता है और न छोड़ सकता है।

यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा है तो तुम्हें वन ही सौ अयोध्या के समान है।

पितु वनदेव मातु वनदेवी * खग मृग चरणसरोरुहसेवी
अन्तहु उचित नृपहिं वनवासू * वय विलोकि हिय होत हरासू

वन में वन के देवता तुम्हारे पिता और वन की देवी माता होंगी। पत्ती और हरिण सब तुम्हारे सेवक होंगे। राजा को अन्त में वनवास उचित भी है; परन्तु तुम्हारी अवस्था देख मेरे हृदय को धीरज नहीं होता।

बड़भागी वन अवध अभागी * जो रघुवंशतिलक तुम त्यागी
जो सुत कहौं सङ्ग मोहिं लेहू * तुम्हरे हृदय होइ सन्देहू

वन बड़भागी है और अयोध्या अभागी है, जिसे हे रघुवंशतिलक, तुमने छोड़ दिया। हे पुत्र, जो मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो, तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा।

पुत्र परम प्रिय तुम सबही के * प्राण प्राण के जीवन जी के
ते तुम कहहु मातु वन जाऊँ * मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ

हे पुत्र, तुम सबको बहुत प्यारे हो, प्राणों के प्राण और सब जीवों के जीवन हो। ऐसे तुम वन जाने को कहते हो और मैं तुम्हारे ये वचन सुनकर जीती हुई बैठी पछताती हूँ।



यह विचारि नहिं करहुँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु के नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ॥

यह सोचकर, झूठा स्नेह बढ़ाकर, मैं चलने का हठ नहीं करती; किन्तु तुम माता के नाते मेरी सुध न भुलाना।

देव पितर सब तुमहिं गोसाईं * राखहिं नयनपलक की नाईं
अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना * तुम करुणाकर धर्मधुरीना

सब देवता और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें जैसे पलकें आँखों को बचाती हैं। चौदह वर्ष की अवधि जल है, सब परिवार मछलियाँ हैं, और धर्म-धुरंधर तुम करुणा के सागर हो।

अस विचारि सोइ करहु उपाई * सबहिं जियत जेहि भेंटहु आई
जाहु सुखेन वनहिं बलि जाऊँ * करि अनाथ जन परिजन गाऊँ

ऐसा विचारकर वही उपाय करो, जिससे सबके जीते हुए ही आ मिलो। हे तात, बलि जाऊँ, तुम सब स्वजन, कुटुम्बी और नगर की प्रजा को अनाथ कर सुख से वन को जाओ।

सबकर आजु सुकृतफल बीता * भयो कराल काल विपरीता
बहुविधि विलपि चरण लपटानी * परम अभागिनि आपुहि जानी

आज सबके पुण्यों का फल बीत गया, कराल काल हमारे प्रतिकूल हो गया। इस तरह अनेक प्रकार से विलाप कर और अपने को अभागिन जान कौशल्याजी रामचन्द्र के चरणों में लिपट गईं।

दारुण दुसह दाह उर व्यापा * बरणि न जाय विलापकलापा
राम उठाय मातु उर लाई * कहि मृदुवचन बहुत समुझाई

कौशल्या के हृदय में ऐसी पीड़ा और जलन व्याप गई, जिसे सहना बड़ा कठिन था। उस समय उन्होंने जो विलाप किया, वह कहा नहीं जाता। रामचन्द्र ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और कोमल वचन कहकर बहुत समझाया।



समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासुपद कमलयुग, वन्दि बैठि शिरनाइ॥

सीता इस समाचार को सुनकर व्याकुल हो उठीं और उसी समय जाकर सास के दोनों चरणारविन्दों की वन्दना कर सिर झुकाकर उनके पास बैठ गईं।

दीन्ह अशीश सासु मृदुबानी * अति सुकुमारि देखि अकुलानी
बैठि नमितमुख सोचति सीता * रूपराशि पतिप्रेम पुनीता

सास ने कोमल वाणी से सीता को आशीर्वाद दिया और उसे बहुत सुकुमारी देख वे व्याकुल हो गईं। रूप की राशि, पति में पवित्र प्रेम रखनेवाली सीता नीचा मुख किये बैठी सोचती हैं—

चलन चहत वन जीवननाथा * कवन सुकृतसन होइहि साथा
की तनु प्राण कि केवल प्राना * विधिकरतब कछु जात न जाना

कि मेरे जीवन के स्वामी वन जाना चाहते हैं; किस पुण्य से मैं उनके साथ जा सकूँगी? मेरा शरीर और प्राण दोनों साथ जायँगे या केवल प्राण ही जायँगे? विधाता क्या करना चाहता है, कुछ जाना नहीं जाता।

चारु चरण नख लेखति धरणी * नूपुर मधुर मुखर कवि बरणी
मनहु प्रेमवश बिनती करहीं * हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं

ऐसा सोचती हुई सीता चरणों के नखों से धरती कुरेदने लगीं। कवि कहता है, उस समय नूपुरों का बजना मानो यह जताता था कि नूपुर सीताजी से विनय करते हैं कि हमें अपने चरणों से अलग न करना।

मंजु विलोचन मोचति वारी * बोली देखि राममहतारी
तात सुनहु सियअति सुकुमारी * सासु ससुर परिजनहिं पियारी

सीताजी को सुन्दर नेत्रों से आँसू बहाते देखकर कौशल्याजी रामचन्द्र से बोलीं कि

हे तात, सुनो, सीता बड़ी सुकुमारी है और सास, ससुर, परिवार सबको प्यारी है।



पिता जनक भूपालमणि ससुर भानुकुलभान।
पति रविकुलकैरवविपिनविधु गुणरूपनिधान॥

नृपतिशिरोमणि राजा जनक इसके पिता हैं और सूर्यकुल के सूर्य श्रीमहाराज ससुर हैं। फिर कोकाबेली के समान इस सूर्यवंश को प्रफुल्लित करनेवाले गुण और रूप के निधान चन्द्रमा के समान तुम इसके पति हो।

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई * रूपराशि गुण शील सुहाई
नयनपुतरि इव प्रीति बढ़ाई * राखहुँ प्राण जानकिहिं लाई

फिर मैंने रूप की राशि, गुणवती, सुशील, सुन्दरी, प्यारी सीता को बहू के रूप में पाकर नेत्रों की पुतली की नाईं रखकर प्रीति बढ़ाई है और जानकी में अपने प्राण लगाये रहती हूँ।

कल्पबेलिजिमिबहुविधिलाली * सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली
फूलत फलत भयउ विधि बामा * जानि न जाय काह परिणामा

कल्पबेलि की नाईं मैंने इसको बहुत तरह से दुलराया है और प्रेम के जल से सींचकर पाला है। पर इसके फूलने-फलने के समय विधाता विरोधी बन गया। जान नहीं पड़ता कि इसका फल क्या होगा।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा * सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा
जिवनिमूरि जिमिजुगवतिरहेऊँ * दीपबाति नहिं टारन कहेऊँ

पलँग, सखियों की गोद और हिंडोले को छोड़ सीता ने कभी कठोर पृथ्वी पर पैर नहीं दिया। जीवनमूरि की तरह मैं इसे जुगोती रही हूँ; कभी दिया की बाती टालने को भी इससे नहीं कहा।

सो सिय चलनचहति वनसाथा * आयसु कहा होय रघुनाथा
चन्द्रकिरणरसरसिक चकोरी * रविरुखनयन सकै किमि जोरी

वही सीता आज तुम्हारे साथ वन को चला चाहती है। हे राम, उसको क्या आज्ञा है? चन्द्रमा की ठंडी किरणों के रस की रसिक चकोरी सूर्य के सामने आँखें कैसे भिड़ा सकती है?



करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्टजन्तु वन भूरि।
विषवाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनमूरि॥

हे पुत्र, वन में हाथी, सिंह और राक्षस आदि दुष्ट जीव अधिक फिरते हैं। क्या विष की फुलवारी में सजीवनमूरि शोभा देगी?

वनहित कोल किरातकिशोरी * रची विरञ्चि विषयरसभोरी
पाहनकृमि जिमि कठिनस्वभाऊ * तिनहिं कलेश न कानन काऊ

वन के लिए तो कोल-भिल्लों की कन्याएँ विधाता ने रची हैं, जो विषय-भोग के रस को नहीं जानतीं। पत्थर के कीड़े के समान जिनके कठिन स्वभाव हैं, उन्हें ही वन में कभी क्लेश नहीं होते, अर्थात् वे उन्हें अनायास सह लेती हैं।

कै तापसतिय काननयोगू * जिन तपहेतु तजे सब भोगू
सिय वन वसिहि तात केहिभाँती * चित्रलिखित कपि देखि डराती

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन के योग्य होती हैं, जिन्होंने तप के लिए सब भोग छोड़े हैं। हे तात, सीता वन में कैसे रहेगी, जो चित्र में लिखे बन्दरों को भी देखकर डरती है।

सुरसर सुभग वनजवनचारी * डाबर योग कि हंसकुमारी
अस विचारि जस आयसु होई * मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई

देवताओं के सरोवर में कमलों के वनों की रहनेवाली हंसकुमारी पोखरों के योग्य कैसे हो सकती है? ऐसा विचारकर जैसी आज्ञा हो, वैसी शिक्षा मैं सीता को दूँ।

जो सिय भवन रहै कह अम्बा * मोकहँ होइ प्राणअवलम्बा
सुनि रघुवीर मातु प्रियबानी * शील सनेह सुधा जनु सानी

माता कहती हैं कि मैं तो यही चाहती हूँ कि सीता घर ही में रहे; क्योंकि यदि सीता घर में रहे तो मुझे प्राणों का सहारा हो। श्रीरामजी ने शील और स्नेह से भरी माता की अमृत सी कोमल वाणी सुनकर—


कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं, प्रकटि विपिनगुणदोष॥

विवेक से भरे प्रिय वचन कहकर माता को समझाया। फिर रामचन्द्रजी वन के गुण-दोष बतलाते हुए सीता को समझाने लगे।

मातुसमीप कहत सकुचाहीं * बोले समय समुझि मनमाहीं
राजकुमारि सिखावन सुनहू * आनभाँति कछु जियजनिगुनहू

माता के सामने कहते सकुचते हैं, परन्तु मन में समय विचारकर बोले कि हे राजकुमारी, हमारा सिखावन सुनो और किसी प्रकार का और विचार मन में मत करो।

आपन मोर नीक जो चहहू * वचन हमार मानि घर रहहू
आयसु मोर सासुसेवकाई * सबबिधि भामिनिभवन भलाई

जो तुम अपना और मेरा भला चाहती हो तो हमारे वचनों को मानकर घर ही में

रहो। हे भामिनी, तुम्हारा घर में ही रहना ठीक है; क्योंकि इससे मेरी आज्ञा का पालन होगा और तुम सास की सेवा भी कर सकोगी। सब भाँति घर ही में रहने में तुम्हारी भलाई है।

यहिते अधिक धर्म नहिं दूजा * सादर सासुससुरपद पूजा
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी * होइहि प्रेमविकल मति भोरी

इससे अधिक और दूसरा कोई धर्म नहीं है कि आदरसमेत सास-ससुर की सेवा करो। जब-जब माता मेरी याद किया करेंगी तो प्रेम के कारण उनकी बुद्धि व्याकुल होगी।

तब तब तुम कहि कथा पुरानी * सुन्दरि समुझायहु मृदु बानी
कहौं स्वभाव शपथ शत मोहीं * सुमुखि मातुहित राखहुँ तोहीं

तब-तब हे सुन्दरी, तुम पुरानी कथाएँ कहकर उनको कोमल वाणी से समझाना; धीरज देना। मैं सौ सौगन्दें करके तुमसे सत्य कहता हूँ कि हे सुमुखी, तुम्हें केवल माता ही के लिए घर में रखना चाहता हूँ।



गुरुश्रुतिसम्मत धर्मफल, पाइय बिनहिं कलेश।
हठवश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश॥

गुरुजन और वेदों के मत से जो धर्म होता है, उसका फल विना क्लेश के मिलता है। परन्तु हठ से गालव ऋषि और राजा नहुष ने सभी संकट सहे हैं।

मैं पुनि करि प्रमाण पितु बानी * वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी
दिवस जात नहिं लागहि बारा * सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा

हे सुमुखी, सयानी, सुनो। मैं पिता का वचन पूरा कर फिर शीघ्र लौटूँगा। दिन बीतते देर नहीं लगती। सुन्दरी, हमारा सिखावन सुनो।

जो हठ करहु प्रेमवश वामा * तौ तुम दुख पावहु परिणामा
कानन कठिन भयङ्कर भारी * घोर घाम हिम वारि बयारी

प्रिये, जो प्रेमवश हठ करोगी तो अन्त में कष्ट पाओगी; क्योंकि वन कठिन और बड़ा भयावना है, जिसमें घोर घाम, जाड़ा, पानी और हवा का सामना करना पड़ेगा।

कुश कंटक मग काँकर नाना * चलब पयादे बिन पदत्राना
चरणकमल मृदु मंजु तुम्हारे * मारग अगम भूमिधर भारे

राह में कुश, काँटे और अनेक प्रकार के कङ्कड़ हैं। विना पनहियों के पैदल चलना होगा। तुम्हारे चरण कमल के समान कोमल और सुन्दर हैं और वन की राह में भारी-भारी पहाड़ों पर चढ़ना पड़ेगा, जिन पर चढ़ना बहुत कठिन है।

कन्दर खोह नदी नद नारे * अगम अगाध न जाइँ निहारे

भालु बाघ केहरि वृक नागा * करहिं नाद सुनि धीरज भागा

कन्दराएँ, पहाड़ों की गुफाएँ, नदियाँ, नद और नाले अगम और गहरे हैं, जिनकी ओर देखने की भी हिम्मत किसी की नहीं होती। रीछ, बाघ, सिंह, भेड़िये और हाथी नाद करते हैं, जिसे सुनकर धीरज भाग जाता है।



भूमिशयन वलकलवसन, अशन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥

धरती में सोना, पेड़ की छाल के कपड़े, खाने के लिए कन्दमूल और फल मिलेंगे—और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? नहीं, कभी-कभी मिल जायँगे।

नर अहार रजनीचर करहीं * कपटवेष विधि कोटिक धरहीं
लागै अति पहार कर पानी * विपिनविपति नहिं जाइ बखानी

राक्षस मनुष्यों को भक्षण करते हैं और करोड़ों प्रकार के कपट-रूप रखते हैं। पहाड़ का पानी बहुत लगता है। वन के कष्ट कहे नहीं जाते।

व्याल कराल विहँग वन घोरा * निशिचरनिकर नारिनरचोरा
डरपहिं धीर गहन सुधि आये * मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये

भयङ्कर वन में भयानक साँप और पक्षी हैं तथा स्त्री-पुरुष को चुरानेवाले राक्षसों के झुण्ड हैं। हे मृगनयनी, वन की सुध आने पर धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर तुम तो स्वभाव ही से डरपोक हो।

हंसगमनि तुम नहिं वनयोगू * सुनि अपयश मोहिं देहहिं लोगू
मानससलिलसुधा प्रतिपाली * जियै कि लवणपयोधि मराली

हे हंसगमनी, तुम वन जाने योग्य नहीं हो। सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवर के अमृत-सदृश जल से पली हुई हंसिनी क्या खारी समुद्र में जी सकती है? नहीं।

नव रसालवनविहरनशीला * सोह कि कोकिल विपिन करीला
रहहु भवन अस हृदय विचारी * चन्द्रवदनि कानन दुख भारी

नये आमों के वन में विहार करनेवाली कोयल, क्या करील के वन में सोहेगी? हे चन्द्रमुखी, ऐसा मन में विचारकर घर ही में रहो। वन में अनेक दुःख हैं।



सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करै हित मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवशि होइ हितहानि॥

सहज मित्र, गुरु और स्वामी का सिखावन जो हित मानकर नहीं करता, वह पीछे अच्छीतरह पछताता है और उसके हित की हानि होती है।

सुनि मृदु वचन मनोहर पियके * लोचननलिन भरे जल सियके
शीतल सिख दाहक भइ कैसे * चकइहि शरदचन्द निशि जैसे

पति के ये कोमल मनोहर वचन सुन सीता के कमल के समान नेत्रों में पानी भर आया। यह शीतल सीख (उपदेश) जानकीजी को किस प्रकार जलानेवाली हुई, जैसे कि शरदृऋतु की चाँदनी चकवा को पीड़ा पहुँचाती है।

उतर न आव विकल वैदेही * तजन चहत शुचिस्वामि सनेही
बरबस रोंकि विलोचन वारी * धरि धीरज उर अवनिकुमारी

पवित्र स्नेही स्वामी छोड़ा चाहते हैं, इससे जानकीजी को कुछ उत्तर नहीं आता। वे दुःखित हो गईं। इसके बाद पृथ्वी की कन्या सीताजी ने बरबस आँखों में आँसुओं को रोक धीरज धरकर—

लागि सासुपग कह करजोरी * क्षमब देवि बड़ि अविनय मोरी
दीन्ह प्राणपति मोहिं सिख सोई * जेहि विधि मोर परमहित होई

पहले सास के पाँव छुए, फिर हाथ जोड़कर बोली कि हे देवी, मेरी भारी ढिठाई को क्षमा करना। प्राणपति ने मुझे वही सिखावन दिया है, जिससे मेरा भला हो।

मैं पुनि समुझि देखि मनमाहीं * पियवियोगसम दुख जग नाहीं
यहिविधिसियसासुहिं समुझाई * कहति पतिहिं वर विनय सुनाई

फिर मैंने मन में समझकर देखा कि पति के वियोग के समान संसार में दुःख नहीं है। इस प्रकार जानकीजी सास को समझाकर पति से विनयपूर्वक कहने लगीं—



प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुलकुमुदविधु, सुरपुर नरकसमान॥

हे प्राणनाथ, करुणानिधान, सुन्दर, सुख देनेवाले, सुजान और हे रघुवंशरूपी कोकाबेली को चन्द्रमा के समान, तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई * प्रिय परिवार सुहृद समुदाई
सासु ससुर गुरु सुजन सुहाई * सुत सुन्दर सुशील सुखदाई

माता, पिता, बहन, प्यारे भाई, प्रिय कुटुम्ब, मित्रों के समूह, सास, ससुर, गुरु, सुहावने सज्जन, सुन्दर और सुशील लड़का, ये सब सुखदायक होने पर भी—

जहँलगि नाथ नेह अरु नाते * पिय बिन तियहि तरणिते ताते
तन धन धाम धरणि पुरराजू * पतिविहीन सब शोकसमाजू

हे नाथ, मैं समझती हूँ कि जहाँ तक नेह और नाते हैं, वे पति के बिना स्त्री के लिए

सूर्य से भी अधिक जलानेवाले हैं। शरीर, धन, घर, भूमि और नगरों का राज्य, सब पति के बिना शोक की सामग्री हैं।

भोग रोग सम भूषण भारू * यमयातनासरिस संसारू
जिय बिन देह नदी बिन वारी * तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी

पति के बिना स्त्री के लिए भोग रोग के समान, गहने बोझ-से और संसार यमलोक की यातना-सा होता है। हे नाथ, जैसे जीव के बिना देह और पानी के बिना नदी होती है, वैसे ही पति के बिना स्त्री है।

प्राणनाथ तुम बिन जगमाहीं * मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे * शरद विमल विधुवदन निहारे

हे प्राणनाथ, तुम्हारे बिना संसार में मुझे कहीं कोई सुख देनेवाला नहीं है। हे नाथ, शरद्-ऋतु के चन्द्रमा के समान आपका विमल मुख देखकर ही मुझे सब सुख मिलते हैं, इसलिए मेरे सब सुख आपके साथ ही हैं।



खगमृग परिजन नगर बन, बलकल बसन दुकूल।
नाथ साथ सुरसदनसम, पर्णशाल सुखमूल॥

हे नाथ, आपके साथ वन के पक्षी और हरिण मेरे कुटुम्बी होंगे; वन नगर होंगे; वल्कल (पेड़ों की छाल) ही रेशमी कपड़े होंगे; सब सुखों की जड़ पर्णशाला देवताओं के घर के समान होगी।

वनदेवी वनदेव उदारा * करिहैं सासु ससुर सम सारा
कुश किसलय साथरी सुहाई * प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई

उदारचित्त वन की देवियाँ और देव सास व ससुर की नाईं मेरी देखरेख और सँभाल करेंगे। कुश और कोमल पत्तों की उत्तम चटाई आपके संग कामदेव की मनोहर शय्या के समान होगी।

कन्द मूल फल अमी अहारू * अवध सौधशत सरिस पहारू
क्षणक्षण प्रभुपदकमलविलोकी * रहिहौं मुदित दिवसजिमिकोकी

कन्द-मूल-फल का भोजन अमृत के समान होगा। पर्वत अयोध्या के सैकड़ों महलों के समान होंगे। मैं क्षण-क्षण में आपके चरणकमल देख देखके ही प्रसन्न रहूँगी, जैसे दिन में चकई।

वनदुख नाथ कहे बहुतेरे * भय विषाद परिताप घनेरे
प्रभुवियोग लवलेश समाना * सब मिलि होहिं न कृपानिधाना

हे नाथ, आपने वन के बहुतेरे भय, विषाद और कष्ट गिनाये हैं। पर हे कृपानिधान, वे सब मिलकर आपके वियोग के छोटे से अंश के बराबर भी नहीं हो सकते।

असजियजानि सुजानशिरोमनि * लेइय संग मोहिं छाँड़िय जनि
बिनती बहुत करौं का स्वामी * करुणामय उर अन्तरयामी

हे चतुरशिरोमणि, ऐसा जी में जानकर मुझे न छोड़िए; अपने ही साथ ले चलिए। हे स्वामी, आप दयानिधान और मन की बात जाननेवाले हैं। आपसे और बहुत बिनती क्या करूँ ?



राखिय अवध जो अवधिलगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शीलसनेहनिधान॥

हे सुन्दर सुख देनेवाले, शील और स्नेह के निधान, दीनबन्धु, जो आप यह समझते हों कि अवधि (चौदह वर्ष) तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो मुझे अयोध्या में रखिए।

मोहिं मग चलत न होइहि हारी * क्षण क्षण चरणसरोज निहारी
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं * मारगजनित सकलश्रमहरिहौं

मैं क्षण-क्षण पर आपके चरणकमल देखती रहूँगी, इसलिए चलने से मेरी हिम्मत न हारेगी। हे प्रिय, मैं सब भाँति सेवा करूँगी और राह चलने से हुई आपकी सारी थकावट को दूर करूँगी।

पायँ पखारि बैठि तरुछाहीं * करिहौं बायु मुदित मनमाहीं
श्रमकनसहित श्याम तनु देखे * कहँ दुखसमय प्राणपति पेखे

वृक्ष की छाया में बैठ, पैर धोकर, मन में प्रसन्न हो आपके हवा करूँगी। हे प्राणपति, परिश्रम के कारण निकली हुई पसीने की बूँदों से शोभित आपका श्याम शरीर देखूँगी। दुःख के अनुभव के लिए समय ही कहाँ रहेगा ?

समसहि तृण तरु पल्लव डासी * पायँ पलोटिहि सब निशि दासी
बार बार मृदु मूरति जोही * लागिहि ताति बयारि न मोही

समतल धरती पर तिनके और कोमल पत्ते बिछाकर यह दासी सारी रात पैर दाबेगी। बार-बार कोमल मूर्ति को देखने से मुझे (दुःख कष्ट की कौन कहे ?) गर्म हवा भी नहीं लगेगी।

को प्रभुसँग मोहिं चितवनहारा * सिंहवधुहिजिमिशशकसियारा
मैं सुकुमारि नाथ वनयोगू * तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू

आपके साथ रहने पर मुझे कौन आँख उठाकर देख सकता है ? सिंहिनी की ओर जैसे खरगोश और सियार नहीं देख सकते। हे नाथ, मैं सुकुमारी हूँ और आप वन के योग्य ! आपको तप और मुझे सुख भोगना उचित है !

ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषमवियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जो मेरा हृदय नहीं फटा तो जान पड़ता है, हे प्रभो, ये पापी प्राण आपके कठिन विरह का दुःख भी सह लेंगे।

अस कहि सीय विकल भइ भारी * वचन वियोग न सकी सँभारी
देखि दशा रघुपति जिय जाना * हठ राखे राखिहि नहिं प्राना

ऐसा कह सीताजी बहुत व्याकुल हो उठीं और केवल जबानी वियोग को भी नहीं सँभाल सकीं। रामचन्द्रजी ने यह दशा देख जी में जाना कि जबरदस्ती छोड़ जाऊँगा तो जानकी प्राणों को नहीं रक्खेगी।

कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा * परिहरि शोच चलहु बन साथा
नहिं विषादकर अवसर आजू * वेगि करहु बनगमन समाजू

तब सूर्यवंश के स्वामी कृपालु श्रीरामजी ने कहा—सोच छोड़कर मेरे साथ चलो। आज दुःख मनाने का अवसर नहीं है; शीघ्र वन को चलने की तैयारी करो।

कहि प्रियवचन प्रिया समुझाई * लगे मातुपद आशिष पाई
वेगि प्रजादुख मेटहु आई * जननी निठुर बिसरि जनि जाई

रामजी ने इस तरह प्रिय वचनों से प्रिया को समझाकर माता के पैर छुए और उनसे आशीर्वाद पाया। कौशल्याजी ने कहा—बेटा, जल्दी आकर प्रजा का दुःख दूर करना और निठुर माता को भूल न जाना।

फिरिहि दशा विधि कबहुँ किसोरी * देखिहौं नयन मनोहर जोरी
सुदिन सुघरी तात कब होई * जननी जियत वदनविधु जोई

हे विधाता, क्या कभी मेरी दशा लौटेगी? फिर मैं आँखों से यह मनोहर जोड़ी देखूँगी? हे पुत्र, वह अच्छा दिन और अच्छी घड़ी कब होगी, जब जीती हुई माता तुम्हारे चन्द्रमा-से मुख को देखेगी?

बहुरि वच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात।
कबहिं बुलाय लगाय उर, हरषि निरखिहौं गात॥

मैं अब फिर कब बच्चा, लाल, रघुवर, रघुपति, पुत्र आदि कहकर, पास बुलाकर, हृदय से लगाकर, प्रसन्न हो तुम्हारे सुन्दर शरीर को देखूँगी।

लखि सनेहकातरि महतारी * वचन न आव विकल भइ भारी
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना * समय सनेह न जाय बखाना

राम ने देखा, माता स्नेह से अधीर और विकल हो रही है, मुँह से बोल नहीं निकलता, तब उन्होंने अनेक प्रकार से माता को समझाया। उस समय का स्नेह कहा नहीं जा सकता।

तब जानकी सासुपग लागी * सुनिय मातु मैं परम अभागी
सेवासमय दैव दुख दीन्हा * मोर मनोरथ सफल न कीन्हा

तब जानकीजी ने सास के पैरों में प्रणाम कर कहा कि सुनिए, माताजी, मैं बड़ी अभागिन हूँ। आपकी सेवकाई के समय विधाता ने यह दुःख दिया; मेरा मनोरथ सफल न किया।

तजब छोभ जनि छाँड़िय छोहू * कर्म कठिन कछु दोष न मोहू
सुनि सियवचन सासु अकुलानी * दशा कवन विधि कहौं बखानी

मोह छोड़िए, पर दया न छोड़िएगा। कर्म (होनहार) कठिन है; इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है। सीताजी के ऐसे वचन सुन सास अकुला उठीं। उनकी उस दशा का बखान मैं कैसे करूँ।

बारहिंबार लाय उर लीन्ही * धरि धीरज सिख आशिष दीन्ही
अचल होइ अहिवात तुम्हारा * जबलग गंगयमुन जलधारा

कौशल्या ने बार-बार जानकीजी को हृदय में लगा धीरज धरकर सीख दी। फिर आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगा-जमुना में पानी है, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

दो॰ सीतहिं सासु अशीष सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपद्म सिर, अतिहित बारहिंबार॥

सास ने सीताजी को अनेक प्रकार के सिखावन और आशीर्वाद दिये। सीताजी बड़े स्नेह से उनके चरणकमलों में बार-बार सिर नवाकर चलीं।

समाचार जब लक्ष्मण पाये * व्याकुल बिलखिवदन उठिधाये
कम्प पुलकतनु नयन सनीरा * गहे चरण अतिप्रेम अधीरा

जब लक्ष्मणजी ने यह समाचार पाया तो व्याकुल हो उठ दौड़े; उनका मुँह सूख गया; देह काँपने लगी, रोएँ खड़े हो गये और आँखों में जल भर आया। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो रहे लक्ष्मण ने आकर रामचन्द्र के पैर पकड़ लिए।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े * मीन दीन जनु जल ते काढ़े
शोच हृदय विधि का होनहारा * सब सुख सुकृत सिरान हमारा

कुछ कह नहीं सकते, खड़े देख रहे हैं। जैसे जल से निकाली मछली व्याकुल हो। मन में सोचते हैं कि हे विधाता, क्या होनहार है। हमारा सब सुख और पुण्य जाता रहा।

मोकहँ कहा कहब रघुनाथा * राखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा
राम विलोकि बन्धु कर जोरे * देह गेह सब तृणसम तोरे

लक्ष्मणजी अपने मन में सोचते थे कि रामचन्द्रजी मुझसे क्या कहेंगे ? घर में रक्खेंगे या साथ ले चलेंगे। राम ने हाथ जोड़े हुए भाई को देखा, जिन्होंने देह और घर सब तृण-समान समझकर उनका मोह तोड़ डाला है।

बोले वचन राम नयनागर * शील सनेह सरल सुखसागर
तात प्रेमवश जनि कदराहू * समुझि हृदय परिणाम उछाहू

शील, स्नेह और सुख के सागर, सीधे स्वभाववाले और नीति में चतुर रामचन्द्रजी बोले—भाई ! स्नेह के वश हो डरो मत; इस बनवास के परिणाम में होनेवाले उत्साह को हृदय में समझो।



मातुपितागुरुस्वामिसिख, शिरधरि करिय सुभाय।
लह्यो लाभ तिन जन्मकर, नतरु जन्म जग जाय॥

जिन्होंने माता, पिता, गुरु और स्वामी की सीख को सहज ही सिर-आँखों पर लिया है, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है। इसके बिना संसार में जन्म वृथा है।

असजियजानिसुनहु सिख भाई * करहु मातुपितुपद सेवकाई
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं * राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं

भैया, मन में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। देखो, घर में भरत और शत्रुघ्न नहीं हैं और राजा एक तो बूढ़े हैं, दूसरे मन में मेरे वियोग का दुःख है।

मैं वन जाउँ तुमहिं लै साथा * होइ सबै विधि अवध अनाथा
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू * सबकहँ परै दुसह दुख भारू

यदि तुमको साथ लेकर मैं वन को जाऊँ तो सब प्रकार अयोध्या अनाथ हो जायगी। गुरु, माता, पिता, प्रजा और परिवार, सबके ऊपर दुस्सह दुःख का बोझ पड़ेगा।

रहहु करहु सबकर परितोषू * नतरु तात होइहि बड़ दोषू
जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी * सो नृप अवसि नरकअधिकारी

इससे भाई, घर में रहो और सबको समझाते रहो, नहीं तो बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी होती है, वह राजा अवश्य नरक का भागी होता है।

रहहु तात अस नीति विचारी * सुनत लषण भे व्याकुल भारी
सियरे वचन सूखि गये कैसे * परसत तुहिन तामरस जैसे

भैया, ऐसी नीति विचारकर तुम यहीं रहो। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत व्याकुल हुए। वह राम के इन शीतल वचनों से कैसे सूख गये, जैसे पाला पड़ने से कमल सूख जाता है।



उतर न आवत प्रेमवश, गहे चरण अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तौ कहा बसाइ॥

स्नेह के वश हैं, इससे उत्तर नहीं आता। उन्होंने विकल होकर राम के पैर पकड़ लिए और कहा—हे नाथ, मैं सेवक और तुम स्वामी हो। अगर छोड़ दीजिएगा तो मेरा वश ही क्या है?

दीन्ह मोहिं सिख नीकि गोसाँई * अगम लागि आपनि कदराई
नरवर धीर धर्मधुरधारी * निगम नीति के ते अधिकारी

हे स्वामी, आपने मुझको अच्छी सीख दी; परन्तु अपने ही कायरपन से वह मुझे कठिन जान पड़ती है। जो श्रेष्ठ मनुष्य धर्म की धुरी को उठानेवाले हैं, वे ही वेद और नीति के अधिकारी हैं।

मैं शिशु प्रभुसनेह प्रतिपाला * मन्दर मेरु कि लेइ मराला
गुरु पितु मातु न जानौं काहू * कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू

मैं तो आपके स्नेह से पाला हुआ बालक हूँ। क्या हंस मन्दराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकता है? (ये २॥ चौपाई सिद्धिप्रद हैं) हे नाथ, गुरु, पिता, माता, किसी को मैं नहीं जानता, यह स्वभाव से कहता हूँ, विश्वास कीजिए।

जहँ लगि नाथ सनेह सगाई * प्रीति प्रतीति निगम निज गाई
मोरे सबै एक तुम स्वामी * दीनबन्धु उर अन्तर्यामी

हे नाथ, जहाँ तक वेदों ने स्नेह, सगाई और प्रीति की प्रतीति कही है, वहाँ तक हे स्वामी, मेरे तो सब तुम्हीं हो। हे दीनबन्धु, तुम हृदय के भीतर की बात जाननेवाले हो।

धर्मनीति उपदेशिय ताही * कीरति भूति सुगति प्रिय जाही
मन क्रम वचन चरणरति होई * कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई

धर्मनीति उसको सिखानी चाहिए, जिसको यश, ऐश्वर्य और अच्छी गति (मोक्ष आदि) प्यारी हो। हे दयासिन्धु, जिसकी रति मन, वचन और कर्म से आपके चरणों में हो, क्या उसको छोड़ना चाहिए।



करुणासिन्धु सुबन्धु के, सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥

दया के सिन्धु स्वामी रामचन्द्रजी ने उत्तम भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर प्रेम के कारण डरे हुए (जैसे स्वाती का वियोग पपीहा को व जल का मीन को ऐसे ही प्रभु का वियोग सेवक को असह्य है) जान हृदय से लगाकर समझाया।

माँगहु बिदा मातु सन जाई * आवहु वेगि चलहु वन भाई
मुदित भये सुनि रघुवरबानी * भयो लाभ बड़ गइ बहु हानी

कहा कि हे भाई, जाकर माता से बिदा माँगो और वनको चलने के लिए शीघ्र आओ। रामचन्द्र की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए, मानो बहुत लाभ हुआ और हानि जाती रही।

हर्षितहृदय मातु पहँ आये * मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये
जाय जननिपद नायो माथा * मन रघुनन्दनजानकिसाथा

मन में प्रसन्न होकर माता के पास आये, मानो अन्धे ने फिर आखें पाईं। जाकर माता के चरणों में सिर झुकाया, परन्तु मन रामचन्द्र और जानकीजी के साथ था।

पूछेहु मात मलिनमन देखी * लषण कही सब कथा विशेखी
गई सहमि सुनि वचन कठोरा * मृगी देखि दव जिमि चहुँ ओरा

माता ने उदास देखकर कारण पूछा तो लक्ष्मणजी ने सब कथा विस्तार से कही। वे कठोर वचन सुनकर सुमित्राजी सूख गईं, जैसे वन में चारों ओर आग देखकर हरिणी डर जाती है।

लषणलख्यो भा अनरथआजू * यह सनेहवश करब अकाजू
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं * जानसंग विधि कहहिं कि नाहीं

लक्ष्मणजी ने देखा कि आज अनर्थ हुआ; क्योंकि सुमित्राजी प्रेम के वश होने से अकाज करेंगी अर्थात् जाने से रोक लेंगी। बिदा माँगते डरते और सकुचते हैं कि हे विधाता, साथ जाने को कहेंगी या नहीं।



समुझि सुमित्रा रामसियरूप सुशील सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ शिर पापिनि कीन्ह कुदाउ॥

सुमित्राजी रामचन्द्र और जानकीजी का स्वरूप, शील और स्वभाव समझकर तथा राजा का प्रेम देखकर सिर पीटने लगीं कि पापिन कैकेयी ने कुदाँव किया।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी * सहज सुहृद बोलीं मृदुबानी
तात तुम्हारि मातु वैदेही * पिता राम सब भाँति सनेही

पर अवसर न जानकर सहज ही शुद्ध हृदयवाली सुमित्राजी ने धीरज रक्खा और इस प्रकार कोमल वचन बोलीं कि हे पुत्र, सब प्रकार स्नेह करनेवाले रामचन्द्र तुम्हारे पिता और जानकीजी माता हैं।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू * तहँइ दिवस जहँ भानुप्रकासू
जो पै राम सीय वन जाहीं * अवध तुम्हार काज कछु नाहीं

जहाँ रामचन्द्रजी रहें, वहीं अयोध्या है, क्योंकि जहाँ सूर्य का उजेला है, वहीं दिन है।

यदि जानकी और रामचन्द्रजी वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ काम नहीं।

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं * सेइय सकल प्राण की नाईं
राम प्राणप्रिय जीवन जीके * स्वारथरहित सखा सबहीके

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राणों के समान करना चाहिए। रामचन्द्रजी प्राणप्रिय और जीव के जीवन हैं। वह सबके स्वार्थरहित मित्र हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँते * सब मानिये राम के नाते
अस जिय जानि संग वन जाहू * लेहु तात जग जीवनलाहू

जितने भी बड़े प्यारे और पूजने योग्य हैं वे सब राम ही के नाते से मानने चाहिए। हे तात, ऐसा मन में जानकर राम के साथ वन को जाओ और संसार में जीने का लाभ उठाओ।



भूरिभाग्यभाजन भयो, मोहिंसमेत बलि जाउँ।
जो तुम्हरे मन छाँड़िछल, कीन्ह रामपद ठाउँ॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊँ, यदि तुम्हारे मन ने छल-कपट छोड़कर रामजी के चरणों में स्थान प्राप्त किया तो मुझसमेत तुम बड़े भाग्यशाली हुए।

पुत्रवती युवती जग सोई * रघुपतिभक्त जासु सुत होई
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी * रामविमुख सुतते हितहानी

संसार में पुत्रवाली स्त्री वही है, जिसका पुत्र राम का भक्त हो; नहीं तो बाँझ ही अच्छी। जिसका पुत्र राम का भक्त नहीं, उस स्त्री ने वृथा ही पुत्र को पैदा किया, क्योंकि रामविमुख पुत्र से हित की हानि होती है।

तुम्हरेहि भाग राम वन जाहीं * दूसर हेतु तात कछु नाहीं
सकल सुकृत कर बड़ फल येहू * रामसीयपद सहज सनेहू

हे पुत्र! तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जाते हैं, दूसरा कारण कुछ नहीं है। सब पुण्यों का यही बड़ा फल है कि सीता और राम के चरणों में सहज स्नेह हो।

राग रोष इर्षा मद मोहू * जनि सपनेहुँ इनके वश होहू
सकल प्रकार विकार बिहाई * मन क्रम वचन करेहु सेवकाई

स्नेह, क्रोध, डाह, घमंड और मोह के वश सपने में भी न होना। सभी प्रकार के विकारों को छोड़कर मन, कर्म और वचन से उनकी सेवा करना।

तुमकहँ वन सब भाँति सुपासू * सँग पितु मातु राम सिय जासू
जेहि न राम वन लहैं कलेशू * सुत सोइ करेहु यहा उपदेशू

वन में तुमको सब तरह सुख और सुपास है, जिनके साथ राम और जानकी पिता-

माता है। हे पुत्र, वही करना, जिससे रामचन्द्र मन में दुःख न पावें। यही मेरा सिखावन है।

छन्द

उपदेश यह जेहि तात तुमते रामसिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुखसुरतिवन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आशिप दई।
रति होहु अविरल अमल सियरघुबीरपद नित नित नई॥

हे पुत्र, यही मेरा सिखावन है कि तुम्हारी सेवकाई से राम और जानकी सुख पावें और उन्हें पिता, माता, प्रिय परिवार और नगर के सुखों की सुध वन में भूल जाय। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार पुत्र को सिखाकर सुमित्रा ने वन जाने की आज्ञा दी। फिर आशीर्वाद दिया कि तुम्हें राम-जानकी के चरणों में दिन-दिन निर्मल भक्ति प्राप्त हो।



मातुचरण शिरनाइ, चले तुरत शङ्कित हिये।
बागुर विषम तुराइ, मनहुँ भाग मृग भागवश॥

माता के चरणों में माथा झुकाकर मन में शङ्कित हो (कहीं मोहवश माता की मति पलट न जाय) ऐसे शीघ्र चले, जैसे भाग्यवश कठिन जाल को तोड़कर हरिण भागे।

गये लषण जहँ जानकिनाथा * भे मन मुदित पाय प्रिय साथा
बन्दि रामसियचरण सुहाये * चले संग नृपमन्दिर आये

जहाँ जानकीनाथ रामचन्द्र थे, वहाँ लक्ष्मणजी गये और प्रिय राम को साथ पाकर मन में प्रसन्न हुए। फिर राम-जानकी के सुहावने चरणों को प्रणाम कर उनके साथ ही राजमन्दिर में आये।

कहहिं परस्पर पुरनरनारी * भलि बनाइ विधि बात बिगारी
तनुकृश मनदुख बदनमलीने * विकल मनहु माखी मधु छीने

नगर के स्त्री-पुरुष परस्पर कहते हैं कि विधाता ने अच्छी बात बनाकर बिगाड़ दी। सबके शरीर दुबले हो रहे हैं, मन में दुःख है, मुख उदास है, और ऐसे व्याकुल हैं, जैसे शहद छीन लेने से मधुमक्खी।

कर मींजहिं शिरधुनि पछिताहीं * जनु बिनपङ्ख बिहँग अकुलाहीं
भइ बड़ि भीर भूपदरबारा * बरणि न जाइ विषाद अपारा

हाथ मलकर और माथा पीटकर पछताते हैं, जैसे पंखों के बिना पक्षी विकल होते हैं। राजा की सभा में बड़ी भीड़ हुई। उस समय का भारी विषाद कहा नहीं जा सकता।

सचिव उठाय राउ बैठारे * चरण परत नृप राम निहारे
सियसमेत दोउ तनय निहारी * व्याकुल भये भूमिपति भारी

मन्त्री सुमन्त ने राजा को उठाकर बिठाया। तब राजा ने पैरों में पड़ते हुए रामजी को देखा। जानकीसमेत दोनों लड़कों को देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए।



सीयसहित सुतसुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिंबार सनेह वश, राउ लेइँ उर लाइ॥

जानकीसमेत दोनों पुत्रों को देख-देख राजा व्याकुल होते और स्नेह से बार-बार उन्हें हृदय से लगाते हैं।

सकैं न बोलि विकल नरनाहू * शोकविवश उर दारुण दाहू
नाइ शीश पद अति अनुरागा * उठि रघुवीर बिदा तब माँगा

राजा ऐसे विकल हैं कि बोल नहीं सकते। शोक से अधीर हो रहे हैं। उनका हृदय बेबसी के कारण जल रहा है। तब रामचन्द्रजी ने उठकर बड़े प्रेम से चरणों में माथा झुकाया और बिदा माँगी।

पितु आयसु अशीश मोहिं दीजे * हर्षसमय विस्मय कत कीजे
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू * यश जग जाय होय अपवादू

बोले—पिताजी, मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए। आनन्द के समय आप शोक क्यों करते हैं? पिताजी, पुत्रस्नेह में फँसकर अगर आप अपने वचन का पालन न करेंगे तो यश जाता रहेगा और संसार में निन्दा होगी।

सुनि सनेहवश उठि नरनाहा * बैठारे रघुपति गहि बाँहा
सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं * राम चराचरनायक अहहीं

यह सुन स्नेह के वश राजा ने उठकर बाँह पकड़कर रामचन्द्रजी को बिठाया और कहा—पुत्र, मुनि लोग तुमको कहते हैं कि राम चराचर जगत् के स्वामी हैं।

शुभ अरु अशुभ कर्मअनुहारी * ईश देइ फल हृदय विचारी
करै जो कर्म पाव फल सोई * निगम नीति अस कह सबकोई

ईश्वर हृदय में विचारकर मनुष्य को उसके अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार फल को देता है। वेद, नीति और सब कोई ऐसा कहते हैं कि जो कर्म करता है, वही फल पाता है।



और करै अपराध कोउ, और पाव फलभोग।
अतिविचित्रभगवन्तगति, को जग जानन योग॥

अपराध कोई करे और फल कोई भोगे। भगवान् की इच्छा बड़ी विचित्र है। जगत् में कौन उसे जान सकता है?

राउ राम राखनहित लागी * बहुत उपाय किये छल त्यागी
लखा रामरुख रहत न जाने * धर्मधुरन्धर धीर सयाने

राजा ने राम के रोक रखने के लिए छल छोड़कर बहुत उपाय किये; परन्तु उन्होंने देखा कि धर्म की धुरी को धरनेवाले धीर और चतुर श्रीरामजी अब रह नहीं सकते।

तब नृप सीय लाय उर लीन्हीं * अतिहितबहुतभाँतिसिखदीन्हीं
कहि वन के दुख दुसह सुनाये * सासु ससुर पितु सुख समुझाये

तब राजा ने जानकीजी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की सीखें दीं। फिर न सह जाने के योग्य वन के दुःख सुनाये तथा सास, ससुर और पिता के यहाँ के सुख समझाये।

सियमन रामचरण अनुरागा * घर न सुगम वन अगम न लागा
औरहु सबन सीय समुझाई * कहिकहि विपिनविपतिअधिकाई

पर जानकीजी का मन रामजी के चरणों में लगा हुआ था, इससे उन्हें घर सहज और वन कठिन नहीं लगा। और भी सब लोगों ने वन में विपत्तियों का बहुत होना कहकर जानकीजी को समझाया।

सचिवनारि गुरुनारि सयानी * सहितसनेह कहहिं मृदुबानी
तुम कहँ तौ न दीन्ह वनवासू * करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू

मन्त्रियों और गुरुओं की चतुर स्त्रियों ने सनेहसहित कोमल वचन कहे कि तुमको तो वनवास दिया नहीं गया है, इसलिए ससुर, सास और गुरु जो कहते हैं, वही करो।


सिख शीतल हितमधुरमृदु, सुनि सीतहिं न सुहानि।
शरदचन्दचाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सीता ने सुनी, पर उनको अच्छी नहीं लगी। जैसे शरद्ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई अकुला उठती है, वैसे ही वह व्याकुल हो उठीं।

सीय सकुचवश उतर न देयी * सो सुनि तमकि उठी कैकेयी
मुनिपट भूषण भाजन आनी * आगे धरि बोली मृदुबानी

जानकीजी संकोच के वश होकर उत्तर नहीं देतीं, यह देख-सुनकर कैकेयी तमककर उठी और मुनियों के योग्य कपड़े, गहने, बरतन आदि लाकर आगे रखकर कोमल वाणी से बोली—

नृपहिं प्राणप्रिय तुम रघुवीरा * शीलसनेह न छाँड़हिं भीरा
सुकृत सुयश परलोक नशाऊ * तुमहिं जान वन कहहिं न राऊ

हे रघुवीर ! राजा को तुम प्राणों से प्यारे हो, इसलिए शील और स्नेह उनको नहीं छोड़ते । पुण्य, यश और परलोक भले ही मिट जायँ, पर राजा तुमसे वन जाने को न कहेंगे ।

असविचारिसोइकरहु जो भावा * राम जननिसिख सुनि सुखपावा
भूपहिं वचन बाणसम लागे * करहिं न प्राण पयान अभागे

ऐसा विचारकर जो अच्छा लगे सो करो । रामचन्द्र ने कैकेयी की सीख सुनकर सुख पाया । पर राजा को ये वचन बाण-से लगे । मन में कहते हैं कि अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते ।

शोकविकल मूर्च्छित नरनाहू * काह करिय कछु सूझ न काहू
राम तुरत मुनिवेष बनाई * चले जनकजननी शिरनाई

शोक से विकल राजा मूर्च्छित हो गिर पड़े । किसी को कुछ नहीं सूझता कि क्या करें । तब रामचन्द्र शीघ्र मुनियों का-सा वेष बनाकर माता-पिता को सिर नवाकर वहाँ से चल दिये ।



सजि वनसाज समाज सब, वनिता बन्धु समेत ।
वन्दि विप्र गुरुचरण प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥

वनवास का सब साज-सामान सजकर स्त्री और भाई सहित प्रभु रामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों और गुरुओं के चरणों को प्रणाम किया, और सबको अचेत करके चल दिये ।

निकसि वशिष्ठ द्वार भे ठाढ़े * देखे लोग विरहदवदाढ़े
कहि प्रियवचन सकल समुझाये * विप्रवृन्द रघुवीर बुलाये

निकलकर वशिष्ठजी के द्वार पर खड़े हुए तो क्या देखा कि सब लोग वियोग की आग से जल रहे हैं । तब रामचन्द्र ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया और ब्राह्मणों को बुलाया ।

गुरुसन कहि वर्षासन दीन्हे * आदरदान विनयवश कीन्हे
याचक दान मान सन्तोषा * मीत पुनीत प्रेम परितोषा

गुरु से कहकर सबको चौदह वर्ष के लिए भोजन दिया तथा आदर, दान और नम्रता से सबको वश किया । माँगनेवालों को दान और सम्मान से तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया ।

दासी दास बुलाइ बहोरी * गुरुहिं सौंपि बोले करजोरी
सबकी सार सँभार गोसाईं * करब जनकजननी की नाईं

फिर दासियों और दासों को बुलाकर गुरु को सौंपा और हाथ जोड़कर कहा—स्वामी, इन सबकी रक्षा और सँभाल माता-पिता की भाँति कीजिएगा ।

बारहिं बार जोरि युग पानी * कहत राम सबसन मृदुबानी

सोइ सब भाँति मोर हितकारी * जेहिते रह नरनाह सुखारी

फिर दोनों हाथ जोड़कर बार-बार सबसे इस प्रकार कोमल वचन कहे कि वही सब प्रकार मेरा हितकारी है, जिससे महाराज सुखी रहें।



मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहिं दुखदीन।
सोइ उपाय तुम करब सब, पुरजन परम प्रवीन॥

हे परम प्रवीण पुरवासियो, जिस प्रकार सब माताएँ मेरे वियोग के कारण दुःख से विकल न हों, वही उपाय आप सबको करना चाहिए।

यहिविधिरामसबहिं समुझावा * गुरुपदपद्म हरषि शिर नावा
गणपति गौरि गिरीश मनाई * चले अशीश पाइ रघुराई

इस प्रकार रामचन्द्रजी ने सबको समझाया और प्रसन्न होकर गुरु के चरणों में सिर नवाया। फिर गणेश, पार्वती और शिवजी को मनाकर और उनसे आशीर्वाद पाकर रामचन्द्रजी चले।

राम चलत अति भयउ विषादू * सुनि न जाइ पुर आरतनादू
कुशकुन लङ्क अवध अतिशोकू * हर्षविषादविवश सुरलोकू

रामचन्द्रजी के चलते समय लोगों को बड़ा दुःख हुआ। नगरवासियों का रोना-चिल्लाना सुना नहीं जाता। लंका में असगुन और अयोध्या में बड़ा शोक हुआ। देवगण को (रावणवध की संभावना से) हर्ष और (दशरथ की मृत्यु की संभावना से) शोक हुआ।

गइ मूर्च्छा तब भूपति जागे * बोलि सुमन्त कहन अस लागे
राम चले वन प्राण न जाहीं * केहिसुख लागि रहे तनमाहीं

मूर्च्छा जाती रही और राजा जागे। तब सुमन्त को बुलाकर वह कहने लगे कि राम तो वन को चले; पर मेरे प्राण नहीं जाते; न जाने किस सुख के लिए शरीर में रहे हैं!

यहिते कवनि व्यथा बलवाना * जो दुख पाइ तजहिं तनु प्राना
पुनि धरि धीर कहहिं नरनाहू * लै रथ संग सखा तुम जाहू

इससे अधिक कौन प्रबल व्यथा होगी कि जिसे पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे? फिर धीरज धरकर राजा कहते हैं कि हे मित्र, तुम रथ लेकर राम के साथ जाओ।



सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ वन, फिरेहु गये दिन चारि॥

सुन्दर और सुकुमार दोनों कुमारों और जनकनन्दिनी को रथ पर चढ़ाकर ले जाओ और वन दिखलाकर चार दिन में लौट आना।

जो नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई * सत्यसन्ध दृढ़व्रत रघुराई
तौ तुम विनय करेहु करजोरी * फेरहिं प्रभु मिथिलेशकिशोरी

जो दोनों भाई न लौटें, क्योंकि रामचन्द्र सत्यनिष्ठ और विचार के पक्के हैं, तो हाथ जोड़कर तुम विनती करना, जिससे स्वामी रामचन्द्र जनककुमारी को ही लौटा दें।

जब सिय कानन देखि डेराई * कहेहु मोरि सिख अवसर पाई
सासु ससुर अस कहेउ सँदेशू * पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेशू

जब जानकी वन को देखकर डरें, तो अवसर पाकर मेरा सिखावन कहना कि सास-ससुर ने ऐसा सँदेशा कहा है कि हे पुत्री, वन में बहुत क्लेश है, लौट चलो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी * रहेउ जहाँ रुचि होय तुम्हारी
यहि विधि करेहु उपायकदम्बा * फिरै तौ होइ प्राणअवलम्बा

कभी पिता के घर, कभी ससुराल में, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, रहना। इस प्रकार अनेक उपाय करना। अगर किसी तरह सीता ही लौट आवें तो मेरे प्राणों को सहारा हो।

नाहिंत मोर मरण परिणामा * कछु न बसाइ भयो विधिवामा
अस कहि मूर्च्छि परेउ महिराऊ * रामलषणसिय आनि दिखाऊ

नहीं तो मेरा मरण ही इसका परिणाम होगा। विधाता प्रतिकूल हैं, उनसे कुछ वस नहीं। ऐसा कह मूर्च्छित होकर राजा पृथ्वी पर गिर पड़े कि राम, लक्ष्मण और जानकी को दिखाओ।



पाइ रजायसु नाइ शिर, रथ अतिवेगि बनाय।
गयउ जहाँ बाहिर नगर, सियसमेत दोउ भाय॥

आज्ञा पाते ही सिर नवाकर शीघ्र रथ साजकर जहाँ नगर के वाहर सीतासमेत दोनों भाई थे, वहाँ सुमन्त गये।

तब सुमन्त नृपवचन सुनाये * करि बिनती रथ राम चढ़ाये
चढ़ि रथ सियसमेत दोउभाई * चले हरषि अवधहिं शिरनाई

तब सुमन्त ने राजा के वचन रामचन्द्र को सुनाये और विनती करके उन्हें रथ पर चढ़ाया। सीतासमेत दोनों भाई रथ पर चढ़े और प्रसन्न हो अयोध्या को सिर नवाकर चले।

चलत रामलखि अवध अनाथा * विकल लोग सब लागे साथा
कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं * फिरहिंप्रेमवशपुनिफिरिआवहिं

रामचन्द्र को चलते देख अयोध्या अनाथ हो गई और सब लोग विकल होकर संग लग गये। दया के सागर रामचन्द्रजी उन्हें बहुत प्रकार से समझाते हैं। लोग घर को फिरते हैं, परन्तु स्नेह से राम के पास फिर लौट आते हैं।

लागति अवध भयानक भारी * मानहु कालराति अँधियारी
घोर जन्तु सम पुरनरनारी * डरपहिं एकहिं एक निहारी

अयोध्या बड़ी भयावनी लगती है, मानो अँधेरी काल-रात्रि है। नगर के स्त्री-पुरुष भयङ्कर प्राणियों के समान लगते हैं, जो एक दूसरे को देखकर डरते हैं।

घर मशान परिजन जनु भूता * सुत हित मीत मनहु यमदूता
बागनविटप बेलि कुम्हिलाहीं * सरित सरोवर देखि न जाहीं

घर मसान के समान और कुटुम्बी मानो भूत-प्रेत हैं। लड़के, हितू और मित्र मानो यमदूत हैं। बगीचों में वृक्ष और लताएँ मुरझा रही हैं तथा नदियाँ और तालाब देखे नहीं जाते।



हय गय कोटिन केलिमृग, पुर पशु चातक मोर।
पिक रथांग शुक सारिका, सारस हंस चकोर॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के हरिण आदि, नगर के पशु, पपीहा, मोर, कोकिला, चकई-चकवा, तोता, मैना, सारस, हंस और चकोर—

रामवियोगविकल सब ठाढ़े * जहँ तहँ मनहुँ चित्रलिखि काढ़े
नगर सकल वन खरभर भारी * खगमृग विकल सकल नरनारी

ये सब रामचन्द्रजी के वियोग से दुःखित हो जहाँ-तहाँ व्याकुल खड़े हैं, मानो चित्र-लिखित हों। नगररूपी वन में खरभर हो रहा है; क्योंकि स्त्री-पुरुष, पक्षी और पशु सब दुःखी हैं।

विधि केकयी किरातिनि कीन्हीं * जेहिं दव दुसह दशहु दिशि दीन्हीं
सहि न सके रघुवर विरहागी * चले लोग सब व्याकुल भागी

उस वन में विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया है, जिसने दशों दिशाओं में न सहने योग्य दावानल लगा दी है। रामचन्द्र के वियोग की अग्नि को सब लोग न सह सके और व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं विचार कीन्ह मन माहीं * रामलषणसियबिन सुख नाहीं
जहाँ राम तहँ सकल समाजू * बिन रघुवीर अवध केहि काजू

मन में सबने विचारा कि रामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी के विना सुख नहीं। जहाँ राम हैं, वहीं सब सुखों का समाज है। रामजी के विना अयोध्या में हमारा क्या काम?

चले साथ अस मन्त्र दृढ़ाई * सुरदुर्लभ सुखसदन विहाई
रामचरणपङ्कज प्रिय जिनहीं * विषय भोगवश करहिं कि तिनहीं

ऐसा विचार दृढ़ कर देवताओं को भी दुर्लभ सुखवाले घरों को छोड़कर सब पुरवासी

प्रभु के संग चले। जिनको रामचन्द्रजी के चरणकमल प्यारे हैं, उनको क्या विषयभोग वश कर सकते हैं?



बालक वृद्ध विहाय गृह, चले लोग सब साथ।
तमसातीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥

लड़कों और बूढ़ों को घर में छोड़कर सब लोग साथ चले। पहले दिन रामचन्द्रजी ने तमसा नदी के किनारे निवास किया।

रघुपति प्रजा प्रेमवश देखी * सदय हृदय दुख भयउ विशेखी
करुणामय रघुवीर गोसाँई * वेगि पाव यहि पीर पराई

रामचन्द्रजी दयालु हैं। प्रजाओं को प्रेम के वश देखकर उनके हृदय में बड़ा दुःख हुआ। स्वामी रामचन्द्रजी दयामय हैं, इससे औरों की पीड़ा को शीघ्र जान लेते हैं—उसका अनुभव करते हैं।

कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाये * बहुविधि राम लोग समुझाये
किये धर्मउपदेश घनेरे * लोग प्रेमवश फिरहिं न फेरे

रामचन्द्रजी ने प्रेमसहित कोमल और सुहावने वचन कहकर बहुत प्रकार से समझाया और अनेक धर्म के उपदेश किये; परन्तु प्रेम के वश लोग लौटाये नहीं लौटते।

शील सनेह छाँड़ि नहिं जाई * असमञ्जसवश भे रघुराई
लोग शोकवश गे सब सोई * कछुक देवमाया मति मोई

शील और सनेह छोड़ा नहीं जाता, इससे रामचन्द्रजी असमंजस में पड़े। शोक के वश सब लोग सो गये और कुछ देवताओं की माया ने भी उनकी बुद्धि को मोहित कर दिया।

जबहिं यामयुग यामिनि बीती * राम सचिव सन कहेउ सप्रीती
खोज मारि रथ हाँकहु ताता * आन उपाय बनिहिं नहिं बाता

जब दो पहर रात बीती, तब रामचन्द्र ने प्रेमसमेत मन्त्री से कहा—हे तात, रथ इस तरह हाँकिए कि राह में लीक न खोजे मिले। दूसरे उपाय से बात न बनेगी।



रामलषणसिय यान चढ़ि, शम्भुचरण शिरनाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ॥

राम, लक्ष्मण और जानकी शिवजी के चरणों में सिर नवाकर रथ पर सवार हुए तो मन्त्री सुमन्त ने इधर-उधर चिह्न छिपाकर शीघ्र रथ को चलाया।

जागे सकल लोग भा भोरू * गे रघुवीर भयउ अति शोरू
रथकर खोज कतहुँ नहिं पावहिं * रामराम कहि चहुँदिशि धावहिं

सवेरा होने पर सब लोग जागे और रामचन्द्रजी चले गये, यह बड़ा शोर हुआ। पुरवासी कहीं रथ का चिह्न नहीं पाते और राम-राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं।

मनहु वारिनिधि बूड़ जहाजू * भयउविकल जनु वणिकसमाजू
एकहिं एक देहिं उपदेशू * तजे राम हम जानि कलेशू

मानो समुद्र में जहाज डूब जाने के कारण सौदागरों का झुंड विकल हो। एक को दूसरे सीख देते हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हम लोगों को छोड़ दिया।

निन्दहिं आपु सराहहिं मीना * धिग जीवन रघुवीरविहीना
जोपैप्रियवियोग विधि कीन्हा * तौ कस मरण न माँगे दीन्हा

अपनी निन्दा और मछलियों की प्रशंसा करते हैं कि वे विना जल नहीं जी सकतीं; पर हम रामचन्द्र के विना जी रहे हैं। हमारे जीने को धिक्कार है। अगर विधाता ने प्रिय राम का वियोग किया तो मरना क्यों नहीं माँगे दिया।

यहि विधिकरत प्रलापकलापा * आये अवध भरे परितापा
विषम वियोग न जाइ बखाना * अवधिआश सब राखहिं प्राना

इस प्रकार बहुत प्रलाप करते हुए सब लोग पछताते हुए अयोध्या में आये। कठिन वियोग कहा नहीं जा सकता। सब अवधि (चौदह वर्ष) की आशा से जीते हैं।



रामदरशहित नेमव्रत, लगे करन नरनारि।
मनहु कोककोकीकमल, दीन विहीन तमारि॥

स्त्रियाँ और पुरुष रामजी के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे। वे वियोग से कैसे दुखी हुए, जैसे सूर्य के विना चकवा-चकई दुखी होते हैं और कमल मुरझा जाते हैं।

सीतासचिवसहित दोउ भाई * शृङ्गवेरपुर पहुँचे जाई
उतरे राम देवसरि देखी * कीन्ह दण्डवत हर्ष विशेखी

जानकी और मन्त्री सुमन्तसमेत दोनों भाई शृंगवेरपुर जा पहुँचे। रामचन्द्रजी गंगाजी को देखकर उतरे और बड़ी प्रसन्नता से प्रणाम किया।

लषणसचिवसिय कीन्हप्रणामा * सबहिंसहित सुख पायउ रामा
गङ्ग सकल मुदमङ्गलमूला * सब सुखकरनि हरनि सब शूला

लक्ष्मण, सुमन्त और जानकी ने भी प्रणाम किया और सबके साथ रामजी ने सुख पाया। गङ्गाजी सब आनन्दों, मंगलों की देनेवाली, सब सुखों को करने और दुखों को हरनेवाली हैं।

कहिकहि कोटिक कथाप्रसङ्गा * राम विलोकहिं गङ्गतरङ्गा
सचिवहिंअनुजहिंप्रियहिंसुनाई * विबुधनदीमहिमा अधिकाई

रामचन्द्रजी करोड़ों कथाओं के प्रसङ्ग कह-कहकर गंगाजी की लहरें देखते हैं। गंगाजी की महामहिमा को रामजी ने मन्त्री, भाई और प्यारी जानकी को सुनाया।

मज्जन कीन्ह पन्थश्रम गयऊ * शुचि जल पियत मुदित मन भयऊ
सुमिरत जाहि मिटहिं भव भारू * तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू

फिर स्नान किया। तब राह की थकावट जाती रही और पवित्र पानी पीने से मन प्रसन्न हुआ। जिसका स्मरण करने से संसार का भार अर्थात् भय मिट जाता है, उसको थकावट होना केवल लोक का व्यवहार अर्थात् नर-शरीर की लीला है।



शुद्ध सच्चिदानन्दमय, राम भानुकुलकेतु।
करत चरित नर अनुहरित, संसृति सागर सेतु॥

विकाररहित, सदा आनन्दमय, सूर्यवंश की ध्वजा और संसाररूपी समुद्र के पार जाने के लिए सेतुस्वरूप रामचन्द्रजी मनुष्यों के-से चरित्र करते हैं।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई * मुदित लिए प्रियबन्धु बुलाई
लै फल मूल भेंट भरि भारा * मिलन चलेउ हिय हर्ष अपारा

जब यह समाचार गुह नाम के निषादराज ने पाया, तब प्रसन्न हो प्यारे भाईबंदों को बुला लिया और फल-मूल आदि की भेंट बहँगियों में भरकर मिलने को चला। उसके हृदय में अपार आनन्द था।

करि दण्डवत भेंट धरि आगे * प्रभुहिं बिलोकत अति अनुरागे
सहज सनेह विवश रघुराई * पूछी कुशल निकट बैठाई

वह प्रणाम कर और भेंट आगे धर प्रेम से स्वामी रामचन्द्रजी को निहारने लगा। सहज स्नेह के वश रामचन्द्रजी ने निकट विठाकर उससे कुशल पूछी।

नाथ कुशल पदपङ्कज देखे * भयउँ भाग्यभाजन जन लेखे
देव धरणि धन धाम तुम्हारा * मैं जन नीच सहित परिवारा

निषाद ने कहा—हे नाथ, चरणकमलों के दर्शन पाने से ही मेरा कल्याण हो गया। और आपने मुझे जो अपना जन—सेवक—माना, इसी से मैं बड़ा भाग्यशाली हुआ। हे देव, मेरी भूमि, धन और घर का सब तुम्हारा ही है। मैं तो कुटुम्बसमेत नीच सेवक हूँ।

कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ * थापिय जन सब लोक सिहाऊँ
कहेउ सत्य सब सखा सुजाना * मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना

दया करके नगर में पधारिए और मुझ सेवक को थापिए अर्थात् प्रतिष्ठा दीजिए, जिससे सब लोग मुझको सिहायँ। रामजी ने कहा—हे मित्र, तुमने सब सच कहा; परन्तु पिता ने मुझको और ही आज्ञा दी है।



वर्ष चारिदश वास वन, मुनि व्रत वेष अहार।
ग्रामवास नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयउ दुखभार ॥

मुझे उस आज्ञा के अनुसार चौदह वर्ष वन में रहना और मुनियों का-सा व्रत, वेष रखना और भोजन करना है। इससे गाँव में रहना उचित नहीं। यह सुनकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ।

राम लषण सिय रूप निहारी * कहहिं सप्रेम नगर नरनारी
ते पितुमातु कहहु सखि कैसे * जिन पठये वन बालक ऐसे

राम, लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर स्नेहसमेत गाँव के पुरुष और स्त्रियाँ कहती हैं कि हे सखी! कहो, वे पिता-माता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे लड़कों को वन भेजा।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा * लोचनलाहु हमहिं जिन दीन्हा
तब निषादपति मन अनुमाना * तरु शिंशिपा मनोहर जाना

कोई कहता है कि राजा ने अच्छा किया, इन्हें वन भेजकर हमें नेत्रों का लाभ दिया। तब निषादों के राजा ने मन में विचारकर भगवान् के ठहरने के लिए शिंशिपा (शीशम) के वृक्ष के नीचे का स्थान अच्छा जाना।

लै रघुवीरहिं ठाउँ दिखावा * कहेउ राम सब भाँति सुहावा
पुरजन करि जुहार गृह आये * रघुपति सन्ध्या करन सिधाये

रामचन्द्रजी को लेकर स्थान दिखाया। तब रामजी ने कहा कि यह सब प्रकार से सुहावन है। पुरवासी लोग जुहार करके घर आये और रामचन्द्रजी संध्या करने के लिए चले।

गुह सँवारि साथरी बनाई * कुश किसलय मृदु परम सुहाई
शुचि फलमूल मधुर मृदु जानी * दोना भरि भरि राखे आनी

निषाद ने रामजी के लिए कुशों और कोमल पत्तों से बड़ी सोहाई सेज को सँवारकर बनाया। फिर पवित्र फल-मूल मीठे और कोमल जानकर दोने भर-भरकर लाकर रक्खे।



सिय सुमन्त भ्रातासहित, कन्दमूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुवंशमणि, पायँ पलोटत भाइ ॥

जानकी, सुमन्त और भाईसमेत रघुवंश-मणि रामचन्द्रजी ने कन्द, मूल और फल खाकर शयन किया। तब लक्ष्मण उनके पैर दाबने लगे।

उठे लषण प्रभु सोवत जानी * कह सचिवहिं सोवन मृदुबानी
कछुक दूरि सजि बाण शरासन * जागन लगे बैठि वीरासन

रामचन्द्रजी को सोते जानकर लक्ष्मणजी उठे और मीठी वाणी से मन्त्री से सोने के लिए कहा। फिर धनुष पर बाण चढ़ाकर वीरासन लगा कुछ दूर पर बैठकर आप जागने लगे।

गुह बुलाइ पाहरू प्रतीती * ठाउँ ठाउँ राखे अति प्रीती
आप लषण पहँ बैठेउ जाई * कटि भाथा शर चाप चढ़ाई

निषाद ने विश्वासवाले चौकीदारों को बुलाकर बड़े प्रेम से ठौर-ठौर पर बिठा दिया और आप कमर में तरकस बाँध धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के समीप जा बैठा।

सोवत प्रभुहिं निहारि निषादा * भयउ प्रेमवश विकल विषादा
तनु पुलकित लोचन जल बहई * वचन सप्रेम लषणसन कहई

रामचन्द्रजी को सोते देखकर प्रेम के वश निषाद विषाद से व्याकुल हो उठा। उसके शरीर में रोमांच हो आया और आँखों से जल बहने लगा। तब निषाद प्रेमसमेत लक्ष्मणजी से कहने लगा—

भूपतिसदन सुभाय सुहावा * सुरपतिसदन न पटतर आवा
मणिमयरचित चारु चौबारे * जनु रतिपति निजहाथ सँवारे

महाराज दशरथ का महल सहज ही ऐसा सुहावना है कि इन्द्र का भी भवन उसकी बराबरी नहीं कर सकता। जिसमें मणियों के बने सुन्दर द्वार मानो कामदेव ने अपने हाथों से बनाये हैं।



शुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुवास।
पलँग मंजुमणि दीप जहँ, सबविधि सकलसुपास॥

जो शुद्ध, विचित्र-सुखमय और फूलों की सुगन्ध से सुगन्धित रहता है। जहाँ पलँग तथा सुन्दर मणियों के दीपक हैं और सब प्रकार का सुपास और सुख है।

विविध वसन उपधान तुराई * क्षीर फेन मृदु विशद सुहाई
तहँ सियराम शयन नित करहीं * निजछविरतिमनोजमद हरहीं

अनेक प्रकार के कपड़े, तकिये और गद्दे दूध के फेन से उज्ज्वल, कोमल और सुन्दर हैं। उन्हीं के ऊपर सीतारामजी नित्य शयन करते और शोभा से रति कामदेव का अहङ्कार नाशते हैं।

ते सियराम साथरी सोये * श्रमित वसनबिन जाहिं न जोये
मातु पिता परिजन पुरवासी * सखा सुशील दास अरु दासी

उस राजभवन में रहनेवाले सीता और राम यहाँ कुशों की चटाई पर सोते हैं। आह! यह थके और बिना कपड़ों के देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बी, नगरवासी, मित्र और सुशील दास-दासी—

जुगवहिं जिनहिं प्राण की नाईं * महि सोवत तेइ राम गुसाईं
पिता जनक जगविदित प्रभाऊ * ससुर सुरेशसखा रघुराऊ

जिनकी प्राणों की भाँति रक्षा करते थे, वही स्वामी रामचन्द्र पृथ्वी पर सोते हैं ! संसार में प्रकट प्रभाववाले जनकजी जिनके पिता तथा इन्द्र के मित्र और रघुवंश के महाराज दशरथ जिनके ससुर हैं—

रामचन्द्र पति सो वैदेही * सोवत महि विधि वाम न केही
सियरघुवीर कि काननयोगू * कर्म प्रधान सत्य कह लोगू

और रामचन्द्रजी जिनके पति हैं, वही जानकीजी पृथ्वी में सोती हैं। विधाता किसके प्रतिकूल नहीं होता ? क्या जानकी और रामचन्द्रजी वन के योग्य हैं, परन्तु लोग सच कहते हैं कि कर्म ही मुख्य है।



कैकयनन्दिनि मन्दमति, कठिनकुटिलपनकीन्ह।
जेहि रघुनन्दन जानकिहिं, सुखअवसर दुख दीन्ह ॥

कुबुद्धि कैकेयी ने कठिन कुटिलता की कि सुख के समय राम-जानकी को दुःख दिया।

भइ दिनकरकुलविटप कुठारी * कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी
भयउ विषाद निषादहिं भारी * रामसीय महिशयन निहारी

कैकेयी सूर्यवंशरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हुई। उसकी कुमति ने सारे संसार को दुखी किया। राम और जानकीजी का पृथ्वी पर सोना देख निषाद को बड़ा दुःख हुआ।

बोले लषण मधुर मृदु बानी * ज्ञान विराग भक्ति रस सानी
कोउ न काहु दुखसुखकर दाता * निज कृतकर्म भोग सुनु भ्राता

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिरस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले—भाई, सुनो, कोई किसी को दुःख या सुख का देनेवाला नहीं है। मनुष्य अपने ही किये हुए कर्मों का फल भोगता है।

योग वियोग भोग भल मन्दा * हित अनहित मध्यम भ्रमफन्दा
जन्म मरण जहँ लगि जगजालू * सम्पति विपति कर्म अरु कालू

मिलना, बिछुड़ना, भले-बुरे का भोगना, मित्र, शत्रु और उदासीन—ये सब भ्रम के फंदे हैं। जन्म, मरण, सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म और काल जहाँ तक संसार का प्रपंच है—

धरणि धाम धन पुरपरिवारू * स्वर्ग नरक जहँ लगि व्यवहारू
देखिय सुनिय गुनिय मनमाहीं * मोह मूल परमारथ नाहीं

तथा पृथ्वी, घर, धन, गाँव, कुटुम्ब, स्वर्ग और नरक जहाँ तक व्यवहार है, उसको देखिए, सुनिए और मन में विचारिए तो सबकी जड़ मोह या अज्ञान ही है, सत्य कुछ नहीं है।



स्वप्ने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपंच जग जोइ ॥

स्वप्न में राजा भिखारी और कंगाल इन्द्र हो जाता है; परन्तु जागने पर हानि या लाभ कुछ नहीं होता। ऐसे ही संसार में जो प्रपंच है, वह भी सब मिथ्या है।

अस विचारि नहिं कीजिय रोषू * बादि न काहुहिं दीजिय दोषू
मोहनिशा सब सोवनहारा * देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा

ऐसा विचारकर रोष न करो और वृथा किसी को दोष न दो। मोह की रात्रि में सब जीव सोते और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं—सुख-दुःख आदि असत्य भावनाओं को सत्य मानते हैं।

यहि जग यामिनि जागहिं योगी * परमारथी प्रपंच वियोगी
जानिय तबहिं जीव जग जागा * जब सब विषय विलासविरागा

इस संसार की रात्रि में योगी जागते हैं, जो परमार्थ के चाहनेवाले और संसार के प्रपंच से न्यारे हैं। जब सब विषयों के विलास से वैराग्य हो, तभी जानिए कि संसार में जीव जागा है।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा * तब रघुवीरचरण अनुरागा
सखा परम परमारथ येहू * सीय राम पद परम सनेहू

जब ज्ञान होता और मोह व भ्रम भागता है, तब रामजी के चरणों में प्रेम होता है। हे मित्र, सीतारामजी के चरणों में परम स्नेह होना ही परम परमार्थ है।

राम ब्रह्म परमारथरूपा * अविगत अलख अनादि अनूपा
सकल विकाररहित गतभेदा * कहि नित नेति निरूपहिं वेदा

रामचन्द्रजी परब्रह्म, परमार्थरूप, सब कहीं परिपूर्ण, अलख, अनादि, अनुपम, सब विकारों से रहित और भेदहीन (अद्वैत) हैं, जिनका निरूपण वेद नित्य व नेति कहकर करते हैं।



भक्त भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुजतनु, सुनत मिटहिं जगजाल॥

दयालु रामचन्द्रजी भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिए मनुष्य का शरीर धारणकर लीलाएँ करते हैं, जिनको सुनने से संसार के फन्दे मिट जाते हैं।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू * सिय रघुवीर चरणरत होहू
कहत रामगुण भा भिनसारा * जागे जगमंगलदातारा

हे मित्र, ऐसा समझकर मोह छोड़ सीतारामजी के चरणों में भक्ति करो। रामचन्द्रजी के गुण कहते-कहते सवेरा हो गया। तब संसार का कल्याण करनेवाले रामचन्द्रजी जागे।

सकल शौचकरि राम नहावा * शुचि सुजान वटक्षीर मँगावा
अनुजसहित शिर जटा बनाये * देखि सुमन्तनयन जल छाये

फिर सब शौच करके पवित्र और चतुर रामचन्द्रजी ने स्नान किया और बरगद का दूध मँगाकर भाईसमेत सिर के बालों की जटाएँ बनाईं। यह देखकर सुमन्त की आँखों में आँसू आ गये।

हृदय दाह अति बदन मलीना ❊ कह करजोरि बचन अतिदीना
नाथ कहेउ अस कोशलनाथा ❊ लै रथ जाउ राम के साथा

हृदय में जलन और मुख बड़ा उदास था। अतिदीन सुमन्त ने हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ, कोशलराज ने कहा था कि रामजी के सङ्ग रथ लेकर जाओ।

बन दिखाइ सुरसरि अन्हवाई ❊ आनेउ फेरि बेगि दोउ भाई
राम लषण सिय आनेहु फेरी ❊ संशय सकल सँकोच निवेरी

और बन दिखाकर तथा गंगाजी में स्नान कराकर शीघ्र ही दोनों भाइयों को लौटा लाना। सब सन्देह और संकोच दूर कर राम, जानकी और लक्ष्मण को शीघ्र ही लौटा लाना।



नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ॥

हे स्वामी, बलि जाऊँ, राजा ने ऐसा कहा है। अब आप जैसा कहिए, वही करूँगा। ऐसी विनती करके सुमन्त राम के पैरों में गिर पड़े और दीन बालक की भाँति रोने लगे।

तात कृपाकरि कीजिय सोई ❊ जाते अवध अनाथ न होई
मंत्रिहिं राम उठाइ प्रबोधा ❊ तात धर्ममारग तुम शोधा

फिर कहा—हे तात, दया करके वही कीजिए, जिससे अयोध्या अनाथ न हो। तब सुमन्त को उठाकर रामजी ने समझाया कि हे तात, तुमने धर्म का मार्ग अच्छी तरह जाना है।

शिवि दधीचि हरिचन्द नरेशा ❊ सहे धर्महित कोटि कलेशा
रन्तिदेव बलि भूप सुजाना ❊ धर्म धरेउ सहि संकट नाना

राजा शिवि, दधीचि और हरिचन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों क्लेश सहे हैं। रन्तिदेव और चतुर राजा बलि ने अनेक प्रकार के दुःख सहकर भी धर्म को धारण किया है।

धर्म न दूसर सत्यसमाना ❊ आगम निगम पुराण बखाना
मैं सोइ धर्म सुलभकरि पावा ❊ तजे तिहूँपुर अपयश छावा

शास्त्र, वेद और पुराणों में कहा है कि सत्य के बराबर दूसरा धर्म नहीं है। उसी धर्म को मैंने सहजकर पाया है। उसे छोड़ने से तीनों लोकों में मेरा अपयश छा जायगा।

सम्भावित कहँ अपयशलाहू ❊ मरण कोटि सम दारुण दाहू
तुमसन तात बहुत का कहऊँ ❊ दिये उतर पुनि पातक लहऊँ

और प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश मिलना मरने से करोड़गुना दारुण दुःख देनेवाला होता है। हे तात, तुमसे क्या कहूँ ? उत्तर देने से पाप होगा।

दो० पितुपद गहिकर कोटि विधि, विनय करब करजोरि।
चिन्ता कवनिहु बात की, तात करिय जनि मोरि॥

इससे मेरी ओर से पिता के पैर पकड़कर करोड़ों प्रकार से हाथ जोड़कर विनती करना कि हे तात, मेरी किसी बात की चिन्ता मत करना।

तुम पुनि पितुसम अतिहित मोरे * बिनती करौं तात करजोरे
सब विधि सोइ कर्तव्य तुम्हारे * दुख न लहैं पितु शोच हमारे

फिर हे तात, तुम भी पिता ही के समान मेरे हितू हो ; इससे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि तुमको सब प्रकार से वही करना चाहिए, जिससे मेरे शोक से पिताजी दुःख न पावें।

सुनि रघुनाथ सचिव संवादू * भयउ सपरिजन विकल निषादू
पुनि कछु लषण कही कटुबानी * प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी

रामचन्द्र और सुमन्त की बातचीत सुनकर परिवारसमेत निषाद दुखी हुआ। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़ुए वचन कहे। तब उसे बहुत अनुचित समझकर रामचन्द्रजी ने मना किया।

सकुचि राम निजशपथ दिवाई * लषणसँदेश कहब जनि जाई
कह सुमन्त पुनि भूपसँदेशू * सहिनसकहिसिय विपिनकलेशू

रामचन्द्र ने सकुचकर अपनी सौगन्द दिलाकर कहा कि लक्ष्मण का सँदेशा जाकर पिताजी से न कहना। तब फिर सुमन्त ने राजा का सँदेशा कहा कि सीताजी वन के दुःख को न सह सकेंगी—

जेहिविधिअवधआवफिरिसीया * सोइ रघुनाथ तुमहिं करनीया
नतरु निपट अवलम्बविहीना * मैं न जियबजिमिजलबिनमीना

इससे हे रघुनाथजी, जिस प्रकार जानकीजी अयोध्या को लौट आवें, वही आपको करना चाहिए ; नहीं तो निपट बेसहारे मैं नहीं जियूँगा, जैसे पानी के बिना मछली।

दो० मैके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मनमान।
तब तहँ रहब सुखेन सिय, जबलगि विपतिबिहान॥

जबतक विपत्तिरूपी रात्रि का सवेरा न हो, तबतक मैके और ससुरे में सब सुख हैं, जब जहाँ मन चाहे तब वहाँ सीता सुख से रहें।

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती * आरति प्रीति न सो कहिजाती

पितुसँदेश सुनि कृपानिधाना * सियहिं दीन्ह सिखकोटि विधाना

राजा ने जिस प्रकार विनती की है वह दुःख और प्रेम नहीं कहा जा सकता। पिता का सँदेशा सुनकर दयानिधि रामजी ने सीताजी को करोड़ों प्रकार से सिखावन दिया।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू * फिरहु तौ सबकर मिटहिखँभारू

सुनि पतिवचन कहति वैदेही * सुनहु प्राणपति परमसनेही

यदि तुम लौट जाओ तो सासु, ससुर, गुरु और प्यारा परिवार, सबका दुःख मिट जाय। पति के वचन सुनकर जानकीजी ने कहा—हे परमस्नेही, प्राणों के स्वामी, सुनिए,

प्रभु करुणामय परमविवेकी * तनतजि रहत छाँह किमि छेंकी

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई * कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई

हे प्रभु, हे दयालु, आप तो बड़े ज्ञानी हैं। भला देह को छोड़कर परछाहीं पकड़ने से कैसे रह सकती है? सूर्य को छोड़कर प्रकाश और चन्द्रमा को छोड़कर चाँदनी कहाँ जा सकती है?

पतिहि प्रेममय विनय सुनाई * कहति सचिवसन गिरा सुहाई

तुम पितुससुरसरिस हितकारी * उतर देउँ फिरि अनुचित भारी

पति को ऐसी प्रेममयी विनय सुनाकर जानकीजी मन्त्री से सुहावनी वाणी बोलीं कि आप पिता और ससुर के समान हितू हैं। यदि उत्तर दूँ तो बड़ा अनुचित होगा।



आरतिवश सन्मुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुतपदकमल बिन, बादि जहाँलग नात॥

हे तात, दुःख के कारण सामने होकर जवाब दे रही हूँ, इससे और कुछ न मानिएगा। बिना आर्यपुत्र (रामचन्द्र) के चरणकमल देखे जहाँ तक नाते हैं, सब वृथा हैं।

पितुवैभवविलास मैं दीठा * नृपमणिमुकुटमलित पदपीठा

सुखनिधान अस पितुगृह मोरे * पतिविहीन मन भाव न भोरे

पिता के ऐश्वर्य की शोभा मैंने देखी है कि राजाओं की मणियों और मुकुटों से उनके चरणों का आसन घिस जाता है। ऐसा पिता का घर सुख का स्थान है; परन्तु पति बिना भूलकर भी मेरे मन नहीं भाता।

ससुर चक्रवी कोशलराऊ * भुवन चारि दश प्रकट प्रभाऊ

आगे होइ सुरपति जेहि लेई * अर्ध सिंहासन आसन देई

और कोशलराज सम्राट् दशरथजी ससुर हैं, जिनका प्रभाव चौदहों भुवनों में विदित है। जिनको इन्द्र आगे होकर मिलते और आधे सिंहासन पर बैठक देते हैं—

ससुर एतादृश अवध निवासू * प्रियपरिवार मातुसम सासू

बिन रघुपतिपदपद्मपरागा * मोहिं कोउ स्वप्नेहु सुखद न लागा

ऐसे मेरे ससुर, और अयोध्या में रहना तथा प्यारा कुटुम्ब और माता के समान सास हैं। परन्तु रामजी के चरणकमल की रज बिना मुझे स्वप्न में भी कोई सुखदायक नहीं लगा।

अगमपन्थ वन भूमि पहारा * करि केहरि सर सरित अपारा
कोल किरात कुरङ्ग विहङ्गा * मोकहँ सुखद प्राणपति सङ्गा

अगम राह, वन की भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, तालाब और अथाह नदियाँ तथा कोल-भिल्ल, मृग और पक्षी प्राणपति रामजी के साथ मुझको सुख देते हैं।

दो॰ सासु ससुर सन मोर हित, विनय करब परि पाँय।
मोर शोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी सुभाय॥

मेरी ओर से पैर पकड़कर सास-ससुर से विनती करना कि मेरे लिए कुछ सोच न करें। मैं सहज ही वन में सुखी हूँ।

प्राणनाथ प्रिय देवर साथा * वीर धुरीण धरे धनु भाथा
नहिंमगश्रम पुनि भ्रम मन मोरे * मोहिं लगि शोच करिय जनि भोरे

धनुष-तरकस धारण किये वीरों में श्रेष्ठ प्यारे प्राणपति और देवर मेरे साथ हैं। इसलिए न तो मुझे राह की थकावट होगी और न मन में भ्रम होगा। इससे भूलकर भी मेरे लिए सोच न करें।

सुनि सुमन्त सिय शीतलबानी * भयोविकलजिमिफणिमणिहानी
सूझ न नयन सुनै नहिं काना * कहि न सकै कछु अति अकुलाना

जानकीजी की शीतल वाणी सुनकर सुमन्त ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणि खो जाने से सर्प। ऐसे व्याकुल हो गये कि न तो आँखों से देख पड़ता था, न कानों से सुन पड़ता था और न कुछ कह सकते थे।

राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती * तदपि होय नहिं शीतल छाती
यतन अनेक साथहित कीन्हे * उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे

रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया; परन्तु तो भी छाती शीतल नहीं होती। सुमन्त ने साथ जाने के लिए अनेक उपाय किये; परन्तु रामचन्द्रजी ने सब बातों का उचित ही उत्तर दिया।

मेटि जाय नहिं राम रजाई * कठिन कर्मगति कछु न बसाई
राम लषण सिय पद शिरनाई * फिरेउ वणिकजिमि मूल विहाई

रामचन्द्र की आज्ञा मेटी नहीं जाती और कर्म की गति कठिन है, इससे कुछ वश नहीं चलता। राम, लक्ष्मण और सीता के चरणों में सिर नवाकर सुमन्तजी लौटे, जैसे बनिया पूँजी खोकर चले।

दो॰ रथ हाँकेउ हय रामतन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषादवश, धुनहिं शीश पछिताहिं॥

जब सुमन्त ने रथ हाँका, तब घोड़े राम की ओर देख-देखकर हिनहिनाने लगे; यह देख दुःख के वश होकर निषाद सिर पीटता और पछताता है।

जासु वियोग विकल पशु ऐसे * प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे
बरबस राम सुमन्त पठाये * सुरसरितीर आप तब आये

जिनके बिछोह से पशु इस प्रकार दुखी हैं, उनकी प्रजा, माता और पिता कैसे जियेंगे? रामजी ने सुमन्त को जबरदस्ती भेजा और स्वयं गंगाजी के किनारे आये—

माँगी नाव न केवट आना * कहै तुम्हार मर्म्म मैं जाना
चरणकमलरजकहँ सब कहई * मानुषकरणि मूरि कछु अहई

केवट से नाव माँगी, परन्तु वह न लाया। कहने लगा, तुम्हारा हाल मैं जानता हूँ। सब कहते हैं कि तुम्हारे चरणकमलों की रज मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है।

छुवत शिला भइ नारि सुहाई * पाहन ते न काठ कठिनाई
यहि प्रतिपालहुँ सब परिवारू * नहिं जानहुँ कछु आन कबारू

शिला तो उस रज को छूते ही सुन्दरी स्त्री हो गई। काठ पत्थर से कड़ा तो होता नहीं? मैं इसी नाव से सब कुटुम्ब का पालन करता हूँ; और कोई धन्धा नहीं जानता।

तरणिहु मुनि घरणी होइ जाई * बाट परै मोरि नाव उड़ाई
जो प्रभु अवशि पार गा चहहू * मोहिं पदपद्म पखारन कहहू

नाव भी मुनि की स्त्री (अहल्या) हो जाय तो नाव के उड़ जाने से अनर्थ हो जायगा, मेरी जीविका जाती रहेगी। हे प्रभो! यदि अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझसे पैर धोने को कहो।

छन्द

पदपद्म धोय चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहिं लषण पै जब लगि न पाँय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

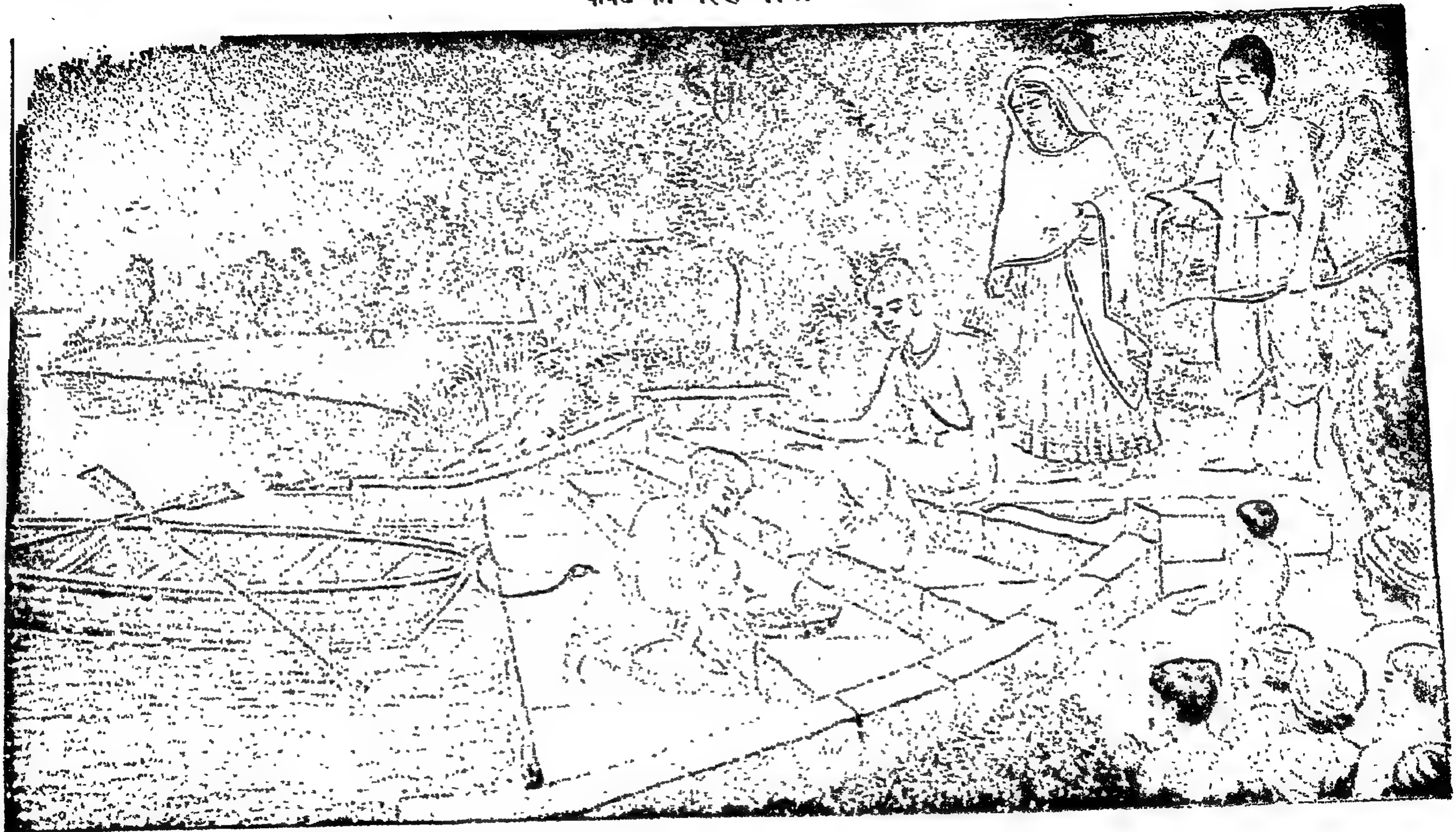
हे नाथ, आपके चरणकमल धोकर नाव पर चढ़ाकर मैं उतराई नहीं चाहता हूँ। हे रामजी, मुझे आपकी और महाराज दशरथ की सौगन्ध है, सब सच कहता हूँ कि चाहे लछमणजी बाण मारें, परन्तु जब तक पैर न धो लूँगा, तब तक हे नाथ, हे कृपालु, पार न उतारूँगा।



सुनि केवट के बैन, प्रेमलपेटे अटपटे।
बिहँसे करुणाऐन, चितै जानकीलषणतन॥

केवट के प्रेम से सने और अटपटे वचन सुन दयानिधि राम लछमण और जानकी की ओर देख हँस दिये।

केवट का चरण धोना।



केवट राम-रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै आवा॥ अति आनँद उमगि अनुरागा। चरन-सरोज पखारन लागा॥

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई * सोइ करहु जेहि नाव न जाई
बेगि आनि जल पाँय पखारू * होत बिलम्ब उतारहु पारू

कृपासिन्धु रामजी मुसकराकर बोले कि वही करो, जिसमें तुम्हारी नाव न जाती रहे। शीघ्र पानी लाकर पैर धोओ और पार उतारो ; देर होती है।

जासु नाम सुमिरत इकबारा * उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा * जेहि जग कीन्ह त्रिपद ते थोरा

जिनका नाम एक बार स्मरण करने से मनुष्य अपार भवसागर को तर जाते हैं, जिन्होंने वामन अवतार में तीन पग से भी कम में सारे संसार को नाप लिया, वही दयालु श्रीरामजी केवट से पार जाने की प्रार्थना करते हैं।

पदनख निरखि देवसरि हरषी * सुनि प्रभुवचन मोह मति करषी
केवट राम रजायसु पावा * पानि कठौता भरि लै आवा

राम के चरणों के नख देखकर गंगाजी प्रसन्न हुईं और प्रभु के वचन सुनकर बुद्धि ने मोह (ऐसा न हो कि केवट पर अप्रसन्न होकर रामजी ऊपर से नाँघ जायँ और चरण छूने को न मिलें) को खींच लिया। केवट रामजी की आज्ञा पाते ही कठौता भर पानी ले आया।

अति आनन्द उमँगि अनुरागा * चरणसरोज पखारन लागा
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं * यहि सम पुण्यपुंज कोउ नाहीं

फिर बड़े आनन्द और प्रेम की उमंग के साथ केवट चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाते हैं कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।



पदपखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि मुदित पुनि, प्रभुहिं गयउ लै पार॥

केवट ने चरण धोकर कुटुम्बसमेत चरणामृत पिया और पितरों का उद्धार कर प्रसन्न हो रामजी को पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भे सुरसरि रेता * सीय राम गुह लषण समेता
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा * प्रभु सकुचे यहि कछु नहिं दीन्हा

जानकी, लक्ष्मण और केवटसमेत रामजी उतरकर गंगाजी की रेत में खड़े हुए। केवट ने उतरकर प्रणाम किया। तब रामजी को संकोच हुआ कि इसको कुछ नहीं दिया।

पियहिय की सिय जाननिहारी * मणिमुँदरी मनमुदित उतारी
कहेउ कृपालु लेहु उतराई * केवट चरण गहे अकुलाई

प्रियतम के हृदय की बात जाननेवाली जानकीजी ने मन में प्रसन्न होकर मणियों से जड़ी अँगूठी उतारकर रामजी को दे दी। दयालु रामजी ने कहा 'यह उतराई लो।' तब दुखी होकर केवट ने पैर पकड़ लिये।

नाथ आजु मैं काह न पावा * मिटे दोष दुख दारिद दावा
बहुत काल मैं कीन्ह मँजूरी * आजु दीन्ह विधि सब भरिपूरी

और कहा कि हे नाथ, मैंने आज क्या नहीं पाया ? दोष, दुःख और दरिद्रता की आग बुझ गई। मैंने बहुत दिनों तक मँजूरी की, विधाता ने आज ही सब भरपूर दे दिया।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे * दीनदयालु अनुग्रह तोरे
फिरती बार नाथ मोहिं देवा * सो प्रसाद मैं शिर धरि लेवा

हे दीनदयालु, स्वामी की कृपा से अब मुझे कुछ न चाहिए। हे नाथ, लौटती बार जो कुछ आप देंगे, वह प्रसाद मैं माथे पर धरकर लूँगा।


बहुत कहेउ हठि लषण प्रभु, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमल वर देइ॥

राम और लक्ष्मणजी ने हठ से बहुत कुछ कहा; परन्तु केवट ने न लिया। तब दया के सागर रामजी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया।

तब मज्जन करि रघुकुलनाथा * पूजि पारथिहिं नायउ माथा
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी * मातु मनोरथ पुरवहु मोरी

तब रघुवंश के स्वामी श्रीरामजी ने स्नान और पार्थिव पूजनकर शिवको प्रणाम किया। फिर सीताजी ने गंगाजी से हाथ जोड़कर कहा—माता, मेरी अभिलाषा पूरी करना।

पति देवर सँग कुशल बहोरी * आइ करौं जेहि पूजा तोरी
सुनि सियविनय प्रेमरससानी * भइ तब विमलवारि वरबानी

मैं पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक आकर फिर तुम्हारी पूजा करूँ। तब जानकीजी की विनय और प्रेम-रस से सनी हुई वाणी सुनकर निर्मल जल से उत्तम वाणी निकली।

सुनु रघुवीरप्रिया वैदेही * तव प्रभाव जग विदित न केही
लोकप होहिं विलोकत तोरे * तोहिं सेवत सब सिधि करजोरे

हे रघुवीर की प्यारी जानकी, तुम्हारा प्रभाव संसार में कौन नहीं जानता ? तुम्हारे देखते ही लोग लोकपाल होते हैं और सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं।

तुम जो हमहिं बड़ि विनय सुनाई * कृपा कीन्ह मोहिं दीन्ह बड़ाई
तदपि देवि मैं देब अशीशा * सफल होनहित निज वागीशा

तुमने जो मुझको बड़ी विनय सुनाई सो और कुछ नहीं, केवल मुझे बड़ाई दी। हे देवि, तो भी अपनी वाणी सफल होने के लिए मैं आशीर्वाद देती हूँ।


प्राणनाथ देवर सहित, कुशल कोशला आइ।
पूजिहि सब मनकामना, सुयश रहिहि जग छाइ॥

प्राणपति रामचन्द्र और देवर लक्ष्मणसमेत कुशलपूर्वक अयोध्या में आने पर तुम्हारी सब मनकामना पूजेगी और संसार में तुम्हारा उत्तम यश छा रहेगा।

गङ्गवचन सुनि मङ्गलमूला * मुदित सीय सुरसरि अनुकूला
तब प्रभु गुहहिं कहेउ गृह जाहू * सुनत सूख मुख भा उर दाहू

मंगल देनवाले गंगा के वचन सुनकर जानकीजी प्रसन्न हुईं कि गंगाजी मेरे अनुकूल हैं। रामजी ने केवट से कहा, घर जाओ। यह सुनते ही उसका मुख सूख गया और हृदय में जलन हुई।

दीनवचन गुह कह करजोरी * विनय सुनिय रघुकुलमणि मोरी
नाथ साथ रहि पन्थ दिखाई * करि दिन चारि चरणसेवकाई

केवट ने हाथ जोड़कर यों दीन वचन कहे—हे रघुवंशमणि, मेरी विनय सुनिए। हे नाथ, आपके साथ रहकर राह दिखाकर और चार दिन चरणों की सेवा करूँगा।

जेहि वन जाइ रहब रघुराई * पर्णकुटी मैं करब सुहाई
तब मोकहँ जस देब रजाई * सोइ करिहौं रघुवीरदोहाई

हे रघुराज, जिस वन में जाकर आप रहेंगे, वहाँ मैं सुहावनी पर्णकुटी बनाऊँगा। आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तब मुझको जैसी आज्ञा दीजिएगा, वही करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू * सङ्ग लीन्ह गुह हृदय हुलासू
तब गुहज्ञाति बोलि सब लीन्हे * करि परितोष बिदा सब कीन्हे

उसका सहज स्नेह देखकर श्रीराम ने उसे साथ लिया और केवट के हृदय में प्रसन्नता हुई। तब केवट ने सब कुटुम्बियों को बुला लिया और समझा-बुझाकर सबको बिदा किया।

दो॰ तब गणपति शिव सुमिरिप्रभु, नाइ सुरसरिहिंमाथ।
सखा अनुज सियसहित वन, गमनकीन्हरघुनाथ॥

तब प्रभु ने गणेश और शिव का स्मरण किया तथा गंगा को प्रणाम कर मित्र, भाई और जानकीसमेत वन को चले।

तेहि दिन भयउ विटपतर वासू * लषण सखा सब कीन्ह सुपासू
प्रात प्रातकृति करि रघुराई * तीरथराज दीख प्रभु जाई

उस दिन वृक्ष के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मण और मित्र केवट ने सब तरह का सुपास किया—फल-मूल आदि लाये। सबेरे स्वामी रामचन्द्र ने सबेरे के कामों से निबटकर तीर्थराज प्रयाग को देखा।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी * माधव सरिस मीत हितकारी
चारि पदारथ भरा भँडारू * पुण्य प्रदेश देश अति चारू

जिसका सत्य मंत्री, श्रद्धा प्यारी स्त्री और माधवजी मित्र के समान हितू हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों से जिसका भंडार भरा है तथा पुण्यस्थान ही जिसका सुन्दर देश है।

क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा * सपनेहुँ जेहि प्रतिपक्षि न पावा
सेन सकल तीरथगण वीरा * कलुष अनीक दलन रणधीरा

जिसका क्षेत्र अगम और मजबूत गढ़ है, जिसे स्वप्न में भी शत्रु नहीं पा सकते। सब सेना और वीर तीर्थों के समूह हैं, जो पापों की सेना को नष्ट करनेवाले रणधीर हैं।

संगम सिंहासन सुठि सोहा * छत्र अक्षयवट मुनिमन मोहा
चमर यमुन अरु गंगतरंगा * देखि होहिं दुख दारिद भंगा

गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम सुन्दर सिंहासन शोभित है। मुनियों के मन को मोहनेवाला अक्षयवट छत्र तथा गंगा और यमुना की लहरें चँवर हैं, जिनको देख दुःख और दरिद्र मिट जाते हैं।



सेवहिं सुकृती साधु शुचि, पावहिं सब मनकाम।
वन्दी वेद पुराणगण, कहहिं विमल गुणग्राम॥

पुण्यात्मा और पवित्र साधु लोग उसकी सेवा करते और सब मन की कामनाएँ पाते हैं तथा वेद और पुराण वन्दीजनों की भाँति उसके निर्मल गुणों को कहते हैं।

को कहि सकै प्रयागप्रभाऊ * कलुषपुंज कुञ्जर मृगराऊ
अस तीरथपति दीख सुहावा * सुखसागर रघुवर सुख पावा

प्रयागराज के प्रताप को कौन कह सकता है, जो गजरूपी पातकों का नाश करने के लिए सिंह के समान है। ऐसे सुहावने तीर्थराज को देखकर सुख के सागर रामजी ने सुख पाया।

कहिसियअनुजहिंसखहिंसुनाई * श्रीमुख तीरथराज बड़ाई
करि प्रणाम देखत वन वागा * कहत महातम अतिअनुरागा

रामजी ने अपने श्रीमुख से तीर्थराज की प्रशंसा सीता, छोटे भाई और मित्र को सुनाई। फिर प्रणाम करके वन और बागों को देखते हुए बड़े प्रेम से उसका माहात्म्य कहते हैं।

यहिविधि आइ विलोकेउ बेनी * सुमिरत सकल सुमंगल देनी
मुदित नहाइ कीन्ह शिवसेवा * पूजि यथाविधि तीरथदेवा

इस प्रकार आकर त्रिवेणी को देखा, जो स्मरण करते ही सब कल्याणों को देती है। फिर प्रसन्न होकर स्नान किया और विधिपूर्वक तीर्थदेवों को पूजकर शिवजी की सेवा की।

तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये * करत दण्डवत मुनि उरलाये
मुनिमन मोद न कछु कहिजाई * ब्रह्मानन्द राशि जनु पाई

तब प्रभु भरद्वाजमुनि के समीप आये। प्रणाम करते ही मुनि ने रामचन्द्र को हृदय से लगा लिया। मुनि के मन की कुछ कही नहीं जाती, मानो ब्रह्मानन्द की राशि पा गये।



दीन्ह अशीश मुनीश उर, अति आनँद अस जानि।
लोचनगोचर सुकृतफल, मनहु किये विधि आनि॥

मुनीश भरद्वाज के हृदय में ऐसा जानकर बड़ा आनन्द है कि मानो ब्रह्मा ने पुण्यों का फल आँखों के सामने लाकर रख दिया। उन्होंने राम को आशीर्वाद दिया।

कुशलप्रश्न करि आसन दीन्हे * पूजि प्रेमपरिपूरण कीन्हे
कंदमूल फल अंकुर नीके * दिये आनि मुनि मनहु अमीके

कुशल पूछकर आसन दिया और पूर्ण प्रेम से पूजा की। फिर मानो अमृत के समान कन्द, मूल, फल और सुन्दर अंकुर मुनि ने लाकर दिये।

सीयलषणजनसहित सुहाये * अतिरुचि राम मूलफल खाये
भये विगतश्रम राम सुखारे * भरद्वाज मृदु वचन उचारे

सीता, लक्ष्मण और निषादसमेत रामजी ने बड़ी रुचि से सुन्दर कन्दमूल-फल खाये। थकावट दूर होने पर रामचन्द्रजी सुखी हुए। तब भरद्वाजजी ने यों कोमल वचन कहे—

आजु सफल तप तीरथ त्यागू * आजु सफल जप योग विरागू
सफल सकल शुभ साधन साजू * राम तुमहिं अवलोकत आजू

आज मेरा तप, तीर्थ-वास, संन्यास, जप, योग और वैराग्य सफल हुआ है। हे रामजी, आज तुमको देखते ही सब पुण्य-साधन सफल हो गये।

लाभअवधि सुखअवधि न दूजी * तुम्हरे दरश आश सब पूजी
अब करिकृपा देहु वर येहू * निजपदसरसिज सहज सनेहू

इससे बढ़कर और कोई लाभ और सुख की अवधि नहीं है। तुम्हारे दर्शन ही से मेरी सब आशा पूर्ण हो गई। अब दया करके यह वरदान दो कि चरणकमलों में सहज स्नेह हो।



कर्मवचनमन छाँड़ि छल, जबलगि जन न तुम्हार।
तबलगि सुख सपनेहु नहीं, किये कोटि उपचार॥

कर्म व वचन और मन से कपट छोड़कर यह जीव जब तक तुम्हारा सेवक नहीं होता, तब तक करोड़ उपाय करने से भी उसे स्वप्न में भी सुख नहीं होता।

सुनि मुनिवचन राम सकुचाने * भावभक्ति आनन्द अघाने
तब रघुवर मुनिसुयश सुहावा * कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा

मुनि के वचन अर्थात् अपनी बड़ाई सुनकर रामजी सकुच गये और भावभक्ति के आनन्द से अघा गये। तब रामचन्द्रजी ने मुनि का सुन्दर यश करोड़ों प्रकार से कहकर सबको सुनाया।

सो सब भाँति सकलगुणगेहू * जेहि मुनीश तुम आदर देहू
मुनिरघुवीर परस्पर नवहीं * वचनअगोचर सुख अनुभवहीं

हे मुनीश, वही सब प्रकार से सब गुणों का घर है, जिसको आप आदर दें। मुनि और रामचन्द्रजी परस्पर विनय दिखाते और ऐसे सुख को भोगते हैं जो वाणी से कहा नहीं जा सकता।

यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी * बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी
भरद्वाजआश्रम सब आये * देखन दशरथसुवन सुहाये

प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और संन्यासी यह समाचार पाते ही महाराज दशरथ के सुन्दर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वाजजी के आश्रम में आये।

राम प्रणाम कीन्ह सब काहू * मुदित भये लहि लोचनलाहू
देहिं अशीश परम सुख पाई * फिरहिं सराहत सुन्दरताई

रामजी ने सबको प्रणाम किया और वे नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। वे बहुत सुख पाकर आशीर्वाद देते और सुन्दरता की प्रशंसा करते हुए लौटते हैं।


राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहितसिय लषणजन, मुदितमुनिहिशिरनाइ॥

रात को रामचन्द्र ने विश्राम किया। फिर प्रातःकाल प्रयाग में स्नान करके सीता, लक्ष्मण और निषादसहित राम ने मुनि को प्रणाम किया और प्रसन्न होकर आगे चले।

राम सप्रेम कहा मुनि पाहीं * नाथ कहिय हम केहि मगजाहीं
मुनिमनविहँसि राम सन कहहीं * सुगमसकलमगतुमकहँअहहीं

रामजी ने प्रेमसमेत मुनि से कहा—हे नाथ, कहिए, हम किस राह से जायँ? ऐसा सुन मुनि ने मन में हँसकर रामजी से कहा कि आपको सभी राहें सहज हैं।

साथलागि मुनि शिष्य बोलाये * सुनि मनमुदित पचासक धाये
सबहिं राम पर प्रेम अपारा * सकल कहहिं मग दीख हमारा

फिर साथ जाने के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया। सुनते ही मन में प्रसन्न हो पचासों शिष्य दौड़ पड़े। सबका रामजी में अपार प्रेम था और सब कहते थे कि मार्ग हमारा देखा है।

मुनि बटु चारि सङ्ग तब दीन्हें * जिन बहुजन्म सुकृत बड़ कीन्हें
करि प्रणाम मुनिआयसु पाई * प्रमुदितहृदय चले रघुराई

तब मुनि ने चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत से जन्मों में बड़े-बड़े पुण्य किये थे। मुनि की आज्ञा पा प्रणाम कर हृदय में प्रसन्न हो रामचन्द्र

ग्रामनिकट निसरहिं जब जाई * देखहिं दरश

होहिं सनाथ जन्मफल पाई * फिरहिं दुखित मन संग पठाई

जब किसी गाँव के समीप होकर निकलते हैं, तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके दर्शन करते तथा जन्म का फल पाकर प्रसन्न होते हैं। फिर अपने मन को रामचन्द्र के साथ ही भेज दुःखित होकर लौटते हैं।



बिदा किये वटु विनय करि, फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाये यमुनजल, जो शरीरसम श्याम॥

फिर विनती करके रामचन्द्र ने ब्रह्मचारियों को विदा किया। वे मन की कामना पाकर लौटे। तब राम ने उतरकर यमुना के जल में स्नान किया, जो उनकी देह ही के समान श्याम था।

सुनत तीरवासी नरनारी * धाये निज निज काज बिसारी
लषण राम सिय सुन्दरताई * देखि करहिं निजभाग्य बड़ाई

यमुना के किनारे रहनेवाले स्त्री-पुरुष रामचन्द्र का आना सुनते ही अपना-अपना काम छोड़कर दौड़े। लक्ष्मण, रामचन्द्र और सीता की सुन्दरता देखकर सब अपने भाग्य की सराहना करते हैं।

अति लालसा सबहिं मनमाहीं * नाँव गाँव पूँछत सकुचाहीं
जे तिन महँ वयवृद्ध सयाने * तिन करि युक्ति राम पहिंचाने

सबके मन में लालसा तो बड़ी है, पर नाम और ग्राम पूछते सकुचते हैं। उनमें जो अवस्था में बूढ़े और चतुर थे, उन्होंने उपाय करके रामजी को पहचान लिया।

सकल कथा तिन सबहिं सुनाई * वनहिं चले पितुआयसु पाई
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं * रानीराउ कीन्ह भल नाहीं

उन्होंने सारी कथा सब लोगों को सुनाई कि ये पिता की आज्ञा पाकर वन को आये हैं। यह सुनकर सब विषाद के साथ पछताते और कहते हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया।

तेहि अवसर तापस इक आवा * तेजपुंज लघु वयस सुहावा
कविअलखित गतिवेष विरागी * मन क्रम वचन रामअनुरागी

उसी समय एक तपस्वी आया, जो तेज की राशि, थोड़ी अवस्था का और सुन्दर था। जिसकी गति कवि भी नहीं जानते। वह वैरागी का-सा वेष किये, मन, कर्म और वचन से रामजी का प्रेमी था।



सजलनयन तनुपुलकनिज, इष्टदेव पहिंचानि।
परेउ दंड जिमि धरणितल, दशा न जाय बखानि॥

उसकी आँखों में जल और शरीर में रोमांच था। वह अपने इष्टदेव को पहचानकर दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी दशा कही नहीं जाती।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा * परम रंक जनु पारस पावा
मनहु प्रेम परमारथ दोऊ * मिलत धरे तनु कह सब कोऊ

रामजी ने पुलकित हो प्रेमसहित उसे हृदय से लगाया। तब वह तपस्वी ऐसा प्रसन्न हुआ, मानो कोई कंगाल पारस पत्थर पा गया। सब लोग कहने लगे—मानो प्रेम और परमार्थ दोनों शरीर धरे मिलते हैं।

बहुरि लषन पाँयन सो लागा * लीन्ह उठाय उमँगि अनुरागा
पुनि सियचरणधूरि धरि शीशा * जननिजानिशिशुदीन्ह अशीशा

फिर उसने लक्ष्मणजी के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने स्नेह से उमँगकर उसे उठाया और हृदय से लगा लिया। फिर उसने सीताजी के चरणों की रज माथे से लगाई और माता ने पुत्र जानकर आशीर्वाद दिये।

कीन्ह निषाद दण्डवत तेही * मिलेउ मुदित लखि रामसनेही
पियत नैनपुट रूपपियूषा * मुदित सुअशन पाय जिमि भूखा

निषाद ने उसको प्रणाम किया और मुनि उसे राम का प्रेमी देख प्रसन्न होकर मिला। वह नेत्ररूपी दोने से अमृतरूपी रूप को वैसे ही पीने लगा, जैसे भूखा अच्छे भोजन पावे।

रामलषणसियरूप निहारी * शोचसनेहविकल नरनारी
ते पितुमातु कहहु सखि कैसे * जिन पठये वन बालक ऐसे

राम, लक्ष्मण और सीता का रूप देख सब स्त्री-पुरुष शोक और स्नेह से व्याकुल हो रहे हैं। स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि हे सखी, कहो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे लड़कों को वन भेजा है?


तब रघुबीर अनेकविधि, सखहिं सिखावन दीन्ह।
रामरजायसु शीशधरि, भवन गवन तेइ कीन्ह॥

फिर रामजी ने बहुत प्रकार से मित्र केवट को सिखावन दिया। तब रामजी की आज्ञा माथे पर रखकर वह घर को चला।

पुनि सियरामलषण करजोरी * यमुनहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी
गवने सीय सहित दोउ भाई * रवितनया की करत बड़ाई

तब सीता, रामचन्द्र और लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को फिर प्रणाम किया फिर सीतासहित दोनों भाई प्रसन्न होकर सूर्यकन्या यमुनाजी की बड़ाई करते हुए चले।

पथिक अनेक मिलहिं मगजाता * कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता
नृपलक्षण सब अंग तुम्हारे * देखि शोच अति हृदय हमारे

मार्ग में जाते हुए बहुत से यात्री मिलते और दोनों भाइयों को देखकर प्रेमसहित

कहते हैं कि तुम्हारे अंग में राजाओं के सब लक्षण हैं, फिर भी तुम्हारी यह दशा देखकर हमारे हृदय में बड़ा शोक है।

मारग चलहु पयादेहिं पाँये * ज्योतिष झूठ हमारे भाये
अगम पन्थ गिरि कानन भारी * तेहिमहँ साथ नारि सुकुमारी

नंगे पैरों से मार्ग चलते हो, इससे हमारी समझ में तो ज्योतिष झूठा है। एक तो कठिन मार्ग, जिसमें बड़े-बड़े पहाड़ और वन हैं, उस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री भी है।

करिकेहरि वन जाहिं न जोई * हम सँग चलहिं जो आयसु होई
जाब जहाँलगि तहँ पहुँचाई * फिरब बहोरि तुमहिं शिर नाई

हाथियों और सिंहों से पूर्ण होने के कारण वनों की ओर देखने का भी साहस नहीं होता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। जहाँ तक जाइएगा, वहाँ तक हम पहुँचावेंगे और आपको प्रणामकर फिर लौट पड़ेंगे।



यहिविधिकहिकहिवचनप्रिय, लेहिं नीर भरि नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिनहिं, करि बिनती मृदुबैन॥

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर आँखों में आँसू भर लेते हैं। तब दयासिन्धु रामजी कोमल वचनों से विनती करके उनको लौटाते हैं।

जे पुर ग्राम बसहिं मगमाहीं * तिनहिं नागसुरनगर सिहाहीं
केहि सुकृती केहि घरी बसाये * धन्य पुण्यमय परम सुहाये

मार्ग में जो नगर और ग्राम बसे हैं, उनको नागों और देवताओं के भी नगर सिहाते हैं। इन्हें किस पुण्यात्मा ने किस घड़ी में बसाया है। ये सुहावने और पुण्यमय नगर और गाँव धन्य हैं।

जहँ जहँ रामचरण चलिजाहीं * तेहि समान अमरावति नाहीं
पुण्यपुञ्ज मगनिकटनिवासी * तिनहिं सराहहिं सुरपुरवासी

जहाँ-जहाँ रामजी के चरण चलकर जाते हैं, उस स्थान के समान अमरावतीपुरी भी नहीं है। मार्ग के निकट रहनेवाले लोग पुण्य की राशि हैं, उनकी स्वर्गवासी भी बड़ाई करते हैं; क्योंकि—

जे भरि नयन विलोकहिं रामहिं * सीतालषणसहित घनश्यामहिं
जेहि सरसरित राम अवगाहहिं * तिनहिं देवसरसरित सराहहिं

वे जानकी और लक्ष्मणसमेत घनश्याम रामजी को आँख भरकर देखते हैं। जिस तालाब और नदी में रामजी नहाते हैं, उनको देवतड़ाग और गंगाजी सराहती हैं।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई * करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई

परसि रामपदपद्म परागा * मानति भूमि भूरि निज भागा

जिस वृक्ष के नीचे रामजी जाकर बैठते हैं, उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष करता है। रामजी के चरणकमलों की रज को छूकर पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य मानती है।



छाँह करहिं घन विबुधगण, बर्षहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरिबनविहँगमृग, राम चले मग जाहिं॥

बादल छाया करते, देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं तथा रामजी पर्वत, वन, पक्षी और हरिणों को देखते हुए मार्ग में चले जाते हैं।

सीता लषण सहित रघुराई * ग्रामनिकट निसरहिं जब जाई
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी * धावहिं निज निज काज बिसारी

जब सीता और लक्ष्मणसमेत रामचन्द्रजी किसी गाँव के समीप होकर निकलते हैं, तब बालक, बूढ़े और स्त्री-पुरुष अपना-अपना काम छोड़कर दौड़ पड़ते हैं।

राम लषण सियरूप निहारी * पाइ नयनफल होहिं सुखारी
सजलनयन अतिपुलकशरीरा * सब भे मगन देखि दोउ बीरा

फिर राम, लक्ष्मण और जानकी का रूप देखकर, नेत्रों का फल पाकर वे सुखी होते हैं। उनकी आँखों में जल भरा है और देह में रोमांच है। सब दोनों वीरों को देखकर सुखी हुए।

बरणि न जाइ दशा तिनकेरी * लही रंक जनु सुरमणिढेरी
एकहिं एक बोलि सिख देहीं * लोचनलाहु लेहु क्षण येहीं

उनकी दशा कुछ कही नहीं जाती; मानो कंगाल दिव्य मणियों की ढेरी पा गया। एक-एक को बुलाकर सीख देते हैं कि अच्छा मौका है, इस घड़ी नेत्रों का लाभ ले लो।

रामहिं देखि एक अनुरागे * चितवत चले जाहिं सँगलागे
एक नयनमग छवि उर आनी * होहिं शिथिल तनु मानस बानी

एक स्नेह से रामजी को देखकर साथ लगे हुए देखते चले जाते हैं। एक नेत्रों के रास्ते से छवि को हृदय में लाकर बसाते हैं और ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि उनके तन, मन और वचन शिथिल हो जाते हैं।



एक देखि बटछाँह भलि, डासि मृदुल तृण पात।
कहैं गँवाइय छणक श्रम, गमनब अबहिं कि प्रात॥

कोई बरगद की अच्छी छाया देखकर कोमल तिनके और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर थकावट दूर कर लीजिए। फिर चाहे अभी चले जाइएगा, चाहे सबेरे।

एक कलशभरि आनहिं पानी * अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी

सुनि प्रियवचन प्रीति अति देखी * राम कृपालु सुशील विशेखी

एक घड़ाभर पानी लाते और कोमल वाणी से कहते हैं—नाथ, थोड़ा जल तो पी लीजिए। तब दयालु और सुशील रामचन्द्रजी ने वे प्यारे वचन सुनकर और बड़ी प्रीति देखकर—

जानी श्रमित सीय मनमाहीं * घरिक विलम्ब कीन्ह वटछाहीं
मुदित नारिनर देखहिं शोभा * रूप अनूप देखि मन लोभा

मन में जाना कि जानकी थकी हैं, इससे घड़ी भर बरगद की छाया में बिलम गये। प्रसन्न होकर स्त्री-पुरुष शोभा देखते हैं। अनूप रूप देखकर उनका मन लुभा गया।

इकटक सब सोहहिं चहुँओरा * रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरा
तरुण तमाल बरण तन सोहा * देखत कोटि मदन मन मोहा

चारों ओर से सब रामचन्द्र के मुखरूपी चन्द्रमा में टकटकी लगाये चकोर की भाँति शोभित होते हैं। तरुण तमाल के रंग का शरीर सोहता है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोह जाते हैं।

दामिनि बरण लषण सुठि नीके * नखशिख सुभग भावते जीके
मुनिपट कटिन्ह कसे तूणीरा * सोहत करकमलन धनुतीरा

बिजली के-से सुन्दर रंगवाले और नख से चोटी तक सुहावने लक्ष्मणजी सबके मन को भाते हैं। दोनों भाई मुनियों के वस्त्र (वल्कल आदि) कमर में पहने और तरकस को कसकर बाँधे हैं तथा करकमलों में धनुषबाण लिये ह।



जटामुकुट शीशन सुभग, उरभुजनयन विशाल।
शरद पर्व विधु वदन वर, लसत स्वेदकणजाल॥

माथे पर जटाओं के सुन्दर मुकुट हैं। छाती, भुजाएँ और आँखें बड़ी हैं। शरद् ऋतु की पूर्णमासी के चन्द्रमा-जैसे सुन्दर मुख पर पसीने के बहुत-से कण शोभित हैं।

बरणि न जाय मनोहर जोरी * शोभा बहुत मोरि मति थोरी
राम लषण सिय सुन्दरताई * सब चितवहिं मनमतिचित लाई

सुन्दर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जाता; क्योंकि शोभा बहुत है और मेरी बुद्धि थोड़ी। राम, लक्ष्मण और जानकीजी की सुन्दरता को सब मन, बुद्धि और चित्त लगाकर देखते हैं।

थके नारिनर प्रेमपियासे * मनहुँ मृगीमृग देखि दियासे
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं * पूँछत अति सनेह सकुचाहीं

प्रेम के प्यासे स्त्री-पुरुष ऐसे थक गये, जैसे हरिणियाँ और हरिण मृगजल को देखकर। गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी के समीप जातीं और बड़े स्नेह से पूछना चाहती हैं; पर सकुचाती हैं।

बार बार सब लागहिं पाये * कहहिं वचन मृदु परम सुहाये
राजकुमारि विनय हम करहीं * तियस्वभाव कछु पूँछत डरहीं

बार-बार सब पैर छूती हैं तथा कोमल और इस प्रकार बड़े सुहावने वचन कहती हैं कि हे राजकुमारी, हम विनय करती हैं और स्त्री-स्वभाव से कुछ पूछते डरती हैं।

स्वामिनि अविनयक्षमियहमारी * बिलग न मानिय जानि गँवारी
राजकुँवर दोउ सहज सलोने * इनते लहि द्युति मरकत सोने

हे स्वामिनी, हमारी कठोरता को क्षमा कीजिएगा और गँवारिन जानकर बुरा न मानियेगा। दोनों राजकुमार स्वभाव ही से सुन्दर हैं। नीलम और सोने ने इन्हीं से शोभा पाई है।


श्यामल गौरकिशोरवर, सुन्दर सुपमा ऐन।
शरद शर्वरीनाथ मुख, शरद सरोरुह नैन॥

ये साँवले, गोरे, किशोर अवस्थावाले, उत्तम, सुन्दर शोभा की खान हैं। शरद् के चन्द्रमा के समान इनका मुख और शरद् ही के कमलों की भाँति इनकी आँखें हैं।

कोटि मनोज लजावनहारे * सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे
सुनि सनेहमय मंजुल बानी * सकुचि सीय मनमहँ मुसकानी

हे सुमुखी, करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले ये दोनों नररत्न तुम्हारे कौन हैं? कहो तो। यह स्नेहमयी कोमल वाणी सुनकर सीताजी सकुचीं और मन में हँसीं।

तिनहिं विलोकिविलोकतधरणी * दुहुँ सँकोच सकुचति वरवरणी
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी * बोली मधुर वचन पिकवयनी

उत्तम रंगवाली जानकीजी उनको देखकर पृथ्वी की ओर देखती हैं तथा उत्तर देने या न देने, दोनों में सकुचती हैं। फिर बालमृग की-सी आँखोंवाली, पिकवयनी जानकीजी प्रेमसमेत मधुर वचन बोलीं—

सहज सुभाव सुभग तनु गोरे * नाम लषण लघु देवर मोरे
बहुरि वदनविधु अञ्चल ढाँकी * पियतन चितै भौंहकरि बाँकी

सहज ही सुन्दर गोरे शरीरवाले वह लक्ष्मण मेरे छोटे देवर हैं। फिर चन्द्ररूपी मुख पर अञ्चल ढँककर बाँकी भौंह करके प्रियतम की ओर देखा—

खञ्जन मंजु तिरीछे नयननि * निजपतिकहेउतिनहिंसियसयननि
भईं मुदित सब ग्रामवधूटी * रंकन्ह रतनराशि जनु लूटी

और खञ्जन की-सी तिरछी आँखों से सीताजी ने इशारे से उन्हें अपना पति बताया। गाँव की स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं, मानो कंगालों ने रत्नों का ढेर लूट लिया।



अतिसप्रेम सिय पाँयपरि, बहुविधि देहिं अशीश।
सदा सोहागिनि रहौ तुम, जबलगिमहिअहिशीश॥

वे बड़े प्रेम से सीताजी के पैर पकड़कर बहुत प्रकार से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक शेषजी के मस्तक पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सुहागिन रहो।

पार्वती सम पति प्रिय होहू * देवि न हमपर छाँड़ब छोहू
पुनि पुनि विनय करहिं करजोरी * जो यहि मारग फिरब बहोरी

हे देवी, पार्वतीजी के समान पति को प्रिय होओ। हम पर दया न छोड़ना। हाथ जोड़कर फिर-फिर बिनती करती हैं कि यदि इस मार्ग से फिर लौटना—

दर्शन देब जानि निज दासी * लखी सीय सब प्रेम पियासी
मधुर वचन कहि कहि परितोषी * जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी

तो अपनी दासी जानकर दर्शन अवश्य देना। सीताजी ने सबको प्रेम की प्यासी देखा। मीठे वचन कहकर समझाया, जैसे चाँदनी कोकाबेली को प्रफुल्लित करती है।

तबहिं लषण रघुवर रुख जानी * पूँछेउ मग लोगन मृदु बानी
सुनत नारिनर भये दुखारी * पुलकित अंग विलोचन वारी

तब लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख (मन की बात) जानकर कोमल वाणी से लोगों से राह पूछी। सुनते ही स्त्री-पुरुष दुखी हुए। उनके अंगों में रोमांच और आँखों में जल भर आया।

मिटा मोद मन भये मलीने * विधिनिधिदीन्ह लीन्हजनु छीने
समुझि कर्मगति धीरज कीन्हा * शोधिसुगममगतिनकहिदीन्हा

प्रसन्नता जाती रही, मन मलीन हो गये। मानो ब्रह्मा ने खजाना दिया और छीन लिया। कर्म की गति समझ धीरज धरकर सुगम (सहज) मार्ग ढूँढ़कर उन्होंने लक्ष्मण को बता दिया।



लषणजानकीसहित वन, गमन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥

लक्ष्मण और जानकीसमेत रामजी ने वन की यात्रा की और प्यारे वचन कहकर सबको लौटा दिया; पर उनका मन साथ ले लिया।

फिरत नारिनर अति पछिताहीं * दैवहिं दोष देहिं मनमाहीं
सहित विषाद परस्पर कहहीं * विधिकरतब सब उलटे अहहीं

लौटने में स्त्री-पुरुष बहुत पछताते हैं और मन में दैव को दोष देते हैं। विषाद के साथ आपस में कहते हैं कि विधाता के सब काम उलटे हैं।

निपट निरंकुश निठुर निशंकू * जेहि शशि कीन्ह सरुज सकलंकू
रूख कल्पतरु सागर खारा * तेहिं पठये वन राजकुमारा

वह निपट ही निरंकुश, निठुर और निडर है। जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलंकसहित, कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारी किया, उसी ने राजकुमारों को वन में भिजवाया है।

जो पै इनहिं दीन्ह वनवासू * कीन्ह बादि विधि भोग विलासू
ये विचरहिं महि बिन पदत्राना * रचे बादि विधि वाहन नाना

जो विधाता ने इन्हें वनवास दिया तो भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये। जो बिना पनहियों के नंगे पैर ये पृथ्वी में घूमते हैं तो विधाता ने विविध भाँति की सवारियाँ व्यर्थ ही बनाई हैं।

ये महि परहिं डासि कुशपाता * सुभग सेज कत सृजी विधाता
तरुतरवास इनहिं विधि दीन्हा * धवलधाम रचि कत श्रम कीन्हा

जो ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी में पड़ते हैं तो विधाता ने सुन्दर सेज क्यों बनाई? जो विधाता ने इनको वृक्ष के नीचे वास दिया तो उज्ज्वल घर बनाकर क्यों परिश्रम किया?



जो ये मुनिपटधर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषण बसन, बादि किये करतार॥

यदि ये सुन्दर, सुहावने, सुकुमार मुनियों के वस्त्र धारण किये और जटा रखाये हैं तो ब्रह्मा ने अनेक प्रकार के गहनों और कपड़ों को व्यर्थ ही बनाया है।

जो ये कन्द मूल फल खाहीं * बादि सुधादि अशन जगमाहीं
एक कहहिं ये सहज सुहाये * आप प्रकट भे विधि न बनाये

यदि ये कन्द, मूल, फल खाते हैं तो अमृत-समान भोजन संसार में व्यर्थ ही हैं। एक कहते हैं कि ये सहज ही सुन्दर आप ही प्रकट हुए हैं—ब्रह्मा ने इन्हें नहीं बनाया है।

जहँलगि वेद कहहिं विधिकरणी * श्रवण नयन मन गोचर बरणी
देखहु खोजि भुवन दशचारी * कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी

जहाँ तक वेद विधाता की करनी कहते हैं और कान, आँख और मन की पहुँच कही है, वहाँ तक चौदहों भुवनों में ढूँढ़कर देखो तो कहाँ ऐसा पुरुष और कहाँ ऐसी स्त्री है?

इनहिं देखि विधि मन अनुरागा * पटतर योग बनावन लागा
कीन्ह बहुत श्रम एक न आये * तेहि ईर्षा वन आनि दुराये

इनको देख विधाता ने स्नेह किया और इनकी उपमा के योग्य दूसरा बनाने लगे। परंतु जब बहुत परिश्रम करने पर भी न बना, तब उसी ईर्षा से वन में लाकर इन्हें छिपाया है।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं * आपुहिं परम धन्य करि मानहिं

ते पुनि पुण्यपुंज हम लेखे * जे देखिहैं देखत जिन देखे

एक कहते हैं कि हम बहुत नहीं जानते, अपने को बड़ा धन्य मानते हैं। फिर हमारी समझ में वे पुण्य की राशि हैं, जो इन्हें देखेंगे, जो देखते हैं और जिन्होंने देखा है।



यहिविधिकहिकहिवचनप्रिय, लेहिं नैन भरि नीर।
किमि चलिहैं मारग अगम, सुठिसुकुमारशरीर॥

वे यों प्यारे वचन कह नेत्रों में जल भर लेते हैं कि इनका शरीर सुन्दर सुकुमार है; ये कठिन मार्ग कैसे चलेंगे?

नारि सनेहविकल सब होहीं * चकई साँझ समय जिमि सोहीं
मृदुपदकमल कठिनमग जानी * गद्गद हृदय कहहिं मृदुबानी

स्त्रियाँ स्नेह से व्याकुल होती हैं, जैसे सन्ध्या-समय चकई सोहती हैं। कोमल चरणकमल और कठिन मार्ग जानकर गद्गद कण्ठ हो हृदय से यह कोमल वाणी कहती हैं—

परसत मृदुल चरण अरुणारे * सकुचहु महि जिमि हृदय हमारे
जो माँगे पाइय विधि पाहीं * ये राखिय सखि आँखिन माहीं

कि हे पृथ्वी, कोमल और लाल चरण छूते ही सकुच जाओ, जैसे कि हमारे हृदय हैं। हे सखी, जो विधाता से माँगे मिल जायँ तो इन्हें हम आँखों में रक्खें।

जो जगदीश इनहिं बन दीन्हा * कस न सुमनमय मारग कीन्हा
जे नरनारि न अवसर आये * ते सियराम न देखन पाये

यदि जगदीश्वर ने इनको वन दिया था तो फूलों का रास्ता क्यों नहीं बनाया? जो स्त्री-पुरुष उस समय नहीं आये, वे सीता और रामजी को न देख पाये।

सुनि सरूप पूछहिं अकुलाई * अब लगि गये कहाँ लगि भाई
समरथ धाइ विलोकहिं जाई * प्रमुदित फिरहिं जन्मफल पाई

वे केवल स्वरूप का वर्णन सुनकर विकल हो पूछते हैं कि हे भाइयो, अभी कहाँ तक गये होंगे? समर्थ पुरुष दौड़कर देखते हैं और प्रसन्न हो जन्म का फल पाकर लौटते हैं।



अबला बालक वृद्धजन, कर मींजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमवश लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं॥

स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े पुरुष हाथ मींजते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ रामजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश होते हैं।

गाँव गाँव अस होहिं अनन्दू * देखि भानुकुल कैरवचन्दू
जे कछु समाचार सुनि पावहिं * ते नृपरानिहिं दोष लगावहिं

कोकाबेलीरूप सूर्यवंश के लिए चन्द्रमारूपी रामजी को देखकर गाँव-गाँव में ऐसे आनन्द होते ह। जो कुछ संवाद सुन पाते हैं, वे राजा और रानी को दोष लगाते हैं।

एक कहहिं भल नरनाहू * दीन्ह हमहिं जिन लोचनलाहू
कहहिं परस्पर लोग लुगाई * बातैं सरस सनेह सुहाई

एक कहते हैं कि राजा बहुत अच्छे हैं, जिन्होंने हमें लोचन का लाभ दिया। स्त्री और पुरुष परस्पर रसीली स्नेहभरी सुन्दर बातें करते हैं।

ते पितुमातु धन्य जिन जाये * धन्य सो नगर जहाँ ते आये
धन्य सो देश शैल वन गाऊँ * जहँ जहँ जायँ धन्य सो ठाऊँ

कि जिन्होंने उत्पन्न किया, वे पिता-माता धन्य हैं। जहाँ से ये आये, वे नगर धन्य हैं। वे देश, पहाड़, वन और गाँव धन्य हैं। जहाँ-जहाँ जायँ, वे स्थान भी धन्य हैं।

सुख पायउ विरंचि रचि तेही * ये जेहिके सब भाँति सनेही
राम लषण सिय कथा सुहाई * रही सकल मग कानन छाई

ब्रह्मा ने उसी को बनाकर सुख पाया है, जिसके सब प्रकार से ये स्नेही हैं। राम, लक्ष्मण और जानकीजी की सुहावनी कथा वन के सब मार्गों में छा रही है।


यहिविधिरघुकुलकमलरवि, मगलोगन सुख देत।
जाहिं चले देखत विपिन, सियसौमित्रिसमेत॥

इस प्रकार रघुवंशरूपी कमल के सूर्यरूप रामजी सीता और लक्ष्मणसमेत मार्ग के लोगों को सुख देते और वन को देखते हुए चले जाते हैं।

आगे राम लषण पुनि पाछे * तापस वेष विराजत काछे
उभयमध्य सिय सोहति कैसी * ब्रह्मजीवबिच माया जैसी

आगे रामजी और पीछे तपस्वी का वेष बनाये लक्ष्मणजी सोहते हैं। दोनों के बीच में सीताजी कैसी सोहती हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया।

बहुरि कहौं छवि जस मन बसई * जनु मधुमदनमध्य रति लसई
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही * जनुबुधविधुबिच रोहिणि सोही

जैसी शोभा मन में बसती है, उसे फिर कहता हूँ कि मानो वसन्त और कामदेव के बीच में रति शोभित है। फिर जी में ढूँढ़कर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी सोहती है।

प्रभुरदरेख बीचबिच सीता * धरत चरण मग चलति सभीता
सीय राम पद अंक बराये * लषण चलत मग दाहिन बाँये

रामजी के चरणों की रेखा के बीच-बीचडरते-डरते पैर धरती हुई सीताजी रास्ते में जाती हैं। लक्ष्मणजी सीतारामजी के चरणों के चिह्नों को छोड़कर दाहने-बायें मार्ग पर चलते हैं।

राम लषण सिय प्रीति सुहाई * वचन अगोचर किमि कहि जाई
खगमृग मगन देखि छवि होहीं * लिये चोरि चित राम बटोहीं

राम, लक्ष्मण और जानकीजी की सोहाई प्रीति कही नहीं जाती। पक्षी और मृग छवि देखकर प्रसन्न होते हैं। बटोही रामने चित्त चुरा लिया।



जिन जिन देखे पथिक प्रिय, सीयसहित दोउ भाइ।
भवमग अगम अनन्दते, बिनश्रम रहे सिराइ॥

प्यारे पथिक सीतासमेत दोनों भाइयों को जिन-जिन ने देखा, वे सब संसार के अगम मार्ग को बिना परिश्रम पार कर गये।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ * बसहिं राम सिय लषण बटाऊ
रामधामपथ पावहिं सोई * जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई

आज भी जिस किसी के हृदय में स्वप्न में भी राम, जानकी और लक्ष्मण बटोही के वेष में बसते हैं, वह रामजी के स्थान का मार्ग पाता है, जिस मार्ग को कभी ही कोई मुनि पाता है।

तब रघुवीर श्रमित सिय जानी * देखि निकटवट शीतलपानी
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई * प्रात नहाय चले रघुराई

तब रामजी ने जानकीजी को थकी हुई जाना और बरगद के निकट ठंढा जल देखकर वहाँ ठहरे। फिर कन्द, मूल, फल खाकर सवेरा होने पर रामचन्द्रजी स्नान करके चले।

देखत वन सर शैल सुहाये * वाल्मीकिआश्रम प्रभु आये
राम दीख मुनिवास सुहावन * सुन्दर गिरि कानन जल पावन

वन, तालाब और सुन्दर पर्वतों को देखते हुए रामजी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में आये। रामजी ने मुनि का सुन्दर निवासस्थान देखा, जहाँ सुन्दर पहाड़, वन और पवित्र जल था।

सरनि सरोज विटप वन फूले * गुंजत मंजु मधुप रस भूले
खगमृग विपुल कोलाहल करहीं * विरहित वैर मुदितमन चरहीं

तालाबों में कमल और वनों में वृक्ष फूले हैं, जिनमें रस में भूले भौंरे गूँज रहे हैं। पक्षी और मृग बड़ा शब्द करते तथा परस्पर वैर छोड़े हुए प्रसन्नमन होकर फिर रहे हैं।



शुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हरषे राजिवनैन।
सुनि रघुवरआगमन मुनि, आगे आये लेन॥

पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर कमलनयन श्रीरामजी प्रसन्न हुए। मुनि वाल्मीकिजी रघुनायक रामजी का आना सुनकर आगे लेने आये।

मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा * आशिर्वाद विप्रवर दीन्हा
देखि रामछवि नयन जुड़ाने * करि सनमान आश्रमहिं आने

रामजी ने मुनि को प्रणाम किया। द्विजोत्तम वाल्मीकि ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर मुनि की आँखें जुड़ा गईं। वह आदर के साथ श्रीरामजी को आश्रम में ले आये।

तब मुनि आसन दिये सुहाये * मुनिवर अतिथि प्राणप्रिय पाये
कन्द मूल फल मधुर मँगाये * सिय सौमित्रि राम फल खाये

तब मुनि ने सुन्दर आसन दिया; क्योंकि उन्होंने प्राणों से प्रिय पाहुने पाये। मीठे कन्द, मूल, फल मँगाये, जिन्हें सीता, लक्ष्मण और रामजी ने खाया।

वाल्मीकिमन आनँद भारी * मंगलमूरति नयन निहारी
तब करकमल जोरि रघुराई * बोले वचन श्रवणसुखदाई

कल्याण-मूर्ति को आँखों से देख वाल्मीकिजी के मन में बड़ा आनन्द हुआ। तब कमल-सरीखे हाथों को जोड़ रामजी कानों को सुख देनेवाले वचन बोले—

तुम त्रिकालदरशी मुनिनाथा * विश्व बदरजिमि तुम्हरे हाथा
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी * जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी

हे मुनिनाथ, आप तीनों कालों का हाल जाननेवाले हैं और आपके हाथ में संसार बेर की भाँति है, अर्थात् संसार की कोई बात आपसे छिपी नहीं है। ऐसा कहकर रामजी ने सब कथा कही कि जिस प्रकार रानी कैकेयी ने बनवास दिया।



तातबचन पुनि मातुहित, भाइ भरत अस राउ।
हम कहँ दरश तुम्हार प्रभु, सब मम पुण्यप्रभाउ॥

पिता का वचन, माता का हित, भरत-जैसे भाई का राजा होना, फिर हे प्रभो, आपके दर्शन, यह सब मेरे पुण्य का प्रताप है।

देखि पाँय मुनिराय तुम्हारे * भये सफल सब सुकृत हमारे
अब जहँ राउर आयसु होई * मुनि उद्वेग न पावहिं कोई

हे मुनिराज, आपके चरण देख हमारे सब पुण्य सफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो, और कोई मुनि कष्ट न पावें, वहाँ मैं रहूँ।

मुनितापस जिनते दुख लहहीं * ते नरेश बिन पावक दहहीं
मङ्गलमूल विप्रपरितोषा * दहै कोटि कुल भूसुररोषा

क्योंकि मुनि और तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं, वे राजा बिना आग ही जल जाते हैं। ब्राह्मण का सन्तुष्ट होना मंगल का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों वंशों को जला देता है।

असजियजानि कहिय सोइठाऊँ * सियसौमित्रिसहित जहँ जाऊँ

तहँ रचि रुचिर पर्ण तृणशाला * वास करौं कछु काल कृपाला

जी में ऐसा जानकर उसी ठिकाने को कहिए, जहाँ सीता और लक्ष्मण-समेत जाऊँ। हे दयालु, पत्तों और तिनकों से सुन्दर घर बनाकर कुछ समय निवास करूँ।

सहज सरल सुनि रघुवरबानी * साधु साधु बोले मुनिज्ञानी
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू * तुम पालक सन्तत श्रुतिसेतू

रामजी की स्वभाव ही से सीधी वाणी सुन ज्ञानी मुनि ने साधु-साधु (वाह-वाह) कहा। हे रघुवंशकेतु, तुम ऐसा क्यों न कहो! तुम तो सदैव वेदों की मर्यादा को पालते हो।

छन्द

श्रुतिसेतुपालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुखपाइ कृपानिधान की॥
जो सहस शीश अहीश महिधर लषण सचराचरधनी।
सुरकाज धरिनरराजतनु चले दलनखलनिशिचरअनी॥

हे जगदीश्वर रामजी, आप वेदों की मर्यादा के पालक हैं और जानकीजी माया हैं, जो कि दयानिधि आपके मन की इच्छा पाकर संसार को रचती, पालती और नष्ट करती हैं। पृथ्वी को धरनेवाले हजार मस्तकों के शेषजी ही चराचर के धनी लक्ष्मण हैं। आप देवताओं के काम के लिए नरेश की देह धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का संहार करने चले हैं।



सो० राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिपर।
अविगत अकथ अपार, नेतिनेति जेहि निगमकह॥

हे रामजी, आपका स्वरूप वाणी और बुद्धि से परे है, जिसकी विशेष गति जानी नहीं जाती, जो अथाह और न कहने योग्य है, तथा जिसको वेद 'नेति-नेति' कहते हैं।

जग पेखन तुम देखनहारे * विधि हरि शम्भु नचावनहारे
तेउ न जानहिं मर्म तुम्हारा * और तुमहिं को जाननहारा

संसार देखने के योग्य और तुम देखनेवाले तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश को नचानेवाले हो। वे भी तुम्हारा भेद नहीं जानते। तब और आपको जाननेवाला कौन है?

सोइ जानहिं जेहि देहु जनाई * जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई
तुम्हरी कृपा तुमहिं रघुनन्दन * जानहिं भक्त भक्तिउर चन्दन

परन्तु जिसे तुम बतला देते हो, वह जानता है तथा तुमको जानने ही तुम्हारा रूप हो जाता है। हे रामजी, तुम्हारी दया से तुमको ऐसे भक्त जानते हैं, जिनके हृदय में भक्तिरूपी चन्दन है।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी * विगतविकार जान अधिकारी
नरतन धरेहु सन्त सुरकाजा * कहहु करहु जस प्राकृत राजा

आपकी देह चिदानन्दमय है, जिसको विकाररहित अधिकारी ही जानते हैं। आपने साधुओं और देवताओं के लिए यह मनुष्य का शरीर धारण किया है और साधारण राजाओं की भाँति वचन कहते और काम करते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे * जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे
तुम जो कहहु करहु सब साँचा * जस काछिय तस नाचिय नाचा

हे रामजी, तुम्हारे चरित देख-सुनकर मूर्ख मोह को प्राप्त होते और पण्डित सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो, वह सब सच करते हो; क्योंकि जैसा वेष हो, वैसा ही नाच नाचना चाहिए।



पूछेहु मोहिं कि रहहुँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुमहिं दिखाऊँ ठाउँ॥

तुमने पूछा, कहाँ रहूँ; मैं पूछते सकुचता हूँ। जहाँ आप न हों, वह स्थान कह दीजिए। मैं आपको वही ठौर दिखा दूँ।

सुनि मुनिबचन प्रेमरस साने * सकुचि राम मनमहँ मुसुकाने
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी * बाणी मधुर अमिय जनु बोरी

प्रेम-रस से सने मुनि के वचन सुनकर रामजी सकुच गये और मन में मुस्कराये। फिर वाल्मीकिजी हँसकर मानो अमृत से सनी मीठी वाणी से बोले—

सुनहु राम अब कहौं निकेता * बसहु जहाँ सिय लषण समेता
जिनके श्रवण समुद्र समाना * कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना

हे रामजी, सुनिए, अब स्थान कहता हूँ, जहाँ सीता और लक्ष्मण-सहित आप रहें। जिनके कानरूपी समुद्र में आपकी अनेक प्रकार की उत्तम कथाएँ नदियों की भाँति—

भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे * तिनके उर तुम कहँ गृह रूरे
लोचन चातक जिन करि राखे * रहहिं दरश जलधर अभिलाखे

सदा भरती हैं और वे पूर्ण नहीं होते, उनके हृदय तुम्हारे लिए अच्छे घर हैं। जिन्होंने अपनी आँखें पपीहा कर रक्खी हैं, जो आपके दर्शनरूपी मेघों को चाहते हैं—

निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी * रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी
तिनके हृदय सदन सुखदायक * बसहु बन्धु सियसह रघुनायक

और जो नदी, तलाव, समुद्र आदि के पानी का आदर न करके आपके रूप ही

के पानी के बूँद को पाकर सुखी होते हैं, हे रघुनाथजी, उनके हृदयरूपी सुखदायक घर में लक्ष्मण और सीता-समेत आप रहें।



यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुणगण चुगहिं, राम बसहु उर तासु॥

हे रामजी, तुम्हारे यशरूपी मानसरोवर के कहने में जिनकी जीभ हंसिनी-सी हो, जो तुम्हारे गुणगणरूपी मोती चुगती है, उनके हृदय में रहो।

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा * सादर जासु लहै नित नासा
तुमहिं निवेदन भोजन करहीं * प्रभुप्रसाद पट भूषण धरहीं

आपके पवित्र और सुन्दर सुगन्धित प्रसाद को जिसकी नासिका आदर से नित्य पाती है तथा जो तुमको भोग लगाकर भोजन करते और प्रसादवाले कपड़े व गहने धारण करते हैं—

शीश नवहिं सुर गुरु द्विज देखी * प्रीति सहित करि विनय विशेखी
कर नित करहिं रामपदपूजा * राम भरोस हृदय नहिं दूजा

तथा देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देख बड़ी विनय दिखाकर प्रीति-समेत जिनके माथे झुकते हैं, जिनके हाथ नित्य रामजी के चरणों का पूजन करते हैं तथा हृदय में राम ही का भरोसा है, दूसरा नहीं।

चरण रामतीरथ चलि जाहीं * राम बसहु तिनके मनमाहीं
मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा * पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा

जिनके पाँव रामजी के तीर्थों को चलकर जाते हैं, हे रामजी, उनके मन में आप बसिए। जो नित्य तुम्हारा मन्त्रराज जपते हैं और कुटुम्ब-समेत तुम्हारी पूजा करते हैं—

तर्पण होम करहिं विधि नाना * विप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना
तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी * सकल भाँति सेवहिं सनमानी

जो अनेक प्रकार से तर्पण, होम आदि करते और ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं, जो तुमसे अधिक गुरु को जी में जानकर सब प्रकार से आदरपूर्वक सेवते हैं—



सबकर माँगहिं एक फल, रामचरण रति होउ।
तिनके मनमन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

और सब कर्मों का एक यही फल माँगते हैं कि रामजी के चरणों में प्रेम हो, हे रघुनन्दनजी, उनके मनरूपी मन्दिर में सीता-समेत दोनों भाई बसो।

काम क्रोध मद मान न मोहा * लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा
जिनके कपट दम्भ नहिं माया * तिनके हृदय बसहु रघुराया

जिनके काम, क्रोध, गर्व, मान, मोह, लालच, मद, स्नेह और वैर नहीं है, जिनके छल, पाखण्ड और माया नहीं है, हे रघुराज, उनके हृदय में बसिए।

सबके प्रिय सबके हितकारी * दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी
कहहिं सत्य प्रियवचन विचारी * जागत सोवत शरण तुम्हारी

जो सबके प्यारे और सबके हितकारक हैं, दुःख और सुख, प्रशंसा और गाली जिनको बराबर हैं; जो विचारकर सत्य और प्यारे वचन कहते हैं, तथा सोते-जागते तुम्हारी शरण में रहते हैं—

तुमहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं * राम बसहु तिनके मन माहीं
जननी सम जानहिं परनारी * धन पराय विषते विष भारी

तुमको छोड़कर जिन्हें दूसरी गति नहीं है, हे रामजी, उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को माता के बराबर जानते हैं, तथा पराये धन को विष से अधिक मानते हैं—

जे हरषहिं परसम्पति देखी * दुखित होहिं परविपति विशेखी
जिनहिं राम तुम प्राणपियारे * तिनके मन शुभसदन तुम्हारे

जो पराई सम्पत्ति को देख प्रसन्न होते और पराई विपत्ति को देखकर दुःखी होते हैं तथा हे रामजी, जिनको तुम प्राणों के समान प्यारे हो, उनके मन तुम्हारे अच्छे घर हैं।


स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
तिनके मनमन्दिर बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात॥

हे तात, जिनके स्वामी, मित्र, पिता, माता और गुरु, सब तुम्हीं हो, उनके मनरूपी मन्दिर में सीता-समेत दोनों भाई रहो।

अवगुण तजि सबके गुण गहहीं * विप्र धेनु हित सङ्कट सहहीं
नीतिनिपुण जिनकी जगलीका * घर तुम्हार तिनकर मन नीका

जो दोष छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं तथा ब्राह्मण और गऊ के लिए दुःख सहते हैं। जो नीति में चतुर हैं और संसार में जिनकी मर्यादा है, उनका मन तुम्हारा अच्छा घर है।

गुण तुम्हार समुझहिं निज दोसा * जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा
रामभक्त प्रिय लागहिं जेही * तेहि उर बसहु सहित वैदेही

जो तुम्हारे गुणों और अपने दोषों को समझते हैं, जिनको सब प्रकार से तुम्हारा भरोसा है, और रामजी के भक्त जिनको प्यारे लगते हैं, उनके मन में जानकी-समेत वास करो।

जाति पाँति धन धर्म बड़ाई * प्रिय परिवार सदन समुदाई
सब तजि तुमहिं रहैं लवलाई * तिनके हृदय बसहु रघुराई

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई तथा कुटुम्ब और घर आदि सबको छोड़कर जो तुमसे लौ लगाये रहते हैं, हे रघुनाथजी उनके हृदय में बसिए।

स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना * जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना
कर्म वचन मन राउर चेरा * राम करहु तिनके उर डेरा

जिनको स्वर्ग, नरक और मोक्ष, सब बराबर है, तथा जहाँ-तहाँ धनुष-बाण धरे तुमको देखते हैं, कर्म, वचन, मन से आपके दास हैं, हे रामजी, उनके हृदय में डेरा डालिए।



जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुमसन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर, सो राउर निज गेह॥

जिसे कभी कुछ न चाहिए, जो केवल तुमसे सहज प्रेम करता हो, उसके हृदय में सदा बसो। वही तुम्हारा अपना घर है।

यहि विधिमुनिवरठाउँ दिखाये * वचन सप्रेम राममन भाये
कहमुनि सुनहु भानुकुलनायक * आश्रम कहौं समय सुखदायक

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ ने स्थान दिखाया। उनके ये प्रेम-समेत वचन रामजी को अच्छे लगे। मुनि ने कहा—हे सूर्यवंश के स्वामी, समय के अनुसार सुख देनेवाला आश्रम कहता हूँ।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू * तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू
शैल सुहावन कानन चारू * करि केहरि मृग विहँग विहारू

चित्रकूट पर्वत पर वास कीजिए। वहाँ तुमको सब प्रकार का सुपास है। वह पहाड़ सुहावना और वन सुन्दर है, जहाँ हाथी, सिंह, मृग, पक्षी आदि फिरते हैं।

नदी पुनीत पुराण बखानी * अत्रिप्रिया निज तपबल आनी
सुरसरिधार नाम मन्दाकिनि * जो सब पातकपोतकडाकिनि

जहाँ पुराण में बखानी पवित्र मन्दाकिनी नदी है, जिसे अत्रि की प्यारी अनसूयाजी अपने तपोबल से लाई हैं। उस सुरसरि की धारा का नाम मन्दाकिनी है, जो सब पापरूपी बालकों के लिए डाइन है।

अत्रिआदि मुनिवर तहँ बसहीं * करहिं योगजपतप तन कसहीं
चलहुसफल श्रमसबकर करहू * राम देहु गौरव गिरिवरहू

वहाँ अत्रि आदि मुनिश्रेष्ठ रहते हैं, जो योग-जप करते और देह को कसते हैं। हे रामजी चलिए, सबका परिश्रम सफल कीजिए और चित्रकूट को बड़ाई दीजिए।



चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरितवर, सियसमेत दोउ भाइ॥

महामुनि वाल्मीकिजी ने चित्रकूट की अपार महिमा गाकर कही। सीता-समेत दोनों भाइयों ने आकर मन्दाकिनी में नहाया।

रघुवर कहेउ लषण भल घाटू * करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू
लषण दीख पय उतर करारा * चहुँदिशि फिरेउ धनुषइव नारा

रामजी ने कहा—हे लक्ष्मण, घाट अच्छा है। अब कहीं ठहरने का प्रबन्ध करो। लक्ष्मणजी ने जल के उस पार करारे को देखा, जिसके चारों ओर धनुष की भाँति नाला घूमा था।

नदी पनच शर शमदम दाना * सकल कलुष कलिसाउजनाना
चित्रकूट जनु अचल अहेरी * चूक न घात मार मुठभेरी

लक्ष्मण ने कहा—स्वामी, उस धनुष की नदी रोदा है; शम, दम और दान बाण तथा कलियुग के सब पाप अनेक प्रकार के जीव हैं। चित्रकूट मानो अचल शिकारी है, जो मुठभेरी मार से मारता है; घात में चूकता नहीं।

अस कहि लषण ठाउँ दिखरावा * थल विलोकि रघुवर सुखपावा
रमेउ राम मन देवन जाना * चले सहित सुरपति परधाना

ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। उस जगह को देख रामजी ने सुख पाया। रामजी का मन वहाँ रम गया, यह देवताओं ने जब जाना, तब वे अपने अगुआ इन्द्र के साथ सब चले।

कोल किरात वेष सब आये * रचे पर्णतृणसदन सुहाये
बरणि न जाहिं मञ्जु दुइ शाला * एक ललित लघु एक विशाला

सब देवता कोलभिल्लों के वेष में आये और उन्होंने पत्तों और तिनकों के सुन्दर घर रच दिये। दो सुन्दर घर बने, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक तो सुन्दर छोटा और एक बड़ा।


लषणजानकीसहित प्रभु, राजत पर्णनिकेत।
सोह मदन मुनिवेष जनु, रतिऋतुराजसमेत॥

लक्ष्मण और जानकी-समेत रामजी पर्णशाला में ऐसे शोभित हैं, जैसे रति और वसन्तसमेत मुनि का रूप धरे कामदेव।

अमर नाग किन्नर दिगपाला * चित्रकूट आये तेहि काला
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू * मुदित देव लहि लोचनलाहू

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूट में आये। रामजी ने सबको प्रणाम किया और देवता नेत्रों का लाभ पाकर प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देवसमाजू * नाथ सनाथ भये हम आजू
करि बिनती दुख दुसह सुनाये * हरषित निजनिज सदन सिधाये

फूल बरसाकर देव-मंडली ने कहा—नाथ! आज हम सनाथ हुए। फिर विनय करके उन्होंने अपने दारुण दुःख सुनाए। फिर रावण के मारे जाने की आशा से प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये।

चित्रकूट रघुनन्दन छाये * समाचार सुनि सुनि मुनि आये
आवत देखि मुदित मुनिवृन्दा * कीन्ह दण्डवत रघुकुलचन्दा

रामजी चित्रकूट में आकर रहे हैं, यह हाल सुन-सुनकर मुनि लोग आये। प्रसन्नचित्त मुनिवृन्द को आते देख रघुकुल-चन्द्र रामजी ने प्रणाम किया।

मुनि रघुवरहिं लाइ उर लेहीं * सफल होनहित आशिष देहीं
सिय सौमित्रि रामछवि देखहिं * साधनसकलसफल करिलेखहिं

मुनिलोग रामजी को हृदय से लगा लेते और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं। सीता, लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपनी सब साधना सफल मानते हैं।

दो० यथायोग सन्मानि प्रभु, बिदा किये मुनिवृन्द।
करहिं योग जप यज्ञ तप, निज आश्रमन स्वछन्द॥

जैसा चाहिए वैसा ही आदर करके रामजी ने मुनियों को बिदा किया। तब वे राक्षसों से निडर होकर अपने आश्रमों में योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे।

यह सुधि कोलकिरातन पाई * हरषे जनु नवनिधि घर आई
कन्दमूल फल भरिभरि दोना * चले रंक जनु लूटन सोना

यह समाचार कोलभिल्लों ने पाया तो ऐसे प्रसन्न हुए मानो नवो निधियाँ घर में आ गईं। कन्दमूल और फल दोनों में भर-भरकर ऐसी प्रसन्नता से चले, जैसे कंगाल सोना लूटने जाते हों।

तिनमहँ जिन देखे दोउ भ्राता * और तिनहिं पूछहिं मग जाता
कहत सुनत रघुबीर निकाई * आइ सबहिं देखे दोउ भाई

उनमें से जिन्होंने दोनों भाइयों को देखा, उनसे और लोग राह-चलते पूछते हैं। रामजी की सुन्दरता को कहते-सुनते सबने आकर दोनों भाइयों को देखा।

करहिं जुहार भेंट धरि आगे * प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे
चित्रलिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े * पुलक शरीर नयन जल बाढ़े

भेंट (नज़र) आगे धरकर जुहार करते और बड़े प्रेम से रामजी को देखते हैं। लिखे हुए चित्र की भाँति जहाँ-तहाँ खड़े हैं। उनके शरीर में रोमांच और आँखों में जल भरा है।

राम सनेहमगन सब जाने * कहि प्रियवचन सकल सनमाने
प्रभुहिं जुहारि बहोरि बहोरी * वचन विनीत कहहिं कर जोरी

रामजी ने सबको स्नेह में मगन जाना और प्रिय वचन कहकर सबका आदर किया। वे बार-बार रामजी को जुहारकर हाथ जोड़ विनय से यों कहते हैं—



अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाँय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोशलराय॥

हे नाथ, हम आपके चरण देख सनाथ हुए। हे कोशलराज, हमारे ही भाग्य से आप यहाँ आये हैं।

धन्य भूमि वन पन्थ पहारा * जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा
धन्य विहँग मृग काननचारी * सफल जन्म भे तुमहिं निहारी

हे नाथ, वह पृथ्वी, वन, राह और पहाड़ धन्य हैं, जहाँ-जहाँ आपने चरण धरे हैं। वन में फिरनेवाले पक्षी और मृग धन्य हैं। उनका जन्म आपको देखकर सफल हुआ।

हम सब धन्य सहितपरिवारा * देखि दरश भरिनयन तुम्हारा
कीन्ह बास भल ठाउँ विचारी * इहाँ सकल ऋतु रहब सुखारी

और आँखों भर तुम्हारा दर्शन कर हम सब कुटुम्बसमेत धन्य हैं। आपने अच्छी जगह विचारकर निवास किया है। यहाँ सब ऋतुओं में आप सुखी रहेंगे।

हम सब भाँति करब सेवकाई * करि केहरि अहि बाघ बराई
वन बेहड़ गिरि कानन खोहा * सब हमार प्रभु पग पग जोहा

हम लोग हाथी, सिंह, साँप और बाघों से बचाकर सब प्रकार आपकी सेवा करेंगे। वन विकट हैं। हे स्वामी, पर्वत, वन और कन्दराएँ, सब स्थान पग-पग हमारे देखे पड़े हैं।

तहँ तहँ तुमहिं अहेर खिलाउब * सर निर्झर सब ठाउँ दिखाउब
हम सेवक परिवारसमेता * नाथ न सकुचब आयसु देता

उन स्थानों में आपको हम लोग शिकार खिलावेंगे तथा तालाबों और झरनों के सब स्थान दिखावेंगे। हे नाथ, कुटुम्ब-समेत हम लोग सेवक हैं, आज्ञा देते आप न सकुचिएगा।



बेदवचन मुनिमन अगम, ते प्रभु करुणाऐन।
बचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालकबैन॥

वेद की श्रुतियाँ और मुनियों के मन जिनको नहीं जान सकते, वही दया के धाम, प्रभु रामजी किरातों के वचन इस प्रकार सुनते हैं, जैसे पिता लड़कों के।

रामहिं केवल प्रेम पियारा * जानि लेइ जो जाननहारा
राम सकल वनचर परितोषे * कहि प्रियवचन प्रेम परिपोषे

रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो, वह यह जान ले। रामजी ने सब वनवासियों को प्रसन्न किया और प्यारे वचन कह प्रेम से सन्तुष्ट कर—

बिदा किये शिर नाइ सिधाये * प्रभुगुण कहत सुनत घर आये
यहि विधि सीयसहित दोउ भाई * बसहिं विपिन सुर मुनि सुखदाई

उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले तथा रामजी के गुणों को कहते-सुनते अपने-अपने घर आये। इस प्रकार देवताओं और मुनियों के सुखदायक दोनों भाई सीता-समेत वन में बसते हैं।

जबते आइ रहे रघुनायक * तबते भो वन मंगलदायक
फूलहिं फलहिं विटपविधि नाना * मंजु ललित वर वेलिविताना

जब से रघुनाथजी आकर रहे, तब से वन कल्याणदायक हुआ। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलते-फलते हैं और अति सुन्दर बेलों के वितान तने हैं।

सुरतरुसरिस सुभाय सुहाये * मनहुँ विबुधवन परिहरि आये
गुञ्ज मञ्जुतर मधुकरश्रेनी * त्रिविध बयारि बहै सुखदेनी

वृक्ष कल्पवृक्षों के समान सहज ही सुन्दर हैं, मानो देवताओं का बाग छोड़कर यहाँ आये हैं। उन पर सुन्दर भौंरों की पाँति गूँज रही है तथा तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द, सुगन्ध) सुखद वायु चलती है।



नीलकण्ठ कलकण्ठ शुक, चातक चक्र चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं विहँग, श्रवणसुखदचितचोर ॥

नीलकण्ठ (मोर, कबूतर), कोकिला, तोता, पपीहा, चकवा, चकोर आदि पक्षी भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलते हैं, जो कि कानों को सुखदायक और चित्त को चुरानेवाली हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा * विगतवैर विचरहिं सब संगा
फिरत अहेर रामछवि देखी * होहिं मुदित मृगवृन्द विशेखी

हाथी, सिंह, बन्दर, सूअर और हरिण वैर छोड़ सब साथ ही घूमते हैं। सब मृग रामजी के शिकार के समय निर्भय होकर घूमते हैं और राम की छवि देख अधिक प्रसन्न होते हैं।

विबुधविपिन जहँलगि जग माहीं * देखि रामवन सकल सिहाहीं
सुरसरि सरस्वति दिनकरकन्या * मेकलसुता गोदावरि धन्या

संसार में जहाँ तक देवताओं के वन हैं, वे सभी रामजी के वन को देखकर सिहाते हैं। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा और धन्या गोदावरी—

सब सर सिन्धु नदी नद नाना * मन्दाकिनि कर करत बखाना
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू * मन्दर मेरु सकल सुर वासू

तथा सब तालाब, समुद्र अनेक प्रकार के नदी-नद मन्दाकिनी की बड़ाई कर रहे हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मन्दर और मेरु, जिनमें देवता बसते हैं।

शैल हिमाचल आदिक जेते * चित्रकूट यश गावहिं तेते
विन्ध्य मुदितमन सुख न समाई * बिन श्रम विपुल बड़ाई पाई

और हिमाचल आदि जितने पहाड़ हैं, वे चित्रकूट का यश गाते हैं। विन्ध्याचल प्रसन्न है, उसके मन में सुख नहीं समाता ; क्योंकि उसने बिना परिश्रम बड़ी बड़ाई पाई है। विन्ध्याचल ही का एक भाग चित्रकूट है।

चित्रकूट के विहँगमृग, बेलिविटपतृणजाति।
पुण्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिनराति॥

दिन-रात देवता कहते हैं कि चित्रकूट के पक्षी, मृग, बेलि, वृक्ष और भाँति-भाँति के तृण, सब पुण्य की राशि, धन्य हैं।

नयनवन्त रघुपतिहिं विलोकी * पाइ नयनफल होहिं विशोकी
परसि चरणरज अचर सुखारी * भये परमपद के अधिकारी

आँखोंवाले जीव रघुनायक रामजी को देखकर मानो नेत्रों का फल पाकर शोकरहित होते हैं। अचर (वृक्ष आदि) जीव रामचन्द्र के चरणों की धूल को छूकर प्रसन्न हो मोक्ष के अधिकारी हुए।

सो बन शैल सुभाय सुहावन * मंगलमय अति पावन पावन
महिमा कहौं कवन विधि तासू * सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू

वह वन और पहाड़ स्वभाव ही से सुन्दर, कल्याणमय और पवित्र करनेवालों को भी पवित्र करनेवाले हैं। जहाँ सुख के सागर रामजी ने निवास किया है, उसकी महिमा किस प्रकार कहूँ ?

पयपयोधि तजि अवध विहाई * जहँ सियरामलषण रहे आई
कहि न सकहिं सुखमाजस कानन * जो शतसहस होहिं सहसानन

उस स्थान का क्या कहना है कि जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणजी क्षीरसागर और अयोध्या को छोड़कर रहे हैं। जैसा सुख वन में हुआ, उसको जो सौ सहस शेष हों तो भी नहीं कह सकते।

सो मैं बरणि सकौं विधि केहीं * डाबरकमठ कि मन्दर लेहीं
सेवहिं लषण कर्ममनबानी * जाइ न शीलसनेह बखानी

फिर मैं उसका किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ? क्या पोखरों के कछुए मन्दराचल उठा सकते हैं ? लक्ष्मणजी कर्म, मन और वाणी से रामजी की सेवा करते हैं। उनका शील और स्नेह कहा नहीं जाता।


छण छण लखि सियरामपद, जानि आप पर नेह।
करत न सपने लषण चित, बन्धु मातु पितु गेह॥

क्षण-क्षण सीता और रामजी के चरण देख और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी सपने में भी भाई, माता, पिता और घर की सुध नहीं करते।

रामसंग सिय रहति सुखारी * पुर परिजन गृहसुरति बिसारी
क्षण क्षण प्रभुविधुवदन निहारी * प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी

नगर की, कुटुम्बियों की और घर की सुध भूलकर जानकीजी रामजी के साथ सुखी रहती हैं। वह क्षण-क्षण रामजी के चन्द्रमुख को देखकर चकोरी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

नाहनेह नित बढ़त बिलोकी * हरषितरहतिदिवसजिमिकोकी
सियमन रामचरण अनुरागा * अवधसहससम वन प्रियलागा

वह सदा पति का स्नेह बढ़ते देख कैसे प्रसन्न रहती हैं, जैसे दिन में चकई। सीताजी के मन में रामजी के चरणों के प्रति स्नेह है, इसी कारण उनको हजार अयोध्याओं के समान वन प्यारा लगता है।

पर्णकुटी प्रिय पीतम संगा * प्रिय परिवार कुरंग विहंगा
साससमुरसम मुनितिय मुनिवर * अशन सुधासम कंद मूल फर

पति के साथ पर्णशाला प्रिय लगती थी। मृग-पक्षी आदि कुटुम्ब की भाँति प्यारे थे। मुनि-पत्नियाँ और मुनिगण सास-ससुर के समान तथा कन्द-मूल-फल आदि भोजन अमृत के समान लगते थे।

नाथसाथ साथरी सुहाई * मयनशयन शतसम सुखदाई
लोकप होहिं बिलोकत जासू * तेहि कि मोहि सक विषयविलासू

स्वामी के साथ कुश का सुन्दर बिछौना उनको सौ कामदेव की सैकड़ों सेजों के समान सुखदायक था। जिनके कृपादृष्टि डालते ही साधारण जन लोकपाल (इन्द्र आदि) हो जाते हैं, उन सीता को क्या विषय का सुख मोह सकता है?

दो० सुमिरत रामहिं तजहिं नर, तृणसम विषयविलासु।
रामप्रिया जगजननि सिय, नहिं कछु अचरज तासु॥

रामजी का स्मरण करते ही मनुष्य तिनके के समान विषयसुख को छोड़ देते हैं। इसी लिए रामजी की प्यारी और संसार की माता जानकी के लिए यह कुछ आश्चर्य नहीं है।

सीयलषणजेहिविधि सुखलहहीं * सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं
कहहिं पुरातन कथा बखानी * सुनहिंलषणसियअतिसुखमानी

सीता और लक्ष्मणजी जिस प्रकार सुख पाते हैं, रघुनाथजी वही करते और कहते हैं। रामजी पुरानी कथाएँ कहते हैं, तथा जानकी और लक्ष्मणजी उन्हें सुनकर बड़ा सुख पाते हैं।

जब जब राम अवध सुधि करहीं * तब तब बारि बिलोचन भरहीं
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई * भरत सनेह शील सेवकाई

रामजी जब-जब अयोध्या का स्मरण करते हैं, तब-तब आँखों में जल भर लेते हैं। माता, पिता, कुटुम्बी, भाई भरत के स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके—

कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी * धीरज धरहिं कुसमय विचारी
लखि सियलषण विकल ह्वै जाहीं * जिमि पुरुषहिं अनुहर परछाहीं

दया के सागर रामजी दुःखित होते हैं और कुसमय विचारकर धीरज धरते हैं। यह देखकर सीता और लक्ष्मणजी वैसे ही दुखी हो जाते हैं, जैसे मनुष्य की परछाहीं मनुष्य के पीछे चलती है।

प्रियाबन्धुगति लखि रघुनन्दन * धीर कृपालु भक्तउरचन्दन
लगे कहन कछु कथा पुनीता * सुनि सुख लहैं लषण अरु सीता

प्रिया और भाई की गति देखकर धीर, कृपानिधान, भक्तों के हृदय में चन्दन की तरह बसनेवाले रामजी कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगे, जिन्हें सुन जानकीजी और लक्ष्मणजी सुख पाते थे।


राम लषण सीता सहित, सोहत पर्णनिकेत।
जिमि वासव बस अमरपुर, शची जयन्त समेत॥

लक्ष्मण और सीता-समेत रामजी पर्णशाला में कैसे शोभित होते हैं, जैसे इन्द्राणी और जयन्त-समेत इन्द्र स्वर्ग में रहते हैं।

जुगवहिं प्रभुसियलषणहिं कैसे * पलक विलोचनगोलक जैसे
सेवहिं लषणसीय रघुवीरहिं * जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं

राम जानकीजी और लक्ष्मणजी की कैसे रक्षा करते हैं, जैसे आँखों के गोलक की पलकें रक्षा करती हैं। लक्ष्मण और जानकीजी रामजी की सेवा कैसे करते हैं, जैसे अज्ञानी पुरुष शरीर की सेवा करते हैं।

यहिविधिप्रभुवनवसहिं सुखारी * खग मृग सुर तापस हितकारी
कहेउँ राम वनगमन सुहावा * सुनहु सुमन्त अवध जिमि आवा

इस प्रकार पक्षी, मृग, देवता और तपस्वियों के हितकारक रामजी सुखपूर्वक वन में रहने हैं। रामजी का सुन्दर वनगमन कहा। अब जिस प्रकार सुमन्त अयोध्या को आये सो सुनो।

फिरेउ निषाद प्रभुहिं पहुँचाई * सचिवसहित रथ देखेउ आई
मन्त्रिहिं विकलविलोकि निषादू * कहि न जाइ जस भयउ विषादू

निषाद रामजी को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्रीसमेत रथ को आकर देखा। सुमन्त मंत्री को विकल देखकर निषाद जैसा दुःखित हुआ, सो कहा नहीं जा सकता।

राम राम सिय लषण पुकारी * परेउ धरणितल व्याकुल भारी

देखि दखिनदिशि हय हिहिनाहीं * जिमि बिनपंख बिहँग अकुलाहीं

बहुत विकल होकर सुमन्त राम, लक्ष्मण और सीता को पुकारते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। दक्षिण दिशा की ओर देख घोड़े हिनहिनाते हैं, जैसे पंखों के बिना पक्षी विकल हों।

दो० नहिं तृण चरैं न पियैं जल, मोचत लोचनवारि।
ब्याकुल भये निषादगण, रघुवरबाजि निहारि॥

वे न घास चरते और न पानी पीते हैं; किन्तु आँखों से आँसू बहाते हैं। रामजी के घोड़ों की यह दशा देख सब निषाद दुःखित हुए।

धरि धीरज तब कहहिं निषादू * अब सुमन्त परिहरहु विषादू
तुम पण्डित परमारथज्ञाता * धरहु धीर लखि बाम विधाता

तब धीरज धरकर निषादराज ने कहा—हे सुमन्त, अब शोक को छोड़ो। परमार्थ के जाननेवाले आप पण्डित होकर विधाता को इस समय अपने प्रतिकूल जान धीरज धरो।

विविध कथा कहिकहि मृदुबानी * रथ बैठारेसि बरबस आनी
शोकशिथिल रथ सकै न हाँकी * रघुवरविरहपीर उर बाँकी

कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कह-कह एक तरह से जबरदस्ती सुमन्त को लाकर निषाद ने रथ में बिठाला। शोक से शिथिल होने के कारण सुमन्त रथ नहीं हाँक सकते। रामजी के बिछोह से उनके हृदय में ऐसी दारुण पीड़ा है।

तरफराहिं मग चलहिं न घोरे * बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे
अटकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे * रामवियोगविकल दुख तीछे

घोड़े तड़फड़ाते हैं, राह पर नहीं चलते; मानो वन के मृग लाकर रथ में जोत दिये गये हों। वे रुक जाते और फिर पीछे देखते हैं। राम के वियोग में व्याकुल होकर बड़े दुखी हैं।

बाजिविरहगतिकिमिकहिजाती * मणिबिनफणिकविकलजेहिभाँती
जो कह राम लषण बैदेही * हिकरि हिकरि हेरत हय तेही

राम के वियोग में घोड़ों की ऐसी दशा हो रही है, जैसे मणि के बिना साँप व्याकुल हो। जो राम, लक्ष्मण और जानकी का नाम लेता है, उसी की ओर घोड़े हिनहिनाकर देखने लगते हैं।

दो० भये निषाद विषादवश, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग॥

सुमन्त और घोड़ों की दशा देख निषाद दुखी हुआ। उसने अपने चार सेवक बुलाकर सुमन्त के साथ कर दिये।

गुह सारथिहिं फिरेउ पहुँचाई * विरहविषाद बरणि नहिं जाई

चले अवध लै रथहिं निषादा * होहिं क्षणहिंक्षण मगन विषादा

निषाद सारथी को पहुँचाकर लौटा। उसका राम के वियोग से होनेवाला दुःख कहा नहीं जा सकता। चारों निषाद रथ लेकर अयोध्या को चले। वे क्षण-क्षण में दुःख में मग्न हो जाते हैं।

सोच सुमंत विकल दुखदीना * धिक जीवन रघुवीरविहीना
रहिहि न अंतहु अधम शरीरा * यश न लीन्ह बिछुरत रघुबीरा

दुःख से दीन और व्याकुल होकर सुमन्त सोचते हैं कि रामजी के बिना जीने को धिक्कार है। अन्त को नीच शरीर रहेगा ही नहीं, फिर रामजी के बिछुड़ते ही यश क्यों न लिया।

भये अयस अघभाजन प्राना * कवन हेतु नहिं करत पयाना
अहह मन्दमति अवसर चूका * अजहुँ न हृदय होइ दुइ टूका

प्राण अपयश और पाप के पात्र हुए। ये किसलिए यात्रा नहीं करते? अहह! मैं मन्दमति हूँ। समय पर चूक गया। अरे, अब भी हृदय दो टुकड़े नहीं हो जाता।

मींजि हाथ शिरधुनि पछिताई * मनहुँ कृपण धनराशि गँवाई
बिरद बाँधि वर वीर कहाई * चलेउ समर जनु सुभट पराई

हाथ मींज और माथा पीटकर पछताते हैं, मानो कृपण ने धन का ढेर खो दिया; जैसे बिरद (बाना) बाँध और उत्तम वीर कहाकर योद्धा युद्ध छोड़कर भागने के कारण पछतावे।



विप्र विवेकी वेदविद, सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मदपानकृत, सचिव सोच तेहिभाँति॥

जैसे ज्ञानी, वेद का ज्ञाता और सज्जनों से आदर पानेवाला, कुलीन ब्राह्मण धोखे में मदिरा पीकर पछितावे, उसी प्रकार सुमन्त शोक करते हैं।

जिमि कुलीनतिय साधु सयानी * पतिदेवता कर्म मन बानी
रहै कर्मवश परिहरि नाहू * सचिवहृदय तिमि दारुण दाहू

जैसे कुलवती स्त्री, जो कि सती, चतुर और मन-कर्म-वचन से पति को देवता मानती है, कर्मवश पति को छोड़कर दुखी रहे, वैसा ही दुसह दुःख सुमन्त के मन में है।

लोचन सजल दृष्टि भइ थोरी * सुनै न श्रवण विकल मतिभोरी
सूखे अधर लागि मुख लाटी * जिय न जाय उर अवधि कपाटी

आँखों में जल आ जाने से दृष्टि धुँधली हो गई। कानों से सुनते नहीं। दुःख से बुद्धि चकरा गई। होंठ सूख गये, मुख में स्याही-सी दौड़ गई। हृदय में अवधि (चौदह वर्ष) के किवाड़ लग गये, इससे जी नहीं जाता।

विवरण भयो न जाय निहारी * मारेसि मनहु पितामहतारी

हानि गलानि विपुल मन व्यापी * यमपुरपंथ शोच जनु पापी

रंग उड़ गया। देखे नहीं जाते, मानो पिता-माता की हत्या की हो। हानि की भारी ग्लानि मन में भर गई और वैसा ही शोक हुआ, जैसा यमपुर की राह में पापी को होता है।

वचन न आव हृदय पछिताई * अवध काह मैं देखब जाई
रामरहित रथ देखिहि जोई * सकुचिहि मोहिं बिलोकत सोई

मुख से वचन नहीं निकलता। मन में पछताते हैं कि अयोध्या में जाकर मैं क्या देखूँगा। रामजी के बिना रथ को जो देखेगा, वही मुझको देखते सकुचेगा।


धाइ पूछिहैं मोहिं जब, बिकल नगर नरनारि।
उतर देब मैं तिनहिं तब, हृदय बज्र बैठारि॥

जब नगर के दुःखित स्त्री-पुरुष दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर उन्हें उत्तर दूँगा।

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता * कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता
पुछिहहिं जबहिं लषण महतारी * कहिहौं कवन सँदेश सुखारी

उदास और दुःखित सब माताएँ जब पूछेंगी, तब हे विधाता, मैं उनसे क्या कहूँगा? जब लक्ष्मण की माता सुमित्रा पूछेंगी, तब कौन-सा सुख का सँदेशा कहूँगा?

रामजननि जब आइहि धाई * सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई
पूछत उतर देब मैं तेही * गे बन राम लषण बैदेही

जब रामजी की माता दौड़कर आवेंगी, जैसे बछड़े को याद करके जल्दी की ब्याई गाय दौड़ती है, तब मैं पूछने पर उनको यह उत्तर दूँगा कि राम, लक्ष्मण और जानकीजी वन को गये!

जो पूछिहि तेहि उत्तर देबा * जाइ अवध अब यह सुख लेबा
पुछिहहिं जबहिं राउ दुखदीना * जीवन जासु राम आधीना

हाय, जो कोई पूछेगा, उसका यही उत्तर दूँगा। अयोध्या को जाकर अब यही सुख दूँगा! जिनका जाना राम के अधीन है, ऐसे राजा दुःख से उदास हो जब पूछेंगे—

देहौं उतर कवन मुख लाई * आयउँ कुशल कुँवर पहुँचाई
सुनत लषणसियराम सँदेशू * तृणसम तन परिहरिहि नरेशू

तब मैं कौन मुँह लेकर उनको उत्तर दूँगा कि राजकुमारों को पहुँचाकर मैं कुशल से आ गया? लक्ष्मण, जानकी और रामजी का सँदेसा सुनकर राजा दुःख के मारे तृण के समान देह को छोड़ देंगे।


हृदय न बिदरेव पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहिं दीन्ह बिधि, यमयातना शरीर॥

जैसे पानी के बिछुड़ने से कीचड़ फट जाता है, वैसे मेरा यह हृदय प्रिय राम के वियोग में नहीं फटता, इसलिए मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा ने यम की पीड़ा सहनेवाली देह मुझे दी है।

यहिविधि करत पन्थ पछितावा * तमसातीर तुरत रथ आवा
बिदा किये करि विनय निषादा * फिरे पाँयपरि विकल विषादा

इस प्रकार सुमन्त राह में शोक करते चले। तमसा नदी के किनारे शीघ्र रथ आया। तब विनती करके सुमन्त ने निषादों को विदा किया। वे पाँव पड़कर शोक से विकल हो लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई * जनु मारेसि गुरुब्राह्मणगाई
बैठि विटपतर दिवस गँवावा * साँझ समय तब अवसर पावा

नगर में पठते सुमन्त सकुचते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण और गऊ की हत्या की हो। वृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने दिन बिताया। संध्या होने पर छिपकर पुरी में पैठने का अवसर पाया।

अवध प्रवेश कीन्ह अँधियारे * पैठ भवन रथ राखि दुवारे
जिन जिन समाचार सुनि पाये * भूपद्वार रथ देखन आये

सुमन्त ने अँधेरा होने पर अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को द्वार पर छोड़कर राजभवन में पठे। जिन-जिन ने हाल सुन पाया, वे राजा के द्वार पर रथ देखने आये।

रथ पहिंचानि विकललखि घोरे * गरहिं गात जिमि आतप ओरे
नगरनारिनर व्याकुल कैसे * निघटत नीर मीनगण जैसे

रथ को पहचान और घोड़ों को दुःखित देख मनुष्यों के शरीर ऐसे गलने लगे, जैसे घाम से ओले। अयोध्या के स्त्री-पुरुष कैसे दुखी हैं, जैसे पानी घट जाने से मछलियाँ।



सचिवआगमन सुनत सब, विकल भई रनिवास।
भवन भयंकर लाग तेहिं, मानहु प्रेतनिवास॥

मन्त्री सुमन्त का आना सुनते ही सब रनिवास विकल हुआ और उनको घर ऐसा डरावना लगा, मानो प्रेतों के रहने का स्थान मसान हो।

अति आरत सब पूछहिं रानी * उतर न आव विकल भइ बानी
सुनै न श्रवण नयन नहिं सूझा * कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा

बहुत दुःखित हो सब रानियाँ पूछती हैं; परन्तु सुमन्त को कुछ उत्तर नहीं आता—उनकी वाणी विकल हो गई। कानों से सुन नहीं पड़ता और आँखों से सूझता नहीं। जो मिला, उससे पूछा कि कहो, राजा कहाँ हैं?

दासी देखि सचिवविकलाई * कौशल्यागृह गईं लिवाई
जाइ सुमन्त दीख कस राजा * अमियरहित जनु चन्द्र विराजा

दासियाँ मन्त्री की व्याकुलता देख उन्हें कौशल्या के घर लिवा ले गईं। जाकर सुमन्त ने राजा को कैसे दुखी देखा, जैसे अमृत से रहित चन्द्रमा हो।

आसन शयन विभूषणहीना * परेउ भूमितल निपट मलीना
लेइ उसास शोच यहिभाँती * सुरपुर ते जनु खसेउ ययाती

राजा बिछौना, सेज और गहनों से रहित बहुत ही उदास हो पृथ्वी में पड़े हैं। इस प्रकार शोक से साँस लेते हैं, जैसे स्वर्ग से गिरे महाराज ययाति।

लेत शोचभरि क्षण क्षण छाती * जनु जरि पंख परेउ सम्पाती
राम राम कह राम सनेही * पुनि कह लषण राम वैदेही

क्षण-क्षण में राजा शोक से छाती भर लेते हैं, मानो पंख जल जाने से सम्पाति (गिद्ध, जटायु का भाई—इसका हाल आगे सुंदरकाण्ड में है) पड़े हैं। हे राम, हे राम, हे स्नेही राम, कहते हैं और फिर हे लक्ष्मण, हे राम, हे जानकी ऐसा कहते हैं।


देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेसि दण्डप्रणाम।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ राम॥

मन्त्री ने देखकर 'जयजीव' कहा और दण्डप्रणाम किया। सुनते ही विकल होकर राजा उठे और कहा—हे सुमन्त, कहो, राम कहाँ हैं?

भूप सुमन्त लीन्ह उरलाई * बूड़त कछु अधार जनु पाई
सहितसनेह निकट बैठारी * पूछत राउ नयनभरि वारी

राजा ने सुमन्त को हृदय से लगा लिया, मानो डूबते में कुछ सहारा पा गये। स्नेहसमेत समीप ही बिठाया और आँखों में आँसू भरकर पूछने लगे—

रामकुशल कहु सखा सनेही * कहँ रघुनाथ लषण वैदेही
आनेहु फेरि कि वनहिं सिधाये * सुनत सचिवलोचनजल छाये

हे मित्र, हे स्नेही, राम की कुशल कहो। राम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? फिर लौटा लाये या वन को गये? यह सुनते ही सुमन्त की आँखों में आँसू भर आये।

शोचविकल पुनि पूछ नरेशू * कहहु रामसियलषणसँदेशू
राम रूप गुण शील सुभाऊ * सुमिरि सुमिरि उर शोचत राऊ

शोक से दुःखित राजा फिर पूछते हैं कि राम, जानकी और लक्ष्मण ने क्या सँदेशा दिया है? कहो। रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव बार-बार स्मरण करके राजा मन में सोचते हैं—

राज सुनाइ दीन्ह वनवासू * सुनि न भयउ मन हरष हरासू
सो सुत बिछुरत गये न प्राना * को पापी बड़ मोहिं समाना

जिसे राज्य देने की बात सुनाकर मैंने वनवास दिया और उसे सुनकर पहले मन में हर्ष या पीछे उदासी नहीं हुई, ऐसे पुत्र के बिछुड़ते मेरे प्राण नहीं गये तो मेरे समान कौन बड़ा पापी होगा?



सखा रामसियलषण जहँ, तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहिंत चाहत चलन अब, प्राण कहौं सतिभाउ॥

हे मित्र, जहाँ राम, जानकी और लक्ष्मण हैं, वहाँ मुझको पहुँचाओ; नहीं तो अब प्राण चलना चाहते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ।

पुनि पुनि पूछत मन्त्रिहिं राऊ * प्रीतमसुवनसँदेश सुनाऊ
सखा वेगि सोइ करिय उपाऊ * रामलषणसियआनि दिखाऊ

राजा बार-बार मन्त्री से पूछते हैं कि प्यारे पुत्र का सँदेशा सुनाओ। हे मित्र, शीघ्र वही उपाय करो—राम, लक्ष्मण और जानकी को लाकर मुझे दिखलाओ।

सचिव धीरधरि कह मृदुबानी * महाराज तुम पण्डित ज्ञानी
वीर सुधीर धुरन्धर देवा * साधुसमाज सदा तुम सेवा

सुमन्त धैर्य धरकर कोमल वचन कहते हैं कि महाराज, तुम पण्डित और ज्ञानी हो। हे देव, तुम वीरों और धीरों में श्रेष्ठ हो तथा सदैव साधुओं की सेवा में रहे हो।

जन्ममरण जगदुखसुखभोगा * हानिलाभ प्रियमिलनवियोगा
कालकर्मवश होहिं गोसाईं * बरबस रैनिदिवस की नाईं

संसार में जन्म-मरण, दुःख-सुख का भोग, हानि-लाभ, और प्रिय का मिलना-बिछुड़ना, यह सब हे स्वामी, काल और कर्म के वश होता है, जैसे दिन और रात बराबर बरबस होते हैं।

सुख हर्षहिं जड़ दुखविलखाहीं * दोउसम धीर धरहिं मनमाहीं
धीरज धरहु विवेक विचारी * छाँड़िय शोच सकल हितकारी

मूर्ख सुख में प्रसन्न होते और दुःख में विकल होते हैं; परन्तु धीर पुरुष मन में दोनों को बराबर मानते हैं। हे सबका हित करनेवाले महाराज, ऐसा विवेक से विचारकर धीरज धरिए, शोक करना छोड़ दीजिए।



प्रथम बास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि, सीयसहित दोउवीर॥

राम का पहला डेरा तमसा नदी पर और दूसरा गंगाजी के किनारे हुआ। नहाकर जलपान किया और सीतासमेत दोनों वीर वहाँ रहे।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई * सो यामिनि शृँगवेर गँवाई
होत प्रात वटक्षीर मँगावा * जटामुकुट निज शीश बनावा

केवट ने बड़ी सेवा की, वह रात राम ने शृंगवेरपुर में बिताई। सवेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने माथे पर जटाओं का मुकुट बनाया।

रामसखा तब नाव मँगाई * प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई
लषण धरे धनुबाण बनाई * आपु चढ़े प्रभुआयसु पाई

तब राम के सखा निषाद ने नाव मँगाई और श्रीरामजी जानकीजी को पहले उस पर चढ़ाकर फिर आप चढ़े। धनुष-बाण धारण किये लक्ष्मण फिर रामजी की आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े।

विकल विलोकि मोहिं रघुवीरा * बोले मधुरवचन धरि धीरा
तात प्रणाम तातसन कहेऊ * बार बार पदपंकज गहेऊ

रामजी ने मुझको दुःखित देख धीरज धरकर यों मीठे वचन कहे कि हे तात, पिता से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरणकमल पकड़ना।

करब पाँय परि विनय बहोरी * तात करिय जनि चिन्ता मोरी
वनमग मंगलकुशल हमारे * कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारे

फिर पाँव पकड़कर मेरी ओर से विनती करना कि हे पिता, मेरी चिन्ता न करना; क्योंकि आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन और मार्ग में मेरी सब कुशल-क्षेम ही है।

छन्द

तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुशल देखन पाँय फिरि पुनि आइहौं॥
जननी सकल परितोषकरि परिपाँय करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइयतन जेहिविधिकुशलरह कोशलधनी॥

हे पिताजी, तुम्हारे अनुग्रह से वन में जाते ही सब सुख पाऊँगा और आज्ञा पालनकर कुशल से फिर चरण देखने आऊँगा। सब माताओं को समझाते हुए पाँव पकड़कर बड़ी विनती करना। तुलसीदासजी कहते हैं कि वही उपाय करना; जिससे राजा कुशलपूर्वक रहें।



सो० गुरुसन कहब सँदेश, बार बार पदपद्म गहि।
करब सोइ उपदेश, जेहि न शोचमोहिं अवधपति॥

बारबार चरणकमल पकड़कर गुरु से सँदेसा कहना कि वही उपदेश करिएगा, जिससे अयोध्या के महाराज मेरा सोच न करें।

पुरजन परिजन सकल निहोरी * तात सुनायहु विनती मोरी
सोइ सब भाँति मोर हितकारी * जाते रह नरनाह सुखारी

फिर कहा कि हे तात, पुरवासियों और कुटुम्बियों, सबको मेरा निहोरा करके मेरी विनती सुनाना कि वही सब प्रकार मेरा हितकारी है, जिससे राजा सुखी रहें।

कहब सँदेश भरत के आये * नीति न तजब राजपद पाये

पालेहु प्रजहिं कर्ममनबानी * सेयेहु मातु सकल सम जानी

भरत के आने पर यह सँदेसा कहना कि राज्यपद पाकर नीति न छोड़ें; कम, मन और वचन से प्रजा को पालें और सब माताओं को बराबर जानकर उनकी सेवा करें—

और निबाहब भायप भाई * करि पितुमातुचरणसेवकाई

तात भाँति तेहि राखब राऊ * शोच मोर जेहि करहिं न काऊ

और कहना कि हे भाई, पिता के चरणों की सेवा करके भाईपन निबाहना। हे तात, उसी प्रकार राजा को रखना, जिससे वह कभी मेरा सोच न करें।

लषण कहेउ कछु वचन कठोरा * बरजि राम पुनि मोहिं निहोरा

बार बार निज शपथ दिवाई * कहव न तात लषणलरिकाई

लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे थे, पर रामजी ने मुझको निहोरा करके मना किया और बारंबार अपनी सौगन्द दिलाकर कहा कि हे तात, लक्ष्मण के लड़कपन की बात न कहना।


कहि प्रणामकछुकहनलिय, सियभइशिथिलसनेह।
थकितवचन लोचनसजल, पुलक पल्लवित देह॥

प्रणाम करकर सीताजी कुछ कहने लगीं तो स्नेह से विकल हो गईं। वाणी शिथिल हो गई, आँखों में जल भर आया, और देह में रोमांच हो गया।

तेहि अवसर रघुपतिरुखपाई * केवट पारहिं नाव चलाई

रघुकुलतिलक चले यहि भाँती * देखेउँ ठाढ़ कुलिश करि छाती

उस समय रामजी के रुख की इच्छा पाकर केवट ने नाव को पार जाने के लिए चलाया। रघुवंश-शिरोमणि रामजी इस भाँति चले, और मैंने खड़े-खड़े वज्र की छाती करके देखा।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेशू * जियत फिरेउँ लै रामसँदेशू

असकहिसचिववचनरहिगयऊ * हानिगलानिशोचवश भयऊ

मैं अपना दुःख किस प्रकार कहूँ! रामजी का सँदेसा लेकर जीता लौटा हूँ। ऐसा वचन कह मंत्री चुप रह गये तथा हानि की ग्लानि और सोच के वश हुए।

सुनत सुमन्तवचन नरनाहू * परेउ धरणि उर दारुण दाहू

तलफत विषम मोह मन मापा * माँजा मनहुँ मीनकहँ व्यापा

सुमन्त के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके हृदय में दारुण दाह हुआ, मन में बड़ा मोह भर गया। वह ऐसे तड़पने लगे, जैसे मछली को प्रथम वर्षा के जल का फेना व्यापा हो।

करि विलाप सब रोवहिं रानी * महाविपति किमि जाय बखानी

सुनि विलाप दुखहू दुख लागा * धीरजहू कर धीरज भागा।

बड़ा विलाप कर सब रानियाँ रोती हैं। बड़ी विपत्ति कैसे कही जाय? विलाप सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का धीरज भाग गया।



भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर शोर।
बिपुल बिहँगबन परेउ, मानहु कुलिशकठोर॥

राजभवन का शोर सुन अवध में कोलाहल होने लगा, मानो पक्षियों के वन में कठोर वज्र गिरा हो।

प्राण कण्ठगत भयउ भुवालू * मणिविहीन जिमि व्याकुलव्यालू
इन्द्रिय सकल बिकल भईं भारी * जिमि सरोजश्रेणी बिन वारी

राजा के प्राण कण्ठ में आ गये। जैसे मणि के विना साँप हो, वैसे ही राजा दुखी हैं। उनकी सब इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं, जैसे जल विना कमलों की पाँति सूख जाती है।

कौशल्या नृप दीख मलाना * रविकुलरवि अथवत जियजाना
उर धरि धीर राममहतारी * बोली बचन समयअनुहारी

कौशल्या ने राजा को उदास देखा तो जी में जाना कि अब सूर्यवंश का यह सूर्य अस्त होनेवाला है। रामजी की माता हृदय में धीरज धर समय के अनुसार वचन बोलीं—

नाथ समुझि मन करिय विचारू * रामवियोग पयोधि अपारू
कर्णधार तुम अवधि जहाजू * चढ़ेउ सकलप्रिय वणिकसमाजू

वह राजा से बोलीं—हे नाथ, यह समझकर मन में विचार कीजिए कि राम का विरह अथाह समुद्र है। तुम खेनेवाले हो, चौदह वर्ष की अवधि जहाज है, और सब प्रियजनरूपी सौदागरों का काफिला उस पर सवार है।

धीरज धरिय तो पाइय पारू * नाहिंत बूड़त सब परिवारू
जो जिय धरिय विनय यह मोरी * राम लषण सिय मिलहिं बहोरी

यदि धीरज धरिए तो पार पाइएगा, नहीं तो परिवार डूब जायगा। यदि यह मेरी विनती जी में धरिए तो फिर राम, लक्ष्मण और जानकी मिलेंगी।



प्रियावचनमृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीनजनु, सींचेउ शीतल वारि॥

प्रिया के कोमल वचन सुनते ही राजा ने आँखें खोलकर ऐसे देखा जैसे तड़फड़ाती हुई व्याकुल मछली ठंढे जल से सींच दी गई हो।

धरि धीरज उठि बैठ भुवालू * कहु सुमन्त कहँ राम कृपालू
कहाँ लषण कहँ राम सनेही * कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदेही

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले—हे सुमन्त, कहो, दयालु राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण और स्नेही राम कहाँ हैं ? प्यारी पुत्रवधू जानकी कहाँ हैं ?

बिलपत राउ बिकल बहुभाँती * भइ युगसरिस सिराति न राती
तापस अन्ध शाप सुधि आई * कौशल्यहि सब कथा सुनाई

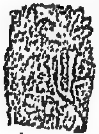
व्याकुल राजा बहुत प्रकार से विलाप करते हैं। रात युग के समान हो गई, बीतती नहीं। राजा को उस समय अन्धे तपस्वी का शाप याद आ गया। तब उन्होंने यह सब कथा कौशल्या को सुनाई।

भयउ बिकल बरणतइतिहासा * रामरहित धिक जीवनआसा
सो तनु राखि करब मैं काहा * जेहि न प्रेमप्रण मोर निबाहा

वह इतिहास कहते समय राजा बहुत विकल हुए और बोले—राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस देह को रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरे प्रेम के प्रण को नहीं निबाहा ?

हा रघुनन्दन प्राणपिरीते * तुमबिन जियत बहुत दिनबीते
हा जानकी लषण हा रघुबर * हा पितुहितचितचातकजलधर

हा प्राणप्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा राम ! हा पिता के हितकारक ! हा चित्तरूपी चातक के मेघ !



राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुपतिबिरह, राउ गये सुरधाम॥

राम के वियोग में "हा राम ! हा राम ! हा राम !" कहते हुए राजा शरीर छोड़ स्वर्ग को चले गये।

जियनमरण फल दशरथ पावा * अण्ड अनेक अमल यशछावा
जियत राम बिधुबदन निहारा * रामबिरह मरि मरण सँभारा

जीने और मरने का फल दशरथ ने पाया, जिनका निर्मल यश अनेक ब्रह्माण्डों में छा गया ; क्योंकि जीते में रामजी का चन्द्रमा-सा मुख देखा और रामजी के वियोग में मरकर अच्छी मौत पाई।

शोचबिकल सब रोवहिं रानी * रूप शील बल तेज बखानी
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा * परहिं भूमितल बारहिंबारा

महाराज के रूप, शील, बल और तेज का बखान करती हुई शोक से व्याकुल सब रानियाँ रोती हैं और बहुत प्रकार से विलाप करती हुई बार-बार पछाड़ें खा-खाकर पृथ्वी पर गिरती हैं।

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी * घर घर रुदन करहिं पुरबासी

अथयउ आजु भानुकुलभानू * धर्मअवधि गुणरूपनिधानू

दास और दासियाँ विकल होकर रोती हैं। घर-घर में पुरवासी रो रहे हैं कि आज सूर्यवंश का सूर्य अस्त हो गया। महाराज दशरथ धर्म की अवधि अर्थात् परम धर्मात्मा और गुण तथा रूप के निधान थे।

गारी सकल कैकयिहिं देहीं * नयनविहीन कीन्ह जग जेहीं
यहिविधि विलपत रैनि बिहानी * आये सकल महामुनि ज्ञानी

सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने राम को वन भेजकर संसार की आँखें हर लीं। इस प्रकार विलाप करते-करते रात बीत गई। तब सब बड़े ज्ञानी मुनि आये।


तब वशिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
शोक निवारेउ सबन कर, निज विज्ञान प्रकाश॥

तब वशिष्ठ मुनि ने समयानुसार बहुत-सी प्राचीन कथाएँ कहकर अपने ज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया।

तेल नाव भरि नृपतनु राखा * दूत बुलाइ बहुरि अस भाखा
धावहु वेगि भरत पहँ जाहू * नृपसुधि कतहुँ कहेउ जनि काहू

नाव में तेल भरकर राजा की देह उसमें धरी। फिर दूत को बुलाकर कहा कि शीघ्र दौड़ो। भरत के पास जाओ; परन्तु राजा का समाचार कहीं किसी से न कहना।

इतना कहेउ भरत सन जाई * गुरु बोलाइ पठये दोउ भाई
सुनि मुनिआयसु धावन धाये * चले वेगि वर वाजि लजाये

भरत से इतना ही कहना कि गुरु ने दोनों भाइयों को बुला भेजा है। मुनि की आज्ञा सुन धावन दौड़े और उत्तम घोड़ों को लजाते हुए तेजी से चले।

अनरथ अवध अरम्भेउ जबते * अशकुन होहिं भरत कहँ तबते
देखहिं रैनि भयानक सपना * जागि करहिं मन कोटि कलपना

अयोध्या में जब से इस अनर्थ का प्रारम्भ हुआ, तब से भरत को असगुन होने लगे। वह रात को डरावने स्वप्न देखते तथा जागने पर मन में करोड़ों तरह की कल्पनाएँ करते थे।

विप्र जेंवाइ देहिं दिन दाना * शिव अभिषेक करहिं विधिनाना
माँगहिं हृदय महेश मनाई * कुशल मातु पितु परिजन भाई

दिन में ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते और अनेक रीति से शिव को स्नान कराते थे। महेश को हृदय से मनाकर माता, पिता, कुटुम्बियों और भाइयों की कुशल का वरदान उनसे माँगते थे।


यहिविधिशोचहिंभरत मन, धावन पहुँचे जाइ।
गुरुअनुशासन श्रवण सुनि, चले महेश मनाइ॥

भरतजी मन में ऐसा सोचते ही थे कि दूत जा पहुँचे। तब गुरु की आज्ञा सुन शिव को मनाकर चले।

चले समीरवेग रथ हाँके * लाँघत शैल सरित वन बाँके
हृदय शोच बड़ कछु न बसाई * अस आनहिं जिय जाउँ उड़ाई

भरतजी पवन के समान वेग से रथ को हाँककर पर्वत, नदी और दुर्गम वनों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में शोच बड़ा है। कुछ वश नहीं—ऐसा जी में लाते हैं कि उड़ जाऊँ।

एक निमेष वर्ष सम जाई * यहि विधि भरत अवध नियराई
कुशकुन होहिं नगर पैठारा * रटहिं कुभाँति कुखेत करारा

एक पल का समय वर्ष के समान बीतता है। इस प्रकार भरतजी अयोध्या के समीप पहुँचे। नगर में पैठते असगुन होते हैं और काले कौवे बुरी तरह से अशुभ स्थानों में बोलते हैं।

खग शृगाल बोलहिं प्रतिकूला * सुनि सुनि होहि भरत उर शूला
श्रीहत सर सरिता वन बागा * नगर विशेष भयानक लागा

पक्षी और सियार सामने मुख करके उलटे बोलते हैं, जिन्हें सुन भरत के हृदय में पीड़ा होती है। तालाब, नदी, वन और बगीचे शोभाहीन हो गये और नगर अति डरावना लगा।

खग मृग हय गज जाहिं न जोये * राम वियोग कुरोग विगोये
नगर नारिनर निपट दुखारी * मनहु सबहिं सब सम्पति हारी

रामजी के विरहरूपी कुरोग से ग्रसे पक्षी, मृग, घोड़े और हाथी देखे नहीं जाते। अयोध्या के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुखी हैं, मानो सबने सब सम्पत्ति हार दी है।



पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवहिं जुहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पूछि न सकहिं, भयविषाद मनमाहिं ॥

नगरनिवासी मिलते हैं, कुछ कहते नहीं; किन्तु जुहारकर चले जाते हैं। भरतजी कुशल नहीं पूछ सकते; क्योंकि डर के कारण मन में शोक है।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी * जनु पुर दशदिशि लागि दवारी
आवत सुत सुनि केकयनन्दनि * हरषी रविकुल जलरुह चन्दनि

बाजार और मार्ग देखे नहीं जाते, मानो नगर की दसों दिशाओं में दावानल लग गई हो। पुत्र को आते सुन सूर्यवंशरूपी कमल के लिए चाँदनी-सी कैकेयी प्रसन्न हुई—

सजि आरती मुदित उठि धाई * द्वारहि भेंटि भवन लै आई
भरत दुखित परिवार निहारा * मानहु तुहिन वनजवन मारा

और आरती साजकर प्रसन्न हो उठ दौड़ी। द्वार पर मिलकर घर में ले आई। भरत ने कुटुम्ब को दुःखित देखा, मानो पाले से मारा हुआ कमलों का वन है।

कैकेयी हरषित यहि भाँती * मनहु मुदित दवलाइ किराती
सुतहिं सशोच देखि मनमारे * पूछति नैहर कुशल हमारे

इस भाँति कैकेयी प्रसन्न है, जैसे वन में दावानल लगाकर भीलिनी खुश हो। पुत्र को शोच-समेत मनमारे देख पूछती है कि मेरे नैहर में कुशल तो है ?

सकल कुशल कहि भरत सुनाई * पूछी निजकुल कुशल भलाई
कहु कहँ तात कहाँ सब माता * कहँ सिय रामलषण प्रिय भ्राता

भरत ने सब कुशल कह सुनाई और अपने वंश की कुशल-भलाई पूछी कि कहो, पिता और सब माताएँ कहाँ हैं ? जानकी और प्यारे भाई राम, लक्ष्मण कहाँ हैं ?



सुनि सुतवचन सनेहमय, कपट नीरभरि नैन।
भरत हृदय जनु शूलसम, पापिनि बोली बैन॥

पुत्र के स्नेहमय वचन सुन आँखों में कपट के आँसू भरकर भरत के हृदय में शूल के समान चुभनेवाले वचन वह पापिन बोली—

तात बात मैं सकल सँवारी * भइ मन्थरा सहाय बिचारी
कछुक काज बिधि बीच बिगारा * भूपति सुरपतिपुर पगु धारा

हे पुत्र, मैंने सब बात सँभाल ली। मन्थरा बेचारी मेरी सहायक हुई। परन्तु बीच में ब्रह्मा ने कुछ काम बिगाड़ दिया, वह यह कि राजा स्वर्गलोक को चले गये।

सुनत भरत भे विकल विषादा * जनु सहमेउ करि केहरि नादा
तात तात हा तात पुकारी * परेउ भूमितल व्याकुल भारी

यह सुनते ही भरतजी शोक से ऐसे दुखी हुए जैसे सिंह के दहाड़ने से हाथी सहम जाय। वह हा पिता ! हा पिता ! कहते हुए व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े।

चलत न देखन पायउँ तोहीं * तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं
बहुरि धीर धरि उठेउ सँभारी * कहु पितुमरणहेतु महतारी

हे पिता ! चलते में मैंने तुमको नहीं देख पाया और आपने मुझे श्रीरामजी को नहीं सौंपा। फिर धीरज धर सँभलकर उठे और बोले—माता, पिता के मरने का कारण कहो।

सुनि सुतवचन कहति कैकेयी * मर्म पाँछि जनु माहुर देयी
आदिहिते सब आपनि करणी * कुटिल कठोर मुदितमन बरणी

पुत्र के वचन सुन कैकेयी कहती है, मानो घाव पोछकर उसमें विष भरती है। पहले से अन्त तक कुटिल और कठोर कैकेयी ने प्रसन्नमन से सब अपनी करतूत कही।



भरतहिं बिसरेउ पितुमरण, सुनत राम बन गौन।
हेतु आपनो जानि जिय, थकित रहे गहि मौन॥

रामजी का वन जाना सुनते ही भरत को पिता का मरना भूल गया। जी में अपने को ही उसका कारण जान वह थकित हो चुप रह गये।

विकलविलोकिसुतहिंसमुझावति * मनहु जरेपर लोन लगावति
तात राउ नहिं शोचन योगू * बड़े सुकृत तस कीन्हेउ भोगू

पुत्र को दुःखित देख माता समझाती है, मानो जले पर नमक लगाती है कि ऐ पुत्र, राजा शोच करने के योग्य नहीं हैं। जितने बड़े पुण्य-फल हैं, वे सभी उन्होंने भोगे।

जीवत सकल जन्मफल पाये * अन्त अमरपति सदन सिधाये
अस अनुमानि शोच परिहरहू * सहित समाज राज पुर करहू

जीते में जन्म का सब फल पाया और अन्त में इन्द्रलोक को चले गये, ऐसा विचारकर शोच छोड़ो और अपने समाजसमेत नगर में राज्य करो।

सुनि सहमेउ सुठि राजकुमारा * पाके क्षत जनु लाग अँगारा
धीरज धरि भरि लीन्ह उसासा * पापिनि सबहि भाँति कुलनासा

यह सुन सुन्दर राजकुमार भरत डर गये, मानो पके घाव में किसी ने अंगारा रख दिया। धीरज धर साँस भरकर कहा—पापिनी! तूने सब विधि कुल का सर्वनाश कर डाला।

जोपै कुरुचि रही असि तोहीं * जनमत कस नहिं मारेसि मोहीं
पेड़ काटि तैं पल्लव सींचा * मीन जियनहित वारि उलीचा

यदि तेरी ऐसी कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने वृक्ष काट-कर पत्तों को सींचा और मछली के जीने के लिए जल उलच फेंका है।



हंसवंश दशरथ जनक, राम लषण से भाइ।
जननी तू जननी भई, विधिते कहा बसाइ॥

कहाँ तो सूर्यवंश, दशरथ पिता, राम-लक्ष्मण भाई! और कहाँ तू मेरी माता हुई! ब्रह्मा से वश ही क्या?

जबते कुमति कुमति जियठयऊ * खण्ड खण्ड होइ हृदय न गयऊ
वर माँगत मन भइ न पीरा * जरि न जीह मुँह परे न कीरा

हे कुबुद्धिनी, जब तेरे जी में यह कुमति आई थी, तब तेरा हृदय टूक-टूक क्यों नहीं हो गया? वरदान माँगते समय मन में पीड़ा नहीं हुई, जीभ नहीं जली, और मुँह में कीड़े नहीं पड़े?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं * मरणकालविधिमतिहरिलीन्हीं
विधिहु न नारि हृदयगति जानी * सकल कपट अघ अवगुण खानी

राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया? क्या मरने के समय विधाता ने उनकी बुद्धि हर

ली थी ! सच है, ब्रह्मा भी सब कपट, पाप और अवगुणों की खान स्त्री के हृदय की गति नहीं जानते, राजा तो मनुष्य ही थे।

सरल सुशील धर्मरत राऊ * सो किमि जानहिं तीय सुभाऊ
अस को जीव अहै जगमाहीं * जेहि सिय राम प्राणप्रिय नाहीं

राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे; वे स्त्री का स्वभाव क्या जानें ? संसार में ऐसा कौन-सा जीव है, जिसको राम और जानकी प्राणों के समान प्यारे नहीं।

भे अति अहित राम ते तोहीं * को तू अहसि सत्य कहु मोहीं
जो हसि सो हसि मुँहमसिलाई * आँखि ओट उठि बैठसि जाई

वे राम तुझे बड़े वैरी हो गये। मुझसे सच कह, तू कौन है ? अच्छा, तू जो है सो है, मुँह में स्याही लगा उठकर आँखों की ओट जा बैठ।


रामविरोधीहृदय ते, प्रकट कीन्ह विधि मोहिं।
मोसमान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहिं॥

ब्रह्मा ने रामविरोधी हृदय से मुझे पैदा किया, इससे मेरे बराबर कोई पापी नहीं। तुझसे अब कुछ कहना व्यर्थ ही है।

सुनि शत्रुहन मातु कुटिलाई * जरै गात रिस कछु न बसाई
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई * बसन विभूषण विविध बनाई

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न के अंग रिस से जलते हैं; परन्तु कुछ बस नहीं चलता। उसी समय बहुत प्रकार के कपड़े और गहने सजकर वहाँ कुबड़ी (मन्थरा) आई।

लखि रिसभरेउ लषणलघुभाई * जरत महानल जिमि घृतपाई
हुमकि लात तकि कूबर मारा * परि मुँहभर महि करत पुकारा

लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी उसको देखकर रिस से ऐसे भर गये, जैसे जलती हुई आग घी की आहुति पाकर बढ़ती है। उन्होंने हुमककर कूबर ताककर ऐसी लात मारी कि मुँहभरा पृथ्वी में गिरकर वह दोहाई खींचने लगी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू * दलितदशन मुखरुधिर प्रचारू
अहह दैव मैं काह नशावा * करत नीक फल अनइस पावा

मंथरा का कूबर टूट गया, खोपड़ी फूट गई, दाँत टूट गये, मुँह से खून बहने लगा, और कहने लगी कि हाय विधाता ! मैंने क्या नसाया है कि अच्छा काम करते बुरा फल पाया।

सुनिरिपुहनलखिनखशिखखोटी * लगे घसीटन धरिधरि झोंटी
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई * कौशल्या पहँ गे दोउ भाई

शत्रुघ्न नख से चोटी तक उसकी खुटाई सुनकर चोटी पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधान भरतजी ने उसे छुड़ा दिया। फिर दोनों भाई कौशल्याजी के पास गये—


मलिनवसन विवरण विकल, कृशशरीर दुखभार।
कनकवरण वर वेलिवन, मानहु हनी तुषार॥

वह मैले कपड़े पहने थीं। उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। वह दुखी और दुबली देहवाली थीं। उनके ऊपर बड़ा दुःख पड़ा है, मानो सोने की-सी रंगवाली उत्तम वेलि के बन में पाला पड़ गया हो।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई * मूर्च्छित अवनि परी भहराई
देखत भरत विकल भये भारी * परे चरण तनदशा विसारी

भरत को देख माता उठ दौड़ी और मूर्च्छित होकर चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। भरतजी देखते ही व्याकुल हुए और देह की दशा भुलाकर चरणों में गिर पड़े—

मातु तात कहँ देहु दिखाई * कहँ सिय राम लषण दोउ भाई
केकयि कत जनमीजगमाँझा * जो जनमी भइ काहे न बाँझा

और बोले माताजी, पिताजी को दिखा दीजिए और बताइए, सीताजी व दोनों भाई राम, लक्ष्मण कहाँ हैं? री कैकेयी! तूने संसार में क्यों जन्म लिया और यदि जन्मी थी तो बाँझ क्यों न हुई?

कुलकलंक जेहिं जन्मेउ मोही * अपयश भाजन प्रियजनद्रोही
कोत्रिभुवनमोहिंसरिसअभागी * गति असितोरि मातुजेहिलागी

जिसने अपयश के पात्र, प्यारे जनों के वैरी और कुलकलंक मुझको पैदा किया। हे माता, तीनों लोकों में मेरे समान कौन अभागी है, जिसके कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई।

पितु सुरपुर वन रघुकुलकेतू * मैं केवल अनरथ कर हेतू
धिक मोहिंभयउ वेणुवनआगी * दुसह दाह दुख दूषणभागी

पिता का स्वर्गवास और रघुवंशकेतु रामजी का वन जाना, इन दोनों अनर्थों का कारण मैं ही हूँ। मुझे धिक्कार है, जो बाँसों के वन में आग सा हुआ तथा असह्य दाह, दुःख और दोष का भागी बना।


मातु भरत के वचन मृदु, सुनि पुनि उठीं सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचत वारि॥

माता कौशल्या भरत के ये कोमल वचन सुन फिर सँभलकर उठीं और आँसू बहाती हुई माता ने भरत को उठाकर हृदय से लगा लिया।

सरल सुभाय मातु उर लाये * अतिहित मनहुँ राम फिरिआये
भेंटेउ बहुरि लषण लघु भाई * शोक सनेह न हृदय समाई

माता ने सरल स्वभाव से बड़े प्यार से भरत को हृदय में लगा लिया, मानो राम ही

लौट आये। फिर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न को मिलीं। उस समय का शोक और स्नेह हृदय में नहीं समाता।

देखि सुभाव कहत सब कोई * राममातु अस काहे न होई
माता भरत गोद बैठारे * आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे

कौशल्या का स्वभाव देख सब कोई कहते हैं कि राम की माता ऐसी क्यों न हों। माता ने भरत को गोदी में बिठाया और उनके आँसू पोंछकर यों कोमल वचन कहे—

अजहुँ बच्छ बलि धीरजधरहू * कुसमय समुझि शोक परिहरहू
जनि मानहु हियहानि गलानी * काल कर्म गति अघटित जानी

हे वत्स, अब भी धीरज धरो और बुरा समय समझकर शोक करना छोड़ो। काल और कर्म की गति अटल जानकर हृदय में राम-वियोग हानि और उसकी ग्लानि मत मानो।

काहुहि दोष देहु जनि ताता * भा मोहिं सब विधि वामविधाता
जो ऐसेहु दुख मोहिं जियावा * अजहुँ को जान काह तेहि भावा

हे पुत्र, किसी को दोष मत दो। विधाता ही सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हैं, जिसने ऐसे दुःख में भी मुझे जिलाया। अब भी कौन जानें उसकी क्या इच्छा है!

दो० पितुआयसु भूषणवसन, तात तजे रघुवीर।
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे वल्कल चीर॥

हे पुत्र, पिता की आज्ञा से रामजी ने गहनों और कपड़ों को छोड़ दिया। उनके हृदय में हर्ष या विस्मय कुछ नहीं हुआ। उन्होंने वल्कल-वसन पहन लिये।

मुख प्रसन्न मन हर्ष न रोषू * सबकर सब विधिकरि परितोषू
चले विपिनसुनिसियसँग लागी * रही न राम चरण अनुरागी

उनका मुख उस समय भी प्रसन्न था। मन में हर्ष और क्रोध न आया। सब प्रकार से सबका परितोष करके वह वन को चले। यह सुनकर सीताजी भी संग लगीं और राम के चरणों की अनुरागिणी होने के कारण वे यहाँ न रहीं।

सुनतहिं लषण चले उठिसाथा * रहे न यतन किये रघुनाथा
तब रघुपति सबही सिर नाई * चले संग सिय अरु लघुभाई

यह सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले। रघुनाथ ने उन्हें रोकने का उपाय किया, परन्तु वह रहे नहीं। तब राम ने सबको सिर नवाया तथा सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ ले चले गये।

राम लषण सिय बनहिं सिधाये * गई न संग न प्राण पठाये
यह सब भा इन आँखिन आगे * तहुँ न तजा तनु जीव अभागे

राम, लक्ष्मण और जानकी वन को गये। पर मैं न तो साथ गई और न प्राणों को ही भेजा। यह सब इन आँखों के आगे हुआ तो भी अभागे शरीर ने प्राणों को न छोड़ा।

मोहिं न लाज निजनेह निहारी * रामसरिस सुत मैं महतारी
जियन मरण भल भूपतिजाना * मोर हृदय शत कुलिशसमाना

अपना स्नेह देखकर मुझे इसकी लाज नहीं है कि राम के समान पुत्र और मैं माता हूँ। अच्छा जीना और मरना तो राजा ने जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्रों के समान कठोर हो गया।



कौशल्या के वचन सुनि, भरत सहितरनिवास।
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहु शोकनिवास॥

कौशल्या के वचन सुन रनिवाससमेत भरतजी विकल होकर विलाप करने लगे। राजभवन मानो शोक का निवास हो गया।

विलपहिं विकल भरतदोउ भाई * कौशल्या लिय हृदय लगाई
भाँति अनेक भरत समुझाये * कहि विवेकमय वचन सुनाये

विकल होकर भरत और शत्रुघ्न विलाप करने लगे। तब कौशल्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया। उन्होंने बहुत प्रकार से भरत को समझाया और विवेक से भरे वचन कह सुनाये।

भरतहु मातु सकल समुझाईं * कहि पुराण श्रुति कथा सुनाईं
छलविहीन शुचि सरल सुवाणी * बोले भरत जोरि युग पाणी

भरत ने भी सब माताओं को समझाया और वेद, पुराण की कथाएँ कह सुनाईं। तब भरतजी दोनों हाथ जोड़ छल से रहित, पवित्र और सरल उत्तम वाणी बोले।

जो अघ मातपिता गुरु मारे * गाइ गोठ महि सुरपुर जारे
जो अघ तिय बालकवधकीन्हें * मीत महीपहिं माहुर दीन्हें

भरत ने कहा—जो पातक माता, पिता और गुरु के मारने से तथा गोशाला, पृथ्वी, देवमन्दिर के जलाने से होता है, स्त्री और बालक के मारने से तथा मित्र और राजा को विष देने से जो पाप होता है।

जो पातक उपपातक अहहीं * कर्म वचन मन भव कवि कहहीं
ते पातक मोहिं होहिं विधाता * जो यह होय मोर मत माता

कवियों ने मन, वचन, कर्म से उत्पन्न जिन ब्रह्महत्या आदि पातकों और झूठ आदि उपपातकों का वर्णन किया है, हे माता, यदि राम के वनवास में मेरा कुछ भी मत हो, तो इन्हीं पापों के फल मुझे मिलें।



जे परिहरि हरिहरचरण, भजहिं भूतगण घोर।
तिनकी गति मोहिं देहु विधि, जो जननी मत मोर॥

हे माता, जो विष्णु और महादेव के चरणों को छोड़कर भयंकर भूतगणों की सेवा करते हैं, विधाता उनकी गति मुझे दे, यदि मेरा ऐसा मत हो।

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं * पिशुन पराय पाप कहि देहीं
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी * वेद विदूषक विश्व विरोधी

जो वेद बेचते हैं और धर्म की हानि करते हैं, अथवा धर्म करके उसका फल माँगकर उसे दुह लेते हैं, जो चुगुल हैं, जो पराया पाप कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय, क्रोधी, वेदनिन्दक और संसार के वैरी हैं,

लोभी लम्पट लोलुप चारा * जे ताकहिं परधन परदारा
पावहुँ मैं तिनकी गति घोरा * जो जननी यह सम्मत मोरा

जो लोभी, कामी या ठग और अजितेन्द्रिय हैं तथा जो पराये धन और पराई स्त्री को ताकते हैं, उनकी ही भयानक गति मैं पाऊँ, जो हे माता, यह मेरा मत हो।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे * परमारथपद विमुख अभागे
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई * जिनहिं न हरिहर सुयश सुहाई

जो साधु-संग के प्रेमी नहीं हैं, जो अभागे परमार्थ के पद से विमुख हैं, जो मनुष्य की देह पाकर हरि को नहीं भजते, जिनको विष्णु और शिव की कथा नहीं सुहाती,

तजि श्रुतिपन्थ वामपथ चलहीं * वंचक विरचि वेष जग छलहीं
तिनकी गति मोहिं शंकर देऊ * जननी जो जानहुँ यह भेऊ

जो वेदमार्ग छोड़ वाममार्ग पर चलते हैं और ठगों का वेष बनाकर संसार को छलते हैं, हे माता, जो मैं यह भेद जानता होऊँ तो शिवजी उनकी गति मुझको दें।



मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम, सदा वचन मन काय॥

भरतजी के सत्य और सरल स्वभाव के वचन सुनकर माता कौशल्या कहती हैं कि हे पुत्र, तुम सदा मन, वचन और कर्म से राम को प्यारे हो।

राम प्राणते प्राण तुम्हारे * तुम रघुपतिहिं प्राणते प्यारे
विधु विष चुवै स्रवै हिम आगी * होहिं वारिचर वारिविरागी

राम तुमको प्राणों से प्यारे हैं और तुम राम को प्राणों से प्यारे हो। यदि चन्द्रमा से विष चुवे, पाले से आग बहे और जल के जीव जल से स्नेह छोड़ें।

भये ज्ञान बरु मिटै न मोहू * तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू
मत तुम्हार यह जे जड़ कहहीं * ते सपनेहु सुखसुयश न लहहीं

चाहे उत्तम ज्ञान होने पर भी अज्ञान न मिटे, पर तुम राम के प्रतिकूल न होगे। अपने

राजतिलक और राम के वनवास के बारे में तुम्हारा मत है, ऐसा जो मूर्ख कहें, वे स्वप्न में भी सुख और सुयश को नहीं पावेंगे।

अस कहि मातु भरत समुझाये * थन पय स्रवहिं नयन जल छाये
करत विलाप विपुल यहि भाँती * बैठे बीति गई सब राती

ऐसा कहकर भरत को माता ने समझाया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और आँखों में जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते-करते बैठे ही बैठे सब रात बीत गई।

वामदेव वशिष्ठमुनि आये * सचिव महाजन सकल बुलाये
मुनि बहुभाँति भरत उपदेशे * कहि परमारथवचन सुदेशे

वामदेव और वशिष्ठ मुनि प्रातःकाल आये। उन्होंने मन्त्री और सब बड़े लोगों को बुलाया। मुनि ने परमार्थ के सुन्दर वचन कहकर बहुत प्रकार से भरत को उपदेश दिया—



तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आज।
उठे भरत गुरुवचन सुनि, करन कहे सब काज॥

हे तात, हृदय में धीरज धरो और जैसा आज अवसर है, उसके अनुसार काम करो। गुरु के वचन सुनकर भरतजी ने सब काम करने को कहा।

नृपतनु वेदविहित अन्हवावा * परम विचित्र विमान बनावा
गहि पद भरत मातु सब राखीं * रहीं रामदर्शन अभिलाखीं

वेद की विधि से राजा के शव को नहलाया और बड़ा विचित्र विमान बनाया। भरतजी ने चरण पकड़के सब माताओं को रोक रक्खा—सती न होने दिया। वे भी राम के दर्शनों की चाह से रह गईं।

चन्दन अगर भार बहु आये * अमित अनेक सुगन्ध सुहाये
सरयु तीर रचि चिता बनाई * जनु सुरपुर सोपान सुहाई

चन्दन अगर के बहुत भार (बोझ) आये, जिनमें बहुत प्रकार की सुहाई सुगन्ध थी। सरयू के किनारे रचकर स्वर्ग की सुहाई सीढ़ी के समान चिता बनाई गई।

यहिविधि दाहक्रिया सब कीन्ही * विधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्ही
शोधि स्मृति सब वेद पुराना * कीन्ह भरत दशगात्र विधाना

भरत ने इस प्रकार राजा का सब दाहकर्म किया और विधिपूर्वक नहाकर तिलाञ्जलि दी। सब स्मृति, वेद और पुराण में देखकर, विचारकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा * तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा
भये विशुद्ध देइ सब दाना * धेनु बाजि गज वाहन नाना

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ सब वैसा ही हजारों तरह से किया। भरतजी सब दान देकर पवित्र हुए और गऊ, घोड़े और हाथी आदि बहुत प्रकार की सवारियाँ दीं।



सिंहासन भूषण बसन, अन्न धरणि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरणकाम॥

सिंहासन, गहना, कपड़ा, अन्न, पृथ्वी, धन और धाम भरतजी ने दिये और ब्राह्मण लोग पाकर पूर्णकामनावाले हुए।

पितुहित भरत कीन्हजसकरणी * सो मुखलाख जाय नहिं बरणी
सुदिन शोधि मुनिवर तहँ आये * सचिव महाजन सकल बुलाये

भरतजी ने पिता के लिए जैसा कार्य किया, वह लाख मुखों से नहीं कहा जा सकता। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी अच्छा दिन शोधकर वहाँ आये और सब मन्त्रियों और बड़े लोगों को बुलाया।

बैठे राजसभा सब जाई * पठये बोलि भरत दोउ भाई
भरत वशिष्ठ निकट बैठारे * नीति धर्ममय वचन उचारे

सब राजा की सभा में जाकर बैठे। वशिष्ठजी ने भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुला भेजा। वशिष्ठजी ने भरत को पास बिठाकर नीति और धर्म के वचन कहे।

प्रथम कथा मुनिवर सब बरणी * केकयि कुटिल कीन्हजसकरणी
भूप धर्म व्रत सत्य सराहा * जेहि तन परिहरि प्रेम निबाहा

पहले वशिष्ठमुनि ने वह सब कथा कही, जैसा कि कुटिल कैकेयी ने काम किया। फिर राजा के धर्म, व्रत और सत्य की प्रशंसा की, जिन्होंने देह छोड़कर प्रेम को निबाहा।

कहत रामगुण शील सुभाऊ * सजल नयन पुलके मुनिराऊ
बहुरि लषणसियप्रीति बखानी * शोकसनेहमगन मुनि ज्ञानी

रामजी के गुण, शील, स्वभाव का बखान करते हुए मुनिराज की आँखों में आनन्द के आँसू आ गये और शरीर में रोमांच हो आया। फिर लक्ष्मण और जानकी की प्रीति का वर्णन कर ज्ञानी भी मुनि शोक और स्नेह में डूब गये।



सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानिलाभ जीवनमरण, यशअपयश विधिहाथ॥

मुनिनाथ ने बिलखकर कहा—हे भरत, सुनो। भावी (होनहार) बड़ी प्रबल है; और हानि, लाभ, जीना, मरना, यश, अपयश सब विधाता के हाथ है।

अस विचारि केहि दीजिय दोषू * वृथा काहि पर कीजिय रोषू

तात बिचार करहु मनमाहीं * शोचयोग्य दशरथ नृप नाहीं

ऐसा विचारकर किसको दोष दिया जाय और किस पर वृथा क्रोध किया जाय ? हे तात, मन में विचार करो तो महाराज दशरथ शोच करने के योग्य नहीं हैं।

शोचिय बिप्र जो बेदबिहीना * तजि निजधर्म विषयलवलीना
शोचियनृपतिजो नीति न जाना * जेहि न प्रजा प्रिय प्राणसमाना

वह ब्राह्मण शोच के योग्य है, जो वेद न पढ़ा हो और अपना धर्म छोड़कर विषयभोग में लवलीन हो। जो न्याय को नहीं जानता और जिसे प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं, वह राजा शोच के योग्य है।

शोचिय बैश्य कृपण धनवानू * जो न अतिथिशिवभक्त सुजानू
शोचिय शूद्र विप्रअपमानी * मुखर मानप्रिय ज्ञानगुमानी

जो धनवान् वैश्य कृपण हो, अतिथि और शिव का चतुर भक्त न हो, वह शोचनीय है। ब्राह्मण का अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला और ज्ञान का अभिमानी, घमंड रखनेवाला शूद्र शोचनीय है।

शोचिय पुनि पतिबंचक नारी * कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी
शोचिय बटु निजब्रत परिहरई * जो नहिं गुरुआयसु अनुसरई

पति को छलनेवाली, कुटिल, कर्कशा और अपनी इच्छा के अनुसार चलनेवाली स्त्री भी शोचनीय है। वह ब्रह्मचारी भी शोचनीय है, जो अपने व्रत को छोड़ दे और गुरु की आज्ञा के अनुसार न चलता हो।



शोचिय गृही जो मोहबश, करै धर्मपथ त्याग।
शोचिय यती प्रपञ्चरत, बिगत बिबेक बिराग॥

वह अज्ञान के वश गृहस्थ भी शोचनीय है, जो धर्म के मार्ग को छोड़ दे। जो यती (संन्यासी) ज्ञान-वैराग्य को छोड़कर संसार के प्रपंच में पड़ा हो, वह भी शोचनीय है।

बैखानस सोइ शोचनयोगू * तप बिहाय जेहि भावहि भोगू
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी * जननि जनक गुरु बन्धु बिरोधी

तपस्या छोड़कर जिसको भोग अच्छा लगे, वह वानप्रस्थी शोचनीय है। चुगलखोर, बिना कारण क्रोध करनेवाला और माता, पिता गुरु और भाई का विरोधी भी शोचनीय है।

शोचिय लोभनिरत अतिकामी * सुरश्रुतिनिन्दक परधनस्वामी
सब बिधि शोचिय परअपकारी * निजतनपोषक निर्दय भारी

लोभी, अत्यन्त कामी, देवता और वेद का निन्दक और पराये धन पर हाथ सफा करनेवाला शोचनीय है। पराया अपकार करनेवाला सब प्रकार से शोचनीय है। केवल अपनी देह को पालनेवाला और भारी निर्दयी भी शोचनीय है।

शोचनीय सबही विधि सोई * जो न छाँड़ि छल हरिजन होई
शोचनीय नहिं कोशलराऊ * भुवन चारिदश प्रकटप्रभाऊ

वह तो सभी प्रकार शोचनीय है, जो छल छोड़कर हरि का भजन नहीं करता। परन्तु कोशलराज दशरथजी किसी तरह शोचनीय नहीं हैं। उनका प्रभाव चौदहों भुवनों में प्रकट है।

भयउ न अहै न होनेउहारा * भूप भरत जस पिता तुम्हारा
विधिहरिहरसुरपतिदिशिनाथा * बरणहिं सब दशरथगुणगाथा

हे भरत, तुम्हारे पिता जैसे हुए हैं, वैसा न कोई हुआ है, न कोई इस समय है, और न कोई कभी होगा। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल ये सब दशरथ के गुणों की गाथा गाते हैं।



कहहु तात केहिभाँति कोउ, करै बड़ाई तासु।
राम लषण तुम शत्रुहन, सरिससुवनशुचिजासु॥

हे तात, कहो, कोई किस प्रकार उनकी बड़ाई करके पार पा सकता है, जिनके राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं।

सब प्रकार भूपति बड़भागी * बादि विषाद करहु तेहिलागी
अस सुनिसमुझिशोचपरिहरहू * शिरधरि राउरजायसु करहू

महाराज तो सब प्रकार बड़े भाग्यवान हैं। उनके लिए वृथा शोच मत करो। ऐसा सुन और समझकर शोच छोड़ दो। राजा की इच्छा या आज्ञा सिरमाथे पर रखकर उसका पालन करो।

राउ राजपद तुम कहँ दीन्हा * पितावचन फुर चाहिय कीन्हा
तजे राम जेहि वचनन लागी * तनु परिहरेउ राम विरहागी

राजा ने तुमको राजपद दिया है। पिता का वचन तुम्हें सत्य करना चाहिए; क्योंकि उन्होंने वचन के लिए ही राम को छोड़ा और राम के वियोग की अग्नि में देह को भी छोड़ दिया।

नृपहिं वचनप्रियनहिंप्रियप्राणा * करहु तात पितुवचनप्रमाणा
करहु शीशधरि भूपरजाई * है तुमकहँ सब भाँति भलाई

राजा को अपने वचन प्यारे थे, प्राण नहीं। हे तात, पिता का वचन ही तुम्हारे लिए प्रमाण है। उसे मानो। राजा की आज्ञा के पालन करने में ही तुम्हारी सब तरह से भलाई है।

परशुराम पितु आज्ञा राखी * मारी मातु लोक सब साखी
तनय ययातिहि यौवन दयऊ * पितु आज्ञाअघअयश न भयऊ

परशुरामजी ने पिता की आज्ञा मानकर माता को मार डाला, इसे सारा संसार जानता

है। पुत्र ने ययाति को यौवन दिया; पर पिता की आज्ञा से उसे न पाप लगा और न अपयश ही हुआ।



अनुचितउचितविचारतजि, जे पालहिं पितुबैन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन॥

योग्य, अयोग्य का विचार छोड़कर जो पिता का वचन पालते हैं, वे ही सुख और सुयश के पात्र होकर इन्द्र के लोक में बसते हैं।

अवशि नरेशवचन फुर करहू * पालहु प्रजा शोक परिहरहू
सुरपुर नृप पैहैं परितोषू * तुम कहँ सुयश सुकृत नहिं दोषू

राजा का वचन अवश्य सत्य करो, प्रजा को पालो, शोक को छोड़ दो। इससे राजा स्वर्ग में प्रसन्नता पावेंगे और तुमको सुयश तथा पुण्य होगा, दोष नहीं लगेगा।

वेदविहित सम्मत सबहीका * जेहि पितु देइ सो पावहि टीका
करहु राज परिहरहु गलानी * मानहु मोर वचन हित जानी

वेद में यह कहा है और सबकी यही सम्मति है, जिसको पिता राज्य दे, वही तिलक पाता है। इसलिए हित जानकर मेरा वचन मानो और ग्लानि छोड़कर राज्य करो।

सुनि सुख लहब रामवैदेही * अनुचित कहब न पण्डित केही
कौशल्यादि सकल महतारी * तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी

यह सुनकर राम, जानकी सुख पावेंगे और इसे कोई पण्डित भी अनुचित नहीं कहेगा। कौशल्या आदि सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

प्रेम तुम्हार रामकर जानहिं * सो सब विधि तुमसन भलमानहिं
सौंपेहु राज राम के आये * सेवा करेहु सनेह सुहाये

वे माताएँ तुम्हारा और राम का परस्पर प्रेम जानती हैं, सो सब प्रकार से तुम्हारे इस काम को भला ही मानेंगी। तुम राम के आने पर उनको राज्य सौंप देना और स्नेह-पूर्वक उनकी सेवा करना।



कीजियगुरुआयसुअवशि, कहहिं सचिवकरजोरि।
रघुपति आये उचित जस, तब तस करब बहोरि॥

तब हाथ जोड़कर मन्त्री ने भरत से कहा—आप अवश्य गुरु की आज्ञा के अनुसार काम कीजिए। फिर रामजी के आने पर जैसा उचित हो, वैसा कीजिएगा।

कौशल्या धरि धीरज कहहीं * पूत पथ्य गुरुआयसु अहहीं
सो आदरिय करिय हितमानी * तजिय विषाद कालगति जानी

कौशल्या धीरज धरकर कहने लगीं—हे पुत्र, गुरु की आज्ञा हितकारी होती है। हित मानकर आदर के साथ उसका पालन करो और काल की गति जानकर विषाद को छोड़ दो।

वन रघुपति सुरपुर नरनाहू * तुम यहि भाँति तात कदराहू
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा * तुमही सुत सब कहँ अवलम्बा

हे तात, राम वन में और राजा स्वर्ग में हैं, और तुम इस प्रकार हिम्मत छोड़ रहे हो। हे पुत्र, कुटुम्बी, प्रजा, मन्त्री और सब माताएँ, इन सबके एक तुम्हीं अवलम्ब (सहारा) हो।

लखि विधि वाम कालकठिनाई * धीरज धरहु मातु बलिजाई
शिरधरि गुरुआयसु अनुसरहू * प्रजा पालि परिजन दुख हरहू

काल की कठिनता और विधाता को प्रतिकूल देखकर धीरज धरो। माता बलिहारी जाती है। शीश धर के गुरु की आज्ञा मानो, और प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों का दुःख हरो।

गुरु के वचन सचिव अभिनन्दन * सुनत भरतहियहित जनुचन्दन
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी * शील सनेह सरल रस सानी

गुरु के वचन और मन्त्रियों को उनका समर्थन करना सुनकर भरत के हृदय में जैसे किसी ने चन्दन लगा दिया—उनके हृदय का दाह इन वचनों से ठंडा पड़ गया। फिर शील, स्नेह और सरल रस से सानी माता की वाणी सुनी।

छन्द

सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अंकुर नये॥
सो दशा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की॥

सरल रस से सानी माता की वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो उठे। उनके नयनकमलों से आँसू बहने लगे। मानो वह उसी नयनजल से हृदय में वियोग के नये अँखुवों को सींचते हैं। उस समय उस दशा को देखते ही सबको देह की सुधि भूल गई। तुलसीदासजी कहते हैं कि आदरपूर्वक सब सहज ही भरत के स्नेह की सीमा को सराहते हैं।


भरत कमलकर जोरि, धर्मधुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥

धर्मधुरन्धर भरतजी ने कमल-तुल्य हाथों को जोड़ धीरज धरकर अमृत में बोरे हुए से वचनों के द्वारा इस प्रकार सबको उचित उत्तर दिया—

मोहिं उपदेश दीन्ह गुरु नीका * प्रजा सचिव सम्मत सबहीका
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा * अवशिशीशधरिचाहिय कीन्हा

गुरुजी ने मुझको अच्छा सिखावन दिया, जो कि प्रजा, मन्त्री सबों की सम्मति के अनुसार है। फिर माता ने योग्य आज्ञा दी, जो कि अवश्य ही सिर पर रखकर करनी चाहिए।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी * सुनिमनमुदितकरियभलिजानी
उचितकिअनुचितकियेविचारू * धर्म जाइ शिर पातक भारू

गुरु, पिता, माता और स्वामी की हितकारी वाणी सुन मन में प्रसन्न होकर अच्छी जानकर उसका पालन करना चाहिए। इसमें उचित, अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है एवं सिर पर पाप का बोझ होता है।

तुम तौ देहु सरल सिख सोई * जो आचरत मोर हित होई
यद्यपि यह जानत हौं नीके * तदपि होत परितोष न जीके

तुम तो वही सीधी सीख देते हो, जिसके करने में मेरा भला होगा। यद्यपि यह अच्छी प्रकार से जानता हूँ, तो भी जी को सन्तोष नहीं होता।

अब तुम मोरि विनय सुनि लेहू * मोहिं अनुहरत सिखावन देहू
उत्तर देउँ छमब अपराधू * दुखित दोष गुण गणहिं न साधू

अब मेरी विनती सुन लीजिए और मुझको योग्य शिक्षा दीजिए। मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा करना; क्योंकि दुखिया के दोष-गुणों को सज्जन नहीं गिनते।



पितु सुरपुर सियरामबन, करन कहहु मोहिं राज।
यहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

पिताजी स्वर्ग और सीता-सहित रामजी वन को गये। मुझसे राज्य करने को कहते हो, तो इसमें आप मेरा हित समझते हैं या अपना बड़ा काम?

हित हमार सियपति सेवकाई * सो हरि लीन्ह मातुकुटिलाई
मैं अनुमानि दीख मनमाहीं * आन उपाय मोर हित नाहीं

सीतापति की सेवा में मेरा हित था; उसको माता की कुटिलता ने हर लिया है। मैंने मन में अनुमान करके देखा है कि और किसी उपाय से मेरा हित नहीं है।

शोकसमाज राज्य केहि लेखे * लषणरामसियपद बिनु देखे
बादि बसन बिनु भूषण भारू * बादि विरति बिनु ब्रह्मविचारू

लक्ष्मण, राम और जानकीजी के चरणों को बिना देखे शोक की खान राज्य किस काम का है? जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्म का विचार वृथा।

सरुज शरीर बादि बहु भोगा * बिनु हरिभक्ति बादि जपयोगा
बादि जीव बिन देह सुहाई * बादि मोर सब बिनु रघुराई

रोगी के लिए सब विषय-भोग वृथा हैं, और विष्णु की भक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ। जैसे जीव के बिना सुन्दर शरीर, वैसे ही रामजी के बिना मेरा सब काम वृथा है।

जाउँ रामपहँ आयसु देहू * एकहि आँक मोर हित येहू
मोहिं नृपकरि आपनभलचहहू * सो सनेह जड़तावश अहहू

मुझे आज्ञा दो, मैं राम के समीप जाऊँ। यही एक मेरा हित है। तुम लोग मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो, सो इसका कारण तुम्हारा स्नेह और जड़ता के वश होना ही है।



कैकेयीसुत कुटिलमति, रामविमुख गतलाज।
तुम चाहहु सुख मोहवश, मोहिं से अधम के राज॥

मैं कैकेयी का पुत्र, कुटिल मति एवं राम से विमुख होकर लज्जा से रहित हूँ। सो मुझसे नीच के राज्य में मोहवश तुम लोग सुख चाहते हो।

कहहुँ सत्य सुनि सब पतियाहू * चाहिय धर्मशील नरनाहू
मोहिं राज हठि देहहु जबहीं * रसा रसातल जाइहि तबहीं

सच कहता हूँ, सुनकर सब विश्वास मानो कि राजा धर्मशील होना चाहिए। हठ से जब मुझको राज्य दोगे, तब पृथ्वी पाताल को चली जायगी।

मोहिं समान को पापनिवासी * जेहिलागि सीय राम वनवासी
राउ रामकहँ कानन दीन्हा * बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा

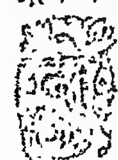
मेरे बराबर कौन-सा पापी है, जिसके कारण सीता और राम वनवासी हुए। राजा ने राम को वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वर्ग सिधार गये।

मैं शठ सब अनरथ कर हेतू * बैठि बात सब सुनौं सचेतू
बिन रघुबीर बिलोकि अवासू * रहे प्राण सहि जग उपहासू

मैं सब अनर्थ का कारण और मूर्ख होकर जीवित, होशहवास में बैठा हुआ ये सब बातें सुनता हूँ। रामजी के बिना घर देखकर प्राण रहे तथा उन्होंने संसार में उपहास सह लिया।

राम पुनीत विषयरस रूखे * लोलुप भूप भोग के भूखे
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई * निदरि कुलिश जेहि लही बड़ाई

रामजी पवित्र और सब विषयों के भोग से उदासीन हैं। लोभी राजा लोग भोग-विलास के भूखे होते हैं। हृदय की कठिनता कहाँ तक कहूँ, जिसने वज्र से भी कठोर बन जाने में प्रशंसा पाई है—बाजी मार ली है।



कारण ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थिते उपलते, लोह कराल कठोर॥

कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें कुछ मेरा दोष नहीं है। जैसे कार्य जो वज्र है

वह अपने कारण दधीचि की हड्डियों से कड़ा होता है, और अपने कारण पत्थर से उसका कार्य लोहा कड़ा होता है, वैसे ही अपने कारण कैकेयी से पैदा हुआ कार्यरूपी मैं क्यों न कठोर होऊँ ?

कैकेयीभव तनु अनुरागे * पामर प्राण अघाइ अभागे
जो प्रियविरह प्राण प्रिय लागे * देखव सुनव बहुत अब आगे

कैकेयी से उत्पन्न शरीर में रमनेवाले ये नीच प्राण बड़े अभागे हैं। जो प्यारे रामजी का वियोग प्राणों को प्रिय लगा तो ये अब आगे बहुत कुछ देखें-सुनेंगे।

लषण राम सिय कहँ वनदीन्हा * पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा
लीन्ह विधवपन अपयश आपू * दीन्हेउ प्रजहिं शोक सन्तापू

कैकेयी ने लक्ष्मण, राम और जानकीजी को वन दिया; पति को स्वर्ग में भेजकर हित किया; आप विधवा हो अपयश लिया; प्रजा को शोक व सन्ताप दिया।

मोहिं दीन्ह सुख सुयश सुराजू * कीन्ह कैकयी सब कर काजू
यहिते मोर काह अब नीका * तेहिपर देन कहहु तुम टीका

और मुझको सुख, सुयश और सुन्दर राज्य दिया। इस प्रकार कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अधिक मेरी और कौन भलाई बाकी है ? उस पर तुम राजतिलक देने को कहते हो ?

कैकयिजठरजन्मि जग माहीं * यहमोहिंकहँकछुअनुचित नाहीं
मोरि बात सब विधिहि बनाई * प्रजा पाँच कत करहु सहाई

संसार में कैकेयी के पेट से उत्पन्न होकर मुझको कुछ अनुचित नहीं है। ब्रह्मा ने ही मेरी सब बातें बना दी हैं। अब प्रजा और तुम सब पंच क्यों उसमें सहायता करते हो ?


ग्रहग्रहीत पुनि वातवश, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय वारुणी, कहहु कवन उपचार॥

जिसको ग्रह पकड़े हो, फिर सन्निपात के वश हो, फिर बीछी मारे और उसी को मदिरा पिलाइए तो कहो, उसकी क्या दवा है ? कुछ नहीं। भरतजी ऊपर कही चारों बातें अपने ऊपर यों घटित करते हैं कि कैकेयी के पेट में रहना ग्रह की पकड़ है, राम, जानकी, लक्ष्मण का वनगमन सन्निपात है, राजा का मरना बीछी का मारना है। ये तो हो चुके, अब जो मुझे राज्यरूपी मदिरा पिलाते हो तो मेरे बचने का क्या उपाय है ?

कैकयिसुवनयोग जग जोई * चतुर विरञ्चि दीन्ह मोहिं सोई
दशरथतनय राम लघु भाई * दीन्ह मोहिं विधि बादि बड़ाई

कैकेयी के पुत्र के योग्य संसार में जो था, चतुर ब्रह्मा ने मुझको वही दिया। परन्तु दशरथ के पुत्र और राम के छोटे भाई भरत हैं—यह प्रशंसा मुझको ब्रह्मा ने वृथा ही दी

तुम सब कहहु कढ़ावन टीका * राय राज सबही कहँ नीका
उतर देउँ केहि विधि केहि केहीं * कहहु सुखेन यथारुचि जेहीं

तुम सब लोग तिलक करना कहते हो और राजा होना तथा राज्य सबको अच्छा लगता है। किस प्रकार किस किसको मैं उत्तर दूँ। जिसकी जो इच्छा हो, सो सब लोग सुख से कहो।

मोहिं कुमातुसमेत बिहाई * कहहु काहि केहि कीन्हि भलाई
मोहिं बिनु को सचराचर माहीं * जेहि सियराम प्राणप्रिय नाहीं

कुमातासमेत मुझको छोड़कर कहो किसने अच्छाई की है, जिसे कहोगे? सारे चराचर जगत् में मुझको छोड़कर कौन ऐसा है, जिसको सीता और राम प्राणों से प्यारे नहीं हैं?

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू * अदिन मोर नहिं दूषण काहू
संशय शील प्रेमवश अहहू * सबहिं उचित सब जो कछु कहहू

जिस राज्य से मेरी बड़ी हानि हुई, वही सबको बड़ा लाभ है। यह मेरे बुरे दिन हैं, इसमें किसी का दोष नहीं। तुम लोग संशय, शील और प्रेम के वश हो। सबको सब कुछ उचित है। जो चाहो, कहो।

रामसातु सुठि सरलचित, मोपर प्रेम विशेखि।
कहहिं स्वभाव सनेहवश, मोरि दीनता देखि॥

रामजी की माता सुन्दर, सीधे चित्तवाली हैं और मुझ पर उनका विशेष प्यार है। इससे मेरी दीनता देख स्वभाव और स्नेह के वश होकर मुझसे राजतिलक कराने को कहती हैं।

गुरु विवेकसागर जग जाना * जिनहिं विश्व करबदरसमाना
मोकहँ तिलकसाज सजु सोऊ * भाविधि विमुख विमुखसब कोऊ

गुरुजी ज्ञान के सागर हैं। यह संसार जानता है कि संसार उनके लिए हाथ में रक्खे हुए बेर के समान परिचित है। वे भी मेरे लिए तिलक का सामान जुटाते हैं। इसका यही कारण है कि विधाता के विमुख होने पर सब कोई विमुख होता है।

परिहरि रामसीय जगमाहीं * कोउ न कहहि मोर मत नाहीं
सो मैं सुनब सहब सुखमानी * अन्तहु कीच तहाँ जहँ पानी

संसार में राम-जानकी को छोड़ कोई न कहेगा कि राम के वन जाने में मेरी सम्मति नहीं है। सो मैं सुख मानकर सब सुनूँगा—सहूँगा; क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्त में कीचड़ भी होती है।

डर न मोहिं जग कहहि कि पोचू * परलोकहु कर नाहिंन शोचू
एकहि बड़ि उर दुसह दवारी * मोहिं लगि भे सिय राम दुखारी

मुझे यह डर नहीं है कि संसार बुरा कहेगा और परलोक का भी शोक नहीं है।

हृदय में एक ही न सहने योग्य बड़ी दावानल लगी है कि मेरे कारण राम और जानकी दुखी हुए।

जीवन लाहु लषण भल पावा * सब तजि रामचरण मनलावा
मोर जन्म रघुवर बन लागी * झूठ काह पछिताउँ अभागी

लक्ष्मणजी ने जीवन का लाभ अच्छा पाया कि सब छोड़कर रामजी के चरणों में मन लगाया। मेरा तो रामजी के वनवास के लिए ही जन्म हुआ है। मैं अभागा हूँ। व्यर्थ क्यों पछताऊँ?


आपनि दारुण दीनता, सबहिं कहौं समुझाइ।
देखे बिनु रघुवीरपद, जिय की जरनि न जाइ॥

मैं अपनी कठिन दीनता को सबसे समझाकर कहता हूँ कि बिना रामजी के चरणों को देखे मेरे जी की जलन न जायगी।

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा * को जियकी रघुवर बिनु बूझा
एकहि आँक यही मनमाहीं * प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं

मुझको और कोई उपाय नहीं देख पड़ता है। रामजी के बिना मेरे जी का हाल कौन जानेगा? मेरे मन में यही एक बात है कि प्रातःकाल रामजी के समीप चलूँगा।

यद्यपि मैं अनभल अपराधी * भइ मोहिं कारण सकल उपाधी
तदपि शरणसम्मुख मोहिं देखी * सब क्षमि करिहैं कृपा विशेखी

यद्यपि मैं बुरा और अपराधी हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ, तो भी मुझे शरण में देख रामजी सब क्षमा कर विशेषरूप से कृपा करेंगे।

शीलसकुच सुठिसरल स्वभाऊ * कृपा सनेह सदन रघुराऊ
अरिहुक अनहित कीन्ह न रामा * मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा

क्योंकि रामजी शील, संकोच, अच्छे सीधे स्वभाव तथा दया और प्रेम की खान हैं। रामजी ने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया, यद्यपि मैं बालक सेवक होकर उनसे विमुख हूँ। तो भी वह मुझ पर कृपा ही करेंगे।

तुम पै पाँच मोर भलमानी * आयसु आशिष देहु सुबानी
जेहि सुनि विनय मोहिं जनजानी * आवहिं बहुरि राम रजधानी

और तुम सब पंच भी मेरा भला मानकर अच्छी वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दो, जिससे मेरी विनती सुन और जानकर रामजी फिर राजधानी में लौट आवें।


यद्यपि जन्म कुमातु ते, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं, मोहिं रघुवीरसरोस॥

यद्यपि मैं कुमाता से उत्पन्न हुआ हूँ तथा शठ और सदैव दोषयुक्त हूँ, तो भी वह मुझे अपना जन जानकर नहीं छोड़ेंगे। मुझको रघुवीर—रामजी पर भरोसा है।

भरतवचन सब कहँ प्रिय लागे * रामसनेहसुधा जनु पागे
लोग वियोग विषम विष दागे * मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे

भरत के वचन सबको प्यारे लगे, मानो वे रामजी के प्रेमरूपी अमृत से पगे हुए थे। रामजी के वियोगरूपी कठिन विष से मूर्च्छित लोग मानो (भरत के वचनरूपी) बीजसहित मन्त्र को सुनते ही जाग पड़े।

मातुसचिवगुरु पुरनरनारी * सकल सनेह विकल भयभारी
भरतहिं कहहिं सराहि सराही * राम प्रेम मूरति जनु आही

माता, मन्त्री, गुरु और नगर के स्त्री-पुरुष, सब स्नेह के मारे बहुत व्याकुल हुए। वे बार-बार बड़ाई करके भरत के लिए कहते हैं कि मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति ही हैं।

तात भरत अस काहे न कहहू * प्राणसमान रामप्रिय अहहू
जो पामर आपनि जड़ताई * तुमहिं सुगाइ मातु कुटिलाई

हे तात भरत, तुम ऐसा क्यों न कहो? तुम तो रामजी को प्राणों के समान प्यारे हो। जो मूर्ख अपनी जड़ता से माता की कुटिलता के लिए तुम पर संदेह करेगा,

सो शठ कोटिक पुरुष समेता * परे कल्पशत नरक निकेता
अहिअघअवगुणमणिनहिंगहई * हरै गरल दुख दारिद दहई

वह शठ करोड़ों पुरखों-सहित सैकड़ों कल्प तक नरक में वास करेगा। मणि साँप के विष और अवगुण को नहीं गिनती; वह विष, दुःख और दरिद्र को हर लेती है। ऐसे ही माता के अवगुण तुममें नहीं लगेंगे।

दो॰ अवसिचलियवनरामजहँ, भरत मन्त्र भल कीन्ह।
शोकसिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥

आप अवश्य ही वन को चलिए, जहाँ रामजी हैं। भरतजी, आपने अच्छी सम्मति की है; शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए सबको तुमने सहारा दिया।

भा सबके मन मोद न थोरा * जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा
चलब प्रात लखि निर्णय नीके * भरत प्राणप्रिय भे सबहीके

सबके मन में बहुत प्रसन्नता हुई, जैसे मेघ का शब्द सुनके पपीहा और मोर प्रसन्न होते हैं। भरत का सबेरे चलने का निश्चय अच्छी तरह देख भरत सबको प्राणों के समान प्यारे लगे।

मुनिहिं वन्दिभरतहिं शिर नाई * चले सकल घर बिदा कराई

धन्य भरतजीवन जगमाहीं * शील सनेह सराहत जाहीं

मुनि को प्रणाम कर और भरतजी को सिर नवाकर सब विदा होकर घर गये। भरत का जीवन संसार में धन्य है, इस प्रकार कहते और शील व स्नेह सराहते चले जाते हैं।

कहहिं परस्पर भा बड़ काजू * सकल चलनकर साजहिं साजू
जेहि राखहिं घर की रखवारी * सो जानै जनु गरदन मारी

सब चलने की तैयारी करते हैं और आपस में कहते हैं कि यह बड़ा काम हुआ। जिसको कोई घर की रखवाली के लिए छोड़ जाना चाहता है, वह जानता है कि मानो उसकी गर्दन मारी गई।

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू * को न चहै जग जीवनलाहू
केहि न भाव सिय लक्ष्मण रामू * सब कहँ प्रिय हिय सदा सकामू

कोई कहता है कि किसी को रहने के लिए न कहो; क्योंकि संसार में कौन जीवन-लाभ नहीं चाहता? सीता, राम और लक्ष्मण किसको नहीं अच्छे लगते? वे तो सबको हृदय से प्यारे हैं और सबको सदैव उनके दर्शन की चाह रहती है।



जरहु सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सन्मुख होत जो रामपद, करै न सहज सहाइ॥

वह सम्पदा, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई जल जाय, जो कि रामजी के चरणों के सामने होने में स्वभाव ही से सहायता नहीं करता।

घर घर साजहिं वाहन नाना * हर्षहिं हृदय प्रभात पयाना
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू * नगर बाजि गज भवन भँडारू

घर-घर अनेक प्रकार की सवारियाँ साजी जाती हैं। सब मन में प्रसन्न होते हैं कि सवेरे चलना होगा। भरतजी ने घर में जाकर विचार किया कि अयोध्या, घोड़े, हाथी, घर और कोष—

सम्पति सब रघुपति की आही * जो बिनु यतन चलौं तजि ताही
तौ परिणाम न मोरि भलाई * पापशिरोमणि स्वामिद्रोहाई

यह सब सम्पदा रामजी की है। इससे जो उसकी रक्षा किये बिना उसको छोड़ जाऊँ तो अन्त में मेरी भलाई न होगी; किन्तु पापियों का शिरमौर होकर स्वामी का द्रोही हूँगा।

करहि स्वामिहित सेवक सोई * दूषण कोटि देइ किन कोई
अस विचारि शुचिसेवक बोले * जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले

जो स्वामी का हित करे वही सेवक है, चाहे कोई करोड़ों दोष दे। ऐसा विचारकर भरत ने पवित्र सेवकों को बुलाया, जो कि स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं हटे थे।

कहि सब धर्म मर्म सब भाखा * जो जेहि लायक सो तहँ राखा
करि सब यतन राखि रखवारे * राममातु पहँ भरत सिधारे

उनसे सब धर्म कहकर मर्म (भेद की बात) कहा, और जो जिस योग्य था, उसको वहाँ रक्खा। सब उपाय करके रक्षकों को रखकर भरतजी रामजी की माता के पास गये।



आरत जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान।
कहेउ सजावन पालकी, सुखद सुखासन यान॥

प्रेम के जाननेवाले भरतजी ने सब माताओं को दुःखित जानकर सुखदायक पालकी और सुखपाल तथा रथों को सजाने के लिए कहा।

चकचकई जिमि पुरनरनारी * चहत प्रात उर आनँद भारी
जागत सब निशि भयउ विहाना * भरत बुलाये सचिव सुजाना

अयोध्या के स्त्री-पुरुष चकवा-चकई की तरह सवेरा चाहते हैं। सबके मन में बड़ा आनन्द है। सब रात जागते ही सवेरा हुआ। तब भरत ने चतुर मंत्रियों को बुलाया—

कहेउ लेहु सब तिलकसमाजू * वनहिं देब मुनि रामहिं राजू
वेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे * तुरत तुरँग रथ नाग सँवारे

और कहा कि सब राज्य के तिलक का सामान ले चलो। वन में वशिष्ठजी रामजी को राज्य देंगे, इसलिए जल्दी चलो। यह सुन मन्त्रियों ने जुहारकर तुरन्त घोड़े, रथ और हाथी तैयार किये।

अरुन्धती अरु अग्निसमाजू * रथचढ़ि चले प्रथम मुनिराजू
विप्रवृन्द चढ़ि वाहन नाना * चले सकल तपतेजनिधाना

अरुन्धती और अग्निहोत्र का सामान साथ लेकर पहिले मुनिराज वशिष्ठजी रथपर चढ़े। तपस्या तथा तेज के निधान ब्राह्मणों के समूह अनेक प्रकार की सवारियों पर चढ़कर चले।

नगरलोग सब सजिसजि याना * चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना
शिबिका सुभग न जाइँ बखानी * चढ़ि चढ़ि चलत भईं सबरानी

अयोध्या के सब लोगों ने सवारियाँ सज-सजकर चित्रकूट को पयान किया। जिन सुन्दर पालकियों के साज का बखान नहीं किया जा सकता, उन पर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं।



सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि रामसियचरण तब, चले भरत दोउ भाइ॥

उस समय पवित्र सेवकों को अयोध्या सौंप और आदर-समेत सबको चलाकर, राम और जानकीजी के चरणों को स्मरणकर दोनों भाई (भरत, शत्रुघ्न) चले।

राम दरशहित सब नर नारी * जनु करि करिणि चले तकिवारी

वन सियराम समुझिमन माहीं * सानुज भरत पयादेहि जाहीं

रामजी के दर्शनों के लिए सब स्त्री-पुरुष, जल देखकर हथिनी और हाथियों के समान चले। जानकीजी और रामजी को वनमें समझकर भाई शत्रुघ्न-समेत भरतजी पैदल ही जाते हैं।

देखि सनेह लोग अनुरागे * उतरि चले हयगजरथ त्यागे

जाइ समीप राखि निज डोली * राममातु मृदुबाणी बोली

यह स्नेह देख लोग प्रेम में मग्न हुए और घोड़ा, हाथी, रथों को छोड़ उतरकर चलने लगे। अपनी पालकी भरतजी के पास रखकर कौशल्याजी कोमल वाणी से बोलीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी * होइहि प्रिय परिवार दुखारी

तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू * सकल शोककृश नहिं मगयोगू

हे पुत्र, माता बलिहारी जाती है, रथ पर चढ़ो। तुम्हारे पैदल चलने से प्यारा परिवार दुखी होगा। तुम्हारे पैदल चलते सब लोग पैदल ही चलेंगे। सब शोक से दुखी हैं, पैदल रास्ता चलने के लायक नहीं हैं।

शिरधरि वचन चरण शिरनाई * रथचढ़ि चलत भये दोउ भाई

तमसा प्रथम दिवस करि वासू * दूसर गोमतितीर निवासू

उनके वचन माथे पर धर और उनके चरणों में शीश नवाकर रथ पर चढ़ दोनों भाई चले। पहले दिन तमसा नदी के तीर निवास किया और दूसरे दिन गोमती के तट पर रहे।


पयअहार फलअशन इक, निशिभोजन इक लोग।
करत रामहित नेमव्रत, परिहरि भूषणभोग॥

कोई दूध का आहार और कोई फलभोजन करते थे। कोई लोग रात को खाते थे और भूषण-वस्त्र एवं सुख-भोग छोड़कर राम के लिए नियम-व्रत करते थे।

सईतीर बसि चले बिहाने * शृङ्गवेरपुर सब नियराने

समाचार सब सुने निषादा * हृदय विचार करै सविषादा

सई नदी के किनारे बसकर सवेरे चले और सब लोग शृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे। यह सब हाल निषाद ने सुना, तब दुःख-समेत हृदय में विचार करने लगा—

कारण कवन भरत वन जाहीं * है कछु कपटभाव मनमाहीं

जोपै जिय न होति कुटिलाई * तौ कत लीन्ह संग कटकाई

क्या कारण है, जो भरत वन को जाते हैं? कुछ छल का भाव मन में है क्या? यदि जी में कुटिलता न होती तो साथ सेना क्यों लेते?

जानहिं सानुज रामहिं मारी * करहुँ अकंटक राज सुखारी

भरत न राजनीति उर आनी * तब कलंक अब जीवन हानी

वे जानते हैं कि भाई-समेत रामजी को मार, सुखी होकर निष्कंटक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को नहीं विचारा; क्योंकि तब तो कलंक हुआ था, अब जीवन की हानि होगी।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा * रामहिं समर न जीतनहारा

का आश्चर्य भरत अस करहीं * नहिं विषबेलि अमियफल फरहीं

जो युद्ध करनेवाले सब देवता, दैत्य इकट्ठा हों, तो भी रामजी को युद्ध में जीतनेवाला कोई नहीं है। क्या आश्चर्य है, जो भरतजी ऐसा करें; क्योंकि विष की बेलि में अमृत के फल नहीं फलते।

दो० अस विचारि गुहज्ञातिसन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसह बोरहु तरणि, कीजै घाटा रोहु॥

ऐसा विचारकर निषाद ने कुटुम्बियों से कहा कि सब लोग सचेत हो जाओ। हथवाँ अर्थात् डाँड़-पतवार समेत नावें डुबा दो और हरएक घाट रोक दो।

होहु सजग मिलि रोकहु घाटा * ठाटहु सकल मरण कर ठाटा

सम्मुख लोह भरत सन लेहू * जियत न सुरसरि उतरन देहू

सब मिलकर सचेत हो जाओ, घाट रोको और सब मरने का ठाट ठाट लो। भरत से सामने होकर लोहा लो—शस्त्रों से युद्ध करो, परन्तु जीतेजी उन्हें गंगापार न होने दो।

समर मरण पुनि सुरसरितीरा * रामकाज क्षणभंग शरीरा

भरत भाइ नृप मैं जन नीचू * बड़ेभाग अस पाइय मीचू

एक तो युद्ध में मरना, फिर गंगाजी के किनारे और रामजी के काम के लिए यह क्षण-भंगुर शरीर चला जाय तो अच्छा ही है। भरतजी राम के भाई और राजा हैं, और मैं नीच-जन हूँ। बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है।

स्वामिकाज करिहौं रण रारी * यशलहि धवल भुवन दशचारी

तजौं प्राण रघुनाथ निहोरे * दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे

स्वामी के काम के लिए युद्ध की रार करूँगा और चौदहों भुवनों में निर्मल यश पाकर रामजी के निहोरे प्राण छोड़ूँगा। मेरे दोनों हाथों में आनन्द के लड्डू हैं; क्योंकि जीतने से रामजी की प्रसन्नता और यश तथा मरने से परमपद प्राप्त होगा।

साधुसमाज न जाकर लेखा * रामभक्ति उर जासु न रेखा

जाय जियत जग सो महिभारू * जननी यौवन विटप कुठारू

साधु-सभा में जिसकी गिनती नहीं और जिसके हृदय में रामजी की भक्ति नहीं; वह पृथ्वी के लिए भार होकर वृथा ही संसार में जीता है। वह माता की जवानीरूप वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी है।



विगतविषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥

निषादों के राजा ने विषादरहित हो सबका उत्साह बढ़ाकर, रामजी का स्मरण कर, शीघ्रता से अपना तरकस, धनुष और कवच माँगा।

बेगिहि भाइ सजहु संजोऊ * सुनि रजाइ कदराहु न कोऊ,
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहर्षा * एकहिं एक बढ़ावहिं कर्षा

निषाद कहने लगा—भाइयो, शीघ्र ही युद्ध का साज तैयार करो, आज्ञा पा कोई डरो नहीं। 'हे स्वामी, बहुत अच्छा' ऐसा सब हर्ष से कहते हैं और एक दूसरे का उत्साह बढ़ाते हैं।

चलेउ निषाद जुहारि जुहारी * शूर सकल रण रुचै रुरारी
सुमिरि रामपदपंकज पनहीं * भाथहिं बाँधि चढ़ावहिं धनुहीं

सब निषाद को जुहारकर चले। सब शूर हैं, जिनको युद्ध में रार अच्छी लगती है, वे लोग रामजी के चरणकमलों की पनहियों का स्मरण कर तरकस बाँध धनुष चढ़ाते हैं।

अँगुरी पहिरि कूँड़ि शिर धरहीं * फरसा बाँस शेलसम करहीं
एक कुशल अतिओड़न खाँड़े * कूदहिं गगन मनहु छितिछाँड़े

मोजा, दस्ताना और झिलम पहनकर माथे पर टोप धरते हैं और फरसा, बाँस, शेल आदि सब शस्त्र सुधारते हैं। कोई ढाल-तलवार चलाने में बड़े चतुर हैं, मानो पृथ्वी को छोड़कर आकाश को उछलते हैं।

निज निज साज समाज बनाई * गुह राउतहिं जुहारहिं जाई
देखि सुभट सब लायक जाने * लै लै नाम सकल सनमाने

सब निषाद अपना-अपना साज-सामान साजकर निषादों के राजा को जुहार करते हैं। निषाद ने सब योद्धाओं को देख लड़ने के लायक जाना और नाम ले-लेकर सबका आदर किया—



भाइहु लावहु धोख जनि, आज काज बड़ मोहु।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहु॥

और कहा—हे भाइयो, धोखे में मत रहो। आज मुझे बड़ा काम करना है। यह सुनकर सब योद्धा क्रोध के साथ बोले कि हे सुभट, वीर, अधीर न होओ।

रामप्रताप नाथ बल तोरे * करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरे
जियत पाँव नहिं पाछे धरहीं * रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं

हे नाथ, रामजी के प्रताप और तुम्हारे बल से हम लोग भरत की सेना में एक भी

योद्धा या एक भी घोड़ा न रहने देंगे। जीतेजी पैर पीछे न रक्खेंगे और पृथ्वी को रुण्ड-मुण्डों से भर देंगे।

देखि निषादनाथ भल टोलू * कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू
इतना कहत छींक भइ बाँये * कहेउ शकुनियन खेत सुहाये

निषादों के स्वामी ने सिपाहियों का गोल अच्छा देखकर कहा कि लड़ाई के ढोल बजाओ। इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई। तब सगुन विचारनेवालों ने कहा कि यह छींक अच्छे ठिकाने हुई है।

बूढ़ एक कह शकुन विचारी * भरतहिं मिलिय न होइहि रारी
रामहिं भरत मनावन जाहीं * शकुन कहै अस विग्रह नाहीं

एक बूढ़ा सगुन विचार कहने लगा कि भरत से मिलो, युद्ध न होगा। सगुन ऐसा कहता है कि लड़ाई न होगी; भरतजी रामजी को मनाने जाते हैं।

सुनि गुह कहा नीक कह बूढ़ा * सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा
भरत स्वभाव शील बिनु बूझे * बड़िहितहानि जानि बिनु जूझे

यह सुनकर निषाद ने कहा कि बुड्ढे ने अच्छा कहा। सहसा कर्म करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरत का शील, स्वभाव बिना जाने-बूझे युद्ध करने से हित की बड़ी हानि होगी।



गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मर्म मैं जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्यगति, तब तस करब उपाइ॥

सब योद्धा इकट्ठे होकर घाट पर बैठो; मैं जाकर पहिले सब भेद ले लूँ। मित्र, शत्रु एवं सम की गति जानकर तब वैसा उपाय करूँगा।

लखब स्वभाव सनेह सुहाये * वैर प्रीति नहिं दुरत दुराये
अस कहि भेंट सँजोवन लागे * कन्द मूल फल खग मृग माँगे

मैं भरत का राम पर स्वभाव से सुन्दर स्नेह देखूँगा—परखूँगा। वैर और प्रीति छिपाये नहीं छिपती। ऐसा कहकर निषाद भेंट इकट्ठा कराने लगा; कन्द, मूल, फल, पक्षी और मृग मँगाये।

मीन पीन पाठीन पुराने * भरि भरि भार कहारन आने
सकलसाजसजिमिलनसिधाये * मङ्गलमूल शकुन शुभ पाये

मोटी और पुरानी मछलियाँ बहँगियों में भर-भरकर कहार ले आये। सब सामान सजकर मिलने चले। उस समय मंगलमूल उत्तम सगुन देख पड़े।

देखि दूरिते कहि निजनामू * कीन्ह मुनीशहिं दण्डप्रणामू
जानि रामप्रिय दीन्हअशीशा * भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीशा

दूर ही से देख अपना नाम कहकर निषाद ने वशिष्ठजी को दण्ड प्रणाम किया। मुनीश ने उसे राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी से समझाकर कहा—

रामसखा सुनि स्यन्दन त्यागा * चले उतरि उमँगत अनुरागा
गाँव जाति गुह नाम सुनाई * कीन्ह जुहार माथ महि लाई

कि यह रामजी का मित्र है। यह सुनकर भरत ने रथ को छोड़ दिया और उतरकर चले। उनके हृदय में प्रेम उमँग रहा था। निषाद ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाया, पृथ्वी में माथा नवाकर जुहार किया।



करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उरलाइ।
मनहु लषण सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥

दण्डवत् करते हुए उस निषाद को देखकर भरतजी ने हृदय से लगा लिया, मानो लक्ष्मण से भेंट हुई है। हृदय में प्रेम नहीं समाता।

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती * लोग सिहाहिं प्रेम की रीती
धन्य धन्य धुनि मङ्गल मूला * सुर सराहि तेहि वर्षहिं फूला

भरतजी उसको बड़े हर्ष से मिले और लोग प्रेम की रीति देखकर सिहाने लगे। देवता लोग मंगल-मूल "धन्य-धन्य" शब्द कह उसको सराहकर फूल बरसाने लगे।

लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा * जासु छाँह छुइ लेइय सींचा
तेहि भरि अंक रामलघुभ्राता * मिलत पुलक परिपूरित गाता

जो कि लोक और वेद में सब प्रकार से नीच है और जिसकी छाया छूकर लोग नहाते हैं, उस निषाद से रामजी के छोटे भाई भरत गोद भरकर मिलते हैं। उनके शरीर में आनंद के मारे रोएँ खड़े हो गये।

राम राम कहि जे जमुहाहीं * तिनहिं न पापपुंज समुहाहीं
यहि तो राम लाइ उर लीन्हा * कुल समेत जग पावन कीन्हा

जो लोग जम्हाई लेते समय राम-राम कह उठते हैं, उनके सामने पाप के समूह नहीं आते। फिर निषाद को तो रामजी ने हृदय से लगाया और वंश-समेत जगत् में पवित्र किया है।

कर्मनाश जल सुरसरि परई * तेहि को कहहु शीश नहिं धरई
उलटा नाम जपत जग जाना * वाल्मीकि भे ब्रह्मसमाना

जो कर्मनाशा नदी का पानी गंगा में पड़ता है, कहो उसे कौन नहीं माथे पर चढ़ाता? यह संसार जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपकर वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हो गये।



श्वपच शबर खस यवन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवनविख्यात॥

चाण्डाल, नट, खस अर्थात् पर्वतों पर रहनेवाले, म्लेच्छ और जड़ जातिवाले कोल, भील इत्यादि नीच लोग भी राम कहते ही परम पवित्र हो जाते हैं—यह संसार में प्रसिद्ध है।

नहिं अचरज युगयुग चलिआई * केहि न दीन्ह रघुवीर बड़ाई
रामनाममहिमा सुर कहहीं * सुनिसुनिअवधलोगसुखलहहीं

आश्चर्य की बात नहीं है, युग-युग से यह चली आई है कि रामजी ने किसको बड़ाई नहीं दी। इस प्रकार देवता लोग रामनाम की महिमा कहते हैं। उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पाते हैं।

रामसखहिं मिलि भरतसप्रेमा * पूछी कुशल सुमंगल क्षेमा
देखि भरतकर शील सनेहू * भा निषाद तेहि समय विदेहू

भरतजी ने राम के मित्र निषाद से प्रेमसमेत मिलकर उसका कुशल-क्षेम और मंगल पूछा। उस समय भरतजी का शील और स्नेह देखकर निषाद विदेह हो गया, अर्थात् उसे देह की भी सुध न रही।

सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा * भरतहिं चितवत इकटक ठाढ़ा
धरि धीरज पद वन्दि बहोरी * विनय सप्रेम करत करजोरी

सकुच और स्नेह से मन में आनन्द बढ़ा और वह खड़ा होकर भरत को एकटक निहारने लगा। फिर धीरज धर चरणों को प्रणाम कर हाथ जोड़ प्रेमसमेत विनती करने लगा—

कुशलमूल पदपंकज देखी * मैं तिहुँकाल कुशल निजलेखी
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे * सहित कोटिकुल मंगल मोरे

वह बोला—कुशल की जड़ आपके चरणकमल देखकर मैं तीनों कालों में अपना कुशल समझता हूँ। हे प्रभो, इस समय तुम्हारी परम कृपा से मेरा और मेरी करोड़ों पीढ़ियों का मंगल ही मंगल है।

दो॰ समुझि मोरि करतूतिकुल, प्रभुमहिमा जिय जोइ।
जो न भजै रघुवीरपद, जग विधिवञ्चित सोइ॥

मेरी करतूत, वंश समझ तथा रामजी की महिमा अपने जी में विचारकर जो मनुष्य रघुनाथजी के चरणों को नहीं भजता, उसे संसार में ब्रह्मा ने छला है।

कपटी कायर कुमति कुजाती * लोक वेद बाहर सब भाँती
राम कीन्ह आपन जबहीं ते * भयउँ भुवनभूषण तबहीं ते

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति होकर सब प्रकार लोक और वेद से बाहर—अछूत हूँ। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया, तभी से मैं संसार का भूषण हो गया।

देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई * मिलेउ बहोरि लषण लघुभाई

कहि निषाद निज नाम सुबानी * सादर सकल जुहारी रानी

निषाद की प्रीति देख और उसकी विनय देख-सुनकर फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी उससे मिले। फिर निषाद ने अपना नाम कहकर मधुर वाणी से आदर-सहित सब रानियों को प्रणाम किया।

जानिलषणसम दीन्हि अशीशा * जियहु सुखी शत लाख बरीशा
निरखि निषाद नगर नरनारी * भये सुखी जनु लषण निहारी

रानियाँ निषाद को लक्ष्मण के बराबर जानकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम करोड़ बरस तक सुखी होकर जियो। अयोध्या के स्त्री-पुरुष निषाद को देखकर ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मणजी को देखा।

कहहिं लहेउ यहिं जीवनलाहू * भेंटेउ राम भाइ भरि बाहू
सुनि निषाद निज भाग्य बड़ाई * प्रमुदितमन लै चलेउ लिवाई

वे कहते हैं कि इसने जीवन का लाभ पा लिया; क्योंकि रामजी के भाई भरतजी भुजा भरके इससे मिले। निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुन और मन में प्रसन्न होकर भरतजी को लिवा ले चला।


सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरुतर सर बाग बन, बास बनायो जाइ॥

निषाद ने नौकरों को इशारा किया। वे स्वामी का रुख पाकर चले। उन्होंने घरों और वृक्षों के नीचे तथा तालाब, बगीचे और वन में रहने के लिए स्थान बनाये।

शृङ्गवेरपुर भरत दीख जब * भे सनेहवश अङ्ग शिथिल तब
सोहत लिये निषादहिं लागू * जनु तनु धरे विनय अनुरागू

जब भरतजी ने शृंगवेरपुर को देखा, तब स्नेह के कारण उनके सब अंग ढीले हो गये। भरतजी निषाद को पास लिये ऐसे शोभित हैं, जैसे विनय और अनुराग दोनों देह धरे उपस्थित हैं।

यहि विधि भरत सेन सब सङ्गा * जाइ दीख जगपावनि गङ्गा
रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामा * भा मनमुदित मिलेउ जनु रामा

इस भाँति भरतजी ने सब सेना के साथ जाकर संसार को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी को देखा और रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा प्रसन्न हुआ, मानो रामजी से ही भेंट हो गई।

करहिं प्रणाम नगर नरनारी * मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी
करि मज्जन माँगहिं कर जोरी * रामचन्द्रपदप्रीति न थोरी

नगर के स्त्री-पुरुष प्रणाम करते हैं, ब्रह्मस्वरूप जल देखकर प्रसन्न होते हैं और उसमें स्नानकर हाथ जोड़ यह माँगते हैं कि रामजी के चरणों में उनकी प्रीति कभी कम न हो।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू * सकल सुखद सेवक सुरधेनू
जोरि पाणि माँगहुँ वर येहू * सीयरामपद सहज सनेहू

तब भरतजी ने कहा—गङ्गाजी, सब सुखों की देनेवाली तुम्हारी रेणुका सेवकों के लिए कामधेनु के समान सब कामना पूरी करनेवाली है। मैं हाथ जोड़कर यह वरदान माँगता हूँ कि सीता और रामजी के चरणों में स्वभाव ही से प्रेम हो।

दो० यहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुशासन पाय।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लिवाय॥

इस प्रकार भरतजी स्नान कर, गुरु की आज्ञा पाकर, सब माताओं का स्नान हो गया जानकर उन्हें डेरों को लिवा ले चले।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा * भरत शोध सबहीकर लीन्हा
गुरुसेवा करि आयसु पाई * राममातुपहँ गे दोउ भाई

लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरा डाला और भरतजी ने सबकी खबर ली। गुरु की सेवा कर दोनों भाई आज्ञा पाकर कौशल्याजी के पास गये।

चरण चापि कहि कहि मृदुवानी * जननी सकल भरत सनमानी
भाइहिं सौंपि मातु सेवकाई * आप निषादहिं लीन्ह बुलाई

भरतजी ने चरण चापे और कोमल वचन कह-कहकर सब माताओं का आदर किया। फिर माताओं की सेवा भाई शत्रुघ्न को सौंपकर भरत ने निषाद को बुलाया—

चले सखा करसों कर जोरे * शिथिलशरीर सनेह न थोरे
पूछत सखहिं सो ठाउँ दिखाऊ * नेक नयन मन जरनि जुड़ाऊ

वह बड़े स्नेह से शिथिलशरीर हो मित्र से हाथ मिलाये हुए चले। भरत सखा से पूछते हैं कि वह स्थान दिखाओ—जिससे नेत्रों की और मन की ज्वाला कुछ तो मिटे—

जहँ सिय राम लषण निशि सोये * कहत भरे जल लोचन कोये
भरतवचन सुनि भयउ विषादू * तुरत तहाँ लै गयउ निषादू

जहाँ रात के समय सीता, राम तथा लक्ष्मणजी सोये हैं। यह कहते समय भरत के नेत्रों में जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद दुखी हुआ और तुरंत ही वहाँ ले गया।

दो० जहँ शिंशिपा पुनीत तरु, रघुवर किय विश्राम।
अति सप्रेम सादर भरत, कीन्हेउ दण्डप्रणाम॥

जहाँ पवित्र शीशम (वृक्ष) के नीचे श्रीरामजी ने विश्राम किया था। उस स्थान को भरतजी ने बड़े स्नेह और आदर-समेत प्रणाम किया।

कुश साथरी निहारि सुहाई * कीन्ह प्रणाम प्रदक्षिण लाई
चरणरेखरज आँखिन लाई * बनै न कहत प्रीति अधिकाई

कुशों की सुन्दर चटाई देख भरत ने उसकी प्रदक्षिणा की, उसे प्रणाम किया। फिर जहाँ श्रीरामचन्द्र के चरण पड़े थे, उस चिह्न की धूल आँखों में लगाई। उनकी प्रीति की अधिकता कहते नहीं बनती।

कनकबिन्दु दुइ चारिक देखे * राखे शीश सीयसम लेखे
सजल विलोचन हृदय गलानी * कहत सखासन वचन सुबानी

उस स्थान में दो-चार सोने के कण पड़े देखे। उनको सीताजी के समान जान भरत ने सिर पर रख लिया। आँखों में जल भर हृदय में उदास होकर भरतजी मित्र से यों बोले—

श्रीहत सीयविरह दुतिहीना * यथा अवधनरनारि मलीना
पिता जनक नहिं पटतर केहीं * करतल भोग योग जग जेहीं

जानकीजी के वियोग से ये सोने के कण शोभारहित और प्रकाशहीन हो गये हैं, जैसे अयोध्या के स्त्री-पुरुष मलीन हैं। जानकीजी के पिता राजा जनक की उपमा किससे दूँ ? संसार में योग और सुख-भोग दोनों जिन्हें प्राप्त हैं।

ससुर भानुकुलभानु भुवालू * जेहि सिहात अमरावतिपालू
प्राणनाथ रघुनाथ गोसाँई * जो बड़ होत सो राम बड़ाई

सीताजी के ससुर सूर्यवंश के सूर्य राजा दशरथ थे। जिनको अमरावतीपुरी के प्रतिपालक इन्द्र भी सिहाते थे। उन सीताजी के प्राणनाथ श्रीरामचन्द्रजी हैं। जो कोई संसार में बड़ा होता है, वह राम के बड़ाई देने से ही होता है।


पति देवता सुतीयमणि, सीय साथरी देखि।
बिदरत हृदय न हहरि मम, पवितें कठिन विशेखि॥

पतिव्रता स्त्रियों की शिरोमणि सीताजी के शयन की चटाई देखकर भी जो मेरा हृदय नहीं फटता तो निश्चय ही वह वज्र से भी कठोर है।

लालनयोग लषण लघु लोने * भे न भाइ अस अहहिं न होने
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे * सिय रघुबीरहिं प्राण पियारे

प्यार करने योग्य, सुन्दर लक्ष्मणजी-जैसे छोटे भाई न हुए, न हैं, और न होंगे। वह पुरवासियों को प्यारे, माता-पिता के दुलारे और सीता व रामजी को प्राणों के समान प्यारे हैं।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ * ताति वायु तन लागि न काऊ
ते वन सहहिं विपति सब भाँती * निदरेउ कोटि कुलिश यहि छाती

कोमल शरीर और सुकुमार स्वभाववाले लक्ष्मण ऐसे हैं कि जिनके शरीर में कभी गरम

हवा भी नहीं लगी। वे वन में सब प्रकार से दुःख सहते हैं। मेरी यह छाती करोड़ों वज्रों से भी बढ़कर कठोर हो गई!

राम जन्मि जग कीन्ह उजागर * रूप शील सुख सब गुणसागर
पुरजन परिजन गुरु पितु माता * रामस्वभाव सबहिं सुखदाता

श्रीरामजी ने जन्म लेकर संसार को उजागर किया। वह रूप, शील और सब सुखों के सागर हैं। पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता और माता—सबको रामजी का स्वभाव सुख देनेवाला है।

वैरिहु राम बड़ाई करहीं * बोलनिमिलनिविनय मन हरहीं
शारद कोटि कोटिशत शेखा * करि न सकैं प्रभुगुणगणलेखा

शत्रु भी श्रीरामजी की बड़ाई करते हैं। उनकी बोलचाल, मिलना-जुलना, या मिलनसारी और विनय मन को हरती है। करोड़ों सरस्वती और सौ करोड़ शेष भी श्रीरामजी के गुणों का लेखा नहीं लगा सकते।

सुखस्वरूप रघुवंशमणि, मंगलमोदनिधान।
ते सोवत कुशडासि महि, विधिगतिअतिबलवान॥

कल्याण और आनन्द के धाम, सुख के स्वरूप, रघुवंशमणि श्रीरामजी पृथ्वी में कुश बिछाकर सोते हैं। सचमुच विधाता की गति बड़ी प्रबल है!

राम सुना दुख कान न काऊ * जीवनतरु जिमि जुगवत राऊ
पलकनयनफणिमणि जेहि भाँती * जुगवहिंजननिसकल दिनराती

श्रीरामजी ने कभी कानों से दुःख नहीं सुना था। राजा दशरथ उनकी जीवनवृक्ष की तरह रक्षा करते थे। माताएँ दिन-रात उनकी ऐसे रक्षा करती थीं, जैसे पलकें नेत्रों की और सर्प अपनी मणि की।

ते अब फिरत विपिन पदचारी * कन्दमूल फल फूल अहारी
धिक कैकयी अमङ्गलमूला * भयसि प्राणप्रीतम प्रतिकूला

वे अब वन में पैदल घूमते हैं और कन्द-मूल-फल खाते हैं। अमङ्गल की जड़ कैकयी को धिक्कार है, जो प्राणप्यारे श्रीरामजी के प्रतिकूल हो गई।

मोंधिकधिकअघउदधि अभागी * सब उतपात भये जेहि लागी
कुलकलंककरि सृजेउ विधाता * स्वामिद्रोहमोहिं कीन्ह कुमाता

पापों के समुद्र, मुझ अभागे को धिक्कार है, जिसके कारण यह सब उत्पात हुआ। ब्रह्मा ने मुझको कुलकलंक बनाकर पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी रामजी का द्रोही बना दिया।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू * नाथ करिय कत बादि विषादू

राम तुमहिं प्रियतुमप्रियरामहिं * यह निर्दोष दोष विधि वामहिं

यह सुनकर निषाद स्नेहसहित समझाने लगा कि हे नाथ, आप वृथा विषाद क्यों करते हैं? श्रीरामजी आपको प्यारे हैं, और आप श्रीरामजी को प्यारे हैं। इस बात को कोई दुलख नहीं सकता। सारा दोष प्रतिकूल विधाता का ही है।

छन्द

विधि वाम की करणी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहनि रावरी॥
तुलसी न तुमसों राम प्रीतम कहत हौं सौंहें किये।
परिणाम मङ्गल जानि अपने आनिये धीरज हिये॥

कुटिल विधाता की करनी कठिन है, जिसने माता को बावली बना दिया। जब यहाँ थे, उस रात को श्रीरामजी बार-बार आदर से आपकी प्रशंसा करते थे। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी को तुम्हारे बराबर कोई प्यारा नहीं है, यह मैं कसम खाकर कहता हूँ। अन्त को कल्याण जानकर अपने हृदय में धीरज धरिए।



अन्तरयामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय विश्राम, यह विचार दृढ़ आनिमन॥

अंतर्यामी श्रीरामजी संकोच, स्नेह और दया के सागर हैं, यह विचार मन में दृढ़ कर चलिए, विश्राम कीजिए।

सखावचन सुनि उर धरि धीरा * वास चले सुमिरत रघुवीरा
यह सुधि पाइ नगरनरनारी * चले विलोकन आरत भारी

केवट के ये वचन सुनकर हृदय में धीरज धर, श्रीरामजी का स्मरण करते हुए भरतजी अपने डेरे पर चले। यह समाचार पाकर पुर के स्त्री-पुरुष विकल हो उन्हें देखने चले।

परदक्षिण करि करहिं प्रणामा * देहिं कैकयिहिं खोरि निकामा
भरि भरि वारि विलोचन लेहीं * वाम विधातहिं दूषण देहीं

वे सब भरत की परिक्रमा करके उनको प्रणाम करके और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। आँखों में जल भर लेते हैं और फिर विधाता को दोष देते हैं।

एक सराहहिं भरत सनेहू * कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू
यहि विधि राति लोग सब जागा * भा भिनुसार गुदारा लागा

कोई भरत के स्नेह को सराहता है और कोई कहता है कि राजा दशरथ ने स्नेह को खूब निबाहा। इस प्रकार सब मनुष्य रात भर जागते ही रहे। सबेरा हुआ, तब उतारा लगा।

गुरुहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाई * नई नाव सब मातु चढ़ाई

दण्ड चारि महँ भे सब पारा * उतरि भरत पुनि सबहिं सँभारा

भरतजी ने गुरु वशिष्ठजी को उत्तम नाव पर चढ़ाकर सब माताओं को नई नाव पर चढ़ाया। चार घड़ी में सब उतर गये और पार जाकर भरत ने फिर सबको सँभाला।



प्रातक्रिया करि मातुपद, बन्दि गुरुहिं शिरनाइ।
आगे किये निषादगण, दीन्हेउ कटक चलाइ॥

भरतजी ने प्रातःकाल के सब काम कर माता के चरणों को प्रणाम किया और गुरु को सिर नवाया। फिर निषादों को आगे कर सारी सेना को चलाया।

कियउ निषादनाथ अगुआई * मातु पालकी सकल चलाई
साथ बुलाइ भाइ लघु लीन्हा * विप्रन सहित गमन गुरु कीन्हा

भरत ने निषादों के स्वामी को आगे कर माताओं की पालकियाँ चलाई। साथ में छोटे भाई शत्रुघ्न को बुला लिया। फिर गुरुजी ने ब्राह्मणों-समेत गमन किया।

आप सुरसरिहिं कीन्ह प्रणामू * सुमिरे लषणसहित सिय रामू
गमने भरत पयादेहि पाँये * कोतल संग जाहिं डोरिआये

भरतजी ने गंगाजी को प्रणाम कर लक्ष्मण सहित सीतारामजी का स्मरण किया। भरतजी पैदल ही नंगे पैरों चले। सेवक साथ में कोतल (विना सवार वाहन) डोरिआये जा रहे हैं।

कहहिं सुसेवक वारहिं वारा * होइहि नाथ अश्व असवारा
राम पयादेहिं पाँय सिधाये * हम कहँ रथ गज बाजि न भाये

नौकर बार-बार कहते हैं कि नाथ, घोड़े पर सवार हो लीजिए। भरत ने कहा—श्रीरामजी पैदल ही नंगे पैरों गये हैं; इससे मुझको रथ, हाथी और घोड़े अच्छे नहीं लगते।

शिरभर जाउँ उचित असमोरा * सबते सेवक धर्म कठोरा
देखि भरतगति सुनि मृदुबानी * सब सेवकगण गरहिं गलानी

मुझे यह चाहिये कि माथे के बल जाऊँ, क्योंकि सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरत की गति देख और कोमल वचन सुनकर सब सेवक ग्लानि से जैसे गलने लगे।



भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेश प्रयाग।
कहत रामसिय रामसिय, उमँगि उमँगि अनुराग॥

स्नेह से उमँग-उमँगकर 'सीताराम सीताराम' कहते भरतजी ने तीसरे पहर प्रयागराज में प्रवेश किया।

झलका झलकत पाँयन कैसे * पंकज कोस ओसकण जैसे
भरत पयादेहि आये आजू * भयउ दुखित सुनि सकल समाज

भरत के पैरों में छाले कैसे झलकते हैं, जैसे कमल की कली पर ओस के कण। आज भरतजी पैदल आये, यह सुनकर सब समाज दुःखित हुई।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये * कीन्ह प्रणाम त्रिवेणिहिं आये
सविधि सितासित नीर नहाने * देइ दान महिसुर सनमाने

भरत ने सबकी सुध ली। सबने स्नान किया। फिर भरतजी त्रिवेणी पर आये और उनको प्रणाम किया। श्वेत (गंगा) तथा श्याम (यमुना) जल में विधि-समेत स्नान कर ब्राह्मणों को दान दे उनका सम्मान किया।

देखत श्यामल धवल हिलोरे * पुलक शरीर भरत कर जोरे
सकल कामप्रद तीरथराऊ * वेद विदित जग प्रकट प्रभाऊ

भरत के शरीर में रोमांच हो आया। श्याम, श्वेत हिलोरें देख, हाथ जोड़कर भरतजी बोले कि प्रयागराज सब मनोरथों को देते हैं—यह वेद में विदित है। इनका प्रभाव जगत् में प्रकट है।

माँगहुँ भीख त्यागि निज धर्मू * आरत काह न करहिं कुकर्मू
अस जिय जानि सुजान सुदानी * सफल करहु जग याचकबानी

अपना (क्षत्रिय का) धर्म छोड़, मैं भीख माँगता हूँ। सच है, विपत्ति में पड़े हुए दुःखी जन कौनसा कुकर्म नहीं करते? ऐसा जी में जानकर हे सुजान, उत्तम दानी प्रयागराज, संसार में मुझ भिखारी की वाणी सफल कीजिए।


अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति रामपद, यह वरदान न आन॥

अर्थ, धर्म और काम में मेरी रुचि नहीं है। मैं मुक्ति को भी नहीं चाहता। केवल यही वरदान माँगता हूँ कि जन्म-जन्म में मेरी श्रीरामजी के चरणों में भक्ति हो। दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिए।

जानहिं राम कुटिल करि मोही * लोग कहैं गुरु साहिब द्रोही
सीता राम चरण रति मोरे * अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे

श्रीरामजी मुझे भले ही कुटिल जानें और लोग गुरु तथा स्वामी का द्रोही कहें; किन्तु तुम्हारी कृपा से प्रतिदिन मेरी भक्ति सीतारामजी के चरणों में हो।

जलद जन्म भरि सुरति बिसारे * याचत जल पवि पाहन डारे
चातक रटनि घटत घटि जाई * बढ़ै प्रेम सब भाँति भलाई

मेघ जन्मभर पपीहा की सुधि भुलाये रहता है और उसके पानी माँगने पर वज्र तथा पत्थर डालता है। पपीहा की रटन भले ही घट जाय, पर प्रेम बढ़ता ही रहता है। इसी में सब तरह उसकी भलाई है।

कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे * तिमि प्रीतम पद प्रेम निबाहे
भरत वचन सुनि माँझ त्रिवेनी * भइ मृदु वाणि सुमङ्गल देनी

जैसे सोना जलाने से उसकी शोभा बढ़ती है, वैसे ही स्वामी के चरणों में प्रेम निबाहने से सेवक की शोभा है। भरत के वचन सुनकर त्रिवेणी के भीतर उत्तम मंगल देनेवाली कोमल वाणी हुई—

तात भरत तुम सब विधि साधू * रामचरण अनुराग अगाधू
बादि गलानि करहु मन माहीं * तुमसम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं

कि हे तात भरत, तुम सब प्रकार से साधु हो और रामजी के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। मन में वृथा ही ग्लानि करते हो। श्रीरामजी को तुम्हारे समान कोई प्यारा नहीं है।


तन पुलके हिय हर्षि सुनि, वेणि वचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हर्षित वर्षहिं फूल॥

त्रिवेणीजी के अपने अनुकूल वचन सुनकर भरतजी के अंगों में रोमांच हो आया और हृदय में प्रसन्नता हुई। भरतजी को धन्य-धन्य कह प्रसन्न होकर देवता फूल बरसाने लगे।

प्रमुदित तीरथराज निवासी * वैखानस वटु गृही उदासी
कहहिं परस्पर मिलि दशपाँचा * भरतसनेह शील शुचि साँचा

प्रयाग के निवासी वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और संन्यासी सब प्रसन्न हुए। दस-पाँच मनुष्य मिलकर कहते हैं कि भरतजी का स्नेह तथा शील पवित्र और सच्चा है।

सुनत राम गुणग्राम सुहाये * भरद्वाज मुनिवर पहँ आये
दण्डप्रणाम करत मुनि देखे * मूरतिवन्त भाग्य निज लेखे

श्रीरामजी के सुन्दर गुणों को सुनते हुए भरतजी मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी के पास आये। मुनि ने भरतजी को दण्डप्रणाम करते देखकर समझा, वह साक्षात् सशरीर उनका भाग्य ही है।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे * दीन्ह अशीश कृतारथ कीन्हे
आसन दीन्ह नाइ शिर बैठे * चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे

मुनि ने दौड़कर भरत को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर उनको कृतार्थ किया। फिर आसन दिया। तब भरतजी सिर नवाकर बैठे, मानो भागकर संकोच के घर में पैठना चाहते हैं।

मुनि पूछव कछु यह बड़ शोचू * बोले ऋषि लखि शीलसकोचू
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई * विधिकरतव पर कछु न बसाई

मुनि कुछ पूछेंगे, यह बड़ा सोच है। भरत का शील-संकोच देखकर भरद्वाज मुनि बोले— भरत, मैंने सब समाचार पाये हैं। विधाता के काम में किसी का कुछ वश नहीं चलता।



तुम ग्लानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकयिहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति॥

माता की करतूत समझकर तुम जी में ग्लानि मत करो। हे तात, कैकयी का भी इसमें कुछ दोष नहीं है। सरस्वती ने उनकी बुद्धि बिगाड़ दी थी।

यहु कहत भल कहै न कोऊ * लोक वेद बुध सम्मत दोऊ
तात तुम्हार विमल यश गाई * पाइहि लोकहु वेद बड़ाई

यह कहते में भी कोई भला न कहेगा; क्योंकि पण्डितों में लोक और वेद दोनों का मान है। हे तात, तुम्हारा निर्मल यश गाकर मनुष्य लोक और वेद, दोनों में बड़ाई पावेंगे।

लोक वेद सम्मत सबहीका * जेहि पितु देइ सो पावहि टीका
राउ सत्यव्रत तुमहिं बुलाई * देत राज सुख धर्म बड़ाई

लोक और वेद तथा सब लोगों की भी यही सम्मति है कि जिसको पिता राजतिलक दे, वही राज्य पावे। सत्यव्रतवाले राजा तुमको बुलाकर राज्य देते तो भी सुख, धर्म और बड़ाई होती।

रामगमन वन अनरथ मूला * जो सुनि सकल विश्व भइ शूला
सो भावीवश रानि अयानी * करि कुचाल अन्तहु पछितानी

परन्तु श्रीरामजी का वन जाना अवश्य अनर्थ की जड़ हुआ, जिसको सुनकर सब संसार को पीड़ा हुई। होनहार के वश वह अजान रानी भी कुचाल करके अन्त में पछतानी है।

तहाँ तुम्हार अल्प अपराधू * कहै सो अधम अयान असाधू
करतेहु राज तुमहिं नहिं दोषू * रामहिं होत सुनत सन्तोषू

उसमें जो कोई तुम्हारा कुछ भी अपराध कहे, वह नीच, अज्ञानी और दुष्ट है। जो तुम राज्य करते तो भी तुमको दोष न था और सुनकर श्रीरामजी को भी प्रसन्नता होती।



अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत येहु।
सकल सुमङ्गलमूल जग, रघुवर चरण सनेहु॥

हे भरत, अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुमको यही उचित था; क्योंकि संसार में श्रीरामजी के चरणों में स्नेह होना सब सुमंगलों का मूल है।

सो तुम्हार धन जीवन प्राना * भूरिभाग्य को तुमहिं समाना
यह तुम्हार आश्चर्य न ताता * दशरथतनय राम प्रियभ्राता

वही स्नेह तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है। इससे तुम्हारे समान बड़ा भाग्यशाल कौन है? हे तात, तुममें यह प्रेम होना अचरज नहीं है; क्योंकि तुम दशरथ के और श्रीरामजी के प्यारे भाई हो।

सुनहु भरत रघुपति मन माहीं * प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाहीं
राम लषण सीतहिं अति प्रीती * निशि सब तुमहिं सराहत बीती

सुनो भरत, रामजी के मन में तुम्हारे समान कोई प्रेम का पात्र नहीं है। राम, लक्ष्मण और जानकीजी को बड़े प्रेम से सारी रात तुम्हारी बड़ाई करते बीत गई।

जाना मर्म नहात प्रयागा * मगन होत तुम्हरे अनुरागा
तुमपर अस सनेह रघुवर को * सुखजीवन जग जस जड़ नर को

प्रयाग में नहाते समय (संकल्प में) आपका नाम कहते ही श्रीरामचन्द्र स्नेह में डूब गये थे। तब मैंने यह मर्म जाना था कि श्रीरामजी का स्नेह तुममें ऐसा ही है, जैसा कि जड़ मनुष्य का स्नेह संसार में सुख से जीने पर होता है।

यह न अधिक रघुवीर बड़ाई * प्रणत कुटुम्बपाल रघुराई
तुमतौ भरत मोर मत येहू * धरे देह जनु रामसनेहू

यह कुछ श्रीरामजी के लिए अधिक बड़ाई नहीं है। वह तो प्रणत मनुष्य के कुटुम्ब के पालक हैं। हे भरत, मेरा यह मत है कि तुम तो मानो श्रीरामजी के स्नेह की साक्षात् मूर्ति हो।



तुमकहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेश।
रामभक्तिरससिद्धि हित, भा यह समय गणेश ॥

हे भरतजी, तुमको जो कलंक हुआ, वही हम सबके लिए उपदेश हुआ। इस समय आपका चित्रकूट जाना रामजी की भक्ति के रस की सिद्धि के लिए गणेश (आरम्भ) हुआ।

नवविधु तात विमल यश तोरा * रघुवरकिंकर कुमुद चकोरा
घटै न जग नभ दिन दिन दूना * उदित सदा अथवत कबहूँना

हे तात, तुम्हारा निर्मल यश नया (दूज का) चन्द्रमा है और श्रीरामजी के दास कोकाबेली और चकोर के समान हैं। संसाररूपी आकाश में तुम्हारा चन्द्रमारूपी यश न घटेगा; वह दिन दूना चमकेगा और सदैव उदय रहेगा—कभी अस्त न होगा।

कोक त्रिलोक प्रीति नित करहीं * प्रभुप्रतापरवि छविहि न हरहीं
निशिदिन सुखद सदा सब काहू * ग्रसै न कैकयि करतबराहू

त्रिलोक के कोकाबेलीरूप रामभक्त, इस यशरूपी चन्द्रमा में नित्य प्रेम करेंगे और स्वामी का प्रतापरूपी सूर्य उस चन्द्र की शोभा न हरेगा। यह यशरूप चन्द्रमा सदा रात-दिन सबको सुखदायक होगा; कैकेयी का कर्मरूपी राहु उसको नहीं ग्रस सकेगा।

पूरण राम सुप्रेम पियूषा * गुरु अपमान दोष नहिं दूषा
रामभक्तिरस अमिय अघाहू * कीन्हेउ सुलभ सुधा वसुधाहू

वह चन्द्रमा श्रीरामजी के प्रेमरूपी अमृत से भरा रहेगा और गुरु के अपमान के दोष से

दूषित न होगा। रामभक्ति के रसरूप अमृत से रामभक्त अघायँगे। इस चन्द्रमा ने पृथ्वी में भी अमृत को सुलभ कर दिया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी * सुमिरत सकल सुमङ्गलखानी
दशरथगुणगण बरणि न जाहीं * अधिक कहा जेहिसम कोउ नाहीं

राजा भगीरथ गंगाजी को लाये हैं, जो स्मरण करने से ही सब उत्तम मंगलों की खान है। दशरथ के गुणों का तो बखान ही नहीं हो सकता, जिनके बराबर कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे हो सकता है!



जासु सनेह सकोच बश, राम प्रकट भये आय।
जे हर हियनयनन कबहुँ, निरखे नहीं अघाय॥

जिनके स्नेह और संकोच से विष्णुरूप श्रीरामजी प्रकट हुए, जिनको महादेवजी हृदय के नेत्रों से देखकर कभी नहीं अघाते।

कीरतिविधु तुम कीन्ह अनूपा * जहँ बस रामप्रेम मृगरूपा
तात गलानि करहु जिय जाये * डरहु दरिद्रहि पारस पाये

तुमने अनूप यशरूप चन्द्रमा बनाया है, जिसमें हरिणरूपी श्रीराम का प्रेम बसता है। ऐ तात, मन में ग्लानि मत करो। पारस को पाकर भी दरिद्र से डरते हो?

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं * उदासीन तापस वन रहहीं
सब साधनकर सुफल सुहावा * लषण राम सिय दरशन पावा

हे भरत, सुनो, हम झूठ नहीं कहते; क्योंकि हम उदासीन तपस्वी वनवासी हैं। सब साधनों का सुन्दर फल मैंने लक्ष्मण, राम और जानकीजी के दर्शन से पाया।

तेहि फल कर फलदरश तुम्हारा * सहित प्रयाग सुभाग हमारा
भरत धन्य तुम जगयश लयऊ * कहि अस प्रेममगन मुनि भयऊ

तुम्हारा दर्शन उसी फल का प्रतिफल है। प्रयागवासियोंसमेत हमारा भाग्य अच्छा है। हे भरत, तुम धन्य हो। तुमने संसार में यश पाया। ऐसा कहकर भरद्वाज मुनि प्रेम में मग्न हो गये।

सुनि मुनिवचन सभासद हरषे * साधु सराहि सुमन सुर बरषे
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा * सुनिसुनि भरत मगन अनुरागा

मुनि के वचन सुनकर सब सभा के बैठनेवाले प्रसन्न हुए और साधुमण्डली की सराहना कर देवताओं ने फूल बरसाये। आकाश और प्रयागराज में धन्य-धन्य शब्द होने लगा, जिसे सुन भरतजी राम के अनुराग में मग्न हो गये।



पुलकिगात हिय रामसिय, सजल सरोरुहनैन।
करि प्रणाममुनिमण्डलिहिं, बोले गदगद बैन॥

उनके अंग में रोमांच हो आया। हृदय में सीताराम को बसाकर और कमल-सरीखे नेत्रों में आँसू भरकर भरतजी मुनियों की मंडली को प्रणामकर गद्गद वचन बोले—

मुनिसमाज अरु तीरथराजू * साँचेहु शपथ अघाय अकाजू
यहि थल जो कछु कहिय बनाई * तेहिते अधिक न अघ अधमाई

यहाँ मुनियों की सभा और प्रयागराज है, इसलिए सची सौगन्ध खाने से भी बड़ा अकाज होता है। इस स्थान पर जो कुछ बनाकर झूठ कहे तो उससे अधिक पाप और नीचता नहीं है।

तुम सर्वज्ञ कहौं सतिभाऊ * उर अन्तरयामी रघुराऊ
मोहिं न मात करतव कर शोचू * नहिं दुखजियजगजानिहिपोचू

मुनिवर, तुम सब जानते हो और श्रीरामजी हृदय की बात जानते हैं। मैं सच कहता हूँ, मुझको माता कैकेयी की करनी का सोच नहीं है और मन में यह भी दुःख नहीं है कि संसार मुझे बुरा जानेगा।

नाहिंन डर बिगरहि परलोकू * पितहु मरणकर नाहिंन शोकू
सुकृत सुयश भरि भुवन सुहाये * लक्ष्मण रामसरिस सुत पाये

यह भी डर नहीं है कि परलोक बिगड़ जायगा। पिता के मरने का भी शोक नहीं है, जिनका पुण्य और यश संसार में फैला है और जिन्होंने राम, लक्ष्मण-जैसे श्रेष्ठ पुत्र पाये।

रामविरह तजि तन क्षणभंगू * भूप शोच कर कवन प्रसंगू
राम लषण सिय बिन पग पनहीं * करि मुनि वेष फिरहिं बन बनहीं

उन्होंने तो रामजी के वियोग में क्षणभंगुर शरीर को ही छोड़ दिया। इससे राजा के सोच का कौन प्रसंग है? परन्तु राम, लक्ष्मण तथा जानकीजी बिना पनहियों के मुनियों का-सा वेष बनाकर बन-बन में पैदल फिरते हैं।



अजिनवसनफलअशनमहि, शयनडासिकुशपात।
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप बरषा बात॥

उनका मृगचर्म के वस्त्र, फलों का भोजन, कुश-पत्तों को बिछाकर पृथ्वी पर सोना और वृक्ष के नीचे रहकर नित्य जाड़ा, गरमी, वर्षा और वायु सहना।

यह दुख दाह दहै नित छाती * भूँख न वासर नींद न राती
यहि कुरोग की औषधि नाहीं * शोधेउँ सकल विश्व मनमाहीं

इस दुःख की जलन से नित्य मेरी छाती जलती है। न दिन को भूख है, न रात को नींद लगती है। मैंने मन में सब संसार ढूँढ़ा, पर इस कुरोग की दवा नहीं है।

मातु कुमति बढ़ई अघमूला * तेहि हमार हित कीन्ह बसूला

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुयन्त्रू * गाड़ु अवधि पढ़ि कठिन कुमन्त्रू

माता की दुष्ट बुद्धिरूपी पापों की जड़ बढ़ई है; उसने हमारे हित (राज्यरूप) को दस्तूला बनाया। उसने कल्पना की कि जो रामजी राजा होंगे तो मुझे और भरत को दुःख होगा—इस कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और चौदह वर्ष की अवधिरूप कठिन कुमन्त्र को पढ़कर अयोध्या में गाड़ दिया।

जोहिं लगि यह कुठाट तेहि ठाटा * घालेसि सब जग बारहबाटा
मिटै कुयोग राम फिरि आये * बसै अवध नहिं आन उपाये

उसने मेरे लिए यह कुठाट ठाटा और संसार को बारहबाट (नष्ट) कर दिया। जब रामजी फिर आवेंगे, तब यह कुयोग मिटेगा। और किसी यत्न से अयोध्या नहीं बसेगी।

भरतवचन सुनि मुनि सुखपाई * सबहिं कीन्ह बहुभाँति बड़ाई
तात करहु जनि शोच विशेखी * सब दुख मिटहिं रामपद देखी

भरत के ये वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से उनकी बड़ाई की। हे तात, बहुत सोच मत करो। श्रीरामजी के चरणों को देखकर सब दुःख मिट जायँगे।



करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्राणप्रिय होहु।
कन्द मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु॥

मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी ने समझाकर कहा कि तुम प्राणप्रिय पाहुने होओ और कन्द, मूल, फल, फूल जो कुछ हम दें, उसे प्रेम करके लो।

सुनिमुनिवचन भरत हिय शोचू * भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी * चरण बन्दि बोले कर जोरी

मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में यह सोच हुआ कि कुअवसर (राम से मिलने की जल्दी) में यह और कठिन संकोच (देर) हुआ। फिर गुरु की वाणी को गरुई जान उनके चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले—

शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा * परम धर्म यह नाथ हमारा
भरतवचन मुनिवर मनभाये * शुचि सेवक सब निकट बुलाये

हे नाथ, आपकी आज्ञा माथे पर धरकर की जावे—यही हमारा बड़ा धर्म है। भरतजी के वचन मुनिनाथ भरद्वाज को अच्छे लगे। तब उन्होंने सब पवित्र सेवकों को पास बुलाया—

चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई * कन्द मूल फल आनहु जाई
भलेहि नाथ कहि तिन शिरनाये * हर्षित निज निज काज सिधाये

और उनसे कहा कि मैं भरत की पहुनई किया चाहता हूँ। तुम लोग जाकर कन्द, मूल, फल ले आओ। 'हे नाथ, बहुत अच्छा' कहकर वे माथा नवाकर प्रसन्न हो अपने-अपने काम के लिए गये।

मुनिहिं शोच पाहुन बड़ नेवता * तसि पूजा चाहिय जस देवता
सुनिऋधिसिधिअणिमादिकआईं * आयसु होइ सो करौं गोसाईं

मुनि ने सोचा कि बड़े पाहुने को न्योता है। वैसी ही पूजा चाहिए, जैसा कि देवता हो। यह विचारकर मुनि ने सिद्धियों को याद किया। ऋषि की आज्ञा सुनते ही अणिमादिक ऋद्धि-सिद्धियाँ आकर बोलीं कि जो आज्ञा हो, सो हम करें।



रामविरह व्याकुल भरत, सानुज सकल समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहेउ मुदित मुनिराज॥

प्रसन्न हो भरद्वाज ने कहा—भाई और समाज-सहित रामजी के वियोग से व्याकुल भरतजी की पहुनई कर उनकी थकावट हर लो।

ऋधिसिधिशिरधरिमुनिवर बानी * बड़भागिनि आपुहि अनुमानी
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई * अतुलित अतिथि रामलघुभाई

भरद्वाजजी का वचन माथे पर धरकर ऋद्धि-सिद्धियों ने अपने को बड़भागिनी माना। सिद्धियों के गण आपस में कहते हैं कि श्रीरामजी के छोटे भाई भरत अनुपम पाहुने हैं।

मुनिपद वन्दि करिय सोइ आजू * होइ सुखी सब राजसमाजू
असकहि रुचिर रचे गृह नाना * जो बिलोकि बिलखाहिं बिमाना

मुनि के चरणों को प्रणामकर आज वही कीजिए, जिससे सब राजा का समाज सुखी हो। ऐसा कह सिद्धियों ने अनेक भाँति के सुन्दर घर बनाये, जिनको देख देवतों के विमान भी लजाते हैं।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे * देखत जिनहिं अमर अभिलाखे
दासी दास साज सब लीन्हे * जुगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे

भोग और अनेक ऐश्वर्य भर रक्खे, जिन्हें देखते ही देवता चाहते हैं। दासी-दास, सब साज लिये मन लगाये मन की रुचि को देखते रहते हैं।

सबसमाजसजि सिधिपलमाहीं * जो सुख सपनेहु सुरपुर नाहीं
प्रथमहिं बास दिये सब केही * सुन्दर सुखद यथारुचि जेही

जो सुख स्वप्न में भी स्वर्ग में नहीं है, उसके सब सामान को सिद्धियों ने पल भर में रच दिया। पहले जिसकी जैसी रुचि थी, वैसा ही सबको रहने के लिए सुन्दर सुख देनेवाला स्थान दिया,



बहुरि सपरिजन भरतकहँ, ऋषि आयसु अस दीन्ह।
बिधिबिस्मयदायकबिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह॥

फिर साथ के लोगों-सहित भरत को भरद्वाज मुनि ने उन स्थानों में रहने की आज्ञा

दी। मुनिनाथ ने तपस्या के बल से ब्रह्मा को भी आश्चर्य में डाल देनेवाले ऐश्वर्य प्रकट कर दिये।

मुनि प्रभाव जब भरत विलोका * सब लघु लगे लोकपतिलोका
सुखसमाज नहिं जात बखानी * देखत विरति बिसारहिं ज्ञानी

जब भरतजी ने भरद्वाज मुनि का प्रभाव देखा, तब उन्हें लोकपालों के सब लोक भी तुच्छ जान पड़े। सुख का सामान कहते नहीं बनता, जिसको देखते ही ज्ञानी लोग वैराग्य को भूल जाते हैं।

आसन शयन सुवसन विताना * वन वाटिका विहँग मृगनाना
सुरभिफूल फलअमिय समाना * विमलजलाशय विविधविधाना

आसन, सेज, उत्तम वस्त्र, चँदोवा, वन, फुलवारी, अनेक प्रकार के पक्षी और मृग, सुगन्धित फूल तथा अमृत के समान स्वादिष्ट फल एवं अनेक भाँति के निर्मल तालाब आदि,

अशनपान शुचि अमलअमीसे * देखि लोग सकुचात यमीसे
सुरसुरभी सुरतरु सबहीके * लखि अभिलाष सुरेश शचीके

पवित्र, निर्मल, अमृत के समान खाने-पीने की वस्तुओं को देख अयोध्यावासी संयमी के समान सकुचते हैं। सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिनको देख इन्द्र और इन्द्राणी भी ललचा उठते हैं।

ऋतुवसन्त बह त्रिविध बयारी * सब कहँ सुलभ पदारथचारी
स्रक चन्दन वनितादिक भोगा * देखि हर्ष विस्मयवश लोगा

उस समय वहाँ वसन्तऋतु हो गई और शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु बहने लगी। सब को चारों पदार्थ सुलभ हो गये। माला, चन्दन और स्त्री आदि भोगों को देखकर लोग हर्ष और विस्मय के वश हो गये।



सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निशिआश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार॥

मुनि के तपोबल से प्रकट सम्पदा चकई और भरतजी चकवा के समान थे। उन दोनों को मुनि की आज्ञारूप बहेलिये ने श्रीरामजी के वनगमन की रात में आश्रमरूप पिंजड़े के भीतर रख दिया। इस प्रकार सबेरा हो गया।

कीन्ह निमज्जन तीरथराजू * नाइमुनिहिं शिर सहित समाजू
ऋषि आयसु अशीशशिरराखी * करि दण्डवत विनय बहुभाखी

भरतजी ने प्रयागराज में स्नान किया और समाजसमेत मुनि को माथा नवाकर उनकी आज्ञा और आशीर्वाद को माथे पर धरा तथा दण्डवत प्रणाम करके बहुत विनती की।

पथगतिकुशल साथ सब लीन्हे * चले चित्रकूटहिं चित दीन्हे

रामसखा कर दीन्हे लागू * चलत देहधरि जनु अनुरागू

फिर राह को अच्छी तरह जाननेवाले मनुष्यों को साथ लिया और राम में मन लगाये चित्रकूट को चले। निषाद के हाथ में हाथ दिये चलते हैं, मानो सशरीर साक्षात् प्रेम जा रहा है।

नहिं पदत्राण शीश नहिं छाया * प्रेम नेम व्रत धर्म अमाया
लषण राम सिय पन्थ कहानी * पूछत सखहिं कहत मृदुबानी

न पैरों में पनही हैं, न सिर पर छाया है। उनका प्रेम, नेम, व्रत और धर्म छल-कपट से रहित है। मार्ग में लक्ष्मण, राम और जानकीजी की बातें भरतजी मित्र निषाद से पूछते हैं और वह कोमलवाणी से कहता है।

रामवासथल विटप विलोके * उर अनुराग रहत नहिं रोके
देखि दशा सुर वर्षहिं फूला * भइ मृदु भूमि सुमङ्गलमूला

श्रीरामजी के बसने का स्थान और वृक्ष देखकर भरत के हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। यह दशा देखकर देवता फूल बरसाते हैं। उस समय पृथ्वी भरत के लिए कोमल और मंगलों की खान हो गई।


किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहै वर वात।
तस मग भयउ न रामकहँ, जस भा भरतहिं जात॥

मेघ भरत के ऊपर छाँह करते जाते हैं और सुख देनेवाली उत्तम हवा चलती है। मार्ग वैसा सुखदायक रामजी के लिए भी नहीं हुआ था, जैसा कि जाते समय भरतजी के लिए हुआ।

जड़ चेतन जग जीव घनेरे * जे चितये प्रभु जिन प्रभु हेरे
ते सब भये परमपद योगू * भरत दरश मेटेउ भवरोगू

संसार के जितने जड़ और चैतन्य जीवों ने रामजी को देखा और जिन जीवों को रामजी ने देखा, वे सब परमपद के योग्य हो गये। अब भरत के दर्शन ने उनका जन्ममरणरूप संसार का रोग मिटा दिया।

यह बड़ि बात भरत की नाहीं * सुमिरत जिनहिं राम मनमाहीं
बारेक राम कहत नर जेऊ * होत तरणतारण नर तेऊ

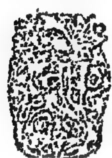
भरत के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिनको रामजी सदा मन में स्मरण करते हैं। जो कोई मनुष्य एक बार भी राम का नाम लेता है, वह भी तरण-तारण हो जाता है, अर्थात् आप तर जाता है तथा औरों को भी तार देता है।

भरत रामप्रिय पुनि लघुभ्राता * कस न होय मग मङ्गलदाता
सिद्ध साधु मुनिवर असकहहीं * भरतहिं निरखि हर्ष हियलहहीं

सिद्ध, साधु और मुनिनायक ऐसा कहते हैं कि एक तो भरतजी राम के प्यारे भक्त और फिर छोटे भाई हैं ; उनके लिए मार्ग सुखदायक क्यों न हो ? सब लोग भरत को देख हृदय में आनन्द पाते हैं।

देखि प्रभाव सुरेशहिं सोचू * जग भल भलेहिं पोचकहँ पोचू
गुरुसन कहेउ करहु प्रभु सोई * रामहिं भरतहिं भेंट न होई

उनका प्रभाव देख इन्द्र ने सोचा कि कहीं भरत राम को लौटा न ले जायँ ; क्योंकि संसार भले को भला और बुरे को बुरा देख पड़ता है। बृहस्पति से इन्द्र ने कहा कि ऐसा कीजिए कि राम से भरत की भेंट ही न हो।



राम सकोची प्रेमवश, भरत सुप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरन चहत, करिय यतन छल शोधि॥

रामचन्द्रजी संकोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी भी प्रेम के सागर हैं। अब बनी-बनाई बात बिगड़ा चाहती है, इसलिए कोई छल खोजकर उसका उपाय कीजिए।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने * सहसनयन बिनु लोचन जाने
कह गुरु बादि क्षोभ छल छाँडू * यहाँ कपट करि होइहि भाँडू

यह वचन सुनते ही बृहस्पतिजी मुसकराये। उन्होंने हजार आँखोंवाले इन्द्र को बिना आँखों का जाना। बृहस्पतिजी ने कहा—वृथा डर और छल को छोड़ दो। यहाँ कपट करने से काम बिगड़ जायगा।

मायापतिसेवक सन माया * करिय त उलटि परै सुरराया
तब कछु कीन्ह रामरुख जानी * अब कुचालिकरि होइहि हानी

हे सुरराज, माया के स्वामी रामचन्द्र के सेवक से माया (छल) करने पर वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ेगी। तब तो कुछ रामजी की इच्छा जानकर किया था, कैकेयी की मति बिगाड़ी थी ; पर अब कुचाल करने से हानि होगी।

सुनु सुरेश रघुनाथ स्वभाऊ * निज अपराध रिसाहिं न काऊ
जो अपराध भक्त कर करई * रामरोषपावक सो जरई

हे सुरनायक, रघुनायक श्रीरामजी के स्वभाव को सुनो। वह अपने अपराध से किसी पर रोष नहीं करते ; परन्तु जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह अवश्य ही श्रीरामजी के क्रोध की आग से जल जाता है।

लोकहु वेद विदित इतिहासा * यह महिमा जानैं दुर्वासा
भरत सरिस को रामसनेही * जग जपु राम राम जपु जेही

लोक और वेद में भी यह कथा प्रसिद्ध है, और इस भक्त की महिमा को दुर्वासा ऋषि जानते हैं। भरत के बराबर कौन-सा श्रीरामजी का प्रेमी है ; क्योंकि संसार जिन रामजी को रटता है, वे श्रीरामजी भरतजी का अपने हृदय में ध्यान करते हैं।



मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुबरभक्त अकाज।
अयश लोक परलोक दुख, दिनदिनशोकसमाज॥

हे देवराज, रघुनाथजी के भक्त का अकाज करने का खयाल भी मन में न लाइए, क्योंकि उससे संसार में अपयश होगा, परलोक में दुःख मिलेगा और दिन-दिन शोक बढ़ेगा।

सुनु सुरेश उपदेश हमारा ※ रामहिं सेवक परम पियारा
मानत सुख सेवक सेवकाई ※ सेवक बैर बैर अधिकाई

हे सुरेश, हमारा उपदेश सुनो। रामजी को अपना सेवक भक्त बड़ा प्यारा है। वे रामजी सेवक की सेवा करने से सुख और सेवक से शत्रुता करने से अधिक बैर मानते हैं।

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू ※ गहहिं न पाप पुण्य नहिं दोषू
कर्मप्रधान विश्व करि राखा ※ जोजसकरहिसोतस फलचाखा

यद्यपि वे समदर्शी हैं, उनके स्नेह और क्रोध नहीं है और न वह किसी का पाप, पुण्य और दोष ग्रहण करते हैं, परन्तु उन्होंने संसार को कर्म-प्रधान बना रक्खा है, अर्थात् जो जैसा करता है, वह वैसा ही उसका फल चखता है।

तदपि करहिं सम विषम विहारा ※ भक्त अभक्त हृदय अनुसारा
अगुण अलेख अमान एकरस ※ राम सगुण भये भक्तप्रेमवश

तो भी वह भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार उनके लिए सम-विषम लीला करते हैं अर्थात् वह सम के लिए सम और कुटिल के लिए टेढ़े हैं। निर्गुण, अलेख, अमित और एकरस रामचन्द्र भक्त के प्रेमवश सगुण हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी ※ वेद पुराण साधु सब साखी
अस जियजानितजहु कुटिलाई ※ करहु भरत पद प्रीति सुहाई

रामजी ने सदा सेवक की रुचि रक्खी है; इससे वेद, पुराण और साधु सब गवाह हैं। ऐसा मन में जानकर कुटिलता छोड़ भरतजी के चरणों में सुन्दर प्रेम करो।



रामभक्त परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भक्तशिरोमणि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥

हे सुरपालक इन्द्र, रामजी के भक्त पराये हित में लगे रहते हैं। वे पराये दुःख में दुःखी होते हैं। इसलिए तुम दयालु और भक्तों में सिरमौर भरतजी से मत डरो।

सत्यसिन्धु प्रभु सुर हितकारी ※ भरत राम आयसु अनुसारी
स्वारथ विवश विकल तुम होहू ※ भरत दोष नहिं राउर मोहू

सत्यसागर रामचन्द्रजी देवताओं के हितकारी हैं और भरतजी रामजी की आज्ञा के माननेवाले हैं। स्वार्थ के वश तुम व्याकुल होते हो। यह भरत का दोष नहीं—तुम्हारा ही मोह या अज्ञान है।

सुनि सुरवर सुरगुरु वर बानी * भा प्रबोध मन मिटी गलानी
बर्षि प्रसून हर्षि सुरराऊ * लगे सराहन भरत स्वभाऊ

बृहस्पति के ये उत्तम वचन सुनकर इन्द्र को सन्तोष हुआ और उनके मन की उदासी मिट गई। वह प्रसन्न हो फूल बरसाकर भरत के स्वभाव की सराहना करने लगे।

यहिविधि भरत चले मगु जाहीं * दशा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा * उमँगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा

इस भाँति भरतजी राह में चले जाते हैं। उनकी दशा (भक्तिभाव) को देखकर मुनि और सिद्ध लोग सिहाते हैं। वह जब 'राम' कहकर उसाँस लेते हैं, तब मानो चारों ओर प्रेम उमँगता है।

द्रवहिं वचनसुनिकुलिश पखाना * पुरजन प्रेम न जाय बखाना
बीच वासकरि यमुनहिं आये * निरखि नीर लोचनजल छाये

भरत के आर्त वचन सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघलते हैं। पुरवासियों का प्रेम कहा नहीं जाता। बीच में एक जगह बसकर भरतजी यमुना के समीप आये। नदी के जल को देखकर उनकी आँखों में आँसू छा गये।


रघुबरबरण विलोकि वर, बारि समेत समाज।
होत विरह वारिधिमगन, चढ़े विवेक जहाज॥

रामजी के शरीर के रंगवाले श्यामवर्ण जल को देखकर मण्डली-समेत भरतजी रामजी के वियोगरूपी समुद्र में डूबने लगे ; परन्तु विवेक (समझ) के जहाज में तुरन्त चढ़ गये अर्थात् धीरज धरा।

यमुनतीर तेहि दिन करि वासू * भयउ समयसम सबहिं सुपासू
रातिहि घाट घाट की तरणी * आईं अगणित जायँ न बरणी

उस दिन यमुना के किनारे पर रहकर सबको समय के अनुसार सुपास हुआ। रात ही को घाट-घाट की अनगिनत नावें आ गईं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

प्रात पार भे एकहिं खेवा * तोषे राम सखा की सेवा
चले अन्हाइ नदिहिं शिरनाई * साथ निषादनाथ लघु भाई

सवेरे एक ही खेवे में सब पार उतर गये और रामजी के सखा निषाद की सेवा से प्रसन्न हुए। फिर भरत ने नहाकर पवित्र नदी को प्रणाम किया और निषादराज व छोटे भाई शत्रुघ्नजी को साथ लेकर आगे चले।

आगे मुनिवर वाहन आछे * राजसमाज जाय सब पाछे
तेहि पाछे दोउ बन्धु पयादे * भूषण बसन वेष अति सादे

आगे अच्छी सवारी पर मुनिवर वशिष्ठजी हैं, राजा का सब समाज पीछे है और उसके पीछे दोनों भाई पैदल जा रहे हैं, जिनके गहने, कपड़े और वेष बिल्कुल सादे हैं।

सेवक सचिव सुहृद सब साथा ※ सुमिरत लषण सीय रघुनाथा
जहँ जहँ रामवास विश्रामा ※ तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रणामा

सेवक, मन्त्री और मित्र सब भरत के साथ हैं। वह लक्ष्मण, जानकी और रामजी को स्मरण करते जाते हैं। राह में जहाँ-जहाँ रामजी ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ वहाँ पहुँचकर वह प्रेमसमेत उस स्थान को प्रणाम करते हैं।



मगवासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि स्वरूप सनेहवश, मुदित जन्मफल पाइ॥

राह के बसनेवाले स्त्री-पुरुष सुनते ही घर के काम छोड़ दौड़कर भरत-शत्रुघ्न के स्वरूप को देखते और स्नेह के वश हो जन्म का फल पाकर प्रसन्न होते हैं।

कहहिं सप्रेम एक इक पाहीं ※ रामलषण सखि होहिं कि नाहीं
वय वपु वर्ण रूप सोइ आली ※ शील सनेहसरिस सम चाली

स्त्रियाँ प्रेमसमेत एक एक से कहती हैं कि हे सखी, ये राम-लक्ष्मण हैं या नहीं? हे सखी, इनकी अवस्था, शरीर, रंग और रूप तो वही है; वैसा ही शील, प्रेम और चाल भी है।

वेष न सो सखि सीय न सङ्गा ※ आगे अनी चली चतुरङ्गा
नहिं प्रसन्नमुख मानस खेदा ※ सखि सन्देह होत यहि भेदा

परन्तु हे सखी, वह मुनि का वेष नहीं है और जानकीजी भी साथ नहीं हैं। आगे चतुरंगिणी सेना भी चली जाती है। इनका मुख प्रसन्न नहीं है, मन में सोच है। हे सखी, इस भेद से सन्देह होता है।

तासु तर्क तियगण मन मानी ※ कहहिं सकल तोहिं सम न सयानी
तेहि सराहि वाणी फुर पूजी ※ बोली मधुर वचन तिय दूजी

उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा और वे कहने लगीं कि तेरे बराबर चतुर दूसरी स्त्री नहीं है। उसको सराहकर उसके सत्य वचन की सबने प्रशंसा की। तब दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू ※ जेहि विधि रामराज्यरसभंगू
भरतहिं बहुरि सराहन लागी ※ शील सनेह स्वभाव सुभागी

उसने प्रेमसमेत सब कथा-प्रसंग कहा कि जिस प्रकार रामजी के राज्यलाभ के समय रस-भंग हुआ। फिर भरतजी के शील, स्नेह, स्वभाव और सौभाग्य को सराहने लगी कि यह



चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राज।
जात मनावन रघुवरहिं, भरतसरिस को आज॥

पिता के दिये राज्य को छोड़कर पैदल चलते और फलों को खाते हुए रामजी को मनाने के लिये जाते हैं। आज भरत के बराबर भाग्यशाली कौन है।

भायप भक्ति भरत आचरणू * कहत सुनत दुख दूषण हरणू
जो कछु कहिय थोर सखि सोई * रामबन्धु अस काहे न होई

भरत का भ्रातृस्नेह, भक्ति और आचरण, कहने-सुनने से दुःख और दोष हर लेता है। हे सखी, जो कुछ कहिए, वह थोड़ा है। रामजी के भाई ही तो हैं, फिर ऐसे क्यों न हों?

हम सब सानुज भरतहिं देखे * भये धन्य युवती जन लेखे
सुनि गुण देखि दशा पछिताहीं * कैकयि जननियोग सुत नाहीं

हम सबने भाईसमेत भरतजी को देखा और हमारा स्त्रीजन्म धन्य हो गया। भरतजी के गुणों को सुन और दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं कि यह कैकेयी माता के योग्य पुत्र न थे।

कोउ कह दूषण रानिहु नाहिन * विधिसबकीन्हहमहिं जो दाहिन
कहँ हम लोक वेदविधिहीनी * लघुतिय कुल करतूति मलीनी

कोई बोली कि इसमें रानी का दोष नहीं; सब ब्रह्मा ने किया है, जो कि हम लोगों के दाहने (अनुकूल) हैं। कहाँ तो लोक और वेदविधि से रहित, कुल और कर्म से मलिन,

बसहिं कुदेश कुगाँव कुवामा * कहँ यह दरश पुण्य परिणामा
अस आनन्द अचरज प्रतिग्रामा * जनु मरुभूमि कल्पतरु जामा

कुदेस और कुगाँव में बसनेवाली और निन्दित हम तुच्छ स्त्रियाँ और कहाँ ये दर्शन। यह सब पुण्यों का फल है। भरत-शत्रुघ्न को देखकर ऐसा आनन्द और आश्चर्य हरएक गाँव में होता है, मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उगा हो।



भरत दशा देखत खुले, मग लोगन कर भाग।
जनुसिंहलवासिन भयउ, विधिवश सुलभ प्रयाग॥

भरतजी की दशा देखते ही मार्ग में बसनेवाले लोगों के भाग्य खुल पड़े, जैसे सिंहल द्वीप के रहनेवालों को विधाता की कृपा से प्रयाग सुलभ हो गया।

निज गुण सहित रामगुणगाथा * सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा
तीरथ मुनिआश्रम सुरधामा * निरखिनिमज्जहिं करहिं प्रणामा

अपने गुणोंसमेत रामजी के गुणों की गाथा सुनते हुए भरतजी रामजी का स्मरण करते जा रहे हैं। वह तीर्थ, मुनियों के आश्रम और देवमन्दिरों को देख स्नान और प्रणाम करते हैं।

मनही मन माँगहिं वर येहू * सीय राम पदपद्म सनेहू
मिलहिं किरात कोल बनवासी * वैखानस बटु यती उदासी

मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि सीतारामजी के चरणकमलों में प्रेम हो। किरात, कोल, वनवासी, वैखानस, ब्रह्मचारी, संन्यासी और उदासीन जहाँ मिलते हैं—

करि प्रनाम पूछहिं जेहि तेही ※ केहि बन लखन राम बैदेही
ते प्रभु समाचार सब कहहीं ※ भरतहिं देखि जन्मफल लहहीं

वहाँ उन सबको प्रणाम कर पूछते हैं कि लक्ष्मण, राम और जानकीजी किस वन में हैं? वे सब रामजी का वृत्तान्त कहते हैं और भरत को देखकर अपने जन्म का फल पाते हैं।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे ※ ते प्रिय राम लखन सम लेखे
इहिबिधि बूझत सबहिं सुबानी ※ सुनत राम बनबास कहानी

जो लोग कहते हैं कि हमने कुशलपूर्वक राम-लक्ष्मण को देखा है, भरत उनको राम लक्ष्मण के समान प्रिय देखते हैं। भरतजी इस प्रकार सबसे कोमल वाणी से पूछते और उनसे राम के वनवास की कथा सुनते हैं।



तेहि बासर बसि प्रातहीं, चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा, भरतसरिस सब साथ॥

उस दिन रात को वहाँ बसकर भरतजी सबेरे ही रामजी का स्मरण करते हुए चले दिये, सब साथियों को भरत के समान ही रामजी के दर्शन की चाह है।

मङ्गल सकुन होहिं सब काहू ※ फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू
भरतहिं सहित समाज उछाहू ※ मिलिहहिं राम मिटहिं दुखदाहू

सबको शुभ सगुन होते हैं; आँखें और भुजाएँ फड़कती हैं, जिससे सूचित होता है कि उन्हें रामदर्शन का सुख मिलनेवाला है। मंडलीसमेत भरत को यह आनन्द है कि रामजी मिलेंगे और दुःख-दाह मिटेगा।

करत मनोरथ जस जिय जाके ※ जाहिं सनेह सुधा सब छाके
सिथिल अङ्ग पग मग डगडोलहिं ※ बिह्वल बचन प्रेमबस बोलहिं

जिसके जी में जैसा है, वह वैसी ही कामना करता है। स्नेह का अमृत छके हुए सब चले जाते हैं। सबके अंग शिथिल हैं, पग डगमगाते हुए पड़ते हैं। वे प्रेम के वश होकर विह्वल (गद्गद) वचन बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय दिखावा ※ शैलशिरोमणि सहज सुहावा
जासु समीप सरितपय तीरा ※ सीय समेत बसहिं दोउ बीरा

उस समय रामजी के मित्र निषाद ने भरतजी को सहज ही सुन्दर, पर्वतों में श्रेष्ठ चित्रकूट के दर्शन कराये, जिसके पास ही पयस्विनी नदी के किनारे जानकीसमेत दोनों वीर राम और लक्ष्मणजी बसते हैं।

देखि करहिं सब दण्डप्रनामा ※ कहि जय जानकिजीवन रामा

प्रेम मगन अस राजसमाजू * जनु फिरि अवध चले रघुराजू

उसको देखकर सबने दण्डप्रणाम किया और कहा—जानकीजीवन रामजी की जय हो। भरत के साथ आई हुई जन-मण्डली प्रेम में ऐसी मग्न है कि मानो रामजी फिर अयोध्या को लौट चले हैं।



भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकै न शेषु।
कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अहममसलिनजनेषु॥

उस समय भरतजी का जैसा प्रेम है, उसका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते। कवि वहाँ तक उसी तरह नहीं पहुँच सकता जिस तरह मैं और 'मेरे' की भावना रखनेवाले मलिन (अज्ञानी) लोग ब्रह्मानन्द का अनुभव नहीं कर सकते।

सकल सनेहशिथिल रघुबर के * गये कोस दुइ दिनकर ढरके
जल थल देखि बसे निशि बीते * कीन्ह गमन रघुनाथ पिरीते

रामजी के स्नेह से शिथिल सब मनुष्य सूर्य के ढलने के बाद दो कोस और आगे गये तथा जल और थल देखकर बसे। रात बीतने पर रामजी के प्रेम से फिर चले।

वहाँ राम रजनी अवशेखा * जागीं सीय स्वप्न अस देखा
सहित समाज भरत जनु आये * नाथ वियोग ताप तनु ताये

वहाँ रामजी रात के बीतने पर जागे। जानकीजी जागीं तो उन्होंने तड़के ऐसा स्वप्न देखा कि मानो समाजसमेत भरतजी आये हैं और रामजी के वियोग-ताप से उनका शरीर जल रहा है।

सकल मलिनमन दीन दुखारी * देखी सासु आन अनुहारी
सुनि सिय स्वप्न भरे जल लोचन * भये शोचवश शोकविमोचन

सब सासों को मलिनमन, दीन, दुखी और ही प्रकार की अर्थात् विधवा देखा। सीताजी का स्वप्न सुन रामजी की आँखों में आँसू भर आये और शोक से छुड़ानेवाले रामजी भी शोच के वश हुए।

लखण स्वप्न यह नीक न होई * कठिन कुचाहि सुनाइहि कोई
अस कहि बन्धु समेत अन्हाने * पूजि पुरारि साधु सनमाने

रामचन्द्र बोले—हे लक्ष्मण, यह स्वप्न अच्छा नहीं है—कोई कठिन, अप्रिय बात सुनावेगा। ऐसा कह भाईसमेत स्नान किया और शिवजी को पूजकर साधुओं का सम्मान किया।

छन्द

सनमानि सुरमुनि बन्दि बैठे उतर दिशि देखत भये।
नभधूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आश्रम गये॥

तुलसी उठे अवलोकि कारण काह चित चकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्ह आय तेहि अवसर कहे॥

रामचन्द्र सम्मान के साथ देवताओं व मुनियों को प्रणाम कर बैठे। उन्होंने उत्तरदिशा में देखा कि आकाश में धूल छाई है। बहुत से पक्षी व मृग विकल होकर भागकर रामजी के आश्रम में आ गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह देखकर रामचन्द्र उठ खड़े हुए और मन में चकित हो कारण सोचने लगे। तब कोलभिल्लों ने आकर सब हाल कहा।

सो० सुनत सुमङ्गल बैन, मन प्रमोद तनु पुलकभर।
शरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥

भरत के आने के मंगल से युक्त वचन सुनते ही रामजी के मन में प्रसन्नता हुई और शरीर में रोमांच हो आया। तुलसीदासजी कहते हैं कि शरद्ऋतु के कमलों के समान नेत्रों में स्नेह से जल भर आया।

बहुरि शोचवश भे सियरमनू * कारण कवन भरत आगमनू
एक आइ अस कहा बहोरी * सेन संग चतुरंग न थोरी

फिर रामजी सोचने लगे कि क्या कारण है, जो भरत यहाँ आये? तब एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ बड़ी चतुरंगिणी सेना भी है।

सो सुनि रामहिं भा अतिशोचू * इत पितु वच उत बन्धु सकोचू
भरतस्वभाव समुझि मनमाहीं * प्रभुचितहित थितिपावत नाहीं

यह सुनकर रामजी को बड़ा सोच हुआ। इधर पिता का वचन, उधर भाई का संकोच। भरतजी का स्वभाव मन में समझकर प्रभु का चित्त हित के स्थान को नहीं पाता कि क्या करने में भलाई है।

समाधान तब भा यह जाने * भरत कहे महँ साधु सयाने
लषण लखेउ प्रभु हृदय खँभारू * कहत समय सम नीति विचारू

तब यह जानकर सन्देह दूर हुआ कि सज्जन, चतुर भरतजी मेरे कहे में हैं। लक्ष्मणजी रामजी को हृदय में व्याकुल देख समयानुसार नीति विचारपूर्वक कहने लगे—

बिन पूछे कछु कहहुँ गुसाँई * सेवक समय न ढीठ ढिठाई
तुम सर्वज्ञ शिरोमणि स्वामी * आपनि समुझि कहौं अनुगामी

हे स्वामी, बिना पूछे कुछ कहता हूँ; अपराध क्षमा कीजिएगा; क्योंकि समय पर सेवक की ढिठाई ढिठाई नहीं गिनी जाती। आप सर्वज्ञजनों में सिरमौर हैं। मैं सेवक अपनी सेवा का कर्तव्य समझकर कहता हूँ।

दो० नाथ सुहृद सुठि सरलचित, शीलसनेहनिधान।
सबपर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥

हे नाथ, आप मित्र, अच्छे, उदार चित्तवाले तथा शील और स्नेह के निधान हैं। आप सब पर प्रीति की प्रतीति अपने ही समान रखते हैं।

विषयी जीव पाइ प्रभुताई * मूढ़ मोहवश होहिं जनाई
भरत नीतिरत साधु सुजाना * प्रभुपदप्रेम सकल जग जाना

सब संसार जानता है कि विषयी जीव ऐश्वर्य को पाकर मोहवश मूर्ख और अभिमानी हो जाते हैं। यह ठीक है कि भरत न्याय में लगे हुए और सज्जन हैं और स्वामी के चरणकमलों में प्रेम रखते हैं—

तेऊ आजु राजपद पाई * चले धर्म मर्याद मिटाई
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी * जानि राम वनवास इकाकी

पर आज वह भी राजपद को पाकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं। वह कुटिल और कुबन्धु हैं; क्योंकि कुसमय देख वनवास में आपको अकेला जानकर—

करि कुमंत्र मन साजि समाजू * आये करन अकण्टक राजू
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई * आये दल बटोरि दोउ भाई

मन में कुविचार कर, दल बाँधकर, सेना साथ लेकर अपने राज्य को निष्कण्टक करने आये हैं। करोड़ों प्रकार से कुटिलता की कल्पना कर ये दोनों भाई यहाँ आये हैं।

जो जिय होत न कपट कुचाली * केहि सुहात रथ बाजि गजाली
भरतहिं दोष देइ को जाये * जग बौराय राज्यपद पाये

जो मन में कपट और कुचाल न होता तो रथ, घोड़े और हाथियों की सेना किसको इस समय सुहाती? पर भरत को तो वृथा दोष कौन दे? राजपद पाकर संसार के सभी लोग बौरा जाते हैं।



शशि गुरुतियगामी नहुष, चढ़े भूमिसुर यान।
लोक वेद ते विमुख भा, अधम को वेनु समान॥

चन्द्रमा ने गुरु की स्त्री को रख लिया; राजा नहुष ब्राह्मणों की सवारी पर चढ़े। राजा वेनु के समान कौन अधम होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया?

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू * केहि न राज्यपद दीन्ह कलंकू
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ * रिपुऋण रंच न राखौं काऊ

सहस्रबाहु अर्जुन, इन्द्र और त्रिशंकु आदि किसको राज्य के पद ने कलंकी नहीं किया? भरत ने यह उचित ही उपाय किया कि शत्रुरूपी ऋण का शेष तनिक भी न रक्खें।

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई * निदरेउ राम जानि असहाई
समुझि परिहि सो आजुविशेखी * समर सरोष राममुख देखी

परन्तु भरतजी ने यही एक काम अच्छा नहीं किया कि 'रामजी को विना सहाय जानकर उनको तुच्छ या कमजोर समझा। आज युद्ध में क्रोध से भरा रामजी का मुख देखकर उन्हें विशेषरूप से अपनी गलती मालूम पड़ जायगी।'

इतना कहत नीतिरस भूला * रणरसविटप पुलकमिस फूला
प्रभुपद बन्दि शीश रज राखी * बोले सत्य सहज बल भाखी

इतना कहते ही लक्ष्मण को नीति का रस भूल गया और वीररस का वृक्ष रोमांच के बहाने जैसे फूल उठा। रामजी के चरणों को प्रणाम कर माथे पर उनकी रज लगाकर अपना सत्य और सहज बल कहते हुए वह फिर बोले।

अनुचित नाथ न मानब मोरा * भरत हमहिं उपचार न थोरा
कहँलगि सहिय रहिय रिसमारे * नाथ साथ धनु हाथ हमारे

हे नाथ, मेरा कहना कुछ अनुचित न मानिएगा। भरत ने हमारा थोड़ा तिरस्कार नहीं किया है। कहाँ तक सहिए और रिस को मारे रहिए? हे नाथ, एक तो साथ में आप हैं और दूसरे मेरे हाथ में धनुष है।

क्षत्रिजाति रघुकुल जनम, रामअनुज जग जान।
लातहु मारे चढ़त शिर, नीच को धूरि समान॥

फिर हमारी जाति क्षत्रिय है, रघुवंश में जन्म हुआ है और रामजी के छोटे भाई हैं, यह संसार जानता है। देखिये, धूल के समान कौन नीच है, पर वह भी लात मारने से बदला लेने के लिए सिर पर चढ़ती है।

उठि करजोरि रजायसु माँगा * मनहुँ वीररस सोवत जागा
बाँधि जटा शिर कसिकटिभाथा * साजि शरासन शायक हाथा

उठकर हाथ जोड़ लक्ष्मण ने आज्ञा माँगी, मानो सोता हुआ वीररस जग पड़ा हो। जटाओं को सिर पर बाँध और कमर में तरकस कसकर धनुष-बाण हाथ में सुधारकर बोले

आजु रामसेवक यश लेऊँ * भरतहिं समर सिखावन देऊँ
राम निरादर कर फल पाई * सोवहिं समरसेज दोउ भाई

आज रामजी की सेवा का यश लूँगा और भरत को युद्ध में शिक्षा दूँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई युद्ध की शय्या पर सोवेंगे।

आय बना भल सकल समाजू * प्रकट करौं रिस पाछिल आजू
जिमिकरिनिकर दलै मृगराजू * लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू

अब समाज आकर अच्छा बना है। आज पिछली रिस को मैं प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियों के झुंड को मारता है और बाज लवों को झपट लेता है,

तैसेहि भरतहि सेन समेता * सानुज निदरि निपातौं खेता
जो सहाय कर शङ्कर आई * तदपि हतौं रण रामदुहाई

वैसे ही सेनासमेत और छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरत को मैं समरभूमि में मारूँगा। जो आकर शिव भी भरत की सहायता करेंगे तो भी मैं उनको युद्ध में मार डालूँगा। यह मैं रामजी की सौगन्द खाकर कहता हूँ।



अतिसरोष माषे लषण, लखिसुनि शपथ प्रमान।
सभयलोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥

बड़े क्रोध से ये बातें लक्ष्मणजी ने कहीं। यह देख-सुनकर और सौगन्द को प्रमाण मानकर सब लोक और लोकपाल भयसमेत भरभराकर भागना चाहते हैं।

जग भय मगन गगन भै बानी * लषण बाहुबल विपुल बखानी
तात प्रताप प्रभाव तुम्हारा * को कहि सकै को जाननहारा

संसार भर डर में डूब रहा था। तब लक्ष्मणजी के बाहुबल को बहुत बखानकर आकाशवाणी हुई कि हे तात, तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और पूरी तरह कौन जाननेवाला है?

अनुचित उचित काज कछु होई * समुझिकरिय भलकह सब कोई
सहसा करि पाछे पछिताहीं * कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं

जो कुछ उचित या अनुचित काम हो, उसको मनुष्य समझकर करे तो सब कोई अच्छा कहता है। बिना विचारे सहसा काम करनेवाले पीछे पछताते हैं, वेद तथा पण्डित कहते हैं कि वे ज्ञानी नहीं।

सुनि सुरवचन लषण सकुचाने * राम सीय सादर सनमाने
कही तात तुम नीति सुहाई * सबते कठिन राजमद भाई

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुच गये और राम-जानकीजी ने आदरसमेत उनका सम्मान करते हुए कहा कि हे तात, तुमने अच्छी नीति कही। भाई, राज्य का मद सब मदों से बढ़कर कठिन है।

जो अँचवत मातहिं नृप तेई * नाहिंन साधुसभा जिन सेई
सुनहु लषण भल भरत सरीखा * विधिप्रपंचमहँ सुना न दीखा

परन्तु राज्य को पाकर वे ही राजा मतवाले होते हैं, जो सज्जनों की सभा में नहीं बैठे। सुनो लक्ष्मण, भरत के समान सज्जन ब्रह्मा की सृष्टि में मैंने नहीं देखा-सुना।



भरतहिं होय न राजमद, विधिहरिहरपद पाय।
कबहुँ कि काँजीशीकरनि, क्षीरसिन्धु बिनशाय॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी के पद को पाकर भी भरत को राज्य का मद न होगा। क्या कभी खटाई की बूँदों से चीरसागर फट सकता है?

तिमिर तरुण तरणिहिं मकु गिलई * गगन मगन मकु मेघहिं मिलई
गोपद जल बूड़हिं घटयोनी * सहज क्षमा बरु छाँड़इ छोनी

चाहे दोपहर के सूर्य को अन्धकार निगल ले, चाहे आकाश डूब के मेघ में मिल जाय अथवा आकाश में रास्ता न मिले; चाहे गऊ के पगभर जल में अगस्त्यजी डूब जायँ, चाहे पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे,

मशक फूँक बरु मेरु उड़ाई * होइ न नृपमद भरतहिं भाई
लषण तुम्हारि शपथ पितुआना * शुचि सुबन्धु नहिं भरतसमाना

चाहे मच्छड़ की फूँक से सुमेरु पर्वत उड़ जाय, पर भैया, भरत को राज्य का मद कभी नहीं हो सकता। तुम्हारी और पिता की सौगन्द है, भरत के बराबर छलरहित अच्छा भाई कोई न होगा।

सुगुण क्षीर अवगुण जल ताता * मिले रचैं परपंच विधाता
भरत हंस रविवंश तड़ागा * जनमि कीन्ह गुणदोषविभागा

भाई! ब्रह्मा गुणरूप दूध और अवगुणरूप जल को मिलाकर सृष्टि रचते हैं। भरतजी हंस हैं और सूर्यवंश तालाब है। उसमें जन्म लेकर भरत ने गुण और दोष अलग-अलग कर लिये हैं।

गहि गुणपय तजि अवगुणवारी * निजयश जगत कीन्ह उजियारी
कहत भरत गुण शील स्वभाऊ * प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ

दूध के समान गुणों को लेकर उन्होंने अवगुणरूप जल को छोड़ दिया है। भरतजी ने अपने यश से संसार को उज्ज्वल कर दिया है। भरतजी के गुण, शील और स्वभाव को कहते हुए रामजी प्रेम के समुद्र में डूब गये।

दो० सुनि रघुबरवाणी विबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु॥

रामजी के वचन सुन और भरत पर उनका स्नेह देख सब देवता सराहते हैं कि राम के समान दयासागर कौन है!

जो न होत जग जन्म भरत को * सकल धर्मधुर धरणि धरत को
कविकुल अगम भरतगुणगाथा * को जानै तुम बिन रघुनाथा

संसार में जो भरतजी का जन्म न होता तो पृथ्वी में सब धर्मों को धारण कौन करता? धर्मों की मर्यादा का पालन कौन करता? कविगण भी भरत के गुणों की गाथा को अच्छी तरह नहीं जान सकते। हे रघुनाथजी, तुम्हारे बिना उसको कौन जान सकता है?

लषण राम सिय सुनि सुरबानी * अतिसुख लहेउ न जाय बखानी
यहाँ भरत सब सहित सुहाये * मन्दाकिनी पुनीत अन्हाये

लक्ष्मण, राम और सीता ने देवताओं की वाणी सुन बड़ा सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ सब लोगों के साथ भरतजी ने उत्तम और पवित्र मन्दाकिनी के जल में स्नान किया।

सरित समीप राखि सब लोगा * माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा
चले भरत जहँ सिय रघुराई * साथ निषादनाथ लघुभाई

सब लोगों को नदी के किनारे छोड़कर माता, गुरु और मंत्रियों से आज्ञा माँगकर भरतजी निषादों के स्वामी और छोटे भाई को साथ लिये वहाँ को चले, जहाँ सीता और रामजी थे।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं * करत कुतर्क कोटि मनमाहीं
राम लषण सिय सुनि मम नाऊँ * उठि जनिअनतजाहिंतजिठाऊँ

माता का कर्म समझकर भरतजी सकुचते हैं और मन में करोड़ों कुतर्क करते हैं कि कहीं रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुन मारे घृणा के स्थान छोड़कर अन्य स्थान को न उठ जायँ।


मातु मते महँ जानि मोहिं, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुणतजिआदरहिं, समुझि आपनी ओर॥

मुझे माता की सलाह पर चलनेवाला जानकर वह जो कुछ करें सो थोड़ा है। परन्तु रामचन्द्रजी मेरे पाप और अवगुण को छोड़ अपनी ओर देखकर मेरा आदर ही करेंगे।

जो परिहरहिं मलिनमन जानी * जो सनमानहिं सेवक मानी
मोरे शरण राम की पनहीं * राम सुस्वामि दोष सब जनहीं

यदि छोड़ दें तो मेरा मलिन मन समझकर और जो आदर करें तो सेवक मानकर रामकी पनहियाँ मेरी रक्षक हैं। राम तो सुन्दर स्वामी हैं, दोष सब दास ही के हैं।

जग यशभाजन चातक मीना * नेम प्रेम निज निपुण नवीना
अस मन गुनत चले मग जाता * सकुचि सनेह शिथिल सबगाता

संसार में पपीहा और मछली यश के पात्र हैं, जो कि अपने नेम और प्रेम में चतुर हैं। भरतजी ऐसा मन में विचारते राह में चले जाते हैं। संकोच और स्नेह के मारे उनके सब अंग शिथिल हो रहे हैं।

फेरत मनहु मातु कृत खोरी * चलत भक्तिबल धीरज धोरी
जब समुझहिं रघुनाथस्वभाऊ * तब पथ परत उतावल पाऊ

मानो माता का किया हुआ अपराध भरत को पीछे लौटाता है, परन्तु भक्ति के बल से

धीरज धरकर वह आगे बढ़ते हैं। जब रामजी का स्वभाव समझते, याद करते हैं, तब राह में पाँव तेजी से पड़ते हैं।

भरतदशा तेहि अवसर कैसी ❋ जलप्रवाहजलअलिगति जैसी
देखि भरत कर शोच सनेहू ❋ भा निषाद तेहि समय विदेहू

उस समय भरत की दशा कैसी है, जैसे जल के प्रवाह में जलभँवर की चाल हो। भरत का सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया, अर्थात् देह की सुध भूल गया।


लगे होन मङ्गल सगुन, सुनिगुनि कहत निषाद।
मिटिहि शोच होइहि हरष, पुनि परिणाम विषाद॥

उस समय भरत को अच्छे सगुन होने लगे। उनको सुन और विचारकर निषाद कहने लगा—सोच मिटेगा, प्रसन्नता होगी, और फिर अन्त में विषाद होगा।

सेवकवचन सत्य सब जाने ❋ आश्रम निकट जाय नियराने
भरत दीख वन शैल समाजू ❋ मुदित क्षुधित जनु पाय सुनाजू

भरत ने सेवक (निषाद) के वचन सब सच्चे जाने और आश्रम के पास पहुँचे। भरत ने वन और पहाड़ को देखा तो वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे भूखा उत्तम अन्न पाकर प्रसन्न हो।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी ❋ त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी
जाइ सुराज सुदेश सुखारी ❋ होइ भरत गति तेहि अनुहारी

जैसे ईतियों * से डरी हुई और तीनों प्रकार के तापों और शनैश्चर आदि ग्रहों से सताई हुई प्रजा अच्छे राज्य और उत्तम देश में जाकर सुखी हो, वैसे ही वही दशा भरतजी की हो रही थी।

राम वास वन सम्पति भ्राजा ❋ सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा
सचिव विराग विवेक नरेशू ❋ विपिन सुहावन पावन देशू

राम के रहने से वन में वैसी ही सम्पत्ति शोभित थी, जैसे प्रजा अच्छा राजा पाकर सुखी हो। विवेक राजा और विराग मन्त्री है, सुन्दर वन पावन देश है।

भट यम नियम शैल रजधानी ❋ शान्ति सुमति शुचि सुन्दर रानी
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ ❋ रामचरण आश्रित चित चाऊ

यम-नियम योद्धा हैं, चित्रकूट पर्वत राजधानी है और शान्ति, सुमति तथा पवित्रता, ये तीन सुन्दरी रानियाँ हैं। सब अंगों से पूर्ण विवेक राजा है, जो राम के चरणों के आश्रय से चित्त में प्रसन्न है।

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषकाः शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः॥ बहुत वृष्टि, अनावृष्टि, चूहों का बढ़ना, टीडी-दल का आना, तोते लगना, अपने राज्य की सेना और शत्रु की सेना, ये सात ईतियाँ कही गई हैं।



जीति मोहमहिपालदल, सहित विवेक भुवाल।
करत अकंटक राज पुर, सुख सम्पदा सुकाल॥

विवेक राजा ने सेनासमेत अज्ञानरूपी राजा को जीत लिया है, और जिसमें सुख, सम्पदा तथा सुकाल है, उस नगर में निष्कंटक राज्य करता है।

बन प्रदेश मुनिबास घनेरे * जनु पुर नगर गाँव गण खेरे
विपुलविचित्र विहँग मृगनाना * प्रजा समाज न जाय बखाना

वन के स्थानों में जो बहुत-से मुनियों के स्थान हैं, वे ही मानो पुर, नगर, गाँव और बहुत से खेरे हैं। बहुत से रंग-बिरंगे पक्षी और अनेक भाँति के मृग प्रजामण्डली हैं, जिसका बखान नहीं किया जा सकता।

खगहा करि हरि बाघ बराहा * देखि महिष वृकसाज सराहा
वैर विहाय चरहिं इक संगा * जहँ तहँ मनहु सेन चतुरंगा

गैंड़ा, हाथी, सिंह, बाघ, बड़ैले, सुअर, भैंसों और भेड़ियों के समाज को देखकर भरत ने सराहना की। वैर को छोड़कर ये सब एक साथ जहाँ-तहाँ चरते हैं, मानो वही चतुरंगिणी सेना है।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं * मनहु निशान विविध विधि बाजहिं
चक चकोर चातकशुकपिकगन * कूजत मंजु मराल मुदितमन

झरने झरते हैं। मतवाले हाथी जो गर्जते हैं, वही मानो अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे बजते हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोते और कोयलों के झुंड तथा सुन्दर हंस प्रसन्नमन होकर जहाँ-तहाँ बोल रहे हैं।

अलिगण गावत नाचत मोरा * जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा।
बेलि विटपतृण सफल सफूला * सब समाज मुदमंगलमूला

भौंरों के समूह गाते और मोर नाचते हैं, वही मानो उत्तम राज्य में चारों ओर मंगल हो रहे हैं। फलों फूलोंसमेत लता, वृक्ष और तृण ही आनन्द-मंगल-मूल समाज हैं।



रामशैल शोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तपफल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥

रामजी के पर्वत (चित्रकूट) की शोभा देखकर भरतजी के मन में बड़ा प्रेम हुआ, जैसे नियमों के समाप्त होने पर तपस्या का फल पाकर तपस्वी प्रसन्न होता है।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई * कहेउ भरतसन भुजा उठाई
नाथ देखियत विटप विशाला * पाकरि जम्बु रसाल तमाला

दौड़कर ऊँचे पर चढ़ केवट ने भुजा उठाकर भरत से कहा—नाथ, जो ये पकरिया, जामुन, आम और तमाल के बड़े भारी वृक्ष देख पड़ते हैं,

तिन तरुवरन मध्य बट सोहा * मंजु विशाल देखि मनमोहा
नील सघन पल्लव फल लाला * अविचल छाँह सुखद सब काला

उन्हीं उत्तम वृक्षों के बीच वे शोभित मनमोहन बड़े भारी सुन्दर बरगद के वृक्ष को देखिए, जिसके नीले घने पत्ते तथा फल लाल हैं, और कभी न हटनेवाली सुखदायक छाया है।

मानहु तिमिर अरुणमय रासी * बिरची बिधि सकेलि सुषमासी
ये तरु सरित समीप गोसाँई * रघुबर पर्णकुटी जहँ छाई

मानो अन्धकार और अरुण के ढेर को ब्रह्मा ने एक स्थान में बटोरकर एक शोभा-सी रची है। उसी वृक्ष के नीचे नदी के पास ही, जहाँ रामजी ने पर्णकुटी (पत्तों का घर) बनाई है,

तुलसी तरुवर विविध सुहाये * कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषण लगाये
बटछाया वेदिका बनाई * सिय निज पाणि सरोज सुहाई

अनेक प्रकार के उत्तम तुलसी के वृक्ष शोभित हैं, जिनको कहीं-कहीं सीता और कहीं लक्ष्मण ने लगाया है। बरगद की छाँह में सीताजी ने अपने ही कमल-सरीखे हाथों से सुहावनी वेदी (चबूतरा) बनाई है।


जहँ बैठे मुनिगण सहित, नित सियराम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान॥

जहाँ पर मुनियोंसमेत सीतासहित सुजान रामजी नित्य बैठते हैं और सब शास्त्रों, वेदों और पुराणों की कथाओं तथा इतिहासों को सुनते हैं।

सखावचन सुनि विटप निहारी * उमँगेउ भरत विलोचन वारी
करत प्रणाम चले दोउ भाई * कहत प्रीति शारद सकुचाई

मित्र के वचन सुन और उस वृक्ष को देखकर भरतजी की आँखों में आँसू आ गये। दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न प्रणाम करते हुए चले, जिनकी प्रीति का वर्णन करने में सरस्वती भी सकुचती है।

हरषहिं निरखि रामपद अंका * मानहु पारस पायउ रंका
रजशिर धरि हिय नैनन लावहिं * रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं

रामजी के चरण-चिह्नों को देखकर भरतजी ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो कंगाल पारस पत्थर पा गया हो। फिर उस धूलि को माथे पर धर हृदय और नयनों में लगाते हैं तथा रामजी के मिलने का-सा सुख पाते हैं।

देखि भरतगति अकथ अतीवा * प्रेममगन खग मृग जड़ जीवा
सखहिं सनेह विवश मग भूला * कहि सुपन्थ सुर बरषहिं फूला

जिसका वर्णन बिलकुल ही नहीं किया जा सकता, ऐसी भरत की दशा देख पक्षी

और मृग आदि जड़ जीव भी प्रेम में डूब गये। प्रेम के कारण निषाद को मार्ग भूल गया। तब देवता बाजे बजाकर फूल बरसाने लगे।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे * सहज सनेह सराहन लागे
होत न भूतल भाव भरत को * अचर सचर चर अचर करत को

सिद्ध और साधक यह देख प्रसन्न हुए, तथा उस सहज स्नेह की सराहना करने लगे। पृथ्वी में जो भरत का भक्तिभाव न होता तो अचर (वृक्ष आदि) को सचेत और चर मनुष्यों को जड़ (आनन्द के कारण चित्रलिखित-सा) कौन बनाता?



प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रकटे सुरसाधु हित, कृपासिन्धु रघुबीर॥

कृपासिन्धु रामजी ने देवताओं और साधुओं के लिए वियोगरूपी मन्दराचल से भरत-रूपी गंभीर समुद्र को मथकर प्रेमरूपी अमृत उत्पन्न किया।

सखा समेत मनोहर जोटा * लखेउ न लषण सघनबनओटा
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन * सकल सुमङ्गलसदन सुहावन

लक्ष्मणजी ने सघन वन की ओट होने से सखा (निषाद)-समेत भरत-शत्रुघ्न की सुन्दर जोड़ी नहीं देखी। परन्तु भरत ने सब मङ्गलों का स्थान, सोहावना और पावन रामजी का आश्रम देख लिया।

करत प्रवेश मिटा दुख दावा * जनु योगी परमारथ पावा
देखे भरत लषण प्रभु आगे * पूछत वचन कहत अनुरागे

आश्रम में प्रवेश करते ही दुःख का दावानल बुझ गया, जैसे योगी परमार्थ (मोक्ष) को पा गया हो। भरत ने देखा, लक्ष्मण रामजी के आगे खड़े कुछ पूछते और रामजी प्रेम से बताते हैं।

शीश जटा कटि मुनिपट बाँधे * तूण कसे कर शर धनु काँधे
बेदी पर मुनि साधु समाजू * सीय सहित राजत रघुराजू

लक्ष्मण सिर में जटाएँ और कमर में मुनियों के-से वस्त्र (वल्कल) बाँधे, तरकस कसे, हाथ में बाण और कन्धे पर धनुष रक्खे हैं, वेदी पर मुनियों और साधुओं का समाज है; वहीं सीतासमेत रामजी विराजमान हैं।

बल्कलबसन जटिल तनु श्यामा * जनु मुनिवेष कीन्ह रतिकामा
कर कमलन धनु शायक फेरत * जी की जरनि हरत हँसि हेरत

रामचन्द्र पेड़ों की छाल के वस्त्र पहने, जटा धारण किये, श्याम शरीर ऐसे शोभित हैं, मानो मुनिवेष में रति और काम हों। कमल-से हाथों में धनुष-बाण फेरते हैं और हँसकर देखते ही जी की जलन को हर लेते हैं।



लसत मंजु मुनिमण्डली, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

सुहावनी मुनिसभा में सीता और रामजी ऐसे सोहते हैं, मानो ज्ञान के समाज में साक्षात् स शरीर भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हों।

सानुज सखासमेत मगनमन ※ बिसरे हर्ष शोक सुख दुखगन
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं ※ भूतल परे लकुट की नाईं

रामजी को देख शत्रुघ्न और निषादसमेत भरतजी मग्नमन हो गये—उनको हर्ष-शोक, सुख-दुःख सब भूल गये। वह हे नाथ, हे स्वामी, "पाहि-पाहि" कहकर पृथ्वी में लकड़े की भाँति गिर पड़े।

बचन सप्रेम लखण पहिंचाने ※ करत प्रणाम भरत जिय जाने
बन्धु सनेह सरस इहि ओरा ※ उत साहिब सेवा बरजोरा

लक्ष्मणजी ने प्रेमयुक्त वचन (वाणी) पहचान लिये और मन में जाना कि भरतजी प्रणाम करते हैं। इधर तो भाई भरत का स्नेह अधिक है और उधर स्वामी रामजी की सेवा का भाव प्रबल है।

मिलि न जाय नहिं गुदरत बनई ※ सुकवि लखण मन की गति भनई
रहे राखि सेवा पर भारू ※ चढ़ी चंग जनु खैंच खिलारू

इससे न तो भरत से मिला जाता है और न सेवा करते बनता है, ऐसी लक्ष्मणजी के मन की गति कवि कहता है। फिर सेवा ही को बड़ी समझ वह नहीं उठे और जैसे चढ़ी पतंग को खिलाड़ी खींच ले, ऐसे ही भरत से मिलने की ओर से मन को खींच लिया।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा ※ भरत प्रणाम करत रघुनाथा
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा ※ कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा

प्रेमसमेत पृथ्वी में सिर नवाकर लक्ष्मणजी बोले—हे रघुनाथ, भाई भरतजी प्रणाम करते हैं। यह सुन प्रेम में अधीर होकर रामजी उठे तो वस्त्र कहीं, तरकस कहीं और धनुष-बाण कहीं गिर पड़े।



बरबस लिये उठाय उर, लाये कृपानिधान।
भरतरामकीमिलनिलखि, बिसरा सबहिं अपान॥

दयानिधान रामजी ने भरत को बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया। उस समय भरत और रामजी का मिलना देख सबको अपने शरीर की भी सुध नहीं रही।

मिलन प्रीति किमि जाय बखानी ※ कविकुल अगम कर्म मन बानी
परम प्रेम पूरण दोउ भाई ※ मनबुधिचितअहमिति बिसराई

मिलने का प्रेम कैसे कहा जाय ? कवियों के लिए तो वह प्रेम मन, वचन और कर्म से अगम है। दोनों भाई मन, बुद्धि, चित्त और अहंभाव को भुलाकर प्रेम से भर गये।

कहहु सुप्रेम प्रकट को करई * केहि छाया कविमति अनुसरई
कविहिं अर्थ आखर बल साँचा * अनुहरि तालगतिहि नट नाचा

कहो, उस उत्तम प्रेम को कौन प्रकट कर सकता है और कवि की बुद्धि किस छाया (आधार) के अनुसार चले ? कवि को अक्षर और अर्थ का बल सच्चा होता है, जैसे नट ताल की गति पर नाचता है।

अगम सनेह भरत रघुवर को * जहँ न जाय मन विधिहरिहर को
सो मैं बरणि कहौं केहि भाँती * बाज सुराग कि गाँड़र ताँती

पर भरत और रामजी का स्नेह अगम है, जहाँ तक ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी मन नहीं पहुँच पाता, उसे मैं कैसे वर्णन करूँ ? कहीं गाँड़र तिनके की ताँत से अच्छा राग निकलता है ?

मिलनि विलोकि भरत रघुवर की * सुरगण सभय धुकधुकी धरकी
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे * बरषि प्रसून प्रशंसन लागे

भरत और रामजी का मिलना देख इस डर से देवताओं के हृदय धड़कने लगे कि कहीं भरत के स्नेह के वश हो रामचन्द्र लौट न जायँ और फिर रावण का वध न हो। फिर बृहस्पति के समझाने से जड़ देवता समझ गये और फूल बरसाकर सराहने लगे।


मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरिभाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण किये प्रणाम॥

प्रेम समेत शत्रुघ्न को मिलकर रामजी निषाद को मिले। तब बड़े भाग्यवाले लक्ष्मणजी भरत को मिले और प्रणाम किया।

भेंटेउ लषण ललकि लघु भाई * बहुरि निषाद लीन्ह उरलाई
पुनि मुनिगण दोउ भाइन वन्दे * अभिमत आशिष पाइ अनन्दे

लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले ; फिर निषाद को हृदय से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने मुनियों को प्रणाम किया और मनमाने आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए।

सानुज भरत उमँगि अनुरागा * धरि शिर सियपद पद्मपरागा
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाये * शिर करकमल परसि बैठाये

शत्रुघ्न-समेत भरतजी ने प्रेम से उमँगकर सीताजी के चरणकमलों की रज माथे पर चढ़ाकर बार-बार प्रणाम किया। सीताजी ने भी कमल सरीखा हाथ उनके माथे पर धरकर पास बिठा लिया।

सीय अशीश दीन्ह मनमाहीं * मगन सनेह देह सुधि नाहीं
सब विधि सानुकूल लखि सीता * भे अशोच उर अपडर बीता

सीता ने मन ही में आशीर्वाद दिया और स्नेह में इतना मग्न हो गईं कि देह की भी सुध उन्हें न रही। सब प्रकार सीताजी को प्रसन्न देख भरतजी सोच से रहित हो गये और मन का यह डर जाता रहा कि राम और सीता मुझसे घृणा करेंगे—नहीं मिलेंगे।

कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूछा * प्रेमभरा मन निज गति छूछा
तेहि अवसर केवट धीरज धरि * जोरिपाणि विनवत प्रणाम करि

न कोई कुछ कहता है न कोई कुछ पूछता; क्योंकि प्रेम से भरा मन अपनी गति से हीन हो गया है। उस समय केवट ने धीरज धरकर हाथ जोड़ प्रणाम किया और विनय करने लगा—


नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये विकल वियोग॥

हे नाथ, वशिष्ठजी के साथ सब माताएँ, नगर के लोग, सेवक, सेनापति और सब मन्त्री आदि आपके वियोग से दुखी होकर यहाँ आये हैं।

शीलसिन्धु सुनि गुरुआगमनू * सीय समीप राखि रिपुदमनू
चले सवेग राम तेहि काला * धीर धुरन्धर दीनदयाला

गुरु का आना सुनते ही सीता के पास शत्रुघ्न को छोड़कर उस समय शील के सागर धर्मधुरन्धर दीनदयालु रामजी जल्दी से उनसे मिलने चले।

गुरहिं देखि सानुज अनुरागे * दण्डप्रणाम करन प्रभु लागे
मुनिवर धाय लिये उरलाई * प्रेम उमँगि भेंटे दोउ भाई

गुरु को देखकर भाई-समेत रामजी प्रेम से दण्डप्रणाम करने लगे। मुनिनायक वशिष्ठजी ने दौड़कर उनको हृदय से लगा लिया और प्रेम से उमँगकर दोनों भाइयों को मिले।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू * कीन्ह दूरि ते दण्डप्रणामू
रामसखा ऋषि बरबस भेंटे * जनु महि लुटत सनेह समेटे

प्रेम में पुलकित होकर केवट ने अपना नाम कहकर दूर ही से मुनि को दण्डप्रणाम किया। रामचन्द्र के मित्र (निषाद) से मुनिवर बरबस मिले, मानो पृथ्वी में लुटते हुए स्नेह को उन्होंने बटोर लिया।

रघुपति भक्ति सुमंगल मूला * नभ सराहि सुर वर्षहिं फूला
यहिसम निपट नीच कोउ नाहीं * बड़ वशिष्ठ सम को जगमाहीं

रामजी की भक्ति उत्तम मङ्गलों की मूल है, इस तरह सराहना कर देवता आकाश से फूल बरसाते हैं। देवता कहते हैं—इस (निषाद) के बराबर कोई निपट नीच नहीं है और वशिष्ठ के समान कौन संसार में बड़ा है?



जेहि लखि लषणहुँते अधिक, मिले महामुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रतापप्रभाउ॥

जो निषाद को देख महामुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मण से भी अधिक जान उससे गले मिले सो यह सीतापति के भजन के प्रताप का ही प्रकट प्रभाव है।

आरत लोग राम सब जाना * करुणाकर सुजान भगवाना
जे जेहि भाँति रहा अभिलाखी * तेहि तेहिकी तैसी रुचि राखी

दया की खान सुजान भगवान् रामजी ने सब लोगों को अपने वियोग से दुखी जाना। जिसने जिस प्रकार की इच्छा की, उसकी वैसी ही रुचि राम ने रक्खी।

सानुज मिलि पलमहँ सबकाहू * कीन्ह दूरि दुख दारुण दाहू
यह बड़ि बात राम कै नाहीं * जिमि घटकोटि एक रविछाहीं

लक्ष्मणसमेत रामजी ने पलभर में सबसे मिलकर दुःख की कठिन जलन दूर कर दी। राम के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं ; क्योंकि करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब रहता है।

मिलि केवटहिं उमँगि अनुरागा * पुरजन सकल सराहहिं भागा
देखी राम दुखित महतारी * जनु सुबेलिअवली हिममारी

स्नेह की उमङ्ग से निषाद को मिलकर सब पुरवासी उसके भाग्य की सराहना करते हैं। रामजी ने दुःखित माताओं को कैसी देखा ? मानो अच्छी बेलों की पाँत को पाला मार गया हो।

प्रथम राम भेंटी कैकेयी * सरल स्वभाव भक्ति मतिभेयी
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी * कालकर्म विधिशिर धरि खोरी

रामजी पहले माता कैकेयी को मिले तथा सीधे स्वभाव और भक्ति से उनकी बुद्धि को भिगो दिया। फिर काल, कर्म और ब्रह्मा के सिर पर अपने वनवास और पिता के मरण का दोष धरकर पाँव पड़कर उनको समझाया।



भेंटी रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष॥

रामजी समझाते और प्रसन्न करते हुए सब माताओं को मिले और कहा—हे माता, संसार ईश्वर के वश है ; किसी को दोष न दीजिए।

गुरुतिय पद वन्दे दोउ भाई * सहित विप्रतिय जे सँग आई
गंग गौरिसम सब सनमानी * देहिं अशीश मुदित मृदुबानी

दोनों भाइयों ने संग आई हुई ब्राह्मणियोंसमेत गुरु की स्त्री को प्रणाम किया और

गंगा-गौरी के समान सबका आदर किया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद दिये।

गहि पग लगे सुमित्रा अंका * जनु भेंटी सम्पति अतिरंका
पुनि जननीचरणन दोउ भ्राता * परे प्रेम व्याकुल सब गाता

फिर पाँव पकड़कर दोनों भाई सुमित्रा की गोद में बैठे, सुमित्रा की ऐसी दशा हुई मानो बड़े ही निर्धन ने लक्ष्मी पाई हो। फिर दोनों भाई माता के चरणों में पड़े, जिनके सब अंग प्रेम से व्याकुल हैं।

अति अनुराग अम्ब उर लाये * नयन सनेहसलिल अन्हवाये
तेहि अवसर कर हर्ष विषादू * किमि कवि कहै मूकजिमिस्वादू

बड़े प्रेम से माता कौशल्या ने उनको हृदय से लगा लिया और नेत्रों के स्नेहमय जल से नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि वैसे ही नहीं कह सकता, जैसे गूँगा किसी वस्तु का स्वाद नहीं बतला सकता।

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ * गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ
पुरजन पाय मुनीश नियोगू * जल थल तकितकि उतरे लोगू

लक्ष्मणसमेत रामजी माता से मिलकर गुरु से बोले कि पधारिए। मुनिनायक वशिष्ठ की आज्ञा पाकर पुरवासी लोग जल-थल देख-देख उतरे।

महिसुर मन्त्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आश्रम गमन करि, भरत लषण रघुनाथ॥

ब्राह्मण, मन्त्री, माता, गुरु आदि इने-गिने लोगों को साथ ले भरत, लक्ष्मण और रामजी अपने पवित्र आश्रम को चले।

सीय आय मुनिवर पग लागी * उचित अशीश लही मनमाँगी
गुरुपत्निहिं मुनितियन समेता * मिलि सप्रेम कहि जाय न जेता

सीता आकर वशिष्ठ के पाँव लगीं और उनसे मनमाँगा उचित आशीर्वाद पाया। मुनियों की स्त्रियोंसमेत गुरुपत्नी को मिलने से सीताजी को जितना प्रेम हुआ, वह कहा नहीं जाता।

वन्दि वन्दि पद सिय सबही के * आशिष वचन लहे प्रियजीके
सासु सकल जब सीय निहारी * मूँदेउ नयन सहमि सुकुमारी

सीताजी ने सबके चरणों में प्रणाम कर मनभाये आशीर्वाद पाये। जब सीता ने सब सासों को देखा तो उनकी विधवा दशा से व्याकुल होकर सहमकर आँखें मूँद लीं।

परी वधिकवस मनहु मराली * काह कीन्ह करतार कुचाली

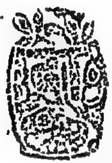
तिन सियनिरखि निपट दुखपावा * सो सब सहिय जो दैव सहावा

बधिक के वश में पड़ी हुई हंसिनी के समान वह मन में कहती हैं कि कुचाली ब्रह्मा ने यह क्या किया। सासों ने सीता को देखकर बहुत ही दुःख पाया। बोलीं---जो कुछ दैव सहावे वह सहना ही पड़ेगा।

जनकसुता तब उर धरि धीरा * नीलनलिन लोचन भरि नीरा

मिली सकल सासुन सिय जाई * तेहि अवसर करुणा महि छाई

तब हृदय में धीरज धर जानकीजी ने नीले कमल-सरीखे नेत्रों में आँसू भर लिये और जाकर सब सासों को मिलीं। उस समय पृथ्वी में करुणारस छा गया।



लागि लागि पग सबन सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय अशीशहिं प्रेमवश, रहिहौ भरी सुहाग॥

पांव लग लग सीता सबसे प्रेम से मिलती हैं और वे प्रेमवश असीस देती हैं कि सोहाग से भरी रहो।

विकल सनेह सीय सब रानी * बैठन सबहिं कह्यो गुरुज्ञानी

कहि जगगति मायिकमुनिनाथा * कही कछुक परमारथ गाथा

सीता और सब रानियाँ प्रेम से व्याकुल हो गईं। तब ज्ञानी गुरु वशिष्ठ ने सबसे बैठने को कहा। मुनिनायक वशिष्ठ ने मायामय संसार की दशा कहकर कुछ परमार्थ की बातें कहीं।

नृपकर सुरपुर गवन सुनावा * सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा

मरण हेतु निज नेह विचारी * भे अतिविकल धीरधुरधारी

राजा का स्वर्ग जाना सुनाया, जिसको सुनकर राम को दुस्सह दुःख हुआ। अपना स्नेह ही उनके मरने का कारण विचार परम धीर होने पर भी रामजी बड़े व्याकुल हुए।

कुलिश कठोर सुनत कटु बानी * विलपत लषण सीय सब रानी

शोकविकल अतिसकलसमाजू * मानहु राज अकाजेउ आजू

वज्र से भी कड़ी और कड़वी महाराज दशरथ के मरण की वाणी (समाचार) सुनते ही लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से दुखी हो उठा, मानो आज ही राजा मरे हैं।

मुनिवर बहुरि राम समुझाये * सहसमाज सुरसरित अन्हाये

व्रत निरंबु तेहिदिन प्रभु कीन्हा * मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा

फिर मुनीश वशिष्ठजी ने राम को समझाया और समाजसहित मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन रामजी ने निर्जल व्रत किया और मुनि के भी कहने से किसी ने जल तक नहीं पिया।



भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह ।
श्रद्धा भक्तिसमेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥

सवेरा होने पर वशिष्ठ मुनि ने रामजी को जो कुछ करने की आज्ञा दी, वह सब श्रद्धा, भक्ति और आदर के साथ रामजी ने किया ।

करि पितुक्रिया वेद जस बरनी * भे पुनीत पातक तम तरनी
जासु नाम पावक अघ तूला * सुमिरत सकल सुमंगलमूला

वेद ने जैसा कहा है, वैसा ही पिता का क्रिया-कर्म करके पापरूप अन्धकार के लिए सूर्य के समान रामजी पवित्र हुए । रूईरूप पातकों को अग्नि की भाँति जलानेवाले जिनके नाम का स्मरण करते ही सब प्रकार के मंगल होते हैं,

शुद्ध सो भये साधु सम्मत अस * तीरथ आवाहन सुरसरि जस
शुद्ध भये दुइ बासर बीते * बोले गुरुसन राम पिरीते

वह रामजी पिता का कर्म करके शुद्ध हुए । यह सब उनका साधु सम्मत लोकाचार-मात्र समझना चाहिए; जैसे सब तीर्थों में शुद्धि के लिए गंगा का आवाहन किया जाता है । रामजी शुद्ध हुए, तब दो दिन बीतने पर स्नेहपूर्वक गुरु से बोले—

नाथ लोग सब निपट दुखारी * कन्द मूल फल अम्बु अहारी
सानुज भरत सचिव सब माता * देखि मोहिं पलजिमिजुगजाता

हे नाथ, यहाँ केवल कन्द, मूल, फल और जल भोजन करके सब लोग बहुत दुःखी हैं । शत्रुघ्नसमेत भरत, मन्त्री और सब माताओं को देख मुझको पल भर युग के समान बीतता है ।

सब समेत पुर धारिय पाऊ * आपु इहाँ अमरावति राऊ
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई * उचित होय तस करिय गोसाँई

सबके साथ नगर में पधारिए; क्योंकि राजा स्वर्ग में हैं और आप यहाँ हैं । स्वामी, मैंने बहुत कहा और ढिठाई की; अब आप जैसा उचित हो, वैसा कीजिए ।



धर्मसेतु करुणायतन, कस न कहहु अस राम ।
लोगदुखितदिनदुइदरश, देखि लहहिं विश्राम ॥

वशिष्ठजी बोले—हे राम, आप धर्म की मर्यादा और दया के धाम हैं, ऐसा क्यों न कहें ? परन्तु ये लोग दुःखित होने पर भी दो दिन आपका दर्शन पाकर सुखी होंगे ।

राम वचन सुनि सभय समाजू * जनु जलनिधिमहँविकलजहाजू
सुनि मुनिगिरा सुमंगलमूला * भयउ मनहु मारुत अनुकूला

रामजी के वचन सुनकर सारा समाज वैसे डर गया, जैसे समुद्र में जहाज लहरों के थपेड़े

खाकर अस्थिर—व्याकुल—हो। सुमंगलमूल मुनि की वाणी ही मानो उस जहाज के लिए अनुकूल वायु हो गई।

पावन पय तिहुँकाल अन्हाहीं * जेहि बिलोकि अघओघ नशाहीं
मंगलमूरति लोचन भरि भरि * निरखहिं हरषि दण्डवत करि करि

सब लोग मन्दाकिनी के पवित्र जल में, जिसे देखकर पातकों के समूह मिट जाते हैं, त्रिकाल स्नान करते हैं। मंगल-मूर्ति रामजी को आँख भर-भर देखते और प्रणाम कर-कर प्रसन्न होते हैं।

राम शैल वन देखन जाहीं * जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं
झरना झरहिं सुधासम वारी * त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी

वे रामजी के रहने के कामदानाथ पर्वत और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सब सुख हैं, कुछ भी दुःख नहीं। अमृत के समान जल झरनों से बहता और तीनों पापों को हरनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलती है।

विटप बेलि तृण अगणित जाती * फल प्रसून पल्लव बहु भाँती
सुन्दर शिला सुखद तरु छाहीं * जाय बरणि वन छवि केहि पाहीं

वृक्ष-बेलें और अनगिनत तृणों (घासों) की जातियाँ वहाँ हैं, जिनमें फल, फूल और भाँति भाँति के पत्ते हैं। सुन्दर शिला और सुख देनेवाली वृक्षों की छाया है। उस वन की शोभा को कौन कह सकता है।



सरित सरोरुह जल विहँग, कूजत गुंजत भृङ्ग।
वैर विगत विहरत विपिन, मृग विहङ्ग बहुरङ्ग॥

नदी में कमल फूले हैं, जल के पक्षी बोलते हैं, भौंरे गुंजारते हैं तथा रंग-रंग के मृग और पक्षी वैर छोड़कर वन में घूमते हैं।

कोल किरात भिल्ल वनवासी * मधु शुचि सुन्दर स्वादु सुधासी
भरि भरि पर्णपुटी रचि रूरी * कन्द मूल फल अंकुर जूरी

कोल, किरात और वन में रहनेवाले भील पवित्र, सुन्दर, अमृत के समान स्वादिष्ट मीठा शहद सुन्दर पत्तों के दोनों में भर-भरकर कन्द, मूल, फल और अंकुर इकट्ठा कर—

सबहिं देहिं करि विनय प्रणामा * कहि कहि स्वादु भेद गुणनामा
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं * फेरत राम दुहाई देहीं

नम्रता से प्रणाम करके उन वस्तुओं के स्वाद, भेद, गुण और नाम कह-कहकर सबको देते हैं। लोग बहुत मोल देते हैं, परन्तु वे नहीं लेते और अगर कोई उनकी दी हुई चीज लौटाना चाहता है तो राम की दोहाई देते हैं।

कहहिं सनेह मगन मृदुबानी * मानत साधु प्रेम पहिंचानी

तुम सुकृती हम नीच निषादा * पावा दर्शन राम प्रसादा

स्नेह में मग्न होकर कोमल वचन कहते हैं कि सज्जन प्रेम को पहचानकर मानते हैं। तुम लोग पुण्यवान और हम नीच निषाद हैं। रामजी की कृपा से ही हमने आपके दर्शन पाये हैं।

हमहिं अगम्य असदरश तुम्हारा * जस मरुधरणि देवसरिधारा
राम कृपालु निषाद निवाजा * परिजनप्रजहिं चहिय जसराजा

हमको तुम्हारा दर्शन ऐसा दुर्लभ है, जैसे मारवाड़में गंगा की धारा। दयालु रामजी ने निषाद को अपनाया है, और जैसा राजा हो वैसे ही नौकर-चाकर और प्रजा भी होनी चाहिये

दो० यह जिय जानि सँकोचतजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लागि, फलतृण अंकुर लेहु॥

यह मन में जानकर संकोच छोड़िए और स्नेह देखकर दया कीजिए—हमको कृतार्थ करने के लिए फल, तृण और अंकुर लीजिए।

तुम प्रिय पाहुन वन पगु धारे * सेवा योग्य न भाग्य हमारे
देव कहा हम तुमहिं गोसाँई * ईंधन पात किरात मिताई

तुम प्यारे पाहुने वन में आये हो। हमारे भाग्य कहाँ, जो आपकी सेवा करें? हे स्वामी, हम लोग तुमको क्या देंगे? किरातों की मित्रता में ईंधन और पत्ते ही मिलते हैं।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई * लेहिं न बासन बसन चुराई
हम जड़ जीव जीवगणघाती * कुटिल कुचाली कुमति कुजाती

हमारी बड़ी भारी सेवा यही है कि बरतन और कपड़े न चुरा लें। हम लोग जीवों की हत्या करनेवाले, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि, कुजाति और जड़ हैं।

पाप करत निशिवासर जाहीं * नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं
सपनेहु धर्म बुद्धि कस काऊ * यह रघुनन्दन दरश प्रभाऊ

दिन-रात पाप करते जाते हैं; न कमर में कपड़े हैं और न पेट ही भरता है। हममें से किसी के स्वप्न में भी धर्म की बुद्धि कहाँ? यह तो रामजी के दर्शन का प्रभाव है, जो आपकी सेवा करते हैं।

जब ते प्रभु पदपद्म निहारे * मिटे दुसह दुख दोष हमारे
वचन सुनत पुरजन अनुरागे * तिनके भाग्य सराहन लागे

जब से रामजी के चरणकमल देखे, तब से हमारे दुसह दुःख और दोष मिट गये। उनके ये वचन सुनते ही पुरवासी प्रसन्न हुए और उनके भाग्य को सराहने लगे।

छन्द

लागे सराहन भाग्य सब अनुराग वचन सुनावहीं।

बोलनि मिलनि सियरामचरण-सनेह लखि सुख पावहीं ॥
नरनारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल-भिल्लन की गिरा ।
तुलसी कृपा रघुवंशमणि की लोह लै नौका तरा ॥

सब उनके भाग्य को सराहते और प्रेम के वचन कहते हैं—उनकी बोलचाल, मिलन-सारी और सीतारामजी के चरणों में स्नेह देखकर सुख पाते हैं। कोलभिल्लों के वचन सुन सब पुरवासी नर-नारी अपने स्नेह की निन्दा करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुवंश-मणि रामजी की दया से लोहा भी नौका को लेकर पार हो जाता है।

बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥

नित्य सब लोग प्रसन्न होकर वन में चारों ओर घूमते हैं, जैसे पहले दौंगरे का जल पाकर मेढक और मोर प्रफुल्लित होकर आनन्दित होते हैं।

पुर नरनारि मगन अति प्रीती * बासर जाहिं पलक सम बीती
सीय सासु प्रति वेष बनाई * सादर करइ सरिस सेवकाई

नगर के स्त्री-पुरुष प्रेम के कारण बड़े प्रसन्न हैं। उन्हें दिन पल भर के समान बीतते हैं। जितनी सासें हैं, उतने ही वेष बनाकर सीताजी आदरसमेत सबकी सेवा करती हैं।

लखा न मर्म राम बिन काहू * माया सब सिय मायानाहू
सीय सासु सेवा वश कीन्हीं * तिन लहि सुख सिख आशिष दीन्हीं

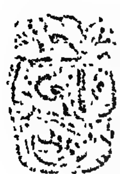
राम के सिवा किसी ने इस रहस्य को नहीं देखा। सब मायाएँ जानकीजी हैं और रामजी उनके स्वामी। सीताजी ने सेवा से सासों को अपने वश किया और सासों ने सुख पाकर सीता को सीख और असीस दी।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई * कुटिल रानि पछितानि अघाई
अव जिय महँ याचति कैकेयी * महि न बीचु विधि मीचु न देयी

सीतासमेत दोनों भाइयों को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी अपनी करनी पर बहुत पछताने लगी। अब कैकेयी मन में माँगती है कि पृथ्वी फट जाय, मैं उसमें समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दे दे; पर न पृथ्वी ही फटती है और न मुझे मौत ही आती है।

लोकहु वेद विदित कवि कहहीं * रामविमुख नर नरक न लहहीं
यह संशय सबके मनमाहीं * राम गमन विधि अवध कि नाहीं

लोक और वेद में यह प्रसिद्ध है और कवि लोग भी कहते हैं कि रामजी से विमुख मनुष्य को नरक में भी जगह नहीं मिलती। सबके मन में सन्देह है कि हे विधाता, रामजी अयोध्या चलेंगे या नहीं।



निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुठि शोच।
नीच कीचबिच मगन जस, मीनहिं सलिलसँकोच॥

भरतजी की दशा ऐसी है कि न रात को नींद और न दिन को भूख लगती है। सोच से भरतजी ऐसे व्याकुल हैं, जैसे जलके संकोच से थोड़े कीचड़ में डूबी हुई मछली।

कीन्ह मातु मिसु काल कुचाली * ईतिभीति जस पाकत शाली
केहि विधि होय राम अभिषेकू * मोहिं अवकलत उपाय न एकू

काल ने माता के बहाने से कुचाल चली, मुझे ऐसा मिटाया जैसे पकते हुए जड़हन धानों को ईति की भीति नष्ट कर देती है। किस प्रकार रामजी का अभिषेक हो? मुझे इसका एक भी उपाय नहीं सूझता।

अवशि फिरहिं गुरुआयसुमानी * मुनि पुनि कहव रामरुचि जानी
मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ * राममातु हठ करव न काऊ

गुरु की आज्ञा मानकर रामचन्द्र अवश्य लौट सकते हैं; पर वह तो रामचन्द्र की रुचि देखकर वैसी ही बात कहेंगे। माता कौशल्या के कहने से भी रामजी लौट सकते हैं; परन्तु रामजी की माता किसी प्रकार हठ न करेंगी।

मोहिं अनुचर कर केतिक बाता * तेहि महँ कुसमय वामविधाता
जो हठ करौं तौ निपट कुकर्मू * हरगिरि ते गुरु सेवकधर्मू

और यदि मैं कहूँ तो मुझ सेवक की बात ही क्या है? उस पर मेरे बुरे दिन हैं और विधाता भी प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करूँ तो वह मेरे लिए बहुत ही बुरा कुकर्म होगा। सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

एकौ युक्ति न मन ठहरानी * शोचत भरतहिं रैनि बिहानी
प्रात अन्हाय प्रभुहिं शिरनाई * बैठत पठये ऋषय बुलाई

मन में एक भी युक्ति न ठीक हुई। भरत को सोचते ही रात बीत गई। सवेरे नहाकर रामजी को सिर नवाकर बैठते ही उनको मुनि ने बुला भेजा।



गुरुपदकमल प्रणामकरि, बैठे आयसु पाय।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आय॥

भरतजी गुरुजी के चरणकमलों को प्रणाम कर आज्ञा पाकर बैठे। ब्राह्मण, बड़े-बूढ़े लोग, मन्त्री—ये सब सभा में आकर इकट्ठे हुए।

बोले मुनिवर समय समाना * सुनहु सभासद भरत सुजाना
धर्मधुरीण भानुकुल भानू * राजा राम स्ववश भगवानू

तब मुनिवर वशिष्ठजी समय के अनुसार बोले—हे सभासद्गण और हे सुजान भरत, सुनो। धर्म-धुरन्धर सूर्यवंश के सूर्य राजा राम ही अपने अधीन भगवान् हैं।

सत्यसन्ध पालक श्रुतिसेतू * राम जन्म जग मंगल हेतू
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी * खलदल दलन देव हितकारी

सत्यप्रतिज्ञ और वेद की मर्यादा के पालक राम का जन्म संसार के मंगल के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलनेवाले, दुष्टजनों का नाश करनेवाले और देवगण के हितकारक हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ * कोउ न राम बिन जान यथारथ
विधिहरिहरशशिरविदिगपाला * माया जीव कर्म कलिकाला

नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ को रामजी के विना कोई यथार्थ नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, सूर्य, लोकपाल, माया, जीव, कर्म और कलिकाल ये सब—

अहिप महिप जहँलगि प्रभुताई * योगसिद्धि निगमागम गाई
करि विचार जिय देखहु नीके * राम रजाय शीश सबहीके

और शेषनाग तथा राजा आदि की प्रभुता जहाँ तक है तथा वेद शास्त्र ने जो योग की सिद्धियाँ गाई हैं; विचारकर अच्छी तरह मन में देखो, रामजी की इच्छा सबके सिर पर है।



राखे राम रजाय रुख, हम सबकर हित होय।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलिसम्मत सोय॥

रामजी की इच्छा और रुख के रखने से हम सबकी भलाई होगी। यह समझकर अब सब चतुर लोग वही सलाह करें।

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू * मंगल मोदमूल मग एकू
केहिविधि अवध चलहिं रघुराई * कहहुसमुझिसोइ करहिं उपाई

रामजी का अभिषेक सबको सुख देनेवाला है। यही एक मंगल और प्रसन्नता देनेवाला मार्ग है। किस प्रकार रघुनायक रामजी अयोध्या को चलेंगे, यह समझकर बतलाओ, वही यत्न किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिवर बानी * नय परमारथ स्वारथ सानी
उतर न आव लोग भे भोरे * तब शिरनाय भरत कर जोरे

नीति, परमार्थ और स्वार्थ से भरे हुए मुनिनाथ वशिष्ठजी के ये वचन सबने आदरसमेत सुने; पर इसके जवाब में किसी से कुछ कहते नहीं बना। लोग विमूढ़-से हो गये। तब माथा नवाकर हाथ जोड़कर भरतजी बोले—

भानुवंश भे भूप घनेरे * अधिक एक ते एक बड़ेरे
जन्म हेतु सब कहँ पितु माता * कर्म शुभाशुभ देइ विधाता

सूर्यवंश में एक से एक बड़े अनेक राजा हुए हैं। पिता-माता सबको केवल पैदा करते हैं, अच्छे-बुरे कर्म का फल तो विधाता देता है।

दलि दुख सजै सकल कल्याना ✻ अस अशीश राउर जगजाना
सो गोसाइँ जेहिविधि गति छेकी ✻ सकै को टारि टेक जो टेकी

आपकी असीस दुःख का नाश कर सब कल्याणों को सजती है, यह संसार जानता है। आप वही हैं, जिन्होंने ब्रह्मा की गति को रोक दिया। आपकी टेकी टेक को कौन टाल सकता है ?


बूझिय मोहिं उपाय अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेहमय वचन गुरु, उर उपजा अनुराग॥

अब मुझसे जो आप उपाय पूछते हैं, सो सब मेरा अभाग्य है। भरत के ऐसे स्नेहमय वचन सुनकर गुरु वशिष्ठ के हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ।

तात बात फुर राम कृपाहीं ✻ रामविमुख सिधि सपनेहु नाहीं
सकुचौं तात कहत इक बाता ✻ अर्ध तजहिं बुध सरबस जाता

हे तात, तुम्हारा कहना सच है। रामजी की कृपा से ऐसा ही होता है। राम के विमुख होने पर स्वप्न में भी सिद्धि नहीं होती। तात, एक बात कहते सकुचता हूँ। समझदार लोग सब कुछ जाता देखकर आधा छोड़ देते हैं।

तुम कानन गमनहु दोउ भाई ✻ फेरिय लषण सीय रघुराई
सुनि शुभवचन हर्ष दोउ भ्राता ✻ भे प्रमोद परिपूरण गाता

तुम दोनों भाई वन को जाओ तथा लक्ष्मण, सीता और रामजी को लौटाओ। मुनि के ये शुभ वचन सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए और हर्ष से उनके अंग भर गये।

मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा ✻ जनु जिये राउ राम भे राजा
बहुत लाभ लोगन लघु हानी ✻ समदुख सुख सब रोवहिं रानी

मुख प्रसन्न हो उठा और देह में तेज छा गया, मानो राजा दशरथ जी उठे और राम राजा हुए। इसमें लोगों को लाभ बहुत और हानि थोड़ी थी। दुःख-सुख बराबर होने के कारण रानियाँ रोती हैं।

कहहिं भरत मुनि कहा सो कीजै ✻ फल जगजीवन अभिमत लीजै
कानन करौं जन्मभरि वासू ✻ इहिते अधिक न मोर सुपासू

भरतजी बोले—मुनि वशिष्ठजी जो कहते हैं, वही करूँगा; और जग में जीने का मनचाहा फल लूँगा। जन्म भर वन में वास करूँगा। इससे अधिक मेरे लिए सुपास ही नहीं है।


अन्तरयामी राम सिय, तुम सर्वज्ञ सुजान।
जो फुर कहौं तो नाथ निज, कीजिय वचन प्रमान॥

हे नाथ, सीता और रामजी अन्तर्यामी हैं; आप भी सर्वज्ञ और चतुर हैं। यदि मैं सत्य कहता हूँ तो अपने वचन का प्रमाण कीजिए अर्थात् यही निश्चय रखिए।

भरत वचन सुनि देखि सनेहू * सभा सहित मुनि भयउ विदेहू
भरत महामहिमा जलरासी * मुनिमति तीर ठाढ़ि अबलासी

भरत के वचन सुन और स्नेह देख समाजसमेत मुनि को देह की सुध-बुध भूल गई। भरतजी की महिमारूप समुद्र के किनारे मुनि की बुद्धि स्त्री की नाईं असहाय खड़ी है।

गौ चह पार यतन हिय हेरा * पावत नाव न बोहित बेरा
और करहि को भरत बड़ाई * सरसिसीप किमि सिन्धु समाई

वह उसके पार जाना चाहती है, इससे मन में उसका उपाय खोजती है; परन्तु नाव, जहाज या बेड़ा नहीं पाती। भरत की बड़ाई कौन करे—तलैया की सीपी में समुद्र कैसे समाय?

भरत मुनिहिं मन भीतर पाये * सहित समाज रामपहँ आये
प्रभुप्रणामकरि दीन्ह सुआसन * बैठे सब सुनि मुनि अनुशासन

भरत ने मुनि को मन के भीतर पाया, और उठकर समाजसहित रामजी के पास आये। रामजी ने मुनि को प्रणाम करके अच्छा आसन दिया और मुनि की आज्ञा सुनकर सब लोग बैठ गये।

बोले मुनिवर वचन विचारी * देशकाल अवसर अनुहारी
सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना * धर्म नीति गुण ज्ञाननिधाना

मुनिनायक वशिष्ठजी विचारकर देश, काल और अवसर के अनुसार वचन बोले—हे रामजी, सुनिए। आप सब कुछ जाननेवाले, चतुर तथा धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के निधान हैं।



सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरतहित, होय सो करिय उपाव॥

आप सबके हृदय के भीतर आत्मारूप से बसते हैं और भाव-कुभाव (अच्छा-बुरा भाव) जानते हैं। इससे पुरवासियों का, माताओं का और भरत का जिसमें हित हो, वही उपाय करिए।

आरत कहहिं विचारि न काऊ * सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ
सुनि मुनि वचन कहत रघुराऊ * नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ

दुखी पुरुष विचारकर नहीं कहते, जैसे जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर रामजी ने कहा—हे नाथ, उपाय तो आपके ही हाथ में है।

सबकर हित रुख राउर राखे * आयसु किये मुदित फुर भाखे
प्रथम जो आयसु मोकहँ होई * माथे मानि करौं सिख सोई

आपका रुख रखने और आज्ञा मानने से सबका हित होगा, प्रसन्न होकर मैं यह सत्य कहता हूँ। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, उस सिखावन को मैं सिर-माथे पर रखकर करूँगा।

पुनि जेहि कहँ जस होय रजाई * सो सब भाँति करहि सेवकाई
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा * भरत सनेह विचार न राखा

फिर जिसको जैसी आज्ञा हो, वह सब भाँति वही सेवा करे। मुनि ने कहा—हे राम, तुमने सच कहा, परन्तु भरत के प्रेम ने हममें विचार करने की शक्ति नहीं रक्खी।

तेहिते कहौं बहोरि बहोरी * भरत भक्ति भइ ममगति भोरी
मोरे जान भरत रुचि राखी * जो कीजिय सो शुभ शिवसाखी

इसी कारण मैं बार-बार कहता हूँ कि भरत की भक्ति से मेरी बुद्धि कुंठित हो गई है। मेरी जान में तो भरत की रुचि को रखकर जो कीजिए, वह अच्छा होगा, इसमें महादेवजी साखी हैं।


भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि॥

पहले आदरसमेत भरत की विनय सुनिए, फिर विचार कीजिए, उसके बाद साधु-मत, लोकमत, राजनीति और वेद का जो निचोड़ हो, वही कीजिए।

गुरुअनुराग भरत पर देखी * रामहृदय आनन्द विशेखी
भरतहिं धर्मधुरन्धर जानी * निज सेवक तन मानस बानी

भरतजी के ऊपर गुरु का प्रेम देखकर रामजी के मन में अधिक आनन्द हुआ। फिर रामचन्द्रजी भरत को धर्म-धुरंधर तथा तन, मन, वचन से अपना दास जानकर—

बोले गुरु आयसु अनुकूला * वचन मंजु मृदु मङ्गल मूला
नाथ शपथ पितु चरण दुहाई * भयउ न भुवन भरतसम भाई

गुरु की आज्ञा के अनुसार कोमल और मंगलमूल वचन बोले कि हे नाथ, आपकी सौगन्द और पिता के चरणों की दुहाई है, भरत के समान भाई संसार में नहीं हुआ।

जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी * ते लोकहु वेदहु बड़भागी
राउर जापर अस अनुरागू * को कहि सकै भरत कर भागू

जिन्हें गुरुजी के चरणकमलों में प्रेम है, वे लोक और वेद दोनों में बड़े भाग्यवान् माने गये हैं। जिनके ऊपर आपका ऐसा स्नेह है, उन भरत के भाग्य का बखान कौन कर सकता है?

लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई * करत वदनपर भरत बड़ाई
भरत कहहिं सो किये भलाई * अस कहि राम रहे अरगाई

छोटे भाई को देखकर उसके मुख के सामने उसकी बड़ाई करते बुद्धि सकुचती है। इसलिए 'जो भरत कहें, वही करने में भलाई है' ऐसा कहकर रामजी चुप हो रहे।


तब मुनि बोले भरतसन, सब संकोच तजि तात।
कृपासिन्धु प्रिय बन्धुसन, कहहु हृदय की बात॥

तब वशिष्ठजी भरत से बोले—हे तात, सब संकोच छोड़कर दयासागर, प्यारे भाई रामजी से हृदय की बात कहो।

सुनि मुनि वचन राम रुखपाई * गुरु साहिब अनुकूल अघाई
लखि अपने शिर सब छरभारू * कहिनसकहिं कछु करत विचारू

मुनि के वचन सुन और रामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी रामजी की अनुकूलता से भरतजी छक गये। पर अपने ही माथे सब छरभार देखकर कुछ कह नहीं सके, विचार करने लगे।

पुलक शरीर सभा में ठाढ़े * नीरजनयन नेह जल बाढ़े
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा * इहिते अधिक कहौं मैं काहा

उनके देह में रोमांच हो आया। भरतजी सभा के बीच खड़े हुए। उनके कमल-सरीखे नेत्रों में स्नेह के आँसू भर आये। वह बोले—मेरा कहना मुनि और स्वामी, दोनों ने निबाह लिया। अब इससे अधिक और मैं क्या कहूँगा?

मैं जानौं निजनाथ स्वभाऊ * अपराधिहु पर कोह न काऊ
मोपर कृपा सनेह विशेखी * खेलत खुनस कबहुँ नहिं देखी

मैं अपने स्वामी रामजी का स्वभाव जानता हूँ। वह अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। फिर मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और प्रेम है। खेलने में भी मैंने कभी उनको क्रोध करते नहीं देखा।

शिशुपनते परिहरेउँ न संगू * कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू
मैं प्रभुकृपारीति जिय जोही * हारेउ खेल जितायउ मोही

मैंने लड़कपन से कभी साथ नहीं छोड़ा। मेरा मन भी रामजी ने कभी नहीं तोड़ा। मैंने रामजी की कृपा की रीति जी में देखी है। उन्होंने हारे खेल में हारने पर भी मुझे जिताया है।


महूँ सनेह सकोचवश, सन्मुख कहेउँ न बैन।
दर्शनतृप्ति न आजुलगि, प्रेम पियासे नैन॥

मैंने भी स्नेह और संकोच के वश उनके सामने बात नहीं की, जवाब नहीं दिया आज तक उनके दर्शन से मुझे तृप्ति नहीं हुई। मेरी आँखें उनके प्रेम की प्यासी हैं।

विधि नसकेउ सहि मोर दुलारा * नीच बीच जननी मिसु पारा
इहौ कहत मोहिं आजु न शोभा * अपनी समुझ साधु शुचिकोभा

विधाता मेरा दुलार न सह सका, इसी से माता के बहाने उस नीच ने बीच डाल दिया। आज यह भी कहते हुए मुझे नहीं सोहता; क्योंकि अपनी समझ से सज्जन और पवित्र कौन हुआ है?

मातु मन्द मैं साधु सुचाली * उर अस आनत कोटि कुचाली
फरै कि कोदव बालि सुशाली * मुक्ता प्रसव कि शम्बुकताली

माता बुरी तथा मैं साधु और सुचाली हूँ, ऐसा मन में लाने पर करोड़ों कुचालें होती हैं। क्या कोदों के वृक्ष में उत्तम धान फल सकते हैं? अथवा क्या तलैया की सीपी में मोती पैदा होते हैं?

सपनेहु दोष कलेश न काहू * मोर अभाग्य उदधिअवगाहू
बिनु समुझे निजअघपरिपाकू * जानेउ जाय जननि कह काकू

स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। यह मेरे ही अभाग्य का अथाह समुद्र है। अपने पाप के फल को बिना समझे माता की ही टेढ़ी वाणी जानी जाती है।

हृदय हेरि हारेउ सब ओरा * एकहि भाँति भले भलमोरा
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू * लागत मोहिं नीक परिणामू

सब ओर देखकर हृदय हार गया। केवल एक ही तरह से मेरा भला है। गुरु महाराज वशिष्ठ और स्वामी सीता और रामजी हैं। इससे मुझे जान पड़ता है कि इसका अन्त या फल अच्छा ही होगा।

दो० साधु सभा प्रभु गुरु निकट, कहौं सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥

सज्जनों की सभा में, स्वामी रामजी और गुरु वशिष्ठजी के पास, अच्छे स्थान में, मैं सच्चे भाव से जो कहता हूँ, सो प्रेम है या प्रपंच, सच है या झूठ, यह वशिष्ठजी या रामजी जान सकते हैं।

भूपति मरण प्रेम प्रण राखी * जननी कुमति जगत सब साखी
देखि न जाय़ँ विकल महतारी * जरहिं दुसह ज्वर पुरनरनारी

राजा का मरण हुआ, परन्तु उन्होंने प्रेम का प्रण रक्खा। माता की कुबुद्धि का सारा संसार साखी है। व्याकुल माताएँ देखी नहीं जातीं। नगर के स्त्री-पुरुष भी न सहने योग्य हृदय की आग से जलते हैं।

मैं हि सकल अनरथकर मूला * सो सुनि समुझि सहौं सबशूला
सुनि वनगमनकीन्ह रघुनाथा * करि मुनिवेष लषणसियसाथा

इन सब अनर्थों की जड़ मैं ही हूँ। यही सुन और समझकर सब शूलों को सहता हूँ। लक्ष्मण और सीताजी को साथ ले मुनियों का-सा वेष बनाकर रामजी ने वन को गमन किया, यह सुनकर—

बिन पनहीं अरु प्यादेहि पाँये * शंकर साखि रह्यों यहि घाये
बहुरि निहारि निषाद सनेहू * कुलिश कठिन उर भयउ न बेहू
कि वह बिना पनहियों के पैदल गये, यह जानकर, शंकर साक्षी हैं, मुझे घोर दुःख हुआ—हृदय में घाव हो गया। फिर निपाद का स्नेह देखकर वज्र से भी कड़े मेरे हृदय में छेद न हुआ।

अब सब आँखिन देखेउँ आई * जियत जीव जड़ सबै सहाई
जिनहिंनिरखिमगसाँपिनबीछी * तजहिं विषम विष तामस तीछी
अब वह सब मैंने आकर आँखों से देखा, सब सहकर भी जड़ जीव अभी जीता है। रास्ते में जिनको देखकर साँप, बिच्छू आदि अपने विष और कठिन स्वभाव की तीक्ष्णता छोड़ देते हैं—


तेइ रघुनन्दन लषण सिय, अनहित लागे जाहि।
तासुतनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि॥
वे ही राम, लछमण और सीताजी जिस कैकेयी को वैरी जान पड़े, उसके पुत्र को छोड़कर दैव यह दुःसह दुःख किसको सहावे?

सुनि अतिविकलभरतवरबानी * आरति प्रीति विनय नयसानी
शोक मगन सब सभा खभारू * मनहु कमलवन परेउ तुषारू
अत्यन्त विकल भरत की यह दुःख, प्रेम, नम्रता और नीति से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर शोक में डूबी हुई सारी सभा में खलभली पड़ गई, मानो कमलों के वन में पाला पड़ गया हो।

कहि अनेक विधि कथा पुरानी * भरत प्रबोध कीन्ह मुनिज्ञानी
बोले उचित वचन रघुनन्दू * दिनकर कुल कैरववन चन्दू
अनेक भाँति की पुरानी कथाएँ कहकर ज्ञानी वशिष्ठ मुनि ने भरतजी को समझाया। तब सूर्यवंशरूपी कोकाबेली के वन के लिए चन्द्रमा के समान रामजी उचित वचन बोले—

तात वृथा जनि करहु गलानी * ईशअधीन दैवगति जानी
तीनिकाल त्रिभुवन मत मोरे * पुण्यश्लोक तात वश तेरे
भाई, कर्म की गति ईश्वराधीन जानकर वृथा ग्लानि मत करो। हे तात, मेरी समझ में तीनों समय और तीनों लोकों में पवित्र यश तुम्हारे ही अधीन है।

उर आनत तुम पर कुटिलाई * जाय लोक परलोक नशाई
दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई * जिन गुरु साधु सभा नहिं सेई
तुम कुटिल हो, यह भाव हृदय में लाते ही लोक और परलोक बिगड़ जाता है। वे ही मूर्ख माता को भी दोष देंगे, जो गुरुओं और सज्जनों की सभा में नहीं बैठे।



मिटिहैं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोकसुयश परलोकसुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥

तुम्हारा नाम स्मरण करते ही लोगों के सब पाप और अमंगल मिट जायँगे ; संसार में यश और परलोक में सुख होगा।

कहौं स्वभाव सत्य शिवसाखी * भरत भूमि रह राउर राखी
तात कुतर्क करहु जनि जाये * वैर प्रेम नहिं दुरै दुराये

शिव साखी हैं, सच कहता हूँ, हे भरत, पृथ्वी तुम्हारे ही रखने से रहेगी ; क्योंकि जो तुम कहोगे, वही मैं करूँगा और यदि वन न गया तो पृथ्वी का भार न उतरेगा। हे तात, वृथा ही मन में कुतर्क मत करो—वैर और स्नेह छिपाये नहीं छिपता।

मुनिगणनिकट विहँग मृग जाहीं * बाधक बधिक विलोकि पराहीं
हित अनहित पशुपक्षिउ जाना * मानुष तन गुणज्ञाननिधाना

देखो, पक्षी और मृग मुनियों के समीप जाते हैं तथा बाधक (सिंह आदि) या बहेलिये को देखकर भागते हैं। हित-अनहित पशु-पक्षी भी जानते हैं ; फिर मनुष्य का शरीर तो गुण और ज्ञान का घर ही है।

तात तुमहिं मैं जानौं नीके * करौं कहा असमंजस जीके
राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी * तनु परिहरेउ प्रेमप्रण लागी

हे तात, मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ ; परन्तु क्या करूँ, जी में बड़ा असमंजस है। मुझे छोड़कर राजा ने सत्य को रक्खा तथा प्रेमप्रण के लिए देह छोड़ दी।

तासु वचन मेटत मोहिं शोचू * तेहिते अधिक तुम्हार सँकोचू
तापर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा * अवशि जो कहहु चहौं सो कीन्हा

उनके वचन मेटने में मुझे सोच होता है, पर उससे अधिक तुम्हारा संकोच है। तिस पर गुरु ने मुझे आज्ञा दी है। इससे जो कहो, वही अवश्य मैं करना चाहता हूँ।



मनप्रसन्नकरिसकुचतजि, कहहु करौं सोइ आज।
सत्यसन्ध रघुवर वचन, सुनिभा सुखी समाज॥

संकोच छोड़ और मन प्रसन्न कर जो कहो, मैं आज वही करूँगा। सत्यप्रतिज्ञ रामजी के ये वचन सुन सारी सभा सुखी हुई।

सुरगण सहित सभय सुरराजू * शोचहिं चाहत होन अकाजू
करत विचार बनत कछु नाहीं * रामशरण सब गे मनमाहीं

सुरगण-समेत इन्द्र डरकर सोचते हैं कि अकाज हुआ चाहता है। विचार करते हैं ; परन्तु कुछ बनता नहीं। तब सब मन में रामजी की शरण गये।

बहुरि विचारि परस्पर कहहीं * रघुपति भक्त भक्तिवश अहहीं
सुधिकरि अम्बरीष दुर्वासा * भे सुर सुरपति निपट निरासा

फिर आपस में विचारकर कहने लगे कि रामजी भक्त की भक्ति के अधीन हैं। अम्बरीष और दुर्वासा का स्मरण कर देवता और इन्द्र बहुत ही निराश हो गये।

सहे सुरन बहुकाल विषादा * नरहरि किये प्रकट प्रहलादा
लगिलगिकानकहहिं धुनिमाथा * अब सुरकाज भरत के हाथा

देवताओं ने बहुत दिनों तक दुःख सहा, परन्तु प्रह्लाद ही ने नृसिंहजी को प्रकट किया। फिर माथा पीटकर कानों में लग-लगकर कहते हैं कि अब तो देवताओं का काम भरतजी के हाथ है।

आन उपाय न देखिय देवा * मानत राम सुसेवक सेवा
हिय सप्रेमसुमिरहु सब भरतहिं * निजगुण शीलरामवश करतहिं

हे देवताओ, और उपाय नहीं देख पड़ता। रामजी उत्तम दास की सेवा को मानते हैं। हृदय में प्रेमसहित सब लोग भरतजी को सुमिरो, जो अपने गुण और शील से रामजी को वश किये हैं।



सुनिसुरमत सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़भाग।
सकल सुमङ्गलमूल जग, भरतचरण अनुराग॥

देवताओं की सम्मति सुनकर बृहस्पति ने कहा—तुम्हारे भाग्य बहुत अच्छे हैं; क्योंकि संसार में भरतजी के चरणों में प्रेम होना सब मंगलों की जड़ है।

सीतापति सेवक सेवकाई * कामधेनु शत सरिस सुहाई
भरत भक्ति तुम्हरे मन आई * तजहु शोच विधि बात बनाई

रामजी के सेवक की सेवा सौ कामधेनुओं के समान मनचाहा फल देनेवाली है। तुम्हारे मन में भरतजी की भक्ति आई है, इसलिए सोच छोड़ो। विधाता ने बात बना दी।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ * सहज सनेह विवश रघुराऊ
मन थिर करहु देव डर नाहीं * भरतहिं जानि राम परछाहीं

हे देवपति इन्द्र, भरत का प्रभाव देखो कि जिनके स्वाभाविक प्रेम के वश रामजी हैं। हे देवताओ, मन स्थिर करो—धीरज धरो। भरत को राम का प्रतिबिम्ब जानकर डरो मत।

सुनि सुरगुरु सुरसम्मत शोचू * अन्तरयामी प्रभुहिं सँकोचू
निजशिर भार भरत जिय जाना * करत कोटि विधि मन अनुमाना

देवताओं की सलाह सुन बृहस्पति सोचने लगे और अन्तर्यामी रामजी को संकोच हुआ। भरतजी अपने ही सिर पर सब बोझ जानकर करोड़ों प्रकार से मन में अनुमान करते हैं।

करि विचार मन दीन्हेउ ठीका * राम रजायसु आपन नीका
निजपन तजि राखेउ मन मोरा * छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा

फिर विचारकर मन में ठीक किया कि रामजी की इच्छा या आज्ञा मानने—रखने में अपनी भलाई है, क्योंकि रामजी ने अपना प्रण छोड़ मेरा मन रक्खा तथा बहुत ही छोह और स्नेह किया।



कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ।
करि प्रणाम बोले भरत, जोरि जलजयुगहाथ॥

सीतानाथ रामजी ने सब प्रकार मुझ पर अमित अनुग्रह किया है। यों सोचकर भरत ने कमल-सरीखे दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा—

कहहुँ कहावहुँ का अब स्वामी * कृपा अम्बुनिधि अन्तरयामी
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला * मिटे मलिन मन कल्पित शूला

हे स्वामी, आप स्वयं कृपा के सागर और अन्तर्यामी हैं। मैं क्या कहूँ और क्या कहलाऊँ? गुरु प्रसन्न हैं और स्वामी भी अनुकूल हैं, इसलिए मलिन मन की कल्पना से हुए मेरे मन के शूल मिट गये।

अपडर डरेउँ न शोच समूले * रविहिं न दोष देव दिशिभूले
मोर अभाग मातु कुटिलाई * विधिगति वाम काल कठिनाई

हे देव, मैं आप ही आप डर गया। यह सोच समूल नहीं है; क्योंकि दिशा भूलने से सूर्य का दोष नहीं। मेरा अभाग्य, माता की कुटिलता, ब्रह्मा की टेढ़ी गति और समय की कठिनता,

पाँउरोपि सब मिलि मोहिं घाला * प्रणतपाल पन आपन पाला
यह नइ रीति न राउर होई * लोकहु वेद विदित नहिं गोई

इन चारों ने मिलकर पैर रोपकर मुझे मारा। परन्तु प्रणतपाल आपने अपना प्रण पाला—मुझे बचा लिया। यह आपकी नई रीति नहीं है, संसार और वेद में विदित है, छिपी नहीं।

जग अनभल भल एक गोसाँई * कहहु होइ भल कासु भलाई
देव देवतरु सरिस सुभाऊ * सम्मुख विमुख न काहुहि काऊ

संसार बुरा है, एक आप ही भले हैं, तो किसकी भलाई से भला हो? आपकी ही भलाई से भलाई होती है। हे देव, कल्पवृक्ष के समान आपका स्वभाव कभी किसी को सम्मुख या विमुख (अनुकूल या प्रतिकूल) नहीं होता।



जाइ निकट पहिंचानि तरु, छाँह शमन सब शोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राव रंक भल पोच॥

कल्पवृक्ष को पहचानकर सब शोक दूर करनेवाली उसकी छाया में जो जाय तो राजा हो या रंक, वह भली-बुरी जो कुछ वस्तु माँगता है, वही पाता है।

लखिसबविधि गुरुस्वामिसनेहू * मिटेउ छोभ नहिं मन सन्देहू
अब करुणानिधि कीजिय सोई * जनहित प्रभुचित छोभ न होई

सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह देखकर मेरे हृदय का क्षोभ मिट गया, मन में सन्देह नहीं रहा। हे दयानिधान, सेवक के लिए अब वही कीजिए, जिससे आपके चित्त में क्षोभ न हो।

जो सेवक साहिबहिं सँकोची * निज हित चहै तासु मति पोची
सेवक हित साहिब सेवकाई * करै सकल सुख लोभ विहाई

जो सेवक स्वामी को असमंजस में डालकर अपना हित चाहे, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। सेवक अपने सब सुख और लालच छोड़कर स्वामी की सेवा करे, इसी में उसका हित है।

स्वारथ नाथ फिरे सबही के * किये रजाय कोटि विधि नीके
यह स्वारथ परमारथ सारू * सकल सुकृतफलसुगतिसिंगारू

स्वामी के लौटने से सभी का स्वार्थ है, तथा आपकी इच्छा या आज्ञा का पालन करने से करोड़ों प्रकार की भलाई है। आपकी आज्ञा ही स्वार्थ परमार्थ का सारांश, सब पुण्यों का फल और सुगति का शृंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी * उचित होय तस करब बहोरी
तिलकसमाज साजि सब आना * करिय सफल प्रभु जो मनमाना

हे देव, मेरी एक विनती सुनकर जैसा उचित हो वैसा कीजिए। वह यह कि मैं तिलक का सामान सब साज लाया हूँ। प्रभो, यदि मन माने तो उसे सफल कीजिए।


सानुज पठइय मोहिं वन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

हे नाथ, शत्रुघ्नसहित मुझे वन को भेजिए और अयोध्या जाकर सबको सनाथ कीजिए। अथवा शत्रुघ्न और लक्ष्मण को लौटा दीजिए; मैं आपके साथ चलूँ।

नतरु जाहिं वन तीनिहुँ भाई * बहुरिय सीय सहित रघुराई
जेहिविधि प्रभु प्रसन्न मन होई * करुणासागर कीजिय सोई

नहीं तो हे रघुनाथजी, हम तीनों भाई वन को जायँ और सीतासहित आप लौट जाइए। हे करुणानिधान, जिस प्रकार आपका मन प्रसन्न हो, वही कीजिए।

देव दीन्ह सब मोपर भारू * मोरे नीति न धर्म विचारू

कहौं वचन सब स्वारथ हेतू * रहत न आरत के चित चेतू

हे देव, आपने तो सब बोझा मेरे ही ऊपर डाल दिया है। पर इस समय मेरे मन में धर्म और नीति का विचार नहीं है। मैं अपने प्रयोजन के लिये ही सब कहता हूँ; क्योंकि आर्त के चित्त में ज्ञान नहीं रहता।

उतर देइ सुनि स्वामि रजाई * सो सेवक लखि लाज लजाई
अस मैं अवगुण उदधि अगाधू * स्वामि सनेह सराहत साधू

स्वामी की आज्ञा पाकर जो उत्तर दे, उस सेवक को देख लाज भी लजाती है। मैं ऐसा अवगुणों का अथाह समुद्र हूँ; परन्तु फिर भी स्वामी मेरे प्रेम को सराहते हैं।

अब कृपालु मोहिं सो मत भावा * सकुच स्वामि मन जाहि न पावा
प्रभुपद शपथ कहौं सतिभाऊ * जग मङ्गल हित एक उपाऊ

हे कृपालु, अब तो मुझे वही मत भाता है, जिससे आपके मन में संकोच न हो। आपके चरणों की सौगन्द खाकर सत्य कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है।

दो० प्रभु प्रसन्नमन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो शिर धरि धरि करहिं सब, मिटहि अनट अवरेव॥

वह यह कि आप संकोच छोड़ प्रसन्नमन हो हममें से जिसको जो आज्ञा दीजिए, वह उसे माथे पर धरकर सब पूर्ण करे तथा न टलनेवाली यह उलझन मिट जाय।

भरतवचन शुचि सुनि हिय हरषे * साधु सराहि सुमन सुर बरषे
असमंजस वश अवधनिवासी * प्रमुदित मुनि तापस वनवासी

भरत के ऐसे पवित्र वचन सुन सब मन में प्रसन्न हुए। देवताओं ने भरत की सराहना कर फूल बरसाये। अयोध्यावासी असमंजस के वश हो गये और वन में बसनेवाले मुनि तपस्वी प्रसन्न हुए।

चुपे रहे रघुनाथ सँकोची * प्रभुगति देखि सभा सब शोची
जनकदूत तेहि अवसर आये * मुनि वशिष्ठ सुनि वेगि बोलाये

रामजी सकुचकर चुप ही रह गये। प्रभु की दशा देखकर सब सभा सोचने लगी। उसी समय राजा जनक के दूत आये। मुनि वशिष्ठजी ने यह समाचार सुनकर उन्हें शीघ्र ही बुलाया।

करि प्रणाम तिन राम निहारे * वेष देखि भे निपट दुखारे
दूतन मुनिवर बूझी बाता * कहहु विदेह भूप कुशलाता

प्रणाम करके उन्होंने रामजी को देखा और उनका मुनिवेष देखकर बहुत दुखी हुए। मुनिनाथ वशिष्ठ ने दूतों से पूछा कि राजा जनक कुशल से तो हैं?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा * बोले चरवर जोरे हाथा
बूझब राउर सादर साईं * कुशल हेतु सोइ भयो गोसाईं

यह सुन सकुचकर पृथ्वी में माथा नवाकर वे उत्तम दूत हाथ जोड़कर बोले—हे स्वामी, आपका आदरसमेत पूछना ही हमारे स्वामी की कुशल का कारण है।



नाहिं तो कोशलनाथ के, साथ कुशल गइ नाथ।
मिथिला अवध विशेषते, जग सब भयउ अनाथ ॥

नहीं तो हे नाथ, कुशल तो अवधनाथ दशरथ के साथ ही चली गई; क्योंकि सब संसार—विशेषकर जनकपुरी और अयोध्या—अनाथ हो गया।

कोशलपति गति सुनिजनकौरा * भे सब लोग शोचवश बौरा
जेहि देखे तेहि समय विदेहू * नाम सत्य अस लाग न केहू

कोशलेश महाराज दशरथ की दशा सुनकर राजा जनक के सब लोग शोचवश होकर बावले-से हो गये। उस समय जिसने विदेह (जनक) को देखा, उसे उनका 'विदेह' नाम सत्य न लगा।

रानि कुचालि सुनत भूपालहि * सूझ न कछु जस मणि बिन व्यालहि
भरत राज रामहिं बनवासू * भा मिथिलेशहि हृदय हरासू

रानी कैकेयी की कुचाल सुनते ही राजा जनक को कुछ नहीं सूझ पड़ा, जैसे मणि के बिना साँप अंधा हो जाता है। भरत को राज्य और रामजी को वनवास सुनकर राजा जनक के हृदय में दुःख हुआ।

नृप बूझेउ बुध सचिव समाजू * कहहु विचार उचित का आजू
समुझि अवध असमंजस दोऊ * चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ

राजा जनक ने पण्डितों और मन्त्रियों से पूछा कि विचारकर कहो, आज क्या करना उचित है? अयोध्या में असमंजस (भरत का अभिषेक और राम का वनगमन) समझकर चलें या यहीं रहें? परन्तु किसी ने कुछ नहीं कहा।

नृपहि धीरधरि हृदय विचारी * पठये अवध चतुर चर चारी
बूझि भरतगति भाउ कुभाऊ * आवहु वेगि न होइ लखाऊ

फिर राजा ही ने धीरज धर मन में विचारकर अयोध्या को चार चतुर दूत भेजे और कहा कि भरत की गति (मंशा), अच्छा या बुरा भाव समझकर शीघ्र आओ। पर कोई यह भेद न जान पावे।



गये अवध चर भरतगति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥

दूतों ने अयोध्या जाकर भरत का आचरण और कार्य देखा। फिर भरत के चित्रकूट चलने पर वे जनकपुरी को लौट गये।

दूतन आइ भरत की करणी * जनकसमाज यथामति वरणी
सुनि गुरुपुरजन सचिव महीपति * भे सब शोच सनेह विकल अति

दूतों ने जाकर जनक की सभा में बुद्धि के अनुसार भरत की करनी कही। उसे सुन गुरु, पुरवासी, मन्त्री और राजा सब सोच और स्नेह से बड़े व्याकुल हुए।

धरि धीरज करि भरत बड़ाई * लिये सुभट साहनी बुलाई
घर पुर देश राखि रखवारे * हय गज रथ बहु यान सँवारे

धीरज धर भरत की बड़ाई करके जनक ने योद्धा और सेनापति बुलाये। फिर घर, नगर और देश में रखवाले रखकर घोड़े, हाथी, रथ और बहुत सवारियाँ सजाईं।

दुघरी साधि चले ततकाला * किय विश्राम न मगु महिपाला
भोरहि आजु नहाइ प्रयागा * चले यमुन उतरन जब लागा

द्वियटिका मुहूर्त साधकर तुरंत चल दिये और राह में विश्राम नहीं किया। आज सवेरे ही प्रयाग में स्नानकर चले और जब यमुना में उतरने लगे—

खबरि लेन हम पठये नाथा * अस कहितिनमहिनायउ माथा
साथ किरात छ सातक दीन्हे * मुनिवर तुरत विदा चर कीन्हे

तब राजा ने हम लोगों को खबर लेने के लिए इधर भेजा। ऐसा कहकर उन दूतों ने पृथ्वी में सिर रखकर प्रणाम किया। तब मुनिनाथ वशिष्ठ ने छः सात किरात साथ करके उन दूतों को शीघ्र विदा किया।

दो० जनकआगमन सुनत सब, हरषेउ अवध समाज।
रघुनन्दनहिं सँकोच बड़, शोच विवश सुरराज॥

जनक का आना सुनते ही सब अयोध्या के लोग प्रसन्न हुए, रामजी को बड़ा संकोच हुआ, और इन्द्र इस सोच के वश हुए कि कहीं जनक के कहने से रामचन्द्र लौट न जायँ।

गरै गलानि कुटिल कैकेयी * काहि कहै केहि दूषण देयी
असमन आनि मुदित नरनारी * भयउ बहोरि रहब दिनचारी

कुटिल कैकेयी मन में ग्लानि से मरी जाती है, अपनी चूक किससे कहे और उसके लिए किसको दोष दे? मन में यह सोचकर सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए कि फिर दो-चार दिन रहना हुआ।

यहि प्रकार गतवासर सोऊ * प्रात नहान लाग सब कोऊ
करि मज्जन पूजहिं नर नारी * गणपति गौरि पुरारि तमारी

इस प्रकार वह भी दिन बीत गया। तब सबेरे सब कोई नहाने लगे। स्नानकर स्त्री-पुरुष गणेश, गौरी, शिव और सूर्य की पूजा करने लगे।

रमारमण पद बन्दि बहोरी * विनवहिं अंचल अंजलि जोरी
राजा राम जानकी रानी * आनँद अवधि अवध रजधानी

फिर श्रीविष्णुजी के चरणों में प्रणाम कर स्त्रियाँ अंचल उठाकर और पुरुष हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि राजा राम और रानी जानकी हों, तथा आनन्द की अवधि अयोध्या राजधानी हो।

सुबस बसै फिरि सहित समाजा * भरतहिं राम करहिं युवराजा
यहि सुखसुधा सींचि सब काहू * देव देहु जग जीवन लाहू

फिर समाजसहित अयोध्या अच्छी प्रकार बसे और रामजी भरत को युवराज करें। हे देव, इस सुख के अमृत से सबको सींचकर संसार में जीने का लाभ दीजिए।



गुरुसमाज भाइनसहित, राम राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय माँग सब कोउ॥

गुरु-समाज और भाइयोंसमेत रामजी राजा हों और सुखपूर्वक राम के राजा रहते हम अयोध्या में मरें, यही सब माँगते हैं।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी * निन्दहिं योग विरति मुनिज्ञानी
यहिविधि नित्यकर्म करिपुरजन * रामहिं करहिं प्रणामपुलकितन

नगरवासियों की यह प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी लोग अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस प्रकार पुरवासी लोग नित्य-कर्म कर पुलकित होकर रामजी को प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी * लहहिंदरश निजनिज अनुहारी
सावधान सबहीं सनमानहिं * सकल सराहहिं कृपानिधानहिं

उत्तम, अधम और मध्यम नर-नारी अपनी योग्यता के अनुसार रामचन्द्र के दर्शन पाते हैं। सावधान रामजी सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं और सब लोग कृपानिधान रामजी को सराहते हैं।

लरिकाईं ते रघुवर बानी * पालत नीति प्रीति पहिचानी
शील सँकोच सिन्धु रघुराऊ * सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ

लड़कपन से रामजी का यह स्वभाव है कि प्रीति पहचानकर नीति को पालते हैं। रामचन्द्रजी शील और संकोच के सागर, अच्छे मुख और आँखोंवाले, सीधे स्वभाव के हैं।

कहत राम गुणगण अनुरागे * सब निजभाग्य सराहन लागे

हम सम पुण्यपुञ्ज जग थोरे * जिनहिं राम जानहिं करि मोरे

प्रेमयुक्त सब लोग रामजी के गुण कहते हुए अपने भाग्य को सराहने लगे कि जगत् में हमारे समान पुण्य की राशि थोड़े ही लोग हैं, जिनको रामजी अपना करके जानते हैं।



प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेश।
सहित सभा संभ्रम उठे, रविकुलकमलदिनेश॥

उस समय जनकजी को आते सुन सब प्रेम में मग्न हो गये। सूर्यवंशरूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य रामजी सभासमेत सादर अगवानी के लिए उठ खड़े हुए।

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा * आगे गमन कीन्ह रघुनाथा
गिरिवर दीख जनकपति जबहीं * करि प्रणाम रथ त्यागेउ तबहीं

भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियों को साथ ले रामजी आगे चले। राजा जनक ने जब उत्तम पर्वत चित्रकूट को देखा, तब प्रणामकर रथ छोड़ दिया।

राम दरश लालसा उछाहू * पथश्रम लेश कलेश न काहू
मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही * बिन मन तन दुखसुखसुधि केही

रामजी के दर्शन की लालसा से सबको उत्साह है, इससे राह की कुछ भी थकावट या क्लेश नहीं। मन तो जहाँ श्रीराम-जानकी हैं, वहाँ है, फिर बिना मन शरीर में दुःख-सुख की सुध किसे हो?

आवत जनक चले यहि भाँती * सहित समाज प्रेममति माती
आये निकट देखि अनुरागे * सादर मिलन परस्पर लागे

इस प्रकार प्रेम में पगी बुद्धिवाले राजा जनक अपने समाजसमेत चले आते हैं। जब समीप आ गये, तब उनको देखकर दोनों ओर के लोग आदरसमेत प्रेम से परस्पर मिलने लगे।

लगे जनक मुनिगणपदवन्दन * ऋषिन प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन
भाइन सहित राम मिलि राजहिं * चले लिवाय समेत समाजहिं

जनकजी मुनिगण को प्रणाम करने लगे। रामजी ने मुनियों को प्रणाम किया। फिर भाइयोंसमेत रामजी राजा जनक से मिलकर साथियोंसमेत उनको लिवा ले चले।



आश्रम सागर शान्तरस, पूरण पावन पाथ।
सेन मनहु करुणासरित, लिये जात रघुनाथ॥

पवित्र जल-समान शांतरस से परिपूर्ण वह आश्रम समुद्र के समान था। उससे मिलाने के लिए, मानो रामचन्द्रजी (भगीरथ के समान) सेनारूपी करुणारस की नदी को लिये जाते हैं।

बोरति ज्ञान विराग करारे * वचन सशोक मिलत नदनारे

वे सब धर्म और नीतिसहित वैराग्य और ज्ञान के अनेक उपदेश देने लगे। विश्वामित्रजी ने इतिहास की पुरानी कथाएँ कह-कहकर अच्छी वाणी से सारी सभा को समझाया।

तब रघुनाथ कौशिकहि कहेऊ * नाथ कालिह जल बिन सब रहेऊ
मुनि कह उचित कहत रघुराई * गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई

तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा—हे नाथ, कल सब लोग बिना जल के रहे थे। मुनि ने कहा कि रामजी ठीक कहते हैं; आज भी ढाई पहर दिन बीत गया है।

ऋषिरुखलखिकहतिरहुतिराजू * इहाँ उचित नहिं अशन अनाजू
कहा भूप भल सबहिन माना * पाइ रजायसु चले नहाना

ऋषि का रुख देखकर राजा जनक ने कहा—यहाँ किसी को अन्न नहीं खाना चाहिए। राजा की बात सबने उचित समझी और आज्ञा पाकर सब नहाने चले।



तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये वनचर विपुल, भरि भरि काँवरिभार॥

तब फल, फूल, दल और अनेक प्रकार के कंदमूल भारी काँवरों में भर भरकर वनवासी किरात आदि ले आये।

कामद भा गिरि रामप्रसादा * अवलोकत अपहरत विषादा
सर सरिता वन भूमि विभागा * जनु उमँगत अम्बुधि अनुरागा

रामजी के प्रसाद से कामद नाम का पर्वत सचमुच कामनादायक हो गया, जो देखने ही विषाद को हर लेता है। तालाब, नदी और वन की भूमि के स्थानों में मानो प्रेम का सागर उमड़ रहा है।

बेलि विटप सब सफल सफूला * बोलत खग मृग अलि अनुकूला
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू * त्रिविध समीर सुखद सब काहू

सब बेलों और वृक्षों में फल-फूल निकल आये तथा पक्षी, मृग और भौंरे मोहावनी बोली बोलने लगे। उस समय वन में बहुत उत्साह आ गया और सबको सुखदायक शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगा।

जाय न बरणि मनोहरताई * जनु महि करत जनकपहुनाई
तब सब लोग नहाइ नहाई * राम जनक मुनि आयसु पाई

वह मनोहरता वर्णन नहीं की जाती; मानो पृथ्वी (सीता की माता होने के कारण जनक की स्त्री हुई) जनक की पहुनाई करती है। तब सब लोग नहा-नहाकर मुनि तथा राम और जनक की आज्ञा पाकर—

देखि देखि तरुवर अनुरागे * जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे
दल फलफूल कन्द विधि नाना * पावन सुन्दर सुधा समाना

उत्तम वृक्षों को देख-देखकर प्रसन्न हुए। जहाँ-तहाँ पुरवासी लोग उतरने लगे। दल, फल, फूल और अनेक प्रकार के कंदमूल, जो कि पवित्र, सुन्दर और अमृत की तरह स्वादिष्ट थे—



सादर सब कहँ रामगुरु, पठये भरि भरि भार।
पूजि विप्र सुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार॥

डलियों में भर-भरकर रामजी के गुरु वशिष्ठजी ने आदरसहित सबको भेजे। तब सब लोग ब्राह्मण, देवता, अतिथियों और गुरुओं को पूजकर फलाहार करने लगे।

यहिविधि वासर बीते चारी * राम निरखि नर नारि सुखारी
दुहुँसमाज असि रुचि मनमाहीं * बिन सियराम फिरब भल नाहीं

इस प्रकार चार दिन बीत गये। राम को देखकर सब स्त्री-पुरुष सुखी होते थे। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि सीता और राम के बिना लौटना अच्छा नहीं।

सीताराम संग वनवासू * कोटि अमरपुर सरिस सुपासू
परिहरि राम लषण वैदेही * जेहि घर भाव वामविधि तेही

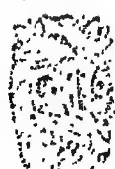
सीता और रामजी के साथ वन में रहना करोड़ों स्वर्गों के समान सुखदायक है। राम, लक्ष्मण और जानकी को छोड़ जिसे घर अच्छा लगे, उसे विधाता बाएँ हैं।

दाहिन दैव होइ तब सबहीं * राम समीप बसिय वन जबहीं
मन्दाकिनि मज्जन तिहुँकाला * रामदरश मुदमंगल माला

तभी दैव सबके दाहने जानिए, जब राम के पास वन में रहें। तीनों समय (सवेरे, दोपहर और शाम को) मन्दाकिनी का स्नान तथा रामजी का दर्शन लगातार हर्ष और मंगल देनेवाला है।

अटन रामगिरि वन तापसथल * अशन सुधासम कन्दमूल फल
सुख समेत संवत दुइसाता * पलसम जाहिं न जानिय जाता

रामगिरि के वनों और तपस्वियों के आश्रमों में घूमेंगे तथा अमृत के समान कन्द, मूल, फल भोजन करेंगे, इस तरह चौदह वर्ष सुखसमेत पल भर के समान बीत जायँगे; जाते न जान पड़ेंगे।



यहि सुखयोग न लोग सब, कहहिं कहाँ असभाग।
सहित सनेह समाज दुहुँ, रामचरण अनुराग॥

कुछ लोग कहते हैं कि इस सुख के योग्य सब लोग नहीं हैं; क्योंकि ऐसे भाग्य कहाँ हैं? इस प्रकार स्नेहसमेत दोनों ओर के लोगों का रामजी के चरणों में प्रेम लगा है।

यहिविधि सकलमनोरथ करहीं * वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं
सीयमातु तेहि समय पठाई * दासी देखि सुअवसर आई

इस प्रकार सब लोग मनोरथ करते हैं, जिनके प्रेम-भरे वचन मन को हरते हैं। उस समय सीता की माता ने एक दासी भेजी, जो अच्छा मौका देखकर आई।

सावकाश सुनि सब सियसासू * आयउ जनक राय रनिवासू
कौशल्या सादर सनमानी * आसन दीन्ह समयसम आनी

सीता की सब सासों को अवकाश है, यह सुनकर राजा जनक का रनिवास उनसे मिलने आया। कौशल्या ने आदरसमेत उनका सम्मान किया और समय के अनुसार उन्हें साधारण आसन दिया।

शील सनेह सरस दुहुँ ओरा * द्रवहिं देखि सुनि कुलिश कठोरा
पुलकशिथिलतनसजलविलोचन * भू नखलिखै लगीं सब शोचन

दोनों ओर शील और स्नेह ऐसा अधिक है कि उसे देख-सुनकर कठोर वज्र भी पसीज जाता है। रोमांच होने से उनके शरीर शिथिल हैं, आँखों में आँसू भरे हैं। नख से पृथ्वी को खोदती हुई सिर झुकाये सब शोच करने लगीं।

सब सियराम प्रेम की मूरति * जनु करुणा बहुवेप बिसूरति
सीयमातु कह विधिबुधि बाँकी * जो पय फेनु फोर पवि टाँकी

सब सीता और राम के प्रेम की मूर्ति हैं, मानो बहुत-से रूप धरे साक्षात् करुणा ही बिसूर रही है। सीता की माता ने कहा कि ब्रह्मा की बुद्धि उलटी है, जिसने दूध के फेन को वज्र की टाँकी से फोड़ा अर्थात् राम को वन दिया।



सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥

ब्रह्मा की करतूत कठिन है कि अमृत तो केवल कानों से सुन पड़ता है और विष प्रत्यक्ष देख पड़ता है। कौवे की भाँति कठोर बात कहनेवाली, उल्लू की भाँति सूर्यरूपी राम के वन जाने पर प्रसन्न होनेवाली और बगले की भाँति चुपके से रामराज्य को नष्ट करनेवाली कैकेयी-सी बहुत हैं; परन्तु भरत और लक्ष्मण की तरह मानसरोवर के हंस (दोषों को छोड़कर गुण को ग्रहण करनेवाले) विरले हैं।

सुनि सशोच कह देवि सुमित्रा * विधिगति सब विपरीत विचित्रा
जो सृजि पालै हरै बहोरी * बाल केलिसम विधिमति भोरी

यह सुन शोक से विकल सुमित्रा देवी ने कहा—ब्रह्मा की सब गति उलटी और विचित्र है। वह लड़कों के खेल की तरह संसार को उत्पन्न कर पालता है और फिर नष्ट कर देता है। विधाता की मति ऐसी मंद है।

कौशल्या कह दोष न काहू * कर्मविवश दुख सुख क्षति लाहू
कठिन कर्मगति जान विधाता * जो शुभ अशुभ कर्मफलदाता

तब कौशल्या ने कहा—दोष किसी का नहीं है। कर्म ही के अनुसार मनुष्य को दुःख, सुख, हानि और लाभ होते हैं। कर्म का कठिन गति ब्रह्मा ही जानते हैं, जो अच्छे-बुरे कर्मों का फल देनेवाले हैं।

ईश रजाय शीश सबहीके * उतपति थिति लय विषहु अमीके
देवि मोहवश शोचिय बादी * विधि प्रपंच अस अचल अनादी

ईश्वर की आज्ञा सभी के माथे पर है। उत्पत्ति, पालन, नाश, विष और अमृत सब ईश्वर की इच्छा ही से प्राप्त होते हैं। हे देवि, अज्ञानवश वृथा शोक करती हो। ब्रह्मा का प्रपंच सदा से ऐसा ही अटल और अनादि है।

भूपति मरब जियब उर आनी * शोचिय सखि लखि निज हित हानी
सीयमातु कह सत्य सुबानी * सुकृती अवधि अवधपतिरानी

हे सखी, राजा का मरना-जीना हृदय में सोचकर और अपने हित की हानि देखकर ही हम शोक करती हैं। सीता की माता ने अच्छी वाणी से कहा कि पुण्यात्माजनों की अवधि अयोध्यानाथ की रानी सत्य कहती हैं।



लषण राम सिय जाहिं वन, भल परिणाम न पोच।
गहबर हिय कह कौशला, मोहिं भरत कर शोच॥

कौशल्याजी भरे हुए कण्ठ से बोलीं कि लक्ष्मण, राम और सीता वन जायँ, इसका कुछ अच्छा ही फल होगा, बुरा नहीं। मुझे तो केवल भरत का सोच है कि वह राम का वियोग सह सकेंगे या नहीं।

ईश प्रसाद असीश तुम्हारी * सुत सुतवधू देवसरि वारी
राम शपथ मैं कीन्ह न काऊ * सो करि कहौं सखी सतिभाऊ

ईश्वर की प्रसन्नता और तुम्हारी असीश से मेरे पुत्र और पतोहू गंगाजी के जल की भाँति निर्मल हैं। मैंने कभी राम की सौगन्द नहीं खाई। हे सखी, वही सौगन्द खाकर मैं सच कहती हूँ—

भरत शील गुण विनय बड़ाई * भायप भक्ति भरोस भलाई
कहत शारदा की मति हीची * सागर सीप कि जाइ उलीची

भरत का शील, गुण, विनय, बड़ाई, भाईपन, भक्ति और भरोसा आदि कहने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है। क्या समुद्र कभी सीपियों से उलचा जा सकता है?

जानेहु सदा भरत कुलदीपा * बार बार मोहिं कहेउ महीपा
कसे कनक मणि पारिख पाये * पुरुष परखिये समय सुभाये

'सदा भरत को वंश का दीपक जानना' यह मुझसे बार-बार राजा ने कहा था। कसौटी पर कसने से सोना, पारखी के परखने से मणि और समय पर स्वभाव से पुरुष परखा जाता है।

अनुचित आजु कहब असमोरा * शोक सनेह सयानप थोरा
सुनि सुरसरि सम पावन बानी * भईं सनेह विकल सब रानी

आज मेरा ऐसा कहना अनुचित है ; क्योंकि शोक और स्नेह बहुत तथा चतुरता (होशहवास) थोड़ी है। कौशल्या के यह गंगाजी के समान पवित्र वचन सुनकर सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो गईं।



कौशल्या कह धीरधरि, सुनहु देवि मिथिलेशि।
को विवेकनिधि वल्लभहिं, तुमहिं सकै उपदेशि॥

तब धीरज धर कौशल्या ने कहा—हे मिथिलेश्वरी देवी, तुम ज्ञान के निधान जनक की रानी हो। तुम्हें कौन सिखा सकता है ?

रानि रायसन अवसर पाई * आपनि भाँति कहब समुझाई
बहुरहिं लषण भरत गमनहिं बन * जो यह मत मानहिं महीपमन

कौशल्या बोलीं कि हे रानी, अवसर पाकर अपनी ओर से राजा को समझाकर कहना कि यदि राजा को यह सलाह पसंद आवे कि लक्ष्मण लौटें और भरत वन जायँ,

तौ भलि यतन करब सुविचारी * मोरे शोच भरतकर भारी
गूढ़ सनेह भरत मनमाहीं * रहे नीक मोहिं लागत नाहीं

तो अच्छी तरह से विचारकर उसका उपाय करें ; क्योंकि मुझे भरत की बड़ी चिन्ता है। भरत के मन में राम का गूढ़ (गहरा) प्रेम है, इससे उनका राम के बिना अयोध्या में रहना मुझे अच्छा नहीं लगता, अर्थात् इससे अनर्थ की संभावना है ; भरत राम का वियोग नहीं सह सकेंगे।

लखि सुभाव सुनि सरल सुबानी * सब भईं मगन करुणरससानी
नभप्रसून झर धन्य धन्य धुनि * शिथिल सनेह सिद्ध योगीमुनि

कौशल्या का स्वभाव देख और करुणा से सनी सरल वाणी सुन सब मग्न हुईं। आकाश से फूल बरसने लगे और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी तथा सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गये।

सब रनिवास थकित लखि रहेऊ * तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ
देवि दण्ड युग यामिनि बीती * राममातु सुनि उठीं सप्रीती

सब रनिवास यह देखकर थकित हो रहा। तब धीरज धरकर सुमित्रा ने कहा—देवि अब चार घड़ी रात बीत गई। यह सुन रामजी की माता कौशल्या प्रीतिसमेत उठीं।



बेगि पाँय धारिय थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरे तौ अब ईशगति, की मिथिलेश सहाय॥

कौशल्या स्नेह और सच्चे भाव से कहने लगीं कि रानीजी, अब आप अपने डेरे को शीघ्र पधारिए। मेरे तो अब ईश्वर ही की गति है या मिथिलेश जनकजी सहाय हैं।

लखि सनेह सुनि वचन विनीता * जनकप्रिया गहि पाँय पुनीता
देवि उचित असि विनय तुम्हारी * दशरथघरनि राम महतारी

स्नेह देख और नम्र वचन सुन जनक की प्यारी सुनयना ने कौशल्या के पवित्र चरण पकड़कर कहा—देवी, तुम्हें ऐसी विनती उचित ही है; क्योंकि तुम महाराज दशरथ की स्त्री और राम की माता हो।

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं * अग्नि धूमगिरि शिरतृणधरहीं
सेवक राउ कर्म मन बानी * सदा सहाय महेश भवानी

समर्थ पुरुष अपने से नीचे (छोटे) का भी आदर करते हैं। देखो, आग धुएँ को और पहाड़ तृण को सिर पर स्थान देते हैं। राजा तो कर्म, मन और वचन से आपके सेवक हैं, तथा शिव और पार्वती सदा सहाय हैं।

रौरे अङ्ग योग जग को है * दीप सहाय कि दिनकर सोहै
राम जाय वन करि सुरकाजू * अचल अवधपुर करिहैं राजू

संसार में आपकी सहायता करने के योग्य कौन है? दीपक की सहायता क्या सूर्य को सोहती है? रामचन्द्रजी वन जाकर देवताओं का कार्य करके अयोध्या में अटल राज्य करेंगे।

अमर नाग नर राम बाहु बल * सुख बसिहैं अपने अपने थल
यह सब याज्ञवल्क्य कहि राखा * देवि न होय वृथा मुनिभाखा

रामचन्द्र की भुजाओं के बल से देवता, नाग और मनुष्य अपने-अपने स्थानों में सुख से बसेंगे। हे देवी, योगी याज्ञवल्क्य ने यह सब पहले ही कह रक्खा है। मुनि का कहा झूठा नहीं हो सकता।



असकहि पगपरि प्रेमअति, सिय हित विनयसुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब, चलीं सुआयसु पाइ॥

सुनयना ने ऐसा कह पैरों पड़कर बड़े प्रेम से सीता को लिवा ले जाने के लिए विनय की। तब कौशल्या की आज्ञा पाकर सीतासमेत सुनयना चलीं।

प्रिय परिजनहिं मिलीं वैदेही * जो जेहि योग्य भाँति तेहितेही
तापस वेष जानकिहिं देखी * भे सब विकल विषाद विशेखी

सीताजी प्यारे कुटुम्ब को जो जिस योग्य था, उसी भाँति मिलीं। तपस्वियों के वेष में जानकीजी को देखकर सब विषाद से बहुत व्याकुल हुए।

जनक राम गुरु आयसु पाई * चले थलहिं सिय देखी आई
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी * पाहुनि पावनि प्रेम प्रानकी

रामजी के गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी चले और अपने डेरे में आकर सीता को देखा। जनकजी ने प्रेम और प्राणों की पवित्र पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा लिया।

उर उमँगेउ अम्बुधि अनुरागू * भयउ भूप मन मनहु प्रयागू
सिय सनेह वट बाढ़त जोहा * तापर राम प्रेम शिशु सोहा

हृदय में स्नेह का समुद्र उमड़ा और राजा जनक का मन मानो प्रयागराज हो गया। सीताजी का स्नेहरूपी बरगद बढ़ता दिखाई पड़ा, जिस पर रामजी का स्नेहरूप बालक (बालमुकुन्द) शोभित है।

चिरंजीवि मुनि ज्ञान विकल मन * बूड़त लहेउ बाल अवलम्बन
मोहमगन मति नहिं विदेह की * महिमा सिय रघुवर सनेह की

राजा का ज्ञान से विकल मन ही चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि है। उसने बूड़ते समय रामजी के स्नेहरूपी बालमुकुन्द का सहारा पाया। जनक की बुद्धि जो मोह में नहीं डूबी; सो सब रामजी के स्नेह की ही महिमा है।


सिय पितुमातुसनेहबश, विकल न सकीं सँभारि।
धरणिसुता धीरज धरेउ, समय सुधर्म विचारि॥

पिता-माता के प्रेम के वश जानकीजी व्याकुल हो गईं, सँभाल न रहा। परन्तु फिर पृथ्वी की कन्या सीता ने समय और अपना धर्म विचारकर धीरज धरा।

तापस वेष जनक सिय देखी * भयउ प्रेम परितोष विशेखी
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ * सुयश धवलजगकह सब कोऊ

जनकजी ने तपस्वियों के वेष में सीता को देखा तो प्रेम से बहुत ही प्रसन्न हुए। फिर कहा—पुत्री, तुमने दोनों कुल पवित्र किये। संसार में सब लोग तुम्हारे उज्ज्वल यश का बखान करेंगे।

जसि सुरसरि कीरति तसि तोरी * गमनकीन्ह विधि अण्ड करोरी
गङ्ग अवनि थल तीनि बड़ेरे * यहि के साधु समाज घनेरे

गंगाजी की भाँति तुम्हारा यश करोड़ों ब्रह्माण्डों में पहुँच गया है। पृथ्वी में गंगाजी के तीन ही बड़े स्थान (हरिद्वार, प्रयाग और सागरसंगम) हैं; परन्तु तुम्हारे इस यश के स्थान बहुत-से साधु-समाज हैं।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी * सीयसकुचिमहि मनहु समानी
पुनि पितु मातु लीन्ह उरलाई * शिष आशिषहित दीन्ह सुहाई

पिता जनक ने तो स्नेह से सत्य ही वचन कहे; परन्तु सीताजी सकुच के मारे मानो पृथ्वी में समा गईं। फिर पिता-माता ने उनको हृदय से लगा लिया तथा हित के लिए सुन्दर सिखावन और आशीर्वाद दिये।

कहति न सीय सकुच मनमाहीं * यहाँ बसब रजनी भल नाहीं
लखि रुख रानि जनायउ राऊ * हृदय सराहत शील सुभाऊ

सीताजी सकुच के मारे कहती नहीं; परन्तु रात को वहाँ रहना अच्छा नहीं समझतीं। जनक की रानी ने जानकी का रुख देख राजा को जनाया। वह हृदय में सीता के शील और स्वभाव को सराहने लगे।

बार बार मिलिभेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सयानि सुबानि॥

फिर सुनयना ने बार-बार मिल-भेंटकर बड़े सम्मान से सीता को विदा किया। समय पाकर चतुर रानी ने मधुर वाणी से भरत का हाल कहा।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू * सोन सुगन्ध सुधा शशि सारू
मूँदे सजल नयन पुलके तन * सुयश सराहन लगे मुदितमन

सोने में सुगन्ध की भाँति प्रशंसनीय और अमृतमय चाँदनी की नाइँ शीतल करनेवाला भरत का व्यवहार सुनकर राजा जनक ने आँसू-भरी आँखें मूँद लीं और देह में रोमांच हो आया। फिर प्रसन्न हो भरत के उत्तम यश की सराहना करने लगे।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि * भरतकथा भवबन्धविमोचनि
धर्म राजनय ब्रह्म विचारू * यहाँ यथामति मोर प्रचारू

बोले—हे सुमुखी, सुलोचनी, सावधान होकर सुनो। भरतजी की कथा संसार का बन्धन छुड़ानेवाली है। धर्मशास्त्र, राजनीति और ब्रह्मविचार—इनमें मेरी बुद्धि की अच्छी गति है।

सो मति मोरि भरत महिमाहीं * कहै काह छलि छुवत न छाहीं
विधि गणपति अहिपति शिव शारद * कवि कोविद बुध बुद्धि विशारद

किन्तु वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा को कहने की कौन कहे, किसी छल से उसकी छाँह को भी नहीं छू सकती। मैं क्या, ब्रह्मा, गणेश, शेष, शिव, सरस्वती, कवि, कोविद, पण्डित और बड़ी प्रवीण बुद्धिवाले भी भरत की महिमा को नहीं कह सकते।

भरत चरित कीरति करतूती * धर्म शील गुण विमल विभूती
समुझत सुनत सुखद सबकाहू * शुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू

भरत के चरित, कीर्ति, कर्म, धर्म, स्वभाव, गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में सबको सुखदायक हैं। वे गंगाजी के समान पवित्र और अमृत से बढ़कर मधुर हैं।

निरवधि गुण निरुपम पुरुष, भरत भरतसम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेरसम, कविकुलमति सकुचानि॥

भरत अपनी उपमा आप हैं; क्योंकि उनके गुणों की कोई हद नहीं है। इससे कोई

पुरुष उनके समान नहीं। सुमेरु पर्वत का सेर भर का कैसे कहा जा सकता है? इसी से भरत के गुणों की महिमा का वर्णन करने में कवियों की बुद्धि सकुचा जाती है।

अगम सबहिं बरणत बरबरणी * जिमि जलहीन मीन गमु धरणी
भरत अमितमहिमा सुनु रानी * जानहिं राम न सकहिं बखानी

हे सुन्दरी, भरत के गुण कहने में सबको वैसे ही अगम हैं, जैसे जलरहित मरुदेश में मछली नहीं जा सकती। हे रानी, भरत की अपार महिमा को केवल राम ही जानते हैं, परन्तु वह भी उसे कह नहीं सकते।

बरणि सप्रेम भरत अनुभाऊ * तियजियकीरुचिलखि कहराऊ
बहुरहिं लषण भरत बन जाहीं * सबकर भल सबके मन माहीं

राजा ने इस प्रकार प्रेमसमेत भरत का स्वभाव कहकर स्त्री के मन की रुचि लखकर फिर कहा कि लक्ष्मणजी लौटें और भरत वन जायँ, तो सबका भला है, सबके मन में यही बात है।

देवि परन्तु भरत रघुवर की * प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी
भरत सनेह अवधि ममता के * यद्यपि राम सींव समता के

परन्तु हे देवी, भरत और रामजी की परस्पर प्रीति की प्रतीति तर्क के बाहर है। यद्यपि रामजी सबको बराबर मानते हैं, तथापि वह भरतजी के स्नेह और ममता की सीमा हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे * भरत न सपनेहुँ मनहिं निहारे
साधन सिद्धि रामपद नेहू * मोहिं लखि परत भरतमत येहू

परमार्थ और स्वार्थ के सब सुख भरत ने स्वप्न में भी मन से नहीं देखे। मुझे भरत का मत यही देख पड़ता है कि सब साधनों की सिद्धि रामजी के चरणों में स्नेह होना है।



भोरेहु भरत न पेलिहैं, मनसों राम रजाय।
करिय न शोच सनेहवश, कहेउ भूप बिलखाय॥

व्याकुल हो राजा जनक ने कहा—भरत भूलकर मन से भी राम की आज्ञा को नहीं टालेंगे। इससे स्नेहवश होकर सोच न करो।

राम भरत गुणगणत सप्रीती * निशि दम्पतिहिं पलकसम बीती
राजसमाज प्रात युग जागे * न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे

प्रेमसमेत राम और भरत के गुण गिनते हुए सुनयना और राजा जनक की रात पल भर के समान बीत गई। सवेरे अयोध्या और मिथिला के दोनों राजसमाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुरुपहँ रघुराई * बन्दि चरण बोले रुख पाई

नाथ भरत पुरजन महतारी * शोच विकल वनवास दुखारी

रामजी नहाकर गुरु के निकट गये और चरणों में प्रणाम करके उनका रुख पाकर बोले—हे नाथ, भरत, पुरवासी और माताएँ, सब शोक से व्याकुल और वन में रहने से दुखी हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेशू * बहुत दिवस भे सहत कलेशू
उचित होइ सो कीजिय नाथा * हित सबहीकर राउर हाथा

समाजसमेत मिथिलाधिप जनक को भी क्लेश सहते बहुत दिन हुए। इसलिए हे स्वामी, जो उचित हो वही कीजिए। सबका हित आपके ही हाथ है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ * मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ
तुम बिन राम सकल सुख साजा * नरक सरिस दुहुँ राजसमाजा

ऐसा कह रामजी बहुत सकुचे। तब वशिष्ठ मुनि उनका शील और स्वभाव देखकर प्रसन्न हो उठे। वे बोले—हे राम, तुम्हारे बिना दोनों राजसमाजों के लिए सब सुखसाज नरक के समान हैं।

दो॰ प्राण प्राण के जीव के, जिय सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सुहाइ गृह, तिनहिं विधाता बाम॥

हे राम, प्राणों के प्राण, जीवों के जीव और सुखों के भी सुखरूप तुम्हें छोड़ जिनको घर अच्छा लगता है, अवश्य ही विधाता उनके प्रतिकूल हैं।

सो सुख धर्म कर्म जरिजाऊ * जहँ न रामपद पंकज भाऊ
योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू * जहँ नहिं राम प्रेम परधानू

वह सुख, धर्म और कर्म जल जाय, जिसमें रामजी के चरणकमलों की भावभक्ति न हो। वह योग कुयोग और ज्ञान अज्ञान है, जिसमें रामजी का प्रेम प्रधान नहीं है।

तुम बिन दुखी सुखी तुमतेही * तुम जानहु जो जिय जेहि केही
राउरि आयसु शिर सबहीके * विदित कृपालहि गति सबनीके

राजसमाज तुम्हारे बिना दुखी और तुम्हीं को पाकर सुखी है। जिसके जी में जो है, वह तुम जानते ही हो। तुम्हारी आज्ञा सभी के माथे पर है। हे दयालु, यह तुमको भली भाँति विदित है।

आपु आश्रमहिं धारिय पाँऊ * भये सनेह शिथिल मुनिराऊ
करि प्रणाम तब राम सिधाये * ऋषि धरि धीर जनक पहँ आये

आप आश्रम को चलिए, यह कहकर मुनिराज वशिष्ठ स्नेह से शिथिल हो गये। तब प्रणाम करके रामजी चले गये और ऋषि वशिष्ठ धीरज धर जनक के पास आये।

रामवचन गुरु नृपहिं सुनाये * शील सनेह सुभाय सुहाये

महाराज अब कीजिय सोई * सबकर धर्मसहित हित होई

गुरु वशिष्ठ ने शील, स्नेह और स्वभाव से सुन्दर रामजी के वचन राजा जनक को सुनाये और कहा—महाराज, अब वही कीजिए, जिसमें धर्म की रक्षा और सबका हित हो।



ज्ञाननिधान सुजान शुचि, धर्म धीर नरपाल।
तुम बिन असमंजसशमन, को समर्थ यहिकाल॥

हे राजन्, तुम ज्ञान की खान, चतुर, पवित्र, धर्मात्मा और धीर हो। इस समय तुम्हारे सिवा इस असमंजस को शान्त करनेवाला कौन है।

सुनि मुनिवचन जनक अनुरागे * लखि गति ज्ञान विराग विरागे
शिथिल सनेह गुणत मन माहीं * आयउँ इहाँ कीन्ह भल नाहीं

मुनि के वचन सुन जनक को बड़ा प्रेम हुआ। उनकी दशा देख ज्ञान-वैराग्य को भी वैराग्य हो गया। स्नेह से शिथिल जनक मन में विचारते हैं कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।

रामहिं राय कहेउ वन जाना * कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रमाना
हम अब वनते वनहिं पठाई * प्रमुदित फिरव विवेक बड़ाई

क्योंकि महाराज दशरथ ने राम को वन जाने के लिए अवश्य आज्ञा दी, पर अपने प्यारे के प्रेम को प्राण देकर प्रमाणित कर दिया। और अब मैं राम को एक वन से दूसरे वन को भेजकर ज्ञान को बढ़ाकर प्रसन्न होकर लौटूँगा! अर्थात् मेरे ऐसे ज्ञान को धिक्कार है।

तापस मुनि महिसुर गति देखी * भये प्रेमवश विकल विशेखी
समय समुझि धरि धीरज राजा * चले भरतपहँ सहित समाजा

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण राजा जनक की यह दशा देखकर प्रेम के वश बहुत व्याकुल हुए। फिर समय समझ धीरज धरकर राजा जनकजी अपने समाजसमेत भरत के समीप चले।

भरत आइ आगे होइ लीन्हे * अवसर सरिस सुआसन दीन्हे
तात भरत कह तिरहुतिराऊ * तुमहिं विदित रघुवीरसुभाऊ

भरतजी ने आगे होकर उनको लिया और समय के अनुसार अच्छा आसन दिया। राजा जनक ने कहा—हे तात भरत, तुम राम का स्वभाव जानते हो।



राम सत्यव्रत धर्मरत, सबकर शील सनेहु।
सङ्कट सहत सँकोचवश, कहौं जो आयसु देहु॥

राम सत्यव्रत और धर्म में निष्ठा रखनेवाले हैं। सबके शील और स्नेह से संकोचवश दुःख सहते हैं। अब जो तुम आज्ञा दो, वही उनसे कहा जाय।

सुनि तनपुलकि नयनभरि वारी * बोले भरत धीर धरि भारी
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू * कुलगुरुसम हित माय न बापू

यह सुन रोमांचित देह से आँखों में जल भरकर धीरज धर भरत बोले—रामजी प्यारे और पूज्य हैं; आप भी पिता के समान हैं; कुलगुरु वशिष्ठजी माता-पिता से भी अधिक मेरे हितू हैं।

कौशिकादि मुनि सहित समाजू * ज्ञान अम्बुनिधि आपन आजू
शिशु सेवक आयसु अनुगामी * जानि मोहिं सिख देइय स्वामी

विश्वामित्र आदि मुनि, मन्त्रियों का समाज और आप ज्ञान के सागर हैं। हे स्वामी, मुझे तो बालक, सेवक और आज्ञा का अनुगामी जानकर आप सिखावन दीजिए।

यहि समाज थल बूझब राउर * मन मलीन मैं बोलब बाउर
छोटे वदन कहौं बड़ि बाता * क्षमेहु तात लखि वाम विधाता

न कि इस समाज में आप उलटे मुझसे पूछिए। मेरा तो मन ठिकाने नहीं है; मैं तो बावलों की सी बात कहूँगा। मैं छोटे मुख बड़ी बात कहता हूँ। हे तात, विधाता को बायें देखकर मुझे क्षमा कीजिए।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना * सेवाधर्म कठिन जग जाना
स्वामिधर्म स्वारथहि विरोधू * बधिर अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू

शास्त्रों, वेदों और पुराणों में प्रसिद्ध है तथा संसार जानता है कि सेवक का धर्म कठिन है। स्वामी के धर्म और स्वार्थ से विरोध है। बहरों और अन्धों में परस्पर प्रेम का ज्ञान नहीं होता।

दो० राखि रामरुख धर्मरुचि, पराधीन मोहिं जानि।
सबके सम्मत सर्वहित, करिय प्रेम पहिंचानि॥

इसलिए रामजी का रुख और धर्म की रुचि रख, मुझे पराये वश जानकर, प्रेम पहचान सबकी सम्मति से सबका हित करिए।

भरतवचन सुनि देखि सुभाऊ * सहित समाज सराहत राऊ
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे * अर्थ अमित अति आखर थोरे

भरत के वचन सुन और स्वभाव देखकर समाजसमेत राजा जनक उनको सराहने लगे। उनका कथन कहने में सहज है; पर करने में कठिन है। अक्षर थोड़े हैं; कोमल और सुन्दर हैं; पर अर्थ बहुत हैं।

जिमिमुख मुकुरमुकुर निजपाणी * गहि न जाइ असि अद्भुतवाणी
भूप भरत मुनि साधु समाजू * गे जहँ विबुधकुमुदद्विजराजू

जैसे मुख दर्पण में और दर्पण हाथ में होता है, पर शीशे के भीतर का मुख पकड़ा

नहीं जा सकता, वैसे ही भरतजी की वाणी अद्भुत है—कहने में सहज और करने में कठिन है। तब राजा जनक, भरत, मुनि और साधु देवरूपी कोकावेली के लिए चन्द्ररूपी रामजी के पास गये।

सुनि सुधि शोच विकल सब लोगा * मनहु मीनगण नव जलयोगा
देव प्रथम कुलगुरुगति देखी * निरखि विदेह सनेह विशेखी

यह खबर सुनकर सब व्याकुल हो गये, जैसे नये जल के आने से मछलियाँ। देवता पहले कुलगुरु वशिष्ठजी की दशा, फिर जनकजी का अधिक स्नेह,

राम भक्तिमय भरत निहारे * सुर स्वारथी हहरि हिय हारे
सब कहँ राम प्रेममय पेखा * भये अलेख शोचवश लेखा

और भरत को रामचन्द्रजी की भक्ति की साक्षात मूर्ति देखकर स्वार्थी देवता हहराकर मन में हार गये। सबको रामजी के प्रेम में मग्न देखा तो देवगण बहुत ही सोच के वश हुए।



राम सनेह सँकोचवश, कह सशोच सुरराज।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहित भयउ अकाज॥

स्नेह और संकोच के वश रामजी को देख सोचसमेत इन्द्र देवताओं से कहते हैं कि सब पंच मिलकर कुछ प्रपंच रचो; नहीं तो बस अकाज हुआ।

सुरन सुमिरि शारदा सराही * देवि देव शरणागत पाही
फेरि भरतमति करिनिज माया * पालु विबुधकुल करि छलछाया

तब देवताओं ने सरस्वती का स्मरणकर उनकी स्तुति की और कहा—हे देवी, शरण में आये हुए देवताओं की रक्षा करो। अपनी माया से भरत की बुद्धि बदलकर छल की छाया कर देवताओं को पालो।

विबुधविनय सुनि देवि सयानी * बोली सुर स्वारथ जड़ जानी
मोसन कहहु भरतमति फेरू * लोचन सहस न सूझ सुमेरू

देवताओं की विनय सुन चतुर सरस्वती देवी स्वार्थ से देवताओं को मूर्ख जानकर बोली—मुझसे कहते हो कि भरत की बुद्धि फेर दो। क्या तुमको इन हजार आँखों से भी सुमेरु पर्वत नहीं सूझता?

विधि हरि हर माया बड़िभारी * सोउ न भरत मति सकै निहारी
सो मति मोहिं कहत करु भोरी * चाँदनि कर कि चन्द्रकर चोरी

ब्रह्मा, विष्णु और शिव की बड़ी भारी माया भी भरत की बुद्धि को नहीं फेर सकती। उसी मति को मुझसे कहते हो कि भ्रष्ट करो। क्या चाँदनी चन्द्रमा की चोरी कर सकती है?

भरत हृदय सिय राम निवासू * तहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू

अस कहि शारद गै विधिलोका * देव विकल निशि मानहु कोका

भरत के हृदय में सीतारामजी का निवास है। क्या सूर्य के प्रकाश में भी अँधेरा होता है? ऐसा कह सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गईं और देवता ऐसे व्याकुल हुए, जैसे रात को चकवा-चकई।

सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्र कुठाट।
रचि प्रपंच माया प्रबल, भयभ्रम अरति उचाट॥

तब स्वार्थी देवताओं ने उदासीन मन से कुमन्त्र और कुठाट किया—बड़ी प्रबल माया का प्रपंच रचकर भरत आदि के मन में डर, भ्रम, दुःख और उचाट उत्पन्न किया।

करि कुचालि शोचत सुरराजू * भरत हाथ सब काज अकाजू
गये जनक रघुनाथ समीपा * सनमाने सब रघुकुलदीपा

कुचाल करके इन्द्र सोचते हैं कि काज और अकाज भरत के हाथ है। जनकजी रामजी के पास गये। और रघुवंश में दीपकरूप रामजी ने सब प्रकार उनका आदर किया।

समय समाज धर्म अविरोधा * बोले तब रघुवंश पुरोधा
जनक भरत संवाद सुनाई * भरत कहावति कही सुहाई

तब रघुवंश के पुरोहित वशिष्ठजी ने समय, धर्म और समाज के अनुकूल वचन कहे। जनक और भरत की बातचीत सुनाकर भरत की कही हुई सोहाई बात कही।

तात राम जस आयसु देहू * सो सब करहिं मोर मत येहू
सुनि रघुनाथ जोरि युगपाणी * बोले सत्य सरल मृदु बाणी

बोले—हे तात, राम, तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें, यह मेरी सलाह है। यह सुन रामजी दोनों हाथ जोड़कर सत्य, सरल और कोमल वचन बोले—

विद्यमान आपुन मिथिलेशू * मोर कहा सब भाँति भदेशू
राउर राय रजायसु होई * राउर शपथ रही शिर सोई

जहाँ आप और जनकजी हैं, वहाँ मेरा कहना सब भाँति भद्दा है। आपकी और राजा जनक की जो आज्ञा होगी, आपकी सौगन्द है, वही मेरे माथे पर रहेगी।

रामशपथसुनिमुनिजनक, सकुचेउ सभा समेत।
सकल विलोकतभरतमुख, बनै न उत्तर देत॥

रामजी की सौगन्द सुनकर जनकजी और वशिष्ठ मुनि समाजसमेत सकुच गये। सब लोग भरत का मुँह ताकने लगे; किसी से कुछ उत्तर नहीं देते बनता।

सभा सकुचवश भरत निहारी * रामबन्धु धरि धीरज भारी

कुसमय देखि सनेह सँभारा * बढ़त बिन्ध्य जिमि घटज निवारा

सभा को संकोच के वश देख रामजी के भाई भरत ने बड़ा धीरज धरकर, कुसमय देख राम के प्रति अपने स्नेह को सँभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्य मुनि ने रोका था।

शोक कनकलोचन मति क्षोनी * हरी विमल गुणगण जगयोनी
भरत विवेक वराह विशाला * अनायास उधरेउ तेहि काला

शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणों से युक्त भरतजी की बुद्धिरूपी पृथ्वी हर ली। उस समय [illegible] भरत के ज्ञानरूपी बड़े भारी वाराह ने बिना परिश्रम ही उस पृथ्वी को उबार लिया।

करि प्रणाम सबकहँ कर जोरी * राम राउ गुरु साधु निहोरी
क्षमब आजु अति अनुचित मोरा * कहहुँ बदन मृदु बचन कठोरा

सबको हाथ जोड़ प्रणामकर राम, राजा जनक, गुरु और साधुओं को मनाकर भरतजी बोले कि आज मेरा यह बड़ा ही अनुचित काम या ढिठाई क्षमा कीजियेगा; क्योंकि मैं इस समय कोमल मुख से कठोर वचन कहता हूँ।

हृदय सुमिरि शारदा सुहाई * मानसते मुख पंकज आई
विमल विवेक धर्मनयशाली * भरत भारती मंजु मराली

हृदय में सुहावनी सरस्वती का स्मरण करते ही मनरूपी मानसरोवर से निकलकर निर्मल ज्ञान, धर्म और नीति से युक्त भरत की वाणीरूप हंसिनी मुखकमल में विराजमान हुई।

निरखि विवेक विलोचननि, शिथिल सनेह समाज।
करि प्रणाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज॥

स्नेह से शिथिल सभा को भरत ने ज्ञान के नेत्रों से निहारा। फिर प्रणाम करके सीतासहित राम का स्मरणकर भरतजी बोले—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी * पूज्य परमहित अन्तरयामी
सरल सुसाहिब शीलनिधानू * प्रणतपाल सर्वज्ञ सुजानू

हे प्रभो, मेरे पिता, माता, मित्र, गुरु, स्वामी, पूज्य और परम हितू सब आप ही हैं। आप अन्तर्यामी हैं। सरल स्वामी, शील के निधान, दीनों के रक्षक तथा सब जाननेवाले और चतुर हैं।

समरथ शरणागत हितकारी * गुणगाहक अवगुण अघहारी
स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँई * मोहिसमान मैं स्वामि दोहाई

समर्थ, शरणागतजनों के हितकारक, गुणों के ग्राहक और पापों के नाशक स्वामी आपके समान आप ही हैं। और स्वामी का द्रोही सेवक भी अपने समान मैं ही हूँ।

प्रभु पितुबचन मोहवश पेली * आयउँ इहाँ समाज सकेली
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू * अमिय सजीवन माहुर मीचू

मोहवश आपके और पिता के वचन टालकर मैं यहाँ समाज बटोरकर आया हूँ। संसार में अच्छा-बुरा, ऊँच-नीच, अमृत-सजीवन, विष और मौत, सभी कुछ है।

राम रजाय मेटि मनमाहीं * देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई * प्रभु मानी सनेह सेवकाई

इनमें से जो आपकी इच्छा या आज्ञा को मन से भी मेटता हो, ऐसा कोई कहीं देखा-सुना नहीं। सो मैंने तो सब भाँति ढिठाई की और आपने उसे स्नेह से सेवकाई माना।

दो० कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भे भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँओर॥

हे नाथ, अपनी कृपा और भलाई से आपने मेरा भला किया, जिससे मेरे दोष भी भूषण के समान हो गये तथा चारों ओर मेरा सुन्दर सुयश फैल गया।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई * जगतविदित निगमागम गाई
क्रूर कुटिल खल कुमतिकलंकी * नीच निशील निरीश निशंकी

आपकी रीति, सुन्दर स्वभाव और वाणी की बड़ाई संसार में विदित है और उसे वेद-शास्त्रों ने गाया है। क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलंकी, नीच, कुशील, नास्तिक और परलोक की कोई शंका न रखनेवाला

तेउ सुनि शरण सामुहे आये * सुकृत प्रणाम किये अपनाये
देखि दोष कबहुँ न उर आने * सुनि गुण साधु समाज बखाने

भी आपकी महिमा सुन और सामने होकर शरण में आया तो एक ही बार प्रणाम करने से आपने उसे अपना लिया। आपने और के दोष देखकर भी कभी मन में न लाये; हाँ, गुण सुनकर साधुओं की सभा में अवश्य कहे।

को साहिब सेवकहि निवाजी * आपु समाज साज सब साजी
निजकरतूतिनसमुझिय सपने * सेवक सकुच शोच उर अपने

अपनी ही भाँति सब साज साजकर कौन स्वामी सेवक के ऊपर दया करता है? अपनी करतूत आप स्वप्न में भी नहीं समझते और मन में सेवक के संकोच का सोच करते हैं।

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी * भुजा उठाइ कहौं प्रण रोपी
पशु नाचत शुक पाठप्रवीना * गुणगति नट पाठक आधीना

सो ऐसा स्वामी दूसरा कोई भी नहीं है, यह भुजा उठाकर और प्रतिज्ञा करके मैं कहता हूँ। पशु नाचते और तोते पढ़ने में चतुर होते हैं। इनमें से पशु का नाचना नट के और पढ़ना पढ़ानेवाले के अधीन है।



त्यों सुधारि सनमानिजन, किये साधु शिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै, बिरदावलि बरजोर॥

वैसे ही सुधार और सम्मानकर आपने मुझ दास को सज्जनों का शिरोमणि बनाया। दयालु आपके बिना अपनी विरदावली को वरजोरी कौन पालेगा?

शोक सनेह कि बाल सुभाये * आयउँ राउ रजायसु बाँये
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा * सबहिं भाँति भल मानेहु मोरा

सोच, स्नेह और लड़कपन से आपकी आज्ञा को नाँघकर मैं यहाँ आया। हे दयालु, तब भी आपने अपनी ओर देखकर सब प्रकार मेरा भला माना।

देखेउँ पाँय सुमङ्गल मूला * जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू * बड़ी चूक साहिब अनुरागू

मंगलमूल आपके चरण देखे और स्वामी को सहज ही अपने अनुकूल जाना। मैंने समाज में अपना बड़ा भाग्य देखा; क्योंकि बड़ी चूक होने पर भी आपका प्रेम जाना।

कृपा अनुग्रह अम्बु अघाई * कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई
राखा मोर दुलार गोसाँई * अपने शील स्वभाव भलाई

कृपा और अनुग्रह के जल से मैं अघा गया। दयानिधि, आपने सब अधिक ही किया। हे स्वामी, आपने अपने ही शील, स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा है।

नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई * स्वामि समाज सँकोच बिहाई
अविनयविनय यथारुचि बानी * क्षमिय देव अतिआरत जानी

हे नाथ, आपका और समाज का संकोच छोड़कर मैंने बहुत ढिठाई की। हे देव, अपनी रुचि के अनुकूल मैंने जो अविनय या विनय की वाणी कही है, उसे मुझे बहुत दुखी जानकर क्षमा कीजिए।



सुहृद सुजान सुसाहिबहिं, बहुत कहत बड़िखोरि।
आयसु देइय देव अब, सबहि सुधारिय मोरि॥

हितैषी, चतुर और अच्छे स्वामी से बहुत कहने में बड़ा दोष है। हे देव, अब आज्ञा दीजिए और मेरा सब कुछ सुधार लीजिए।

प्रभु पद पद्म पराग दुहाई * सत्य सुकृत सुख सींम सुहाई
सो करि कहौं हिये अपने की * रुचि जागत सोवत सपने की

आपके चरण-कमल की रज सत्य, पुण्य और सुख की सुन्दर मर्यादा है। उसकी सौगन्द खाकर अपने मन की बात कहता हूँ कि जो रुचि जागते, सोते और स्वप्न की है—

सहज सनेह स्वामि सेवकाई * स्वारथ छल फल चारि बिहाई

भरतजीवन जगमाहीं * शील सनेह सराहत जाहीं

मुनि को प्रणाम कर और भरतजी को सिर नवाकर सब विदा होकर घर गये। भरत का जीवन संसार में धन्य है, इस प्रकार कहते और शील व स्नेह सराहते चले जाते हैं।

कहहिं परस्पर भा बड़ काजू * सकल चलनकर साजहिं साजू
जेहि राखहिं घर की रखवारी * सो जानै जनु गरदन मारी

सब चलने की तैयारी करते हैं और आपस में कहते हैं कि यह बड़ा काम हुआ। जिसको कोई घर की रखवाली के लिए छोड़ जाना चाहता है, वह जानता है कि मानो उसकी गर्दन मारी गई।

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू * को न चहै जग जीवनलाहू
केहि न भाव सिय लक्ष्मण रामू * सब कहँ प्रिय हिय सदा सकामू

कोई कहता है कि किसी को रहने के लिए न कहो; क्योंकि संसार में कौन जीवन-लाभ नहीं चाहता? सीता, राम और लक्ष्मण किसको नहीं अच्छे लगते? वे तो सबको हृदय से प्यारे हैं और सबको सदैव उनके दर्शन की चाह रहती है।


जरहु सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सन्मुख होत जो रामपद, करैं न सहज सहाइ॥

वह सम्पदा, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई जल जाय, जो कि रामजी के चरणों के सामने होने में स्वभाव ही से सहायता नहीं करता।

घर घर साजहिं वाहन नाना * हर्षहिं हृदय प्रभात पयाना
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू * नगर बाजि गज भवन भँडारू

घर-घर अनेक प्रकार की सवारियाँ साजी जाती हैं। सब मन में प्रसन्न होते हैं कि सवेरे चलना होगा। भरतजी ने घर में जाकर विचार किया कि अयोध्या, घोड़े, हाथी, घर और कोष—

सम्पति सब रघुपति की आही * जो बिनु यतन चलौं तजि ताही
तौ परिणाम न मोरि भलाई * पापशिरोमणि स्वामिद्रोहाई

यह सब सम्पदा रामजी की है। इससे जो उसकी रक्षा किये बिना उसको छोड़ जाऊँ तो अन्त में मेरी भलाई न होगी; किन्तु पापियों का शिरमौर होकर स्वामी का द्रोही हूँगा।

करहि स्वामिहित सेवक सोई * दूषण कोटि देइ किन कोई
अस विचारि शुचिसेवक बोले * जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले

जो स्वामी का हित करे वही सेवक है, चाहे कोई करोड़ों दोष दे। ऐसा विचारकर भरत ने पवित्र सेवकों को बुलाया, जो कि स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं हटे थे।

सुरमाया सब लोग बिमोहे ॥ रामप्रेम अतिशय न बिछोहे

पहले इन्द्र ने कुबुद्धि करके कपट किया; फिर वह उचाट सबके सिर डाल दिया। देवताओं की माया से सब लोग मोहित हो गये, जो कि रामजी के प्रेम से उनका वियोग नहीं चाहते थे।

भे उचाट बश मन थिर नाहीं ॥ क्षणबनरुचिक्षणसदन सोहाहीं

दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी ॥ सरित सिन्धुसङ्गम जिमि बारी

सब लोग उचाट के वश हुए, उनका मन ठिकाने नहीं रहा; कभी वन में रुचि रहती है और कभी घर अच्छा लगता है। दो प्रकार की मन की गति से प्रजा दुखी है, जैसे नदी और समुद्र के संगम से जल चंचल होता है।

दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं ॥ एक एक सन मर्म न कहहीं

लखि हियहँसि कह कृपानिधानू ॥ सरिस श्वान मघवान जवानू

सब दुचित्ते हैं, इससे कहीं प्रसन्नता नहीं पाते और एक दूसरे से भेद की बात नहीं कहते। यह दशा देख हृदय में हँसकर दयानिधि राम मन में कहने लगे कि स्वभाव में कुत्ता, इन्द्र और युवा बराबर हैं।



भरत जनकमुनिगण सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, यथायोग जन पाइ॥

भरत, जनक, मुनिसमूह, मन्त्री, ज्ञानी और साधुओं को छोड़कर यथायोग्य जनों को पाकर सब पर देवताओं की माया लग गई।

कृपासिन्धु लखि लोग दुखारे ॥ निज सनेह सुरपति छल भारे

सभा राउ गुरु महिसुर मन्त्री ॥ भरत भक्ति सबकी मति यन्त्री

दयासिन्धु रामजी ने लोगों को अपने प्रेम तथा इन्द्र के भारी छल से दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्री, सबकी बुद्धि को भरत की भक्ति ने बाँध दिया।

रामहि चितवत चित्र लिखेसे ॥ सकुचत बोलत बचन सिखेसे

भरत प्रीति गति बिमल बड़ाई ॥ सुनत सुखद बरणत कठिनाई

चित्र में लिखे की भाँति वे सब रामजी को देखते हैं और सकुचकर सिखाये से वचन बोलते हैं। भरतजी की प्रीति की गति और निर्मल बड़ाई सुनने में सुख देता है; परन्तु कहने में कठिन है।

जासु बिलोकि भक्ति लवलेशू ॥ प्रेममगन मुनिगण मिथिलेशू

महिमा तासु कहै किमि तुलसी ॥ भक्तिप्रभाव सुमति हियहुलसी

जिनकी भक्ति का थोड़ा-सा अंश देखकर मुनि और जनकजी स्नेह में मग्न हो गये, उन भरत की महिमा तुलसीदास कैसे कहे? परन्तु भक्ति के प्रभाव से उत्तम बुद्धि हृदय में उमँगती है।

वन सियराम समुझिमन माहीं * सानुज भरत पयादेहि जाहीं

रामजी के दर्शनों के लिए सब स्त्री-पुरुष, जल देखकर हथिनी और हाथियों के समान चले। जानकीजी और रामजी को वनमें समझकर भाई शत्रुघ्न-समेत भरतजी पैदल ही जाते हैं।

देखि सनेह लोग अनुरागे * उतरि चले हयगजरथ त्यागे
जाइ समीप राखि निज डोली * राममातु मृदुवाणी बोली

यह स्नेह देख लोग प्रेम में मग्न हुए और घोड़ा, हाथी, रथों को छोड़ उतरकर चलने लगे। अपनी पालकी भरतजी के पास रखकर कौशल्याजी कोमल वाणी से बोलीं।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी * होइहि प्रिय परिवार दुखारी
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू * सकल शोककृश नहिं मगयोगू

हे पुत्र, माता बलिहारी जाती है, रथ पर चढ़ो। तुम्हारे पैदल चलने से प्यारा परिवार दुखी होगा। तुम्हारे पैदल चलते सब लोग पैदल ही चलेंगे। सब शोक से दुखी हैं, पैदल रास्ता चलने के लायक नहीं हैं।

शिरधरि वचन चरण शिरनाई * रथचढ़ि चलत भये दोउ भाई
तमसा प्रथम दिवस करि वासू * दूसर गोमतितीर निवासू

उनके वचन माथे पर धर और उनके चरणों में शीश नवाकर रथ पर चढ़ दोनों भा चले। पहले दिन तमसा नदी के तीर निवास किया और दूसरे दिन गोमती के तट पर रहे



पयअहार फलअशन इक, निशिभोजनइकलोग।
करत रामहित नेमव्रत, परिहरि भूषणभोग॥

कोई दूध का आहार और कोई फलभोजन करते थे। कोई लोग रात को खाते और भूषण-वस्त्र एवं सुख-भोग छोड़कर राम के लिए नियम-व्रत करते थे।

सईतीर बसि चले बिहाने * शृङ्गवेरपुर सब नि...
समाचार सब सुने निषादा * हृदय विचार करै सविषाद

सई नदी के किनारे बसकर सवेरे चले और सब लोग शृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे यह सब हाल निषाद ने सुना, तब दुःख-समेत हृदय में विचार करने लगा—

कारण कवन भरत वन जाहीं * है कछु कपटभाव मनमा
जोपै जिय न होति कुटिलाई * तौ कत लीन्ह संग कटका

क्या कारण है, जो भरत वन को जाते हैं? कुछ छल का भाव मन में है क्या? ५ जी में कुटिलता न होती तो साथ सेना क्यों लेते?

जानहिं सानुज रामहिं मारी * करहुँ अकंटक राज सुखा

जानहु तात तरणिकुल रीती * सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीती
समय समाज लाज गुरुजनकी * उदासीन हित अनहित मनकी

हे तात, सूर्यवंश की रीति तुम जानते हो और सत्यप्रतिज्ञ पिता की कीर्ति में जैसी प्रीति थी, वह भी जानते हो। समय, सभा और बड़े जनों की लाज तथा सम, मित्र और शत्रु के मन की बात तुम पहचानते हो।

तुम्हहिं विदित सबही कर कर्मू * आपन मोर परमहित धर्मू
मोहिं सबभाँति भरोस तुम्हारा * तदपि कहौं अवसर अनुसारा

तुमको सभी के मन का हाल मालूम है। तुम अपना और मेरा हित और धर्म भी जानते हो। मुझे सब प्रकार तुम्हारा भरोसा है, तो भी समय के अनुसार कहता हूँ।

तात तात बिन बात हमारी * केवल कुलगुरु कृपा सँभारी
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू * हमहिं सहित सब होत दुखारू

हे तात, पिताजी के बिना हमारी सब बात केवल कुलगुरु वशिष्ठजी की दया ने सँभाली है। नहीं तो प्रजा, पुरवासी और परिवार हमसमेत दुखी हो जाता।

जो बिन अवसर अथव दिनेशू * जग केहि कहहु न होइ कलेशू
तस उतपात तात विधि कीन्हा * मुनिमिथिलेश राखिसब लीन्हा

जो बिना समय सूर्य अस्त हो जायँ तो संसार में किसे दुःख न होगा? हे तात, विधाता ने वैसा ही अनर्थ किया था; परन्तु वशिष्ठ मुनि और जनकजी ने सबको बचा लिया।



राजकाज सब लाज पति, धर्म धरणि धन धाम।
गुरुप्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिणाम॥

राज्य के सब काम, लाज, मर्यादा, धर्म, पृथ्वी, धन और गृह सबको गुरु का प्रताप पालेगा और परिणाम अच्छा होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा * घर बन गुरुप्रसाद रखवारा
मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू * सकल धर्म धरणीधर शेषू

समाजसमेत तुम्हारी और हमारी घर और वन में रक्षा करनेवाला गुरु की कृपा ही है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा मानना ही सब धर्मरूप पृथ्वी को धारण करनेवाला शेष है।

सो तुम करहु करावहु मोहू * तात तरणिकुलपालक होहू
साधन एक सकल सिधि देनी * कीरति सुगति भूतिमय बेनी

हे तात, वही पिता की आज्ञा मानो और मुझसे पालन कराओ तथा सूर्यवंश के पालक होओ। यही एक उपाय (पिता की आज्ञा मानना) सब सिद्धि देनेवाला तथा यश, सुगति और ऐश्वर्य की त्रिवेणी है।



विगतविषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥

निषादों के राजा ने विषादरहित हो सबका उत्साह बढ़ाकर, रामजी का स्मरण कर शीघ्रता से अपना तरकस, धनुष और कवच माँगा।

बेगिहि भाइ सजहु संजोऊ * सुनि रजाइ कदराहु न कोउ
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहर्षा * एकहिं एक बढ़ावहिं कर्षा

निषाद कहने लगा—भाइयो, शीघ्र ही युद्ध का साज तैयार करो, आज्ञा पा कोई डरे नहीं। 'हे स्वामी, बहुत अच्छा' ऐसा सब हर्ष से कहते हैं और एक दूसरे का उत्साह बढ़ाते हैं।

चलेउ निषाद जुहारि जुहारी * शूर सकल रण रुचै सुरारी
सुमिरि रामपदपंकज पनहीं * भाथहिं बाँधि चढ़ावहिं धनुहीं

सब निषाद को जुहारकर चले। सब शूर हैं, जिनको युद्ध में रार अच्छी लगती है, वे लोग रामजी के चरणकमलों की पनहियों का स्मरण कर तरकस बाँध धनुष चढ़ाते हैं।

अँगुरी पहिरि कूँड़ि शिर धरहीं * फरसा बाँस शेलसम करहीं
एक कुशल अतिओड़न खाँड़े * कूदहिं गगन मनहु छितिछाँड़े

मोजा, दस्ताना और झिलम पहनकर माथे पर टोप धरते हैं और फरसा, बाँस, शेल आदि सब शस्त्र सुधारते हैं। कोई ढाल-तलवार चलाने में बड़े चतुर हैं, मानो पृथ्वी को छोड़कर आकाश को उछलते हैं।

निज निज साज समाज बनाई * गुह राउतहिं जुहारहिं जाई
देखि सुभट सब लायक जाने * लै लै नाम सकल सनमाने

सब निषाद अपना-अपना साज-सामान साजकर निषादों के राजा को जुहार करते हैं। निषाद ने सब योद्धाओं को देख लड़ने के लायक जाना और नाम ले-लेकर सबका आदर किया—



भाइहु लावहु धोख जनि, आज काज बड़ मोहु।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहु॥

और कहा—हे भाइयो, धोखे में मत रहो। आज मुझे बड़ा काम करना है। यह सुनकर सब योद्धा क्रोध के साथ बोले कि हे सुभट, वीर, अधीर न होओ।

रामप्रताप नाथ बल तोरे * करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरे
जियत पाँव नहिं पाछे धरहीं * रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं

हे नाथ, रामजी के प्रताप और तुम्हारे बल से हम लोग भरत की सेना में एक भी


देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुशासन पाइ।
आने सब तीरथसलिल, तेहिकहँ काह रजाइ॥

हे देव, गुरु की आज्ञा से आपके अभिषेक के लिए मैं सब तीर्थों का जल लाया हूँ; उसके लिए क्या आज्ञा है?

एक मनोरथ बड़ मनमाहीं * सभय सँकोच जात कहि नाहीं
कहहु तात प्रभु आयसु पाई * बोले बानि सनेह सुहाई

मेरे मन में एक मनोरथ है, जो डर और संकोच से कहा नहीं जाता। 'भाई, कहो' यह रामजी की आज्ञा पाकर भरतजी स्नेह से सोहावनी वाणी बोले—

चित्रकूट मुनिथल तीरथबन * खग मृगसरसरिनिर्झरगिरिगन
प्रभुपद अङ्कित अवनि विशेखी * आयसु होइ तो आवहुँ देखी

चित्रकूट के मुनियों के स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, तालाब, नदी, झरने और पर्वत तथा जो पृथ्वी विशेषकर आपके चरणों से चिह्नित है, उसे यदि आज्ञा हो तो देख आऊँ।

अवशि अत्रि आयसु अनुसरहू * तात विगतभय कानन चरहू
मुनिप्रसाद बन मंगलदाता * पावन परम सुहावन भ्राता

रामजी बोले—हे तात, अत्रि मुनि की आज्ञा के अनुसार बिना किसी भय के अवश्य वन में घूम आओ। भाई, मुनि की कृपा से यह वन मंगलदायक, पवित्र करनेवाला और बड़ा सुन्दर है।

ऋषिनायक जहँ आयसु देहीं * राखेहु तीरथजल थल तेहीं
सुनि प्रभुवचन भरत सुखपावा * मुनिपदकमल मुदित शिरनावा

ऋषियों के स्वामी अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वहीं तीर्थों का जल रखना। रामजी के वचन सुन भरतजी ने सुख पाया और प्रसन्न होकर मुनि के चरणकमलों में सिर नवाया।


भरतरामसंवाद सुनि, सकल सुमङ्गल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, हर्षित वर्षहिं फूल॥

सब मंगलों की जड़ भरत और रामजी की यह बातचीत सुनकर स्वार्थी देवता सूर्यवंश की सराहना करते हुए प्रसन्न हो फूल बरसाते हैं।

धन्य भरत जय राम गोसाँई * कहत देव हर्षित बरिआई
सुनि मिथिलेश सभा सबकाहू * भरतवचन सुनि भयउ उछाहू

भरतजी धन्य हैं। स्वामी रामजी की जय हो, यह प्रसन्न हो सब देवता कहते हैं। मुनि, जनकजी और सभा में सबको भरत के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

भरत राम गुणग्राम सनेहू * पुलकि प्रशंसत राउ विदेहू

चाण्डाल, नट, खस अर्थात् पर्वतों पर रहनेवाले, म्लेच्छ और जड़ जातिवाले कोल, भील इत्यादि नीच लोग भी राम कहते ही परम पवित्र हो जाते हैं—यह संसार में प्रसिद्ध है।

नहिं अचरज युगयुग चलिआई * केहि न दीन्ह रघुवीर बड़ाई
रामनाममहिमा सुर कहहीं * सुनिसुनिअवधलोगसुखलहहीं

आश्चय की बात नहीं है, युग-युग से यह चली आई है कि रामजी ने किसको बड़ाई नहीं दी। इस प्रकार देवता लोग रामनाम की महिमा कहते हैं। उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पाते हैं।

रामसखहिं मिलि भरतसप्रेमा * पूछी कुशल सुमंगल क्षेमा
देखि भरतकर शील सनेहू * भा निषाद तेहि समय विदेहू

भरतजी ने राम के मित्र निषाद से प्रेमसमेत मिलकर उसका कुशल-क्षेम और मंगल पूछा। उस समय भरतजी का शील और स्नेह देखकर निषाद विदेह हो गया, अर्थात् उसे देह की भी सुध न रही।

सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा * भरतहिं चितवत इकटक ठाढ़ा
धरि धीरज पद वन्दि बहोरी * विनय सप्रेम करत करजोरी

सकुच और स्नेह से मन में आनन्द बढ़ा और वह खड़ा होकर भरत को एकटक निहारने लगा। फिर धीरज धर चरणों को प्रणाम कर हाथ जोड़ प्रेमसमेत विनती करने लगा—

कुशलमूल पदपंकज देखी * मैं तिहुँकाल कुशल निजलेखी
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे * सहित कोटिकुल मंगल मोरे

वह बोला—कुशल की जड़ आपके चरणकमल देखकर मैं तीनों कालों में अपना कुशल समझता हूँ। हे प्रभो, इस समय तुम्हारी परम कृपा से मेरा और मेरी करोड़ों पीढ़ियों का मंगल ही मंगल है।



समुझि मोरि करतूतिकुल, प्रभुमहिमा जिय जोइ।
जो न भजै रघुवीरपद, जग विधिवञ्चित सोइ॥

मेरी करतूत, वंश समझ तथा रामजी की महिमा अपने जी में विचारकर जो मनुष्य रघुनाथजी के चरणों को नहीं भजता, उसे संसार में ब्रह्मा ने छला है।

कपटी कायर कुमति कुजाती * लोक वेद बाहर सब भाँती
राम कीन्ह आपन जबहीं ते * भयउँ भुवनभूषण तबहीं ते

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति होकर सब प्रकार लोक और वेद से बाहर—अछूत हूँ। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया, तभी से मैं संसार का भूषण हो गया।

देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई * मिलेउ बहोरि लषण लघुभाई

प्रेम सनेम निमज्जहिं प्राणी * होइहिं विमल कर्म मन वाणी

बड़े पवित्र तीर्थों के जल के मिलाप से अब इसे लोग 'भरतकूप' कहेंगे। जो मनुष्य प्रेम और नियम से इसमें स्नान करेंगे, वे कर्म, मन और वचन से निर्मल हो जायँगे।



कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ।
अत्रि सुनायउ रघुवरहिं, तीरथ पुण्य प्रभाउ॥

कुएँ की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गये, जहाँ रघुनाथ रामचन्द्रजी थे। तब अत्रि मुनि ने रामजी को तीर्थ का पुण्यप्रभाव सुनाया।

कहत धर्म इतिहास सप्रीती * भयउ भोर निशि सो सुख बीती
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई * राम अत्रि गुरु आयसु पाई

प्रेमसमेत धर्मकथाएँ कहते हुए सवेरा हो गया—वह रात सुख से बीत गई। नित्यकर्म करके शत्रुघ्न और भरत दोनों भाई राम, अत्रि और गुरु की आज्ञा पाकर—

सहित समाज साज सब सादे * चले राम बन अटन पयादे
कोमल चरण चलत बिन पनहीं * भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं

समाजसमेत सब सादे सामान से पैदल रामजी के वन में घूमने निकले। बिना पनही कोमल चरणों से चलते हैं, इससे मानो मन में सकुचकर पृथ्वी कोमल हो गई।

कुश कण्टक काँकरी कुराईं * कटुक कठोर कुवस्तु दुराईं
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे * बहति बयारि त्रिविध सुखलीन्हे

कुश, काँटे, कंकड़, गढ़े और पैरों को कष्ट देनेवाली कड़वी, कठोर कुवस्तुएँ छिपाकर पृथ्वी ने मार्ग को सुन्दर कोमल बना दिया। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं * बिटप फूलि फल तृण मृदुताहीं
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी * सेवहिं सकल रामप्रिय जानी

भरत को रामजी के प्यारे जान देवता फूल बरसाकर, मेघ छाया करके, वृक्ष फल-फूल से और तृण कोमलता से, और मृग-पक्षी आदि सुन्दर वाणी बोलकर उनकी सेवा करते हैं।



सुलभ सिद्ध सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्राणप्रिय भरत कहँ, यह न होइ बड़ि बात॥

जम्हाई लेते समय राम कहनेवाले साधारण पुरुषों को भी सब सिद्धियाँ सहज ही में मिल जाती हैं। फिर रामजी के प्राणप्रिय भरत को ऐसा सुगम मार्ग हो जाना कौन-सी बड़ी बात है?

यहिविधि भरत फिरत बनमाहीं * नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं
पुण्य जलाशय भूमि बिभागा * खगमृगतरुतृण गिरिबनबागा

इस प्रकार भरतजी वन में घूमते हैं, जिनका नियम और प्रेम देखकर मुनि भी सकुचते हैं। पवित्र जलाशय, भूखंड, पक्षी, मृग, वृक्ष, तृण, पर्वत, वन और बाग—

चारु बिचित्र पवित्र बिशेखी * बूझत भरत दिव्यगति देखी
सुनि मन मुदित कहत ऋषिराऊ * हेतु नाम गुण पुण्य प्रभाऊ

तथा सुन्दर, विचित्र और विशेष पवित्र स्थानों को देखकर भरतजी उनके बारे में अत्रि मुनि से पूछते हैं। ऋषिराज अत्रि भी मन में प्रसन्न हो उनके पवित्र होने के कारण, नाम, गुण और पुण्यप्रभाव को कहते हैं।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रणामा * कतहुँ विलोकत मन अभिरामा
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई * सुमिरत सीयसहित दोउ भाई

भरतजी कहीं स्नान और कहीं प्रणाम करते हैं। कहीं की केवल मनोहर शोभा देखकर प्रसन्न होते हैं। कहीं मुनि की आज्ञा पाकर बैठते और सीतासमेत राम-लक्ष्मण का स्मरण करते हैं।

देखि स्वभाव सनेह सुसेवा * देहिं अशीश मुदितमन देवा
फिरहिं गये दिन पहर अढ़ाई * प्रभुपदकमल विलोकहिं आई

स्वभाव, स्नेह और सेवा देखकर मन में प्रसन्न हो देवता आशीर्वाद देते हैं। भरत और शत्रुघ्न ढाई पहर दिन चढ़े लौटते और रामजी के चरणकमलों के दर्शन करते हैं।

दो० देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुयश, गयो दिवस भइ साँझ॥

पाँच दिन में सब स्थान और तीर्थ भरतजी ने देख लिये। श्रीविष्णुजी और शिवजी के उत्तम यश कहते-सुनते दिन बीता और साँझ हुई।

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू * भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू
भलदिन आजु जानि मनमाहीं * राम कृपालु कहत सकुचाहीं

सबेरे नहाकर सब सभा जुटी। भरत, वशिष्ठ और जनकजी आये। आज अच्छा दिन है, ऐसा मन में जानकर भी दयालु रामजी विदा के लिए कहते सकुचते हैं।

गुरुनृप भरत सभा अवलोकी * सकुचि राम फिरि अवनि विलोकी
शील सराहि सभा सब शोची * कहुँ न रामसम स्वामि सँकोची

गुरु वशिष्ठ, भरत और सब सभा को देख रामजी सकुचे और पृथ्वी की ओर देखने लगे। सब समाज रामजी का शील सराहकर सोचती है कि रामजी के समान कोई स्वामी संकोची नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी * उठि सप्रेम धरि धीर विशेखी
करि दण्डवत कहत करजोरी * राखी नाथ सकल रुचि मोरी

मोहविपिनघनदहनकृशानू * सन्तसरोरुहकाननभानू
निशिचरकरिवरूथमृगराजं * त्रातु सदा नो भवखगबाजं

मोहरूप घने वन के लिए अग्नि, सन्तरूप कमलवन के सूर्य, निशाचररूप हाथियों के झुण्ड को मारनेवाले सिंह, और संसार के जन्म-मरणरूपी पक्षी के लिए बाज के समान आप सदैव हमारी रक्षा करें।

अरुणनयनराजीवसुवेशं * सीतानयनचकोरनिशेशं
हरहृदमानसराजमरालं * नौमि राम. उरबाहुविशालं

लाल कमल-से नेत्रोंवाले, सुन्दर वेष बनाये, सीता के नेत्ररूप चकोरों के चन्द्रमा और शिवजी के हृदयरूप मानसरोवर के हंस रामजी, विशाल हृदय और लम्बी भुजाओंवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

संशयसर्पग्रसनउरगादं * शमनसकलसन्तापविषादं
भयभञ्जन रञ्जनसूरयूथं * त्रातु सदा नः कृपावरूथं

सर्परूप संदेहों को निगलने के लिए गरुड़, सब प्रकार के सन्ताप और विषाद मिटानेवाले, भयभञ्जन, देवताओं को आनन्ददायक और दया की खान आप सदैव हमारी रक्षा करें।

निर्गुणसगुणविषमसमरूपं * ज्ञानगिरागोतीत अनूपं
अमल अखिल अनवद्य अपारं * नौमि राम भञ्जनमहिभारं

निर्गुण, सगुण, विषम और सम रूपवाले तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे अनूप हे रामजी, निर्मल, अखंड, निर्दोष और अनन्त होकर पृथ्वी का भार उतारनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तकल्पपादपआरामं * तर्जनक्रोधलोभमदकामं
अतिनागर भवसागरसेतुं * त्रातु सदा दिनकरकुलकेतुं

भक्तों के लिए कल्पवृक्षों के बाग तथा क्रोध, लोभ, गर्व और काम के नाशक, बड़े चतुर, संसारसमुद्र के सेतु और सूर्यवंश की पताका आप सदैव मेरी रक्षा करें।

अतुलितभुजप्रतापबलधामं * कलिमलविपुलविभञ्जननामं
धर्मवर्म नर्मद गुणग्रामं * सन्तत सन्तनोतु मम रामं

अथाह प्रताप से परिपूर्ण भुजाओंवाले, पराक्रम के धाम, आपका नाम कलियुग के मल को धोनेवाला है। हे धर्म के कवचरूप, कल्याणदायक, गुणधाम रामजी, आप सदैव मेरे कल्याण को बढ़ावें।

यदपि विरज व्यापक अविनासी * सबके हृदय निरन्तरवासी
तदपि अनुज सिय सहितखरारी * बसहु मनसि मम काननचारी

यद्यपि आप मायारहित, सर्वव्यापी और अविनाशी होकर सदा सबके हृदय में रहते

दीनबन्धु और चतुर रामजी भाई के दीन और छलहीन वचन सुनकर देश, काल और समय के अनुसार वचन बोले—

तात तुम्हार मोर परिजन की * चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर बन की
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेशू * हमहिं तुमहिं सपनेहु न कलेशू

हे तात, तुम्हारी, हमारी और कुटुम्बियों की चिन्ता गुरु वशिष्ठ और राजा जनक करेंगे। जब माथे पर गुरु वशिष्ठ मुनि और जनकजी हैं, तब हमें-तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ * स्वारथ सुयश धर्म परमारथ
पितुआयसु पालिय दोउभाई * लोक वेद भल भूप भलाई

हमारा-तुम्हारा बड़ा पुरुषार्थ, स्वार्थ, उत्तम यश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि दोनों भाई पिता की आज्ञा को पालें। इसी से लोक और वेद में अच्छाई और राजा की भी भलाई है।

गुरु पितु मातु स्वामिसिखपाले * चलत सुगम पगपरत न खाले
अस विचारि सब शोचविहाई * पालहु अवध अवधि भरिजाई

गुरु, पिता, माता और स्वामी की आज्ञा पालने तथा अच्छी राह चलने से पैर गढ़े में नहीं पड़ता। ऐसा विचारकर सब सोच छोड़ो और जाकर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो।

देश कोश पुरजन परिवारू * गुरुपद रजहि लाग छरभारू
तुम मुनि मातु सचिव सिखमानी * पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी

देश, कोश और नगरवासियों का भार गुरुजी के चरणों की रज के प्रताप से निबहेगा। मुनि, माता और मन्त्रियों का सिखावन मानकर पृथ्वी, प्रजा और राजधानी को पालना।

दो० मुखिया मुखसों चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि "मुखिया मुख-सा होना चाहिए कि खाने-पीने के लिए तो एक ही होता है; परन्तु विवेक के साथ सब अंगों को पालता और पुष्ट करता है।"

राजधर्म सरबस इतनोई * जिमि मनमाहँ मनोरथ गोई
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहुभाँती * बिन अधार मन तोष न शाँती

राजधर्म का सारांश बस इतना ही है। मन में मनोरथ की भाँति इस दोहे में प्रजापालन छिपा है। बहुत प्रकार रामजी ने भाई भरत को समझाया। परन्तु सहारे के बिना उनके मन में सन्तोष और शान्ति नहीं होती।

भरत शील प्रभु सचिव समाजू * सकुच सनेह विवश रघुराजू
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं * सादर भरत शीश धरि लीन्हीं

भरत के शील, गुरु, मन्त्री तथा समाज की उपस्थिति के कारण रामजी संकोच एवं स्नेह के वश हैं। रामजी ने कृपाकर भरत को अपनी खड़ाऊँ दीं। उनको आदरसमेत भरत ने माथे पर रख लिया।

चरण पीठ करुणानिधान के * जनु युग यामिक प्रजा प्रान के
सम्पुट भरत सनेह रतन के * आखर युग जनु जीव यतन के

दयानिधान रामजी की दोनों पादुकाएँ मानो प्रजा के प्राणों के दो पहरुए हैं। रत्न-रूपी भरतजी का स्नेह रखने के लिए मानो डिब्बे के दो टुकड़े हैं। जीव के मोक्ष के लिए मानो रकार-मकार दो अक्षर हैं।

कुल कपाट कर कुशल करमके * विमल नयन सेवा सुधरमके
भरत मुदित अवलम्ब लहेते * अस सुख जस सियराम रहेते

रघुवंश की रक्षा के लिए मानो दो किवाड़े हैं। उत्तम कर्म के मानो हाथ हैं तथा सेवाधर्म के दो निर्मल नेत्र हैं। अवलम्ब पाने से भरतजी प्रसन्न हुए और उन्हें ऐसा सुख हुआ, जैसा सीतारामजी के रहने से होता।



माँगेउ बिदा प्रणामकरि, राम लिये उरलाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ॥

भरत ने रामजी को प्रणामकर विदा माँगी। तब रामजी ने उनको हृदय से लगा लिया। उसी समय कुटिल इन्द्र ने कुसमय पाकर लोगों का मन वन से उचाट दिया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी * अवधिआश सब जीवन जीकी
नतरु लषण सियराम वियोगा * हहरि मरत सब लोग कुरोगा

वह कुचाल सबको अच्छी हुई, चौदह वर्ष की अवधि की आशा से सबका जीना हुआ। नहीं तो लक्ष्मण, सीता और रामजी के वियोगरूप कुरोग से सब लोग व्याकुल होकर मर जाते।

राम कृपा अवरेव सुधारी * विवुध धार भइ गुणद गोहारी
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो * रामप्रेमरस कहि न परत सो

रामजी की दया ने अवरेव (टेढ़ाई) को सुधार लिया। देवताओं की माया लाभ पहुँचानेवाली गोहार हो गई। रामजी भाई भरत से भुजाएँ भरकर मिलते हैं। रामजी के स्नेह का रस कहा नहीं जा सकता।

तन मन वचन उमँगि अनुरागा * धीरधुरन्धर धीरज त्यागा
वारिज लोचन मोचत वारी * देखि दशा सुरसभा दुखारी

उस समय तन, मन, वचन में प्रेम उमड़ आया और सर्वश्रेष्ठ धीर रामजी ने भी धीरज छोड़ दिया। कमल-सरीखे नेत्रों से जल गिर रहा है। यह दशा देख देवता दुखी हुए।

मुनिगण गुरुजन धीर जनकसे * ज्ञानअनल मन कसे कनकसे
जे विरञ्चि निरलेप उपाये * पद्मपत्र जिमि जग जल जाये

मुनि, गुरु लोग और जनक से ज्ञानी, जिन्होंने मनरूपी सोने को ज्ञान की अग्नि में तपाकर शुद्ध कर लिया है तथा जो ब्रह्मा की माया से वैसे ही अलग हैं, जैसे कमल का पत्ता जल से—



तेउ विलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भये मगन तन मन वचन, सहित विराग विचार॥

ये भी राम और भरत की अनूप व अपार प्रीति देख वैराग्य व विचारपूर्वक तन, मन, वचन से उसमें मग्न हो गये।

जहँ जनक गुरु गतिमति भोरी * प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी
बरणत रघुवर भरत वियोगू * सुनि कठोर कवि जानहिं लोगू

जहाँ जनक और वशिष्ठजी की मति और गति भुला गई, वहाँ साधारण मनुष्य की प्रीति कहने में बड़ा दोष होता है। राम और भरत के वियोग का वर्णन सुनकर लोग मुझे कठोर कवि जानेंगे।

सो सँकोचवश अकथ सुबानी * समय सनेह सुमिरि सकुचानी
भेंटि भरत रघुवर समुझाये * पुनि रिपुदमन हर्षि हियलाये

एक तो यह संकोच है, दूसरे प्रीति कहने योग्य नहीं है, इससे समय और प्रेम का स्मरण करके वाणी सकुचती है। रामजी ने भरत को मिलकर समझाया और प्रसन्न हो शत्रुघ्न को हृदय से लगाया।

सेवक सचिव भरत रुखपाई * निज निज काज लगे सब जाई
सुनि दारुण दुख दुहूँ समाजा * लगे चलन के साजन साजा

सेवक और मन्त्री लोग भरत का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में लगे। चलना सुनकर दोनों समाजों में बड़ा दुःख हुआ। सब चलने का साज सजने लगे।

प्रभु पद पद्म वन्दि दोउ भाई * चले शीश धरि राम रजाई
मुनि तापस वनदेव निहोरी * सब सनमानि बहोरि बहोरी

स्वामी रामजी के चरणकमलों में प्रणामकर दोनों भाई रामजी की आज्ञा माथे पर रखकर चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवों को निहोरकर बार-बार सबका आदर किया।



लषणहिं भेंटि प्रणामकरि, शिरधरि सियपदधूरि।
चले सप्रेम अशीश सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥

फिर भरतजी लछमण से मिले और सीताजी को प्रणाम किया तथा उनके चरणों की रज माथे पर धरकर सब प्रेमसमेत मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर चले।

सानुज राम नृपहिं शिरनाई * कीन्ह बहुत विधि विनय बड़ाई
देव दयावश बड़ दुख पायउ * सहितसमाज काननहिं आयउ

लक्ष्मणसमेत रामजी ने राजा जनक को माथा नवाकर बहुत प्रकार से विनय की और कहा—हे देव, दया के वश हो आपने बड़ा दुःख पाया, जो समाजसमेत वन में आये।

पुरपगु धारिय देइ अशीशा * कीन्ह धीर धरि गमन महीशा
मुनि महिदेव साधु सनमाने * विदा किये हरिहर सम जाने

अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिए। राजा जनक ने धीरज धरकर गमन किया। रामजी ने मुनियों, ब्राह्मणों और साधुओं का सम्मान किया तथा विष्णु और शिव के समान जानकर विदा किया।

सासु समीप गये दोउ भाई * फिरे वन्दि पद आशिष पाई
कौशिक वामदेव जावाली * परिजन पुरजन सचिव सुचाली

दोनों भाई सास के पास गये और उनके चरण छूकर आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जाबालिमुनि, कुटुम्बी, पुरवासी, सुचाली मन्त्री आदि को

यथायोग करि विनय प्रणामा * विदा किये सब सानुज रामा
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे * सब सनमानि कृपानिधि फेरे

यथायोग्य विनय के साथ प्रणामकर छोटे भाई लक्ष्मणसमेत रामजी ने सबको विदा किया। स्त्री, पुरुष, छोटे, बराबरवाले और बड़े, सबको सम्मान देकर कृपानिधि रामजी ने लौटाया।



भरतमातु पद वन्दि प्रभु, शुचिसनेह मिलि भेंटि।
बिदाकीन्हसजि पालकी सकुच शोच सब मेटि॥

रामजी भरत की माता कैकेयी के चरणों में प्रणामकर पवित्र स्नेह से मिले-भेंटे। फिर पालकी सजाकर उनका संकोच और सोच मेटकर रामजी ने उन्हें भी विदा किया।

परिजनमातु पितहिं मिलि सीता * फिरी प्राणप्रिय प्रेम पुनीता
करि प्रणाम भेंटी सब सासू * प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू

प्राणों के समान प्यारे रामजी में पवित्र प्रेम रखनेवाली जानकीजी कुटुम्बियों, माता और पिता को मिलकर लौटीं। इसके बाद वह प्रणामकर सब सासों को मिलीं। वह अवसर ऐसा था कि वह प्रीति कहने के लिए कवि के हृदय में उल्लास नहीं होता।

सुनिसिख अभिमत आशिषपाई * रही सीय दुहुँ प्रीति समाई
रघुपति पटु पालकी मँगाई * करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई

सिखावन सुनकर और चाही हुई अशीश पाकर सीताजी मैके और ससुरे दोनों ओर की

प्रीति में डूब गईं। रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगाईं और समझाकर सब माताओं को उन पर चढ़ाया।

बार बार हिलिमिलि दोउ भाई * समसनेह जननी पहुँचाई
साजि बाजि गज बाहन नाना * भूप भरतदल कीन्ह पयाना

बार-बार हिल-मिलकर दोनों भाइयों ने समान स्नेह से माताओं को दूर तक पहुँचाया—बिदा किया। हाथी, घोड़े और अनेक भाँति की सवारियाँ सजाकर राजा जनक और भरत की सेनाएँ वहाँ से चल दीं।

हृदय राम सिय लषण समेता * चले जाहिं सब लोग अचेता
बसह बाजिगज पशु हिय हारे * चले जाहिं परवश मनमारे

हृदय में सीता और लक्ष्मणसमेत रामजी बसे हैं, इस कारण सब लोग बेसुध से चले जाते हैं। बैल, घोड़े, हाथी और पशु, ये सब हृदय में हारे-थके और मनमारे हुए परवश चले जाते हैं।



गुरु गुरुतिय पद बन्दि प्रभु, सीता लषण समेत।
फिरे हर्ष बिस्मय सहित, आये पर्णनिकेत॥

गुरु और गुरुपत्नी के चरणों में प्रणामकर सीता और लक्ष्मणसमेत रामजी हर्ष और विस्मय-सहित लौटकर पर्णशाला को आये।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू * चले हृदय बड़ बिरह बिषादू
कोल किरात भिल्ल बनचारी * फेरे फिरे जुहारि जुहारी

फिर रामजी ने निषाद को सम्मान देकर बिदा किया। वह भी वियोग के विषाद से भरा हुआ हृदय लेकर चला। कोल, किरात, भील आदि वनचारियों को रामजी ने लौटाया। वे जुहार-जुहार कर अपने घर को लौट गये।

प्रभु सिय लषण बैठि बटछाहीं * प्रियपरिजन वियोग बिलखाहीं
भरत सनेह सुभाउ सुबानी * प्रिया अनुजसन कहत बखानी

राम, सीता और लक्ष्मण बरगद की छाँह में बैठकर प्यारे कुटुम्ब के वियोग में उदास हो रहे हैं। रामजी सीता और लक्ष्मण से भरत के स्नेह, स्वभाव और सुन्दर बातचीत का बखान करते हैं।

प्रीतिप्रतीति बचन मन करणी * श्रीमुख राम प्रेमवश बरणी
तेहि अवसरखग मृगजलमीना * चित्रकूट चर अचर मलीना

रामजी ने भरत के मन-वचन-कर्म की प्रीति-प्रतीति को अपने श्रीमुख से बार-बार वर्णन किया। उस समय पक्षी, हरिण और जल की मछलियाँ आदि जो कोई चित्रकूट में चर-अचर प्राणी थे, सब उदास हो गये।

विबुध विलोकि दशा रघुवरकी * बर्षि सुमन कहि गति घर घरकी
प्रभु प्रणामकरि दीन्ह भरोसो * चले मुदितमन डर न खरोसो

देवताओं ने रामजी की दशा देखकर फूल बरसाये और अपने घर-घरकी दशा (विपत्ति) कही; उनका मतलब यह था कि हमारे कष्ट मिटाने का ख्याल रखिए। श्रीरामजी ने प्रणाम कर उनको भरोसा दिया। उस समय वे प्रसन्नमन निडर हो चले।



सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत पर्णकुटीर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर॥

लक्ष्मण व सीतासमेत रामजी पर्णशाला में ऐसे विराजते हैं, जैसे शरीर धरे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य हों।

मुनि महिसुर गुरु भरतभुवालू * राम विरह सब साज बिहालू
प्रभु गुणग्राम गुणत मनमाहीं * सब चुपचाप चले मगु जाहीं

इधर मुनि, ब्राह्मण, वशिष्ठ, भरत और जनकजी रामजी के वियोग में विहाल हैं। मन में रामजी के असंख्य गुणों को गुनते हुए सब लोग चुपचाप मार्ग में चले जाते हैं।

यमुना उतरि पार सब भयऊ * सो वासर बिन भोजन गयऊ
उतरि देवसरि दूसर बासू * राम सखा सब कीन्ह सुपासू

सब लोग यमुना उतरकर पार हुए। उस दिन किसी ने भोजन नहीं किया। गंगा उतरकर दूसरा पड़ाव किया। वहाँ निषाद ने सबकी पहुनई की।

सई उतरि गोमती नहाये * चौथे दिवस अवधपुर आये
जनक रहे पुर वासर चारी * राजकाज सब साज सँभारी

तीसरे दिन सई उतरकर गोमती में स्नान किया और वहीं टिके। चौथे दिन अयोध्या में आये। जनकजी अयोध्या में चार दिन रहे और राजकाज का सब साज सँभाल करके

सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू * तिरहुति चले साजि सब साजू
नगर नारि नर गुरु सिखमानी * बसे सुखेन राम रजधानी

मन्त्री, वशिष्ठ और भरत को अवध का राज्य सौंप और सब साज साजकर अपने नगर तिरहुत को चले गये। नगर के स्त्री-पुरुष गुरु का सिखावन मानकर रामजी की राजधानी अयोध्या में सुख से बसे।



रामदरश लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषण भोग सुख, जियत अवधिकी आस॥

रामजी के दर्शनों के लिए सब लोग नियम और उपवास करते हैं, तथा गहने और भोग-विलास के सुख को छोड़कर अवधि की आशा से जीते हैं।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे * निजनिज काज पाइ सिखशोधे

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघुभाई * सौंपी सकल मातु सेवकाई

मन्त्रियों और अच्छे सेवकों को भरतजी ने समझाया। उन्होंने शिक्षा के अनुसार अपने काम ठीक किये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौंपी।

भूसुर बोलि भरत करजोरे * करि प्रणाम वर विनय निहोरे
ऊँच नीच कारज भल पोचू * आयसु देत न करब सँकोचू

ब्राह्मणों को बुला हाथ जोड़कर भरतजी ने प्रणाम किया और विनय के साथ कहा कि ऊँच-नीच, भला-बुरा जो कुछ काम हो, उसकी आज्ञा देने में संकोच न कीजिएगा।

परिजन पुरजन प्रजा बुलाये * समाधान करि सुबस बसाये
सानुज गे गुरु गेह बहोरी * करि दण्डवत कहत करजोरी

भरत ने कुटुम्बी, पुरवासी और प्रजा को बुलाया। उनका समाधान कर अच्छी तरह बसाया। फिर शत्रुघ्न को साथ ले वशिष्ठजी के घर गये। हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगे—

आयसु होइ तो रहौं सनेमा * बोले मुनि तनु पुलकि सप्रेमा
समुझब कहब करब तुम सोई * धर्मसार जग होइहि जोई

यदि आज्ञा हो तो मैं नियम से रहूँ। तब प्रेम से वशिष्ठ मुनि पुलकित हो उठे। उन्होंने कहा—तुम वही समझो, कहो और करोगे, जो संसार में धर्म का सारांश होगा।



मुनिसिख पाइ अशीश बड़, गणक बोलि दिनसाधि।
सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारी निरुपाधि॥

मुनि की शिक्षा और बड़ा आशीर्वाद पाकर भरत ने ज्योतिषियों को बुलाया और दिन मुहूर्त आदि ठीककर प्रभु रामजी की पवित्र पादुकाओं को सिंहासन पर बिठाया।

राममातु गुरुपद शिरनाई * प्रभुपद पीठ रजायसु पाई
नन्दिग्राम करि पर्णकुटीरा * कीन्ह निवास धर्मधुरधीरा

धर्मधुरन्धर भरतजी ने रामजी की माता और वशिष्ठजी के चरणों में माथा नवाकर तथा राम की पादुकाओं की आज्ञा लेकर नन्दिग्राम में पर्णशाला बनवाई और वहीं रहने लगे।

जटाजूट शिर मुनिपट धारी * महि खनि कुशसाथरी सँवारी
अशन वसन बासन व्रत नेमा * करत कठिन ऋषिधर्म सप्रेमा

माथे पर जटाजूट धारे, मुनियों के-से वस्त्र पहने भरतजी पृथ्वी खोदकर उस पर कुशों की चटाई डालकर रहते तथा मुनियों का-सा भोजन करते, वस्त्र पहनते, बरतन रखते तथा व्रत और नियम आदि कठिन ऋषियों के धर्म प्रेमसमेत करते हैं।

भूषण वसन भोग सुख भूरी * मन तन वचन तजे तृणतूरी
अवधराज सुरराज सिहाहीं * दशरथधन लखि धनद लजाहीं

गहने, कपड़े और बहुत से भोगसुखों को भरतजी ने तृण के समान तोड़कर तन, मन, वचन से छोड़ दिया। जिस अयोध्या के राज्य को इन्द्र सिहाते और जहाँ के धन को देख कुबेर लजाते हैं,

तेहि पुर बसत भरत बिन रागा * चञ्चरीक जिमि चम्पक बागा
रमा विलास राम अनुरागी * तजतवमन जिमि नरबड़ भागी

उसी पुर में भरतजी निर्लिप्त होकर रहते हैं, जैसे चम्पे के बाग में भौंरा। बड़े भाग्यवान् राम के भक्तजन लक्ष्मी के सुख को वमन (कय या उगाल) की भाँति तज देते हैं।



राम प्रेम-भाजन भरत, बड़ी न यह करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति॥

भरतजी राम के प्रेमपात्र हैं। उनके लिए यह कुछ बड़ी करतूत नहीं है। देखो, चातक अपनी स्वाती के जल की टेक के लिए और हंस दूध-पानी अलग करने के अपने गुण-विवेक की विभूति के लिए सराहा जाता है।

देह दिनहिं दिन दूबरि होई * घट न तेज बल मुख छवि सोई
नित नव राम प्रेमप्रण पीना * बढ़त धर्मदल मन न मलीना

उनकी देह दिन-दिन दुबली होती जाती है; परन्तु तेज और बल नहीं घटता। मुख की कान्ति भी वही है। नित्य नया रामजी का प्रेमप्रण पुष्ट होता है। धर्म का दल बढ़ता जाता है और मन में उदासी नहीं आती।

जिमि जल निघटत शरद प्रकासे * बिलसत बियत सुबनजविकासे
शम दम संयम नेम उपासा * नखतभरतहिय बिमलप्रकासा

जैसे शरद्ऋतु के आने पर जलाशयों का जल घटता, आकाश निर्मल होता और कमल खिलते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास—ये सब भरतजी के निर्मल आकाश-सम हृदय में नक्षत्रों की भाँति चमकते हैं।

ध्रुव विश्वास अवधि राकासी * स्वामिसुरतिसुरबीथि विकासी
राम प्रेम विधु अचल अदोखा * सहित समाजसोह नित चोखा

रामजी के आने का विश्वास ध्रुवतारा है। अवधि पूर्णमासी है और रामजी की याद देवमार्ग (आकाशगंगा)-सी है। निश्चल और दोषरहित रामजी का प्रेम अपने समाज-सहित चन्द्रमा के समान भरत के हृदयाकाश में नित्य अधिक सोहता है।

भरत रहनि समुझनि करतूती * भक्तिविरतिगुण विमल वि...
बरणतसकल सुकविसकुचाहीं * शेष गणेश गिरा-गम ना...

भरतजी की रहनि, समुझनि, कर्तव्यता, भक्ति, वैराग्य, गुण और निर्मल ऐश्वर्य इन सबका वर्णन करते सब कवि सकुचते हैं; क्योंकि वहाँ तक शेष, गणेश और ... की भी पहुँच नहीं है।


नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥

भरतजी नित्य स्वामी श्रीरामचन्द्रजी की पादुकाएँ पूजते हैं। प्रीति उनके हृदय में नहीं समाती। उन्हीं पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर सब राजकाज करते हैं।

पुलकगात हिय सिय रघुवीरू * जीह नाम जप लोचन नीरू
लषण राम सिय कानन बसहीं * भरत भवन बसि तप तनु कसहीं

अंग में रोमांच और हृदय में सीतारामजी हैं। जीभ रामनाम जपती है। आँखों में आँसू भरे हैं। लक्ष्मण और सीतासहित राम वन में रहते हैं तथा भरत घर में रहकर तप से देह कसते हैं।

दुहुँदिशि समुझि कहत सब लोगू * सब विधि भरत सराहन योगू
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं * देखि दशा मुनिराज लजाहीं

दोनों ओर की बातें समझकर सब कहते हैं कि सब प्रकार भरतजी सराहने योग्य हैं। भरत के व्रत और नियम सुनकर साधु लोग सकुचते हैं तथा दशा देखकर मुनिराज भी लजाते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू * मधुर मंजु मुद मंगल करनू
हरण कठिन कलि कलुष कलेशू * महामोह निशि दलन दिनेशू

भरतजी का आचरण परम पवित्र, जीभ और कानों को मधुर, मनोहर, सुखदायक, मंगलकारक, कलियुग के पातकों और दुःखों का नाशक और महामोहरूप रात्रि को दूर करने के लिए सूर्य-सा है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू * शमन सकल सन्ताप समाजू
जनरञ्जन भञ्जन भवभारू * राम सनेह सुधाकर सारू

वह पापसमूहरूप हाथियों के लिए सिंह, सब सन्तापों का नाशक, भक्तों को आनन्ददायक, संसार में जन्म-मरण के दुःखों को मिटानेवाला और रामजी के स्नेहरूप चन्द्रमा का सारांश (अमृत) है।

छन्द

सियरामप्रेमपियूषपूरण होत जन्म न भरत को।
मुनिमनअगमयमनियमशमदमविषमव्रतआचरत को॥
दुखदाह दारिद दम्भ दूषण सुयश मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसीसे शठहिं हठि रामसम्मुख करत को॥

सीता-रामजी के प्रेम-अमृत से पूर्ण भरत का जन्म जो न होता तो मुनियों के लिए भी

कठिन यम, नियम, शम, दम और व्रत कौन करता ? यश के बहाने दुःख, दाह, दारिद्र्य और पाखंड आदि दोष कौन हरता ? तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझ-सरीखे शठ को हठकर रामजी के सामने कौन लाता ?



भरतचरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय रामपद प्रेम, अवशि होइ भवरसविरति ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नियम कर आदरसमेत जो पुरुष यह भरतजी का चरित्र सुनते हैं, उनको अवश्य ही सीतारामजी के चरणों में प्रेम और संसार-रस से वैराग्य प्राप्त होता है ।

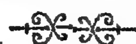
अयोध्याकाण्ड समाप्त ।



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण आरण्यकाण्ड

बालबोधिनीटीकासहित



मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघहरं ध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपुञ्जपाटनविधौ खे सम्भवं शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥

धर्मरूप वृक्ष के मूल, विवेकरूप समुद्र के आनन्ददायक पूर्णिमा के चन्द्र, वैराग्यरूप कमल के सूर्य, पातक, अन्धकार और तापों के नाशक, मोहरूप मेघ को फाड़ने में आकाश में उत्पन्न पवनरूप, ब्राह्मणवंश के कलंकनाशक, महाराज रामचन्द्र के प्रिय श्रीशंकरजी की मैं वन्दना करता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥

आनन्ददायक सघन मेघ-सरीखे सुन्दर, पीताम्बर पहने, हाथों में धनुष-बाण धारण किये, कमर में भारयुक्त, उत्तम तरकस कसे, कमलपत्र-से चौड़े नेत्रोंवाले, जटाओं से सुशोभित, मार्ग में चल रहे सीता-लक्ष्मण-सहित सुन्दर श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ।

सो० उमा रामगुण गूढ़, पण्डित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धर्मरत॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रामजी के गुण गूढ़ हैं। उनमें पण्डित और मुनि वैराग्य पाते तथा राम-विमुख, धर्म-विमुख, मूर्ख मोहित होते हैं।

पूरण भरत प्रीति मैं गाई * मतिअनुरूप अनूप सुहाई
अबप्रभुचरित सुनो अतिपावन * करत जो वन सुरनर मुनिभावन

मैंने बुद्धि के अनुसार भरतजी की पूरी प्रीति गाई, जो अनूप और अच्छी है। अब वन में किये हुए भगवान् के चरित्र सुनो, जो देवताओं, मनुष्यों और मुनियों को अच्छे लगते हैं।

एक बार चुनि कुसुम सुहाये * निजकर भूषण राम बनाये
...हिं पहिराये प्रभु सादर * बैठे फटिक शिला परमादर

एक समय सुन्दर फूल तोड़कर रामजी ने अपने ही हाथों से भूषण बनाये। उन्हें रामजी ने आदर से सीता को पहनाया और स्फटिक शिला पर बैठे।

सुरपतिसुत धरि वायसवेखा * शठ चाहत रघुपतिबल देखा
जिमि पिपीलिका सागर थाहा * महामन्दमति पावन चाहा

इन्द्र के पुत्र महामन्दमति दुष्ट जयन्त ने रामजी का बल देखना चाहा, जैसे चींटी समुद्र की थाह पाना चाहे। अतएव कौए का रूप रखकर

सीताचरण चोंच हति भागा * मूढ़ मन्दमति कारण कागा
चला रुधिर रघुनायक जाना * सींक धनुष शायक सन्धाना

मूढ़ मन्दमति जयन्त वहाँ आया और सीताजी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब रामजी ने जाना और सींक का बाण धनुष पर चढ़ाया।



अति कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
तासन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुणगेह॥

दयालु रामजी सदा दीनों पर स्नेह रखते हैं। उनसे भी मूर्ख अवगुणधाम जयन्त ने छल किया।

प्रेरित अस्त्र ब्रह्मशर धावा * चला भाजि वायस भय पावा
धरि निजरूप गयो पितु पाहीं * रामविमुख राखा तिन नाहीं

रामजी का चलाया हुआ वह ब्रह्मास्त्र जयन्त के पीछे दौड़ा। तब डरकर कौआ भाग चला। अपना रूप धरकर पिता के पास गया; परन्तु रामजी से विमुख जयन्त को उन्होंने नहीं बचाया।

भा निराश उपजी हिय त्रासा * यथा चक्रभय ऋषि दुर्वासा
ब्रह्मधाम शिवपुर सब लोका * फिराश्रमितव्याकुल भयशोका

तब वह निराश हुआ और मन में डरा, जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि। ब्रह्मलोक, कैलाश और सब लोकों में घूमा, इससे थककर सोच और डर से व्याकुल हो लौटा।

काहू बैठन कहा न ओही * राखि को सकै रामकर द्रोही
मातु मृत्यु पितु शमन समाना * सुधा होइ विष सुनु हरियाना

उससे किसी ने बैठने को न कहा; क्योंकि रामजी के वैरी को कोई नहीं रख सकता। हे गरुड़, उसकी माता मृत्यु, पिता यमराज और अमृत विष हो जाता है।

मित्र करै शत रिपु की करणी * ताकहँ विबुधनदी वैतरणी
सब जग ताहि अनलते ताता * जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता

जो रामचन्द्र से विमुख है, उसके मित्र सौ शत्रुओं का काम करते हैं, उसे गंगा वैतरणी

जब सुग्रीव राम कहँ देखा * अतिशय जन्म धन्य करि लेखा

इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान् ने दोनों भाइयों को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने श्रीरामजी को देखा तब अपने जन्म को बहुत धन्य माना।

सादर मिलेउ नाय पद माथा * भेंटे अनुज सहित रघुनाथा
कपि कर मन विचार यह रीती * करिहैं विधि मोसन ये प्रीती

राम के चरणों में माथा नवाकर सुग्रीव आदरपूर्वक छोटे भाई लक्ष्मण-समेत रामजी से मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार विचार करते हैं कि हे विधाता, क्या ये मुझसे मित्रता करेंगे?



तब हनुमन्त उभयदिशि, कहि सब कथा बुझाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

तब हनुमान् ने दोनों ओर की बातें कहीं और अग्नि को साक्षी करके उनकी मित्रता को खूब दृढ़ जोड़ दिया।

कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा * लक्ष्मण रामचरित सब भाखा
कह सुग्रीव नयन भरि वारी * मिलिहि नाथ मिथिलेशकुमारी

ऐसी प्रीति की कि कुछ भेद नहीं रक्खा। तब लक्ष्मणजी ने सब रामजी का चरित्र कहा। सुग्रीव ने आँखों में आँसू भरकर कहा—हे नाथ, जनकदुलारी जानकी मिलेंगी।

मंत्रिन सहित इहाँ इक बारा * बैठ रहेउँ कछु करत विचारा
गगनपन्थ देखी मैं जाता * परवश परी बहुत बिलखाता

एक समय मन्त्रियों-सहित मैं यहाँ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। इतने में आकाशमार्ग से जाती हुई सीता को मैंने देखा। वह परवश पड़ी बहुत रोती थीं।

राम राम हा राम पुकारी * हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी
माँगा राम तुरत सो दीन्हा * पट उरलाय शोच अति कीन्हा

'हा राम! हा राम!' कहकर और मेरी ओर देखकर उन्होंने एक वस्त्र डाल दिया। रामजी ने वह वस्त्र माँगा। तब सुग्रीव ने तुरन्त ही ला दिया। श्रीरामजी ने उसे हृदय से लगाकर बड़ा शोक किया।

कह प्रभु लक्ष्मण सों यह बाता * पहिचानत पट भूषण ताता
हाथ जोरि लक्ष्मण यह बोले * रघुनायक सों वचन अमोले

रामजी ने लक्ष्मण से कहा—भाई, क्या इस वस्त्र और इसमें बँधे गहनों को पहचानते हो? तब हाथ जोड़कर लक्ष्मणजी रघुनाथ से ये अनमोल वचन बोले—

पगभूषण मैं सकत चिन्हारी * ऊपर कबहुँ न सीय निहारी
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा * तजहु शोच उर आनहु धीरा

बहुरि राम अस मन अनुमाना * होइहि भीर सबहिं मोहिं जाना

चित्रकूट में बसकर रामजी ने अमृत के समान पवित्र अनेक चरित्र किये। रामजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये, इससे यहाँ भीड़ होगी—

सकल मुनिन्हसन बिदा कराई * सीतासहित चले दोउ भाई
अत्रिके आश्रम जब प्रभु गयऊ * सुनत महामुनि हरषित भयऊ

इससे सब मुनियों से विदा होकर सीतासमेत दोनों भाई चले। जब रामजी अत्रि मुनि के आश्रम में गये, तब यह समाचार सुनते ही महामुनि अत्रि प्रसन्न हुए।

पुलकितगात अत्रि उठिधाये * देखि राम आतुर चलि आये
करत दण्डवत मुनि उरलाये * प्रेमबारि दोउ जन अन्हवाये

उनके अंगों में रोमांच हो आया। अत्रि मुनि उठकर दौड़े और रामजी को देखकर शीघ्र वहाँ आये। दण्डवत करते हुए रामजी को उन्होंने हृदय से लगा लिया और प्रेम के जल से दोनों भाइयों को नहला दिया।

देखि राम छवि नयन जुड़ाने * सादर निज आश्रम तब आने
करि पूजा कहि बचन सुहाये * दिये मूल फल प्रभु मनभाये

रामजी की शोभा देखकर उनकी आँखें शीतल हो गईं। तब अत्रि मुनि आदर-सहित उन्हें अपने आश्रम में ले आये। फिर पूजा की और सुन्दर वचन कहकर रामजी के मन को सुहानेवाली जड़ें और फल दिये।



प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि अस्तुति करत॥

आसन पर बैठे हुए रामजी की शोभा आँखों भर देखकर बड़े चतुर मुनिनायक अत्रिजी हाथ जोड़कर यों स्तुति करने लगे—



नमामि भक्तवत्सलम् * कृपालु शीलकोमलम्।
भजामि ते पदाम्बुजम् * अकामिनां स्वधामदम्॥
निकाम श्यामसुन्दरम् * भवाम्बुनाथ मन्दरम्।
प्रफुल्ल कञ्जलोचनम् * मदादि दोष मोचनम्॥

हे दयालु, शील से कोमल, भक्तवत्सल, आपको मैं प्रणाम करता हूँ। कामनाहीनों को आपका स्थान देनेवाले आपके चरणारविन्द मैं भजता हूँ। आप श्याम और सुन्दर हैं। संसारसमुद्र मथने के लिए मन्दराचल के समान हैं। फूले कमलों की भाँति आपकी आँखें हैं। आप गर्व आदि दोषों के छुड़ानेवाले हैं।

प्रलम्ब बाहु विक्रमम् * प्रभो प्रमेय वैभवम्।
निषङ्गचाप शायकम् * धरं त्रिलोकनायकम्॥

दिनेशवंशमण्डनम् * महेशचापखण्डनम् ।
मुनीन्द्र सन्त रञ्जनम् * सुरारिवृन्द भञ्जनम् ॥

हे प्रभो, आपकी लम्बी भुजाएँ बल की खान हैं, और आपका ऐश्वर्य विपुल है। तरकस, धनुष और बाण धारण करनेवाले आप त्रिलोक के स्वामी, सूर्यवंश के भूषण, शिवधनुष के तोड़नेवाले, मुनिनायकों और सज्जनों को आनन्ददायक तथा दैत्यों के नाशक हैं।

मनोजवैरिवन्दितम् * अजादिदेवसेवितम् ।
विशुद्ध बोध विग्रहम् * समस्त दुःख तापहम् ॥
नमामि इन्दिरापतिम् * सुखाकरं सतां गतिम् ।
भजे सशक्तिसानुजम् * शचीपतिप्रियानुजम् ॥

काम के वैरी शिवजी आपकी वन्दना करते और ब्रह्मादि देवता सेवा करते हैं तथा विशुद्धबोध (ब्रह्मज्ञान) के स्वरूप होकर आप दुःख और तीनों तापों को मिटाते हैं। लक्ष्मी के पति, सुख की खान और सज्जनों के पालक आपको मैं प्रणाम करता हूँ। सीता और छोटे भाईसमेत इन्द्र के प्यारे छोटे भाई अर्थात् वामनरूप आपको मैं भजता हूँ।

त्वदंघ्रि मूल ये नराः * भजन्ति हीनमत्सराः ।
पतन्ति नो भवार्णवे * वितर्कवीचिसंकुले ॥
विविक्तवासिनो यदा * भजन्ति मुक्तिदं मुदा ।
निरस्यइन्द्रियादिकम् * व्रजन्तितेगतिंस्वकम् ॥

जो ईर्षारहित पुरुष आपके चरणों को भजते हैं, वे मन की तर्क-वितर्करूप लहरों से परिपूर्ण संसारसमुद्र में नहीं गिरते। जो एकान्तवासी पुरुष इन्द्रियसुख छोड़ आनन्द से मुक्तिदायक आपको भजते हैं, वे आपकी गति पाते हैं।

त्वमेकमद्भुतं प्रभुम् * निरीहमीश्वरं विभुम् ।
जगद्गुरुंचशाश्वतम् * तुरीयमेव केवलम् ॥
भजामिभाववल्लभम् * कुयोगिनां सुदुर्लभम् ।
स्वभक्तकल्पपादपम् * समस्तसेव्यमन्वहम् ॥

आप एक, अद्भुतरूप, प्रभु, चेष्टारहित, ईश्वर, समर्थ, संसार के गुरु, अविनाशी, तुरीय अवस्थारूप और केवल हैं। निन्दित योगियों को दुर्लभ, भावभक्ति के प्रिय और अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष, सबके सेवने योग्य आपको मैं प्रतिदिन भजता हूँ।

अनूपरूपभूपतिम् * नतोहमुर्विजापतिम् ।
प्रसीद मे नमामि ते * पदाब्जभक्ति देहि मे ॥
पठन्ति ये स्तवं इदम् * नरादरेण ते पदम् ।
व्रजन्ति नात्र संशयम् * त्वदीयभक्तिसंयुतम् ॥

अनूप रूपवाले राजा, जानकीजी के पति को मैं प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइए। मैं प्रणाम करता हूँ, मुझे चरणकमलों की भक्ति दीजिए। जो मनुष्य आदर से इस स्तोत्र को पढ़ते हैं, वे आपकी भक्ति से युक्त हो निस्सन्देह आपका पद पाते हैं।



बिनती करि मुनि नाइ शिर, कह कर जोरि बहोरि।
चरणसरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि॥

बिनती कर, माथा नवाकर अत्रिमुनि ने हाथ जोड़े और फिर कहने लगे— हे नाथ, आपके चरणकमलों को मेरी बुद्धि कभी न छोड़े।

देखि राम मुनि विनय प्रणामा * विविध भाँति पायो विश्रामा
जन्म जन्म तव पद सुखकन्दा * बढ़ै प्रेम चकोर जिमि चन्दा

सुखमूल तुम्हारे चरणों में मेरी प्रीति प्रतिजन्म में बढ़े, जैसे चन्द्रमा में चकोर की प्रीति। मुनिजी का सविनय प्रणाम देख रामजी ने अनेक भाँति सुख पाया।

अनसूया के पद गहि सीता * मिली बहोरि सुशील विनीता
जो सिय सकललोकसुखदाता * अखिललोकब्रह्माण्ड कि माता

सब लोकों को सुख देनेवाली और समस्त लोकों एवं ब्रह्माण्डों की माता जानकीजी अनसूया के चरण पकड़कर सुशीलता और नम्रता से बारंबार उन्हें मिलीं-भेंटीं।

तेउ पाय मुनिवर वर भामिनि * सुखी भई कुमुदिनि जनु यामिनि
ऋषिपत्नी मन सुख अधिकाई * आशिष दीन्ह निकट बैठाई

सीताजी मुनिश्रेष्ठ—अत्रि की उत्तम पत्नी को पाकर ऐसी सुखी हुई, जैसे रात को कोकाबेली। ऋषि की पत्नी अनसूया के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने सीताजी को पास बिठाकर आशीर्वाद दिया।

दिव्य वसन भूषण पहिराये * जे नित नूतन अमल सुहाये
जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं * गरुड़ देखि जिमि पन्नग जाहीं

सुन्दर कपड़े और गहने पहनाये, जो नित्य नवीन और शुद्ध रहकर सोहते थे। उन कपड़ों और गहनों को देख दुःख ऐसे दूर भागते थे, जैसे गरुड़ को देखकर साँप।

ऐसे वसन विचित्र सुठि, दिये सीयकहँ आनि।
सनमाने प्रियवचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि॥

इस भाँति के रंगबिरंगे, सुन्दर कपड़े जानकीजी को दिये और प्यारे वचन कहकर उनका सम्मान किया। उनकी प्रीति कही नहीं जाती।

कह ऋषिवधू सरल मृदुबानी * नारिधर्म कछु व्याज बखानी
मात पिता भ्राता हितकारी * मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी

ऋषि की स्त्री अनसूयाजी बहाने से सीधी एवं कोमल वाणी द्वारा कुछ स्त्रियों के धर्म इस प्रकार कहने लगीं—हे राजकुमारी-जनकदुलारी, माता, पिता, भ्राता, और हितू-ये जितना सुख देते हैं, उसका एक हद या परिमाण होता है।

अमित दानि भर्ता वैदेही * अधम सो नारि जो सेव न तेही
धीरज धर्म मित्र अरु नारी * आपतिकाल परखिये चारी

पर हे जानकी, पति स्त्री को जो सुख देता है, उसका कोई परिमाण नहीं। जो स्त्री उसकी सेवा नहीं करती, वह नीच है। धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारों को विपत्ति के समय परखना चाहिए।

वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना * अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना * नारि पाव यमपुर दुख नाना

बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और बड़ा दुखी, चाहे जैसा पति हो, उसका अपमान करने से स्त्री यमपुर में अनेक प्रकार के दुःख पाती है।

एकै धर्म एक व्रत नेमा * काय वचन मन पतिपद प्रेमा
जग पतिव्रता चारिविधि अहहीं * वेद पुराण सन्त अस कहहीं

कर्म, मन और वचन से पति के चरणों में प्रीति होना ही स्त्री के लिए एकमात्र धर्म और एकमात्र व्रत-नियम है। वेद, पुराण और सज्जन कहते हैं कि संसार में चार भाँति की पतिव्रता स्त्रियाँ हैं—

उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय।
आगे सुनहिं ते भवतरहिं, सुनहु सीय चितलाय॥

उत्तम, मध्यम, नीच और अधम। सब समझाकर कहती हूँ, जिससे जो आगे सुनें वे संसार-सागर को तर जावें। हे सीता, चित्त लगाकर सुनो।

उत्तम के अस वस मनमाहीं * सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं
मध्यम परपति देखहिं कैसे * भ्राता पिता पुत्र निज जैसे

उत्तम स्त्रियों के मन में ऐसा रहता है कि स्वप्न में भी अपने पति के सिवा दूसरा पुरुष संसार में नहीं है। मध्यम स्त्री पराये पति को वैसे देखती हैं, जैसे अपने भाई, पिता और पुत्र को।

धर्मविचारि समुझि कुल रहहीं * सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं
बिन अवसर भय ते रह जोई * जानेहु अधम नारि जग सोई

जो धर्म विचारकर कुल में रहती हैं, सती धर्म को नहीं छोड़तीं, वे नीच स्त्रियाँ हैं ऐसा वेद कहते हैं। मौका न मिलने के कारण या डर से जो स्त्री परपुरुष को नहीं भजती उसी को संसार में अधम स्त्री जानिए।

पतिवंचक परपति रति करई * रौरव नरक कल्पशत परई
क्षणसुख लागि जन्म शतकोटी * दुख न समझ तेहिसम कोखोटी

अपने पति से छल करके जो स्त्री दूसरे पुरुष का संग करती है वह सौ कल्पों तक रौरव-नरक में पड़ती है। क्षण भर के सुख के लिए जो स्त्री सौ करोड़ जन्मों के दुःखों का खयाल नहीं करती वैसी नीच स्त्री कौन है।

बिनश्रम नारि परमगति लहई * पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई * विधवा होइ पाइ तरुणाई

जिससे बिना परिश्रम उत्तम गति मिलती है, उस पतिव्रत धर्म को छोड़ जो स्त्री छल करती और पति के प्रतिकूल रहती है, वह जन्म लेकर जहाँ जाती है, वहाँ भरी जवानी में विधवा हो जाती है।


सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभगति लहहिं।
यश गावत श्रुतिचारि, अजहूँ तुलसी हरिहिं प्रिय ॥

सहज ही अपवित्र स्त्रियाँ पति की सेवा करके उत्तम गति पाती हैं। देखो, जलन्धर दानव की स्त्री वृन्दा पतिव्रत धर्म से तुलसी हुई, जो कि आज भी विष्णु को प्यारी है और वेद उसका यश गाते हैं।

सुनु सीता तव नाम, सुमिरिनारि पतिव्रत करहिं।
तोहिं प्राणप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥

हे सीता, तुम्हारा नाम स्मरण कर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म करती हैं और तुम्हें तो रामजी प्राणों के समान प्यारे हैं। मैंने यह कथा संसार के लिए कही है।

सुनि जानकी परम सुख पावा * सादर तासु चरण शिर नावा
तब मुनिसन कह कृपानिधाना * आयसु होइ जाउँ वन आना

यह सुनकर जानकीजी ने बड़ा सुख पाया और आदरसमेत उनके चरणों में शीश नवाया। तब दयानिधान रामजी ने अत्रि मुनि से कहा—यदि आज्ञा हो तो दूसरे वन को जाऊँ।

सन्तत मोपर कृपा करेहू * सेवक जानि तजेउ जनि नेहू
धर्मधुरन्धर प्रभु की बानी * सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी

सदैव मुझ पर दया कीजिएगा और दास जानकर स्नेह न छोड़िएगा। धर्मधुरन्धर रामजी के वचन सुनकर ज्ञानी मुनि अत्रिजी प्रेमसहित बोले—

जासुकृपा अज शिव सनकादी * चहत सकल परमारथवादी
ते तुम राम अकाम पियारे * दीनबन्धु मृदु वचन उचारे

परमार्थ कहनेवाले ब्रह्मा, शिव और सनकादि मुनि जिनकी दया चाहते हैं, हे दीनबन्धु, वही कामनारहित मनुष्यों के स्नेही तुम कोमल वचन कहते हो।

अब जानी मैं श्री चतुराई * भजिय तुमहिं सब देव बिहाई
जेहि समान अतिशय नहिं कोई * ताकर शील कस न अस होई

लक्ष्मी की चतुराई मने अब जानी, जो सब देवताओं को छोड़कर तुम्हारी सेवा करती हैं। जिनके समान या जिनसे अधिक कोई नहीं है, उनका शील ऐसा क्यों न हो?

केहिविधि कहौं जाहु अब स्वामी * कहहु नाथ तुम अन्तरयामी
असकहिप्रभुविलोकि मुनिधीरा * लोचनजल बह पुलकशरीरा

हे स्वामी, अब कैसे कहूँ कि जाइए। हे नाथ, आप तो अन्तर्यामी हैं। ऐसा कहते ही रामजी को देखकर धीर अत्रि मुनि के नेत्रों से जल बहने लगा और देह में रोमांच हो आया।

छन्द

तन पुलक निर्भर प्रेमपूरण नयन मुख पंकज दिये।
मन ज्ञान गुण गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किये॥
जप योग धर्म समूह ते नर भक्ति अनुपम पावई।
रघुवीरचरित पुनीत निशि दिन दासतुलसी गावई॥

उनके देह में रोमांच है। वह प्रेम से भरे नेत्र राम के मुखकमल में लगाये देखते और मन में कहते हैं कि मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियों से परे रामजी को मैंने देखा सो ऐसा कौन जप, तप मैंने किया था? तुलसीदासजी कहते हैं कि वे जप, योग और धर्मों से अनूप भक्ति पाते हैं, जो दिन-रात रामजी के पवित्र चरित्र गाते हैं।



मुनिहुँकि अस्तुति कीन्ह प्रभु, दीन्ह सुभग वरदान।
सुमन वृष्टि नभ संकुल, जयजयकृपानिधान॥

रामजी ने अत्रि मुनि की भी स्तुति की और उत्तम वरदान दिया। आकाश से फूलों की वर्षा हुई और देवता कहने लगे—हे दयानिधान, तुम्हारी जय हो।

कलिमलशमन दमनदुख, राम सुयश सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिनपर, रहहिं राम अनुकूल॥

कलियुग के पापों और दुःखों का नाशक तथा सुखों का मूल रामजी का यह उत्तम यश जो मनुष्य आदर से सुनते हैं, उन पर रामजी सदा अनुकूल रहते हैं।

मुनिपदकमल नाइ करि शीशा * चले वनहिं सुर नर मुनि ईशा
आगे राम लषण पुनि पाछे * मुनिवर वेष बने अति आछे

मुनि के चरणकमलों में शीश नवाकर देवताओं और मुनियों के स्वामी रामजी चले। आगे रामजी और पीछे लक्ष्मण हैं, जिनके मुनिनायकों के-से बड़े अच्छे वेष हैं।

उभयबीच सिय सोहति कैसी * ब्रह्म जीव बिच माया जैसी

सरिता बन गिरि औघटघाटा * पति पहिँचानि देहिं बर बाटा

दोनों भाइयों के बीच में सीताजी कैसी सोहती हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया। नदी, वन, पहाड़ और औघटघाट स्वामी को पहचानकर उन्हें उत्तम मार्ग देते हैं।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया * करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया

पुनि आये जहँ मुनि शरभंगा * सुन्दर अनुज जानकी संगा

जहाँ-जहाँ देव रामजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ आकाश में मेघ छाया करते हैं। फिर जहाँ शरभंग मुनि थे, वहाँ सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीजी के साथ रामचन्द्रजी आये।



देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म शरभंग॥

रामजी का मुखकमल देखकर मुनिनायक की आँखें भौंरे की भाँति बड़े आदर से उनकी रूपसुधा पीने लगीं। शरभंगजी का जन्म धन्य हो गया।

कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला * शंकर मानस राजमराला

जात रहेउँ विरंचि के धामा * सुनेउँ श्रवण वन ऐहैं रामा

शरभंग मुनि ने कहा—हे दयालु, हे रघुनायक! आप शंकर के हृदयरूप मानसरोवर में बसनेवाले हंस हैं। मैं ब्रह्मलोक जाता था, तब तक सुना कि श्रीरामचन्द्रजी वन में आवेंगे।

चितवत रहेउँ पन्थ दिन राती * अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती

नाथ सकल साधन मैं हीना * कीन्हीं कृपा जानि जन दीना

दिन-रात मैं आपकी बाट जोहता था। अब आपको देखकर मेरी छाती ठंडी हुई। हे नाथ, मैं सब साधनों से हीन हूँ; परन्तु आपने इस दास को दीन जानकर दया की।

सो कछु देव न मोर निहोरा * निजप्रण राखेउ जनमनचोरा

तब लगि रहहु दीन हितलागी * जब लगिमिलों तुम्हें तनत्यागी

हे देव, यह कुछ मेरा निहोरा नहीं है; क्योंकि दास के मन को चुरानेवाले आपने अपनी ही प्रतिज्ञा रक्खी है। मुझ दीन के लिए तब तक सामने रहिए, जब तक मैं देह छोड़कर फिर आपमें मिल न जाऊँ।

योग यज्ञ जप तप व्रत कीन्हा * प्रभु कहँ देइ भक्तिवर लीन्हा

यहिविधिसररचि मुनि शरभंगा * बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा

मुनि ने जो योग, यज्ञ, जप, तप और व्रत किये थे, सब रामजी को अर्पण कर भक्ति का वरदान ले लिया। इस प्रकार शरभंगजी चिता बनाकर हृदय से सबका संग छोड़ उसमें बैठ गये—



सीता अनुजसमेत प्रभु, नील जलद तन श्याम।
ममहिय बसहु निरन्तर, सगुणरूप श्रीराम॥

और बोले—हे प्रभु, हे सगुणरूप राम, घनश्याम, आप सीता और लक्ष्मणसमेत मेरे हृदय में सदा बसिए।

अस कहि योगअग्नि तनुजारा * रामकृपा बैकुण्ठ सिधारा
तातें मुनि हरिलीन न भयऊ * प्रथमहिं भेद भक्तिवर लयऊ

ऐसा कह योग की आग में देह जला दी और रामजी की दया से बैकुण्ठ को चले गये। पहले ही से सेव्य-सेवक के भेद से भक्ति करने का वरदान लेने के कारण शरभंग मुनि हरि में लीन नहीं हुए।

ऋषिनिकाय मुनिवरगति देखी * सुखी भये निज हृदय विशेखी
अस्तुति करैं सकल मुनिवृन्दा * जयति प्रणतहित करुणाकन्दा

मुनिनाथ शरभंग की गति देखकर ऋषिगण अपने मन में बहुत सुखी हुए। सब मुनि स्तुति करते हैं कि हे दीनों के हितकारी, दयानिधान! आपकी जय हो।

पुनि रघुनाथ चले वन आगे * मुनिवर वृन्द विपुल सँगलागे
अस्थिसमूह देखि रघुराया * पूछा मुनिन लागि अतिदाया

फिर रामजी आगे चले और बहुत से मुनि उनके साथ लगे। रघुनाथ रामजी ने राह में हड्डियों का ढेर देखकर मुनियों से पूछा और उनको बड़ी दया लगी।

जानत हौं पूछत कस स्वामी * समदरशी तुम अन्तरयामी
निशिचरनिकरसकलमुनिखाये * सुनि रघुनाथनयन जल छाये

मुनि बोले—हे स्वामी, आप जानते हैं, फिर क्यों पूछते हैं? आप तो समदर्शी और अन्तर्यामी हैं। निशाचरों ने जिन सब मुनियों को खाया है, उन्हीं की ये हड्डियाँ हैं। यह सुनकर रघुनाथजी के नेत्रों में आँसू भर आये।

निशिचरहीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय जाय सुखदीन्ह॥

रामजी ने भुजा उठाकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को निशाचरों से हीन कर दूँगा। फिर रामजी ने सब मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर सुख दिया।

मुनि अगस्त्यकरशिष्यसुजाना * नाम सुतीक्षण रत भगवाना
मन क्रम वचन राम कर सेवक * सपनेहुँ आन भरोस न देवक

अगस्त्यमुनि के सुजान शिष्य सुतीक्ष्ण भगवान् के भक्त थे। वह मन, कर्म और वचन से रामजी के सेवक थे और स्वप्न में भी दूसरे देवता का भरोसा नहीं रखते थे।

प्रभु आगमन श्रवण सुनिपावा * करत मनोरथ आतुर धावा
हे विधि दीनबन्धु रघुराया * मोसे शठपर करिहहिं दाया

वह प्रभु का आना सुनकर अनेक मनोरथ करते हुए शीघ्र दौड़े। मन में कहते हैं कि हे विधाता, क्या दीनबन्धु रामजी मुझ-जैसे शठ पर दया करेंगे ?

सहित अनुज मोहिं रामगोसाईं * मिलिहहिं निजसेवक की नाईं
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं * भक्ति विरति न ज्ञान मन माहीं

भाईसमेत स्वामी रामजी क्या अपने दास की भाँति मुझे मिलेंगे ? मेरे मन में मजबूत भरोसा नहीं है ; क्योंकि मेरे मन में न भक्ति है, न वैराग्य और न ज्ञान।

नहिं सतसंग योग जप यागा * नहिं दृढ़चरणकमल अनुरागा
एक बानि करुणानिधान की * सो प्रिय जाके गति न आनकी

मैंने सत्संग, योग, जप और यज्ञ नहीं किये और न भगवान के चरणकमलों में दृढ़ प्रेम ही है। परन्तु करुणानिधान की एक बान है कि उन्हें वही प्यारा है, जिसकी दूसरी गति नहीं।

होइहैं सफल आजु मम लोचन * देखि वदनपंकज भवमोचन
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी * कहि न जाय सो दशा भवानी

संसार छुड़ानेवाले रामजी का मुखकमल देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। ज्ञानी मुनीश्वर मुनि प्रेम में मग्न हैं। हे पार्वती, उनकी वह दशा कही नहीं जाती।

दिशिअरुविदिशिपंथनहिंसूझा * को मैं कहाँ चलेउँ नहिं बूझा
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई * कबहुँक नृत्य करै गुणगाई

दिशाओं और विदिशाओं में उन्हें राह नहीं सूझती और नहीं मालूम होता कि मैं कौन हूँ और कहाँ जाता हूँ। कभी फिर पीछे लौट पड़ते हैं, कभी गुण गाकर नाचने लगते हैं।

अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई * प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई
अतिशय प्रीति देखि रघुवीरा * प्रकटे हृदय हरणभवपीरा

बड़े प्रेम से युक्त भक्ति मुनि ने पाई और स्वामी श्रीरामजी वृक्ष की ओट में छिपकर यह देखते हैं। बड़ी भारी प्रीति देखकर संसार की पीड़ा हरनेवाले रामजी हृदय में प्रकट हुए।

मुनि मगमाँझ अचल होइ वैसा * पुलक शरीर पनसफल जैसा
तब रघुनाथ निकट चलि आये * देखि दशा निजजन मन भाये

मार्ग के बीच में रामचन्द्र को देखकर सुतीक्ष्ण मुनि वैसे ही अचल हैं और उनके अंग में वैसे ही रोमांच हो आया, जैसे कटहल का फल हो। तब रामजी चलकर उनके पास आये और भक्त की दशा देखकर वह उन्हें खूब मन-भाया।



राम सुसहज सुभाव, सेवक दुख दारिद्र दमन।
मुनिसन कह प्रभु आव, उठु उठु द्विज ममप्राणसम॥

श्रीरामजी का सहज स्वभाव है कि वे सेवक का दुःख और दरिद्र मिटाते हैं। रामजी ने कहा—हे द्विज, उठो-उठो, आओ, तुम तो मुझे प्राणों के समान प्यारे हो।

मुनिहिं राम बहुभाँति जगावा * जाग न ध्यानजनित सुखपावा
भूपरूप तब राम दुरावा * हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा

राम ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया; परन्तु वह होश में नहीं आये; ध्यान से उत्पन्न आनन्द में डूब गये। तब रामजी ने राजरूप छिपा लिया और मुनि के हृदय में चतुर्भुज रूप दिखाया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे * विकल हीनफणिमणिबिन जैसे
आगे देखि राम तनु श्यामा * सीता अनुज सहित सुखधामा

तब मुनि इस तरह व्याकुल हो उठे, जैसे मणि के बिना साँप। सीता और छोटे भाई लक्ष्मणसमेत श्याम शरीरवाले सुखधाम श्रीरामजी को आगे देखकर—

परे लकुट इव चरणन लागी * प्रेममगन मुनिवर बड़भागी
भुज विशाल गहि लिये उठाई * प्रेम प्रीति राखेउ उरलाई

डण्डे की भाँति वह रामजी के चरणों में लगकर गिर पड़े। बड़े भाग्यवाले मुनिनायक सुतीक्ष्ण भगवान् के प्रेम में मग्न हो गये। तब लम्बी भुजाओं से पकड़कर श्रीरामजी ने मुनि को उठाया तथा प्रेम और प्रसन्नता के साथ हृदय से लगा लिया।

मुनिहिंमिलत अस सोहकृपाला * कनकतरुहिं जनु भेंट तमाला
रामवदन विलोकि मुनि ठाढ़ा * मानहु चित्रमाँझ लिखि काढ़ा

मुनि को मिलते हुए दयालु रामजी ऐसे सोहते हैं, जैसे सोने के वृक्ष से लिपटा हुआ तमाल का वृक्ष। श्रीरामजी का मुखकमल देखकर मुनि चित्रलिखित-से खड़े हो रहे।



तब मुनि हिरदय धीर धरि, गहि पद बारहिंबार।
निज आश्रम प्रभुआनिकरि, पूजा विविध प्रकार॥

तब हृदय में धीरज धर बार-बार चरण पकड़ मुनि ने अपने आश्रम में लाकर श्रीरामजी की अनेक प्रकार से पूजा की।

कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी * अस्तुति करौं कवनविधि तोरी
महिमाअमित मोरि मति थोरी * रवि सम्मुख खद्योत उजोरी

मुनि ने कहा—हे प्रभो, मेरी विनती सुनिए। मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार और मेरी बुद्धि थोड़ी है। कहीं सूर्य के सामने जुगनू का उजाला हो सकता है?

श्यामतामरसदामशरीरं * जटामुकुटपरिधनमुनिचीरं
पाणिचापशरकटितूणीरं * नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं

श्यामकमल-से शरीरवाले, जटामुकुट धारण किये, मुनियों के-से वस्त्र पहने, हाथ में धनुष-बाण लिये, कमर में तरकस कसे हुए श्रीरामजी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

मोहविपिनघनदहनकृशानू * सन्तसरोरुहकाननभानू
निशिचरकरिवरूथमृगराजं * त्रातु सदा नो भवखगबाजं

मोहरूप घने वन के लिए अग्नि, सन्तरूप कमलवन के सूर्य, निशाचररूप हाथियों के झुण्ड को मारनेवाले सिंह, और संसार के जन्म-मरणरूपी पक्षी के लिए बाज के समान आप सदैव हमारी रक्षा करें।

अरुणनयनराजीवसुवेशं * सीतानयनचकोरनिशेशं
हरहृदमानसराजमरालं * नौमि राम उरबाहुविशालं

लाल कमल-से नेत्रोंवाले, सुन्दर वेष बनाये, सीता के नेत्ररूप चकोरों के चन्द्रमा और शिवजी के हृदयरूप मानसरोवर के हंस रामजी, विशाल हृदय और लम्बी भुजाओंवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

संशयसर्पग्रसनउरगादं * शमनसकलसन्तापविषादं
भयभञ्जन रञ्जनसुरयूथं * त्रातु सदा नः कृपावरूथं

सर्परूप संदेहों को निगलने के लिए गरुड़, सब प्रकार के सन्ताप और विषाद मिटानेवाले, भयभञ्जन, देवताओं को आनन्ददायक और दया की खान आप सदैव हमारी रक्षा करें।

निर्गुणसगुणविषमसमरूपं * ज्ञानगिरागोतीत अनूपं
अमल अखिल अनवद्य अपारं * नौमि राम भञ्जनमहिभारं

निर्गुण, सगुण, विषम और सम रूपवाले तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे अनूप हे रामजी, निर्मल, अखंड, निर्दोष और अनन्त होकर पृथ्वी का भार उतारनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तकल्पपादपआरामं * तर्जनक्रोधलोभमदकामं
अतिनागर भवसागरसेतुं * त्रातु सदा दिनकरकुलकेतुं

भक्तों के लिए कल्पवृक्षों के बाग तथा क्रोध, लोभ, गर्व और काम के नाशक, बड़े चतुर, संसारसमुद्र के सेतु और सूर्यवंश की पताका आप सदैव मेरी रक्षा करें।

अतुलितभुजप्रतापबलधामं * कलिमलविपुलविभञ्जननामं
धर्मवर्म नर्मद गुणग्रामं * सन्तत सन्तनोतु मम रामं

अथाह प्रताप से परिपूर्ण भुजाओंवाले, पराक्रम के धाम, आपका नाम कलियुग के मल को धोनेवाला है। हे धर्म के कवचरूप, कल्याणदायक, गुणधाम रामजी, आप सदैव मेरे कल्याण को बढ़ावें।

यदपि विरज व्यापक अविनासी * सबके हृदय निरन्तरवासी
तदपि अनुज सिय सहित खरारी * बसहु मनसि मम काननचारी

यद्यपि आप मायारहित, सर्वव्यापी और अविनाशी होकर सदा सबके हृदय में रहते

हैं तो भी हे खर दानव के शत्रु, लक्ष्मण और सीतासमेत वन में घूमनेवाले आप मेरे मन में निवास करें।

जे जानहिं ते जानहिं स्वामी * सगुणअगुण उर अन्तरयामी
जो कोशलपति राजिवनयना * करौ सो राम हृदय मम अयना

हे अन्तर्यामी, आपका सगुण या निर्गुण रूप जो जैसा जानते हों वैसा ही जानें; परन्तु मेरे हृदय में कमलसरीखे नेत्रोंवाले जो आप अयोध्या के स्वामी हैं, वही निवास करें।



मायावश जिमि जीव, रहहिं सदा सन्तत मगन।
तिमि लागहु मोहिं पीव, करुणाकर सुन्दर सुखद॥

हे करुणाकर, सुन्दर, सुखद, रामचन्द्र, जैसे माया के वश जीव सदा मगन रहता है, वैसे ही आप मुझे प्रिय लगें।

अस अभिमान जाय जनि मोरे * मैं सेवक रघुपति पति मोरे
रामभक्ति तजि चह कल्याना * सो नर अधम शृगाल समाना

मेरा ऐसा अभिमान भूल से भी दूर न हो कि मैं सेवक और रामजी स्वामी हैं। रामजी की भक्ति छोड़कर जो सुख चाहे, वह नीच मनुष्य सियार के समान अधम है।

सुनि मुनिवचन राममन भाये * बहुरि हर्षि मुनिवर उर लाये
परमप्रसन्न जानि मुनि मोहीं * जो वर माँगु देउँ मैं तोहीं

मुनि के ये वचन सुनकर रामजी के मन भाये। रामजी ने प्रसन्न होकर फिर मुनिनाथ को हृदय से लगा लिया और कहा—हे मुनिवर, मुझे बहुत ही प्रसन्न जानकर जो वर माँगो, वही मैं तुमको दूँगा।

मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा * समुझि न परै झूठ की साँचा
तुमहिं नीक लागै रघुराई * सो मोहिं देहु दाससुखदाई

मुनि ने कहा—मैंने कभी वरदान नहीं माँगा, इससे क्या सच है और क्या झूठ, यह नहीं समझ पड़ता। हे सेवकसुखदायक रघुनाथ! जो आपको अच्छा लगे, वही वर मुझे दीजिए।

अविरल भक्ति विरति विज्ञाना * होहु सकल गुणज्ञाननिधाना
प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा * अब सो देहु मोहिं जो भावा

रामजी बोले—तुम अखण्डभक्ति, वैराग्य, ज्ञान और सब गुणों के निधान होओ। मुनि बोले—जो वर आपने दिया, वह मैंने पाया। अब जो मुझे अच्छा लगा है, वह वर दीजिए।



अनुज जानकीसहित प्रभु, चाप बाण धरि राम।
मम हिय गगन इन्दु इव, करहु सदा विश्राम॥

हे प्रभु रामजी, छोटे भाई और जानकी-सहित धनुष-बाण धारण किये आप चन्द्रमा की तरह मेरे हृदय-आकाश में सदा निवास कीजिए।

एवमस्तु कहि रमानिवासा * हर्षि चले कुम्भजऋषि पासा
मुनि प्रणाम करि युगकरजोरी * सुनहु नाथ कछु विनती मोरी

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर लक्ष्मी के पति रामजी प्रसन्न हुए। फिर वहाँ से अगस्त्य ऋषि के पास चले। मुनि ने प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ, मेरी कुछ विनती सुनिए—

बहुत दिवस गुरु दर्शन पाये * भये मोहिं यहि आश्रम आये
अब प्रभुसङ्ग जाउँ गुरुपाहीं * तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं

गुरु के दर्शन पाकर इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए। इससे अब आपके साथ ही गुरुजी के पास चलूँगा। हे नाथ, इसमें आपका निहोरा नहीं है।

चले जात प्रभ तव पदकंजा * देखिहौं जो विराध मद गंजा
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई * लिये सङ्ग विहँसे दोउ भाई

मार्ग में जाते हुए आप विराध का वध करेंगे, मैं आपके चरणकमल देखूँगा। दयानिधि रामजी ने मुनि की चतुरता देखकर उन्हें साथ लिया और दोनों भाई हँसने लगे।

पन्थ कहत निज भक्ति अनूपा * मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा
आश्रम देखि महाशुचि सुन्दर * सरित सरोवर कानन भूधर
जलचर थलचर जीव जहाँ ते * वैर न करहिं प्रीति सबहीं ते

मार्ग में अपनी अनुपम भक्ति कहते हुए रामजी अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे और उनका महापवित्र, सुन्दर आश्रम देखा, जहाँ नदी, तालाब, वन और पर्वत सोहते थे। जल-थलवासी जितने जीव वहाँ थे, वह परस्पर वैर नहीं, सबसे मेल रखते थे।


तरुपर बहुविधि विहँग मृग, बोलत विविध प्रकार।
बसहिं सिद्धमुनि तप करहिं, महिमा गुण आगार॥

मृग घूमते और वृक्षों पर अनेक प्रकार के पक्षी भाँति-भाँति की बोली बोलते थे। महिमा और गुणों की खानि सिद्ध और मुनि वहाँ बसते और तप करते थे।

तुरत सुतीक्षण गुरु पहँ गयऊ * करि दण्डवत कहत अस भयऊ
नाथ कोशलाधीशकुमारा * आये मिलन जगतआधारा

सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरु अगस्त्य के पास गये और प्रणामकर कहा—हे नाथ, कोशल-सम्राट महाराज दशरथ के पुत्र संसार के आधार रामजी आपसे मिलने आये हैं।

राम अनुज समेत वैदेही * निशि दिन देव जपतहहु जेही

सुनत अगस्त्य तुरत उठिधाये * हरि विलोकि लोचन जलछाये

हे देव, भाई लक्ष्मण और जानकी-सहित रामचन्द्रजी आये हैं, जिनको आप दिन-रात जपते हैं। सुनते ही अगस्त्यजी उठ दौड़े। पापहारी रामजी को देखते ही उनके नेत्रों में जल छा गया।

मुनिपदकमल परे दोउ भाई * ऋषिअति प्रीति लिये उर लाई
सादर कुशल पूछि मुनिज्ञानी * आसन पर बैठारे आनी

अगस्त्य मुनि के चरणकमलों पर दोनों भाई गिर पड़े और ऋषि ने बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया। फिर ज्ञानी अगस्त्य मुनि ने आदरसमेत कुशल पूछी और लाकर आसन पर बिठाया।

पुनि करि बहुप्रकार प्रभुपूजा * मोहिंसम भागवन्त नहिं दूजा
जहँलगि रहे अपर मुनिवृन्दा * हर्षे सब विलोकि सुखकन्दा

फिर बहुत भाँति से रामजी की पूजा करके मुनिवर कहने लगे—मेरे समान भाग्यवान् दूसरा नहीं है। और भी जितने मुनि वहाँ थे, वे सब सुखकन्द रामचन्द्रजी को देखकर प्रसन्न हुए।



मुनिसमूह महँ बैठ प्रभु, सम्मुख सबकी ओर।
शरद इन्दु जनु चितवत, मानहु निकरचकोर॥

मुनिसमूह के बीच में रामजी सबके सामने बैठे। मुनिगण उन्हें वैसे ही देख रहे थे, जैसे चकोरों के झुण्ड शरद्-ऋतु के चन्द्रमा को देखते हैं।

पाइ सुथल जल हर्षित मीना * पारस पाइ सुखी जिमि दीना
प्रभुहिं निरखि सुखभा हहिभाँती * चातक जिमि पाई जल स्वाती

जैसे अच्छे स्थान में जल पाकर मछली और पारस पाकर निर्धन प्रसन्न होता है, वैसे ही प्रभु श्रीरामजी को देखकर सबको सुख हुआ; मानो पपीहा को स्वाती का जल प्राप्त हुआ हो।

तब रघुवीर कहा मुनिपाहीं * तुमसन प्रभु दुराव कछु नाहीं
तुम जानहु जेहि कारण आयउँ * ताते तात न कहि समुझायउँ

तब रामजी ने अगस्त्य मुनि से कहा—हे प्रभो, आपसे कुछ छिपा नहीं है। जिस कारण मैं यहाँ आया हूँ, वह आप जानते ही हैं। उससे हे तात, मैंने खुलासा कहकर नहीं समझाया।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही * जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही
द्विजद्रोही न बचहिं मुनिराई * जिमि पंकजवन हिमऋतु पाई

हे प्रभो, अब मुझे वही सम्मति दीजिए, जिस प्रकार मैं मुनियों के द्रोही राक्षसों को मारूँ। हे मुनिराज, ब्राह्मणों के वैरी वैसे ही न बचें जैसे हेमन्तऋतु आने पर कमल के वन उजड़ जाते हैं।

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी * पूछहु नाथ मोहिं का जानी
तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी * जानौं महिमा कछुक तुम्हारी

रामजी की बात सुनकर अगस्त्य मुनि हँसे और बोले—हे नाथ, क्या समझकर आपने मुझसे यह बात पूछी ? हे पाप के शत्रु, मैं तो आपके भजन के प्रभाव से आपकी कुछ महिमा जानता हूँ।



भृकुटी निरखत नाथ, रहत सदा पदकमलतर।
रचि डारे निज हाथ, विविध विधाता सिद्ध हर॥

हे नाथ, आपकी माया सदैव आपकी भौंहों के इशारे को देखती और चरणकमलों के नीचे रहती है, वही माया, जिसने अपने हाथ से अनेकों ब्रह्मा, सिद्ध और शिव रच डाले हैं।

अतिकराल सब पर जगजाना * औरौ कहौं सुनिय भगवाना
ऊमरि तरु विशाल तव माया * फल ब्रह्मांड अनेक निकाया

आपकी बड़ी भयंकर माया सबके ऊपर और प्रबल है, यह संसार जानता है। हे भगवान्, और भी कहता हूँ, सुनिए। आपकी माया बड़े भारी गूलर के वृक्ष की भाँति है। उसमें अनेकों ब्रह्मांड फलों की भाँति लगे हैं।

जीव चराचर जन्तु समाना * भीतर बसहिं न जानहिं आना
ते फल भक्षक कठिन कराला * तव भय डरत सदा सो काला

उन फलों के भीतर सब स्थावर-जंगम प्राणी भुनगों के समान रहते हैं, और कुछ भी नहीं जानते। उन फलों का खानेवाला बड़ा भयंकर काल भी आपसे डरता रहता है।

ते तुम सकल लोकपति साईं * पूछेहु मोहिं मनुज की नाईं
यह वर माँगौं कृपानिकेता * बसहु हृदय सिय अनुजसमेता

हे स्वामी, वही आप सब लोकों के स्वामी होकर मुझसे मनुष्य की भाँति पूछते हैं। हे दयानिधान, मैं यह वरदान माँगता हूँ कि सीता और लक्ष्मणसमेत आप सदा मेरे हृदय में बसिए।

अविरल भक्ति विरति सतसंगा * चरणसरोरुह प्रीति अभंगा
यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता * अनुभवगम्य भजहिंजेहि सन्ता
अस तव रूप बखानौं जानौं * फिरिफिरि सगुणब्रह्मरतिमानौं

अखंड भक्ति, वैराग्य, सत्संग और चरणकमलों में कभी न टूटनेवाला प्रेम हो। यद्यपि मैं भी जानता और कहता हूँ कि आप अखंड और अनन्त ब्रह्म तथा ज्ञान से पाने योग्य हैं, जिन्हें सब साधु भजते हैं; परन्तु तो भी बार-बार सगुण ब्रह्म में ही मेरी रति है।



जेहि जीवहु पर तव कृपा, सन्तत रहत हुलास।
तिनकी महिमा को कहै, जे अनन्य प्रियदास॥

जिन जीवों पर आपकी दया होती है, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। जो केवल आप ही के दास हैं, उनकी महिमा को कौन कह सकता है?

सन्तत दासन देहु बड़ाई * ताते मोहिं पूछेहु रघुराई
हे प्रभु परम मनोहर ठाऊँ * पावन पंचवटी तेहि नाऊँ

हे रघुनाथ, आप सदैव अपने सेवकों को बड़ाई देते हैं। इसी से आपने मुझसे पूछा है। हे प्रभो, यहाँ एक बड़ा सुन्दर और पवित्र स्थान है, जिसका नाम 'पंचवटी' है।

गोदावरी नदी तहँ बहई * चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई
दण्डकवन पुनीत प्रभु करहू * उग्र शाप मुनिवर के हरहू

वहाँ गोदावरी नदी बहती है। वह स्थान चारों युगों से प्रसिद्ध है। हे प्रभो, दण्डक-वन को पवित्र कीजिए और मुनिनायक का भयंकर शाप दूर कीजिए *।

वास करहु तहँ रघुकुलराया * कीजै सकल मुनिन पर दाया
चले राम मुनि आयसु पाई * तुरतहि पंचवटी नियराई

हे रघुवंशनायक, वहाँ निवास और मुनियों पर दया कीजिए। मुनि की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से चले और तुरन्त ही पंचवटी के पास पहुँचे।

दिव्यलता द्रुम प्रभु मनभाये * निरखि राम ते भये सुहाये
लखण राम सिय चरण निहारी * कानन अघ गा भा सुखकारी

रामजी को देखते ही वे सुहावनी लताएँ और वृक्ष रामजी के लिए मनभाये हो गये। लक्ष्मण, राम और सीता के चरण देखकर वन का शापरूप पाप जाता रहा और वह सुखदायक हो गया।


गृध्रराज सों भेंट भइ, बहु विधि प्रीति दृढ़ाय।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाय॥

वहाँ रामजी की गिद्धराज जटायु से भेंट हुई। उनसे बहुत भाँति से प्रीति दृढ़ करके रामजी गोदावरी के पास पत्तों की कुटी बनाकर रहने लगे।

जबते राम कीन्ह तहँ वासा * सुखी भये मुनि बीते त्रासा
गिरि वन नदी ताल छविछाये * दिनदिन प्रति अतिहोत सुहाये

रामजी ने जब से वहाँ निवास किया, तब से मुनि लोग सुखी हुए और उनका भय जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और ताल छवि से छा गये तथा उनकी सुन्दरता दिनोंदिन बढ़ने लगी।

खग मृग वृन्द अनन्दित रहहीं * मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं

* राजा दण्डक के गुरुकन्या के साथ रमण करने पर गुरु भृगु ने आग बरसने का शाप देकर उनके राज्य को नष्ट कर दिया था। वही दण्डकवन हुआ।

सो बन बरणि न सक अहिराजा * जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा

पक्षी और मृग सुखी रहने लगे। और मधुर स्वर से गुञ्जारकर शोभा पाने लगे। उस वन का वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते, जहाँ प्रत्यक्ष रामजी विराजते हैं।

एक बार प्रभु सुख आसीना * लक्ष्मण बचन कहे छलहीना
सुर नर मुनि सचराचर साँई * मैं पूछौं निज प्रभु की नाई

एक समय रामजी सुखपूर्वक बैठे थे। तब लक्ष्मणजी ने छलरहित ये वचन कहे कि हे देवता, मनुष्य आदि सारे चराचर जगत् के स्वामी, मैं अपना प्रभु समझकर आपसे पूछता हूँ।

मोहिं समुझाइ कहौ सोइ देवा * सब तजि करौं चरणरज सेवा
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया * कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया

हे देव, मुझसे वह समझाकर कहिए, जिससे सब छोड़कर आपके चरणकमलों की रज की मैं सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य, माया और उस भक्ति का वर्णन कीजिए, जिससे आप दया करते हैं।



ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरण रति, शोक मोह भ्रम जाइ॥

हे प्रभो, ईश्वर और जीव का भेद समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में प्रेम हो तथा शोक, मोह और भ्रम जाता रहे।

थोरे महँ सब कहौं बुझाई * सुनहु तात मति मन चितलाई
मैं अरु मोर तोर ते माया * जेहिवश कीन्हें जीव निकाया

रामजी बोले—मैं थोड़े ही में सब समझाकर तुमसे कहता हूँ। हे भाई, बुद्धि, मन और चित्त लगाकर सुनो। यह मैं, मेरा, तू, तेरा आदि का विचार ही माया है, जिसने सभी जीवों को वश में कर रक्खा है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई * सो सब माया जानेहु भाई
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ * विद्या अपर अविद्या दोऊ

जो इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप आदि) हैं और जहां तक मन जाता है, हे भाई, वह सब माया का विषय जानो। उसके दो भेद हैं—एक विद्या और दूसरी अविद्या।

एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा * जा वश जीव परा भवकूपा
एक रचै जग गुणवश जाके * प्रभुप्रेरित नहिं निजबल ताके

एक (अविद्या) दुष्ट और अत्यन्त दुःखरूप है। उसके वश हो जीव संसारकूप में पड़ा है। दूसरी (विद्या) जिसके अधीन गुण हैं, स्वामी की प्रेरणा से संसार रचती है। उसके अपना बल नहीं है।

ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं * देखत ब्रह्मरूप सब माहीं

कहिय तात सो परम विरागी * तृणसम सिद्धि तीनि गुणत्यागी

ज्ञान वही है, जहाँ एक भी मान न हो। ऐसे ज्ञानी लोग सबमें ब्रह्म का रूप देखते हैं। जो तीनों गुणों की सिद्धियों को तृण की भाँति छोड़ देता है, हे भाई, वही बड़ा वैरागी है।



माया ईश न आपु कहँ, जान कहिय सो जीव।

बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥

यह जीव जब तक अपने को माया का स्वामी नहीं जानता, तब तक जीव है, और यह जब अपने को माया का ईश्वर जान लेता है, तब वही बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे, माया का प्रेरक और मर्यादायुक्त ईश्वर हो जाता है।

धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना * ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना

जाते वेगि द्रवौं मैं भाई * सो मम भक्ति भक्तसुखदाई

धर्म से वैराग्य और उसके योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष देनेवाला है—ऐसा वेद कहते हैं। हे भाई, जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होऊँ, वही मेरी भक्ति है, जो भक्तों को सुख देती है।

सो स्वतन्त्र अवलम्ब न आना * जेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना

भक्ति तात अनुपम सुखमूला * मिलहि जो सन्त होयँ अनुकूला

वह भक्ति अपने ही अधीन है—दूसरे का सहारा नहीं लेती। ज्ञान और विज्ञान उसी भक्ति के अधीन हैं—हे तात, भक्ति अनुपम सुख की जड़ है; परन्तु वह तभी मिलती है, जब सन्त लोग अनुकूल हों।

भक्ति के साधन कहौं बखानी * सुगम पन्थ मोहिं पावहिं प्रानी

प्रथमहिं विप्रचरण अतिप्रीती * निज निज धर्म निरत श्रुतिरीती

भक्ति का साधन बखान कर कहता हूँ, जिस सुगम मार्ग से मनुष्य मुझे पाते हैं। पहले तो ब्राह्मणों में बड़ी प्रीति होना और वेदरीति से अपने-अपने धर्म में लगा रहना है।

यहि कर फल मन विषयविरागा * तब मम चरण उपज अनुरागा

श्रवणादिक नव भक्ति दृढाहीं * मम लीला रति अति मनमाहीं

इसका फल यह है कि मन विषयों से अनुराग करना छोड़ देता है, और उससे मेरे चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है। मनुष्य सुनना आदि नव प्रकार की भक्तियाँ * दृढ़ करके मेरी लीला में मन को लगावे।

सन्त चरणपंकज अति प्रेमा * मनक्रमवचन भजन दृढ़ नेमा

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा * सब मोहिं कहँ जानै दृढ़ सेवा

* श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ विष्णु की कथाएँ सुनना, कहना, सुमिरना, चरणसेवन, पूजन, प्रणाम, सेवा, मित्रता और आत्मसमर्पण—यह नौ भाँति की भक्ति है।

सन्तों के चरणकमलों में बड़ा प्रेम करे और दृढ़ नियम करके मन, कर्म, वचन से मेरा भजन करे। गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता, सब मुझ ही को जानकर दृढ़ता से मेरी सेवा करे।

मम गुण गावत पुलक शरीरा * गद्गद गिरा नयन बह नीरा
काम आदि मद दम्भ न जाके * तात निरन्तर वश मैं ताके

पुलकित शरीर होकर गद्गद वाणी से मेरे गुण गावे। प्रेम की उमंग के कारण नेत्रों से जल बहने लगे। जिसके काम, अहंकार, पाखंड आदि नहीं होते, हे तात, मैं सदैव उसके वश रहता हूँ।



वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करैं निष्काम।
तिनके हृदयकमल महँ, करौं सदा विश्राम॥

जिनके वचन, कर्म और मन मुझमें ही लगे हैं, और जो कामनाएँ छोड़कर मेरा भजन करते हैं, उनके हृदयकमल में मैं सदैव निवास करता हूँ।

भक्तियोग सुनि अति सुखपावा * लछमण प्रभु चरणन शिरनावा
नाथ सुने गत भ्रम सन्देहा * भयउ ज्ञान उपजेउ नव नेहा

भक्तियोग को सुनकर लछमणजी ने बड़ा सुख पाया और रामजी के चरणों में शीश नवा-कर कहा—हे नाथ, इसके सुनने से मेरा सन्देह जाता रहा, ज्ञान और नया स्नेह उत्पन्न हुआ।

अनुज वचन सुनि प्रभुमनभाये * हर्षि राम निज हृदय लगाये
यहिविधि गये कछुकदिन बीती * कहत विराग ज्ञान गुण नीती

छोटे भाई लछमण के वचन रामजी ने सुने। वे स्वामी के मन को अच्छे लगे। तब प्रसन्न होकर रामजी ने लछमण को हृदय से लगा लिया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति की चर्चा करते हुए कुछ दिन बीत गये।

शूर्पणखा रावण की बहिनी * दुष्टहृदय दारुण जिमि अहिनी
पञ्चवटी सो गइ इक बारा * देखि विकल भइ युगुलकुमारा

इसी अवसर में एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा, जिसका हृदय दुष्ट था और जो साँपिन की भाँति भयानक थी, पंचवटी को गई। वहाँ दोनों कुमारों को देखकर कामदेव की पीड़ा से व्याकुल हो उठी।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी * पुरुष मनोहर निरखत नारी
होइ विकल सक मनहिं न रोकी * जिमि रविमणि द्रव रविहिं विलोकी

काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुड़, भाई, पिता और पुत्र को सुन्दर देखते ही स्त्री व्याकुल हो जाती है और मन को नहीं रोक सकती; जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्य को देखकर पिघल जाती है।



रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ जाई * बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥

अधम निशाचरि कुटिल अति, चली करन उपहास।
सुनु खगेश भावी प्रबल, भा चह निशिचर नास॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, वह बड़ी टेढ़ी, नीच निशाचरी शूर्पणखा हँसी करने चली। होनी बड़ी बलवान् होती है। देखो, इसी बहाने निशाचरों का नाश हुआ चाहता है।

रुचिररूप धरि प्रभु पहँ आई * बोली मधुर वचन मुसुकाई
तुमसम पुरुष न मो सम नारी * यह सँयोग विधि रचा विचारी

राक्षसी सुन्दर रूप रखकर रामजी के पास आई और मुस्कराकर यों मीठे वचन बोली कि न तुम्हारे समान कोई पुरुष है और न मेरे समान स्त्री। ब्रह्मा ने सोच-विचारकर ही यह संयोग रचा है।

मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं * देखेउँ खोजि लोक तिहुँ माहीं
ताते अबलगि रही कुमारी * मन माना कछु तुमहिं निहारी

मेरे अनुरूप कोई पुरुष संसार में नहीं है। मैंने तीनों लोकों में ढूँढ़ देखा है। इसी कारण मैं अब तक क्वाँरी रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना है, तुम पसंद आये हो।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता * अहै कुमार मोर लघु भ्राता
गइ लछमन रिपुभगिनी जानी * प्रभु बिलोकि बोले मृदुबानी

तब सीताजी की ओर देखकर स्वामी श्रीरामजी ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई अभी क्वाँरा है। राक्षसी तब लछमणजी के पास गई। उन्होंने उसे शत्रु की बहन जान रामजी की ओर देखा और कोमल वाणी से कहा—

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा * पराधीन नहिं तोर सुपासा
प्रभु समरथ कोशलपुर राजा * जो कछु करहिं उन्हें सब छाजा

हे सुन्दरी, मैं तो उनका सेवक हूँ। मेरे पराधीन होने के कारण तुझे सुख-सुपास न होगा। रामजी समर्थ और अयोध्या के राजा हैं। वे जो कुछ करें, वह सब उन्हें सोहता है।



केहरि सम नहिं करिवर, लवा कि बाज समान।
प्रभु सेवक इमि जानहु, मानहु वचन प्रमान॥

जैसे उत्तम हाथी सिंह के समान और बटेर बाज के समान नहीं हो सकता, वैसे ही स्वामी और सेवक को जानो। मेरे वचनों पर विश्वास करो।

सेवक सुख चह मान भिखारी * व्यसनीधनशुभगतिव्यभिचारी
लोभी यश चह चाह गुमानी * नभ दुहि दूध चहत कोउ प्रानी

जैसे सेवक सुख को, भिखारी आदर को, व्यसनी (कामी, क्रोधी आदि) पुरुष धन को, लंपट उत्तम गति को, लोभी यश को, गुमान रखनेवाला सुन्दरता को अथवा मनुष्य आकाश को दुहकर दूध चाहे तो कैसे पा सकता है?

पुनि फिरि रामनिकट सो आई * प्रभु लछमण पहँ बहुरि पठाई
लछमण कहा तोहिं सो बरई * जो तृण तोरि लाज परिहरई

फिर वह राक्षसी रामजी के पास लौट आई। रामजी ने उसे फिर लक्ष्मण के पास भेजा। तब लक्ष्मणजी ने कहा—तुझसे ब्याह वही करेगा, जो तृण की भाँति तोड़कर लाज को छोड़ दे।

तब खिसियानि रामपहँ गई * रूप भयंकर प्रकटत भई
बिथुरे केश रदन बिकराला * भ्रुकुटीकुटिल करालगिगाला

तब खिसियानी हुई राक्षसी फिर रामजी के पास गई। उसने अपना भयानक रूप प्रकट किया। उसके बाल बिखरे, दाँत भयानक, भौंहें टेढ़ी और गाल कानों तक थे।

सीतहिं सभय देखि रघुराई * कहा अनुजसन सैन बुझाई
अनुज राम मन की गति जानी * उठे रिसाइ सो सुनहु भवानी

सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने लक्ष्मणजी को इशारा किया। लक्ष्मणजी राम के मन की बात जान क्रुद्ध होकर उठे। महादेवजी कहते हैं—हे पार्वती, अब आगे का चरित्र सुनो।



लक्ष्मण अति लाघव तिहि, नाक कान बिन कीन्ह।
ताके कर रावण कहँ, मनहु चुनौती दीन्ह॥

लक्ष्मण ने जल्दी से उसके नाक-कान काट लिये; मानो उसी के हाथ रावण को चुनौती दी।

नाक कान बिन भइ बिकरारा * जनु स्रव शैल गेरु के धारा
खरदूषण पहँ गइ बिलखाता * धिकधिक तव पौरुषबल भ्राता

बिना नाक-कान के शूर्पणखा का रूप भयंकर हो गया। मानो पहाड़ से गेरु की धारा बह रही हो। रोती हुई शूर्पणखा खरदूषण के पास गई, और बोली—भाई, तुम्हारे पुरुषार्थ और बल को धिक्कार है!

तेइँ पूछा सब कहेसि बुझाई * यातुधान सुनि सैन बुलाई
चौदह सहस सुभट सँग लीन्हें * जिन सपनेहु रण पीठि न दीन्हे

खर के पूछने पर शूर्पणखा ने सब समाचार समझाकर कहा। उसे सुन खर ने अपनी राक्षसी सेना बुलाई और ऐसे चौदह सहस्र योद्धा साथ लिये, जिन्होंने युद्ध के बीच स्वप्न में भी कभी पीठ नहीं दिखाई।

धाये निशिचर निकर बरूथा * जनु सपक्ष कज्जलगिरि यूथा
नाना बाहन नानाकारा * नाना आयुध घोर अपारा

निशाचरों के झुण्ड के झुण्ड दौड़े, मानो पंखोंसमेत काजल के पहाड़ उड़ चले हों। उनके अनेक प्रकार के आकार, भाँति-भाँति के वाहन और बड़े भयंकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे।

श्याम घटा देखत नभकेरी * तहँ वासवधनु मनहुँ उयेरी
शूर्पणखहिं आगे करि लीनी * अशुभरूप श्रुति नासा हीनी

मानों आकाश की काली घटाओं को देखते ही वहाँ इन्द्रधनुष का उदय हुआ हो। अशुभ रूप, कान और नासिका से हीन शूर्पणखा को खर ने राह दिखाने के लिए आगे कर लिया।



निजनिजबल सब मिलि कहैं, एकहिं एक सुनाय।
बाजन बाज जुझाऊ, हर्ष न हृदय समाय॥

सब मिलकर एक दूसरे को सुनाते हुए अपना-अपना बल कहते हैं। लड़ाई के बाजे बज रहे हैं। आनन्द उनके हृदय में नहीं समाता।

अशकुन अमित होहिं भयकारी * गनहिं न मृत्युविवश भयझारी
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं * देखि कटक भट अति हरषाहीं

बहुत से भयानक असगुन होते हैं; परन्तु मृत्यु के वश राक्षस उन्हें नहीं समझते या उनकी पर्वा नहीं करते। वे सब गरजते, भय दिखाते और आकाश में उड़ते हैं तथा युद्ध में वीरों को देख बड़े प्रसन्न होते हैं।

कोउ कह जियत धरहु दोउभाई * धरि मारहु तिय लेउ छुड़ाई
कोउकहसुनहु सत्य हम कहहीं * कानन फिरहिं वीर कोउ अहहीं

कोई कहता है, जीते ही दोनों भाइयों को पकड़ लो और मारकर उनकी स्त्री छीन लो। कोई कहता है, सुनो, हम सत्य कहते हैं, ये कोई वीर हैं, जो वन में घूमते हैं।

एकै कहा मष्ट ह्वै रहहू * खर के आगे अस जनि कहहू
यहिविधि कहत वचनरणधीरा * आये सकल जहाँ रघुबीरा

एक ने कहा—चुप रहो; खर के आगे ऐसा मत कहो। युद्ध में धीर सब राक्षस इस प्रकार कहते हुए वहाँ आये, जहाँ रामजी थे।

धूरि पूरि नभमण्डल रहेऊ * राम बुलाइ अनुजसन कहेऊ
लै जानकिहिं जाहु गिरिकन्दर * आवा निशिचर कटक भयङ्कर

आकाशमंडल धूल से भर गया। तब राम ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा—जानकी को पहाड़ की कन्दरा में ले जाओ; क्योंकि यह राक्षसों की भयानक सेना आ गई है।

रहेहु सजग सुनि प्रभु की वाणी * चले सहितसिय शरधनु पाणी
देखि राम रिपुदल चलि आवा * विहँसि कठिन कोदण्ड चढ़ावा

परन्तु सचेत रहना। ये रामजी के वचन सुनकर हाथ में धनुष-बाण लिए लक्ष्मणजी सीतासमेत चले। शत्रु की सेना आ गई, यह देखकर रामजी हँसे और उन्होंने धनुष पर डोरी चढ़ाई।

छन्द

कोदण्ड कठिन चढ़ाइ प्रभु शिर जटा बाँधत सोह क्यों।
मरकतशयल पर लसत दामिनिकोटिसों युगभुजग ज्यों॥
कटिकसिनिषंग बिशालभुजगहि चापबिशिख सुधारिकै।
चितवत मनहु मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारिकै॥

कठिन धनुष चढ़ाकर रामजी जटाएँ बाँधते हुए कैसे सोहते हैं जैसे नीलम के पहाड़ पर करोड़ों बिजलियाँ चमकती हों और उनके बीच में दो साँप शोभित हों। रामचन्द्रजी कमर में तरकस और बड़ी-बड़ी भुजाओं में धनुष-बाण धारण कर राक्षसों को कैसे देखते हैं जैसे सिंह हाथियों के झुंड को।



आय गये बगमेल, धरहु धरहु धाये सुभट।
यथा बिलोकि अकेल, बालरबिहिं घेरत दनुज॥

सब बगमेल (घोड़ों आदि की बागें ढीली कर दौड़ के) आ गये। 'पकड़ लो, पकड़ लो' चिल्लाते हुए योद्धा दौड़े। जैसे प्रातःकाल के सूर्य को अकेला देखकर राक्षस उसे घेर लेते हैं।

घेरि रहे निशिचर समुदाई * दण्डक खग मृग चले पराई
प्रभुबिलोकि शर सकहिं न डारी * थकित भये रजनीचर भारी

वैसे ही निशाचरों ने राम को घेर लिया। तब दण्डक वन के पक्षी और मृग भाग चले। राक्षसगण रामजी के सुन्दर रूप को देखकर बाण नहीं छोड़ सकते। वे थकित अर्थात् राम के रूप से मोहित हो गये।

सचिव बोलि बोले खरदूषण * ये कोउ नृपबालक नरभूषण
सुर नर नाग असुर मुनि जेते * देखे सुने हते हम केते

मन्त्रियों को बुलाकर खर और दूषण बोले—मनुष्यों में भूषणरूप ये कोई राजपुत्र हैं। जितने देवता, मनुष्य, नाग, दैत्य, मुनि आदि हैं, उनमें से कितनों ही को हमने देखा-सुना है—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई * देखी नहिं असि सुन्दरताई
यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा * बधलायक नहिं पुरुष अनूपा

परन्तु हे भाइयो, हमने जन्मभर ऐसी सुन्दरता कभी कहीं नहीं देखी। इन्होंने यद्यपि हमारी बहन को कुरूप कर दिया है, तथापि ये अनुपम पुरुष मारने के योग्य नहीं हैं।

देहु तुरत निज नारि दुराई * जीवत भवन जाहु दोउ भाई
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु * तासु वचन सुनि आतुर आवहु

इससे जाकर इनसे कहो कि जिस अपनी स्त्री को इन्होंने छिपा रक्खा है उसे तुरन्त हमें

दे दें और दोनों भाई जीते ही चले जायँ। खर ने कहा—मेरा कहना उन्हें सुनाकर उत्तर में जो वे कहें सुनकर शीघ्र आओ।



भये कालवश मूढ़ सब, जानहिं नहिं रघुबीर।
मशकफूँक किमि मेरुउड़, सुनहु गरुड़ मतिधीर॥

वे मूर्ख काल के वश थे, उनके सिर पर काल सवार था। इससे राम को नहीं जानते। हे चतुर गरुड़! मच्छड़ की फूँक से सुमेरु कैसे उड़ सकता है।

दूतन कहा रामसन जाई * सुनत राम बोले मुसुकाई
आजु भयो बड़ भाग हमारा * तुम्हरे प्रभु अस कीन्ह विचारा

दूतों ने उनका कहना राम से जाकर कहा। सुनते ही रामजी मुस्कराकर बोले—आज हमारा बड़ा भाग्य था, जो तुम्हारे स्वामी ने ऐसा विचार किया है।

हम क्षत्रिय मृगया वन करहीं * तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं
रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं * एक बार कालहु सन लरहीं

परन्तु हम तो क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट मृगों को ढूँढ़ते फिरते हैं। बलवान् शत्रु देखकर हम कभी नहीं डरते; किंतु एक बार काल से भी लड़ सकते हैं।

यद्यपि मनुज दनुजकुल घालक * मुनिपालक खलशालक बालक
जो न होय बल घर फिरिजाहू * समर विमुख मैं हतौं न काहू

यद्यपि हम मनुष्य हैं तो भी राक्षसों के नाशक, मुनियों के पालक और दुष्टों के हृदय में सालनेवाले बालक हैं। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ, युद्ध से भागे हुए को मैं नहीं मारता।

रण चढ़ि करै कपट चतुराई * रिपु पर कृपा परम कदराई
दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ * सुनि खरदूषण उर अति दहेऊ

कोई युद्ध-भूमि में आकर कपट से चतुरता करे और शत्रु पर दया करे तो उसकी यह बड़ी कायरता का काम है। दूतों ने तुरन्त ही जाकर सब समाचार कहे। सुनकर खर और दूषण का हृदय क्रोध की आग से जल उठा।

छन्द

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु विकट भट रजनीचरा।
शर चाप तोमर शक्ति शूल कृपाण परिघ परशुधरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयो महा।
भे बधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥

जब हृदय जलने लगा, तब खर बोला—हे विकट योद्धाओ, राक्षसो, दौड़ो और पकड़ लो। तब धनुष, बाण, तोमर, शक्ति, शूल, खङ्ग, परिघ और फरसा आदि शस्त्र लेकर राक्षस दौड़ पड़े। रामजी ने पहले धनुष को टंकारा, अर्थात् धनुष की डोरी बजाई, जिसके कठोर और भयानक शब्द से राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी ज्ञान न रहा।



सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति।
लागे बर्षन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहु भाँति॥

फिर सावधान हो वे सब दौड़े। शत्रु को बली जानकर वे रामजी पर बहुत भाँति के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे।

तिनके आयुध तिलसम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवणलगि, पुनि छाँड़े निजतीर॥

रामजी ने उनके शस्त्र तिल-तिल करके काट डाले और फिर कान तक धनुष तानकर अपने बाण छोड़े।

छन्द

तब चले बाण कराल * फुंकरत जनु बहु व्याल।
कोपे समर श्रीराम * चलेविशिखनिशितनिकाम॥
अवलोकि परत न तीर * मुरि चले निशिचर बीर।
भय एक कहँ न सँभार * कर तात मात पुकार॥

तब साँपों की भाँति फुंकारते हुए रामचन्द्र के भयंकर बाण चले। युद्ध में श्रीरामजी ने क्रोध किया, तब बड़े पैने बाण चले। वे बाण लगते हैं; परन्तु दिखाई नहीं पड़ते। तब वीर निशाचर युद्ध से भाग चले। एक को दूसरे का सँभाल नहीं है। सब "हा पिता!" "हा माता!" पुकार रहे हैं।

कोउ कहै खर का कीन्ह * जो युद्ध इनसन लीन्ह।
ये बाण अतिहि कराल * ग्रसे आइ मानहु काल॥
भे क्रुद्ध तीनों भाइ * जो भागि रणते जाइ।
तेहि बधब हम निज पानि * फिरे मरण मनमहँ ठानि॥

कोई कहता है—खर ने यह क्या किया, जो इन वीरों से युद्ध किया? ये बाण तो बड़े भयानक हैं। मानो काल ने आकर हमें ग्रस लिया हो। तब तीनों भाई राक्षस क्रुद्ध हुए और बोले—जो युद्ध में भागेगा, उसे हम अपने हाथ से मारेंगे। तब राक्षस लोग मन में मरने को ही ठानकर लौटे।



उमा एक निज प्रभुहिं वश, पुनि इनके बड़भाग।
तरन चहहिं प्रभु शर लगे, बिना योग जप याग॥

महादेवजी कहते हैं—हे पार्वती, एक तो ये राक्षस अपने स्वामी के अधीन हैं। दूसरे उनके बड़े भाग्य हैं; क्योंकि योग, जप, यज्ञ आदि पुण्यकर्म बिना किये ही रामजी के बाण लगने से तरना, मुक्ति पाना चाहते हैं।

आयुध अनेक प्रकार * सम्मुख ते करहिं प्रहार।
रिपु परम कोपेउ जानि * प्रभु धनुष शरसन्धानि॥
छाँड़े विपुल नाराच * लगे कटनविकटपिशाच।
उर शीश कर भुज चरन * जहँ तहँ लगे महि परन॥

राक्षस सम्मुख हो अनेक भाँति के शस्त्र मारते हैं। शत्रुओं को बहुत क्रोध के वश जानकर रामजी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े। तब भयंकर राक्षस कटने लगे; उनके हृदय, मस्तक, भुजा, पैर आदि अंग जहाँ-तहाँ कटकर पृथ्वी में गिरने लगे।

चिक्करत लागत बान * धर परत कुधर समान।
भट कटत तनशतखण्ड * पुनि उठत करिपाखण्ड॥
नभ उड़त बहु भुज मुण्ड * बिन मौलि धावत रुण्ड।
खग कंक काक शृगाल * कटकटहिं कठिनकराल॥

बाण लगने से राक्षस चिल्लाते हैं और उनके धड़ पहाड़ों की भाँति गिरते हैं। योद्धाओं के शरीर सौ खण्ड होकर कट जाते हैं, तो भी वे फिर राक्षसी माया से पाखण्ड करके उठते हैं। आकाश में बहुत-सी भुजाएँ और मस्तक उड़ते हैं। बिना मस्तक के रुण्ड दौड़ते हैं और कठिन कराल गीध, कौआ, सियार आदि मांस खानेवाले जीव कटकटाते हैं।

छन्द

कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर साजहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ योगिनि नाचहीं॥
रघुबीर बाण प्रचण्ड खण्डहिं भटन के उर भुज शिरा।
जहँतहँ परहिं उठि लरहिं धरुधरु करहिं सकल भयंकरा॥

सियार कटकटाते, भूत-प्रेत पिशाच आदि खप्पर साजते, भयंकर बेताल बीर ताल बजाते और योगिनियाँ नाचती हैं। रामजी के प्रचण्ड बाण योद्धाओं के हृदय, भुजा, मस्तक आदि अंगों को काटते हैं। राक्षस जहाँ-तहाँ गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं। सब भयंकर राक्षस 'पकड़ लो, पकड़ लो' चिल्लाते हैं।

अन्त्रावली गहि उड़हिं गृध्र पिशाच करगहि धावहीं।
संग्राम पुरबासी मनहुँ बहु बालगुडी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर बिदारे विपुल भट कहरत परे।
अवलोकिनिजदल विकल भट त्रिशिरादि खरदूषणफिरे।

आँतें पकड़कर गीध उड़ते और पिशाच उनके हाथ पकड़कर दौड़ते हैं, मानो युद्ध-नगर के निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों। रामजी के बाणों के मारे, पछाड़े बहुत-से योद्धा, जिनका हृदय फट गया है, पड़े कराहते हैं। ऐसी अपनी सेना को व्याकुल देखकर खर, दूषण त्रिशिरा आदि योद्धा घूम पड़े।

शर शक्ति तोमर परशु शूल कृपाण एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगणित निशाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महँ रिपु शर निवारि प्रचारि डारे शायका।
दशदश विशिख उरमाँझ मारे सकल निशिचर नायका॥

राक्षसों ने एक साथ बहुत-से बाण, शक्ति, तोमर, परशु, शूल और खड्ग श्रीरामजी पर क्रोध करके फेंके। रामजी ने क्षण भर में शत्रुओं के बाण काटकर सब राक्षसपतियों के हृदय में दस-दस बाण मारे।

महिपरत उठिभट भिरत पुनि पुनि करत माया अतिघनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर एक श्रीरघुकुलमनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अतिकौतुक कर्‌यो।
देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो॥

बाण लगने से योद्धा पृथ्वी में गिरते और फिर उठकर युद्ध करते हैं। वे बड़ी माया करते हैं, जिससे देवता मन में डरते हैं कि चौदह हजार राक्षसों से रघुवंशमणि रामजी अकेले युद्ध कर रहे हैं। देवताओं और मुनियों को डरे देख मायापति रामजी ने एक बड़ा तमाशा किया। शत्रु लोग एक दूसरे को राम-रूप देखने लगे और शत्रुओं की सेना परस्पर लड़कर मर गई।


राम राम करि तन तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारेउ, क्षण महँ कृपानिधान॥

राक्षसगण 'राम-राम' करके शरीर छोड़ मोक्ष पाते हैं। दयानिधान राम ने यत्न से क्षण में सब शत्रु मार गिराये।

हर्षित वर्षहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निशान।
अस्तुति करिकरि सबचले, शोभित विविधविमान॥

प्रसन्न होकर देवता फूल बरसाते हैं। आकाश में नगाड़े बजते हैं। सब स्तुति करके चले और अनेक भाँति के विमानों पर शोभित हुए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते * सुर नर मुनि सबके दुख बीते
तब लक्ष्मण सीतहिं लै आये * प्रभुपद परत हर्षि उरलाये

जब श्रीरामजी ने युद्ध में शत्रुओं को जीता तो देवता, मनुष्य, मुनि आदि सबके दुःख मिट गये। तब लक्ष्मण सीता को ले आये और रामजी के चरणों में प्रणाम किया। रामजी ने प्रसन्न हो उनको हृदय से लगाया।

सीता निरखि श्याम मृदु गाता * परम प्रेम लोचन न अघाता
पंचवटी बसि श्रीरघुनायक * करत चरित सुरमुनिसुखदायक

रामजी का कोमल श्याम शरीर देखकर सीताजी के नेत्र प्रेम से नहीं अघाते। श्रीरामजी पंचवटी में बसकर इस प्रकार देवताओं और मुनियों को सुख देनेवाले चरित्र करते हैं।

धुआँ देखि खरदूषण केरा * शूर्पणखा तब रावण प्रेरा
बोली वचन क्रोधकरि भारी * देश कोश की सुरति बिसारी

खर-दूषण आदि के जलने का धुआँ देखकर शूर्पणखा ने रावण के पास जाकर उसको लड़ने के लिए प्रेरणा की। बड़ा क्रोधकर शूर्पणखा रावण से बोली कि तुमने तो देश-कोश की सुध एकदम भुला दी।

करसि पान सोवसि दिनराती * सुधि न तोहिं शिर पर आराती
राज नीतिबिन धन बिनधर्मा * हरिहिं समर्पे बिन सतकर्मा

मदिरा पीते और दिन-रात सोते रहते हो। तुम्हें यह खबर नहीं कि शत्रु शिर पर आ पहुँचा है। नीति विना राज्य, धर्म विना धन, श्रीविष्णु को समर्पण किये विना उत्तम कर्म,

प्रीति प्रणयबिन मदते गुनी * नाशहिं वेगि नीति अस सुनी
संग ते यती कुमन्त्र ते राजा * मान ते ज्ञान पान ते लाजा

स्नेह विना मित्रता और अहंकार से गुणी, ये सब तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं; मैंने ऐसी नीति सुनी है। साथ करने से यती, दुष्ट मन्त्र से राजा, गर्व से ज्ञान, और मदिरा पीने से लज्जा मिट जाती है।


रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोटकरि।
असकहिविविधविलाप, करि लागी रोदन करन॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, राजा और साँप—इन्हें कभी छोटा न गिने, ऐसा कह विविध विलाप करके शूर्पणखा रोने लगी।


सभा माँझ व्याकुल परी, बहु प्रकार करि रोइ।
तोहिं जियत दशकन्धर, मोरिकि असिगति होइ॥

इस प्रकार बहुत रो-धोकर व्याकुल शूर्पणखा सभा के बीच में गिर पड़ी और बोली—हे दशशीश रावण, तेरे जीते क्या मेरी ऐसी दशा होनी चाहिए।

सुनत सभासद उठ अकुलाई * समुझाई गहि बाँह बिठाई
कह लङ्केश कहसि निज बाता * केइँ तव नासा कान निपाता

यह सुनते ही सभा में बैठा हुआ रावण विकल हो उठा। उसने बाँह पकड़कर बहन को बिठाया। लङ्का का स्वामी रावण बोला। पहले तुम अपनी बात कहो—तुम्हारे नाक-कान किसने काट लिये?

अवध नृपति दशरथ के जाये * पुरुषसिंह वन खेलन आये
समुझिपरी मोहिं उनकी करणी * रहित निशाचर करिहैं धरणी

शूर्पणखा बोली—अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र पुरुषसिंह वन में शिकार खेलने आये हैं। मुझे उनकी कुछ ऐसी करनी समझ पड़ी है कि वह मानो पृथ्वी को राक्षसों से हीन कर देंगे।

जिनकर भुजबल पाइ दशानन * अभय भये मुनि विचरहिं कानन
देखत बालक काल समाना * परमधीर धन्वी गुण नाना

हे रावण, उनकी भुजाओं का बल पाकर मुनि लोग निडर हो वन में विचरते हैं। देखने में तो वे बालक हैं; परन्तु हैं काल के समान। वे बुद्धिमान्, धनुषधारी और अनेक गुणों की खान हैं।

अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता * खलवधरत सुर मुनि सुखदाता
शोभाधाम राम अस नामा * तिनके सँग इक नारि ललामा

दोनों भाइयों में बेशुमार बल और प्रताप भरा है। वे दुष्टों को मारने में लगे हैं और देवता, मुनि आदि को सुख देनेवाले हैं। जिनका नाम राम है, वे तो शोभाधाम हैं ही; उनके साथ एक सुन्दरी स्त्री भी है।


अतिसुकुमारि पियारि, पटतर योग न आहि कोउ।
मैं मन दीख विचारि, जहँ रह तेहि सम आन नहिं॥

वह बड़ी सुकुमारी और पति को प्यारी है। उसकी उपमा के योग्य कोई नहीं। मैंने जहाँ तक विचारकर देखा है, वहाँ तक उसके समान दूसरी स्त्री सारे संसार में नहीं है।

रूपराशि विधि नारि सँवारी * रतिशतकोटि तासु बलिहारी
अजहुँ जाय देखब तुम जबहीं * होइहो विकल तासु वश तबहीं

ब्रह्मा ने उस स्त्री को रूप की राशि ही बनाया है। सैकड़ों करोड़ रति (कामदेव की स्त्री) उस पर न्योछावर हैं। जाकर जब तुम उसे देखोगे तो विकल होकर उसके अधीन हो जाओगे।

जीवनमुक्त लोक वश ताके * दशमुख सुनु सुन्दरि असि जाके
तासु अनुज काटी श्रुतिनासा * सुनि तव भगिनी करि परिहासा

हे दशमुख, जिसके ऐसी सुन्दरी स्त्री है, वह जीवन्मुक्त के समान सुखी है और सब लोग उसके वश में हैं। उन्हीं के छोटे भाई ने तुम्हारी बहन जानकर, उपहास करके, मेरे कान और नाक काट लिये हैं।

निरपराध असि दशा हमारी * अपराधी किमि बचहिं सुरारी
खरदूषण सुनि लाग गुहारा * क्षणमहँ सकल कटक उन मारा

हे देवतों के शत्रु, मेरी तो ऐसी दशा बिना अपराध के हुई; तब अपराधी लोग कैसे बचेंगे? खर-दूषण मेरा हाल सुनकर मेरी गोहार लगे, मेरा बदला लेने गये, परन्तु उनकी सभी सेना उन्होंने क्षण भर में मार गिराई।

खरदूषण त्रिशिरा कर घाता * सुनि दशशीश जरा सब गाता
भयो शोचवश नहिं विश्रामा * बीतहि पल मानहु शतयामा

खर, दूषण और त्रिशिरा का मरना सुनकर रावण की देह में आग-सी लग गई। वह शोच के वश बेचैन हो उठा। उसे पल भर सैकड़ों पहर के समान बीता।

दो० शूर्पणखहिं समुझाइ करि, बल बोलेसि बहुभाँति।
भवनगयउ अतिशोचवश, नींद परी नहिं राति॥

शूर्पणखा को समझाकर बहुत भाँति अपने बल का वर्णन किया। फिर घर के भीतर गया; परन्तु शोचवश उसे नींद नहीं पड़ी।

सुर नर असुर नाग जगमाहीं * मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं
खरदूषण मोसम बलवन्ता * तिन्हैं को मारे बिन भगवन्ता

रावण रात को सोचता है कि संसार के देवता, मनुष्य, दैत्य और नाग कोई मेरे सेवक के भी समान नहीं हैं। खर और दूषण मेरे समान बलवान् थे; उन्हें सिवा भगवान् के और कौन मारेगा?

सुररञ्जन भञ्जन महि भारा * जो जगदीश लीन्ह अवतारा
तो मैं जाइ बैर हठि करिहौं * प्रभुशर ते भवसागर तरिहौं

और यदि देवताओं को आनन्ददायक, पृथ्वी के भार के नाशक, जगतपति श्रीविष्णुजी ने अवतार लिया है, तो मैं जाकर जबरदस्ती या छेड़कर उनसे वैर करूँगा और स्वामी के बाण से भवसागर के पार हो जाऊँगा।

होइ भजन नहिं तामस देहा * मन क्रम वचन मन्त्र दृढ़ येहा
जौं नररूप भूपसुत कोऊ * हरिहौं नारि जीति रण दोऊ

इस तामसी देह से भगवान् का भजन नहीं होता। इस कारण मन, कर्म और वचन से मेरा यही विचार दृढ़ है। और वे अगर कोई साधारण राजपुत्र ही होंगे तो दोनों को संग्राम में जीतकर उनकी स्त्री छीन लाऊँगा।

चला अकेल यान चढ़ि तहँवाँ * बस मारीच सिन्धुतट जहँवाँ
रथ अनूप जोरे खर चारी * वेगवन्त इमि जिमि उरगारी

यों सोचकर रावण रथ पर चढ़कर अकेला ही वहाँ गया, जहाँ समुद्र के किनारे

(उसका मित्र) मारीच रहता था । उसके अनुपम रथ में चार गधे जुते थे, जो ऐसी शीघ्रता से चलते थे, जैसे गरुड़ ।

छन्द

उरगारिसम अतिवेग बरणत जाय नहिं उपमा कही ।
शिर छत्र शोभित श्यामघन जनु चमर श्वेत विराजही ॥
इहिभाँति नाँघत सरित शैल अनेक वापी सोहहीं ।
वन बाग उपवन वाटिका शुचि नगर मुनिमन मोहहीं ॥

उस रथ के गरुड़ के समान वेग की उपमा नहीं कहते बनती । रावण के माथे पर छत्र शोभित है । श्याम मेघों के समान उसके शरीर पर श्वेत चामर विराजते हैं । इस प्रकार मुनियों के मन को मोहनेवाले वन, बाग, फुलवाड़ी, बगीचा, उत्तम नगर, नदी, पहाड़ और अनेक बावलियों को नाँघता हुआ वह रथ सोहता है ।

सुन्दर जीव विविध विधिजाती * करहिं कोलाहल दिन अरुराती
कूदहिं ते गरजहिं घन नाईं * महाबली बल बरणि न जाई

रावण का रथ समुद्र-तट पर वहाँ पहुँचा जहाँ मारीच रहता था । वहाँ अनेक जातियोंवाले सुन्दर जीव दिन-रात कोलाहल करते हैं । वे कूदते और मेघों की भाँति गर्जते हैं और ऐसे बलवान् हैं कि उनके बल का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

कनक बरण सुन्दर सुखदाई * बैठहिं सकल जन्तु तहँ आई
तेहि पर दिव्य लता तरु लागे * जेहि देखत मुनि मन अनुरागे

सोने के-से रंगवाले सुन्दर और सुखदायक सब जीव वहाँ आकर बैठते हैं । ऊपर उत्तम लताएँ और वृक्ष लगे हैं जिनको देखते ही मुनियों का मन प्रसन्न होता है ।

गुहा विविध विधि रहहिं बनाई * बरणत शारद मन सकुचाई
चाहिय जहाँ ऋषिनकर वासा * तहाँ निशाचर करहिं निवासा

अनेक प्रकार की कन्दराएँ बनाकर रहते हैं, जिनका वर्णन करते सरस्वती की भी बुद्धि सकुचती है । जहाँ ऋषियों का निवास चाहिए, वहाँ निशाचर रहते हैं ।

दशमुख देखि सकल सकुचाने * जे जड़ जीव सजीव पराने
यहाँ राम जस युक्ति बनाई * सुनहु उमा सो कथा सुहाई

रावण को देखकर सब सकुच गये और जड़-चैतन्य सब जीव भाग गये । महादेवजी कहते हैं—हे पार्वती, यहाँ पर रामजी ने जैसा उपाय रचा, वह सुहावनी कथा सुनो ।



लछमण गये बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द ।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुखकन्द ॥

जब लक्ष्मणजी वन को मूल, फल और कन्द लेने गये, तब दया और सुख के निधान रामजी हँसकर जनकनन्दिनी जानकी से बोले—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला * मैं कछु करब ललित नरलीला
तुम पावक महँ करहु निवासा * जब लगि करौं निशाचर नासा

हे सुन्दर व्रत और अच्छे शीलवाली प्रिये, मैं कुछ सुहावनी नरलीला करूँगा। तुम तब तक अग्नि के भीतर निवास करो, जब तक मैं निशाचरों का नाश करूँ।

जबहिं राम सब कहेउ बखानी * प्रभुपद धरि हिय अनल समानी
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता * तैसेइ शील स्वरूप विनीता

जब रामजी ने सब हाल समझाकर कहा, तब स्वामी रामजी के चरणकमल हृदय में धारणकर सीताजी अग्नि में पैठ गईं। अपनी ही परछाहीं सीता को वहाँ रख दिया, जिनका शील, स्वरूप और विनय वैसी ही थी।

लक्ष्मणहू यह मर्म न जाना * जो कछु चरित रच्यो भगवाना
दशमुख गयउ जहाँ मारीचा * नाय माथ स्वारथरत नीचा

लक्ष्मण भी यह गुप्त बात न जान पाये, जो चरित्र भगवान् ने रचा। माथा नवाकर अर्थात् अपनी ऐंठ भुलाकर भी स्वार्थ में लगा हुआ नीच रावण जहाँ मारीच था, वहाँ गया।

नवनि नीच की अति दुखदाई * जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई
भयदायक खल की प्रियबानी * जिमि अकाल के कुसुम भवानी

नीच का झुकना बड़ा दुःख देता है, जैसे अंकुश, धनुष, सर्प और बिल्ली का। हे पार्वती, दुष्ट की प्यारी वाणी वैसे ही भय देनेवाली होती है, जैसे असमय के फूल उत्पातसूचक होने के कारण मन में शंका उत्पन्न करते हैं।

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयउ तात॥

तब पूजा कर मारीच ने आदरसमेत पूछा—हे तात, इतने उदास क्यों हो? और अकेले कैसे आये?

दशमुख सकल कथा तेहि आगे * कही सहित अभिमान अभागे
होहु कपटमृग तुम छलकारी * जेहि विधि हरि आनौं नृपनारी

अभागी रावण ने उसके आगे अभिमानसमेत सब कथा कही और कहा कि छल करनेवाले तुम माया से कपट-मृग बन जाओ, जिससे मैं राजा रामचन्द्र की स्त्री को हर सकूँ।

तेहिं पुनि कहा सुनहु दशशीशा * ते नररूप चराचर ईशा
तासों तात बैर नहिं कीजै * मारे मरिय जियाये जीजै

मारीच ने कहा—हे दशशीश रावण! सुनो। वे मनुष्य का रूप धरे चराचर के स्वामी

साक्षात् भगवान् हैं। इससे हे तात, उनसे वैर न करना चाहिए, जिनके मारे हम मरते और जिलाये जीते हैं।

मुनिमखरक्षन गयउ कुमारा * बिनफर शर रघुपति मोहिं मारा
शत योजन आयउँ क्षणमाहीं * तिनसन वैर किये भल नाहीं

ये जब कुमार थे, तभी विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे। तब इन्होंने बिना गाँसी का बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षण भर में चार सौ कोस पर आकर गिरा। उनसे वैर करने में भलाई नहीं है।

भइ मति कीट भृंग की नाईं * जहँ तहँ मैं देखहुँ दोउ भाई
जो नर तात तदपि अति सूरा * तिनहिं विरोध न पाइहि पूरा

भय से मेरी बुद्धि भृङ्गी (एक कीड़ा जो झींगुर को अपने ही रूप का कर लेता है) की भाँति हो गई है। मैं जहाँ-तहाँ दोनों भाइयों को ही देखता हूँ। हे तात, अगर वे मनुष्य ही हैं तो भी बड़े शूर हैं। उनसे वैर करने में पूरा नहीं पड़ने का।



जिन ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हरकोदण्ड।
खरदूषण त्रिशिरा बधेउ, मनुजकिअसबरबण्ड॥

उन्होंने ताड़का और सुबाहु को मारकर महादेवजी का धनुष तोड़ डाला तथा खर, दूषण और त्रिशिरा को मार डाला। क्या मनुष्य ऐसे प्रबल प्रचण्ड होते हैं।

रा अस नाम सुनत दशकंधर * रहत प्राण नहिं मम उरअंतर
जाहु भवन कुल कुशल बिचारी * सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी

हे दशकंधर, पूरे नाम की कौन कहे, केवल 'रा' सुनने ही मेरे हृदय में प्राण नहीं रहते। इससे वंश की कुशल विचारकर घर को चले जाओ। यह सुनते ही रावण जल उठा। उसने मारीच को बहुत-सी गालियाँ दीं।

गुरुजिमि मूढ़ करसि मम बोधा * कहु जग मोहिं समान को योधा
तब मारीच मनहिं अनुमाना * नवहिं विरोधे नहिं कल्याना

रावण बोला—हे मूर्ख, गुरु की भाँति मुझे ज्ञान देता है। बता, संसार में मेरे समान वीर कौन है? तब मारीच ने मन में अनुमान किया कि इन नौ के साथ वैर करने में कुशल नहीं—

शस्त्री मंत्री प्रभु शठ धनी * वैद्य बन्दि कवि कोविद गुनी
उभय भाँति देखा निज मरणा * तब ताकेसि रघुनायकशरणा

शस्त्रधारी, मन्त्री, स्वामी, शठ, धनी, वैद्य, वन्दीजन (भाट), कवि और गुणी विद्वान्, जब मारीच ने दोनों तरह से अपना मरना देखा तो रामजी की शरण तकी।

उतर देत मोहिं वधिहि अभागे * कस न मरहुँ रघुपति शर लागे

अस जियजानि दशाननसंगा * चला रामपद प्रेम अभंगा
मन अति हरष जनाव न तेही * आजु देखिहौं परम सनेही

उत्तर देने से मुझे यह दुष्ट मार डालेगा। इससे रामजी के बाण से ही क्यों न मरूँ? ऐसा जी में जान रामजी के चरणों में पूर्ण प्रेम करके मारीच रावण के साथ चला। रावण को मालूम नहीं होने देता; परन्तु मन में बड़ा प्रसन्न है कि आज बड़े स्नेही रामजी को देखूँगा।

छन्द

निज परम प्रीतम देखि लोचन सफलकरि सुख पाइहौं।
सियसहित अनुजसमेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्वाणदायक क्रोध जाकर भक्ति अवशहि वशकरी।
निजपानिसरसंधानि सो मोहिं बधिहि सुखसागर हरी॥

मैं अपने परम प्यारे रामजी को देखकर आँखें सफल करके सुख पाऊँगा तथा सीता और लक्ष्मणसहित दयानिधान रामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध मोक्ष देनेवाला है और जिन्हें भक्त ने वश किया है, वही सुखसागर रामजी अपने हाथ से बाण को धनुष में चढ़ाकर मुझे मारेंगे।



मम पाछे धरि धावत, धरे शरासन बान।
फिरिफिरिप्रभुहिंबिलोकिहौं, धन्यनमोहिंसमआन॥

धनुष-बाण लेकर रामजी मेरे पीछे दौड़ेंगे और मैं लौट-लौटकर उनको देखूँगा। मुझसा धन्य कोई नहीं है।

सीता लषन सहित रघुराई * जेहिवन बसहिं मुनिन सुखदाई
तेहि वननिकट दशानन गयऊ * तब मारीच कपटमृग भयऊ

सीता और लक्ष्मणसमेत, मुनियों के सुखदायक, रघुनायक रामचन्द्रजी जिस वन में रहते थे, उसी के पास रावण गया। तब मारीच माया से मृग बन गया।

अति विचित्र कछु बरणि नजाई * कनकदेह मणिखचित बनाई
सीता परम रुचिर मृग देखा * अंग अंग सुमनोहर वेखा

वह ऐसा बड़ा विचित्र था कि कुछ वर्णन नहीं किया जाता। उसका सोने का-सा शरीर मानो मणियों से जड़ा हुआ था। सीता ने उस बड़े मनोहर मृग को देखा, जिसके अंग-अंग की बनावट बड़ी सुन्दर थी।

सुनहु देव रघुवीर कृपाला * यहि मृगकर अतिसुन्दर छाला
सत्यसन्ध प्रभु बधकर येही * आनहु चरम कहा वैदेही

'हे कृपालु देव रघुनाथ, इस मृग का चमड़ा बड़ा सुन्दर है। हे सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले स्वामी, इसे मारकर इसका चमड़ा ले आइए' ऐसा जानकीजी ने कहा।

तब रघुपति जाना सब कारन * उठे हरषि सुरकाज सँवारन
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा * करतल चाप रुचिर शर साँधा

तब रामजी ने सब कारण जान लिया और प्रसन्न हुए। वह देवताओं का काम करने के लिए उठे। मृग को देखकर कटि में फेंटा बाँधा और हाथ में उत्तम धनुष-बाण लिया।

प्रभु लछमनहिं कहा समुझाई * फिरत बिपिन निशिचर समुदाई
सीता केरि करेहु रखवारी * बुधि बिबेक बल समय बिचारी

रामजी ने लक्ष्मण से समझाकर कहा कि वन में राक्षस घूमते हैं, इससे बुद्धि, ज्ञान, बल और समय विचारकर जानकी की रक्षा करना।



अस कहि चले तहाँ प्रभु, जहाँ कपटमृग नीच।
सुर हरषित बिसमित जिमि, चातक बरषा बीच॥

ऐसा कहकर रामजी वहाँ को चले, जहाँ वह नीच, कपट-मृग मारीच था। देवता वैसे हर्ष और विस्मय को प्राप्त हुए, जैसे वर्षा के बीच में पपीहा।

प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भाजी * धाये राम शरासन साजी
निगम नेति शिव ध्यान न पावा * मायामृग पाछे सो धावा

प्रभु को देखकर मृग भाग चला और रामजी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े। वेद जिनको 'नेति-नेति' कहते और शिवजी ने जिनको ध्यान में नहीं पाया, वे ही परब्रह्म मायारूप मृग के पीछे दौड़े।

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई * कबहुँक प्रकट कबहुँ दुरि जाई
प्रकटत दुरत करत छल भूरी * यहि बिधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी

मृग कभी पास आता है, कभी दूर भाग जाता है; कभी सामने देख पड़ता है, कभी छिप जाता है। प्रकट होते और छिपते बहुत छल करता हुआ वह मृग रामजी को दूर ले गया।

तब तकि राम कठिन शर मारा * धरणि परेउ करि घोर चिकारा
लछमन कर प्रथमहिं लै नामा * पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा

तब रामजी ने ताककर एक कठिन बाण मारा, जिसके लगते ही वह भयंकर शब्द करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मारीच ने उस समय पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पुकारा पीछे मन में रामजी का स्मरण किया।

प्राण तजत प्रकटेसि निज देही * सुमिरेसि राम सहित बैदेही
अन्तर प्रेम तासु पहिचानी * मुनि दुर्लभ गति दीन्ह भवानी

प्राण छोड़ते समय मारीच ने अपना शरीर प्रकट किया और जानकीसमेत रामजी का स्मरण किया। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, उसका भीतरी प्रेम पहचानकर रामचन्द्रजी ने मुनियों को भी दुर्लभ गति (मोक्ष) उसे दी।



विपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभुगुणगाथ।
निजपद दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ॥

देवता फूल बरसाते और रामजी के गुणों की गाथा गाते हैं। दीनबन्धु रघुनाथ ने उस दैत्य को अपना स्थान दिया।

मृग बधि तुरत फिरे रघुबीरा * सोह चाप कर कटि तूणीरा
आरत गिरा सुनी जब सीता * कह लक्ष्मण सन परम सभीता

मृग को मारकर रामजी तुरन्त ही लौट पड़े। उनके हाथ में धनुष और कमर में तरकस शोभित था। इधर जानकीजी दुःखित वाणी (मारीच का कहा 'हा लक्ष्मण') सुनते ही डरकर लक्ष्मण से बोलीं—

जाहु बेगि संकट तव भ्राता * लक्ष्मण बिहँसि कहा सुनु माता
भृकुटि विलास जासु लय होई * सपनेहु संकट परै कि सोई

जल्दी जाओ, तुम्हारे भाई संकट में पड़े हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा—माता! सुनो, जिसकी भौंह के विलास से प्रलय होता है, वह क्या स्वप्न में भी संकट में पड़ सकता है।

सौंपि गये मोहिं रघुबर थाती * जो तजि जाउँ तोष नहिं छाती
यह जिय जानि सुनहु मम माता * पूछब कहब कवन मैं बाता

रामजी मुझे थाती सौंप गये हैं। जो उसे छोड़कर जाऊँ तो हृदय को संतोष नहीं होता। यह जी में जानकर हे माता, मैं कौन बात पूछूँ और कहूँगा।

मरम वचन जब सीता बोली * हरि प्रेरित लक्ष्मण मति डोली
चहुँदिशि रेख खँचाइ अहीशा * बारहिंबार नाइ पद शीशा

जब सीता ने ममवचन (हृदय में चोट पहुँचानेवाले) कहे कि 'तुम्हारे मन में हमारे लेने की इच्छा है' तब रामजी की प्रेरणा से लक्ष्मण की बुद्धि पलट गई। नागराज लक्ष्मण ने चारों ओर रेखा खींच बार-बार चरणों में माथा नवाकर—

वन दिशि देव सौंपि सब काहू * चले जहाँ रावणशशिराहू
चितवत लषण फिरि सीतहिं कैसे * तजत वत्स निज मातहिं जैसे

वन और दिशाओं के देवताओं को सीताजी को सौंपकर जहाँ रावणरूप चन्द्रमा के राहु रामजी थे, वहाँ को चले। लक्ष्मणजी जानकीजी को कैसे देखते हैं, जैसे माता को छोड़ते समय बछड़ा।



एक डरत डर राम के, दूसर सीय अकेलि।
लषण तेज तन हत भयो, जिमि दाढ़ी दवबेलि॥

एक तो रामजी के डर से डरते हैं, दूसरे सीताजी अकेली हैं। लक्ष्मणजी के शरीर का तेज फीका पड़ गया, जैसे दावानल से बेलि झुलस जाती है।

शून्य भवन दशकन्धर देखा * आवा निकट यती के वेखा
जाके डर सुर असुर डराहीं * निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं

दशकन्धर रावण ने जब राम की कुटी सूनी देखी तो संन्यासी के वेष से उसके निकट आया। जिसके डर से देवता और दैत्य इतना डरते हैं कि रात को उन्हें नींद नहीं आती और न दिन को अन्न खाते हैं—

सो दशशीश श्वान की नाँई * इत उत चितै चला भड़िहाई
जिमि कुपन्थ पग देत खगेशा * रह न तेज तन बुधि लवलेशा

वही रावण कुत्ते की भाँति इधर-उधर देखकर भाँड़हाई (छिछोरपना) करने चला। काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुड़, कुमार्ग में पैर रखते ही देह में तेज और बुद्धि का कुछ भी अंश नहीं रहता।

करि अनेक विधि छल चतुराई * माँगेसि भीख दशानन जाई
अतिथिजानिसिय कन्दमूल फल * देनलगीं तेइँ कीन बहुरि छल

बहुत भाँति छल से चतुरता कर रावण ने जाकर भीख माँगी। अतिथि जानकर जानकीजी कन्द, मूल, फल आदि देने लगीं। तब उसने फिर छल किया।

कह दशमुख सुनु सुन्दरि बानी * बाँधी भीख न लेउँ सयानी
विधिगति वाम काल कठिनाई * रेख लाँघि सिय बाहर आई

वह बोला—हे चतुर सुन्दरी, मैं रेखा से बँधी भीख न लूँगा। तब ब्रह्मा की वाम गति अथवा काल की कठिनता से सीताजी रेखा नाँघकर बाहर आईं।


विश्वभरनि अघदलदलनि, करनि सकल सुरकाज।
जाना नहिं दशशीश तेहि, मूढ़ कपट के साज॥

संसार का भरण-पोषण करनेवाली, पाप को मिटानेवाली और सब देवताओं का काम करनेवाली जानकीजी को कपट-वेषधारी मूर्ख रावण नहीं जान पाया।

नाना विधि कहि कथा सुहाई * राजनीति भय प्रीति दिखाई
कह सीता सुनु यती गोसाईं * बोलेहु वचन दुष्ट की नाईं

उसने अनेक प्रकार की सुहावनी कथाएँ कह सुनाईं। राजनीति, भय और स्नेह भी दिखाया। सीताजी ने कहा—हे संन्यासी, आपने दुष्टों के से वचन कहे हैं, अर्थात् आप संन्यासी नहीं जान पड़ते।

तब रावण निजरूप दिखावा * भइ सभीत जब नाम सुनावा
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा * आवत प्रभु रे खल रहु ठाढ़ा

जब रावण ने अपना रूप दिखाया और अपना नाम सुनाया, तब सीताजी डर गईं। सीताजी ने बहुत धीरज धरकर कहा—रे दुष्ट! खड़ा रह, मेरे स्वामी अभी आते हैं।

जिमि हरिवधुहिं क्षुद्र शश चाहा * भयसि कालवश निशिचरनाहा
वायस कर चह खगपतिसमता * सिन्धुसमान होइ किमि सरिता

जैसे सिंहिनी को क्षुद्र खरगोश पकड़ना चाहे, वैसे ही राक्षसों का स्वामी तू काल के वश हुआ है। कौआ गरुड़ की अथवा नदी समुद्र की बराबरी करे तो कैसे हो सकती है?

खरि कि होइ सुरधेनु समाना * जासि भवन निज सुनु अज्ञाना
सुनत वचन दशशीश लजाना * मनमहँ चरणवन्दि सुख माना

क्या गधी कामधेनु के समान हो सकती है? अरे अज्ञानी! अपने घर भाग जा। यह सुनते ही रावण लजा गया और मन-ही-मन माता जानकी के चरणों में प्रणाम करके सुख माना।



क्रोधवन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय।
चला गगन पथ आतुर, भयवश हाँकि न जाय॥

तब प्रकट में क्रुद्ध रावण ने सीता को रथ में बिठा लिया और शीघ्र आकाशमार्ग में चला, पर भयवश उससे रथ हाँका नहीं जाता।

हा जगदीश देव रघुराया * केहि अपराध बिसारेहु दाया
आरतहरण शरणसुखदायक * हा रघुकुलसरोजदिननायक

जानकीजी पुकारने लगीं—हा जगदीश, देव! किस अपराध से आपने दया भुला दी? हा दुःखहारी, शरणागत को सुख देनेवाले, रघुवंशरूप कमल को खिलानेवाले सूर्य!

हा लक्ष्मण तुम्हार नहिं दोषा * सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोषा
कैकयी मन जो कछु रहेऊ * सो विधि आजु मोहिं दुख दयऊ

हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं, मैंने जो क्रोध किया था, उसका फल पाया। जो कुछ कैकेयी के मन में था, वह दुःख विधाता ने आज मुझे दिया।

पञ्चवटी के खग मृग जाती * दुखी भये वनचर बहुभाँती
विविध विलाप करत वैदेही * भूरिकृपा प्रभु दूरि सनेही

पंचवटी के पक्षी और मृग आदि नाना प्रकार के वनवासी दुखी हुए। जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप करती हैं कि हे प्रभो! जिनकी मेरे ऊपर बड़ी दया थी, वह स्नेही आप दूर हो गये।



बहुविधि करत विलाप नभ, लिये जात दशशीश।
डरत न खल वर पाइ भल, जो दीन्हो अजईश॥

जानकीजी बहुत प्रकार विलाप करती हैं और दशशीश रावण आकाश में उनको लिये जाता है। वह दुष्ट उस उत्तम वरदान के कारण डरता नहीं, जो ईश्वर ब्रह्मा ने उसे दिया था।

विपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा * पुरोडास चह रासभ खावा

सीता कर विलाप सुनि भारी * भये चराचर जीव दुखारी

सीताजी कहती हैं, मेरी विपत्ति प्रभु को कौन सुनावेगा कि यज्ञ का भाग गधा खाना चाहता है। जानकीजी का बड़ा विलाप सुनकर चर-अचर सभी प्राणी दुखी हुए।

गृध्रराज सुनि आरत बानी * रघुकुलतिलकनारि पहिंचानी
अधम निशाचर लीन्हें जाई * जिमि मलेच्छवश कपिलागाई

राह में गिद्धों के राजा जटायु ने दुःखपूर्ण वाणी सुनकर रघुवंशतिलक रामजी की स्त्री को पहचाना। नीच निशाचर जानकी को लिये जाता है, जो म्लेच्छ के वश में पड़ी हुई कपिला गऊ के समान दुखी हैं।

अहह प्रथम बल ममतनु नाहीं * तदपि जाइ देखौं बल ताहीं
सीता पुत्रि करसि जनि त्रासा * करिहौं यातुधान कर नासा

गिद्धराज मन में कहते हैं कि अहह! बड़े खेद की बात है कि मेरे शरीर में अब पहले का-सा बल नहीं है; परन्तु तो भी जाकर उसका बल देखूँगा। हे सीता पुत्री, डरो मत, मैं इस राक्षस का नाश करूँगा।

धावा क्रोधवन्त खग कैसे * छूटे पवि पर्वत पर जैसे
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही * निर्भय चलेसि न जानेसि मोही

तब क्रोधित होकर गिद्धराज वैसे ही दौड़े, जैसे पर्वत पर वज्र छूटे। रे दुष्ट, खड़ा क्यों नहीं होता? बेडर चला जाता है। क्या मुझे नहीं जानता?

आवत देखि कृतान्त समाना * फिरि दशकंध करत अनुमाना
की मैनाक कि खगपति होई * मम बल जान सहित पति सोई
जाना जरठ जटायू येहा * मम करतीरथ छाँड़िहि देहा

काल के समान जटायु को आते देखकर रावण अनुमान करता है कि या तो यह मैनाक है और या गरुड़, जो अपने स्वामी श्रीविष्णुसमेत मेरा बल जानते हैं। जब पास आया तो जाना कि यह वृद्ध जटायु है, मेरे हाथरूप तीर्थ में अपना शरीर छोड़ेगा।


मम भुजबल नहिं जानत, आवत तपिन्ह सहाइ।
समर चढ़े तौ इहि हतौं, जियत न निजथलजाइ॥

रावण बोला—यह मेरी भुजाओं के बल को नहीं जानता, इसी से तपस्वियों की सहायता के लिए आता है। यदि युद्ध करेगा तो इसे मैं मारूँगा। यह जीता हुआ अपने स्थान को नहीं जा सकता।

सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा * कह सुनु रावण मोर सिखावा
तजि जानकी कुशल गृह जाहू * नाहित सत्य सुनहु बहुबाहू

जटायु-रावण-युद्ध



उतर न देत दशानन योधा। तबहिं गृध्र धावा करि क्रोधा॥
तब सक्रोध निशिचर खिसियाना। काटेसि पंख कराल कृपाना॥

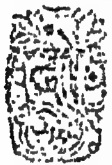
यह सुनते ही क्रोधातुर हो गिद्धराज जटायु दौड़े। उन्होंने कहा—हे रावण, मेरी सीख सुन। जानकी को छोड़कर कुशलसमेत घर चला जा, नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले! सत्य तो यह है—

रामरोष पावक अतिघोरा * होइहि शलभ सकल कुल तोरा
उतर न देत दशानन योधा * तबहिं गृध्र धावा करि क्रोधा

कि रामजी के क्रोधरूप बड़ी भयंकर अग्नि में तेरा सारा वंश पाँखी की भाँति जलकर नष्ट हो जायगा। परन्तु दशानन वीर रावण उत्तर नहीं देता। तब क्रोधकर जटायु दौड़ा।

धरिकच विरथकीन्ह महिगिरा * सीतहि राखि गृध्र पुनि फिरा
दशमुख उठि कृतशर संधाना * गृध्र आइ काटेउ धनु बाना
चोंचन मारि विदारेसि देही * दण्ड एक भइ मूर्च्छा तेही

उन्होंने रावण के बाल पकड़कर उसका रथ तोड़ डाला। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। सीताजी को अलग रखकर गिद्ध फिर लौटा। रावण ने उठकर बाण चढ़ाया। तब जटायु ने आकर धनुष-बाण काट डाले और चोंचों से उसकी देह फाड़ डाली। तब एक घड़ी तक रावण अचेत पड़ा रहा।



जेइ रावण निज वश किये, मुनिगण सिद्ध सुरेश।
तेइ रावण सन समर अति, धीर वीर गृध्रेश॥

जिसने मुनि, सिद्ध, इन्द्र आदि को वश कर लिया, उसी रावण से धीर और वीर गिद्धराज ने बड़ा युद्ध किया।

स्वस्थ भये सो पुनि उठिधावा * मारे गृध्र न सम्मुख आवा
कीन्हेसि बहु जब युद्ध खगेशा * थकित भयो तब जरठ गिधेशा

जब रावण सावधान हुआ तब फिर उठकर दौड़ा। परन्तु गिद्ध की मार के कारण सामने नहीं आया। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, जब उसने बहुत युद्ध किया तो बूढ़ा गिद्ध थक गया।

तबसक्रोधनिशिचरखिसियाना * काढ़ेसि परम कराल कृपाना
काटेसि पंख परा खग धरणी * सुमिरि राम की अद्भुतकरणी

तब क्रोधसमेत निशाचर खिसिया गया और बड़ी भयंकर तलवार निकाली। रावण ने उससे जटायु के पंख काट डाले। तब रामजी की अद्भुत करनी को स्मरण करते हुए पक्षियों के राजा जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े।

मनमहँ गृध्र परम सुखमाना * रामकाज मम लागे प्राना
सीतहि यान चढ़ाय बहोरी * चला उतावल त्रास न थोरी

गिद्ध ने मन में बड़ा सुख माना कि मेरे प्राण रामजी के काम आये। फिर सीता को रथ पर चढ़ाकर रावण शीघ्र चला, जिसके डर थोड़ा नहीं है।

करति विलाप जात नभ सीता * व्याधविवश जनु मृगी सभीता
गिरिपर बैठे कपिन निहारी * कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी
यहिविधि सीतहि सो लै गयऊ * वन अशोकमहँ राखत भयऊ

व्याध के वश में पड़ी भयभीत हरिणी-सी विलाप करती सीता आकाश में जाती हैं। राह में पर्वत पर बैठे वानरों को देख सीता ने हरि का नाम लेकर वस्त्र डाल दिये। इस प्रकार रावण सीता को ले गया और अशोक वन में रक्खा।



हारि परा खल बहुत विधि, भय अरु प्रीति दिखाइ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि यतन कराइ॥

जब हर तरह से भय और प्रीति दिखाकर रावण हार गया, तब यत्न करके उसने सीता को पहरे में अशोक वृक्ष के नीचे रक्खा।

उहाँ विधाता मन अनुमाना * सुरपति बोलि मन्त्र अस ठाना
तात जनकतनया पहँ जाहू * सुधि न पाव जेहि निशिचरनाहू

वहाँ ब्रह्मा ने मन में सोच-समझकर इन्द्र को बुलाया और सलाह की कि हे तात, जिस तरह निशाचरों का राजा रावण जान न पावे उसी तरह छिपकर जानकी के पास जाओ।

असकहिविधिसुन्दरहविआनी * सौंपि बहुरि बोले मृदुवानी
यह भक्षण कृत क्षुधा न प्यासा * वर्ष सहसदश संशय नासा

ऐसा कहकर ब्रह्माजी उत्तम हव्य ले आये और इन्द्र को सौंपकर कोमल वाणी से बोले कि इसके भोजन करने से भूख-प्यास नहीं लगती और दस हजार वर्ष तक प्राण जाने का खटका नहीं रहता।

सो प्रसाद लै आयसु पाई * चले हृदय सुमिरत रघुराई
कछु वासव माया निज मोई * रक्षक रहे गये तहँ सोई

वह प्रसाद ले आज्ञा पाकर इन्द्रजी मन में रामजी का स्मरण करते हुए चले। इन्द्र ने अपनी माया फैला दी, जिससे जो वहाँ अशोक-वाटिका में रखवाले थे, वे सो गये।

तदपि डरत सीतापहँ आयउ * करि प्रणाम निज नाम सुनायउ
निश्चय जानि सुरेश सुजाना * पिता जनक दशरथसम माना
करि परितोष दूरि करि शोका * हव्य खवाय गये निज लोका

तो भी इन्द्र डरते हुए सीताजी के पास आये और प्रणाम करके उनको अपना नाम सुनाया। जब चतुर इन्द्र को निश्चय करके सीता ने जान लिया, तब उनको पिता जनक और ससुर दशरथ के समान माना। इन्द्रजी ने धीरज बँधाकर और शोक दूरकर सीता को वह हव्य खिलाया और अपने लोक को चले गये।



जेहि विधि कपटकुरंग सँग, धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम॥

जिस प्रकार श्रीरामजी कपटमृग के पीछे दौड़कर चले थे, वही छवि हृदय में धारण किये सीताजी वहाँ रामजी का नाम रटती रहती हैं।

रघुपति अनुजहिं आवत देखी * मन बहु चिन्ता कीन्ह विशेखी
जनकसुता परिहरेउ अकेली * आयउ तात वचन मम पेली

रामचन्द्र ने छोटे भाई लक्ष्मण को आते देखा तो उनके मन में विशेष रूप से बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे बोले—भाई, जानकी को तुमने अकेली छोड़ दिया और मेरे वचन टालकर चले आये!

निशिचर निकर फिरहिं वनमाहीं * मम मन सीता आश्रम नाहीं
अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं * सियविहीन मम जीवन काहीं

वन में हजारों राक्षस घूमते हैं, इससे मेरे मन में आता है कि सीता अब आश्रम में नहीं हैं। अहह! तात, तुमने अच्छा नहीं किया; क्योंकि जानकी के विना मेरा जीना कहाँ रह सकता है?

इहिते कवन विपति बड़ि भाई * खोयहु सीय काननहिं आई
गहि पदकमल अनुज करजोरी * कहेउ नाथ कछु मोरि न खोरी

भाई, इससे बड़ी कौनसी विपत्ति है कि वन में आकर जानकी को खो दिया? छोटे भाई लक्ष्मण ने रामजी के चरणकमल पकड़े और हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ, इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं।

अनुज समेत गयउ प्रभु तहँवाँ * गोदावरि तट आश्रम जहँवाँ
आश्रम देखि जानकी हीना * भये विकल जस प्राकृत दीना

तब लक्ष्मण-समेत रामजी वहाँ गये, जहाँ गोदावरी के किनारे उनका आश्रम था। आश्रम में जानकी को न देख पाकर वह साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल हो गये।



कानन रहेउ तड़ाग इव, चक चकई सियराम।
रावणनिशि विछुरन किये, दुख बीते चहु याम॥

वन ही तालाब था और उसमें चकवा-चकई की भाँति सीतारामजी रहते थे। रावणरूप रात ने आकर उन दोनों को अलग कर दिया, जिससे रामजी के चारों पहर दुःख में बीते।

परदुखहरण शोक दुख नाहीं * भा विषाद तिनके मन माहीं
हा गुणखानि जानकी सीता * रूप शील व्रत नेम पुनीता

पराये दुःख के हरनेवाले, शोक और दुःख से हीन रामचन्द्रजी के मन में भी दुःख

हुआ। वे विलाप करते हैं कि हा गुणों की खान जानकी! तुम्हारे रूप, शील, व्रत और नियम पवित्र हैं।

लछमण समुझाये बहु भाँती * पूछत चले लता तरु पाँती
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी * तुम देखी सीता मृगनैनी

लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार समझाया। तब भगवान् राम लताओं और वृक्षों से इस प्रकार पूछते हुए चले—हे पक्षियो! हे मृगो! हे भ्रमरो! क्या तुमने मृगी के से नेत्रोंवाली जानकी को देखा है?

खंजन शुक कपोत मृग मीना * मधुप निकर कोकिला प्रवीना
कुन्दकली दाड़िम दामिनी * कमलशरदशशि अहिभामिनी

खंजन, तोता, कबूतर, मृग, मछली, भौंरा, चतुर कोकिला, कुन्द की कली, अनार के दाने, बिजली की चमक, कमल, शरद् का चन्द्रमा, सर्पिणी,

वरुणपाश मनोजधनु हंसा * गज केहरि निज सुनत प्रशंसा
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं * नेकु न शंक सकुच मनमाहीं

वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हंस, सिंह और हाथी—तुम्हारे न होने से ये सब अपनी प्रशंसा सुनते हैं *। बेल के फल, सुवर्ण, केले के खम्भे, अब ये सब ऐसे प्रसन्न हैं कि इनके मन में कुछ भी शंका और सकुच नहीं है।

सुनु जानकी तोहिं बिन आजू * हर्षे सकल पाइ जनु राजू
किमिसहिजातअनखतोहिंपाहीं * प्रिया वेगि प्रकटत कस नाहीं
इहि विधिविलपतखोजतस्वामी * मनहु महाविरही अतिकामी

सुनो जानकी, तुम्हारे विना आज ये सब ऐसे प्रसन्न हुए कि मानो कहीं का राज्य पा गये। हे प्रिये, इन अपने शत्रुओं (अर्थात् अपने अंगों से स्पर्द्धा रखनेवालों) की प्रसन्नता का अनख तुमसे कैसे सहा जाता है? शीघ्र ही क्यों नहीं प्रकट होतीं? इस प्रकार स्वामी रामजी विलाप करते और ढूँढ़ते हैं, मानो बड़े भारी वियोगी और बड़े कामी हों।


फणि मणिहीन दीनजिमि, मीनहीन जिमि वारि।
तिमि व्याकुल भे लषणतहँ, रघुवरदशा निहारि॥

रामजी की दशा देख मणि के बिना साँप या जल के बिना मछली के समान लक्ष्मणजी विकल हुए।

धरि उर धीर बुझावहिं रामहिं * तजहिंनशोकअधिकसुखधामहिं
पूरण काम राम सुखराशी * मनुज चरितकरअज अविनाशी

हृदय में धीरज धरकर लक्ष्मणजी सुखधाम रामजी को समझाते हैं; परन्तु वे शोक नहीं छोड़ते। पूर्णकाम, सुख की राशि, अज, अविनाशी रामजी मनुष्यों के-से चरित्र करते हैं।

*इन वस्तुओंसे अंगों की उपमा दी जाती है। सीताके अंगोंके आगे इनकी प्रशंसा हो नहीं पाती थी, इससे येप्रसन्न हुए।

सरवर अमित नदी गिरिखोहा * बहुविधि राम लषण तहँ जोहा
शोच हृदय कछु कहि नहिं आवा * टूट धनुष शर आगे पावा

बहुत-से तालाब, नदियाँ और पर्वत की कन्दराएँ श्रीरामजी और लक्ष्मणजी ने भली-भाँति ढूँढ़ीं। हृदय में ऐसा सोच है कि कोई बात मुँह से नहीं निकलती। फिर आगे जाने पर टूटे हुए धनुष और बाण पड़े पाये।

कहुँ कहुँ शोणित देखिय कैसे * श्रावण जल भा डाबर जैसे
कहत राम लक्ष्मणहिं बुझाई * काहू कीन्ह युद्ध यहि ठाँई
आगे परा गीधपति देखा * सुमिरत रामचरण की रेखा

कहीं-कहीं ऐसा रक्त (जमा हुआ) दिखाई देता है, जैसे सावन का मैला पानी। श्रीरामजी लक्ष्मणजी को बताकर कहते हैं कि इस स्थान पर किसी ने युद्ध किया है। फिर आगे पड़े हुए गिद्धराज को देखा, जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की रेखा का स्मरण करते थे।

करसरोज शिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुवीर।
निरखि राम छविधामसुख, विगत भई सब पीर॥

दयासिन्धु श्रीरामजी ने कमलसरीखे हाथ से उनका माथा छुआ। शोभाधाम श्रीरामजी का मुख देख जटायु की सारी पीड़ा जाती रही।

तब कह गीध वचन धरिधीरा * सुनहु राम भञ्जनभवभीरा
नाथ दशानन यह गति कीन्ही * तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही

तब धीरज धरकर जटायु ने कहा—हे संसार की पीड़ा के नाशक, नाथ, श्रीरामजी! दशानन रावण ने मेरी यह दशा की है और उसी दुष्ट ने जनकनन्दिनी जानकी को हरा है।

लै दक्षिणदिशि गयउ गोसाईं * विलपति अति कुररी की नाईं
दरश लागि प्रभु राखेउँ प्राना * चलनचहत अब कृपानिधाना

हे स्वामी, कुररी चिड़िया की भाँति बहुत विलाप करती हुई जानकी को वह दक्षिण की ओर ले गया है। हे कृपानिधान, आपके दर्शनों के लिए ही मैंने अब तक प्राण रख छोड़े थे, अब वे चलना चाहते हैं।

राम कहा तनु राखहु ताता * मुख मुसुकाइ कही तेइँ बाता
जाकर नाम मरत मुख आवा * अधमो मुक्त होइ श्रुति गावा

श्रीरामजी ने कहा—हे तात, शरीर को रक्खो। तब जटायु ने मुस्कराकर यह बात कही कि मरते समय जिसका नाम मुख में आने से नीच पुरुष भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेदों ने गाया है—

सो मम लोचन गोचर आगे * राखहुँ देह नाथ केहि लागे
जल भरि नयन कहा रघुराई * तात कर्म निजते गति पाई

हे नाथ, वही आप मेरी आँखों के आगे उपस्थित हैं। अब किसलिए शरीर रक्खूँ? तब आँखों में आँसू भरकर रामजी ने कहा—हे तात, तुमने अपने कर्म ही से अच्छी गति पाई है।

परहित बस जिनके मनमाहीं * तिन्कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं
तनु तजि तात जाहु मम धामा * देउँ कहा तुम पूरणकामा

जिनके मन में पराया हित बसता है, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं। हे तात, देह छोड़कर तुम मेरे धाम को जाओ। मैं तुम्हें और दे ही क्या सकता हूँ? तुम तो स्वयं पूर्णकाम हो।


सीताहरण तात जनि, कहेउ पितासन जाइ।
जो मैं राम तो कुलसहित, कहिहि दशानन आइ॥

हे तात, सीता का हरा जाना स्वर्ग में पिताजी से न कहना। यदि मैं राम हूँ तो अपने सारे कुल (खानदान) के साथ रावण आप जाकर कहेगा।

गीध देह तजि धरि हरिरूपा * भूषण बहु पटपीत अनूपा
श्यामगात विशाल भुजचारी * अस्तुतिकरत नयन भरि वारी

गिद्ध ने शरीर छोड़कर श्रीविष्णु का रूप धारण किया। बहुत-से गहने व अनुपम पीतवसन पहने। श्यामशरीर, विशाल चार भुजाओंवाले जटायु नेत्रों में जल भरकर इस प्रकार स्तुति करने लगे—

छन्द

जय राम रूपअनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरक सही।
दशशीशबाहुप्रचण्डखण्डन चाप शर मण्डन मही॥
पाथोदगात सरोजमुख राजीवआयतलोचनं।
नित नौमि राम कृपालु बाहुविशाल भवभयमोचनं॥

हे अनूप रूप, आपकी जय हो। आप निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा तीनों गुणों के प्रेरक, दशशीश रावण की प्रचंड भुजाएँ काटनेवाले, धनुषबाणधारी, पृथ्वी के भूषण, घनश्याम शरीर, कमल-से मुखवाले तथा कमलपुष्प के पत्ते सरीखे चौड़े नेत्रोंवाले हैं। मैं उन्हीं कृपालु रामजी को नित्य प्रणाम करता हूँ, जिनकी विशाल भुजाएँ संसार का भय छुड़ानेवाली हैं।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं।
गोविन्द गोपर द्वन्द्वहर विज्ञानघन धरणीधरं॥
जे राममन्त्र जपन्त सन्त अनन्त जनमनरञ्जनं।
नित नौमि राम अकामप्रिय कामादिखलदलगञ्जनं॥

आप अथाह बलवाले, अनादि, जन्मरहित, अप्रकट, एक, गुप्तरूप, इन्द्रियों से परे

गोविन्द, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व के हरनेवाले, विज्ञान-घन, पृथ्वी को धारण करनेवाले, भक्तों का मन प्रसन्न करनेवाले और अनन्त हैं। जिन्हें 'राम' जपनेवाले और निष्काम सन्त प्रिय हैं, उन्हीं काम आदि की दुष्ट सेना के नाशक रामजी को प्रणाम करता हूँ।

जेहि श्रुति निरन्तर ब्रह्म व्यापक विरज अज कहि गावहीं।
करि ज्ञान ध्यान विराग योग अनेक मुनि जेहि ध्यावहीं॥
सो प्रकट करुणाकन्द शोभावृन्द अग जग मोहई।
मम हृदयपंकज भृंग अंग अनंग बहु छवि सोहई॥

जिन्हें वेद सदैव व्यापक, ब्रह्म, छहों विकारों से रहित और जन्महीन कहकर गाते हैं तथा अनेक मुनि ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और योग का अभ्यास कर जिनका ध्यान करते हैं, जिनके अंगों में कोटि काम की शोभा बसती है, वही दयानिधान, शोभाराशि, चराचर को अपनी माया से मोहनेवाले रामजी प्रकट होकर मेरे हृदय-कमल में भ्रमर की नाईं वास करें।

जो अगम सुगम स्वभाव निर्मल असम सम शीतल सदा।
पश्यन्ति यं योगी यतन करि करत मन गो वश सुदा॥
सो राम रमानिवास संतत दासवश त्रिभुवनधनी।
मम उर बसहु सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी॥

कठिनता से और सहज ही पाने योग्य, निर्मल, विषम, सम और शीतल, मन तथा इन्द्रियों को वश में करनेवाले योगियों द्वारा यत्नपूर्वक प्रसन्नता से देखने योग्य लक्ष्मीजी के सदा निवासस्थान, दासों के वश, त्रिभुवननाथ रामजी मेरे हृदय में बसें, जिनकी पवित्र कीर्ति संसार के दुःखों का नाश करती है।



अविरल भक्ति माँगि वर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्हीं राम॥

अखंड भक्ति का वरदान माँगकर जटायु पापहारी श्रीविष्णुजी के धाम को चला गया। उसका यथोचित क्रियाकर्म श्रीरामजी ने अपने हाथ से किया।

कोमलचित अति दीनदयाला * कारण बिनु रघुनाथ कृपाला
गीध अधम खग आमिषभोगी * गति तेहि दीन्ह जो याचत योगी

कोमल चित्तवाले, अति दयालु रामजी बिना कारण ही दीन के ऊपर कृपा करते हैं। देखो, उन्होंने मांस खानेवाले, नीच पक्षी गिद्ध को वही गति दी, जिसे योगीजन माँगते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी * हरि तजि होहिं विषय अनुरागी
पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई * चले विलोकत वन बहुताई

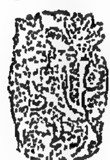
महादेवजी कहते हैं—हे पार्वती, वे अभागे हैं, जो रामजी को छोड़ विषयों को प्यार करते हैं। फिर बहुत-से वन देखते और सीताजी को ढूँढ़ते हुए दोनों भाई चले।

संकुल लता विटप घन कानन * बहु खग मृग तहँ गज पंचानन।
आवत पन्थ कबन्ध निपाता * तेहँ सब कही शाप की बाता

राम को लताओं और वृक्षों से युक्त सघन वन में बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह मिले। रास्ते में आते हुए रामजी ने कबन्ध को मारा। तब उसने अपने शाप की सब बात कही—

दुर्वासा मोहिं दीन्हीं शापा * प्रभु पद देखि मिटा सो पापा
सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही * मोहिं न सुहाय ब्रह्मकुलद्रोही

कि दुर्वासा मुनि ने मुझे शाप दिया था; वह पाप आपके चरणों को देखने से मिट गया। रामजी ने कहा—हे गन्धर्व, जो मैं कहता हूँ, उसे सुनो। ब्राह्मण-कुल का द्रोही मुझे अच्छा नहीं लगता।



मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहिं समेत विरञ्चि शिव, वश ताके सब देव॥

कपट छोड़कर मन, कर्म, वचन से जो ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव और सब देवता उसके वश हो जाते हैं।

शापत ताड़त परुष कहन्ता * विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता
पूजिय विप्र शीलगुणहीना * नहीं शूद्र गुण ज्ञान प्रवीना

सन्त लोग कहते हैं कि शाप देते, मारते और कठोर वचन कहने पर भी ब्राह्मण की पूजा ही करनी चाहिए। शील और गुणों से हीन भी ब्राह्मण पूजने योग्य है; पर गुण और ज्ञान में प्रवीण शूद्र पूजनीय नहीं।

दुष्टौ धेनु दुही सुनु भाई * साधु रासभी दुही न जाई
कहि निज धर्म ताहि समुझावा * निजपद प्रीति देखि मन भावा

भाई, दुष्ट भी गऊ दुही जाती है; पर सीधी गधी नहीं दुही जाती। श्रीरामचन्द्र ने अपना धर्म बतलाकर उसे समझाया और अपने चरणों में उसका प्रेम देखकर प्रसन्न हुए।

रघुपति चरणकमल शिरनाई * गयउ गगन आपनि गति पाई
ताहि देइ गति राम उदारा * शबरी के आश्रम पगु धारा

वह श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाकर अपनी गति (गन्धर्व-शरीर) पाकर आकाश में चला गया। उदार श्रीरामजी उसे उसकी गति देकर शबरी के आश्रम में पधारे।

शबरी देखि राम गृह आये * मुनि के वचन समुझि जिय भाये
सरसिज लोचन बाहु विशाला * जटामुकुट शिर उर बनमाला

श्रीरामजी को घर में आये देख शबरी को मुनिवर के मनभाये वचन कि इस वन में

रामचन्द्रजी आवेंगे, याद आये। कमल-सरीखे नेत्र और लम्बी भुजाओंवाले, माथे पर जटाओं का मुकुट और वक्षःस्थल में वनमाला धारण किये।

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई * शबरी परी चरण लपटाई
प्रेममगन मुख वचन न आवा * पुनि पुनि पदसरोज शिरनावा
सादर जल लै चरण पखारे * पुनि सुन्दर आसन बैठारे

श्याम और गौर दोनों सुन्दर भाइयों (राम और लक्ष्मण) के चरणों से लिपटकर शबरी धरती पर गिर पड़ी, और भगवान् के प्रेम में मग्न हो गई। उसके मुख से वचन न निकला। उसने बार-बार चरणकमलों में शीश नवाया। आदर से जल लेकर चरण धोये। फिर सुन्दर आसनों पर दोनों भाइयों को विठाया।



कन्दमूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खायउ, बारहि बार बखानि॥

शबरी ने रसीले कन्द, मूल, फल लाकर रामजी को दिये। उन्होंने प्रेमसमेत बार-बार प्रशंसाकर ये फल खाये।

पाणि जोरि आगे भइ ठाढ़ी * प्रभुहिं बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी
केहिविधि अस्तुति करहुँ तुम्हारी * अधमजाति मैं जड़मति नारी

शबरी स्वामी रामजी को देख हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई। उसके हृदय में बड़ी प्रीति बढ़ी। वह बोली—मैं तुम्हारी किस भाँति स्तुति करूँ? एक तो नीच जाति, दूसरे बहुत मूर्ख स्त्री हूँ।

अधमते अधम अधम अतिनारी * तिनमहँ मैं मतिमन्द गँवारी
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता * मानौं एक भक्ति कर नाता

नीच से भी नीच और उससे भी बहुत नीच स्त्रियों में भी मैं मन्द बुद्धिवाली गँवारिन हूँ। रामजी ने कहा—हे भामिनी, मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूँ।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई * धन बल परिजन गुण चतुराई
भक्तिहीन नर सोहै कैसे * बिन जल बारिद देखिय जैसे

जाति-पाँति, कुल के धर्म, बड़ाई, धन, पराक्रम, कुटुम्बी, गुण और चतुरता—ये सब हों, तो भी भक्ति से रहित मनुष्य वैसा ही नहीं सोहता, जैसे जल के बिना मेघ।

नवधा भक्ति कहौं तोहिं पाहीं * सावधान सुनु धरु मन माहीं
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा * दूसरि रति मम कथा प्रसंगा

मैं तुमसे नव प्रकार की भक्ति कहता हूँ, सावधान होकर सुनो और उसे याद रक्खो। पहली भक्ति साधुओं का संग करना है। दूसरी मेरी कथाओं के प्रसंग में प्रीति करना है।



गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुणगण, करै कपट तजि गान॥

तीसरी अभिमान छोड़ गुरु के चरणकमलों की सेवा करना और चौथी छल छोड़ मेरे गुण गाना है।

मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा * पंचम भजन सो वेद प्रकाशा
षट दम शील विरति बहु कर्मा * निरत निरन्तर सज्जन धर्मा

पाँचवीं दृढ़ विश्वासकर मेरे मन्त्र का जप और भजन करना है, जिसे वेद ने कहा है। छठी भक्ति इन्द्रियों का जीतना, शील, बहुत कर्मों का त्याग और सज्जनों के धर्म में लगना है।

सतईं सब मोहिंमय जग देखै * मोते सन्त अधिक करि लेखै
अठईं यथा लाभ सन्तोषा * सपनेहुँ नहिं देखै परदोषा

सातवीं सारे संसार को राममय देखना और मुझसे अधिक सन्त को समझना है। आठवीं जो कुछ मिले, उसी में सन्तोष करना और स्वप्न में भी पराये दोष न देखना है।

नवम सरल सब सों छलहीना * मम भरोस हिय हर्ष न दीना
नव महँ एकौ जिनके होई * नारि पुरुष सचराचर कोई

नवीं भक्ति सबसे छलरहित सीधे स्वभाव से व्यवहार करना, मेरा ही भरोसा करना और मन में हर्ष या शोक न रखना है। नवों भक्तियों में से जिसके एक भी हो, वह चराचर संसार में चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष—

सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे * सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे
योगिवृन्द दुर्लभ गति जोई * तोकहँ आजु सुलभ भइ सोई
मम दर्शन फल परम अनूपा * जीव पाव निज सहज स्वरूपा

हे भामिनी, वह मुझे बहुत प्यारा है। फिर तुममें तो सब प्रकार की दृढ़ भक्ति है। योगियों को दुर्लभ गति तुम्हें आज सुलभ हो गई। मेरे दर्शन का यही अनुपम फल है कि जीव उससे अपना सहजरूप जान पाता है।



सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरणन अनुराग।
तवमहिमा जेहि उर बसहि, तासु परम बड़ भाग॥

सब प्रकार तुम्हारे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे चरणों में प्रेम हुआ। तुम्हारी महिमा जिसके हृदय में बसेगी, उसके भी बड़े भाग्य होंगे।

सुनि शुभ वचन हर्ष कहँ पाई * पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई
जनकसुता की सुधि जो भामिनि * जानहु तो कहु करिवरगामिनि

ऐसे उत्तम वचन सुन शबरी प्रसन्न हुई। तब फिर रामजी सुन्दर वाणी बोले—हे गजगामिनी भामिनी, तुम अगर जानकी की कुछ खबर जानती हो तो कहो।

पम्पासरहि जाहु रघुराई * मुनिवर विपुल रहे जहँ छाई
ऋषिमतङ्ग महिमा गुणभारी * जीव चराचर रहत सुखारी

शबरी ने कहा—हे रघुनाथ, पंपासर को जाइए, जहाँ पर बहुत से उत्तम मुनि लोग रहते हैं। मतङ्ग ऋषि की महिमा और गुण बहुत बड़े हैं, जिनके आशीर्वाद से चराचर सभी प्राणी सुखी रहते हैं।

वैर न कर काहूसन कोई * जासन वैर प्रीति कर सोई
शिखर सुहावन कानन फूले * खग मृग जीव जन्तु अनुकूले

कोई किसी से वैर नहीं करता—जिससे वैर होना चाहिए उससे भी प्रीति करता है। पर्वतों के शिखर सुन्दर हैं; वन फूल रहे हैं तथा पक्षी, मृग और सब जीव-जन्तु सुन्दर स्वभाववाले हैं।

करहु सफल श्रम सबकर जाई * तहाँ होइ सुग्रीव मिताई
सो सब कहिहिं देव रघुवीरा * जानत हौ पूछत मतिधीरा
वार वार प्रभुपद शिरनाई * प्रेम सहित सब कथा सुनाई

वहाँ जाकर सबका परिश्रम सफल कीजिए। वहाँ सुग्रीव से मित्रता भी होगी। हे देव रघुवीर, वह सुग्रीव सब वृत्तान्त आपसे कहेंगे। आप बुद्धिमान् होकर सब जानते हैं, फिर पूछते क्या हैं? वार-वार स्वामी रामजी के चरणों में सिर नवाकर शबरी ने इस प्रकार प्रेमसमेत सब कथा सुनाई।

छन्द

कहि कथा सकल विलोकि हरिमुख हृदय पदपंकज धरे।
तजि योगपावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर विविध कर्म अधर्म बहुमत शोकप्रद सब त्यागहू।
विश्वास करि कह दासतुलसी रामपद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर शबरी ने पापहारी रामजी का मुख देखा, हृदय में उनके चरण-कमल बसा लिये। फिर योग की आग से देह छोड़ हरिचरणों में मिल गई, जहाँ से कोई नहीं लौटता। तुलसीदासजी कहते हैं कि मनुष्यों के अधर्मपूर्ण, बहुत मतों के, शोकदायी काम छोड़ो और विश्वासकर रामजी के चरणों में प्रेम करो।



जातिहीन अघजन्म महि, मुक्त कीन्ह असि नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि॥

जाति से हीन, पृथ्वी में पापरूप ऐसी स्त्री को भी जिसने मुक्त किया, हे महामूर्ख मन, ऐसे स्वामी को भुलाकर भी तू सुख चाहता है?

चले राम त्यागेउ वन सोऊ * अतुलित बल नरकेहरि दोऊ
विरही इव प्रभु करत विषादा * कहत कथा अनेक संवादा

श्रीरामजी आगे चले—उन्होंने वह वन भी छोड़ दिया। अतुलित बलवाले, पुरुषसिंह

रामजी और लक्ष्मण थे। प्रभु रामजी वियोगी पुरुष की भाँति शोक करते तथा अनेकानेक संवाद और कथाएँ कहते हैं।

लक्ष्मण देखहु कानन शोभा * देखत केहिकर मन नहिं क्षोभा
नारि सहित सब खग मृगवृन्दा * मानहु मोरि करत हैं निन्दा

रामजी ने कहा—हे लक्ष्मण, वन की शोभा देखो। इसे देख किसके मन में क्षोभ नहीं होगा? सब पक्षी और मृग अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित मानो मेरी निन्दा कर रहे हैं।

हमहिं देखि मृगनिकर पराहीं * मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं
तुम आनन्द करहु मृग जाये * कंचनमृग खोजन ये आये

हमें देखकर मृग भागते हैं और मृगियाँ उनसे कहती हैं कि तुम्हें डर नहीं है। तुम आनन्द करो; ये तो सोने का मृग ढूँढ़ने आये हैं।

सङ्ग लाइ करिणी करि लेहीं * मानहु मोहिं सिखावन देहीं
शास्त्रसुचिन्तितपुनिपुनिदेखिय * भूप सुसेवित वश नहिं लेखिय

हाथी हथिनियों को साथ लेकर चलते हुए मानो मुझे शिक्षा देते हैं कि भली भाँति पढ़े या विचारे हुए शास्त्र को भी बार-बार देखना चाहिए। राजा की यदि भली प्रकार भी सेवा की जाय, तो भी उसे अपने वश में न जानना चाहिए।

राखिय नारि यदपि उर माहीं * युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं
देखहु तात वसन्त सुहावा * प्रियाहीन मोहिं भय उपजावा

इसी तरह यदि स्त्री को हृदय में ही रक्खो तो भी उसे सुरक्षित न समझना चाहिए। मतलब यह कि शास्त्र, राजा और जवान स्त्री, ये कभी वश में नहीं होते। भाई, देखो, वसन्त-ऋतु कैसा शोभित है; परन्तु प्रिया के पास न होने के कारण यह मेरे मन में भय ही उपजाता है।


बिरहबिकल बलहीन मोहिं, जानेसि निपट अकेल।
सहितविपिन मधुकरखगन, मदन कीन्ह बगमेल॥

कामदेव ने मुझे वियोग से व्याकुल, बलहीन और निपट अकेला जान लिया है, इसी से उसने वन, भौंरे और पक्षी आदि अपनी सेना के साथ मुझ पर चढ़ाई कर दी है।

देखि गयउ भ्रातासहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहु तिन, कटकन भट कहि जात॥

कामदेव का दूत वायु भाईसमेत मुझे देख गया है। उसने कहा कि राम के साथ उनका महावीर भाई है। इसी से उसी के खबर देने से मानो कामदेव ने यहाँ डेरा डाल दिया है। योद्धाओं की सेना का वर्णन नहीं किया जा सकता।

बिटप बिशाल लता अरुझानी * बिबिध बितान दिये जनु तानी

कदलि ताल वर ध्वजा पताका * देखि न मोह धीर मन जाका

बड़े लम्बे-चौड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताएँ मानो अनेक प्रकारके तम्बू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ मानो ध्वजा-पताका हैं, जिन्हें देख केवल वह नहीं मोहता; जिसके मन में धीरज है।

विविध भाँति फूले तरु नाना * जनु बानैत बने बहु बाना
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये * जनु भट बिलग बिलग है छाये

भाँति-भाँति के सुन्दर वृक्ष फूल रहे हैं, मानो अनेक रंगके वेष बनाये हुए बानैत (बहुरूपिए) हों। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष ऐसे सोहते हैं, मानो योद्धा अलग-अलग डेरा किये हों।

कूजत पिक मानहु गज माते * ढेक महोख ऊँट बिसराते
मोर चकोर कीर वर वाजी * पारावत मराल सब ताजी

कोयलें बोल रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी हैं। कुलंग और महोख मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर और तोते ही मानो उत्तम घोड़े हैं। कबूतर और हंस मानो सब ताजी घोड़े हैं।

तीतर लावा पदचर यूथा * बरणि न जाइ मनोज वरूथा
रथ गिरिशिला दुन्दुभी झरना * चातक बन्दी गुणगण बरना

तीतर और बटेर मानो पैदल सेना हैं ऐसी कामदेव की सेना का वर्णन नहीं किया जा सकता। पहाड़ों की टूटी शिलाएँ रथ हैं; झरने नगाड़े हैं और पपीहा गुणों का वर्णन करनेवाले भाट हैं।

मधुकर मुखर भेरि सहनाई * त्रिविध बयारि बसीठी आई
चतुरंगिनी सेन सब लीन्हे * विचरत सबहिं चुनौती दीन्हे

भौंरों का शब्द मानो भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन मानो दूत है। ऐसी सब चतुरंगिणी सेना लिए मानो मुझे चुनौती देता हुआ कामदेव इस वन में घूम रहा है।

लक्ष्मण देखहु काम अनीका * रहहिं धीर तिनके जगलीका
यहि के एक परम बल नारी * तेहिते उबर सुभट सोइ भारी

हे लक्ष्मण, काम की सेना को देखो। इसे देख जो धीरज धरें, संसार में उन्हीं की मर्यादा है। इस कामदेव के एक बड़ा बल स्त्री है। उससे जो बच जाय, वही बड़ा योद्धा है।



तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञाननिधान मन, करहिं निमिषमहँ छोभ॥

भाई, काम, क्रोध और लोभ—ये तीन बड़े प्रबल दुष्ट हैं, जो ज्ञानी मुनियों के भी मन को पल भर में चंचल कर देते हैं।

लोभ के इच्छा दम्भबल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि॥

मुनिवर विचार करके कहते हैं कि लोभ का बल इच्छा और पाखण्ड है; काम का बल केवल स्त्री है तथा क्रोध का बल कठोर वचन है।

गुणातीत सचराचर स्वामी * राम उमा सब अन्तरयामी
कामिन की दीनता दिखाई * धीरन के मन बिरति दृढ़ाई

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, तीनों गुणों से परे, चराचर जगत् के स्वामी, सबके अन्तर्यामी श्रीराम ने अपने चरित्र द्वारा कामियों की दीनता दिखाई और धीरों के मन में वैराग्य दृढ़ किया है।

क्रोध मनोज लोभ मद माया * छूटहिं सकल राम की दाया
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला * जापर होइ सो नट अनुकूला

क्रोध, काम, लोभ, अहंकार और माया—ये सब रामजी की दया से छूट जाते हैं। वह मनुष्य इन्द्रजाल की माया में नहीं भूलता, जिस पर वह इन्द्रजाल (माया) का स्वामी नट (श्रीराम) प्रसन्न रहता है।

उमा कहौं मैं अनुभव अपना * हरिकर भजन सत्य जग सपना
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा * पम्पा नाम सुभग गम्भीरा

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, मैं अपना अनुभव कहता हूँ—संसार स्वप्न के समान मिथ्या है। उसमें भगवान् का भजन ही सत्य है। फिर रामजी 'पम्पा' सर के पास गये, जो सुन्दर और गहरा था।

सन्त हृदय जस निर्मल बारी * बाँधे घाट मनोहर चारी
जहँ तहँ पियहिं बिहँग मृग नीरा * जिमि उदारगृह याचक भीरा

उसमें साधुओं के चित्त के समान निर्मल जल भरा था और सुन्दर चार घाट बँधे थे। जहाँ-तहाँ पक्षी और मृग ऐसे जल पी रहे थे, जैसे दानी के घर पर याचकों की भीड़ हो।



पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म॥

सघन पुरैन की ओट होने से शीघ्र जल का भेद नहीं मिलता, जैसे माया से छिपा निर्गुण ब्रह्म नहीं देख पड़ता।

सुखी मीन सब एकरस, अति अगाध जलमाहिं।
यथा धर्मशीलान के, दिन सुख संयुत जाहिं॥

बहुत गहरे जल में सब मछलियाँ एकसी सुखी हैं, जैसे धर्म का आचरण करनेवाले पुरुष के दिन सुख से बीतते हैं।

विकसे सरसिज नाना रंगा * मधुर सुखद गुंजत बहु भृंगा
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा * प्रभु विलोकि जनु करत प्रशंसा

अनेक रंग के फूले हुए कमलों पर भौंरे मधुर व सुखदायक शब्द करते हैं। जलकुक्कुट और बत्तखें बोलती हैं, मानो रामजी को देखकर उनकी प्रशंसा करती हैं।

चक्रवाक बक खग समुदाई * देखत बनै बरणि नहिं जाई
सुन्दर खग गण गिरा सुहाई * जात पथिक जनु लेत बुलाई

चकवा, चकई, बगला और अन्य पक्षियों के समूह देखने ही बनते हैं, उनका बखान नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियों की वाणी ऐसी सुहावनी है, मानो जाते हुए पथिकों को बुला लेती है।

ताल समीप मुनिन गृह छाये * चहुँदिशि कानन विटप सुहाये
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला * पाटल पनस पलास रसाला

तालाब के पास ही मुनियों के घर बने हैं। चारों ओर वन के वृक्ष सोहते हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि

नवपल्लव कुसुमित तरु नाना * चंचरीक पटली कर गाना
शीतल मन्द सुगन्ध सुहाऊ * सन्तत बहै मनोहर बाऊ
कुहू कुहू कोकिल ध्वनि करहीं * सुनि रवसरस ध्यान मुनि टरहीं

अनेक प्रकार के वृक्ष नवीन पत्तों और फूलों से शोभित हैं, जिन पर बैठकर झुण्ड के झुण्ड भौंरे गुंजार रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध सोहाई हवा सदा चलती है। कोकिलाएँ 'कुहकुह' रटती हैं। उनके सरस शब्द को सुन मुनियों की समाधि छूट जाती है।

दो० फूले फले विटप सब, रहे भूमि नियराय।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाय॥

फूले-फले सब वृक्ष ऐसे झुक गये हैं, जैसे अच्छी संपदा पाकर परोपकारी पुरुष झुकते हैं।

देखि राम अति रुचिर तलावा * मज्जन कीन परम सुख पावा
देखि एक सुन्दर तरु छाया * बैठे अनुज सहित रघुराया

फिर रामजी ने वह सुन्दर तालाब देखकर उसमें स्नान किया और बड़ा सुख पाया। फिर एक सुन्दर वृक्ष की छाया देखकर लक्ष्मणसहित रामजी उसके नीचे बैठे।

तहँ पुनि सकल देव मुनि आये * अस्तुति करि निजधाम सिधाये
बैठे परम प्रसन्न कृपाला * कहत अनुजसन कथा रसाला

फिर वहाँ पर सब देवता और मुनि आये तथा स्तुति कर अपने घर चले गये। बैठे हुए बहुत प्रसन्न दयालु रामजी लक्ष्मण से सोहावनी कथाएँ कहते हैं।

विरहवन्त भगवन्तहिं देखी * नारद मन भा शोच विशेखी
मोर शाप करि अंगीकारा * सहत राम नाना दुख भारा

रामजी को वियोग की पीड़ा से युक्त देख नारद के मन में बड़ा शोच हुआ कि मेरा शाप स्वीकार कर रामजी अनेक भाँति के दुःख सह रहे हैं।

ऐसे प्रभुहिं विलोकहुँ जाई * पुनि न बनै अस अवसर आई
यह विचारि नारद करबीना * गये जहाँ प्रभु सुख आसीना

नारद ने सोचा, ऐसे प्रभु के जाकर दर्शन करूँ फिर ऐसा अवसर न बन पड़ेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ में वीणा लेकर वहाँ गये, जहाँ स्वामी रामजी सुख से बैठे थे।

गावत राम चरित मृदु बानी * प्रेम सहित बहुभाँति बखानी
करत दण्डवत लिये उठाई * राखे बहुत बार उर लाई
स्वागत पूछि निकट बैठारे * लछमण सादर चरण पखारे

प्रेम-समेत बहुत भाँति से बखानकर रामजी के चरित्र कोमल वाणी से गाते हुए नारदजी रामजी के पास पहुँचे। दंडवत् प्रणाम करते ही नारदजी को रामजी ने उठा लिया और बड़ी देर तक हृदय से लगाये रहे। फिर कुशल पूछकर पास बिठाया। लछमणजी ने आदर-समेत नारदजी के चरण धोये।


नाना विधि विनती करी, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले वचन तब, जोरि सरोरुह पानि॥

रामजी को प्रसन्न जान नारद ने अनेक प्रकार से विनती की और कर-कमल जोड़कर बोले—

सुनहु उदार परम रघुनायक * सुन्दर अगम सुगम वरदायक
देहु एक वर माँगौं स्वामी * यद्यपि जानहु अन्तरयामी

हे परम उदार रघुनाथ, आप सुन्दर, कठिनता से मिलने योग्य, परन्तु प्रेम से सुगम और वर देनेवाले हैं। हे स्वामी, यद्यपि अन्तर्यामी आप सभी कुछ जानते हैं, तो भी एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिए।

जानहु मुनि तुम मोर स्वभाऊ * जनसन कबहुँ न करौं दुराऊ
कवनवस्तुअसप्रियमोहिं लागी * जो मुनिवर नसकहु तुम माँगी

रामजी बोले—हे मुनिवर, तुम मेरा स्वभाव जानते हो कि कभी भक्त से दुराव नहीं रखता। हे मुनिनाथ, ऐसी कौन-सी वस्तु मुझे प्यारी लगी है, जिसे तुम नहीं माँग सकते?

जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे * अस विश्वास तजहु जनि भोरे
तब नारद बोले हरषाई * अस वर माँगौं करौं ढिठाई

ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मैं अपने भक्त को न दे सकूँ, मैं भक्त को सब कुछ दे सकता हूँ।

ऐसा विश्वास भूल से भी न छोड़िएगा। तब प्रसन्न हो नारदजी बोले—मैं यह वर माँगता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ—

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका * श्रुति कह अधिक एक ते एका
राम सकल नामन ते अधिका * होउ नाथ अघखगगणबधिका

कि यद्यपि आपके अनेकों नाम हैं और एक से एक अधिक हैं, यह वेद कहते हैं। परन्तु हे नाथ, 'राम' नाम सब नामों से अधिक हो। यह नाम पापरूप पक्षियों के नाश के लिए बधिक के समान हो।

राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगण विमल, बसहु भक्तउरव्योम॥

आपकी भक्ति पूनों की रात है। 'राम' नाम चन्द्रमा और दूसरे नाम निर्मल नक्षत्र हैं। आप भक्त के हृदयरूप आकाश में बसिए।

एवमस्तु मुनिसन कहेउ, कृपासिन्धु रघुनाथ।
तब नारद मन हर्ष अति, प्रभुपद नायउ माथ॥

दयासागर राम ने मुनि से 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब बड़े प्रसन्न नारद ने श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम किया।

अति प्रसन्न रघुनाथहिं जानी * पुनि नारद बोले मृदु बानी
राम जबहिं प्रेरेहु निज माया * मोहेहु मोहिं सुनहु रघुराया

फिर श्रीरामजी को बहुत प्रसन्न जान नारदजी यह कोमल वचन बोले कि हे रामजी, जब आपने अपनी माया को प्रेरणा करके मुझे मोहित किया—

तब विवाह चाहा मैं कीन्हा * प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा
सुनु मुनि तोहिं कहौं सहरोसा * भजहिं मोहिं तजिसकलभरोसा

तब मैंने विवाह करना चाहा। तो हे प्रभो, आपने मुझे उस समय ब्याह क्यों नहीं करने दिया? श्रीरामजी ने कहा—हे मुनिवर, मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहता हूँ कि जो सब भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं—

करौं सदा तिनकी रखवारी * जिमि बालकहिं राख महतारी
गहशिशुवच्छअनल अहिधाई * तहँ राखै जननी अरु गाई

उनकी मैं सदैव वैसे ही रक्षा करता हूँ, जैसे माता बालक की। जब बालक और बछड़ा अग्नि या सर्प को दौड़कर पकड़ता है, तब वहाँ माता बालक की और गऊ बछड़े की रक्षा करती है।

प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता * प्रीति करै नहिं पाछिल बाता
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी * बालक सुतसम दास अमानी

परन्तु जब वही पुत्र बड़ा हो जाता है तो माता उस पर पहले की सी प्रीति नहीं करती, या वैसी निगरानी नहीं रखती। ऐसे ही ज्ञानी पुरुष मेरे सयाने लड़के की भाँति हैं। वे अपने को स्वयं सँभाल लेते हैं और मानरहित सेवक नादान बच्चे हैं; उन्हें मैं सँभालता हूँ।

जनहिं मोरबल निजबल ताहीं * दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आहीं
यह विचारि पण्डितमोहिंभजहीं * पायहु ज्ञान भक्ति नहिं तजहीं

दास को मेरा बल है और ज्ञानी को अपना तथा काम-क्रोध आदि इन दोनों के अहितकर शत्रु हैं। यह विचारकर पण्डित लोग मेरा भजन करते हैं और ज्ञान पाने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते।



काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धार।
तिनमहँ अतिदारुणदुखद, मायारूपी नार॥

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह आदि की बड़ी प्रबल सेना है। उसमें भी अति कठिन, दुःखदायी मायारूपिणी स्त्री है।

सुनुमुनि कह पुराण श्रुति सन्ता * मोहविपिन कहँ नारि वसन्ता
जप तप नेम जलाशय झारी * ह्वै ग्रीषम शोषै सब नारी

हे मुनि, पुराण, वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूप वन को बढ़ाने के लिए स्त्री वसन्तऋतु के समान है। जप, तप, नियमरूप जलाशयों और झरनों को स्त्री ग्रीष्मऋतु की भाँति सुखा डालती है।

काम क्रोध मद मत्सर भेका * इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका
दुर्वासना कुमुद समुदाई * तिन कहँ शरद सदा सुखदाई

स्त्री सदैव वर्षाऋतु की भाँति काम, क्रोध, मद, ईर्षारूप मेढकों को आनन्द देनेवाली है। स्त्री सदैव शरद्ऋतु की भाँति दुष्ट वासनारूप कोकावली के समूह को सुख देनेवाली है।

धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा * ह्वै हिम तिनहिं देय दुख मन्दा
पुनि ममता जवास बहुताई * पलुहै नारि शिशिरऋतु पाई

स्त्री धर्मरूप कमल को हेमन्त के समान दुःख देती है। ममतारूप जवासा को स्त्री शिशिर-ऋतु की तरह हरा कर देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी * नारि निविड़रजनी अँधियारी
बुधिबल शील सत्य सब मीना * बंसीसम तिय कहहिं प्रवीना

पापरूप उल्लू को सुख देने के लिए स्त्री अँधेरी रात-सी है। बुद्धि, बल, शील और सत्य—ये सब मछलियाँ हैं, जिन्हें मारने के लिए स्त्री कटिया है, यह चतुर लोग कहते हैं।



अवगुणमूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि॥

स्त्री अवगुणों की जड़, शूल पहुँचानेवाली, सब दुःखों की खान है। हे मुनि, यह जान मैंने तुम्हारा ब्याह रोका था।

सुनि रघुपति के वचन सुहाये * मुनितनु पुलकि नयन भरिआये
कहहु कवन प्रभु कै अस रीती * सेवक पर ममता अति प्रीती

रघुनायक रामजी के ये सुन्दर वचन सुन नारद मुनि के शरीर में रोमांच हो आया और आंखों में आँसू आ गये। कहो, किस स्वामी की ऐसी रीति है, जो सेवक पर इतनी प्रीति और ममता रखता हो।

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रमत्यागी * ज्ञानरंक मतिमन्द अभागी
पुनि सादर बोले मुनि नारद * सुनहु राम विज्ञानविशारद

भ्रम छोड़कर जो ऐसे स्वामी को नहीं भजते, वे ज्ञान के कंगाल, मन्दमति और अभागे हैं। फिर आदरसमेत नारद मुनि बोले—हे विज्ञानविशारद रामजी, सुनिए।

सन्तन के लक्षण रघुबीरा * कहहु राम भंजन भवभीरा
सुनु मुनि सन्तन के गुण कहऊँ * जेहिते मैं उनके वश रहऊँ

हे जन्म-मरणरूप संसार के नाशक रघुनाथ रामजी, सन्तों के लक्षण कहिए। श्रीरामजी बोले— हे मुनिवर, मैं सन्तों के गुण कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

षटविकार तजि अनघ अकामा * अचल अकिंचन शुचि सुखधामा
अमितबोध परमारथभोगी * सत्यसार कवि कोविद योगी
सावधान मदमानविहीना * धीर भक्तिपथपरमप्रवीना

क्रोधादि छहों विकार छोड़, पापरहित, कामनाहीन, अपने धर्म में अटल, अकिंचन, पवित्र, सुख के धाम, ज्ञानी, परमार्थभोगी, सत्यरूप, सारांश के वक्ता और सत्-असत् के ज्ञाता होकर सन्त लोग योग करते हैं। वे सावधान, मद-मान से रहित, धीर और भक्तिमार्ग में चतुर होते हैं।



गुणागार संसारदुख, रहित विगतसन्देह।
तजि मम चरणसरोजप्रिय, तिनकहँ देह न गेह॥

गुणों की खान, संसार के दुःखों से रहित, संदेहहीन सन्तों को मेरे चरणकमलों के सिवा देह, घर आदि और कुछ भी प्यारा नहीं होता।

निज गुण सुनत श्रवण सकुचाहीं * पर गुण सुनत अधिक हरषाहीं
समदरशी नहिं त्यागहिं नीती * सरलस्वभाव सबहिं सन प्रीती

वे अपने गुण सुनकर सकुचते और पराये गुण सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं। वे समदर्शी होते हैं। नीति को नहीं छोड़ते। सीधे स्वभाव के होते और सबसे प्रीति करते हैं।

जप तप व्रत अरु संयम नेमा * गुरु गोविन्द विप्रपद प्रेमा

श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया * मुदिता ममपद प्रीति अमाया

जप, तप, व्रत, संयम, नियम आदि करते और गुरु, श्रीविष्णु तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया, प्रसन्नता, मेरे चरणों में छलरहित प्रीति,

बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना * बोधयथारथ वेद पुराना

दुरुख मान मद करहिं न काऊ * भूलि न देहिं कुमारग पाऊ

वैराग्य, विवेक, नम्रता, विज्ञान और वेद-पुराणों का यथार्थ ज्ञान रखते हैं। कभी पाखण्ड, मान और अहंकार नहीं करते। भूलकर भी कभी कुमार्ग में पैर नहीं रखते हैं,

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला * हेतुरहित परहितरत शीला

सुनु मुनि साधुन के गुण जेते * कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते

वे सदैव मेरी लीलाओं को गाते और सुनते हैं। बिना किसी स्वार्थ के पराये हित में लगे रहते हैं। हे मुनि, साधुओं के जितने गुण हैं, उन सबको साक्षात् सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते।

छन्द

कहि सक न शारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे।
अस दीनबन्धु कृपालु अपने भक्तगुण निजमुख कहे॥
शिर नाइ बारहिंबार चरणन ब्रह्मपुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरिरँगरये॥

सरस्वती और शेष भी उन गुणों को नहीं कह सकते, यह सुन नारदमुनि ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल पकड़ लिये और कहा—आप दीनबन्धु दयालु हैं, इसी से आपने अपने भक्तों के गुण अपने ही मुख से कहे। बार-बार चरणों में माथा नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे धन्य हैं, जो सब आशाएँ छोड़कर भगवान् के रंग में रँगे रहते हैं।



रावणारि यश पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभक्ति दृढ़ पावहिं, बिन बिराग जप योग॥

रावण के मारनेवाले श्रीरामजी का यश जो लोग कहें-सुनेंगे, वे बिना वैराग्य और बिना जप-योग के ही रघुनाथजी की दृढ़ भक्ति पावेंगे।

दीपशिखासम युवतितनु, मन जनि होसि पतंग।
भजिय राम तजि काममद, करिय सदा सतसंग॥

रे मन, दीपक की शिखा के समान स्त्री के रूप की आग में पाँखी की भाँति मत जल, किन्तु काम व अभिमान को छोड़कर रामजी को भज और सदा सज्जनों का संग कर।

आरण्यकाण्ड समाप्त

तुलसीदासकृत रामायण किष्किन्धाकाण्ड

बालबोधिनी टीकासहित





पम्पासर-तट विपिन वर, सहित लषण रघुराज।
रुचिर वेष मुनिवर सुभग, हनुमत पीठि विराज॥
सुगल मिताई वालि वधि, सिय सुधि लहि प्रभु जौन।
किष्किन्धा भाषा करत, वसहु हृदय मम तौन॥

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवन्तौ हि तौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥

कुन्द और नीलकमलसरीखे गोरे लक्ष्मण और श्यामवर्ण श्रीरामजी—दोनों बड़े बली, विज्ञान का स्थान, शोभायुक्त और श्रेष्ठ धनुधर हैं। वेद उनकी स्तुति करते हैं। गऊ और ब्राह्मण उनको प्रिय हैं। मायामनुष्यरूप, रघुवर, उत्तम धर्मवाले, सीताजी के ढूँढ़ने में लगे हुए, मार्ग में प्राप्त वे राम और लक्ष्मण निश्चय ही मुझे अपनी भक्ति देनेवाले हैं।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

वे पुण्यात्मा प्रशंसा के योग्य हैं, जो सदैव श्रीरामजी का नामरूप अमृत पीते हैं। वह रामनाम वेदरूप समुद्र से उत्पन्न, कलियुग के पातकों का नाशक, अविनाशी, श्रीशिवजी के मुखरूप अत्यन्त सुन्दर चन्द्रमा में सदैव विराजमान, जन्म-मरणरूप रोग की औषध, बहुत मधुर और श्रीजानकीजी का जीवन है।



मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञानखानि अघहानिकर।
जहँ बस शम्भुभवानि, सो काशी सेइय कस न॥

मुक्ति के जन्म की भूमि, ज्ञान की खानि, पातकों को नष्ट करनेवाली, और शिव-पार्वती के रहने का स्थान—काशी को ऐसी जानकर उसका सेवन क्यों न करे?

जरत सकल सुरबृन्द, विषमगरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु शङ्करसरिस॥

जिससे सब देवता जले जाते थे, वह कठिन कालकूट विष जिन्होंने पी लिया। हे मन्द-मति, उन शिवजी को क्यों नहीं भजता? भला शिवजी के समान दयालु कौन है?

आगे चले बहुरि रघुराई * ऋष्यमूक पर्वत नियराई
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा * आवत देखि अतुल बलसींवा

फिर रघुनाथ श्रीराम और लक्ष्मण आगे चले और ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे। वहाँ मन्त्रियों-समेत सुग्रीव रहते थे। वह अतुल बल की सीमारूप दोनों भाइयों को आते देख—

अति सभीत कह सुनु हनुमाना * पुरुष युगल बल रूपनिधाना
धरि बटुरूप देखु तैं जाई * कहेसि जानि मोहिं सैन बुझाई

बहुत डरे हुए सुग्रीव ने कहा—हे हनुमान्, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धरकर जाओ और देखो, ये कौन हैं? फिर यह सब जानकर मुझे इशारे से बतलाना।

पठवा बालि होय मन मैला * भागौं तुरत तजौं यह शैला
विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ * माथ नाय पूछत अस भयऊ

अगर बालि ने मनोमालिन्य के कारण इन्हें मुझे मारने के लिए भेजा हो तो मैं तुरन्त इस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ। ब्राह्मण का रूप रखकर हनुमान् वहाँ गये और माथा नवाकर पूछा—

को तुम श्यामल गौर शरीरा * क्षत्रियरूप फिरहु वन वीरा
कठिनभूमि कोमलपदगामी * कवन हेतु वन विचरहु स्वामी

श्याम और गौर शरीरवाले तुम कौन वीर हो, जो क्षत्रियों के वेष से वन में घूमते हो? भूमि कड़ी है और आप कोमल चरणों से इस पर चलते हैं। हे स्वामी, इस वन में आप किसलिए घूमते हैं?

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता * सहत दुसह वन आतप वाता
की तुम तीनि देव महँ कोऊ * नर नारायण की तुम दोऊ

कोमल और मन को हरनेवाले तुम्हारे सुन्दर शरीर हैं, जो इस वन में कठोर घाम और वायु को सहते हैं। तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवों में से कोई हो या नर और नारायण हो?



जग कारण तारण भवहिं, भंजन धरणी भार।
की तुम अखिलभुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार॥

अथवा संसार के कारण, तारनेवाले, सब लोकों के स्वामी तुम हो और तुमने पृथ्वी का भार उतारने के लिये यह मनुष्य का अवतार लिया है।

हँसि बोले रघुवंशकुमारा * विधिकर लिखा को मेटनहारा
कोशलेश दशरथ के जाये * हम पितुवचन मानि वन आये

तब रघुवंशकुमार श्रीरामजी हँसकर बोले—ब्रह्मा का लेख मेटनेवाला कौन है ? हम कोशलाधीश महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा मानकर वन को आये हैं।

नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई * संग नारि सुकुमारि सुहाई
इहाँ हरी निशिचर वैदेही * खोजत विप्र फिरहिं हम तेही

हमारा नाम राम और लक्ष्मण है। हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुकुमारी और सुन्दरी स्त्री थी। हे विप्र! यहाँ मेरी स्त्री जानकी को राक्षस हर ले गया। हम उसीको ढूँढ़ते फिरते हैं।

आपन चरित कहा हम गाई * कहहु विप्र निज कथा बुझाई
प्रभु पहिचानि पर्यो गहि चरणा * सो सुख उमा जाय नहिं बरणा

हमने अपना हाल तो कहा, अब हे विप्र, आप अपनी कथा समझाकर कहिए। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, हनुमान अपने स्वामी को पहचान चरण पकड़कर गिर पड़े। वह सुख कहा नहीं जाता।

पुलकित तनु सुख आव न वचना * देखत रुचिर वेष की रचना
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हा * हर्ष हृदय निज नाथहिं चीन्हा

उनकी देह में रोमांच हो आया। उनके मुख से वचन नहीं निकलते। वह एकटक सुन्दर स्वरूप की रचना देखते हैं। फिर धीरज धरकर हनुमान ने स्तुति की और अपने स्वामी को पहचान जाने के कारण उनका मन परम प्रसन्न हो गया।

मोर न्याव मैं पूछौं साईं * तुम कस पूछहु नर की नाईं
तव मायावश फिरौं भुलाना * ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना

हे स्वामी, यदि मैंने न जानकर पूछा तो योग्य ही है; परन्तु आप साधारण मनुष्य की भाँति क्यों पूछते हैं ? आपकी ही माया के वश में भूला फिरता हूँ, और इसी से मैंने आपको नहीं पहचाना।

एक मन्द मैं मोहवश, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेहु, दीनबन्धु भगवान॥

एक तो मैं मूढ़, मोह के वश, कुटिल हृदयवाला और अज्ञानी हूँ, उस पर हे दीनबन्धु, भगवान, प्रभो, आपने भी मुझे भुला दिया।

यदपि नाथ अवगुण बहु मोरे * सेवक प्रभुहिं परै जनि भोरे
नाथ जीव तव माया मोहा * सो निस्तरै तुम्हारे छोहा

हे नाथ, यद्यपि मेरे बहुत अवगुण हैं, तो भी स्वामी को सेवक के तईं नहीं भुला देना

चाहिए। हे नाथ, यह जीव आपकी माया से मोहित है, और केवल आपकी ही दया से पार पा सकता है।

तापर मैं रघुवीर दोहाई * जानौं नहिं कछु भजन उपाई
सेवक सुत पितु मातु भरोसे * रहै अशोच बनै प्रभु पोसे

तिस पर हे रघुनाथ, मैं तो आपकी सौगन्द खाकर कहता हूँ कि कुछ भी भजन का उपाय नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता-पिता के भरोसे शोकरहित रहता है, और स्वामी को पालन किये बनता है।

अस कहि चरण गहे अकुलाई * निज तनु प्रकट प्रीति उरछाई
तब रघुपति उठाय उर लावा * निज लोचनजल सींचि जुड़ावा

ऐसा कह विकल हो हनुमान् ने रामचन्द्रजी के चरण पकड़ लिये और अपना असली रूप प्रकट किया। प्रेम उनके हृदय में छा रहा है। तब रामजी ने उनको उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर उन्हें शान्त किया।

सुनु कपिजिय जानसि जनिऊना * तैं मम प्रिय लछमण ते दूना
समदरशी मोहिं कह सब कोई * सेवक प्रिय अनन्य गति होई

फिर बोले—हे वानर, मन में कुछ कम न मानना। तुम मुझे लछमण से दूने प्रिय हो। मुझे सब समदर्शी कहते हैं; परन्तु मुझे अनन्यगति अर्थात् जिनकी और गति नहीं है, वे सेवक प्रिय हैं।

सो अनन्य जाके असि, मति न टरै हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूपराशि भगवन्त॥

हे हनुमान्, अनन्य वह है, जिसकी ऐसी बुद्धि नहीं हटती कि 'मैं सेवक हूँ और रूप की राशि भगवान् चराचर में व्याप्त हैं'।

देखि पवनसुत पति अनुकूला * हृदय हर्ष बीते सब शूला
नाथ शैलपर कपिपति रहई * सो सुग्रीव दास तव अहई

पवन के पुत्र हनुमान् स्वामी रामजी को सन्तुष्ट देख मन में प्रसन्न हुए और उनके सब दुःख मिट गये। वह बोले—हे नाथ, वानरों के राजा सुग्रीव इस पर्वत पर रहते हैं। वह आपके सेवक हैं।

तेहिसन नाथ मयत्री कीजे * दीन जानि तेहि अभय करीजे
सो सीताकर खोज कराइहि * जहँ तहँ मर्कट कोटि पठाइहि

हे नाथ, उनसे मित्रता कीजिये और दुखी जानकर उन्हें निर्भय कीजिये। वह सीता की खोज करावेंगे और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानर भेजेंगे।

यहिविधि सकल कथा समुझाई * लिये दोउ जन पीठि चढ़ाई

दौड़े। वालि की स्त्री तारा बहुत प्रकार विलाप करने लगी। उसके बाल खुल गये और देह का सँभाल नहीं रहा।

पुनि पुनि तासु शीश उर धरई * वदन विलोकि हृदय महँ हरई
मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा * कालविवश पिय मनहिं न आवा

वह बार-बार वालि का शीश अपने हृदय से लगाती और उसका मुख देखकर छाती पीटती है। हे पति, मैंने तुम्हें बहुत समझाया; परन्तु हे प्यारे, तुम काल के वश थे, इसलिए तुम्हारे मन में कुछ न आया।

अंगद कहँ कछु कहन न पायहु * बीचहिं सुरपुर प्राण पठायहु
तारा विकल देखि रघुराया * दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया

अंगद से तुम कुछ कहने न पाये, बीच ही में अपने प्राण स्वर्ग को भेज दिये। तारा को व्याकुल देखकर रघुनाथ रामजी ने ज्ञान दिया और अपनी माया हटा ली।

क्षिति जल पावक गगन समीरा * पंचरचित यह अधम शरीरा
प्रकट सो तनु तव आगे सोवा * जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा

रामचन्द्रजी ने कहा—तारा! पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और पवन, इन पाँच तत्त्वोंसे यह अधम शरीर बना है। सो तो तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष ही पड़ा है। जीव तो नित्य है—वह कभी मरता नहीं। फिर तुम किस लिए रोती हो।

उपजा ज्ञान चरण तब लागी * लीन्हेसि परमभक्ति वर माँगी
उमा दारुयोषित की नाईं * सबहिं नचावत राम गोसाईं

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तो तारा रामजीके चरणोंमें गिर पड़ी और वरदान में परम भक्ति माँग ली। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, स्वामी रामजी सबको कठपुतली की भाँति नचाते हैं।

तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा * मृतककर्म विधिवत सब कीन्हा
राम कहा अनुजहिं समुझाई * राज्य देहु सुग्रीवहिं जाई
रघुपति चरण नाइ करि माथा * चले सकल प्रेरित रघुनाथा

तब रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी। उन्होंने विधिपूर्वक भाई का सब मृतककर्म किया। रामजी ने लक्ष्मण से समझा कर कहा कि जाकर सुग्रीव को राज्य दो। रघुनायक रामजी के चरणों में माथा नवाकर रामजी के भेजे हुए सब लोग चले।



लक्ष्मण तुरत बोलायउ, पुरजन विप्र समाज।
राज्य दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज॥

लक्ष्मण ने शीघ्र पुरवासियों और ब्राह्मणों को बुलाकर सुग्रीव को राजा और अंगद को युवराज बनाया।

उमा राम सम हितु जगमाहीं * गुरु पितु मातु बन्धु कोउ नाहीं

सब प्रकार करिहौं सेवकाई * जेहिविधि मिलैं जानकी आई

नाथ, चरणों के भूषण तो मैं पहचानता हूँ, और नहीं; क्योंकि ऊपर मुख की ओर मैंने कभी दृष्टि नहीं की। सुग्रीव ने कहा—हे रघुनाथ, शोक छोड़ हृदय में धीरज धरिये। मैं सब प्रकार सेवा करूँगा, जिस प्रकार जानकी मिलें वही उपाय करूँगा।



सखा वचन सुनि हर्षे, रघुपति करुणासींव।
कारण कवन बसहु वन, मोसन कह सुग्रीव॥

मित्र के वचन सुन दया की सीमारूप रघुनायक रामजी प्रसन्न हुए और बोले—हे सुग्रीव, किस कारण तुम वन में रहते हो? मुझसे कहो।

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई * प्रीति रही कछु बरणि न जाई
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ * आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ

सुग्रीव बोले—हे नाथ, बालि और मैं दोनों भाई हैं। दोनों की प्रीति भी ऐसी थी कि कही नहीं जा सकती। हे प्रभो, एक बार मय का पुत्र मायावी नाम का असुर हमारे गाँव को आया।

अर्द्ध रात्रि पुर द्वार पुकारा * बालिहु रिपु बल सहै न पारा
धावा बालि देखि सो भागा * मैं पुनि गयउँ बन्धु सँग लागा

आधी रात को उसने नगर के द्वार पर पुकारा। बालि भी शत्रु का बल नहीं सह सकता था, इससे दौड़ा। यह देखकर वह भागा और मैं भी भाई के साथ लगा चला गया।

गिरिवर गुहा पैठ सो जाई * बालि मोहिं तब कहा बुझाई
परखेहु मोहिं एक पखवारा * नहिं आवहुँ तौ जानेहु मारा

वह एक बड़े भारी पहाड़ की खोह में पैठ गया। तब बालि ने मुझसे समझाकर कहा कि पन्द्रह दिन तक तुम यहाँ मेरी राह देखना। इस बीच में अगर मैं लौट न आऊँ तो जान लेना, मैं मारा गया।

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी * निसरी रुधिर धार तहँ भारी
तब मैं निजमन कीन्ह विचारा * जाना असुर बालि कहँ मारा
बालिहतेसि मोहिं मारिहि आई * शिला द्वार दै चलेउँ पराई

हे खर राक्षस को मारनेवाले रामचन्द्र, मैं वहाँ (पन्द्रह दिन के बदले) महीने भर रहा। तब वहाँ से रक्त की बड़ी भारी धारा बह निकली। मैंने मन में विचार किया और जाना कि दैत्य ने बालि को मार डाला। बालि को तो मार डाला ही, अब मुझे भी आकर मारेगा। इससे खोह के द्वार पर शिला रखकर मैं भाग आया।



बालि महाबल अमित अति, समर न जीतै कोय।
तेहि मारेसि जो निशिचर, सो अब मारिहि मोय॥

बालि बड़ा बली है, उसे कोई युद्ध में नहीं जीत सकता। जिस राक्षस ने उसे मारा है, वह मुझे भी मारेगा।

गयउँ भवन मन शोच अपारा * पूछे बालि कहौं जिमि मारा
पम्पापुर के जन तेहि काला * तनु व्याकुल मन बहुत बिहाला

यह सोचकर मैं घर को गया। मेरे मन में अपार शोक था। लोगों के पूछने पर मैंने बालि के मरने का हाल कह सुनाया। उस समय पम्पापुरवासी शरीर से बहुत व्याकुल और मन में विकल हो गये।

मन्त्रिन पुर देखा बिन साईं * दीन्हेउ राज्य मोहिं बरिआईं
बाली ताहि मारि गृह आवा * देखि मोहिं जिय भेद बढ़ावा

मन्त्रियों ने बिना राजा का नगर देखकर मुझे जबरदस्ती राजा बना दिया। जब बालि दैत्य को मारकर घर आया तो मुझे देखकर मन में भेद बढ़ाया (मेरी शरारत समझकर मुझसे कुढ़ गया)।

रिपु समान मोहिं मारेसि भारी * हरिलीन्हेसि सर्वस अरु नारी
ताके भय रघुवीर कृपाला * सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला

शत्रु के समान बालि ने मुझे बहुत मारा और मेरा सब कुछ तथा स्त्री छीन ली। हे कृपालु रघुनाथ, उसी के भय से विकल होकर मैं सब लोकों में घूमता फिरा।

इहाँ शापवश आवत नाहीं * तदपि सभीत रहौं मनमाहीं
सुनि सेवक दुख दीनदयाला * फरकिउठे दोउ भुजा विशाला

यहाँ मतंग मुनि के शाप के कारण वह नहीं आता; परन्तु तो भी मन में उससे डरा करता हूँ। सेवक का दुःख सुन दीनदयालु रामजी की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहि एकहि बाण।
ब्रह्म रुद्र शरणागतहु, गये न उबरहिं प्राण॥

रामजी बोले—हे सुग्रीव, मैं बालि को एक ही बाण से मारूँगा; ब्रह्मा और शिव की भी शरण गये उसके प्राण नहीं बच सकते।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी * तिनहिं बिलोकत पातक भारी
निजदुख गिरिसम रजकै जाना * मित्र के दुख रज मेरुसमाना

जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से भी बड़ा पाप होता है। पहाड़ के समान अपना दुःख धूल के कण के समान और कण के समान मित्र के दुःख को सुमेरु पर्वत के समान समझना चाहिए।

जिनके असमति सहज न आई * ते शठ हठ कत करत मिताई
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा * गुण प्रकटै अवगुणहिं दुरावा

जिनके ऐसी बुद्धि सहज ही नहीं आई, वे शठ हठ करके क्यों मित्रता करते हैं ? कुमार्ग से हटाकर उत्तम मार्ग पर चलाना, गुण प्रकट करके अवगुणों को छिपाना,

देत लेत मन शङ्क न धरहीं * बल अनुसार सदा हित करहीं
विपति कालकर शतगुण नेहा * श्रुति कह सत्य मित्रगुण येहा

देने-लेने में सन्देह न करना, अपने बल के अनुसार सदा भलाई करना, और विपत्ति के समय में सौगुना स्नेह करना—वेद इसे ही मित्र के सच्चे गुण कहते हैं।

आगे कह मृदु वचन बनाई * पाछे अनहित मन कुटिलाई
जाकरचित अहिगति समभाई * अस कुमित्र परिहरे भलाई

जो सामने बनाकर कोमल वचन कहता और पीछे बुराई करता हो, मन में कुटिल हो, जिसका चित्त साँप की चाल के समान टेढ़ा हो, भाई, ऐसे बुरे मित्र को छोड़ देने ही में भलाई है।



मित्र मित्रसों प्रीतिकर, हृदय आन मुख आन।
जाके मन वच प्रेम नहिं, दुरे दुराये जान॥

मित्र तो मित्र से स्नेह करते हैं; जिनके हृदय में और, तथा मुख में और है, जिनके मन-वचन में प्रेम नहीं, और जो अपना कपट छिपाते हैं, वे कुमित्र हैं।

सेवक शठ नृप कृपण कुनारी * कपटी मित्र शूल सम चारी
सखा शोच त्यागहु बल मोरे * सब विधि करब काज मैं तोरे

दुष्ट सेवक, कृपण राजा, कर्कशा या दुष्टा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूल के समान दुखदायी हैं। हे मित्र, मेरे बल के भरोसे तुम सोच छोड़ो। मैं सब तरह से तुम्हारा काम करूँगा।

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा * बालि महाबल अति रणधीरा
दुन्दुभि अस्थि ताल दिखराये * बिन प्रयास रघुनाथ ढहाये

सुग्रीव ने कहा—हे रघुनाथ, वालि बड़ा बली है और युद्ध में भी बड़ा चतुर और धीर है। फिर सुग्रीव ने दुन्दुभी राक्षस की हड्डियाँ और ताड़ के वृक्ष दिखाये। रामजी ने बिना परिश्रम ही उन्हें गिरा दिया।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती * बालि वधन की भइ परतीती
बारहिं बार नाय पद शीशा * प्रभुहिं जानि मन हर्ष कपीशा

रामजी का अथाह बल देखकर सुग्रीव के हृदय में प्रीति बढ़ी और उन्हें वालि के मारने का विश्वास हुआ। फिर बार-बार चरणों में माथा नवाकर और रामजी को ईश्वर जानकर वानरों के स्वामी सुग्रीव मन में प्रसन्न हुए।

उपजा ज्ञान वचन तब बोला * नाथ कृपा मन भयउ अलोला
सुख सम्पति परिवार बड़ाई * सब परिहरि करिहौं सेवकाई

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तो बोले—हे नाथ, आपकी दया से मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, सम्पदा, परिवार और बड़ाई, सब छोड़कर मैं आपकी सेवा करूँगा।

ये सब रामभक्ति के बाधक * कहहिं सन्त तव पद आराधक
शत्रु मित्र दुख सुख जगमाहीं * मायाकृत परमारथ नाहीं

सुख आदि सब आपकी भक्ति में बाधा डालनेवाले हैं, ऐसा आपके चरणों के सेवक सन्त लोग कहते हैं। संसार में शत्रु-मित्र, दुख-सुख आदि माया के रचे हुए हैं, इनमें परमार्थ कुछ भी नहीं है।

बालि परमहित जासु प्रसादा * मिलेहु राम तुम शमन विषादा
सपनेहु जेहिसन होय लराई * जागे समुझत मन सकुचाई

हे राम, बालि मेरा बड़ा हितकारी है, जिसकी कृपा से मुझे दुःखनाशक आप मिले। स्वप्न में भी जिससे लड़ाई होती है तो जागने पर वह मन में सकुचता है, ऐसे ही अज्ञान से उत्पन्न 'मैं' 'मेरा' आदि भाव-ज्ञान होने पर मिथ्या जान पड़ते हैं।

अब प्रभु कृपा करहु इहि भाँती * सब तजि भजन करौं दिनराती
सुनि विरागसंयुत कपिवाणी * बोले बिहँसि राम धनुपाणी

हे प्रभो, अब इस भाँति दया कीजिए कि मैं सब छोड़कर दिन-रात आपका भजन करूँ। वैराग्य से युक्त सुग्रीव के ये वचन सुन हाथ में धनुष धारण किये रामजी हँसकर बोले—

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई * सखा वचन मम मृषा न होई
नट मर्कट इव सबहिं नचावत * राम खगेश वेद अस गावत

हे मित्र, तुमने जो कुछ कहा, सो सब सत्य है। परन्तु मेरा वचन झूठ नहीं होता। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, जैसे नट बंदर को, वैसे ही रामजी सबको नचाते हैं, ऐसा वेद कहते हैं।

लै सुग्रीव सङ्ग रघुनाथा * चले चाप शायक गहि हाथा
तब रघुपति सुग्रीव पठावा * गर्जेसि जाय निकट बल पावा

धनुष-बाण हाथ में लेकर रघुनाथजी सुग्रीव के साथ चले। (किष्किन्धापुर पहुँचने पर) रामजी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह राम का बल पाकर किष्किन्धा के पास जाकर गरजे।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा * गहिकर चरण नारि समुझावा
सुनु पति जिनहिं मिला सुग्रीवा * ते दोउ बन्धु अतुलबलसींवा

उसका गरजना सुनते ही क्रोध से व्याकुल होकर बालि दौड़ा। तब पैर पकड़कर उसकी स्त्री तारा समझाने लगी—हे पतिदेव, सुनो। सुग्रीव जिन्हें मिले हैं, वे दोनों भाई अतुलित बल की सीमा हैं।

कोशलेश सुत लक्ष्मण रामा * कालहु जीति सकैं संग्रामा

सोइ रघुबीर हृदयमहँ आनहु * छाँड़हु मोह कहा मम मानहु

कोशलेश महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण युद्ध में काल को भी जीत सकते हैं। उन्हीं रामजी को हृदय में ध्याओ और मोह (अज्ञान) छोड़ो; मेरा कहा मानो।



कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरशी रघुनाथ।
जो कदापि मोहिं मारिहैं, तौ पुनि होव सनाथ॥

बालि ने कहा—हे डरपोक प्रिये, रामजी समदर्शी हैं। इसलिए सुग्रीव का पक्ष लेकर वह मुझे नहीं मारेंगे; और अगर मुझे मारेंगे भी तो मैं सनाथ हो जाऊंगा।

अस कहि चला महा अभिमानी * तृण समान सुग्रीवहिं जानी
बालि देखि सुग्रीवहिं ठाढ़ा * हृदय क्रोध पुनि बहुविधि बाढ़ा

ऐसा कह बड़ा अभिमानी बालि सुग्रीव को तृण के समान जानकर चला। सुग्रीव को खड़ा देखकर बालि के हृदय में फिर बड़ा भारी क्रोध बढ़ा।

भिरे युगल बाली अति तर्जा * मुष्टिक मारि महाधुनि गर्जा
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा * मुष्टिप्रहार वज्र सम लागा

दोनों भिड़ गये; बालि ने बड़ा क्रोध किया और सुग्रीव के घूसा मारकर बड़े जोर से गर्जा। तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागे; क्योंकि घूसे का वह प्रहार उनके वज्र के समान लगा।

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला * बन्धु न होय मोर यह काला
एक रूप तुम भ्राता दोऊ * तेहि भ्रमते मारा नहिं सोऊ

सुग्रीव ने रामजी से कहा—हे दयालु रघुनाथ, मैंने जो कहा था कि यह भाई नहीं, मेरा काल है। रामजी बोले—तुम दोनों भाई एक ही से हो; उसी धोखे से मैंने नहीं मारा।

कर परसा सुग्रीव शरीरा * तनु भा कुलिश मिटी सब पीरा
मेली कण्ठ सुमन की माला * पुनि पठवा बल देइ बिशाला
पुनि नाना बिधि भई लराई * बिटप ओट देखहिं रघुराई

रामचन्द्रजी ने सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उसके स्पर्श से ही सुग्रीव का शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा दूर हो गई। फिर रामजी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाली और बहुत बल व उत्साह देकर रामजी ने सुग्रीव को लड़ने के लिए भेजा। बहुत प्रकार से युद्ध हुआ और रघुनायक रामजी वृक्ष की ओट से देखते रहे।



बहु छल बल सुग्रीव करि, हृदय हारि भय मानि।
मारा बालिहिं राम तब, हिये माँझ शर तानि॥

बहुत छल-बल कर सुग्रीव जब जी में हारकर डरे, तब रामजी ने बालि के हृदय में तानकर बाण मारा।

परा बिकल महि शर के लागे * पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे
श्यामगात शिर जटा बनाये * अरुण नैन शर चाप चढ़ाये

बाण लगने से व्याकुल होकर वालि पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उठ बैठा तो प्रभु को आगे देखा—श्याम शरीर, माथे पर जटाएँ बनाये, आँखें लाल किये और धनुष पर बाण चढ़ाये हैं।

पुनिपुनि चितै चरणचितदीन्हा * सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा * बोला चितै राम की ओरा

बार-बार देखकर बालि ने रामजी के चरणों में मन लगाया और स्वामी को पहचानकर अपने जन्म को सफल माना। हृदय में तो प्रीति है; परन्तु रामजी की ओर देखकर वालि ने मुख से ये कठोर वचन कहे—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं * मारेहु मोहिं व्याध की नाईं
मैं वैरी सुग्रीव पियारा * कारण कवन नाथ मोहिं मारा

हे स्वामी, आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है, पर मुझे व्याध की भाँति छिपकर मारा! हे नाथ, मैं वैरी और सुग्रीव मित्र क्यों हुआ? क्या कारण है, जिससे आपने मुझे मारा?

अनुजवधू भगिनी सुतनारी * सुनु शठ ये कन्या सम चारी
इन्हें कुदृष्टि विलोकै जोई * ताहि वधे कछु पाप न होई

रामजी बोले—अरे मूर्ख, छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र की स्त्री और कन्या, ये चारो बराबर हैं। जो कोई इन्हें बुरी दृष्टि से देखे, उसे मारने से कुछ पाप नहीं होता।

मूढ़ तोहिंअतिशय अभिमाना * नारि सिखावन करेसि न काना
ममभुजबलआश्रित तेहिंजानी * मारा चहसि अधम अभिमानी

मूढ़, तुझे बड़ा अभिमान है, इसी से तूने स्त्री की सीख पर कान नहीं दिया। अरे अधम अभिमानी, मेरी भुजाओं के भरोसे भी सुग्रीव को जानकर तू उसे मारना चाहता था।

दो॰ सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि॥

बालि बोला—हे भाग्यशाली स्वामी रघुनाथ, आपसे मेरी चतुरता नहीं चल सकती; परन्तु हे प्रभो, जब अन्त समय में आप आगे खड़े हैं तो क्या मैं अब भी पातकी हूँ?

सुनत राम अति कोमल वाणी * बालि शीश परसा निज पाणी
अचल करौं तनु राखहु प्राना * बालि कहा सुनु कृपानिधाना

ये बहुत ही कोमल वचन सुनकर रामजी ने अपने हाथ से बालि का माथा छुआ और कहा—तुम्हारा शरीर अचल कर दूँ, प्राण रक्खो। तब बालि ने कहा—हे कृपानिधान, सुनिए—

जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं * अन्त राम कहि आवत नाहीं
जासु नाम बल शङ्कर काशी * देत सबहिं समगति अविनाशी
मम लोचनगोचर सो आवा * बहुरि कि अस प्रभु बनैबनावा

जन्म-जन्म में मुनि लोग अनेक यत्न करते हैं, पर अन्त समय में उनके मुख से 'राम' नाम नहीं निकल पाता अथवा अन्तकाल में 'राम' नाम कहकर फिर वे संसार में नहीं आते। जिसके नाम के बल से अविनाशी शङ्करजी काशी में सबको मुक्ति देते हैं, वही रामजी मेरी आँखों के सामने आये। हे प्रभो, क्या फिर ऐसा बनाव कभी बन पड़ेगा?

छन्द

सो नयनगोचर जासु गुणनित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिमि पवनमनगोनिरसकरि मुनिध्यानकबहुँकपावहीं॥
मोहिं जानि अतिअभिमानवश प्रभु कहेउ राखु शरीरहीं।
अस कवन शठ हठ काटि सुरतरु बारि करहि कीरहीं॥

वही मेरे नेत्रों के सामने खड़े हैं, जिन्हें वेद नित्य 'नेति' कहकर गाते हैं और पवन, मन तथा इन्द्रियों को जीतकर भी मुनि जिन्हें कभी क्या ध्यान में पाते? अर्थात नहीं पाते। हे प्रभो, बड़े अभिमान के वश मुझे जानकर वही आप कहते हैं कि शरीर रक्खो। तो भला ऐसा कौन मूर्ख है, जो कल्पवृक्ष काट उससे करील की बारी बनावे?

अब नाथ करि करुणा विलोकहु देहु यह वर माँगऊँ।
जेहियोनि जन्महुँ कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम विनयबल कल्याणप्रद प्रभु दीजिए।
गहि बाँह सुरनरनाह अंगद दास अपनो कीजिए॥

हे स्वामी, अब दया करके देखिए और यह वरदान दीजिए कि मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहाँ आपके चरणों में स्नेह करूँ। हे प्रभो, यह मेरा पुत्र विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे कल्याणदायक स्थान दीजिएगा, और हे देवताओं और मनुष्यों के स्वामी, अंगद की बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइए।



रामचरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमिकण्ठते, गिरत न जानै नाग॥

इस प्रकार रघुनाथ रामजी के चरणों में दृढ़ प्रेम कर बालि ने शरीर छोड़ा। जैसे गले से गिरती हुई फूलों की माला को हाथी न जाने, वैसे ही उसे भी कुछ कष्ट नहीं हुआ।

राम बालि निज धाम पठावा * नगर लोग सब व्याकुल धावा
नाना विधि विलाप कर तारा * छूटे केश न देह सँभारा

रामजी ने बालि को अपने धाम में भेजा। किष्किन्धानगरी के सब लोग व्याकुल होकर

तुमहिं सुमिरि अङ्गद हनुमाना * जितिहैं जगत मनुज रण नाना
अस वर जबहिं रमापति भाखा * सुनत गिरा हर्षे मृगशाखा

हे अंगद व हनुमान्, तुमको सुमिरकर संसार में मनुष्य अनेक भाँति की लड़ाइयों में जीतेंगे।' जब लक्ष्मीपति श्रीरामजी ने ऐसा वरदान कह दिया, तब यह वचन सुनते ही वानर प्रसन्न हुए।

कहेउ बहोरि वचन रघुवीरा * सुनु अंगद हनुमत रणधीरा
तात तुरत तुम उभय सिधावहु * लंक गये कपि तिनहिं छुटावहु

फिर रामजी ने कहा—हे रण में निपुण अंगद व हनुमान्, सुनो। हे तात, तुम दोनों जल्दी जाओ, जो वानर लंका को गये हैं, उनको छुड़ा लाओ।

सुनि दोउ भट गहि शैल विशाला * सुमिरि कोशलाधीश कृपाला
सपदि कीश गढ़ पर चढ़ि गये * देखि लंक महँ खरभर भये

यह सुनकर बड़े भारी पर्वतों को लेकर अयोध्यानाथ कृपालु श्रीरामजी को सुमिरकर शीघ्र ही वानर गढ़ पर चढ़ गये। इनको देखकर लंका में खलभली पड़ गई।

सकल कपिन कै मूर्च्छा बीती * तोरि पाश भजि राम सप्रीती
वायुसूनु युवराज निहारी * हर्षे कहि जय जयति खरारी

सब वानरों की मूर्च्छा जाती रही। उन्होंने प्रेमसमेत श्रीरामजी को भजकर फाँसियों को तोड़ डाला व हनुमान् और युवराज अंगदजी को देखकर 'खरारि रामजी की जय हो' यह कहकर प्रसन्न हुए।

मेषवरूथहिं पाइ जिमि, वृकगण करहिं सँहार।
तिमि मर्दहिं दनुजन समुद, कीश भालु बरियार॥

जैसे भेड़िये भेड़ों को पाकर उन्हें मार डालते हैं, वैसे ही राक्षसों के समूह को बलवान् वानर व रीछ हर्षसमेत नष्ट करते हैं।

याम एक वासर अवशेखा * कह अंगद कीशन तन देखा
चलिय तात अब जहँ सुरभूपा * देखिय पदपाथोज अनूपा

जब एक पहर दिन बाकी रह गया, तब वानरों की ओर देखकर अंगदजी कहने लगे—हे तात, अब जहाँ देवताओं के स्वामी रघुनाथजी हैं, वहाँ चलिए और उनके अनुपम पदकमलों के दर्शन कीजिए।

अंगदवचन पवनसुत भाये * सपदि सहित दल प्रभुपहँ आये
निशिचर कोटि नरान्तक सङ्गा * करत रहे बहु विधि रणरङ्गा

अंगद के वचन पवनपुत्र हनुमानजी को अच्छे लगे। वह सेनासमेत शीघ्र ही स्वामी के पास आये। उधर नारान्तक के साथी करोड़ों निशाचर अनेक भाँति से युद्ध कर रहे थे।

सुर नर मुनि सबकी यह रीती * स्वारथ लागि करैं सब प्रीती

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, संसार में राम के समान हितू, गुरु, पिता, माता, भाई कोई नहीं है। देवता, मनुष्य, मुनि, सबकी यही रीति है कि वे सब स्वार्थ के ही लिए प्रीति करते हैं।

बालि त्रास व्याकुल दिनराती * तनु बिवरण चिन्ता जरु छाती
सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ * अति कोमल रघुबीर स्वभाऊ

सुग्रीव बालि के डर से दिन-रात व्याकुल रहते थे। उनके शरीर का रंग उड़ गया था और चिन्ता से छाती जला करती थी। उस सुग्रीव को रामजी ने वानरों का राजा बना दिया। सचमुच रघुनाथजी का स्वभाव बड़ा कोमल है।

जानतहू अस प्रभु परिहरहीं * काहे न बिपतिजाल नर परहीं
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बुलाई * बहुप्रकार नृपनीति सिखाई

जानकर भी जो मनुष्य ऐसे प्रभु को छोड़ देते हैं, वे विपत्ति के जाल में क्यों न पड़ें? फिर रामजी ने सुग्रीव को बुलाया और बहुत भाँति से राजनीति सिखाई।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा * पुर न जाउँ दश चारि बरीशा
गत ग्रीषम वर्षा ऋतु आई * रहिहौं निकट शैल पर छाई

(इसी समय सुग्रीव के नगर में चलने को कहने पर) रामजी ने वानरराज सुग्रीव से कहा—मैं चौदह वर्ष तक किसी नगर में न जाऊँगा। गर्मी की ऋतु बीत गई और वर्षा आई है, इससे पास ही पर्वत पर रहूँगा।

अंगद सहित करहु तुम राजू * सन्तत हृदय राखि मम काजू
तब सुग्रीव भवन फिरि आये * राम प्रवर्षण गिरि पर छाये

मेरे काम करने की बात को सदैव चित्त में रखकर तुम अंगदसहित राज्य करो। तब सुग्रीव घर लौट आये और रामजी प्रवर्षण पर्वत पर रहने लगे।



प्रथमहिं देवन गिरि गुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ॥

देवताओं ने पहले ही से उस पहाड़ में सुन्दर कन्दरा बना रक्खी थी कि दयानिधान रामचन्द्रजी यहाँ आकर कुछ दिन रहेंगे।

सुन्दर बन कुसुमित तरुशोभा * गुंजत चंचरीक मधु लोभा
कन्दमूल फल पत्र सुहाये * भये बहुत जबते प्रभु आये

सुन्दर वन में फूले हुए वृक्षों की शोभा से खिंचकर शहद के लोभ से उनमें भौंरे गुंजारते हैं। जब से रामजी आये, तब से कन्द मूल फल और सुहावने पत्ते बहुत हुए।

देखि मनोहर शैल अनूपा * रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा

मंगलरूप भये बन तबते * कीन्ह निवास रमापति जबते

सुन्दर और अनूप वन देखकर वहाँ छोटे भाई लछमणसमेत देवताओं के राजा रामजी रहे। जब से लक्ष्मीपति रघुनाथजी ने निवास किया, तब से वह जंगल मंगलरूप हो गया।

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा * करहिं सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा
फटिकशिला अति शुभ्र सुहाई * सुख आसीन तहाँ दोउ भाई

भौंरों, पक्षियों और मृगों के रूप रखकर देवता और सिद्ध मुनि स्वामी रामजी की सेवा करते हैं। बड़ी सुहावनी और उज्ज्वल एक स्फटिकशिला पर दोनों भाई सुख से बैठे।

कहत अनुजसन कथा अनेका * भक्ति विरति नृपनीति विवेका
वर्षा काल मेघ नभ छाये * गर्जत लागत परम सुहाये

रामजी छोटे भाई लछमणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक की अनेक कथाएँ कहते हैं। वर्षा समय में मेघ आकाश में छा जाते और गर्जते हुए बड़े सुन्दर लगते हैं।



लछमण देखहु मोरगण, नाचत बारिद पेखि।
गृही विरतिरत हर्ष जस, विष्णुभक्त कहँ देखि॥

रामजी ने कहा— हे लछमण, देखो, मेघों को देखकर मोर कैसे प्रसन्न होकर नाचते हैं, जैसे वैराग्य में प्रीति रखनेवाले गृहस्थ श्रीविष्णु के भक्त को देखकर प्रसन्न होते हैं।

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा * प्रियाहीन डरपत मन मोरा
दामिनि दमकि रही घनमाहीं * खल की प्रीति यथा थिर नाहीं

बादल चारों ओर से आकाश में घिरकर ऐसा भयानक गर्जन करते हैं कि सीता बिना मेरा मन डरता है। मेघ में बिजली वैसे ही चमकती है, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती।

वर्षहिं जलद भूमि नियराये * यथा नवहिं बुध विद्या पाये
बूँद अघात सहैं गिरि कैसे * खल के वचन सन्त सह जैसे

पृथ्वी के निकट आकर मेघ बरसते हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् झुक जाते हैं, बूँदों की चोट पर्वत वैसे ही सहते हैं, जैसे सन्त लोग दुष्ट के वचनों को सहते हैं।

क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई * जिमि थोरे धन खल बौराई
भूमि परत भा ढाबर पानी * जिमि जीवहिं माया लपटानी

छोटी नदियाँ भरकर ऐसी उतरा चलीं, जैसे थोड़े धन से दुष्ट बौरा जाते हैं। भूमि में पड़ते ही पानी मैला हो गया, जैसे माया से लिपटा हुआ जीव।

समिटिसमिटि जल भरैं तलावा * जिमि सदगुण सज्जनपहँ आवा
सरिताजल जलनिधि महँ जाई * होय अचलजिमि जियहरिपाई

सिमट-सिमटकर जल तालाबों में वैसे ही भरता है, जैसे उत्तम गुणों से सज्जन। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही अचल हो जाता है, जैसे ईश्वर को पाकर मन।

 हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते, लुप्त भये सदग्रन्थ॥

हरे तृण से भूमि ऐसी ढक गई है कि मार्ग नहीं सूझता ; जैसे पाखण्ड के विवाद से उत्तम ग्रंथ मिट जाते हैं।

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई * वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई
नव पल्लव भे विटप अनेका * साधु के मन जस मिले विवेका

मेढकों का शब्द चारों ओर ऐसा होता है, मानो ब्रह्मचारी वेद पढ़ते हों। नये पत्तों के कारण वृक्ष ऐसे हो गये, जैसे ज्ञान मिलने से साधुओं के मन सुन्दर हो जाते हैं।

अर्क जवास पात बिनु भयऊ * जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ
खोजत पन्थ मिलहि नहिं धूरी * करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी

मदार और जवास बिना पत्तों के हो गये, जैसे अच्छे राज्य में दुष्ट का उद्यम जाता रहे। ढूँढ़ने से भी मार्ग में धूल नहीं मिलती, जैसे क्रोध से धर्म नहीं रहता।

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी * उपकारी की सम्पति जैसी
निशितम घन खद्योत विराजा * जिमि दम्भिनकर जुरा समाजा

खेती से पृथ्वी कैसी सोहती है, जैसे उपकार करनेवाले की सम्पदा बढ़ती है। रात को अधिक अन्धकार में जुगुनू वैसे ही सोहते हैं; जैसे पाखण्डियों का समाज जुड़ा हो।

महावृष्टि चलि फूटि कियारी * जिमि स्वतन्त्र है बिगरैं नारी
कृषी निरावहिं चतुर किसाना * जिमि बुध तजहिं मोहमदमाना

बहुत वर्षा होने से कियारियाँ फूटकर बह चलीं, जैसे स्वतन्त्र होकर स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेती निराते (घास-फूस निकालते) हैं, जैसे पण्डित मोह, गर्व और मान को मन से निकाल फेंकते हैं।

देखिय चक्रबाक खग नाहीं * कलिहि पाय जिमि धर्म पराहीं
ऊसर बरसै तृण नहिं जामा * सन्तहृदय जस उपज न कामा

चकई-चकवा आदि पक्षी नहीं देख पड़ते, जैसे कलियुग को पाकर धर्म नष्ट हो जाते हैं। ऊसर में बरसने से घास नहीं जमती, जैसे सन्तों के हृदय में कामनाएँ नहीं उत्पन्न होतीं।

विविधजन्तु संकुल महि भ्राजा * बढ़ै प्रजा जिमि पाय सुराजा
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना * जिमि इन्द्रियगण उपजे ज्ञाना

अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं से भरी हुई पृथ्वी ऐसे सोहती है, जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढ़ती है। बटोहा थककर वर्षा के कारण जहाँ-तहाँ रुक गये, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने से इन्द्रियाँ।



दो०—कबहुँ प्रबल मारुत चलत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के ऊपजे, कुल के धर्म नशाहिं॥

कभी बड़े वेग से वायु चलने से जहाँ-तहाँ मेघ विला जाते हैं, जैसे कुपुत्र उत्पन्न होने से कुल के धर्म मिट जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड़तम, कबहुँक प्रकट पतङ्ग।
उपजै बिनसै ज्ञान जिमि, पाय सुसङ्ग कुसङ्ग॥

दिन में कभी बड़ा अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य देख पड़ते हैं, जैसे अच्छे संग से ज्ञान उपजता और बुरे संग से मिटता है।

वर्षा बिगत शरद् ऋतु आई * देखहु लक्ष्मण परम सुहाई
फूले कास सकल महि छाई * जनु वर्षाकृति प्रकट बुढ़ाई

वर्षा बीत गई और शरद्ऋतु आ गई। देखो लक्ष्मण, यह कैसी सुहावनी लगती है फूले हुए कासों से सारी पृथ्वी छा गई; मानो वर्षा का बुढ़ापा प्रत्यक्ष देख पड़ता है।

उदित अगस्त्य पन्थ जल शोषा * जिमि लोभहिं शोषै सन्तोषा
सरिता सर जल निर्मल सोहा * सन्तहृदय जस गत मदमोहा

'अगस्त्य' नक्षत्र ने उदय होते ही मार्ग का जल सुखा डाला, जैसे सन्तोष लोभ को मिटा देता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल वैसा ही सोहता है, जैसे मद और मोह से रहित सन्तों का हृदय।

रस रस शोष सरित सर पानी * ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी
जानि शरद ऋतु खंजन आये * पाय समय जिमि सुकृत सुहाये

धीरे-धीरे नदियों और तालाबों का पानी सूख रहा है, जैसे ज्ञानी लोग धीरे-धीरे ममता को छोड़ते हैं। शरद्ऋतु को जानकर खञ्जन (खड़रैचा) आ गये, जैसे समय पाकर सुन्दर पुण्य उदय होते हैं।

पंक न रेणु सोह अस धरणी * नीतिनिपुण नृप की जस करणी
जल संकोच विकल भये मीना * विविध कुटुम्बी जिमि धनहीना

कीचड़ और धूल न होने से पृथ्वी ऐसे सोहती है, जैसे नीति में चतुर राजा की करनी। जल थोड़ा होने से मछलियाँ व्याकुल हैं, जैसे धन से हीन बड़े कुटुम्बवाला पुरुष विकल होता है।

बिन घन निर्मल सोह अकाशा * जिमि हरिजन परिहरि सब आशा
कहुँ कहुँ वृष्टि शरदऋतु थोरी * कोउ इक पाव भक्ति जिमि मोरी

बिना मेघों का निर्मल आकाश कैसा सोहता है, जैसे सब आशाएँ छोड़कर भगवान् के भक्त। शरद्ऋतु में कहीं-कहीं थोड़ी वर्षा वैसे ही होती है, जैसे मेरी भक्ति किसी-किसी को ही मिलती है।



चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरिभक्ति पाय श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी अपना-अपना नगर छोड़कर हर्ष से वैसे ही चले, जैसे भगवान् की भक्ति पाकर भक्त लोग चारों आश्रमों के कर्म करने का परिश्रम छोड़ देते हैं।

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा * जिमि हरिशरण न एकौ बाधा
फूले कमल सोह सर कैसे * निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे

जहाँ जल गहरा है, वहाँ मछलियाँ सुख से हैं, जैसे श्रीविष्णु की शरण लेने से एक भी बाधा नहीं होती। जिनमें कमल फूले हैं, वे तालाब वैसे ही सोहते हैं, जैसे सगुण होने पर निर्गुण ब्रह्म।

गुंजत मधुकर निकर अनूपा * सुन्दर खग रव नाना रूपा
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी * जिमि दुर्जन परसम्पति देखी

अनुपम भौंरों के झुण्ड बहुत गुंजार करते हैं और अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षी बोल रहे हैं। रात को देखकर चकवा के मन में दुःख होता है, जैसे पराई सम्पदा देखकर दुष्ट लोग जलते हैं।

चातक रटत तृषा अति वोही * जिमि सुख लहै न शंकरद्रोही
शरदातप निशि शशि अपहरई * सन्तदरश जिमि पातक टरई

पपीहा स्वाती की बूँद के लिए रटता है; क्योंकि उसे प्यास बहुत लगती है, जैसे शंकरजी का द्रोही सुख नहीं पाता। शरद्ऋतु के घाम के ताप को रात में चन्द्रमा हर लेता है, जैसे सन्तों के दर्शन से पाप मिट जाते हैं।

देखहिं विधु चकोर समुदाई * चितवहिं हरिजन हरि जिमि पाई
मशक दंश बीते हिम त्रासा * जिमि द्विजद्रोह किये कुलनासा

चकोरगण चन्द्रमा को वैसे ही देख रहे हैं, जैसे भगवान के भक्त हरि को पाकर उन्हें देखते हैं। जाड़े के डर से मसे और डाँस मिट गये, जैसे ब्राह्मण के द्रोह से वंश नष्ट हो जाता है।



भूमि जीव संकुल रहे, गये शरदऋतु पाय।
सतगुरु मिले ते जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाय॥

पृथ्वी में वर्षा के समय बढ़े हुए जीवजन्तु शरद्ऋतु को पाकर नष्ट हो गये, जैसे अच्छा गुरु मिलने से सन्देह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं।

वर्षा विगत शरद ऋतु आई * सुधि न तात सीता की पाई
एक बार कैसेहु सुधि जानौं * कालहु जीति निमिषमहँ आनौं

आई, वर्षा बीत चुकी और शरद्ऋतु भी आ गई; परन्तु जानकी की कुछ खबर मुझे नहीं मिली। किसी प्रकार भी एक बार जो मैं सीता की खबर पा जाऊँ तो काल को भी जीतकर पलभर में उन्हें ले आऊँ।

कतहुँ रहै जो जीवत होई * तात यत्न करि आनौं सोई
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी * पावा राज्य कोश पुर नारी

चाहे कहीं भी हो, जो सीता जीती होंगी, तो हे तात, उपाय करके मैं उन्हें ले आऊँगा। सुग्रीव ने भी राज्य, कोष, नगर और स्त्री आदि पाकर मेरी सुधि भुला दी।

जेहि शायक मारा मैं बाली * तेहिशर हतौं मूढ़ कहँ काली
जासु कृपा छूटै मद मोहा * ताकहँ उमा कि सपनेहु कोहा

इसलिए जिस बाण से बालि को मारा है, उसी से उस मूर्ख को मैं कल मारूँगा। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जिसकी दया से गर्व और मोह छूट जाता है, क्या उसे स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है? परन्तु यह तो नरलीला है।

जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी * जिन रघुवीर चरणरति मानी
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना * धनुष चढ़ाय गह्यो कर बाना

इस चरित्र को वे ज्ञानी मुनि लोग ही जानते हैं, जिन्होंने रघुनाथजी के चरणों में भक्ति की है। लक्ष्मण ने रामजी को क्रोधित जानकर धनुष चढ़ाया और हाथ में बाण लिया।

दो० तब अनुजहिं समुझायहु, रघुपति करुणासींव।
भय दिखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव॥

तब दयानिधान रामजी ने लक्ष्मण को समझाया कि भय दिखाकर सुग्रीव को यहाँ ले आओ। हे तात, सुग्रीव मेरा मित्र है।

इहाँ पवनसुत हृदय विचारा * राम काज सुग्रीव बिसारा
निकट जाय चरणन शिर नावा * चारहुविधितेहिंकहि समुझावा

यहाँ किष्किन्धा में पवनपुत्र हनुमान् ने मन में विचारा कि सुग्रीव ने रामजी का काम भुला दिया। इससे पास जाकर और चरणों में माथा नवाकर हनुमानजी ने साम, दाम, दण्ड और भेद, चारों प्रकार से सुग्रीव को समझाया।

सुनि सुग्रीव परम भय माना * विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना
अब मारुतसुत दूत समूहा * पठवहु जहँ तहँ वानर यूहा

यह सुनकर सुग्रीव बहुत डरे। उन्होंने सोचा कि इन्द्रियों के सुख ने मेरा ज्ञान हर लिया। तब सुग्रीव ने कहा—हे पवनपुत्र, दूतों को जहाँ-तहाँ भेजिए कि वे वानरों को बुला लावें।

कहहु पक्ष महँ आव न जोई * मोरेकर ताकर वध होई
तब हनुमन्त बुलाये दूता * सबकर करि सम्मान बहूता

उनसे कहिए कि एक पक्ष में जो न आवेगा, उसे मैं अपने हाथ से मारूँगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत-सा आदर कर—

भय अरु प्रीति नीति दिखराई * चले सकल चरणन शिरनाई
तेहि अवसर लक्ष्मण पुर आये * क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये

भय (पक्षभर में न आने से मृत्यु होगी), प्रीति (जल्दी आने से प्रसन्न होंगे) और नीति (स्वामी का काम मन-वचन-कर्म से करना चाहिए) दिखलाया। तब चरणों में माथा नवाकर चले। उसी समय लक्ष्मणजी किष्किन्धापुर आये। उनका क्रोध देख वानर जहाँ-तहाँ दौड़े।



धनुष चढ़ाय कहा तब, जारि करौं पुरछार।
व्याकुल नगर देखि तब, आवा बालिकुमार॥

तब धनुष चढ़ाकर लक्ष्मणजी ने कहा कि अभी नगर को जलाकर भस्म कर दूँगा। इतने में नगर को दुखी देख बालिकुमार अंगदजी सामने आये।

चरण नाय शिर बिनती कीन्ही * लक्ष्मण अभय बाँह तेहि दीन्ही
क्रोधवन्त लक्ष्मण सुनि काना * कह कपीश अतिशय अकुलाना

उन्होंने लक्ष्मण के चरणों में माथा नवाकर विनती की। तब लक्ष्मण ने अभयदान देते हुए उनकी बाँह पकड़ी। लक्ष्मणजी को क्रोधित सुनकर वानरों के राजा सुग्रीव ने बहुत व्याकुल होकर कहा—

सुनु हनुमन्त संग लै तारा * करि बिनती समुझाउ कुमारा
तारा सहित जाय हनुमाना * चरण बंदि प्रभु सुयश बखाना

हे हनुमान्, तारा को साथ लेकर (स्त्रियों को देख क्रोध जाता रहता है) तुम जाओ और विनती करके लक्ष्मणजी को समझाओ। तारा सहित हनुमान्‌जी ने जाकर लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम किया और रामजी का सुयश बखाना।

करि बिनती मन्दिर लै आये * चरण पखारि पलँग बैठाये
तब कपीश चरणन शिरनावा * गहि भुज लक्ष्मण कण्ठ लगावा

विनती कर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को सुग्रीव के घर ले आये और चरण धोकर पलँग पर बिठाया। तब वानरों के स्वामी सुग्रीव ने शीश नवाया। लक्ष्मणजी ने भुजा पकड़कर उन्हें गले से लगाया।

नाथ विषयसम मद कछु नाहीं * मुनि मन मोह करै क्षण माहीं
सुनत विनीत वचन सुख पावा * लक्ष्मण तेहि बहुविधि समुझावा
पवनतनय सब कथा सुनाई * जेहि विधि गये दूत समुदाई

सुग्रीव ने कहा—हे नाथ, विषयों के समान कोई मतवाला बनानेवाला नहीं है; क्योंकि

ये क्षणभर में मुनियों का भी मन मोहित कर देते हैं। नम्र वचन सुन लछमणजी ने सुख पाया और सुग्रीव को बहुत तरह से समझाया। पवन के पुत्र हनुमान् ने वह सब हाल कहा, जिस प्रकार दूत सेना को बुलाने भेजे गये थे।



हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ॥

तब प्रसन्न होकर सुग्रीव, अंगद आदि वानरों को साथ लेकर चले और लछमणजी को आगे किये हुए वहाँ आये, जहाँ रघुनायक रामजी विराजमान थे।

नाय चरण सिर कह कर जोरी * नाथ मोहिं कछु नाहिंन खोरी
अतिशय प्रबल देव तव माया * छूटै जबहिं करहु तुम दाया

चरणों में शीश नवाकर सुग्रीव ने विनय की कि हे नाथ, मेरा कुछ दोष नहीं है; क्योंकि हे देव, आपकी माया बड़ी प्रबल है। वह तभी छूटती है, जब आप दया करते हैं।

विषयविवशसुरनरमुनिस्वामी * मैं पामर पशु कपि अतिकामी
नारि नैनशर जाहि न लागा * घोर क्रोधतम निशि जो जागा

हे स्वामी, इन्द्रियसुखों के वश तो देवता, मनुष्य, मुनि—सभी हैं। फिर मैं तो नीच, पशु, कामी, वानर हूँ। जिसके स्त्रियों के नेत्रबाण नहीं लगते, जो भयानक क्रोधरूप अँधेरी रात में जागे (क्रोध न करे)—

लोभपाश जेहि गर न बँधाया * सो नर तुम्ह समान रघुराया
यह गुण साधन ते नहिं होई * तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई

और लोभ के पाश से जिसने गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथ, वह मनुष्य आपके समान है। यह गुण यत्नों से नहीं मिलता। आपकी दया से ही कोई-कोई लोग इसे पाते हैं।

तब रघुपति बोले मुसुकाई * तुम प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई
अब सोइ यत्न करहु मन लाई * जेहि विधि सीता की सुधि पाई

तब रघुनाथजी मुस्कराकर बोले—तुम मुझे ऐसे प्यारे हो, जैसे भाई भरत। अब मन लगाकर वही उपाय करो, जिस प्रकार सीता की खबर मिले।



यहि विधि होत बतकही, आये वानर यूथ।
नाना वरण अतुल बल, देखिय कीशवरूथ॥

इस प्रकार बातचीत होते ही वानरों के झुंड आ गये, जो अनेक रंगों के और बड़े बली थे।

वानर कटक उमा मैं देखा * सो मूरख जो किय चह लेखा
आय रामपद नावहिं माथा * निरखि वदन सब होहिं सनाथा

शिवजी कहते हैं—हे उमा, मैंने वह वानरों की सेना देखी है। जो उसको गिनना चाहे

वह मूर्ख है। वे सब आकर रघुनाथजी के चरणों में माथा नवाते और मुख देख सनाथ, प्रसन्न होते हैं।

अस कपि एक न सेना माहीं * राम कुशल पूछी जेहि नाहीं
यह कछु नहिं प्रभु की अधिकाई * विश्वरूप व्यापक रघुराई

सेना में ऐसा एक भी वानर न था, जिससे रामजी ने कुशल न पूछी हो। रामजी के लिए यह कुछ बड़ी बात नहीं; क्योंकि रघुनाथजी संसार भर में व्याप्त विश्वरूप हैं।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई * कह सुग्रीव सबहिं समुझाई
राम काज अरु मोर निहोरा * वानर कटक जाहु चहुँ ओरा

जहाँ-तहाँ सब वानर आज्ञा पाने के लिए खड़े थे। तब सुग्रीव ने सबसे समझाकर कहा कि रामजी का काम और मेरे ऊपर निहोरा होगा। इसलिए हे वानरो, तुम झुंड के झुंड चारो ओर जाओ।

जनकसुता कहँ खोजहु जाई * मास दिवस महँ आयहु धाई
अवधिमेटि जो बिनु सुधिपाये * अवशि मरिहि सोसमकर आये

जाकर जनकनन्दिनी को ढूँढ़ो। देखो, महीना भर में आ जाना। यह अवधि (मियाद) टालकर जो बिना सीता की खबर पाये लौटेगा, वह आकर अवश्य ही मेरे हाथ से मरेगा।


वचन सुनत सब वानर, जहँ तहँ चले तुरन्त।
तब सुग्रीव बुलायउ, अंगदादि हनुमन्त॥

यह सुनते ही सब वानर जहाँ-तहाँ तुरन्त चल दिये। तब सुग्रीव ने हनुमान् और अंगद आदि वानरों को बुलाया—

सुनहु नील अंगद हनुमाना * जाम्बवन्त मतिधीर सुजाना
सकल सुभटमिलिदक्षिण जाहू * सीतासुधि पूछेहु सब काहू

और कहा—हे नील, अंगद, हनुमान् और जाम्बवन्त! तुम धीर, बुद्धिमान् और चतुर हो। इससे सब वीर मिलकर दक्षिण दिशा में जाओ और सबसे सीताजी की खबर पूछो।

मन वच कर्म सो यत्न विचारेहु * रामचन्द्र के काज सँवारेहु
भानु पीठि सेइय उर आगी * स्वामी सेइय सब छल त्यागी

मन, वचन और कर्म से वही उपाय विचारना, जिससे रामचन्द्र का काम बने। सूर्य को पीठ से (जिससे आँखों की ज्योति न मारी जाय) और अग्नि को आगे से (जिससे न दिखाई देने के कारण जल न जाय) सेवे। इन दोनों में कपट है; परन्तु स्वामी को छल-कपट छोड़कर सेवा करना चाहिए।

तजि माया सेइय परलोका * मिटहिं सकल भवसंभव शोका
देह धरे कर यह फल भाई * भजिय राम सब काम बिहाई

माया छोड़कर परलोक का सेवन करे, जिससे संसार से होनेवाले शोक मिट जायँ। भाई! देह धरने का यही फल है कि सब काम छोड़कर रामजी को भजे।

सोइ गुणज्ञ सोई बड़ भागी * जो रघुवीर चरण अनुरागी
आयसु माँगि चरण शिर लाई * चले हृदय सुमिरत रघुराई

वही गुण जाननेवाला और बड़ा भाग्यशाली है, जो रघुनाथजी के चरणों का प्रेमी हो। आज्ञा माँगकर सुग्रीव के चरणों में माथा नवाकर सब वानर वीर हृदय में रामजी का स्मरण करते हुए चले।

पीछे पवनतनय शिर नावा * जानि काज प्रभु निकट बुलावा
परसा शीश सरोरुह पानी * कर मुद्रिका दीन्ह जनजानी

सबसे पीछे पवननन्दन हनुमान् ने रामजी को माथा नवाया और रामजी ने यह जानकर कि इनसे ही मेरा काम होगा, उनको पास बुलाया। फिर कमलसरीखे हाथ से माथा छूकर, दास जान, उनको अपने हाथ की मुँदरी दी।

बहु प्रकार सीतहिं समुझायहु * कहि बलविरह वेगि तुम आयहु
हनुमत जन्म सफल करि जाना * चले हृदय धरि कृपानिधाना
यद्यपि प्रभु जानत सब बाता * राजनीति राखत सुरत्राता

फिर कहा कि बहुत तरह से जानकी को समझाना और मेरा बल तथा वियोग का दुःख कहकर जल्दी लौट आना। हनुमान् ने अपना जन्म सफल माना और हृदय में दयानिधान रामजी को रखकर चले। यद्यपि देवताओं के रक्षक प्रभु रामजी सब बात जानते हैं तो भी राजनीति रखते हैं।



चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लवलीन मन, बिसरा तनुकर छोह॥

नदी, तालाब और पर्वतों की कन्दराएँ ढूँढ़ते हुए सब वानर चले। रामजी के काम में लौ लगाये हैं। इससे देह की ममता और मोह भूल गया।

कतहुँ होइ निशिचरसन भेटा * प्राण लेहिं तेहिं एक चपेटा
बहु प्रकार गिरिकानन हेरहिं * कोउमुनिमिलहितांहिसबघेरहिं

जहाँ कहीं किसी राक्षस से भेंट होती तो उसके प्राण एक ही चपेटे में ले लेते। बहुत प्रकार से पर्वतों और वनों में ढूँढ़ते हैं। यदि कोई मुनि मिलता है तो उसे सब घेर लेते हैं।

लागि तृषा अतिशय अकुलाने * मिलै न जल वन गहन भुलाने
तब हनुमान कीन्ह अनुमाना * मरन चहत सब बिन जलपाना

एक दिन राह में प्यास लगी तो सब बहुत व्याकुल हुए। मगर कहीं जल न मिला

और सघन वन में राह भी भूल गये। तब हनुमान् ने अनुमान किया कि बिना जल पिये सब मरना ही चाहते हैं।

चढ़ि गिरिशिखर चहूँ दिशि देखा * भूमि विवर इक कौतुक पेखा
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं * बहुतक खग प्रविशहिं तेहि माहीं

तब पर्वत के शिखर पर चढ़कर उन्होंने चारों ओर देखा तो पृथ्वी के गढ़े में एक कौतुक देख पड़ा। चकई, चकवा, बगला, हंस आदि पक्षी उड़ते और उस गढ़े में पैठ जाते।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा * सबकहँ लै सो विवर दिखावा
आगे करि हनुमन्तहिं लीन्हा * पैठे विवर विलम्ब न कीन्हा

पर्वत से हनुमान्जी उतर आये और सबको लेकर वह गढ़ा दिखलाया। हनुमान्जी को आगे करके सब वानर उसमें पैठे; देर नहीं की।


दीखजाय उपवन सुभग, सर विकसे बहु कंज।
मन्दिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तपपुंज॥

वानरों ने वहाँ एक सुन्दर फुलवारी देखी, जिसके तालाब में बहुत-से कमल फूल रहे थे। वहाँ एक सुन्दर मन्दिर था, जिसमें तप की राशिरूप एक स्त्री बैठी थी।

दूरहिं ते तेहि सब शिरनावा * पूछेसि निज वृत्तान्त सुनावा
तब तेइँ कहा करहु जलपाना * खाहु सरस सुन्दर फल नाना

सबने दूर से ही उसे सिर नवाया। उसके पूछने पर वानरों ने अपना सब हाल सुनाया। तब उसने कहा—जलपान कर लो तथा रसीले और सुन्दर अनेक भाँति के फल खाओ।

मज्जन कीन्ह मधुरफल खाये * तासु निकट पुनि सब चलि आये
तेइँ सब आपनि कथा सुनाई * मैं अब जाउँ जहाँ रघुराई

तब वानरों ने नहाकर मीठे फल खाये, फिर सब उसके पास आये। उसने अपनी सब कथा (कि मैं हेमा अप्सरा की सखी गन्धर्वकन्या स्वयंप्रभा हूँ; मय दानव ने हेमा को यहाँ छिपा रक्खा था ; उसे इन्द्र लेगये) कही। फिर बोली—अब मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ रामजी हैं।

मूँदहु नैन विवर तजि जाहू * पैहहु सीतहि जनि कदराहू
नैन मूँदि तब देखहिं वीरा * ठाढ़े सकल सिन्धु के तीरा

आँखें मूँद लो—सब गढ़े के ऊपर पहुँच जाओगे। जी छोटा न करो ; जानकी को पाओगे। वीर वानरों ने आँखें मूँदने के बाद देखा तो सब समुद्र के किनारे खड़े थे।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा * जाय कमलपद नायसि माथा
नाना भाँति विनय तेइँ कीन्ही * अनपायिनी भक्ति प्रभु दीन्ही

फिर वह तपस्विनी जहाँ रामजी थे, वहाँ गई और कमलसरीखे चरणों में माथा नवाया। फिर अनेक प्रकार से विनय की। तब स्वामी रामजी ने उसे अपनी दुर्लभ भक्ति दी।



बदरीबन कहँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि शीश।
उरधरि रामचरण युग, जो वन्दत सुरईश॥

वह तपस्विनी रामचन्द्र की आज्ञा मान उनके चरणकमलों को, जिनकी वन्दना इन्द्र आदि देवता करते हैं, अपने हृदय में बसाकर बदरीवन को चली गई।

इहाँ विचारहिं कपि मनमाहीं * बीती अवधि काज कछु नाहीं
कह अङ्गद लोचन भरि वारी * दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी

यहाँ सब वानर मन में विचारते हैं कि अवधि बीत गई और काम कुछ नहीं हुआ। नेत्रों में आँसू भरकर अंगदजी ने कहा—दोनों तरह हमारी मृत्यु हुई।

इहाँ न सुधि सीता की पाई * उहाँ गये मारहिं कपिराई
पिता वधे पर मारत मोहीं * राखा राम निहोर न ओहीं

यहाँ तो जानकीजी की खबर नहीं मिली और वहाँ जाने से वानरराज सुग्रीव हमें मारेंगे। पिता के मरने पर वह मुझे मार डालता; परन्तु रामजी ने बचा लिया, कुछ सुग्रीव का निहोरा नहीं है।

अस कहि लवण सिन्धुतट जाई * बैठे कपि सब दर्भ डसाई
जाम्बवन्त अङ्गद दुख देखी * कही कथा उपदेश विशेखी

ऐसा कह सब वानर चीरसमुद्र के किनारे कुशासन बिछाकर बठे। अंगद का दुःख देख जाम्बवान् ने विशेषरूप से उपदेश दिया और कथाएँ कहीं।

तात रामकहँ नर जनि जानहु * निर्गुण ब्रह्मअजित अज मानहु
हम सब सेवक अति बड़भागी * सन्तत सगुण ब्रह्म अनुरागी

हे तात, रामजी को मनुष्य न जानिए; किन्तु निर्गुण ब्रह्म, अजित और अज समझिए। हम सब सेवक बड़े भाग्यवान् हैं, जो सदैव सगुण ब्रह्म के प्रेमी हैं।



निज इच्छा अवतरेउ प्रभु, सुर द्विज गो महिलागि।
सगुण उपासक रहहिं सब, मोक्ष सकल सुख त्यागि॥

देवता, ब्राह्मण, गऊ और पृथ्वी के लिए रामजी ने अपनी इच्छा से यह अवतार लिया है। जो लोग सगुण ब्रह्म के उपासक हैं, वे सब मोक्ष के सम्पूर्ण सुखों को तुच्छ देखते हैं।

इहिविधि कहत कथा बहुभाँती * गिरि कन्दरा सुना संपाती
बाहर होइ देखे सब कीशा * मोहिं अहार दीन्ह जगदीशा

इस प्रकार बहुत भाँति से कथाएँ कह ही रहे थे कि इतने में पर्वत की खोह से संपाति गिद्ध ने उनकी सब बातें सुनीं। वह बाहर निकल आया। फिर सब वानरों को देखकर कहने लगा—ईश्वर ने आज मुझे भोजन दिया।

आज सबनकर भक्षण करहूँ * दिन बहु गे अहार बिन मरहूँ
कबहुँन मिलभरि उदर अहारा * आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा

आज इन सबको मैं भक्षण करूँगा। बहुत दिन हो चुके, तब से विना भोजन मर रहा हूँ। पेट भर भोजन कभी नहीं मिला। परन्तु आज विधाता ने एकबारगी सब दे दिया।

डरपे गिद्ध वचन सुनि काना * अब भा मरण सत्य हम जाना
कपि सब उठे गिद्ध कहँ देखी * जाम्बवन्त मन सोच विशेखी

गिद्ध के वचन सुन वानर डरे और कहने लगे—अब हमने सत्य जान लिया कि हमारा मरना हुआ, हम बच नहीं सकते। गिद्ध को देख सब वानर उठे और जाम्बवान के मन में बड़ा सोच (ऐसे डर से कैसे काम चलेगा ?) हुआ।

कह विचारि अंगद मन माहीं * धन्य जटायू सम कोउ नाहीं
रामकाज कारण तनु त्यागी * हरिपुर गयो परम बड़भागी

तब अंगद मन में विचारकर कहने लगे कि जटायु के बराबर कोई धन्य नहीं, जो रामजी के काम के लिए शरीर छोड़कर वैकुण्ठ को गया। वह बड़ा भाग्यवान था।

सुनि खग हर्ष शोकयुत बानी * आवा निकट कपिन भय मानी
ताहि देखि कपि चले पराई * ठाढ़ कीन्ह तेइँ शपथ दिवाई

हर्ष और शोक, दोनों देनेवाले ये अंगद के वचन सुनकर सम्पाति उनके पास आया। तब वानरों को बड़ा डर लगा। उसे देख वानर भाग चले। तब सौगन्द दिलाकर उसने उनको खड़ा किया।

तिन्हैं अभय करि पूछेसि जाई * कथा सकल तिन ताहि सुनाई
सुनि संपाति बन्धु की करणी * रघुपतिमहिमा बहु विधि बरणी

उनका भय दूरकर संपाति ने जाकर पूछा। तब वानरों ने सब कथा (जानकीहरण और जटायु का मरना) उसे सुनाई। संपाति ने भाई की करनी सुनकर रघुनाथजी की महिमा बहुत प्रकार से वर्णन की।


मोहिं लै चलहु सिन्धुतट, देहुँ तिलांजलि ताहि।
वचन सहाय करब मैं, पैहहु खोजहु जाहि॥

संपाति बोला—मुझे समुद्र के किनारे ले चलो; मैं उसे तिलांजलि दे दूँ। मैं वचनों से तुम्हारी सहायता करूँगा; ढूँढ़ो, जानकीजी को पा जाओगे।

अनुज क्रिया करि सागर तीरा * कह निज कथा सुनहु मतिधीरा
हम दोउ बन्धु प्रथम तरुणाई * गगन गये रवि निकट उड़ाई

समुद्र के किनारे भाई की क्रिया कर संपाति अपनी कथा यों कहने लगा—हे बुद्धिमान् वानरो, पहले जवानी में हम दोनों भाई आकाश में सूर्य के समीप उड़कर गये।

तेज न सहि सक सो फिरि आवा * मैं अभिमानी रवि नियरावा
जरे पंख रवि तेज अपारा * परा भूमि करि घोर चिकारा

जटायु सूर्य का तेज न सह सका, इससे लौट आया; परन्तु अभिमानी मैं सूर्यनारायण के पास पहुँच गया। सूर्य के बड़े भारी तेज से मेरे पंख जल गये। तब मैं भयंकर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मुनि इक नाम चन्द्रमा वोही * लागी दया देखिकर मोही
बहुप्रकार तेइँ ज्ञान सिखावा * देहजनित अभिमान छुड़ावा

चन्द्रमा नाम के एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें दया लगी। तब बहुत भाँति से उन्होंने ज्ञान सिखाया और मेरा देह से उत्पन्न अहंकार छुड़ाकर कहा—

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहैं * तासु नारि निशिचरपति हरिहैं
तासु खोज पठवहिं प्रभु दूता * तिनहिं मिले तुम होब पुनीता

त्रेतायुग में साक्षात् परब्रह्म मनुष्य का शरीर धारण करेंगे, जिनकी स्त्री को राक्षसों का राजा रावण हरेगा। उसे ढूँढ़ने के लिये स्वामी रामचन्द्र दूत भेजेंगे। उनसे मिलकर तुम पवित्र हो जाओगे।

जमिहहिं पंख करसि जनि चिन्ता * तिनहिं दिखाय देब तैं सीता
यह कहि मुनि निज आश्रम गयऊ * तेहि क्षण हृदय ज्ञान कछु भयऊ

और तभी तुम्हारे पंख जमेंगे, चिन्ता मत करो। उन्हें तुम जानकीजी को दिखा देना (अर्थात सीता का पता बता देना)। यह कहकर मुनि अपने आश्रम को चले गये और मेरे भी हृदय में उस समय कुछ ज्ञान हुआ।

सदा रामकर सुमिरण करऊँ * निशिदिनमग जोवतदिनभरऊँ
मुनि की गिरा सत्य भइ आजू * सुनि मम वचन करहु प्रभुकाजू

तब से सदैव रामजी का स्मरण करता हूँ और रात-दिन तुम लोगों की राह देखता हुआ दिन बिताता हूँ। आज मुनि का वचन सत्य हुआ। अब मेरा वचन सुनकर रामजी का काम कीजिए।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका * तहँ रह रावण सहज अशंका
तहाँ अशोकवाटिका अहई * सीय बैठि जहँ शोचति रहई

त्रिकूट पहाड़ के ऊपर लंकापुरी बसती है, जहाँ स्वभाव ही से निडर रावण रहता है। वहाँ अशोकवाटिका है, जहाँ बैठी सीताजी सोचती रहती हैं।

मैं देखौं पै तुम नहीं, गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न तु करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार॥

मैं यहाँ से जानकीजी को देखता हूँ, परन्तु तुम नहीं देखते; क्योंकि गिद्ध की दृष्टि बहुत दूर तक जाती है। मैं बूढ़ा हुआ, नहीं तो कुछ तुम्हारी सहायता करता।

जो लाँघै शतयोजन सागर * करै सो रामकाज अतिआगर
मोहिं विलोकि धरहु मन धीरा * रामकृपा कस भयो शरीरा

जो कोई चार सौ कोस समुद्र नाँघ जाय, वही बड़ा चतुर वीर रामजी का काम करेगा। मुझको देखकर मन में धीरज धरिए कि श्रीरामजी की दया से कैसी मेरी देह हो गई (पंख निकल आये)।

पापिहु जाकर नाम सुमिरहीं * अति अपार भवसागर तरहीं
तासु दूत तुम तजि कदराई * राम हृदय धरि करहु उपाई

जिसका नाम स्मरण करने ही पापी पुरुष भी बड़े अथाह भवसागर को तर जाते हैं। उनके दूत होकर तुम लोग कायरपन छोड़ रामजी को हृदय में रखकर यत्न करो।

असकहि उमा गीध जब गयऊ * सबके मन अति विस्मय भयऊ
निज निज बल सब काहू भाखा * पार जानकर संशय राखा

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, ऐसा कहकर जब गिद्ध गया तो सबके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। सब किसी ने अपने-अपने बल कहे; परन्तु पार जाने में सबको सन्देह ही रहा।

जरठ भयउँ अब कह ऋक्षेशा * नहिं तनु रहा प्रथम बललेशा
जबहिं त्रिविक्रम भये खरारी * तब मैं तरुण रहा बल भारी

रीछों के राजा जाम्बवान् कहने लगे कि अब तो मैं बूढ़ा हुआ—पहले के बल का कुछ भी अंश शरीर में नहीं रहा। जब खर राक्षस के मारनेवाले रामजी वामनरूप हुए थे, तब मैं जवान था और मेरे बहुत बल था।



बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरणि न जाय।
उभयघरी महँ कीन्ह मैं, सात प्रदक्षिण धाय॥

बलि के बाँधते समय जब वामनजी बढ़े थे, उस विराट् शरीर का वर्णन नहीं किया जा सकता; परन्तु मैंने दौड़कर दो घड़ी में उस शरीर की सात परिक्रमाएँ की थीं।

अंगद कहा जाउँ मैं पारा * जिय संशय कछु फिरती वारा
जाम्बवन्त कह तुम सब लायक * किमि पठवौं सबही कर नायक

अंगद ने कहा—मैं पार तो जा सकता हूँ; परन्तु लौटने में कुछ सन्देह है! जाम्बवान् ने कहा—यद्यपि आप सभी कुछ कर सकते हैं; परन्तु आप सबके स्वामी हैं, इसलिए आपको कैसे भेजूँ?

कहा ऋक्षपति सुनु हनुमाना * का चुप साधि रहा बलवाना
पवनतनय बल पवनसमाना * बुधि विवेक विज्ञाननिधाना

ऋक्षपति जाम्बवान् ने कहा—हनुमान्, तुम बलवान् होकर कैसे चुप साधे बैठे हो? पवन के पुत्र हो, इससे तुममें पवन के समान बल है। तुम बुद्धि, ज्ञान और विज्ञान की खान हो।

कौनसो काज कठिन जगमाहीं * जो नहिं होय तात तुम पाहीं
राम काज लगि तव अवतारा * सुनतहि भयउ पर्वताकारा

हे तात, संसार में ऐसा कौनसा कठिन काम है, जो तुमसे नहीं हो सकता? रामजी के काम के लिए ही तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान्जी ने अपना शरीर बढ़ाकर पर्वताकार कर लिया।

कनक वरण तनु तेज विराजा * मानहु अपर गिरिनकर राजा
सिंहनाद करि वारहिं वारा * लीलहिं नाँघौं जलनिधिखारा

सुनहले रंग के शरीर में तेज शोभित है, मानो दूसरे पर्वतों के राजा हैं। हनुमान्जी बार-बार सिंहनाद करके कहने लगे—मैं खारी समुद्र को खेल की तरह नाँघ जाऊँगा।

सहित सहाय रावणहिं मारी * आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी
जाम्बवन्त मैं पूछौं तोहीं * उचित सिखावन दीजै मोहीं

सहायकसमेत रावण को मारकर मैं यहाँ त्रिकूट पर्वत को ही कहो तो उखाड़ लाऊँ? हे जाम्बवान्, मैं तुमसे पूछता हूँ; उचित सिखावन मुझे दीजिए।

इतना करहु तात तुम जाई * सीतहिं देखि कहौ सुधि आई
तब निज भुजबल राजिवनैना * कौतुक लागि संग कपि सैना

जाम्बवान् बोले—हे तात, तुम केवल इतना करो कि सीताजी को देखकर उनकी खबर ले आओ और हमें बताओ। तब कमलनयन रामजी अपनी भुजाओं के बल से, केवल कौतुक के लिए वानरी सेना साथ लेकर शत्रु पर चढ़ आवेंगे।

छन्द

कपि सेन संग सँहारि निशिचर राम सीतहिं आनिहैं।
त्रयलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावहीं।
रघुवीर पदपाथोज मधुकर दास तुलसी गावहीं॥

वानरी सेना साथ ले राक्षसों को मारकर रघुनाथजी सीताजी को ले आवेंगे और उनका तीनों लोकों को पवित्र करनेवाला यश देवता और नारद आदि मुनि कहेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझने से मनुष्य परमपद पाते हैं। रघुनाथजी के चरणकमलों के भ्रमर तुलसीदास यह चरित्र गाते हैं।



भवभेषज रघुनाथ यश, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिनके सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि॥

जन्म-मरणरूपी संसाररोग की औषध रघुनाथजी का यश है, उसे जो नर-नारी सुनेंगे, उनके सारे मनोरथ त्रिपुरारि शिवजी पूरे करेंगे।



नीलोत्पल तनुश्याम, कामकोटि शोभा अधिक।
सुनिय तासु गुणग्राम, जासु नाम अघखगबधिक॥

नीलकमल के समान श्याम शरीरवाले और करोड़ों कामदेवों से जिनकी शोभा अधिक है, उन रामचन्द्रजी के गुणों को सुनो, जिनका नाम पापरूप पक्षियों को मारने के लिए बहेलिए के समान है।

किष्किन्धाकांड समाप्त



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण सुन्दरकाण्ड

बालबोधिनी टीका-सहित



सुरतरुहू ते सरस अति, जाको सरल सुभाव।
सुमिरहुँ उन रघुनाथ के, युगल चरण अति चाव॥
पुनि करि विनय विनायकहि, चारिहुँ फल दातार।
सुन्दर को भाषा रचहुँ, निज मति के अनुसार॥

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥

शान्त, सदैव रहनेवाले, प्रमाण से परे, पापरहित, मोक्ष और शान्ति के दाता, ब्रह्मा, शिव और शेष से सदैव सेवनीय, वेदान्त से जानने योग्य, व्यापक, रामनामवाले, संसार के स्वामी, देवताओं के गुरु, माया से मनुष्यरूप, भक्तदुःखहारी, करुणाकर, राजाओं के शिरोमणि रघुनाथजी की मैं वन्दना करता हूँ।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिम्प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसञ्च॥

हे रघुपति, आप सब प्राणियों के भीतर जीवरूप से टिके हैं। हे रघुनायक, मुझे बड़ी भक्ति दीजिए और मेरे मन को कामादि दोषों से रहित कीजिए। सत्य कहता हूँ, मेरे मन में इसके सिवा और कोई मनोरथ नहीं है।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

अपरिमित बल की खान, सुमेरु-सी देहवाले, दैत्यरूप वन को जलाने के लिए अग्नि, ज्ञानियों में प्रथम गिनने योग्य, समस्त गुणों के निधान, वानरों के नायक, रघुनाथजी के उत्तम दूत, पवनसुत हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

जाम्बवन्त के वचन सुहाये * सुनि हनुमान् हृदय अतिभाये
तबलगि मोहिं परखियहु भाई * सहि दुख कन्द मूल फल खाई

जाम्बवान् के सुहावने वचन सुनकर हनुमानजी के मन को बहुत अच्छे लगे। वह बोले—भाइयो, तब तक कन्दमूल, फल खाकर और दुःख सहकर मेरा रास्ता देखो—

जबलगि आवहुँ सीतहिं देखी * होय काज मन हर्ष विशेखी
असकहि नाय सबन कहँ माथा * चलेउ हर्ष हियधरि रघुनाथा

जब तक जानकीजी को देखकर मैं लौट आऊँ, जिससे काम पूरा होने से मन में हर्ष हो। ऐसा कहकर हनुमानजी ने सबको माथा नवाया और हृदय में रामजी को धारण कर प्रसन्नता से चले।

सिन्धुतीर इक सुन्दर भूधर * कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर
बार बार रघुवीर सँभारी * तरकेउ पवनतनय बलभारी

समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था। उस पर अनायास उचककर हनुमानजी चढ़ गये। फिर बार-बार रघुनाथजी का स्मरणकर पवन के पुत्र हनुमानजी बड़े बल से कूदे।

जेहिगिरि चरण दिये हनुमन्ता * सो चलिगयो पताल तुरन्ता
जिमि अमोघ रघुपति के बाना * ताही भाँति चला हनुमाना
जलनिधि रघुपति दूत विचारी * कह मैनाक होहु श्रमहारी

जिस पर्वत के ऊपर पैर रखकर हनुमानजी कूदे थे, वह तुरन्त ही पाताल को चला गया। जैसे रघुनाथजी के सफल बाण वेग से चलते हैं, वैसे ही हनुमानजी चले। समुद्र ने उन्हें रामजी का दूत विचारकर मैनाक पर्वत से कहा—मैनाक, तुम विश्राम देकर इनकी थकावट को हरो।

सो० सिन्धु वचन उर धारि, तुरत उठे मैनाक तब।
कपिकहँ कीन्ह जुहारि, बार बार कर जोरिकै॥

समुद्र के वचन हृदय में रखकर मैनाक तुरन्त उठे और बार-बार हाथ जोड़कर हनुमानजी को प्रणाम किया।

दो० हनूमान तेहि परसिकरि, पुनि पुनि कीन्ह प्रणाम।
रामकाज कीन्हें बिना, मोहिं कहाँ विश्राम॥

हनुमानजी ने उसे हाथ से छूकर बार-बार प्रणाम किया और कहा—बिना रामजी का काम किये मुझे विश्राम कहाँ?

जात पवनसुत देवन देखा * जाना चह बल बुद्धि विशेखा
सुरसा नाम अहिन की माता * पठयहु आय कही तेइँ बाता

पवन के पुत्र हनुमान्‌जी को जाते देख देवताओं ने उनके बल और बुद्धि की विशेषता जाननी चाही। उन्होंने नागों का माता 'सुरसा' को भेजा। उसने आकर यह बात कही—

आजु सुरन मोहिं दीन्ह अहारा * सुनि हँसि बोला पवनकुमारा
रामकाज करि फिरि मैं आवौं * सीता की सुधि प्रभुहिं सुनावौं

कि देवताओं ने आज मुझे भोजन दिया। यह सुन हँसकर पवनकुमार हनुमान्‌जी बोले—रामजी का काम कर लौट आऊँ और सीता की खबर प्रभु रामजी को सुना दूँ—

तब तव वदन पैठिहौं आई * सत्य कहौं मोहिं जान दे माई
कउनिउ यतन देइ नहिं जाना * ग्रससि न मोहिं कहा हनुमाना

तब आकर तुम्हारे मुख में पठूँगा। माता, मैं यह सत्य कहता हूँ। मुझे जाने दे। जब किसी उपाय से उसने न जाने दिया, तब हनुमानजी ने कहा—फिर मुझे क्यों नहीं लील लेती?

योजन भरि तेइँ वदन पसारा * कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा
सोरह योजनमुख तेहि ठयऊ * तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ

उसने चार कोस मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपना शरीर दूना बढ़ा दिया। उसने सोलह योजन का मुख किया, तब तुरन्त ही पवनकुमार हनुमान्‌जी बत्तीस योजन के हो गये।

जस जस सुरसा वदन बढ़ावा * तासु दुगुन कपिरूप दिखावा
शतयोजन तेहिआनन कीन्हा * अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा

सुरसा ने ज्यों-ज्यों मुख बढ़ाया, त्यों-त्यों उसका दूना रूप हनुमान्‌जी ने दिखाया। जब सुरसा ने सौ योजन का मुख किया, तब हनुमान्‌जी बहुत ही छोटा रूप रखकर—

वदन पैठि पुनि बाहर आवा * माँगी बिदा ताहि शिर नावा
मोहिं सुरन जेहिलागि पठावा * बुधि बल मर्म तोर मैं पावा

उसके मुँह में घुस गये और फिर बाहर निकल आये। फिर उससे माथा नवाकर बिदा माँगी। तब सुरसा बोली—देवताओं ने मुझे जिस लिए भेजा था, सो तुम्हारी बुद्धि (छोटा रूप रखकर निकल आना) और बल (शरीर बढ़ जाना) का भेद मैंने पा लिया।



राम काज सब करिहहु, तुम बलबुद्धिनिधान।
आशिष दै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान॥

तुम बल और बुद्धि के निधान हो, इसलिए रामजी का सब काम करोगे। यह आशीर्वाद देकर सुरसा चली गई और प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी भी चले।

निशिचरि एक सिन्धुमहँ रहई * करि माया नभ के खग गहई

जीवजन्तु जो गगन उड़ाहीं * जलविलोकि तिनकी परछाहीं

'सिंहिका' नाम की एक राक्षसी समुद्र में रहती थी, जो माया कर आकाश के पक्षियों को पकड़ती थी। जो जीव-जन्तु आकाश में उड़ते थे, उनकी छाया जल में देखकर—

गहै छाँह सक सो न उड़ाई * यहिविधि सदा गगनचर खाई

सोइ छल हनूमान ते कीन्हा * तासुकपट कपि तुरतहिं चीन्हा

वह उन्हें पकड़ लेती थी। तब वे उड़ नहीं सकते थे। इस प्रकार वह सदैव आकाश में उड़नेवाले जीवों को खाती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से किया; परन्तु उन्होंने तुरन्त ही उसका छल जान लिया।

ताहि मारि मारुतसुत वीरा * वारिधिपार गयउ मतिधीरा

तहाँ जाय देखी वन शोभा * गुंजत चंचरीक मधु लोभा

वीर और बुद्धिमान् हनुमानजी उसको मारकर समुद्र के पार गये। वहाँ जाकर उन्होंने वन की शोभा देखी कि शहद के लालच से भौंरे गुंजार रहे हैं।

नाना तरु फल फूल सुहाये * खग मृग वृन्द देखि मनभाये

शैल विशाल देखि इक आगे * तापर कूदि चढ़े भय त्यागे

अनेक प्रकार के वृक्षों में सुहावने फल-फूल लगे हैं। पक्षी और मृग देखकर हनुमान् के मन को भाये। एक बड़ा चौड़ा पहाड़ आगे देखकर हनुमानजी डर छोड़ उस पर चढ़ गये।

उमा न कछु कपि की अधिकाई * प्रभुप्रताप जो कालहि खाई

गिरिपर चढ़ि लंका तेहि देखी * कहि न जाइ अतिदुर्ग विशेखी

अतिउतंग जलनिधि चहुँपासा * कनककोट कर परम प्रकासा

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, इसमें कुछ हनुमान्‌जी की बड़ाई नहीं है। प्रभु का प्रताप ही ऐसा है कि वह काल को भी खा सकता है। हनुमान् ने पहाड़ पर चढ़कर लंका देखी, जिसके दुर्ग की विशेषता कही नहीं जा सकती। वह कोट बड़ा ऊँचा था और उसके चारों ओर समुद्र था। सुवर्ण के कोट का बड़ा प्रकाश हो रहा था।

छन्द

कनककोट विचित्र मणिकृत सुन्दरायत अतिघना।
चहुँहाट हाट सुबाट वीथी चारु पुर बहु विधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथनि को गनै।
बहुरूप निशिचरयूथ अतिबल सेन वर्णत नहिं बनै॥

वह सोने का कोट विचित्र मणियों से युक्त, सुन्दरता की खान और बड़ा सघन था। उसके चारों ओर बाजार और सुन्दर गली-कूचे थे। बहुत भाँति से सुन्दर नगर बना था। हाथी, घोड़, खच्चर, पैदल और रथों के इतने समूह थे कि उनको कौन गिन सकता है? वहाँ रहनेवाली बहुत रूपोंवाले राक्षसों की बड़ी बलवान् सेना का वर्णन करते नहीं बनता।

बन बाग उपवन वाटिका सर, कूप वापी सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्यारूप मुनि मन मोहहीं ॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैलसमान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारन भिरहिं बहुविधि एक एकन तर्जहीं॥

वन, बाग, उपवन, फुलवारी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ शोभित हैं तथा मनुष्यों, नागों, देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ अपने रूपों से मुनियों के मन मोहती हैं। लम्बी-चौड़ी देहवाले पर्वतों के समान बहुत-से पहलवान् योद्धा अति बल से गरजते हैं तथा अनेक अखाड़ों में भिड़ते और एक दूसरे को झिड़कते हैं।

करियतन भट कोटिन विकटतन नगर चहुँदिशि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निशाचर भच्छहीं॥
यहि लागि तुलसीदास इनकी कथा संक्षेपहि कही।
रघुबीर शरतीरथ शरीरन त्यागि गति पैहहिं सही॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके चारों दिशाओं में नगर की रक्षा करते हैं। कहीं दुष्ट निशाचर भैंसे, मनुष्य, गऊ, गधे और बकरों का भक्षण करते हैं। इसी कारण तुलसीदासजी ने इनकी कथा संक्षेप से कही कि रघुनाथजी के बाणरूप तीर्थ में शरीर छोड़कर ये अवश्य उत्तम गति पावेंगे।

पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अतिलघुरूप धरौं निशि, नगर करौं पैसार॥

नगर के रक्षक बहुत देख हनुमान्जी ने मन में विचारा कि बहुत छोटा रूप रख रात को नगर में घुसूँगा।

मशक समान रूप कपि धरी * लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी
नाम लंकिनी एक निशिचरी * सो कह चलेसि मोहिं निन्दरी

हनुमान्जी ने मच्छड़ के समान शरीर कर लिया और पुरुषसिंह अथवा नरसिंहरूप रघुनाथजी का स्मरण कर वह लंका में घुसे। 'लंकिनी' नाम की एक राक्षसी ने कहा—मेरी परवा न करके तुम कहाँ जाते हो?

जानै नहीं मर्म शठ मोरा * मोर अहार लंक कर चोरा
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी * रुधिर वमत धरणी ढनमनी

अरे शठ, मेरा मर्म तू नहीं जानता कि लंका में जो चोर आते हैं, वे मेरा आहार हैं। हनुमान्जी ने उसके एक घूँसा मारा; वह मुँह से रक्त उगलती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी।

पुनि सम्भारि उठी सो लंका * जोरि पाणि कर विनय सशंका
जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा * चलत विरंचि कहा मोहिं चीन्हा

फिर वह लंकिनी सँभलकर उठी और हाथ जोड़कर शंकित हो विनय करने लगी कि जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया था तो चलते समय मुझे देखकर कहा था कि—

विकल होसि जब कपि के मारे * तब जानेसि निशिचर संहारे
तात मोर अति पुण्य बहूता * देखेउँ नयन रामकर दूता।

जब वानर के मारने से तू व्याकुल हो जाय; तब जानना कि राक्षसों का नाश होने वाला है। हे तात, मेरा बड़ा पुण्य था, जो आँखों से श्रीरामजी के दूत को देखा।



सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

सातों स्वर्गों का और मोक्ष का सुख तराजू में एक ओर रक्खो तो भी वह सब मिलकर उस सुख के समान न होगा, जो सुख लव (एक पल का साठवाँ भाग) भर के सत्संग में होता है।

प्रविशि नगर कीजे सब काजा * हृदय सुमिरि कोशलपुर राजा
गरल सुधा रिपु करै मिताई * गोपद सिन्धु अनल शितलाई

अब आप अयोध्यापुरी के राजा रामजी को हृदय में स्मरणकर नगर में पैठिए और अपना सब काम कीजिए। उसे विष अमृत, शत्रु मित्र, समुद्र गऊ के खुर के गढ़े का जल, अग्नि ठंढी

गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही * राम कृपाकरि चितवहिं जाही
अति लघुरूप धरेउ हनुमाना * पैठेउ नगर सुमिरि भगवाना

और बड़ा गरुआ सुमेरु पर्वत धूल के समान हो जाता है, जिसे रामजी कृपा की दृष्टि से देखते हैं। हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धरा और रघुनाथजी का स्मरण कर नगर में पैठे।

मन्दिर मन्दिर प्रतिकरि शोधा * देखेउ जहँ तहँ अगणित योधा
गयउ दशानन मन्दिर माहीं * अति विचित्र कहिजात सो नाहीं

तब हनुमान् ने घुसकर हरएक घर ढूँढ़ा और जहाँ-तहाँ अनगिनत योद्धा देखे। फिर रावण के मन्दिर में गये, जो बड़ा विचित्र था; जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

शयन किये देखा कपि तेही * मन्दिरमहँ न दीख वैदेही
भवन एक तहँ दीख सुहावा * हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा

हनुमान्‌जी ने वहाँ रावण को सोते देखा; परन्तु मन्दिर में जानकीजी न देख पड़ीं। फिर एक सुन्दर मन्दिर देखा, जहाँ अलग श्रीविष्णुजी का एक मन्दिर बनाया गया था।



राम नाम अंकित गृह, शोभा बरणि न जाय।
नवतुलसी के वृन्द तहँ, देखि हर्ष कपिराय॥

उस घर में सब जगह रामजी का नाम लिखा था। उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नये तुलसी के अनेक वृक्ष लगे थे। उसे देख वानरश्रेष्ठ हनुमानजी प्रसन्न हुए।

लंका निशिचर निकर निवासा * इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा
मन महँ तर्क करन कपि लागा * ताही समय विभीषण जागा

और मन में विचारने लगे कि लंका में तो राक्षस बसते हैं; यहाँ सज्जनों का निवास कैसा? हनुमान्‌जी मन में यह तर्क कर ही रहे थे कि विभीषण जाग पड़े।

राम राम तेहि सुमिरण कीन्हा * हृदय हर्षि कपि सज्जन चीन्हा
इहि सन हठि करिहौं पहिचानी * साधु ते होइ न कारज हानी

उन्होंने 'राम-राम' स्मरण किया। तब मन में प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी ने जाना कि यह कोई सज्जन है और मन में विचारा कि इससे मैं अवश्य जान-पहचान करूँगा; क्योंकि साधु से काम की हानि नहीं होती।

विप्ररूप धरि वचन सुनावा * सुनत विभीषण उठि तहँ आवा
करि प्रणाम पूछी कुशलाई * कहहु विप्र निज कथा बुझाई

तब ब्राह्मण का रूप रखकर हनुमान्‌जी बोले। उनका शब्द सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणामकर विभीषणजी ने कुशल पूछी और कहा—हे विप्र, अपना हाल समझाकर कहिए।

की तुम हरिदासन महँ कोई * मोरे हृदय प्रीति अति होई
की तुम राम दीन अनुरागी * आयहु मोहिं करन बड़भागी

तुम भगवान्‌ के भक्तों में कोई हो; क्योंकि तुम्हें देखकर मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता होती है। अथवा दीनों के ऊपर प्रेम करनेवाले रामजी हो, जो मुझे बड़ा भाग्यशाली बनाने आये हो?

तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निज नाम।
सुनत युगल तनु पुलकमन, मगन सुमिरि गुणग्राम॥

तब हनुमान्‌जी ने रामजी के सब चरित्र और अपना नाम कहा। उसे सुन दोनों के शरीरों में रोमांच हो आया और वे रघुनाथजी के गुणों का स्मरणकर मन में प्रसन्न हुए।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी * जिमि दशननमहँ जीभ बिचारी
तात कबहुँ मोहिं जानि अनाथा * करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा

विभीषण बोले—हे पवनकुमार, हम उसी प्रकार राक्षसों में रहते हैं, जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ! हे तात, क्या मुझे अनाथ जानकर कभी सूर्यवंश के नायक रघुनाथजी मुझ पर दया करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं * प्रीति न पदसरोज मन माहीं
अब मोहिं भा भरोस हनुमन्ता * बिनहरिकृपा मिलहिं नहिं सन्ता

एक तो मेरा तामसी शरीर, दूसरे कुछ साधन नहीं है और न मन में रघुनाथजी के

चरणकमलों में प्रेम है। परन्तु अब मुझे विश्वास हुआ कि मुझ पर वह अवश्य कृपा करेंगे; क्योंकि उनकी कृपा के बिना सन्त नहीं मिलते।

जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा * तौ तुम मोहिं दरश हठि दीन्हा
सुनहु विभीषण प्रभुके रीती * करहिं सदा सेवक पर प्रीती

जब रघुनाथजी ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया, तभी तुमने आपसे मुझे दर्शन दिया। महावीरजी बोले—हे विभीषण, स्वामी रामजी की रीति सुनो। वे सेवक पर सदा प्रीति करते हैं।

कहहु कवन मैं परम कुलीना * कपि चञ्चल सबही विधि हीना
प्रात लेइ जो नाम हमारा * तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा

भला मैं कौन बड़ा कुलीन हूँ ? एक तो चंचल स्वभाववाला वानर, दूसरे सभी भाँति से हीन। प्रातःकाल जो हमारा नाम ले ले, उसे उस दिन भोजन न मिले, ऐसे हम अधम हैं।


अस मैं अधम सखा सुनु, ताहू पर रघुवीर।
कीन्हेउ कृपा सुमिरि गुण, भरे विलोचननीर॥

हे मित्र, तो भी रघुनाथजी ने कृपा की। ऐसे रामजी के गुण यादकर हनुमान्जी ने आँखों में आँसू भर लिये।

जानतहू अस स्वामि बिसारी * ते नर काहे न होहिं दुखारी
यहि विधि कहत रामगुणग्रामा * पावा अकथनीय विश्रामा

जानकर भी जो ऐसे स्वामी को भुला देते हैं, वे मनुष्य क्यों दुःखी न हों ? इस प्रकार रामजी के गुण कहते दोनों ने ऐसा सुख पाया, जो कहने में नहीं आता।

पुनि सब कथा विभीषण कही * जेहि विधि जनकसुता तहँ रही
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता * देखा चहौं जानकी माता

फिर विभीषण ने सब कथा कही, जिस प्रकार वहाँ जनकनन्दिनी रहीं। तब हनुमान्जी ने कहा—भाई, मैं माता जानकीजी को देखना चाहता हूँ।

युक्ति विभीषण सकल सुनाई * चलेउ पवनसुत विदा कराई
धरि सोइ रूप गयो पुनि तहँवाँ * वन अशोक सीता रह जहँवाँ

तब विभीषण ने सब युक्ति बताई। तब पवन के पुत्र हनुमान्जी विदा माँगकर चले। फिर वही (मशक का) रूप रखकर वहाँ गये, जहाँ अशोकवन में जानकीजी रहती थीं।

देखि मनहिं मन कीन्ह प्रणामा * बैठे बीति गई निशि यामा
कृश तनु शीश जटा इक वेणी * जपति हृदय रघुपति गुण श्रेणी

उन्हें देख हनुमान्जी ने मन ही मन प्रणाम किया और बैठ गये। उस समय एक पहर रात बीती थी। सीताजी का शरीर दुबला हो रहा था। माथे पर जटाओं की एक वेणी थी। ऐसी जानकीजी मन में रघुनाथजी के गुण जपती रहती थीं।



निज पद नयन दिये मन, रामचरण लवलीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन॥ ८

नयनों को अपने चरणों में और मन को रामजी के चरणों में लगाये जानकीजी बैठी थीं। जानकीजी को ऐसी दीन-दुखी देख पवन के पुत्र हनुमानजी बड़े दुखी हुए।

तरुपल्लव महँ रहा लुकाई * करै विचार करौं का भाई
तेहि अवसर रावण तहँ आवा * संग नारि बहु किये बनावा

तब महावीरजी उस अशोक वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ? उसी समय बहुत स्त्रियों को साथ लिए और बहुत शृंगार किये रावण वहाँ आया।

बहुविधि खल सीतहिं समुझावा * साम दाम भय भेद दिखावा
कह रावण सुनु सुमुखि सयानी * मन्दोदरी आदि सब रानी

दुष्ट ने बहुत प्रकार सीता को समझाया; साम, दाम, भय और भेद भी दिखाये। रावण बोला—हे सुमुखी सयानी, मन्दोदरी आदि सब रानियों को—

तव अनुचरी करौं प्रण मोरा * एकबार विलोकु मम ओरा
तृण धरि ओट कहति वैदेही * सुमिरि अवधपति परमसनेही

तुम्हारी दासी कर दूँगा, यह मेरा प्रण है। बस, एक बार मेरी ओर देखो। बड़े स्नेही अयोध्या के स्वामी श्रीरामजी का स्मरण कर जानकीजी तृण की ओट करके बोलीं—

सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा * कबहुँकि नलिनी करै विकाशा
असमनसमुझु कहति जानकी * खल सुधि नहिं रघुवीर बानकी
शठ सूने हरि आनेसि मोहीं * अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं

अरे रावण! क्या जुगुनू का प्रकाश कमलों को खिला सकता है? जानकीजी कहती हैं—रे दुष्ट! ऐसा मन में समझ। क्या तुझे रघुनाथजी के बाण की याद नहीं, जिसके डर से तू मुझे सूने में हर लाया है? रे नीच, निर्लज्ज, शठ! तुझे लाज नहीं आती?



आपुहि सुनि खद्योतसम, रामहिं भानु समान।
परुषवचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥

अपने को जुगुनू के समान और रघुनाथजी को सूर्य के समान सुनकर रावण को बड़ी लज्जा लगी। तब ऐसे कठोर वचन सुन वह खड्ग निकालकर बोला—

सीता तैं मम कृत अपमाना * कटिहौं तव शिर कठिन कृपाना
नहिं तो सपदि मानु मम बानी * सुमुखि होत नतु जीवनहानी

रे सीता, तूने मेरा निरादर किया है, इस कारण मैं इस कठिन खड्ग से तेरा मस्तक फाड़ूँगा। नहीं तो शीघ्र ही मेरा वचन मान। हे सुमुखी, नहीं तो अब तेरे जीवन का नाश होता है।

श्याम सरोजदामसम सुन्दर * प्रभु भुज करिकरसम दशकन्धर
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा * सुनु शठ अस प्रमाण प्रण मोरा

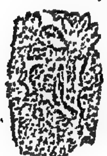
यह सुन सीताजी बोलीं—अरे रावण ! श्याम कमलों की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड़ के समान जो स्वामी की भुजाएँ हैं, रे शठ ! वही भुजाएँ और या तेरा यह भयंकर खड्ग मेरे गले पर पड़ेगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

चन्द्रहास हरु मम परितापा * रघुपति विरह अनल सन्तापा
शीतल निशित वहसि वरधारा * कह सीता हरु मम दुख भारा

हे चन्द्रहास (खड्ग) *, रघुनाथजी के वियोग की अग्नि से उत्पन्न मेरा दुःख हरो। सीताजी कहती हैं कि तेरी उत्तम धार पैनी होते हुए भी मुझे शीतल है, इससे मेरे दुःख का भार हर।

सुनत वचन पुनि मारन धावा * मयतनया कहि नीति बुझावा
कहेसि सकल निशिचरी बुलाई * सीतहिं बहु विधि त्रासहु जाई
मास दिवस महँ कहा न माना * तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना

यह सुन रावण फिर मारने दौड़ा। तब मय दानव की कन्या रावण की पटरानी मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। तब सब राक्षसियों को अलग बुलाकर रावण ने कहा—जाकर बहुत भाँति से सीता को दुःख दो। यदि महीने भर में यह मेरा कहा न मानेगी, तो मैं अपने इस कठिन खड्ग से इसे मार डालूँगा।


भवन गयो दशकन्ध तब, इहाँ निशाचरिवृन्द।
सीतहिं त्रास दिखावहीं, धरैं रूप बहु मन्द॥

यह कह रावण तो घर चला गया और नीच राक्षसियाँ अनेक भयानक रूप रखकर जानकीजी को डराने लगीं।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका * रामचरणरत विपुल विवेका
सबहीं बोलि सुनायसि सपना * सीतहिं सेइ करहु हित अपना

उनमें 'त्रिजटा' नाम की एक राक्षसी थी, जिसका रामजी के चरणों में बड़ा प्रेम था। वह ज्ञानवती थी। उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा कि जानकीजी की सेवा कर अपना हित कर लो।

सपने वानर लङ्का जारी * यातुधान सेना सब मारी
खरआरूढ़ नग्न दशशीसा * मुण्डितशिर खण्डित भुजबीसा

मैंने स्वप्न में देखा है, एक वानर ने लंका जलाई और सब राक्षसी सेना मार डाली। रावण नंगा होकर गधे पर चढ़ा है तथा उसका शीश मुण्डा और बीसों भुजाएँ कटी हैं।

* खड्ग का चन्द्रहास सम्बोधन इसलिए किया कि विरहाग्नि से उपजी जलन चन्द्रमा की किरणों से मिट सकती है। रावण की तलवार का यह नाम भी था।

अशोक-वन में सीता



(शोक-निवारक तरुतरे) घोर निशाचरि-वृंद ।
सीतहिं त्रास दिखावहीं धरहिं रूप बहु मंद ॥

यहिविधि सो दक्षिण दिशि जाई * लंका मनहु विभीषण पाई
नगर फिरी रघुवीर दोहाई * तब प्रभु सीता बोलि पठाई

इस प्रकार वह दक्षिण दिशा को जा रहा है और विभीषण ने लंका का राज्य पाया है। नगर भर में श्रीरघुनाथजी की दोहाई फिर गई है, तब प्रभु श्रीरामजी ने सीताजी को बुला भेजा है।

यह सपना मैं कहौं विचारी * होइहि सत्य गये दिन चारी
तासु वचन सुनि ते सब डरीं * जनकसुता के पायँन परीं

मैं विचारकर कहती हूँ कि यह स्वप्न चार दिन बाद ही सत्य होगा। यह सुन वे सब डरीं और जानकीजी के चरणों में गिर पड़ीं।



जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता के मन सोच।
मास दिवस बीते मोहिं, मारिहि निशिचर पोच॥

सब जहाँ-तहाँ चली गईं; सीताजी के मन में शोच हुआ कि महीना बीतने पर नीच राक्षस मुझे मारेगा।

त्रिजटा सन बोलीं करजोरी * मातु विपतिसङ्गिनि तैं मोरी
तजौं देह करु वेगि उपाई * दुसह विरह अब सहि नहिं जाई

जानकीजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं कि हे माता, तू विपत्ति में मेरी साथिन है। शीघ्र ही ऐसा उपाय कर, जिससे मैं शरीर छोड़ दूँ; क्योंकि न सहा जा सकनेवाला कठिन वियोग का दुःख अब सहा नहीं जाता।

आनि काठ रचि चिता बनाई * मातु अनल पुनि देहु लगाई
सत्य करहि ममप्रिया सयानी * सुनै को श्रवणशूल सम बानी

माता, लकड़ियाँ लाकर चिता रच और फिर उसमें आग लगा दे। हे मेरी प्यारी चतुर सखी, ऐसा ही कर, यह सत्य कहती हूँ; क्योंकि शूल के समान वचन कौन कानों से सुने?

सुनत वचन पदगहि समुझावा * प्रभुप्रताप बल सुयश सुनावा
निशि न अनल मिलु राजकुमारी * अस कहि सो निज धाम सिधारी

सीताजी के ये वचन सुन त्रिजटा ने उनके चरण पकड़कर समझाया और प्रभु रामचन्द्रजी का प्रताप, बल और यश उन्हें सुनाया। फिर 'हे सुकुमारी! रात को आग नहीं मिल सकती' कहकर अपने घर चली गई।

कह सीता विधि भा प्रतिकूला * मिलिहि न पावक मिटिहि न शूला
देखियत प्रकट गगन अंगारा * अवनि न आवत एको तारा

सीताजी ने कहा कि विधाता ही मेरे प्रतिकूल हो गया—न आग मिलेगी और न मेरा दुःख मिटेगा। आकाश में अंगारे देख पड़ते हैं; परन्तु एक भी चिनगारी (तारा) पृथ्वी में नहीं आती।

पावकमयशशि स्रवत न आगी * मानहु मोहिं जानि हतभागी

सुनहु विनय मम विटप अशोका * सत्यनाम करु हरु मम शोका

मानो मुझे अभागिनी जान अग्निमय चन्द्रमा भी आग नहीं देता। हे अशोक के वृक्ष, मेरी विनती सुनकर मेरा शोक हरो और अपना अशोक नाम सत्य करो।

नूतन किशलय अनल समाना * देहु अगिनि तनु करहुँ निदाना

देखि परम विरहाकुल सीता * सो क्षण कपिहि कल्पसम बीता

तुम्हारे नये पत्ते आग के समान लाल हैं। उनसे आग दो तो मैं अपना शरीर छोड़ूँ। जानकीजी को बड़े वियोग से व्याकुल देख हनुमान्जी को वह क्षण कल्प के समान बीता।



कपिकरि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हर्षि उठि करगहेउ॥

तब हनुमान्जी ने मन में विचारकर रामचन्द्र की मुँदरी डाल दी, मानो अशोक ने अंगार दिया हो। यह जान (उसे अंगारा जानकर) प्रसन्नता से उठकर जानकीजी ने उसे उठा लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर * राम नाम अंकित अति सुन्दर

चकित चितै मुँदरी पहिंचानी * हर्ष विषाद हृदय अकुलानी

तब मुँदरी देखी, जिस पर 'राम' का नाम लिखा था और जो बहुत सुन्दर थी। चकित सीता ने देखकर मुँदरी पहचानी कि यह रामचन्द्र की है। तो हर्ष (अँगूठी मिलने से) और दुःख (यह यहाँ कैसे आई, यह सोचकर) से व्याकुल हो गई।

जीति को सकै अजय रघुराई * माया ते अस रची न जाई

सीता मन विचार कर नाना * मधुर वचन बोले हनुमाना

'न जीते जाने योग्य रामजी को कौन जीत सकता है? ऐसी मुँदरी भी माया से नहीं रची जा सकती' जानकीजी मन में ऐसे ही अनेक भाँति के विचार कर रही थीं कि हनुमान्जी मधुर वचन बोले—

रामचन्द्र गुण बरणै लागा * सुनतहिं सीताकर दुख भागा

लागी सुनै श्रवण मन लाई * आदिहि ते सब कथा सुनाई

हनुमान् रामचन्द्रजी के गुण कहने लगे। उन्हें सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। कान और मन लगाकर जानकीजी सुनने लगीं और हनुमान्जी ने पहले से लेकर सब कथा सुनाई।

श्रवणामृत जेहिं कथा सुनाई * काहे न प्रकट होत सो भाई

तब हनुमन्त निकट चलिगयऊ * फिरि बैठीं मन विस्मय भयऊ

सीता बोलीं कि जिसने कानों को अमृतरूप कथा सुनाई है, वह क्यों नहीं प्रकट होता? हनुमान् चलकर पास गये। तब जानकीजी उन्हें रावण की माया जान घूम बैठीं और उनके मन में विस्मय हुआ।

रामदूत मैं मातु जानकी * सत्य शपथ करुणानिधानकी

यह मुद्रिका मातु मैं आनी * दीन्ह राम तुमकहँ सहिदानी

नर वानरहिं सङ्ग कहु कैसे * कही कथा संगति भइ जैसे

तब हनुमान्‌जी बोले—माता, मैं रामजी का दूत हूँ। दयानिधान रामजी की सौगन्द खाकर सत्य कहता हूँ। हे माता, मैं यह मुँदरी लाया हूँ, इसे रामजी ने तुमको पहचान के लिए दिया है। जानकीजी बोलीं—मनुष्य (राम) और वानर का (तुम्हारा) कैसे साथ हुआ? कहो। तब हनुमान्‌जी ने जैसे सुग्रीव से मित्रता हुई थी सो सुनाया।



कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिन्धु कर दास॥

हनुमान्‌जी के प्रेम-समेत वचन सुनकर जानकीजी के मन में विश्वास हुआ और उन्होंने जाना कि मन, कर्म और वचन से यह दयासिन्धु रामजी का दास है।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी * सजल नैन पुलकावलि ठाढ़ी
बूड़त विरहजलधि हनुमाना * भयउ तात मोकहँ जलयाना

हनुमान् को रघुनाथजी का भक्त जानकर सीताजी के मन में बड़ी प्रीति बढ़ी—नयनों में जल भर आया और देह में रोमांच हो आया। जानकीजी ने कहा—हे हनुमान्, वियोग-समुद्र में डूबती हुई मुझे पार करने को तुम जहाज हुए।

अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी * अनुजसहित सुखभवन खरारी
कोमल चित कृपालु रघुराई * कपि केहि हेतु धरी निठुराई

तुम्हारी बलिहारी जाऊँ, स्वामी की कुशल कहो। खरारि रघुनाथजी छोटे भाई लछमण-समेत सुख से तो हैं? हे हनुमान्, दयालु रघुनाथजी तो कोमलचित्त हैं, उन्होंने किस लिए यह निठुरता धरी।

सहजबानि सेवक सुखदायक * कबहुँक सुरति करत रघुनायक
कबहुँ नैन मम शीतल ताता * होइहिं निरखि श्याम मृदुगाता

उनकी यह स्वाभाविक बान है कि सेवक को सुख देते हैं। भला वे रघुनाथजी कभी मेरी याद करते हैं? हे तात, उनका श्याम और कोमल शरीर देखकर कभी मेरी आँखें ठंढी होंगी?

वचन न आव नैन भरि बारी * अहह नाथ मोहिं निपट बिसारी
देखि विरहव्याकुल अतिसीता * बोलेउ कपि मृदुवचन विनीता

मुँह से बात नहीं निकलती। सीताजी आँखों में आँसू भरकर कहने लगीं—अहह नाथ, तुमने मुझे निपट भुला दिया। जानकीजी को बहुत व्याकुल देख हनुमान्‌जी नम्र और कोमल वचन बोले—

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता * तव दुखदुखी सो कृपानिकेता
जननी जनि मानहु मन ऊना * तुमसे प्रेम राम कहँ दूना

हे माता, स्वामी रघुनाथजी छोटे भाई लछमण-समेत कुशल से हैं। परन्तु दयानिधान रामजी तुम्हारे दुःख से दुखी हैं। हे माता, मन में कम न मानो रामजी को तुमसे दूना प्रेम है



रघुपति के सन्देश अब, सुनु जननी धरिधीर।
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥

हे माता, अब धीरज धरकर रामचन्द्रजी का सँदेशा सुनो। ऐसा कह हनुमान्जी गद्गद हो उठे और उनकी आँखों में जल आ गया।

राम कहा वियोग तव सीता * मोकहँ सकल भये विपरीता
नूतनकिसलय मनहु कृशानू * कालनिशासम निशि शशिभानू

रामजी ने कहा है कि हे सीता, तुम्हारे वियोग में मुझे सब प्रतिकूल हो गये—सुखद वस्तु दुःखद हो गई। नवीन पत्ते मानो अग्नि हैं, रात्रि कालरात्रि के समान और चन्द्रमा सूर्य की भाँति हो गया।

कुवलयविपिन कुन्तवनसरिसा * बारिद तप्ततेल जनु बरिसा
जेहि तरु रहौं करत सो पीरा * उरगश्वाससम त्रिविध समीरा

कमलों का वन बरछियों के वन के समान लगता है और मेघ मानो गर्म तेल बरसाते हैं। जिस वृक्ष के नीचे रहता हूँ, वह पीड़ा देता है और तीनों प्रकार का पवन साँप की साँस की नाईं लगता है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई * काहि कहौं यह जान न कोई
तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा * जानत प्रिया एक मन मोरा

कहने से भी कुछ दुःख कम हो जाता है; परन्तु किससे कहूँ, यह कोई नहीं जानता। हे प्रिया, मेरे और तुम्हारे प्रेम के यथार्थ तत्त्व को केवल मेरा मन ही जानता है।

सो मन रहत सदा तोहिं पाहीं * जानु प्रीतिरस इतनेहि माहीं
प्रभु सन्देश सुनत बैदेही * मगन प्रेम तनु सुधि नहिं तेही

और वह मन सदैव तुम्हारे पास रहता है, इतने ही में प्रीति के रस को जानिए। स्वामी का यह संदेशा सुनते ही जानकीजी प्रेम में मगन हो गईं; उनको देह की कुछ भी सुध नहीं रही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता * सुमिरि राम सेवक सुखदाता
उर आनहु रघुपति प्रभुताई * सुनि मम वचन तजहु विकलाई

हनुमान्जी ने कहा—हे माता, सेवक को सुख देनेवाले रघुनाथजी का स्मरणकर मन में धीरज धरो। रघुनाथजी की महिमा हृदय में लाओ, और मेरे वचन सुनकर व्याकुलता छोड़ो।



निशिचर निकर पतंगसम, रघुपति बाण कृशानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निशाचर जानु॥

हे माता, पाँखी-सरीखे राक्षस अग्नि-सरीखे रामजी के बाणों से जल जायँगे। इससे धीरज धरो।

जो रघुवीर होत सुधि पाई * करते नहिं विलम्ब रघुराई
राम बाण रवि उदय जानकी * तमवरूथ कहँ यातुधान की

जो रघुनाथजी तुम्हारी खबर पाते तो देर न करते। हे जानकीजी, अन्धकाररूप राक्षसों के लिये रघुनाथजी के बाण सूर्योदय के समान हैं।

अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई * प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई
कछुक दिवस जननी धरु धीरा * कपिन सहित ऐहैं रघुवीरा

हे माता, मैं तुम्हें अभी लिवा ले जाता। परन्तु स्वामी रघुनाथजी की आज्ञा नहीं है। यह रामजी की सौगन्ध कर कहता हूँ। हे माता, कुछ दिन धीरज धरो, वानरों-समेत रघुनाथजी आवेंगे।

निशिचर मारि तुम्हैं लै जैहैं * तिहुँपुर नारदादि यश गैहैं
हैं सुत कपि सब तुमहिं समाना * यातुधान भट अति बलवाना

राक्षसों को मारकर रामजी तुम्हें ले जायँगे और नारद आदि मुनि तीनों लोकों में उनका यश गावेंगे। जानकीजी बोलीं—पुत्र, सब वानर तुम्हारे ही समान छोटे होंगे और राक्षस बड़े बलवान् योद्धा हैं—

मोरे हृदय परम सन्देहा * सुनि कपि प्रकट कीन्ह निजदेहा
कनक भूधराकार शरीरा * समर भयंकर अतिरणधीरा
सीता मन भरोस तब भयऊ * पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ

इससे मेरे मन में बड़ा सन्देह है। यह सुनकर हनुमान्जी ने अपना असली रूप प्रकट किया। सोने के पहाड़ के-से आकारवाला, युद्ध में भयंकर, और रण में अत्यन्त धीर उनका शरीर हो गया। तब जानकीजी के मन में विश्वास हुआ और पवनपुत्र हनुमान्जी ने फिर छोटा रूप कर लिया।



सुनु माता शाखामृगहि, नहिं बल बुद्धि विशाल। १६
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि, खाय परमलघु व्याल॥

महावीरजी ने कहा—हे माता, सुनिए। वानर के बहुत बल और बुद्धि नहीं होती; परन्तु स्वामी रघुनाथजी के प्रताप से बहुत छोटा भी साँप गरुड़ को खा जाता है।

मन संतोष सुनत कपिबानी * भक्ति प्रताप तेज बल सानी
आशिष दीन्ह रामप्रिय जाना * होहु तात बल बुद्धि निधाना

हनुमान्जी के यह भक्ति, प्रताप, तेज और बल से सने हुए वचन सुनकर जानकीजी के मन में सन्तोष हुआ। फिर रामजी के प्यारे जान हनुमान् को आशीर्वाद दिया कि हे तात, बल और बुद्धि के निधान होओ।

अजर अमर गुणनिधि सुत होहू * करहिं सदा रघुनायक छोहू

करहिंकृपाप्रभु अससुनि काना * निर्भर प्रेम मगन हनुमाना

हे पुत्र, तुम अजर, अमर और गुणों की खान होओ तथा रघुनाथजी सदैव तुम पर दया करें। 'स्वामी रामजी कृपा करें' ऐसा आशीर्वाद कानों से सुन हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रेम में मग्न हो गये।

बार बार नायउ पदशीशा * बोले वचन जोरि कर कीशा
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता * आशिष तव अमोघ विख्याता

हनुमान्‌जी ने बार-बार जानकीजी के चरणों में माथा नवाया और हाथ जोड़कर कहा—हे माता, मैं अब कृतार्थ हो गया; क्योंकि तुम्हारा आशीर्वाद सफल है, यह सब जानते हैं।

सुनियमातुमोहिंअतिशय भूखा * लागि देखि सुन्दर फल रूखा
सुनु सुत करें विपिन रखवारी * परम सुभट रजनीचर भारी
तिनकर भय माता मोहिं नाहीं * जो तुम सुख मानहु मनमाहीं

हे माता, सुन्दर फलोंवाले वृक्ष देख मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं इन्हें खाना चाहता हूँ। जानकीजी बोलीं—हे पुत्र, परन्तु बड़े-बड़े योद्धा राक्षस इस फुलवारी की रक्षा करते हैं। महावीर ने कहा—हे माता, जो तुम मन में सुख मानो तो मुझे उनका डर नहीं।



देखि बुद्धिबल निपुण कपि, कहा जानकी जाहु।
रघुपति चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु॥

महावीरजी को बुद्धि और बल में प्रवीण देख जानकीजी ने कहा—हे तात, रघुनाथजी के चरणों को हृदय में रखकर जाओ और ये मीठे फल खाओ।

चलेउ नाय शिर पैठेउ बागा * फल खाये तरु तोरन लागा
रहे तहाँ बहु भट रखवारे * कछु मारे कछु जाय पुकारे

वे जानकीजी को माथा नवाकर चले, बाग में पैठे तथा फल खाने और वृक्ष तोड़ने लगे। वहाँ बहुत से योद्धा रक्षक थे, उनमें से कुछ को हनुमान् ने मार डाला और कुछ ने जाकर रावण से पुकार की।

नाथ एक आवा कपि भारी * तेइँ अशोक वाटिका उजारी
खायसि फल अरु विटप उजारे * रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे

कि हे नाथ, एक बड़ा भारी वानर आया है। उसने अशोक वाटिका को एकदम उजाड़ दिया। फल खाये और वृक्ष उखाड़ डाले तथा रखवालों को मल-मलकर पृथ्वी में डाल दिया।

सुनि रावण पठये भट नाना * तिनहिं देखि गरजा हनुमाना
सब रजनीचर कपि संहारे * गये पुकारत कछु अधमारे

यह सुन रावण ने अनेक योद्धा भेजे, जिन्हें देखकर हनुमान्‌जी गर्जे। हनुमान्‌जी ने उन सब राक्षसों का संहार कर डाला। उनमें से कुछ अधमरे पुकारते हुए भागे।

पुनि पठवा तेइँ अछयकुमारा * चला सङ्ग लै सुभट अपारा
आवत देखि विटप गहि तर्जा * ताहि निपाति महाधुनि गर्जा

फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा, जो बहुत से योद्धाओं को साथ लेकर चला। उसे आता देख महावीरजी ने एक वृक्ष उखाड़कर ललकारा और उससे उसे मारकर बड़े भारी शब्द से गर्जे।

दोहा— कछु मारेउ कछु मर्देउ, कछुक मिलायउ धूरि। 18
कछु पुनि जाय पुकारेउ, प्रभु मर्कट बल भूरि॥

महावीरजी ने कितनों ही को मारा, कितनों ही का मर्दन किया और कुछ राक्षसों को धूल में मिला दिया। कुछ राक्षसों ने जाकर रावण से कहा कि हे नाथ, वह वानर बड़ा बलवान् है।

सुनि सुतवध लंकेश रिसाना * पठवा मेघनाद बलवाना
मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही * देखौं कीश कहाँकर आही

पुत्र का मरना सुनकर लंका का स्वामी रावण क्रोधित हुआ। उसने बलवान् मेघनाद को भेजा और कहा—हे पुत्र, उसे मारना मत, बाँध लाना। देखूँ, कहाँ का वानर है।

चला इन्द्रजित अतुलित योधा * बन्धुवधन सुनि उपजा क्रोधा
कपि देखा दारुण भट आवा * कटकटाय गरजा अरु धावा

अतुलित योद्धा मेघनाद चला। भाई का मरना सुनकर उसके हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ। हनुमान्‌जी ने देखा कि भयंकर योद्धा आया है। तब वह कटकटाकर गर्जे और दौड़े।

अति विशाल तरु एक उपारा * विरथ कीन्ह लंकेशकुमारा
रहे महाभट ताके सङ्गा * गहिगहि कपि मर्देसि निजअङ्गा

महावीरजी ने एक भारी वृक्ष उखाड़ा और उससे रावण के पुत्र मेघनाद का रथ तोड़ डाला। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी ने अपने अंगों से मींज डाला।

तिन्हैं निपाति ताहिसन बाजा * भिरे युगल मानहु गजराजा
मुष्टिक मारि चढ़ेउ तरु जाई * ताहि एक क्षण मूर्छा आई
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया * जीति न जाय प्रभंजनजाया

उन्हें मारकर महावीरजी मेघनाद से लड़ने लगे। दोनों इस प्रकार भिड़े, मानो हाथी हों। हनुमान्‌जी उसके एक घूँसा मारकर वृक्ष पर चढ़ गये और मेघनाद को क्षण भर मूर्च्छा रही। वह फिर उठा और बहुत माया की; परन्तु पवन के पुत्र हनुमान्‌जी जीते नहीं जाते।

दोहा— ब्रह्म अस्त्र तेइँ साधेउ, कपि मन कीन्ह विचार।
जो न ब्रह्मशर मानऊँ, महिमा मिटै अपार॥

मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र लिया, तब हनुमान्जी ने मन में विचारा कि यदि ब्रह्मास्त्र के प्रभाव को न मानूँगा तो इसकी बड़ी भारी महिमा मिट जायगी।

ब्रह्मबाण तेइँ कपि कहँ मारा * परतिहु समय कटक संहारा
तेइँ जाना कपि मूर्च्छित भयऊ * नागफाँस बाँधेसि लै गयऊ

मेघनाद ने हनुमान्जी के ब्रह्मास्त्र मारा। तब हनुमान्जी ने गिरते समय भी सेना का नाश किया। जब उसने जाना कि हनुमान्जी मूर्च्छित हो गये तो नागपाश से उन्हें बाँध लिया और ले गया।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी * भवबन्धन काटहिं मुनि ज्ञानी
तासु दूत बन्धन तर आवा * प्रभु कारजलगि आपु बँधावा

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जिसका नाम जपकर ज्ञानी मुनि संसार का बन्धन काट डालते हैं, उसी का दूत बन्धन में आया—स्वामी के काम के लिए अपने को बँधा लिया।

कपिबन्धन सुनि निशिचर धाये * कौतुक लागि सभा लै आये
दशमुखसभा दीख कपि जाई * कहि न जाय कछु अति प्रभुताई

हनुमान्जी को बन्धन में पड़ा सुनकर राक्षस लोग दौड़े और तमाशे के लिए सभा में ले आये। हनुमान्जी ने जाकर रावण की सभा देखी। वहाँ ऐसा भारी ऐश्वर्य था कि कहा नहीं जा सकता।

कर जोरे सुर दिशप विनीता * भ्रुकुटिविलोकहिंसकलसभीता
देखि प्रताप न कपिमन शंका * जिमिअहिगणमहँगरुड़अशंका

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े विनयपूर्वक डरते हुए उसकी भौंहें देखते हैं। उसका प्रताप देख महावीरजी के मन में वैसे ही शंका न हुई, जैसे सर्पों के बीच में गरुड़ निर्भय रहते हैं।


कपिहिं विलोकि दशानन, बिहँसा कहि दुर्वाद।
सुतवध कीन्ह सुरति पुनि, उपजा हृदय विषाद॥

हनुमान्जी को देख रावण दुर्वचन कहकर हँसा। फिर पुत्र का मरना याद किया तो उसके मन में विषाद हुआ।

कह लंकेश कवन तैं कीशा * केहि के बल घालेसि वन खीशा
कीधौं श्रवण सुनेसि नहिं मोहीं * देखौं अति अशंक शठ तोहीं

रावण ने कहा—हे वानर, तू कौन है? किसके बल से तूने मेरा वन उजाड़ा? अथवा क्या तूने मुझे कानों से नहीं सुना था? हे शठ! तुझे बहुत ही निडर देखता हूँ।

मारेसि निशिचर केहि अपराधा * कहु शठ तोहिं न प्राण की बाधा
सुनु रावण ब्रह्माण्ड निकाया * पाय जासु बल विरचत माया

तूने किस अपराध से राक्षसों को मारा है ? रे शठ ! कह, तुझे प्राणों का डर नहीं है क्या ? हनुमान् बोले—हे रावण, जिसका बल पाकर माया हजारों ब्रह्माण्ड रचती है,

जाके बल विरंचि हरि ईशा * पालत सृजत हरत दशशीशा
जा बल शीश धरैं सहसानन * अण्डकोश सहसबगिरिकानन

हे रावण, जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु और महेश संसार को रचते पालते, और नष्ट करते हैं, जिसके बल से शेष पर्वतों और वनों-समेत सकल ब्रह्मांड को धारण किये हैं,

धरैं जो विविध देह सुरत्राता * तुमसे शठन सिखावन दाता
हर कोदण्ड कठिन जेइँ भंजा * तोहिं समेत नृपदल मद गंजा
खरदूषण विराध अरु बाली * वधे सकल अतुलित बलशाली

जो देवताओं की रक्षा करने और तुम्हारे समान मूर्खों को शिक्षा देने के लिए अनेक प्रकार के शरीर धारण करते हैं, जिन्होंने शिवजी का कठिन धनुष तोड़ डाला तथा तुम सरीखे राजाओं का अभिमान मिटा दिया, जिन्होंने खर, दूषण, विराध और वालि आदि महा बलवान् वीरों को मारा है,



जिनके बल लवलेश ते, जितेउ चराचर झारि ।
तासु दूत हौं जाहि की, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ २१

और जिनके बल के बहुत ही थोड़े अंश से तूने सभी चराचर जीत लिये हैं, उनका मैं दूत हूँ, जिनकी प्यारी स्त्री को तुम हर लाये हो ।

जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई * सहसबाहु सन परी लराई
समर बालिसन करि यश पावा * सुनि कपिवचन विहँसि बहिलावा

मैं तुम्हारी प्रभुता जानता हूँ कि सहस्रबाहु से तुम्हारी लड़ाई हुई थी । वालि से भी युद्ध करके तुमने यश पाया । यह महावीरजी का वचन सुन रावण हँसा और बहला दिया ।

खायउँ फल मोहिं लागी भूखा * कपि स्वभावते तोरेउँ रूखा
सबके देह परमप्रिय स्वामी * मारहिं मोहिं कुमारगगामी

हनुमान्जी ने फिर कहा—मुझे भूख लगी थी, इससे मैंने फल खाये और वानरके स्वभाव से वृक्ष तोड़े । हे स्वामी, सबको अपनी देह बड़ी प्यारी होती है । मुझे कुमार्ग में चलनेवाले राक्षस मारते थे ।

जिन मोहिं मारा तिन्ह मैं मारा * तेहिपर बाँधे तनय तुम्हारा
मोहिं न कछु बाँधे कर लाजा * कीन चहौं निज प्रभुकर काजा

जिन्होंने मुझे मारा उनको मैंने मारा; तिस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझको बाँध लिया, परन्तु मुझको बाँधे जाने की कुछ भी लाज नहीं है; क्योंकि मैं तो अपने स्वामी का काम करना चाहता हूँ

विनती करौं जोरि कर रावन * सुनहु मान तजि मोर सिखावन
देखहु तुम निजकुलहिं विचारी * भ्रम तजि भजहु भक्तभयहारी

हे रावण, हाथ जोड़कर मैं विनती कहता हूँ कि अभिमान छोड़ मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचारकर देखो और भ्रम छोड़ भक्तों के भयनाशक रामजी को भजो।

जाके डर अति काल डराई * जो सुर असुर चराचर खाई
तासों वैर कबहुँ नहिं कीजै * मोरे कहे जानकी दीजै

देवता, दैत्य और सकल चराचर जगत् को खा जानेवाला काल भी जिनके डर से बहुत डरता है, उनसे वैर न कीजिए और मेरे कहने से जानकी दे दीजिए।



प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणासिन्धु खरारि।
गये शरण प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि॥

प्रणाम करनेवाले जनों के पालक, करुणासिन्धु, खर राक्षस के मारनेवाले, रघुवंशमणि रघुनाथजी की शरण जाने से वह प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हारे प्राण बचा देंगे।

रामचरण पंकज उर धरहू * लंका अचल राज्य तुम करहू
ऋषिपुलस्त्ययशविमलमयंका * तेहि कुल महँ जनि होहु कलंका

तुम रघुनाथजी के चरणकमल हृदय में धरो और लंका में अटल राज्य करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है; उस कुल में तुम कलंक न होओ।

राम नाम बिन गिरा न सोहा * देखु विचारि त्यागि मद मोहा
वसनहीन नहिं सोह सुरारी * सब भूषण भूषित वर नारी

अभिमान और मोह छोड़ विचारकर देखो, राम-नाम के बिना वाणी नहीं सोहती। हे देवताओं के शत्रु रावण, सब गहनों को पहने हुए उत्तम स्त्री भी कपड़ों के बिना (नंगी) नहीं सोहती।

राम विमुख सम्पति प्रभुताई * जाइ रही पाई बिन पाई
शैल मूल जेहि सरिता नाहीं * बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं

रामजी के विमुख होने से धन और ऐश्वर्य जाता रहता है—पाया हुआ भी बिन पाया हो जाता है। जिस नदी की जड़ पहाड़ नहीं है, वह वर्षा के बाद उसी क्षण सूख जाती है।

सुनु दशकण्ठ कहौं प्रण रोपी * राम वैर त्राता नहिं कोपी
शंकर सहस विष्णु अज तोही * राखि न सकहिं रामकर द्रोही

सुन दशकण्ठ रावण, मैं प्रण करके कहता हूँ, रामजी से वैर करने पर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। हजारों महादेव, विष्णु और ब्रह्मा भी तुझे बचा नहीं सकते; क्योंकि तू रामजी का वैरी है।



मोहमूल बहु शूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपासिन्धु भगवान॥

इसलिए मोह के मूल और बहुत-से कष्ट देनेवाले अहंकार को छोड़ दयासिन्धु भगवान् रघुनायक रामजी को भज।

यदपि कही कपि अतिहित बानी * भक्ति विवेक विरति नयसानी
बोला विहँसि महा अभिमानी * मिला हमहिं कपि बड़ गुरुज्ञानी

यद्यपि हनुमान्‌जी ने बड़े हित की और भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीति से सनी बात कही थी; परन्तु (रावण पर उसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ) बड़ा अभिमानी रावण हँसकर बोला—मुझे यह वानर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है।

मृत्यु निकट आई खल तोहीं * लागेसि अधम सिखावन मोहीं
उलटा होइ कहा हनुमाना * मति भ्रम तोरि प्रकट मैं जाना

रे दुष्ट, तेरी मौत निकट आ गई है, जिससे तू अधम मुझे सीख देने लगा है। हनुमान्‌जी ने कहा—उलटा होगा—तेरी मौत आई है; क्योंकि तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, यह मैं प्रकट जान गया।

सुनि कपिवचन बहुत रिसियाना * वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना
सुनत निशाचर मारन धाये * सचिवन सहित विभीषण आये

हनुमान्‌जी के वचन सुन रावण बहुत क्रोधित हुआ और राक्षसों से बोला—इस मूर्ख के प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं ले लेते ? यह सुनते ही राक्षस मारने दौड़े। इतने में मन्त्रियों-समेत विभीषणजी आ गये।

नाय शीश करि विनय बहूता * नीति विरोध न मारिय दूता
आनदण्ड कछु करिय गोसाँई * सबही कहा मन्त्र भल भाई
सुनत विहँसि बोला दशकन्धर * अंग भंग करि पठवहु बन्दर

विभीषण ने माथा नवाकर बहुत विनती की और कहा—नीति के विरुद्ध दूत को न मारिए। हे स्वामी, इसे कुछ दूसरा दण्ड दीजिए। तब सबने कहा कि भाई, सलाह तो अच्छी है। यह सुन हँसकर रावण बोला कि इस बन्दर को अंग-भंग करके भेजो।



कपि की ममता पूँछपर, सबन कहा समुझाय।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाय॥ २१

सबोंने समझाकर कहा कि वानर की ममता पूँछ पर होती है—वानर को पूँछ अधिक प्यारी होती है। इससे तेल में डुबोकर कपड़ों को पूँछ में बाँधकर उसमें आग लगा दो।

पूँछहीन वानर जब जाइहि * तब शठ निज नाथहिं लै आइहि
जिनकी कीन्हेसि अमित बड़ाई * देखौं मैं तिनकी मनुसाई

जब पूँछ से हीन होकर वानर जायगा, तब यह छली अपने स्वामी को ले आवेगा। इसने जिनकी बड़ी बड़ाई की है, उनके पुरुषार्थ को देखूँ।

वचन सुनत कपि मन मुसुकाना * भइ सहाय शारद मैं जाना
यातुधान सुनि रावण वचना * लागे रचन मूढ़ सोइ रचना

यह सुन महावीरजी मन में मुस्कराये और सोचा कि सरस्वती सहाय हुई, मैंने यह जान लिया। मूर्ख राक्षस रावण का वचन सुनकर वही रचना रचने लगे।

रहा न नगर वसन घृत तेला * बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला
कौतुक कहँ आये पुरवासी * मारहिं चरण करहिं बहु हाँसी

लंका नगर में कपड़ा, घी और तेल कहीं नहीं रहा (यह अत्युक्ति है), तब पूँछ बढ़ाकर हनुमान्‌जी ने खेल किया। सब नगरवासी तमाशा देखने आये। वे हनुमान्‌जी के लातें मारते और उनकी बहुत हँसी उड़ाते थे।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी * नगर फेरि पुनि पूँछ पजारी
पावक जरत दीख हनुमन्ता * भयउ परम लघुरूप तुरन्ता
निबुकि चढ़ेउ पुनिकनकअटारी * भई सभीत निशाचरनारी

ढोल बजने लगीं। लोग ताली पीटने लगे। हनुमान् को इस प्रकार नगर भर में घुमाकर पूँछ में आग लगा दी गई। हनुमान्‌जी ने अग्नि को जलती देख तुरन्त ही बहुत ही छोटा रूप धर लिया, जिससे बन्धन ढीले हो गये। फिर वह कूदकर सोने की अटारी पर चढ़ गये। तब सब राक्षसियाँ डर गईं।



हरि प्रेरित तेहि अवसर, चलेउ पवन उनचास।
अट्टहास करि गर्जेउ, कपि बढ़ि लाग अकास॥

भगवान् की इच्छा से उस समय उनचासों पवन चले। तब हनुमान्‌जी अट्टहास करते हुए गर्जे और बढ़कर आकाश में लग गये।

देह बिशाल परम हरुआई * मन्दिर ते मन्दिर पर जाई
जरै नगर भे लोग बिहाला * लपट झपट बहु कोटि कराला

देह तो बड़ी थी, परन्तु बड़ी हल्की थी। हनुमान्‌जी एक घर से फाँदकर दूसरे घर पर चले जाते हैं। नगर जलने पर लोग व्याकुल हुए और अनेक भाँति से भयंकर अग्नि की लपटें उठने लगीं।

तात मात सब करहिं पुकारा * इहि अवसर को हमहिं उबारा
हम जो कहा यह कपि नहिं होई * वानर रूप धरे सुर कोई

सब राक्षस पुकार रहे हैं कि हा पिता! हा माता! इस समय हमको कौन बचावेगा? हमने जो कहा था कि यह वानर नहीं, वानर का रूप धरे कोई देवता है।

साधु अवज्ञाकर फल ऐसा * जरै नगर अनाथ कर जैसा
जारा नगर निमिष इक माहीं * एक विभीषण को गृह नाहीं

सज्जन का अपमान करने से ऐसा ही फल होता है, देखो न। यह नगर ऐसा जल रहा है, जैसे इसका कोई स्वामी ही नहीं है। पल भर में सब नगर जला दिया केवल विभीषण का घर छोड़ा।

जाकर भक्त अनल तेइँ सिरजा * जरा न सो तेहिकारण गिरिजा
उलटि पलटि सब लंका जारी * कूदि परा तब सिन्धु मँझारी

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, विभीषण जिनका भक्त है, उन्हीं की अग्नि पैदा की हुई है, इससे उसका घर नहीं जला। महावीरजी ने बार-बार सब लंकापुरी जलाई और समुद्र में कूद पड़े।



पूँछ बुझाइ खोय श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयो कर जोरि॥ २

पूँछ बुझाकर परिश्रम दूर किया, और फिर छोटा रूप रखकर जानकीजी के आगे हाथ जोड़कर खड़े हुए।

मातु मोहिं दीजे कछु चीन्हा * जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ * हर्ष समेत पवनसुत लयऊ

और बोले—हे माता, मुझे कुछ निशानी दीजिए, जैसे रघुनाथजी ने दी थी। तब जानकीजी ने चूड़ामणि उतार दी; उसे प्रसन्नता-समेत हनुमान्‌जी ने लिया।

कहेउ तात अस मोर प्रणामा * सब प्रकार प्रभु पूरणकामा
दीनदयालु विरद संभारी * हरहु नाथ मम संकट भारी

सीताजी ने कहा—हे तात, मेरी ओर से नाथ को प्रणाम करके कहना कि आप सब प्रकार से पूर्णकाम हैं। हे दीनदयालु, नाथ! अपने कर्तव्य के अनुसार मेरा बड़ा भारी दुःख हरिए।

तात शक्रसुत कथा सुनायहु * बाणप्रताप प्रभुहिं समुझायहु
मास दिवस महँ नाथ न आये * तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पाये

हे तात, प्रभु को इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और उनके बाण का प्रताप समझाना और कहना कि हे नाथ, यदि महीने भर में न आइएगा तो मुझे जीती न पाइएगा।

कहु कपि केहिविधि राखहुँ प्राना * तुमहूँ तात कहत हौ जाना
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती * पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती

हे कपि, कहो, मैं प्राणों को किस प्रकार रक्खूँ? हे तात, तुम भी जाने के लिए कहते हो। तुमको देखकर छाती जुड़ा गई थी। अब मुझे वही दिन और वे ही रातें आ जायँगी।



जनकसुतहिं समुझायकरि, बहुविधि धीरज दीन्ह।
चरणकमल शिर नायकै, गमन रामपहँ कीन्ह॥

तब हनुमान्जी ने जनकनन्दिनी को समझाकर, बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरणकमलों में माथा नवाकर रघुनाथजी के समीप गमन किया।

चलत महाधुनि गर्जेउ भारी * गर्भ स्रवेउ सुनि निशिचरनारी
लाँघि सिन्धु इहि पारहिं आवा * शब्द किलकिला कपिन सुनावा

चलते समय महावीरजी बड़े भारी शब्द से गर्जे, जिसे सुन राक्षसियों के गर्भ गिर पड़े। समुद्र लाँघकर महावीरजी जब इस पार आये तो किलकिला शब्द वानरों को सुनाया।

हर्षे सब विलोकि हनुमाना * नूतन जन्म कपिन तब जाना
मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा * कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा

हनुमान्जी को देखकर सब प्रसन्न हुए और वानरों ने अपना नया जन्म हुआ जाना। मुख प्रसन्न और शरीर में तेज विराजमान है, इससे सबने जान लिया कि हनुमान्जी ने रामचन्द्रजी का कार्य किया।

मिले सकल अति भये सुखारी * तलफत मीन पाय जनु वारी
चले हर्षि रघुनायक पासा * पूछत कहत नवल इतिहासा

सब मिलकर बड़े सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछली जल पा जाय। फिर नई कथायें कहते-सुनते सब प्रसन्न होकर रघुनाथजी के पास चले।

तब मधुवन भीतर सब आये * अंगद सहित मधुर फल खाये
रखवारे तब बरजन लागे * मुष्टिप्रहार करत सब भागे

तब सब मधुवन के भीतर आये और अंगद-समेत मीठे फल खाये। जब रक्षक लोग उन्हें मना करने लगे, तो इन्होंने उन्हें घूँसे मारकर भगा दिया।



जाय पुकारे सकल ते, वन उजारि युवराज।
सुनि सुग्रीव हर्षि कपि, करि आये प्रभु काज॥

उन सबने जाकर कहा कि युवराज अंगद ने वन उजाड़ डाला। यह सुन सुग्रीव प्रसन्न हुए कि वह रामजी का काम पूरा कर आये।

जो न होत सीता सुधि पाई * मधुवन के फल सकत न खाई
इहिविधि मन विचारकर राजा * आय गये कपि सहित समाजा

क्योंकि उन्होंने जो सीताजी की खबर न पाई होती तो वे मधुवन के फल न खा सकते इस प्रकार राजा सुग्रीव मन में विचार कर रहे थे कि समाजसमेत वानर आ गये।

आय सबन नावा पद शीशा * मिले सबन अतिप्रेम कपीशा
पूछेहु कुशल कुशलपद देखी * रामकृपा भा काज विशेखी

सबने आकर चरणों में माथा नवाया और वानरराज सुग्रीव सबसे प्रेमपूर्वक मिले। कुशल पूछने पर कहा—आपके चरण देखे से कुशल ही है; रामजी की कृपा से काम हो गया।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना * राखे सकल कपिन के प्राना
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेऊ * कपिनसहित रघुपतिपहँ चलेउ

सबने कहा—हे राजन्, हनुमान्‌जी ने काम किया और सब वानरों के प्राण बचाये यह सुन सुग्रीव फिर उठकर मिले और वानरों-समेत रघुनाथजी के पास चले।

राम कपिन कहँ आवत देखा * कीन्ह काज मन हर्ष विशेखा
फटिकशिला बैठे दोउ भाई * परे सकल कपि चरणन जाई

रामजी ने वानरों को आते देखा तो जान लिया कि इन्होंने काम कर लिया है; क्योंकि इनके मन में बड़ी प्रसन्नता है। स्फटिकशिला पर दोनों भाई बैठे थे, सब वानर जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े।


प्रीति सहित भेंटे सकल, रघुपति करुणापुंज।
पूछेउ कुशल नाथ अब, कुशल देखि पदकंज॥

करुणानिधि रघुनाथजी प्रीति-समेत सबको मिले और कुशल पूछी। सब सबने कहा—हे नाथ, आपके चरणकमल देखकर अब कुशल है।

जाम्बवंत कह सुनु रघुराया * जापर नाथ करहु तुम दाया
ताहि सदा शुभ कुशल निरन्तर * सुर नर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर

जाम्बवान् ने कहा—हे रघुनाथ, जिसके ऊपर आप दया करते हैं, उसकी सदैव शुभ कुशल हैं और उस पर देवता, मनुष्य, मुनि आदि सदा प्रसन्न रहते हैं।

सो विजयी विनयी गुणसागर * तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर
प्रभु की कृपा भयो सब काजू * जन्म हमार सफल भा आजू

वही विजयी और विनयवाला तथा गुणों का सागर है। उसी का यश तीनों लोकों में उजागर है। हे स्वामी, आपकी दया से सब काम हो गया और हमारा जन्म आज सफल हुआ।

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी * सो सुख लाखहुँ जाय न बरणी
पवनतनय के चरित सुहाये * जाम्बवंत रघुपतिहिं सुनाये

हे नाथ, पवन के पुत्र महावीर ने जो काम किया है, वह लाखों मुखों से भी नहीं कहा जा सकता। फिर जाम्बवान् ने हनुमान् के सुहावने चरित्र रघुनाथजी को सुनाये।

सुनत कृपानिधि मनअतिभाये * पुनि हनुमान हर्षि उर लाये
कहहु तात केहि भाँति जानकी * रहति करति रक्षा सो प्रान की

सुनते ही दयानिधान रघुनाथ को बहुत मन भाये। फिर रामजी ने प्रसन्न होकर हनुमान् को हृदय से लगाया और कहा—हे तात, कहो, जानकी किस प्रकार रहती और प्राणों की रक्षा करती हैं।



नाम पाहरू दिवसनिशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपदयन्त्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥

हनुमान् बोले—आपका नाम पहरेदार और ध्यान किवाड़ है, पैरों की ओर देखना मानो ताला है। भला फिर प्राण किस राह से निकलें?

चलत मोहिं चूड़ामणि दीन्हीं * रघुपति हिये लाय तेहिं लीन्हीं
नाथ युगल लोचन भरि वारी * वचन कहेउ कछु जनककुमारी

चलते समय मुझे सीता माता ने यह चूड़ामणि दी है। उसे लेकर रघुनाथजी ने छाती से लगा लिया। फिर हनुमान् ने कहा—हे नाथ, दोनों आँखों में जल भरकर जनकनन्दिनी ने कुछ कहा है, उसे भी सुनिए।

अनुज समेत गहेउ प्रभु चरणा * दीनबन्धु प्रणतारति हरणा
मन क्रम वचन चरण अनुरागी * केहि अपराध नाथ मोहिं त्यागी

वह यह कि लक्ष्मण-समेत स्वामी के चरण पकड़कर कहना—हे दीनबन्धु, दीनों के दुःख हरनेवाले, नाथ! मन, कर्म और वचन से चरणों में प्रेम करनेवाली मुझको आपने किस अपराध से छोड़ दिया?

अवगुण एक मोर मैं जाना * बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना
नाथ सो नैनन कर अपराधा * निसरत प्राण करहिं हठि बाधा

हाँ, मैं जानती हूँ कि मेरा एक अवगुण है, वह यह कि आपके बिछुड़ते ही प्राणों ने पयान नहीं किया। पर हे नाथ, वह अपराध नेत्रों का ही है, क्योंकि प्राणों के निकलने में वे भी हठकर बाधा डालते हैं।

विरह अनल तनु तूल समीरा * श्वास जरै क्षणमाहिं शरीरा
नैन स्रवैं जल निजहित लागी * जरै न पाव देह विरहागी

आपके वियोग की अग्नि में श्वासरूप पवन से देह तो रुई सी क्षण भर में जल जाती, परन्तु अपने हित (दर्शन) के लिए आँखें जल बहाती हैं, इससे देह विरह की अग्नि से जलने नहीं पाती।

सीताकी अतिविपति विशाला * बिनहिं कहे भल दीनदयाला
चलती बार कह्यो मोहिं टेरी * सुरति कराय शक्रसुत केरी

हे दीनदयालु रघुनाथ, सीताजी की बड़ी विपत्ति न कहने में ही भलाई है। चलते समय इन्द्र के पुत्र जयन्त की सुध कराकर मुझे टेरकर कहा था।



निमिषनिमिषकरुणायतन, जाहिं कल्पसम बीति।
वेगि चलहु प्रभु आनिये, भुजबलखलदलजीति॥

हे दयानिधान राम! पल-पल भर जानकीजी को कल्प के समान बीतता है। इससे प्रभो, शीघ्र चलिए और भुजाओं के बल से दुष्टों की सेना जीतकर उन्हें लाइए।

सुनिसीतादुख प्रभुसुखअयना * भरि आये जल राजिवनयना
वचन काय मन ममगति जाही * सपनेहु विपति न बूझिय ताही

सीताजी का दुःख सुनते ही सुख के आकर रामजी के नेत्रकमलों में जल भर आया। वे कहने लगे—मन, कर्म और वचन से जो मुझे भजता है, उसे स्वप्न में भी विपत्ति नहीं होती।

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई * जब तव सुमिरन ध्यान न होई
केतिक बात प्रभु यातुधानकी * रिपुहिं जीति आनिये जानकी

हनुमान्जी ने कहा—हे प्रभो, विपत्ति वही है कि जब आपका स्मरण और ध्यान न हो। राक्षस की बात ही कितनी? शत्रु को जीतकर जानकीजी को लाइए।

सुनु कपि तोहिं समान उपकारी * नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा * सन्मुख होइ न सकत मन मोरा

रामजी ने कहा—हे हनुमान्, तुम्हारे समान उपकार करनेवाला देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई देहधारी नहीं। उपकार के बदले तुम्हारा क्या काम करूँ। मेरा मन तुम्हारे सामने नहीं हो सकता।

सुनुकपि तोहिं उऋण मैं नाहीं * करि देखेउँ विचार मनमाहीं
पुनि पुनि कपिहिंचितवसुरत्राता * लोचन नीर पुलक अतिगाता

हे हनुमान्, मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, यह मैंने मन में विचार देखा है। देवताओं के रक्षक रघुनाथ बार-बार हनुमान् को देखते हैं; आँखों में जल और शरीर में रोमांच हो आया है।


सुनिप्रभुवचनविलोकिमुख, हृदय हर्षि हनुमन्त।
चरण परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त॥

स्वामी रघुनाथजी के वचन सुन और मुख देखकर हनुमान्जी हृदय में प्रसन्न हुए। फिर प्रेम से विकल हो चरणों में गिर पड़े और बोले—हे भगवन्, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

वार वार प्रभु चहत उठावा * प्रेम मगन तेहिं उठन न भावा
प्रभु पदपंकज कपिकर शीशा * सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा

स्वामी रामजी बार-बार उठाना चाहते हैं, परन्तु प्रेम में मग्न होने के कारण उन्हें उठना न भाया। रघुनाथजी के चरणकमल पर हनुमान्जी का शिर और वह दशा स्मरण कर शिवजी मग्न हो गये।

सावधान मन करि पुनि शंकर * लागे कहन कथा अति सुन्दर
कपि उठाय प्रभु हृदयलगावा * कर गहि परम निकट बैठावा

फिर मन को सावधान कर शंकर बड़ी सुन्दर कथा कहने लगे। हनुमान्जी को उठाकर स्वामी रामजी ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर बहुत ही पास बिठा लिया।

कहु कपि रावणपालित लंका * केहि विधि दहेउ दुर्ग अतिबंका
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना * बोले वचन विगत अभिमाना

और बोले—हे महावीर, रावण से पालित लंका तुमने किस प्रकार जलाई, जिसका कि बड़ा सुन्दर गढ़ है ? हनुमान्जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना। तब अभिमानरहित वचन बोले—

शाखामृग की बड़ि मनुसाई * शाखा ते शाखा पर जाई
लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा * निशिचरगण बधिविपिन उजारा
सो सब तव प्रताप रघुराई * नाथ न कछुक मोरि मनुसाई

वानरों का यही बड़ा भारी पुरुषार्थ है कि एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाते हैं। और जो समुद्र नाँघकर मैंने सुवर्ण की लंकापुरी जलाई, राक्षस मारे और वाटिका उजाड़ी, हे रघुनाथजी, सो तो सब आपका ही प्रताप है। हे नाथ, उसमें मेरी कुछ वीरता नहीं।



ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारिसकै खलु तूल॥

हे प्रभो, जिस पर आप प्रसन्न हैं, उसे कुछ भी कठिन नहीं। आपके प्रताप से रुई निश्चय ही समुद्र की बड़वाग्नि को जला सकती है।

नाथ भक्ति तव सब सुखदायिनि * देहु कृपाकरि सो अनपायिनि
सुनि प्रभु परम सरल कपिबानी * एवमस्तु तब कहेउ भवानी

हे नाथ, तुम्हारी भक्ति सब सुखों की देनेवाली है, इससे कृपाकर कभी न नष्ट होनेवाली वही भक्ति मुझे दीजिए। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, हनुमान् की सीधी वाणी सुन रामजी ने कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)।

उमा रामस्वभाव जिन जाना * तिनहिं भजन तजि भाव न आना
यह संवाद जासु उर आवा * रघुपतिचरणभक्ति तेइँ पावा

हे पार्वती, जिन्होंने रघुनाथ का स्वभाव जान लिया है, उन्हें उनका भजन छोड़ और कुछ नहीं अच्छा लगता। यह संवाद जिसके हृदय में आया, उसने रामजी के चरणों की भक्ति पाई।

सुनि प्रभु वचन कहहिं कपिवृन्दा * जय जय जय कृपालु सुखकन्दा
तब रघुपति कपिपतिहि बुलावा * कहा चलैकर करहु बनावा

स्वामी के वचन सुन वानर कहते हैं—हे सुखमूल, दयालु, रघुनाथ! आपकी जय हो। तब रघुनाथजी ने वानरों के स्वामी सुग्रीव को बुलाया और कहा—चलने की तैयारी करो।

अब विलम्ब केहि कारण कीजे * तुरत कपिनकहँ आयसु दीजे
कौतुक देखि सुमन बहु बरषे * नभ ते भवन चले सुर हरषे

सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना * भरि आये जल राजिवनयना
वचन काय मन मम गति जाही * सपनेहु विपति न बूझिय ताही

सीताजी का दुःख सुनते ही सुख के आकर रामजी के नेत्रकमलों में जल भर आया। वे कहने लगे—मन, कर्म और वचन से जो मुझे भजता है, उसे स्वप्न में भी विपत्ति नहीं होती।

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई * जब तव सुमिरन ध्यान न होई
केतिक बात प्रभु यातुधानकी * रिपुहिं जीति आनिये जानकी

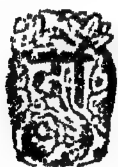
हनुमान्‌जी ने कहा—हे प्रभो, विपत्ति वही है कि जब आपका स्मरण और ध्यान न हो। राक्षस की बात ही कितनी? शत्रु को जीतकर जानकीजी को लाइए।

सुनु कपि तोहिं समान उपकारी * नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा * सन्मुख होइ न सकत मन मोरा

रामजी ने कहा—हे हनुमान्, तुम्हारे समान उपकार करनेवाला देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई देहधारी नहीं। उपकार के बदले तुम्हारा क्या काम करूँ। मेरा मन तुम्हारे सामने नहीं हो सकता।

सुनु कपि तोहिं उऋण मैं नाहीं * करि देखेउँ विचार मनमाहीं
पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता * लोचन नीर पुलक अतिगाता

हे हनुमान्, मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, यह मैंने मन में विचार देखा है। देवताओं के रक्षक रघुनाथ बार-बार हनुमान् को देखते हैं; आँखों में जल और शरीर में रोमांच हो आया है।



सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख, हृदय हर्षि हनुमन्त।
चरण परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त॥

स्वामी रघुनाथजी के वचन सुन और मुख देखकर हनुमान्‌जी हृदय में प्रसन्न हुए। फिर प्रेम से विकल हो चरणों में गिर पड़े और बोले—हे भगवन्, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

बार बार प्रभु चहत उठावा * प्रेम मगन तेहिं उठन न भावा
प्रभु पदपंकज कपिकर शीशा * सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा

स्वामी रामजी बार-बार उठाना चाहते हैं, परन्तु प्रेम में मग्न होने के कारण उन्हें उठना न भाया। रघुनाथजी के चरणकमल पर हनुमान्‌जी का शिर और वह दशा स्मरण कर शिवजी मग्न हो गये।

सावधान मन करि पुनि शंकर * लागे कहन कथा अति सुन्दर
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा * कर गहि परम निकट बैठावा

फिर मन को सावधान कर शंकर बड़ी सुन्दर कथा कहने लगे। हनुमान्‌जी को उठाकर स्वामी रामजी ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर बहुत ही पास बिठा लिया।

कहु कपि रावणपालित लंका * केहि बिधि दहेउ दुर्ग अतिबंका
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना * बोले बचन बिगत अभिमाना

और बोले—हे महावीर, रावण से पालित लंका तुमने किस प्रकार जलाई, जिसका कि बड़ा सुन्दर गढ़ है ? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना। तब अभिमानरहित वचन बोले—

शाखामृग की बड़ि मनुसाई * शाखा ते शाखा पर जाई
लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा * निशिचरगण बधिबिपिन उजारा
सो सब तव प्रताप रघुराई * नाथ न कछुक मोरि मनुसाई

बानरों का यही बड़ा भारी पुरुषार्थ है कि एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाते हैं। और जो समुद्र नाँघकर मैंने सुवर्ण की लंकापुरी जलाई, राक्षस मारे और वाटिका उजाड़ी, हे रघुनाथजी, सो तो सब आपका ही प्रताप है। हे नाथ, उसमें मेरी कुछ वीरता नहीं।



ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप बड़वानलहिं, जारिसकै खलु तूल॥

हे प्रभो, जिस पर आप प्रसन्न हैं, उसे कुछ भी कठिन नहीं। आपके प्रताप से रुई निश्चय ही समुद्र की बड़वाग्नि को जला सकती है।

नाथ भक्ति तव सब सुखदायिनि * देहु कृपाकरि सो अनपायिनि
सुनि प्रभु परम सरल कपिबानी * एवमस्तु तब कहेउ भवानी

हे नाथ, तुम्हारी भक्ति सब सुखों की देनेवाली है, इससे कृपाकर कभी न नष्ट होनेवाली वही भक्ति मुझे दीजिए। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, हनुमान् की सीधी वाणी सुन रामजी ने कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)।

उमा रामस्वभाव जिन जाना * तिनहिं भजन तजि भाव न आना
यह संवाद जासु उर आवा * रघुपतिचरणभक्ति तेइँ पावा

हे पार्वती, जिन्होंने रघुनाथ का स्वभाव जान लिया है, उन्हें उनका भजन छोड़ और कुछ नहीं अच्छा लगता। यह संवाद जिसके हृदय में आया, उसने रामजी के चरणों की भक्ति पाई।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिवृन्दा * जय जय जय कृपालु सुखकन्दा
तब रघुपति कपिपतिहि बुलावा * कहा चलैकर करहु बनावा

स्वामी के वचन सुन वानर कहते हैं—हे सुखमूल, दयालु, रघुनाथ! आपकी जय हो। तब रघुनाथजी ने वानरों के स्वामी सुग्रीव को बुलाया और कहा—चलने की तैयारी करो।

अब बिलम्ब केहि कारण कीजे * तुरत कपिनकहँ आयसु दीजे
कौतुक देखि सुमन बहु बरषे * नभ ते भवन चले सुर हरषे

अब किसलिए देर करते हो ? जल्दी वानरों को आज्ञा दो। यह कौतुक देख देवताओं ने बहुत फूल बरसाये और प्रसन्न होकर आकाश-मार्ग से अपने-अपने घर को चले।



कपिपति बेगि बुलायऊ, आये यूथप यूथ।
नाना बरण अतुल बल, वानर भालु बरूथ॥

सुग्रीव ने शीघ्र ही बुलाया, और अनेक रंगों के, बड़े बलवान् वानर और रीछ सेनापति आये।

प्रभुपदपंकज नावहिं शीशा * गर्जहिं भालु महाबल कीशा
देखी राम सकल कपिसैना * चितइ कृपाकरि राजिवनैना

बड़े बलवान् रीछ और वानर स्वामी रघुनाथजी के चरणकमलों में मस्तक नवाकर गर्जते हैं। कमललोचन रघुनाथजी ने कृपादृष्टि से सब वानरी सेना देखी।

रामकृपाबल पाय कपिन्दा * भये पक्षयुत मनहु गिरिन्दा
हर्षि राम तब कीन्ह पयाना * शकुन भये सुन्दर शुभ नाना

रामचन्द्रजी की कृपा का बल पाकर वानर ऐसे हो गये, जैसे पंखों से युक्त पहाड़। तब प्रसन्न हो रामजी ने यात्रा की। उस समय अनेक भाँति के सुन्दर सगुन हुए।

जासु सकल मंगलमय कीती * तासु पयान शकुन यह नीती
प्रभु पयान जाना वैदेही * फरकि वाम अँग जनु कहिदेही

जिनका यश मंगलमय है, उनकी यात्रा में सगुन होना ठीक ही है। रामजी की यात्रा जानकीजी ने जान ली, मानो उनके बायें अंगों ने फड़ककर उनसे कह दिया कि रामचन्द्रजी आ रहे हैं।

जो जो शकुन जानकिहिं होई * अशकुन भयउ रावणहिं सोई
चला कटक को बरणै पारा * गर्जहिं वानर भालु अपारा

जानकीजी को जो सगुन हुए, वे ही रावण को असगुन हुए। इतनी सेना चली कि उसका वर्णन करके कौन पार पा सकता है ? अनगिनत वानर और रीछ गर्जते हैं।

नख आयुध गिरि पादप धारी * चले गगन महि इच्छाचारी
केहरिनाद भालु कपि करहीं * डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं

जिनके नख ही हथियार हैं, ऐसे पर्वत और वृक्ष हाथ में लिये हुए वानर आकाश और पृथ्वी में चले। वे सब इच्छानुसार चलते हैं। रीछ और वानर सिंहनाद करते हैं, जिससे दिग्गज डगमगाते और चिग्घार उठते हैं।



चिक्करहिंदिग्गजडोलमहिगिरि लोलसागरखरभरे।
मनहर्ष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुखटरे।

कटकटहिं मर्कटविकटभटबहुकोटिकोटिनधावहीं।
जयराम प्रबलप्रताप कोशलनाथ गुणगण गावहीं॥

दिग्गज चिग्घाड़ने लगे, पृथ्वी और पर्वत हिलने लगे, समुद्र खलभलाने लगे, चन्द्रमा, सूर्य मन में प्रसन्न हुए तथा देवताओं, मुनियों, नागों और किन्नरों के दुःख टल गये। करोड़ों भयंकर वानर वीर कटकटाते और दौड़ते हैं और 'रामजी के प्रबल प्रताप की जय हो' कहकर कोशलराज रघुनाथ के गुण गाते हैं,

सहि सक न भार अपार अहिपति बारबार विमोहई।
गहि दशनपुनिपुनिकमठपीठि कठोर सो किमिसोहई॥
रघुवीर रुचिर पयान प्रस्थित जानि परम सुहावनी।
जनुकमठखप्परसर्पराजसोलिखत अविचलपावनी॥

सर्पराज शेष उनका भारी भार नहीं सह सकते और बार-बार मोहित हो जाते हैं। वह दाँतों से बार-बार कछुए की कठोर पीठ पकड़ते हैं; किन्तु उसमें दाँत तो धँसते नहीं, रेखाएँ पड़ जाती हैं। सो कैसी सोहती हैं कि मानो रघुनाथजी को चलते जान अविचल, पवित्र कछुए की पीठ पर वह उनकी यात्रा का वर्णन लिखते हैं।



यहि विधि जाय कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर॥

इस प्रकार कृपानिधान रामचन्द्रजी समुद्र के किनारे जा उतरे तथा बहुत-से वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे।

वहाँ निशाचर रहहिं सशंका * जबते जारि गयो कपि लंका
निजनिज गृहसबकरहिं विचारा * नहिं निशिचरकुल केर उबारा

उधर जब से हनुमान्‌जी लंका को जला गये, तब से राक्षस शंकित रहते थे। सब अपने-अपने घरों में विचारते थे कि निशाचरों के वंश का उबार नहीं; क्योंकि—

जासु दूत बल बरणि न जाई * तेहि आये पुर कवन भलाई
दूतिनि सों सुनि पुरजन बानी * मन्दोदरी हृदय अकुलानी

जिनके दूत के बल का वर्णन नहीं किया जा सकता, उनके नगर में आने से कौन भलाई होगी। पुरवासियों की ये बातें दूतियों से सुनकर मन्दोदरी हृदय में बहुत व्याकुल हुई।

रहसि जोरिकर पतिपद लागी * बोली वचन नीतिरस पागी
कन्त कर्ष हरिसन परिहरहू * मोर कहा अति हित उरधरहू

उसने एकान्त में हाथ जोड़ अपने पति रावण के पैर छुए और नीतिरस से पगे हुए ये वचन बोली—हे स्वामी, रघुनाथ से शत्रुता छोड़ दो और मेरा बड़ा हितकारक कहना हृदय में धरो।

समुझति जासु दूत की करनी * स्रवहिं गर्भ रजनीचरघरनी
तासु नारि निज सचिव बुलाई * पठवहु कन्त जो चहहु भलाई

जिसके दूत की करनी समझते ही राक्षसियों के गर्भ गिर पड़ते हैं, हे कन्त, यदि भलाई चाहो तो मन्त्रियों को बुलाकर (उनके साथ) उनकी स्त्री उनके पास भेज दो।

तवकुल कमल विपिन दुखदाई * सीता शीतनिशा सम आई
सुनहु नाथ सीता विन दीन्हे * हित न तुम्हार शम्भु अज कीन्हे

कमलवनरूप तुम्हारे वंश को दुःख देनेवाली सीता जाड़े की रात के समान आई है। हे नाथ, सीता को दिये विना शिव और ब्रह्मा के भी किये तुम्हारा भला न होगा।



रामबाण अहिगणसरिस, निकर निशाचर भेक।
जबलगिग्रसतनतबहिं लगि, यतन करौ तजि टेक॥

सर्पसरीखे रामजी के बाण मेढकरूप राक्षसों को जब तक नहीं खा जाते, उसके पहले ही टेक छोड़ उनसे मेल का यत्न कर लो।

श्रवण सुनत शठ ताकर बानी * विहँसा जगत विदित अभिमानी
सभय स्वभाव नारि कर साँचा * मङ्गल माँह अमङ्गल राँचा

संसार में प्रसिद्ध अभिमानी, शूर रावण उसके वचन कानों से सुनकर हँसा और बोला—सच है; स्त्री का स्वभाव डरपोक होता है। मंगल-कार्य में भी वे अमंगल रचती हैं।

जो आवे मर्कट कटकाई * जियहिं विचारे निशिचरखाई
कम्पहिं लोकप जाके त्रासा * तासु नारि सभीत बड़ि हासा

यदि वानरों की सेना आवेगी तो उसे खाकर बेचारे राक्षस जियेंगे। जिसके डर से लोकपाल काँपते हैं, उसकी स्त्री ऐसी डरपोक हो! कैसी हँसी की बात है।

असकहि विहँसि ताहिउरलाई * चलेउ सभा ममता अधिकाई
मन्दोदरी हृदय करि चीता * भयो कन्तपर विधि विपरीता

ऐसा कहकर हँसकर रावण ने उसे हृदय से लगा लिया और ममता को बढ़ाकर अपनी सभा को चला। मन्दोदरी ने मन में विचार किया कि पति को विधाता वाम हो गया है।

बैठेउ सभा खबरि असि पाई * सिन्धु पार सेना सब आई
बूझेसिसचिव उचितसब कहहू * ते सब हँसे मौन करि रहहू

रावण सभा में बैठा तो उसने यह खबर पाई कि रामचन्द्र की सब सेना समुद्र के पार आ गई। रावण ने मन्त्रियों से पूछा कि इस समय जो करना योग्य हो, सो कहो। तब वे सब मन्त्री हँसे और परस्पर कहने लगे कि चुप हो रहो।



सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रियबोलहिं भयआश।
राज धर्म तनु तीनिकर, होय वेग ही नाश॥

मन्त्री, गुरु, वैद्य—ये तीन यदि डर से प्रिय कहें तो राज्य, धर्म और शरीर का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

सोइ रावण कहँ बनी सहाई * अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई
अवसर जानि विभीषण आवा * भ्राता चरण शीश तेइँ नावा

वही रावण के सहायकों का हाल है कि मन्त्री ठकुरसुहाती कहते हैं। समय जानकर विभीषण आये और भाई रावण के चरणों में माथा नवाया।

पुनि शिरनाय बैठिनिजआसन * बोला वचन पाय अनुशासन
जो कृपालु पूछेउ मोहिं बाता * मति अनुरूप कहब मैं ताता

फिर माथा नवाकर अपने आसन पर बैठ गये और आज्ञा पाकर बोले—हे दयालु, आपने जो बात मुझसे पूछी है, उसे हे भाई, बुद्धि के अनुसार कहता हूँ।

जो आपन चाहहु कल्याना * सुमतिसुयश शुभगतिसुखनाना
तो परनारि लिलार गोसाईं * तजहु चौथि चन्दा की नाईं

यदि अपना कल्याण, सुबुद्धि, सुयश, अच्छी गति और अनेक प्रकार के सुख चाहो तो हे नाथ, पराई स्त्री के मुख को भादों की चौथ के चन्द्रमा की भाँति छोड़ दो।

चौदह भुवन एक पति होई * भूतद्रोह तिष्ठै नहिं सोई
गुणसागर नागर नर जोऊ * अलप लोभ भल कहै न कोऊ

जो चौदहों लोकों का एक अकेला स्वामी हो तो भी प्राणीमात्र के वैर से नहीं टिक सकता। जो मनुष्य गुणों का सागर और चतुर होता है, वह अगर थोड़े का लोभ करे तो उसे कोई भला नहीं कहता।



काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पन्थ।
सब परिहरि रघुबीर पद, भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ॥

हे नाथ! काम, क्रोध, गर्व और लोभ—ये सब नरक के रास्ते हैं। इससे इन सबको छोड़कर रघुनाथजी के चरणों को भजो, यही सब उत्तम शास्त्र ग्रन्थ कहते हैं।

तात राम नहिं नर भूपाला * भुवनेश्वर कालहु के काला
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता * व्यापक अजित अनादि अनन्ता

हे भाई, रामजी साधारण मनुष्य राजा नहीं हैं। वह सब भुवनों के स्वामी और काल के भी काल हैं। ब्रह्म, निर्दोष, जन्मरहित, ऐश्वर्यवान्, सर्वव्यापी, निर्जित तथा आदि और अन्त से रहित हैं।

गो द्विज धेनु देवहितकारी * कृपासिन्धु मानुषतनुधारी
जनरंजन भंजन खलव्राता * वेदधर्मरक्षक सुरत्राता

पृथ्वी, ब्राह्मण, गऊ और देवताओं का हित करने के लिए कृपासिन्धु रघुनाथजी ने मनुष्य का शरीर धारण किया है। वे रामजी भक्तों के स्नेही, दुष्टों के नाशक, वेदधर्म के रक्षक और देवताओं के पालक हैं।

ताहि वैर तजि नाइय माथा * प्रणतारति भंजन रघुनाथा
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही * भजहु राम बिनहेतुसनेही

बैर छोड़कर उन्हें प्रणाम करो; क्योंकि रघुनाथजी प्रणतजनों का दुःख मिटाते हैं। हे नाथ, प्रभु को जानकी दे दो और बिना कारण ही स्नेह करनेवाले रामजी को भजो।

शरण गये प्रभु ताहि न त्यागा * विश्वद्रोहकृत अघ जेहि लागा
जासु नाम त्रयतापनशावन * सोइप्रभुप्रकटसमुझिजियरावन

संसार भर से वैर करने का पाप जिसे लगा हो, उसे भी शरण में जाने से प्रभु नहीं छोड़ते। हे रावण, जिनका नाम दैहिक, दैविक और भौतिक—तीनों तापों को मिटाता है, वही प्रभु प्रकट हुए हैं, यह मन में समझ लो।



बार बार पद लागौं, विनय करहुँ दशशीश।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश॥

हे दशशीश, मैं बार-बार तुम्हारे पैरों पड़कर विनती करता हूँ कि मान, मोह और अभिमान छोड़कर अयोध्यानाथ रामजी को भजो।

मुनि पुलस्त्य निजशिष्यसन, कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं तुमसन कही, पाय सुअवसर तात॥

भाई, पुलस्त्यमुनि ने अपने शिष्य से यह कहला भेजा था, सो मैंने सुअवसर पाकर तुमसे कह दिया।

माल्यवन्त अतिसचिव सयाना * तासुवचन सुनिअतिसुख माना
तात अनुज तव नीतिविभूषण * सो उरधरहु जो कहत विभीषण

रावण के बड़े चतुर 'माल्यवान' नाम के मन्त्री ने विभीषण के वचन सुनकर बड़ा सुख माना और रावण से कहा—हे तात, तुम्हारा छोटा भाई नीति जाननेवालों में श्रेष्ठ है। इससे जो विभीषण कहते हैं, वही हृदय में धरो।

रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ * दूर न करौ इहाँ है कोऊ
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी * कहै विभीषण पुनि करजोरी

रावण बोला—ये दोनों शत्रु की बड़ाई करते हैं। अरे, यहाँ कोई है, जो इनको मेरे सामने से दूर कर दे? फिर माल्यवान् तो घर चला गया और विभीषण हाथ जोड़कर फिर बोले—

सुमति कुमति सबके उर रहई * नाथ पुराण निगम अस कहई

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना * जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना

तब विभीषण ने फिर कहा—हे नाथ, अच्छी और बुरी बुद्धि सबके होती है। वेद-पुराण ऐसा कहते हैं कि जहाँ सुमति है, वहाँ अनेक प्रकार की सम्पदाएँ और जहाँ कुमति है, वहाँ विपत्तियाँ होती हैं।

तव उर कुमति बसी विपरीता * हित अनहित मानहु रिपु मीता
कालराति निशिचरकुलकेरी * तेहि सीता पर प्रीति घनेरी

तुम्हारे हृदय में उलटी बुद्धि बसी है, जिससे हित को अहित और मित्र को शत्रु मानते हो। इसी कारण राक्षसों के वंश के लिए कालरात्रि सीता पर तुम्हारी बड़ी प्रीति है।



तात चरण गहि माँगौं, राखौ मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अहित न होइ तुम्हार॥

हे भाई, तुम्हारे चरण पकड़कर मैं यह माँगता हूँ, मेरा दुलार रखिए और रामजी को जानकी दे दीजिए, जिससे आपका अहित न हो।

बुध पुराणश्रुति सम्मत बानी * कही विभीषण नीति बखानी
सुनत दशानन उठा रिसाई * खल तोहिं निकट मृत्यु अब आई

इस प्रकार पण्डित, पुराण और वेद के सम्मत वचन विभीषण ने कहे और नीति वर्णन की। पर उसे सुनते ही रावण क्रुद्ध हो उठा और बोला—रे दुष्ट! मृत्यु अब तेरे सिर पर नाच रही है।

जियसि सदा शठ मोर जियावा * रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहिं भावा
कहसि न खल अस को जगमाहीं * भुजबल जेहिं जीता मैं नाहीं

अरे शठ, सदा मेरी ही कृपा से जीता है, पर तुझे शत्रु का पक्ष अच्छा लगता है। दुष्ट कह तो, संसार में कौन ऐसा पुरुष है, जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से नहीं जीता!

ममपुर बसि तपसिन पर प्रीती * शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती
असकहि कीन्हेसि चरणप्रहारा * अनुज गहे पद बारहिं बारा

रे शठ! मेरे नगर में बसकर तपस्वियों पर प्रीति! जाकर उनसे मिल और उन्हीं को नीति सिखा। ऐसा कहकर रावण ने विभीषण के लात मारी; पर विभीषण ने बार-बार चरण पकड़े।

उमा सन्तकै इहै बड़ाई * मन्द करत जो करै भलाई
तुम पितुसरिस भले मोहिं मारा * राम भजे हित नाथ तुम्हारा
सचिव सङ्ग लै नभपथ गयऊ * सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, सन्तों की यही बड़ाई है कि बुराई करने पर भी वे भलाई ही करते हैं। विभीषण ने कहा—आप पिता के समान हैं। आपने मुझे मारा

सो अच्छा किया। परन्तु हे नाथ, मैं फिर कहता हूँ कि आपका भला रामजी को भजने ही से होगा। फिर अपने मन्त्रियों को ले विभीषण आकाश में गये और सबको सुनाकर बोले—



राम सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालवश तोरि।
मैं रघुवीर शरण अब, जाउँ खोरि नहिं मोरि॥ ५॥

रावण, राम सत्यसंकल्प हैं और तुम्हारी सभा काल के वश है। मैं रघुनाथजी की शरण जाता हूँ; अब मेरा कोई दोष नहीं।

असकहि चला विभीषणजबहीं * आयुहीन भे निशिचर तबहीं
साधु अवज्ञा तुरत भवानी * कर कल्याण अखिलकै हानी

ऐसा कह जब विभीषण चले तभी राक्षसों की आयु क्षीण हो गई। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, सज्जन का अपमान तुरन्त ही सब कल्याणों का नाश कर देता है।

रावण जबहिं विभीषण त्यागा * भयउ विभवबिन तबहिं अभागा
चले हर्षि रघुनायक पाहीं * करत मनोरथ बहु मनमाहीं

जब रावण ने विभीषण को छोड़ा, तभी वह अभागा ऐश्वर्य से हीन हो गया। उधर विभीषणजी प्रसन्न होकर मन में बहुत मनोरथ करते हुए रघुनाथजी के पास चले।

देखिहौं जाइ चरण जलजाता * अरुण मृदुल सेवकसुखदाता
जे पद परसि तरी ऋषिनारी * दण्डक कानन पावनकारी

मन में कहते हैं कि लाल कमलसरीखे चरण जाकर देखूँगा, जो कि कोमल और सेवकों को सुख देनेवाले हैं, उन्हें छूकर मुनि की नारी अहल्या तर गई और दण्डकवन पवित्र हुआ।

जे पद जनकसुता उरलाये * कपटकुरंग संग धरधाये
हरउरसरसरोज पद जेई * अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई

जिन्हें जनकनन्दिनी ने हृदय में लगाया है और जो कपटमृग के साथ बहुत दौड़े हैं, जो शिवजी के हृदयरूप तालाब में कमल की भाँति बसते हैं, उन्हीं चरणों को मैं जाकर देखूँगा। मेरे अहोभाग्य हैं।



जिन पाँयन की पादुका, भरत रहे मनलाइ।
ते पद आजु विलोकिहौं, इन नयनन अब जाइ॥ ६॥

जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी ने मन लगा रक्खा है, वही चरण मैं आज जाकर इन आँखों से देखूँगा।

यहि विधि करत सप्रेम विचारा * आये सपदि सिन्धु के पारा
कपिन विभीषण आवत देखा * जाना कोउ रिपुदूत विशेखा

इस प्रकार प्रेमसमेत विचार करते हुए विभीषणजी शीघ्र ही समुद्र के इस पार आये। वानरों ने विभीषण को आते देखकर जाना कि शत्रु का यह कोई जासूस है।

ताहि राखि कपीश पहँ आये * समाचार सब तिनहिं सुनाये
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * आवा. मिलन दशाननभाई

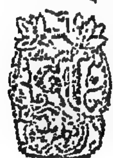
उन्हें वहीं रोककर वानर सुग्रीव के पास आये और उन्हें सब हाल सुनाया। सुग्रीव ने कहा—हे रघुनाथ, रावण का भाई आपसे मिलने के लिए आया है।

कह प्रभु सखा बूझिये काहा * कहै कपीश सुनहु नरनाहा
जानि न जाइ निशाचरमाया * कामरूप केहि कारण आया

स्वामी रामजी ने कहा—हे मित्र, तुम क्या समझते हो? सुग्रीव ने कहा—हे नरनाथ, निशाचरों की माया कुछ जानी नहीं जाती; न जाने यह इच्छानुसार रूप धरनेवाला किस लिए आया है।

भेद हमार लेन शठ आवा * राखिय बाँधि मोहिं अस भावा
सखा नीति तुम नीक विचारी * मम प्रण शरणागतभयहारी
सुनि प्रभुवचन हर्षि हनुमाना * शरणागतवत्सल भगवाना

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह छली हमारा भेद लेने आया है, इससे इसे बाँध रक्खें। रामजी बोले—हे मित्र, तुमने नीति तो अच्छी विचारी; परन्तु मेरी प्रतिज्ञा शरण में आये का भय हरना है। स्वामी रघुनाथजी के वचन सुन हनुमानजी प्रसन्न हुए कि भगवान् को शरण में आये पुरुष प्यारे हैं।


शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय; तिन्हहिं विलोकत हानि॥

जो अपना अनहित सोच शरण में आये को छोड़ देते हैं, वे नीच और पापी हैं। उन्हें देखने से भी हित की हानि होती है।

कोटि विप्र वध लागहिं जाहू * आये शरण तजों नहिं ताहू
सम्मुख होइ जीव मम जबहीं * जन्म कोटि अघ नाशों तबहीं

रामजी कहते हैं—जिसे करोड़ ब्रह्महत्याएँ लगी हों, उसे भी शरण आने पर मैं नहीं छोड़ता। जब जीव मेरे सम्मुख होता है, तभी मैं उसके करोड़ों जन्मों के पातक मिटा देता हूँ।

पापवन्त कर सहज स्वभाऊ * भजन मोर तेहि भाव न काऊ
जो पै दुष्ट हृदय सो होई * मोरे सम्मुख आवकि सोई

पापी का यह सहज स्वभाव है कि उसको मेरा भजन कभी नहीं अच्छा लगता। यदि वह दुष्ट हृदयवाला होगा तो मेरे सम्मुख आवेगा ही क्यों?

निर्मल मन जन मोहिं सो पावा * मोहिं कपट छल छंद न भावा
भेद लेन पठवा दशशीशा * तबहुँ न कछु भयमान कपीशा

जिसका मन निर्मल है, वही मुझे पाता है; क्योंकि मुझे कपट और छल-छंद अच्छे नहीं लगते। हे वानरराज सुग्रीव, यदि रावण ने इसे भेद लेने भेजा हो तो भी डरो नहीं।

जग महँ सखा निशाचर जेते * लछमण हनहिं निमिष महँ तेते
जो सभीत आवै शरणाई * रखिहौं ताहि प्राण की नाई

हे मित्र, संसार में जितने राक्षस हैं, उन सबको पल भर में लछमण मार डालेंगे। जो डर से शरण में आवेगा, उसे मैं प्राणों की भाँति रक्खूँगा।

दो० उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगद हनू समेत॥

डर से या भेद लेने किसी भी लिए आया हो, उसे ले आओ। यह दयानिधान ने हँसकर कहा। तब अंगद और महावीर-समेत सब वानर 'दयालु रघुनाथजी की जय हो' कहकर चले।

सादर तेहि आगे करि वानर * चले जहाँ रघुपति करुणाकर
दूरिहि ते देखे दोउ भ्राता * नयनानन्ददान के दाता

आदर-समेत सब वानर विभीषण को आगे कर जहाँ दयानिधान रघुनाथजी थे, चले। दूर ही से विभीषण ने दोनों भाइयों को देखा, जो नयनों को आनन्द देनेवाले थे।

बहुरि राम छविधाम विलोकी * रहे ठिठुकि इकटंक पल रोकी
भुजप्रलम्ब कंजारुणलोचन * श्यामलगात प्रणतभयमोचन

फिर शोभा के धाम रामजी को देखा और टकटकी लगाकर ठिठुक रहे। रामजी की लम्बी-लम्बी भुजाएँ, कमल के समान लाल लोचन और श्याम शरीर था। वह प्रणतजन के भय को छुड़ानेवाले हैं।

सिंहकन्ध आयतउर सोहा * आनन अमितमदनमनमोहा
नयननीर पुलकित अतिगाता * मन धरि धीर कही मृदुबाता

सिंह का-सा कन्धा और चौड़ी छाती शोभित थी तथा मुख अनेक कामदेवों के मन को मोहता था। विभीषण के नेत्रों में जल और शरीर में रोमांच हो आया। वह मन में धीरज धर इस प्रकार कोमल वचन बोले—

नाथ दशानन कर मैं भ्राता * निशिचरवंशजन्म सुरत्राता
सहजपापप्रिय तामसदेहा * यथा उलूकहिं तमपर नेहा

हे देवताओं के रक्षक, स्वामी, रघुनाथ, मैं रावण का भाई हूँ। राक्षसों के वंश में मेरा जन्म है। तामसी देह होने से हमें पाप सहज ही प्रिय है, जैसे उल्लू पक्षी को अँधेरा प्रिय होता है।

दो० श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भंजनभवभीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरण, शरणसुखद रघुबीर॥

आपका सुयश सुनकर आया हूँ। हे प्रभो, हे संसार-दुःखनाशक, हे शरणागतसुखदायक, हे रघुवीर, रक्षा करो।

असकहि करत दण्डवत देखा * तुरत उठे प्रभु हरषविशेखा
भुज विशाल गहि हृदय लगावा * दीन वचन सुनि प्रभु मनभावा

ऐसा कहकर दण्डवत् करते हुए विभीषण को देख स्वामी रामजी तुरन्त ही उठे और बड़े प्रसन्न हुए। फिर लम्बी भुजाओं से पकड़कर विभीषण को हृदय से लगाया। दीन वचन सुन प्रभु के मन को भाये।

अनुजसहित मिलि ढिग बैठारी * बोले वचन भक्तभयहारी
कहु लंकेश सहित परिवारा * कुशल कुठाहर बास तुम्हारा

भाई-समेत भक्तभयहारी रामजी ने विभीषण से मिलकर उनको अपने पास बिठाया और बोले—हे लंकापति, परिवार-समेत अपनी कुशल कहो। तुम्हारा रहना तो कुठौर में है।

खलमण्डली बसहु दिन राती * सखा धर्म निबहै केहि भाँती
मैं जानौं तुम्हारि सब नीती * अतिशयनिपुण न भाव अनीती

हे मित्र, तुम दिन-रात दुष्टों की मण्डली में रहते हो, भला धर्म कैसे निबहता होगा? मैं तुम्हारी सब नीति जानता हूँ कि तुम बड़े चतुर हो और तुम्हें अनीति नहीं अच्छी लगती।

बरु भल बास नरक कर ताता * दुष्ट संग जनि देइ विधाता
अब पद देखि कुशल रघुराया * जो तुम कीन्ह जानि जन दाया

हे तात, इससे तो नरक का बास बल्कि अच्छा है, परन्तु विधाता दुष्ट का साथ कभी न दे। विभीषण बोले—हे रघुनाथ, जब आपने सेवक जानकर दया की तब आपके चरण देखकर सब कुशल ही है।



तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मनविश्राम।
जब लगि भजत न रामपद, शोकधामतजिकाम॥

सच तो यह है कि तब तक जीव की कुशल नहीं होती और न विश्राम मिलता है, जब तक शोक की खान कामनाओं को छोड़कर मन रामजी (आप) के चरणों को नहीं भजता।

तबलगि हृदय बसतखल नाना * लोभ मोह मत्सर मद माना
जबलगि उर न बसत रघुनाथा * धरे चाप शायक कर भाथा

तभी तक हृदय में लोभ, मोह, ईर्षा, मद और अभिमान आदि अनेक दुष्ट रहते हैं, जब तक हाथ में धनुष, बाण और तरकस धारण किये रघुनाथ हृदय में नहीं बसते।

ममतातरुणतमी अँधियारी * रागद्वेषउलूकसुखकारी
तबलगि बसत जीव मनमाहीं * जबलगि प्रभुप्रतापरवि नाहीं

ममता और जवानी रागद्वेषरूप उल्लू पक्षियों को सुख देनेवाली अँधेरी रात हैं। पर वह (रात) तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु का प्रतापरूप सूर्य उदय नहीं होता।

अब मैं कुशल मिटे भव भारे * देखि राम पदकमल तुम्हारे
तुम कृपालु जापर अनुकूला * ताहि न व्याप त्रिविध भवशूला

हे राम, आपके चरणकमल देख अब मैं कुशल से हूँ; संसार के सब भार मिट गये। हे दयालु, जिस पर तुम प्रसन्न होते हो, उसे तीनों प्रकार की संसारी पीड़ाओं में से एक भी नहीं व्यापती।

मैं निशिचर अति अधम स्वभाऊ * शुभ आचरण कीन्ह नहिं काऊ
जासु रूप मुनि ध्यान न पावा * सो प्रभु हर्षि हृदय मोहिं लावा

मैं राक्षस हूँ और मेरा स्वभाव बड़ा नीच है। मैंने कभी अच्छे आचरण नहीं किये। अहो! जिनका रूप मुनियों ने ध्यान में नहीं पाया, उन आपने प्रसन्न होकर मुझे हृदय से लगाया।



अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपासुखपुंज।
देखेउँ नयन विरंचि शिव, सेव्ययुगलपदकंज॥

मेरे बड़े भाग्य थे, जो दया व सुख की राशि रामचन्द्र को मैंने देखा, जिनके दोनों चरणों की सेवा ब्रह्मा और शिवजी करते हैं।

सुनहु सखा निज कहौं स्वभाऊ * जान भुशुण्डि शम्भु गिरिजाऊ
जो कोउ होइ चराचर द्रोही * आवै सभय शरण तकि मोही

हे मित्र, मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे कागभुशुण्डि, शिव और पार्वती भी जानती हैं कि यदि चराचर का वैरी भी डरकर मेरी शरण ताककर आवे,

तजि मद मोह कपट छलनाना * करौं सद्य तेहि साधु समाना
जननी जनक बन्धु सुत दारा * तन धन भवन सुहृद परिवारा

तो मद, मोह, कपट और अनेक प्रकार के छल छुड़ाकर उसी समय मैं उसे साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र, वंश—

सबकै ममता ताग बटोरी * ममपद मनहिं बाँधि बटि डोरी
समदरशी इच्छा कछु नाहीं * हर्ष शोक भय नहिं मनमाहीं

इन सबकी ममता के तागे इकट्ठा कर मन से उसकी डोरी बटे और उसे मेरे चरणों में बाँधे। जो समदर्शी, कोई इच्छा न रखनेवाला और मन में हर्ष, शोक व भय से हीन है,

अस सज्जन मम उरबस कैसे * लोभी हृदय बसै धन जैसे
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे * धरौं देह नहिं आन निहोरे

वह सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के मन में धन। तुम सरीखे सन्त मुझे प्यारे हैं और उन्हीं के लिए देह धरता हूँ, अवतार लेता हूँ, और किसी के लिए नहीं।



सगुण उपासक परमहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम, जिनके द्विजपद प्रेम॥

जो सगुण के उपासक हैं, बड़े हित से नीति में प्रीति रखते हैं, दृढ़ नियमवाले हैं, जिनका ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है वे मनुष्य मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं।

सुनु लङ्केश सकल गुण तोरे * ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे
राम वचन सुनि वानर यूथा * सकल कहहिं जय कृपा वरूथा

हे लङ्केश, तुममें ये सब गुण हैं, इससे तुम मुझे बहुत प्यारे हो। रामजी के वचन सुन सब वानर कहने लगे—'दयानिधान रघुनाथजी की जय हो।'

सुनत विभीषण प्रभु की बानी * नहिं अघात श्रवणामृत जानी
पदअम्बुज गहि बारहिं बारा * हृदय समात न प्रेम अपारा

प्रभु की वाणी सुन विभीषण उसे अपने कानों के लिए अमृत जानकर सुनने से नहीं अघाते। बारंबार प्रभु के चरण-कमल पकड़ते हैं। विभीषण के हृदय में अपार प्रेम नहीं समाता।

सुनहु देव सचराचरस्वामी * प्रणतपाल उरअन्तरयामी
उर कछु प्रथम वासना रही * प्रभुपदप्रीतिसरित सो वही

विभीषण बोले—हे चराचर के स्वामी, देव, आप प्रणतपाल और हृदय के भीतर रहनेवाले अन्तर्यामी हैं। पहले मेरे हृदय में कुछ इच्छा थी; परन्तु वह आपके चरणों की प्रीतिरूप नदी में बह गई।

अब कृपालु निज भक्ति पावनी * देहु सदा शिवमनभावनी
एवमस्तु कहि प्रभु रणधीरा * माँगा तुरत सिन्धुकर नीरा

हे दयालु रघुनाथ, अब केवल अपनी पवित्र करनेवाली भक्ति ही मुझे दीजिए, जो शिवजी के मन भा गई है। 'ऐसा ही हो' कह समर में चतुर स्वामी रामजी ने तुरन्त समुद्र का जल मँगाया—

यदपि सखा तव इच्छा नाहीं * मोर दरश अमोघ जगमाहीं
असकहि रामतिलक तेहिसारा * सुमनवृष्टि नभ भई अपारा

और कहा—हे मित्र, यद्यपि तुम्हारे कुछ इच्छा नहीं है, तो भी संसार में मेरा दर्शन अमोघ है, अर्थात् खाली नहीं जाता। ऐसा कह रामजी ने उनके तिलक कर दिया। तब आकाश से फूलों की बहुत वर्षा हुई।



रावण क्रोधानल सरिस, श्वास समीर प्रचण्ड।
जरत विभीषण राखेउ, दीन्हेउ राज अखण्ड॥

रावण के क्रोध की आग में उसकी श्वासरूप पवन से जलते विभीषण को रामजी ने बचा लिया और राज्य भी दिया।

जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दशमाथ।
सो सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

शिवजी ने जो सम्पदा दश मस्तक देने (काटकर आग में हवन करने) पर रावण को दी थी, वही सम्पदा (तुच्छ समझकर) रघुनाथ ने विभीषण को संकोच के साथ दी।

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना * ते नर पशु बिन पूँछ विषाना
निजजन जानि ताहि अपनावा * प्रभुस्वभाव कपिकुल मनभावा

ऐसे स्वामी को छोड़कर जो दूसरे को भजते हैं, वे मनुष्य पूँछ और सींग से हीन पशु ही हैं। सेवक जान रामजी ने विभीषण को अपनाया और प्रभु का स्वभाव वानरयूथों के मन भाया।

पुनि सर्वज्ञ सर्वउरवासी * सर्वरूप सबरहित उदासी
बोले बचन नीतिप्रतिपालक * कारणमनुज दनुजकुलघालक

फिर सब कुछ जाननेवाले और हृदय में बसनेवाले, सर्वरूप, सबसे परे, शत्रु-मित्र से हीन, नीति के पालक, रावण आदि को मारने के लिए मनुष्यरूपधारी और दैत्यवंश के नाशक रामजी बोले—

सुनु कपीश लंकापति बीरा * केहिबिधि उतरियजलधिगँभीरा
संकुल मकर उरग झषजाती * अति अगाध दुस्तर सब भाँती

हे सुग्रीव, हे लङ्कापति, यह गहरा समुद्र किस भाँति उतरा जाय? इसमें मगर, सर्प और तरह-तरह की मछलियाँ भरी पड़ी हैं और इसके पार जाना बहुत कठिन है।

कह लंकेश सुनहु रघुनायक * कोटि सिन्धु शोषे तव शायक
यद्यपि तदपि नीति असगाई * विनय करिय सागरसन जाई

लङ्केश विभीषण ने कहा—हे रघुनाथ, यद्यपि आपका बाण करोड़ों समुद्रों को सुखा सकता है, तो भी नीति के अनुसार समुद्र से जाकर विनती कीजिए।

प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनुप्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपिधारि॥

हे प्रभो, समुद्र आपके कुल का गुरु है। इसलिए वह विचारकर यत्न कहेगा, जिससे बिना परिश्रम सब रीछों और वानरों की सेना समुद्र नाँघ जायगी।

सखा कहा तुम नीक उपाई * करिय दैव जो होइ सहाई
मंत्र न यह लछमण मनभावा * राम बचन सुनि अतिदुखपावा

रामजी बोले—मित्र, तुमने अच्छा उपाय कहा। यदि दैव सहाय होगा तो यही करूँगा। यह सलाह लछमणजी के मन न भाई। उन्होंने रामजी की बात सुनकर बड़ा दुःख पाया।

नाथ दैवकर कवन भरोसा * शोषिय सिन्धु करिय मनरोसा
कादर मनकर एक अधारा * दैव दैव आलसी पुकारा

वे बोले—हे नाथ, दैव का क्या भरोसा? क्रोध कीजिए और समुद्र को सोख लीजिए। भाग्य तो कायरों के मन का आधार है। 'दैव दैव' तो आलसी लोग पुकारते हैं।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा * ऐसेइ करब धरहु मन धीरा
अस कहि प्रभु अनुजहिं समुझाई * सिन्धु समीप गये रघुराई

यह सुनते ही हँसकर रामजी बोले कि ऐसा ही करूँगा; मन में धीरज धरो। यह कह स्वामी रामजी ने लक्ष्मण को समझाया और स्वयं समुद्र के पास गये।

प्रथम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई * बैठे तट पुनि दर्भ डसाई
जबहिं विभीषण प्रभुपहँ आये * पाछे रावण दूत पठाये

पहले रामजी ने जाकर प्रणाम किया और फिर किनारे कुश बिछा कर बैठे। जब विभीषण रामजी के पास चले आये तो पीछे से रावण ने दूत भेजे।



सकल चरित तिन देखेउ, धरे कपट कपिदेह।
प्रभुगुण हृदय सराहिं अति, शरणागतपर नेह॥

माया से वानरों की सी देह धरे उन्होंने सब चरित्र देखा और प्रभु रामजी के गुण हृदय में सराहने लगे कि शरण में आये हुए जन पर कैसा अपूर्व स्नेह है।

प्रकट बखानत रामस्वभाऊ * अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ
रिपु के दूत कपिन जब जाने * तिन्हें बाँधि कपीश पहँ आने

रामजी का स्वभाव प्रकट ही कह रहे हैं। प्रेम के कारण वे वैरभाव भूल गये। जब वानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं तो उन्हें बाँधकर सुग्रीव के पास ले आये।

कह सुग्रीव सुनहु सब वनचर * अंगभंग करि पठवहु निशिचर
सुनि सुग्रीववचन कपि धाये * बाँधि कटक चहुँपास फिराये

सुग्रीव ने कहा—हे वनचरो, इन निशाचरों को अंग-भंग करके लौटाओ। सुग्रीव के वचन सुन वानर दौड़े और उन्हें बाँधकर सेना के चारों ओर घुमाया।

बहु प्रकार मारन कपि लागे * दीन पुकारत तदपि न त्यागे
जो हमार हर नासा काना * तेहि कोशलाधीश की आना

बहुत प्रकार से वानरों ने उन्हें मारा; वे दीन होकर पुकारने लगे, तो भी न छोड़ा। तब वे बोले—जो हमारी नाक और कान काटे, उसे अयोध्या के स्वामी रामजी की सौगन्द है।

सुनि लक्ष्मण तब निकट बुलाये * दया लागि हँसि तुरत छुड़ाये
रावण कर दीन्हेउ यह पाती * लक्ष्मण वचन बाँचु कुलघाती

लक्ष्मणजी ने सुनकर उनको पास बुलाया और दया लगी, इससे हँसकर तुरन्त ही छुड़ा दिया। फिर एक पत्र देकर कहा कि इसे रावण को देना और कहना कि हे वंशनाशक, लक्ष्मण के वचन पढ़ो।



कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम सन्देश उदार।
सीता देइ मिलहु न तु, आवा काल तुम्हार॥

मूर्ख से यह उदार सँदेसा मुँहजबानी कहना कि 'जानकी को देकर मिलो, नहीं तो समझो, तुम्हारा काल आ गया'।

तुरत नाइ लछमण पद माथा * चले दूत बरणत गुणगाथा
कहत रामयश लंकहि आये * रावण चरण शीश तिन नाये

वे राक्षस तुरन्त ही लछमणजी के चरणों में माथा नवाकर उनके गुण कहते हुए चले। रघुनाथजी का यश कहते हुए वे लंका आये और रावण के चरणों में माथा नवाया।

बिहँसि दशानन पूछी बाता * कहसि न शुकआपनिकुशलाता
पुनि कहु खबरि बिभीषण केरी * जासु मृत्यु आई अति नेरी

रावण ने हँसकर पूछा—हे शुक, अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर बिभीषण की खबर कह, जिसकी मौत बहुत ही निकट आ गई है।

करत राजु लंका शठ त्यागी * होइहि यवकर कीट अभागी
पुनि कहु भालुकीशकटकाई * कठिन कालप्रेरित चलिआई

लंका में राज्य कर रहा था, उसे उस शठ ने छोड़ दिया। अब अभागा यव का-सा कीड़ा (घुन) पिस जायगा। फिर रीछों और वानरों की सेना की कुशल कहो, जो कठिन काल की प्रेरणा से चलकर आई है—

जिन्हके जीवनकर रखवारा * भयउ मृदुलचितसिन्धुबिचारा
कहु तपसिन के बात बहोरी * जिनके हृदय त्रास अति मोरी

जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्त बेचारा समुद्र हुआ। तपस्वियों की बात कहो, जिन्हें मेरा बड़ा डर है।



की भइ भेंट कि फिरिगये, श्रवण सुयश सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेजबल, कस चकित चित तोर॥

तुमसे भेंट हुई थी या कानों से मेरा उत्तम यश सुनकर वे लौट गये? शत्रु की सेना, तेज और बल क्यों नहीं कहता? तेरा चित्त चकित-सा कैसे है?

नाथ कृपाकरि पूछेहु जैसे * मानहु कहा क्रोध तजि तैसे
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा * जातहि राम तिलक तेहिं सारा

शुक बोला—हे नाथ, कृपाकर जैसे आपने पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना भी मानिए। जब आपका छोटा भाई जाकर मिला तो जाते ही उसका रामजी ने राजतिलक कर दिया।

रावणदूत हमहिं सुनि काना * कपिन बाँधि दीन्हे दुख नाना
श्रवण नासिका काटन लागे * रामशपथ दीन्हे तब त्यागे

मुझे तुम्हारा दूत सुन वानरों ने बाँधकर अनेकों दुःख दिये। जब नाक-कान काटने लगे तब रामजी की सौगन्द देने पर उन्होंने हमें छोड़ा।

पूछेहु नाथ राम कटकाई * वदन कोटिशत वरणि न जाई
नाना वरण भालु कपि धारी * विकटानन विशाल भयकारी

और हे नाथ, जो आपने रामजी की सेना के बारे में पूछा सो तो करोड़ों मुखों से भी नहीं कही जा सकती। रीछों और वानरों की सेना अनेक रंगों की है, जिनके भयंकर मुख हैं और बड़े भयंकर रूप हैं।

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा * सकल कपिनमहँ तेहि बल थोरा
अमित नाम भट कठिन कराला * अमित नागबलविपुलविशाला

जिसने नगर जलाया और आपका पुत्र मारा था, उस वानर का बल तो सब वानरों से कम है। अनेक नामों के योद्धा बड़े भयंकर हैं, जिनके बहुत-से हाथियों का बल है और बहुत लम्बे-चौड़े हैं।


द्विविद मयन्द नील नल, अङ्गदादि विकटासि।
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जाम्बवन्त बलरासि॥

द्विविद, मयन्द, नील, नल, अंगद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव, जाम्बवान्, ये सब बड़े बली हैं।

ये कपि सब सुग्रीवसमाना * इन सम कोटि गनै को आना
रामकृपा अतुलित बल तिनहीं * तृण समान त्रैलोकहिं गिनहीं

ये सब सुग्रीव के समान हैं। इनके समान अन्य भी करोड़ों हैं, जिन्हें कोई नहीं गिन सकता। रामजी की कृपा से उनके बल भरा है, इसी से वे तीनों लोकों को तृण के समान गिनते हैं।

अस मैं श्रवण सुना दशकन्धर * पद्म अठारह यूथप बन्दर
नाथ कटकमहँ सो कपि नाहीं * जो न तुमहिं जीतहि रणमाहीं

हे नाथ रावण, मैंने सुना है कि अठारह पद्म सेनापति ही हैं। ऐसा कोई नहीं, जो तुम्हें युद्ध में न जीत सके।

परमक्रोध मींजहिं सब हाथा * आयसु पै न देहिं रघुनाथा
शोषहिं सिंधु सहित झषव्याला * पूरहिं नखधरि कुधर विशाला

बड़े क्रोध से वे सब लंका में शीघ्र आने के लिए हाथ मल रहे हैं; परन्तु रघुनाथ उन्हें अभी आज्ञा नहीं देते। मछलियों और साँपों-समेत समुद्र को सोख लें, नखों से बड़े भारी पहाड़ों को फोड़ डालें।

मर्दि गर्द मिलवहिं दशशीशा * ऐसे वचन कहैं सब कीशा
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशंका * मानहु ग्रसन चहत हैं लंका

और मलकर रावण को धूल में मिला दें, ऐसे वचन सब वानर कहते हैं। स्वभाव ही से निडर वानर गरजते और डराते हैं, मानो लंका को निगलना ही चाहते हैं।



सहज शूर कपिभालु सब, पुनि शिरपर प्रभु राम।
रावण कोटिन काल कहँ, जीति सकहिं संग्राम ॥ ५५

हे रावण, सब रीछ व वानर शूर हैं ही, फिर उनके माथे पर राम हैं, जो युद्ध में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई * शेषसहसशत सकहिं न गाई
सकशरशोषि एकशतसागर * तब भ्रातहिं पूछेउ नयनागर

रामजी के तेज, बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। रामजी एक बाण से लाखों समुद्रों को सोख सकते हैं; परन्तु वह नीति में चतुर हैं, इस कारण उन्होंने समुद्र के पार का उपाय तुम्हारे भाई से पूछा।

तासु वचन सुनि सागर पाहीं * माँगत पन्थ कृपा मनमाहीं
सुनत वचन विहँसा दशशीशा * जो असिमति सहायकृत कीशा

विभीषण के वचन सुन रामजी समुद्र से मार्ग माँगते हैं; क्योंकि उनके मन में दया है। यह सुनते ही रावण हँसा और कहा कि यदि ऐसी बुद्धि है, सहाय करनेवाले वानर हैं—

सहज भीरुकर वचन दृढ़ाई * सागर सन ठानी मचलाई
मूढ़ मृषा कत करसि बड़ाई * रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई

और सहज ही डरपोक विभीषण के वचन दृढ़ मानकर राम ने समुद्र से मार्ग के लिए मचलना ठाना है तो रे मूढ़, तू झूठ ही उनकी बड़ाई क्यों करता है? मैं शत्रु के बल और बुद्धि की थाह पा गया।

सचिव सभीत बिभीषण जाके * विजय विभूति कहाँलगि ताके
सुनि खल वचन दूत रिसबाढ़ी * समय विचारि पत्रिका काढ़ी

डरपोक विभीषण जिसका मन्त्री है, उसके विजय और ऐश्वर्य कहाँ तक हो सकता है? दुष्ट रावण के वचन सुन दूत के क्रोध बढ़ा और समय समझकर उसने पत्र निकाला—

राम अनुज दीन्ही यह पाती * नाथ बँचाय जुड़ावहु छाती
विहँसि बामकर लीन्हेसि रावन * सचिव बोलि शठ लाग बँचावन

पत्र देकर कहा—हे नाथ, रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्र दिया है, इसे पढ़ाकर छाती ठंडी कीजिए। हँसकर शठ ने उसे बायें हाथ में लिया और मन्त्री को बुलाकर पढ़वाने लगा।

बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसिकुलखीश।
राम विरोध न उबरिहहु, शरणविष्णु अज ईश॥

पत्र में लिखा था कि रे शठ, मूर्ख! बातों से मन को प्रसन्न कर वंश का नाश मत कर; क्योंकि रामजी के वैर से विष्णु, ब्रह्मा और शिव की भी शरण गये तू न बचेगा।

होउ मान तजि अनुज इव, प्रभुपदपंकजभृङ्ग।
होसि रामशरअनल खल, जनि कुलसहितपतङ्ग॥

अभिमान छोड़ विभीषण की नाईं स्वामी रामजी के चरणकमलों में भौंरों की भाँति रम। रे दुष्ट, रामजी के बाण की अग्नि में वंशसमेत पाँखी की भाँति मत जल।

सुनत सभयमन मुख मुसुकाई * कहत दशानन सबहिं सुनाई
भूमि परा कर गहत अकासा * लघु तापसकर बागविलासा

यह सुन रावण मन में तो डरा, परन्तु मुख से मुस्कराकर सबको सुनाता हुआ कहने लगा कि छोटे तपस्वी की बकवास वैसी ही है, जैसे पृथ्वी में पड़ा हुआ कोई आकाश छूना चाहे।

कह शुक नाथ सत्य सब बानी * समुझहुछाँड़िप्रकृति अभिमानी
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा * नाथ रामसन तजहु विरोधा

इस पर शुक ने कहा—हे नाथ, लक्ष्मण के सब वचन सत्य हैं। अभिमानी स्वभाव को छोड़ समझिए, इस पत्र पर ध्यान दीजिए। हे नाथ, क्रोध छोड़ मेरे वचन सुनिए, रामजी से वैर-विरोध छोड़ दीजिए।

अतिकोमल रघुवीर स्वभाऊ * यद्यपि अखिल लोककर राऊ
मिलत कृपा प्रभु तुमपर करिहैं * उर अपराध न एकौ धरिहैं

रामचन्द्र यद्यपि सब लोकों (संसार) के राजा (स्वामी) हैं तो भी उनका स्वभाव बड़ा कोमल है। स्वामी रघुनाथजी मिलते ही तुम्हारे ऊपर दया करेंगे और तुम्हारा एक भी अपराध जी में न धरेंगे।

जनकसुता रघुनाथहिं दीजै * इतना कहा मोर प्रभु कीजै
जब तेइँ देन कहेउ वैदेही * चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही

हे प्रभु, मेरा इतना कहा कीजिए कि जनकनन्दिनी को रघुनाथजी को दे दीजिए। जब उसने जानकी को देने के लिए कहा, तब शठ रावण ने उसके लात मारी।

चरणनाय शिर चला सो तहँवाँ * कृपासिन्धु रघुनायक जहँवाँ
करि प्रणाम निज कथा सुनाई * रामकृपा आपनि गति पाई

तब वह चरणों में माथा नवाकर जहाँ दयासिन्धु रघुनाथजी थे, वहाँ चला। प्रणाम कर उसने अपना हाल सुनाया और रामजी की दया से अपनी गति पाई।

ऋषिअगस्त्यकर शाप भवानी * राक्षस भया रहा मुनि ज्ञानी
बंदि रामपद बारहिं बारा * पुनि निज आश्रमकहँ पगुधारा

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, वह ज्ञानी मुनि था ; परन्तु अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। रघुनाथजी के चरणों में बार-बार प्रणाम कर वह अपने आश्रम को चला गया।


विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भयबिन होय न प्रीति ॥५

तीन दिन बीते, पर जड़ समुद्र ने विनती न सुनी। तब क्रोधकर रामजी बोले—'भय के बिना प्रीति नहीं होती'।

लक्ष्मण बाण शरासन आनू * शोखौं वारिधि विशिखकृशानू
शठ सन विनय कुटिलसनप्रीती * सहज कृपण सन सुन्दर नीती

रामजी ने कहा—हे लक्ष्मण, धनुषबाण लाओ ; बाण की आग से समुद्र को सोख लूँ। मूर्ख से विनती, कुटिल से प्रीति और सहज ही सूम से अच्छी नीति कहना—

ममतारत सन ज्ञान कहानी * अतिलोभी सन विरति बखानी
क्रोधिहि शम कामिहि हरिकथा * ऊसर बीज बये फल यथा

ममता में लगे हुए से ज्ञान की कथा, अति लालची से वैराग्य, क्रोधी से शान्ति की बातें कहना और कामी पुरुष को भगवान् की कथा सुनाना—ये सब वैसे ही व्यर्थ हैं, जैसे ऊसर में बीज बोना।

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा * यह मत लक्ष्मण के मन भावा
संधानेउ प्रभु विशिख कराला * उठी उदधि उर अन्तरज्वाला

ऐसा कह रघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया। यह मत (राय) लक्ष्मणजी के मन भाया। जब स्वामी रामजी ने भयंकर बाण धनुष पर चढ़ाया तो समुद्र के हृदय के भीतर ज्वाला उठने लगी।

मकर उरग झषगण अकुलाने * जरत जन्तु जलनिधि जब जाने
कनकथार भरि मणिगण नाना * विप्ररूप आये तजि माना

मगर, साँप और मछलियाँ व्याकुल हो गईं। जब समुद्र ने जाना कि सब जल के प्राणी जले जाते हैं तो सोने के थाल में अनेक मणियाँ भरकर ब्राह्मण का रूप रख अभिमान छोड़कर आया।


काटे पै कदली फरै, कोटि यतनकर सींच।
विनय न मान खगेश सुन, डाटेहि पै नव नीच ॥८

काकभुशुण्डि कहते हैं—हे गरुड़, केला चाहे करोड़ उपाय करके सींचा जाय, परन्तु काटने ही से फलेगा। ऐसे ही नीच विनती नहीं मानता ; किन्तु डाँटने ही से झुकता है।

सभय सिन्धु गहिपद प्रभुकेरे * क्षमहु नाथ सब अवगुण मेरे
गगन समीर अनल जल धरणी * इनकी नाथ सहज जड़ करणी

डरकर समुद्र ने प्रभु रामजी के चरण पकड़ लिये और कहा—हे नाथ, मेरे सब अवगुण क्षमा कीजिए। हे नाथ, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी—इनकी करनी स्वभाव ही से जड़ है।

तव प्रेरित माया उपजाये * सृष्टिहेतु सब ग्रन्थन गाये
प्रभुआयसुजेहि कहँ जसअहही * सोतेहि भाँति रहे सुख लहही

तुम्हारी प्रेरणा से माया ने इन्हें उत्पन्न किया है और सब ग्रन्थों ने इन्हें सृष्टि का कारण कहा है। जिसे जैसी स्वामी की आज्ञा है, वह उसी प्रकार सुख पाता है।

प्रभु भलकीन्हमोहिंसिखदीन्ही * मर्यादा सब तुम्हरी कीन्ही
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी * ये सब ताड़न के अधिकारी

आपने अच्छा किया, जो मुझे सीख दी। सब मर्यादा आपकी ही बाँधी हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री, ये सब ताड़ना के ही अधिकारी हैं।

प्रभुप्रताप मैं जाब सुखाई * उतरहिं कटक न मोरि बड़ाई
प्रभुआज्ञा अपेल श्रुति गाई * सोइ करहु जो तुमहिं सोहाई

आपके प्रताप से मैं सूख जाऊँगा, सेना उतर जायगी, परन्तु इसमें मेरी कुछ बड़ाई नहीं है। वेदों ने कहा है कि आपकी आज्ञा टल नहीं सकती। जो आपको अच्छा लगे वही कीजिए।

सुनत विनीत वचन अति, कह कृपालु मुसुकाय।
जेहि विधि उतरै कपिकटक, तात सो करहु उपाय॥

समुद्र के ये बड़े कोमल वचन सुन दयालु रामजी ने मुस्करा कर कहा—हे तात, जैसे वानरी सेना उतरे, वही उपाय करो।

नाथ नील नल कपि-दोउ भाई * लरिकाईं ऋषि आशिष पाई
तिनके परश किये गिरि भारे * तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे

हे नाथ, नील और नल दोनों वानर भाई-भाई हैं। इन्होंने लड़कपन में मुनि से आशीर्वाद पाया था, जिससे उनके स्पर्श करने से भारी पहाड़ आपके प्रताप से समुद्र में उतरायँगे।

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई * करिहौं बल अनुमान सहाई
यहि विधि नाथ पयोधि बँधाई * जेहि यश सुयश लोकतिहुँ गाई

फिर मैं आपकी प्रभुता हृदय में रखकर अपने बल के अनुसार सहायता करूँगा। हे नाथ, इस प्रकार सेतु बँधाइए कि आपके उत्तम यश को तीनों लोक गावें।

यहि शर मम उत्तर तटवासी * हतहु नाथ खलगण अघरासी
सुनि कृपालु सागर मन पीरा * तुरतहि हरी राम रणधीरा

हे नाथ, इस बाण से मेरे उत्तरी किनारे पर रहनेवाले पाप की राशि दुष्टों को मारिए। कृपालु और रणधीर रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरन्त ही हर लिया।

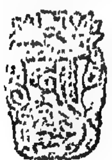
देखि राम बल पौरुष भारी * हर्षि पयोनिधि भयो सुखारी
सकलचरितकहिप्रभुहिंसुनावा * चरणवन्दि पाथोधि सिधावा

रामजी का भारी बल और पौरुष देख समुद्र प्रसन्न हुआ। फिर रावण का सब हाल रामजी को सुनाया और चरणों में प्रणाम करके चला गया।

छन्द

निज भवन गवनेउ सिन्धु श्रीरघुवीर यह मत भायऊ।
यह चरित कलिमलहरण जसमति दासतुलसीगायऊ॥
सुखभवन संशयशमन दमन विषाद रघुपति गुणगना।
तजि सकलआशभरोस गावहिं सुनहिंसन्ततशुचिमना॥

समुद्र अपने भवन को गया। रामजी को यह मत भाया। यह कलियुग के पापों का नाशक चरित्र तुलसीदासजी ने बुद्धि के अनुसार गाया है। सुख के धाम, संशय और दुःख के नाशक रघुनाथजी के गुणों को पवित्र मनवाले सज्जन अन्य सभी आशाएँ और विश्वास छोड़ सदा कहते और सुनते हैं।



सकल सुमङ्गलदायक, रघुनायक गुणगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु बिना जलयान॥

सब सुमंगल देनेवाले रामजी के गुणों को जो आदर से सुनते हैं, वे बिना जलयान (नाव) के संसार-सागर के पार हो जाते हैं।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पञ्चमः सोपानः समाप्तः।

सुन्दरकाण्ड समाप्त



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण लंकाकाण्ड

बालबोधिनीटीकासहित





सुर नर कारज आदि महँ, जेहि सुमिरत सिधिहेत।
ध्यावहुँ तिन्हिं गणेशकहँ, जो मुद मंगल देत॥
सिधिनिधिदायक सुमिरिकै, हिये माहिं श्रीराम।
टीका लंकाकाण्ड की, करहुँ सुमति अभिराम॥



रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कुन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥

काम के शत्रु शिव जिनकी सेवा करते हैं, उन संसारभयहारी, कालरूप मत्त हाथी को मारने के लिए सिंह, योगिराज, ज्ञान से मिलने योग्य, गुणखानि, अजित, गुणों और विकारों से हीन, माया से परे, देवपति, दुष्टों के वध में लगे हुए, ब्राह्मणों के एकमात्र देवता, मेघों-सरीखे श्याम, कमलनयन, पृथ्वीपतिरूप रामजी को प्रणाम करता हूँ।

शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकपालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशङ्करं कामहम्॥

शंख और चन्द्रमा की-सी कान्तिवाले, बहुत ही सुन्दर शरीर, बाघम्बरधारी, काले साँपों और कपाल के भूषण धारण करनेवाले, गंगा और चन्द्रमा को धारण किये, काशीनाथ, कलियुग के पापनाशक, कल्याणदायक कल्पवृक्ष, स्तुति करने योग्य, पार्वतीपति, गुणखानि, काम के विनाशक शिव को प्रणाम करता हूँ।

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे॥

जो महात्माओं को भी दुर्लभ मोक्ष और दुष्टों को दण्ड देते हैं, वे शिवजी मेरा कल्याण करें।


लव निमेष परमाणुयुग, वर्ष कल्प शर चण्ड।
भजसि न मन तेहि रामकहँ, काल जासु कोदण्ड॥

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिन रामजी के प्रचंड बाण हैं तथा काल धनुष है, हे मन, उन श्रीरघुनाथजी को तू क्यों नहीं भजता?


सिन्धुवचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु असकहेउ।
अबविलम्बकेहि काम, रचहु सेतु उतरै कटक॥

समुद्र के वचन सुन प्रभु ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—अब विलम्ब किस लिए है? सेतु बने और सेना उतरे।

सुनहु भानुकुलकेतु, जांम्बवन्त कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं॥

जाम्बवान् ने हाथ जोड़कर कहा—हे सूर्यवंश की ध्वजा! आपका नाम ही सेतु है जिस पर चढ़कर मनुष्य संसारसागर उतर जाते हैं—

यह लघु जलधि तरत कतवारा * अससुनि पुनि कह पवनकुमारा
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी * शोषे प्रथम पयोनिधि वारी

फिर इस छोटे-से समुद्र के उतरने में कितनी देर लग सकती है? यह सुनकर पवन के पुत्र हनुमान् ने कहा—आपके प्रतापरूप बड़े वड़वानल ने पहले ही समुद्र का जल सुखा डाला था—

तव रिपुनारि रुदन जलधारा * भरेउ बहोरि भयो तेहि खारा
सुनि अस उक्ति पवनसुत केरी * विहँसे रघुपति कपितन हेरी

परन्तु आपके शत्रु की स्त्रियों के आँसुओं से फिर भर गया, इसी से वह खारी है। पवन के पुत्र की ऐसी उक्ति सुन रामजी उनकी ओर देखकर हँसने लगे।

जाम्बवन्त बोले दोउ भाई * नल नीलहिं सब कथा सुनाई
रामप्रताप सुमिरि उर माहीं * करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं

जाम्बवान् ने नल और नील दोनों भाइयों को बुलाकर सब हाल सुनाया, जो समुद्र ने कहा था। फिर कहा कि रामजी का प्रताप हृदय में स्मरणकर सेतु बनाओ; इसमें तुम को कुछ भी परिश्रम न करना होगा।

बोलि लिये कपिनिकर बहोरी * सकल सुनहु विनती इक मोरी
रामचरणपंकज उर धरहू * कौतुक एक भालु कपि करहू

फिर वानरों को बुलाकर कहा कि सब लोग मेरी एक विनती सुनो। हे रीछो और वानरो, रामजी के चरणकमल हृदय में रखकर एक कौतुक (खेल) करो।

धावहु मर्कट विकट बरूथा * आनहु विटप गिरिन के यूथा
सुनि कपि भालु चले करि हूहा * जय रघुवीर प्रताप समूहा

हे विकट वानरो, दौड़ो और वृक्ष तथा पर्वत लाओ। यह सुनकर वानर और रीछ हूहा करते और यह कहते हुए चले कि श्रीरघुनाथजी के प्रताप की जय हो।



अति उतंग तरु शैलगण, लीलहि लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नील कहँ, बिरचहिं सेतु बनाइ॥

वे ऊँचे वृक्षों और पहाड़ों को खेल की तरह उठा लाते और नल-नील को देते हैं, जो उनसे सेतु रचते जाते हैं।

शैल विशाल आनि कपि देहीं * कन्दुक इव नल नील सो लेहीं
देखि सेतु अति सुन्दर रचना * बिहँसि कृपानिधि बोले बचना

बड़े-बड़े पर्वत वानर उठा लाते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की भाँति हाथों में रोक लेते हैं। सेतु की अच्छी रचना देख कृपासागर श्रीरामजी हँसकर बोले—

परमरम्य सुन्दर यह धरणी * महिमा अमित जाय नहिं बरणी
करिहौं इहाँ शम्भु थापना * मोरे हृदय परम कल्पना

यह सुन्दर पृथ्वी बड़ी रमणीय है, इसकी महिमा अपार है—कही नहीं जा सकती। यहाँ मैं शिवजी की स्थापना करूँगा, यह मेरे हृदय में श्रेष्ठ संकल्प है।

सुनि कपीश बहु दूत पठाये * मुनिवर निकर बोलि लै आये
लिंग थापि विधिवत करि पूजा * शिवसमान प्रिय मोहिं न दूजा

यह सुन सुग्रीव ने बहुत-से दूत भेजे, जो मुनियों को बुला लाये। लिंग की स्थापना और विधिवत पूजा कर श्रीरामजी बोले—शिव के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है।

शिवद्रोही मम दास कहावै * सो नर सपनेहु मोहिं न भावै
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी * सो नर मूढ़ मन्द मति थोरी

जो शिव का वैरी और मेरा दास कहाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं भाता। शिव से विमुख मनुष्य यदि मेरी भक्ति चाहे तो वह मूर्ख और मंदमति है।



शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ बास॥

शिव के भक्त और मेरे वैरी या शिव के वैरी और मेरे दास—ऐसे मनुष्य कल्प भर नरक में रहते हैं।

जो रामेश्वर दर्शन करिहैं * सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि * सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि

जो लोग रामेश्वर का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़नेपर मेरे लोक को जायँगे। जो गंगा-जल लाकर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति (भगवान् में लीन हो जाना) पावेगा।

होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं * भक्ति मोरि तेहि शंकर देइहि
ममकृत सेतु जो दर्शन करिहैं * ते विन श्रम भवसागर तरिहैं

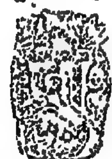
बिना किसी कामना के जो छल छोड़कर रामेश्वर की सेवा करेंगे, उन्हें शिवजी मेरी भक्ति देंगे। मेरे बनाये सेतु का जो दर्शन करेंगे, वे विना परिश्रम ही संसार-सागर तर जायँगे।

रामवचन सबके मन भाये * मुनिवर निजनिज आश्रम आये
गिरिजा रघुपति की यह रीती * सन्तत करहिं प्रणत पर प्रीती

श्रीरामजी के वचन सबके मन भाये। मुनिवर रामेश्वर की स्थापना कराकर अपने-अपने आश्रमों को आये। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रघुनाथजी की यह रीति है कि वह सदैव प्रणतजन पर प्रेम करते हैं।

बाँधेउ सेतु नील नल नागर * रामकृपा यश भयउ उजागर
बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई * भये उपल बोहित सम तेई
महिमा यह न जलधि कै बरणी * पाहन गुण न कपिन की करणी

चतुर नील और नल ने सेतु बाँधा और रामजी की कृपा से उनका उज्ज्वल यश हुआ। जो आप डूबते और औरों को भी डुबाते हैं, वे ही पत्थर जहाज के समान हो गये। यह कुछ समुद्र की महिमा नहीं है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की करतूत।



श्री रघुवीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिं जाय प्रभु आन॥

रामजी के ही प्रताप से पत्थर समुद्र में तैरे। वे मन्दबुद्धि हैं; जो रामजी को छोड़ दूसरे स्वामी की सेवा करते हैं।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा * देखि कृपानिधि के मन भावा
चली सेन कछु बरणि न जाई * गर्जहिं मर्कट भट समुदाई

सेतु बाँधकर उसे नल-नील ने बहुत मजबूत बनाया, जिसे देख रामजी का मन प्रसन्न हुआ। सेतु पर सेना चली, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वानर योद्धा गर्जते हैं।

सेतुबन्धढिग चढ़ि रघुराई * चितव कृपालु सिन्धु अधिकाई
देखन कहँ प्रभु करुणाकन्दा * प्रकट भये सब जलचरवृन्दा

सेतुबंध के समीप चढ़कर दयालु रामजी समुद्र की अधिकता (पाट) देखने लगे, दयानिधान रामजी के देखने के लिए सब जलचर ऊपर प्रकट हुए।

नाना मकर नक्र झष व्याला * शतयोजन तनु परम विशाला
ऐसे एक तिनहिं धरि खाहीं * एकन के डर एक पराहीं

अनेक मगर, नाक, घड़ियाल, मछली और साँप, जिनके शरीर सौ योजन के और बहुत चौड़े थे, तथा बहुत से ऐसे जो उनको पकड़कर खाजाते हैं, एक के डर से एक भागे जाते हैं।

प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे * मन हर्षित सब भये सुखारे
तिनकी ओट न देखिय वारी * मगन भये हरिरूप निहारी
चला कटक कछु वरणि न जाई * को कहिसक कपिदल विपुलाई

रामजी को देख रहे हैं, टाले नहीं टलते, सब प्रसन्न और सुखी हुए। उनकी ओट में जल नहीं देख पड़ता था। रामजी का रूप देखकर वे प्रसन्न हुए। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता, वानरों की सेना की अधिकता कौन कह सकता है?


सेतुबन्ध भइ भीर अति, कपि नभ पन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरन उपर चढ़ि, बिन श्रम पारहि जाहिं॥

सेतुबन्धु पर बड़ी भीड़ हुई, वानर आकाशमार्ग में उड़ते हैं। कोई तो जल में रहनेवाले जीवों के ऊपर चढ़कर बिना परिश्रम के ही पार उतर जाते हैं।

यह कौतुक विलोकि दोउ भाई * विहँसि चले कृपालु रघुराई
सेन सहित उतरे रघुवीरा * कहि न जात कछु यूथप भीरा

रघुवंशनायक दोनों भाई यह कौतुक देखकर हँसे और चले। सेना-समेत रघुनाथजी समुद्र के उस पार उतर गये। सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती।

सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा * सकल कपिन कहँ आयसु दीन्हा
खाहु जाइ फल मूल सुहाये * सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये

समुद्र के पार उतरकर रामजी ने डेरा किया और सब वानरों को आज्ञा दी कि जाकर सुन्दर फल-मूल खाओ। यह सुन रीछ और वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े।

सब तरु फले राम हित लागी * ऋतु अनऋतुहि काल गति त्यागी
खाहिं मधुर फल विटप हिलावहिं * लंका सम्मुख शिखर चलावहिं

रामजी के लिए सब वृक्ष ऋतु और बिना ऋतु में भी समय की गति छोड़कर फल गये। वानर मीठे फल खाते और डालों को हिलाते हैं तथा लंका के सामने पत्थर फेंकते हैं।

जहँ कहुँ फिरत निशाचर पावहिं * घेरि सकल मिलि नाच नचावहिं
दशनन काटि नासिका काना * कहि प्रभु सुयश देहिं तब जाना

जहाँ कहीं घूमते हुए किसी राक्षस को पाते हैं, तो उसे सब घेरकर नाच नचाते हैं। दाँतों से उसकी नाक और कान काटकर, रामजी का उत्तम यश उससे कहलाते और तब जाने देते हैं।

जिनकर नासा कान निपाता * तिन रावणहिं कही सब बाता

सुनत श्रवण वारिधि बन्धाना * दशमुख बोलि उठा अकुलाना

जिन राक्षसों के नाक-कान काटे गये, उन्होंने रावण से जाकर सब हाल कहा। समुद्र का बाँधना कान से सुनते ही रावण विकल हो गया और दसों मुखों से समुद्र के दस नाम लेकर कह उठा—



बाँधेउ जलनिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु वारीश।
सत्य तोयनिधि पंकनिधि, उदधि पयोधि नदीश॥

कि 'रामचन्द्रजी ने समुद्र में सेतु बाँध लिया' क्या यह सत्य है?

व्याकुलता निज समुझि बहोरी * बिहँसि चला गृह करि भय थोरी
मन्दोदरी सुना प्रभु आये * कौतुकही पाथोधि बँधाये

फिर अपनी विकलता समझकर डर को थोड़ा कर हँसा और घर को चला। मन्दोदरी ने सुना कि रघुनाथजी आ गये, और खेल की तरह अनायास ही समुद्र में सेतु बँधाया है—

करगहि पतिहि भवन निज आनी * बोली परम मनोहर बानी
चरण नाइ शिर अंचल रोपा * सुनहु वचन प्रिय परिहरि कोपा

तो हाथ पकड़कर पति को अपने मन्दिर में ले गई और उसके चरणों में माथा नवा अंचल फैलाकर बड़ी कोमल वाणी से बोली—हे प्यारे, क्रोध छोड़कर मेरे वचन सुनिए।

नाथ वैर कीजे ताही सों * बुधबल जीति सकिय जाही सों
तुमहिं रघुपतिहिं अन्तर कैसा * खल खद्योत दिवाकर जैसा

हे नाथ, वैर उसी से करना चाहिए, जिससे बाहुबल से जीत सके। तुममें और रघुनाथजी में उतना ही अन्तर है जितना जुगनू और सूर्य में।

अतिबल मधु कैटभ जिन मारे * महावीर दितिसुत संहारे
जेहि बलि बाँधि सहसभुज मारा * सोइ अवतरेउ हरण महिभारा
तासु विरोध न कीजिय नाथा * काल कर्म गुण जिनके हाथा

जिन्होंने बड़े बली मधु और कैटभ नाम दैत्यों को मारा, तथा बड़े वीर दिति के पुत्र दैत्यों का संहार किया। जिन्होंने राजा बलि को बाँधा और सहस्रबाहु अर्जुन को मारा, उन्होंने ही पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया है। हे नाथ, उनसे वैर न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और तीनों गुण हैं।



रामहिं सौंपहु जानकी, नाइ कमलपद माथ।
सुत कहँ राज्य देइ वन, जाइ भजहु रघुनाथ॥

रामजी के चरणकमलों में माथा नवाकर जानकीजी को सौंप दो और पुत्र को राज्य दे वन में जाकर रघुनाथ को भजो।

नाथ दीनदयालु रघुराई * बाघौ सम्मुख गये न खाई
चाहिय करन सो सब करि बीते * तुम सुर असुर चराचर जीते

हे नाथ, रामचन्द्रजी दीनदयालु हैं। देखिए, सामने जाने से बाघ भी नहीं खाता। जो करना चाहिए, वह सब आप कर चुके तथा देवता, दैत्य और सब जीवों को जीत लिया।

वेद कहहिं अस नीति दशानन * चौथे पनहिं जाइ नृप कानन
तासु भजन कीजिय तहँ भर्ता * जो कर्ता पालक संहर्ता

हे दशानन, वेद ऐसी नीति कहते हैं कि राजा चौथे पन में वन को जाय। हे स्वामी, और वहाँ उसका भजन करे, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाला है।

सोइ रघुवीर प्रणत अनुरागी * भजहु नाथ ममता मद त्यागी
मुनिवर यत्न करहिं जेहि लागी * भूप राज्य तजि होहिं विरागी

हे नाथ, रघुनाथजी दीन भक्तजन पर प्रेम करनेवाले हैं। उन्हें ममता और अहंकार छोड़कर भजो। जिन्हें पाने के लिये मुनिवर उपाय करते और राजा राज्य छोड़ संसार से नाता तोड़ देते हैं।

सोइ कोशलाधीश रघुराया * आये करन तोहिं पर दाया
जो पिय मानहु मोर सिखावन * होइहि सुयश तिहूँ पुर पावन

वही अयोध्यानाथ रामजी तुम्हारे ऊपर दया करने आये हैं। हे प्रिय, जो मेरी सीख मानोगे, तो तीनों लोकों में तुम्हारा पावन यश होगा।



अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथ पद, मम अहिवात न जात॥

ऐसा कह नेत्रों में जल भरकर चरण पकड़ काँपती हुई मन्दोदरी बोली—हे स्वामी, रघुनायक रामजी के चरणों को भजिए, जिससे मेरा सोहाग न जाय।

तब रावण मयसुता उठाई * कहै लाग खल निज प्रभुताई
सुनु तैं प्रिया मृषा भय माना * जग योधा को मोहिं समाना

तब दुष्ट रावण ने मयासुर की पुत्री मन्दोदरी को उठाया और इस प्रकार अपनी प्रभुता कहने लगा कि हे प्यारी, तूने वृथा ही भय माना है। संसार में मेरे समान योद्धा कौन है?

वरुण कुबेर पवन यम काला * भुजबल जितेहुँ सकल दिकपाला
देव दनुज नर सब वश मोरे * कवन हेतु भय उपजा तोरे

वरुण, कुबेर, पवन, यमराज और काल आदि सब दिक्पालों को मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत लिया है। देवता, दानव और मनुष्य भी सब मेरे वश में हैं। फिर किस लिये तेरे मन में भय उत्पन्न हुआ?

नानाविधि कहि तेहि समुझाई * सभा बहोरि बैठ सो जाई

मन्दोदरी हृदय अस जाना * काल विवश उपजा अभिमाना

रावण ने अनेक प्रकार से कहकर उसे समझाया और फिर सभा में जा बैठा। मन्दोदरी ने मन में जाना कि काल के वश होने के कारण इसे अहंकार उत्पन्न हुआ है।

सभा जाइ मन्त्रिन अस बूझा * करिय कवनविधि रिपुसनजूझा
कहहिंसचिवसुनु निशिचरनाहा * बार बार प्रभु पूछत काहा
कहहुकवन भय करिय विचारा * नर कपि भालु अहार हमारा

सभा में जाकर रावण ने मन्त्रियों से पूछा कि शत्रु से कैसे युद्ध करें? वे बोले—हे राक्षसराज प्रभु, आप बार-बार क्या पूछते हैं? कौन-सा डर है, जिसका विचार करें? नर, वानर और रीछ तो हमारा भोजन हैं।



वचन सबन के श्रवण सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीतिविरोध न करिय प्रभु, मन्त्रिनमतिअतिथोरि॥

सबके वचन सुन हाथ जोड़ प्रहस्त बोला—प्रभु, नीति का विरोध न कीजिए, इन मन्त्रियों के बुद्धि बहुत थोड़ी है।

कहहिं सचिव सब ठकुरसुहाती * नाथ न भल होइहि यहि भाँती
वारिधि लाँघि एक कपि आवा * तासु चरित मन महँ सब गावा

ये सब मन्त्री ठकुरसुहाती कहते हैं। परन्तु हे नाथ, इस प्रकार भलाई नहीं होने की। एक वानर समुद्र नाँघकर आया था, उसकी करतूत को आज तक मन में सब राक्षस गाते हैं।

क्षुधा न रही तुमहिं सब काहू * जारत नगर न सक धरि खाहू
सुनत नीक आगे दुख पावा * सचिवन असमतप्रभुहिंसुनावा

फिर प्रहस्त उन मन्त्रियों से बोला—क्या तुम सबको नगर जलाते समय भूख न थी, जो पकड़कर उसे खा जाते। फिर रावण से कहा—सुनने में तो अच्छी है; परन्तु आगे जिससे दुःख मिलेगा, ऐसी सलाह मन्त्रियों ने आपको दी है।

जो वारीश बँधायउ हेला * उतरे कपिदल सहित सुवेला
सो जनु मनुज खाब हम भाई * वचन कहहु सब गाल फुलाई

जिन्होंने अनायास समुद्र में सेतु बँधा दिया और वानरों की सेना-समेत सुवेल पर्वत पर आकर उतरे, वे मानो मनुष्य हैं जो हम उन्हें खायँगे। हे भाइयो, सब लोग गाल फुलाकर बातें करते हो।

सुनिममवचनतात अति आदर * जनिमनगुणहु मोहिंकहिकादर
प्रिय वाणी जे सुनहिं जे कहहीं * ऐसे जग निकाय नर अहहीं

फिर रावण से कहा—हे तात, बड़े आदर से मेरे वचन सुनो; मन में मुझे कायर न जानो। प्रिय वाणी सुनने और कहनेवाले मनुष्य तो संसार में बहुत हैं—

वचन परम हित सुनत कठोरे * कहहिं सुनहिं ते नर प्रभु थोरे
प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती * सीतहिं देइ करहु पुनि प्रीती

परन्तु हे नाथ, हित के वचन, जो सुनने में कठोर हों, कहने-सुननेवाले मनुष्य थोड़े ही होते हैं। नीति तो यह है कि पहले दूत भेजिए और फिर सीताजी को देकर मित्रता कर लीजिए।



नारि पाइ फिरि जाहिं जो, तो न बढ़ाइय रार।
नाहिं तो सम्मुख समर महँ, नाथ करिय हठि मार॥

जो स्त्री को पाकर वे लौट जायँ, तो वैर न बढ़ाइए। नहीं तो हे नाथ, डटकर युद्ध में सामने होकर लड़िए।

यह मत जो मानहु प्रभु मोरा * उभय प्रकार सुयश जग तोरा
सुतसन कह दशकन्ध रिसाई * असमति तोहिं शठ कौन सिखाई

हे प्रभु, जो मेरी यह सलाह मानिएगा, तो दोनों प्रकार संसार में आपका यश होगा। तब क्रोधकर रावण पुत्र से बोला—मूर्ख, तुझे ऐसी बुद्धि किसने दी?

अबहीं ते उर संशय होई * वेणुवंश सुत भयसि घमोई
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा * चला भवन कहि वचन कठोरा

अभी से मेरे हृदय में सन्देह होने लगा। हे पुत्र, बाँस के वंश में तू घमोय घास (इससे बाँस जड़ से सूख जाते हैं) पैदा हुआ। पिता के बहुत कठोर वचन सुन प्रहस्त[1] इस प्रकार कठोर वाणी कहकर घर चला कि—

हित मत तोहिं न लागत कैसे * काल विवश कहँ भेषज जैसे
सन्ध्या समय जानि दशशीशा * भवन चला निरखत भुजबीशा

हित की सलाह तुझे वैसे ही नहीं अच्छी लगती; जैसे काल के वश प्राणी को दवा। संध्या-समय जान दशशीश रावण अपनी बीसों भुजाएँ देखता हुआ घर चला।

लंका शिखर रुचिर आगारा * अति विचित्र तहँ होय अखारा
बैठ जाइ तेहि मन्दिर रावन * लागे किन्नर गँधरब गावन
बाजे ताल पखावज वीणा * नृत्य करहिं अप्सरा प्रवीणा

लंका में शिखर के ऊपर एक सुन्दर मन्दिर था, वहाँ बड़ा विचित्र अखाड़ा लगता था। उस मन्दिर में जाकर रावण बैठ गया और किन्नर व गन्धर्व गाने लगे। ताल, पखावज और वीणा बाज रही हैं तथा प्रवीण अप्सराएँ नाचती हैं।



सुनासीर शत सरिस सो, सन्तत करै विलास।
परम प्रबल अरि शीश पर, तदपि न कछु मन त्रास॥

१. गोस्वामीजी ने प्रहस्त को रावण का पुत्र लिखा है। पर वाल्मीकि रामायण के अनुसार प्रहस्त रावण का नाना और मंत्री था। सम्भव है, रावण का कोई प्रहस्त नाम का पुत्र भी रहा हो—टीकाकार।

रावण सदैव सौ इन्द्रों का-सा सुख भोगता था। महाबलवान् शत्रु शिर पर है, तो भी उसके मन में कुछ डर नहीं।

वहाँ सुवेल शैल रघुवीरा * उतरे सैन सहित अति भीरा
शैल शृंग इक सुन्दर देखी * अतिउतंग सम सुभग विशेखी

वहाँ सुवेल पर्वत पर रामजी सेना-समेत उतरे, इससे बड़ी भीड़ हुई। पर्वत का एक सुन्दर शिखर देखा, जो बड़ा ऊँचा, समथल और बहुत ही मनोहर था।

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाये * लक्ष्मण रचि निज हाथ डसाये
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला * तेहि आसन आसीन कृपाला

वहाँ लक्ष्मणजी ने वृक्षों के नये पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथ से रचकर बिछाये। उनके ऊपर कोमल और सुन्दर मृगछाला बिछाई। ऐसे आसन पर कृपालु रघुनाथजी बैठे।

प्रभुकृत शीश कपीश उछङ्गा * वाम दहिन दिशि चाप निषङ्गा
दुहुँ करकमल सुधारत बाना * कह लङ्केश मन्त्र लगि काना

रामजी सुग्रीव की गोद में शिर रखकर लेट गये, तथा बाईं और दाहिनी ओर धनुष व तरकस धर लिये। कमल-सरीखे दोनों हाथों से बाण सुधारते हैं और विभीषण उनके कान में कुछ सलाह कर रहे हैं।

बड़भागी अङ्गद हनुमाना * चरणकमल चापत विधिनाना
प्रभु पाछे लक्ष्मण वीरासन * कटिनिषङ्ग कर बाण शरासन

बड़े भाग्यवान् अंगद और हनुमान्जी अनेक भाँति से चरणकमल दबाते हैं। रामजी के पीछे लक्ष्मणजी वीरासन लगाये बैठे हैं, जो कमर में तरकस बाँधे और हाथ में धनुष-बाण लिये हैं।



यहिविधि करुणाशीलगुण, धाम राम आसीन।
ते नर धन्य जो ध्यान यहि, रहहिं सदा लवलीन॥

इस प्रकार दया, शील और गुणों के धाम रामजी बैठे हैं, वे धन्य हैं, जो इस ध्यान में लवलीन रहते हैं।

पूरब दिशा विलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहो सबहिं देखहु शशिहिं, मृगपतिसरिस अशंक॥

पूर्व ओर रामजी ने उदय हुए चन्द्र को देख सबसे कहा कि सिंह के समान निडर चन्द्र को देखो,

पूर्वदिशि गिरिगुहानिवासी * परमप्रताप तेजबलरासी
मत्तनागतमकुम्भ विदारी * शशि केहरी गगनवनचारी

जो पूर्वदिशारूप पर्वत की कन्दरा में बसता है तथा बड़े प्रताप तेज और बल की राशि है। अन्धकाररूप मतवाले हाथी का मस्तक फाड़कर चन्द्रमारूप सिंह आकाश के वन में घूमता है।

बिथुरे नभ मुकताहल तारा * निशिसुन्दरी केर श्रृङ्गारा
कह प्रभु शशि महँ मेचकताई * कहहु कहा निज निज मति भाई

आकाश में मोतियों की भाँति नक्षत्र फैले हैं, जो रात्रिरूप सुन्दरी के आभूषण हैं। श्रीरामजी ने कहा—भाइयो, चन्द्रमा में यह श्यामता क्यों है ? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इसका कारण कहो।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराया * शशि महँ प्रकट भूमि की छाया
मारेहु राहु शशिहि कह कोई * उर महँ परी श्यामता सोई

तब सुग्रीव ने कहा—हे रघुनाथ, चन्द्रमा में यह भूमि की छाया प्रकट देख पड़ती है। किसी ने कहा कि राहु ने चन्द्रमा को मारा है, यह उसी की श्यामता इसके हृदय में पड़ी है।

कोउ कह जब विधि रतिमुख कीन्हा * सार भाग शशि कर हरि लीन्हा
छिद्र सो प्रकट इन्दु उर माहीं * तेहि मग देखियत नभ परछाहीं

किसी ने कहा, जब ब्रह्मा ने कामदेव की स्त्री रति का मुख बनाया था, तब चन्द्रमा के भीतर का सारांश हर लिया था। चन्द्रमा के हृदय में यह वही छिद्र है, और उसी के बीच से यह आकाश की श्यामता देख पड़ती है।

कह प्रभु गरल बन्धु शशि केरा * अतिप्रिय निज उर दीन्ह बसेरा
विष संयुत कर निकर पसारी * जारत विरहवन्त नर नारी

श्रीरामजी ने कहा—विष चन्द्रमा का भाई है। इसने उस बड़े प्यारे भाई को हृदय में बसाया है, इसलिए यह विष से युक्त किरणें फैलाकर वियोगी स्त्री-पुरुषों को जलाता है।



कह मारुतसुत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रियदास।
तव मूरति तेहि उर बसत, सोइ श्यामता भास॥

पवननन्दन हनुमानजी ने कहा—हे प्रभु! सुनिए। चन्द्रमा आपका प्यारा दास है, इससे तुम्हारी मूर्ति उसके हृदय में बसती है, यह वही श्यामता देख पड़ती है।

पवनतनय के वचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिण दिशा विलोकि पुनि, बोले कृपानिधान॥

पवनकुमार के वचन सुन सुजान रामजी हँसे। फिर दक्षिण ओर देख दयानिधान बोले—

देखु विभीषण दक्षिण आसा * घन घमण्ड दामिनी विलासा
मधुर मधुर गर्जत घन घोरा * होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा

हे विभीषण, देखो, दक्षिण दिशा में मेघ उठे हैं और बिजली चमकती है। भयंकर मेघ मीठे-मीठे स्वर से गर्जते हैं, जैसे कठोर पत्थरों की वर्षा हो रही है।

कहत विभीषण सुनहु कृपाला * होइ न तड़ित न वारिदमाला
लंका शिखर रुचिर आगारा * तहँ दशकन्धर केर अखारा

विभीषण कहने लगे—हे दयालु रघुनाथ, यह न बिजली है और न मेघों की पाँति; किन्तु लंका के शिखर का सुन्दर मन्दिर है, जहाँ रावण का अखाड़ा (सभा) है।

छत्र मेघ डम्बर शिर धारी * सो जनु जलदघटा अतिकारी
मन्दोदरी श्रवण ताटङ्का * सोइ प्रभु जनु दामिनीदमङ्का

वह मेघों के समान घिरा हुआ छत्र माथे पर रक्खे हैं। वही मानो बहुत श्याम मेघों की घटा है। मन्दोदरी के कान में जो कर्णफूल हैं, हे प्रभु, वही बिजली के समान चमकते हैं।

बाजहिं ताल मृदङ्ग अनूपा * सोइ रवसरिस सुनहु सुरभूपा
प्रभु मुसुकाने समुझि अभिमाना * चाप चढ़ाय बाण सन्धाना

हे सुरराज रामजी, जो अनुपम ताल और मृदङ्ग बजते हैं, वही मेघों के शब्द जान पड़ते हैं। रावण का ऐसा अहंकार सुनकर रामजी मुस्कराये और धनुष चढ़ाकर उसमें बाण लगाया।



छत्र मुकुट ताटंक सब, हते एकही बान।
सबके देखत महि गिरे, मर्म न काहू जान॥

रावण के छत्र, मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल—इन सबको रामजी ने सबके देखते ही एक बाण से काट डाला और पृथ्वी पर गिर पड़े। परन्तु यह वृत्तान्त किसी ने नहीं जान पाया।

यह कौतुक करि रामशर, प्रविश्यो आइ निषङ्ग।
रावण सभा सशंक सब, देखि महारस भङ्ग॥

यह खेल कर रामजी का बाण आकर तरकस में पैठ गया। उधर रावण की सभा बड़ा रसभंग देख डर गई।

कम्प न भूमि न मरुत विशेखा * अस्त्र शस्त्र कोउ नयन न देखा
सोचहिं सब निजहृदय विचारी * अशकुन भयउ भयंकर भारी

न पृथ्वी काँपी और न आँधी चली, किसी ने अस्त्र-शस्त्र भी नहीं देखे। सब राक्षस मन में विचारकर सोचते हैं कि यह बड़ा भयंकर असगुन हुआ।

रावण देखि सभा भय पाई * विहँसि वचन कह उक्ति बनाई
शिरहु गिरे सन्तत शुभ जाही * मुकुट गिरे कस अशकुन ताही

रावण ने देखा कि सभा डर गई, तो हँसकर उक्ति बनाकर बोला—जिसके मस्तक गिरने से भी शुभ होता है, उसके मुकुट गिरने से असगुन कैसा?

शयन करहु निजनिज गृह जाई * गवने भवन सकल शिरनाई
मन्दोदरी शोच उर बसेऊ * जबते श्रवणफूल महि खसेऊ

अपने-अपने घर जाकर शयन करो। यह सुन सब माथा नवाकर घर गये। जब से कर्णफूल पृथ्वी में गिरे, तब से मन्दोदरी के हृदय में शोच बस गया।

सजल नयन कह युग कर जोरी * सुनहु प्राणपति बिनती मोरी
राम विरोध कन्त परिहरहू * जानि मनुज जनि हठ उर धरहू

वह आँखों में आँसू भर हाथ जोड़कर कहने लगी—हे प्राणपति, मेरी विनती सुनो। हे स्वामी, रामजी से वैर छोड़ो। उन्हें मनुष्य जानकर हृदय में हठ मत धरो।

विश्वरूप रघुवंशमणि, करहु वचन विश्वासु।
लोक कल्पना वेद कह, अङ्ग अङ्ग प्रति जासु॥

रघुवंशमणि रामजी विश्वरूप भगवान् हैं। मेरे वचन का विश्वास कीजिए। उनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना की जाती है, यह वेद कहते हैं।

पद पाताल शीश अज धामा * अपर लोक अङ्गन विश्रामा
भृकुटि विलास भयंकर काला * नयन दिवाकर कचघनमाला

जिनके चरण में पाताल, माथे में ब्रह्मलोक और अंगों में अन्य लोक टिके हैं ; जिनके भौंहों का विलास भयानक काल है, सूर्य नेत्र, मेघ केश,

जासु घ्राण अश्विनीकुमारा * निशि अरु दिवस निमेष अपारा
श्रवण दिशा दश वेद बखानी * मारुत श्वास निगम निज बानी

अश्विनीकुमार नासिका, पलकें भाँजना रात और दिन, दसों दिशाएँ कान, पवन श्वास, वेद वाणी,

अधर लोभ यम दशन कराला * माया हास बाहु दिकपाला
आनन अनल अम्बुपति जीहा * उतपति पालन प्रलय समीहा

लोभ ओठ, यम दाँत, माया हँसना, दिक्पाल भुजाएँ, अग्नि मुख, वरुण जिह्वा, सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और प्रलय उद्यम,

रोमावली अष्टदश भारा * अस्थि शैल सरिता नस जारा
उदर उदधि अधगोकुयातना * जगमय प्रभु की बहुत कल्पना

अठारह भार वनस्पति रोएँ, पर्वत हड्डी, नदियाँ नसें, समुद्र पेट, नरक गुदा, संसारी कार्य संकल्प-विकल्प,

अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान।
मनुजवास चरअचरमय, रूपराशि भगवान॥

शिव अहङ्कार, ब्रह्मा बुद्धि, चन्द्रमा मन और महत्तत्त्व चित्त है तथा मनुष्य आदि में जिनका वास है, वही भगवान् चराचर के रूपराशि हैं।

अस विचारि सुनु प्राणपति, प्रभुसन वैर विहाय।
प्रीति करहु रघुवीर पद, मम अहिवात न जाय॥

हे प्राणपति, ऐसा विचार राम से वैर छोड़ो और उनके चरणों में प्रेम करो, जिसमें मेरा सुहाग न जाय।

विहँसा नारिवचन सुनि काना * अहो मोह महिमा बलवाना
नारिस्वभाव सत्य कवि कहहीं * अवगुण आठ सदा उर रहहीं

स्त्री के वचन सुन रावण हँसा और बोला—अहो, बड़े आश्चर्य की बात है। मोह की महिमा बलवान् है। कवियों ने स्त्रियों का स्वभाव सत्य कहा है कि आठ अवगुण सदा हृदय में रहते हैं।

साहस अनृत चपलता माया * भय अविवेक अशौच अदाया
रिपुकर रूप सकल तैं गावा * अति विशाल भय मोहिं सुनावा

बिना विचारे काम करना, झूठ, चंचलता, कपट, डर, अज्ञान, अपवित्रता और दया का अभाव, ये आठ अवगुण हैं, तूने शत्रु का रूप गाया और मुझे बड़ा भारी डर सुनाया।

सो सब प्रिया सहज वश मोरे * समुझि परा प्रभाव अब तोरे
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई * यहि मिसु कहेउ मोरि प्रभुताई

प्यारी, ये सब सहज ही मेरे वश में हैं, अब यह प्रभाव तुझे समझ पड़ा। अहो प्यारी, मैंने तेरी चतुरता जान ली कि इसी बहाने तूने मेरा ऐश्वर्य कहा।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि * समुझत सुखद सुनत भयमोचनि
मन्दोदरि मनमहँ अस ठयऊ * पियहि कालवश मतिभ्रम भयऊ

हे मृगनयनी, तेरी बातें गूढ़ हैं, जो समझने में सुख देतीं और सुनने में भय छुड़ाती हैं। तब मन्दोदरी ने मन में ऐसा समझा कि काल के वश होने से उसके पति की बुद्धि फिर गई है।



बहुविधि जल्पेसि सकल निशि, प्रात भये दशकन्ध।
सहज अशंक सो लंकपति, सभा गयो मदअन्ध॥

सारी रात बहुत प्रकार बकवास कर सवेरा होने पर सहज ही निडर लंकापति मदान्ध रावण सभा में गया।



फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा वर्षहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम॥

मेघ अमृत भी बरसें, परन्तु बेत फूल-फल नहीं सकता। ऐसे ही यदि ब्रह्मा के समान गुरु मिले तो भी मूर्ख के शून्य हृदय में ज्ञान नहीं होता।

इहाँ प्रात जागे रघुराई * पूछा मत सब सचिव बुलाई
कहहु बेगि का करिय उपाई * जाम्बवन्त कह पद शिरनाई

यहाँ प्रातःकाल रघुनाथजी जागे और सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र कहो, क्या यत्न किया जाय? तब चरणों में सिर नवाकर जाम्बवान् ने कहा—

सुनु सर्वज्ञ सकल उरबासी * सर्वरूप सब रहित उदासी
मन्त्र कहउँ निजमति अनुसारा * दूत पठाइय बालिकुमारा

हे सर्वज्ञ, सबके हृदय में बसनेवाले, सर्वरूप, सबसे रहित, शत्रु और मित्र से हीन, उदासीन रघुनाथ, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ, आप पहले बालि के पुत्र अंगद को दूत बनाकर भेजिए।

नीक मन्त्र सबके मनमाना * अंगदसन कह कृपानिधाना
बालितनय बुधिबल गुणधामा * लंका जाहु तात मम कामा

यह अच्छी सलाह सबके मन भाई। तब दयानिधान रामजी ने अंगद से कहा—हे बालिपुत्र अंगद! तुम बुद्धि, बल आदि गुणों की खान हो, इससे हे तात, मेरे काम के लिए लंका जाओ।

बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ * परम चतुर मैं जानत अहऊँ
काज हमार तासु हित होई * रिपुसन करेहु बतकही सोई

बहुत समझाकर तुमसे क्या कहूँ, मैं जानता हूँ, तुम बड़े चतुर हो। शत्रु से वही बातचीत करना, जिसमें हमारा काम और उसकी भलाई हो।

प्रभु आज्ञाधरि शीश, चरण बन्दि अंगद कहेउ।
सोइ गुणसागर ईश, राम कृपा जापर करहु॥

रामजी की आज्ञा माथे पर धर चरणों में प्रणाम करके अंगद ने कहा—हे ईश राम, वही गुणों का सागर है, जिस पर आप कृपा करें।

स्वयंसिद्ध सब काज, नाथ मोहिं आदर दयउ।
अस विचारि युवराज, तनु पुलकित हर्षितभयउ॥

हे नाथ, आपका काम तो आप ही सिद्ध है। यह तो आपने मुझे आदर दिया है। ऐसा विचारकर युवराज अंगदजी के शरीर में रोमांच हो आया और वे हर्षित हुए।

वन्दि चरण उरधरि प्रभुताई * अंगद चलेउ सबहिं शिरनाई
प्रभु प्रताप उर सहजअशंका * रणबाँकुरा बालिसुत बंका

चरणों में प्रणाम कर और हृदय में प्रभु की प्रभुता को धारण कर अंगदजी सबको माथा नवाकर चले। रामजी का प्रताप हृदय में रखकर स्वभाव ही से निडर और युद्ध में चतुर बालि के कुमार बाँके अंगदजी चले।

पुर पैठत रावण कर बेटा * खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा
बातहिं बात कर्ष बढ़िआई * युगल अतुलबल पुनि तरुणाई

नगर में पैठते ही रावण का एक पुत्र खेल रहा था, उससे अंगद की भेंट हो गई। बात ही बात में बात बढ़ गई। एक तो दोनों बड़े बलवान् थे, फिर दोनों जवान भी थे।

तेइँ अंगद कहँ लात उठाई * गहिपद पटकेउ भूमि भ्रमाई
निशिचरनिकर देखि भटभारी * जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी

उसने अंगद को मारने के लिए लात उठाई। तब पैर पकड़ घुमाकर अंगदजी ने उसे पटक दिया। भारी योद्धा अंगद को देख राक्षस जहाँ-तहाँ भाग के चले। भय के मारे एक दूसरे को पुकार भी नहीं सकते।

एक एक सन मर्म न कहहीं * समुझितासु बल चुप होइ रहहीं
भयउ कोलाहलनगर मँझारी * आवा कपि लंका जेइँ जारी

एक दूसरे से हाल नहीं कहते; किन्तु उसका बल समझकर चुप हो रहते हैं। नगर के बीच में कोलाहल मच गया कि वही वानर आ गया, जिसने लंका जलाई थी।

अबधौं कहा करिहि करतारा * अति सभीत सब करहिं विचारा
बिनु पूछे मगु देहिं बताई * जेहिं बिलोक सोइ जाइ सुखाई

विधाता अब क्या करेगा? बहुत डरे हुए सब यही विचार कर रहे हैं। बिना पूछे ही मार्ग बतला देते हैं और जिसे अंगद देखते हैं, वह सूख जाता है।


गयो सभा दरबार रिपु, सुमिरि रामपदकंज।
सिंह ठवनि इत उत चितै धीर वीर बलपुंज॥

रामजी के चरणकमलों का स्मरण कर अंगदजी शत्रु के समाज में गये और धीर, वीर और बल की राशि अंगदजी सिंह की भाँति इधर-उधर देखने लगे।

तुरत निशाचर एक पठावा * समाचार रावणहिं सुनावा
सुनत वचन बोलेउ दशशीशा * आनहु बोलि कहाँकर कीशा

तुरन्त ही एक राक्षस को भेजा, जिसने रावण को जनाया। सुनते ही दशशीश रावण बोला—बुला लाओ, कहाँ का वानर है?

आयसु पाइ दूत बहु धाये * कपिकुंजरहिं बोलि लै आये
अंगद दीख दशानन वैसा * सहित प्राण कज्जलगिरि जैसा

आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े, और वानरश्रेष्ठ अंगदजी को बुला ले गये; अंगद ने देखा, रावण बैसा ही है, जैसा सजीव काजल का पहाड़।

भुजा विटपशिर शृंग समाना * रोमावली लता तरु नाना
मुख नासिका नयन अरुकाना * गिरि कन्दरा खोह अनुमाना

भुजाएँ शाखा-सी, मस्तक पर्वत के शिखर के समान, रोमावली मानो अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ हैं। मुख, नाक, आँखें और कान पर्वतों की कन्दराओं और खोहों के समान हैं।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा * बालितनय अति बलबाँकुरा

उठी सभा सब कपि कहँ देखी * रावण उर भा क्रोध विशेखी

बालि के पुत्र बड़े बलवान् और बाँके अंगद सभा में गये, मन में कुछ भय न माना। अंगदजी को देखकर सब सभा उठ पड़ी। तब रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ।



यथा मत्तगजयूथ महँ, पञ्चानन चलि जाय।
राम प्रताप सँभारि उर, बैठ सबहिं शिरनाय॥

जैसे मतवाले हाथियों के झुण्ड में सिंह जाय, वैसे ही रामजी का प्रताप हृदय में रखकर अंगद गये और सबको सिर नवाकर बैठे।

कह दशकन्ध कवन तैं बन्दर * मैं रघुबीर दूत दशकन्धर
मम जनकहिं तोहिं रही मिताई * तव हित कारण आयउँ भाई

रावण ने कहा—हे वानर, तू कौन है? अंगद बोले—हे रावण, मैं रघुनाथजी का दूत हूँ। भाई, मेरे पिता से तुम्हारी मित्रता थी, इसी से तुम्हारी भलाई के लिए आया हूँ।

उत्तमकुल पुलस्त्य कर नाती * शिव विरञ्चि पूजेउ बहुभाँती
वर पायउ कीन्हेउ सब काजा * जीतेउ लोकपाल सुरराजा

तुम्हारा वंश उत्तम है। तुम पुलस्त्य के नाती हो, और शिव व ब्रह्मा की तुमने बहुत प्रकार से आराधना की है। वर पाकर तुमने सब काम किये और इन्द्र आदि लोकपालों को जीता।

नृप अभिमान मोहवश किम्बा * हरि आनेहु सीता जगदम्बा
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा * सब अपराध क्षमहिं प्रभु तोरा

हे राजन्, अहंकार या अज्ञान से जो तुम संसार की माता जानकीजी को हर लाये हो, यह अच्छा नहीं किया। अब तुम मेरा उत्तम कहना करो तो प्रभु तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

दशन गहहु तृण कण्ठ कुठारी * पुरजन सङ्ग सहित निजनारी
सादर जनकसुता करि आगे * इहिविधि चलहु सकल भय त्यागे

दाँतों में तृण दाबकर गले में कुल्हाड़ी बाँधो, फिर अपनी स्त्री और पुरवासियों समेत आदर से जानकीजी को आगे करके, सब डर छोड़कर, चलो और कहो—



प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं।
सुनतहि आरतवचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं॥

हे शरणागतपालक, रघुवंशमणि! अब मेरी रक्षा कीजिए—रक्षा कीजिए। ये आर्त वचन सुन प्रभु तुझे अभय कर देंगे।

रे कपि पोच न बोलु सँभारी * मूढ़ न जानसि मोहिं सुरारी
कहु निजनाम जनक कर भाई * केहि नाते मानिये मिताई

रावण बोला—रे नीच वानर ! सँभालकर नहीं बोलता । मूढ़ ! क्या तू नहीं जानता कि मैं देवतों का शत्रु हूँ ? भाई, अपना और अपने पिता का नाम कह और बता कि किस नाते से मैं मित्रता मानूँ ।

अङ्गद नाम बालिकर बेटा * तोसों कबहुँ भई होइ भेटा
अङ्गद वचन सुनत सकुचाना * रहा बालि वानर मैं जाना

अंगद बोले—मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ । उससे और तुझसे कभी भेंट हुई होगी । अंगद के वचन सुनते ही रावण सकुचा गया और बोला—बालि वानर था; मैं उसे जानता हूँ ।

अङ्गद तुही बालिकर बालक * उपजेउवंशअनल कुलघालक
गर्भ न खसेउ वृथा तुम जाये * निज मुख तापस दूत कहाये

अङ्गद, क्या तू ही बालि का पुत्र है, जो वंश का नाश करने के लिए बाँस में अग्नि की भाँति उपजा । गर्भ नहीं गिर गया था तू वृथा ही पैदा हुआ ; क्योंकि अपने ही मुँह तपस्वियों का दूत कहलाया ।

अब कहुकुशलबालि कहँ अहई * बिहँसिवचनअङ्गदअस कहई
दिन दश गये बालि पहँ जाई * पूछेहु कुशल सखा उर लाई

अब कुशल तो कह, बालि कहाँ है ? तब हँसकर अंगद बोले कि दस दिन बीते बालि के पास जा मित्र को हृदय में लगाकर उसकी कुशल पूछना ।

रामविरोध कुशल जस होई * सो सब तुमहिं सुनाइहि सोई
सुनु शठ भेद होइ मन ताके * श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके

रामजी के वैर से जैसी कुशल होती है, सो सब तुम्हें बालि सुनावेगा । (कदाचित् बालि की प्रशंसा और अंगद की निन्दा कर रावण के उन्हें अपनी ओर मिलाने की चेष्टा पर) अंगद बोले—रे मूर्ख ! उसी के मन में भेद हो सकता है, जिसके हृदय में रामजी न हों ।



हम कुलघालक सत्य तुम, कुलपालक दशशीश ।
अन्धहु बधिर न कहहिं अस, श्रवण नयन तव बीश ॥

हे रावण ! निस्सन्देह, मैं कुलघालक और तुम कुलपालक हो । अरे, ऐसा तो अन्धे और बहरे भी न कहेंगे ; फिर तुम्हारे तो बीस आँखें और बीस कान हैं ।

शिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई * चाहत जासु चरण सेवकाई
तासु दूत होइ हम कुल बोरा * ऐसी मति उर बिहरु न तोरा

शिव ब्रह्मा आदि देवता और मुनि जिनके चरणों की सेवा चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबोया ! यदि तेरी ऐसी समझ है तो तेरा हृदय क्यों नहीं फट जाता ?

सुनि कठोर वाणी कपिकेरी * कहत दशानन नयन तरेरी

खल तव वचन कठिन कै सहऊँ * नीति धर्म सब जानत अहऊँ

अंगद की कठोर वाणी सुन रावण आँखें तरेर कर बोला—रे दुष्ट! तेरे कठोर वचन इसलिए सहता हूँ कि नीति और धर्म सब जानता हूँ।

कह कपि धर्मशीलता तोरी * हमहुँ सुनी कृतपरतिय चोरी
देखेउँ नयन दूत रखवारी * बूड़ि न मरेहु धर्म व्रतधारी

अंगद ने कहा—तुम्हारा धर्म में प्रेम तो मैंने भी सुना है कि तुम पराई स्त्रियाँ चुराते हो दूत की रक्षा भी मैंने आँखों देख ली*! ऐसे धर्म के नियम पालनेवाले तुम डूब क्यों नहीं मरते

नाक कान बिन भगिनि निहारी * क्षमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी
धर्मशीलता तव जग जागी * पावा दरश हमहुँ बड़भागी

तुमने बिना नाक-कानों की अपनी बहन को देख धर्म विचारकर ही शायद क्षमा कर दिया। तुम्हारी धर्मशीलता संसार जानता है। मैंने भी दर्शन पाया, इससे बड़ा भाग्यवान् हूँ।

जनि जल्पसि जड़जन्तु कपि, शठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु॥

रावण बोला—रे जड़ मूर्ख! बकबक मत कर। लोकपालों के बलरूप चन्द्रमा को ग्रसनेवाले राहु के समान मेरी भुजाएँ देख।

पुनि नभसर मम करनिकर, करकमलन पर बास।
शोभित भयो मराल इव, शम्भु सहित कैलास॥

जानता है, आकाशरूप तालाब में मेरे करकमलों पर कैलाससमेत शिवजी हंस की नाईं सुशोभित हुए।

तुम्हरे कटकमाहिं सुनु अंगद * मोसन भिरहि कौन योधा बद
तव प्रभु नारिविरह बलहीना * अनुज तासुदुखदुखित मलीना

हे अंगद! तेरी सेना में मुझसे कौन योद्धा लड़ेगा? कह। तेरे स्वामी स्त्री के वियोग से बलहीन हैं। उनके छोटे भाई भी उनके दुःख से दुखी और उदास हैं।

तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ * बन्धु हमार भीरु अति सोऊ
जाम्बवन्त मंत्री अति बूढ़ा * सो किमि होइ समर आरूढ़ा

तुम और सुग्रीव दोनों वैतरणी नदी के किनारे के वृक्ष हो (परस्पर राज्यप्राप्ति की इच्छा रखते हो) और हमारा भाई भी बड़ा डरपोक है। जाम्बवान मन्त्री बहुत बूढ़ा है। वह कैसे युद्ध करेगा?

शिल्पकर्म जानत नल नीला * है कपि एक महा बलशीला

* इसमें कुबेर की आज्ञा से रावण को समझाने के लिए आये हुए दूत को मार डालने पर कटाक्ष है।

आवा प्रथम नगर जेइँ जारा ❀ सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा

शिल्पकर्म करनेवाले नल और नील लड़ना क्या जानें ? हाँ, एक वानर वास्तव में बड़ा बली है, जिसने पहले आकर लंका जलाई थी। यह सुन हँसकर अंगदजी बोले—

सत्य वचन कह निशिचरनाहा ❀ साँचहु कीश कीन्ह पुरदाहा
रावण नगर अल्प कपि दहई ❀ को अस झूठ कहै को सुनई

हे राक्षसराज ! सच कहते हो ? क्या वानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जलाया था ? 'रावण का नगर एक छोटे से वानर ने जला दिया' कौन ऐसा झूठ कहेगा और कौन सुनेगा।

जो अति सुभट सराहेहु रावन ❀ सो सुग्रीव केर लघु धावन
चलै बहुत सो वीर न होई ❀ पठवा खबरि लेन हम सोई

हे रावण ! तूने जिसे बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा-सा दूत है। जो बहुत चले वह वीर नहीं। हमने तो उसे खबर लेने के लिए भेजा था।



अब जाना पुर दहेउ कपि, बिन प्रभु आयसु पाइ।
गयउ न फिरि निज नाथ पहँ, तेहि भय रहेउ लुकाइ॥

मैंने अब जाना कि बिना रामजी की आज्ञा पाये उस वानर ने नगर जलाया। शायद उसी डर से वह कहीं छिप रहा, अपने स्वामी के पास नहीं गया।

सत्य कहसि दशकण्ठ तैं, मोहिं न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमरे कटक अस, तुम सन लरत जो सोह॥

हे दशानन ! तू सत्य ही कहता है, इसे सुन मुझे कुछ भी क्रोध नहीं आता। मेरी सेना में ऐसा कोई नहीं, जो तुमसे युद्ध करते शोभा पावे।

प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति असआहि।
जो मृगपति वध मेंढकहिं, भलो कहै को ताहि॥

नीति है कि मित्रता और वैर समान से करे। यदि सिंह मेंढक को मार डाले तो उसे कौन भला कहेगा ?

यद्यपि लघुता राम कहँ, तोहिं वधे बड़ दोष।
तदपि कठिन दशकण्ठ सुनु, क्षत्रि जाति कर रोष॥

यद्यपि रामजी की इसमें बहुत छोटाई है, और तुझे मारने में बड़ा दोष है, तो भी हे रावण, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है।

वक्र उक्ति धनु वचन शर, हृदय दहेउ रिपु कीश।
प्रतिउत्तर सँडसी मनहुँ, काढ़त भट दशशीश॥

अंगद की टेढ़ी बात ही धनुष थी, उससे छूटे हुए वचनरूप बाणों ने रावण के

घायल हृदय में जलन पैदा कर दी। वीर रावण मृत्युस्वरूप सँडसियों से मानो उन बाणों को निकालता जाता है।

हँसि बोलेउ दशमौलि तब, कपिकर बड़ गुण एक।
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक॥

हँसकर रावण बोला—हाँ, वानर में यही एक बड़ा गुण होता है कि जो उसे पाले उसके लिए वह अनेक उपाय करता है।

धन्य कीश जो निज प्रभुकाजा * जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा
नाचि कूदिकरि लोग रिझाई * पतिहित करत कर्म निपुणाई

वानर धन्य हैं, जो अपने स्वामी के काम के लिए लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचते हैं। नाच-कूदकर लोगों को रिझाते और स्वामी के लिए चतुरता के काम करते हैं।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती * प्रभुगुण कस न कहसि इहि भाँती
मैं गुणगाहक परम सुजाना * तव कटुवचन करौं नहिं काना

हे अंगद! तुम्हारी जाति ही स्वामिभक्त होती है। फिर तुम स्वामी के गुण इस प्रकार क्यों न कहो? परन्तु मैं तो बड़ा चतुर और गुणग्राहक हूँ। तुम्हारे कड़ुए वचनों पर ध्यान नहीं देता।

कह कपि तव गुणगाहकताई * सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई
वन विध्वंसि सुत वधि पुरजारा * तदपि न तेइँ कृत कछु अपकारा

अंगद ने कहा—तुम्हारी गुणग्राहकता तो हनुमान् ने मुझे सत्य ही सुनाई थी कि उन्होंने तुम्हारा बाग उजाड़ा और पुत्र को मारकर तुम्हारा नगर जलाया, परन्तु तो भी तुमने उनका कुछ अपकार नहीं किया।

सोइ विचारि तव प्रकृति सुहाई * दशकन्धर मैं कीन्ह ढिठाई
देखेउँ आइ जो कछु कपिभाखा * तुम्हरे लाज न रोष न माखा

यही तुम्हारा अच्छा स्वभाव विचारकर हे रावण, मैंने ढिठाई की। जो कुछ महावीर हनुमान् ने कहा था, वह सब मैंने आकर देखा कि तुम्हारे लाज, क्रोध और अहङ्कार कुछ भी नहीं है।

जो असिमतिपितु खायहु कीशा * कहि असवचन हँसा दशशीशा
पितहि खाइ खातेउँ अब तोहीं * अबहीं समुझिपरा कछु मोहीं

रावण बोला—हे वानर, ऐसी बुद्धि थी, तभी तो तुमने अपने पिता को खा लिया। ऐसा कह रावण हँसने लगा। अंगद बोले—पिता को खाकर अब मैं तुझे खाता; परन्तु मुझे कुछ अभी समझ पड़ा।

बालि विमल यशभाजन जानी * हतौं न तोहिं अधम अभिमानी
सुनु रावण रावण जग केते * मैं निज श्रवण सुने सुनु तेते

यह यह कि हे अधम अभिमानी ! बालि के निर्मल यश का पात्र जान मैं तुझे नहीं मारता। मतलब यह कि तेरे मरने से मेरे पिता की जीत की निशानी मिट जायगी। हे रावण, संसार में कितने ही रावण मैंने कानों से सुने हैं, उन्हें सुन।

बलि जीतन यक गयउ पताला * राखा बाँधि शिशुन हयशाला
खेलहिं बालक मारहिं जाई * दया लागि बलि दीन छुड़ाई

एक बलि को जीतने पाताल गया था ; उसे लड़कों ने घुड़साल में बाँध रक्खा था। बालक खेलते हुए जाकर उसे मारते थे ; यह देख बलि को दया लगी, तो उसे छुड़ा दिया।

एक बहोरि सहसभुज देखा * धाइ धरा जलजन्तु विशेखा
कौतुक लागि भवन लै आवा * सो पुलस्त्य मुनि जाइ छुड़ावा

फिर एक रावण देखा, जिसे सहस्रबाहु ने कोई जल का जीव जान दौड़कर पकड़ा और कौतुक (तमाशे) के लिए अपने घर ले गया ; उसे पुलस्त्य मुनि ने जाकर छुड़ाया था।


एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालि की काँख।
तिन महँ रावण कवन तैं, सत्य कहहु तजि माख ॥

एक रावण को कहते मुझे बड़ा संकोच लगता है ; क्योंकि वह (मेरे ही पिता) बालि की काँख में दबा रहा था। इन सबमें से तू कौन रावण है ? अभिमान छोड़कर सत्य कह।

सुनु शठ सोइ रावण बलशीला * हरगिरि जानु जासु भुजलीला
जानु उमापति जासु शुराई * पूजे जेहि शिरसुमन चढ़ाई

रावण बोला—मूर्ख ! जान ले, मैं वही रावण हूँ, जिसकी भुजाओं का खेल (गेंद-सा) कैलास पर्वत है। जिसकी शूरता पार्वती-पति शिवजी जानते हैं, जिन्हें मैंने मस्तकरूप पुष्प चढ़ाकर पूजा है।

शिरसरोज निज करन उतारी * पूजे अमित बार त्रिपुरारी
भुजविक्रम जानहिं दिक्पाला * शठ अजहूँ जिनके उरशाला

मैंने अपने ही हाथ से अपने मस्तकरूप कमल उतारकर बहुत बार शिवजी की पूजा की है। मूर्ख ! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में आज भी वह खटकता है।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई * जब जब जाइ भिरेउँ बरिआई
जिनके दशन कराल न फूटे * उर लागत मूलक इव टूटे

दिशाओं के हाथी मेरे हृदय की कठोरता जानते हैं ; क्योंकि जब-जब मैं जाकर उनसे जबरदस्ती भिड़ा हूँ, तब-तब उनके दाँत मेरे हृदय में लगते ही मूली की भाँति टूट गये, और वे मेरे हृदय में न चुभ सके।

जासु चलत डोलत इमि धरणी * चढ़त मत्तगज जिमि लघुतरणी

सोइ रावण जगविदितप्रतापी * सुने न श्रवण अलीकप्रलापी

जिसके चलते समय पृथ्वी ऐसे हिलती है, जैसे मतवाले हाथी के चढ़ने से छोटी नाव। हे झूठ बोलनेवाले अंगद, संसार में प्रसिद्ध मैं वही प्रतापी रावण हूँ; क्या तूने नहीं सुना?



तेहि रावण कहँ लघु कहसि, नरकर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ज्ञान॥

तू उस रावण को छोटा कहता और मनुष्य का बखान करता है? रे बकवादी दुष्ट वानर! मैंने अब तेरा ज्ञान जान लिया।

सुनि अङ्गद सकोप कह बानी * बोलु सँभारि अधम अभिमानी
सहसबाहु भुज गहन अपारा * दहन अनलसम जासु कुठारा

यह सुन अंगदजी क्रोधसमेत बोले—हे नीच अभिमानी रावण! सँभालकर बोल, सहस्रबाहु की भुजारूप बड़े भारी वन के जलाने में जिनका परशु अग्नि हुआ,

जासु परशु सागर खर धारा * बूड़े नृप अगणित बहु बारा
तासु गर्व जेहि देखत भागा * सो नर किमि दशकण्ठ अभागा

जिनके परशुरूप समुद्र की तेज धारा में अनगिनत राजा बहुत बार डूबे, उन परशुराम का अहंकार जिन्हें देखते ही भाग गया, हे अभागे रावण, वे रघुनाथजी मनुष्य कैसे हैं?

राम मनुज कस रे शठ बङ्गा * धन्वी काम नदी पुनि गङ्गा
पशु सुरधेनु कल्पतरु रूखा * अन्नदान पुनि रस पीयूखा

रे शठ मूर्ख, रामजी मनुष्य कैसे हैं? क्या कामदेव साधारण धनुषधारी है? गंगा क्या साधारण नदी है? कामधेनु क्या साधारण पशु है? कल्पवृक्ष क्या साधारण वृक्ष है? अन्नदान क्या साधारण दान है? अमृत क्या साधारण रस है?

वैनतेय खग अहि सहसानन * चिन्तामणि की उपल दशानन
सुनु मतिमन्द लोक वैकुण्ठा * लाभ कि रघुपति भक्ति अकुण्ठा

गरुड़ क्या साधारण पक्षी हैं? शेष क्या साधारण सर्प हैं? हे रावण, चिन्तामणि क्या साधारण पत्थर है? हे मतिमन्द, वैकुण्ठ क्या साधारण लोक है? रघुनाथ की अचल भक्ति क्या साधारण लाभ है?



सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे शठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि॥

रे शठ! सेना समेत तेरा अहंकार तोड़, वन उजाड़, नगर जला और तेरे पुत्र को मारकर जो चले गये, वे हनुमानजी क्या साधारण वानर हैं?

सुनु रावण परिहरि चतुराई * भजसि न कृपासिन्धु रघुराई

जो खल भयसि रामकर द्रोही * ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही

हे रावण! चतुरता छोड़कर सुन! दयासिन्धु रघुनाथजी को तू क्यों नहीं भजता? हे दुष्ट! यदि तू रामजी का वैरी होगा, तो तुझे ब्रह्मा और शिव भी नहीं बचा सकते।

मूढ़ मृषा जनि मारसि गाला * रामबैर होइहि अस हाला
तव शिर निकर कपिन के आगे * परिहैं धरणि रामशर लागे

हे मूढ़! झूठ ही गाल मत बजा। रामजी के वैर से तेरा ऐसा हाल होगा कि उनके बाण लगने से तेरे सिर कट-कटकर वानरों के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे।

ते तव शिर कन्दुक इव नाना * खेलहिं भालु कीश चौगाना
जबहिं समर कोपहिं रघुनायक * छूटहिं अतिकराल बहुशायक

तेरे उन अनेक मस्तकों को रीछ और वानर गेंद की नाईं चौगान (एक खेल) में खेलेंगे। जब रघुनाथ युद्ध में क्रोध करेंगे तब बड़े भयंकर बहुत-से बाण छूटेंगे—

तबकिचलहिअसगालतुम्हारा * अस विचारि भजु राम उदारा
सुनत वचन रावण परजरा * बरत अनल महँ जनु घृत परा

तब तेरी जबान क्या ऐसे चलेगी? तू यह विचारकर उदार रघुनाथजी को भज। ये वचन सुन रावण जल उठा, मानो जलती हुई आग में घी पड़ गया।



कुम्भकर्ण सम बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध शक्रारि।
मोर पराक्रम सुनेसि नहिं, जितेउँ चराचर झारि॥

रावण बोला—कुम्भकर्ण सरीखा मेरा भाई और इन्द्र को जीतनेवाला मेरा पुत्र प्रसिद्ध है। मेरा बल तूने नहीं सुना कि मैंने समस्त चराचर संसार को जीत लिया है।

शठ शाखामृग जोरि सहाई * बाँधेउ सिन्धु इहै प्रभुताई
नाँघहिं खग अनेक वारीशा * शूर न होहिं सुनहु जड़ कीशा

हे शठ! वानरों की सहायता जोड़कर समुद्र बाँध लिया, यही प्रभुता है? हे जड़ वानर! बहुत-से पक्षी समुद्र नाँघ जाते हैं; परन्तु वे शूर नहीं होते।

मम भुजसागर बलजल पूरा * जहँ बूड़े सुर नर वर शूरा
बीस पयोधि अगाध अपारा * को अस वीर जो पावहिं पारा

मेरी भुजाओं का समुद्र बलरूप जल से भरा है, जिसमें बड़े शूरवीर देवता और मनुष्य डूब गये। ऐसा कौन वीर है, जो इन अथाह गहरे बीसों समुद्रों का पार पावे?

दिक्पालन मैं नीर भरावा * भूप सुयश खल मोहि सुनावा
जो पै समर सुभट तव नाथा * पुनिपुनि कहसि जासु गुणगाथा

मैंने दिक्पालों से पानी भराया है, हे दुष्ट! तू मुझे एक साधारण राजा का यश सुनाने चला है। बार-बार जिनके गुण गाता है, वे तेरे स्वामी यदि युद्ध में उत्तम योद्धा हैं,

तौ बसीठ पठवा केहि काजा * रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा
हरगिरिमथन निरखि मम बाहू * पुनि शठ कपि निजस्वामिसराहू

तो फिर दूत किसलिए भेजा ? क्या शत्रु से प्रीति करते उन्हें लज्जा नहीं आती ? हे शठ ! कैलास को उखाड़नेवाली मेरी भुजाएँ देखकर भी तू अपने स्वामी की सराहना करता है।



शूर कवन रावण सरिस, निज कर काटे शीश।
हुतेउ अनलमहँ बार बहु, हर्षित साखि गिरीश॥

रावण-सरीखा कौन वीर है, जिसने अपने हाथों से मस्तक काट प्रसन्नता के साथ उनको कई बार अग्नि में होम दिया ? इसके साक्षी शिवजी हैं।

जरत विलोकेउँ जबहिं कपाला * विधि के लिखे अंक निजभाला
नर के कर आपन वध बाँची * हँसेउँ जानि विधिगिरा असाँची

जब सिर जलने लगे, तब मैंने अपने मस्तकों में ब्रह्मा के लिखे अक्षर देखे। मनुष्य के हाथ अपना मरना पढ़कर ब्रह्मा का वचन झूठा जान मैं हँसने लगा।

सो मन समुझि त्रास नहिं मोरे * लिखा विरंचि जरठ मति भोरे
आन वीर को शठ मम आगे * पुनिपुनि कहसि लाज परित्यागे

उसे भी समझकर मेरे मन में डर नहीं ; क्योंकि ब्रह्मा ने बुढ़ापे की भोली बुद्धि से ऐसा लिख दिया होगा। हे शठ ! दूसरा वीर कौन है, जिसका तू लाज छोड़कर बार-बार मेरे आगे बखान करता है।

कह अंगद सलज्ज जगमाहीं * रावण तोहिं समान कोउ नाहीं
लाजवन्तकर सहज स्वभाऊ * निजगुण निजमुखकहहि न काऊ

अङ्गद ने कहा—हे रावण, संसार में तेरे समान कोई लजीला नहीं है। लाजवाले का यह सहज स्वभाव होता है कि कभी अपने मुँह से अपने गुण नहीं कहता।

शिर अरु शैल कथा चितरही * ताते बार बीस तैं कही
सो भुजबल राखेउ उरघाली * जितेउ न सहसबाहु बलि बाली

मस्तक काटने और पर्वत उठाने की कथा तेरे चित्त में भरी है, इसी से तूने बीसों बार उसे कहा। भुजाओं का वह बल क्या तूने तब हृदय में छिपा रक्खा था, जब सहस्रबाहु, बलि और बालि से न जीता।

सुनु मतिमन्द देह अब पूरा * काटे शीश होइ नहिं शूरा
बाजीगर कहँ कहिय न वीरा * काटै निजकर सकल शरीरा

हे मतिमन्द ! अब तो तेरी देह पूरी और भली-चंगी है। मस्तक काटने से कोई शूर नहीं होता ; क्योंकि बाजीगरों को कोई वीर नहीं कहता, जो अपने हाथ से सारा शरीर काट डालते हैं।

दो०—जरहिं पतंग विमोहवश, भार वहहिं खरवृन्द।
ते नहिं शूर कहावहीं, समुझि देखु मतिमन्द॥

हे मतिमन्द! अज्ञान से पाँखियाँ जलती और गधे बोझ लादते हैं; परन्तु वे शूर नहीं कहाते। समझकर देख।

अबजनि बतबढ़ाव खल करई * सुनि मम वचन मान परिहरई
दशमुख मैं न बसीठी आयउ * अस विचारि रघुवीर पठायउ

हे दुष्ट! अब बातों का बढ़ाव मत कर और मेरे वचन सुनकर अभिमान छोड़ दे। हे दशमुख रावण! मैं दूतकर्म करने के लिए नहीं आया। ऐसा विचारकर रघुनाथजी ने भेजा है।

बार बार इमि कहहिं कृपाला * नहिं गजारि यश वधे शृगाला
मन महँ समुझि वचन प्रभु केरे * सहेउँ कठोर वचन शठ तेरे

दयालु रघुनाथजी बार-बार इस भाँति कहते हैं कि सियार के मारने से सिंह को सुयश नहीं होता। स्वामी रघुनाथजी के वचन समझकर हे शठ, मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं;

नाहिं तो करि मुख भंजन तोरा * लै जातेउँ सीतहिं बरजोरा
जानेउँ तव बल अधम सुरारी * सूने हरिआनी परनारी

नहीं तो तेरा यह मुख तोड़कर मैं जबरदस्ती जानकीजी को ले जाता। हे देवताओं के शत्रु नीच रावण! तेरा बल मैंने जान लिया, जो सूने समय में पराई स्त्री हर लाया है।

तैं निशिचरपति गर्व बहूता * मैं रघुपति सेवक कर दूता
जो न राम अपमानहिं डरऊँ * तोहिं देखत अस कौतुक करऊँ

हे निशाचरों के स्वामी! तेरे अभिमान बहुत है और मैं रघुनाथजी के सेवक सुग्रीव का दूत हूँ। यदि रामजी के अपमान को न डरूँ तो तेरे देखते ही ऐसा खेल करूँ—

दो०—तोहिं पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
मन्दोदरी समेत शठ, जनकसुतहिं लै जाउँ॥

हे शठ! तुझे पृथ्वी में पटक, सेना को मार, तेरा गाँव चौपट कर दूँ और मन्दोदरी समेत सीता को ले जाऊँ।

जो अस करउँ न तदपि बड़ाई * मुयहिं वधे कछु नहिं मनुसाई
कौल कामवश कृपण विमूढ़ा * अति दरिद्र अयशी अति बूढ़ा

यदि ऐसा करूँ तो भी मेरी बड़ाई नहीं; क्योंकि मरे को मारने से कुछ पुरुषार्थ नहीं होता। प्रतिज्ञा करके न देनेवाला, कामवश, सूम, मूर्ख, निर्धन, अपयशी, बहुत बूढ़ा,

सदा रोगवश सन्तत क्रोधी * रामविमुख श्रुतिसन्तविरोधी
तनुपोषक निन्दक अघखानी * जीवत शव सम चौदह प्रानी

सदा का रोगी, सदा का क्रोधी, रामजी से विमुख, वेद और सन्तों का वैरी, केवल अपने ही शरीर को पालनेवाला, निन्दा करनेवाला, पापों की खान, ये चौदह प्राणी जीते ही मुर्दे के समान हैं।

अस विचारि खल बधौं न तोहीं * अब जनि रिस उपजावसि मोहीं।
सुनि सकोप कह निशिचरनाथा * अधर दशनगहि मींजत हाथा॥

हे दुष्ट! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता। अब मेरे मन में क्रोध न उत्पन्न कर। यह सुन क्रोध-समेत रावण होठों को दाँतों से चबाता और हाथ मींजता हुआ बोला—

रे कपिपोच मरण अब चहसी * छोटे बदन बात बड़ि कहसी।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके * बुधि बल तेज प्रताप न ताके॥

रे नीच वानर! अब तू मरना चाहता है; क्योंकि छोटे मुँह से बड़ी बात कहता है। हे जड़ वानर! जिसके बल से तू कडुए वचन कहता है, उसके बुद्धि, बल, तेज और प्रताप कुछ नहीं।



अगुण अमान विचारि तेहिं, दीन्ह पिता वनवास।
सो दुख अरु युवतीविरह, पुनि निशिदिन मम त्रास॥

वे गुण और वे मान का विचारकर उसे पिता ने वनवास दिया। एक तो यह दुःख, दूसरे स्त्री का वियोग, और तीसरे रात-दिन मेरा डर लगा रहता है।

जिनके बलकर गर्व तोहिं, ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निशाचर दिवसनिशि, समुझि देखु तजि टेक॥

टेक छोड़ समझ कि जिनके बल का तुझे अभिमान है, ऐसे अनेक मनुष्यों को राक्षस दिन-रात खाते हैं।

जब तेहिं कीन्ह राम की निन्दा * क्रोधवन्त तब भयउ कपिन्दा।
हरिहर निन्दा सुनै जो काना * होय पाप गोघात समाना॥

जब उसने रघुनाथजी की निन्दा की, तब वानरों में प्रधान अंगदजी क्रुद्ध हुए; क्योंकि श्रीविष्णु और शिवजी की निन्दा जो पुरुष कानों से सुनता है, उसे गोहत्या का पाप लगता है।

कटकटाइ कपि कुंजर भारी * दोउ भुजदण्ड तमकि महि मारी।
डोलति धरणि सभासद खसे * चले भागि भय मारुत ग्रसे॥

वानरों में श्रेष्ठ अंगदजी कटकटाकर कूदे और बड़े भारी दोनों भुजदण्ड को पृथ्वी पर दे मारा। भुजाएँ पटकने से पृथ्वी हिली और सभासद लोग गिर पड़े तथा भयरूप पवन से ग्रसे हुए भाग चले।

गिरत दशानन उठा सँभारी * भूतल परे मुकुट षट चारी।
कछु निजकर लै शिरन सँभारे * कछु अंगद प्रभु पास पँवारे॥

रावण गिरता-गिरता सँभलकर उठा; परन्तु उसके दसों मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। उनमें से कुछ हाथ से उठाकर उसने माथे पर सँभाल लिये और कुछ अंगद ने प्रभु के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि भागे * दिनही लूक परन विधि लागे
की रावण करि कोप चलाये * कुलिश चारि आवत अतिधाये

मुकुटों को आते देखकर वानर भागे और मन में कहने लगे कि हे विधाता! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा, अथवा क्रोधकर रावण ने चार वज्र चलाये हैं, जो दौड़े चले आते हैं।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू * लूक न अशनि केतु नहिं राहू
ये किरीट दशकन्धर केरे * आवत बालितनय के प्रेरे

तब प्रभु ने हँसकर कहा—हृदय में डरो मत। ये न लूक हैं, न वज्र, न राहु और न केतु। ये रावण के मुकुट हैं, अंगद के भेजे आ रहे हैं।


कूदि गहे कर पवनसुत, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकरसरिस प्रकास॥

कूदकर हनुमान्जी ने उन्हें हाथों से पकड़ लिया और लाकर रामजी के पास रक्खा। यह तमाशा रीछ और वानर देखते हैं। मुकुटों में सूर्य का-सा प्रकाश है।

उहाँ कहत दशकन्ध रिसाई * धरि मारहु कपि भागि न जाई
इहिबिधि वेगि सुभट सब धावहु * खाहु भालु कपि जहँतहँ पावहु

वहाँ क्रोधकर रावण ने कहा—इस वानर को पकड़कर मारो; भागने न पावे। ऐसे ही सब योद्धा शीघ्रता से दौड़ो और रीछों-वानरों को जहाँ पाओ वहीं खा लो।

महि अकीसकरि फेरि दोहाई * जियत धरहु तापस दोउ भाई
पुनि सकोप बोलेउ युवराजा * गाल बजावत तोहिं न लाजा

पृथ्वी बिना वानरों की कर मेरी दुहाई फेरो और जीते ही दोनों भाई तपस्वियों को पकड़ लाओ। अंगदजी फिर क्रोधकर बोले—गाल बजाते तुझे लाज नहीं आती।

मरुगलकाटि निलज कुलघाती * बल बिलोकि बिदरत नहिं छाती
रे तियचोर कुमारगगामी * खलमलराशि मन्दमति कामी

रे वंशनाशक निर्लज्ज! गला काटकर मर जा। मेरा बल देखकर तेरी छाती नहीं फटती। रे स्त्रियों के चुरानेवाले, कुमार्गगामी, दुष्ट, पापराशि, मन्दमति, कामी,

सन्निपात जल्पसि दुर्बादा * भयसि कालवश शठ मनुजादा
याको फल पावहु गे आगे * बानर भालु चपेटन लागे

मनुष्यों को खानेवाले, शठ, रावण, तू सन्निपात के कारण दुर्वचन कहता है। अब काल सिर पर सवार है। इसका फल आगे पावेगा-जब वानरों और रीछों के चपेटे लगेंगे।

राम मनुज बोलत अस बानी * गिरहिं न तवरसना अभिमानी
गिरिहैं रसना संशय नाहीं * शिरन समेत समरमहि माहीं

हे अभिमानी! 'रामजी मनुष्य हैं' ऐसा कहते तेरी जीभ नहीं गिर पड़ती। तुझे इसका फल अवश्य मिलेगा: युद्धभूमि में मस्तकों-समेत जीभें गिरेंगी, इसमें सन्देह नहीं।



सो नर क्यों दशकन्ध, बालि वधेउ जेहि एकशर।
बीसहु लोचन अन्ध, धिक्तवजन्मकुजातिजड़॥

हे रावण! क्या वे मनुष्य हैं, जिन्होंने एक ही बाण से बालि को मार डाला? हे कुजाति जड़! तू बीसों आँखों से अन्धा है। तेरे जन्म को धिक्कार है।

तव शोणित की प्यास, तृषित रामशायक निकर।
तजेउँ तोहिं तेहि त्रास, कटुजल्पसिनिशिचरअधम॥

हे नीच निशाचर! रामजी के प्यासे बाणों को तेरे रक्त की प्यास है, केवल इसी आशा से मैं तुझे छोड़ता हूँ। तू बड़े कडुवे वचन कहता है।

मैं तव दशन तोरिबे लायक * आयसु पै न दीन्ह रघुनायक
अस रिस होत दशौ मुख तोरौं * लङ्का गहि समुद्र महँ बोरौं

मैं तेरे दाँत तोड़ सकता हूँ; परन्तु रघुनाथजी ने आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध होता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और लंका को उठाकर समुद्र में डुबा दूँ।

गूलरफलसमान तव लंका * बसहिं मध्य जनु जन्तु अशंका
मैं बानर फल खात न बारा * आयसु दीन्ह न राम उदारा

तेरी लंका गूलर के फल के समान है, जिसमें निडर राक्षस भुनगों की भाँति बसते हैं। मैं बानर हूँ, फल खाते देर न लगती; परन्तु उदार रामजी ने आज्ञा नहीं दी।

उक्ति सुनत रावण मुसुकाई * मूढ़ सिखेसि कहँ बहुत झुठाई
बालि कबहुँ अस गाल न मारा * मिलि तपसिन तैं भयसि लबारा

यह उक्ति सुन रावण हँसा और बोला—मूर्ख! तूने बहुत झुठाई कहाँ से सीखी? बालि ने कभी ऐसा गाल नहीं बजाया? परन्तु तू तपस्वियों में मिलकर लबार हो गया।

साँचहु मैं लबार भुजबीहा * जो न उपारौं तव दश जीहा
राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा * सभा माँझ प्रण करि पद रोपा

अंगद बोले—हे बीस भुजाओंवाले रावण! यदि युद्ध में तेरी दसों जीभें न उखाड़ दूँ तो सचमुच लबार हूँ। रामजी का प्रताप यादकर अंगदजी ने क्रोध किया और प्रतिज्ञा कर सभा में पाँव रोप दिया।

जो मम चरण सकसि शठ टारी * फिरहिं राम सीता मैं हारी

सुनहु सुभट सब कह दशशीशा * पद गहि धरणि पछारहु कीशा

मैं और कहा—अरे शठ, सुन, मेरा पैर यदि तू टाल सकेगा तो रामजी लौट जायँगे और जानकीजी को हार जाऊँगा। रावण बोला—योद्धाओ, पैर पकड़कर इस वानर को भूमि में पटक दो।

इन्द्रजीत आदिक बलवाना * हर्षि उठे जहँ तहँ भटनाना

झपटहिं करि बल विपुल उपाई * पद न टरै बैठहिं शिरनाई

मेघनाद आदि अनेक बलवान् योद्धा प्रसन्न होकर जहाँ-तहाँ उठे। बहुत बल और उपाय कर सब झपटते हैं; परन्तु जब पैर नहीं टलता, तब सिर झुकाकर बैठ जाते हैं।

पुनि उठि झपटहिं सुरआराती * टरै न कीश चरण इहि भाँती

पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी * मोहविटप नहिं सकहिं उपारी

हे गरुड़जी, देवशत्रु राक्षस फिर उठकर झपटते हैं; परन्तु अंगदजी का पैर वैसे ही नहीं टलता, जैसे पाखण्डी लोग मोह का वृक्ष नहीं उखाड़ सकते।



भूमि न छाँड़हि कपिचरण, देखत रिपुमद भाग।
कोटि विघ्न जिमि सन्तकहँ, तदपि नीति नहिं त्याग॥

अंगद का पैर भूमि नहीं छोड़ता, यह देख शत्रु का बल का नशा—घमंड भाग गया। सबके टाले पैर वैसे ही नहीं टलता, भूमि को नहीं छोड़ता, जैसे सन्त करोड़ों विघ्न होने पर भी नीति को नहीं छोड़ते।

कपिबल देखि सकल हियहारे * उठा आप कपि के परचारे

गहत चरण कह बालिकुमारा * मम पद गहे न तोर उबारा

अंगदजी का बल देख सब राक्षस हृदय में हार गये। तब अंगदजी के ललकारने से रावण स्वयं उठा। चरण पकड़ते ही वालि के पुत्र ने कहा—मेरे चरण पकड़ने से तेरा उबार न होगा।

गहसि न रामचरण शठ जाई * सुनत फिरा मन अति सकुचाई

भयो तेजहत श्री, सब गई * मध्यदिवसजिमि शशि न सोहई

अरे शठ! जाकर रामजी के चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर रावण मन में बहुत सकुचा और लौट पड़ा। रावण का तेज नष्ट हो गया और शोभा जाती रही, जैसे दोपहर को चन्द्रमा फीका पड़ जाता है।

सिंहासन बैठा शिर नाई * मानहु सम्पति सकल गँवाई

जगदाधार प्राणपति रामा * तासु विमुख किमिलह विश्रामा

सिर झुकाकर वह सिंहासन पर बैठ गया, मानो सब सम्पदा गँवा दी। संसार के आधाररूप प्राणों के पति तो रामजी हैं; उनसे विमुख कैसे सुख-चैन पावे।

उमा राम कर भ्रुकुटि विलासा * होइ विश्व पुनि पावै नासा
तृणते कुलिश कुलिशतृणकरहीं * तासु दूतपद कहु किमि टरहीं

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रामजी की भौंहों के इशारे से यह संसार उपजता और नष्ट होता है। जो रामजी तृण से पत्थर और पत्थर से तृण कर देते हैं, उनके दूत का चरण कैसे टले।

पुनि कपि कही नीतिविधिनाना * मानत नाहिं काल नियराना
रिपुमदमथि प्रभु सुयश सुनाये * अस कहि चले बालिनृपजाये

फिर अंगदजी ने अनेक प्रकार की नीति कही, परन्तु उसे रावण ने नहीं माना; क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रु का अहंकार मथ और प्रभु का यश सुनाकर बालिकुमार अंगद ऐसा कहकर चल दिये—

अबहीं मुखका करौं बड़ाई * हतिहौं तोहिं खेलाइ खेलाई
प्रथमहिं तासु तनय कपिमारा * सो सुनि रावण भयो दुखारा
यातुधान अंगद बल देखी * भे व्याकुल अति हृदय विशेखी

कि अभी मुख से क्या बड़ाई करूँ; मैं तुझे खिला-खिलाकर मारूँगा। अंगदजी ने पहले ही रावण के पुत्र को मारा था, उसे सुन रावण दुखी हुआ। अंगद का बल देख राक्षस हृदय में बहुत घबराये।


रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, बालितनय बलपुञ्ज।
सजलनयन तन पुलक अति, गहे रामपदकञ्ज॥

शत्रु के बल की निन्दा कर हृदय में प्रसन्न हो बल की राशि बालि के पुत्र अंगदजी ने आकर रामजी के चरणकमल पकड़े। हर्ष से अंगद की आँखों में जल और शरीर में रोमांच हो आया।

साँझ जानि दशकण्ठ तब, भवन गयो बिलखाइ।
मन्दोदरी अनेक विधि, बहुरि कहा समुझाइ॥

तब सन्ध्या जान दुखी हो रावण घर गया। मन्दोदरी ने फिर अनेक प्रकार समझाया।

कन्तसमुझिमनतजहु कुमतिही * सोह न समर तुमहिं रघुपतिही
राम अनुज धनुरेख खचाई * सो नहिं लाँघेउ अस मनुसाई

हे कान्त, मन में समझकर यह कुबुद्धि छोड़ो। रघुनाथजी के साथ तुम्हारा युद्ध शोभा नहीं देता। लक्ष्मणजी ने जो धनुष से रेखा खींची थी, तुम उसको भी न नाँघ सके; ऐसी तुम्हारी मर्दानगी है?

पिय तेहिते जीतब संग्रामा * जाके दूतन के अस कामा
कौतुक सिन्धु लाँघि तव लंका * आयउ कपिकेहरी अशंका

प्यारे, जिसके दूतों के ऐसे काम हैं, उसे आप जीतेंगे ? वानरों में सिंहरूप हनुमान् निडर होकर खेल की तरह समुद्र नाँघकर तुम्हारी लंकापुरी में चले आये—

रखवारे हति विपिन उजारा ※ देखत तुमहिं अक्ष जिन मारा
जारि नगर जेहि कीन्हेसि छारा ※ कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा

उन्होंने रखवालों को मारकर अशोकवाटिका उजाड़ी और तुम्हारे देखते ही अक्षयकुमार को मारा। नगर को जलाकर भस्म कर दिया। तब तुम्हारा बल और अभिमान कहाँ था ?

अब पति मृषा गाल जनि मारहु ※ मोर कहा कछु हृदय विचारहु
पति रघुपतिहि मनुज जनि जानहु ※ अगजगनाथ अतुलबल मानहु

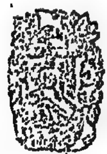
हे पति, अब झूठ ही गाल न बजाओ। कुछ मेरा कहना हृदय में विचारो। हे स्वामी, रघुनाथ को मनुष्य नहीं, किन्तु चराचर जगत् के स्वामी और बड़े अतुल बलवाला मानो।

बाण प्रताप जान मारीचा ※ तासु कहा नहिं मानेहु नीचा
जनक सभा अगणित महिपाला ※ रहेउ तहाँ तुम गर्व विशाला

हे नीच-मति, उनके बाण का प्रताप मारीच जानता था, जिसका कहना तुमने नहीं माना। जनकजी की सभा में अनगिनती राजा थे। वहाँ बड़े घमंडी तुम भी तो थे।

भंजि धनुष जानकी विवाही ※ तब संग्राम न जीतेउ ताही
सुरपतिसुत जाना बल थोरा ※ राखा जियत आँखि इक फोरा
शूर्पणखा की गति तुम देखी ※ तदपि हृदय नहिं लाज विशेखी

रामजी ने जब धनुष तोड़कर जानकी को ब्याहा, तब तुमने युद्ध में उन्हें न जीता। इन्द्र के पुत्र जयन्त ने उनका बल थोड़ा जाना। उसकी एक आँख फोड़ रामजी ने उसके प्राण छोड़ दिये। तुमने शूर्पणखा की गति देखी है, तो भी हृदय में लाज नहीं आती।



बधि विराध खरदूषणहिं, लीला हतेउ कबन्ध।
बालि एक शर मारेउ, तेहि नर कह दशकन्ध ॥

हे रावण, जिन्होंने विराध और खर-दूषण को मारकर खेल की तरह कबन्ध राक्षस को मार गिराया और एक ही बाण से बालि को मार डाला, उन्हें तुम मनुष्य कहते हो ?

जेहि जलनाथ बँधायो हेला ※ उतरेउ कपिदल सहित सुबेला
कारुणीक दिनकरकुलकेतू ※ दूत पठायउ तव हित हेतू

जिन्होंने अनायास ही समुद्र को बाँध लिया और वानरी सेना-समेत सुबेल पर्वत पर टिके हैं। बड़े दयालु सूर्यवंश में पताकारूप रामजी ने तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा था।

सभामाँझ जेहि तव बल मथा ※ करिवरूथ महँ मृगपति यथा
अंगद हनुमत अनुचर जाके ※ रण बाँकुरे वीर अति बाँके

सभा में जिन्होंने तुम्हारा बल मथा, जैसे हाथियों के झुण्ड को सिंह, ऐसे युद्ध में चतुर और बड़े बाँके वीर अंगद और हनुमान् जिनके दास हैं—

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू * मृषा मान ममता मद गहहू
अहह कन्त कृत राम विरोधा * काल विवश मन होइ न बोधा

प्यारे पति, उन्हें तुम बार-बार मनुष्य कहते और वृथा ही मान, ममता और अहंकार करते हो। अहह स्वामी, रामजी से वैर करते हो। काल के वश होने से तुम्हारे मन में ज्ञान नहीं होता।

काल दण्ड गहि काहु न मारा * हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा
निकट काल जेहि आवत साईं * तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं

काल डण्डा लेकर किसी को नहीं मारता ; किन्तु उसका धर्म, बल, बुद्धि और विचार करने की शक्ति हर लेता है। हे स्वामी, जिसके पास काल आता है, उसे तुम्हारी ही तरह भ्रम हो जाता है।


दो० दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहुँ पीय सिय देहु।
कृपासिन्धु रघुवीर भजि, नाथ विमल यश लेहु॥

हे प्रियतम, तुम्हारे दो पुत्र मारे गये और नगर जलाया गया, अब भी जानकीजी को दे दीजिए। स्वामी, दयासिन्धु रघुनाथ को भजकर निर्मल यश लीजिए।

नारिवचन सुनि विशिखसमाना * सभा गयो उठि होत विहाना
बैठ जाइ सिंहासन फूली * अति अभिमानत्रास सब भूली

बाणों के समान स्त्री के वचन सुन सवेरा होते ही रावण उठकर सभा में गया और बड़े गर्व से सिंहासन पर फूलकर बैठा, सब डर भूल गया।

उहाँ राम अङ्गदहिं बुलावा * आइ चरणपंकज शिरनावा
अति आदर समीप बैठारी * बोले विहँसि कृपालु खरारी

वहाँ रामजी ने अंगद को बुलाया। उन्होंने आकर रघुनाथजी के चरणकमलों में प्रणाम किया। तब बड़े आदर से पास ही बिठाकर खर राक्षस के नाशक दयालु रामजी हँसकर बोले—

बालितनय अति कौतुक मोहीं * तात सत्य कहु पूछौं तोहीं
रावण यातुधानकुलटीका * भुजबल अतुल जासु जग लीका

हे बालितनय, मुझे बड़ा आश्चर्य है। हे तात, मैं जो तुमसे पूछता हूँ, सच-सच कहो। रावण राक्षसों में श्रेष्ठ है; उसकी भुजाओं में बड़ा बल है और संसार में उसकी मर्यादा है।

तासु मुकुट तुम चारि चलाये * कहहु तात कवनी विधि पाये
कहा बालिसुत सुनहु खरारी * मुकुट न होहिं भूपगुण चारी

उसके चार मुकुट तुमने फेंके थे। सो हे तात, तुमने किस प्रकार पाये? बालि के पुत्र ने कहा—हे खर राक्षस के मारनेवाले, ये मुकुट नहीं, किन्तु राजा के चारो गुण थे।

साम दाम अरु दण्ड विभेदा * नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा
नीति धर्म के चरण सुहाये * अस जिय जानि नाथ पहँ आये

हे नाथ, साम, दाम, दण्ड और भेद—ये चारो गुण राजाओं के हृदय में बसते हैं, ऐसा वेद कहते हैं। ये चारों नीति और धर्म के सुन्दर चरण हैं, ऐसा जी में जान (रावण को छोड़) आपके पास चले आये हैं।



धर्महीन प्रभुपदविमुख, कालविवश दशशीश।
आये गुण तजि रावणहिं, सुनहु कोशलाधीश॥

हे अवधराज, धर्महीन, आपके चरणों से विमुख और कालवश रावण को ये छोड़ आये हैं।

परम चतुरता श्रवण सुनि, बिहँसे राम उदार।
समाचार तब सब कहेउ, गढ़ के बालिकुमार॥

अंगद की बड़ी चतुरता कानों से सुन उदार रामजी हँसे। तब अंगद ने लङ्कागढ़ के सब हाल कहे।

रिपु के समाचार जब पाये * राम सचिव तब निकट बुलाये
लङ्का बङ्का चारि दुआरा * केहि विधि लागिय करहु विचारा

जब शत्रु के हाल रामजी ने पाये, तब मन्त्रियों को पास बुलाया और कहा—लंका के जो बाँके चार द्वार हैं, उन्हें किस प्रकार नाँघोगे? सोचो।

तब कपीश ऋक्षेश विभीषण * सुमिरि हृदय दिनकरकुलभूषण
करि विचार तिन मन्त्र दृढ़ावा * चारि अनी कपि कटक बनावा

तब सुग्रीव, जाम्बवान् और विभीषण ने सूर्यवंश के भूषणरूप रामजी का हृदय में स्मरण करके विचारा और सलाह पक्की की। फिर वानरी सेना के चार विभाग बनाये।

यथायोग्य सेनापति कीन्हे * यूथप सकल बोलि तिन लीन्हे
प्रभुप्रताप सब कहि समुझाये * सिंहनाद करि तब कपि धाये

जैसे चाहिए, वैसे ही सेनापति किये और उन सबको बुला लिया। स्वामी का प्रताप सबसे कह समझाया। तब सिंहनाद करके सब वानर दौड़े।

हर्षित रामचरण शिर नावैं * गहि गिरिशिखर भालुकपि धावैं
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीशा * जय रघुवीर कोशलाधीशा

सब वानर प्रसन्न हो रघुनाथजी के चरणों में माथा नवाते और पर्वतों के शिखर ले-लेकर दौड़ते हैं। रीछ और वानर गर्जते, डरवाते और कहते हैं कि अयोध्यापति रघुनाथ की जय हो।

जानत परम दुर्ग गढ़लङ्का * प्रभुप्रताप कपि चले अशङ्का
घटाटोप करि चहुँदिशि घेरी * मुखहिं निशान बजावहिं भेरी

वे जानते हैं कि लंकागढ़ बड़ा कठिन है, तो भी श्रीरामजी के प्रताप से निडर होकर वानर चले और मेघों की भाँति चारों ओर से घेर लिया। फिर मुख से निशान और भेरी बजाने लगे।



जयति राम भ्राता सहित, जय कपीश सुग्रीव।
गर्जें केहरिनाद कपि, भालु महाबलसींव॥

'लक्ष्मण-समेत रामजी की जय हो', 'वानरराज सुग्रीव की जय हो' ऐसा कह-कह बड़े बलवान् रीछ और वानर सिंहनाद कर गर्जने लगे।

लंका भयउ कोलाहल भारी * सुनेउ दशानन अति अहँकारी
देखहु बनरन केरि ढिठाई * बिहँसि निशाचरसेन बुलाई

लंका में बड़ा कोलाहल हुआ, जिसे सुन बड़ा अभिमानी रावण बोला—वानरों की ढिठाई तो देखो! फिर हँसकर उसने राक्षसों की सेना बुलाई।

आये कीश काल के प्रेरे * क्षुधावन्त रजनीचर मेरे
अस कहि अट्टहास शठ कीन्हा * गृह बैठे अहार विधि दीन्हा

और कहा—काल के भेजे ये वानर आये हैं और मेरे राक्षस भूखे हैं। ऐसा कह मूर्ख रावण हँसा कि ब्रह्मा ने घर बैठे भोजन भेज दिया।

सुभटसकल चारिहु दिशिजाहू * धरि धरि भालु कीश सब खाहू
उमा रावणहिं अस अभिमाना * जिमि टिट्टिभ पग सूत उताना

योद्धाओ, चारो ओर जाओ और पकड़-पकड़कर रीछ-वानरों को खाओ। हे पार्वती, रावण को ऐसा अहंकार है, जैसे टिटिहरी ऊपर पैर करके सोती है कि आकाश गिरेगा तो मैं पैरों पर रोक लूँगी।

चले निशाचर आयसु माँगी * गहि कर भिन्दिपाल वर साँगी
तोमर मुद्गर परिघ प्रचण्डा * शूल कृपाण परशु गिरिखण्डा

आज्ञा माँग गोफना, उत्तम साँग, तोमर, मुद्गर, प्रचंड बेलन, शूल, खड्ग, फर्सा और पर्वतों के टुकड़े हाथ में ले-लेकर राक्षस चले।

जिमि अरुणोपलनिकरनिहारी * धाये खग शठ मांस अहारी
चोंचभङ्ग दुख तिनहिं न सूझा * तिमि धाये मनुजाद अबूझा

जैसे मांस खानेवाले पक्षी लाल पत्थरों के ढेर को मांस जानकर दौड़ें और चोंच टूटने का दुःख उन्हें न सूझ पड़े, वैसे ही मूर्ख राक्षस दौड़ पड़े।



नानायुध शर चाप धरि, यातुधान बलबीर।
कोट कँगूरन चढ़ि गये, कोटि कोटि रणधीर॥

बड़े बली, धीर करोड़-करोड़ वीर राक्षस भाँति-भाँति के अस्त्र और धनुष-बाण ले-लेकर गढ़ के कंगूरों पर चढ़ गये।

कोट कँगूरन सोहहिं कैसे * मेरुशृंग पर जनु घन जैसे
बाजहिं ढोल निशान जुझाऊ * सुनि सुनि सुभटन के मन चाऊ

गढ़ के कँगूरों पर ये कैसे सोहते हैं, जैसे सुमेरुगिरि के शिखर पर मेघ। युद्ध के ढोल और नगाड़े बजते हैं, जिन्हें सुनकर योद्धाओं के मन में युद्ध का उत्साह होता है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा * सुनि कादर उर होइँ दरारा
देखि न जाइँ कपिन के ठट्टा * अति विशाल तनु भालु सुभट्टा

बहुत-से नगाड़े और नफीरियाँ बजती हैं, जिन्हें सुनकर कायरों के हृदय फट जाते हैं। वानरों के झुण्ड देखे नहीं जाते। बड़ी-बड़ी देहोंवाले रीछ बड़े योद्धा हैं।

धावहिं गनहिं न औघट घाटा * पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा
कटकटाइ कोटिन भट गर्जहिं * दशनन ओंठ काटि अतितर्जहिं

वे दौड़ते समय नीचा-ऊँचा नहीं देखते, पर्वतों को फोड़कर राह कर लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाकर गर्जते और दाँतों से होंठ चबाते डरवाते हैं।

उत रावण इत राम दुहाई * जयति जयति कहि परी लराई
निशिचर शिखरसमूह ढहावहिं * कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं

उधर रावण और इधर रामजी की दुहाई हो रही है। दोनों ओर दोनों की 'जय हो जय हो' कहकर लड़ाई आरम्भ हुई। राक्षस पर्वतों के शिखर नीचे गिराते हैं, जिन्हें कूदकर वानर रोक लेते और घुमाकर राक्षसों पर ही चला देते हैं।

छन्द

धरि कुधरखण्ड प्रचण्ड मर्कटभालु गढ़पर डारहीं।
झपटैं चरणगहि पटकि महि कहँ बारबार प्रचारहीं॥
अतितरलतरणप्रतापतर्जहिं तमकि गढ़ पर चढ़िगये।
कपिभालु चढ़ि मन्दिरन जहँ तहँ रामयश गावतभये॥

पहाड़ों के टुकड़े ले-ले प्रचण्ड वानर और रीछ गढ़ पर डालते हैं तथा झपटते और चरण पकड़कर बार-बार पुकारते हैं कि उठो। बड़े प्रतापी और जवान वानर गर्जते हुए कूदकर गढ़ पर चढ़ गये और मन्दिरों पर चढ़कर जहाँ-तहाँ रामजी का यश गाने लगे।



एक एक गहि रजनिचर, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुहि हेरि भट, गिरहिं धरणि पर आइ॥

एक-एक राक्षस को पकड़कर वानर भाग चले। अपने को ऊपर देख वानर वीर पृथ्वी पर आ गिरते हैं।

रामप्रताप प्रबल कपि यूथा * मर्दहिं निशिचर निकर बरूथा
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ वानर * जय रघुवीर प्रताप दिवाकर

रामजी के प्रताप से बड़े बलवान् वानर निशाचरों को मल डालते हैं। 'रघुनाथजी के प्रतापरूप सूर्य की जय हो' कहकर फिर जहाँ-तहाँ कोट पर चढ़ गये।

चले तमीचरनिकर पराई * प्रबल पवन जिमि घनसमुदाई
हाहाकार भयो पुर भारी * रोवहिं आरत बालक नारी

राक्षसों के समूह भाग चले, जैसे प्रचण्ड पवन से मेघ इधर-उधर बिखर जाते हैं। लंकापुरी में बड़ा हाहाकार मच गया—स्त्रियाँ और बालक दुखी होकर रोते हैं।

सब मिलि देहिं रावणहिं गारी * राज्य करत जेइँ मृत्यु हँकारी
निजदल विचल सुना जब काना * फिरे सुभट लंकेश रिसाना

सब मिलकर रावण को गाली देते हैं, जिसने सुख से राज्य करते मौत बुला ली। रावण ने जब अपनी सेना को भागी हुई सुना कि योद्धा भागकर लौट आये, तब रावण क्रोधित हुआ और बोला—

जो रणविमुख सुना मैं काना * तेहि मारिहौं कराल कृपाना
सर्वस खाइ भोगकरि नाना * समरभूमि भा वल्लभ प्राना

मैं कानों से जिसे युद्ध से लौटा हुआ सुनूँगा, उसे अपने इस भयंकर खड्ग से मार डालूँगा। सब कुछ खाया और अनेक प्रकार के सुख तो किये; परन्तु युद्धभूमि में प्राण प्यारे हो गये।

उग्र वचन सुनि सकल डराने * फिरे क्रोधकरि सुभट लजाने
सम्मुखमरण वीर की शोभा * तब तिन तजा प्राणकर लोभा

ये भयंकर वचन सुन सब डरे। लज्जित होकर योद्धा क्रोध करके लौट पड़े। सामने होकर मरना ही वीर की शोभा है, यह समझकर उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया।



बहुआयुध धरि सुभट सब, भिरहिं प्रचारि प्रचारि।
कीन्हे व्याकुल भालुकपि, परिघप्रचण्डन मारि॥

बहुत अस्त्र लिये हुए सब योद्धा ललकार-ललकार कर भिड़ते हैं। बड़े प्रचण्ड बेलनों से मारकर राक्षसों ने रीछों और वानरों को व्याकुल कर दिया।

भय आतुर कपि भागन लागे * यद्यपि उमा जीतिहैं आगे
कोउ कह कहँ अंगदहनुमन्ता * कहँ नलनील द्विविद बलवन्ता

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, यद्यपि आगे जीतेंगे, परन्तु डर से विकल होकर वानर भागने लगे। कोई कहता है कि अंगद, हनूमान्, नल, नील, और द्विविद कहाँ हैं ?

निजदल बिचल सुना हनुमाना * पश्चिम द्वार रहा बलवाना
मेघनाद तहँ करै लराई * टूट न द्वार परम कठिनाई

बलवान् महावीरजी ने अपनी सेना को भागती हुई सुना। उनसे पश्चिम के द्वार पर मेघनाद युद्ध कर रहा था और इसी से वह द्वार टूटता नहीं था, बड़ी कठिनता थी।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा * गर्जेउ प्रलयकाल सम योधा
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा * गहि गिरि मेघनाद पर धावा

तब पवन-पुत्र के मन में बड़ा क्रोध हुआ। वे प्रलयकाल के मेघ के समान गर्जे। वह कूदकर लंकागढ़ के ऊपर आ गये; फिर पहाड़ को लेकर मेघनाद के ऊपर झपटे।

भंजेउ रथ सारथी निपाता * तासु हृदय महँ मारेउ लाता
दूसर सूत बिकल तेहि जाना * स्यंदन घालि तुरत घर आना

उसका रथ तोड़ डाला, सारथी को मार गिराया और उसकी छाती में लात मारी। दूसरा सारथी उसे व्याकुल जान रथ पर डालकर घर ले गया।



अंगद सुनेउ कि पवनसुत, गढ़पर गयेउ अकेल।
समर बाँकुरा बालिसुत, तमकि चढेउ करिखेल॥

'हनुमान् अकेले लंकागढ़ पर गये हैं', यह सुनकर युद्ध में निपुण बालिकुमार अंगद खेल की तरह कूदकर उधर चले।

युद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर * रामप्रताप सुमिरि उरअंतर
रावण भवन चढ़े दोउ धाई * करहिं कोशलाधीश दुहाई

रामजी का प्रताप हृदय में रख दोनों वानर युद्ध में राक्षसों के विरुद्ध क्रुद्ध हुए। फिर दोनों दौड़कर रावण के घर पर चढ़ गये और अयोध्यानाथ रामजी की दुहाई की।

कलशसहित सब भवन ढहावहिं * देखि निशाचर अतिभय पावहिं
नारिबृन्द कर पीटहिं छाती * अब दोउ कपि आये उतपाती

वे कलशों-समेत सब घर गिरा देते हैं, यह देख राक्षस बहुत डरते हैं। स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटती और कहती हैं कि अब दोनों उत्पाती वानर आ गये।

कपि लीला करि सबहिं डरावहिं * रामचन्द्र कर सुयश सुनावहिं
पुनि कर गहि कंचन के खम्भा * करन लगे उतपात अरम्भा

दोनों वानर लीला से सबको डरवाते और रामजी का उत्तम यश सुनाते हैं। फिर वे हाथों में सोने के खंभे लेकर उत्पात करने लगे।

कूदि परे रिपुकटक मँझारी * लागे मर्दन भुजबल भारी
काहुहि लात चपेटा केहू * भजहु न रामहिं सो फल लेहू

वे शत्रु की सेना के बीच कूद पड़े और भुजाओं के बड़े बल से उसे मर्दने लगे। किसी को लात और किसी को थप्पड़ मारकर कहते हैं कि रामजी को नहीं भजा, उसका फल लो।



एक एकसन मर्दिकरि, तोरि चलावहिं मुण्ड।
रावण आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधिकुण्ड॥

एक एक को मर्दते और उसका सिर तोड़कर फेंक देते हैं, जो दही के फूटे कूँड़ों की भाँति रावण के आगे गिरते हैं।

महा महा मुखिया जे पावहिं * ते पदगहि प्रभु पास चलावहिं
कहहिं विभीषण तिनके नामा * देहिं राम तिन कहँ निज धामा

जिन बड़े-बड़े मुखिया राक्षसों को पाते हैं, उनको पैर पकड़कर स्वामी रामजी के पास फेंक देते हैं। विभीषण उनके नाम कहते और रामजी उन्हें अपना धाम देते हैं।

खल मनुजाद जो आमिष भोगी * पावहिं गति जो याचत योगी
उमा राम मृदुचित करुणाकर * वैर भाव मोहिं सुमिरत निशिचर

मांस खानेवाले दुष्ट राक्षस वह गति पाते हैं, जिसे योगी माँगते हैं। हे पार्वती, कोमल चित्त दया की खान रामजी 'राक्षस मुझे, वैरभाव से ही सही, सुमिरते तो हैं'

देहिं परम गति असजियजानी * को कृपालु अस अहै भवानी
जेअसप्रभु न भजहिं भ्रमत्यागी * नर मतिमन्द ते परम अभागी

ऐसा जी में जान उन्हें उत्तम गति देते हैं। हे पार्वती, ऐसा कौन कृपालु है ? जो भ्रम छोड़कर ऐसे स्वामी को नहीं भजते, वे मन्द बुद्धिवाले मनुष्य बड़े अभागी हैं।

अंगद अरु हनुमंत प्रवेशा * कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेशा
लंका महँ कपि सोहहिं कैसे * मथहिं सिन्धु दुइ मन्दर जैसे

अंगद और हनुमान् ने लंकागढ़ में प्रवेश किया है, ऐसा अयोध्यानाथ रामजी कहते हैं। लंका में दोनों वानर वैसे ही सोहते हैं, जैसे समुद्र को दो मन्दराचल मथ रहे हों।



भुजबलरिपुदल दलिमलेउ, देखि दिवसकर अन्त।
कूदे युगल प्रयास बिनु, आये जहँ भगवन्त॥

हनुमान् और अंगदजी ने भुजाओं के बल से शत्रु की सेना का नाश किया। फिर सन्ध्या जान दोनों गढ़ से नीचे कूद पड़े और बिना परिश्रम वहाँ आये, जहाँ रघुनाथजी थे।

प्रभुपदकमल शीश तिननाये * देखि सुभट रघुपति मन भाये

राम कृपाकरि युगल निहारे * भये विगतश्रम परम सुखारे

उन्होंने प्रभु के चरणकमलों में माथा नवाया। उन योद्धाओं को देख रामजी का मन प्रसन्न हुआ। रामजी ने दयाकर दोनों को देखा, उनकी थकावट जाती रही और वे बड़े सुखी हुए।

गये जानि अंगद हनुमाना * फिरे भालु मर्कट भट नाना
यातुधान प्रदोषबल पाई * धाये करि दशशीश दुहाई

अंगद और हनुमान् को गये जान सब रीछ और वानर योद्धा लौटे। राक्षस लोग रात का बल पाकर रावण की दुहाई करके दौड़े।

निशिचर अनी देखि कपि फिरे * कटकटाइ जहँ तहँ भट भिरे
दोउ दल भिरहिं प्रचारिप्रचारी * लरहिं सुभट नहिं मानहिं हारी

निशाचरों की सेना देख वानर लौटे और कटकटाकर जहाँ-तहाँ फिर भिड़ गये। ललकार-ललकारकर दोनों दल भिड़ते हैं, योद्धा लड़ते हैं, हार नहीं मानते।

वीर तमीचर सब अतिकारे * नाना बरण बलीमुख भारे
सबलयुगलदलसम अतियोधा * विविधप्रकार लरहिं करि क्रोधा

राक्षस वीर सब बड़े काले हैं और वानर वीर अनेक रंगों के हैं। दोनों दल बली हैं और दोनों में समान ही योद्धा हैं, जो क्रोध करके अनेक प्रकार से लड़ते हैं—

प्राविट शरद पयोद घनेरे * लरत मनहु मारुत के प्रेरे
अवनिअकम्पनअरुअतिकाया * विचलत सेन करी तिन माया

मानो वर्षा तथा शरद के बहुत से मेघ पवन की प्रेरणा से लड़ते हैं। अवनि, अकम्पन और अतिकाय नाम के राक्षसों ने सेना की गति देख राक्षसी माया प्रकट की।

भयउनिमिषमहँअतिअँधियारा * काहु न सूझै अपन परारा
मारु खाहु सब करहिं पुकारा * वृष्टि होइ रुधिरोपल क्षारा

पल भर में बड़ा अँधेरा हो गया, जिससे किसी को अपना पराया न सूझता था। सब यही पुकार करते हैं कि मारो, खाओ ; तथा रक्त, पत्थर और राख बरसाते हैं।



देखिनिबिड़तमदशहुदिशि, कपिदल भयो खँभार।
एकहि एक न देखहीं, जहँ तहँ करहिं पुकार ॥

सब ओर घना अँधेरा देख वानर व्याकुल हुए—एक दूसरे को नहीं देखते, जहाँ-तहाँ एक दूसरे को पुकारते हैं।

सकल मर्म रघुनायक जाना * लिये बोलि अंगद हनुमाना
समाचार कहि सब समुझाये * सुनत कोपि कपिकुंजर धाये

रघुनाथजी ने सब बात जान ली और अंगद व हनुमान् को बुलाया। उनसे सब हाल कह समझाया, जिसे सुन वानरों में श्रेष्ठ वे दोनों क्रोधकर दौड़े।

पुनि कृपालु हँसि चाप चढ़ावा * पावक शायक सपदि चलावा
भयो प्रकाश कतहुँ तम नाहीं * ज्ञान उदय जिमि संशय जाहीं

फिर कृपालु रामजी ने हँसकर धनुष चढ़ाया और तुरन्त ही आग्नेय अस्त्र चलाया, जिससे उजाला हुआ, कहीं अन्धकार नहीं रहा, जैसे ज्ञान का उदय होने पर सन्देह जाता रहता है।

भालु बलीमुख पाइ प्रकाशा * धाये कोपि विगतश्रम त्रासा
हनूमान अंगद रण गाजे * हाँक सुनत रजनीचर भाजे

उजाला पाकर रीछ और वानर क्रोध करके दौड़े। उनकी थकावट और डर दूर हो गया। हनुमान् और अंगदजी युद्ध में गर्जे, जिस हाँक को सुनते ही राक्षस भागे।

भागत भट पटकहिं गहि धरणी * करहिं भालु कपि अद्भुत करणी
गहि पद डारहिं सागर माहीं * मकर उरग झष धरि धरि खाहीं

रीछ और वानर भागते हुए योद्धाओं को पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं—अद्भुत करनी करते हैं। राक्षसों के पैर पकड़कर समुद्र में डाल देते हैं, और मगर, साँप तथा मछलियाँ उन्हें खा जाती हैं।


कछु घायल कछु रण परे, कछु गढ़ चले पराय।
गर्जे मर्कट भालु भट, रिपुदल बल बिचलाय॥

कुछ राक्षस घायल हुए, कुछ युद्ध में मरे और कुछ गढ़ को भाग गये। शत्रु की सेना को अपने बल से भगाकर रीछ और वानर गर्जने लगे।

निशा जानि कपि चारिउ अनी * आये सब जहँ कोशलधनी
राम कृपाकरि चितवा जबहीं * भये विगतश्रम वानर तबहीं

रात जान चारो सेनाओं के सब वानर वहाँ आये, जहाँ कोशलधनी रामजी थे। जब रामजी ने कृपा करके देखा, तब वानरों की थकावट जाती रही।

उहाँ दशानन सचिव हँकारे * सबसन कहेसि सुभट जे मारे
आधा कटक कपिन संहारा * कहहु बेगि का करिय विचारा

वहाँ रावण ने मन्त्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गये थे, उनके नाम बताये। फिर कहा—वानरों ने आधी सेना मार डाली। अब कहो, क्या विचार है?

मालवन्त इक जरठ निशाचर * रावणमातुपिता मन्त्रीवर
बोला वचन नीति अतिपावन * तात सुनहु कछु मोर सिखावन

मालयवान् नाम का एक बूढ़ा निशाचर था, जो रावण का नाना और प्रधान मंत्री था। उसने इस प्रकार अति पवित्र नीति कही—हे तात, कुछ मेरी सीख सुनिए।

जबते तुम सीता हरि आनी * अशकुन होहिं न जात बखानी

वेद पुराण जासु यश गावा * तासु विमुख सुख काहु न पावा

जब से आप जानकीजी को हर लाये, तब से ऐसे असगुन हो रहे हैं कि कहे नहीं जाते। वेद और पुराणों ने जिन रामजी का यश गाया है, उनसे विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया।



हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान।
जेइँ मारेउ सोइ अवतरेउ, कृपासिन्धु भगवान॥

भाई हिरण्यकशिपु-समेत हिरण्याक्ष और बलवान् मधु-कैटभ दैत्यों को जिन्होंने मारा, उन्हीं कृपासिन्धु भगवान् ने यह अवतार लिया है।

कालरूप खलवनदहन, गुणागार घनबोध।
जेहि सेवहिं शिवकमलभव, तेहिसन कवनविरोध॥

जो कालरूप, दुष्टरूप वन के अग्नि, गुणों के धाम और बड़े ज्ञानी हैं, जिनकी शिव और कमल से उत्पन्न ब्रह्मा सेवा करते हैं, उनसे कैसा विरोध?

परिहरि वैर देहु वैदेही * भजहु कृपानिधि परम सनेही
ताके वचन बाणसम लागे * करिया मुख करि जाहु अभागे

वैर छोड़ जानकीजी को दे दो और बड़े स्नेही कृपानिधान रामजी को भजो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। रावण ने कहा—हे अभागी! मुँह काला करके चला जा।

बूढ़ भयसि नतु मरतेउँ तोहीं * अब जनि वदन देखावसि मोहीं
तेइँ अपने मन अस अनुमाना * बधा चहत यहि कृपानिधाना

तू बूढ़ा हुआ, नहीं तो तुझे मार डालता। अब मुझे मुँह मत दिखाना। माल्यवान् ने अपने मन में अनुमान किया कि इसे कृपानिधान रामजी मारना चाहते हैं।

सो उठि गयउ कहत दुर्वादा * तब सकोप बोलेउ घननादा
कौतुक प्रात देखियहु मोरा * करिहौं बहुत कहत हौं थोरा

वह दुर्वचन कहता हुआ उठ गया। तब क्रोधसमेत मेघनाद बोला—प्रातःकाल मेरा तमाशा देखिएगा। मैं बहुत कुछ करूँगा, परन्तु कहता थोड़ा हूँ।

सुनि सुतवचन भरोसा आवा * प्रीति समेत निकट बैठावा
करत विचार भयो भिनुसारा * लगे भालु कपि चारिउ द्वारा

पुत्र के वचन सुन रावण के मन में विश्वास हुआ। उसने उसे प्रीति-समेत पास ही बिठा लिया। इस प्रकार विचार करते सवेरा हो गया। रीछ और वानर चारों द्वारों पर आकर जम गये।

कोपि कपिन दुर्गम गढ़ घेरा * नगर कोलाहल भयउ घनेरा

विविधअस्त्र गहि निशिचर धाये * गढ़ते पर्वत शिखर ढहाये

क्रोधकर वानरों ने दुर्गम लंकागढ़ को घेर लिया। तब नगर में बड़ा कोलाहल हुआ। अनेक प्रकार के अस्त्र ले-ले राक्षस दौड़े और लंकागढ़ से पर्वतों के शिखर नीचे गिराने लगे।

छन्द

ढाहे महीधरशिखर कोटिन विविध विधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत प्रलय के जनु बादले॥
मर्कट विकटभट जुटत सम्मुख लरत तनु जर्जर भये।
गहिशैल ते गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निशिचर हये॥

पर्वतों के करोड़ों शिखर राक्षसों ने नीचे गिराये। भाँति-भाँति के गोले चले, जो वज्रपात से घहराते हैं। प्रलयकाल के मेघों-सरीखे गर्जते हुए भयंकर वानर वीर भिड़ते हैं और सामने लड़ते हैं, जिनके शरीर जर्जर हो गये हैं। वानर पर्वत से पत्थर फेंकते हैं, जिससे जहाँ के तहाँ ही राक्षस मर जाते हैं।


मेघनाद सुनि श्रवण अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतरि दुर्ग ते वीरवर, सम्मुख चला बजाइ॥

'वानरों ने आकर गढ़ घेर लिया', यह सुन वीर मेघनाद गढ़ से उतरा। डङ्का बजाकर सामने चला—

कहँ कोशलाधीश दोउ भ्राता * धन्वी सकललोकविख्याता
कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा * कहँ हनुमंत अङ्गद बलसींवा

और बोला—अयोध्या के राजा राम-लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं, जो सब लोकों में धनुषधारी प्रसिद्ध हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव, हनुमान् और अंगद कहाँ हैं?

कहाँ विभीषण भ्राताद्रोही * आजु शठहि हठि मारउँ ओही
अस कहि कठिनबाण सन्धाने * अतिशयकोपिश्रवणलगि ताने

अपने भाई का वैरी विभीषण कहाँ है? आज मैं अड़कर उस शठ को मारूँगा। ऐसा कह उसने कठिन बाण धनुष पर चढ़ाया और बड़ा क्रोध करके उसे कानों तक खींचा।

शरसमूह सो छाँड़न लागा * जनु सपक्ष धावें बहु नागा
जहँ तहँ परत देखिये वानर * सन्मुखहोइनसकततेहिअवसर

फिर बाण छोड़ने लगा, जो पंखवाले साँपों की भाँति दौड़ने लगे। जहाँ-तहाँ गिरते-पड़ते वानर देख पड़ते हैं। उस समय वे मेघनाद के सामने नहीं हो सकते थे।

भागे भयव्याकुल कपिऋच्छा * बिसरी सबहिं युद्ध की इच्छा
सो कपि भालु न रण में देखा * कीन्हेसि जेहि न प्राण अवशेखा

भय से व्याकुल हो वानर और रीछ भागे। सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। युद्ध में कोई वानर या रीछ ऐसा न देखा गया, जिसके मेघनाद ने केवल प्राण ही बाकी न रक्खे हों।



मारेसि दश दश विशिखउर, परे भूमि सब बीर।
सिंहनाद करि गर्जि तब, मेघनाद रणधीर॥

दस-दस बाण मेघनाद ने सबके हृदय में मारे, जिससे सब वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब युद्ध में निपुण मेघनाद सिंहनाद कर गर्जने लगा।

देखि पवनसुत कटक बिहाला * क्रोधवन्त धावा जनु काला
महा महीधर तमकि उपारा * अति रिस मेघनाद पर डारा

पवन के पुत्र हनुमान्‌जी सेना को व्याकुल देख क्रोधित होकर काल के समान दौड़े। उन्होंने तमककर एक बड़ा पर्वत उखाड़ा और बड़े क्रोध से उसे मेघनाद पर फेंका।

आवत देखि गयो नभ सोई * रथ सारथी तुरँग सब खोई
बार बार प्रचार हनुमाना * निकट न आव मर्म सो जाना

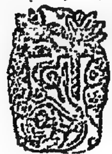
उसे आते देख मेघनाद तो आकाश में चला गया, पर उसके रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये—चूर्ण हो गये। हनुमान्‌जी बार-बार उसे ललकारते हैं; परन्तु वह सब हाल जानता है, इससे पास नहीं आता।

रामसमीप गयो घननादा * नाना भाँति कहत दुर्बादा
अस्त्र शस्त्र बहु आयुध डारे * कौतुकही प्रभु काटि निवारे

अनेक भाँति के दुर्वचन कहता हुआ मेघनाद रामजी के पास गया और बहुत-से अस्त्र-शस्त्र उन पर फेंके। उन्हें स्वामी रघुनाथजी ने काट डाला।

देखि प्रभाव मूढ़ खिसियाना * करै लाग माया विधि नाना
जिमि कोउ करै गरुड़सन खेला * डरपावहि गहि स्वल्प सपेला

उनका प्रभाव देख मूर्ख मेघनाद लजा गया और अनेक भाँति की मायाओं से डराने लगा, जैसे कोई छोटा-सा साँप लेकर गरुड़ को डरावे।



जासु प्रबल माया विवश, शिव विरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावत रजनिचर, निजमाया मतिखोट॥

जिसकी माया से शिव और ब्रह्मा छोटे-बड़े हैं, उन्हें खोटी बुद्धिवाला राक्षस माया दिखाता है।

नभ चढ़ि बरषै विपुल अँगारा * महि ते प्रकट होइ जलधारा
नाना भाँति पिशाच पिशाची * मारुकाटुध्वनि बोलहिं नाची

आकाश में चढ़कर बहुत चिनगारियाँ बरसाता है और पृथ्वी से जल की धारा प्रकट होती है। अनेक भाँति के पिशाच और पिशाचिनियाँ नाचकर 'मारो, काटो' चिल्लाते हैं।

कीन्हेसि वृष्टि रुधिर कचहाड़ा * वर्षै कबहुँ उपल बहु छाँड़ा
वर्षि धूरि कीन्हेसि अँधियारा * सूझ न आपन हाथ पसारा

उसने रक्त, बाल और हड्डियाँ बरसाईं और कभी बहुत से पत्थर छोड़े। मेघनाद ने धूल बरसाकर अँधेरा कर दिया, जिससे अपना हाथ पसारा नहीं सूझता था।

अकुलाने कपि माया देखे * सबकर मरण बना इहि लेखे
कौतुक देखि राम मुसुकाने * भये सभीत सकल कपि जाने

माया देखकर वानर विकल हुए—उन्होंने जाना कि इस प्रकार सबको मरना होगा। यह आश्चर्य और खेल देख रामजी हँसे और जान लिया कि वानर डर गये।

एकहि बाण काटि सब माया * जिमिदिनकरहरतिमिरनिकाया
कृपादृष्टि कपि भालु विलोके * भये प्रबल रण रहहिं न रोके

रघुनाथजी ने एक ही बाण से सब माया काट डाली, जैसे सूर्यनारायण अन्धकार को मिटा देते हैं। रामजी के दयादृष्टि से देखते ही वानर और रीछ ऐसे प्रबल हो गये कि युद्ध में रोकने से नहीं रुकते।


आयसु माँगेउ राम पहँ, अंगदादि कपि साथ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, बाण शरासन हाथ॥

रामजी से आज्ञा माँग अंगद आदि वानरों के साथ धनुष-बाण हाथ में ले लक्ष्मणजी क्रोधित होकर लड़ने चले।

जलजनयन उर बाहु विशाला * हिमगिरिबरण कछुकइकलाला
उहाँ दशानन सुभट पठाये * नाना अस्त्र शस्त्र गहि धाये

लक्ष्मणजी के नेत्र कमल-सरीखे, हृदय विशाल, भुजाएँ लम्बी और शरीर का रंग हिमाचल का-सा है, जो कुछ-कुछ लाल हो गया है। वहाँ रावण के भेजे योद्धा अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े।

भूधर विटपायुध धरि भारी * धाये कपि जय राम पुकारी
भिरे सकल जोरीसन जोरी * इत उत जयइच्छा नहिं थोरी

पहाड़ और वृक्षरूप अस्त्र ले-ले 'रामजी की जय हो' कहकर वानर दौड़े। सब अपनी बराबरी के योद्धाओं से भिड़ गये। इधर-उधर दोनों ओर जय की बड़ी इच्छा है।

मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिं * कपिगिरिशिलामारिपुनिडाटहिं
मारु मारु धरु धरु धरिमारू * शीश तोरि गहि भुजा उपारू

वानर घूँसों और लातों से मारते, दाँतों से काटते और पर्वतों की शिलाएँ मार-मार कर डाटते हैं। 'मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो, सिर तोड़कर भुजाएँ उखाड़ लो'

अस ध्वनि पूरि रही नवखण्डा * धावहिं जहँ तहँ रुण्ड प्रचण्डा
देखहिं कौतुक नभ सुरवृन्दा * कबहुँक विस्मय कबहुँ अनन्दा

ऐसा शब्द भारत के नवो खण्डों में भरा है और जहाँ-तहाँ प्रचण्ड धड़ दौड़ रहे हैं। आकाश से देवता तमाशा देखते हैं। उन्हें कभी विस्मय और कभी आनन्द होता है।



जमेउगाड़ भरि भरि रुधिर, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जिमि अंगारनराशि पर, मृतक छार रहिछाइ॥

रक्त से गड्ढे भर गये। जमे हुए रक्त पर धूल ऐसे उड़ती है, जैसे अंगारों पर राख।

घायल वीर विराजहिं कैसे * कुसुमित किंशुक के तरु जैसे
लक्ष्मण मेघनाद दोउ योधा * भिरहिं परस्पर करिकरि क्रोधा

घायल वीर ऐसे सोहते हैं, जैसे फूले हुए ढाक के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों परस्पर क्रोध कर भिड़ते हैं।

एकहिं एक सकैं नहिं जीती * निशिचर छलबल करै अनीती
क्रोधवन्त तब भयउ अनन्ता * भंजेउ रथ सारथी तुरन्ता

एक दूसरे को जीत नहीं सकता। तब राक्षस मेघनाद ने छल के बल से अनीति करना चाही, तब अनन्त लक्ष्मणजी क्रोधित हुए और तुरन्त ही उसके रथ और सारथी को काट डाला।

नानायुध प्रहार कर शेषा * राक्षस भयउ प्राण अवशेषा
रावणसुत निज मन अनुमाना * संकट भये हरिहि मम प्राना

शेष लक्ष्मणजी ने अनेक अस्त्र मारे, जिनसे राक्षस मेघनाद के केवल प्राण रह गये। रावणसुत मेघनाद ने मन में सोचा कि अब संकट आ पड़ा; यह मेरे प्राण ले लेगा।

वीरघातिनी छाँड़ेसि साँगी * तेजपुञ्ज लक्ष्मण उर लागी
मूर्च्छा भई शक्ति के लागे * तब चलिगयउ निकट भयत्यागे

मेघनाद ने वीरों को मारनेवाली शक्ति छोड़ी, जो तेज की राशि लक्ष्मणजी के हृदय में लगी। शक्ति के लगने से मूर्च्छा हुई; तब डर छोड़ मेघनाद लक्ष्मणजी के पास गया।



मेघनादसम कोटिशत, योधा रहे उठाय।
जगदाधार अनन्त सो, उठहिं न चला खिसाय॥

मेघनाद के समान ही सैकड़ों-करोड़ों योद्धा उठाते रहे; परन्तु संसार के आधाररूप शेषनाग के अवतार लक्ष्मणजी न उठे। तब लजाकर वह चला गया।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू * जारै भुवन चारिदश आसू
सक संग्राम जीति को ताही * सेवहिं सुर नर अग जग जाही

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जिनके क्रोध की आग चौदहों लोकों को जला देती है, जिनकी देवता, मनुष्य और स्थावर-जंगम सारा संसार सेवा करता है, उन्हें संग्राम में कौन जीत सकता है?

यह कौतुक जानहिं जन सोई * जिनपर कृपा राम की होई
सन्ध्या भई फिरीं दोउ ऐनी * लगे सँभारन निज निज सैनी

यह कौतुक वही जान सकता है, जिस पर रघुनाथजी की दया हो। सन्ध्या होने पर दोनों सेनाएँ लौट गईं, और दोनों दल अपनी-अपनी सेना सँभालने लगे।

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर * लक्ष्मण कहाँ पूछा करुणाकर
तब लगि लै आयो हनुमाना * अनुज देखि प्रभु अतिदुखमाना

सर्वव्यापी, ब्रह्मस्वरूप, भुवनों के स्वामी, करुणा की खान रामजी ने पूछा—लक्ष्मण कहाँ हैं? तब तक हनुमान्‌जी उन्हें ले आये। रामजी को लक्ष्मण की दशा देख बड़ा दुःख हुआ।

जाम्बवन्त कह वैद्य सुषेना * लंका रह पठइय कोइ लेना
धरि लघुरूप गयो हनुमन्ता * आनेउ भवन समेत तुरन्ता

जाम्बवान् ने कहा—सुषेण वैद्य लंका में रहते हैं। उन्हें लेने किसी को भेजिए। तब छोटा रूप रखकर हनुमान्‌जी गये और तुरन्त ही घर-समेत सुषेण को ले आये।



रघुपतिचरणसरोज शिर, नायउ आय सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवनसुत लेन॥

सुषेण ने आकर रघुनाथजी के चरणकमलों में माथा नवाया तथा पर्वत और औषध का नाम बताकर कहा—हे पवन के पुत्र, आप जाकर उसे ले आइए।

रामचरण सरसिज उर राखी * चलेउ प्रभंजनसुत बल भाखी
उहाँ दूत यक मरम जनावा * रावण कालनेमि गृह आवा

रामजी के चरणकमल हृदय में रख पवन के पुत्र हनुमान्‌जी अपना बल कहकर चले। वहाँ लंका में एक दूत ने यह भेद जनाया, तब रावण कालनेमि के घर गया।

दशमुख कहा मरम तेहिं सुना * पुनि पुनि कालनेमि शिरधुना
देखत तुमहिं नगर जिन जारा * तासु पन्थ को रोकनहारा

रावण ने यह भेद कहा और उसने सुना। तब बार-बार कालनेमि ने माथा पीटा, पछताने लगा, और बोला—तुम्हारे देखते ही जिसने नगर जला दिया, उसकी राह रोकनेवाला कौन है?

भजि रघुपतिहिं करहु हित अपना * तजहु नाथ अब मृषा जल्पना
नीलकंज तनु सुन्दर श्यामा * हृदय राखु लोचनअभिरामा

हे नाथ, रघुनाथ को भजकर अपना हित कीजिए, अब झूठ बकवाद छोड़िए। नीले कमल के समान सुन्दर श्याम शरीर को हृदय में धरिए, जो कि आँखों को सुन्दर लगता है।

अहंकार ममता मद त्यागहु * महामोहनिशि सोवत जागहु
काल व्यालकर भक्षक जोई * सपनेहु समर कि जीतै कोई

अभिमान, ममता और मद छोड़ महामोहरूप रात्रि से जागिए। जो कालरूप साँप को खानेवाला है, उसको क्या स्वप्न में भी कोई युद्ध में जीत सकता है?



सुनि दशकन्ध रिसान तब, तेइँ मन कीन्ह विचार।
राम दूत कर मरण भल, यह खल नतु मोहिं मार॥

यह सुन रावण क्रुद्ध हुआ। तब कालनेमि ने सोचा कि रामदूत के हाथ मरना अच्छा। नहीं तो कहा न मानने पर यह दुष्ट मुझे मार डालेगा।

असकहि चलारचेसिमग माया * सर मन्दिर वर बाग बनाया
मारुतसुत देखा शुभ आश्रम * मुनिहिबूझिजल पियौं जाइश्रम

ऐसा कहकर वह चला और राह में माया रची। तालाब, उत्तम मन्दिर और बाग बनाया। हनुमान्‌जी ने उत्तम आश्रम देख मन में विचारा कि मुनि से पूछकर जल पियूँ तो थकावट जाय।

राक्षस कपटवेष तहँ सोहा * मायापति दूतहिं चह मोहा
जाइ पवनसुत नायउ माथा * लागा कहन रामगुण गाथा

कपट के वेष से वहाँ राक्षस सोहता था, जिसने माया के स्वामी रघुनाथजी के दूत को मोहना चाहा। हनुमान्‌जी ने माथा नवाया तो वह रामजी के गुणों की गाथा कहने लगा।

होत महारण रावण रामहिं * जीतहिं राम न संशय यामहिं
इहाँ भये मैं देखौं भाई * ज्ञानदृष्टिबल मोहिं अधिकाई

रावण और रामजी से बड़ा युद्ध हो रहा है; परन्तु श्रीरामजी जीतेंगे, इसमें सन्देह नहीं। भाई, यहाँ से भी मैं देख रहा हूँ; क्योंकि मेरे ज्ञान की दृष्टि का बल बहुत है।

माँगा जल तेइँ दीन्ह कमण्डल * कह कपि नहिं अघाउँ थोरे जल
सरमज्जन करि आतुर आवहु * दीक्षा देउँ ज्ञान जेहि पावहु

हनुमान् ने जब जल माँगा तब उसने अपना कमण्डलु दिया। हनुमान् ने कहा—मैं थोड़े से जल से नहीं अघाता। उसने कहा—तालाब में स्नान कर शीघ्र आओ। मैं दीक्षा (मन्त्र) दूँ, जिससे ज्ञान पाओगे।



सर पैठत कपिपद गहेउ, मकरी अति अकुलान।
मारी सो धरि दिव्य तन, चली गगन चढ़ि यान॥

तालाब में पैठते ही मकरी (मगरी) ने हनुमान्‌जी के चरण पकड़ लिये। तब वह बहुत व्याकुल हुए और उसे मार डाला। वह दिव्य शरीर धारण कर विमान पर चढ़कर आकाश को चली और बोली—

कपि तवदरश भइउँ निष्पापा * मिटा तात मुनिवरकर शापा
मुनि न होइ यह निशिचर घोरा * मानहु सत्य वचन कपि मोरा

हे कपि, तुम्हारे दर्शन से मैं पापहीन हो गई। हे तात, मुनिनाथ दुर्वासा का शाप मिट गया। यह मुनि नहीं, किन्तु भयंकर राक्षस है। मेरा वचन सत्य मानिए।

असकहि गई अप्सरा जबहीं * निशिचरनिकट गयउकपितबहीं
कह कपि मुनि गुरुदक्षिण लेहू * पाछे हमहिं मन्त्र तुम देहू

ऐसा कहकर जब अप्सरा चली गई, तब हनुमान्‌जी उस राक्षस के पास गये। महावीर ने कहा—मुनिवर, पहले गुरुदक्षिणा लीजिए, पीछे आप मुझे मन्त्र दीजिएगा।

शिर लंगूर लपेटि पछारा * निजतनु प्रकटेसि मरतीबारा
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना * सुनि मन हर्षि चले हनुमाना

तब महावीर ने उसके शिर में पूँछ लपेटकर उसे पटक दिया। मरते समय उसने अपना शरीर प्रकट किया और 'राम-राम' कहकर अपने प्राण छोड़े। यह सुन मन में प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी चले।

देखा शैल न औषध चीन्हा * सहसा कपि उपारि गिरिलीन्हा
गहिगिरिनिशिनभधावत भयऊ * अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ

हनुमान्‌जी ने पर्वत को देखा; परन्तु औषध न पहचान सके। इससे उन्होंने अचानक ही पर्वत उखाड़ लिया। पहाड़ लेकर रात के समय हनुमान्‌जी आकाश में दौड़ते हुए अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँचे।

देखा भरत विशाल अति, निशिचरमनअनुमानि।
बिनफर शायक मारेउ, चाप श्रवणलगि तानि॥

भरत ने उन्हें बड़े लम्बे-चौड़े देख मन में कोई राक्षस समझ बिना गाँसी का बाण कान तक धनुष खींचकर उनको मारा।

परेउ मुर्छि महि लागत शायक * सुमिरत राम राम रघुनायक
सुनि प्रियवचन भरत उठिधाये * कपि समीप अति आतुर आये

बाण लगते ही मूर्च्छित होकर हनुमान्‌जी पृथ्वी पर गिर पड़े और 'हे राम! हे राम! हे रघुनाथ!' कहने लगे। ऐसे प्यारे वचन सुन भरतजी उठकर दौड़े और शीघ्र महावीर के पास आये।

विकलविलोकि कीश उर लावा * जागा नाहिं बहुभाँति जगावा

मुख मलीन मन भयउ दुखारी * कहत बचन भरि लोचन बारी

हनुमान् को व्याकुल देख भरतजी ने हृदय से लगाया और बहुत जगाया ; परन्तु वह जागे नहीं। भरतजी का मुख मलिन और मन दुखी हो गया। तब आँखों में आँसू भर-कर भरतजी ने कहा—

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहिं कीन्हा * तेहिं पुनि यह दारुण दुख दीन्हा

जो मोरे मन बच अरु काया * प्रीति रामपदकमल अमाया

जिस विधाता ने मुझे रामजी से विमुख किया, उसी ने फिर यह दारुण दुःख दिया। जो मेरे मन, वचन और कर्म से रामजी के चरणकमलों में बिना छल की प्रीति हो,

तो कपि होउ बिगतश्रमशूला * जो मोपर रघुपति अनुकूला

बचन सुनत उठि बैठ कपीशा * कहि जय जयति कोशलाधीशा

"यदि मुझ पर रघुनाथजी प्रसन्न हैं, तो यह वानर पीड़ा और परिश्रम से रहित हो जाय।" ऐसा कहते ही हनुमान्जी 'अयोध्यानाथ की जय हो' कहकर उठ बैठे।


लीन्ह कपिहिं उरलाय, पुलकगात लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाय, सुमिरि रामरघुकुलतिलक॥

हनुमान्जी को भरतजी ने हृदय से लगा लिया। उनके अंगों में रोमांच हो आया और आँखों में आँसू आ गये। रघुवंश के तिलक रामजी को सुमिरकर भरत के हृदय में प्रीति नहीं समाती।

तात कुशल कहु सुखनिधानकी * सहित अनुज अरु मातुजानकी

कपि सब चरित संक्षेप बखाने * भये दुखित मनमहँ पछिताने

भरत बोले—हे तात, छोटे भाई-समेत सुखनिधान रामजी और माता जानकी कुशल से हैं न ? हनुमान् ने संक्षेप में सब हाल कहा। तब भरतजी दुखी हुए और मन में पछताये—

अहह दैव मैं कत जग जायउँ * प्रभुके एकौ काज न आयउँ

जानि कुअवसर मन धरि धीरा * पुनि कपिसन बोलेउ बलबीरा

अहह दैव ! मैं संसार में क्यों जन्मा था, जो स्वामी रघुनाथजी के एक भी काम न आया ? फिर कुसमय जान मन में धीरज धरकर रणधीर भरतजी फिर हनुमान् से बोले—

तात गहरु होइहै तोहिं जाता * काज नशाइहि होत प्रभाता

चढ़ु मम शायक शैलसमेता * पठवौं तोहिं जहँ कृपानिकेता

भरतजी बोले—हे तात, तुम्हारे जाने में देर होगी और प्रातःकाल होते ही काम बिगड़ जायगा। इससे पर्वत-समेत मेरे बाण पर चढ़ो और मैं तुम्हें जहाँ दयानिधान रामजी हैं, वहाँ भेज दूँ।

सुनि कपिमन उपजा अभिमाना * मोरे भार चलहि किमि बाना

रामप्रताप बिचारि बहोरी * बन्दि चरण बोले कर जोरी

यह सुन हनुमान्‌जी के अभिमान उपजा कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा। फिर रामजी का प्रताप विचारकर हाथ जोड़ चरणों में प्रणामकर महावीरजी बोले—

तव प्रताप उर राखि गोसाईं * जैहौं नाथ बाण की नाईं
हर्षि भरत तब आयसु दीन्हा * पद शिर नाय गमन कपिकीन्हा

हे स्वामी, तुम्हारा प्रताप हृदय में रखकर स्वामी के बाण की तरह जाऊँगा। तब प्रसन्न होकर भरत ने आज्ञा दी, और हनुमान्‌जी ने चरणों में माथा नवाकर पयान किया।



तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहौं नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाय पद, बन्दि चले हनुमन्त॥

हे प्रभु नाथ, आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरन्त जाऊँगा। ऐसा कह आज्ञा लेकर हनुमान् ने भरत के चरणों की वन्दना की और चले।

भरत बाहुबल शील गुण, प्रभु पद प्रीति अपार।
जात सराहत मनहिं मन, पुनि पुनि पवनकुमार॥

भरत की भुजाओं का बल, शील, गुण तथा स्वामी रामजी के चरणों में अत्यन्त प्रीति मन में बार-बार सराहते हुए पवनकुमार चले जाते हैं।

उहाँ राम लक्ष्मणहिं निहारी * बोले वचन मनुज अनुहारी
अर्द्धराति गइ कपि नहिं आवा * राम उठाय अनुज उर लावा

यहाँ रामजी लक्ष्मण को देखकर साधारण मनुष्य के समान वचन बोले कि आधी रात बीत गई; परन्तु हनुमान् नहीं आये। यह कह रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगाया—

सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ * बन्धु सदा तव मृदुल स्वभाऊ
मम हित लागि तजेउ पितुमाता * सहेउ बिपिन हिम आतप बाता

और बोले—भाई, तुम्हारा ऐसा कोमल स्वभाव था कि तुम मुझे कभी दुखित नहीं देख सकते थे। मेरे लिए तुमने माता-पिता को छोड़ दिया और वन में जाड़ा, घाम और वायु सहे।

सो अनुराग कहाँ अब भाई * उठहु न सुनि ममबच बिकलाई
जो जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू * पिता वचन नहिं मनतेउँ ओहू

भाई, अब वह स्नेह कहाँ है जो मेरे वचन की विकलता सुनकर भी नहीं उठते? यदि मैं जानता कि वन में भाई का वियोग होगा तो पिता का वह वचन भी (वन जाने के विषय में) न मानता *।

* यहाँ की डेढ़ दर्जन शंकाओं को 'मनुष्य के समान वचन बोले' नाश कर देगा।

सुत बित नारि भवन परिवारा * होहिं जाहिं जग बारहिं बारा
अस बिचारि जिय जागहु ताता * मिलहि न जगत सहोदर भ्राता

पुत्र, धन, स्त्री, कुटुम्ब, सब बार-बार मिलते और नष्ट होते हैं। हे तात, जी में ऐसा विचारकर जागो कि संसार में सगा भाई नहीं मिलता।

यथा पंख बिन खगपति दीना * मणि बिन फणि करिवरकरहीना
अस ममजिवन बन्धुबिन तोहीं * जो जड़ दैव जियावै मोहीं

जैसे बिना पंखों के गरुड़, मणि बिना साँप या सूँड़ बिना हाथी दुखी हो, हे भाई, तुम्हारे बिना मेरा जीना वैसा ही है। और यदि मूर्ख दैव मुझे जियावे भी—

जैहौं अवध कवन मुँह लाई * नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई
बरु अपयश सहतेउँ जगमाहीं * नारिहानि विशेष क्षति नाहीं

तो स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर मैं कौन मुँह लेकर अयोध्या जाऊँगा? संसार में स्त्री हरी जाने का अपयश सह लेना तो अच्छा था; क्योंकि स्त्री की हानि से विशेष हानि नहीं होती।

अब अवलोकि शोक यह तोरा * सहै कठोर निठुर उर मोरा
निज जननी के एक कुमारा * तात तासु तुम प्राण अधारा

अब तुम्हारा यह दुःख मेरा कठोर और निठुर हृदय सहता है। हे भाई, अपनी माता का मैं एक ही पुत्र हूँ, जिसके (मेरे) प्राणों के आधार तुम हो। तुम्हारे बिना मैं और मेरे बिना कौशल्या माता नहीं जियेंगी।

सौंपेउ मोहिं तुमहिं गहि पानी * सब विधि सुखद परमहित जानी
उतर काहि देहौं का जाई * उठि किन मोहिं सिखावहु भाई

जिन्होंने हाथ पकड़कर तुम्हें मुझे सब प्रकार सुखदायक और बड़े हितू जानकर सौंपा था, उन सुमित्रा माता को मैं जाकर क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! उठकर मुझे क्यों नहीं सीख देते—समझाते?

बहुबिधि शोचत शोचबिमोचन * स्रवतसलिलराजिवदल लोचन
उमा अखण्ड राम रघुराई * नर गति भाव कृपालु दिखाई

सोच छुड़ानेवाले रामजी बहुत प्रकार सोचते हैं, कमल की पँखड़ी-सरीखे नेत्रों से जल बह रहा है। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रघुश्रेष्ठ कृपालु रामजी मनुष्यों की-सी लीला दिखाते हैं।


प्रभुविलाप सुनिकान, विकल भये वानर निकर।
आइ गये हनुमान, जिमि करुणामहँ वीररस॥

प्रभु का विलाप सुन वानर व्याकुल हुए। उसी समय हनुमान् आ गये, जैसे करुणा होने पर वीररस।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना * अतिकृतज्ञ प्रभु परम सुजाना
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई * उठि बैठे लछमन हरषाई

उपकार को जाननेवाले, चतुर रामजी प्रसन्न होकर हनुमान् को मिले। तब वैद्य सुषेण ने तुरन्त उपाय किया और लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर उठ बैठे।

हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता * हरषे सकल भालु कपि ब्राता
पुनि कपि बैद तहाँ पहुँचावा * जेहि बिधि तबहिं ताहि लै आवा

प्रभु रामचंद्र हृदय से लगाकर भाई लक्ष्मणजी से मिले। सब रीछ और वानर प्रसन्न हुए। फिर हनुमान्जी ने सुषेण वैद्य को वैसे ही लंका में पहुँचा दिया, जैसे पहले उन्हें लाये थे।

यह वृत्तान्त दसानन सुनेऊ * अतिबिषाद पुनिपुनि सिर धुनेऊ
ब्याकुल कुम्भकर्ण पहँ गयऊ * करि बहु जतन जगावत भयऊ

यह हाल सुन रावण बड़े दुःख से बार-बार सिर पीटने लगा। व्याकुल होकर रावण कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत उपाय करके उसे जगाया।

जागा निशिचर देखिय कैसा * मानहु काल देह धरि बैसा
कुम्भकर्ण बूझा कहु भाई * काहे तव मुख रहा सुखाई

कुम्भकर्ण राक्षस जागा तो कैसा देख पड़ता है, मानो देह धारण किये साक्षात् काल ही है। कुम्भकर्ण ने पूछा—हे भाई, तुम्हारा मुख क्यों सूख रहा है?

कथा कही सब तेहँ अभिमानी * जेहि प्रकार सीता हरि आनी
तात कपिन निशिचर संहारे * महा महा योधा सब मारे

अभिमानी रावण ने सब हाल कहा, जिस प्रकार सीताजी को वह हर लाया था। हे भाई, वानरों ने राक्षसों का नाश कर दिया और सब बड़े-बड़े योद्धा मार डाले।

दुर्मुख सुररिपु मनुजअहारी * भट अतिकाय अकम्पन भारी
अपर महोदर आदिक बीरा * परे समरमहँ सब रणधीरा

दुर्मुख, सुररिपु, मनुष्यभक्षक, बड़ा योद्धा अतिकाय, वीर अकम्पन और महोदर आदि रणधीर योद्धा युद्ध में मरे पड़े हैं।



दशकन्धर के बचन सुनि, कुम्भकर्ण बिलखान।
जगदम्बा हरि आनिकै, शठ चाहसि कल्यान॥

रावण के वचन सुन कुम्भकर्ण विकल हुआ और बोला—शठ, संसार की माता जानकीजी को हर लाकर तू कल्याण चाहता है।

भल न कीन्ह तैं निशिचरनाहा * अब मोहिं आनि जगायहु काहा

अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना * भजहु राम होइहि कल्याना

हे निशाचरों के नायक रावण, तुमने यह अच्छा नहीं किया। अब मुझे आकर क्यों जगाया? भाई, अब भी अभिमान छोड़ो और रामचन्द्रजी को भजो तो भला होगा।

हैं दशशीश मनुज रघुनायक * जाके हनूमान से पायक
अहह बन्धु तैं कीन्ह खुटाई * प्रथमहिं मोहिं न जगायहु आई

हे रावण, क्या वे रघुनाथजी मनुष्य हैं, जिनके हनुमान-सरीखे सेवक हैं? अहह भाई, तूने बड़ी बुराई किया, जो पहले आकर मुझे नहीं जगाया।

कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक * शिव विरञ्चि सुर जाके सेवक
नारदमुनि मोहिं ज्ञान जो कहेऊ * कहतेउँ तोहिं समय नहिं रहेऊ

हे प्रभु, तुमने उस देवता का विरोध किया, जिसके शिव और ब्रह्मा आदि सब देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझसे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुमसे कहता; परन्तु अब समय नहीं रहा—

अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई * लोचन सफल करौं मैं जाई
श्यामगात सरसीरुह लोचन * देखौं जाय ताप त्रयमोचन

भाई, अब गोद भरकर मुझे मिलो, और मैं जाकर नेत्रों को सफल करूँ—श्याम-शरीर और कमल-सरीखे नेत्रोंवाले, तीनों तापों के नाशक रामजी को जाकर देखूँ—


रामरूपगुण सुमिरि मन, मगन भयो क्षण एक।
रावण माँगे कोटि घट, मद अरु महिष अनेक॥

रामजी का रूप और गुण मन में स्मरण कर कुम्भकर्ण क्षणभर के लिए ध्यानमग्न हो गया। फिर रावण से करोड़ घड़े मदिरा और अनेक भैंसे खाने-पीने को माँगे।

महिष खाय करि मदिरा पाना * गर्जेउ वज्रघात अनुमाना
कुम्भकर्ण दुर्मद रण रंगा * चला दुर्ग तजि सेन न संगा

भैंसों को खाकर और मदिरा को पीकर कुम्भकर्ण वज्रपात के समान गर्जा। युद्ध के रंग में बड़ा अभिमानी कुम्भकर्ण लंकागढ़ छोड़कर अकेला ही चला, जिसके साथ कुछ भी सेना नहीं है।

देखि विभीषण आगे आयउ * पुनिपद गहि निज नाम सुनायउ
अनुज उठाय हृदय सों लावा * रघुपति भक्त जानि मन भावा

विभीषण उसे देखकर आगे आये और चरण पकड़कर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई विभीषण को उठाकर कुम्भकर्ण ने हृदय से लगाया और रामजी का भक्त जान वह उसे मन भाये।

तात लात मोहिं रावण मारा * कहत परमहित मन्त्र विचारा

तेहि गलानि रघुपतिपहँ आयउँ * दीन जानि प्रभु के मन भायउँ

बिभीषण बोले—हे भाई, विचार करके बड़े हित की सलाह करने पर भी रावण ने मुझे लात मारी। उसी लज्जा से मैं रामजी के पास आया और मुझे दीन जानकर प्रभु का मन मुझ पर प्रसन्न हुआ।

सुनु सुत भयउ कालवश रावन * सो किमि मानै परम सिखावन
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषण * भयउ तात निशिचरकुलभूषण
बन्धु वंश तैं कीन्ह उजागर * भजहु राम शोभासुखसागर

कुम्भकर्ण बोला—पुत्र, * रावण काल के वश हुआ है; वह अच्छी शिक्षा कैसे माने? भाई बिभीषण, तुम धन्य हो, राक्षसकुल के भूषणरूप हुए। भाई, तुमने वंश को उज्ज्वल किया। शोभा और सुख के सागर रामजी को भजो।


मन क्रम वचन कपट तजि, भजहु तात रघुबीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहिं, भयउँ कालवश बीर॥

भाई, कपट छोड़कर मन, कर्म और वचन से रघुनाथ को भजो। हे वीर, अब जाओ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझ पड़ता; क्योंकि काल के वश हूँ।

बन्धुवचन सुनि फिरा बिभीषण * आयउ जहँ त्रैलोक्यविभूषण
नाथ भूधराकार शरीरा * कुम्भकर्ण आवत रणधीरा

भाई के वचन सुन बिभीषण लौटे और जहाँ तीनों लोक के भूषण रामचन्द्र थे, वहाँ आये। वे बोले—हे नाथ, पर्वत के समान शरीरवाले रणधीर कुम्भकर्ण आ रहे हैं।

इतना कपिन सुना जब काना * किलकिलाइ धाये बलवाना
लिये उपारि बिटप अरु भूधर * कटकटाइ डारे तेहि ऊपर

यह सुन किलकिलाकर बलवान् वानर दौड़े। उन्होंने पर्वत व वृक्ष उखाड़े और कट-कटाकर उस पर फेंके।

कोटि कोटि गिरि शिखर प्रहारा * करहिं भालु कपि एकहिं बारा
गिरै न मुरै टरै नहिं टारे * जिमि गज आक फलन के मारे

रीछ और वानर करोड़-करोड़ पर्वत-शिखरों का प्रहार एक ही बार करते हैं; परन्तु कुम्भकर्ण न गिरता, न मुड़ता और न टाले टलता है, जैसे मदार के फलों के मारने से हाथी।

तब मारुतसुत मुष्टिक हनेउ * परेउ धरणि व्याकुल शिरधुनेउ
पुनि उठि तेह मारेउ हनुमन्तहिं * घुर्मित घायल परेउ तुरन्तहिं

तब पवन के पुत्र ने कुम्भकर्ण के घूँसा मारा, जिससे व्याकुल हो वह पृथ्वी पर गिर

* छोटा भाई भी पुत्र के ही समान होता है।

पड़ा और सिर धुनने लगा। फिर उठकर उसने हनुमानजी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़े।

पुनिनलनीलहिं अवनिपछारेसि * जहँ तहँपटकिपटकिभट डारेसि
चली बलीमुख सेन पराई * अतिभयत्रसित न कोउसमुहाई

फिर नल-नील को पृथ्वी पर पटक दिया; जहाँ-तहाँ योद्धाओं को पटक-पटककर पृथ्वी में डाल दिया। वानरों की सेना भाग चली; उनमें से बहुत डर से घबराये हुए कोई सामने नहीं जाते हैं।



अंगदादि कपि मूर्च्छित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहँ, चला अमित बलसीव॥

बलवान् कुम्भकर्ण सुग्रीव-समेत अंगद आदि वानरों को मूर्च्छित कर वानरराज सुग्रीव को बगल में दबाकर ले चला।

उमा करत रघुपति नरलीला * खेलगरुड़जिमिअहिगण मीला
भृकुटि भङ्ग जिहि कालहि खाई * ताहि कि ऐसी सोह लराई

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रघुनाथ मनुष्यों की सी लीला करते हैं, जैसे साँपों में मिलकर गरुड़ खेले। जिनकी भौंह का टेढ़ा होना काल को खा जाता है, उन्हें क्या ऐसा युद्ध सोहता है? परन्तु—

जगपावनि कीरति विस्तरहीं * गाइ गाइ नर भवनिधि तरहीं
मूर्च्छा गइ मारुतसुत जागा * सुग्रीवहिं तब खोजन लागा

संसार को पवित्र करनेवाला यश फैलाते हैं, जिसे गा-गाकर मनुष्य संसारसागर को तर जाते हैं। मूर्च्छा गई; तब पवन के पुत्र हनुमान्जी जागे और सुग्रीव को ढूँढ़ने लगे।

कपिराजहु की मूर्च्छा बीती * निबुकिगयउ तेहिमृतकप्रतीती
काटेसि दशन नासिका काना * गर्जि अकाश चला तेहि जाना

वानरराज सुग्रीव को भी होश आया तो वह कुम्भकर्ण की बगल से निकल गये; परन्तु कुम्भकर्ण ने उन्हें मरा जाना। सुग्रीव ने दाँतों से उसके नाक-कान काट लिये और गर्जकर आकाश को चले गये। यह जानते ही उसने—

गहेसि चरणधरि धरणि पछारा * अतिलाघव पुनिउठितेहिं मारा
पुनि आयउ प्रभु पहँ बलवाना * जयति जयति जय कृपानिधाना

पैर पकड़कर सुग्रीव को पृथ्वी पर पछाड़ दिया। तब बड़ी फुर्ती से उठकर फिर सुग्रीव ने उसे मारा। बलवान् सुग्रीवजी दयानिधान रघुनाथजी की जय-जय कहते हुए प्रभु के पास आये।

नाक कान काटे तेहि जानी * फिरा क्रोधकरि मानि गलानी

सहजभीम पुनि बिनु श्रुति नासा * देखत कपिदल उपजी त्रासा

नाक-कान कटे जान कुम्भकर्ण को बड़ा क्रोध हुआ। तब वह मन में ग्लानि मानकर लौटा। एक तो ऐसे ही डरावना था, दूसरे उसे बिना नाक-कान का देख वानरों की सेना में भय उत्पन्न हुआ।



जय जय जय रघुबंसमनि, धाये कपि करि हूह।
एकहि बार जो तासु पर, डारे गिरि तरु जूह॥

'रघुवंशमणि रघुनाथजी की जय हो' कहते हुए हू-हू शब्द करके वानर दौड़े और एक ही बार जो उसके ऊपर पर्वत और वृक्ष डाले—

कुम्भकर्ण रण रंग बिरुद्धा * सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई * जिमि टीड़ी गिरि गुहा समाई

तो युद्ध के रङ्ग में वैरी कुम्भकर्ण क्रोध करके काल के समान उनके सामने चला। वह करोड़ों वानरों को पकड़-पकड़ खाने लगा। जैसे टीड़ियाँ पहाड़ की गुफा में पैठती हों, वैसे ही वानर उसके मुख में समा रहे थे।

कोटिन गहि शरीर सन मर्दा * कोटिन मींजि मिलायसि गर्दा
मुख नासिका श्रवण की बाटा * निकसि पराहिं भालु कपि ठाटा

करोड़ों वानरों को पकड़कर उसने देह से मल डाला और करोड़ों को मींजकर गर्द में मिला दिया। पर उसके मुख, नाक और कानों के रास्ते वानर निकलकर भाग जाते हैं।

रण मदमत्त निशाचर दर्पा * मानहु बिश्वग्रसन कहँ अर्पा
मुरे सुभट रण फिरहिं न फेरे * सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे

युद्ध के मद से मतवाले कुम्भकर्ण ने मानो सारे संसार को निगलने का इरादा कर लिया। युद्धभूमि से योद्धा लौट पड़े, फेरने से नहीं लौटते, आँखों से नहीं देखते और न पुकारने से सुनते हैं।

कुम्भकर्ण कपिसेन बिडारी * सुनि धाये रजनीचर भारी
देखी राम बिकल कटकाई * रिपु अनीक नाना बिधि आई

कुम्भकर्ण ने वानरों की सेना को भगा दिया, यह सुन सब राक्षस दौड़े। रामजी ने देखा कि सेना व्याकुल हो गई और अनेक भाँति की शत्रु-सेना आ गई।



सुनु सौमित्रि बिभीषण, सकल सँभारहु सैन।
मैं देखौं खलबल दलहिं, बोले राजिव नैन॥

तब कमलनयन रामजी बोले—हे लक्ष्मण, हे विभीषण, तुम तो सब सेना को सँभालो और मैं दुष्टों का बल और सेना देखूँ—

करशारंगविशिख कटिभाथा * अरिदलदलन चले रघुनाथा
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टँकोरा * रिपुदल बधिर भयउ सुनि शोरा

हाथ में धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किये रामजी शत्रु की सेना को मारने चले। पहले रामजी ने धनुष की डोरी बजाई, जिसका शब्द सुनकर शत्रु की सेना बहरी हो गई।

धनु सन्धानि छाँड़ शर लक्षा * काल सर्प जनु चले सपक्षा
अतिबल चले निकर नाराचा * लगे कटन भट बिकट पिशाचा

फिर धनुष चढ़ाकर रामचन्द्र ने लाखों बाण छोड़े, जो पंखोंवाले कालरूप साँपों की भाँति चले। बड़े जोर से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस वीर कटने लगे।

कटहिं चरण शिरउर भुजदण्डा * बहुतक बीर होहिं शतखण्डा
घुर्मि घुर्मि घायल भट परहीं * उठहिं सँभारि सुभट फिरि लरहीं

उनके पैर, सिर और भुजाएँ कट जाती हैं तथा बहुत-से वीर सौ-सौ खण्ड हो जाते हैं। घायल योद्धा घूम-घूमकर गिरते, सँभलकर उठते और फिर लड़ते हैं।

लागत बाण जलद जिमिगाजें * बहुतक देखि कठिन शर भाजें
रुण्ड प्रचण्ड मुण्ड बिन धावहिं * धरु धरु मारु मारु गोहरावहिं

बाण लगते ही राक्षस मेघों की तरह गर्जते और फिर बहुत कठिन बाणों को देख भागते हैं। बिना सिर के भयानक रुण्ड दौड़ते और 'पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो' पुकारते हैं।



क्षणमहँ प्रभुके शायकन्ह, काटे बिकट पिशाच।
पुनि रघुपति के त्रोणमहँ, प्रविशे आइ नराच॥

रामजी के बाण क्षणभर में भयङ्कर राक्षसों को काटकर फिर उनके तरकस में पैठ गये।

कुम्भकर्ण मन दीख विचारी * क्षणमहँ हते निशाचर भारी
भयो क्रोध दारुण बलवीरा * करि मृगनाथकनाद गँभीरा

कुम्भकर्ण ने मन में विचारकर देखा कि क्षणभर में इन्होंने सब राक्षस मार डाले। तब बलवान् और वीर भयङ्कर कुम्भकर्ण को बड़ा क्रोध हुआ। उसने जोर से सिंहनाद किया।

कोपि महीधर लियो उपारी * डारेसि जहँ मर्कट भट भारी
आवत देखि शैल प्रभु भारे * शरन काटि रजसम करिडारे

क्रोधकर कुम्भकर्ण ने एक पर्वत उखाड़ लिया और जहाँ बड़े योद्धा वानर थे, वहाँ उसे डाल दिया। स्वामी रघुनाथ ने बड़ा भारी पर्वत आता देख बाणों से काटकर उसे धूल कर दिया।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक * छाँड़े अति कराल बहु शायक
तनुमें प्रविशि निसरि शर जाहीं * जिमि दामिनि घन माहिं समाहीं

फिर क्रोधकर रघुनाथजी ने धनुष तानकर बड़े भयंकर बहुत-से बाण छोड़े। राक्षस के शरीर में पैठकर बाण कैसे निकल जाते हैं, जैसे बिजली मेघ में समा जाती है।

शोणित स्रवै सोह तनु कारे * जिमि कज्जल गिरि गेरु पनारे
बिकल बिलोकि भालुकपिधाये * बिहँसा जबहिंनिकटचलि आये

काले शरीर में बहता रक्त वैसा ही शोभित होता है, जैसे कज्जल पर्वत से गेरू के पनारे बह रहे हों। उसे व्याकुल देख रीछ और वानर दौड़े। जब वे पास आये तो कुम्भकर्ण हँसा।



गर्जेउ धायउ वेग अति, कोटि कोटि गहि कीश।
महि पटकै गजराज इव, शपथ करै दशशीश॥

गर्जता हुआ कुम्भकर्ण करोड़-करोड़ वानरों को पकड़कर बड़े वेग से दौड़ता, हाथी की भाँति पटकता और रावण की कसम खाता है।

भागे भालु कपिन के यूथा * वृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा
चले भागि कपि भालु भवानी * बिकल पुकारत आरत बानी

रीछों और वानरों के समूह ऐसे भागे, जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ें भागती हैं। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, वानर और रीछ भाग चले और व्याकुल हो दुःखित वाणी से पुकारने लगे।

यह निशिचर दुकालसम अहई * कपिकुलदेश परन अब चहई
कृपावारिधर राम खरारी * पाहि पाहि प्रणतारतिहारी

वानर कहने लगे—यह राक्षस अकाल के समान है, जो अब वानरसमूह रूप देश पर पड़ना चाहता है। हे खरारि, प्रणतदुःखहारी, दया के मेघ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

करुणा वचन सुनत भगवाना * चले सुधारि शरासन बाना
राम सेन निज पाछे घाली * चले सकोप महाबलशाली

करुणाभरे वचन सुन बड़े बली भगवान् रामजी ने धनुष सुधारकर उस पर बाण चढ़ाये और सेना को पीछे कर क्रोध समेत चले।

खैंचि धनुष शत शर संधाने * छूटे तीर शरीर समाने
लागत शर सँभारि सो फिरा * कुधर डगमगेउ डोली धरा

धनुष खींचकर उसमें सौ बाण लगाये। वे छूटकर कुम्भकर्ण के शरीर में घुस गये। बाण लगते ही वह सँभलकर घूमा; तब पहाड़ डगमगाने और पृथ्वी हिलने लगी।

लीन्हों तेहि इक शैल उपाटी * रघुकुलतिलक भुजा सो काटी
धावा वाम बाहु गिरिधारी * प्रभु सोउ भुजा काटि महि डारी

उसने एक पहाड़ उखाड़ लिया, तब रघुवंश-तिलक रामजी ने उसकी वह भुजा काट

डाली। तब कुम्भकर्ण बायें हाथ में पहाड़ लेकर दौड़ा। प्रभु ने वह भुजा भी काटकर पृथ्वी में डाल दी।

काटे भुज सोहै खल कैसे * पक्षहीन मन्दर गिरि जैसे
उग्रविलोकनि प्रभुहिं बिलोका * मानहु ग्रसन चहत त्रैलोका

भुजाओं के कट जाने से दुष्ट कुम्भकर्ण वैसा ही सोहता है, जैसे पंखों से हीन मन्दराचल। भयंकर दृष्टि से उसने रघुनाथजी को ऐसे देखा, मानों तीनों लोकों को लील लेना चाहता हो।



करि चिक्कार मुख घोर अति, धावा बदन पसार।
गगन सिद्ध सुर त्रास अति, हाहाकार पुकार॥

बड़ा भयंकर शब्द कर वह मुख फैलाकर दौड़ा। तब आकाश में सिद्धों और देवताओं को बड़ा भय हुआ। वे हाहाकार करने लगे।

सभय देव करुणानिधि जाने * श्रवण प्रयन्त शरासन ताने
विशिखनिकरनिशिचरमुखभरेऊ * तदपि महाबल भूमि न परेऊ

दयानिधान रामजी ने देवताओं को डरा जानकर कानों तक धनुष खींचा। फिर बाणों से राक्षस कुम्भकर्ण का मुख भर दिया। परन्तु वह महाबली फिर भी भूमि में न गिरा।

शरन भरा मुख सम्मुख धावा * कालत्रोण सजीव जनु आवा
तब प्रभु कोपि तीव्र शर लीन्हा * धड़ से भिन्न तासु शिर कीन्हा

बाणों से जिसका मुख भरा है, ऐसा कुम्भकर्ण दौड़ा, मानो जीव धारण किये काल का तरकस आ रहा है। प्रभु ने क्रोध करके एक पैना बाण लिया, और उससे उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

सो शिर परा दशानन आगे * विकलभयउजिमिफणिमणित्यागे
धरणि धसै धर धाव प्रचण्डा * तब प्रभुशरहत कृत युगखण्डा

वह सिर रावण के आगे गिरा। उसे देख रावण वैसे ही व्याकुल हुआ, जैसे मणि चली जाने से साँप विकल हो। कुम्भकर्ण का भयानक रुण्ड दौड़ने लगा। तब प्रभु ने बाण से काटकर उसके दो खण्ड कर डाले।

परे भूमि जिमि नभते भूधर * हेठ दाबि कपि भालु निशाचर
तासु तेज प्रभु वदन समाना * सुरमुनि सबहिं अचम्भा माना

दोनों खण्ड पर्वतों की भाँति गिर पड़े तथा वानरों, रीछों और निशाचरों को नीचे दबा दिया। उसके शरीर से प्राणों की ज्योति निकलकर रामजी के मुख में पैठ गई। इस पर देवता और मुनि, सबने आश्चर्य माना।

नभ दुन्दुभी बजावहिं हर्षहिं * जय जय कहि प्रसून सुर वर्षहिं
करि बिनती सुर सकल सिधाये * तब तेहि समय देव ऋषि आये

देवता आकाश में नगाड़े बजाते और प्रसन्न हो 'जय जय' कहते हुए फूल बरसाते हैं। बिनती कर सब देवता चले गये। तब नारदजी आये।

गगनोपरि हरिगुणगण गाये * रुचिर वीररस प्रभुहिं सुनाये
बेगि हतहु खल मुनि कहि गये * राम समर महँ शोभित भये

उन्होंने आकाश में भगवान् के गुण गाये और रघुनाथजी को सुन्दर वीररस सुनाया। चलते समय नारद मुनि कह गये कि दुष्ट रावण को शीघ्र ही मारिए। तब रामजी युद्ध में सुशोभित हुए।

छन्द

संग्रामभूमि बिराज रघुपति अतुल बल शोभाधनी।
श्रमबिन्दुमुख राजीवलोचन रुचिर तनु शोणितकनी॥
भुजयुगल फेरत शरशरासन भालु कपि चहुँदिशि बने।
कह दासतुलसी कहि न सक छवि शेष जेहि आननघने॥

बड़े बली शोभा की खान रघुनाथजी समरभूमि में शोभित हैं। मुख में पसीने के बूँद हैं। कमल-सरीखे नेत्र हैं। सुन्दर शरीर पर रक्त की छींटें पड़ी हैं। दोनों भुजाओं से धनुष-बाण घुमा रहे हैं। चारों ओर रीछ और वानर सोहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह छवि बहुत मुखवाले शेष भी नहीं कह सकते।



निशिचर अधममलाकरतनु, ताहि दीन निजधाम।
गिरिजा ते नर मन्द मति, जे न भजहिं श्रीराम॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, पाप की खान, अधम योनि में उत्पन्न नीच राक्षस को भी भगवान् ने अपना स्थान दिया, वे मन्दमति हैं, जो रामजी को नहीं भजते।

दिनके अन्त फिरीं दोउ अनी * समर भयो सुभटन्ह सन घनी
रामकृपा कपिदल बल बाढ़ा * जिमि तृणपाय लाग अतिडाढ़ा

दिन के अन्त में दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। इस प्रकार योद्धाओं से बड़ा युद्ध हुआ। रामजी की दया से वानरों की सेना का बल बढ़ गया, जैसे तृण पाकर दावानल (जंगल की आग) बढ़ती है।

छीजहिं निशिचर दिनअरुराती * निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती
बहु बिलाप दशकन्धर करई * पुनि पुनि बन्धु शीश उर धरई

दिन-रात राक्षस वैसे ही छीजते हैं, जैसे अपने मुख से कहने से पुण्य का क्षय होता है। रावण बहुत विलाप करता और बार-बार भाई का सिर हृदय से लगाता है।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी * तासु तेज बल विपुल बखानी
मेघनाद तेहि अवसर आवा * कहि बहु कथा पितहिं समुझावा

उसका बहुत तेज और बल कह-कह स्त्रियाँ छाती पीटती और रोती हैं। उस समय मेघनाद आया, और बहुत-सी कथाएँ कहकर उसने अपने पिता को समझाया—

देखेहु कालिह मोरि मनुसाई * अबहिं बहुत का करौं बड़ाई
इष्टदेव से वर रथ पायउँ * सो वर तात न तुमहिं सुनायउँ

बोला—कल मेरा पौरुष देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? इष्ट देवता से मैंने वरदान में रथ पाया है। पिताजी, मैंने वह वरदान आपसे नहीं बताया था।

इहिविधि जल्पत भयो बिहाना * लगे भालु कपि चहुँ दिशिनाना
इत कपि भालु कालसम वीरा * उत रजनीचर अति रणधीरा
लरहिं सुभट निजनिज जयहेतू * वरणि न जाय समर खगकेतू

इस प्रकार कहते-सुनते प्रातःकाल हो गया। तब अनेक भाँति के रीछ और वानर चारों दिशाओं में अपने-अपने मोर्चों पर डट गये। इधर काल के समान वीर वानर और रीछ हैं और उधर युद्ध में बड़े निपुण राक्षस। हे गरुड़, अपनी-अपनी जीत के लिए योद्धा लड़ते हैं। वह युद्ध कहा नहीं जा सकता।



मेघनाद मायामय, रथचढ़ि गयउ अकास।
गर्जांप्रलयपयोदजिमि, भा कपिदल अतित्रास॥

मायामय रथ पर चढ़कर मेघनाद आकाश में पहुँचा और प्रलयकाल के मेघों के समान गर्जा, जिससे वानरी सेना में भारी भय आ गया।

शक्ति शूल शर परिघ कृपाला * अस्त्र शस्त्र कुलिशायुध नाना
डारै परशु प्रचण्ड पषाना * लागा वृष्टि करन विधि नाना

शक्ति, शूल, बाण, बेलन, खड्ग, वज्र, फरसा आदि अनेक प्रकार के शस्त्र और प्रचण्ड पत्थर मेघनाद अनेक भाँति से बरसाने लगा।

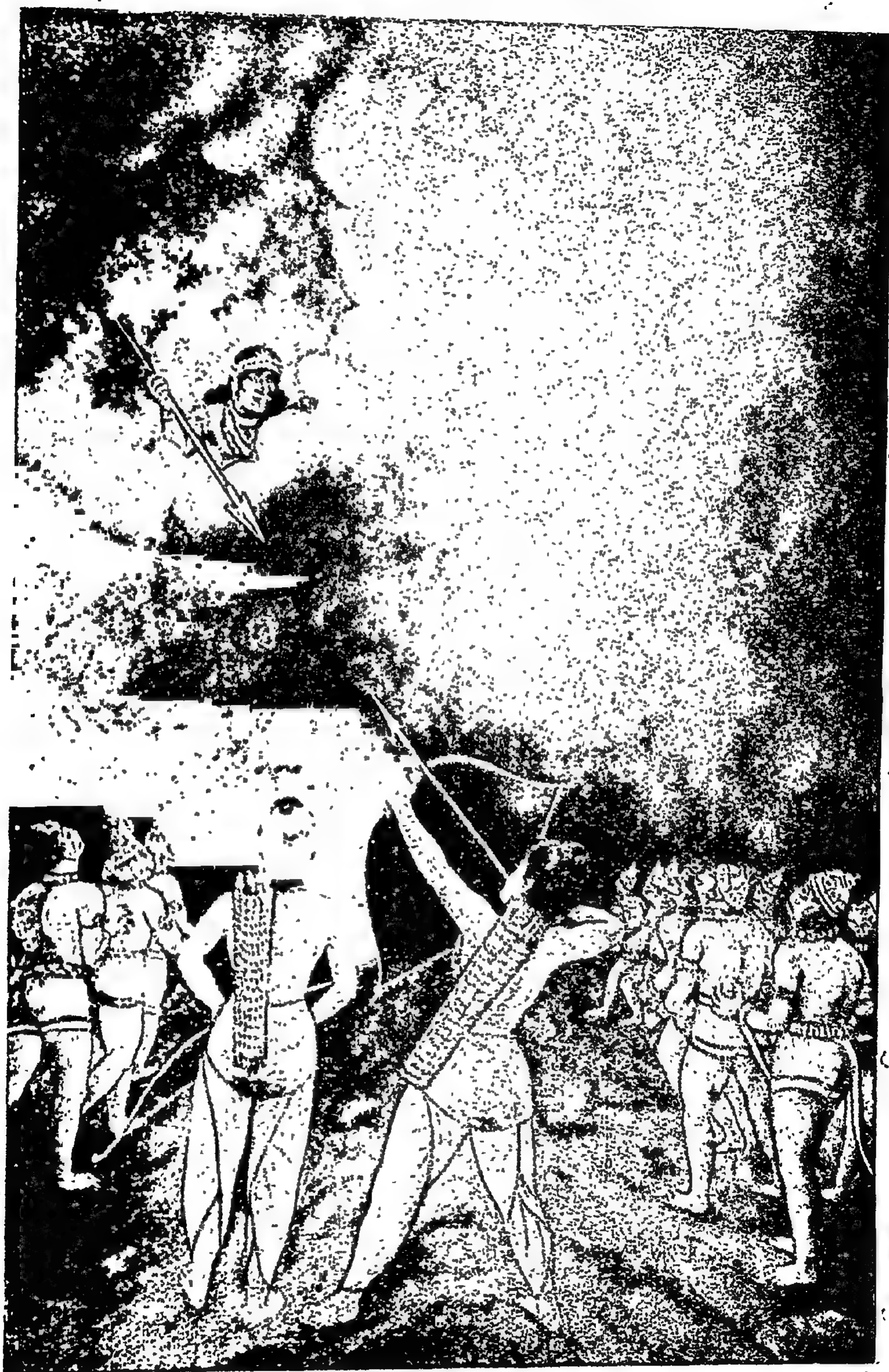
रहे दशहुँ दिशि शायक छाई * मानहु मघा मेघ झरिलाई
धरुधरु मारु सुनहिं कपि काना * जो मारै तेहि काहु न जाना

दशों दिशाओं में बाण छा रहे हैं, मानो मघा नक्षत्र में मेघों ने बड़ी झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ लो, मारो' आदि शब्द वानर कानों से सुनते थे; परन्तु जो मारता था, उसे कोई नहीं जानता था।

गहिगिरितरुअकाशकपिधावहिं * देखहिंतेहिनदुखितफिरिआवहिं
औघट घाट बाट गिरि कन्दर * मायाबल कीन्हेसि शरपञ्जर

पर्वत और वृक्ष ले-लेकर वानर आकाश में दौड़ते हैं। परन्तु उसे न देख दुखित हो लौट आते हैं। न जाने योग्य स्थान, मार्ग और पर्वत-कन्दराओं का भी मेघनाद ने मायाबल से बाणों का पींजरा बना दिया।

मेघनाद का माया-युद्ध



मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जा प्रलय पयोद जिमि, भा कपिदल अति त्रास॥

जाहिं कहाँ व्याकुलभय बन्दर * सुरपति बन्दि परे जनु मन्दर
मारुतसुत अंगद नलनीला * कीन्हेसि बिकलसकलबलशीला

अब भय से व्याकुल वानर कहाँ जायँ? मन्दर आदि पर्वत जैसे इन्द्र के बन्धन में पड़े थे, वैसे ही वानर भी मेघनाद के बाणों से घिर गये। पवनपुत्र, अंगद, नल, नील आदि सब बलवानों को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषण * शरन मारि कीन्हेसि जर्जर तन
पुनि रघुपति सन जूझै लागा * शर छाँड़त होइ लागहिं नागा

इन्द्रजीत ने बाण मारकर लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण के शरीर जर्जर कर दिये। फिर रघुनाथजी से युद्ध करने लगा। जो बाण छोड़ता है, वे रघुनाथजी के साँप होकर लिपट जाते हैं।

नागपाश वश भये खरारी * स्ववश अनन्त एक अविकारी
नट इव कपट चरितकर नाना * सदा स्वतन्त्र राम भगवाना
रणशोभा हित आपु बँधावा * देखि दशा देवन दुख पावा

अपने वश, अनन्त, अद्वितीय और विकाररहित खरारि रामजी नागपाश में बँध गये। सदा अपने ही अधीन रहनेवाले भगवान् रामजी नट की भाँति अनेक कपट-चरित्र (मनुष्य-लीला) करते हैं। युद्ध की शोभा के लिए उन्होंने आप अपने को बँधा लिया। पर उनकी दशा देख देवताओं ने दुःख पाया।



खगपति जाकर नामजपि, नर काटहिं भवपास।
सो प्रभु आव कि बन्धतर, व्यापक विश्वनिवास॥

हे गरुड़, जिसका नाम जपकर मनुष्य संसार के बंधन को काट डालते हैं, वे संसार भर में व्याप्त और संसार का आश्रय प्रभु क्या कभी किसी बन्धन में आ सकते हैं?

चरित राम के सगुण भवानी * तरकि न जायँ बुधिबल बानी
अस बिचारि जे परम बिरागी * रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, रामजी के सगुण चरित्रों की बुद्धि, मन और वाणी से तर्कणा नहीं की जा सकती। ऐसा विचारकर जो बड़े वैरागी हैं, वे सब तर्क छोड़कर रामजी को भजते हैं।

व्याकुल कटक कीन्ह घननादा * पुनि भा प्रकट कहत दुर्बादा
जाम्बवान कह खल रहु ठाढ़ा * सुनिकरि ताहि क्रोध अति बाढ़ा

मेघनाद ने सारी सेना को व्याकुल कर दिया और वह दुर्वचन कहता हुआ प्रकट हुआ। जाम्बवान् ने कहा—दुष्ट, खड़ा रह। यह सुन उसके बड़ा क्रोध बढ़ा—

बूढ़ जानि शठ छाँड़ेउँ तोहीं * लागेसि अधम प्रचारन मोहीं

असकहि तरल त्रिशूल चलावा * जाम्बवान सो करगहि धावा

यह बोला—हे शठ, बूढ़ा जान मैंने तुझे छोड़ दिया था ; परन्तु हे अधम ! तू मुझे ललकारता है। ऐसा कहकर उसने अपना पैना त्रिशूल चलाया। उस त्रिशूल को हाथ में पकड़कर जाम्बवान् दौड़े—

मारेउ मेघनाद की छाती * परा धरणि घुर्मित सुरघाती

पुनि रिसाय गहि चरण फिरावा * महि पछारि निज बल दिखरावा

और मेघनाद की छाती में मारा। देवताओं को मारनेवाला मेघनाद घूमकर पृथ्वी में गिर पड़ा। फिर क्रोध से उसके पाँव पकड़कर घुमाया और पृथ्वी में पछाड़कर जाम्बवान् ने अपना बल दिखाया।

वर प्रसाद सो मरै न मारा * तब पद गहि लंका पर डारा

इहाँ देवऋषि गरुड़ पठाये * रामसमीप सपदि चलि आये

जब वरदान के कारण मारे न मरा, तब उन्होंने पैर पकड़कर उसे लंका में फेंक दिया। यहाँ नारदजी ने गरुड़ को भेजा, जो शीघ्र ही चलकर रामजी के पास आये।



पन्नगारि खाये सकल, क्षणमहँ व्याल बरूथ।
माया विगत भई सब, हर्षे वानर यूथ॥

साँपों के वैरी गरुड़ क्षण भर में सब साँपों को खा गये। सब माया जाती रही। तब वानर प्रसन्न हुए।

गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीश रिसाइ।
भगे तमीचर विकल तब, गढ़ पर चले पराइ॥

पहाड़, वृक्ष, पत्थर और नखरूप अस्त्र लेकर क्रोध से वानर दौड़े। तब विकल राक्षस लंकागढ़ को भागे।

मेघनाद कै मूर्छा जागी * पितहिं विलोकि लाज अति लागी

तुरत गयो सो गिरिवर कन्दर * करौं अजयमख अस मनमहँ धर

मेघनाद की मूर्च्छा जगी तो बाप को देख उसे बड़ी लज्जा लगी। वह तुरन्त ही पहाड़ की कन्दरा में गया और सोचा कि अब मैं अजय यज्ञ करूँ, जिससे मुझे कोई जीत न सके।

अस सुधिपाइ विभीषण कहई * सुनु प्रभु समाचार अस अहई

मेघनाद मख करै अपावन * खल मायावी देवसतावन

ऐसी खबर पाकर विभीषण कहने लगे—हे प्रभु, सुनिए, ऐसा हाल है कि दुष्ट, मायावी, देवताओं को सतानेवाला मेघनाद अब एक अपवित्र यज्ञ कर रहा है।

जो प्रभु सिद्ध होन सो पाइहि * नाथ वेगि रिपु जीति न जाइहि

सुनि रघुपति अतिशय सुख माना * बोले अङ्गदादि कपि नाना

हे प्रभु, यदि वह सिद्ध हो पायेगा तो हे नाथ, वह शत्रु शीघ्र न जीता जा सकेगा। यह सुन रघुनाथ ने बड़ा सुख माना और अंगद आदि अनेक वानरों से कहा—

लछमण सङ्ग जाहु सब भाई * करहु विध्वंस यज्ञ कर जाई
तुम लछमण रण मारेहु वोहीं * देखि सभय सुर दुख अति मोहीं

भाइयो, तुम लछमण के साथ जाकर यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डालो। हे लछमण, युद्ध में तुम उसे मार डालना; क्योंकि देवताओं को डरे हुए देख मुझे बड़ा दुःख है।

जाम्बवन्त सुग्रीव विभीषण * सेन समेत रहेउ तीनिउ जन
जब रघुवीर दीन अनुशासन * कटि निषंग कसि साजि शरासन

हे जाम्बवान्, हे सुग्रीव, हे विभीषण, सेना-समेत तुम तीनों साथ ही रहना। जब रघुनाथजी ने ऐसी आज्ञा दी तो कमर में तरकस कसकर और धनुष साजकर—

प्रभुप्रताप उर धरि रणधीरा * बोले घनइव गिरा गँभीरा
जो तेहि आजु बधे बिन आवौं * तौ रघुपति सेवक न कहावौं
जो शत शङ्कर करहिं सहाई * तदपि हतौं रघुवीर दोहाई

प्रभु का प्रताप हृदय में रख युद्ध में निपुण लछमणजी मेघ की-सी गंभीर वाणी से बोले—आज उसे मारे बिना आऊँ तो रघुनाथ का सेवक न कहाऊँ। यदि सैकड़ों शिव उसकी सहायता करें तो भी मैं उसे मारूँगा, यह म रघुनाथ की सौगन्द खाकर कहता हूँ।

दो० रघुपति चरण नाइ शिर, चले तुरन्त अनन्त।
अंगद नील मयंद नल, संग सुभट हनुमन्त॥

रघुनाथजी के चरणों में माथा नवाकर तुरन्त लछमणजी चले। साथ में अंगद, नील, मयंद, नल और हनुमान् थे।

जाय कपिन देखा सोइ बैसा * आहुति देत रुधिर अरु भैंसा
कीन्ह कपिन तब यज्ञविध्वंसा * जब न उठै तब करहिं प्रशंसा

जाकर वानरों ने इंद्रजित को देखा कि वह रक्त और भैंसों की आहुतियाँ दे रहा है। तब वानरों ने यज्ञ में विघ्न डाला; जब न उठा तो उसे ललकारने लगे—

तदपि न उठहि धरहिं कच धाई * लातन हति हति चलहिं पराई
लै त्रिशूल धावा कपि भागे * आये जहँ रामानुज आगे

तो भी नहीं उठता; तब जाकर बाल पकड़ते और लातें मार-मारकर भागते हैं। तब त्रिशूल लेकर मेघनाद दौड़ा; वानर भागे और वह रामजी के छोटे भाई लछमण के आगे आया।

आवा परम क्रोधकर मारा * गर्ज घोर रव बारहिं बारा

कोपि मरुतसुत अंगद धाये * हति त्रिशूल उर धरणि गिराये

मेघनाद उठकर आया और बड़ा क्रोध करके त्रिशूल मारा तथा बार-बार भयंकर शब्द से गर्जा। तब क्रोध कर हनुमान् और अंगद दौड़े। उसने छाती में त्रिशूल मारकर इन्हें पृथ्वी में गिरा दिया।

प्रभु कहँ छाँड़ेसि शूल प्रचण्डा * शर हति कृत अनन्तयुग खण्डा
उठि बहोरि मारुति युवराजा * हतहिं कोपि तेहि घाउ न वाजा

प्रभु श्रीलक्ष्मणजी के ऊपर उसने भयंकर शूल छोड़ा, जिसके उन्होंने बाण से दो टुकड़े कर डाले। फिर हनुमान् और अंगद उठकर क्रोध से उसे मारते हैं; परन्तु वह घाव की पीड़ा को नहीं मानता।

फिरे वीर रिपु मरै न मारा * तब धावा करि घोर चिकारा
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला * लक्ष्मण छाँड़े विशिख कराला

सब वीर घूम पड़े। शत्रु मेघनाद मारे नहीं मरता। तब वह भयंकर शब्द करके दौड़ा। क्रोधित काल की तरह उसे आता देख लक्ष्मणजी ने उसके भयंकर बाण मारे।

देखिसि आवत पविसम बाना * तुरत भयो खल अन्तरधाना
विविध वेष धरि करै लराई * कबहुँक प्रकट कबहुँ दुरि जाई

वज्र के समान बाण आते देख दुष्ट मेघनाद तुरन्त अन्तर्द्धान (गायब) हो गया। अनेक भाँति के वेष रखकर मेघनाद लड़ाई करता है। कभी देख पड़ता और कभी छिप जाता है।

देखि अजय रिपु डरपे कीशा * परमक्रुद्ध तब भयो अहीशा
लक्ष्मण अस मन मन्त्र दृढ़ावा * यहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा

शत्रु को न जीतने योग्य देख वानर डर गये। तब लक्ष्मणजी बड़े क्रोधित हुए। लक्ष्मणजी ने यह विचार दृढ़ किया कि मैं इस पापी को बहुत खिला चुका।

सुमिरि कोशलाधीश प्रतापा * शर संधान कीन्ह अतिदापा
छाँड़ा बाण तासु उर लागा * मरती बार कपट सब त्यागा

तब अयोध्यानाथ रामजी का प्रताप स्मरणकर लक्ष्मणजी ने बड़े दर्प से धनुष में बाण चढ़ाया; बाण छोड़ते ही उसकी छाती में लगा। राक्षस ने मरते समय सब छल-कपट छोड़ दिया।



रामानुज कहि रामकहि, अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननि कहँ, कह अंगद हनुमान॥

'लक्ष्मण और राम' का नाम लेकर मेघनाद ने प्राण छोड़े। तब अंगद और हनुमान ने उसकी माता को धन्य कहा।

बिन प्रयास हनुमान उठाये * लंका द्वार राखि पुनि आये

तासु मरण सुनि सुर गन्धर्वा * चढ़ि विमान आये नभ सर्वा

हनुमान् ने बिना परिश्रम ही उसे उठा लिया और लंका के द्वार पर रखकर फिर आ गये। उसका मरना सुन सब देवता और गन्धर्व विमानों पर चढ़-चढ़कर आकाश में आये।

बरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिं * श्रीरघुवीर विमल यश गावहिं
अस्तुतिकरि सुरसकल सिधाये * लक्ष्मण कृपासिन्धु पहँ आये

फूल बरसाकर देवता नगाड़े बजाते हैं और रामजी का निर्मल यश गाते हैं। स्तुति करके सब देवता चले गये। तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु रामजी के पास आये।

मुख प्रसन्नता देखि पूछि जब * रिपुवध कहा विभीषण हूँ तब
प्रभुहिं विलोकि शीश पद नाये * उठि प्रभु अनुज हर्षि उर लाये

मुख की प्रसन्नता देखकर रामचन्द्रजी ने जब पूछा तो विभीषण ने 'हाँ' कहकर शत्रु के मारे जाने की सूचना दी। स्वामी को देखकर लक्ष्मण ने चरणों में माथा नवाया और रामजी ने उठकर छोटे भाई को हृदय से लगाया।

कृपादृष्टि करि अनुजहि हेरा * विगत भयो श्रम जब कर फेरा
बाणविद्ध तनु देखियत कैसे * कनकतूण शरपूरित जैसे

कृपादृष्टि से रामजी ने लक्ष्मण को देखा और हाथ फेरा, जिससे उनकी सारी थकावट जाती रही। लक्ष्मण का बाणों से बिंधा हुआ शरीर वैसा ही देख पड़ता है, जैसे बाणों से भरा स्वर्ण का तरकस हो।

अथ सुलोचनाकथा—क्षेपक



प्रभुआयसु सुनि कीशपति, राखेउ यत्न कराय।
कटक सहित रघुवंशमणि, शोभितअतिदोउभाय॥

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा को सुनकर वानरों के स्वामी सुग्रीवजी ने मेघनाद के सिर को यत्न से रक्खा। रघुवंशमणि दोनों भाई सेनासमेत अति शोभित हैं।

कृपादृष्टि सब कटक निहारे * भये श्रमरहित राम बैठारे
सुनहु उमा यहि विधि रिपु मारे * सुर नर मुनि सब भये सुखारे

कृपादृष्टि से श्रीरामजी ने सब सेना को देखा, तब सब थकावट से रहित हो गये और श्रीरामजी ने उनको बिठलाया। श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, इस भाँति जब लक्ष्मण ने शत्रु को मारा, तब देवता, मनुष्य व मुनि सभी सुखी हुए।

अब सो सुनहु भुजा तेहि केरी * खग जिमि गई लंक शर प्रेरी
मेघनाद आँगन में परी * बाण बेधि शोणितसन भरी

अब उस कथा को सुनो, जिस भाँति लक्ष्मण के बाण से भेजी हुई मेघनाद की भुज

पक्षी की तरह आकाशमार्ग से लंका को गई। बाण से कटी व रक्त से सनी हुई वह भुज जाकर मेघनाद के आँगन में गिरी।

राजति तहाँ सुलोचनि कैसी * रतिते रुचिर रूपगुण जैसी
नागसुता दशकन्ध पतोहू * वासवरिपुतिय छविमय जोहू

यहाँ मेघनाद की पत्नी सुलोचना कैसे सोहती है, जैसे कामदेव की पत्नी रति से भी सुन्दर रूप व गुणवाली स्त्री हो। वह नाग की कन्या व रावण की पतोहू और इन्द्र के वैरी मेघनाद की स्त्री है, जो कि शोभा की खान है।

हेमसिंहासन सोहति बाला * सेवत विद्याधरत्रिय माला
पूजत विविध विनयकर ताही * सुख प्रमोद को सकत सराही

वह बाला (स्त्री) सोने के सिंहासन पर बैठी है और विद्याधरों की स्त्रियों के झुंड इसकी सेवा करते हैं और अनेक भाँति की विनती कर इसको पूजते हैं। उस समय के सुख और आनन्द को कौन सराह सकता है।

तहँ पतिभुजा परी इहि भाँती * मनहु सकल सुखतरु की काँती

यहाँ पति की भुजा इस भाँति पड़ी है, मानो सब सुखरूपी वृक्षों को काटने के लिए काँती नामक अस्त्र हो।



तब निज दासिनदेखि तहँ, शोणित्रवत भुजदण्ड।
भयउ समर आश्चर्यमय, मनहु अखण्डनखण्ड॥

तब उसकी निज की दासियों ने रक्त बहाते हुए भुजदण्ड को देखकर कहा—बड़ा आश्चर्यमय युद्ध हुआ, जिससे न कटने योग्य वस्तु के भी खण्ड हो गये।

सुनकर सकल सखीमुख बैना * तजि सिंहासन उठी सुनैना
प्रेम सुभाय धुकधुकी धरकी * सूचक अशुभ दहिनभुजफरकी

सब सखियों के मुख से इस वचन को सुनकर सिंहासन छोड़कर सुलोचना उठी। प्रेम के स्वभाव से सुलोचना की धुकधुकी धड़कने लगी और अशुभ को बतलानेवाली उसकी दाहिनी भुजा फड़की।

होत महारण रावण रामहिं * वीर धुरीण मोर पिय तामहिं
सकल सुरासुर सकहिं न जूझी * विधि वामता परत नहिं बूझी

तब सुलोचना मन में सोचने लगी कि रावण व श्रीरामजी से बड़ा भारी युद्ध हो रहा है और वीरों में उत्तम मेरे पतिदेव उसी युद्ध में गये हैं। यद्यपि सब देवता व दैत्य मेरे पति से नहीं लड़ सकते, तो भी विधाता की वामता जानी नहीं जा सकती अर्थात् विधाता कब किसके प्रतिकूल हो जायगा, यह कोई नहीं जान सकता।

इतना कहत गई चलि आपू * पतिभुज लखिकर कोटिविलापू

कञ्चन मणिगण भूषण सोई * महाविटप सम आन न कोई

इतना कहती हुई वहाँ आप चलकर गई व पति की भुजा को देखकर करोड़ों तरह से विलाप करने लगी। सुवर्ण व मणियों के जड़े वे ही गहने हैं। बड़े भारी वृक्ष की शाखा के समान यह भुजा दूसरी नहीं है, यानी यह मेरे ही स्वामी की भुजा कटी पड़ी है।

देखत मनहि न आवत तेही * जासु प्रभाव सुना पहिलेही
नींद नारि भोजन परिहरही * बारह वर्ष तासु कर मरही

उस भुजा को देखती है तो भी उसके मन में पति के मरने का विश्वास नहीं आता; क्योंकि पहले ही जिसका यह प्रभाव सुना है कि बारह वष तक जो नींद, स्त्री व भोजन को छोड़ेगा, उसी के हाथ से यह मरेगा।



करि विचार मन टेकदै, मैं पतिदेवत नारि।
भुजलिखि मेटिहि दुचितही, सुनिकरदीन्हपसारि॥

फिर मन में विचारकर यह निश्चय किया कि मैं पतिव्रता स्त्री हूँ, इसलिए यह भुजा लिखकर मेरे सन्देह को मिटा देगी। यह सुनकर मेघनाद का हाथ फैल गया।

लखिरुख तासु सखी उठि धाई * सो तेहि खोजि खरी लै आई
दीन हाथ मणिमय अँगनाई * लिखत लषण कीरति रुचिराई

सुलोचना का रुख देखकर सखी उठकर दौड़ी। वह ढूँढ़कर खरियामिट्टी ले आई और हाथ में दे दी। तब वह हाथ मणिमय आँगन में लक्ष्मणजी के उत्तम यश को इस प्रकार लिखने लगा—

नींद नारि भोजन शत कोटी * तजत तासु महिमा अति छोटी
अछयअखण्डअलखअविनाशी * अतुल अमित घट घट केबासी

जो कोई सौ करोड़ बरस तक नींद, स्त्री व भोजन को छोड़ दे; तो भी उनके सामने उसकी महिमा बहुत छोटी है। जो अक्षय, अखण्ड, अलख, अविनाशी, अतुल, अमित और घट-घट के वासी हैं।

प्रगटहिं पालहिं पुनि संहरहीं * त्रिगुण रूप त्रयमूरति धरहीं
जो कालहु कर काल भयंकर * वर्णत शेष शारदा शंकर

जो सृष्टि को उत्पन्न करते, पालते और फिर संहार करते हैं, जो सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों के रूपों से ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन शरीरों को धारण करते हैं; जो मृत्यु के भी भयंकर काल हैं—यह शेष, सरस्वती व शिवजी कहते हैं।

लीला तनु सुर सेवक हेतू * जासु नाम भवसागर सेतू
मुनि मन पुंडरीक जाके घर * वचन विवेक विचार बुद्धिवर

देवताओं व सेवकों के लिए जो लीला-शरीर को धारण करते हैं, जिनका नाम संसार-

रूपी समुद्र के लिए पुल है। मुनियों के मनरूप कमल जिनके घर हैं, जो वचन, ज्ञान, विचार व बुद्धि में उत्तम हैं।



दो०—कोटि कल्प वर्णत निगम, अगम जासु गुण गाथ।
तम शरीर जड़ जीव बिनु, किमि बरनै लिखि हाथ॥

करोड़ों कल्पों तक कहकर भी जिनके गुणों की कथा को वेद भी नहीं वर्णन कर सकते, उनके गुणों को प्राणों के बिना यह जड़ शरीर हाथ से लिखकर कैसे वर्णन कर सकता है?

मम शिर गयो दरश रघुराई ✱ तव प्रतीति लगि भुजा पठाई
इहिविधिलिखेउसकलभुजबाता ✱ परी भूमि तब अति विकलाता

मेरा शीश श्रीरामजी के दर्शन के लिए गया है, और तुम्हारे विश्वास के लिए उन्होंने भुजा को यहाँ भेज दिया है। इस भाँति भुजा ने सब बात लिख दी। तब बहुत व्याकुल होकर सुलोचना भूमि में गिर पड़ी।

बाँचिसकलभुजलिखितयथारथ ✱ लक्ष्मण रामनाम परमारथ
नारि स्वभाव तदपि बहुभाँती ✱ विलखत सकलसखिनकरपाँती

भुजा के लिखे हुए यथार्थ वृत्तान्त को पढ़कर व परमार्थवाले लक्ष्मण व श्रीरामजी के नाम को बाँचकर भी स्त्री के स्वभाव से सब सखीगण के बीच वह बहुत प्रकार से विलाप करने लगी।

गुणगण साहस शील नाहको ✱ कहि रोवति बल विपुलबाँहको
जेहि भुजबल सुरनाथ बिगोवा ✱ सो भुज आज समरमहि सोवा

पति के गुणगण, साहस व शील और भुजा के बड़े भारी बल को कहकर सुलोचना रोती है। जिस भुजा के बल से देवताओं के राजा इन्द्र भाग गये थे; वही भुजा आज युद्ध की भूमि में सोती है।

मणिगण भूषण बसन बिसारत ✱ महिलोटत करतल शिरमारत
मगनविपति निजतनुसुधिनाहीं ✱ दारुणविपति कहिय केहिपाहीं

मणिगण, गहनों व वस्त्रों की उसे सुध नहीं है। पृथ्वी में लोटती है व हाथ को माथे पर मारती है। विपत्ति में डूबती है। अपने शरीर की खबर नहीं है; कठिन विपत्ति को किससे कहे।

छिनक प्रबोध सखी कोउ करहीं ✱ बहुरि शोक दावानल जरही
क्षण क्षण उठत परतधरणीतल ✱ पुनि पुनि सब सराह पतिकोबल

कोई सखी क्षणभर समझाती है। फिर सुलोचना शोक की दावानल में जलने लगती है। क्षण-क्षण भर में उठती है व पृथ्वी में गिर पड़ती है और बार-बार पति के सब बल को सराहती है।



तिनमें सखी सयान इक, कहि समुझावत बैन।
शोक छाँड़ि पति देवता, सुमति करौ मतिऐन॥

उन सबमें एक सयानी सखी इस प्रकार के वचन कहकर उसे समझाने लगी कि हे पतिव्रते, सुलोचने, शोच को छोड़कर उत्तम बुद्धि कीजिए, क्योंकि तुम तो बुद्धि की खान हो।

सुन कह सहसाननतनुजाता * सत्य कहत तुम सखी सुमाता
विधि निर्मित दुख मोकहँ लाहू * सुख परिपूर भवन सबकाहू

वासुकि की कन्या सुलोचना ने यह सुनकर कहा—हे उत्तम माता सखी! तुम सत्य कहती हो। यद्यपि सब सुखों से मेरा घर भरा है, परन्तु विधाता का दिया हुआ यह दुःख मुझको मिला।

विजय राम लछमण कहँ आवा * सुयश सकल मरकटकुल पावा
कुलकलंक बहु लहेउ विभीषन * कुलकलंक अस सुनेउ न दीखन

श्रीरामजी व लछमणजी को जीत मिली है व सब वानरों के वंश ने उत्तम यश को पाया। विभीषण ने कुल के बहुत कलंक को पाया; ऐसे कुल के कलंक को न सुना था, न देखा था।

छूटि बन्दि अब सुरगण केरी * निज निज पुरन दुहाई फेरी
पुनि पुलस्त्य कर भा कुलनाशा * अबरविशशिसुखकरहिंप्रकाशा

अब सुरगणों का बन्धन छूट गया और उन्होंने अपने-अपने नगर में दुहाई फेर दी है। फिर पुलस्त्य के वंश का नाश हो गया और अब सूर्य व चन्द्रमा सुख से प्रकाश करेंगे।

तेजवन्त पावक परिहरि दुख * बहहि समीर आज अपने सुख
सलिल गंग निर्मल जल आजू * स्ववश बसहिं सुरनायक राजू

दुःख को छोड़कर अग्निदेव का तेज पहले-जैसा हो गया और पवन आज बड़े सुख से चलते गंगा का जल आज निर्मल हो गया और देवताओं के राजा इन्द्र स्वतंत्र होकर रहेंगे।



यम कुबेर दिगपाल सब, प्रमुदित सुर नर नाग।
खायँ अघाय विहाय दुख, पाय सुयज्ञ विभाग॥

यम, कुबेर आदि दिक्पाल व सब देवता, मनुष्य और नाग प्रसन्न होंगे और उत्तम यज्ञों के भाग को पाकर देवता दुःख छोड़के तृप्त होंगे।

इतना कह मन्दिर महँ आई * देखत मणिगण धन बहुताई
सुरपति भवन सुपटतर नाहीं * जहँ ऋधिसिधि तनुधरे कमाहीं

इतना कहती हुई वह सुलोचना मंदिर में आई और मणिगण तथा धन की अधिकता को देखने लगी। इन्द्र का भवन भी उसके बराबर न था, जहाँ ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ देह धरे काम करती थीं।

देखत विभव न मन अनुरागा * पतिपद प्रेम निपुण मन पागा
देत दान मणि भूषण चीरा * धेनु बसन मणि हाटक हीरा

उस ऐश्वर्य को देखकर भी उसका मन प्रसन्न न हुआ; क्योंकि उसका निपुण प्रेम पति के चरणों की प्रीति में पगा था। मणि, भूषण, वस्त्र, गऊ, मणियाँ, सुवर्ण और हीरा दान में देने लगीं।

मणिमय शिबिका रुचिर सुहाई * भुज चढ़ाइ पहिराइ बनाई
आपुन चढ़त भई पुनि आई * सुर दुर्लभ सुखसदन बिहाई

फिर उसने मणिमय सुन्दर सुहावनी पालकी पर भुजा को अच्छी तरह से वस्त्र आदि पहनाकर चढ़ाया। फिर देवताओं को भी दुर्लभ सुख-परिपूर्ण घर को छोड़कर उसी पालकी पर आकर आप भी चढ़ी।

बीतराग जिमि तजत विषयगन * तेहि तस भाँति दियो पतिपद मन
शुक सारिका सुलोचनि ज्याये * कनक पींजरन राखि पढ़ाये

जिनका स्नेह सब वस्तुओं से छूट गया है, वे जैसे इन्द्रियों के विषयों को छोड़ देते हैं, वैसे ही उसने सब छोड़कर पति के चरणों में मन लगा दिया। सुलोचना ने जिन तोतों मैनाओं को पाला था और सोने के पींजड़ों में रखकर पढ़ाया था,

व्याकुल कहहिं कहाँ जात सुनयना * सुनि धीरज परिहरत सुबयना
भये बिकल खगमृग यहि भाँती * अपर दशा कैसे कहि जाती

वे व्याकुल होकर कहती हैं कि हे सुलोचना, कहाँ जाती हो? ऐसे मृदु वचन सुनकर उसका धीरज छूटा जाता था। इस भाँति जब पक्षी व मृग व्याकुल हो गये, तब और जीवों की दशा कैसे कही जा सकती है?


बाजन लगे निशान बहु, ढोल दुन्दुभी भेरि।
पुरजन परिजन संग सब, चले पालकी घेरि॥

बहुत-से निशान, ढोल, नगाड़े और भेरी आदि बाजे बजने लगे। पुरवासी लोग और सब कुटुम्बी पालकी को घेरकर चले।

देखि भीर दशकंधर द्वारे * सजग भये सब वीर प्रचारे
जानेउ कटक रिपुनकर आवा * अस्त्र शस्त्र कर गहिकर धावा

रावण के द्वार पर भीड़ देखकर सब योद्धा लोग होशियार हो गये व ललकारने लगे। उन्होंने यह जाना कि शत्रु की सेना आ गई, इससे अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में लेकर दौड़े।

धनु चढ़ाय कटि तरकस बाँधे * कोउ असि चर्म शरासन साँधे
तोमर परशु प्रचण्ड गदा गहि * सेलन चोखे शूल शक्ति लहि

धनुष को चढ़ाकर कोई कमर में तरकस बाँधते हैं और कोई ढाल, तलवार व धनुष व

सँभालते हैं। कोई तोमर, फरसे व भयंकर गदा को लेकर क्रोध से पैने शूल व शक्ति को हाथ में लेते हैं।

मारु मारु धरि धरि कहि धाये * प्रगट दशानन विजय सुनाये
गर्जत तर्जत गिरा गँभीरा * समर भयंकर निशिचर वीरा

वे सब मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो, कहकर दौड़े और प्रकट हो रावण की विजय सुनाई। वे गम्भीर वाणी से तर्जते-गर्जते वीर निशाचर युद्ध में बड़े भयंकर हैं।

निपटहिं निकट पालकी आई * चीन्ह सकल भट रहे लजाई
देखि जुहारि नागपतिकन्या * सतीशिरोमणि त्रिभुवनधन्या

जब बहुत ही समीप पालकी आई, तब सब योद्धा पहचानकर लजा गये। वासुकी की कन्या सुलोचना को देखकर उन्होंने जुहार की, जो कि पतिव्रताओं में शिरमौर और त्रिलोक में धन्य (प्रशंसनीय) थी।


द्वारपाल दशकन्ध कहँ, खबर जनाई जाय।
भयउ रजायसु वेगि तब, वचन कहत बिलखाय॥

द्वारपाल ने जाकर रावण को खबर दी कि सुलोचना आई है। तब रावण की आज्ञा हुई कि जल्दी आने दो। सुलोचना आकर विलाप कर यह वचन कहने लगी—

तुमहिं अछत अस दशा हमारी * सुख तजि भई शोक अधिकारी
नभपथ हो भुज मम गृह परी * बाण बेधि शोणित तनु भरी

तुम्हारे जीते हुए मेरी ऐसी दशा हुई, सुख को छोड़कर मैं शोच की अधिकारिणी हुई। बाण से कटी, रक्त से भरी हुई यह मेरे पति की भुजा आकाशमार्ग से आकर मेरे घर में गिरी थी।

देखि भुजा मनमें अति डरी * संशय जानि दीन्ह कर खरी
लिखी राम लक्ष्मण महिमा इन * क्रम क्रमसों सब कथा कही तिन

भुजा को देखकर मैं बहुत डरी और सन्देह जानकर खरिया मिट्टी हाथ में दी। इन्होंने राम और लक्ष्मण की महिमा लिखी और क्रम से उसने सब कथा कही।

ठगिसी रही बाँचि गुणगाथा * जरहुँ सङ्ग जो पाऊँ माथा
रण कबन्ध भुज ममगृह आई * शिर तहँ गयउ जहाँ रघुराई

उनके गुणों की कथा को सुनकर मैं ठगीसी रह गई। अब जो पति के सीस को पाऊँ तो साथ में जल जाऊँ। युद्ध में मस्तक के बिना शरीर है। भुजा मेरे घर में आई है तथा मस्तक वहाँ गया, जहाँ रघुनाथजी हैं।

करहु सोयल मिलहि जेहि शीशा * तुम सामर्थ निशाचरईशा
सुनत कुलिश सम गिरावधू की * जीवन आश दशानन मूकी

वह यत्न कीजिए, जिससे मस्तक मिले। हे निशाचरों के स्वामी, तुम बलवान् हो।
वज्र के समान पतोहू के वचन सुनकर रावण ने जीने की आशा छोड़ दी।

तदपि धीर धरि करत प्रबोधा * कह जग माहिं समान को योधा

तो भी धीरज धरकर समझाता है और कहता है कि संसार में मेरे समान कौन वीर है?



राम लषण सुग्रीव नल, नील द्विविद हनुमन्त।
साथ विभीषण ऋषभकर, आनब मारि तुरन्त॥

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, हनुमान्, विभीषण और ऋषभ को मारकर मैं जल्द शीश ले आऊँगा।

अब लगि रहेउ भरोसा भारी * कुम्भकर्ण घननाद सुरारी
महूँ आजलगि कीन्ह न जूझा * इन सबकर पुरुषारथ बूझा

अब तक मुझको बड़ा भारी भरोसा था कि देवताओं के वैरी कुम्भकर्ण और मेघनाद कुछ करेंगे। इससे मैंने आज तक युद्ध नहीं किया। अब इन सबका बल मैं जान गया—

मरे सो नर वानर के मारे * बात सुनत अतिलाज हमारे
गिनती कौन वीर में तिनकी * अतिदुर्दशा कीन्ह कपि जिनकी

कि वे मनुष्य और वानरों के मारने से मर गये। यह बात सुनते में मुझको बड़ी लाज लगती; क्योंकि उनकी वीरों में क्या गिनती है, जिनकी वानरों ने बड़ी दुर्दशा की।

तजहु शोक कुलवधू पतोहू * उन समान जनि मानसि मोहू
पुत्रि विलम्ब करो घटि चारी * देखहु मोर भयङ्कर मारी

हे कुलवधू, पतोहू, शोच को छोड़ दो; उनके समान मुझे मत मानो। हे पुत्री, चार घड़ी ठहर जाओ और मेरे बड़े भयङ्कर युद्ध को देखो।

आनि शीश लव शत्रुन केरा * बिनु प्रयास नहिं लावौं बेरा

भोगत जन्तु पुराकृत भोगा * नतु कत बनचर निशिचर योगा

तुम्हारे शत्रुओं का शीश विना परिश्रम के लाऊँगा; देर न करूँगा। सच है, पूर्वजन्म में किये हुए भोग को प्राणी भोगता है; नहीं तो वानरों और निशाचरों का क्या मुकाबिला। यानी वानर निशाचरों को कैसे मार डाले?



मेरु उखारनहार जे, धरा धरत कर बीच।
ते भट खाये मशकशिशु, काल कुटिलता नीच॥

जो राक्षस सुमेरुगिरि के उखाड़नेवाले थे और हाथ के बीच में पृथ्वी को रख लेते थे, उन योद्धाओं को मच्छड़ के बच्चों के समान वानरों ने खा लिया; यह सब नीच काल की कुटिलता है।

क्रोधावेश प्रगलभहिं बोली * हृदय शोकतनु अचल न डोली
समाधान नहिं मानत सोई * सुनि प्रताप परितोष न होई

क्रोध आ जाने से सुलोचना ढिठाई के वचन बोली। उसके हृदय में शोच है, इससे शरीर अचल है, अर्थात् खड़ी रही। उस समाधान को नहीं मानती; क्योंकि रावण के प्रताप को सुनकर प्रसन्नता नहीं होती।

नर वानर पुरुषारथ देखत * बड़ो प्रताप छोटकरि लेखत
कूदि सिन्धु कपि लंका जारी * लघुकरि मानत ताहि सुरारी

सुलोचना बोली—मनुष्यों और वानरों के बल को देखते हो, तो भी रामचन्द्र के बड़े भारी प्रताप को छोटा करके मानते हो। हे देवताओं के वैरी रावण, समुद्र को नाँघकर जिस वानर ने लंका को जला दिया, उसको छोटा करके मानते हो!

कुम्भकर्ण अतिकाय महोदर * ममपति गिरेउ समेत सहोदर
ते रिपु चहत दशानन जीती * देखहु महामोहकर रीती

कुम्भकर्ण, अतिकाय, महोदर और अपने भाइयों सहित मेरा पति जिनके साथ युद्ध करने में मारा गया, उन शत्रुओं को रावण जीतना चाहता है; इस महामोह (अज्ञान) की रीति को तो देखो।

उतर देउँ तौ पातक होई * कह विवादकर सर्वस खोई
फिरहि राज्य कछु मोहिं न काजू * बिनाप्रिय सकल नरककर साजू

तुमको जो जवाब दूँ, तो पाप होता है। सब कुछ खोकर विवाद करने से क्या लाभ? जो राज्य लौट आवे तो भी मेरा कुछ काम नहीं; क्योंकि पति के विना सब कुछ नरक का सामान है।

दो० तुरतहिं उठी सुलोचना, गइ मयतनया पास।
पदगहि रोवत सकल कह, प्रकट शोक इतिहास॥

यह विचारकर सुलोचना जल्दी उठी और मयतनया मन्दोदरी के पास गई। चरणों को पकड़कर रोने लगी और उसने सब शोच की कथा को साफ ही कहा।

आदिहि ते सब कथा बखानी * सुनि सुनि रोवत रावणरानी
कहनिजपतिभुजालिखित बहोरी * राम लषण महिमा नहिं थोरी

उसने शुरू से ही सब कथा कही। उसे सुन-सुनकर रावण की रानी मन्दोदरी रोती है। फिर उसने अपने पति की भुजा से लिखी हुई राम और लछमण की बड़ी महिमा को कहा।

कह्यो बहुरि दशकन्धर क्रोधा * मुये बिडम्बन कीन्हेसि बोधा
सुनि निज पुत्रवधू की बानी * बोली दुखित मँदोदरि रानी

फिर रावण का क्रोध करना सुनाया कि मर जाने के बाद उनकी निन्दा कर मेरा बोध किया। अपने पुत्र की बहू का वचन सुनकर, दुःखित होकर रानी मन्दोदरी कहने लगी—

कहत सो मानहु सत्य सयानी * सुनी जो नारद मुनि की बानी
पाछिल बात भई सब साँची * अनुभव कीन्ह न एकहु बाँची

हे सयानी, जो मैं कहती हूँ, उसे सत्य मानो। यह मैंने नारद मुनि की वाणी सुनी है। पिछली बात सब सच्ची हो गई। मैंने सब अनुभव किया है, एक भी नहीं बची।

देवि न होय मृषा ऋषिभाखित * अपने महामोह मन राखित
अगली कथा समास सहेला * सुनु पुत्री ऋषि वर्णउ जेता

हे देवी, ऋषि का कहा हुआ वचन झूठा न होगा। रावण तो अपने मन में बड़े भारी मोह को धरे है। हे पुत्री, नारद मुनि ने जितनी कथा कही है उस होनेवाली कथा को संक्षेप में सुनो।

वैरभाव दशकन्धर जूझब * प्राणहुँ गये नीति नहिं बूझब
सिया शोक संकट ते छूटहिं * बानर भालु राज्य घर लूटहिं

रावण शत्रुता से जूझ जायगा और प्राण के जाने पर भी नीति को न समझेगा। सीताजी शोच व क्लेश से छूटेंगी और वानर और रीछ राज्य और घर को लूटेंगे।

बन्धुभेद लंकागढ़ टूटहि * सुर नर नाग बन्दि ते छूटहि
सुरमणि भूषण बसन विमाना * भोग करहिं बनचरकुल नाना

भाई (विभीषण) के भेद देने से लंकागढ़ टूटेगा और देवता, मनुष्य और नाग बन्धन से छूटेंगे। देवताओं की मणियाँ, कपड़ों और विमानों को अनेक भाँति के रीछ व वानर भोग करेंगे।



राज्य विभीषण पाइहैं, अमर कल्प निर्वाह।
भावीवश दुख सुख जगत, उपदेशिय कहु काह॥

विभीषणजी राज्य को पावेंगे और कल्प भर तक अमर होकर उस राज्य को करेंगे। संसार में दुःख, सुख होनहार के वश होता है। इससे उपदेश करने से ही क्या हो सकता है।

मुनिवर वचन मोहिं परतीती * अनुभव दोउ हार अरु जीती
अब पुत्री परिहरि सब शोका * पतिसँग बेगि साधु परलोका

मुनिनायक नारदजी के वचन का मुझे विश्वास है और हार, जीत दोनों का मुझे ज्ञान है। हे पुत्री, अब शोक को छोड़ दो और जल्दी से पति के साथ जलकर परलोक को बनाओ।

जाहु रामपहँ पति शिर लागी * तजि संकोच आनु किन माँगी
आज न होय लाजकर भूषण * समयहीन गुणगानिय न दूषण

पति के शीश के लिए श्रीरामजी के पास जाओ, संकोच छोड़कर क्यों नहीं उसको

माँग लाती हो ? आज लाज का काम नहीं है ; क्योंकि कुसमय में गुण और दोष नहीं देखे जाते ।

है पुनि श्वशुर विभीषण तोरा * बालितनय बालकसम मोरा
एक नारिव्रत रघुवर केरा * लषण सुयश तुम सुनेउ घनेरा

फिर तुम्हारे ससुर विभीषण भी तो वहाँ हैं । और बालि के पुत्र अंगद तो मेरे पुत्र के समान हैं । रघुनाथजी का एक ही स्त्री का व्रत है, अर्थात् एक अपनी स्त्री को छोड़ दूसरी को मन में नहीं लाते । तुमने लक्ष्मण के बहुत यश को भी सुना है ।

जाम्बवन्त मन्त्री सुग्रीवा * द्विविद मयन्द महाबल सीवा
जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता * शिवस्वरूप भवहर भगवन्ता

जाम्बवान, सुग्रीव, द्विविद और मयन्द, ये रघुनायकजी के मन्त्री हैं, जो कि महाबल की सीमा हैं । हनुमानजी को ब्रह्मचारी जानो, जो शिव के अवतार, संसार के दुःख हरनेवाले और भगवान् हैं ।

सदा नीतिरत राम नरेशा * तहाँ जात कहु कवन कलेशा

राजा रामचन्द्रजी सदा नीति-परायण हैं । फिर कहो, वहाँ जाने में कौन-सा दुःख है ?

दो० विदित तोहिं पति भुज लिखित, लक्ष्मण राम प्रभाव ।
हमहूँ ऋषि भाषित कहेउ, अब विलम्ब जनि लाव ॥

पति की भुजा से लिखा हुआ राम और लक्ष्मण का प्रभाव तुमको विदित है । हमने भी नारद मुनि से कहा हुआ वृत्तान्त कहा, अब देर मत करो ।

सुनत सासु मुख हितकर बानी * जाहुँ रामपहँ अस जियजानी
बार बार चरणन शिरनाई * चली जहाँ लक्ष्मण रघुराई

सास के मुख से यह हित की बानी सुनते ही सुलोचना ने जी में ऐसा विचारा कि मैं श्रीरामजी के पास जाऊँ । बार-बार मन्दोदरी के पाँवों में माथा नवाकर सुलोचना वहाँ चली, जहाँ लक्ष्मण और रघुनाथजी थे ।

देखा कटक भालु कपि केरा * सिन्धु सुवेल महीधर घेरा
उमँगेउ मनो महोदधि दूसर * हरित पीत कपि धूमर धूसर

रीछ-वानरों की सेना को देखा कि समुद्र और सुवेल पर्वत और पहाड़ को घेरे है । मानो दूसरा समुद्र उमड़ा है । सेना में हरे-पीले धुएँ के-से रंगवाले और भूरे वानर हैं ।

व्योम लाल भासत अनुहेरी * मनहु लेत बड़वानल घेरी
गिरि तरुधर भुजसहस भयंकर * जहँ तहँ प्रगट होहिं जनु जलचर

उनसे आकाश लाल है । वह कैसा जान पड़ता है कि मानो बड़वानल ने उसे घेर लिया है । पर्वतों और वृक्षों को लिए हजारों भयंकर भुजाएँ जहाँ-तहाँ मेघों के समान देख पड़ती हैं ।

लक्ष्मण शेष सुअंक शीशधर * कटकजलधि सोवत राघववर
अक्षयवट तहँ बैठ विभीखन * अस सुकृती कहुँ सुने न दीख न

शेषरूपी लक्ष्मण की गोदी में शीश धरे रघुनाथजी सेनारूपी समुद्र में सो रहे हैं। यहाँ अक्षयवट के समान विभीषणजी बैठे हैं। ऐसा पुण्यात्मा कहीं न सुना गया है और न देखा गया है।



देखत डरत सुलोचना, धीरज धरत बहोरि।
महाराज रघुबीर कहँ, विनय सुनाओ मोरि॥

उस सेना को देखते ही सुलोचना डर गई। फिर धीरज धरकर बोली कि महाराज रघुनाथजी को मेरी विनती सुनाइए।

बानर सकल उठे अस बोली * अरिपुर ते आवत इक डोली
जानि परत रावण अब बूझा * भइ मति मेघनाद जब जूझा

सब वानर ऐसा बोल उठे कि शत्रु के नगर से एक डोली आ रही है। यह जान पड़ता है कि रावण अब समझ गया। जब मेघनाद मारा गया तो यह बुद्धि हुई।

हठतजि सीतहिं दीन्ह पठाई * तजहु सोच अब मिटी लराई
जिहिलगिप्रगट कीन्हपुर आगी * बाँधेउ सेतु हेतु जिहि लागी

उसने हठ को छोड़कर सीताजी को भेज दिया। अब शोच छोड़ दीजिए; क्योंकि लड़ाई मिट गई। जिनके लिए नगर में आग लगाई गई और जिनके लिए सेतु बाँधा गया।

सोइ सीता अब बिनु श्रम पाई * जानहु विधि अनुकूल सहाई
विजय राम सुग्रीवहिं आवा * सुयश वीर वानरकुल पावा

वे ही जानकीजी अब विना परिश्रम आ गईं। यह जानिए कि विधाता ने प्रसन्न होकर सहायता की। श्रीरामचन्द्रजी व सुग्रीव के समीप विजय आ गई; वीर वानरों के वंशने उत्तम यश को पाया।

विरह राम लक्ष्मणकर छूटा * विन कलेश लङ्कागढ़ टूटा
युग युग कीरति चलब हमारी * कहँ राक्षस कहँ लघु वनचारी

श्रीराम और लक्ष्मणजी का वियोग छूट गया तथा विना दुःख के लंकागढ़ टूट गया। हमारा यश युग-युग चला जायगा। देखिए, कहाँ राक्षस और कहाँ वन में विचरनेवाले हम लोग।



इहि विधि चारु विचारकर, निश्चय करि मनमाहिं।
भयउ काज रघुराजकर, बात दूसरी नाहिं॥

इस भाँति अच्छा विचारकर व मन में निश्चय कर उन्होंने यह जान लिया कि रघुनाथ का काम पूरा हो गया। इसके सिवा दूसरी बात नहीं है।

पैठत कटक अतिहि सकुचाई * अनबिनारि जनु परघर आई
आगे जाय देखि रघुवीरा * छविमय श्यामल गौर शरीरा

सेना में पैठते सुलोचना बहुत सकुचाती है, जैसे कि अनवी (बिन पहचान की लुगाई) स्त्री पराये घर में आई हो। उसने आगे जाकर रघुवंश में वीर रामचन्द्र और लक्ष्मणजी को देखा, जिनका शोभामय श्याम और गोरा शरीर है।

मरकतकनकछविहिजनुनिन्दति * धन्य सुजन महिमा ते विन्दति
मत्त गयन्द शुण्ड भुजदण्डा * धनुष बाण असि धरे प्रचण्डा

मरकतमणि और सोने की शोभा को मानो राम और लक्ष्मण अपनी देह की शोभा से निदरते हैं। वे सुजन धन्य हैं, जो इनकी महिमा को गाते हैं। जिनके भुजदण्ड मतवाले हाथी की सूँड़ के समान हैं, जिनमें वह धनुष, बाण और पैनी तलवार लिये हैं।

उर विशाल अति उन्नत कन्धर * कम्बु कण्ठ रेखा त्रय सुन्दर
दशन पाँति की काँति कहै को * लावत मन पटतरहि लहै को

जिनका हृदय चौड़ा व कन्धा बड़ा ऊँचा है; शंख की-सी गरदन है, जिसमें सुन्दर तीन लकीरें हैं। दाँतों की पाँति की शोभा को कौन कह सकता है, और उस शोभा को मन में लाते हुए कौन पटतर (बराबरी) को पा सकता है।

देखत अधरन की अरुणाई * बिम्बाफल बन्धूक लजाई
शुकतुण्डक नासिका लजाई * थाकेउ कवि पटतरहि न पाई

जिनके ओंठों की ललाई को देखते ही कुँदरू व दुपहरिया का फूल लजाता है। जिनकी नासिका तोते की चोंच को लजाती है। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये; परन्तु कवियों ने उपमा को न पाया।

दो० छविमय गुणमय तेजमय, राम उदधि अवगाह।
जहाँ न पावत पार सुर, किमि वरणै कवि थाह॥

शोभामय, गुणमय और तेजोमय श्रीरामचन्द्रजी अथाह समुद्र के समान हैं, जिसके पार को देवता नहीं पाते, कवि उसकी थाह का कैसे वर्णन करे!

भृकुटी ललित कपोल सुहाये * शीश जटा कर मुकुट बनाये
भाल विशाल तिलक युत सोहैं * ध्यान समय मुनि मानस मोहैं

सुन्दर भौंहें और सुहावने कपोल हैं तथा माथे में जटाओं का मुकुट बनाये हैं। तिलक-समेत चौड़ा मस्तक सोहता है, जो ध्यान के समय में मुनियों के मन को मोहता है।

वलकल वसन तूण कटि बाँधे * करशर सुभग शरासन काँधे
वीरासन आसीन कृपाला * नव पल्लव प्रसून करमाला

वृक्षों की छाल के कपड़े पहने और तरकस को कमर में बाँधे हैं। हाथ में उत्तम बाण

और काँधे पर धनुष है। दयालु रघुनाथजी वीरासन से बैठे हैं, जो नये पत्तों व फूलों की माला को पहने हैं।

चरणसरोज बरणि नहिं जाई * जहँ मुनि मधुकर रहे लुभाई
प्रगट भई जिहि थल से गङ्गा * श्रुति पुराण कह कथा प्रसङ्गा

चरणकमल वर्णन नहीं किये जा सकते, जहाँ मुनि लोग भौंरों की तरह लुभा रहे हैं। इसी स्थान से गंगाजी उत्पन्न हुई हैं, इस कथा के प्रसंग को वेद-पुराण कहते हैं।

नमत महेश विरंचि जाहि को * लोचन गोचर होत काहि को
जन आरति भंजन जो कोई * भवसागर तारण कै सोई

जिनको महादेव और ब्रह्माजी प्रणाम करते हैं, वे किसकी आँखों के सामने आ सकते हैं। जो कोई मनुष्यों के दुःख का नाश करनेवाले हैं, वही संसारसागर के पार पहुँचानेवाले हैं।



प्रणतपाल बिरदावली, जिन चरणन की बानि।
शोकहरण संशयदलन, करण सुमंगलखानि॥

जो शरणागत लोगों के पालक प्रसिद्ध हैं और जिनके चरणों की बान शोक को हरना, संशय को मिटाना और मंगलमय बनाना है, वही भगवान् रामचन्द्र हैं।

करजोरे अंगद हनुमाना * द्विविद मयन्द कुमुद बलवाना
जाम्बवन्त कपिपति बलशीला * ऋषभ सुषेण सहित नलनीला

अंगद व हनुमान्‌जी हाथ जोड़े खड़े हैं और द्विविद, मयंद, बलवान् कुमुद, जाम्बवान्, बलवान् सुग्रीव, ऋषभ, सुषेण, नल, नील,

महावीर वानर सब राजत * लषणविभीषणदोउदिशिभ्राजत
मितभाषित प्रभुचरण सुसेवक * चितवत रुख रघुनन्दन देवक

ये बड़े वीर सब वानर उनकी सेवा में शोभित हैं और लक्ष्मण व विभीषण दोनों ओर विराजमान हैं। स्वामी के चरणों के सेवक ये सब थोड़ा बोलते हैं और रघुनन्दनदेव के रुख को देखते हैं।

सभा मध्य सोहत अघमोचन * कीन्हेउसफल निरखिनिजलोचन
करत दण्डवत शिरधरिधरणी * तिहिकर चरितविभीषणवरणी

पापों के नाशक रघुनाथजी सभा के बीच में सोहते हैं। उनको देखकर सुलोचना ने अपने नेत्रों को सफल किया। पृथ्वी में शीश रखकर सुलोचना ने दण्डवत् प्रणाम किया और उसके वृत्तांत को विभीषण ने वर्णन किया—

पुत्रवधू दशकन्धर केरी * बड़ि पतिव्रता जानि प्रभु हेरी
मेघनाद की नारि सुशीला * अस गतितव विरोधकर लीला

कि यह रावण की पतोहू है। उसको बड़ी पतिव्रता जानकर रघुनाथजी ने देखा। सुन्दर शीलवाली यह मेघनाद की स्त्री है, इसकी ऐसी दशा आपके विरोध की लीला से है।

करत प्रणाम प्रेम नहिं थोरे * करुणा वचन कहत करजोरे

सुलोचना बड़े प्रेम से प्रणाम करके हाथ जोड़े करुणारस से भरे ये वचन कहने लगी—

दो० मुये जानि पति भुजहिं तब, लिखि समुझाई मोहिं।
महाराज रघुवंशमणि, याचन आई तोहिं॥

जब मैंने पति को मरा हुआ जाना, तब उनकी भुजा ने आपकी महिमा को लिखकर समझाया। इसलिए हे रघुवंशमणि महाराज रामजी, मैं आपसे कुछ माँगने आई हूँ।

छं० परसि चरण कर प्रेम पूरण कृपासिन्धु खरारि के।
जिहि नमत शंकर शेष सुर मुनिवर धरणिभंजन भार के॥
प्रभु जानि सो विनती सुलोचनि करत कहि विनती घनी
जय शोकहरण कृपालु जयजयजयति जय रघुकुल मनी

कृपा के सागर खरारि रघुनाथजी के उन चरणों को प्रेम से पूर्ण होकर सुलोचना ने स्पर्श किया, जिन चरणों को शिवजी, शेष, सब देवता और मुनि लोग प्रणाम करते हैं। प्रभु को पृथ्वी के भार को हरनेवाला जानकर बड़ी विनय करके सुलोचना विनती करने लगी— हे शोक हरनेवाले, दयालु, आपकी जय हो। हे रघुवंशमणि श्रीरामजी! आपकी जय हो, जय हो।

प्रभु ब्रह्मरूप स्वभाव शीतल अतुल बल त्रिभुवन धनी।
जय हरण धरणी भार बाहु विशाल खण्डन खल अनी॥
तव दीनबन्धु दयालु अपरंपार सब गुण आगरे।
करुणानिधान सुजान शील सनेह रूप उजागरे॥

हे प्रभु, आप ब्रह्मरूप व शीतल स्वभाववाले, बड़े बलवान् व तीनों लोकों के स्वामी हैं। हे पृथ्वी के भार को उतारनेवाले, विशाल बाहुवाले दुष्ट-दलनाशक, आपकी जय हो। हे दीनबन्धु, आपके गुण अपरम्पार हैं और आप सब गुणों की खान हैं। हे दया-निधान, आप चतुर, शील, स्नेह व रूप से उजागर हैं।

षट अष्टलोक जो रचत पालत प्रलय सो मायासुरी।
केहि भाँति बरणौं नाथ गुणगण नारि जड़मति बावरी॥
जे चरण ईश महेश शारद श्रुति निरन्तर ध्यावहीं।
हूँ भूरिभाग्य सरोजपद सोइ हर्षि शिरसि लगावहीं॥

जो देवी माया चौदहों लोकों को रचती, पालती व प्रलय करती है, वह आपके गुणों को नहीं कह सकती। हे नाथ, जड़ बुद्धिवाली, बावली मैं स्त्री होकर किस भाँति आपके गुणगण

का वर्णन करूँ। जिन चरणों का ऐश्वर्यशाली शिव, सरस्वती व वेद सदा ध्यान करते हैं, उन्हीं चरणारविन्दों को मैं प्रसन्न होकर शीश में लगाती हूँ, इससे बड़ी भाग्यशालिनी हूँ।

निरखतयुगचरणं अशरणशरणं तारणतरणं भयहरणम्।
जगकारणकरणं पोषणभरणं खलदलहरणं दुखदरणम्॥
घनश्यामस्वरूपं अतिहि अनूपं सुरवरभूपं नररूपम्।
जेहि निगम निरूपं अकल अरूपं कीन्ह कुरूपं नखशूपम्॥

अशरण को शरण देनेवाले आपके दोनों चरणों को मैं देखती हूँ, जो तारण-तरण हैं, भय को हरनेवाले हैं, संसार के कारणरूप हैं और भरण-पालन करनेवाले, दुष्टदल को मारनेवाले व दुःख को मिटानेवाले हैं। मेघों के समान श्याम आपका स्वरूप अत्यन्त अनूप है। और नररूप होकर आप देवताओं के राजा हैं, जिनको वेद कालरहित व रूपरहित निरूपण करता है, उन्हीं आपने शूर्पणखा को कुरूप किया है।

पीताम्बरराजतअतिछविभ्राजततडितसुलाजतमुखआजत।
सनकादिशिरताजतगरिवनिराजत सन्तनकाजत तनुसाजत॥
कटिसुभगसुहावनिसिंहलजावनिमुनिमनभावनिललचावनि।
नाभीसुभगपावनिअतिशयपावनिउपमानावनिछविछावनि॥

आपके जो पीताम्बर शोभित है, वह बड़ी छवि को देता है, जिसे देखकर बिजली लजा जाती है। आपका मुख शोभा की खान है। आप सनकादि के सिरमौर, गरीबनिवाज व सन्तों के लिए देह को धारण करते हैं। आपकी कमर ऐसी सुन्दर सुहावनी है कि सिंह की कमर को लजाती व मुनियों के मन को भाती व ललचाती है। आपकी नाभि सुन्दर है, जो बड़ी पवित्र है व जिसकी उपमा संसार में नहीं, ऐसी छवि से भरी है।

अतिहृदयविशाला गलवनमाला तलमृगछाला है काला।
लोचनयुगलाला भृकुटिविशाला दीनदयाला जनपाला॥
कुण्डलयुगकाना सूर्यसमाना करतहि ध्याना मनमाना।
करधारिधनुबाना कृपानिधाना काम लजाना लखि बाना॥

आपका हृदय बहुत विशाल है। गले में वनमाला और बैठने के लिए नीचे काला मृगछाला है। दोनों आँखें लाल व भौंहें विशाल हैं। आप दीनों के ऊपर दयालु व अपने जनों के पालक हैं। दोनों कानों में सूर्य के समान प्रकाशमान कुण्डल हैं, जो ध्यान करने ही से मन को अच्छे लगते हैं। हे कृपानिधान, आप हाथ में धनुष-बाण को लिए हैं। ऐसे आपके वेष को देखकर कामदेव भी लजा जाता है।

भरतादिकवन्दनशिरजटवन्दनदशरथनन्दनसुरवन्दन।
द्विजनिन्दनआनन्दनदुष्टनिकन्दनहरदुखद्वन्दनयमफन्दन॥

सुनि कीर्ति सुहाई शरणहि आई सुन्दरताई मनभाई ।
दीजै रघुराई भक्ति सदाई करिय सहाई सुखदाई ॥

हे दशरथनन्दन, माथे पै आप चन्दन दिये हैं और सीस में जटाओं को बाँधे हैं। देवता लोग आपको प्रणाम करते हैं। ब्राह्मणों व सन्तों को आप आनन्द देते हैं, दुष्टों को मारते हैं, दुख-द्वन्द्व हरते और यमराज के फन्दों को काटते हैं। आपकी सोहाई कीर्ति को सुनकर मैं शरण में आई हूँ और आपकी सुन्दरता मेरे मन को भाई है। हे सुखदायक रघुनायकजी, आप अपनी भक्ति दीजिए व सदा सहायक हूजिए।

गहकरबानी शारँगपानी सब गुणखानी रामबली ।
सुरसुरभीरक्षक राक्षसभक्षक भक्तहि रक्षक मानबली ॥
मैं रिपुसुतनारी जान अघारी अधिकारी नहिं दुखभारी ।
हरि विरहदवारी अतिभयकारी सहबदुवारी दुखकारी ॥

हे हाथ में शार्ङ्ग धनुष को धारण करनेवाले, सब गुणों की खान, बलवान्, श्रीरामजी, मेरी वाणी को ग्रहण कीजिए अर्थात् मेरी इस स्तुति से प्रसन्न होइए। हे देवताओं व गौओं की रक्षा करनेवाले, राक्षसों के नाशक, भक्तों के रक्षक, बलवान श्रीरामजी, मेरी विनती को मानिए। मैं आपके वैरी के पुत्र की पत्नी हूँ, यह जानिए। हे पातकों के नाशक रघुनाथजी, मैं आपकी स्तुति की अधिकारिणी नहीं हूँ। मुझे बड़ा भारी दुःख है। हे भक्तों के दुःख हरनेवाले, पति के वियोग की दावानल (आग) बड़ी भयकारक व दुःख देनेवाली है, जिसका सहना कठिन है।

तव शरणहिं आई जनसुखदाई रघुराई करुणासागर ।
पति मस्तक पाऊँ जरि सँग जाऊँ शिरपाऊँ शोभाआगर ॥
पतिप्रभतनुत्यागी अतिबड़भागी अनुरागी जिन मुक्ति लही ।
ममता किमि तासू बरणूँ आसू जासु अचल जगपाँक्तिरही ॥

हे भक्तजनों के सुखदायक, दयासागर, रघुनाथजी, मैं आपकी शरण में आई हूँ। हे शोभा के धाम श्रीरामजी, जो पति का सिर पाऊँ तो उसके साथ ही सती हो जाऊँ। इससे वह सिर मुझे दीजिए। मेरे पति ने शरीर छोड़ दिया। वह बड़ा भाग्यवान् व प्रेमी था, जिसने मुक्ति को पाया। उसकी ममता को किस प्रकार वर्णन करूँ, जिसकी संसार में अचल कीर्ति है।

यहि विधिपदपङ्कजसेव्यरमाअजशिरनमिदोउकरजोररही ।
सुनि पङ्कजलोचन वचन सुलोचन लोचन में जलधार बही ॥

लक्ष्मी और ब्रह्मा जिनकी सेवा करते हैं, उन रघुनाथजी के चरणों को इस प्रकार प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ी हुई सुलोचना के ये वचन सुनकर कमलसरीखे नयनोंवाले रघुनाथजी के नयनों से जल की धारा बहने लगी।

दो० अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारण रहित दयाल।
तुलसिदास शठ ताहि भजु, छाँड़ि कपट जंजाल॥

स्वामी रघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु, भक्तों के दुःख हरनेवाले और अकारण दयालु हैं। तुलसीदासजी अपने मन से कहते हैं कि हे शठ, कपट के जंजाल को छोड़कर उनको भज।

तुम अन्तर्यामी भगवाना * नहिं तोहिं आदि मध्य अवसाना
करुणा वचन सुनत रघुवीरा * पुलकरोम भये शिथिल शरीरा

सुलोचना कहती है—हे भगवन्, आप अन्तर्यामी हैं। आपका आदि, मध्य व अन्त नहीं है। ऐसे करुणरस के वचन सुनते ही रघुनाथजी के रोम खड़े हुए व देह शिथिल हो गई।

देहुँ जिआय तोर पति आजू * करहू लङ्क कल्प शत राजू
छाँड़ि शोच अब मन हर्षाहू * तुरत भवन अपने फिरि जाहू

श्रीरामजी बोले—तुम चाहो सो मैं आज तुम्हारे पति को जिला दूँ और वह सैकड़ों कल्प तक लङ्का का राज्य करे। शोच को छोड़कर अब मन में प्रसन्न हो व जल्दी अपने घर को लौट आओ।

सुनि प्रभु सत्य सिन्धु कर बानी * मन में वनचर अति भयमानी
कहि न सकत कछु प्रभुरुख देखी * कहा करत करतार विशेखी

सत्य के सागर रघुनाथजी की ऐसी वाणी सुनकर वानर मन में बहुत डरे। स्वामी श्रीरामजी के रुख को देखकर कुछ कह नहीं सकते, पर मन में यह विचारते हैं कि देखें, विधाता क्या विशेष कार्य करते हैं।

सब देवन कर शोच न जाई * जो करि कृपा राम इहि ज्याई

जो रामजी दयाकर इस मेघनाद को जिला देंगे तो सब देवताओं का शोच न जायगा।

दो० राज्य विभीषण लंक कर, किहि विधि करिहहिं जाइ।
समुझि बैर घननाद जब, गहहि शरासन धाइ॥

विभीषण जी जाकर किस तरह लंका का राज्य करेंगे, जब बैर को यादकर मेघनाद दौड़कर धनुष को हाथ में लेगा।

सुख रुख देखि कपिन भयमाना * प्रणतपाल भगवन्त सुजाना
देखि बहुत रघुबर कर छोहू * विनय करति दशकन्धपतोहू

मुख का रुख देखकर वानरों ने भय माना; क्योंकि सुजान भगवान् शरणागत के पालक हैं। रघुनाथजी की बहुत दया देखकर रावण की पतोहू सुलोचना विनती करती है—

तुम उदार सब देवे लायक * करुणामय देखे रघुनायक

हमहुँ विचारि देखि मनमाहीं * जीवनते अस मरण सराहीं

हे रघुनायक, आप उदार व सब देने के लायक हैं। मैंने आपको दयानिधान देखा। मैंने भी मन में विचार कर लिया है कि ऐसे जीने से मरना भला है।

भुजबल जीति लोकवश कीन्हे * चौदह भुवन भोग करि लीन्हे
रणतीरथ याचक बड़ चीन्हा * प्राणसुधन लक्ष्मण कहँ दीन्हा

मेरे पति ने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर सब लोकों को वश में कर लिया व चौदहों भुवनों के सुखों का भोग कर लिया, और युद्धरूपी तीर्थ में बड़े याचक को पहचान लिया व प्राणरूपी उत्तम धन लक्ष्मणजी को दे दिया।

अब न उचित पति दै उपहारा * तेहिपर अधिक सो दरशतुम्हारा
हमहूँ जाइ मरब सत साधी * मिलबतुमहिंजस मिलतसमाधी

अब यह उचित नहीं कि पति के दिये हुए उपहार (भेंट) अर्थात् उसके प्राण मैं माँग लूँ। फिर विशेष बात यह है कि आपका दर्शन लाभ अधिक है। सतीपन को साधकर मैं भी जाकर मरूँगी और वैसे ही आपको मिलूँगी, जैसे योगी लोग मिलते हैं।


निर्मल गति अवसर भयउ, सुनहु सत्य रघुबीर।
तुमहिं मिलत नहिं होय भव, यथा सिन्धुगत नीर॥

हे रघुबीरजी सुनिए, निर्मल गति अर्थात् मोक्ष का यह समय प्राप्त हुआ है। आपसे मिलने से फिर जन्म नहीं होता, जैसे समुद्र में पहुँचा हुआ जल फिर नहीं लौटता।

मन की जाननहार सुदेवा * भवसागर तारहु यह खेवा
लीन्हेउ राम कपीस बुलाई * मेघनाद शिर दीन्ह मँगाई

हे उत्तम देव, आप मन की बात जाननेवाले हैं। इस खेवे का संसार-सागर से उतार दीजिए। तब वानरों के राजा सुग्रीव को रामजी ने बुलाया व मेघनाद का सीस मँगा दिया।

पाय कृतारथ मानेउ आपू * पिया विरह संभव परितापू
अञ्चल पोंछत मुखकी धूरी * कहि मम प्राण सजीवन मूरी

सुलोचना ने उस सिर को पाकर अपने को कृतार्थ माना। उसके मन में पति के वियोग से उपजा हुआ सन्ताप फिर हुआ। हे 'मेरे प्राण की सजीवन-मूर!' कहकर सुलोचना आँचल से पति के मुख की धूल को पोंछती है।

देखि सँदेह कहत सुग्रीवा * भुज गहि लिखत जीव बिनुग्रीवा
हँसिहहि वदन तो ह्वैहै साँची * नातरु निशिचर माया काँची

सीस को देखकर सुग्रीव के मन में सन्देह हुआ। उन्होंने कहा—भुजा जीव व गरदन के बिना खरिया को लेकर कैसे लिख सकता है? यदि यह मुख हँसेगा तो यह बात सच्ची होगी, नहीं तो निशाचर की माया कच्ची अर्थात् झूठी है।

कित असज्ञानमृतकभुजगावा ❋ जो मुनिवर साधन नहिं पावा
प्रभु असकहेउहँसब यहशीशा ❋ करत कुतर्क न उचित कपीशा

उत्तम मुनियों ने जिस ज्ञान को उपायों से नहीं पाया, ऐसा ज्ञान उसको कहाँ से आया, जो मृतक (मरे हुए) प्राणी की भुजा ने कह दिया। तब स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे सुग्रीव, यह सीस हँसेगा; कुतर्क करना उचित नहीं।



शिरसों कहति सुलोचना, हँसहु बेगि मम नाथ।
नातरु सत्य न मानिहैं, लिखा जो तुम्हरे हाथ ॥

तब सुलोचना ने सीस से कहा—हे मेरे स्वामी, जल्दी हँसिए; नहीं तो तुम्हारे हाथ से जो लिखा गया है, उसको ये सच सत्य न मानेंगे।

क्षणकविलम्ब कीन्ह नहिंबोला ❋ मृतक बदन मूँदत नहिं खोला
पुनि पुनि कहत सो नागकुमारी ❋ अमित भयउ रणमें करिमारी

मेघनाद के सिर ने क्षणभर देर की, कुछ न बोला। मरे हुए मेघनाद का मुख बन्द रहा खुला नहीं। वह नाग की कन्या सुलोचना बार-बार कहती है कि युद्ध में मार करके तुम थक गये हो।

लगे लषण शर क्षोभ बढ़ावा ❋ प्रभु समीप कस मोहिं लजावा
जो मन बचन कर्म यह देही ❋ पतिदेवता न आन सनेही

लक्ष्मणजी का बाण लगने से तुमने मेरे क्षोभ (विकलता) को बढ़ाया है। अब स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के समीप मुझे क्यों लजाते हो? जो मन, वचन व कर्म से मेरी यह देह पति ही को देवता मानती हो, और से सनेह न करती हो—

तौ प्रभु सभा बीच शिर बोलै ❋ रहै छाय यश सुयश अमोलै
जो जानत तव यह गति साँई ❋ बोल पठावत पितहि सहाई

तो श्रीरामजी की सभा के बीच में सीस बोले, जिससे मेरा अनमोल उत्तम यश छा रहे। स्वामी, मैं जो तुम्हारी इस दशा को जानती तो सहायता में अपने पिता को बुला भेजती।

सुनितियबचनहँसेउ तब शीशा ❋ चौंके चकित भालु भट कीशा
हँसेउ ठठाय बदन सब देखा ❋ विस्मय भयउ सकल जेहि पेखा

तब स्त्री का वचन सुनकर सीस हँसा। यह देखकर चकित हो रीछ व वानर वीर चौंक उठे। मेघनाद का मुख ठठाकर हँसा, उसको सबने देखा और यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ।

कुलिश समान सुना नहिं जाई ❋ रहेउ सो बदन बहुरि अरगाई
सकुच कपीसहिं तोषेउ नारी ❋ बड़ आश्चर्य भयो बनचारी

वज्र गिरने के समान कठोर शब्द सुना नहीं जाता था। इसके उपरान्त वह मुख फिर चुप हो गया। वानरों के राजा सुग्रीव ने यह सुनकर उस स्त्री की बड़ी बड़ाई की। तब वानरों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पूछत कपिपति पद शिरनाई * कारण कवन हँसा शिर साँई
प्रभु कह सुनु सुग्रीव कपीशा * शीश हँसेकर सुनहु अहीशा

वानरों के राजा सुग्रीव रामजी के चरणों में माथा नवाकर पूछने लगे—हे स्वामी, क्या कारण था, जो सीस हँसने लगा। स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे वानरों के स्वामी सुग्रीव, और हे लक्ष्मण, सीस के हँसने का कारण सुनो।

मन क्रम वचन पतिहि सेवकाई * तियहित इहिसम अस न उपाई
असजियजानि करहि पति सेवा * तिहिपर सानुकूल मुनि देवा

मन, कर्म व वचन से पति की सेवा करने के बराबर स्त्री के हित के लिये दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा जी में जानकर जो स्त्री पति की सेवा करती है, उसके ऊपर मुनि व देवता लोग प्रसन्न रहते हैं।

यह सतवति अहिराजकुमारी * तेहि सतते हँस शीश सुरारी
सुनि प्रभुवचन कपिनसुखमाना * पुनि पुनि चरण गहेउ हनुमाना

यह वासुकी नाग की कन्या पतिव्रता है। उसी पतिव्रतधर्म के प्रभाव से देवताओं के वैरी मेघनाद का सीस हँसने लगा। यह रघुनाथजी का कहना सुनकर वानरों ने सुख माना व हनुमान्‌जी ने बार-बार प्रभु के चरणों को पकड़ा।

सुनु गिरिजा अस प्रभु प्रभुताई * केवल भक्तहिं देत बड़ाई
जासु दृष्टि जग उपजत नाशा * अस कौतुककर कौतिक आशा

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, सुनो, स्वामी श्रीरामचन्द्रजी की ऐसी प्रभुता है कि केवल भक्त को बड़ाई देते हैं। जिसकी दृष्टि से संसार पैदा होता है व नाश हो जाता है, उसके लिए यह कौतुक क्या है?



शीश पाइ प्रभुचरण गहि, बहु विधि विनय सुनाय।
आजको दिनरण परिहरहु, मम हित कोशलराय॥

सीस को पाकर रघुनाथजी के चरण पकड़कर अनेक तरह से बिनती सुनाकर सुलोचना बोली—हे अयोध्यानाथ, आज के दिन मेरे लिए युद्ध को बंद कर दीजिए।

बहुरि विभीषण पगन परी सो * रघुपति चरण दियेमन पुनि सो
तुम पितु सम दशकन्धर भाई * इहि कुल की तोहिं लाज बड़ाई

फिर सुलोचना विभीषण के चरणों पर गिर पड़ी और उसने रघुनाथजी के चरणों में मन लगाया। सुलोचना बोली—हे विभीषण, आप रावण के भाई हैं, इससे मेरे पति के पिता के समान हैं। इस वंश की लाज व बड़ाई आप ही की है।

मुनि पुलस्त्य परिवारक दीपा * पायउ फल रघुवीर समीपा
महामोहवश अनभल माना * ज्ञान भयो तब गुण पहिचाना

पुलस्त्य मुनि के वंश में आप दीपक हैं ; क्योंकि आपने रघुनाथजी के समीप रहने का फल पाया है । महामोह के वश होकर प्राणी अनभला मानता है व जब ज्ञान होता है, तब गुण को पहचानता है ।

युग युग करहु अकण्टक राजू * सहित सुकीरति सुकृत समाजू
सुमिरत तुम्हहिं सुजनगतिपावा * रघुपति चरित संगकर गावा

आप उत्तम यश व पुण्य के समाज-समेत युग-युग निष्कण्टक राज्य कीजिए । आपको स्मरण करते हुए प्राणी उत्तम जनों की गति को पावेंगे और रघुनाथजी के चरित के साथ आप भी गाये जायँगे ।

सुनत विभीषण मन करुणाभर * प्रकट न कहत समय विरहाकर
काल कर्म गहि कह समुझाई * चली तुरत गुरु आयसु पाई

यह सुनते ही विभीषण का मन करुणा से भर गया ; परन्तु विरह के समय को प्रकट नहीं कहते । काल व कर्म की गति को कहकर विभीषण ने समझाया । तब आज्ञा पाकर सुलोचना जल्दी चली ।



बाहर करि कपि कटकते, फिरेउ विभीषण आप।
बिसरेउ दशमुख वैरही, हृदय अधिक सन्ताप ॥

बानरों की सेना से बाहर कर विभीषण आप लौट आये । उस समय वह रावण का वैर भूल गये, और हृदय में अधिक सन्ताप हुआ ।

शिर चढ़ाय पालकी चढ़ी सो * रघुपति कृपा प्रभाव बढ़ी सो
हृदय राखि मूरति घनश्यामा * रसना रटत निरन्तर नामा

पति के सीस को चढ़ाकर फिर वह सुलोचना पालकी पर चढ़ी और रघुनाथजी की दया से वह प्रभाव में बढ़ गई । सुलोचना हृदय में घनश्याम मूर्ति को रखकर जीभ से रामजी के नाम को निरन्तर जपती चली ।

सरितसिंधुसंगम जहँ पावन * अस सुधि पाय गयो तहँ रावन
संग मँदोदरि सब रनिवासू * मनो शोकरवि कीन्ह प्रकासू

जहाँ नदी व समुद्र का पावन संगम था, वहाँ सुलोचना गई । यह खबर पाकर रावण वहाँ गया । साथ में मन्दोदरी व सब रनिवास था, मानो शोक का सूर्य निकल आया है ।

पाय रजाय सुसेवक धाये * चन्दन अगर सुगँध बहु लाये
रचि दृढ़ दारुण चिता बनाई * जनु सुरलोक निशेनी लाई

रावण की आज्ञा पाकर सब उत्तम सेवक दौड़े और चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित बहुत-सी वस्तुएँ ले आये। उन्होंने रचकर दृढ़ व कठिन चिता बनाई, मानो मेघनाद के जाने के लिए स्वर्गलोक में सीढ़ी लगाई गई।

करि प्रणाम सब जन परितोषी * धीरज धरसि तासु मतिपोषी
शिर भुज धरि बैठीकर आसन * भइ जनु योग सिद्धिकर भाजन

सुलोचना ने प्रणामकर सब लोगों को प्रसन्न किया व उन सबने उससे यह कहकर उसकी बुद्धि को पुष्ट किया कि धीरज धरो। भुजा व शीश को आगे रखकर आसन मार करके सुलोचना चिता पर बैठ गई। मानो योग की सिद्धि का पात्र हो गई।


देत अनल ज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगि जाय।
लखी न काहू जात तेहि, सुरपुर पहुँची आय॥

आग लगाते ही उसकी ज्वाला बढ़ी और आकाश में जाकर लपक लगी। उसको स्वर्ग जाते किसी ने नहीं देखा। सुलोचना जाकर स्वर्ग में पहुँची।

इति क्षेपक

सुतवध सुना दशानन जबहीं * सम्भ्रम मूर्छि परा महि तबहीं
दुखित भयउ लोचन भरि आवा * जनु निजमणि अहिराज गँवावा

जब रावण ने पुत्र का मरना सुना तो घबराहट से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। आँखों में आँसू भर आये। रावण ऐसा दुखी हुआ, मानो साँप ने मणि गँवा दी हो।

हा सुत संतत आज्ञाकारी * करि विलाप दशकन्ध पुकारी
शक्र आदि जीतेउ सब देवा * सुर मुनि बन्दि करायेहु सेवा

'हाय, सदा आज्ञा माननेवाले पुत्र!' इस प्रकार पुकारकर रावण ने बड़ा विलाप किया। उसने कहा—तुमने इन्द्र आदि सब देवता जीत लिये तथा देवताओं और मुनियों को कैद करके उनसे सेवा कराई।

दूसर रहा न भुज बल दापा * स्वर्ग भूमितल तपेउ प्रतापा
इहिविधि करि विलाप लंकेशा * भयउ तेजहत सुनु उरगेशा

तुम्हारी भुजाओं का-सा बल और अभिमान दूसरे में न था। तुम्हारा प्रताप स्वर्ग और भूमि में तपता था। काकभुशुण्डि कहते हैं—हे गरुड़, इस प्रकार विलाप करता हुआ रावण तेज से हीन हो गया।

मन्दोदरी रुदन करि भारी * उर ताड़ति बहुभाँति पुकारी
नगर लोग सब व्याकुल शोचा * सकल कहहिं दशकन्धर पोचा

मन्दोदरी बहुत रोती-बिलखती, पुकारती और छाती पीटती है। नगर के सब लोग व्याकुल होकर शोक करते और रावण को बुरा कहते हैं।



तब दशकन्ध अनेक विधि, समुझाईं सब नारि।
नश्वररूप प्रपंच सब, देखहु हृदय विचारि॥

तब रावण ने अनेक भाँति से सब स्त्रियों को समझाया। कि यह संसार का सब प्रपंच नाशवान् है, यह हृदय में विचार कर देखो।

तिन्हहिं ज्ञान उपदेशेउ रावन * आपुन मंद कथा अतिपावन
परउपदेश कुशल बहुतेरे * जे आचरहिं ते नर न घनेरे

रावण ने उन्हें ज्ञान का उपदेश किया। स्वयं तो मूर्ख है, पर कथाएँ (बातें) बड़ी पवित्र कहता है। सच है, दूसरे को उपदेश देने में निपुण मनुष्य बहुत होते हैं; परन्तु वैसा आप करनेवाले बहुत नहीं हैं।

तासु क्रिया करि निशिचरनाहा * भयउ शोकवश अति उरदाहा
सचिव आइ तब लगे बुझावन * नाहिं विषाद करिय जनि रावन

पुत्र का क्रियाकर्म कर निशाचरों का स्वामी रावण शोक के वश हुआ। उसके हृदय में बड़ा दाह हुआ। सब मन्त्री आकर समझाने लगे कि हे रावण, अब व्यर्थ शोक मत करो।

सुतवित नारि त्रिविध सुख कैसे * उपजहिं जाहिं घटा नभ जैसे
तड़ित विद्युत देखिय घनमाहीं * रहै न थिर तहँ तुरत छिपाहीं

पुत्र, धन और स्त्री इन तीनों का सुख कैसा है, जैसे मेघ आकाश में होकर उसी में नष्ट हो जाते हैं। आकाश में बिजली देख पड़ती है; परन्तु स्थिर नहीं रहती, तुरन्त ही छिप जाती है।

यह जिय जानि सुनहु दशभाला * बचिहि न कोउ जग आये काला
अब प्रभु यतन विचारहु सोई * रिपुकर नाश जवन विधि होई

हे रावण, ऐसा जी में जानकर सुनो, काल आने पर संसार में कोई न बचेगा। हे स्वामी, अब वह उपाय विचारो जिस प्रकार शत्रु का नाश हो।

अथ अहिरावण की कथा—क्षेपक



लागेउ करन विचार पुनि, बहु प्रकार दशशीश।
समुझि हृदय अहिरावणहिं, आयउ जहाँ गिरीश॥

फिर रावण, बहुत भाँति से विचार करने लगा। हृदय में अहिरावण को यादकर वहाँ आया, जहाँ शिवजी का मन्दिर था।

दुइ घरि तब तहँ निशि बीती * सन्ध्यावन्दन कीन सप्रीती
लागेउ करन ध्यान दशशीशा * करि हर्षित सम्पुट भुजबीसा

प्रेम-समेत सन्ध्यावन्दन किया। तब तक चार घड़ी रात बीत गई। प्रसन्न होकर बीसों हाथों को जोड़कर रावण शिवजी का ध्यान करने लगा।

शङ्कर सेवक अति अनुरागी * सुनु खगेश तेहिते बड़भागी
मन्त्राकर्षण जपि दशभाला * अहिरावण चितडोल पताला

काकभुशुण्डिजी कहते हैं— सुनिए गरुड़जी, रावण बड़ा प्रेमी व शिवजी का सेवक था, इसी से बड़ा भाग्यशाली था। रावण ने आकर्षण मन्त्र जपा, तब पाताल में अहिरावण का चित्त डोल गया।

लगेउ करन सो मन अनुमाना * केहिकारण दशमुख अकुलाना
निशिचरनाह भुवन वश जाके * जीतन कहँ न वीर कोउ ताके

वह अहिरावण मन में विचार करने लगा कि किस कारण रावण आकुल हुआ है? रावण निशाचरों का स्वामी है; उसके वश में सब लोक हैं। उसे जीतनेवाला कोई वीर नहीं है।

मन क्रम वचन आन नहिं सेवी * धरेउ ध्यान उर कामद देवी
चलेउ बहुरि आयउ सो तहँवाँ * शिवमण्डप रावण रह जहँवाँ

मन, कर्म व वचन से अहिरावण दूसरे देवता की सेवा नहीं करता था। उसने हृदय में अपनी इष्टदेवी कामदा का ध्यान धरा। फिर वह चला और वहां आया, जहाँ शिवजी के मंडप में रावण था।

निशिचर पति कहितेहिशिरनायो * करगहि निज आसन बैठायो

"हे निशाचरों के पति!" ऐसा कहकर उसने रावण को सीस नवाया। तब हाथ पकड़कर रावण ने उसे अपने पास ही आसन पर बिठा लिया।



अहिरावण तब रावणहिं, बूझी कुशल सप्रीति।
प्रथम कही तेहि सब कथा, जैसे भगिनि अनीति॥

तब अहिरावण ने रावण से प्रीति-समेत कुशल पूछी। उस रावण ने उससे पहले से लेकर अब तक का सब हाल, जिस भाँति उसकी बहन शूर्पणखा के साथ अनीति की गई थी, उसे कह सुनाया।

वध खरदूषण जिमि सुधि पाई * मृग मारीच कपट कृत गाई
कहेसि बहुरि सीता कर हरणा * लङ्कदहन हनुमत कर बरणा

जिस प्रकार खर-दूषण के मरने की खबर पाई थी व माया से जिस भाँति मारीच कपट-मृग बना था, वह हाल भी कहा। फिर रावण ने सीता का हरण और हनुमान्‌जी का लंका को जलाना कहा।

सेतु बाँधिजिमिप्रभुचलिआयउ * बालिकुमार विवाद सुनायउ
अग्नी अकम्पन अरु अतिकाया * परे समरमहि सुनु अहिराया

जिस प्रकार सेतु बाँधकर स्वामी रघुनाथजी चलकर आये, वह हाल कहा। अपने साथ वालि के पुत्र अंगद की बातचीत भी सुनाई। फिर कहा—सुनिए अहिरावण, हमारी सेना के अकम्पन, अतिकाय आदि सब योद्धा युद्धभूमि में गिर गये हैं।

तात कुशल अब सबइ सिरानी * कटक निशाचर सकल नशानी
कुम्भकर्ण घननादहुँ मारे * रामलषण दुइ मनुज बिचारे

हे तात, अब सब कुशल जाती रही; क्योंकि सब निशाचरों की सेना नष्ट हो गई। राम और लक्ष्मण नाम के बेचारे (दुःखित) दो मनुष्यों ने कुम्भकर्ण व मेघनाद को भी मार डाला।

आनेहु बोलि तोहिं निज पासा * कहहु सो यत्न होय रिपुनासा
सुनत शोच भा अहिरावन मन * बोला वचन सुहावन पावन

मैंने तुमको इसलिए अपने पास बुलाया है कि वह यत्न बताओ, जिससे शत्रु का नाश हो। यह सुनते ही अहिरावण मन में सोचने लगा। फिर वह इस प्रकार पवित्र व सुहावने वचन बोला—

सुनु रावन जग नीति पियारी * करै अनीति होय भय भारी
बिना बिचारि रारि तुम ठानी * कीन्ह सेन कुल सर्वस हानी

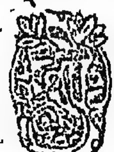
सुनो रावण, संसार में नीति प्यारी है; क्योंकि जो अनीति करता है, उसको बड़ा भय होता है। तुमने बिना विचारे बैर किया, जिससे सेना, वंश व सर्वस्व का नाश कर दिया।

मनुज प्रताप प्रभाव न जानेउ * सबते बड़ तोहिं लघुकरि मानेउ
यदपि न योग मोहिं असिबाता * तदपि हरहुँ तवलागि दोउ भ्राता

उन मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के प्रभाव को तुमने नहीं जान पाया। जो सबसे बड़े हैं उनको तुमने छोटा करके माना है। यद्यपि मुझको ऐसा काम करना न चाहिए, तो भी तुम्हारे लिए दोनों भाइयों को मैं हरूँगा।

लै पताल देविहिं बलि देहौं * यशपूरण निशिचरकुल लेहौं
लै जैहौं तुम जानेउ तबहीं * रविसम तेज होइ निशि जबहीं

पाताल में ले जाकर मैं देवी के आगे उनकी बलि दूँगा और निशाचरों के वंश में पूर्ण यश को लूँगा। मैं उन्हें ले जाऊँगा। तुम तब जानना कि मैं उन्हें ले गया, जब रात को सूर्य के समान प्रकाश हो।


कहि अस वचन प्रबोधकरि, शीश नाइ बल भाखि।
आयहु रघुपतिकटक तब, निजदेविहिं उर राखि॥

ऐसे वचन कह, समझाकर, मनाकर, अपने बल का बखानकर अहिरावण उस समय अपनी देवी को हृदय में ध्यान करता हुआ रघुनाथजी की सेना में आया।

यह सुनि उमा कह्यो त्रिपुरारी * अहिरावण को भा विबुधारी
कहो तासु जन्मादि चरित्रा * शिव बोले सुनि कथा विचित्रा

यह सुनकर पार्वतीजी ने कहा—हे त्रिपुरारि, देवतों का वैरी अहिरावण कौन हुआ है ? उसके जन्म आदि का चरित्र कहिए। यह सुनकर शिवजी विचित्र कथा कहने लगे—

अहिरावण की कथा भवानी * सुनहु चित्त दै कहौं बखानी
भे रावण के सुत बहुतेरे * सब बल विद्या बुद्धि घनेरे

कि हे पार्वती, अहिरावण की कथा को चित्त लगाकर सुनो ; मैं बखानकर कहता हूँ । रावण के बहुत-से पुत्र हुए थे और वे सब बड़े बली, विद्वान् और बुद्धिमान् थे।

एक समय मयजा सुत जायो * सुनि दशकण्ठ महाभय पायो
बीस व्यालयुत सुनि विबुधारी * राखन योग न मनहिं विचारी

एक समय मय दानव की कन्या मन्दोदरी ने एक पुत्र को पैदा किया, जिसके जन्म का हाल सुनकर रावण बहुत डरा। देवताओं के वैरी रावण ने बीस साँपों के साथ उस पुत्र का जन्म सुनकर मन में विचार किया कि यह रखने के योग्य नहीं है।

श्वानानन ते कह्यो बोलाई * आवहु याहि गाड़ि कहुँ जाई
दूत दाबि नैर्ऋत्य सिधावा * पृथ्वी खोदि तोपि तर आवा

रावण ने श्वानानन नाम के अपने दूत को बुलाकर उससे कहा कि जाकर इसको कहीं गाड़ दो। वह दूत उस पुत्र को बगल में दबाकर नैर्ऋत्यकोण (दक्षिण-पश्चिम का कोना) को चला गया और पृथ्वी को खोदकर नीचे तोप आया।

रघुपति चरित करन हित आगे * मरा न सो बालक तेहि लागे
खाइसि खनि माटी इक मासा * पुनि गा निकरि नीरनिधि पासा

आगे रघुनाथजी के चरित्र को पूरा करने के लिए वह बालक उस समय नहीं मरा। एक महीने तक उसने मिट्टी को खोदकर खाया, फिर निकलकर समुद्र के पास गया।

तेहि लखि राहुजननि अनुरागी * भवन लाय निज पालन लागी
इक दिन तहाँ शुक्र चलि आये * बोले पुत्र कहाँ यह पाये

उसको देखकर राहु की माता (सिंहिका) प्रसन्न हुई और अपने घर में उसे लाकर पालने लगी। एक दिन शुक्राचार्य वहाँ आये और बोले—तूने इस पुत्र को कहाँ पाया ?

छायाग्रहणि कह्यो तब आई * जेहि विधि उदधि तीरते लाई
दनुजपूज्य मुनि वचन उचारा * यह है रावण केर कुमारा

तब छाया को पकड़नेवाली सिंहिका ने वह सब हाल कहा, जिस प्रकार समुद्र के किनारे से उसे लाई थी। दानवों के पूजनीय गुरु शुक्राचार्य ने तब कहा कि यह रावण का पुत्र है।

आदिहिं ते सब कथा सुनाये * अहिरावण धरि नाम सिधाये

निज उत्पत्ति सुनी त्यहि जबहीं * कूदि परा सागर महँ तबहीं

आदि से उन्होंने सब कथा सुनाई और उसका अहिरावण नाम रखकर चले गये। उसने जब उत्पत्ति को सुना तब समुद्र में कूद पड़ा।

निकसा तुरत वितल महँ जाई * तहाँ रहै अहिपुरी सुहाई
सत्तर योजन बसत ललामा * चामीकर के अति सुठि धामा

वह बालक जाकर तुरन्त वितललोक में निकला। वहाँ सुहावनी नागपुरी थी। वह दो सौ अस्सी कोस में बसती थी। वहाँ सोने के सुन्दर घर बने थे।

दर्वीकर तहँ रहै भुवारा * सो वासुकि कर सग सारा
तासु पुरी लखि कौतुक नाना * पुनि गा जहँ नित होत पुराना

वहाँ दर्वीकर नाग का राजा रहता था। वह वासुकी का सगा साला था। उसकी पुरी में अनेक भाँति के अचरज देखकर अहिरावण फिर वहाँ गया, जहाँ नित्य पुराण की कथा होती थी।

तपप्रभाव तहँ सुनि अधिकाई * सपदि विपिन पहुँचा हर्षाई
वन में लखी नदी इक बहई * नाम कामदा देवी रहई

वहाँ तपस्या का बहुत प्रभाव सुनकर शीघ्र ही प्रसन्न होकर वन में आ पहुँचा। वन में देखा कि एक नदी बहती है और उसी के पास कामदा नामक देवी का स्थान है।

सुथल समुझि तहँ ध्यान लगावा * संवत चौदह सहस बितावा
सब विधि देखि समाधि अडोली * वरं ब्रूहि तब देवी बोली

उत्तम स्थान समझकर अहिरावण ने वहाँ देवी का ध्यान लगाया और चौदह हजार वर्ष वहीं तपस्या में बिताये। सब तरह से उसकी समाधि को अचल देखकर देवी ने कहा—वरदान माँग।

इष्ट वचन सुनि दुहुँ करजोरी * माँगेसि वर करि विनय बहोरी
अमरन ते अधिकौ सुख करहूँ * जीतहुँ त्यहि ज्यहि के सँग लरहूँ

मनमाने प्रिय वचन सुनकर अहिरावण ने दोनों हाथ जोड़कर फिर विनती की और यह वरदान माँगा कि देवताओं से अधिक सुख करूँ और जिससे लड़ूँ, उसे जीत लूँ।



शेष महेश दिनेश सुर, ईश अजीश अनन्त।
मरौं न काहू हाथ से, होउँ निशाचरकन्त॥

शेष, महेश, दिनेश (सूर्यनारायण), देवतों के स्वामी इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु आदि जो अनगिनती देवता हैं, इन किसी के हाथ से न मरूँ और निशाचरों का स्वामी होऊँ।

पितहिं कीन अपमान हमारा * सोउ मोहिं याचै इकवारा

सुनि देवी बोली सुनु ताता * करिहौ तुम सुख बहुविध गाता

पिता ने मेरा अपमान किया है; वह भी एक समय मुझसे सहायता की याचना करे। यह सुनकर देवी बोली—हे तात, सुनो; तुम अपने शरीर से बहुत भाँति के सुखों को भोगोगे।

त्रेता शेष समय दशशीशा * याचे तोहिं जोरि भुज बीशा
मारे तुम्हें न कोउ जगमाहीं * कपि यक मम वाचावश नाहीं

जब त्रेतायुग कुछ बाकी रह जायगा, तब रावण बीसों हाथों को जोड़कर तुमसे प्रार्थना करेगा। तुमको संसार में कोई न मारेगा। परन्तु एक वानर मेरी वाणी के वश में नहीं है।

तेहि प्रभु ते जनि किहेउ कुचाली * तौ तू अजर अमर कहि चाली
रहनलाग तहँ दनुजकुमारा * अगणित खग मृग करै अहारा

इसलिए उस वानर के स्वामी से दुष्टता न करना। यदि ऐसा करोगे, मेरा कहा मानोगे तो तुम अजर अमर होगे। यह कहकर देवी चली गई। वह अहिरावण वहाँ रहने लगा। वह नित्य अनगिनत पक्षियों व मृगों का आहार करता था।

यहि विधि वर्ष पाँचशत बीती * तब खल करन लाग अनरीती
विविधि वेष धरि अहिपुर जाई * अज गज हय खर डारहि खाई

इस प्रकार जब पाँच सौ वर्ष बीत गये, तब वह दुष्ट अनरीति (अयोग्य काम) करने लगा। अनेक भाँति के वेष रखकर वह पाताल में जाता और बकरों, हाथियों, घोड़ों व गधों को खा डालता था।

एक दिवस दर्वीकर राजा * धरन गये तेहिं सहित समाजा
अहिरावण करि कठिन लराई * दीन्हें सकल नाग बिचलाई

एक दिन दर्वीकर राजा समाज (सेना) समेत उसको पकड़ने के लिए गया। अहिरावण ने कठिन युद्ध कर सब नागों को भगा दिया।

तब दर्विक अनन्त पहँ गयऊ * सब वृत्तान्त सुनावत भयऊ
सुनि बोले करि शेष विचारा * अहिरावण तपबल अधिकारा

तब दर्वीकर राजा शेषजी के पास गया व उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर शेषजी विचारकर बोले कि अहिरावण को तपस्या का बल बड़ा भारी है।

तेहिते नहिं ऐहो बरिआई * कन्या दै मिलि रहियो जाई
तब दर्विक बुलवावा ताही * दीन्हीं विधिवत सुता बिवाही

इस कारण उससे जीतकर नहीं आ सकते। इसलिए उसे अपनी कन्या देकर उससे मिलकर रहो। तब दर्वीकर राजा ने अहिरावण को बुलवाया व विधिपूर्वक कन्या ब्याह दी।

कुन्दलि नाम पाय वर नारी * तब नागन ते गिरा उचारी
अब सब होउ विगत सन्देहू * करिहौं मैं कानन में गेहू

कुन्दनी नाम की उत्तम नारी को पाकर उस समय अहिरावण ने नाग से यह वचन कहा कि अब तुम सब लोग संदेह रहित हो जाओ। मैं वन में घर करूँगा; यानें घर बनाकर वन में बसूंगा।

पुनि कामदा देवि ढिग आवा * योजन नवकर नगर बनावा
असुरन सहित रहै त्यहि माहीं * करन लाग सुख बरणि न जाहीं

फिर वह कामदा देवी के समीप आया और नव योजन का नगर बनाया। दैत्योंसमेत वह उसमें रहता था। वह ऐसा सुख करने लगा, जो वर्णन नहीं किया जा सकता।

यहिविधि शम्भु उमासन वर्णा * अहिरावण की कथा सुपर्णा
अब सो कथा सुनहु उरगारी * जेहि विधि यमपुरगा विबुधारी

हे गरुड़जी, इस तरह शिवजी ने पार्वती से अहिरावण की कथा कही। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, अब उस कथा को सुनिए, जिस भाँति देवताओं का वैरी अहिरावण यमपुर को गया।



आय गयो सोइ योग, जो त्रेता के शेष महँ।
देवी कह्यो सँयोग, रच्यो अन्धतमकटकमहँ॥

वही योग अब आ गया, जिस संयोग को त्रेतायुग के कुछ बाकी रहने पर देवी ने कहा था, तब अहिरावण ने वानरी सेना में बड़ा अन्धकार उत्पन्न किया।

सूझ न निजकर अति अँधियारी * मर्कट भट जागहिं तहँ भारी
कहहिं जयति जयजयतिकृपाला * अतिहिंअगमजहँनहिंगतिकाला

ऐसा भारी अन्धकार हुआ कि अपना हाथ फैलाया नहीं सूझ पड़ता था। उसमें बड़े भारी योद्धा वानर जागते थे। वे वानर यह कहते थे कि दयालु श्रीरामजी की जय हो, जय हो, जय हो। वह अन्धकार ऐसा अगम था कि वहाँ काल की भी गति नहीं थी।

तहँ मरुतसुत रचेउ उपाई * करि लंगूर कोट कठिनाई
सो शोभा इहि भाँति सुहाई * भुजगराज कुण्डली लगाई

वहाँ पवन के पुत्र हनुमान्‌जी ने यह यत्न रचा कि अपनी पूँछ से कठिन कोट (घेरा) कर दिया। वह शोभा ऐसी सुहावनी थी कि मानो शेषजी ने कोंडरी (देह से गोल घेरा सा) बनाया है।

देखिय उन्नत शैल समाना * द्वार तहाँ जहँ मुख हनुमाना
देखि हृदय अहिरावण हारा * किमि रविगृहकरातिमिर पसारा

पहाड़ के समान वह कोट ऊँचा देख पड़ता था। उसमें द्वार वहाँ था, जहाँ महावीरजी का मुख था। यह देखकर अहिरावण हार गया। सूर्य के घर में अन्धकार कैसे फैल सकता है।

एकौ युक्ति न मन ठहरानी * कपट वेष तहँ कीन भवानी

वेष विभीषण सब अनुहारी * पवनतनय पहँ गा छलकारी

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जब एक भी युक्ति मन में न ठहरी, तब उसने कपट का वेष किया। उसका सब वेष विभीषण के समान था। वह छल करनेवाला अहिरावण पवन के पुत्र हनुमान्‌जी के पास गया।



सहज प्रतापी पवनसुत, पुनि सुरपतिपतिदास।
तिनहिं निदरि चल रामपहँ, मूढ़ हृदय नहिं त्रास॥

एक तो पवन के पुत्र हनुमान्‌जी स्वभाव ही से प्रतापी हैं, फिर इन्द्र के भी स्वामी श्रीरामजी के दास हैं। उनको कुछ न समझकर वह मूढ़ अहिरावण श्रीरामचन्द्र के पास चला। उसके हृदय में कुछ भी डर नहीं था।

मर्म न जान प्रभंजनजाता * कीन्हेसि गमन विभीषण भाँता
ठाढ़ होउ बोलेउ सुनु भ्राता * चलेउँ जहाँ कृपालु जनत्राता

पवन के पुत्र हनुमान्‌जी ने इस मर्म (भेद) को नहीं जान पाया। अहिरावण विभीषण की तरह उनके पास चला। उसने कहा—भाई, खड़े हो जाओ। सुनो भाई, मैं वहाँ जाना चाहता हूँ, जहाँ अपने जनों के रक्षक कृपानिधान श्रीरामजी हैं।

मैं रघुपतिसन आयसु पाई * सन्ध्या करन गयउँ सुनु भाई
तेहि ते तुरत चलेउँ प्रभु पाहीं * भइ विलम्ब जनि राम रिसाहीं

सुनो भाई, मैं श्रीरामजी से आज्ञा लेकर सन्ध्योपासना करने गया था। इसलिए स्वामी श्रीरामजी के पास मैं जाता हूँ; क्योंकि देर हुई। श्रीरामजी क्रोध न करें।

सत्य वचन कपि निजमन माना * सुनु खगेश भावी बलवाना
कपट चतुर गति जानि न जाई * परमन हरै हरहि धन भाई

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—सुनो गरुड़जी, हनुमान्‌जी ने अपने मन में अहिरावण का यह कहना सत्य मान लिया; क्योंकि होनहार बलवान् होती है। भाई, कपटी और चतुर की गति जानी नहीं जाती। वे पराया मन और धन हर लेते हैं।

आयसु पाइ गयउ सो तहँवाँ * रह फणीश प्रभु दोउ जहँवाँ
कपिपति जाम्बवन्त नल नीला * बालीसुत सुषेण बलशीला

हनुमान् की आज्ञा पाकर वह अहिरावण वहाँ गया, जहाँ लक्ष्मण और रघुनाथजी दोनों थे। वानरों के स्वामी सुग्रीव, जाम्बवान्, नल, नील, बालि के पुत्र अंगद, बलवान् सुषेण,



द्विविद मयन्द रु कीशगण, गय गवाक्ष कपि बीर।
सहित विभीषण अपर भट, सोये सब रणधीर॥

द्विविद, मयन्द आदि वानरों के गण, गय, गवाक्ष आदि वीर वानर तथा विभीषण-त और सब योद्धा उस समय सोये हुए थे, जो युद्ध में बड़े चतुर थे।

तिनहिं मध्य रावण शशि राहू * एक सङ्ग सोवत फणिनाहू
दक्षिण दिशि सोवत रघुनाथा * अनुज वामदिशि तेहिपर हाथा

उनके बीच में रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूप रामचन्द्र व लक्ष्मणजी एक ही साथ सोते थे। दाहिनी ओर रघुनाथजी सो रहे थे और छोटे भाई लक्ष्मणजी बाईं ओर थे और रामचन्द्रजी उनके ऊपर हाथ रक्खे थे।

प्रभुकर करपर राजत कैसे * जातरूप पङ्कज फणि जैसे
कपिसमूह जनु सागर क्षीरा * तहँ सोये मानहु दोउ वीरा

स्वामी रामजी का हाथ लक्ष्मणजी के हाथ पर किस तरह सोहता है, जैसे सोने के कमल पर साँप शोभित हो। वानरों का समूह मानो चीरसमुद्र है, वहाँ मानो दोनों वीर सो रहे हैं।

सुभग बाण धनु धरे बनाई * लक्ष्मण सह समीप रघुराई
अहिरावण मन कीन्ह प्रणामा * देखि राम सुन्दर घनश्यामा

लक्ष्मण-समेत रघुनाथजी ने पास ही उत्तम धनुष और बाणों को सजाकर रक्खा है। अहिरावण ने मेघों के समान श्यामसुन्दर रघुनाथजी को देखकर मन में प्रणाम किया।

ब्रह्मादिक जेहि ध्यान न पावहिं * मुनि महेश पूजा मन लावहिं
करहिं विविध जप योग विरागी * जपहिंनिरन्तर निशिदिनजागी

ब्रह्मा आदि देवता जिसको ध्यान में नहीं पाते, मुनि और महेशजी जिसकी पूजा में मन लगाते हैं, और वैरागी लोग जिसके लिए अनेक प्रकार के जप व योग करते हैं, सदा रात-दिन जागकर जपते हैं,

सो प्रभु तेहि देखा भरि लोचन * कृपासिन्धु सेवक भयमोचन
बहुरि हृदय तेहि कीन्ह विचारा * करहुँ काज रावण अनुसारा

उन्हीं स्वामी रघुनाथजी को उसने आँख भरकर अच्छी तरह देखा, जो दयासागर व सेवक के भय को छुड़ानेवाले हैं। फिर उसने हृदय में विचार किया कि रावण का काम जिसमें बने, वही अब करना चाहिए।

कछु निज मायाकृत गुण आई * कौनीभाँति जाहिं दोउ भाई

कुछ अपनी माया से किये हुए गुणोंको विचारने लगा कि किस भाँति दोनों भाई जायँगे।



मोहन ते मोहे सकल, मन्त्रन ते मुख मूँदि।
भयउ अदृश्य उठायकरि, प्रभुहिं चलेउ लै कूदि॥

मोहनमन्त्र से उसने सभी को मोह लिया और मन्त्रों से मुख मूँदकर अदृश्य हो गया। फिर रघुनाथजी को उठाकर वहाँ से कूदकर चला।

यहि विधि गयउ दुहुन लै सोई * नभमारग प्रकाश अति होई

सो प्रकाश जब रावण देखा * किय प्रमाण तेहिं वचन विशेखा

इस भाँति वह दोनों भाइयों को उठा ले गया। उस समय आकाशभाग में बड़ा प्रकाश होने लगा। जब रावण ने उस प्रकाश को देखा, तब उसने इस प्रकाश की विशेषता से अहिरावण का वचन सत्य जानकर उसका प्रमाण किया।

मन महँ हर्ष करहि अतिभारी * अहिरावण लैगा असुरारी
लै निजलोक गयउ पलमाहीं * भयउ शोर तब कपिदलमाहीं

मन में बड़ा भारी हर्ष है कि अहिरावण दैत्यों के वैरी रघुनाथजी को ले गया। एक पलभर में अहिरावण उनको अपने लोकको ले गया। तब वानरों की सेना में कोलाहल हुआ।

जागे वानर श्रीहत भारी * देखिय जिमि सरिता बिनु बारी
पुनिदेखियजिमिनिशि बिनुइन्दू * भे वानर जिमि उडु बिनु चन्दू

वानर जागे जिनकी श्री नष्ट हो गई है, तेज जाता रहा है। वे कैसे देख पड़ते हैं, जैसे बिना जल की नदी हो अथवा कैसे देख पड़ते हैं, जैसे चन्द्रमा के बिना रात होती है। जैसे चन्द्रमा के बिना तारागण हों, वैसे ही वानर श्रीहत हो गये।

रवि बिनु दिवस जीव बिनु देहा * जिमि देखिय दीपक बिनु गेहा
एकहि एक लगे तब बूझन * कहाँ गये त्रैलोकविभूषन

जैसे सूर्यनारायण के बिना दिन, जीव के बिना शरीर और दीपक के बिना घर सूना देख पड़ता है, वैसे ही वानर देख पड़ते हैं। तब एक दूसरे से पूछने लगे कि त्रैलोक्यभूषण श्रीरघुनाथजी कहाँ गये?



शोधेउ सबमिलि कटकतिन, नहिं पाये दोउ बीर।
भय ब्याकुल सब भालु कपि, जिमिजलचरगतनीर॥

उन सब वानरों ने मिलकर सेना में खोज की, परन्तु दोनों वीरों को नहीं पाया। तब सब रीछ व वानर भय से विकल हो गये, जैसे जल के बिना जल के जीव होते हैं।

सकलकहहिंयहविधिकहकीन्हा * रघुपतिविरह प्राण कत लीन्हा
शोक ग्रसित धरि सकहिं न धीरा * कहाँ राम लक्ष्मण दोउ बीरा

सब यह कहते हैं कि विधाता ने यह क्या किया? रामजी के बिछोह में क्यों हमारे प्राणों को ले लिया। शोच से ग्रसे हुए सब वानर धीरज नहीं धर सकते और यह कहते हैं कि राम व लक्ष्मण दोनों वीर कहाँ हैं?

करुणा करहिं कपीश अपारा * बनी बात विधि कहा बिगारा
कटक निशाचर सकल सँहारी * रहा एक रिपु रावण भारी

वानरों के स्वामी सुग्रीव बड़ा शोच करते हैं कि विधाता ने बनी हुई बात क्यों बिगाड़ दी। राक्षसों की सब सेना तो नष्ट हो गई थी, एक बड़ा भारी वैरी रावण रह गया था।

सोउ न रहत रामशर लागे * भाइउ हम सब परम अभागे
कबहुँजोदशशिरअरिरणजीतहिं * उत्तर कवन देब हम सीतहिं

वह भी श्रीरामजी का बाण लगने से नहीं रहता। परन्तु हे भाइयो, हम सब बड़े अभागे हैं। अब कदाचित् युद्ध में रावण को जो जीत भी लेंगे, तो भी हम सीताजी को क्या उत्तर देंगे।

असकहि बिकल मूर्च्छि महिपरे * लागत वज्र शैल जिमि गिरे
दशा विभीषण कही न जाई * विगत वत्स जनु धेनु लवाई

ऐसा कह व्याकुल हो मूर्च्छित होकर सुग्रीवजी पृथ्वी पर गिर पड़े, जैसे वज्र के लगते ही पहाड़ गिर पड़ता है। उस समय विभीषण की दशा कही नहीं जाती, जैसे बछड़े के बिना तुरत की ब्याई हुई गऊ ले जाने में तड़पती हो।



सहित पवनसुत ऋक्षपति, दुख मन भा बड़िभाँति।
खगपति सूझ न कतहुँ कछु, तम अपार तिहि राति॥

पवनकुमार हनुमान्जी-समेत जाम्बवान् के मन में बहुत भाँति से दुःख हुआ। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, उस रात में ऐसा अपार अन्धकार था कि कहीं कुछ नहीं देख पड़ता था।

पवनतनय पुनि कह सब पाहीं * विस्मय एक होत मनमाहीं
कोउ इक आव विभीषण वेखा * प्रभु के निकट जात हम देखा

फिर पवनकुमार हनुमान्जी ने सबसे कहा कि मन में एक आश्चर्य होता है। कोई एक पुरुष विभीषण के रूप से आया था। उसको मैंने स्वामी श्रीरामजी के पास जाते देखा है।

पूछत बचन कहेसि अतिनीका * कपट न जानियनिशिचरजीका
बचन सुनत बोलेउ लंकेशा * अहिरावण लेगा अवधेशा

पूछने पर उसने बहुत अच्छे वचन कहे थे; परन्तु निशाचरों के चित्त का कपट नहीं जाना जा सकता है। यह वचन सुनते ही लंका के स्वामी विभीषणजी बोले—अयोध्यानाथ श्रीरामचन्द्रजी को अहिरावण ले गया।

पन्नग लोक निवासी सोई * मम तनु वेष और नहिं कोई
महाबली जानै सब माया * निश्चय तेहि दशशीश पठाया

वह पन्नगलोक (पाताल) का रहनेवाला है। और कोई मेरे शरीर का-सा वेष धारण नहीं कर सकता। वह बड़ा बलवान् है और सब मायाओं को जानता है। इससे निश्चय ही रावण ने उसको भेजा होगा।

जेहि बल होइ तहाँ सो जाई * ताहि जीति आनै दोउ भाई
कहेउ भालुपति सुनु हनुमाना * तव बल तात सकल जग जाना

जिसके बल हो, वह वहाँ जाय और उसे जीतकर दोनों भाइयों को ले आवे। रीछों के स्वामी जाम्बवान् ने कहा—हे हनुमान्‌जी, तुम्हारे बल को सारा संसार जानता है।

बेगि सो यत्न विचारहु ताता * कृपासिन्धु आनहु दोउ भ्राता

हे तात, जल्दी ही उस यत्न को विचारिए, जिससे कृपासिन्धु दोनों भाइयों को ले आइए।



बिलखि कहेउ कपिपति बहुरि, सुनु मारुतसुत तात।
बिनु रघुनायक जन्म धिग, पल युगसरिस बिहात॥

फिर सुग्रीवजी व्याकुल होकर बोले—हे तात, पवनपुत्र हनुमान्‌जी, सुनिए। रामजी के बिना जन्म को धिक्कार है, जिनके बिना पलभर युग के बराबर बीतता है।

यथा तृषित बिनु वारि दुखारी * रवि बिनु जलज मीन बिनु वारी
भट अशस्त्र रण अनी अनाथा * वह्नि अनिंधन गात न माथा

जैसे प्यासा मनुष्य बिना जल के दुःखित होता है, सूर्य के बिना कमल और जल के बिना मछली दुःखित होती है, हथियार के बिना योद्धा, युद्ध में स्वामी के बिना सेना, बिना ईंधन के आग और सिर के बिना शरीर की शोभा नहीं होती।

दीप अवर्ति सकल क्षणभंगी * तिमि हम सब देखिय बजरंगी
जिमि सीता सुधि भेषज आनी * तेहि प्रकार आनहु सुखदानी

जैसे बिना बत्ती के दिया सब क्षण ही भर में बुझ जाता है, वैसे ही हे हनुमान्‌जी, हम सब देख पड़ते हैं। जिस प्रकार तुम सीताजी की खबर और औषध को लाये हो, उसी प्रकार सुखदायक रामजी को ले आओ।

सुनत वचन मारुतसुत बोला * राखेउ चितथिर कटकअडोला
भुवन चारिदश तीनिहु लोका * आनहुँ प्रभुबल प्रभु तजुशोका

इस वचन को सुनते ही पवनकुमार हनुमान्‌जी बोले कि चित्त को सावधान कर सेना को अटल रखिएगा। चौदहों भुवनों व तीनों लोकों में जहाँ वह दुष्ट प्रभु को ले गया होगा, वहाँ से मैं उन्हें प्रभुजी के बल व प्रताप से ले आऊँगा। हे स्वामी, सोच को छोड़ो।

अब तुम सजग रहौ सब भाई * लरेउ कालसन जो चढ़ि आई
अस कहि सकृत चलेउ हनुमाना * गर्जत प्रलय पयोधि समाना

अब तुम सब भाइयो, होशियार रहना और जो काल भी चढ़कर आवे तो उससे लड़ना। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रलय के मेघों के समान गर्जते हुए फुर्ती से चले।

चलत बाट इक तरुतर गयऊ * गीधिनि गीध कहत अस भयऊ

मार्ग में चलते हुए वे एक वृक्ष के नीचे गये। वहाँ एक गीध व गीधनी थी। वे आपस में इस तरह बातें करने लगे—



नारि गर्भिणी गृध्रकर, बोली पतिसन बैन।
आनहु आमिष मनुजप्रिय, खाउँ होइ जिय चैन॥

गीध की स्त्री के गर्भ था। वह पति से बोली—हे प्रिय, मनुष्य का मांस लाइए; उसको खाऊँ तो जी को चैन हो।

तासु वचन सुनि खग अस कहेऊ * अहिरावण रामहिं लै गयऊ
देइहि बलि देविहिं सो जाई * सो आमिष बड़ भागन पाई

उसके वचन सुनकर गीध पक्षी ने कहा—अहिरावण श्रीरामचन्द्रजी को ले गया है। वह जाकर देवीजी को बलि देगा और उस मांस को मैं बड़े भाग्यों से पाऊँगा।

कवनेउ यतन देब मैं आनी * अस कहि विहँग वाम सनमानी
जबहिं पवनसुत अस सुधि पाई * चलेउ तहाँ सुमिरत रघुराई

मैं किसी यत्न से वह मांस ला दूँगा। ऐसा कहकर गीध पक्षी ने स्त्री का आदर किया। जब पवनकुमार हनुमान्जी ने ऐसी खबर पाई, तब रघुनाथजी को स्मरण करते हुए वहाँ को चले।

अभय प्लवंग पतालहिं गयऊ * अहिरावण पुर प्रविशत भयऊ
द्वारपाल मकरध्वज कीशा * कपिसन डाटि कहत बहुरीशा

निडर होकर हनुमान्जी पाताल को गये और अहिरावण के नगर में घुसे। वहाँ का द्वारपाल मकरध्वज नाम का वानर था। उसने बड़े क्रोध के साथ हनुमान्जी से घुड़ककर कहा—

निदरि जात मोहिं तोहिं डर नाहीं * दीपहिं जिमि न पतंग डराहीं
जानेसि मोहिं न मरुतसुतबालक * स्वामिभक्त भञ्जन मुखकालक

मेरा निरादर कर तू जाता है। क्या तेरे डर नहीं है? जैसे पाँखी दीपक को नहीं डरती। तू मुझे नहीं जानता, मैं पवन के पुत्र हनुमान्जी का पुत्र व स्वामी का भक्त व काल के मुँह को भी तोड़नेवाला हूँ।


सुनत वचन हनुमान, बोलत भे विस्मय विवश।
अरे मूढ़ अज्ञान, मोरे सुत सपनेहु नहीं॥

इस वचन को सुनते ही आश्चर्य के वश होकर हनुमान्जी बोले—अरे मूर्ख अज्ञानी! मेरे तो स्वप्न में भी पुत्र नहीं है।

कहत वचन शठ संयुत खोरी * कामविवश कब भइ मति मोरी
ममसुत बनसि मूढ़ केहि काजा * इतना कहत तोहिं नहिं लाजा

हे शठ, तू कलंक लगानेवाला वचन कहता है। मेरी बुद्धि कब काम के वश हुई थी? हे मूढ़, तू मेरा पुत्र किसलिए बनता है। यह कहते तुझे लाज नहीं आती?

केहि प्रकारते मम सुत भयऊ * निज उतपाति मोसन किन कहऊ
सुनत कहहि मकरध्वज वचना * किहेउ दाह रावणपुर रचना

तू किस प्रकार मेरा पुत्र हुआ ? अपनी उत्पत्ति मुझसे क्यों नहीं कहता। यह सुनते ही मकरध्वज कहने लगा—जब आपने रावण के नगर लंका को जलाया था।

जब आयउ चलिउदधि समीपा * बहेउ स्वेद तब तनु कपिदीपा
सो प्रस्वेद सागर महँ गयऊ * पियउ मीन तेहिते मैं भयऊ

और उसके बाद समुद्र के पास आये, तब हे वानरों में दीपकरूप श्रेष्ठ हनुमान्‌जी, आपके शरीर से पसीना बहा। वह पसीना समुद्र में गया। उसको मछली ने पी लिया और उससे मैं पैदा हुआ।

यहि प्रकार मैं तव सुत ताता * गोवहुँ नहिं निज पिता न माता
अहिरावण सेवा मैं करहूँ * राखहुँ द्वार न कबहूँ डरहूँ

हे तात, इस प्रकार मैं आपका पुत्र हूँ। अपने पिता-माता को नहीं छिपाता। मैं अहिरावण की सेवा करता हूँ, उसी के द्वार की रक्षा करता हूँ और कभी नहीं डरता।

दो० सत्य वचन हनुमान कहि, पुनि पूछी सब बात।
लावा लक्ष्मण राम कहँ, कहा करत सो तात॥

तब हनुमान्‌जी ने कहा—यह वचन सत्य है। फिर उससे सब बात पूछी कि हे तात, अहिरावण राम व लक्ष्मणजी को ले आया है; वह क्या कर रहा है ?

कहहु तात तेहि थल का नाऊँ * जान चहौं मैं तव प्रभु ठाऊँ
यह वृतान्त अस जानेउ ताता * यह मैं श्रवण सुनेउँ कछु बाता

हे पुत्र, उसके स्थान का नाम कहो; क्योंकि तुम्हारे स्वामी के स्थान को मैं जाना चाहता हूँ। मकरध्वज बोला—पिताजी, इस वृत्तान्त को मैंने ऐसे जाना कि मेरे कानों कुछ भनक पड़ गई।

सीतापति अरु फणिपति साथा * सो लै आयउ निशिचरनाथा
करत होम तेहि कारण आजू * देविहिं बलि देई नृपराजू

जानकीजी के पति श्रीराम व फणिपति लक्ष्मणजी को वह राक्षसों का स्वामी अहिरावण साथ लाया है। उसी कारण वह आज होम करता है, और नृपनायक श्रीराम व लक्ष्मणजी की देवी के आगे बलि देगा।

जो कछु निजश्रवणनसुनिपायउँ * तात सकल सो तुमहिं सुनायउँ
निजप्रभुकाजलागि दुख सहऊँ * तुमसन सत्य वचन मैं कहऊँ

पिताजी, मैंने अपने कानों से जो कुछ सुन पाया, वह सब तुमको सुना दिया। अपने स्वामी के काम के लिए मैं दुःख सहता हूँ, आपसे यह सत्य वचन कहता हूँ।

जान कहहु तुम जान न देऊँ * प्रभु आज्ञा तजि अयश न लेऊँ

सुनि अस पेलि चलेउ हनुमाना * भयउ क्रोध मकरध्वज जाना

आप जाने के लिए कहते हैं ; परन्तु मैं जाने न दूँगा ; क्योंकि स्वामी की आज्ञा को छोड़कर अपयश न लूँगा। ऐसा सुनकर हनुमान्जी उसको धक्का देकर चले। तब मकरध्वज के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ।



तेहिं मुष्टिक कपि कहँ हनेउ, पुनि मारेहु कपि ताहि।
हनहिं परस्पर एक इक, बल समान घटि नाहि॥

उसने एक घूँसा महावीरजी के मारा। फिर हनुमानजी ने उसको मारा। आपस में एक दूसरे को मारता है। दोनों का बराबर बल है ; कोई किसी से कम नहीं है।

एकहिं एक सकहिं नहिं पारी * पिता पुत्र दोउ भट भारी
सुतहि पूँछ सों बाँधि भवानी * चलेउ वातसुत विलँब न आनी

पिता व पुत्र दोनों बड़े भारी योद्धा हैं। इससे एक दूसरे को नहीं जीत सकता। श्रीशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, पवनपुत्र हनुमान्जी पुत्र को उसी की पूँछ से बाँधकर चले। देर नहीं लगाई।

धरि लघुरूप होमगृह देखा * जीव सजीव परे नहिं लेखा
तहँ देवीकर मंडप रहई * शोणित घट बहु को सक कहई

छोटा रूप रखकर हनुमान्जी ने वह होम का घर देखा, जहाँ जीवसमेत जीवों की गिनती नहीं है, अर्थात् वहाँ अनगिनती प्राणी हैं। वहाँ देवी का मण्डप था और बहुत से रक्त के घड़े रक्खे थे। उनको कौन कह सकता है।

विविध भाँति मेवा पकवाना * धरे आनि देवी सुस्थाना
मालिनि तहँ प्रसून लै आई * सुमन मध्य प्रविशेउ कपिराई

अनेक प्रकार की मेवा व पकवानों को देवीजी के उत्तम स्थान में उसने लाकर रक्खा। वहाँ जब मालिन फूलों को लेकर आई, तब कपिराज हनुमान्जी फूलों के बीच में घुसकर बैठ गये।

सुमनहुँ ते करि अति हलुकाई * लेत पानि जेहि जानि न जाई
जब देविहिं सो पुष्प चढ़ायउ * विकटरूप तब कपि दिखरायउ

हनुमान्जी ने फूल से भी बहुत हलका शरीर कर लिया, जिससे हाथ में लेने से जाने नहीं जाते। उस अहिरावण ने जब देवीजी को फूल चढ़ाया, तब हनुमान्जी ने भयङ्कर रूप को दिखाया।



छुवत चरण देवी तुरत, धरनी रही समाय।
मुख बगारि ठाढ़े भये, कपिछवि लखत डराय॥

हनुमान्जी के चरणों के छूते ही देवीजी तुरन्त पृथ्वी में पैठ गईं और महावीरजी मुख को फैलाकर खड़े हुए। उनकी छवि को देखते ही राक्षस डर गया।

देवी प्रगट समझ खल झारी * करहिं विचार हृदय अतिभारी
कहहिं कि देवि प्रगट भइ आजू * बड़भागी भा निशिचराजू

सब दुष्ट राक्षस देवीजी को प्रकट जानकर मन में बड़ा विचार करते और कहते हैं कि आज देवीजी प्रकट हुई, इससे आज निशाचरों का राजा अहिरावण बड़ा भाग्यवान् हुआ।

करिप्रणाम पुनि पूजा करहीं * जो चढ़ाय सो कपिमुख परहीं
जो जहँ रही वस्तु समुदाई * बची न एकौ सब कपि खाई

फिर प्रणामकर पूजन करते हैं। वे जो कुछ चढ़ाते हैं, वह हनुमान्जी के मुख में पड़ता है। जहाँ पर जिस वस्तु का ढेर था, उस सबको हनुमान्जी ने खा लिया; एक भी न बची।

कपि खिलारि कौतुक विस्तारा * भा चह निशिचर कुलसंहारा
अहिरावण उर भा सुख कैसे * चढ़े काँधपर बलिपशु जैसे

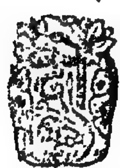
खिलाड़ी हनुमान्जी ने यह तमाशा किया; क्योंकि राक्षसों के वंश का नाश हुआ चाहता था। अहिरावण के हृदय में कैसे सुख हुआ, जैसे बलिप्रदान का पशु काँधे पर चढ़कर प्रसन्न होता है।

जबहीं होम सिद्ध तेहि जाना * लक्ष्मण राम तुरत तहँ आना
ठाढ़ कीन्ह प्रभुकहँ तहँ आनी * निशिचर बहु आयुध धरि पानी

जब उसने होम को सिद्ध जाना, तब तुरन्त राम और लक्ष्मण को वहाँ ले आया, जहाँ बहुत-से अस्त्रों को हाथ में लिये बहुत-से राक्षस थे।

कोऊ गदा कोउ धनुबाणा * कोउ शक्तिधरि कोउ कृपाणा

कोई गदा, कोई धनुष-बाण, कोई शक्ति, कोई तलवार लेकर खड़ा हुआ।



तोमर मुद्गर परशु असि, पाश परिघ अरु बेत।
शूल भुशुण्डी पट्ट परशु, देखत बिसरत चेत॥

तोमर, मुद्गर, फरसा, तलवार, फँसरी, बेलन, बेत, शूल, बन्दूक, पटा व फरसा को लेकर सब राक्षस खड़े हुए, जिनको देखते ही होश जाता रहता था।

माया बलते सकल विचक्षण * अतिविकार मतिमूढ़ कुलक्षण
यहि विधि सकल वीर तहँ रहहीं * अहिरावण दृढ़ आज्ञा गहहीं

वे सब राक्षस माया के बल से चतुर, बड़े विकारों से भरे, मूर्ख व कुलक्षणी थे। इस प्रकार वहाँ सब वीर रहते थे और अहिरावण की दृढ़ आज्ञा का पालन करते थे।

आयसु पाइ खड्ग तिन काढ़े * मारन कहँ प्रभुपर भे ठाढ़े
कोउ कह राजनीति अनुसरहू * भरित्रयदण्ड विलँबअब करहू

आज्ञा पाकर उन्होंने तलवार को निकाला और स्वामी श्रीरामजी को मारने के लिए

खड़े हुए। कोई कहता है कि राजनीति के अनुसार काम करिए और अब तीन घड़ी तुक ठहर जाइए।

पुनि अस वचन मूढ़मति कहहीं * सुमिरहु जो तुम्हरे हित अहहीं
नाहिंत काल आइ नियराना * निशा स्वप्नसम दोउ जन प्राना

मूढ़ बुद्धिवाले राक्षस फिर राम-लक्ष्मण से ऐसा वचन कहते हैं कि जो तुम्हारे हितू हों, उनको सुमिरो; नहीं तो तुम्हारा काल आकर नगिचा रहा है, और तुम दोनों के प्राण रात के सपने के समान हैं।

बोलहिं मूढ़ असम्भव बानी * सकुच लगै सो कहत भवानी

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—वे मूर्ख ऐसी अनहोनी बात कहते हैं कि जिसको कहते सकुच लगती है।



फणिपति चितवत रामतन, राम चितव अहिराज।
प्रभुकर कौतुक कहिय किमि, सुनो दशा खगराज॥

लक्ष्मण श्रीरामजी की ओर देखते हैं और श्रीरामजी लक्ष्मण को देखते हैं। काकभुशुण्डि कहते हैं—स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का कौतुक कैसे कहा जाय। अब आगे का हाल सुनो।

बिहँसि कीन्ह प्रभु हृदय विचारा * जपै सकल जग नाम हमारा
जाना देवि रूप हनुमाना * बिहँसि कहा तब राम सुजाना

बिहँसकर स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने हृदय में विचार किया कि सारा संसार मेरे नाम को जपता है, अब मैं किसको जपूँ? जब देवी के रूपवाले हनुमानजी को जाना, तब चतुर श्रीरामजी ने बिहँसकर कहा—

कालकौर तुम सुमिरहु रक्षक * भई तुम्हारि देवि तुव भक्षक
गिरा सुनत तिन मारन ठयऊ * घनसमान कपि गर्जत भयऊ

तुम सब काल के कौर हो, इससे अपने रक्षक को सुमिरो; क्योंकि तुम्हारी देवी ही तुम्हारे लिए भक्षक हो गई। इस वचन को सुनते ही उन्होंने मारने का यत्न किया। तब महावीरजी मेघों के समान गरज उठे।

निशिचर सकल त्रसित भे भारी * कहहिं वचन भय हृदय विचारी
अहिरावण भल कीन्ह न काजू * आनेसि कपटवेष सुरराजू

सब राक्षस बहुत डरे और हृदय में अपने लिये भय विचारकर कहते हैं—अहिरावण ने यह भला काम नहीं किया, जो कपट वेषवाले देवताओं के राजा इन्द्र को ले आया।

तेहिते देवि क्रुद्ध भइ आजू * अब भा सबकर मरण समाजू
संभ्रम वश तब निशिचर भारी * बहुरि कीश गर्जेउ अतिभारी

इसी कारण आज देवी क्रोधित हुई, और अब हम सबके मरने का सामान हो गया। तब सब राक्षस घबरा उठे। फिर महावीरजी बड़े जोर से गर्जे।



प्रगटरूप करि पवनसुत, अट्टहास गम्भीर।
अतिभय त्रासित रजनिचर, सुनहु उमा मतिधीर॥

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—सुनो धीर बुद्धिवाली पार्वती, पवनकुमार हनुमान्जी ने जब अपने रूप को प्रकटकर बड़ा भारी अट्टहास किया, तब राक्षस बड़े भारी डर से डर गये।

डगमगात निशिचर अभिमानी * मारुत वेग यथा नदि पानी
तेहिक्षण कपि लीन्हेउ दोउ भाई * धुनत तूल निशिचर समुदाई

अभिमानी निशाचर डगमगा रहे हैं, जैसे पवन के वेग से नदी का पानी हिलता है। उस समय हनुमान्जी ने दोनों भाइयों को उठा लिया और निशाचरों के समूह को रुई की तरह धुनकने लगे।

छीनि कृपाण लीन्ह हनुमाना * काटत भुज शिर कृषी समाना
खण्डखण्ड तब खलदलकीन्हा * गहिपद डारि अनलमहँ दीन्हा

हनुमान्जी ने तलवार को छीन लिया और खेत के समान राक्षसों की भुजाओं व मस्तकों को काटने लगे। तब उन्होंने दुष्टों की सेना को खण्ड-खण्ड कर डाला और चरणों को पकड़कर बहुत-से राक्षसों को आग में डाल दिया।

करि लंगूर कोट कपिराई * तेहिमहँघिरिकोउ भागि न जाई
इहि विधि सब निशिचर संहारे * अहिरावण लखि वचन उचारे

कपिराज हनुमान्जी ने पूँछ का कोट बनाकर उसी में सबको रोक लिया, जिसमें कोई भाग न जाय। इस प्रकार हनुमान्जी ने सब राक्षसों का संहार किया। यह देखकर अहिरावण बोला—

रे कपि ढीठ त्रास नहिं तोहीं * अहिरावण तैं जान न मोहीं
जम्बुमालि कहँ जिमि तैं मारा * अरु रावणसुत हतेउ विचारा

रे वानर! तू ऐसा ढीठ है कि तुझको डर नहीं लगता। मुझ अहिरावण को नहीं जानता। तूने जैसे जम्बुमाली राक्षस को और बेचारे रावण के पुत्र को मारा है, मैं वैसा नहीं हूँ।



कालनेमि सम नाहिं मैं, करुकपिवचन प्रमान।
अस कहि खड्ग प्रहार किय, कपितनु वज्रसमान॥

कालनेमि के समान भी मैं नहीं हूँ। हे वानर, इस मेरी बात का प्रमाण ले। ऐसा कहकर उसने वज्र के समान हनुमान्जी के शरीर में तलवार मारी।

लै असि ताहि पवनसुत मारा * काटि शीश पावक महँ डारा
आहुति पूर्ण दीन्ह तब कीशा * लै पुनि चलेउ लषण जगदीशा

पवन के पुत्र हनुमान्‌जी ने तलवार को लेकर उसे मार डाला व उसके सीस को काटकर अग्नि में डाल दिया। इस प्रकार महावीरजी ने पूर्णाहुति दी। फिर लक्ष्मण व जगत् के स्वामी श्रीरामजी को लेकर चले।

मकरध्वज प्रणाम तब कीन्हा * बन्धन छोरि राज्य तेहिं दीन्हा
इहाँ राज्य भोगहु तुम ताता * भजहु सदा मम प्रभु दोउ भ्राता

जब मकरध्वज ने प्रणाम किया, तब बन्धन से छोड़कर उसे वहाँ का राज्य दे दिया और यह कहा कि हे पुत्र, यहाँ तुम राज्य को भोगो और मेरे स्वामी श्रीराम-लषण दोनों भाइयों को भजो।

अस कहि कपि निज दल सो आवा * हर्षेउ कटक सबनि सुख पावा
मृतक शरीर प्राण जिमि आवहिं * मणिगण पाय फणी सुख पावहिं

ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अपनी सेना में आये। तब सेना प्रसन्न हुई व सभी ने सुख पाया। जैसे मरे हुए के शरीर में प्राण आ जायँ, जैसे मणिगण को पाकर साँप सुख पाते हैं,

बिछुरि अलभ्य मिलै जनु आई * तिमि हर्षे सब लखि दोउ भाई
मिलेउ कपीश चरण धरि माथा * पुनि पद गहे निशाचरनाथा

जैसे दुर्लभ वस्तु छूटकर फिर मिले, वैसे ही दोनों भाइयों को देखकर सब लोग प्रसन्न हुए। वानरों के स्वामी सुग्रीवजी चरणों पर सिर रखकर रामजी से मिले। फिर निशाचरों के नायक विभीषणजी मिले।



जाम्बवन्त अंगद सहित, मिले भालु अरु कीश।
सनमाने प्रिय वचन कहि, लषण कोशलाधीश॥

जाम्बवान् व अंगद-समेत रीछ और वानर भी मिले। तब लक्ष्मण व अयोध्यानाथ रामजी ने प्यारे वचन कहकर सबका सम्मान किया।

बहुरि सबहिं भेंटे हनुमाना * कहहिं तात तुम राखे प्राना
देवन सुमन वृष्टि तब कीन्ही * प्रमुदित हृदय दुन्दुभी दीन्ही

फिर सब हनुमान्‌जी को मिले और कहने लगे—हे तात, तुमने हमारे प्राणों को बचा लिया। तब देवताओं ने फूलों की वर्षा की व मन में खुश होकर नगाड़ों को बजाया।

अनुज सहित हर्षित रघुवीरा * कहेउ वचन सुनु तनय समीरा
तुव समान नहिं कोउ हितकारी * सुर मुनि सिद्ध मनुजतनुधारी

लक्ष्मण-समेत प्रसन्न होकर रामजी ने यह वचन कहा—हे पवनकुमार, सुनो। देवता, मुनि, सिद्ध व मनुष्य कोई भी शरीरधारी तुम्हारे समान मेरा हितकारी नहीं है।

यश तुम्हार त्रिभुवनमहँ भयऊ * सुनि प्रभु वचन चरण कपिनयऊ
नाथ कीन्ह सब मैं केहि लेखे * तरणी चलत अगम जल देखे

त्रिलोक में तुम्हारा यश हो गया। श्रीरामजी के वचन को सुनकर हनुमानजी उनके चरणों में गिर पड़े। फिर बोले—हे नाथ, आपही ने सब कुछ किया है। मैं किस गिनती में हूँ, मेरा यह काम तो वैसा ही है, जैसे गहरा जल देखकर नाव चलती है।

तैसे सब प्रताप तव नाथा * सुनि अस मिले कपिहिं रघुनाथा
कटक सहित हर्षे दोउ भाई * तेहि अवसर सुख किमि कहि जाई

हे नाथ, वैसे ही सब तुम्हारा ही प्रताप है। यह सुनकर श्रीरामजी महावीरजी से मिले। सेनासमेत दोनों भाई प्रसन्न हुए। उस समय का सुख कैसे कहा जा सकता है।

वहाँ दशानन सब सुधि पाई * दूत सँदेश दीन्ह सब जाई
अहिरावणकर वध सुनि काना * भयउ तेजहत अतिदुख माना

वहाँ रावण ने सब खबर पाई; क्योंकि एक दूत ने जाकर सब संदेशा दिया था। अहिरावण का वध कानों से सुनकर उसका तेज नष्ट हो गया और उसने बड़ा दुःख माना।

वचन वज्रसम लागे ताही * संभ्रम मूर्च्छि परेउ महिमाही
कटे पङ्ख जिमि बिहँग विहाला * रंक चीरगत निशि हिमकाला

ये वचन उसके वज्र के समान लगे। वह मोह से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जैसे पंखों के कटने से पक्षी व्याकुल होता है, जैसे वस्त्रों के न रहने से निर्धन जन जाड़े के समय में रात को विकल होता है।

मुख सुखान लोचन जल बहई * वचन न आव शीश धुनि रहई

वैसे ही उसका मुख सूख गया और आँखों से जल बहने लगा। मुँह से बात नहीं निकलती और शिर को पटक रहा है।



मयतनया तब आइ पुनि, बहुप्रकार समुझाइ।
मान न मूरख कालवश, परम क्रोध कहँ पाइ॥

तब फिर मय दानव की कन्या मन्दोदरी ने आकर बहुत भाँति से समझाया; लेकिन काल के वश मूर्ख रावण ने बड़ा क्रोध किया और उसका कहा नहीं माना।

इति अहिरावण की कथा—क्षेपक।

अथ नारान्तक की कथा—क्षेपक।

नारि वचन सुनि तेहि रिस बाढ़ी * उठि बैठेउ धरि धीरज गाढ़ी
तेहि अवसर मन्त्री इक आवा * करि आदर दशमुख बैठावा

स्त्री के वचन को सुनकर उसके क्रोध बढ़ा। वह बहुत धीरज धरकर उठ बैठा। उसी समय एक मन्त्री आया। उसको आदर कर रावण ने पास बिठलाया।

सिन्धुरनाद नाम बलवाना * वृद्ध ज्ञानमय परम सुजाना
सदा विभीषण कर सँग ठयऊ * कबहूँ दशमुख सभा न गयऊ

वह सिन्धुरनाद नाम का बलवान् मन्त्री बूढ़ा, ज्ञानी व बड़ा चतुर था। वह सदा विभीषण के साथ रहता था। कभी रावण की सभा में नहीं गया था।

आवा सो भल अवसर पाई * कहेसि नीति रावणहिं बुझाई
ज्ञानकथा दशमुख न सुहानी * तब बहिराइ बात कह आनी

वह इस अच्छे अवसर को पाकर आया और नीति की बातें समझाकर रावण से कहने लगा। ज्ञान की कथा रावण को नहीं सुहाती है, तब भुलाकर अन्य बात को कहा।

करिवरनाद हृदय अस गुनेऊ * प्रभु दुहुँ ताग हृदयपट बुनेऊ
अब यहि कहौं सो सहज उपाई * जेहि यह मूल समूल नशाई

सिन्धुरनाद ने मन में ऐसा विचार किया कि स्वामी रावण के हृदय में दोनों तागों से वसन बुना गया है, अर्थात् इसके हृदय में अज्ञान का आवरण है। अब इससे उस सहज उपाय को कहूँ, जिससे यह जड़-समेत नाश हो जाय।


यह बिचारि बोल्यो सचिव, सुनहु दनुजकुलराव।
धीर धरहु संशय विगत, कहहुँ सो करिय उपाव॥

यह विचारकर वह मन्त्री बोला—हे राक्षसवंश के राजा, धीरज धरिए, और मैं जिस उपाय को बताऊँ, उसे निस्सन्देह कीजिए।

अक्षादिकन सुतन बल दूना * कस सुरारि मन आनहु ऊना
सचिववचन सुनि दशमुख कहई * अब हमरे कुल को भट अहई

हे देवताओं के शत्रु रावण, अभी तो तुम्हारे अक्ष आदि पुत्रों से दूने बलवाले पुत्र हैं। फिर मन में क्यों ग्लानि मानते हो? मन्त्री के वचन सुनकर रावण कहने लगा—अब हमारे वंश में कौन लड़नेवाला है?

अपने मनमहँ करहु विचारा * है नारान्तक तनय तुम्हारा
मूल अभुक्त माहिं भा जोई * दियो बहाय मरा नहिं सोई

मन्त्री बोला—मन में विचार कीजिए। एक नारान्तक नाम का तुम्हारे पुत्र है, जो कि गण्डान्त मूलों में पैदा हुआ था। उसको तुमने बहा दिया था; लेकिन वह मरा नहीं है।

शम्भु प्रसाद ताहि कछु भयऊ * पुर विहवाबल नृपता दयऊ
कोटि बहत्तर एक प्रभाऊ * राजा प्रजा भेद नहिं काऊ

कुछ उसके ऊपर शिवजी की कृपा हुई। तब उन्होंने विहवाबल नगर का राज्य उसको दे दिया। वहाँ के निवासी बहत्तर करोड़ राक्षस एक समान प्रभाववाले हैं। राजा, प्रजा किसी में भेद नहीं है।

दूत पठाय बुलावहु ताहीं * जीतिहि सो रिपु रण महि माहीं
दनुज अधीस चतुर चर पठवौ * धरहु धीर चित चिन्ता घटवौ

दूत को भेजकर उसे बुलाइए। वह वैरी को समरभूमि में जीतेगा। हे राक्षसों के स्वामी रावण, चतुर दूत को भेजिए, धीरज धरिए और चित्त से चिन्ता घटाइये।


तासु मन्त्र सुनि दशवदन, हृदय प्रमोद अमान।
धूमकेतु कहँ बोलि ढिग, समझायउ सनमान॥

उसकी सलाह सुनकर रावण के मन में बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने धूमकेतु नाम के दूत को पास बुलाकर आदर कर समझाया—

धूमकेतु तुम परम सयाना * लै मम पाती करहु पयाना
बसत जहाँ नारान्तक राजा * तहाँ न तात और कर काजा

हे धूमकेतु, तुम बड़े चतुर हो। मेरी चिट्ठी को लेकर जाओ। हे तात, जहाँ नारान्तक राजा बसता है, वहाँ जाना दूसरे का काम नहीं है।

अवसर पाइ हेतु समुझाई * सपदि ताहि लै आनौ भाई
आयसु पाइ चार तहँ गमना * यह सुनि बिहँसि कह्यो अहिदमना

भाई, समय पाकर कारण को समझाकर उसे जल्द ले आओ। आज्ञा पाकर दूत वहाँ गया। यह सुन विहँसकर गरुड़जी कहने लगे—

काकनाथ यह गाथ सुहाई * मोसन तात कहहु समुझाई
नारान्तक उत्पत्ति यथाविधि * पुर बिहवाबल गा कवनी सिधि

कि हे काकभुशुण्डिजी, यह कथा सुहावनी है। हे तात, मुझसे इसको समझाकर कहिए, जिस प्रकार नारान्तक की उत्पत्ति हुई है। विहवावलपुर में वह किस सिद्धि से पहुँचा?

सुमिरि काकपति उर अवधेशा * मन प्रसन्नकर कह काकेशा
अति सुन्दर शुचि यह संवादू * चित थिर करि सुनिये उरगादू

काकभुशण्डिजी अयोध्यानाथ श्रीरामजी को हृदय में स्मरणकर, मन प्रसन्नकर कहने लगे—हे गरुड़जी, यह संवाद बड़ा सुन्दर व पवित्र है। इसको चित्त स्थिर करके सुनिए।


नख चौगुन वसु ऊन तहँ, सप्त अकाश मिलाइ।
इतने निशिचर एक दिन, भे रावणपुर आइ॥

नख, याने बीस के चौगुने अस्सी, उसमें आठ कम कर, याने बहत्तर, उसमें सात शून्य मिलाकर, याने बहत्तर करोड़ निशाचर, एक ही दिन में रावण के पुर में पैदा हुए थे।

पुरमहँ उपजे खल इक साथा * तब सुनि हर्ष निशाचरनाथा

निज गुरु बोलि चरण शिर नाई * बूझा मुदित सो कलश धराई

वे सब दुष्ट पुर में एक ही साथ पैदा हुए, यह सुनकर निशाचरों का स्वामी रावण बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपने गुरु को बुलाकर उनके चरणों में माथा नवाया और प्रसन्न हो कलश धरवाकर उनसे पूछा।

भृगुनन्दन तब तेहिसन कहेऊ * आजु बाल सब मूलन भयऊ
सत्य कहत दशमुख तुमपाहीं * भये आज जे तव पुरमाहीं

तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजी ने उससे कहा—आज सब बालक मूल में पैदा हुए हैं। हे रावण, तुमसे यह सच कहता हू कि आज जो बालक तुम्हारे पुर में हुए हैं,

वे सबसुत निजनिज पितु घाती * मुखदेखत सुन सुर आराती
घर राखे धन सहित विनाशा * होइ अवशि नहिं उबरन आशा

हे देवताओं के वैरी रावण, सुनो, वे सब बालक अपने-अपने पिताओं के मुख को देखते ही उनके नाशक हैं। उन्हें घर में रखने से धन-समेत अवश्य नाश हो जायगा; बचने की आशा नहीं है।

शुक्रवचन सुनि डरे निशाचर * कहा करिय अतिवाद परस्पर
निश्चयकीन्हप्रसवशिशु आजू * सौंपिय सिंधुहिं और न काजू

शुक्राचार्यजी के वचन सुनकर सब राक्षस डर गये। क्या करें, यह आपस में बड़ा विवाद हुआ। फिर सबने यह निश्चय किया कि आज के पैदा हुए बालकों को समुद्र को सौंप दीजिए; उनका कोई काम नहीं है।


सपदि करहु सब काज यह, लावहु बाल बटोरि।
राखे होई हानि अति, कह दशवदन बहोरि॥

फिर रावण ने कहा—शीघ्र ही सब लोग इस उपाय को करो। बालकों को इकट्ठा कर लाओ। उनके रखने से बड़ी हानि होगी।

सेवक दशमुख आयसु पाई * धाये तुरत चरण शिर नाई
रावण आयसु नगर पुकारी * सुनहु सकल पुर नर अरु नारी

रावण की आज्ञा पाकर सेवक जल्द ही चरणों में माथा नवाकर दौड़े व रावण की आज्ञा को नगर भर में कह दिया कि सब नगर के स्त्री और पुरुष सुनो—

आजु अभुक्त मूल भय बालक * डारहु सागर सब कुलघालक
बोरे सबनि बाल इक ठाईं * भावीवश मधुमाखी नाईं

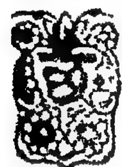
आज बालक गण्डान्त के मूलों में पैदा हुए हैं, इसलिए उनको समुद्र में डाल दो; क्योंकि वे सब वंशविनाशक हैं। होनहार के वश से सब बालकों को एक ही ठिकाने लाकर राक्षसों ने मधु-मक्खियों की नाईं डुबो दिया।

पाइ अधार वृक्ष बट घोरा ※ पीवन लगे क्षीर चहुँ ओरा
पीवत क्षीर अब्दभरि साती ※ पुष्ट भये खल निशिचर जाती

वे डुबाये हुए बालक बरगद के वृक्ष का सहारा पाकर चारों ओर से उसका दूध पीने लगे। सात वर्ष तक जब वे दूध पीते रहे, तब राक्षसों की जातिवाले वे दुष्ट पुष्ट पड़ गये।

पुनि सब एक संग तहँ आई ※ सुरसरि सङ्गम भा जेहि ठाँई
तहँ शिवमन्दिर परम सुहावा ※ सबनि विलोकिमुदितशिरनावा

फिर वे वहाँ एक ही साथ गये, जहाँ समुद्र से गंगाजी का संगम हुआ था। वहाँ बड़ा सुहावना एक शिवजी का मन्दिर था। उसे देखकर सबने सीस नवाया।



शिरनाइमुदितविलोकिशिवमन्दिरसुहावनपावनम्।
कछुदिन रहेतहँसकलपुनिउठिचलेसुनिअहिदावनम्॥
रावणपुरी ते दिशा प्राची कोस शतरस चलि गये।
बैठे जलधि महँ पाइ थलवर शम्भु चरणनचित दये॥

शिवजीके पवित्र व सुहावने मन्दिरको देखकर प्रसन्न होकर उन सबने माथा नवाया। हे गरुड़जी, सुनो। वहाँ कुछ दिन वे रहे, फिर सब उठकर अहिदावन को चले। रावण के नगर से पूर्वदिशामें छः सौ कोस चलकर गये और समुद्र में उत्तम स्थान पाकर शिवजी के चरणों में चित्त को लगाकर बैठ गये।



जानत नहिं उत्पत्ति निज, मनमहँ करत विचार।
गे तेहि ढिग जाकर विदित, रवि ते छठवाँ वार॥

वे अपनी उत्पत्ति को नहीं जानते थे, इसलिए मन में विचार करते हुए वे उनके पास गये, जिनका दिन इतवार से छठा जाहिर है, अर्थात् राक्षसों के गुरु शुक्राचार्यजी के पास गये।

हरिअरिगुरुनिजशिष्यनचीन्हा ※ करत प्रणाम आशिषा दीन्हा
कहि निजनाम सबनि समुझावा ※ कुलगुरु जाना विनय सुनावा

विष्णु के वैरी दैत्यों के गुरु शुक्राचार्यजी ने अपने शिष्यों को पहचाना। दैत्यों ने उनको प्रणाम किया और उन्होंने उनको आशीर्वाद दिया। तब अपना नाम कहकर सब को समझाया, तब वंशके गुरु जानकर सबने विनती की।

निज उत्पति बूझी शिर नाई ※ भृगुनन्दन सो सकल सुनाई
सुनि आपन वृत्तान्त लजाने ※ लखि रुख भृगुनायक सन्माने

प्रणामकर उन्होंने अपनी उत्पत्ति का हाल पूछा। तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजी ने उन सबको वृत्तान्त सुनाया। अपना हाल सुनकर सब लजा गये। उनका रुख देखकर शुक्राचार्यजी ने उनका सम्मान किया।

करि परितोष मन्त्र गुरु दीन्हा * शिक्षा पाइ गमन तिन कीन्हा
ज्ञान लहेउ सब संशय त्यागी * भे विरञ्चिपद तब अनुरागी

उनको समझाकर गुरु ने मन्त्र दिया। शिक्षा पाकर वे सब चल दिये। सबने सन्देह को छोड़कर ज्ञान पाया तब ब्रह्मा के चरणों के प्रेमी हुए, तप करने लगे।

निराहार बैठे यक आसन * वर्ष सहस तप किय उरगासन
श्वास धारि कृत वर्ष हजारा * रहे ऊर्ध्व मुख विना अहारा

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, वे निराहार रहकर एक ही आसन से बैठे रहे। इस प्रकार उन्होंने हजार वर्ष तक तप किया। हजार वर्ष तक पवन का आधार करते हुए वे विना भोजन के ऊपर मुख कर खड़े रहे।


एक पाद पुहुमी दये, अधर अङ्ग अनयास।
सकल पुष्टतन मन हरष, सपनेहु भूख न प्यास॥

एक पैर को पृथ्वी में रक्खे थे और अन्य अंग विना आधार के थे। सबके शरीर पुष्ट थे, मन में प्रसन्नता थी। उनके स्वप्न में भी भूख व प्यास नहीं थी।

तप अति उग्र विचार विधाता * तिन ढिग गमने मुख मुसुकाता
हंसारूढ़ कमण्डलु हाथे * श्वेत मुकुट शुचि चारिउ माथे

ब्रह्माजी उनकी बड़ी भयङ्कर तपस्या को विचारकर मुख से मुसकराते हुए उनके पास गये। वह हंस पर चढ़े व कमण्डलु हाथ में लिये थे। श्वेत मुकुट चारों सुन्दर मस्तकों पै धारण किये थे।

आनन चारि नयन वसु नीके * चारिउ भाल भस्म शुभ टीके
उपमामय प्रभु सब जग अयना * भाष्यो दयासदन वर वयना

चार मुख व सुन्दर आठ आँखें थीं और चारों मस्तकों पर सुन्दर भस्म का तिलक था। सब संसार के आश्रय व उपमामय अर्थात् सब अच्छी उपमाओं के योग्य, दयानिधि ब्रह्माजी तब ये उत्तम वचन बोले—

माँगहु वर जो सब मनभावा * सुनेउ सबनि विधिपद शिरनावा
नाथ चहत हम यह वरदाना * हमहिं न कोउ जीतै मैदाना

तुम सबके मन में जो भावे, वह वरदान माँगो। यह सुनकर सबने ब्रह्मा के चरणों में माथा नवाया और कहा—हे नाथ, हम यह वरदान चाहते हैं कि लड़ाई के मैदान में हमको कोई न जीत पावे।

एवमस्तु विधि कहेउ विचारी * आन पाणि नहिं मृत्यु तुम्हारी
हरिसुत हैं तुम्हार गुरुभाई * त्यहिसन किहेउ न कबहुँ लराई

ब्रह्मा ने विचारकर कहा—ऐसा ही होगा, दूसरे के हाथ से तुम्हारी मौत न होगी। लेकिन सुग्रीव का पुत्र तुम्हारा गुरुभाई है ; उससे कभी लड़ाई न करना।



जो तेहिसन करिहौ समर, मरिहौ वचन प्रमान।
एकहि कहँ वरदान यह, दै कह कृपानिधान॥

जो उससे लड़ाई करोगे तो मरोगे, यह याद रक्खो। एक नारान्तक को ही दयानिधान विधाता ने यह वरदान दिया।

दियउ नरान्तक कहँ वरदाना * रहे अपर जे धरि उर ध्याना
तिनसन वरंब्रूहि विधि कहेऊ * सुनत प्रमोद सबनि उर लहेऊ

नारान्तक को यह वरदान देकर जो अन्य राक्षस हृदय में ध्यान धर रहे थे, उनसे भी विधाता ने कहा कि वरदान माँगो। यह सुनते ही वे सब मन में बहुत प्रसन्न हुए।

सुनिविधिगिरासबनिकहस्वामी * देहु एक वर अन्तर्यामी
देवासुर संग्रामहिं माहा * जीतहिं हम यह वर सुरनाहा

ब्रह्माके वचन सुनकर सबने कहा—हे अन्तर्यामी, स्वामी, हम लोगों को यह एक वरदान दीजिए कि हे सुरनायक, देवासुर-संग्राम में हम लोग जीतें। यही वरदान हम माँगते हैं।

अस कहि रहे दनुज शिरनाई * तिनसन कहेउ विरञ्चि बुझाई
तुम अजीत सबसन सब भाँती * वानर भालु त्यागि दुइ जाती

ऐसा कहकर वे राक्षस सीस नवाये रहे। तब ब्रह्मा ने उनसे समझाकर कहा कि वानर व रीछ इन दो जातियों को छोड़कर और कोई तुमको न जीत सकेगा।

यहिविधि सब कहँ दै वरदाना * ब्रह्मलोक गे ब्रह्म सुजाना
विधिते लहि वर तिन सुख बाढ़ा * लागे करन बहुरि तप गाढ़ा

इस भाँति सभी को वरदान देकर चतुर ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को चले गये। ब्रह्मा से वरदान पाकर उनके हृदय में सुख बढ़ा। वे फिर बड़ी तपस्या करने लगे।



गिरिजा गिरिश समेत सब, जपहिं निरन्तर नाम।
जोरि युगलकर एक पद, निशिदिन आठोयाम॥

रात-दिन आठों पहर एक पैर से खड़े हो दोनों हाथों को जोड़कर सदैव वे सब लोग शिवा-समेत शिवजी का नाम जपने लगे।

बिनु प्रयास ठाढ़े सब भाई * क्षुधा तृषा निद्रा बिसराई
गुण सहस्र संवत सब ऐसे * गये बीति प्रथमहि तप जैसे

सब भाई बिना परिश्रम भूख, प्यास व नींद को भुलाकर खड़े रहे। इस भाँति तीन हजार साल बीत गये, जैसे पहले तपस्या में बीत चुके थे।

सबनि शीश पुनि अवनी दीन्हा * उभय चरण ऊरध कहँ कीन्हा
जोरे कर निरोधकर श्वासा * जपहिं मन्त्र शङ्कर वर आसा

फिर सबने पृथ्वी में सीस धर दिया और दोनों पैरों को ऊपर कर दिया। हाथों को जोड़ साँस रोककर वरदान की आशा से वे सदाशिवजी के मन्त्र को जपते थे।

मुनिगण तिनकर साधन देखी * मनमहँ मानत सकुच विशेखी
हरिइच्छा बल हृदय विचारी * निरखि चले मुनि जपत पुरारी

उनकी साधना को देखकर मुनियों के गण मन में बहुत ही संकोच मानते थे। हरि-इच्छा के बल को हृदय में विचारकर, उनको देखकर, मुनि लोग पुरारि शिवजी को जपते हुए चले गये।

अयुत अब्द बीते खगनायक * भे प्रसन्न शिव जनसुखदायक
चढ़े वरद हिमसुता समेता * आये तिन तट कृपानिकेता

काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़जी, जब दस हजार वर्ष बीत गये, तब अपने जनों के सुखदायक शिवजी प्रसन्न हुए। हिमाचल की कन्या पार्वतीजी-समेत कृपानिधान शिवजी बैल पर चढ़कर उनके पास आये।


बोले तिनहिं प्रशंसि शिव, माँगहु वर मनभाव।
नारान्तक करि दण्डवत, बोला सुन सुरराव॥

उनकी प्रशंसा कर शिवजी बोले—मन को जो अच्छा लगे, वही वरदान मुझसे माँगो। तब दण्डवत् कर नारान्तक बोला—हे सुरराज शङ्करजी, सुनिए—

मैं तप किहेउँ दरश तव लागी * नाथ दीन जन चित अनुरागी
अब माँगत आवत मोहिं लाजा * ठाढ़ रहा कहि निशिचरराजा

मैंने आपके दर्शन के लिए तपस्या की थी। हे नाथ, आप तो दीनजनों को चित्त से चाहते ही। अब माँगने में मुझको लाज आती है। यह कहकर राक्षसों का राजा नारान्तक खड़ा रहा।

माँगु सकुच तजि अस हर कहेऊ * नारान्तक तब माँगत भयऊ
मोहिं विभव अस देहु गोसाँई * भूप प्रजा नहिं परहुँ लखाई

शिवजी ने कहा—संकोच छोड़कर माँगो। तब नारान्तक ने माँगा—हे स्वामी, मुझे ऐसा ऐश्वर्य दीजिए कि मेरी प्रजा में व मुझमें कुछ भेद न देख पड़े—अर्थात् राजा व प्रजा के बराबर ऐश्वर्य हो।

पुर अनयास बसहिं मम नाथा * यह कहि रहा जोरि युग हाथा
एवमस्तु कहि हर सुरईशा * गवने भवन सहित वागीशा

और हे नाथ, मेरा नगर विना परिश्रम के बस जाय। यह कहकर दोनों हाथों को जोड़-कर वह खड़ा रहा। ऐसा ही होगा, यह कहकर देवताओं के स्वामी शिवजी पार्वतीसमेत अपने धाम को चले गये।

शिवप्रसाद नारान्तक पावा * अन्तरिक्ष पुर सपदि बसावा
पुर विहवाबल की रुचिराई * कहत कछू इक तुमसन गाई

नारान्तक ने शिवजी की कृपा को पाया। तब शीघ्र ही उसने आकाश में नगर बसाया। विहवाबल नगर की सुन्दरता को मैं तुमसे कुछ कहता हूँ।



ऋतु रवि गूने कोटि सो, भवन बसे इक ठौर।
जातरूप मय नग जटित, अतिशोभित चहुँओर॥

रवि याने बारह के छगुने अर्थात् बहत्तर करोड़ घर एक ही ठौर बसे थे; जो नगों से जड़े हुए सोने ही के बने थे और चारों ओर से बड़े शोभित थे।

योजन ढाई शत चकलाई * चौंसठ कोस उतंग सुहाई
दुर्गम दुर्ग जलधि चहुँफेरा * विस्मय विश्वकर्म मन घेरा

उस नगर की चौड़ाई ढाई सौ योजन अर्थात् एक हज़ार कोस और ऊँचाई चौंसठ कोस थी। वह दुर्गम दुर्ग (क़िला) था, जिसके चारों ओर समुद्र था। जिसे देखते ही विश्व-कर्मा के मन को आश्चर्य ने घेर लिया।

चारि दुवार कुलिश पट रूरे * गढ़ भीतर चौहट निधि पूरे
वणिक पद्म धन तुच्छ बखाना * वन उपवन सरिता सर नाना

नगर के चारों दरवाजों में वज्र के सुन्दर किवाड़ थे और कोट के भीतर चौकें निधियों से पूर्ण थीं। वहाँ एक पद्म धन जिसके था, वह बनिया तुच्छ (हीन) कहा जाता था। वन, फुलवारी, नदी व अनेक भाँति के तालाब बने थे।

बसत प्रजा पुर सघन अपारा * नारान्तक गढ़ मध्य सँभारा
षोडश कोस कोट चहुँ ओरा * मणिमाणिक लागे नहिं थोरा

नगर में बहुत घनी असंख्य प्रजा बसती थी। उस गढ़ के बीच में नारान्तक राजा बसता था। क़िले के चारों ओर सोलह कोस का घेरा था, जिसमें बहुत से मणि व माणिक्य लगे थे।

हय गज रथ खच्चर समुदाई * कहि न जाय खगमृग विपुलाई
कोटि बहत्तर एकै साथा * विद्या पढ़न लगे खगनाथा

घोड़ा, हाथी, रथ व खच्चरों के समूह और पक्षी व मृगों की अधिकता कही नहीं जाती। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, वे बहत्तर करोड़ राक्षस एक ही साथ विद्या पढ़ने लगे।



हरिप्रेरित तेहि समय महँ, दधिबल पहुँचा आय।
पुर विहवाबल निरखि सो, कछु दिन रहा लुभाय॥

उस समय भगवान् की इच्छा से वहाँ दधिवल नाम का एक वानर आकर पहुँचा। विद्यावल नगर को देखकर लुभाकर वह कुछ दिन वहाँ रहा।

भावीवश निशिचर सँग कीशा * वर्ष एक पढ़ सुनहु मुनीशा

गुरु इक बार कहेउ रिसियाई * हतिहसि तैं आपन गुरुभाई

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे मुनिनायक भरद्वाज, सुनिए। होनहार के कारण एक वर्ष तक दधिवल वानर निशाचरों के साथ पढ़ता रहा। एक दिन क्रोधित होकर गुरु ने उससे कहा कि तू अपने गुरु-भाई को मारेगा।

बिनुअघसुनि दधिबलगुरुशापा * बिदा माँगि गमना करि दापा

मारग मिले देवऋषि तेही * गहे सुकंठसुवन पद नेही

दधिवल बिना अपराध गुरु का शाप सुनकर भय से विदा माँगकर चला गया। रास्ते में उसको नारदजी मिले। तब सुग्रीव के लड़के दधिवल ने प्रेम से उनके चरणों को पकड़ लिया।

लखि आशिष दै पूछा तेही * दधिबल कवन काज गे जेही

तब नारान्तक पुर प्रभुताई * दधिबल नारद मुनिहिं सुनाई

दधिवल को देख आशीर्वाद देकर नारदजी ने पूछा—तुम किस काम के लिए कहाँ गये थे। तब दधिवल ने नारान्तक के नगर का ऐश्वर्य नारदमुनि से कहा।

सुनी निशाचर सम्पति भारी * रहे ब्रह्मसुत हृदय बिचारी

क्षणक देवऋषि कीन गुमाना * बार बार सुमिरे भगवाना

निशाचर की बड़ी भारी सम्पत्ति को जब ब्रह्मा के पुत्र नारदजी ने सुना तो हृदय में विचार करने लगे। नारदजी ने क्षण भर विचार किया, फिर बार-बार भगवान् को स्मरण किया।



दधिबल तें नारद कहेउ, सुनहु तात चितलाइ।
तनु धरि जेहि हरि भक्ति नहिं, जन्म बादि जग जाइ॥

नारदजी ने दधिवल से कहा—हे तात, मन लगाकर सुनो। देह धारण कर जिसके भगवान् की भक्ति नहीं है, उसका जन्म संसार में वृथा ही बीत जाता है।

यह बिचारि भजु रामहिं ताता * उपजेउ सुनत ज्ञान मुनि बाता

ऋषिपद परशि आशिषा पाई * कपिपतिसुत गमनेहु हर्षाई

यह विचारकर हे तात, श्रीरामचन्द्रजी को भजो। मुनि की इस बात को सुनते ही दधिवल के ज्ञान पैदा हुआ। नारदमुनि के चरणों को छूकर सुग्रीव का पुत्र दधिवल आशीर्वाद पाकर प्रसन्न होता हुआ चला गया।

सपदि कीश तब पहुँचा जहँवाँ * पयनिधिमध्यरुचिर गिरितहँवाँ

धवलागिरि तेहि नाम सुहावा * सुभग देखि कपिवर मनभावा

तब दधिबल नामक वानर शीघ्र वहाँ पहुँचा, जहाँ समुद्र के बीच में सुन्दर पहाड़ था। उसका धौलागिरि ऐसा सुन्दर नाम था। वह उत्तम पहाड़ वानरों में उत्तम दधिबल के मन को अच्छा लगा।

गौरि गिरीश सुमिरि गणराई * कीन्ह निवास बैठ हर्षाई
नारद ताहि देइ उपदेशा * गये विरञ्चिहि धाम खगेशा

हे पार्वती, सदाशिव व गणेशजी को याद कर दधिबल ने वहाँ निवास किया व प्रसन्न होकर बैठ गया। हे गरुड़जी, नारदजी उसको उपदेश देकर ब्रह्मा के धाम को चले गये।

उत दशमुखसुत विद्या पाई * जहाँ तहाँ की विविध लराई
बिन्दुनाम इक निशिचर आहा * सो खल रहा वितल थलमाहा

इधर रावण के पुत्र नारान्तक ने विद्या को पाकर जहाँ-तहाँ अनेक भाँति के युद्ध किये। बिन्दु नाम का एक निशाचर था। वह दुष्ट वितलथल में रहता था।



अति रणधीर जुझार, चढ़े शक्रपर बल विपुल।
कीन्हे समर अपार, अब्द एक श्रुतिसन्त कह॥

यह युद्ध में बड़ा प्रवीण, बड़ा बलवान् व लड़नेवाला निशाचर एक समय इन्द्र पर चढ़ गया और एक वर्ष तक उसने इन्द्र से बड़ा युद्ध किया, ऐसा वेद व सन्त लोग कहते हैं।

सप्तकोटि निशिचर सँग ताके * असित मेरु सम खल भट बाँके
सुनासीर कोपेउ इक बारा * सब कहँ समर मध्य संहारा

उसके साथ सात करोड़ राक्षस थे, जो काले पहाड़ों के समान, दुष्ट और बाँके वीर थे। एक समय इन्द्र ने कोप किया व युद्ध के बीच में सबका संहार कर डाला।

भाजि बिन्दु केवल गृह गयऊ * तासु नारि निशिचर सुखदयऊ
सब निशि भोगकरा खल पापी * उपजे बहु बालक परतापी

केवल बिन्दु राक्षस भागकर घर को चला गया। उसकी स्त्री ने उस निशाचर को सुख दिया। उस दुष्ट पापी ने सारी रात भोग किया, जिससे दूसरों को दुःखदायी बहुत से बालक उत्पन्न हुए।

सप्तकोटि सुत नाना नामा * सुन्दर वक्त्र सकल बलधामा
कोटि बहत्तर तनया जाके * लाजहिं मृगलोचनिलखिताके

वे सात करोड़ लड़के थे, जिनके अनेक नाम व सुन्दर मुख थे। वे सब बल के धाम थे। उसके बहत्तर करोड़ लड़कियाँ भी हुईं, जिनके नेत्रों को देखकर मृगियों के नेत्र लजाते थे।

तिनमहँ बिन्दुमती इक सुन्दरि * नभचारिणि रतिरूप निरन्तरि
निरखिबिन्दु निजमनअनुमाना * नहिं नारान्तकसम कोउ आना

उनमें एक विन्दुमती नाम की कुमारी बड़ी सुन्दरी थी। उसका रूप आकाशचारी देवताओं की कन्याओं और रति के समान था। विन्दु ने उसको देखकर अपने मन में अनुमान किया कि नारान्तक के समान कोई बलवान् नहीं है।

यह विचारि चित विन्दु तब, नारान्तकहिं बुलाय।
विन्दुमती आदिक सुता, सुन्दर साज सजाय॥

ऐसा चित्त में विचारकर विन्दु ने नारान्तक को बुलाया और विन्दुमती आदि कन्याओं को अच्छी तरह सजाकर

सकल सुता इकसंग बिवाही * यथायोग्य जेहि कहँ जस चाही
नारान्तक सब सेन समेता * करि विवाह फिरि गयउ निकेता

सब लड़कियों को एक ही साथ यथायोग्य जिसको जैसा चाहिए, वैसे ही ब्याह दिया। सेनासमेत नारान्तक ब्याहकर फिर अपने घर को चला गया।

पुर विहवाचल कीन्ह बसेरा * प्रजा सहित सुख करत घनेरा
जो तिय चहिय विबुधगृह माहीं * सो भावीवश निशिचर पाईं

उसने विहवाचलपुर में निवास किया। वह प्रजाओंसमेत बड़ा सुख करता रहा। भाई, जो स्त्री देवताओं के घर में होनी चाहिए थी, उसे होनहार के वश से राक्षस ने पाया।

नारि पतिव्रत जेहि घरमाहीं * तेहि प्रताप नित अमर डराहीं
विन्दुमती गिरा सम ताता * बुधजन सभाचरित विख्याता

पतिव्रता स्त्री जिसके घर में होती है, उसके प्रताप से सदा देवता भी डरते हैं। हे तात, विन्दुमती सरस्वती के समान थी। उसका पवित्र विद्वानों की सभा में प्रसिद्ध था।

नारान्तक उत्पति मैं गावा * सुनु खगेश पुनि चरित सुहावा
पुनि पुनि हरिहर पद शिरनाई * गुरुसन सुनेउँ सो कहेउँ बुझाई

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, मैंने नारान्तक की उत्पत्ति को कहा। अब फिर उसके सुहावने चरित्र को सुनिए। जो मैंने गुरु से सुना है, वह विष्णु और महादेवजी के चरणों में बार-बार माथा नवाकर, समझाकर कहूँगा।

चारण दशमुख को तुरत, मगचलि पहुँचो जाय।
ग्रामान्तर योजन युगल, ठाढ़ भयउ हर्षाय॥

इधर रास्ते को चलकर रावण का दूत तुरन्त ही जाकर पहुँचा और ग्राम के आठ कोस फासले पर वह प्रसन्न होकर खड़ा हो गया।

तेहि मारुत दिशि कानन भारी * पर्ण लेत देखेउ तहँ बारी
संकुचि समीप जाइ भा ठाढ़ा * बूझेसि ताहि धीर धरि गाढ़ा

वहाँ वायव्य दिशा में उसने बड़े भारी जङ्गल में पत्तों को तोड़ते हुए एक वारी को देखा। वह सकुचकर जाकर उसके पास खड़ा हुआ और बहुत धीरज धरकर उससे पूछा—

कवन रीति यह पुर महँ भाई * तरुपर चढ़त भूपसुत आई
चारवचन सुनि सो मुसुकाना * कवन नगर तुम बसत अयाना

भाई, इस पुर में कौन-सी रीति है कि राजकुमार आकर वृक्षों पर चढ़ते हैं। दूत के वचन को सुनकर वह मुसकराया व बोला—हे मूर्ख, तुम किस पुर में बसते हो?

नारान्तक नृपकर जो वारी * तेहिकर सेवक मैं लघुचारी
धूमकेतु तेहि उतर न दीन्हा * कछुडरि पुनि निजमारग लीन्हा

नारान्तक राजा का जो वारी है, उसका मैं छोटा-सा नौकर हूँ। धूमकेतु ने उसको जवाब नहीं दिया; वरन् कुछ डरकर फिर अपना रास्ता लिया।

लिये कनक घट सुषमा पूरी * बारि लेन आई तियरूरी
देखि भयउ तेहि संशय भारी * बूझा सत्य कहहु सुकुमारी

उसी समय शोभा से पूर्ण एक सुन्दरी स्त्री सोने के घड़े को लेकर जल लेने के लिए आई। उसको देखकर धूमकेतु को बड़ा सन्देह हुआ। उसने उससे पूछा—हे सुकुमारी, सच कहना



तुम्हरे पुर कहँ चेरि नहिं, रानी कहहु स्वभाव।
आइउ तुम जलभरनकहँ, बोलेउ त्यागि डराव॥

रानीजी, सुनिए। क्या तुम्हारे नगर में चेरी नहीं है, जो तुम जल भरने के लिए आई हो? डर छोड़कर इस अपने हाल को कहो।

दूतवचन सुनि निशिचरचेरी * बोली हँसिकर एकहि बेरी
नारान्तक दासिन की दासी * हम ताकी दासी विश्वासी

दूत के वचन को सुनकर निशाचर की चेरी हँसकर एक ही बार बोली—नारान्तक की दासियों की जो दासी है, उसकी मैं विश्वासिनी दासी (चेरी) हूँ।

सदा भरें यहि सागर पानी * इहँ आवहिं केहि कारण रानी
कहिहहु और काहु अस बाता * पैहहु मार मुष्टिका लाता

मैं सदा इस समुद्र में जल भरने के लिए आती हूँ। यहाँ रानी किसलिए आवेंगी। जो और किसी से ऐसी बात कहोगे, तो घूँसों व लातों की मार पाओगे।

अस कहि गवनी लै जल नारी * तिहि सँग धूमकेतु पगधारी
गढ़ भीतर कीन्हेसि पैठारी * निरखे विपुल कूप सर वारी

ऐसा कहकर वह स्त्री जल लेकर चली गई। धूमकेतु भी उसके साथ चला। जिस समय उसने गढ़ के भीतर प्रवेश किया तो बहुत से कुएँ और तालाब देखे।

नाना गज रथ खच्चर घोरा * फिरत विलोकत पुर चहुँओरा
अन्तर गढ़ तेहिं चार दुवारा * तहाँ न चर पावहिं पैसारा

अनेक प्रकार के हाथी, रथ, खच्चर व घोड़े हैं। चारों ओर घूमता हुआ वह धूमकेतु नगर को देखता है। गढ़ के भीतर चार दरवाजे हैं, उनमें भेदिया दूत (जासूस) नहीं पैठने पाते।



पावत नहीं पैसार चर गति द्वार लगि फिरि आयऊ।
यहि भाँति रावणदूत घटिका युगल दिवस गँवायऊ॥
मनमहँ विसूरत ठाढ़ चौहट मध्य सो जब रहिगयो।
निशिचरनिकन्दनहोनलगिविधिताहिइकअवसरदयो॥

वहाँ रावण का दूत पैठने नहीं पाता। धूमकेतु द्वार तक जाकर घूम आता है। इस भाँति रावण के दूत ने दो घड़ी दिन विता दिया। जब चौक के बीच में खड़ा हुआ वह सोचता ही सा रह गया, तब निशाचरों का नाश होने के लिए विधाता ने उसे एक अवसर (मौका) दिया।



गमनेउ भूपति द्वार, नित्य करन इक कौतुकी।
लीन्ह धार तेहि सार, गढ़ इमि कीन्ह प्रवेश चर॥

सदा तमाशा करनेवाला एक नट राजा के द्वार पर जाता था। जब वह चला तो उसी के साथ धूमकेतु भी हो लिया। इस तरह दूत धूमकेतु ने गढ़ में प्रवेश किया।

बैठेउ सभा नरान्तक जाई * कोटि बहत्तरि संयुत भाई
व्योम तीनि रस गुण वसु एका * अङ्करीति लिखि गुणी विवेका

उधर नारान्तक बहत्तर करोड़ भाइयोंसमेत जाकर सभा में बैठा। तीन शून्य व छह, तीन, आठ व एक, इनको विवेकी गुणी अंकों की रीति से याने उलटा लिखे याने १८३६००० अठारह लाख छत्तीस हजार।

बन्दीजन नट कौतुक करहीं * प्रतिदिन कवि कोविद उच्चरहीं
रावणदूत सभा को देखी * मनमहँ चकृत भयो विशेखी

बन्दीजन (भाट) व नट हमेशा उसकी सभा में तमाशा करते थे और कवि व विद्वान् लोग उसके यश को गाते थे। रावण का दूत सभा को देखकर मन में बहुत चकित-सा हुआ।

तब चारण मन अस अनुमाना * कोटि बहत्तर रूप न आना
भूषण वसन सुआसन जोहा * देखि सुखद चारण मनमोहा

तब उस दूत ने मन में ऐसा अनुमान किया कि ये बहत्तर करोड़ राक्षस एक ही रूपवाले हैं। उसने उनके गहनों, कपड़ों व उत्तम बिछौनों को देखा और इन सुखदायक वस्तुओं को देखकर दूत का मन मोह गया।

याम दिवसगत अवसर पावा * नारान्तक कहँ शीश नवावा
दीन्ह पत्रिका पद शिर नाई * कुशल तासु बूझी हर्षाई

पहर भर दिन बीतने पर उसने जब मौका पाया, तब नारान्तक को सीस नवाया और पैरों में माथा नवाकर रावण की चिट्ठी दी और प्रसन्न होकर उसकी कुशल पूछी।


नारान्तक निज कुशल कहि, बूझा दशमुख हेतु।
समाचार गढ़ लङ्ककर, बरणेउ दूत सचेतु॥

नारान्तक ने भी अपनी कुशल कहकर रावण की कुशल पूछी। तब होशियार दूत ने लङ्कागढ़ का सब हाल वर्णन किया।

चर भाषित नारान्तक सुनेऊ * क्षणक माहिं निज कारण गुनेऊ
पुनि पत्री निशिचरपति बाँची * मानी चार बात सब साँची

दूत के कहे हुए वचन को नारान्तक ने सुना और क्षणभर अपने मन में उस कारण को विचारा। फिर निशाचरों के स्वामी नारान्तक ने चिट्ठी को पढ़ा व दूत की सब बातों को सचा माना।

उठेउ सभाते हृदय रिसाई * गा निज भवन शोच सरसाई
विन्दुमती कहँ बाँचि सुनाई * पितुपर भीर पत्रिका आई

मन में क्रोध कर वह सभा से उठा और अपने घर को गया। उसके मन में सोच बहुत है। अपनी पत्नी विन्दुमती को वह चिट्ठी पढ़कर उसने सुनाई और कहा कि पिता पर बड़ी विपत्ति पड़ी है, जिससे यह चिट्ठी आई है।

समाचार सुनि कह तेइ नारी * तुम जनि करहु रामसन रारी
गहहु चरण पिय अकसर जाई * रसन सफलकर विनय सुनाई

सब समाचार सुनकर उसकी रानी ने कहा—तुम श्रीरामचन्द्रजी से रार (लड़ाई) मत करना। प्यारे, अकेले जाकर तुम उनके पैर पकड़ना और विनती सुनाकर अपनी जीभ को सुफल करना।

माँगि भक्ति वर प्रेम दृढ़ाई * निर्भय राज करहु घर आई
नारिवचन तेहि मनहिं न भावा * तब उठि कोटद्वार खल आवा

प्रेम को पुष्टकर भक्ति का वरदान माँगकर घर आकर निडर हो राज्य कीजिए। रानी का वचन उसके मन को भला नहीं लगा। तब उठकर वह दुष्ट गढ़ के दरवाजे पर आया।


कहेउ बजाव निशान घन, सजहु सेन चतुरंग।
जन्मभूमि जावा चहहुँ, पितुचारन के संग॥

उसने अपने आदमियों से कहा कि बहुत-से नगाड़े बजाओ और चतुरङ्गिणी सेना साजो; क्योंकि मैं पिता के दूत के साथ अपनी जन्मभूमि को जाना चाहता हूँ।

आयसु दीन्ह नरान्तक राजा * लगे निशाचर सजन समाजा
अमित बाजि गज उष्ट्र नाना * रथ खच्चर खेचर बहु याना

जब नारान्तक राजा ने ऐसी आज्ञा दी, तब राक्षस लोग तैयारी करने लगे। बहुत से घोड़े, हाथी, अनेक भाँति के ऊँट, रथ, खच्चर, आकाश में जानेवाले बहुत से विमान—

नाना अस्त्र शस्त्र गहि पानी * निशिचर अनी न जाइ बखानी
ते सब संयुत साज सजाई * विविध निशान हने हर्षाई

और अनेक भाँति के अस्त्र-शस्त्र लेकर निशाचरों की सेना चली। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने सब साज सजकर प्रसन्न हो अनेक भाँति के नगाड़े बजाये।

कन्त जात निश्चय जिय जानी * बिन्दुमती निज मन अनुमानी
रामविरोध न यहि कल्याना * महुँ संग अब करहुँ पयाना

पति का जाना निश्चय जी में जानकर बिन्दुमती ने अपने मन में अनुमान किया कि रामजी के वैर से इसका कल्याण न होगा; इससे अब मैं भी इसके साथ ही जाऊँ।

भूषण वसन सुअंग बनाई * कन्तचरण गहि विनय सुनाई
सासु श्वशुर दर्शन हित नाथा * हमहूँ चलब प्राणपति साथा

गहनों व कपड़ों को उत्तम अंगों में सजाकर बिन्दुमती ने पति के पैर पकड़कर विनय सुनाई कि हे प्राणपति, नाथ, सास-ससुर के दर्शनों के लिए मैं भी साथ ही चलूँगी।



दशमुखसुत सुनितियवचन, हृदय परम सुखमानि।
कहेउ चलहु सब सखिनसह, प्रमुदितछाँड़िगलानि॥

रावण का पुत्र नारान्तक रानी के वचन सुन मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—सब सखियों-समेत प्रसन्न हो उदासी छोड़कर चलो।

सुनि पतिवचन नारि हर्षानी * चली संग लै सखी सयानी
लै दल नारान्तक पगु धारा * अमित सैन को कहि सक पारा

पति के वचन सुनकर बिन्दुमती रानी प्रसन्न हुई। वह चतुर सखियों को साथ लेकर चली। सेना को लेकर नारान्तक चला। उसकी अमित (अनगिनती) सेना की थाह को कौन कह सकता है?

बुधजन कहत सुनहु खगराजा * अयुत सतावन बाजत बाजा
धूमकेतु कहँ ढिग सँग लीन्हे * अतिआतुर गमना रिस कीन्हे

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, विद्वान् लोग कहते हैं कि उस सेना में पाँच लाख सत्तर हजार बाजे बजते थे। धूमकेतु को पास ही साथ लिये व क्रोध किये नारान्तक बड़ी शीघ्रता से चला।

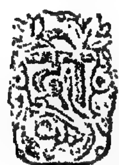
चलत शकुन भल ताहि न होई * गनइ न मृत्यु विवश शठ सोई

तासु पयान जानि दिगपाला * जिय महँ संशय करत विशाला

चलने में उसको अच्छा सगुन नहीं होता; लेकिन काल के वश वह शठ उन असगुनों को नहीं गिनता। उसका जाना जानकर दिक्पाल मन में बड़ा सन्देह करते हैं।

कोल कूर्म अहिपति अतिडरहीं * पुनि पुनि रामचरणचित धरहीं
समुझि रामबल संशय त्यागी * सुर विशेष प्रभुपद अनुरागी

वाराह, कच्छप व शेषजी डरते हैं और बार-बार श्रीरामजी के चरणों को चित्त में धरते हैं। श्रीरघुनाथजी के बल को समझकर सन्देह छोड़ देवता लोग स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में विशेषता से प्रेम करते हैं।



नारान्तक लङ्का तुरत, दल समेत नियरान।
दिग योजन दल रहेउ जब, सुनु मुनीश सज्ञान॥

सेना-समेत नारान्तक जल्दी ही लंका के पास पहुँचा। हे सुजान, मुनिनायक, जब दस योजन यानी चालीस कोस सेना रह गई, तब जो कुछ हुआ उसको सुनिए।

इहाँ कृपालु रमेश खरारी * असित जलदसम सेन निहारी
प्रभु सर्वज्ञ नीति हित सेतू * सचिव बोलि कह रघुकुलकेतू

यहाँ दयालु व लक्ष्मी के पति खरारि रघुनाथजी ने काले मेघों के समान सेना को आते देखा। स्वामी रामचन्द्रजी सब कुछ जानते हैं, लेकिन नीति की मर्यादा को पालने के लिए मन्त्रियों को बुलाकर रघुकुलकेतु रामजी ने कहा।

सखा विलोकहु दक्षिण ओरा * गर्जत घन आवत नहिं थोरा
उमा राम सब अन्तर्यामी * चरित हेतु बूझा अस स्वामी

हे मित्र, दक्षिण की ओर देखिए। गर्जते हुए बड़े मेघ आ रहे हैं, जो कि थोड़े नहीं हैं। श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, श्रीरामचन्द्रजी तो सबके अन्तर्यामी हैं; लेकिन स्वामी रघुनाथजी ने नरचरित्र करने के लिए ऐसा पूछा।

रामवचन सुनि दशमुखभ्राता * कह हँसि गहि प्रभुपद जलजाता
देवदेव नहिं दल जलबाहा * अहहि नरान्तक निशिचरनाहा

श्रीरामजी के वचन सुनकर रावणके भाई विभीषण स्वामी रघुनाथजी के चरणारविन्दों को पकड़कर हँसकर कहने लगे—हे देवदेव श्रीरामजी, यह मेघों का दल नहीं, निशाचरों का राजा नारान्तक है।

विह्वावलपुर बसत गुसाँई * पठवा तेहि दशकन्ध बुलाई
आवत धूमकेतु चर सङ्गा * करत कुलाहल नाद उतङ्गा

हे स्वामी, यह विह्वावलपुर में बसता है। इसको रावण ने बुला भेजा है। इससे बड़े भारी कोलाहल के शब्द को करता हुआ यह धूमकेतु दूत के साथ आ रहा है।

दोहा—तेहि सँगगुणी अनेक प्रभु, गावत हनत निशान।
सेन सङ्ग चतुरङ्ग खल, डोलत विविध निशान॥

हे प्रभु, उसके साथ अनेकों गुणी गाते व नगाड़ों को बजाते हुए आते हैं। इसके साथ चतुरङ्गिणी सेना है और वे दुष्ट अनेक दिशाओं में घूमते हुए आते हैं।

यह प्रभाव तेहि सुनि भगवाना * विहँसे प्रभु बलबुद्धिनिधाना
पाइ राम रुख पवनकुमारा * उठे हर्षि हिय गर्जि प्रचारा

उसका यह प्रभाव सुनकर बल व बुद्धि के निधान भगवान् स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हँसे। रामजी का रुख पाकर पवनकुमार हनुमानजी उठे व हृदय में प्रसन्न होकर गजकर चले।

सहित लषण प्रभुपद शिरनाई * धाये कहि जय जय रघुराई
वातजात निशिचर समुदाई * देखि सपदि ढिग पहुँचे जाई

लक्ष्मण-समेत स्वामी श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाकर 'रघुनाथजी की जय हो, जय हो' ऐसा कहकर पवनकुमार हनुमान्जी निशाचरों के समूह को देखकर जल्द जाकर पास पहुँचे—

कटकटाइ गरजे अति भारी * देखेउ इमि आवत वनचारी
बूझेउ दूतहि निशिचर त्राता * यह आवत धावत को भ्राता

व कटकटाकर बड़े ज़ोर से गरजे। इस भाँति आते हुए वानरों को देखकर निशाचरों के रक्षक नारान्तक ने दूत से पूछा—भाई, दौड़ता हुआ यह कौन आता है?

स्वर्णशैल विकराल शरीरा * गर्जत प्रलय जलद सम वीरा
तब नारान्तक सन कह दूता * यहै पवनसुत बली अकूता

जो कि सोने के पहाड़ के समान भयंकर देहवाला है, और जो वीर मलयकाल के मेघों के समान गर्जता है। तब दूत ने नारान्तक से कहा—यही बड़ा बली पवनपूत हनुमान् है।

दोहा—सिन्धु लाँघि लङ्का दहेसि, पुनि हति अक्षकुमार।
कालनेमि कहँ मारि मग, लावा मेरु उपार॥

इसने समुद्र को नाँघकर लंका को जलाया, फिर अक्षयकुमार को मारा और रास्ते में कालनेमि को मारकर द्रोणाचल पहाड़ को भी उखाड़ लाया।

पुनि अहिरावण सह परिवारा * पैठि पताल सदल संहारा
लै आवा तापस दोउ भाई * आवत अब तव ढिग सोइ धाई

फिर पाताल में पैठकर वंशसमेत व सेना-सहित अहिरावण को इसने मारा और दोनों तपस्वी भाइयों को ले आया। अब वही तुम्हारे पास दौड़ता हुआ आ रहा है।

यहिकर भुजबल अहै अपारा * सुनि रिसान दशकण्ठकुमारा

चाप चढ़ाइ सुधारेसि बाना * तजन न पाव गहेउ हनुमाना

इसकी भुजाओं का बल अतुल है। यह सुनकर रावण का पुत्र नारान्तक क्रोधित हुआ। उसने धनुष को चढ़ाकर बाण को सुधारा। वह उसको छोड़ने नहीं पाया कि हनुमान्जी ने आकर पकड़ लिया।

सो शर धनुष तोरि कपि डारा * पुनि रिसाय उर मुष्टिक मारा
परा दशाननसुत महि कैसे * वज्र रसातल गे गिरि जैसे

हनुमान्जी ने उसके धनुष-बाण को तोड़ डाला। फिर क्रोधकर राक्षस के हृदय में एक घूँसा मारा। रावण का पुत्र नारान्तक घूँसा लगने से इस भाँति पृथ्वी में गिर पड़ा जैसे वज्र के लगने से कोई पहाड़ रसातल में चला जाय।

पवनपूत बल लूम पसारा * कोटिन रथ गहि तापर डारा
रथ सारथी चूर्ण सम भयऊ * विधिवश तेहिकर प्राण न गयऊ

पवन के पूत हनुमान्जी ने बल से पूँछ को फैलाया व उससे करोड़ों रथों को पकड़कर उसके ऊपर डाल दिया। रथ व सारथी दोनों चूर-चूर हो गये; परन्तु प्रारब्धवश राक्षस के प्राण नहीं गये।



एक दण्ड अति विकल खल, रह भूतल धुनि माथ।
पुनि शठ उठा सँभारि तनु, धायउ धनु धरि हाथ॥

एक घड़ी तक वह दुष्ट बहुत व्याकुल हो पृथ्वी में माथा धुनता हुआ पड़ा रहा। फिर वह शठ देह को सँभालकर उठा व धनुष हाथ में लेकर दौड़ा।

छाँड़ेसि अगणित शायक कोपी * क्षण इक कीशकटक गा तोपी
रामप्रताप प्रभंजनजाया * करगहि अरिशर तोरि बहाया

क्रोधकर उसने अनगिनती बाणों को छोड़ा, जिससे एक क्षण भर में वह वानरी सेना छिप गई। पवन के पुत्र हनुमान्जी ने श्रीरामजी के प्रताप से शत्रु के बाणों को हाथ से पकड़ तोड़कर फेंक दिया।

देखि पवनसुत की प्रभुताई * वर्षत सुमन विबुध झरिलाई
जय जय पिङ्गअक्ष सुर भाषा * सुनि दशकन्धतनय मन माषा

पवनपुत्र हनुमान्जी की प्रभुता को देखकर देवताओं ने झड़ी लगाकर फूलों की वर्षा की। देवताओं ने यह कहा कि 'पीले नेत्रवाले हनुमान्जी की जय हो, जय हो।' यह सुनकर रावण का पुत्र नारान्तक मन में क्रोधित हुआ।

नारान्तक अतिहृदय रिसाई * कपि तट पहुँचा आतुर धाई
कहभल कीश जो कछुबल धरहू * मोसन मल्लयुद्ध रण करहू

मन में बहुत क्रोधित होकर नारान्तक शीघ्रता से दौड़कर हनुमान्जी के समीप पहुँचा। उसने कहा—अरे वानर! जो कुछ बल रखता हो तो युद्ध में मुझसे कुश्ती लड़।

गावहिं विबुध तोर भुज जोरा * निज उर सह इक मुष्टिक मोरा
लागत ठाढ़ रहै जो वानर * तौ जानहुँ तव भुज बलआगर

देवता लोग तेरी भुजाओं के बल को गाते हैं, इससे मेरे एक घूँसे की चोट अपने हृदय में सह ले। हे वानर! उस घूँसे के लगने से जो तू खड़ा रहेगा, तो मैं तेरी भुजाओं का अपार बल जानूँगा।



हरि सुनि ताकर बात, रामदूत रिस रोकि उर।
अति समीप मुसुक्यात, छणक ठाढ़ सन्मुख रहेउ॥

उसकी बात सुनकर श्रीरामजी के दूत हनुमान्‌जी हृदय में क्रोध को रोक मुसकाते हुए क्षणभर उसके बहुत समीप ही सामने खड़े रहे।

तब तेहि कपिकहँ मुष्टिक मारा * भयउ तड़ितसम शब्द अपारा
टरा न तहँसे पग हनुमाना * हृदय न निशिचर नेकु लजाना

तब उसने हनुमान्‌जी के घूँसा मारा। उसका शब्द वज्र के समान बहुत अधिक हुआ। पर वहाँ से हनुमान्‌जी पगभर न टले। निशाचर नारान्तक कुछ भी न लजाया।

दुइ मुष्टिक तेहि फेरि चलावा * तब मारुतसुत कोप बढ़ावा
किलकिलाय लंगूर लपेटा * डारि भूमि तिन्ह दीन्ह चपेटा

उसने फिर दो घूँसे मारे। तब पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने क्रोध अधिक किया व किलकिलाकर पूँछ में लपेट पृथ्वी में डाल उसे रगड़ दिया।

विकलताहिकरिकपि अतिगाजे * भे व्याकुल निशिचर बहु भाजे
कोटिननिशिचर कपिकर गहहीं * रामदूतकर कौतुक अहहीं

इस प्रकार उसे व्याकुल कर हनुमान्‌जी बहुत गर्जे। उस समय बहुत-से निशाचर व्याकुल होकर भाग गये और करोड़ों राक्षसों को हनुमान्‌जी हाथ में पकड़ते और मसल डालते हैं। ऐसे रामदूत हनुमान्‌जी के खेल हैं।

मर्दि मर्दि बहु वारिधि डारे * देखि देव जय जयति पुकारे
एक दण्डगत निशिचर जागा * बहुविधि समर करन सो लागा

उन्होंने मल-मलकर बहुतों को समुद्र में डाल दिया। यह देखकर देवताओं ने जयजयकार किया। एक घड़ी बीतने पर वह नारान्तक निशाचर जागा और फिर बहुत भाँति से युद्ध करने लगा।

छन्द

लागेउ करन पुनि समर बहुविधि निज सुभट बहु फेरिकै।
खल कोटि कोटि प्रचण्ड सायक कपिहिं रणमहँ घेरिकै॥

रणरंगरंजित बीर मारुतपूत पुनि पुनि गर्जहीं।
गहि गहि बिपुल दनुजन पछारत उरबिदारत तर्जहीं॥

फिर बहुत-से अपने योद्धाओं को लौटाकर नारान्तक बहुत प्रकार से समर करने लगा। वह दुष्ट युद्ध में महावीरजी को घेरकर करोड़ों बाण छोड़ता है। युद्ध के रंग में रँगे हुए पवनपुत्र वीर हनुमान्जी बार-बार गर्जते हैं, बहुत-से राक्षसों को पकड़-पकड़कर पछाड़ते और उनकी छाती को फाड़ते हुए डरवाते हैं।


सघन बाहिनी जलज बन, जिमि करिकृत उतपात।
रिपुन हनत तिमि बायुसुत, बिनु श्रम प्रमुदित गात॥

कमलों के वन में जैसे हाथी उपद्रव करता है, वैसे ही घनी राक्षसी सेना के जंगल में हर्षित अंगोंवाले पवनपुत्र हनुमान्जी घुसकर बिना परिश्रम के शत्रुओं को मारते हैं।

करत समर आयउ तेहि ठामा * जहँ नित होत रहा संग्रामा।
लरत अकेल तहाँ हनुमाना * धायउ बालितनय बलवाना॥

युद्ध करते हुए हनुमान्जी उस स्थान पर आये, जहाँ नित्य युद्ध होता था। वहाँ हनुमान्जी अकेले लड़ते थे, इसलिए बालिकुमार बलवान् अंगदजी दौड़े।

ता पाछे कपिचमू अपारा * चले कहत जय कृपाअगारा।
लीन्हे गिरिवर तरु पाषाना * जहँ तहँ करन लगे मैदाना॥

उनके पीछे वानरों की अपार सेना थी। वे सब वानर 'दया के धाम श्रीरामचन्द्रजी की जय हो' यह कहते हुए चले। पहाड़ों की शिलाएँ, वृक्षों व पत्थरों को लिये वे सब जहाँ-तहाँ युद्ध करने लगे।

अंगद आइ पवनसुत पाहा * कहि जय रघुबरसैन द्विजनाहा।
दोउ भट एक संग करि हूहा * हतन लगे अरिसैनसमूहा॥

हे पक्षिराज, अंगदजी पवनकुमार के पास आकर बोले—रघुनाथजी की जय हो। दोनों योद्धा एक ही साथ हूहाकर शत्रुसेना के समूह को मारने लगे।

देखत भालु कीश कृत मारी * भागि चले निशिचर भयचारी।
देखि अनी निज असित बहूता * भा अतिकुपित दशाननपूता॥

रीछ व वानरों की उस मार को देखकर निशाचर भारी भय से भाग चले। अपनी सेना को बहुत डरी हुई देखकर रावण का पुत्र नारान्तक बड़ा ही क्रोधित हुआ।

छन्द

अति कुपितभा दशमुखसुवननिज भटन शपथ दिवाइकै।
फेरेउ सबनि करि कोप बोला जात कहँ पराइकै॥

विधि दीन्ह विविध अहार कपिदल खात कस न अघाइकै।
निज भालु कपि नहिं करहु पुनि हठ पकरु तापस धाइकै॥

रावण का पुत्र मारान्तक बड़ा क्रोधित हुआ। उसने अपने योद्धाओं को सौगन्ध दिलाकर लौटाया। क्रोधकर सबसे बोला कि भागकर कहाँ जाते हो? विधाता ने अनेक भाँति के आहारों को दिया है। वानरी सेना को क्यों नहीं अघाकर खाते हो? पृथ्वी को रीछ व वानरों से हीन कर दो। फिर दौड़कर हठपूर्वक तपस्वियों को पकड़ लो।



सुनि मारान्तक सदप वच, रजनीचर समुदाय।
लागे करन सकोप सब, माया कपट कुभाय॥

मारान्तक के ये क्रोधसमेत वचन सुनकर निशाचरों के झुण्ड कोप करके बुरे स्वभाव से छल करके माया करने लगे।

माया तिमिर पसार अपारा ※ अस्त्र शस्त्र बहुभाँति प्रहारा
शक्ति शूल वर विशिख कराला ※ डारहिं रजतरु शैल विशाला

उन्होंने माया से अपार अन्धकार फैला दिया। वे अनेक प्रकार के अस्त्रों व शस्त्रों से प्रहार करने लगे। वे शक्ति, त्रिशूल और कराल बाणों को चलाते हैं; धूल, वृक्ष और बड़े-बड़े पर्वतों की शिलाएँ वानरों पर डालते हैं।

गिरत भालु कपि लागत सायक ※ उठहिं बहुरि कहि जय रघुनायक
निज दल विकल विलोकि खरारी ※ सत्यसिन्धु इक शर संचारी

बाणों के लगते ही रीछ व वानर गिरते हैं, फिर 'रघुनाथजी की जय हो' ऐसा कहकर उठ बैठते हैं। तब खर राक्षस के नाशक सत्यसागर रघुनाथजी ने अपनी सेना को व्याकुल देखकर एक बाण छोड़ा।

रिपुशर काटि तिमिर कर दूरी ※ प्रभु शर हते निशाचर भूरी
हरि निषङ्ग महँ पुनि सो तीरा ※ प्रविशो आय सुनहु मुनिधीरा

स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के बाण ने वैरी के बाणों को काटकर, अन्धकार को दूर कर, बहुत-से राक्षसों को मार डाला। हे बुद्धिमान् मुनिवर सुनिए, वह बाण फिर आकर श्रीरामचन्द्रजी के तरकश में बैठ गया।

निरखि प्रकाश भालु कपि कीशा ※ गहि गिरि तरु कहि जय जगदीशा
निशिचर अनी मध्य गे जबहीं ※ दिये डारि गिरि रज तरु तबहीं

प्रकाश देखकर रीछ व वानर वृक्षों व पर्वतों को लेकर 'संसार के स्वामी रघुनाथजी की जय हो' यह कहकर जब निशाचरों की सेना के बीच में गये, तब उन्होंने उस सेना पर पहाड़, धूल व वृक्षों की वर्षा की।



मरे निशाचर कोटि पट, जानि निशा परवेश।
दशसुत अङ्गद पवनसुत, चले जहाँ अवधेश॥

दस करोड़ राक्षस मर गये। तब रात आई जानकर सेना-सहित अंगद व पवनकुमार हनुमान्‌जी वहाँ चले, जहाँ अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथजी थे।

अङ्गद हनुमदादि कपि भालू * आये जहँ रघुबीर कृपालू
प्रभुहिं बिलोकि चरण शिर धरे * भे श्रमरहित सकल सुख भरे

अंगद, हनुमान आदि वानर व रीछ वहाँ आये, जहाँ कृपानिधान श्रीरामजी थे। स्वामी श्रीरामजी को देखकर उन्होंने उनके चरणों में सीस रख दिया। तब सब लोग थकावट से रहित होते हुए सुख से भर गये।

अति आदर प्रभु किय सनमाना * सब कहँ बैठन कह भगवाना
पुनि रजाय ले थलनि सिधाये * छबिबारिधि प्रभुपद शिरनाये

स्वामी श्रीरामजी ने सबका बड़े आदर से सम्मान किया और सबसे बैठने के लिए कहा। फिर शोभासागर स्वामी श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाकर आज्ञा लेकर सब वानर अपने-अपने डेरे को चले गये।

अङ्गद हनुमत निकट निवासी * रामचरण सुषमागुणरासी
दोउ भट कर परसत प्रभु पाँऊ * देखि सुरन मन भा अतिचाऊ

समीप रहनेवाले अंगद व हनुमान्‌जी शोभा व गुणों की राशि श्रीरामजी के चरणों की सेवा करने लगे। उन स्वामी श्रीरामजी के चरणों को दोनों योद्धा हाथों से छूते हैं, यह देखकर देवताओं के मन में बड़ी प्रसन्नता होती है—

हमहुँ होत जग कीश स्वरूपा * पद गहि नित्य रहत नरभूपा
हरिन सिहाहिं सुमन झरिलाये * निजनिज आश्रम अमर सिधाये

कि संसार में जो हम भी वानर के रूप में होते तो मनुष्यों के राजा रामजी के चरणों को नित्य पकड़े रहते। देवता भी इस प्रकार वानरों को सिहाते हैं। फूलों की झड़ी लगाते हुए देवता लोग अपने-अपने घर को चले गये।



बन्धु सचिव सेना सहित, शोभित श्रीभगवान।
तुलसिदास ते धन्य नर, जे यहि ध्यान लुभान॥

भाई, मन्त्री और सेना-सहित श्रीभगवान्‌जी शोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो इस ध्यान में लुभाये हैं।

उत नारान्तक सेन समेता * गयउ जहाँ दशकन्धनिकेता
सुनतहिं सुरारि मिला पुलकाई * कुशल बूझ बैठेउ सुभाँई

उधर सेना-समेत नारान्तक वहाँ गया, जहाँ रावण का घर था। देवताओं का वैरी रावण पुलकित होकर नारान्तक पुत्र को मिला और कुशल पूछ व प्रसन्न होकर बैठ गया।

देखि नरान्तक की समुदाई * दशमुख शठ सब सोच भुलाई
जेहि विधि हरि लावा जगमाता * ताहि आदिकत कहा विख्याता

नारान्तक की अपार सेना को देखकर शठ रावण ने सब चिन्ता भुलाकर जिस प्रकार जगदम्बिका जानकीजी को हर लाया था, वह हाल पहले ही से लगाकर उससे कहा।

कुम्भकर्ण घननाद निपाता * कहि बिलखा अहिरावण घाता
पितु मनमलिन नरान्तक देखा * बोला खल उर गर्व विशेखा

कुम्भकर्ण व मेघनाद का गिरना तथा अहिरावण का मरना कहकर रावण दुखी हुआ। दुष्ट नारान्तक ने जब पिता के मन को उदास देखा, तब हृदय में बड़ा गर्व करके बोला—

तजहु सकल संशय विबुधारी * करिहहुँ प्रात समर अतिभारी
चमू कीश बिन क्षिति करि ताता * धरिहौं तापस होत प्रभाता

हे देवताओं के वैरी रावण, आप सब सन्देह छोड़ दीजिए, मैं प्रातःकाल बड़ा भारी युद्ध करूँगा। हे पिताजी, प्रभात होते ही पृथ्वी को वानरी सेना से रहित कर तपस्वियों को पकड़ लूँगा।

छन्द

धरि आनि तापस भ्रात दोउ परभात बार न लाइहौं।
धरि धरि विपुलकपि भालु दै निशाचरन्ह अघवाइहौं॥
भुजबल कहहुँ निज नहिं बहुतकरि रिपु प्रकट दिखलाइहौं।
बिन श्रमहिं तातन को बयर लै तव चरण शिर नाइहौं॥

प्रभात होते ही दोनों भाई तपस्वियों को पकड़कर लाऊँगा, देर न करूँगा। बहुत से वानरों व रीछों को पकड़-पकड़कर बेचारे भूखे राक्षसों को तृप्त करूँगा। अपनी भुजाओं के बल को मैं बहुत बढ़ाकर नहीं कहता। मैं अपना पराक्रम प्रकट करके शत्रुओं को दिखाऊँगा और बिना परिश्रम के अपने भाइयों के वैर का बदला लेकर तुम्हारे चरणों में माथा नवाऊँगा।


सुनत बीसभुज सुतवचन, बार बार उर लाइ।
लाग करावन नृत्य जड़, गुणीसमूह बुलाइ॥

बीस भुजाओंवाला मूढ़ रावण पुत्र के ये वचन सुनकर उसे बार-बार हृदय में लगाकर गुणियों को बुलाकर नाच कराने लगा।

बिन्दुमती आदिक रनिवासू * सब चलिगईं सँदोदरि पासू
सासुहिं मिलि बैठीं सब नारी * मयतनया कीन्ह आदर भारी

उधर बिन्दुमती आदि सब रनिवास की रानियाँ मन्दोदरी के पास गईं। सासु से मिल-कर सब स्त्रियाँ बैठ गईं। मय दानव की कन्या मन्दोदरी ने उनका बड़ा आदर किया।

बूझि परस्पर रावणघरणी * प्रभुयश ताहि सुनायउ बरणी
दइ पतोहुन वास सुहावन * आपु लगी सुमिरन जगपावन

आपस में कुशल पूछकर रावण की स्त्री मन्दोदरी ने स्वामी श्रीरामजी के यश का वर्णन कर सुनाया। पतोहुओं को सुहावना निवास देकर मन्दोदरी आप जगत् के पवित्र करने-वाले श्रीरामजी को सुमिरने लगी।

शयनकरहु कह सुतहि निशाचर * उठा आप मतिमन्द अघाकर
गा तेहि भवन कुटिल दशग्रीवा * जहँ मयतनया सद्गुणसीवा

पाप की खान निशाचर रावण ने पुत्र से कहा कि अब जाकर शयन करो। फिर मन्द बुद्धिवाला आप भी उठा। कुटिल रावण उस मन्दिर को गया, जहाँ उत्तम गुणों की सीमा मन्दोदरी थी।

आयउ पिय मन्दोदरि जानी * पाइ सुअवसर गहि पग पानी
प्रिय सुनाय अति कोमल बयना * लगी कहन जल भरि युगनयना

पति को आया जानकर मन्दोदरी उत्तम समय पाकर हाथ से पति के चरणों को पकड़-कर प्यारे पीतम को बड़े कोमल वचन सुनाकर, दोनों आँखों में जल भरकर, कहने लगी—

नाथ निगम आगम विबुध, कहत प्रकट यह बात।
बुधजन सो जो आधहू, राखै सर्बस जात॥

हे नाथ, वेद, शास्त्र व विद्वान् लोग प्रकट ही इस बात को कहते हैं कि ज्ञानीजन वही है, जो सर्वस जाते हुए में से आधे ही को रख ले—

तजहि न हठ शठ सर्बस खोवै * यद्यपि अन्त शीश धुनि रोवै
सो बिचार प्रभु परम सुजाना * मोर बचन सुनि कीजिय काना

और मूर्ख पुरुष यद्यपि अन्त में माथा पटककर रोता है, तो भी शठ हठ को नहीं छोड़ता और सब कुछ खो देता है। हे बड़े चतुर स्वामी, यह विचारकर मेरे वचन को सुनकर कान कीजिए यानी उसे मानिए।

अजहुँ करहु हठ दूरि गुसाँई * अनुज भाँति मिलिये प्रभु जाई
प्रथमहिं सीतहि देहु पठाई * पुनि तुम गवनहु पुत्र लिवाई

हे स्वामी, अब भी हठ को दूर कीजिए व छोटे भाई विभीषण की नाईं जाकर प्रभु से मिलिए। पहले सीताजी को भेज दीजिए; फिर आप नारान्तक पुत्र को लेकर जाइए—

प्रभुपद गहि माँगहु वर येहू * पदपंकज रति विमल सनेहू
मिथ्यावचन तेहि विषसम लागा * सो गृह तजि गा अनत अभागा

स्वामी श्रीरघुनाथजी के चरणों को पकड़कर यही वरदान माँगिये कि आपके चरण-कमलों में निश्चल भक्ति न छोड़ें। सो ये वचन रावण को तीर के समान लगे। वह अभागा रावण उस घर को छोड़कर दूसरे घर को चला गया।

निजनारी कहि कछु अभिमानी ॥ कीन्ह शयननिशिगइ बड़ जानी
सो रजनी गत भयउ प्रभाता ॥ जागे रघुवर अथ जगत्राता

अभिमानी रावण ने अपनी स्त्री को कड़वे वचन कहकर यह जाना कि बहुत सी रात बीत गई सो शयन किया। उस रात के बीत जाने पर जब सवेरा हुआ, तब त्रिलोकी के रक्षक रघुनाथजी जागे।



ऋक्ष कीश जगदीश पद, शीश नाइ सब पाइ।
धरि गिरि तरु धावत भये, कहि जय जय रघुराइ॥

रीछ व वानर संसार के स्वामी रघुनाथजी की आज्ञा पाकर व उनके चरणों में माथा नवाकर पर्वतों व वृक्षों को लेकर 'रघुराज श्रीरामजी की जय होवे' ऐसा कहते हुए दौड़ पड़े।

कपि घेरा गढ़ यह सुनि काना ॥ रावणसुत उठि निपट रिसाना
साजि विपुल दल हनत निशाना ॥ गढ़ते चला निकरि बलवाना

वानरों ने गढ़ को घेर लिया, यह कानों से सुनकर रावण का पुत्र नारान्तक बड़ा क्रोधित हुआ। वह बली राक्षस बड़ी सेना को साजकर नगाड़े को बजवाता हुआ लंकागढ़ से निकलकर चला।

चारि द्वार करि कठिन लराई ॥ विशिखवृष्टि कपिदल विचलाई
निकरे निशिचर गढ़ते कैसे ॥ शलभ समूह शैलते जैसे

चारों दरवाजों पर कठिन लड़ाई कर बाण बरसाकर उसने वानरों की सेना को भगा दिया। गढ़ से इस भाँति निशाचर निकले, जैसे पक्षियों के समूह पर्वतों से निकलें।

मारुतसुत देखा कपि भाजे ॥ कटकटाइ अतिविक्रम गाजे
कपि लँगूर चहुँओर भँवाई ॥ रोके खल निशिचर समुदाई

पवनकुमार हनुमान्जी ने देखा कि वानर भाग रहे हैं, तब कटकटाकर बड़े बल से गर्जे। हनुमान्जी ने चारों ओर से पूँछ घुमाकर दुष्ट राक्षसों के समूह को रोक लिया।

पटकत महि निशिचर फल बेलू ॥ केतिन देत विदिशि दिशि मेलू
एकदिशि हनि हरिकुल संग्रामा ॥ दिशि दूजी अङ्गद बलधामा

वह बेल के फल की तरह राक्षसों को भूमि में पटकते हैं, कितनों ही को दिशाओं व विदिशाओं में फेंक देते हैं। इस तरह एक दिशा में हनुमान्जी युद्ध करते हैं और दूसरी दिशा में बलवान् अङ्गदजी लड़ते हैं।



निशिचर सेना उदधि सम, मन्दर इव दोउ कीश।
मथत देखि जय रतन लगि, हँसे विबुधसुरईश॥

निशाचरों की सेना समुद्र के समान है। उसको दोनों वानर मन्दराचल पर्वत की नाईं जयरूपी रत्न पाने के लिए मथते हैं। यह देखकर देवताओं के स्वामी श्रीरामजी हँसने लगे।

छन्द

इमि निरखि पराक्रम करत कीश * भा परम क्रोध रजनीचरीश
करि प्रलय कन्दलै घोर शोर * धर कुधर शस्त्र धाये कठोर

इस प्रकार पराक्रम करते हुए वानरों को देखकर राक्षसों के स्वामी नारान्तक को बड़ा क्रोध हुआ। प्रलयकाल के शब्द से भी भयानक शब्द कर पहाड़ों व कठोर शस्त्रों को लेकर राक्षस दौड़े।

इक बार मारकर शर समूह * किय विकल अखिल कीशजूह
कोउ टेरत कपिपति खिसउ चोट * कोउ सुरतकरतनिजधामओट

उसने इकबारगी बाणों के समूह मारकर और अस्त्र चलाकर वानरों के झुंडों को व्याकुल कर दिया। कोई वानर व्याकुल मन होकर अपने स्वामी सुग्रीव को पुकारते हैं और कोई अपने घरों की सुध करते हैं।

बहु धरे कन्दरा शैल ताक * कोउदबकलइसउतपात झांक
कोउ देत दुहाई लषण राम * कोउ कहत विधाताभयो बाम

बहुत से पहाड़ की कन्दराओं को ताककर उधर भागे; कोई इधर-उधर पात (नीची जमीन) को झाँककर उसमें छिपते हैं। कोई लक्ष्मण व श्रीरामजी की दुहाई देते हैं। कोई कहता है कि विधाता वाम (प्रतिकूल) हो गया।

यहि बीच नरान्तक कर प्रधान * तेहि धाय गहेउ युवराज पान
बहु भट लपटाने अंग संग * सब संग उड़ेउ अंगद उतंग

इसी बीच में नारान्तक के मन्त्री ने दौड़कर युवराज अंगद का हाथ पकड़ा। उसके साथ ही उनके अंगों में सब योद्धा लिपट गये। तब सबको लिये हुए अंगदजी आकाश में उड़े।

नभ कीश कीन्ह कौतुक अभूत * रविमण्डल पहुँचे बालिपूत
अंगारे जारे तपनि आँच * पुनि आयउ जहँ संग्राम रॉच

आकाश में वालि के पुत्र अंगदजी ने अद्भुत कौतुक किया। वह सूर्यमण्डल में पहुँचे। सूर्य की तपन की आँच से उन राक्षसों के सब अंग जल गये। फिर अंगदजी वहाँ आये, जहाँ युद्ध हो रहा था।

यह निरखि अपर यूथप पिशाच * तुर आइ गयउ सेना समाच
लै विषम शूल आरोसि प्रचण्ड * उरलागेआनिअंगदकेखंड

यह देखकर और सेनापति राक्षस तुरन्त ही सेना को लेकर आ गये। वह उसने प्रचण्ड त्रिशूल को लेकर नरान्तक के सेनापति ने अंगद के मारा, जो आकर अंगद की छाती में लगा, जिससे उनको बड़ा क्लेश हुआ।

महि परेउ तनयतारा तुरन्त * लखि दौरि परेउ हनुमन्तसन्त
सोइ शूल खैंचि मारेउ प्रचण्ड * उर लागि यूथपति सहसखण्ड

तारा के पुत्र अंगदजी तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़े। उनको देखकर महात्मा हनुमानजी दौड़ पड़े। उसी प्रचण्ड शूल को लेकर तानकर हनुमान्जी ने उस राक्षस के मारा। वह उसके हृदय में लगा। उससे सेनापति के हजार खण्ड हो गये।

सब चरित सुनेउ रविकुलदिनेश * कह जाहु वेगि अहिराजशेश
चले नाइ माथ शङ्कर मनाइ * धनु बाँधि बाँधि विकराल जाइ

सूर्यवंश के सूर्य रघुनाथजी ने इस सब चरित को सुना और कहा—हे अहिराज शेष लक्ष्मण, शीघ्र जाओ। यह सुनकर, माथा नवाकर, शङ्करजी को मनाकर, भयंकर धनुष को बाँधकर लक्ष्मणजी चले।



विगत भई मूर्च्छा तुरत, बहुरि चलेउ युवराज।
लक्ष्मण चाप टँकोर सुनि, फिरा कीश दलसाज॥

जब मूर्च्छा बीत गई, तब तुरन्त ही युवराज अंगद फिर चले। उधर लक्ष्मण के धनुष की टंकोर सुनकर वानरों की सजी हुई सेना लौट पड़ी।

सुनत टँकोर शरासन निशिचर * बधिर भये नहिं सुनत शब्द पर
वर्षा विशिख कीन्ह अहिनाथा * काटे पाणि पायँ बहु माथा

धनुष की टंकोर सुनकर निशाचर बहरे हो गये; दूसरे शब्द को नहीं सुन पाते। शेष लक्ष्मणजी ने बाणों की वर्षा की और बहुत से राक्षसों के हाथ, पाँव व सिर काट डाले।

उड़हिं अकाश शीश भुज कैसे * धुनकत तूल रोमगण जैसे
रुण्ड अशीश फिरहिं रणधरणी * यथा अकाल क्षुधारत करणी

आकाश में सिर व भुजा इस तरह उड़ती हैं, जैसे रुई के धुनकते में उसके रेशे उड़ते हैं। सिर के बिना धड़ पृथ्वी में घूमते हैं, जैसे अकाल में भूखे कंगाल घूमते हैं।

इत कपिभालुविजयअभिलाखे * उतहिं निशाचर जयरुख राखे
मारुतसुत अंगद बल वीरा * समर बाँकुरे अति रणधीरा

इधर वानर व रीछ जीत चाहते हैं, उधर राक्षस जीत का रुख रखते हैं। पवनपुत्र हनुमान् व अंगदजी बलवान्, वीर और युद्ध में बाँके व रण में बड़े निपुण थे।

सिंहनाद कीन्हा हरि दोऊ * भाजे कपि रण गाजे सोऊ
दोउ दल युद्ध परस्पर करहीं * प्रमुदित भट कायर हिय डरहीं

अंगद व हनुमान् दोनों वानरों ने जब सिंहनाद किया, तब जो वानर भाग गये थे, वे भी युद्ध में गर्जने लगे। दोनों सेना आपस में युद्ध करती हैं। उससे योद्धा प्रसन्न होते हैं और कायर मन में डरते हैं।

छन्द

कायर डरहिं प्रमुदित सुभट सब लरत हारि न मानहीं।
जहँ तहँ गिरैं पुनि उठि भिरैं दुहुँ ओर जयति बखानहीं॥
कौतुक विलोकत विबुधगण विस्मय हरष उर आनहीं।
रघुबीर सैननि पर सुमन झरि लाय विनती ठानहीं॥

कायर डरते हैं और सब उत्तम योद्धा प्रसन्न होते हैं, लड़ने में हार नहीं मानते, जहाँ तहाँ गिरते और फिर उठकर भिड़ते हैं। दोनों ओर की सेना जय-जयकार कर रही है। देवताओं के गण इस तमाशे को देखते हैं, हृदय में विस्मय और प्रसन्नता धारण करते हैं। वे रघुनाथजी की सेना के ऊपर फूलों की वर्षा कर विनती करते हैं।

अति अद्भुतकरणी करहिं, ऋच्छ कीश बल भूरि।
कर पद बिधु करि रैनिचर, तिन मुख डारहिं धूरि॥

बड़े बलवान् रीछ व वानर बड़ी अद्भुत करनी करते हैं। वे निशाचरों के हाथ-पैर तोड़कर उनके मुख पर धूल डालते हैं—

बहुतन के शिर तोरि चलावहिं * निज भुजबल रावणहिं जनावहिं
गये याम युग दिवस भवानी * नारान्तक अधसेन सिरानी

बहुतों के शीश तोड़कर फेंक देते हैं और अपनी भुजाओं का बल रावण को जनाते हैं। श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वतीजी, दिन के दो पहर बीतने पर नारान्तक की सेना आधी रह गई।

मरे निशाचर अमित निहारी * रावणसुवन कोप करि भारी
रथ समेत ऊपर नभ जाई * भयउ अदृश्य अस्त्र झरि लाई

बहुत से राक्षसों को मरे हुए देखकर रावण का पुत्र नारान्तक बड़ा भारी क्रोधकर रथ-समेत आकाश के ऊपर जाकर अदृश्य हो गया और अस्त्रों की वर्षा करने लगा।

क्षण महँ करि मूर्च्छित कपिसेना * पुनि शठ गा जहँ राजिवनयना
गर्जा मनहुँ मेघसमुदाई * कहन लगा कटु वचन रिसाई

क्षण भर में वानरों की सेना को मूर्च्छित कर फिर शठ नारान्तक वहाँ गया, जहाँ कमल-नयन श्रीरामजी थे। मेघों के समूह की तरह वह गर्जा और क्रोधित होकर कटु वचन कहने लगा—

होसि सजग निश्चरकुलद्रोही * बन्धुबैर लगि मारहुँ तोही

माया करि निजगात बचावहिं * जहँ तहँ खल रावण यशगावहिं
अदितिनंदलखि तिनकर माया * सभय भये जाना रघुराया

माया कर वे अपने अङ्गों को बचाते हैं और जहाँ-तहाँ दुष्ट रावण के यश को गाते हैं। रघुनाथजी ने जाना कि अदिति के पुत्र देवता लोग उनकी माया को देखकर भयभीत हो रहे हैं।

दीन नाथ अनुजहिं अनुशासन * उठे नमितगहिविशिखशरासन
अहिपति कहेउ तिष्ठ क्षणएका * तैं कीन्हें रण खेल अनेका

तब श्रीरामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आज्ञा दी। वह प्रणाम करके धनुष-बाण हाथ में लेकर उठे। लक्ष्मणजी ने नारान्तक से कहा—तू एक क्षण भर खड़ा रह। तूने अब तक युद्ध में अनेक खेल किये हैं।

छन्द

तैं कीन्ह खेल अनेक विधि अब तिष्ठ खल रण भूथला।
इमिकहि अहीशचढ़ाइ धनुशर करन निशिचरदलमला॥
निजअनी निरखि निदान हरिअरिसुवन धावा रिसभरा।
डारत अनेक नराच प्रभु पर शिला तरुवर भूधरा॥

अरे दुष्ट! तूने अनेक भाँति के खेल किये हैं; अब रणभूमि में खड़ा हो। ऐसा कहकर लक्ष्मणजी धनुष को चढ़ाकर बाणों की वर्षा से निशाचरों की सेना का नाश करने लगे। अपनी सेना का नाश देखकर राम का वैरी रावण का पुत्र नारान्तक क्रोध से भरा हुआ दौड़ा और अनेक बाण, शिला, वृक्ष व पर्वतों को स्वामी लक्ष्मणजी के ऊपर बरसाने लगा।

रघुवीरअनुज प्रवीण खलबलदलन श्रुति यश गावहीं।
तरु उपल गिरि अरि तीर उपरहिं बाण लषण चलावहीं॥
रिपु शस्त्र अस्त्र अनेक आयुध कनक करि करि डारहीं।
सुरगण प्रफुल्लित सुमन भरि करि जयतिलषण पुकारहीं॥

रघुनाथजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी खल-दल का दलन करने में प्रवीण हैं और उनके यश को वेद गाते हैं। लक्ष्मणजी जब वृक्षों, पत्थरों, पहाड़ों व शत्रु के बाणों के ऊपर बाण चलाते हैं, तब शत्रु के अनेक अस्त्र-शस्त्रों को खण्ड-खण्ड कर डालते हैं। यह देख प्रसन्न होकर देवताओं के गण फूलों की वर्षा करते और लक्ष्मणजी की जय हो, ऐसा पुकारते हैं।

दो० मायापति के अनुजसन, माया करत अयान।
लगत न एकौजान जिय, तबखल निकट तुलान॥

मायापति श्रीरामजी के छोटे भाई लक्ष्मण से वह अज्ञानी नारान्तक माया करता है; परन्तु एक भी माया सफल होती न जानकर वह दुष्ट पास पहुँचा।

श्रीरामजी की छवि देख एक सखी कहती है कि यह वर जानकी के योग्य है। हे सखी, अगर इन्हें राजा देखेंगे तो अपना धनुष तोड़ने का प्रण छोड़कर आग्रह के साथ इन्हीं को सीता ब्याह देंगे।

कोउ कह भूप इन्हहिं पहिंचाने * मुनिसमेत सादर सनमाने
सखि परन्तु प्रण राउ न तजई * विधिवशहठिअविवेकहि भजई

कोई कहती है कि राजा ने इनको पहचान लिया है और मुनि सहित आदर से इनका सम्मान किया है। परन्तु हे सखी, राजा अपना प्रण नहीं छोड़ते। दैव के अधीन हो हठ के साथ नासमझी से ही काम ले रहे हैं।

कोउ कह जो भल अहै विधाता * सबकहँ सुनियउचितफलदाता
तो जानकिहि मिलिहि वर येहू * नाहिंन आली कछु सन्देहू

किसी ने कहा—अगर विधाता अनुकूल है और सुना जाता है कि वह सबको उचित ही फल देता है तो जानकी को यही वर मिलेगा। हे सखी, इसमें सन्देह नहीं।

जो विधिवश अस बनै सँयोगू * तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू
सखि हमरे अति आरति तातें * कबहुँक ये आवहिं यहि नाते

यदि भाग्यवश ऐसा संयोग बन जाय तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायँ। हे सखी, इसी से हमें बड़ी प्रीति है कि कभी ये इस नाते से तो आवेंगे।

दो० नाहिंत हमकहँ सुनहु सखि, इनकर दर्शन दूरि।
यह संघट तब होइ जब, पुण्य पुराकृत भूरि॥

नहीं तो हमें इनका दर्शन कहाँ नसीब होगा? हे सखी, जो हमने पहले कभी पुण्य किया होगा तभी यह संयोग होगा।

बोली अपर कहेउ सखि नीका * यहि विवाहअतिहित सबहीका
कोउ कह शङ्करचाप कठोरा * ये श्यामल मृदुगात किशोरा

दूसरी बोली कि हे सखी, तुमने अच्छा कहा। इस विवाह में सभी का बड़ा हित है। कोई कहने लगी कि शिवजी का धनुष तो कठोर है और ये साँवले कोमल गात के बालक हैं।

सब असमञ्जस अहै सयानी * यह सुनि अपर कहै मृदुबानी
सखिइनकहँकोउकोउअसकहहीं * बड़ प्रभाव देखत लघु अहहीं

हे सजनी, यह सब असमंजस की बात है। यह सुन दूसरी सखी कोमल वाणी से कहने लगी—हे सखी, कोई-कोई इनको ऐसा कहते हैं कि ये देखने ही को छोटे हैं, इनका प्रभाव बहुत बड़ा है।

ये सब बीर हाँक दै धावहिं * नभपथ ताहि न खोजत पावहिं
तब सब बीर एक मत ठाना * लै गिरि तरु किय लङ्क पयाना

ये सब वीर हांक देकर दौड़ते और आकाशमार्ग में उसको ढूँढ़ते हैं; परन्तु नहीं पाते। तब सब वीरों ने एक सलाह की। उन्होंने पर्वतों और वृक्षों को लेकर लंका को पयान किया।

दशमुख भवन तासु कँगूरा * बैठे कपि पसारि लँगूरा
कर ते डारि देहिं पाषाना * बहुल दनुज भे चूर्ण समाना

रावण का जो घर था, उसके कँगूरों में पूँछ फैलाकर सब वानर बैठे व हाथ से पत्थरों के ढोके गिराने लगे, जिससे बहुत से राक्षस चूर चूर हो गये।

छन्द

भे चूर्ण निशिचरयूथ। जहँ निशचरी भय जूथ।
मुख बीन आरत दीन। भईं भवन रावण लीन॥

निशाचरों के गण चूर्ण हो गये, तो निशाचरी डरकर भाग गईं। वे मुखों से आर्त्त वाणी कहती हुई रावण के घर में घुस गईं।

सुनि बोलि भटदशभाल। कह खाहु कीश कराल।
करि यत्न भागैं कीश। अस कहेउ तब दशशीश॥

यह सुनकर रावण ने योद्धाओं को बुलाया और कहा—भयंकर वानरों को खा डालो और ऐसा उपाय करो, जिससे वानर भाग जावें। ऐसा वचन रावण ने कहा—

मम लहहु आयसु जोर। सोइ जानिहौं रिपु मोर।
सो शूर मोकहँ प्यार। जो खाय मर्कट धार॥

जो मेरी आज्ञा को न मानेगा, मैं उसी को अपना शत्रु जानूँगा। वह शूर मुझको प्यारा है, जो वानरी सेना को खा जाय।



हेतु हेतु गण रजनिचर, एक एक भुज जोर।
रावण पावन राखि शिर, धाये करि रव घोर॥

हाथ जोड़कर, रावण की आज्ञा माथे पर रखकर राक्षस के गण बड़ा भयंकर शब्द कर धाओ, धाओ कहकर चले, या दस दस हजार राक्षसों के गण चले।

देखि लँगूर सकल हर्षाने * मधुमाखी सम सब लपटाने
कपि उर सुमिरि रमेश प्रतापा * डारे सबन पटकि करदापा

सब लंगूर उन्हें देखकर प्रसन्न हुए और शहद की मक्खियों के समान सब उनके लिपट गये। लक्ष्मीपति श्रीरामजी के प्रताप को हृदय में सुमिरकर सबने दपटकर उन राक्षसों को पटक डाला।

नारान्तक की माया जाती रही और वह बड़े प्रेम से यज्ञशाला को चला गया। उसने यज्ञ की सब सामग्री ढूँढ़ी और अपनी जीत के लिए यज्ञ करने लगा।

यज्ञ आसुरी तेहिं तब ठाना * पशुसमूह बलि कारण आना
भये निशामुख श्रमवश सैना * फिरे सुमिरि सब राजिवनैना

तब उसने आसुरी (तामसी) यज्ञ का अनुष्ठान किया और बलि के लिए बहुत से पशु ले आया। सन्ध्या होने पर थकावट के वश सब वानरों की सेना कमल-लोचन श्रीरामजी को सुमिरकर लौट पड़ी।

तुरत अहीश रामपहँ आये * सहित अनी प्रभुपद शिरनाये
कृपाअयन निरखे मृगशाखा * प्रभु श्रम छीन दीन अभिलाखा

लक्ष्मणजी तुरन्त श्रीरामजी के पास आये व सेना-समेत उन्होंने स्वामी रघुनाथजी के चरणों में शीश नवाया। दीन के ऊपर दया करनेवाले कृपानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी कृपादृष्टि से वानरों की थकावट दूर कर दी।

टिकहु थलनि सब सन कहा, सुखसागर रघुनाथ।
पाय सुआयसु भालु कपि, चले सुमिरि श्रीनाथ॥

सुख के सागर श्रीरामजी ने सबसे कहा कि अपने स्थानों पर जाकर विश्राम करो। इस उत्तम आज्ञा को पाकर रीछ व वानर लक्ष्मी के पति रघुनाथजी को सुमिरकर चले।

तब रघुनाथ अनुज उर लावा * निज आसन समीप बैठा
मघवासुत सुत अरु हनुमाना * इनसम भाग्यवन्त नहिं आ :

तब श्रीरामजी ने छोटे भाई को हृदय में लगाया व अपने आसन के पास ही बिठाया इन्द्र के पुत्र बालि के पुत्र अंगद व हनुमान्जी के बराबर और कोई भाग्यवान् नहीं है।

अमलाम्बुज पदगहि निजपानी * परशे सबनि सनेह व नी
जाम्बवन्त लङ्केश हरीशा * प्रभुसमीप सब मुदित मुनीश

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, निर्मल कमल-सरीखे चरणों को अपने हाथों लेकर सबने स्नेह के साथ उनका स्पर्श किया। हे मुनीश, जाम्बवान्, लंकेश (विभीषण) वानरों के स्वामी सुग्रीव, ये सब प्रसन्न होकर प्रभु श्रीरामजी के पास बैठे।

अनुज सखा नारान्तक करणी * युद्धप्रबलता बहुविधि
शिवप्रताप तेहि अमित प्रतापा * मरण न दीन्हें बहु सन्ताप

लक्ष्मण व मित्र विभीषण ने नारान्तक की करनी व युद्ध की प्रबलता को अनेक से वर्णन किया और यह कहा कि शिवजी के प्रताप से उसका बड़ा भारी प्रताप है। इस से वह नहीं मरा और उसने वानरों को बहुत दुःख दिये।

सुने वचन रघुपति मुसकाने * अतिसनेह हरचरित

लगा—हे शठ वानरो, युद्ध छोड़कर चले आये। तुम लोगों को स्त्रियों के साथ लड़ने में लाज नहीं आती?

अबलन पै बल भट न कराहीं ❋ छाँड़हु तियन लरहु मम पाहीं
सुनि मरकटनि भयउ सुख भारी ❋ तजी निशाचरि दीन पुकारी

योद्धा लोग स्त्रियों के ऊपर बल का प्रयोग नहीं करते। इससे स्त्रियों को छोड़ दो, मेरे साथ लड़ो। यह वचन सुनकर वानरों को बड़ा सुख हुआ। उन्होंने दीन वचन कहती हुई राक्षसियों को छोड़ दिया।

भाजि भवन भययुत गईं नारी ❋ लीन्ह कपिन कर शिला उपारी
शिल प्रहार हय स्यन्दन भंजा ❋ आयुध तोर सारथी गंजा

तब डरी हुई वे स्त्रियाँ घरों को भाग गईं। वानरों ने हाथों से शिलाओं को उखाड़ लिया और उन्हीं शिलाओं के प्रहार से नारान्तक के घोड़ों को और रथ को नष्ट कर दिया और अस्त्रों को तोड़कर सारथी को मार डाला।

धरि पछारि रावण दृग देखा ❋ कौतुक कीशन कीन्ह विशेखा
लागे पद गहि खलन फिरावन ❋ नाचहिं गाय रामयश पावन

रावण की आँखों के सामने ही वे वानर उसको पकड़कर पटकते हैं। वानरों ने और भी विशेष कौतुक (खेल) किया। वे पैर पकड़कर दुष्टों को घुमाते और श्रीरामजी के पावन यश को गाकर नाचते हैं—



तोरत तिन तनु पटकि महि, कहत जयति रघुवीर॥
करत युद्धगत याम युग, कीश छहौं रणधीर॥

पृथ्वी में पटककर तिनके के समान राक्षसों की देहों को तोड़ डालते हैं और श्रीरघुनाथजी की जय कहते हैं। इस भाँति युद्ध में निपुण वहाँ वानरों को लड़ते हुए चार पहर बीत गये।

अस्ताचल रवि कीन्ह प्रवेशा ❋ बंदे चरण जाइ अवधेशा
श्याम सरोरुह प्रभु तनु देखी ❋ पदधरि शिर सुख लहेउ विशेखी

जब सूर्य ने अस्ताचल में प्रवेश किया, तब उन्होंने जाकर अवधेश श्रीरामजी के चरणों को प्रणाम किया। श्याम-कमल के समान स्वामी रामजी की देह को देखकर वानरों ने उनके पैरों में माथा रखकर बड़ा सुख पाया।

राम सबनि सादर सनमाना ❋ को दयालु रघुवीर समाना
कह प्रभु होहु थलनि आसीना ❋ आयसु पाइ भये श्रमहीना

श्रीरामजी ने आदरसहित सबका सम्मान किया। श्रीसदाशिवजी पार्वतीजी से कहते हैं—रघुनाथजी के बराबर कौन दयालु है? स्वामी श्रीरामजी ने कहा—अपने-अपने डेरे पर जाकर बैठो। इस आज्ञा को पाकर वानर थकावट से रहित हो गये।

भये विगत श्रम वानर भालू ❋ अनुज सहित मन मुदित कृपालू

निर्भय कर जो हरपदनेहू * तापर रमासहित मम गेहू

जिसके मन, कर्म व वचन से शिवजी के चरणों की आशा होती है, उसके हृदय में सब गुण निवास करते हैं। जो निडर होकर शिवजी के चरणों में स्नेह करता है, उसके हृदय में लक्ष्मीसमेत मैं रहता हूँ।

भववारिधि लाँघहिं विनु खेवहिं * यह विचारि बुधजन भवसेवहिं
भव भंजन यह हित उपदेशा * अनुजहिं सखहिं बुझाव रमेशा

बिना खेवे ही के वे संसारसागर को नाँघ जाते हैं, यह विचारकर विद्वान् लोग शिवजी की सेवा करते हैं। बार-बार जन्ममरणरूप संसार का नाश होने के लिए लक्ष्मीपति रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मण व मित्र विभीषण को यह उपदेश दिया।

ध्रुववाणी सुनि अतिसुख पावा * अहिपति रामचरण शिरनावा
अंगद हनूमान नल नीला * कपिपति अरु ऋक्षेश सुशीला

इस सत्य वचन को सुनकर लक्ष्मणजी ने बड़ा सुख पाया और श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाया। अंगद, हनुमान्, नल, नील, वानरों के राजा सुग्रीव, सुन्दर शीलवाले जाम्बवान् और

सहित विभीषण ये जन साता * सुनि श्रीमुख हरयश विख्याता
रामहिं शिवहिं एक करि जाने * भय तजि नाम जपत हर्षाने

विभीषण, ये सातों जने शिवजी के प्रसिद्ध यश को रामजी के श्रीमुख से सुनकर राम और शिवजी को एक ही जानकर, प्रसन्न हो, भव-भय छोड़कर रामनाम जपने लगे।

कहत सुनत इतिहास शुचि, निशि बीती युग याम।
खगपति आये देवऋषि, जित शोभित श्रीराम॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, इस पवित्र कथा को कहते-सुनते दो पहर रात बीत गई। तब जहाँ श्रीरामजी सोहते थे, वहाँ देवर्षि नारदजी आये।

राम लषण सुखसींव विराजे * मार अपार निहारत लाजे
निरखि मानि मुनिहृदय सनाथा * उठे हर्षि प्रभु रघुकुलनाथा

सुखनिधान राम व लक्ष्मणजी विराजमान हैं, जिनको देखते ही अनेक कामदेव लजाते हैं। नारद मुनि को देखते ही हृदय में अपने को सनाथ मानकर प्रभु रघुकुलनाथ रामचन्द्र प्रसन्न होकर उठे।

शीश नाइ प्रभु आसन दीन्हा * आशिष पाइ हर्षि हित कीन्हा
मुनि नीके हरिरूप विलोका * यथा इन्दुलखि सुखलह कोका

स्वामी श्रीरामजी ने शीश नवाकर आसन दिया व नारद से आशीर्वाद पाकर, प्रसन्न होकर हित किया। नारद मुनि भली भाँति श्रीरामजी के रूप को देखकर वैसे ही प्रसन्न हुए, जैसे चन्द्रमा को देखकर कोकावेली खिल उठती है।

निशाचरों की वह प्रचण्ड सेना मानो प्रलय किया चाहती है। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, उस समय बड़े भयंकर वानर जिस भाँति दौड़े, उनको सुनो।



निहारि हर्ष कीश ऋक्ष फूलि फूलि दौड़ ये।
बजाइ कट्टकटाइ हूह एक बार कै धये॥
उपारि भूधरा अपार वृक्ष अश्मशृङ्गहू।
मरे निशाचरानि खण्ड मुण्ड रुण्ड भङ्गहू॥

निशाचरों को देखकर वानर व रीछ प्रसन्नता से फूल-फूलकर पहाड़ों के समान हो गये। उन्होंने निर्भय होकर एकबारगी मुँह से शब्द करते हुए कटकटाकर हूह किया। बहुत से पहाड़ों, वृक्षों, पत्थरों और पर्वतों के शिखरों को लेकर राक्षसों को मारने लगे, जिससे निशाचर मर गये, निशाचरों के बहुत से खण्ड हो गये और सिर टूट गये।

रथी हथी तुरङ्गली सवार उष्ट्र भारहू।
मनो विचित्र वाहिनी दई अनीप सारहू॥
हनै धरा धरै पिछारि मारि धारि सो लरै।
सुनै पुकारि जयति राम शत्रु से नहीं डरै॥

जैसे मृगों को सिंह मार डालता है, वैसे ही वानरों ने निशाचरों को मार डाला। उस सेना में हाथी, घोड़े, सवार व ऊँटों से सेना कैसी शोभती है, मानो कामदेव ने विचित्र सेना को खण्ड-खण्ड कर दिया है। उन वानरों के दल को निशाचर देखने लगे कि इनके मार को कौन सँभाल सकेगा? रामजी की जय हो, यह पुकार सुन पड़ती है। वे वानर शत्रुओं से नहीं डरते।

लँगूर भूर ते अकाश धौं उच्च भौंचक्यो।
गिरे पयोद पौन ते अपेट पेटलो कट्यो॥

आकाश में वानरों की उठी हुई पूँछें धूल की भाँति पड़ती हैं। वे ऊँचाई में दीवार के समान हैं। उनके वेग के पवन से जो मेघ गिरते हैं उनको अपेट से वे फाड़ डालते हैं।



शब्द करत अतिघोर, डौंगि पहुँच्यो दल भालु कपि।
आयुधकारि अतिजोर, परे लागि घन प्रलयसम॥

इस भाँति बड़ा भयंकर शब्द करती हुई रीछों व वानरों की सेना आकर पहुँची व बड़े जोर से प्रलय के मेघों से जैसे वर्षा होती है, वैसे ही अस्त्रों की वर्षा होने लगी।

सज्जग होन कपि भालु न पाये * अतिशयनिकट तमीचर आये।
असितनिशाचरअतिअँधियारी * तापर कै शत्रु कै मारी॥

वानर व रीछ होशियार न होने पाये थे कि इतने में राक्षस बहुत ही समीप आ गये। एक तो काले निशाचर, दूसरे बड़ा अन्धकार, उस पर शत्रु की मार।

सूझहिं कपिन न हाथ पसारे * जहँ तहँ एकनि एक पुकारे
सम्मुख कोउ न करत लराई * कपिन मारि रणभूमि सुवाई

वानरों को फैलाया हुआ अपना हाथ भी नहीं सूझ पड़ता। जहाँ-तहाँ एक दूसरे को पुकारते हैं। सामने कोई लड़ाई नहीं करता। राक्षस ने वानरों को मारकर युद्ध की भूमि में सुला दिया।

गे अनेक भजि सिन्धुसमीपा * सेनविकल लखि रघुकुलदीपा
साजि शारंग लजा इक बाना * भा प्रकाश दिगतरणिसमाना

बहुत से वानर भागकर समुद्र के निकट चले गये। रघुकुलदीपक श्रीरामजी ने सेना को व्याकुल देखकर, शार्ङ्ग धनुष तानकर उस पर चढ़ाकर एक बाण छोड़ा तो सूर्योदय के समान दिशाओं में प्रकाश हो गया।

लखि तम विगत भालु कपि हर्षे * कटकटाइ धाये रिपु धर्षे
भिरे एकसन एक प्रचारी * लागे करन कठिन हठ मारी

अन्धकार का विनाश देखकर रीछ व वानर प्रसन्न हुए। वे कटकटाकर दौड़े और शत्रुओं को मारने लगे। एक से एक ललकारकर भिड़ गये और बड़ा भारी युद्ध करने लगे।



शीश शिला तरुकरनधरि, काँखन भरि भरि धूरि।
गर्जे भालु बलीबदन, धाय धाय नभ दूरि॥

शीश पर शिला, हाथों में वृक्ष लेकर और बगलों में धूल भर-भरकर रीछ व वानर आकाश में दूर जाकर गर्जने लगे।

डारहिं गिरितरुनिशिचरशीशा * दधिघटसम फोरहिं भट कीशा
चढ़हिं अनेक कन्ध पर जाई * काटहिं कान दृगनि रज नाई

वीर वानर निशाचरों के सिरों पर पहाड़ व वृक्ष डालते हैं और उनको दही के घड़ों के समान फोड़ डालते हैं। अनेक वानर राक्षसों के कन्धों पर जाकर चढ़ते हैं और उनकी आँखों में धूल डालकर उनके कान काट लेते हैं—

तोरहिं शूल चाप नाराचा * अरिदल अस्त्र न एकौ बाचा
शस्त्रहीन रिपु सेन पराई * देखि पवनसुत हँसेउ ठठाई

और शूल, धनुष व बाणों को तोड़ डालते हैं। इस भाँति शत्रु की सेना में एक भी शस्त्र नहीं बचा। तब शस्त्रों से रहित होकर शत्रु की सेना भागी। यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्जी ठठाकर हँसे—

बैठि अवनि अति लूम फुलाई * अति उतङ्ग दीरघ चौड़ाई
तर्कित खसे निशाचर कैसे * पक्षहीन नभते खग जैसे

व बड़ी ऊँची लम्बी-चौड़ी पूँछ को बहुत फुलाकर पृथ्वी में बैठ गये। पूँछ के बीच में पड़ने से कूदने के कारण निशाचर किस भाँति गिर पड़े, जैसे आकाश से बिना पंख के पक्षी गिरें।

गिरतकीशगहिचरणफिरावहिं * पटकि भूमि गाड़हिं बिहँसावहिं
तुम्बरिसमअगणितशिरतोरत * अगणित रुण्ड सिन्धुमहँ बोरत

गिरते ही उनके पैरों को वानर घुमाते, पटककर पृथ्वी में गाड़ देते और दूसरों को हँसाते हैं। तोंबी के समान अनगिनती शीशों को तोड़ते और असंख्य रुण्डों को समुद्र में डुबा देते हैं।



कोटि बयालिस तमीचर, नारान्तक कर घात।
रामकृपाबल हति खलनि, कपिन बिताई रात॥

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा के बल से नारान्तक की सेना के बयालीस करोड़ दुष्ट राक्षसों को मारकर वानरों ने वह रात बिताई।

प्रभु तुणीरमहँ हरिशर जबहीं * प्रविशे कीन्ह उदय रवि तबहीं
देखि कटक निज परम बिहाला * नारान्तक भट कोटि कराला

जब स्वामी श्रीरामजी का बाण तरकस में पैठा, तब सूर्य निकल आये। अपनी सेना में करोड़ों भयंकर योद्धाओं को बहुत व्याकुल देखकर नारान्तक—

करि बहु शपथ लिये सँग बीरा * बर्षत शक्ति उपलगण तीरा
शर अस्तम्भन बिपुल पँवारे * भये अचल कपि टरहिं न टारे

बहुत सौगन्ध खाकर साथ में वीरों को लिये शक्ति, पत्थरों के ढेर और बाणों की वर्षा करने लगा। उसने बहुत से स्तम्भन शस्त्रों को चलाया, जिससे वानर अचल हो गये, टालने से नहीं टलते।

लै लै पाश निशाचर धाई * बाँधत जिमि चुंगलि शुक पाई
व्याध पींजरा सम बहु जाना * भरे जान प्रति अयुत प्रमाना

फँसरियों को ले-लेकर निशाचर दौड़े व वानरों को बाँधने लगे, जैसे [1]चोंगली पर तोतों को पाकर बहेलिया बाँध लेता है। राक्षसों ने वानरों को बाँधकर बहुत से ज़ानों (ठिकानों) में बन्द कर दिया, जैसे बहेलिया पखेरुओं को पींजड़े में बन्द कर देता है। एक-एक जगह दस-दस हजार वानर भरे गये।

जे कपि लखै बिपुल बल बङ्का * ते मूर्च्छित फेंकै गढ़ लङ्का
रावण देखि तनय की करणी * बन्दीजन जिमि भुजबल बरणी

१. बहेलिया तोते को पकड़ने के लिए लकड़ियों को गाड़कर उन पर एक चोंगली पतली लकड़ी में पहना-कर रखते और उसके नीचे अन्न के दाने डालते हैं। उनको खाने के लिए तोता चोंगली पर बैठते ही चोंगली के घूमने से नीचे लटक जाता है, परन्तु उसे छोड़ता नहीं।

जिन वानरों को वह बड़े बाँके बलवान् देखता है, उन मूर्च्छित वानरों को लङ्कागढ़ में फेंक देता है। रावण ने पुत्र की करनी देखकर भाटों की भाँति उसकी भुजाओं के बल का वर्णन किया।



हरिइच्छा जानै न कस, सुतहिं सराहत मूढ़।
कालविवशमतिसम्भ्रमित, सुनहु ऋषय बुधिगूढ़॥

हे गूढ़ बुद्धिवाले ऋषिजी, सुनिए। रावण हरि की इच्छा को नहीं जानता है कि कैसी है। मूर्ख व काल के वश होने से जिसकी बुद्धि चकित हो गई है, वह रावण पुत्र की सराहना करता है।

अंगद हनूमान जब जागे * नारान्तक सन जूझन लागे
क्षण इक कीश न पायउ लरई * पुनि शर हति मूर्च्छावश करई

जब अंगद व हनुमान्जी जागे, तब नारान्तक से युद्ध करने लगे। एक क्षणभर भी वानर नहीं लड़ने पाये कि नारान्तक ने बाण मारकर फिर उन्हें मूर्च्छा के वश कर दिया।

याम युगल तेहिकर वरदाना * राखेउ तेहि कारण भगवाना
रिपुहि खेलावत रघुकुलकेतू * पालक बुधवाणी श्रुतिसेतू

दो पहर तक बलवान् होने का नारान्तक को वरदान था। इसी कारण तब तक भगवान् ने उसको रक्खा। रघुवंशकेतु श्रीरामजी शत्रु को खिलाते हैं, जो कि बुध (ब्रह्मादिक) की वाणी व वेद की मर्यादा के पालक हैं।

सो युग याम गये जब बीती * तब रघुवीर सजी जय रीती
हाँक देइ कपि भालु जगाये * भये विगत मूर्च्छा सब धाये

जब वे दो पहर बीत गये, तब श्रीरामजी ने जीत की रीति को सजा, हाँक देकर वानरों व रीछों को जगाया। जब मूर्च्छा जाती रही, तब सब दौड़े।

हनूमान अंगद जब जागे * रामलषणचरणन अनुरागे
प्रभुपद शीश रहे धरि कीशा * तब हँसि बोले श्रीजगदीशा

जब हनुमान् व अंगदजी जागे, तब उन्होंने श्रीराम व लक्ष्मणजी के चरणों में प्रेम से प्रणाम किया और स्वामी श्रीरामजी के चरणों में शीश धरे रहे। तब हँसकर श्रीरघुनाथजी बोले—



विधिवाचा लगि आज, तात तुमहिं मूर्च्छा भई।
पुनि प्रभु कह रघुराज, अबश्रमसपनेहु अनतनहिं॥

भैया, आज ब्रह्मा के वरदान के कारण तुम लोग मूर्च्छित हो गये; अब अन्यत्र तुमको स्वप्न में भी परिश्रम न होगा।

तुमहिं सुमिरि अङ्गद हनुमाना * जितिहैं जगत मनुज रण नाना
अस वर जबहिं रमापति भाखा * सुनत गिरा हर्षे मृगशाखा

हे अंगद व हनुमान्, तुमको सुमिरकर संसार में मनुष्य अनेक भाँति की लड़ाइयाँ में जीतेंगे।' जब लक्ष्मीपति श्रीरामजी ने ऐसा वरदान कह दिया, तब यह वचन सुनते ही वानर प्रसन्न हुए।

कहेउ बहोरि वचन रघुवीरा * सुनु अंगद हनुमत रणधीरा
तात तुरत तुम उभय सिधावहु * लंक गये कपि तिनहिं छुटावहु

फिर रामजी ने कहा—हे रण में निपुण अंगद व हनुमान्, सुनो। हे तात, तुम दोनों जल्दी जाओ, जो वानर लंका को गये हैं, उनको छुड़ा लाओ।

सुनि दोउ भट गहिशैलविशाला * सुमिरि कोशलाधीश कृपाला
सपदि कीश गढ़ पर चढ़ि गये * देखि लंक महँ खरभर भये

यह सुनकर बड़े भारी पर्वतों को लेकर अयोध्यानाथ कृपालु श्रीरामजी को सुमिरकर शीघ्र ही वानर गढ़ पर चढ़ गये। इनको देखकर लंका में खलभली पड़ गई।

सकल कपिन कै मूर्च्छा बीती * तोरि पाश भजि राम सप्रीती
वायुसूनु युवराज निहारी * हर्षे कहि जय जयति खरारी

सब वानरों की मूर्च्छा जाती रही। उन्होंने प्रेमसमेत श्रीरामजी को भजकर फँसरियों को तोड़ डाला व हनुमान् और युवराज अंगदजी को देखकर 'खरारि रामजी की जय हो' यह कहकर प्रसन्न हुए।


मेषवरूथहिं पाइ जिमि, वृकगण करहिं सँहार।
तिमि मर्दहिं दनुजन समुद, कीश भालु बरियार॥

जैसे भेड़िये भेड़ों को पाकर उन्हें मार डालते हैं, वैसे ही राक्षसों के समूह को बलवान् वानर व रीछ हर्षसमेत नष्ट करते हैं।

याम एक वासर अवशेखा * कह अंगद कीशन तन देखा
चलिय तात अब जहँ सुरभूपा * देखिय पदपाथोज अनूपा

जब एक पहर दिन बाकी रह गया, तब वानरों की ओर देखकर अंगदजी कहने लगे—हे तात, अब जहाँ देवताओं के स्वामी रघुनाथजी हैं, वहाँ चलिए और उनके अनुपम पदकमलों के दर्शन कीजिए।

अंगदवचन पवनसुत भाये * सपदि सहित दल प्रभुपहँ आये
निशिचर कोटि नरान्तक सङ्गा * करत रहे बहु विधि रणरङ्गा

अंगद के वचन पवनपुत्र हनुमानजी को अच्छे लगे। वह सेनासमेत शीघ्र ही स्वामी के पास आये। उधर नारान्तक के साथी करोड़ों निशाचर अनेक भाँति से युद्ध कर रहे थे।

माया करि निजगात बचावहिं * जहँ तहँ खल रावण यश गावहिं
अदितिनंदलखि तिनकर माया * सभय भये जाना रघुराया

माया कर वे अपने अङ्गों को बचाते हैं और जहाँ-तहाँ दुष्ट रावण के यश को गाते हैं। रघुनाथजी ने जाना कि अदिति के पुत्र देवता लोग उनकी माया को देखकर भयभीत हो रहे हैं।

दीन नाथ अनुजहिं अनुशासन * उठे नमितगहिविशिखशरासन
अहिपति कहेउ तिष्ठ क्षणएका * तैं कीन्हें रण खेल अनेका

तब श्रीरामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आज्ञा दी। वह प्रणाम करके धनुष-बाण हाथ में लेकर उठे। लक्ष्मणजी ने नारान्तक से कहा—तू एक क्षण भर खड़ा रह। तूने अब तक युद्ध में अनेक खेल किये हैं।

छन्द

तैं कीन्ह खेल अनेक विधि अब तिष्ठ खल रण भूथला।
इमिकहि अहीशचढ़ाइ धनुशर करन निशिचरदलमला॥
निजअनी निरखि निदान हरिअरिसुवन धावा रिसभरा।
डारत अनेक नराच प्रभु पर शिला तरुवर भूधरा॥

अरे दुष्ट! तूने अनेक भाँति के खेल किये हैं; अब रणभूमि में खड़ा हो। ऐसा कहकर लक्ष्मणजी धनुष को चढ़ाकर बाणों की वर्षा से निशाचरों की सेना का नाश करने लगे। अपनी सेना का नाश देखकर राम का वैरी रावण का पुत्र नारान्तक क्रोध से भरा हुआ दौड़ा और अनेक बाण, शिला, वृक्ष व पर्वतों को स्वामी लक्ष्मणजी के ऊपर बरसाने लगा।

रघुबीरअनुज प्रवीण खलबलदलन श्रुति यश गावहीं।
तरु उपल गिरि अरि तीर उपरहिं बाण लषण चलावहीं॥
रिपु शस्त्र अस्त्र अनेक आयुध कनक करि करि डारहीं।
सुरगण प्रफुल्लित सुमन झरि करिजयतिलषण पुकारहीं॥

रघुनाथजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी खल-दल का दलन करने में प्रवीण हैं और उनके यश को वेद गाते हैं। लक्ष्मणजी जब वृक्षों, पत्थरों, पहाड़ों व शत्रु के बाणों के ऊपर बाण चलाते हैं, तब शत्रु के अनेक अस्त्र-शस्त्रों को खण्ड-खण्ड कर डालते हैं। यह देख प्रसन्न होकर देवताओं के गण फूलों की वर्षा करते और लक्ष्मणजी की जय हो, ऐसा पुकारते हैं



मायापति के अनुजसन, माया करत अयान।
लगत न एको जान जिय, तबखल निकट तुलान॥

मायापति श्रीरामजी के छोटे भाई लक्ष्मण से वह अज्ञानी नारान्तक माया करता है; परन्तु एक भी माया सफल होती न जानकर वह दुष्ट पास पहुँचा।

हना लषण उर पविसम शायक * लगत गिरे रणमहि अहिनायक
पुनि खलदल भा प्रबलअपारा * भक्षण लाग भालु कपि धारा

उसने वज्र के समान एक बाण लक्ष्मणजी के हृदय में मारा, उसके लगते ही लक्ष्मणजी युद्ध-भूमि में गिर पड़े। तब फिर उस दुष्ट की अनगिनती सेना बली हो गई और सब रीछों व वानरों की सेना को खाने लगी।

चले पराय कीश भयभीता * अब न बचब करि कालप्रतीता
निशिचर धारि भालु कपि बेखा * लागे खान कपिन अस देखा

डरकर वानर भाग चले। 'अब नहीं बचेंगे' ऐसी काल की प्रतीति (विश्वास) उन्होंने कर ली। राक्षस लोग रीछों व वानरों का वेष धारण कर वानरों को खाने लगे, ऐसा वानरों ने देखा।

कपि डर कीशभालु डर रिच्छा * आपुआपु भइ मिलन अनिच्छा
कोइ न काहु निकट नियराई * जो जेहि पाव ताहि तेहि खाई

तब वानरों को वानर व रीछों को रीछ डरने लगे; इससे अपनी जातिवाले को भी मिलने में आप ही आप इच्छा न रही। कोई किसी के पास नहीं नगिचाता; जो जिसको पाता है, वह उसको खा जाता है।

पुनि शठ साधि विभीषण रूपा * गयो अंगद हनुमत कपिभूपा
काहु न यह माया कछु जानी * कपटविलाप विभीषण ठानी

फिर वह शठ विभीषण का रूप रखकर अङ्गद, हनुमान् व सुग्रीवजी के पास गया। किसी ने कुछ इस माया को नहीं जाना कि कपट से बने हुए विभीषण विलाप करते हैं।


तेहि अवसर जागे लषण, देखा सेन विनाश।
नारान्तक छल पवनसुत, समुझत उड़ा अकाश॥

उसी समय लक्ष्मण जागे तो सेना का विनाश देखा। पवनपुत्र हनुमानजी नारान्तक का छल समझकर आकाश को उड़े—

गर्जेउ जाय भयङ्कर भारी * फटेउ हृदय सुनि निशिचरझारी
मायाहत शर लषन पवाँरा * उघरे कपटकपाट अपारा

और आकाश में जाकर बड़े जोर से गरजे। उस शब्द को सुनकर सब निशाचरों के हृदय फट गये। लक्ष्मणजी ने माया के हरनेवाले बाण को छोड़ा। तब बहुत-से कपट के किवाड़ खुल गये अर्थात् माया का कपट प्रकट हो गया।

नारान्तक के माया बीती * गयउ यज्ञशाला अति प्रीती
खोजिसि सकल समग्री ताकी * कीन्ह अरम्भ विजय निजताकी

नारान्तक की माया जाती रही और वह बड़े प्रेम से यज्ञशाला को चला गया। उसने यज्ञ की सब सामग्री ढूँढ़ी और अपनी जीत के लिए यज्ञ करने लगा।

यज्ञ आसुरी तेहिं तब ठाना * पशुसमूह बलि कारण आना
भये निशामुख श्रमवश सैना * फिरे सुमिरि सब राजिवनैना

तब उसने आसुरी (तामसी) यज्ञ का अनुष्ठान किया और बलि के लिए बहुत से पशु ले आया। सन्ध्या होने पर थकावट के वश सब वानरों की सेना कमल-लोचन श्रीरामजी को सुमिरकर लौट पड़ी।

तुरत अहीश रामपहँ आये * सहित अनी प्रभुपद शिरनाये
कृपाअयन निरखे मृगशाखा * प्रभु श्रम छीन दीन अभिलाखा

लक्ष्मणजी तुरन्त श्रीरामजी के पास आये व सेना-समेत उन्होंने स्वामी रघुनाथजी के चरणों में शीश नवाया। दीन के ऊपर दया करनेवाले कृपानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी कृपादृष्टि से वानरों की थकावट दूर कर दी।



टिकहु थलनि सब सन कहा, सुखसागर रघुनाथ।
पाय सुआयसु भालु कपि, चले सुमिरि श्रीनाथ॥

सुख के सागर श्रीरामजी ने सबसे कहा कि अपने स्थानों पर जाकर विश्राम करो। इस उत्तम आज्ञा को पाकर रीछ व वानर लक्ष्मी के पति रघुनाथजी को सुमिरकर चले।

तब रघुनाथ अनुज उर लावा * निज आसन समीप बैठावा
मघवासुत सुत अरु हनुमाना * इनसम भाग्यवन्त नहिं आना

तब श्रीरामजी ने छोटे भाई को हृदय में लगाया व अपने आसन के पास ही बिठाया। इन्द्र के पुत्र वालि के पुत्र अंगद व हनुमान्जी के बराबर और कोई भाग्यवान् नहीं है।

अमलाम्बुज पदगहि निजपानी * परशे सबनि सनेह भवानी
जाम्बवन्त लङ्केश हरीशा * प्रभुसमीप सब मुदित मुनीशा

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वती, निर्मल कमल-सरीखे चरणों को अपने हाथों में लेकर सबने स्नेह के साथ उनका स्पर्श किया। हे मुनीश, जाम्बवान्, लंकेश (विभीषण) व वानरों के स्वामी सुग्रीव, ये सब प्रसन्न होकर प्रभु श्रीरामजी के पास बैठे।

अनुज सखा नारान्तक करणी * युद्धप्रबलता बहुविधि बरणी
शिवप्रताप तेहि अमित प्रतापा * मरण न दीन्हें बहु सन्तापा

लक्ष्मण व मित्र विभीषण ने नारान्तक की करनी व युद्ध की प्रबलता को अनेक भाँति से वर्णन किया और यह कहा कि शिवजी के प्रताप से उसका बड़ा भारी प्रताप है। इसी से वह नहीं मरा और उसने वानरों को बहुत दुःख दिये।

सुने वचन रघुपति मुसकाने * अतिसनेह हरचरित बखाने

सुनहु सकल हम शम्भु न आना * जिनहिं भेद ते वश अज्ञाना

ये वचन सुनकर रघुनाथजी मुसकराये व बड़े स्नेह से उन्होंने शिवजी के चरित्रों को सुनाया व कहा कि सब लोग सुनो, हम और शिवजी दूसरे नहीं हैं, अर्थात् एक ही हैं। इसलिए जो हम दोनों में भेद मानते हैं, वे अज्ञान के वश हैं।



जे सुमिरहिं शिवसह उमा, ते जानहु मम प्रीय।
शङ्करभजहिं सोमोहिंभजहिं, मोहिंसोशम्भुअतीय॥

जो पार्वती-समेत शिवजी को सुमिरते हैं, वे मुझे प्रिय हैं, ऐसा जानो। जो शिवजी को भजते हैं, वे मुझको भजते हैं। मैं तो शिवजी को अपने से अधिक मानता हूँ।

चारि पदारथ करतल ताके * बसहिं महेश उमा उर जाके
जो मम प्रण शिव सदा निबाहा * सो जयदेव न संशय आहा

श्रीपार्वतीजी व शिवजी जिसके हृदय में बसते हैं, उसके हाथ में चारों पदार्थ हैं। जिन शिवजी ने सदैव मेरे प्रण को निबाहा है, वे ही मुझे विजय देंगे, इसमें सन्देह नहीं।

सुख कलत्र जय विजय विभूती * शङ्कर सुमिरत होय अकूती
भक्ति मोरि शङ्कर आधीना * जलाधीन जिमि जीवन मीना

सुख, स्त्री, पुत्र आदि, जय-विजय और ऐश्वर्य, यह सब शिवजी के सुमिरते ही बहुत अधिक होते हैं। मेरी भक्ति शिवजी के वश में है, जैसे मछली का जीना पानी के अधीन होता है।

कह आश्चर्य नरान्तक एहा * मोपर गिरिपति परम सनेहा
सुमिरहु सदा विश्व यकनाथा * कपट त्यागि सब नावहु माथा

उन शिव का सेवक नारान्तक जो ऐसा है, तो इसमें आश्चर्य क्या है? उसे ऐसा ही प्रतापी होना चाहिए। शिवजी का मुझ पर भी बड़ा प्रेम है। तुम लोग भी सदैव संसार के एकमात्र स्वामी शिवजी को स्मरण करो व छल छोड़कर सब लोग उनको माथा नवाओ।

होइहि विजय धीर मन धरहू * वेगि उपाय पाव सुख करहू
शम्भुउपासन कर मम दासा * तात हृदय धरि दृढ़ विश्वासा

जीत होगी; मन में धीरज धरो। जल्दी उपाय मिलेगा, खुशी मनाओ। हे तात, शिवजी की उपासना करनेवाला मेरा दास है, ऐसा दृढ़ विश्वास हृदय में धरो।



जो नर चाहत भक्ति मम, सो छल कपट दुराइ।
शिवासमेत गिरीशपद, निशिदिन रहु मनलाइ॥

जो मनुष्य मेरी भक्ति को चाहता हो, वह छलकपट छोड़कर पार्वती-समेत शिवजी के चरणों में दिन-रात मन लगाये रहे।

मन क्रम वचन शम्भुपद आसा * करहिं ताहि उर सब गुण बासा

निर्भय कर जो हरपदनेहू * तापर रमासहित मम गेहू

जिसके मन, कर्म व वचन से शिवजी के चरणों की आशा होती है, उसके हृदय में सब गुण निवास करते हैं। जो निडर होकर शिवजी के चरणों में स्नेह करता है, उसके हृदय में लक्ष्मीसमेत मैं रहता हूँ।

भववारिधि लाँघहिं बिनु खेवहिं * यह विचारि बुधजन भवसेवहिं
भव भंजन यह हित उपदेशा * अनुजहिं सखहिं बुझाव रमेशा

बिना खेवे ही के वे संसारसागर को नाँघ जाते हैं, यह विचारकर विद्वान् लोग शिवजी की सेवा करते हैं। बार-बार जन्ममरणरूप संसार का नाश होने के लिए लक्ष्मीपति रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मण व मित्र विभीषण को यह उपदेश दिया।

शुचवाणी सुनि अतिसुख पावा * अहिपति रामचरण शिरनावा
अंगद हनूमान नल नीला * कपिपति अरु ऋक्षेश सुशीला

इस सत्य वचन को सुनकर लक्ष्मणजी ने बड़ा सुख पाया और श्रीरामजी के चरणों में माथा नवाया। अंगद, हनुमान्, नल, नील, वानरों के राजा सुग्रीव, सुन्दर शीलवाले जाम्बवान् और

सहित विभीषण ये जन साता * सुनि श्रीमुख हरयश विख्याता
रामहिं शिवहिं एक करि जाने * भय तजि नाम जपत हर्षाने

विभीषण, ये सातों जने शिवजी के प्रसिद्ध यश को रामजी के श्रीमुख से सुनकर राम और शिवजी को एक ही जानकर, प्रसन्न हो, भव-भय छोड़कर रामनाम जपने लगे।



कहत सुनत इतिहास शुचि, निशि बीती युग याम।
खगपति आये देवऋषि, जित शोभित श्रीराम॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, इस पवित्र कथा को कहते-सुनते दो पहर रात बीत गई। तब जहाँ श्रीरामजी सोहते थे, वहाँ देवर्षि नारदजी आये।

राम लखण सुखसींव विराजे * मार अपार निहारत लाजे
निरखि मानि मुनिहृदय सनाथा * उठे हर्षि प्रभु रघुकुलनाथा

सुखनिधान राम व लक्ष्मणजी विराजमान हैं, जिनको देखते ही अनेक कामदेव लजाते हैं। नारद मुनि को देखते ही हृदय में अपने को सनाथ मानकर प्रभु रघुकुलनाथ रामचन्द्र प्रसन्न होकर उठे।

शीश नाइ प्रभु आसन दीन्हा * आशिष पाइ हर्षि हित कीन्हा
मुनि नीके हरिरूप विलोका * यथा इन्दुलखि सुखलह कोका

स्वामी श्रीरामजी ने शीश नवाकर आसन दिया व नारद से आशीर्वाद पाकर, प्रसन्न होकर हित किया। नारद मुनि भली भाँति श्रीरामजी के रूप को देखकर वैसे ही प्रसन्न हुए, जैसे चन्द्रमा को देखकर कोकाबेली खिल उठती है।

पुलकिगात तब कह ऋषिराजा * सुनहु नाथ आयहुँ जेहि काजा
चतुरानन पठवा मोहिं स्वामी * यदपि कृपानिधि अन्तर्यामी

मुनिराज नारदजी के अंग पुलकित हो उठे। वह कहने लगे—हे नाथ, जिस काम के लिए आया हूँ, उसको सुनिए। हे स्वामी, यद्यपि कृपानिधान आप अन्तर्यामी हैं, तो भी मुझे ब्रह्मा ने आपके पास भेजा है।

सदा अनाथ नाथ भगवाना * विनय विरंचि करिय परमाना
जब लगि होन प्रभात न पावहि * तबलगि हरि हरिसुतलै आवहि

हे भगवन्, आप सदा अनाथों के नाथ हैं, इससे ब्रह्मा के वचन मानिए, अर्थात् सवेरा होने के पहले ही वानर महावीरजी सुग्रीव के पुत्र दधिबल को ले आवें।



जपत निरन्तर नाम तव, सो जानहु भगवान।
विधिवरहितइत आनिये, तेहि कहँ कृपानिधान॥

हे भगवन्, वह सदा आपके नाम को जपता है, सो जानिए। हे कृपानिधान, ब्रह्मा के वरदान के कारण उसको यहाँ लाइए; क्योंकि—

नारान्तकवध है तेहि हाथा * दधिबल नाम भक्त तव नाथा
नाथ बहुतयहि खलहिं खिलावा * रणविलोकि देवन दुख पावा

उसी के हाथ से नारान्तक मारा जायगा। हे नाथ, वह दधिबल आपका भक्त है। हे नाथ, आपने इस दुष्ट को बहुत ही खेलाया है। इसके घोर युद्ध को देखकर देवता दुखी हो रहे हैं।

अब रघुबीर करहु सोइ बाता * बिनु प्रयास रिपु मरै प्रभाता
तेहि सन तुमहिं न सोह लराई * दधिबल सम्मुख करहु बुलाई

हे रामजी, अब वही कीजिए, जिससे सवेरे बिना परिश्रम के शत्रु मर जाय। उससे आपकी लड़ाई नहीं सोहती; इससे दधिबल को बुलाकर उसके सामने खड़ा कीजिए।

सविनय नाइ शीश वर भाखी * गवने मुनि प्रभु छवि उर राखी
नारद गये जबहिं विधिलोका * वायुतनयतन राम विलोका

उत्तम वचन कहनेवाले नारद मुनि विनय-समेत शीश नवाकर स्वामी श्रीरामजी की शोभा को हृदय में रखकर चले। जब नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये, तब श्रीरामजी ने पवनकुमार हनुमान्जी की ओर देखा।

तात तुरत तुम गमनहु तहँवाँ * वारिधि महँ धवलागिरि जहँवाँ
तहँ दधिबल रह ध्यान लगाये * बहुत दिवस चलि गये सुभाये

और कहा—हे तात, तुम जल्दी वहाँ जाओ जहाँ समुद्र के बीच में धवलागिरि है। वहाँ दधिबल मेरा ध्यान लगाये रहता है। उसको उत्तम भाव से तप करते बहुत दिन बीत गये।



अहै तपोबल तेजसी, तात तासु ढिग जाइ।
मन प्रसन्न करि चतुरई, आनहु वेगि बुलाइ॥

हे तात, तपस्या के बल से वह तेजस्वी है। तुम उसके पास जाकर मन प्रसन्न कर व चतुराई कर उसे जल्दी बुला लाओ।

पवनकुमार पाइ अनुशासन * चले वन्दि पद हर्षि उदास न
वेगवन्त धावा कपि कैसे * वर नराच दधिसुत ते जैसे

पवनकुमार हनुमान्‌जी यह आज्ञा पाकर प्रभु के चरणों में प्रणाम कर, प्रसन्न होकर उत्साह से चले। उनके मन में उदासी नहीं थी। वेग से हनुमान्‌जी किस भाँति दौड़े, जैसे धनुष से छूटा हुआ उत्तम बाण चलता है।

लोक अर्ध घटिका तेहि ठामा * पहुँचे वायुपुत्र बलधामा
देखि तरणिसम तासु प्रकासा * ठाढ़ भयउ कपि मन्दिर पासा

पवन के पुत्र बलनिधान हनुमान्‌जी डेढ़ घड़ी में उस ठिकाने पर पहुँचे। सूय के समान दधिबल के तेज को देखकर दधिबल के घर के पास हनुमान्‌जी खड़े हो गये।

दण्डयुगलकपितहँस्थित रहेऊ * हिय महँ राम राम अस कहेऊ
उत रण होई होत प्रभाता * इत इनकर चित हरिपदराता

दो दण्ड तक हनुमान्‌जी वहाँ खड़े रहे और मन में राम-राम ऐसा कहते रहे। उधर प्रभात होते ही युद्ध होगा, और इधर दधिबल का मन श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में लगा है।

क्षण इक कपि मन कीन विचारा * प्रभुपहँ चलिये कवन प्रकारा
जो गृह सहित चलहुँ लै एही * नहिं अस आयसु भक्तसनेही

एक क्षण भर हनुमान्‌जी ने मन में विचार किया कि किस भाँति स्वामी श्रीरामजी के पास चलूँ। जो घर-समेत इसको ले चलूँ तो भक्त के सनेही श्रीरामजी की ऐसी आज्ञा नहीं है।

बुधजन शीश शिरोरतन, अति लजात मुनिराय।
ताहि जगावन हेत तब, कीन्हे अमित उपाय॥

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे मुनिराज, ज्ञानीजनों के शिरोमणि महावीरजी बहुत लजाते हैं। उन्होंने उस समय उसे जगाने के लिए बहुत-से उपाय किये।

अचल ध्यान कपितासु प्रमाना * तजि प्रवीणता भजि भगवाना
रामचरण चित कपिवर दयऊ * दण्ड एक औरौ चलि गयऊ

उसके ध्यान को महावीरजी ने अचल जाना, इसलिए चतुरता छोड़ भगवान को भजने लगे। वानरों में उत्तम महावीरजी ने श्रीरामजी के चरणों में चित्त लगाया। तब तक एक और दण्ड बीत गया।

विधिप्रेरित दधिबल लघुशंका * करन उठेउ देखा भट बंका
जय श्रीराम वायुसुत बोला * सुनिदधिबलनिज लोचनखोला

तब दैव की इच्छा से दधिबल पेशाब करने के लिए उठा। उसने बड़े भारी योद्धा को देखा। पवन-पुत्र हनुमान् बोले—श्रीरामजी की जय हो। यह सुनकर दधिबल ने अपनी आँखों को खोला—

बूझि हरिहिं कीशहिं उरलाई * कही परस्पर दोउ कुशलाई
पुनि हनुमान कहेउ सुनु भ्राता * चलहु विलोकन त्रिभुवनत्राता

और पूछकर हनुमान्‌जी को हृदय में लगाकर दोनों ने आपस में कुशल कहा। फिर हनुमान्‌जी ने कहा—भाई, सुनो, त्रिलोक के रक्षक रघुनायकजी को देखने के लिए चलो।

सानुज राम सुखद पदकंजा * जिन मकरन्द शिलाअघगंजा
जेहिं लागि तपकीन्हेउ बहुकाला * सो तुम पर अनुकूल कृपाला

चलकर छोटे भाई लक्ष्मण-समेत श्रीरामजी के सुखदायक चरणकमलों को देखो, जिन चरणकमलों की रज ने शिलारूपी अहल्या का पातक नष्ट कर दिया है, जिनके लिए तुमने बहुत समय तक तप किया है, वे दयालु श्रीरामजी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं।


धूरिजटीहृद मानसर, बसत हंस इव जोइ।
सादर तुमकहँ लेन लगि, पठवा मोहिं प्रभु सोइ॥

जो धूर्जटि (शिव) जी के हृदयरूपी मानसरोवर में हंस की तरह बसते हैं, उन्हीं श्रीरामजी ने आदरसमेत तुम्हें लाने के लिए मुझे भेजा है।

सुनि शुभ वचन सुकंठकुमारा * हरिपहँ हरिसँग तुरत सिधारा
आये नाथ निकट मृगशाखा * देखे पद जे हरहिय राखा

ये उत्तम वचन सुनकर सुग्रीव का पुत्र दधिबल जल्दी ही महावीरजी के साथ चला। स्वामी श्रीरामजी के समीप हनुमान् व दधिबल वानर आये। उन्होंने रामचन्द्रजी के उन चरणों को देखा, जिनको महादेवजी हृदय में धारण किये हैं।

रहेउ चरण गहि प्रीतिसमेता * दधिबल निरखेउ कृपानिकेता
सानुज हर्षि मिले सुखपुंजा * तासु पाणि गहि निजकरकंजा

दधिबल ने प्रेमसमेत रामजी के चरणों को पकड़ लिया। उसने दयानिधान श्रीरामजी को देखा। छोटे भाई लक्ष्मणसमेत सुख की राशि श्रीरामजी उससे मिले और अपने कमल-सरीखे हाथों से उसके हाथ पकड़कर—

बैठे ताहि निकट बैठावा * तेहि अवसर सुकंठ तहँ आवा
निरखि तनय कपिपति हर्षाना * मिलत प्रेम नहिं जाय बखाना

उसे पास ही बिठाया व आप भी बैठे। उसी समय वहाँ सुग्रीवजी आये। पुत्र को देखकर कपीश सुग्रीवजी प्रसन्न हुए। उनका प्रेमसमेत मिलना नहीं कहा जा सकता।

गइ मणि पन्नग जनु पुनि पाई * देही देह मीन जल जाई
सुख सुग्रीव लहेउ प्रभु भेंटे * अवगुण तीनि ताहि क्षण मेटे

खोई हुई मणि को जैसे साँप पा जाय, निकले हुए जीव को जैसे देह पावे और मीन जैसे जल में पहुँच जाय, वही हाल उन दोनों का हुआ। स्वामी श्रीरामजी के दधिबल को मिलने से सुग्रीव ने वैसा ही सुख पाया। उसी क्षण उनके तीनों ताप मिट गये।



दधिबल बालिकुमार, मिले परस्पर हर्षि हिय।
भयउ आइ भिनुसार, न्हाइ सबनि प्रभुपद गहे॥

मन में प्रसन्न होकर दधिबल व बालिकुमार अंगदजी आपस में मिले। जब सवेरा हुआ तो सबने नहाकर स्वामी श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम किया।

जहँ तहँ समर करन बनचारी * चले कहत जय लषण खरारी
उहाँ नरान्तक प्रात प्रबोधा * रथ चढ़ि चलेउ भयङ्कर योधा

लक्ष्मण व खरारि रघुनाथजी की जय कहते हुए वानर लड़ने के लिए जहाँ-तहाँ चले। वहाँ भयंकर योद्धा नारान्तक प्रातःकाल उठा और रथ पर चढ़कर चल दिया।

निशिचर हठी सुभट सँग ताके * आयुध अखिल भयानक बाँके
महि संग्राम निशाचर ठाढ़े * असित मेघसम अतिरिस बाढ़े

उसके साथ हठीले निशाचर योद्धा हैं, जो बाँके वीर और सब भयंकर हथियारों को लिये हैं। युद्ध की भूमि में काले मेघों के समान निशाचर खड़े हैं, जिनके बड़ा क्रोध बढ़ा है।

करि माया तेहि गात छिपावा * भयउ प्रकट जब प्रभुढिग आवा
दधिबल लखा सखा चलि आयउ * भुजा पसारि हर्षि उठि धायउ

जब नारान्तक ने माया कर अपना शरीर छिपा लिया और जब स्वामी श्रीरामजी के पास आया, तब प्रकट हुआ। दधिबल ने देखा, उसका मित्र नारान्तक चलकर आया है। तब वह भुजाओं को फैलाकर प्रसन्न हो उठ दौड़ा।

नारान्तकहु दीख गुरु भाई * मुदित मिले उर उभय अघाई
भेंटि सप्रेम बूझि कुशलाता * निज निज दशा कीन्ह विख्याता

नारान्तक ने भी गुरुभाई को देखा तो मन में प्रसन्न होकर दोनों अघाकर मिले। प्रेम-समेत मिलकर व कुशल पूछकर अपनी-अपनी दशा दोनों ने दोनों से कही।



हरिपतिपूत प्रवीण अति, सुनि तेहि मुख विख्यात।
लगे बुझावन मित्र कहँ, सुनहु वीयपति बात॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे वीयपति (पक्षियों के स्वामी) गरुड़जी, सुनिए। सुग्रीव का पुत्र दधिबल बड़ा चतुर था। वह नारान्तक के मुख से उसका हाल सुनकर मित्र को समझाने लगा—

वंशस्वभाव सत्य कवि कहहीं * फल पियूष विषबेलि न लहहीं
समुझहु तात विचारि निदाना * किये अनीति न जग कल्याना

कि वंश के स्वभाव के विषय में कवियों ने सत्य कहा है कि विष की बेलि में अमृत के फल नहीं लगते। हे तात, निदान अर्थात् लक्षण को विचारकर समझिए कि अनीति करने से संसार में भलाई नहीं होती।

पितुचरित्र समुझहु मन माहीं * रामविरोध कतहुँ जय नाहीं
तुम प्रवीण भा मतिभ्रम कैसे * कूप धसत विक बाट अनैसे

मन में पिता के चरित्र को समझिए। श्रीरामजी के वैर से कहीं जीत नहीं मिलती। तुम तो चतुर हो, तुम्हारी बुद्धि को यह भ्रम कैसे हो गया? जैसे भेड़ें कुमार्ग में जाकर एक के पीछे एक कुएँ में गिर पड़ती हैं, उसी भाँति तुम न होओ।

तुमहुँ कीन्ह दिन चारि लड़ाई * जानेउ भालु कीश बल भाई
तजि कुमंत्र सम्भव अज्ञाना * कहहु पाहि रघुवर भगवाना

हे भाई, तुमने भी चार दिन युद्ध किया है और रीछों व वानरों के बल को जान लिया है। बुरी सलाह से उपजे हुए अज्ञान को छोड़कर यह कहो कि हे भगवन्, रघुनाथजी, रक्षा कीजिए।

सफल करहु भव प्रभुपद परशी * करिहैं अभय तोहिं समदरशी
मानहु सीख मोरि सुखकारी * प्रणतपाल रघुवीर खरारी

स्वामी श्रीरामजी के चरणों को छूकर अपना जन्म सफल करो। तुमको समदर्शी रघुनाथजी अभय करेंगे। मेरी सुखकारक सीख को मानो। खरारि रघुनाथजी शरणागत के पालक हैं।



शारंगी शर तरणि सम, दशमुख वपु खग लेख।
जरतराखु यहि समय तब, करि विज्ञान विशेख॥

शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजी के बाण सूर्य के समान हैं और रावण का शरीर पक्षी के समान। इस समय तुम विशेष ज्ञान करके जलते हुए उसकी रक्षा करो।

सुनत वचन गुरुभ्राता केरा * नारान्तक भा क्रोध घनेरा
कहन लाग खल ताहि कुभाँती * सहज सभीत कीश दिनराती

गुरुभाई के वचन सुनते ही नारान्तक को बड़ा भारी क्रोध हुआ। वह दुष्ट उसको बुरे वचन कहने लगा—वानर दिन-रात स्वभाव ही से डरपोक होता है।

बालिहि हतेउ जौन तपधारी * भा अंगद तिन्ह आज्ञाकारी
दधिबल यह बानर कुलरीती * हमरे करहिं न अरिसन प्रीती

जिस तपस्वी ने वालि को मारा है, उसी का आज्ञाकारी वालि का बेटा अंगद हुआ। हे दधिबल, यह रीति वानरोंके वंश में है; लेकिन हमारे वंश में कोई शत्रु से मेल नहीं करता।

यह कहि प्रभु सन्मुख सो धावा * दधिबल लूम लपेटि टिकावा
नारान्तक कह रे शठ वानर * तव मन नहीं मोर डर कादर

यह कहकर वह स्वामी श्रीरामजी के सामने दौड़ा तो दधिबल ने पूँछ में लपेटकर उसे रोक लिया। नारान्तक ने कहा—हे शठ, कायर वानर! तेरे मन में मेरा डर नहीं है।

छाँड़हुँ मूढ़ समुझि गुरुभाई * कहि अस पेलि चला कठिनाई
तब सुकंठसुत क्रोधित भयऊ * सपदि जाय आगे गहि लयऊ

हे मूर्ख, गुरुभाई समझकर तुझे मैं छोड़ता हूँ, ऐसा कह कठिनता से धक्का देकर चल दिया। तब सुग्रीव के पुत्र दधिबल क्रोधित हुए और जल्द ही जाकर उन्होंने आगे उसे पकड़ लिया।



नारान्तक दधिबल भिरे, निरखि भालु अरुकीश।
लगे लरन सँग निशिचरन, कहि जय श्रीजगदीश॥

नारान्तक और दधिबल भिड़ गये। यह देखकर रीछ व वानर 'श्रीजगदीश रामजी की जय हो' कहकर निशाचरों के साथ लड़ने लगे।

छन्द

कपि शूर सँहारे शिलन मारि * बहुमर्दि करे सिकता पहारि
भट त्रिहवावलवासी जितेक * कपि मारि गिराये बच न एक

शिलाओं से मारकर वीर वानरों ने राक्षसों का संहार किया। बहुतों को पहाड़ों से मलकर बालू की नाइ कर दिया। जितने त्रिहवावलपुर के निवासी योद्धा हैं, उनको मारकर वानरों ने गिरा दिया। एक भी नहीं बचा।

रह एकाकी मनुजाद वीर * किय द्वन्द्वयुद्ध उरगाद धीर
दोउ लरत लहैं छवि एक भाँति * गिरि कज्जलकञ्चन उभयभाँति

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे साँपों के खानेवाले ज्ञानी गरुड़जी, नारान्तक राक्षस जब अकेला रह गया, तब वह दधिबल से द्वन्द्व युद्ध करने लगा। दोनों लड़ते में एक ही प्रकार की शोभा को पाते थे। जान पड़ता था, मानो कज्जलगिरि व सुमेरु पहाड़ दोनों अच्छी तरह लड़ते हैं।

युग घटिका ऊपर एक याम * दोउ भिरे समर बल योगधाम
पुनि भा अलक्ष सो करत युद्ध * बलवन्त उभय अमगतसक्रुद्ध

दो घड़ी ऊपर एक पहर, अर्थात् डेढ़ पहर तक दोनों बलवान भिड़कर [illegible]

रहे। फिर युद्ध करता हुआ नारान्तक अन्तर्द्धान हो गया। दोनों बलवानों में से कोई नहीं थकता। दोनों बहुत क्रोधित थे।

कह षट प्रकार श्रुति युद्धरीति * सुख मानेउ सुर देखतसप्रीति
लखि पुत्र इकाकी पुलकिगात * कह बालिअनुज अतिहर्षबात

वेद छः प्रकार की युद्ध की रीति कहते हैं। दोनों वीर छहों प्रकार से युद्ध कर रहे थे। उसको प्रीतिसमेत देखते हुए देवताओं ने सुख माना। पुत्र को अकेला देख पुलकित अंगवाले बालिके छोटे भाई सुग्रीव ने बड़े हर्ष से यह बात कही।



जाम्बवन्तसन बचन मृदु, कहेउ सुकण्ठ पुकारि।
कहहु तात दधिबल कबहिं, दनुजहिं डारिहि मारि॥

सुग्रीवजी ने पुकारकर जाम्बवान् से कोमल वचन कहे कि हे तात, यह कहिए कि दधिबल कब नारान्तक को मार डालेगा।

समर करत लागी अतिबारा * यह सुनि बोलेउ ऋक्षभुवारा
क्षणक हृदय धरु धीर कपीशा * दधिबल गुरुसनलहीअशीशा

क्योंकि लड़ाई करते हुए बड़ी देर लगी है। यह सुनकर रीछों के राजा जाम्बवान् बोले—हे कपीश सुग्रीवजी, एक क्षण भर हृदय में धीरज धरिए। दधिबल ने तो इसे मारनेके लिए गुरु से आशीर्वाद ही पाया है।

सो अवसर अब आनि तुलाना * एक पलकमहँ मरिहिअयाना
सुनि हरीश मन महँ अति हर्षे * तबहीं विबुध सुमन बहु वर्षे

यह समय अब निकट ही आ गया है; एक पल भर में दधिबल के हाथ से अज्ञानी नारान्तक मरेगा। यह सुनकर सुग्रीवजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब देवताओं ने बहुत से फूलों को बरसाया और

दधिबल धन्य भुजा बल तोरा * रण कौतूहल कीन्ह न थोरा
हरिस्तुति सुनि हरिअरि कोपा * कपिहिसहितखलभयउअलोपा

कहा—हे दधिबल, तेरी भुजाओं का बल धन्य है; तूने युद्ध में थोड़ा कौतुक नहीं किया। दधिबल वानर की प्रशंसा सुनकर रामचन्द्र का शत्रु नारान्तक क्रोधित हुआ और दधिबल वानरसमेत अन्तर्द्धान हो गया।

योजन अयुत अष्ट नभ जाई * दधिबल सुमिरि हृदय रघुराई
गहि मनुजाद भूमि पर डारा * करि चिकार तेहि मरती बारा

अस्सी हजार योजन आकाश में जाकर दधिबल ने हृदय में श्रीरामजी को सुमिरकर नारान्तक राक्षस को पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। राक्षस ने मरते समय बड़ा भयंकर नाद किया।

छन्द

मरती समय अति शब्द करि दशमुखतनय हरिहर कही।
तजि अधमतनुधारि सुभगवपु द्विजनाथ मुनि सो गति लही॥
जेहि हेतु सुर मुनि सिद्ध नाना भाँति जप तप मख किये।
श्रीराम करुणासिन्धु सो फल सहज ही दनुजै दिये॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, मरते समय बड़ा भारी शब्द कर रावण के पुत्र नारान्तक ने श्रीराम व शिवजी का नाम लिया। उसने राक्षस की देह छोड़कर उत्तम देह धारण की। हे भरद्वाज मुनि, उसने वह गति पाई, जिसके लिए देवता, मुनि, सिद्ध आदि अनेक भाँति के जप, तप व यज्ञ किया करते हैं। वही फल सहज ही में कृपासागर श्रीरामजी ने नारान्तक राक्षस को दे दिया।



दो॰ देखि तासुगति विबुधगण, अभय भये खगराइ।
प्रमुदित वर्ष पुहुप झरि, रामचरण चितलाइ॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, उसकी गति को देखकर देवताओं के गण निर्भय हो गये। उन्होंने श्रीरामजी के चरणों में चित्त लगाकर प्रसन्न हो फूलों की वर्षा की।

मरा नरान्तक दधिबल जानी * तोरि तासुशिर गहि निजपानी
रुण्ड तासु गहि लंक सचारी * आपु चले जहँ नाथ खरारी

नारान्तक को मरा जानकर दधिबल ने उसके शीश को तोड़कर अपने हाथ में ले लिया और उसके रुण्ड को लेकर लङ्का में फेंक दिया। फिर आप वहाँ चले, जहाँ खर राक्षस के मारनेवाले स्वामी श्रीरामजी थे।

निशा प्रवेश भूत बैताला * चढ़ि चढ़ि वाहन वेष कराला
जाइ समरमहि सुखद समेता * उदर अघाइ गये सुनिकेता

रात्रि के प्रवेश-समय (सन्ध्याकाल) में भूत, वेताल भयंकर वेष बनाये सवारियों पर चढ़-चढ़कर सुखपूर्वक रणभूमि में जाकर पेट भरकर अपने स्थानों को चले गये।

आयउ दधिबल प्रभु के पासा * देखि हर्षि उठि रमानिवासा
सानुज राम मिले अति प्रीती * परम प्रसाद नाथ नित रीती

दधिबल स्वामी श्रीरामजी के पास आये। उनको देख प्रसन्न होकर लक्ष्मीनिवास श्रीरामजी उठे। छोटे भाई लक्ष्मणसमेत श्रीरामजी बड़ी प्रीति से उनसे मिले और बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु की सदा यही रीति है।

बैठे रघुकुलमणि दोउ भाई * सखासुतहिं निज ढिग बैठाई
हनुमदादि मर्कट प्रभु पाहीं * नाइ माथ प्रमुदित मन माहीं

मित्र के पुत्र दधिबल को अपने पास बिठाकर रघुवंशमणि दोनों भाई बैठे। हनुमान् आदि वानर मन में प्रसन्न हो माथा नवाकर स्वामी श्रीरामजी के पास बैठे।



राम रजायसु पाय पुनि, होइ बिगत श्रम कीश।
सबदधिबल प्रभुचरणगहि, आगे धरि अरिशीश॥

परिश्रमरहित वानर श्रीरामजी की आज्ञा पाकर फिर बैठ गये। तब दधिबल ने स्वामी श्रीरघुनाथजी के आगे शत्रु का शीश धरकर उनके चरणों में प्रणाम किया।

समुझि कौतुकी रिपुसुतशीशा * सुनहु सुकंठ कह्यो जगदीशा
नारान्तक कर शीश धरावहु * यतन समेत न सेंत चलावहु

शत्रु का शीश जानकर संसार के स्वामी श्रीरामजी ने कौतुक के साथ कहा—हे सुग्रीव, सुनो, नारान्तक का शीश यत्न-समेत रक्खो, वृथा फेंक न देना।

नाथ रजाय पाय कपिराई * राखेउ सो शिर यतन कराई
पुनि दधिबल हरि कीन्ह बड़ाई * श्रीपति श्रीमुख बहुविधि गाई

स्वामी की आज्ञा पाकर कपिराज सुग्रीव ने उस शीश को यत्न से रख लिया। फिर श्रीपति ने श्रीमुख से अनेक भाँति से दधिबल की बड़ाई की।

जासु बड़ाई किय बड़ ईशा * सखहिं सराहत सो जगदीशा
दधिबल प्रभु अनुकूल बिलोकी * सफलजन्मलखिभयउ विशोकी

जिनकी बड़ाई करने से समर्थजन बड़े हुए हैं, वे जगदीश्वर अपने मित्र को सराहते हैं। दधिबल प्रभु श्रीरामजीको प्रसन्न देखकर, अपना जन्म सफल जानकर शोच से रहित हो गये।

प्रेमवारि लोचन करजोरी * बोलेउ गिरा भक्तिरस बोरी
जगदात्मा तुम्हार यह बाना * सन्तत करहु दीन मनमाना

वह प्रेम से आँखों में आँसू भर, हाथ जोड़कर, भक्तिरस से सनी हुई वाणी बोले—हे जगदीश, आपका यह स्वभाव है कि सदा आप दीन का मनमाना करते हैं, सेवक की इच्छा पूरी करते हैं।



बनचर पामर सहज जड़, बुद्धि विषम अज्ञान।
बिरदस्वभाव कृपालु प्रभु, सेवक सुयश बखान॥

एक तो हम लोग वन के रहनेवाले, दूसरे नीच, स्वभाव ही से मूर्ख, विषम बुद्धिवाले और बड़े अज्ञानी हैं। परन्तु हे कृपालु प्रभु, आप बिरद के स्वभाव से सेवक के सुयश का बखान करते हैं।

तवयश बिमल बिदित अवधेशा * कहत न पार पाव श्रुति शेषा
सो मैं प्रभु कहि सकहुँ न कैसे * पर्णवणिक गजमणि गुण जैसे

हे अयोध्यानाथ श्रीरामजी, आपका निर्मल यश जग जाहिर है, जिसे कहकर वेद व शेषजी भी नहीं पार पा सकते। हे प्रभु, उसे मैं किसी भाँति नहीं कह सकता, जैसे

पत्तों (औषधियों) का बेचनेवाला बनियाँ गजमुक्ता के गुणों को नहीं कह सकता।

असकहि हरि हरिपद लपटाने * देखि प्रेम कहि बिबुध सिहाने
जन अभिमान ताहि प्रभु जाना * दीनदयालु बहुरि सनमाना

ऐसा कहकर दधिवल वानर श्रीरामजी के चरणों में लिपट गया। उस दधिवल वानर का प्रेम देखकर देवता भी सिहाने लगे। उसको अभिमान-रहित जानकर दीनदयालु प्रभु ने फिर उसका सम्मान किया।

माँगु वत्स जो वर मन भावा * सुनिदधिवलकरि विनयसुनावा
नाथ तुम्हार रूप गुण नामा * करहिं निरन्तर मम उर धामा

और कहा—हे वत्स, जो मन को अच्छा लगे, वह वर माँगो। यह सुनकर दधिवल ने विनती सुनाई कि हे नाथ, आपका रूप, गुण और नाम सदा मेरे हृदय में बसे।

हो मोहिं प्रिय पदपङ्कज तैसे * कामिहिं वाम सूम धन जैसे
एवमस्तु तुम कहँ वर येहू * ममइच्छा कछु औरौ लेहू

आपके चरणकमल वैसे ही मुझे प्रिय हों, जैसे कामी पुरुष को स्त्री व कृपण को धन प्यारा होता है। रामजी बोले—ऐसा ही होगा। मैंने तुमको यह वरदान तो दिया; अब मेरी इच्छा से कुछ और भी लो।


विहवावलपुर राज, करहु तात तुम मुदितमन।
छाँड़ि और सब काज, शिवाशम्भुपद भक्ति दृढ़॥

हे पुत्र, तुम प्रसन्न मन होकर विहवावलपुर में राज्य करो और सब काम छोड़कर पार्वती व शिवजी के चरणों में दृढ़ भक्ति करो।

यहै काज शुभ सन्तत चहहीं * जोइ सोइ प्राणी मम उर रहहीं
उमा रामकर यहै स्वभाऊ * जनकर प्रेम न कबहुँ दुराऊ

जो सदा इसी उत्तम काम को करना चाहते हैं, वे ही प्राणी मेरे हृदय में बसते हैं। श्रीशिवजी कहते हैं—हे पार्वतीजी, श्रीरामजी का यही स्वभाव है कि वह भक्त के ऊपर प्रेम करते हैं; कभी दुराव नहीं रखते।

मोहिं निजरूप रमापति जाने * ताते बारम्बार बखाने
जानेउ श्रीरघुवरस्वभाव जिन * सब तजि प्रेमभक्ति माँगी तिन

लक्ष्मी के पति श्रीरामजी मुझको अपना रूप जानते हैं, इसलिए बार-बार मेरा बखान करते हैं। जिन्होंने रघुनाथजी का स्वभाव जाना है, उन्होंने सब छोड़कर प्रेम से भक्ति को माँगा है।

रामभक्ति वारीश जासु उर * महिमा तासु कहत श्रुति बुधवर
सरसरिता सब सुखद सुहाये * सहजहिं आवत जिनहिं बुलाये

जिसके हृदय में श्रीरामजी की भक्ति का समुद्र उमड़ रहा है, उसकी महिमा को वेद व उत्तम विद्वान् कहते हैं कि उस सुखसमुद्र में बिना बुलाये सुखदायक व सुहावने सुख के तालाब व सब सुख की नदियाँ आकर आपसे मिल जाती हैं।

ताहि शुद्ध सिख दै रघुनाथा * पुनिप्रभुकीन्हतिलक निजहाथा
शारङ्गी रुख सबहीं पावा * अङ्गदादि ताकहँ शिर नावा

उसको पवित्र सीख देकर फिर रघुनाथजी ने अपने हाथ से तिलक किया। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी के रुखको सबने पाया तो अङ्गद आदि वानरों ने दधिबल को शीश नवाया।



पाइ भक्तिवर राजवर, प्रभुचरणन शिर नाइ।
दधिबल पठयउ तुरत हठि, सुनहु अपथ शुभ भाइ॥

भक्ति का वरदान व उत्तम राज्य पाकर स्वामी श्रीरघुनाथजी के चरणों में शीश नवाकर दधिबल चल दिये। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे भरद्वाज मुनि, सुनिए, श्रीरामजी ने उत्तम भाव से तुरन्त ही अनुरोध करके भेज दिया।

तन मन रामचरण अनुरागे * दधिबल राज्य करत भय त्यागे
सेनसहित श्रीराजिवनयना * राजत देखि विबुधचित चयना

तन, मन से श्रीरामजी के चरणों में अनुराग रखकर भय को छोड़कर दधिबल राज्य करने लगे। कमलसरीखे नेत्रोंवाले श्रीरामजी को सेनासमेत शोभित देखकर देवताओं के चित्त में चैन हुई।

हनत दुंदुभी विविध प्रकारा * पुहुपमाल झरि करत अपारा
करि अस्तुति वर विनयपुकारे * अदितिसूनु निजगेह सिधारे

देवता अनेक भाँति से नगाड़े बजाते हैं, बहुत-से फूलों की मालाओं को बरसाते हैं और स्तुति कर उत्तम विनय करते हैं। उसके उपरान्त अदिति के पुत्र देवता लोग अपने घर को चले गये।

उतहिं जहाँ बैठा दशभाला * बिन शिर वपु सो परा विशाला
देखि विकल आपै उठि धावा * पहिचानत तेहिं अति दुख पावा

उधर जहाँ पर रावण बैठा था, वहाँ बिना शीश की वह बड़ी भारी देह जा पड़ी। उसे देख व्याकुल होकर रावण आप ही उठ दौड़ा। उसको पहचानते ही उसने बड़ा दुःख पाया।

हा नारान्तक कहि खल परा * महा खँभार लङ्कगढ़ भरा
मयतनया आदिक निशिचरी * शोकसमाज विषादहिं भरी

'हाय नारान्तक!' कहकर वह दुष्ट रावण गिर पड़ा। लंकागढ़ में बड़ी खलभली मच गई। मय दानव की कन्या मन्दोदरी आदि निशाचरी शोक और दुःख से भर गई—


बिन्दुमती आदिक सकल, नारान्तक की नारि।
व्याकुल महि लोटहिं परी, निजतनुदशाबिसारि॥

बिन्दुमती आदि नारान्तक की सब रानियाँ व्याकुल होकर अपनी देह की सुधबुध भुलाकर पृथ्वी में पड़ी लोटती हैं।

करिविलाप जिमिनिशिचरनारी * सो न जात कहि सुनु नभचारी
शोकजलधि लङ्का लघुतरणी * चढ़ीं सकल निशिचर कीघरणी

हे आकाश में उड़नेवाले गरुड़जी, सुनिए। जिस भाँति निशाचरों की स्त्रियाँ विलाप करती थीं, वह नहीं कहा जा सकता। शोक के समुद्र में लंकारूपी छोटी नाव पड़ी है। उसमें सब निशाचरों की नारी (स्त्रियाँ) चढ़ी हैं।

बूड़त जानि न कतहुँ निबाहा * कहत मँदोदरि तब सब पाहा
बिन्दुमती कर गहि बैठाई * नागसुता की कथा सुनाई

उसको बूड़ते जानकर और यह देखकर कि कहीं निबाह नहीं है, मन्दोदरी सबको समझाती है। उसने हाथ पकड़कर बिन्दुमती को बिठाया और नागकन्या सुलोचना की कथा सुनाई।

सुनत सुनयना की शुचि करणी * धारि धीर नारान्तकघरणी
सबनि बुझाय सासुपग लागी * तजि धनधाम स्वामिअनुरागी

सुलोचना की पवित्र करनी को सुनते ही नारान्तक की रानी बिन्दुमती ने धीरज धरकर सबको समझाकर सास के पैर छुए व धन, धाम को छोड़कर प्रेमसमेत पति में मन लगा दिया।

मातु करहु सो यतन उतावल * मिलहुँ जाइ जेहिपद निजरावल
सुनु सुतवधू न आन उपाऊ * जाउ जहाँ राजत रघुराऊ

उसने कहा—माता, जल्दी से वही उपाय कीजिए, जिससे मैं जाकर अपने पति के चरणों से मिलूँ। मन्दोदरी बोली—सुनो बहू, और कोई उपाय नहीं है। वहाँ जाओ, जहाँ रघुनाथजी विराजते हैं।


जेहि विधि गई सुलोचना, तेहिगति तुम भय त्यागि।
निरखहु रघुपतिपदकमल, लावहु पतिशिर माँगि॥

जिस भाँति सुलोचना गई थी, उसी भाँति भय छोड़कर तुम रघुनाथजी के चरणकमलों के दर्शन करो व पति के शीश को माँग लाओ।

सासुवचन सुनि जानि प्रभाता * उठिनिशिचरतियपुलकितगाता
जातरूपमय यान मँगाई * निज कर गहि पतिदेह चढ़ाई

सास के वचन सुन, सवेरा जानकर, नारान्तक निशाचर की रानी उठी। उसके

शरीर में रोमांच हो आया। सोने का रथ मँगाकर, अपने हाथ से पति की देह को उस पर चढ़ाया।

चली अकेलि यान चढ़ि जबहीं * तासु सवति इक आई तबहीं
नाम चित्रलेखा अस तासू * गुणगण सुभग बसैं तनु जासू

जब विन्दुमती अकेली रथ पर चढ़कर चली, तब उसकी एक सौत आई; उसका नाम चित्रलेखा था। वह उत्तम गुणों की खान और सुलक्षणा थी।

सो करि विनय चढ़ी तेहि सङ्गा * कीन पयान रँगी सतरङ्गा
यान एक आवत कपि देखा * कायर डरपे हृदय विशेखा

वह भी विनती कर सौत के साथ रथ पर चढ़ी। सती के रंग में रँगी हुई वह भी चल दी। वानरों ने आते हुए एक रथ को देखा तो कायर लोग मन में बहुत घबरा गये।

आवत मानि सबल रिपु कोऊ * नल अरु नील सुभट वर दोऊ
आये धाय सपदि तब आगे * युगल नारि तनु निरखन लागे

कोई प्रबल शत्रु आता है, यह जानकर नल व नील दोनों उत्तम योद्धा उसी समय जल्दी दौड़कर आगे आये व दोनों स्त्रियों की देह को देखने लगे।



समुझि बूझि वृत्तान्त दोउ, फिरि आये प्रभु पास।
बन्दि कञ्जपद उभय कह, सुनिये रमानिवास॥

दोनों सारा हाल समझ-बूझकर फिर स्वामी श्रीरामजी के पास आये व चरणकमलों को प्रणाम कर कहने लगे—हे लक्ष्मीनिवास, सुनिए।

नाथ नरान्तक की दोउ नारी * आवत शरण प्रणत भयहारी
सुनि रघुवीर हृदय मुसकाने * उतहि टिकावहु सखा सयाने

हे नाथ, आप प्रणतजन के भयहारक हैं। आपकी शरण में नारान्तक की दो स्त्रियाँ आती हैं। यह सुनकर रघुनाथजी मुस्कराये व बोले—हे चतुर मित्र, उनको उधर ही ठहराओ।

सुनि प्रभुवचन बहुरि सो धाये * कटक विगत रथ दूरि टिकाये
बिन्दुमती चितरेखा दूनो * विनय हमारि कीश अस सूनो

स्वामी श्रीरामजी के वचन सुनकर वे फिर गये और सेना के बाहर रथ को दूर ठहराया। तब विन्दुमती व चित्ररेखा दोनों बोलीं—हे वानरो, हमारी इस विनती को सुनो।

कहहु जाइ तुम प्रभुहिं बुझाई * केहि कारण हम दरश न पाई
हम अबला कपि बिनवैं तोहीं * बूझि नाथ सन कहवै मोहीं

तुम जाकर स्वामी श्रीरामजी से समझाकर कहो कि हमने किस कारण दर्शन नहीं पाया? हे वानरो, हम स्त्री होकर तुमसे विनती करती हैं कि स्वामीजी से पूछकर यह हमसे कहो

नारि विनय सुनि कपि दोउ भले * नीति विचारि रामपहँ चले
बिनती नारि जाय नल बरणी * सुनि बिहँसे प्रभु तिनके करणी

स्त्रियों के वचन सुनकर, अच्छी भाँति नीति को विचारकर, दोनों वानर श्रीरामजी के पास चले। नल ने जाकर स्त्रियों की विनती कही। उनकी करनी को सुनकर प्रभुजी विहँसे।


परम मृदुल रघुनाथचित, कहत सन्त बुध वेद।
तिन कहँ देत न दरश प्रभु, सुन खगेश सो भेद॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, श्रीरघुनाथजी का चित्त बड़ा कोमल है, ऐसा सन्त, विद्वान् व वेद कहते हैं, परन्तु जिस कारण उनको प्रभुजी दर्शन नहीं देते—उस भेद को सुनिए।

प्रेमपरीक्षाहित रघुनायक * कौतुक करत समर सुखदायक
नाथ सखा तब बहुरि बुझाई * पुनि नल नारिन पास पठाई

प्रेम की परीक्षा के लिए युद्ध में सुखदायक रघुनाथजी कौतुक को करते हैं। स्वामी श्रीरामजी ने तब फिर मित्र नल को समझाकर स्त्रियों के पास भेजा।

कह नल सुनहु नरान्तकनारी * दरशन तुमहिं न देत खरारी
तुम गृह जाहु वचन मम मानी * बोली सो तिय वचन सयानी

नल ने कहा—हे नारान्तक की रानियो, सुनो। खरारि श्रीरामजी तुमको दर्शन नहीं देते। तुम हमारा कहना मानकर घर को जाओ। यह सुनकर वह चतुर स्त्री बोली—

हम अबला दरशनहित आईं * नयनसफलबिनुकिमिगृहजाईं
यहि विधिकरतविनय दोउनारी * कीशन कटक कीन्ह पैसारी

हम स्त्री होकर दर्शन के लिए आई हैं तो भला बिना नयनों को सफल किये कैसे घर को जायँ? इस प्रकार विनती करती हुई दोनों स्त्रियों ने वानरी सेना में प्रवेश किया।

आवत निकट जानि रिपुरवनी * यद्यपि पतिव्रत हैं सुखभवनी
तदपि नाथ तेहि दरश न देहीं * जाय निकट बिनती की तेहीं

समीप आती हुई शत्रु की स्त्रियों को जानकर, यद्यपि वे सुख का घर और पतिव्रता हैं तो भी नाथ श्रीरामजी उनको दर्शन नहीं देते, इसलिए पास जाकर उन्होंने बिनती की—


प्रभु सीतापति जगतपति, सुरनरपति रघुनाथ।
देउ दरश करुणायतन, दीनबन्धु श्रुतिनाथ॥

हे प्रभु! हे सीतापति! हे जगत्पति! हे सुरनायक! हे रघुनाथजी! हे दयाधाम! हे दीनबन्धु! हे वेदों के स्वामी! हमको दर्शन दीजिए।

बोले राम न सो तिय बोली * विमलज्ञान पतिव्रत अनुडोली

नाथ सत्य यह नीति बखानै * पुरुष न परतिय सपनेहु जानै

जब रामजी नहीं बोले, तब निर्मल ज्ञान व अचल पतिव्रत धर्मवाली वह स्त्री फिर बोली—हे नाथ, नीति यह सत्य कहती है कि पुरुष स्वप्न में भी पराई स्त्री को न जाने अर्थात् कुभाव से न देखे।

प्राकृत पुरुषन की यह रीती * जिनके हृदय कपट पर प्रीती
समदरशी कछु दोष न स्वामी * सो विचार प्रभु अन्तर्यामी

परन्तु यह रीति तो उन साधारण मनुष्यों के लिए है, जिनके हृदय में कपट होता है। हे स्वामी, आप तो समदर्शी हैं, इससे अगर आप हमें देखें तो कुछ दोष नहीं है। यह विचारकर हे स्वामी, अन्तर्यामी,

आरतबन्धु विलम्ब न कीजै * करुणाकर वर दरशन दीजै
नहिं बोले प्रभु पुनि सो कहही * तवयश अस श्रुति गावत अहही

हे दीनबन्धु, देर न कीजिए। हे दया की खान श्रीरामजी, अपने उत्तम दर्शन हमें दीजिए। अब भी जब स्वामी श्रीरामजी नहीं बोले, तब फिर वह कहने लगीं—आपके यश को वेद ऐसा गाते हैं।

गौतमनारि नाथ तुम तारी * अधम जाति भिल्लनी निस्तारी
सुनि मम हृदय परी परतीती * अब प्रभु कस देखिय विपरीती

कि हे नाथ, आपने गौतम की नारी अहल्या को तारा है; नीच जातिवाली भीलनी शबरी को भी तार दिया है। यह सुनकर हमारे भी हृदय में ऐसा ही विश्वास था। हे प्रभु, अब क्यों उससे उल्टा देख पड़ता है?



तारि तारि अधमन अमित, बार बार श्रम जान।
ताते करत अनाकनी, मोरि ओर भगवान॥

हे भगवान्, जान पड़ता है, बार-बार बहुत-से नीचों को तार-तारकर आप थक गये हैं। क्या इसी कारण हमारी ओर आनाकानी करते हो।

प्रभु मुसकाहिं न उत्तर देहीं * ताकर प्रेमपरीक्षा लेहीं
विकल उभय नारान्तकवाला * बार बार करि विनय विशाला

प्रभु श्रीरामजी मुस्कराते हैं, कुछ जवाब नहीं देते, उनके प्रेम की परीक्षा लेते हैं। नारान्तक की दोनों स्त्रियाँ व्याकुल होकर बार-बार बड़ी विनती करती हैं।

धर्मधुरन्धर प्रभु अवतारा * केवल पतिव्रत धर्म हमारा
जो हम सत्य सत्य तुम स्वामी * द्रवहु वेगि उर अन्तरजामी

हे प्रभु, आपका अवतार धर्म की धुरी को धरने के लिए अर्थात् धर्म की रक्षा करने के लिए है और हमारा धर्म केवल पतिव्रता का है। हे अन्तर्यामी, जो हम सत्य हैं और तुम सत्य हो, तो जल्दी हृदय से पसीजिए, दया कीजिए।

वृथा करत कत प्रभु श्रुति भाषा * पूजत नाथ न मम अभिलाषा
लीन भयो पति प्राण राम महँ * अर्धभाग हम कहहु जाइँ कहँ

हे प्रभु, वेद के वचन को क्यों वृथा करते हो? हे नाथ, हमारे मनोरथ को क्यों नहीं पूर्ण करते? पति का प्राण तो राम में मिल गया, अब कहिए, उसका आधा भाग हम कहाँ जायँ।

वृन्दाचरित नाथ सुधि करहू * विनय हमारि वेगि उर धरहू
विनय प्रीति सतधर्म जनाई * परीं प्रेमवश महि अकुलाई

हे नाथ, वृन्दा के चरित्र को याद कीजिए और हमारी विनती को जल्दी हृदय में धरिए। विनय, प्रीति व सतीधर्म को जानकर प्रेम के वश हो वे स्त्रियाँ व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं—


पाहि पाहि रघुवंशमणि, हतहु न विरद प्रतीति।
प्रीतम प्रीति न करत डर, तुम कहँ नाथ अनीति॥

और बोलीं—हे रघुवंशमणि, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। हे नाथ, विरद (विनय करनेवाले) के विश्वास को न नष्ट कीजिए। हमारे पति में प्रेम के कारण तुमको अनीति होगी, इसका डर नहीं करते, अर्थात् हम पतिव्रता हैं, इससे बिना शीश पाये सती न होंगी तो तुमको अनीति होगी।

सती निराश विनय सुनि बानी * पुलके दीनदयालु भवानी
दुहुन लीन निज निकट बुलाई * परीं युगल प्रभुपद तर आई

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वतीजी, उन सती स्त्रियों की निराशा से भरी विनय और वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी के रोमांच हो आया। उन्होंने दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाया। तब दोनों स्वामी श्रीरामजी के चरणों में आकर पड़ गईं।

तिन्हैं उठाय राम बैठावा * जगदीश्वर मृदु वचन सुनावा
बिन्दुमती तैं परम सयानी * पतिपदरति दृढ़ हृदय समानी

उनको उठाकर जगत् के स्वामी श्रीरामजी ने बिठाया व कोमल वचन सुनाये कि हे बिन्दुमती, तुम बड़ी चतुर हो; क्योंकि तुम्हारे मन में पति के चरणों का दृढ़ प्रेम समाया हुआ है।

बहुत करहुँ का तव गुण गाना * माँगु वेगि वर जो मनमाना
सुनत वचन लोचन जल बाढ़ी * जोरि युगल कर दोऊ ठाढ़ी

तुम्हारे गुणों का बहुत क्या गान करूँ? जल्दी वह वरदान माँगो, जो मन को अच्छा लगे। यह वचन सुनते ही आँखों में आँसू भरकर व दोनों हाथ जोड़कर दोनों रानियाँ खड़ी हो गईं—

प्रभु तुम दानि देवतरुवर से * पद जलजात देवसरि सरसे
परम पवित्र भईं हम दोऊ * हम सम धन्य नारि नहिं कोऊ

और बोलीं—हे प्रभु, आप कल्पवृक्ष के समान दानी हैं। आपके चरणकमल गङ्गाजी के समान पावन हैं। इससे हम दोनों बहुत पवित्र हो गईं। हमारे बराबर कोई सराहने योग्य नारी नहीं है।



को धन्य हमसम नारि जगमहँ सुनहु श्रीरघुनायकम्।
दै दरश कीन्हीं पतितपावन नाथ सुर अरिघायकम्॥
हे कृपासागर यश उजागर देहु वर सुरभावरम्।
जेहिमिलैंपतिकहँ जाइबिनु श्रम बढ़ैतवयश श्रीधरम्॥

हे रघुनाथजी, सुनिए, संसार में हमारे समान कौनसी स्त्री धन्य है? हे देव, शत्रुओं के नाशक, पतितपावन, नाथ, आपने दर्शन देकर हमें पवित्र कर दिया। हे कृपासागर, देवताओं में श्रेष्ठ, उजागर यशवाले श्रीरामजी, वह वरदान हमें दीजिए, जिससे बिना परिश्रम पति के लोक को हम चली जायँ। हे श्रीधर, जिससे आपका यश बढ़े।



यह कहि बिन्दुकुमारि, सहित सौति प्रभुपद परी।
तिन्हैं उठाय खरारि, जगत्रात इमि कहत पुनि॥

बिन्दु की कुमारी बिन्दुमती ऐसा कहकर सौत-समेत स्वामी श्रीरामजी के चरणों पर गिर पड़ी। खरारि, संसार के रक्षक रघुनाथजी उनको उठाकर फिर यों बोले—

धरहु धीर तुम जनि अब डरहू * निज पति लेहु भवन सुख करहू
कहेउ देव हम .कहँ यह नीका * हमहुँ कहत अब भावत जीका

धीरज धरो। तुम अब मत डरो। अपने पति को लो और जाकर घर में सुख करो। तब उन्होंने कहा—हे देव, आपने हमारे लिए यह भला कहा; लेकिन अब जो मन को भाता है, वह हम भी कहती हैं—

गिरिजासहित गिरीशविरागी * नाथ तुम्हार दरश अनुरागी
नारदादि सनकादिक जेते * जपतप करहिं विविधविधि तेते

हे नाथ, पार्वती-समेत शिवजी वैरागी होकर भी आपके दर्शन के प्रेमी हैं। नारद आदि और सनकादिक जितने मुनि हैं, वे अनेक प्रकार से आपके दर्शनों के लिए जप-तप करते हैं।

तेउ न कबहुँ हमारी नाँई * देखहिं पदजलजात अघाई
हरिदरशन लवलेश प्रमाना * जग के सब सुख नाहिं समाना

वे भी हमारी तरह कभी आपके चरणकमलों को अघाकर नहीं देख पाते। आपके दर्शन के लवलेशमात्र अर्थात् बहुत ही थोड़े हिस्से के बराबर संसार के सब सुख भी नहीं होते।

अमिय अघाइ गरल को खाई * विनय हमारि यहै सुरसाँई
देहु कन्त सिर सपदि मँगाई * दया शील सागर रघुराई

हे देवताओं के स्वामी श्रीरामजी, अमृत से अघाकर विष कौन खायगा ? इससे यही हमारी विनय है कि हे दया व शील के सागर रघुनाथजी, हमारे पति के शीश को जल्दी मँगा दीजिए।



नारान्तक कर शीश तब, दीन्ह मँगाइ रमेश।
पाइ स्वामि शिर मुदित भइँ, बोलीं दोउ उरगेश ॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी, तब लक्ष्मी के पति श्रीरामजी ने नारान्तक का शीश जल्दी मँगा दिया। स्वामी के शीश को पाकर वे रानियाँ प्रसन्न हुईं और बोलीं—

नाथ विनय हम औरौ करहीं * दारुविना हम केहि विधि जरहीं
सुखसागर सुनि वचन प्रमाना * हनुमत अङ्गदादि भट नाना

हे नाथ, हम और भी विनय करती हैं कि लकड़ियों के बिना हम किस प्रकार जलेंगी ? उसका भी प्रबंध कर दीजिए। तब सुखसागर श्रीरामजी हनुमान्‌जी व अङ्गदादिक अनेक वानरों से बोले।

कह प्रभु सखा लङ्कमहँ धावहु * चन्दन अगर भार बहु लावहु
पाइ राम अनुशासन धाये * लंकागढ़ गृह गृह सचुपाये

स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे मित्रो, लंका में जल्दी जाओ और चन्दन व अगुरु के बहुत से भार (बोझ) ले आओ। रामजी की आज्ञा पाकर वे दौड़े और लंकागढ़ में घर-घर जाकर चन्दन व अगुरु की लकड़ियाँ ढूँढ़ने लगे।

कपिन शोधि चन्दन बहु भारा * लाये जहँ श्रीनाथ उदारा
कह रघुवीर सुनहु लंकेशा * तात यहै बड़ हित उपदेशा

वानरगण ढूँढ़कर चन्दन के बहुत से भार वहाँ लाये जहाँ उदार श्रीपति रामचन्द्रजी थे। रघुनाथजी ने कहा—हे तात, लंकेश विभीषण, सुनिए, यही बड़ा हितकारी उपदेश है।

बिन्दुमती जहँ चाहत ठाँऊ * दारुभार सँग तुम तहँ जाऊ
दशकन्धर कर वैर विहाई * चिता चारु शुचि देहु बनाई

बिन्दुमती जिस स्थान को चाहती है, वहाँ तुम लकड़ियों के भार के साथ जाओ और रावण का वैर छोड़कर एक पवित्र चिता बना दो।



रघुवर आज्ञा धारि शिर, उठे दशाननभाइ।
अयुत भार चन्दन अगर, तेहि सँग चले लेवाइ ॥

रघुनाथजी की आज्ञा शीश पर रखकर रावण के भाई विभीषणजी उठे और रानी के साथ दस हज़ार बोझ चन्दन व अगुरु लिवा ले चले।

जहाँ जरी मघवाजित नारी * तेहिं गहर शुचि चिता सँवारी
उहँवाँ अपर सौति पग धारी * बिन्दुमती मन भाव पियारी

जहाँ पर इन्द्रजित् मेघनाद की स्त्री जली थी, वहीं उन्होंने बड़ी अच्छी पवित्र चिता बनाई। अन्य सौतें जो बिन्दुमती के मन को प्यारी थीं, वे भी वहाँ आईं—

मूर्च्छित परीं प्रथम सुधि नाहीं * चलीं सुनत गति दुख मनमाहीं
चलीं चतुर्दश निशिचरि कैसे * निरखि दवास मृगीगण जैसे

और मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। उन्हें पहले की सुध नहीं रही। सौत की दशा को सुनते ही चलीं; उनके मन में बड़ा दुःख था। वे चौदह निशाचरी कैसे चलीं, जैसे दावानल को देखकर हिरनियों के झुंड चलते हैं।

हा हा बिन्दुमती पतिप्यारी * कहाँ गईं तुम हमहिं बिसारी
पहुँचीं सह विलाप तहँ सोऊ * हरषीं हृदय विलोकत दोऊ

वे कहती हैं—हा-हा पति की प्यारी बिन्दुमती। तुम हमको भुलाकर कहाँ चली गईं। विलाप करती हुई वे वहाँ पहुँचीं और दोनों सौतों को देखते ही मन में प्रसन्न हुईं।

षोड़श निशिचरि भईं सभागी * मन वच क्रम पतिपद अनुरागी
सकल अन्हाइ मृतक अन्हवाई * सुमिरत हृदय राम गतिदाई

सोलह निशाचरी भाग्यवती हुईं; क्योंकि मन, कर्म व वचन से वे पति के चरणों की प्यारी हुईं। उत्तम गतिदायक रघुनायकजी को सुमिरती हुई उन सबने नहाकर नारान्तक के शव को नहलाया।



उत दशकन्धर जगेउ शठ, सुनेउ श्रवण सब हेतु।
सङ्ग मँदोदरि आदि तिय, गमना लै खगकेतु॥

वहाँ शठ रावण जागा और उसने कानों से नारान्तक के मरने का सब कारण सुना। हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़जी, तब मन्दोदरी आदि स्त्रियों को लेकर रावण चला।

बाजत ढोल कपिन सुनि काना * अपने मन तिन अस अनुमाना
आव युद्धहित उत कोउ वीरा * हम कह ठाढ़ करत यहि तीरा

बजते हुए ढोल का शब्द कानों से सुनकर उन वानरों ने अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि उधर से लड़ने के लिए कोई वीर आ रहा है। हम लोग इस जगह खड़े क्या करते हैं।

कीश अयुत तब प्रभु पहँ आये * पूरण प्रेम चरण शिरनाये
नाथ उतहिं दशकन्धर जाता * कीश एक कह सुनु जनत्राता

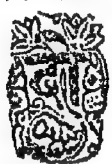
तब दश हजार वानर स्वामी श्रीरामजी के पास आये व प्रेम से पूर्ण होकर उनके चरणों में शीश नवाया। एक वानर ने कहा—हे भक्त के रक्षक स्वामी रामजी, सुनिए। उधर रावण जा रहा है।

प्रभु कह कुमुद तुरत तुम धावहु * वेगि विभीषण कहँ लै आवहु
रामरजायसु शिर धरि धाये * सपदि विभीषण पहँ सो आये

प्रभुजी ने कहा—हे कुमुद, तुम दौड़ो और जल्दी से विभीषण को ले आओ। श्रीरामजी की आज्ञा शीश पर धरकर कुमुद दौड़े और जल्दी विभीषण के पास आकर

तात तुमहिं रघुराज बुलावा * सुनत लङ्कपति आतुर आवा
हेतु पतोहुन कहि समुझावा * कुमुदसहित रघुपति पहँ आवा

बोले—हे तात, तुमको रघुनाथजी ने बुलाया है। यह सुनते ही लंका के स्वामी विभीषणजी जल्दी आये। पतोहुओं से कारण को कहकर समझाकर कुमुद वानर के साथ विभीषण रघुनाथजी के पास आये।



मोहनिशा कहँ तरुण रवि, तिन चरणन शिर नाइ।
भाग्यवन्त रावणअनुज, बैठेउ प्रभु रुख पाइ॥

मोहरूपी रात के लिए जो दोपहर के सूर्य हैं, उन श्रीरामजी के चरणों में शीश नवाकर रावण के छोटे भाई भाग्यवान् विभीषणजी, स्वामी की आज्ञा पाकर, बैठ गये।

दशमुख तियनसहित गा तहँवाँ * बिन्दुमती चित्ररेखा जहँवाँ
देखत अति बिलखा बिबुधारी * करुणा करत निशाचरि भारी

उधर स्त्रियोंसमेत रावण वहाँ गया, जहाँ बिन्दुमती और चित्ररेखा थीं। देवताओं का बैरी रावण उन्हें देखते ही बहुत दुखी हुआ। सब निशाचरियाँ करुण स्वर से विलाप करती हैं।

सासु ससुर कहँ देखि दुखारी * ज्ञान नवीन नरान्तकनारी
कहि शुचिगाथ सबनि समुझाई * स्वामिसमेत चिता पर आई

सास व ससुर को दुखी देखकर ज्ञानवती नारान्तक की स्त्रियों ने पवित्र कथाएँ कहकर सबको समझाया और पति का सिर गोद में लेकर वे चिता पर बैठ गईं।

यथायोग्य बैठीं सब तैसे * पतिगृह रहत रहीं नित जैसे
अग्नि दीन्ह ज्वाला अति धाई * पहुँचीं सुरपुर सब तिय जाई

सब स्त्रियाँ वैसे ही यथायोग्य बैठीं, जैसे सदा पति के घर में रहती थीं। जब आग दी गई तो ज्वाला बहुत ही बढ़ी और सब स्त्रियाँ जलकर जाकर स्वर्ग में पहुँचीं।

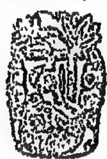
देखि दशा तिनकी सुररवनी * तिनहिं सराहि भवन निजगवनी
रावणसहित युवति निज गेहा * गयउ भरो सासति सन्देहा

देवताओं की देवियाँ उनकी दशा को देख और उन्हें सराहकर अपने भवनों को चली गईं। उधर अपनी रानियोंसमेत रावण भी सन्देह व भय से भरा हुआ अपने घर को चला गया।

छन्द

सन्देह सासति भरेउ रावण सहित दारनि गृह गयो।
इमिमयसुतादिक निशिचरिनलखि विकलवलमूर्च्छितभयो
दशमाथगति देखत विपुल बिलखैं निशाचर निशिचरी।
संताप शोक विलाप भय भ्रम कटक लंका महँ परी॥

सन्देह व भय से भरा हुआ रावण स्त्रियोंसमेत अपने घर को गया। इस प्रकार मन्दोदरी आदि राक्षसियों को व्याकुल देखकर वह बली रावण मूर्च्छित हो गया। रावण की दशा को देखते ही बहुत से राक्षस और राक्षसियाँ विलाप करने लगीं, मानो दुःख, शोक, विलाप, भय व भ्रम की सेना ने लंका में आकर पड़ाव डाल दिया।



रामविरोधहिं जस उचित, तस दिन पहुँचा आइ।
सो विचार करि लंकगढ़, उतरी बिपति बजाइ॥

रामजी के वैर से जैसा चाहिए था, वैसा ही दिन आ पहुँचा। उसी को विचारकर विपत्ति डङ्का बजाकर लंकागढ़ में आकर उतर पड़ी।

इहाँ देवदेवाय सुजाना * वर आसन शोभित भगवाना
यथायोग्य बैठे मृगशाखा * सब कीन्हे प्रभुपद अभिलाखा

यहाँ देवताओं के देवता सुजान भगवान् श्रीरामजी उत्तम आसन पर सोहते हैं और सब वानर प्रभुजी के चरणों की सेवा की अभिलाषा किये यथायोग्य बैठे हैं।

रिपु बड़ मरेउ हर्ष सबके मन * पुनिपुनि हेरत सुभग श्यामतन
तिनकी रुचि लखि दीनदयाला * शिवयश गावहु कहेउ कृपाला

बड़ा भारी शत्रु मर गया, इससे सबके मन में बड़ी प्रसन्नता है। इसलिए सब बार-बार सुन्दर श्याम शरीर को देखते हैं। उनकी रुचि को देखकर दीनदयालु कृपालु रघुनाथजी ने कहा—अब सब शिवजी का यश गाओ।

भरद्वाज प्रभु आज्ञा पाई * गावहिं कपि कलकण्ठ लजाई
डमरु शृङ्गि शृंङ्गी करतारी * घ्राण पाणि मुख ते वनचारी

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे भरद्वाजजी, प्रभु की आज्ञा पाकर कोकिला को भी लजाने-वाले स्वर से वानर गाने लगे। डमरू, भृङ्गी, शृङ्गी (सींग का बाजा) व करताल आदि बाजों को वानर नाक, हाथ और मुख से बजाते हैं।

गाँडर तन्तु वेणु मंजीरा * शंख मृदंग नाद गम्भीरा
नाचत कीश भाव दिखरावत * शिवासहित शिवकीरति गावत

गाँड़र की ताँत, बाँसुरी, मँजीरा, शंख व मृदंग आदि का गम्भीर शब्द हो रहा है। वानर नाचते हैं, भाव दिखाते हैं और पार्वतीजी-समेत शिव के यश को गाते हैं।



शिवशिवाकीरति विमल गावत भालु वानर सुखभरे।
अहिनाथयुतरघुनाथछवि निरखत सकल चितपद धरे॥
प्रभुदेखिकौतुकअनुजसहितसखनबखानतश्रीमुखम्।
तुलसी पगे याह ध्यान जे जनपाइहैंनितयशसुखम्॥

सुख से भरे हुए रीछ व वानर शिव और शिवा के निर्मल यश को गाते हैं और सब लक्ष्मणसमेत रामचन्द्रजी की शोभा को चरणों में चित्त लगाये देखते हैं। प्रभुजी लक्ष्मण-समेत यह कौतुक देखकर अपने श्रीमुख से मित्रों की बड़ाई करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—जो मनुष्य इस ध्यान में पगे हैं, वे सदा यश और सुख पावेंगे।



गत रजनी युग याम, तब कोशल करुणाअयन।
करि पूरण मन काम, सबनि कह्यो राजहु थलन॥

जब दो पहर रात बीत गई, तब करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने सब वानरों के मन की कामनाओं को पूर्ण कर कहा—अपने-अपने स्थानों पर जाकर शयन करो।

बैठे निज निज थल रणधीरा * अनुजसहित राजत रघुवीरा
सुषमासींव सेनयुत राजैं * जय जय धुनि कपिभालुसमाजैं

युद्ध में निपुण वानर अपने-अपने स्थान पर जाकर बैठे। छोटे भाई लक्ष्मणसमेत रघुनाथजी विराजमान हैं। शोभासींव श्रीरामजी सेनासमेत सोहते हैं, और वानरों व रीछों की मंडली में उनकी जय-जय ध्वनि हो रही है।

उमा चरित यह रुचिर सुहावा * नाथकृपा मैं तुमहिं सुनावा
अपर चरित गिरिराजकुमारी * सुनहु कहत तव प्रीति निहारी

श्रीसदाशिवजी कहते हैं—हे पार्वतीजी, इस सुन्दर सुहावने चरित्र को मैंने प्रभु श्रीरामजी की कृपा से तुमको सुनाया है। हे गिरिराजकुमारी, तुम्हारी प्रीति को देखकर अब और चरित्र कहता हूँ, सुनो।

उहाँ मध्य निशि रावण जागा * कोउकोउसचिवसिखावनलागा
उग्र सिखावन कहि बुध बाँके * थके न कछु मन मानै ताके

वहाँ आधी रात को रावण जागा तो कोई-कोई मंत्री उसे सीख देने या समझाने लगे। उग्र रावण से उत्तमज्ञानी मंत्री सिखावन कहकर थक गये; परन्तु उसके मनको कुछ नहीं भाता।

रावण मन औरै कछु लसई * मेटि को सकै जो विधि उर बसई
प्रभुविरोध करि चह कल्याना * मोहविवश सो शठ अज्ञाना

रावण के मनमें कुछ और ही बात बसी हुई है; क्योंकि जो विधाता करना चाहते

हैं, उसे कौन मेट सकता है ? प्रभु श्रीरामजी से वैर कर जो कल्याण चाहता है, वह शठ, अज्ञानी और मोह के वश है।



यहाँ दशानन दूतमुख, सुनि नारान्तक नास।
एका दिन निज सेन लखि, चढ़ा समर बिन त्रास॥

यहाँ दूत के मुख से नारान्तक का नाश सुनकर रावण परेवा के दिन अपनी सेना को देख निडर होकर युद्ध करने के लिए रणभूमि में आया।

इति क्षेपक

अस कहि मरुत वेगरथ साजा * बाजहिं सकल जुझाऊ बाजा
चले वीर सब अतुलित बली * जनु कज्जलगिरि आँधी चली
अशकुन अमित होहिं तेहि काला * गनै न भुजबल गर्ब विशाला

ऐसा कह रावण ने पवन के से वेगवाला रथ सजाया। युद्ध के बाजे बजने लगे। सब बड़े बलवान् वीर चले, जैसे कज्जलगिरि से आँधी चले। उस समय असगुन होने तो बहुत हैं; पर रावण अपनी भुजाओं के बल के गर्व से उन्हें गिनता नहीं।

छन्द

अति गर्व गिनत न शकुन अशकुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरहिं रथ ते बाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथ ते॥
गोमायु गृध्र कराल खर रव श्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं वचन परम भयावने॥

बड़े अहंकार से रावण सगुन-असगुन नहीं गिनता। हाथ से अस्त्र और रथों से योद्धा गिरते हैं। हाथी-घोड़े चिंघाड़ते और साथ से भागते हैं। सियार, गीध बड़ा तीक्ष्ण भयंकर शब्द करते, कुत्ते चिल्लाते, और घुग्घू भयंकर शब्द करते हैं, मानो काल के दूत हैं।



ताहि कि सम्पति शकुन शुभ, सपने मन बिश्राम।
भूतद्रोहरत मोहवश, रामविमुख रतकाम॥

उसके सम्पत्ति, उत्तम सगुन, और स्वप्न में भी मन को सुख कहा हो सकता है, जो मोहवश प्राणियों से वैर रखता और रामजी से विमुख हो काम के वश रहता है?

चली निशाचर सेन अपारा * चतुरंगिनी अनी बहु धारा
विविध भाँति वाहन रथयाना * विपुल बरण पताक ध्वज नाना

रथ, हाथी, घोड़े और पदल चतुरंगिणी सेना बहुत गोल बनाकर चली। उस सेना में अनेक भाँति के वाहन, रथ, सवारियाँ और अनेक रंगों की बहुत-सी ध्वजा-पताकाएँ हैं।

चले मत्त गजयूथ घनेरे * मनहुँ जलद मारुत के प्रेरे

बरण बरण वर दैत्य निकाया * समर शूर जानहिं बहु माया

बहुत-से मतवाले हाथियों के झुंड चले; मानो पवन से चलाये हुए मेघ हों। अनेक रंग के उत्तम दैत्य हैं, जो युद्ध में शूर और बहुत माया जानते हैं।

अति विचित्र वाहनी विराजी * वीर वसन्त सेन जनु साजी
चलत कटकदिकसिन्धुरडगहीं * क्षुधित पयोधि कुधरडगमगहीं

बड़ी विचित्र सेना शोभित हुई, मानो वीर वसन्त ने अपनी सेना साजी हो। सेना के चलते समय दिग्गज डगमगाते, समुद्र खलभलाते और पहाड़ हिलते हैं।

उठी रेणु रवि गयउ छिपाई * पवन थकित वसुधा अकुलाई
पणव निशान घोर रव बाजहिं * महाप्रलय के जनु घन गाजहिं

ऐसी धूल उठी कि सूर्य छिप गये, पवन थक गये और पृथ्वी व्याकुल हो गई। पणव (एक मारू बाजा) और नगाड़े भयंकर शब्द से बजते हैं, मानो महाप्रलय के मेघ हों।

भेरि नफीरि बाज सहनाई * मारू राग सुभट सुखदाई
केहरिनाद वीर सब करहीं * निज निज बल पौरुष उच्चरहीं

भेरी, नफीरी और शहनाइयाँ बजती हैं तथा योद्धाओं को सुख देनेवाले मारू राग गाये जाते हैं। सब वीर सिंहनाद करते और अपना-अपना बल पौरुष कहते हैं।

कहै दशानन सुनहु सुभट्टा * मर्दहु भालु कपिनके ठट्टा
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई * अस कहि सम्मुख फौजचलाई
यहसुधिसकलकपिनजबपाई * धाये करि रघुवीर दुहाई

रावण बोला—योद्धाओ, सुनो। तुम रीछों और वानरों के झुंडों को दलमल डालो। मैं दोनों राजभाइयों को मारूँगा। ऐसा कह उसने रामचन्द्रजी के सामने सेना चलाई। जब सब वानरों ने यह खबर पाई, तब रामजी की दुहाई करके दौड़ पड़े।



धाये विशाल कराल मर्कट भालु काल समानते।
मानहु सपक्ष उड़ाहिं भूधर वृन्द नाना बानते॥
नख दशन शैल महा द्रुमायुध सबल शंक नमानहीं।
जय राम रावणमत्तगजमृगराज सुयश बखानहीं॥

काल के समान विकराल रीछ और वानर दौड़े, मानो बाण से चलाये पंखसमेत पर्वत उड़ रहे हों। नख, दाँत, पहाड़ और वृक्षरूप अस्त्र लिये बलवान् वानर शंका नहीं मानते तथा रावणरूप मतवाले हाथी के लिए सिंहरूप रामजी की जय कहकर उनके उत्तम यश का बखान करते हैं।



दुहुँदिशि जयजयकार करि, निजनिज जोरी जानि।
भिरे वीर इत रघुपतिहिं, उत रावणहिं बखानि॥

दोनों ओर 'जय' कहकर सब वीर अपनी-अपनी जोड़ी से इधर राम व उधर रावण का बखान करके भिड़ गये।

रावण रथी विरथ रघुवीरा * देखि विभीषण भयो अधीरा
अधिक प्रीति उर भा सन्देहा * वन्दि चरण कह सहित सनेहा

रावण को रथ पर और रघुनाथ को विना रथ के देख विभीषण का धीरज छूट गया। रामजी में प्रेम बहुत है, इससे उनके हृदय में सन्देह हुआ। चरणों में प्रणाम कर स्नेह-समेत विभीषण ने कहा—

नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना * केहि विधि जीतब रिपुबलवाना
सुनहु सखा कह कृपानिधाना * जेहि जय होयसो स्यन्दनआना

हे नाथ, आपके रथ, पनही, कवच आदि नहीं हैं; फिर बलवान् शत्रु को कैसे जीतियेगा? तब दयानिधान रामजी ने कहा— हे मित्र, जिससे जीत होती है, वह रथ दूसरा ही है।

शौरज धीर जाहि रथ चाका * सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका
बल विवेक दम परहित घोरे * क्षमा दया समता रजु जोरे

सुनो, शूरता और धैर्य उसके पहिये; सत्य और शील दृढ़ ध्वजा-पताका; ज्ञान, बल, इन्द्रियों का जीतना और परोपकार ये घोड़े हैं जो क्षमा, दया और समतारूप रस्सी से जुड़े हैं;

ईश भजन सारथी सुजाना * विरत चर्म सन्तोष कृपाना
दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा * वर विज्ञान कठिन कोदण्डा

ईश्वर का भजन चतुर सारथी है। इसी तरह वैराग्य ढाल, सन्तोष खड्ग, दान परशु, बुद्धि शक्ति, विज्ञान धनुष,

संयम नियम शिलीमुख नाना * अमल अचल मनतूणसमाना
कवच अभेद्य विप्रपद पूजा * इहि सम विजय उपाय न दूजा
सखा धर्ममय अस रथ जाके * जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके

संयम-नियम अनेक प्रकार के बाण, निर्मल अचल मन तरकस और ब्राह्मण के चरणों का पूजन अभेद्य (न कटनेवाला) कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे मित्र, जिसके धर्ममय ऐसा रथ है, उसके जीतने के लिए कहीं शत्रु नहीं।



महाघोर संसाररिपु, जीति सकै सो वीर।
जाके अस रथ होय दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर॥

हे मतिधीर मित्र, जिसके ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर महाभयंकर संसाररूपी शत्रु को जीत सकता है।

सुनत विभीषण प्रभुवचन, मुदित गहे पदकंज।
यहिविधिमोहिंउपदेशकिय, राम कृपासुखपुंज॥

स्वामी श्रीरामजी के वचन सुन, प्रसन्न होकर विभीषण ने प्रभु के चरणकमल पकड़कर कहा—इस प्रकार से (बहाने से) दया और सुख की राशि रामजी ने मुझे उपदेश किया है।

उत प्रचार दशकन्धर, इत अंगद हनुमान।
लरत निशाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन॥

उधर रावण तथा इधर अंगद और हनुमान् ललकारते हैं। अपने-अपने प्रभु की सौगन्द करके निशाचर और रीछ व वानर लड़ते हैं।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना * देखहिं रण नभ चढ़े विमाना
मैं हूँ उमा रहेउँ तेहि संगा * देखत राम चरित रण रंगा

ब्रह्मा आदि देवता और अनेक सिद्ध-मुनि विमानों पर चढ़े आकाश से युद्ध देख रहे थे। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, उनके साथ श्रीरामजी के रणरंग का चरित्र मैं भी देखता था।

सुभट समररस दुहुँ दिशि माते * कपि जयशील रामबल ताते
एक एकसन भिरहिं प्रचारहिं * एक एक मर्दहिं महि पारहिं

युद्ध के रस से योद्धा दोनों ओर मतवाले हो रहे हैं। रामजी के बल के कारण वानर जीतते हैं। एक दूसरे को ललकारकर भिड़ते, मर्दते और पृथ्वी पर गिराते हैं।

मारहिं काटहिं धरणि पछारहिं * शीश तोरि शीशनसन मारहिं
उदर विदारहिं भुजा उपारहिं * गहिपद अवनि पटकि भट डारहिं

मारते, काटते और पृथ्वी में पछाड़ते हैं तथा शत्रुओं के सिर तोड़कर उन्हीं से मारते हैं। पेट फाड़ते, भुजाएँ उखाड़ते तथा पैर पकड़कर योद्धाओं को पटकते और पृथ्वी में डालते हैं।

निशिचर भट गहि गाड़हिं भालू * ऊपर डारि देहिं बहु बालू
वीर बलीमुख युद्ध विरुद्धा * देखिय विपुल काल जनु क्रुद्धा

रीछ और वानर राक्षस योद्धाओं को पकड़कर गाड़ देते और उनके ऊपर बहुत-सी बालू डाल देते हैं। युद्ध में राक्षसों के विरुद्ध वीर वानर कैसे देख पड़ते हैं, जैसे क्रोध किये बहुत-से काल हों।

छन्द

क्रोधे कृतान्त समान कपि तनु स्रवत शोणित राजहीं।
मर्दहिं निशाचर कटक भट बलवन्त जिमि घन गाजहीं॥
मारहिं चपेटन काटि दाँतन डाटि लातन मींजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छलबल करहिं जेहि खल छीजहीं॥

यमराज के समान वानर क्रोधित हुए। जिनके शरीरों से रक्त बह रहा है और वे शोभा पाते हैं। वीर वानर निशाचरी सेना के योद्धाओं को मर्दते, मेघों-सरीखे गर्जते, चपेटों से मारते, डाटकर दाँतों से काटते, लातों से मींजते, चिंघाड़ते और छल से काम लेते हैं, जिससे राक्षस नष्ट होते हैं।

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिपुल तनुधरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटि पछारि घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृणते कुलिशकर कुलिशते तृणकर सही॥

गाल और छाती फाड़ते तथा गले में आँतों की माला पहनते हैं, मानो प्रह्लाद के प्रभु नृसिंहजी अनेक भाँति के शरीर रखकर युद्ध में खेलते हैं। 'पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो' ऐसी भयंकर वाणी आकाश व पृथ्वी में भर रही है, और 'तृण से वज्र और वज्र से तृण करनेवाले रामजी की जय हो' यह शब्द होता है।



निजदलबिचल बिलोकि तब, बीस भुजा दश चाप।
चला दशानन कोप करि, फिरहु फिरहु करि दाप॥

अपनी सेना को भागते देख बीसों हाथों में दश धनुष ले रावण क्रोध करके चला और डाटकर बोला 'लौटो'।

धावा परमक्रुद्ध दशकन्धर * सम्मुख चले हूह दै बन्दर
गहि कर पादप उपल पहारा * डारहिं तेहि पर एकहि बारा

बड़ा क्रोध कर रावण दौड़ा और हूह देकर वानर उसके सामने चले। वे हाथों में वृक्ष, पत्थर और पहाड़ ले-लेकर उस पर एक ही बार डालते हैं।

लागहिं शैल बज्र तनु तासू * खण्ड खण्ड ह्वै फूटहिं आसू
चला न अचल रहा रथ रोपी * रणदुर्मद रावण अति कोपी

उसके वज्र के समान शरीर में पर्वत लगते ही खण्ड-खण्ड होकर शीघ्र फूट जाते हैं। रण में मतवाला रावण बड़े क्रोध से रथ को रोककर अचल हो रहा।

इतउत झपटि दपटि कपियोधा * मर्दै लाग भयो अति क्रोधा
चले पराइ भालु कपि नाना * त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना

वह इधर-उधर वानर योद्धाओं को झपट-झपटकर बड़े क्रोध से उनको मर्दने लगा। अनेक रीछ-वानर भाग चले, और बोले—"हे अंगद! हे हनुमान्! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए";

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं * यह खल खाव काल की नाईं
तेहि देखे कपि सकल पराने * दशहु चाप शायक सन्धाने

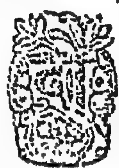
"हे स्वामी रघुनाथ, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, यह दुष्ट रावण काल की तरह हमारा नाश करता हुआ आ रहा है"। उसको देख सब वानर भाग गये। तब उसने दसों धनुषों में बाण चढ़ाये।

छन्द

सन्धानि धनुशरनिकरछाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।

रहे पूरि शर धरणी गगन दिशि विदिश कहँ कपि भागहीं ॥
भा अति कोलाहल विकल दल कपिभालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुणासिन्धु आरतबन्धु जनरक्षक हरे ॥

धनुषों में बाण चढ़ाकर उसने छोड़े, जो साँपों की तरह उड़कर लगते तथा पृथ्वी और आकाश में भर रहे हैं। वानर दिशा-विदिशाओं में भागते हैं; वानरों की विकल सेना में बड़ा भारी कोलाहल हुआ। वानर और रीछ दुखी होकर कहते हैं—"हे दयासिन्धु, जनरक्षक, हरि, रघुनाथ, रक्षा करो।"



विचलत देखा कपिकटक, कटिनिषङ्ग धनु हाथ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाय रामपद माथ॥

जब वानरों की सेना को भागते देखा, तब कमर में तरकस कसकर और हाथ में धनुष लेकर क्रोध-समेत लक्ष्मणजी रामजी के चरणों में माथा नवाकर चले।

रे खल का मारसि कपि भालू * मोहिं बिलोकु तोर मैं कालू
खोजत रहेउँ तोहिं सुतघाती * आजु निपाति जुड़ावौं छाती

लक्ष्मणजी ने कहा—अरे दुष्ट! तू रीछों और वानरों को क्या मारता है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ। रावण बोला—हे मेरे पुत्र के नाशक! मैं तुझी को ढूँढ़ता था; आज तुझे मारकर अपनी छाती ठंडी करूँगा।

अस कहि छाँड़ेसि बाण प्रचण्डा * लक्ष्मण कियशर हति शतखण्डा
कोटिन आयुध रावण डारे * तिलसमान प्रभु काटि निवारे

ऐसा कहकर उसने एक प्रचण्ड बाण छोड़ा। लक्ष्मणजी ने बाण मारकर उस बाण के सौ टुकड़े कर डाले। रावण ने करोड़ों अस्त्र छोड़े, परन्तु प्रभु लक्ष्मणजी ने तिल के समान सबको काट डाला।

पुनि निज बाणन कीन्ह प्रहारा * स्यन्दन भंजि सारथी मारा
शत शत शर मारे दशभाला * गिरिशृंगन जनु प्रविशहिं व्याला

फिर लक्ष्मणजी ने अपने बाणों का प्रहार किया—रथ तोड़कर रावण के सारथी को मार डाला। फिर सौ-सौ बाण उसके दसों मस्तकों में मारे, जो पर्वत के शिखरों में साँपों की भाँति रावण के सिरों में पैठ गये।

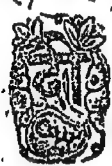
पुनि शत शर मारे उर माहीं * परेउ अवनि तनु सुधि कछु नाहीं
उठा प्रबल पुनि मूर्च्छा जागी * छाँड़ेसि ब्रह्मदत्त जो साँगी

फिर सौ बाण हृदय में मारे, तब रावण पृथ्वी में गिर पड़ा, उसे कुछ देह की सुध न रही। जब मूर्च्छा जगी, तब प्रबल रावण फिर उठा और ब्रह्मा ने जो साँग (शक्ति) दी थी, उसे छोड़ा।

छन्द

जो ब्रह्मदत्त प्रचण्ड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
पर्यो वीर विकल उठाव दशमुख अतुलबल महिमा रही॥
ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक शिर जिमि रजकनी।
सो चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवनधनी॥

ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय में लगी। वे विकल होकर गिर पड़े। रावण उनको उठाने लगा; परन्तु वह नहीं उठे; क्योंकि बड़े बली लक्ष्मणजी की महिमा अतुल थी। जिनके एक मस्तक पर ब्रह्माण्ड के सब लोक कण के समान सोहते हैं, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है? उनको त्रिभुवनधनी नहीं जानता।



देखत धावा पवनसुत, बोलत वचन कठोर।
आवत तेहि उरमहँहनेउ, मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

यह देखते ही पवनकुमार कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। आते ही उनके हृदय में जोर से रावण ने एक घूँसा मारा।

जानु टेकि कपि भूमि न परेऊ * उठा सँभारि बहुरि रिस भरेऊ
मुष्टिक एक ताहि कपि मारा * परेउ शैल जिमि वज्र प्रहारा

परन्तु हनुमान्‌जी ने घुटने टेक लिये, इससे वह पृथ्वी में नहीं गिरे और सँभलकर उठे तो फिर क्रोध से भर गये। हनुमान्‌जी ने उसके एक घूँसा मारा, जिससे वह गिर पड़ा, जैसे वज्र के प्रहार से पहाड़ गिर पड़े।

मूर्च्छा गई बहुरि सो जागा * कपिबल विपुल सराहन लागा
धिक धिक बलपौरुष धिक मोही * जो तैं जियत उठा सुरद्रोही

जब मूर्च्छा जाती रही, तब वह फिर जागा और हनुमान्‌जी के बल को सराहने लगा, महावीर बोले—देवताओं के शत्रु, जो तू जीता उठा तो मेरे बल पौरुष को धिक्कार है! और मुझे भी धिक्कार है!

अस कहि कपि लक्ष्मण कहँ ल्याये * देखि दशानन विस्मय पाये
कह रघुवीर समुझ जिय भ्राता * तुम कृतांतभक्षक सुरत्राता

ऐसा कह हनुमान्‌जी लक्ष्मणजी को उठा ले गये, यह देख रावण को आश्चर्य हुआ। रघुनाथजी ने कहा—भाई, जी में समझो, तुम तो देवताओं के रक्षक और काल के भी भक्षक अर्थात् काल हो।

सुनत वचन उठि बैठ कृपाला * गगन गई सो शक्ति कराला
पुनि कोदण्ड बाण गहि धाये * रिपु सम्मुख अति आतुर आये

ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे, और वह भयंकर शक्ति आकाश को चली

गई। फिर धनुष बाण लेकर लक्ष्मणजी दौड़े और बहुत ही शीघ्र शत्रु के सामने आ गये।

छन्द

आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन मारि तेहि व्याकुल कियो।
गिरयो धरणि दशकन्धर बिकल तनु बाणशत बेध्यो हियो॥
सारथी रथ घालि दूसर ताहि लंका लै गयो।
रघुबीर बन्धु प्रतापपुञ्ज बहोरि प्रभुचरणन नयो॥

शीघ्रता से फिर लक्ष्मणजी ने रथ तोड़ डाला और रावण को मारकर व्याकुल कर दिया। हृदय में सैकड़ों बाण लगने से रावण पृथ्वी में गिर पड़ा। तब सारथी दूसरा रथ साजकर उसे लंका में ले गया। प्रताप की राशि और रघुनाथजी के भाई लक्ष्मणजी ने आकर प्रभु के चरणों में सिर नवाया।


उहाँ दशानन जाय करि, करन लाग कछु यज्ञ।
जय चाहत रघुपतिविमुख, कालविवश शठ अज्ञ॥

वहाँ जाकर रावण यज्ञ करने लगा। कालवश, शठ, अज्ञानी रावण रघुनाथजी से विमुख होकर भी जय चाहता है।

इहाँ विभीषण सब सुधि पाई * सपदि जाय रघुपतिहिं सुनाई
नाथ करै रावण इक यागा * सिद्ध भये नहिं मरिहि अभागा

यहाँ विभीषण ने यह सब खबर पाई तो शीघ्र ही जाकर रघुनाथजी को सुनाकर कहा—हे नाथ, रावण एक यज्ञ करता है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा नहीं मरेगा।

पठवहु नाथ वेगि भट बन्दर * करहिं विध्वंस आव दशकन्धर
प्रात होत प्रभु सुभट पठाये * हनुमदादि वानर सब धाये

हे नाथ, शीघ्र ही वीर वानरों को भेजिए। वे जाकर यज्ञ को विध्वंस कर दें; तब रावण आवेगा। प्रातःकाल होते ही स्वामी रामजी ने योद्धाओं को भेजा। हनुमान् आदि सब वानर दौड़े।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका * पैठे रावणभवन अशंका
जबहिं यज्ञ करत तेहिं देखा * सकल कपिन भा क्रोध विशेखा

खेल की तरह कूदकर वानर लंका में चढ़ गये और निडर होकर रावण के घर में घुसे। जब यज्ञ करते हुए रावण को देखा, तब सब वानरों को बड़ा क्रोध हुआ।

रणते भाजि निलज गृह आवा * इहाँ आय बकध्यान लगावा
अस कहि अंगद मारेउ लाता * चितव न शठ स्वारथमनराता

वे बोले—अरे निर्लज्ज! युद्ध से भागकर घर आया और यहाँ बगले की भाँति ध्यान लगाकर बैठा है। ऐसा कहकर अंगद ने रावण के एक लात मारी, परन्तु स्वार्थ में लगे हुए शठ रावण ने उधर देखा ही नहीं।

छन्द

नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दशन लातन मारहीं।
धरि केश नारि निकारि बाहर जब सो दीन पुकारहीं॥
तब उठा कोपि कृतान्तसम गहि चरण बानर डारहीं।
इहि भाँति यज्ञ विध्वंस करि कपि नेकु मनहिं न हारहीं॥

जब उसने नहीं देखा, तब क्रोध करके दाँतों से काटा और लातें मारीं। जब अंगद बाल पकड़कर उसकी स्त्रियों को बाहर निकालने लगे और वे दीन हो पुकारने लगीं, तब क्रोधकर काल के समान रावण उठा और वानरों की टाँगें पकड़-पकड़कर पटकने लगा। इस प्रकार वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर दिया और वानर कुछ भी मन में न हारे।



मख विध्वंस करि कपि सकल, आये रघुपति पास।
चला दशानन क्रोध करि, छाँड़ी जियकी आस॥

यज्ञ विध्वंसकर वानर रामजी के पास आये और रावण जीवन की आशा छोड़ क्रोधसहित लड़ने को चला।

चलत होहिं तेहि अशुभ भयंकर ॥ बैठहिं गृध्र उड़ाहिं शिरन पर
भयउ कालवश काहु न माना ॥ कहेसि बजावहु युद्ध निशाना

उसके चलते समय भयंकर असगुन होते हैं। उसके सिरों पर गिद्ध मड़राते और बैठते हैं। कालवश रावण ने कोई असगुन नहीं माना और कहा कि युद्ध के लिए नगाड़ा बजाओ।

चली तमीचर सेन अपारा ॥ बहु गज रथ पदचर असवारा
प्रभु सम्मुख खल धावहिं कैसे ॥ शलभसमूह अनल कहँ जैसे

निशाचरों की अपार सेना चली, जिसमें बहुत से हाथी, रथ, पैदल और सवार थे। प्रभु श्रीरामजी के सामने दुष्ट निशाचर वैसे ही दौड़ते हैं, जैसे पाँखियों के झुण्ड आग पर झपटते हैं।

इहाँ देव सब बिनती कीन्हीं ॥ दारुण बिपति हमहिं इन दीन्हीं
अब जनि नाथ खेलावहु येही ॥ अतिशय दुखित होति वैदेही

यहाँ सब देवताओं ने बिनती की कि हमको इसने बड़ी विपत्ति दी है। हे नाथ! अब इसे मत खेलाइए; जानकीजी बहुत दुःख पा रही हैं।

देववचन सुनि प्रभु मुसकाना ॥ उठि रघुबीर सुधारेउ बाना
जटाजूट बाँधा दृढ़ माथे ॥ सोहत सुमन बीच बिच गाथे

देवताओं के वचन सुन प्रभु रामजी मुस्कराये और उठकर बाना सुधारा। माथे पर जटाजूट कसकर बाँधा जिसके बीच-बीच गुथे हुए फूल सोहते थे।

अरुणनयन वारिदतनुश्यामा * अखिल लोकलोचन अभिरामा
कटितट परिकर कसे निषंगा * कर कोदण्ड कठिन शारंगा

लाल नेत्र और मेघों-सा श्याम शरीर है तथा सब लोगों के नयनों को सुन्दर लगते हैं। कमर में फेंटा बाँधे, तरकस कसे और हाथ में कठिन धनुप लिए हुए हैं।

छन्द

शारंग कर सुन्दर निषंग शिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदण्ड पीन मनोहरायत उर धरासुरपद लस्यो॥
कह दासतुलसी जबहिं प्रभु शर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्माण्ड दिग्गज कमठ अहि महि सिन्धु भूधर डगमगे॥

हाथ में धनुप लिए और कमर में तरकस कसे हैं। उनके मोटे, मनोहर, पुष्ट भुजदण्ड हैं और चौड़ी छाती में भृगुलता सोहती है। तुलसीदासजी कहते हैं—जब प्रभु रामजी धनुप-बाण हाथ में फेरने लगे, तब सारा ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत काँपने लगे।


हरषे देव विलोकि छवि, बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुणज्ञान बलधाम हरण महिभार॥

यह शोभा देख देवता प्रसन्न हुए और फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे कि गुण, ज्ञान और बल के धाम, पृथ्वी के भार को हरनेवाले प्रभु श्रीरामजी की जय हो।

इहि के बीच निशाचरअनी * कसमसाति आई अति घनी
देखि चले सम्मुख कपि भट्टा * प्रलयकाल के जिमि घनघट्टा

इसी समय बड़ी घनी निशाचरों की सेना कसमसाती हुई आई। उसे देखकर वानर योद्धा सामने चले, जैसे प्रलयकाल की घनी घटाएँ उमड़ पड़ें।

शक्ति शूल तरवारि चमकहिं * जनु दश दिशि दामिनी दमकहिं
गज रथ तुरग चिकार कठोरा * गर्जत मनहु बलाहक घोरा

शक्ति, शूल और खड्ग चमकते हैं, मानो दशों दिशाओं में बिजलियाँ दमकती हैं। हाथी, रथ और घोड़ों की कराल चिग्घाड़ हो रही है, मानो भयंकर मेघ गर्जते हों।

कपि लँगूर विपुल नभ छाये * मनहु इन्द्रधनु उयउ सुहाये
उठी रेणु मानहु जलधारा * बाणबुन्द भइ वृष्टि अपारा

वानरों के बहुत से लंगूर (पूँछें) आकाश में छा रहे हैं, मानो सुन्दर इन्द्रधनुष उदित हुए हों। जल की धारा की भाँति धूल उठी और बाणरूप बूँदों की अपार वर्षा हुई।

दुहुँ दिशि पर्वत करहिं प्रहारा * वज्रपात जनु बारहिं बारा

रघुपति कोपि बाण झरिलाई * घायल भै निशिचरसमुदाई

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों के प्रहार करते हैं, वही मानो बार-बार वज्रपात हो रहा है। रघुनाथजी ने क्रोध कर बाणों की वर्षा की। उससे राक्षस घायल हो गये।

लागत बाण वीर चिक्करहीं * घुर्मि घुर्मि अगणित महि परहीं
स्रवहिं शैल जनु निर्झरवारी * शोणित सरि कादर भयकारी

बाण लगते ही वीर चिघाड़ते और अनगिनत राक्षस घूम-घूमकर पृथ्वी में गिरते हैं। राक्षसों के शरीरों से ऐसे रक्त बहता है, जैसे पर्वतों के झरनों से जल झरे। रक्त की नदी हो गई, जो कायरों के लिए भयकारी थी।

छन्द

कादर भयंकर रुधिरसरिता चाढ़ि परमअपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जलजन्तु गजपदचरतुरँगरथ विविधवाहन को गने।
शर शक्ति तोमर सर्प चापतरंग चर्म कमठ घने॥

कायरों को भय देनेवाली रक्त की अपवित्र नदी बहुत ही बढ़ी। दोनों ओर की सेनाएँ उसके किनारे थे, टूटे रथ रेत थे। रथ के पहिए भँवर थे। हाथी, पैदल, घोड़े, रथ और अनगिनत वाहन जल के प्राणी थे। बाण, तोमर आदि शस्त्र साँप, धनुष लहरें और ढालें मानो कछुए थे।



वीर परे जनु तीर तरु, मज्जा बह जनु फेन।
कादर देखत डरहिं जिय, सुभटन के मन चैन॥

वीर मानो किनारे के वृक्ष उखड़ पड़े हैं और चर्बी मानो फेना है। उस नदी को देखते ही कायर जी में डरते हैं तथा उत्तम वीरों के मन में प्रसन्नता होती है।

मज्जहिं भूत प्रेत बेताला * केलि करहिं योगिनी कराला
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं * इकते एक छीनि धरि खाहीं

भूत, प्रेत और बेताल उस नदी में नहाते तथा भयंकर योगिनियाँ क्रीड़ा करती हैं। कौए और गीध भुजाएँ ले-लेकर उड़ते और एक दूसरे से छीनकर खा जाते हैं।

एक कहहिं ऐसेहु समुदाई * शठहु तुम्हार दरिद्र न जाई
कहरत भट घायल तट गिरे * जहँ तहँ मनहु अर्धजल परे

कितने ही कहते हैं कि शठो, ऐसे ढेर में भी तुम्हारा दरिद्र नहीं जाता? किनारे पर पड़े हुए घायल योद्धा कराहते हैं, मानो जहाँ तहाँ अधजले मुर्दे पड़े हैं।

खैंचत आँत गीध तट भये * जनु बनसी खेलत चित दये

बहु भट बहे चढ़े खग जाहीं * जिमि नावरि खेलहिं जलमाहीं

किनारे होकर गीध आँतें खींचते हैं, मानो मन लगाये बंसी (मछली मारने की कँटिया) खेल रहे हैं। बहते हुए बहुत से योद्धाओं पर पक्षी चढ़े जा रहे हैं, जैसे जल में नाव पर क्रीड़ा करते हों।

योगिनि भरि भरि खप्पर साजहिं * भूतपिशाचवधू नभ नाचहिं
भट कपाल करताल बजावहिं * चामुण्डा नानाविधि गावहिं

योगिनियाँ खप्पर भर-भरकर साजती हैं, तथा भूतों और पिशाचों की स्त्रियाँ आकाश में नाचती हैं। योद्धाओं की खोपड़ियों को करताल बनाकर बजाती तथा चामुण्डा अनेक प्रकार से गाती हैं।

जम्बुक निकर कटक कटकटहीं * खाहिं हुआहिं अघाहिं दपटहीं
कोटिन रुण्ड मुण्ड बिन डोलहिं * शीश परे महि जय जय बोलहिं

सियारों की सेना कटकटाती है। वे वीरों का मांस खाते, हुआते, अघाते और डपटते हैं। शीश के बिना करोड़ों धड़ चलते और पृथ्वी में पड़े हुए शीश 'जय-जय' बोलते हैं।

छन्द

बोलहिं जो जयजय रुण्डमुण्ड प्रचण्ड शिर बिन धावहीं।
खप्परन खगगन अरुझि जूझहिं सुभट सुरपुर पावहीं॥
निशिचर वरूथ विमर्दि गर्जहिं भालु कपि दर्पित भये।
संग्राम आँगन सुभट सोवहिं राम शरनिकरन हये॥

रुण्डों के कटे हुए शीश 'जय-जय' बोलते और बिना शीश के प्रचण्ड रुण्ड दौड़ते हैं। खप्परों में पक्षी उलझकर मरते और लड़नेवाले सुभट स्वर्ग पाते हैं। निशाचरों का मर्दन कर रीछ और वानर दर्प के साथ गर्जते हैं। समर के आँगन में रामजी के बाणों से मारे हुए योद्धा सोते हैं।



हृदय विचारेसि दशवदन, भा निशिचर संहार।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार॥

रावण ने मन में विचारा कि निशाचरों का तो संहार हो गया। अब मैं अकेला हूँ और वानर व रीछ बहुत, इसलिए अपार माया करूँ।

देवन प्रभुहिं पयादे देखा * उर उपजा अतिक्षोभ विशेखा
सुरपति निजरथ तुरत पठावा * हर्ष सहित मातलि लै आवा

देवताओं ने जब श्रीरामचन्दजी को पैदल देखा, तब उनके हृदय में बड़ा भारी संकोच हुआ। इन्द्र ने तुरत अपना रथ भेजा और प्रसन्नतासमेत उसे इन्द्र का सारथी मातलि ले आया।

तेजपुञ्ज रथ दिव्य अनूपा * विहँसि चढ़े कोशलपुरभूपा

चञ्चल तुरँग मनोहर चारी * अजर अमर मनसमगतिकारी

तेज की राशि और उस अनुपम रथ पर हँसकर अवधपुरी के राजा रामजी चढ़े। उस रथ में बड़े चञ्चल और सुन्दर चार घोड़े जुते थे, जो अजर, अमर और मन के समान तेज चालवाले थे।

रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी * धाये कपि बल पाय विशेखी

सही न जाय कपिन की मारी * तब रावण माया विस्तारी

रथ पर चढ़े हुए रघुनाथजी को देख वानर विशेष बल पाकर दौड़े। जब वानरों की मार न सही गई, तब रावण ने माया फैलाई।

सो माया रघुवीरहिं बाँची * सब काहू मानी करि साँची

देखी कपिन निशाचर अनी * अनुज सहित बहु कोशलधनी

रघुनाथजी को छोड़कर सबने उस माया को सत्य ही मान लिया। वानरों ने देखा कि निशाचरों की सेना में छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कोशलधनी रामजी बहुत-से हैं।

छन्द

बहु राम लक्ष्मण देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लक्ष्मण जहँ सो तहँ चितवत खरे॥
निजसेन चकित बिलोकि हँसि शरचाप सजि कोशलधनी।
माया हरी हरि निमिषमहँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

बहुत से राम-लक्ष्मण देख वानर और रीछ मन में बहुत डरे, और लक्ष्मणसमेत सब जहाँ-तहाँ चित्र से खड़े हो देखने लगे। अपनी सेना को व्याकुल देख कोशलधनी रामजी ने धनुष-बाण साजा और पलभर में रावण की सब माया हर ली, जिससे सब वानरी सेना प्रसन्न हुई।


बहुरि राम सब तन चितै, बोले बचन गँभीर।
द्वन्द्व युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये सब वीर॥

फिर सबकी ओर देख रामजी गम्भीर वचन बोले कि सब वानर थक गये हैं, इससे अब केवल हमारा और रावण का युद्ध देखो।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा * विप्रचरणपंकज शिरनावा

तब लंकेश क्रोध उर छावा * गर्जि तर्जि करि सम्मुख आवा

ऐसा कहकर रघुनाथजी ने रथ चलाया और ब्राह्मणों के चरणकमलों में शीश नवाया। तब लंकेश रावण के हृदय में क्रोध छा गया। वह गर्ज-तर्जकर सामने आया।

जीतेउ जे भट संयुग माहीं * सुनु तापस मैं तिनसम नाहीं

रावण नाम जगत यश जाना * लोकपाल जेहि बन्दीखाना

उसने कहा—हे तपस्वी, तुमने जिन योद्धाओं को युद्ध में जीता है, उनके समान मैं नहीं हूँ। मेरा रावण नाम है, जिसका यश संसार जानता है और सब लोकपाल जिसके कैदखाने में हैं।

खर दूषण विराध तुम मारा * हतेउ व्याध इव बालि बिचारा
निशिचर सुभटसकल संहारा * कुम्भकर्ण घननादहिं मारा

तुमने खर-दूषण, विराध और बेचारे बालि को व्याध की भाँति छिपकर मार डाला, सब राक्षस योद्धाओं का संहार किया, और कुम्भकर्ण व मेघनाद को भी मारा।

आजु वैर सब लेहुँ निबाही * जो रणभूमि भागि नहिं जाही
आजु करौं खल काल हवाले * परेउ कठिन रावण के पाले

यदि युद्धभूमि से भाग न जाओगे तो आज मैं सब वैर चुका लूँगा। हे दुष्ट! आज मैं तुम्हें काल के हवाले करूँगा; क्योंकि अब तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो।

सुनि दुर्वचन कालवश जाना * विहँसि वचन कह कृपानिधाना
सत्य सत्य तव सब प्रभुताई * जनि जल्पसि देखब मनुसाई

उसके दुर्वचन सुनकर रामचन्द्र ने जाना कि यह काल के वश है। इससे दयानिधान रामजी ने हँसकर कहा कि तुम्हारी सब प्रभुता सत्य है। बको मत, मैं तुम्हारा पौरुष देखूँगा।

छन्द

जनि जल्पनाकरि सुयश नाशहिनीतिसुनु शठकरुक्षमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा॥
इक सुमनप्रद इक फलसुमन इक फलै केवल लागहीं।
इककहहिं करहिं न करहिं कहि करि एक करहिं न गावहीं॥

हे शठ! बकवाद करके सुयश का नाश मत कर। क्षमा कर अर्थात् चुप रह। नीति सुन। संसार में पाँड़र, आम और कटहल के समान तीन प्रकार के मनुष्य होतेहैं। उनमें से पाँड़र केवल फूल, आम फूल और फल दोनों तथा कटहल केवल फल देता है। ऐसे ही एक मनुष्य कहते हैं करते नहीं, दूसरे कहते और करते हैं तथा तीसरे कहते नहीं, किन्तु करते ही हैं।



रामवचन सुनि विहँसिकह, मोहिं सिखावहु ज्ञान।
वैर करत तब नहिं डरेहु, अब लागत प्रियप्रान॥

रामजी के वचन सुन हँसकर रावण ने कहा—मुझे ज्ञान सिखाते हो। तब तो वैर करते नहीं डरे, और अब प्राण प्यारे लगते हैं।

कहि दुर्वचन क्रोध दशकन्धर * कुलिशसमान लाग छाँड़न शर
नानाकार शिलीमुख धाये * दिशिअरुविदिशिगगनमहिछाये

इस प्रकार दुर्वचन कह रावण क्रोध करके वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेक प्रकार के आकारवाले बाण चले, जो दिशाओं, विदिशाओं, आकाश और पृथ्वी में छा गये।

अनलबाण छाँड़ेउ रघुवीरा * क्षणमहँ जरे निशाचर तीरा
छाँड़िसि तीव्र शक्ति खिसिआई * बाण संग प्रभु फेरि पठाई

रघुनाथजी ने जब अग्निबाण छोड़ा, तब क्षण भर में निशाचर के सब बाण जल गये। फिर खिसियाकर रावण ने एक पैनी शक्ति छोड़ी, जिसको प्रभु ने अपने बाण के साथ ही लौटा दिया।

कोटिन चक्र त्रिशूल पँवारे * तिलसमान प्रभु काटि निवारे
विफल होहिं रावण शर कैसे * खल के सकल मनोरथ जैसे

रावण ने करोड़ों चक्र और त्रिशूल मारे। उन्हें प्रभु ने तिल के समान काट डाला। रावण के बाण वैसे ही निष्फल हो जाते हैं, जैसे दुष्ट के सब मनोरथ।

तब शतबाण सारथिहि मारेसि * परेउ भूमि जय राम पुकारेसि
राम कृपाकर सूत उठावा * तब प्रभु परम क्रोधकहँ पावा

तब रावण ने सौ बाण मातलि सारथी के मारे। उनके लगने से मातलि भूमि में गिर पड़ा और 'रामजी की जय हो' पुकारा। रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया और बड़े क्रुद्ध हुए।

छन्द

भये क्रुद्ध युद्ध विरुद्ध रघुपति तूण शायक कसमसे।
कोदण्डधुनि सुनि चण्ड अति मनुजाद भयमारुतग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भूधर अति त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दशनगहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

युद्ध में विरुद्ध रघुनाथ क्रोधित हुए। उनके तरकस में बाण निकलने के लिए कसमसाने लगे। धनुष की प्रचण्ड ध्वनि सुन राक्षस डर गये। मन्दोदरी का हृदय काँपने लगा। कच्छप और पहाड़ काँपने, दिग्गज डर के मारे दाँतों से पृथ्वी पकड़कर चिग्घाड़ने और यह कौतुक देख देवता हँसने लगे।



तान्यो चाप जो श्रवणलगि, छाँड़े विशिख कराल।
रघुनायक शायक चले, लहलहात जनु व्याल॥

रामचन्द्रजी ने कान तक धनुष की डोरी खींचकर भयंकर बाण छोड़े। वे रामजी के बाण साँपों की भाँति फुंकारते हुए चले।

चले बाण सपक्ष जनु उरगा * प्रथमहिं हते सारथी तुरगा
रथ विभंजि हति केतु पताका * गर्जा अति अन्तरबल थाका

वे बाण पंखों समेत साँप की नाईं चले तथा पहले रावण के सारथी और घोड़ों को मार डाला, फिर रथ को तोड़ ध्वजा-पताका काट डाली। तब रावण बहुत गर्जा; परन्तु उसके भीतर का बल (हिम्मत) जाता रहा।

तुरत आनरथ चढ़ि खिसियाना * छाँड़ेसि अस्त्र शस्त्र विधिनाना
विफल होहिं सब उद्यम ताके * जिमि परद्रोहनिरत मनसाके

तुरत और रथ मँगाकर रावण उस पर चढ़ा और लजाया हुआ अनेक भाँति के अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगा। उसके सब उद्यम वैसे ही निष्फल हो जाते हैं, जैसे पराये द्रोह में लगे हुए पुरुष के मनोरथ।

तब रावण दश शूल चलाये * बाजि चारि महि मारि गिराये
तुरँग उठाय कोपि रघुनायक * छाँड़े अतिकराल बहु शायक

तब रावण ने दश शूल चलाये, जिन्होंने राम के रथ के चार घोड़े पृथ्वी में गिरा दिये। रघुनाथ ने घोड़ों को उठाकर क्रोध से बड़े भयंकर बाण छोड़े।

रावणशिरसरोजवनचारी * चले रघुनाथशिलीमुखधारी
दशदश बाण भाल दश मारे * निसरि गये चल रुधिर पनारे

रावण के सिररूप कमलों के वन में रघुनाथजी के बाण भौंरों की भाँति चले। रावण के दशों मस्तकों में रामजी ने दश-दश बाण मारे, जो पार निकल गये और रक्त के पनारे बह निकले।

स्रवत रुधिर धावा बलवाना * प्रभु पुनि कृत शर धनुसंधाना
तीस तीर रघुबीर पँवारे * भुजन समेत शीश महिडारे

रुधिर बहाता हुआ बलवान् रावण दौड़ा। तब स्वामी रामजी ने धनुष पर बाण चढ़ाया। रामजी ने तीस बाण मारकर भुजाओं समेत रावण के मस्तक पृथ्वी पर काट गिराये।

काटतही पुनि भये नवीने * राम बहोरि भुजा शिर छीने
कटित झटित पुनि नूतन भये * प्रभु बहु बार बाहु शिर हये

परन्तु कटते ही रावण के सिर और हाथ फिर नये उत्पन्न हो गये। तब रामजी ने फिर भुजाएँ और सिर काट डाले। रावण के सिर और हाथ कटते और फिर नवीन होते हैं। इस प्रकार बहुत बार रामजी ने उसकी भुजाएँ और सिर काटे।

पुनिपुनि प्रभु काटहिं भुजशीशा * अति कौतुकी कोशलाधीशा
रहे छाय नभ शिर अरु बाहू * मानहु अमित केतु अरु राहू

बड़े कौतुकी कोशलाधीश प्रभु बार-बार रावण की भुजाएँ और शीश काटते हैं। आकाश में मस्तक और भुजाएँ छा रही हैं, मानो अनगिनत राहु-केतु हैं।

छन्द

जनु राहु केतु अनेक नभपथ स्रवत शोणित राजहीं।

रघुवीर तीर प्रचण्ड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥
इक एक शर शिरनिकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर करनिकर जहँ तहँ विधुन्तुद पोहहीं ॥

मानो आकाश में रक्त बहते अनेक राहु-केतु सोहते हैं, जिनमें रघुनाथ के प्रचण्ड बाण लगने से वे पृथ्वी में नहीं गिरने पाते । एक एक बाण में कई कई सिर छिदे हैं, जो आकाश में उड़ते हुए ऐसे सोहते हैं, मानो क्रोधकर सूर्य ने अपनी किरणों में जहाँ-तहाँ बहुत से राहु पुह लिए हों ।



जिमिजिमिप्रभुहततासुशिर, तिमितिमिहोहिंअपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥

प्रभु ज्यों ज्यों उसके शीश काटते हैं, त्यों त्यों वे बहुत होते जाते हैं, जैसे विषयों के सेवन से काम बढ़ता है ।

दशमुख देखि शिरन की बाढ़ी * बिसरा मरण भई रिस गाढ़ी
गरजा मूढ़ महाअभिमानी * धायउ दशहु शरासन तानी

सिरों का बढ़ना देख रावण को मरना भूल गया और बड़ा क्रोधित हुआ । तब मूर्ख और बड़ा अभिमानी रावण गर्जा व दसों धनुष चढ़ाकर दौड़ा ।

समरभूमि दशकन्धर कोपा * बरषि बाण रघुपति रथ तोपा
दण्ड एक रथ देखि न परेऊ * जनु निहारमहँ दिनकर दुरेऊ

युद्धभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाणों की वर्षा से रथ सहित रामजी को ढक दिया। एक घड़ी तक रामजी का रथ न देख पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिपे हों ।

हाहाकार सुरन सब कीन्हा * तब प्रभु कोपि धनुष कर लीन्हा
शर निवारि रिपु के शिर काटे * ते दिशिविदिशि गगन महि पाटे

सब देवताओं ने हाहाकार किया । तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष हाथ में लिया । फिर रावण के बाण हटाकर शत्रु के मस्तक काट डाले, और उन्हें दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी में भर दिया ।

काटे शिर नभमारग धावहिं * जयजयधुनिकरिभयउपजावहिं
कहँ लक्ष्मण हनुमंत कपीशा * कहँ रघुवीर कोशलाधीशा

कटे हुए सिर आकाश में दौड़ते और 'जय-जय' कहकर भय उपजाते हैं । वे कहते हैं कि लक्ष्मण कहाँ हैं ? हनुमान् और सुग्रीव कहाँ हैं ? अयोध्यानाथ राम कहाँ हैं ?

छन्द

कहँ राम कहि शिरनिकर धावहिं देखि मर्कट भजि चले।
सन्धानि शर रघुवंशमणि तब शरनि शिर बेधे भले ॥

शिरमालिका लै कालिका तहँ वृन्द वृन्दन सों मिलीं।
करि रुधिरसरि मज्जन मनहु संग्रामवट पूजन चलीं॥

'राम कहाँ हैं?' कहते हुए रावण के कटे हुए सिर दौड़ते हैं। यह देख वानर भाग चले। तब रघुवंशमणि रामजी ने फिर बाण चढ़ाया और भली प्रकार से सिर छेद दिये। सिरों की मालाएँ लेकर वहाँ कालिका योगिनियों से मिलीं। मानो रक्त की नदी में नहाकर समररूपी बरगद को पूजने जाती हों।


पुनि रावण अति क्रोध करि, छाँड़ी शक्ति प्रचण्ड।
सम्मुख चली विभीषणहिं, मनहु कालकोदण्ड॥

फिर रावण ने क्रोधकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी, जो कालदण्ड के समान विभीषण के सामने चली।

आवत देखि शक्तिवर धारा * प्रणतारतिहर विरद सँभारा
तुरत विभीषण पाछे मेला * सम्मुख राम सह्यो सो शेला

उत्तम धारवाली शक्ति आती देख रामजी ने शरणागत के दुःख के हरने की विरद सँभाली। तुरन्त विभीषण को पीछे ढकेलकर आप सामने हो शक्ति की चोट सही।

लगी शक्ति मूर्च्छा कछु भई * प्रभुकृत खेल सुरन विकलई
देखि विभीषण प्रभु श्रम पायउ * गहि कर गदा क्रोध करि धायउ

शक्ति के लगनें से प्रभु कुछ मूर्च्छित से हो गये। प्रभु के इस कौतुक से देवताओं को व्याकुलता हुई। प्रभु ने क्लेश पाया, यह देख विभीषण हाथ में गदा ले क्रोध करके दौड़े।

रे अभाग्य शठ मन्द कुबुद्धे * तैं सुर नर मुनि नाग विरुद्धे
सादर शिव कहँ शीश चढ़ाये * एक एक के कोटिन पाये

विभीषण बोले—अरे अभागे, शठ, मन्द, दुर्बुद्धि! तूने देवता, मनुष्य, मुनि और नाग—सबसे वैर किया है। शिवजी को आदर-समेत सिर चढ़ाये हैं, इससे तूने एक-एक सिर के करोड़ों सिर पाये।

तेहिकारणखलअब लगिबाचा * अब तव काल शीशपर नाचा
रामविमुख शठ चहसि संपदा * अस कहि हनेसि माँझउर गदा

अरे दुष्ट! इसी कारण तू अब तक बचा रहा। परन्तु अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। शठ, श्रीरामजी से विमुख होकर तू संपदा या विजय चाहता है। ऐसा कह विभीषण ने रावण के हृदय में गदा का प्रहार किया।

छन्द

उर माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परो।
दशबदन शोणित स्रवत पुनि संभारि धायो रिसभरो॥

दोउ भिरे अतिबल मल्लयुद्ध बिलोकि एकहिं इक हने।
रघुबीर बल गर्वित बिभीषण घात नहिं ताकी गने॥

हृदय में कठोर भयंकर गदा का प्रहार लगते ही रावण पृथ्वी में गिर पड़ा। दसों मुखों से रक्त बहाता हुआ क्रोधभरा रावण फिर सँभलकर दौड़ा। तब बड़े बलवान् दोनों वीर भिड़कर कुश्ती लड़ने और ताक-ताककर एक दूसरे को मारने लगे। रघुनाथ के बल से गर्वित हो विभीषण उसकी मार को कुछ नहीं गिनते।


उमा बिभीषण रावणहिं, सन्मुख चितव कि काउ।
लरत सो काल समान अब, श्रीरघुबीर प्रभाउ॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठा सकते थे? परन्तु इस समय काल के समान लड़ रहे थे। यह सब रामजी का प्रभाव था।

देखा श्रमित बिभीषण भारी * धाये हनूमान गिरिधारी
रथ तुरंग सारथी निपाता * हृदय माँझ मारेउ तेहि लाता

विभीषण को बहुत थका देख हनुमान्‌जी पहाड़ लेकर दौड़े। उन्होंने उससे रावण के रथ-समेत घोड़े और सारथी को मार गिराया। रावण के हृदय में भी लात मारी।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता * गयउ बिभीषण जहँ जनत्राता
पुनि रावण तेहि हतेउ प्रचारी * चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी

लात लगने से रावण के अंग तो बहुत काँपे, परन्तु वह खड़ा रहा। तब विभीषण जहाँ सेवकों के रक्षक रामजी थे, वहाँ गये। फिर रावण ने उन्हें ललकारकर मारा। तब हनुमान् पूँछ फैलाकर आकाश को चले गये।

गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना * पुनि नभ भिरेउ प्रबल हनुमाना
लरत अकाश जुगल सम योधा * हनत एक एकहिं करि क्रोधा

पूँछ पकड़कर रावण हनुमान् के साथ ही उड़ गया। फिर बलवान् हनुमान्‌जी आकाश में उससे लड़ने लगे। दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते और क्रोध से एक दूसरे को मारते हैं।

शोभित नभ छलबल बहु करहीं * कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं
बुधि बल राक्षस परै न पारा * तब मारुतसुत प्रभुहिं सँभारा

आकाश में दोनों बहुत छल-बल करते हुए सोहते हैं, मानो कज्जलगिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बल से राक्षस रावण से पार न पा सके, तब पवनकुमार ने स्वामी रामजी का स्मरण किया।

छन्द

संभारि श्रीरघुबीर धीर प्रचारि कपि रावण हन्यो।

महि परत पुनि उठि लरत देवन युगल कहँ जय जय भन्यो ॥
हनुमन्त संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रणमत्त रावण सकल सुभट प्रचण्ड भुजबल दलमले ॥

वीर हनुमान् ने रघुनाथ का स्मरण करके रावण को ललकारा और ऐसा प्रहार किया कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण फिर उठा और लड़ा। देवताओं ने दोनों की 'जय' कही, अर्थात् धन्य-धन्य कहा। हनुमान् को क्लेश में देख वानर और रीछ क्रोध करके चले; परन्तु युद्ध में मतवाले रावण ने अपने प्रचण्ड भुजदण्डों से सब योद्धा दलमल डाले।



राम प्रचारे वीर सब, धाये कीश प्रचण्ड ।
कपिदल विपुल विलोकि तेइँ, कीन्ह प्रकट पाखण्ड ॥

रामजी के ललकारने पर सब वीर वानर दौड़े। तब रावण ने वानरी सेना बहुत देखकर माया प्रकट की।

अन्तर्द्धान भयो क्षण एका * पुनि प्रकटेसि खल रूप अनेका
रघुपति कटक भालु कपि जेते * जहँ तहँ प्रकट दशानन तेते

क्षणभर अन्तर्द्धान (गायब) रहकर दुष्ट रावण ने अनेक रूप प्रकट किये। रघुनाथ की सेना में जितने रीछ और वानर थे, उतने ही रावण प्रकट हो गये।

देखे कपिन अमित दशशीशा * भागे भालु विकल भट कीशा
चले बलीमुख धरहिं न धीरा * त्राहि त्राहि लक्ष्मण रघुबीरा

बहुत से रावण देखे तो रीछ और वानर योद्धा व्याकुल होकर भागे। वानर अधीर होकर कहते हैं—'हे लक्ष्मण! हे रघुनाथ! रक्षा कीजिए' और भागते हैं।

दश दिशि कोटिन धावहिं रावन * गर्जहिं घोर कठोर भयावन
डरे सकल सुर चले पराई * जय की आश तजहु रे भाई

दशों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते और बड़ी कठोरता से घोर, कठोर और भयानक शब्द करके गरजते हैं। सब देवता डरकर भाग चले और बोले—भाइयो, जय की आशा छोड़ो।

सब सुर जिते एक दशकन्धर * अब बहु भये तकहु गिरिकन्दर
रहे विरंचि शम्भु मुनि ज्ञानी * जिन जिन प्रभु की महिमा जानी

एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था, और अब तो बहुत से हो गये, इससे पहाड़ों की कन्दराएँ देखो अर्थात् उनमें जाकर छिप रहो। ब्रह्मा, शिव और जो ज्ञानी मुनि प्रभु की महिमा जानते थे।

छन्द

जानेउ प्रताप ते रहे निर्भय कपिन रिपु मानेउ फुरे ।

चला निर्खल मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे॥
हनुमन्त अंगद नील नल बलवन्त अति रणाँकुरे।
मर्दहिं दशानन कोटि कोटिन कपटभूभट आँकुरे॥

और भी जिन्होंने प्रभु का प्रताप जाना, वे निडर रहे। वानरों ने यह सच समझ लिया कि शत्रु बहुत हो गये, इससे हलचल पड़ गई। वानर और रीछ कहते हैं—हे कृपालु रामजी, हम भय से व्याकुल हैं। हमारी रक्षा करो। युद्ध में हनुमान्, अंगद, नील और नल कपट की भूमि से उत्पन्न करोड़ों रावणों को मर्द डालते हैं।

सुर वानर देखे विकल, हँसे कोशलाधीश।
साजिशरासन निमिषमहँ, हरे सकल दशशीश॥

देवतों और वानरों को व्याकुल देख, कोशलराज हँसे और धनुष साजकर पलभर में सब रावण मिटा दिये।

प्रभु क्षण में माया सब काटी * जिमि रवि उदय जाय तम फाटी
रावण एक देखि सुर हर्षे * विपुल सुमन पुनि प्रभुपर वर्षे

प्रभु ने क्षण भर में सब माया काट डाली, जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार मिट जाता है। एक रावण देख देवता प्रसन्न हुए और प्रभु पर बहुत से फूल बरसाये।

भुज उठाय रघुपति कपि फेरे * फिरे एक एकनि के टेरे
प्रभु बल पाय भालु कपि धाये * तरल तमकि संयुग महिआये

भुजाएँ उठाकर रघुनाथ ने वानरों को लौटाया। तब एक दूसरे के पुकारने से लौटे। प्रभु का बल पाकर रीछ और वानर दौड़े तथा तमककर तेजी से युद्धभूमि में आ गये।

करत प्रशंसा देवन देखे * भयउँ एक मैं इनके लेखे
शठहु सदा तुम मोर मरायल * असकहिकोपि गगनपथ धायल

देवतों को रामजी की प्रशंसा करते देख रावण ने सोचा, मैं इनके लेखे एक हो गया। फिर "हे शठो! तुम सदा मेरे हाथ से मरनेवाले तुच्छ हो" यह कह, क्रोध कर रावण आकाश को दौड़ा।

हाहाकार करत सुर भागे * शठहु जाहु कहँ मोरे आगे
देखि विकल सुर अंगद धाये * कूदि चरणगहि भूमि गिराये

तब हाहाकार करते हुए देवता भागे। रावण बोला—शठो, मेरे आगे से कहाँ जाओगे। देवतों को व्याकुल देख अंगद दौड़े और कूदकर उन्होंने रावण की टाँगें पकड़ लीं तथा उसे पृथ्वी पर पटक दिया।

छन्द

गहि भूमि पार्यो लात मार्यो बालिसुत प्रभुपहँ गयो।

संभारि उठि दशकंध घोर कठोर करि गर्जत भयो ॥
करि दाप धनुष चढ़ाय दश सन्धानि शर बहु वर्षई।
किये सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हर्षई ॥

वालि के पुत्र अंगद ने पैर पकड़कर रावण को भूमि में गिरा दिया और लात मारकर प्रभु के पास गये। रावण सँभलकर उठा और कठोर भयंकर शब्द से गर्जा। फिर डाटकर दशों धनुष ताने और उनमें बाण चढ़ाकर बाणवर्षा करने लगा। सब योद्धाओं को घायल और भय से विकल किया तथा अपना बल देखकर प्रसन्न हुआ।



तब रघुपति लंकेश के, शीश भुजा शर चाप।
काटे भये बहोरि जिमि, कर्म मूढ़ के पाप ॥

तब रघुनाथ ने रावण के शीश, भुजा, बाण व धनुष काट डाले; पर वे पहले के से फिर हो गये, जैसे मूर्ख के पापकर्म नहीं मिटते।

शिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी * भालु कपिन रिस भई घनेरी
मरत न मूढ़ कटे भुज शीशा * धाये कोपि भालु अरु कीशा

शत्रु के शीशों और भुजाओं को बढ़ती देख रीछों और वानरों को बड़ा क्रोध हुआ। भुजा और शीश कटने पर भी रावण नहीं मरता, यह देख, क्रोधकर रीछ और वानर दौड़े।

बालितनय मारुति नल नीला * द्विविद मयंद महाबलशीला
विटप महीधर करहिं प्रहारा * सोइ गिरि तरु गहि कपिन सो मारा

वालिपुत्र अंगद, हनुमान्, नल, नील, द्विविद, मयन्द ये बड़े बलवान् वानर वृक्षों और पहाड़ों से प्रहार करते हैं और उन वृक्ष आदि को पकड़कर उन्हीं से रावण वानरों को मारता है।

एक नखन रिपु वपुष विदारी * भागि चलहिं इक लातन मारी
तब नल नील शिरन चढ़ि गयऊ * नखन ललाट विदारत भयऊ

कुछ वानर नखों से शत्रु का शरीर फाड़ते और कुछ लात मारकर भागते हैं। तब नल और नील रावण के सिर पर चढ़ गये और नखों से उसका माथा फाड़ डाला।

रुधिर विलोकि सकोपि सुरारी * तिनहिं गहन को भुजा पसारी
गहे न जाहिं शिरन पर फिरहीं * जनु युग मधुप कमलवन चरहीं

जब रक्त देखा तो देवताओं के वैरी रावण ने क्रोधकर उनके पकड़ने को भुजाएँ फैलाईं। वे पकड़े नहीं जाते, मस्तकों पर घूमते हैं, मानो कमलों के वन में दो भौंरे घूम रहे हों।

कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी * महि पटकत गहि भुजा मरोरी
पुनि सकोप दश धनु कर लीन्हा * शरन मारि घायल कपि कीन्हा

फिर क्रोध से कूदकर रावण ने दोनों को पकड़ा और पृथ्वी में पटककर उनकी भुजाएं मरोड़ दीं। फिर क्रोधकर हाथ में दश धनुष लिये और बाण मारकर वानरों को घायल किया।

हनुमदादि मूर्च्छित सब बन्दर * पाय प्रदोष हर्ष दशकन्धर
मूर्च्छित देखि सकल कपि बीरा * जाम्बवन्त धावा रणधीरा

हनुमान् आदि सब वानर मूर्च्छित हो गये, और सन्ध्या समय पाकर रावण प्रसन्न हुआ। सब वानर वीरों को मूर्च्छित देख युद्ध में निपुण जाम्बवान् दौड़े।

संग भालु भूधर तरु धारी * मारन लगे प्रचारि प्रचारी
भयो क्रोध रावण बलवाना * गहि पद महि पटके भट नाना
देखि भालुपति निज दल घाता * तासु हृदय महँ मारेउ लाता

उनके साथ रीछ वृक्ष और पहाड़ ले-लेकर ललकारते हुए रावण पर प्रहार करने लगे। बलवान् रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उसने पैर पकड़कर अनेक योद्धाओं को पृथ्वी पर पटक दिया। भालुओं के राजा जाम्बवान् ने अपनी सेना का नाश देख उसकी छाती में लात मारी।

छन्द

उर लात घात प्रचण्ड लागत विकल रथ ते महि गिरा।
गहि भालु बीसहु कर मनहु कमलनि बसे निशि मधुकरा॥
मूर्च्छित बहोरि बिलोकि पद हति भालुपति प्रभु पहँ गयो।
निशि जानि स्यन्दन घालि तेहि तब सूत यतन करत भयो॥

छाती में लात की चोट लगते ही रावण व्याकुल हो रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके बीसों हाथों में रीछ ऐसे सोहते थे, जैसे रात को कमलों में बन्द भौंरे। रावण को मूर्च्छित देख ऋक्षराज उसे लात मार प्रभु के पास गये। रात्रि जान सारथी रावण को रथ में डाल लंका ले गया, और उसकी मूर्च्छा दूर करने का उपाय किया।


मूर्च्छा बिगत भालु कपि, सब आये प्रभु पास।
सकल निशाचर रावणहिं, घेरि रहे अतित्रास॥

मूर्च्छा दूर होने पर सब रीछ और वानर प्रभु के पास आये। उधर बड़े भय से सब राक्षस रावण को घेरे हैं।

तेहि निशि महँ सीता पहँ जाई * त्रिजटा कहि सब कथा बुझाई
शिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी * सीता उर भइ त्रास घनेरी

उसी रात को त्रिजटा ने सीताजी के पास जाकर सब कथा कह समझाई। शत्रु रावण के सिरों और भुजाओं की बढ़ती सुन सीताजी के हृदय में बड़ा भय हुआ।

मुख मलीन उपजी मन चीता * त्रिजटा सन बोली तब सीता
होइहि कहा कहसि किन माता * केहि विधिमरहिविश्वदुखदाता

सीताजी का मुख उदास हो गया। मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं—हे माता, अब बताओ, क्या होगा? संसार का दुःख देनेवाला रावण कैसे मरेगा?

रघुपतिशर शिर कटे न मरई * विधि विपरीत चरित सब करई
मोर अभाग्य जियावत वोही * जेहि हौं हरिपदकमल बिछोही

रघुनाथ के बाण से भी सिर कटने से यदि वह नहीं मरता तो विधाता सब उलटे ही काम करते हैं। मेरा अभाग्य ही उसे जिलाता है, जिसने मुझे रामजी के चरणकमलों से छुड़ाया।

जेइँ कृत कनक कपटमृग झूठा * अजहुँ सो दैव मोहिं पर रूठा
जेहिविधि मोहिंदुखदुसहसहावा * लछमण कहँ कटु वचन कहावा

जिसने सोने का झूठा मृग बनाया, वह दैव अब भी मुझ पर रूठा है। जिस विधाता ने मुझे न सहने योग्य दुःख सहाया और लछमण को कड़ुए वचन मुझसे कहाये,

रघुपति विरह विषम शर भारी * तकि तकि बार बार मोहिं मारी
ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना * सो विधि ताहि जियाव न आना

जिसने रघुनाथजी के कठिन विरहरूप बड़े-बड़े बाणों से बार-बार मुझे ताक-ताककर मारा और ऐसे भी दुख में जिसने मेरे प्राण रक्खे, वह विधाता ही उसे जिलाता है; और कोई नहीं।

बहुविधि करति विलाप जानकी * करि करि सुरति कृपानिधानकी
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी * उर शर लागत मरहि सुरारी
ताते प्रभु उर हतैं न तेही * इहि के हृदय बसति वैदेही

इस प्रकार कृपानिधान रामजी की याद कर-कर जानकी बहुत भाँति विलाप करती हैं। तब त्रिजटा ने कहा—हे राजकुमारी, छाती में बाण लगते ही देवशत्रु रावण मर जायगा। उसके हृदय में जानकीजी आप बसती हैं, इसी से स्वामी रामजी उसके हृदय में बाण नहीं मारते।

छन्द

इहि के हृदय बस जानकी उर जानकी मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बाण सबको नास है॥
अस सुनत हर्ष विषाद उर अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु इहि भाँति सुन्दरि तजहु तुम संशय महा॥

'इसके हृदय में जानकी, और जानकी के हृदय में मैं, और मेरे हृदय में अनेक लोक

डसते हैं, इससे बाण लगते ही सबका नाश हो जायगा' यह विचार रामजी उसे नहीं मारते। यह सुन जानकी को हर्ष और शोक दोनों हुए, जिन्हें देख त्रिजटा ने कहा—हे सुन्दरी, शत्रु इस प्रकार मरेगा, तुम सन्देह छोड़ो।


काटत शिर होइहै विकल, छुटि जाय जब ध्यान।
तब रावण के हृदय शर, मारहिं कृपानिधान॥

सिर काटने से रावण व्याकुल होगा और तुम्हारा ध्यान छूटेगा, तब कृपानिधान उसके हृदय में बाण मारेंगे।

अस कहि बहु प्रकार समुझाई * पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई
राम स्वभाव सुमिरि वैदेही * उपजी विरह व्यथा अति तेही

ऐसा कहकर, बहुत प्रकार से समझाकर त्रिजटा अपने घर चली गई। रामजी का स्वभाव स्मरणकर जानकीजी को वियोग का बड़ा दुःख हुआ।

निशिहिशशिहिनिंदतिबहुभाँती * भइ युग सरिस बिहाति न राती
करति विलाप मनहिं मन भारी * राम विरह जानकी दुखारी

जानकीजी रात और चन्द्रमा की बहुत भाँति निन्दा करती हैं। रात उनके लिए युग के समान हो गई, जिसका अन्त ही नहीं होता। रामजी के वियोग में जानकीजी दुखी हैं, मन ही मन बड़ा विलाप करती हैं।

जब अति भयो विरह उर दाहू * फरकेउ वाम नयन उर बाहू
शकुन विचारि धरेउ उर धीरा * अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा

जब हृदय में वियोग से बड़ी जलन हुई, तब उनकी बाईं आँख, हृदय और भुजा फड़कने लगीं। इसे सगुन विचारकर सीताजी ने हृदय में धीरज धरा कि अब कृपालु रघुनाथ मुझे अवश्य मिलेंगे।

इहाँ अर्द्धनिशि रावण जागा * निज सारथिसन खीझन लागा
शठ रणभूमि छुड़ायहु मोहीं * धिकधिकअधममन्दमति तोहीं

यहाँ आधी रात को रावण मूर्च्छा से जागा तो अपने सारथी से क्रोधित होकर कहने लगा—अरे दुष्ट! तूने मुझे युद्धभूमि से अलग कर दिया! हे मन्दमति नीच! तुझे धिक्कार है।

तेहि पदगहिबहुविधि समुझावा * भोर भये रथ चढ़ि पुनि आवा
सुनि आगमन दशानन केरा * कपिदल खरभर भयउ घनेरा
जहँ तहँ भूधर विटप उपारी * धाये कटकटाय भट भारी

सारथी ने चरण पकड़कर बहुत तरह से समझाया। तब प्रातःकाल रथ पर चढ़कर रावण फिर युद्धभूमि में आया। रावण का आना सुन वानरों की सेना में बड़ी खलभली मच गई। जहाँ तहाँ पर्वत और वृक्ष उखाड़-उखाड़ बड़े योद्धा वानर कटकटाकर दौड़े।

धाये जो मर्कट विकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाय दल बलवन्त कीशन घेरि पुनि रावण लियो।
दुहुँदिशिचपेटन मारिनखनविदारि तेहिव्याकुल कियो॥

भयंकर वानर और रीछ हाथों में विकराल पर्वत लेकर दौड़े और बड़े क्रोध से उनके प्रहार करते ही राक्षस भाग चले। बलवान् वानरों ने सेना को भगाकर रावण को घेर लिया, दोनों ओर चपेटों से मार और नखों से फाड़कर उसे व्याकुल कर दिया।


देखि महा मर्कट प्रबल, रावण कीन्ह विचार।
अन्तर्हित होइ निमिष महँ, कृत माया विस्तार॥

वानरों को प्रबल देख रावण ने पहले विचार किया, फिर अन्तर्द्धान होकर पल भर में माया फैला दी।

छन्द

जब कीन्ह तेइँ पाखण्ड * भे प्रकट जन्तु प्रचण्ड॥
बेताल भूत पिशाच * कर धरे धनु नाराच॥

जब उसने माया प्रकट की, तब प्रचण्ड जीव—बेताल, भूत, पिशाच हाथ में धनुष-बाण लिये हुए प्रकट हो गये।

योगिनि गहे करवाल * इक हाथ मनुजकपाल॥
करि सद्यशोणित पान * नाचहिं करहिं गुणगान॥

योगिनियाँ एक हाथ में खड्ग और एक में मनुष्य की खोपड़ी लिये रक्त पीकर नाचने-गाने लगीं।

धरु मारु बोलहिं घोर * रहि पूरि ध्वनि चहुँओर॥
मुखबाइ धावहिं खाइ * तब लगे कीश पराइ॥

'पकड़ो मारो' की भयंकर ध्वनि गूँज उठी। वे मुँह फैलाकर दौड़ते और खाते हैं, यह देख वानर भागे।

जहँ जाहिं मर्कट भागि * तहँ बरत देखहिं आगि॥
भे विकल बानर भालु * पुनि लगे वर्षन बालु॥

वानर जहाँ भागकर जाते, वहीं जलती आग देखते हैं। वानर और रीछ व्याकुल हुए। रावण उन पर बालू बरसाने लगा।

जहँ तहँ थकित कर कीश * गर्जेउ बहुरि दशशीश॥

लक्ष्मण कपीश समेत * भे सकल वीर अचेत ॥

जहाँ तहाँ वानरों को थकाकर रावण गर्जा । लक्ष्मण और सुग्रीव समेत सब वीर अचेत हो गये ।

हा राम हा रघुनाथ * कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
यहि विधि सकल बलतोरि * तेइँ कीन्ह कपट बहोरि ॥

'हा राम ! हा रघुनाथ !' कहकर योद्धा हाथ मलते हैं । इस प्रकार सबका बल तोड़ रावण ने फिर कपट किया अर्थात् माया फैलाई ।

प्रकटेसि विपुल हनुमान * धाये गहे पाषान ॥
तिन राम घेरे जाइ * चहुँ दिशि बरूथ बनाइ ॥

बहुत-से हनुमान् प्रकट किये जो पत्थर लेकर दौड़े और चारों ओर से झुण्ड बनाकर उन्होंने रामजी को घेर लिया ।

मारहु धरहु जनि जाय * कटकटैं पूँछ उठाय ॥
दश दिशि लँगूर विराज * तेहि मध्य कोशलराज ॥

'मारो, पकड़ो, जाने न पावें' कह पूँछ उठाकर कटकटाने लगे । दशों दिशाओं में वानर और उनके बीच अयोध्यानाथ रामजी हैं ।

छन्द

तेहि मध्य कोशलराज सुन्दर श्यामतनु शोभा लही ।
जनु इन्द्रधनुष अनेक की बरवारि तुङ्गतमालही ॥
प्रभु देखि हर्ष विषाद उर सुर बदत जय जय जय करी ।
रघुवीर एकहि तीर कोपि निमेष महँ माया हरी ॥

उनके बीच अयोध्यानाथ राम के सुन्दर श्याम शरीर की शोभा ऐसी है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के चारों ओर अनेक इन्द्रधनुषों की उत्तम बारी हो । प्रभु को देख हर्ष और शोक के वश देवता उनकी 'जय' कहने लगे । तब रामजी ने क्रोध करके पल भर में एक ही बाण से सब माया हर ली ।

माया विगत कपि भालु हर्षे विटप गिरि गहि सब फिरे ।
शरनिकर छाँड़े राम रावण बाहु शिर पुनि महि गिरे ॥
श्रीराम रावण समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं ।
शत शेष शारद निगम आगम तदपि पार न पावहीं ॥

माया का नाश होने पर वानर व रीछ प्रसन्न हुए । वे वृक्ष और पर्वत लेकर लौट पड़े । रामजी ने ऐसे बाण छोड़े, जिनसे रावण की भुजाएँ और सिर कटकर पृथ्वी में गिर पड़े ।

राम और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और शास्त्र अनेक कल्पों तक गावें तो भी पार न पावें।



कहे तासु गुणगण कछुक, जड़मति तुलसीदास।
निजपौरुषअनुसार जिमि, मशक उड़ाहिं अकास॥

उन रामजी के गुण जड़बुद्धि तुलसीदास ने कुछ कहे। जैसे बल के अनुसार मच्छड़ आकाश में उड़ते हैं, वैसे ही यह कवि का प्रयास है।

काटे शिर भुज बार बहु, मरत न भट लंकेश।
प्रभुक्रीड़ित मुनि सिद्ध सुर, व्याकुल देखि कलेश॥

रामजी ने बहुत बार योद्धा रावण के सिर और भुजाएँ काटीं; परन्तु वह नहीं मरा। प्रभु का खेल देख मुनि, सिद्ध और देवता क्लेश से व्याकुल हो उठे।

काटत बढ़त शीश समुदाई * जिमि प्रति लाभलोभ अधिकाई
मरै न रिपु श्रम भयउ विशेखा * राम विभीषण तन तब देखा

काटने से सिर बढ़ते हैं, जैसे लाभ होने से लोभ। शत्रु रावण नहीं मरता। जब बड़ा परिश्रम हुआ, तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा।

उमा काल मरु जाकी इच्छा * सो प्रभु जन की प्रेमपरिच्छा
सुनु सर्वज्ञ चराचरनायक * प्रणतपाल सुरमुनिसुखदायक

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, काल भी जिनकी इच्छा से मर जाता है, वे प्रभु दास के प्रेम की परीक्षा करते हैं। विभीषण बोले—हे सर्वज्ञ, चराचरनायक, प्रणतपाल, सुर-मुनिसुखदायक।

नाभी कुण्ड सुधा बस याके * नाथ जियत रावण बल ताके
सुनत विभीषण वचन कृपाला * हर्षि गहे कर बाण कराला

हे नाथ! रावण की नाभि में अमृत का कुण्ड है, उसी के बल से यह जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु राम ने प्रसन्न होकर हाथ में एक भयंकर बाण लिया।

अशकुन अमित होनलगे नाना * रोवहिं बहु शृगाल खर श्वाना
बोलहिं खग जग आरति हेतू * प्रकट भये नभ जहँ तहँ केतू

उस समय अनेक प्रकार के असगुन होने लगे—बहुत-से सियार, गधे और कुत्ते रोने लगे। संसार में दुःख के कारणरूप पक्षी बोलने लगे और जहाँ तहाँ आकाश में केतु प्रकट हो गये।

दशदिशि दाह होन तब लागा * भयउ पर्वबिन रविउपरागा
मन्दोदरि उरकम्पित भारी * प्रतिमा स्रवहिं नयनमग वारी

दशों दिशाएँ जलने लगीं। पर्व (अमावस्या) के बिना ही सूर्यग्रहण लग गया। मन्दोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। देवमूर्तियों की आँखों से आँसू बहने लगे।

छन्द

प्रतिमा स्रवहिं पविपात नभ अतिबात वह डोलत मही।
बर्षहिं बलाहक रुधिर कच रज अशुभता सक को कही॥
उतपातअमित बिलोकिसुरमुनि बिकलकहिजयजयजये।
सुर सभय जानि कृपालु रघुपति चाप शर जोरत भये॥

मूर्तियों के नेत्रों से आँसू बहने, आकाश से वज्रपात होने, पवन चलने और पृथ्वी काँपने लगी। मेघ रक्त, बाल और धूल बरसाते हैं। उन अपशकुनों को कौन कह सकता है? बहुत से उत्पात देख देवता और मुनि व्याकुल हो रामजी की 'जय-जय' करने लगे। देवों को डरा हुआ जानकर कृपालु रघुनाथ ने धनुष में बाण चढ़ाये।



आकर्षेउ धनु श्रवण लगि, छाँड़े शर इकतीस।
रघुनायक शायक चले, मानहु काल फणीस॥

कान तक धनुष खींचकर भगवान् ने इकतीस बाण छोड़े। रामजी के बाण ऐसे चले, जैसे काले साँप।

शायक एक नाभिसर शोषा * अपर लगे शिर भुज करि रोषा
लै शिर बाहु चले नाराचा * शिरभुजहीन रुण्ड महि नाचा

क्रोध करके एक बाण से रामचन्द्र ने नाभि का अमृत-कुण्ड सोख लिया। अन्य बाण उसके सिरों और भुजाओं में लगे। सिरों और भुजाओं को लेकर बाण उड़ चले तथा सिर और हाथों से हीन होकर रुण्ड पृथ्वी में नाचने लगा।

धरणि धसै धर धाव प्रचण्डा * तब प्रभु शरहत कृत युग खण्डा
गर्जेउ मरत घोर रव भारी * कहाँ राम रण हतौं प्रचारी

जब उस प्रचण्ड रुण्ड के दौड़ने से पृथ्वी धँसने लगी, तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये। मरते समय वह भयंकर शब्द से गर्जा और बोला—राम कहाँ हैं? उनको ललकार कर मारूँ।

डोली भूमि गिरत दशकन्धर * क्षुभितासिन्धु सरिदिग्गजभूधर
परेउ धरणि दोउ खण्ड बढ़ाई * चापि भालु मर्कट समुदाई

रावण के गिरने से पृथ्वी हिलने, समुद्र और नदियाँ खलभलाने तथा दिग्गज और पर्वत काँपने लगे। शरीर के दोनों खण्ड बढ़ाकर रीछों और वानरों को दाबकर वह रुण्ड पृथ्वी में गिरा।

मन्दोदरि आगे भुजशीशा * धरि शर चले जहाँ जगदीशा

प्रविशे सब निषंग महँ आई * देखि सुरन दुंदुभी बजाई

रामजी के बाण रावण की भुजाओं और सिरों को मन्दोदरी के आगे रखकर जहाँ संसार के स्वामी थे वहाँ चले और तरकस में पैठ गये। यह देख देवताओं ने विजय का डंका बजाया।

तासु तेज समान प्रभु आनन * हर्षे देखि शम्भु चतुरानन

जय जय धुनि पूरित ब्रह्मण्डा * जय रघुवीर प्रबल भुजदण्डा

बर्षहिं सुमन देव मुनिवृन्दा * जय कृपालु जय जयति मुकुन्दा

उसका तेज प्रभु के मुख में पैठ गया, यह देख शिव और ब्रह्मा प्रसन्न हुए। रामजी की जय-जयकार का शब्द ब्रह्माण्ड भर में भर गया कि रघुनाथ के प्रबल भुजदण्डों की जय हो। देवता और मुनि फूल बरसाते और कहते हैं—दयालु मुकुन्द (मुक्तिदाता) की जय हो।



जय कृपाकन्द मुकुन्द द्वन्द्वहरन शरन सुखदा प्रभो।
खलदलविदारण परमकारण कारुणीक सदा विभो॥
सुर सुमन वर्षत सकल हर्षत बाजि दुंदुभि गहगही।
संग्राम आँगन राम अंग अनंग बहु शोभा लही॥

"हे दयानिधान, मुक्तिदायक, दुःखहारी, शरणसुखदायक, प्रभु, दुष्टों के नाशक, परमकारणरूप, सदैव करुणाकर, विभु, आपकी जय हो"—इस प्रकार कहकर सब देवता फूल बरसाते और प्रसन्न हो गहगहे नगाड़े बजाते हैं। युद्ध के आँगन में रामजी के अंग से बहुत से कामदेवों की शोभा पाई।

शिर जटामुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरिपर तड़ित पटल समेत उड़ुगण भ्राजहीं॥
भुजदण्ड शर कोदण्ड फेरत रुधिरकन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमालतरु पर बैठि सब सुख आपने॥

शिर में जटामुकुट के बीच-बीच फल बहुत सुन्दर सोहते हैं, मानो नीले पर्वत पर बिजलियों की पाँतोंसमेत तारे सोहते हों। रामजी भुजदण्डों से धनुष-बाण फेरते हैं। रुधिर की छींटें शरीर में ऐसी सोहती हैं, मानो तमालवृक्ष पर लाल पक्षी सुख से बैठे हों।



कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृन्द।
हर्षे वानर भालु सब, जय सुखधाम मुकुन्द॥

प्रभु ने कृपादृष्टि बरसाकर देवों को अभय किया। तब वानर और रीछ प्रसन्न हो बोले—'सुख के सागर मुकुन्द की जय हो'।

पतिभुज शिर देखत मन्दोदरि * मूर्छित विकल धरणि महँ खसि परि

युवतिवृन्द रोवत उठि धाईं * तेहि उठाय रावण पहँ लाईं

पति की भुजाएँ और सिर देख मन्दोदरी विकल और मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। रनिवास की स्त्रियाँ रोती हुई उठ दौड़ीं और उसे उठाकर रावण के पास लाईं।

पतिगति देखि सो करहिं पुकारा * छूटे चिकुर न देह सँभारा

उरताड़ना करहिं विधिनाना * रोवत करहिं प्रताप बखाना

पति की दशा देख मन्दोदरी पुकार करने लगी। उसके बाल बिखर गये। देह का सँभाल न रहा। अनेक प्रकार छाती पीटती और रोती हुई वह पति का प्रताप बखानती है—

तव बल नाथ डोल नित धरणी * तेजहीन पावक शशि तरणी

शेष कमठ सहि सकहिं न भारा * सो तनु भूमि परेउ भरि छारा

हे नाथ! तुम्हारे बल से नित्य ही पृथ्वी काँपती थी, तथा अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तेज से रहित थे। शेष और कच्छप जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर धूल से सना भूमि में पड़ा है।

वरुण कुबेर सुरेश समीरा * रण सम्मुख धरि काहु न धीरा

भुजबल जीति काल यम साईं * अब रहे आपु अनाथ कि नाईं

युद्ध में तुम्हारे सामने वरुण, कुबेर, इन्द्र और पवन किसी का धीरज नहीं रहता था। हे स्वामी! जिन्होंने अपनी भुजाओं के बल से काल और यम को भी जीत लिया था, वही आप अब अनाथ-से पड़े हैं।

जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई * सुत परिजन बल बरणि न जाई

राम विमुख अस हाल तुम्हारा * रहा न कुल कोउ रोवनहारा

तुम्हारी प्रभुता संसार में प्रकट है। तुम्हारे पुत्रों का और कुटुम्ब का बल वर्णन नहीं किया जा सकता था। परन्तु रामजी से विमुख होने के कारण तुम्हारा ऐसा हाल हुआ कि वंश में कोई रोनेवाला नहीं रह गया!

तव वश विधिप्रपंच सब नाथा * सभय दिशिपति नित नावहिं माथा

अब तव शिर भुज जंबुक खाहीं * रामविमुख यह अनुचित नाहीं

कालविवश प्रभु कहा न माना * अगजगनाथ मनुज करि जाना

हे नाथ! ब्रह्मा की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। सब दिग्पाल तुम्हें नित्य माथा नवाते थे। अब तुम्हारे सिरों और भुजाओं को सियार खाते हैं। रामजी से विमुख की यह दशा कुछ अनुचित नहीं है। हे प्रभु, काल के वश होने के कारण तुमने मेरा कहा नहीं माना, चराचर जगत् के स्वामी राम को मनुष्य जाना।

छन्द

जान्यो मनुज करि दनुजकाननदहनपावक हरि स्वयम्।

जेहि नमत शिवब्रह्मादि सुरपिय भज्यउ नहिं करुणामयम् ॥
आजन्म ते परद्रोहरत पापौघमय तव तन अयम् ।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम् ॥

तुमने दैत्य और राक्षसरूप वन के अग्नि श्रीविष्णुजी को मनुष्य जाना, जिन्हें शिव, ब्रह्मा आदि देवता भी प्रणाम करते हैं। हे पतिदेव, तुमने करुणानिधि राम को नहीं भजा। जन्म से तुम पराये वैर में लगे रहे, इससे तुम्हारा यह शरीर पापमय है। पर राम ने तुम्हें अपना धाम दिया। मैं विकाररहित ब्रह्म को प्रणाम करती हूँ।



अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धु को आन।
मुनिदुर्लभ जो परमगति, तोहिं दीन भगवान॥

अहह नाथ! भगवान् ने मुनियों को भी दुर्लभ गति तुम्हें दी। रघुनाथजी के समान कृपानिधि कौन है?

मन्दोदरी वचन सुनि काना * सुर मुनि सिद्ध सबहिं सुखमाना
अज महेश नारद सनकादी * जो मुनिवर परमारथवादी

मन्दोदरी के वचन कानों से सुन देवता, मुनि और सिद्ध सबने सुख माना। ब्रह्मा, शिव, नारद, सनकादिक परमार्थ के कहनेवाले मुनि—

भरि लोचन रघुपतिहिं निहारी * प्रेममगन सब भये सुखारी
रोदन करत देखि नर नारी * गयउ विभीषण मन दुख भारी

आँखभर रघुनाथजी को देख प्रेम में मग्न हो सुखी हुए। स्त्री-पुरुषों को रोते देख मन में बड़े दुखी विभीषण वहाँ गये।

बन्धुदशा विलोकि दुख कीन्हा * राम अनुज कहँ आयसु दीन्हा
लक्ष्मण जाइ ताहि समुझावा * बहुरि विभीषण प्रभु पहँ आवा

भाई की दशा देखकर विभीषण ने दुःख किया। तब रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आज्ञा दी, जिससे लक्ष्मण ने जाकर उन्हें समझाया। फिर विभीषण स्वामी रामजी के पास आये।

कृपादृष्टि रघुवीर विलोका * करहु क्रिया परिहरि अब शोका
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी * विधिवत देशकाल गति जानी

रघुनाथजी ने कृपादृष्टि से विभीषण को देखा और कहा—अब सोच छोड़कर भाई की मृतक-क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मान देश और समय की गति जानकर उन्होंने विधिपूर्वक रावण का क्रियाकर्म किया।



मयतनयादिक नारि सब, देहिं तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुवीर गुण, गण वर्णत मनमाहि॥

मयदानव की पुत्री मन्दोदरी आदि सब स्त्रियों ने उसे तिलांजलि दी और मन में रघुनाथजी के गुण बखान किये।

आय विभीषण पुनि शिर नाये * कृपासिन्धु तब अनुज बुलाये
तम कपीश अङ्गद नलनीला * जाम्बवन्त मारुति नयशीला

फिर विभीषण ने आकर शीश नवाया। तब दयासागर रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को बुलाया और कहा—तुम, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जाम्बवान् और नीति के जाननेवाले हनुमान्—

सब मिलि जाहु विभीषण साथा * सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा
पितावचन मैं नगर न जाऊँ * आपु सरिस प्रिय अनुज पठाऊँ

सब मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उनका राजतिलक करो। मैं पिता के वचन से नगर न जाऊँगा; अपने ही समान प्यारे लक्ष्मण को भेजता हूँ।

तुरत चले कपि सुनिप्रभुवचना * कीन्हीं जाय तिलक की रचना
सादर सिंहासन बैठारी * तिलक सारि अस्तुति अनुसारी

प्रभु के वचन सुन वानर तुरन्त ही चले और जाकर तिलक की रचना की। आदर-समेत विभीषण को सिंहासन पर बिठाकर तिलक किया और स्तुति की।

जोरि पाणि सबहीं शिर नाये * सहित विभीषण प्रभु पहँ आये
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हें * कहि प्रियवचन सुखी सब कीन्हें

फिर हाथ जोड़ सबने सिर नवाया; फिर विभीषणसमेत प्रभु के पास आये। रघुनाथजी ने वानरों को बुलाया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया।

छन्द

किये सुखी कहि बाणी सुधासम बल तुम्हारे रिपुहयो।
पायो विभीषण राज तिहुँपुर यश तुम्हारो नितनयो॥
मोहिं सहित शुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जो गाइहैं।
संसारसिन्धु अपार पार प्रयास बिन नर पाइहैं॥

अमृत के समान वचन कहकर वानरों को सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से मैंने शत्रु को मारा और विभीषण ने राज्य पाया। इससे तुम्हारा यह यश तीनों लोकों में नित्य नया होगा। मेरे यश के साथ तुम्हारा भी उत्तम यश जो बड़ी प्रीति से गावेंगे, वे अपार संसार-सागर को बिना परिश्रम के तर जायँगे।



सुनत रामके वचन मृदु, नहिं अघात कपिपुञ्ज।
बारहिं बार विलोकिमुख, गहहिं रामपदकञ्ज॥

राम के ये कोमल वचन सुन, वानर नहीं अघाते। बार-बार मुख देख रामजी के चरणकमल पकड़ते हैं।

पुनि प्रभु बोलि लिये हनुमाना * लंका जाहु कहेउ भगवाना
समाचार जानकी सुनावहु * तासु कुशल लैतुम चलि आवहु

फिर प्रभु ने हनुमान् को बुलाया और कहा—लंका में जाओ। जानकी को सब हाल सुनाओ और उनका कुशल लेकर चले आओ।

तब हनुमन्त नगर महँ आये * सुनि निशिचरी निशाचर धाये
पूजा बहु प्रकार तिन कीन्हा * जनकसुता देखाइ पुनि दीन्हा

तब हनुमान् लंकापुरी में आये, जिसे सुन राक्षसियाँ और राक्षस दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान् का पूजन किया और जनकनन्दिनी को दिखलाया।

दूरिहि ते प्रणाम तिन कीन्हा * रघुपतिदूत जानकी चीन्हा
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता * कुशल अनुज कपिसेन समेता

हनुमान् ने सीताजी को दूर ही से प्रणाम किया। जानकीजी ने भी रामजी के दूत को पहचान लिया। वे बोलीं—कहो, दयानिधान रामजी छोटे भाई लक्ष्मण और वानरी सेनासमेत कुशल से तो हैं?

सब विधि कुशल कोशलाधीशा * मातु समर जीतेउ दशशीशा
अविचल राज विभीषण पाये * सुनि कपिवचन हर्ष उरछाये

हनुमान् बोले—अयोध्यानाथ सब प्रकार कुशलपूर्वक हैं। हे माता, युद्ध में उन्होंने रावण को जीत लिया और विभीषण ने अचल राज्य पाया। हनुमान् के वचन सुन सीताजी के मन में हर्ष हुआ।

छन्द

अतिहर्षमन तनपुलक लोचनसजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहिं त्रैलोक्यमहँ कपि किमपि नहिं वाणी समा॥
सुनु मातु मैं पायउँ अखिलजगराज आज न संशयम्।
रणजीति रिपुदल बन्धुयुत पश्यामि राम निरामयम्॥

मन में अत्यन्त हर्ष, शरीर में रोमांच और आँखों में जल भरकर बार-बार जानकीजी ने कहा—हे वानर, मैं तुम्हें क्या दूँ? त्रिलोक में तुम्हारे वचन के समान कुछ नहीं है। हनुमान् बोले—हे माता, आज मैंने निस्सन्देह सारे संसार का राज्य पा लिया; क्योंकि युद्ध में शत्रुसेना को जीते हुए लक्ष्मण और राम को सकुशल देखता हूँ।



सुनु सुत सद्गुण सकलतव, हृदय बसैं हनुमन्त।
सानुकूल रघुवंशमणि, रहैं समेत अनन्त॥

जानकी बोलीं—हे पुत्र ! सुनो, तुम्हारे हृदय में सभी उत्तम गुण बसें और लक्ष्मण सहित श्रीरामजी तुम पर सदा अनुकूल रहें।

अब सोइ यतन करहु तुम ताता * देखौं नयन श्यामम्रदुगाता
तब हनुमान राम पहँ जाई * जनकसुता की कुशल सुनाई

हे तात, अब तुम वही यत्न करो, जिससे मैं नेत्रों से रामजी का साँवला कोमल शरीर देखूँ। तब हनुमान् ने रामजी के पास जाकर जनकनन्दिनी की कुशल सुनाई।

सुनि वाणी पतंगकुलभूषण * बोलि लिये युवराज विभीषण
मारुतसुत के संग सिधावहु * सादर जनकसुता लै आवहु

ये वचन सुन सूर्यवंश के भूषणरूप रामजी ने अंगद व विभीषण को बुलाकर कहा—पवनपुत्र के साथ जाओ और आदरसमेत जानकी को ले आओ।

तुरतहि सकल गये जहँ सीता * सेवहिं सब निशिचरी विनीता
वेगि विभीषण तिनहिं सिखावा * सादर तिन सीतहिं अन्हवावा

तुरन्त ही सब वहाँ गये जहाँ सब निशाचरियाँ विनयसमेत सीताजी की सेवा कर रही थीं। विभीषण ने उन्हें आज्ञा दी; तब आदर समेत उन्होंने सीताजी को स्नान कराया।

दिव्य वसन भूषण पहिराये * शिबिकारुचिर साजि पुनि लाये
तापर हर्षि चढ़ी वैदेही * सुमिरि राम सुखधाम सनेही

फिर उत्तम वस्त्र व भूषण पहनाये और उत्तम पालकी साज लाये। तब जानकीजी सुख के धाम स्नेही रामजी को सुमिरकर प्रसन्न हुईं और उस पर चढ़ीं।

वेतपाणि रक्षक चहुँ पासा * चले सकल मन परम हुलासा
देखन भालु कीश सब आये * रक्षक कोटि निवारण धाये

बेंत हाथों में लिये रखवाले चारों ओर चले जिनके मन में बड़ा हर्ष है। रीछ और वानर सब सीता को देखने के लिये आये तो करोड़ों रखवाले उनको मना करने दौड़े कि दर्शन न होंवें।

कह रघुवीर कहा मम मानहु * सीतहिं सखा पयादे आनहु
देखहिं कपि जननी की नाईं * बिहँसि कहा रघुवीर गोसाईं

तब रघुनाथ ने सुग्रीव से कहा—मित्र, मेरा कहना मानो—सीता को पैदल ही लाओ, जिससे वानर उन्हें माता की नाईं देखें। यह स्वामी रघुनाथ ने हँसकर कहा।

सुनि प्रभुवचन भालु कपि हरषे * नभ ते सुरन सुमन बहु वरषे
सीता प्रथम अनल महँ राखी * प्रकट कीन्ह चह अन्तर साखी

प्रभु के वचन सुन रीछ व वानर प्रसन्न हुए तथा देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये।

पहले जानकी को प्रभु ने अग्नि को सौंपा था ; अब अग्नि के भीतर से उन्हें शुद्ध साक्षी कर प्रकट किया चाहते हैं।


तेहि कारण करुणायतन, कहे कछुक दुर्वाद।
सुनत यातुधानी सकल, लागीं करन विषाद॥

इसी कारण करुणानिधान ने सीता को कुछ दुर्वचन कहे, जिन्हें सुन सब राक्षसियाँ दुखी हुईं।

प्रभु के वचन शीश धरि सीता * बोली मन क्रम वचन पुनीता।
लक्ष्मण होहु धर्म के नेगी * पावक प्रकट करहु तुम वेगी।

प्रभु के वचन सिर पर धर मन, कर्म और वचन से पवित्र जानकी बोलीं—हे लक्ष्मण, धर्म के भागी होओ ; शीघ्र आग जलाओ।

सुनत लषण सीता की बानी * विरह विवेक धर्म नय सानी।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ * प्रभुसन कछु कहि सकत न वोऊ।

वियोग, ज्ञान, धर्म और नीति से सनी जानकी की वाणी सुन लक्ष्मणजी की आँखों में आँसू भर आये। वे दोनों हाथ जोड़ खड़े हो रहे ; क्योंकि मारे डर के प्रभु से वह भी कुछ कह नहीं सकते।

देखि राम रुख लक्ष्मण धाये * पावक प्रकट काठ बहु लाये।
प्रबल अनल बिलोकि वैदेही * हृदय हर्ष कछु भय नहिं तेही।

रामजी का रुख देखकर लक्ष्मण दौड़े और बहुत-सा काठ लाकर अग्नि प्रकट की। अग्नि प्रचण्ड हुई देख जानकीजी के मन में प्रसन्नता हुई ; उन्हें कुछ भी डर न लगा।

जो मन क्रम वच मम उर माहीं * तजि रघुवीर आन गति नाहीं।
तौ कृशानु सबकी गति जाना * मो कहँ होउ श्रीखण्ड समाना।

'जो मन, कर्म, वचन से मेरे हृदय में रघुनाथ को छोड़कर दूसरी गति न हो तो हे अग्नि ! तुम मेरे लिए चन्दन के समान ठंडे हो जाओ। तुम तो सबकी गति जानते हो।'

छन्द

श्रीखण्डसम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोशलेश महेशवन्दितचरणरज अति निर्मली॥
प्रतिबिम्ब औ लौकिककलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लखेउ नभ सुर सिद्ध मुनि देखत खरे॥

यह कह जानकी ने प्रभु को यादकर चन्दन सी ठंडी हो रही आग में प्रवेश किया और कहा—उन अयोध्यानाथ की जय हो, जिनकी अति निर्मल चरणरज की वंदना शिवजी करते हैं। सीताजी का प्रतिबिम्ब और लौकिक कलंक अग्नि में जल गया। आकाश में देवता, सिद्ध, मुनि खड़े देखते रहे ; परन्तु प्रभु का यह चरित्र न देख सके।

तब अनल भूसुररूप करगहि सत्य श्रीश्रुतिविदित जो
जिमि क्षीरसागर इन्दिरा रामहिं समर्पी आनि सो॥
सोइ राम वामविभाग राजत रुचिर अतिशोभा भली।
नवनीलनीरज निकट मानहु कनकपंकज की कली॥

तब ब्राह्मण का रूप रख अग्नि ने वेद में सत्य लक्ष्मीरूपिणी विदित जानकी का हाथ पकड़कर रामजी को सौंपा, जैसे क्षीरसमुद्र ने विष्णु को लक्ष्मी को सौंपा था। वही जानकीजी रामजी की बाईं ओर विराजीं। तब ऐसी सुन्दर शोभा हुई, जैसी नवीन नील-कमल के पास सोने के कमल की कली की हो।



हरषि सुमन वर्षहिं बिबुध, बाजहिं गगन निशान।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढ़ीं बिमान॥

प्रसन्न हो देवता फूल बरसाते, आकाश में नगाड़े बजते, किन्नर गाते व देवियाँ विमानों पर नाचती हैं।

श्री जानकी समेत प्रभु, शोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हर्ष, जय रघुपति सुखसार॥

सीता समेत प्रभु की बड़ी शोभा देख रीछ व वानर प्रसन्न हो बोले—सुखसागर राम की जय हो।

तब रघुपति अनुशासन पाई * मातलि चले चरण शिरनाई
आये देव सदा स्वारथी * वचन कहहिं जनु परमारथी

तब रघुनाथजी की आज्ञा पा उनके चरणों में माथा नवाकर इन्द्र का सारथी मातलि चला गया। तब सदा के स्वार्थी (मतलबी) देवता आये और ऐसे वचन कहने लगे, मानों बड़े परमार्थी हों।

दीनबन्धु दयालु रघुराया * देव कीन्ह देवन पर दाया
विश्वद्रोहरत यह खल कामी * निज अघ गयो कुमारगगामी

हे दीनबन्धु, दयालु, रघुनाथ, देव, आपने देवताओं पर दया की। संसारभर से द्रोह करने में लगा हुआ यह दुष्ट, कामी, कुमार्गी रावण अपने ही पाप से मारा गया।

तुम सर्वज्ञ ब्रह्म अविनासी * सदा एकरस सहज उदासी
अकल अगुण अनवद्य अनामय * अजित अमोघ शक्तिकरुणामय

आप सर्वज्ञ, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एकरस रहनेवाले, सहज ही शत्रु-मित्र से रहित, कलाओं से हीन, निर्गुण, निर्दोष, नीरोग, अजित, सफल, शक्तिमान् और करुणामय हैं।

मीन कमठ शूकर नरहरी * वामन परशुराम वपुधरी

जब जब नाथ सुरन दुख पावा * नाना तनु धरि तुमहिं नशावा

आपने मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम आदि अवतार लिए हैं। हे नाथ, जब-जब देवताओं ने दुःख पाया, तब तब अनेक प्रकार के शरीर रख आप ही ने उनके दुःख दूर किये हैं।

रावण पापमूल सुरद्रोही * कामलोभमदरत अति कोही
सो कृपालु तव धाम सिधावा * यह हमरे मन अचरज आवा

पापमूल, देवताओं का शत्रु, काम-लोभ-मद की खान रावण बड़ा क्रोधी था। हे दयालु, वह भी आपके धाम चला गया। यह देखकर हमारे मन में बड़ा आश्चर्य है।

हम देवता परमअधिकारी * स्वारथ रत तव भक्ति बिसारी
भव प्रवाह संतत हम परे * अब प्रभु पाहि शरण अनुसरे

हम देवता आपकी भक्ति के अधिकारी हैं; परन्तु आपकी भक्ति भुलाकर स्वार्थ में लगे हैं। हे प्रभु, संसारसागर के जन्ममरणरूप प्रवाह में हम सदा से पड़े थे। अब आपकी शरण हैं। हमारी रक्षा कीजिए।

दोहा

करि बिनती सुरसिद्ध सब, रहे जहँ तहँ करजोरि।
अतिशय प्रेम सरोजभव, अस्तुति करत बहोरि॥

देवता और सिद्ध इस प्रकार विनती कर हाथ जोड़ जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी बड़े प्रेम से इस प्रकार स्तुति करने लगे।

छन्द

जय राम सदा सुख धाम हरे * रघुनायक शायक चाप धरे
भव वारण दारण सिंह प्रभो * गुणसागर नागर नाथ विभो

हे राम, सदा सुख के धाम, आपकी जय हो। हे रघुनाथजी, धनुष-बाण धारण किये संसाररूप हाथी के मारनेवाले सिंहरूप विभु, आप गुणों के सागर और चतुर हैं।

तनुकामअनेक अनूपछवी * गुण गावतसिद्ध मुनीन्द्रकवी
यश पावन रावणनागमहा * खगनाथयथा करि कोपगहा

आपके शरीर की अनूप शोभा अनेक कामदेवों की सी है। आपके गुण सिद्ध, मुनीन्द्र और कविगण गाते हैं। आपका यश पवित्र है। आपने रावणरूप सर्प को गरुड़ की भाँति कोप से पकड़कर मार डाला।

जनरंजन भंजनशोकभयं * गतक्रोध सदा प्रभु बोधमयं
अवतार उदार अपारगुनं * महिभारविभंजन ज्ञानघनं

हे भक्तों के मनरंजन! हे शोक और भय के भञ्जन, प्रभु, आप सदैव क्रोधरहित और ज्ञानमय हैं। अनन्त गुणोंवाले आपका यह अवतार उदार है। आप पृथ्वी के भार के नाशक तथा ज्ञान की राशि हैं।

अजव्यापकमेकमनादिसदा * करुणाकर राम नमामि मुदा
रघुवंशविभूषण दूषणहा * कृतभूप विभीषण दीन रहा

हे राम, आप जन्मरहित, व्यापक, अद्वितीय, अनादि, सदैव रहनेवाले और दयामय हैं। आपको मैं प्रसन्नता से प्रणाम करता हूँ। हे रघुवंशभूषण, दूषण राक्षस के शत्रु, दीन विभीषण को आपने राजा किया।

गुणज्ञाननिधानअमान अजं * नितराम नमामि विभुं विरजं
भुजदण्डप्रचण्ड प्रतापबलं * खलवृन्दनिकंदमहा कुशलं

हे गुण और ज्ञान के निधान राम, आप अमेय, अजन्मा, निर्दोष या निर्विकार और व्यापक हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके भुजदण्डों का प्रचण्ड प्रताप और बल दुष्टों को नाश करने में बड़ा प्रवीण है।

बिनकारण दीनदयालुहितं * छविधाम नमामि रमासहितं
भवतारण कारणकार्यपरं * मन सम्भवदारुणदुःखहरं

हे दीनदयालु, लक्ष्मीरमण, बिना कारण (निःस्वार्थ) के हित, शोभा के धाम आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप संसार के तारनेवाले, कारण व कार्य से परे, मन में उत्पन्न दारुण दुःखों के नाशक,

शरचाप मनोहर तूणधरं * जलजारुणलोचन भूपवरं
सुखमन्दिर सुन्दर श्रीरमनं * मदमारमहाममताशमनं

सुन्दर धनुष-बाण व तरकस धारण किये, कमल-से लाल लोचनवाले, महाराज, सुख के धाम, लक्ष्मी के पति, मद, काम और महा ममता के शान्त करनेवाले,

अनवद्यअखण्डअगोचरगो * सबरूप सदा सब होइ न सो
इति वेद वदन्ति न दन्तकथा * रविआतपभिन्न न भिन्नयथा

निर्दोष, अखण्ड, इन्द्रियों से परे, सर्वरूप और सबसे भिन्न हैं— यह वेद कहते हैं; यह दन्तकथा नहीं है। जैसे सूर्य से धूप भिन्न भी है और मिली भी है, वैसे ही आप संसार से मिले भी हैं और अलग भी हैं।

कृतकृत्य विभो सब वानर ये * निरखन्ति तवानन सादर ये
धिक जीवन देवशरीर हरे * तव भक्तिबिना भव भूलि परे

हे विभु, ये सब वानर कृतार्थ हैं, जो आपका मुख आदर-सहित निहारते हैं। हे हरि, हम देवताओं के जीवन को धिक्कार है, जो आपकी भक्ति के बिना संसार में भूले पड़े हैं।

अब दीनदयालु दया करिये * मति मोरि विभेदकरी हरिये
जेहितेविपरीत क्रिया करिये * दुखसोसुखमानिसुखी चरिये

हे दीनदयालु, अब दया करके भेद करनेवाली मेरी वह बुद्धि हर लीजिए, जिससे मैं उलटे काम करता हूँ; जिससे दुःख को भी सुख मानकर सुखी रहूँ।

खलखण्डनमण्डनरम्यछमा * पदपंकज सेवितशम्भुउमा
नृपनायक दे बरदानमिदं * चरणाम्बुज प्रेम सदा शुभदं

हे दुष्टों के नाशक, आप पृथ्वी के सुन्दर भूषण हैं। पार्वती-समेत शिवजी आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं। हे नृपनायक, मुझे यह शुभदायक वरदान दीजिए कि आपके चरणकमलों में मेरा सदा प्रेम हो।



विनय कीन्ह चतुरानन, प्रेम प्रफुल्लित गात।
शोभासिन्धु विलोकत, लोचन नहीं अघात॥

प्रेम से पुलकित शरीर ब्रह्मा ने इस प्रकार विनय की। शोभासागर राम को देख उनके नेत्र नहीं अघाते।

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये * तनय विलोकि नयन जल छाये
अनुजसहित प्रणाम प्रभु कीन्हा * आशिर्वाद पिता तब दीन्हा

उसी समय वहाँ स्वर्ग से महाराज दशरथजी आये और पुत्र को देख उनकी आँखों में जल भर आया। छोटे भाई समेत प्रभु ने पिता को प्रणाम किया। तब पिता ने आशीर्वाद दिया।

तात सकल तव पुण्य प्रभाऊ * जीतेउँ अजय निशाचरराऊ
सुनि सुतवचन प्रीति अतिबाढ़ी * नयननीर रोमावलि ठाढ़ी

राम बोले—हे पिता, यह आपके ही पुण्य का प्रभाव है कि मैंने अजय निशाचरराज रावण को जीता। पुत्र के वचन सुन दशरथ के बड़ी प्रीति बढ़ी—आँखों में जल भर आया और रोमावली खड़ी हो गई।

रघुपति प्रथम प्रेमअनुमाना * चिते पितहि दीन्हों दृढ़ ज्ञाना
ताते उमा मोक्ष नहिं पावा * दशरथ भेदभक्ति मन लावा

रघुनाथ ने पहले प्रेम का अनुमान किया (कि मेरे वियोग में शरीर तक छोड़ दिया था) और पिता की ओर देख उनको दृढ़ ज्ञान दिया। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, दशरथजी ने भेद (सेव्यसेवक भाव) से भक्ति में मन लगाया था, इससे मोक्ष नहीं पाई।

सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं * तिनकहँ राम भक्ति निज देहीं
बार बार करि प्रभुहिं प्रणामा * दशरथ हर्षि गये निज धामा

सगुण के उपासक मोक्ष नहीं लेते, इससे उन्हें रामजी अपनी भक्ति देते हैं। ज्ञान होने पर बार-बार प्रभु को प्रणामकर महाराज दशरथ प्रसन्न हो अपने स्थान (साकेत-लोक) को गये।



अनुजजानकी सहित प्रभु, कुशल कोशलाधीश।
छवि विलोकि मन हर्षित, अस्तुति कर सुरईश॥

लक्ष्मण व जानकी-समेत अयोध्यानाथ कुशल से हैं। उनकी छवि देख इन्द्र प्रसन्न मन से इस प्रकार स्तुति करने लगे—



जय राम शोभाधाम * दायक प्रणतविश्राम।
धृततूणवरशरचाप * भुजदण्ड प्रबल प्रताप॥

हे शोभाधाम, दीन को विश्रामदायक राम, आपकी जय हो। उत्तम तरकस और धनुष-बाण लिये आपके भुजदण्डों का प्रताप बड़ा है।

जय दूषणारि खरारि * मर्दन निशाचरधारि।
यह दुष्ट मारेउ नाथ * भे देव सकल सनाथ॥

हे खर व दूषण के नाशक, निशाचरों को मारनेवाले, आपकी जय हो। हे नाथ, आपने जो इस दुष्ट को मारा, इससे सब देवता सनाथ हो गये।

जय हरणधरणीभार * महिमाउदार अपार।
जयरावणारि कृपाल * किये यातुधानबिहाल॥

हे भूभार के हरनेवाले, आपकी जय हो। आपके रूप की महिमा उदार और अपार है। हे रावण के शत्रु, दयालु राम, आपकी जय हो। आपने राक्षसों को विकल कर दिया।

लंकेश अतिबलगर्व * किये वश्य सुरगन्धर्व।
मुनिसिद्धनरखगनाग * हठि पंथ सबके लाग॥

लंकेश रावण को बल का बड़ा अभिमान था। वह देवताओं व गन्धर्वों को वश करके मुनि, मनुष्य, पक्षी, नाग आदि सबके पीछे पड़ा था।

परद्रोहरत अतिदुष्ट * पायो सो फल पापिष्ट।
अबसुनहुदीनदयाल * राजीवनयन बिशाल॥

रावण पराये द्रोह में रत, दुष्ट व पापी था। उसने कुकर्मों का फल भी खूब पाया। हे कमल-से विशाल नेत्रवाले, दीनदयालु,

मोहिंरहाअतिअभिमान * नहिं कोउ मोहिं समान।
अब देखि प्रभुपदकञ्ज * गतमान प्रद सुखपुञ्ज॥

मुझे बड़ा अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं, परन्तु, हे सुखराशि के देनेवाले, प्रभ अब आपके चरणकमल देख मेरा वह सब अहंकार जाता रहा।

कोइ ब्रह्म निर्गुण ध्याव * अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।
मोहिं भाव कोशलभूप * श्रीराम सगुणस्वरूप॥

कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है, जिसे वेद 'न देखा गया' कहते हैं; परन्तु मुझे तो अयोध्या के राजा सगुणस्वरूप श्रीरामजी अच्छे लगते हैं।

वैदेहि अनुज समेत * मम हृदय करहु निकेत।
मोहि जानिये निजदास * दे भक्ति रमानिवास ॥

हे लक्ष्मीनिवास, जानकी व लक्ष्मण-समेत मेरे हृदय में बसिए और मुझे अपना सेवक जानकर भक्ति दीजिए।

छन्द

दे भक्ति रमानिवास त्रासहरण शरणसुखदायकं।
सुखधाम राम नमामि काम अनेकछबिरघुनायकं ॥
सुरवृन्दरंजन द्वन्दभंजन मनुजतनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादिशंकरसेव्य राम नमामि करुणाकोमलं ॥

हे रमानिवास, दुःखहारी, शरणसुखदायक, सुखधाम, अनेक कामदेवों की-सी छविवाले रघुनायक, राम, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मुझे भक्ति दीजिए। हे देवगणरंजन, दुःखभंजन, अतुलबल, मनुष्यरूपधारी, शिवब्रह्मादि देवों के इष्टदेव, राम, दया के कारण कोमल स्वभाववाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ।


अब करि कृपा बिलोकि मोहिं, आयसु देहु कृपालु।
काह करौं सुनि प्रिय बचन, बोले दीनदयालु ॥

हे दयालु, अब दया से मुझे देखकर आज्ञा दीजिए, क्या करूँ ? ये प्रिय वचन सुन दीनदयालु बोले—

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे * परे भूमि निशिचर के मारे
मम हितलागि तजे इन प्राना * सकल जियाउ सुरेश सुजाना

हे देवराज, हमारे रीछ और वानर निशाचरों के मारे हुए भूमि में पड़े हैं। इन्होंने मेरे लिए प्राण दिये हैं। इससे हे चतुर इन्द्र, इन सबको जिला दो।

सुनु खगपति प्रभुकै यह बानी * अतिअगाध जानहिं मुनि ज्ञानी
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई * केवल शक्रहिं दीन बड़ाई

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, प्रभु का यह बड़ा गम्भीर स्वभाव ज्ञानी मुनि लोग ही जान सकते हैं कि प्रभु तीनों लोकों को भी मारकर जिला सकते हैं। यहाँ तो केवल इन्द्र को बड़ाई दी है।

अमी वर्षि कपिभालु जियाये * हर्षि उठे सब प्रभु पहँ आये
सुधा वृष्टिभइ दोउ दल ऊपर * जिये भालु कपि नहिं रजनीचर

तब इन्द्र ने अमृत बरसाकर रीछों और वानरों को जिलाया। वे सब उठे और प्रसन्न हो रामजी के पास आये। अमृत की वर्षा दोनों सेनाओं में हुई ; परन्तु रीछ और वानर जिये, राक्षस नहीं। इसका कारण यह था कि—

रामाकार भये तिनके मन * मुक्त भये छूटे भवबन्धन
सुरअंशकभवकपि अरुऋच्छा * जिये सकल रघुपति की इच्छा

राक्षसों के मन रामजी को देखते-देखते राम में लीन हो गये थे, इससे वे संसार के बन्धन से छूटकर मुक्त हो गये थे। देवताओं के अंश से उत्पन्न सब वानर और रीछ रघुनाथ की इच्छा से जी उठे।

राम सरिस को दीन हितकारी * कीन्हें मुक्त निशाचर भारी
खल मलधाम कामरत रावन * गति पायो जो मुनिवर पावन

रामजी के समान कौन दीनहितकारी है, जिन्होंने सब राक्षसों को मुक्त कर दिया तथा दुष्ट, पापी, काम में रत रावण ने भी वह गति पाई, जिसे उत्तम मुनि भी नहीं पाते?


सुमन वर्षि सुर सब चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर विमान।
देखि सुअवसर राम पहँ, आये शम्भु सुजान॥

सब देवता फूल बरसाकर उत्तम विमानों पर चढ़-चढ़कर चले। तब अवसर देखकर सुजान शिवजी आये।

परम प्रीति करजोरि करि, नलिननयन भरि वारि।
पुलकित तनु गद्गद गिरा, विनय करत त्रिपुरारि॥

बड़ी प्रीति से हाथ जोड़ और कमलसरीखे नेत्रों में जल भरकर पुलकित शरीर त्रिपुरारि शिवजी गद्गद वाणी से विनय करने लगे—

मामभिरक्षय रघुकुलनायक * धृतकरचापरुचिरवरसायक
मोहमहाघनपटलप्रभंजन * संशयविपिनअनल सुररंजन

हे हाथ में धनुष और उत्तम बाण धारण किये रघुवंशनायक, मेरी रक्षा कीजिए। हे सुररंजन, आप मोहरूप बड़े सघन मेघों के लिए पवन और सन्देहरूप वन के लिए अग्नि हैं।

सगुण अगुण गुणमंदिर सुन्दर * भ्रमतमप्रबलप्रतापदिवाकर
कामक्रोधमदगजपंचानन * बसहु निरंतर जनमनकानन

सगुण, निर्गुण, सुन्दर गुणों के मन्दिर, भ्रमरूप अन्धकार के लिए प्रबल प्रतापवाले सूर्य, काम-क्रोध-मदरूप हाथियों के मारनेवाले सिंह, आप भक्तों के मनरूप वन में सदैव बसिए।

विषयमनोरथपुंजकंजवन * प्रबलतुषार उदार पारमन
भववारिधिमंदरपरमंदर * वारय तारय संसृति दुस्तर

विषयों की अभिलाषारूप कमलवन के लिए प्रबल पाला, उदार, मन से परे, संसार-समुद्र के मथने में मंदराचल से भी श्रेष्ठ मंदराचलरूप हे राम, भय को दूर कीजिए और दुस्तर संसार के पार उतारिए।

श्यामगात राजीवविलोचन * दीनबन्धु प्रणतारतिमोचन

अनुज जानकी सहित निरंतर * बसहु रामनृप मम उर अन्तर
मुनिरंजन महिमंडलमंडन * तुलसिदास प्रभु त्रासविखंडन

श्याम शरीर और कमल-से नेत्रोंवाले, दीनबन्धु, दीनदुःखहारी हे राजा राम, लक्ष्मण व जानकी-समेत मेरे हृदय में बसिए। मुनियों की इच्छा पूर्ण करनेवाले, पृथ्वीमंडल के भूषण, तुलसीदास के प्रभु, भयनाशक,


नाथ जबहिं कोशलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
तब मैं आउब सुनहु प्रभु, देखन चरित उदार॥

हे नाथ, जब अयोध्या में आपका राजतिलक होगा, तब मैं आपका उदार चरित्र देखने आऊँगा।

करि बिनती जब शंभु सिधाये * तब प्रभुनिकट बिभीषण आये
नाइ चरण शिर कह मृदु बानी * विनय सुनहु प्रभु शारँगपानी

जब विनती करके शिवजी चले गये, तब विभीषण प्रभु के पास आये। चरणों में शिर नवाकर उन्होंने कोमल वाणी से कहा—हे हाथ में धनुष धारण करनेवाले प्रभु, मेरी विनती सुनिए।

सकुल सदल प्रभु रावण मारा * पावनयश त्रिभुवन विस्तारा
दीन मलीन हीनमतिजाती * मोपर कृपा कीन बहु भाँती

हे प्रभु, वंश और सेनासहित रावण को मारकर आपने तीनों लोकों में अपना पवित्र यश फैलाया। दीन, मलीन, बुद्धिहीन और नीच जातिवाले मुझ पर आपने बहुत प्रकार से कृपा की।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै * मज्जन करिय समरश्रम छीजै
देखि कोष मन्दिर सम्पदा * देहु कृपालु कपिन कहँ मुदा

हे प्रभु, अब सेवक का घर पवित्र कीजिए और स्नान कीजिए, जिससे युद्ध की थकावट जाती रहे। हे कृपालु, कोष, घर और सम्पत्ति देख प्रसन्नता से वह वानरों को दीजिए।

सब विधि नाथ मोहिं अपनाई * पुनि मोहिं सहित अवधपुर जाई
सुनत वचन मृदु दीनदयाला * सजल भये दोउ नयन विशाला

हे नाथ, मुझे सब प्रकार अपनाकर फिर मुझे साथ लेकर अयोध्या चलिएगा। ये कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु रामजी की दोनों विशाल आँखों में आँसू भर आये।


तोर कोश गृह मोर सब, सत्यवचन सुनु तात।
दशा भरत कै समुझि मोहिं, निमिष कल्पसम जात॥

रामचन्द्रजी बोले—हे तात, सचमुच तुम्हारा कोष, घर आदि सब मेरा ही है; पर भरत की दशा समझ मुझे एक-एक पल कल्प के समान बीतता है।

तापसवेष शरीरकृश, जपत निरन्तर मोहिं।
देखौं बेगि सो यत्न करु, सखा निहोरौं तोहिं॥

तपस्वी के वेष से शरीर से दुबले भरत मुझे सदा जपते हैं। हे मित्र, जिससे उन्हें मैं देखूँ, वह यत्न शीघ्र कीजिए। मैं तुम्हारा निहोरा करता हूँ।

जो जैहौं बीते अवधि, जियत न पावौं वीर।
प्रीति भरत कै समुझि प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर॥

यदि अवधि बीते जाऊँगा तो वीर भरत जीते न मिलेंगे। भरत की ऐसी प्रीति समझ प्रभु के शरीर में रोमांच हो आया।

करहु कल्पभरि राज्य तुम, मोहिं सुमिरेहु मनमाहिं।
पुनि मम धाम सिधारेउ, जहाँ सन्त सब जाहिं॥

फिर विभीषण से बोले—मेरा स्मरण करते हुए एक कल्प भर तुम राज्य करो। फिर मेरे धाम को जाना, जहाँ सब सन्त जाते हैं।

सुनत विभीषण वचन राम के * हर्षि गहे पद कृपाधाम के
वानर भालु सकल हरषाने * गहिपद प्रभुगुण विमल बखाने

रामजी के वचन सुन प्रसन्न हो विभीषण ने कृपाधाम रामजी के चरण पकड़े। सब वानर और रीछ प्रसन्न हुए। वे प्रभु के चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान करने लगे।

बहुरि विभीषण भवन सिधाये * पुष्पक मणिगण बसन भराये
लै पुष्पक प्रभु आगे राखेउ * हँसिकरि कृपासिन्धु अस भाखेउ

फिर विभीषण घर गये और पुष्पक विमान में मणियाँ और कपड़े भरे। फिर पुष्पक विमान लाकर प्रभु के आगे रक्खा। तब हँसकर कृपासागर रामजी ने कहा—

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषण * गगन जाय वर्षहु पटभूषण
नभपर जाय विभीषण तबहीं * वर्षि दिये पट भूषण सबहीं

हे मित्र विभीषण, विमान पर चढ़ आकाश में जाकर कपड़े और गहने बरसाओ। तब आकाश में जाकर विभीषण ने सब वस्त्र और भूषण बरसा दिये।

जो जेहि मन भावै सो लेहीं * मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं
हँसत राम सिय अनुज समेता * परमकौतुकी कृपानिकेता

जो जिसके मन भाता है, वह उसे लेता है। वानर मणियाँ मुख में डालते और फिर डाल देते हैं। सीता और लक्ष्मण-समेत रामजी हँसते हैं। कृपानिधान रामजी बड़े कौतुकी हैं।



ध्यान न पावहिं जासु मुनि, नेति नेति कह वेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन सों, करत अनेक विनोद॥

जिन्हें मुनि भी ध्यान में नहीं पाते और वेद 'नेति' कहते हैं, वही कृपासागर वानरों से अनेक विनोद करते हैं।

उमा योग जप ज्ञान तप, नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तस, जस निष्केवल प्रेम॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, योग, जप, ज्ञान, तप, अनेक यज्ञ, व्रत और नियम करने से रामजी वैसी कृपा नहीं करते, जैसी सच्चे प्रेम से करते हैं।

भालु कपिन पट भूषण पाये * पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये
नाना जिनिस देखि प्रभु कीशा * पुनि पुनि हँसत कोशलाधीशा

रीछों और वानरों ने जब वस्त्र और गहने पाये तो उन्हें पहन-पहनकर रघुनाथजी के पास आये। अनेक प्रकार के वानरों को देख अयोध्यानाथ बार-बार हँसते हैं।

चितै सबन पर कीन्हीं दाया * बोले मृदुल वचन रघुराया
तुम्हरे बल मैं रावण मारा * तिलक विभीषण कहँ पुनि सारा

रामजी ने देखकर सब पर दया की और ये कोमल वचन कहे कि मैंने तुम्हारे ही बल से रावण को मारा और विभीषण का राजतिलक किया।

निज निज गृह अब तुम सब जाहू * सुमिरेहु मोहिं डरेहु जनि काहू
वचन सुनत प्रेमातुर वानर * पाणि जोरि बोले सब सादर

अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। मुझे स्मरण करना और किसी को डरना मत। ये वचन सुन प्रेम से विकल हो वानर हाथ जोड़कर आदरसमेत बोले—

प्रभु जो कहत तुमहिं सब सोहा * हमरे होत वचन सुनि मोहा
दीन जानि कपि किये सनाथा * तुम त्रैलोक्य ईश रघुनाथा

हे प्रभु, आप जो कहते हैं, वह सब आपको सोहता है, परन्तु आपके ये वचन सुनकर हमें मोह होता है। हे त्रिलोकीनाथ, आपने दीन जानकर वानरों को सनाथ किया।

सुनि प्रभु वचन लाज हम मरहीं * मशक कतहुँ खगपति हित करहीं
देखि रामरुख वानर ऋच्छा * प्रेममगन नहिं गृह की इच्छा

हे प्रभु, आपके वचन सुन हम लाज से मरते हैं। भला क्या मच्छड़ गरुड़ का हित कर सकते हैं? रामजी का रुख देख वानर और रीछ प्रेम में डूब गये; उनकी घर जाने की इच्छा न रही।



प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, राम रूप उर राखि।
हर्ष विषाद समेत तब, चले विनय बहु भाखि॥

प्रभु के भेजे वानर व रीछ हर्ष व शोक-समेत रामजी का रूप हृदय में रखकर बड़ी बिनती करके चले।

जाम्बवन्त कपिराज नल, अङ्गदादि हनुमन्त।
सहित विभीषण जे अपर, यूथप कपि बलवन्त॥

जाम्बवान्, सुग्रीव, नल, अंगद, हनुमान् और विभीषण-समेत सब बलवान् सेनापतियोंके

कहि न सकैं कछु प्रेमवश, भरि भरि लोचन वारि।
सम्मुख चितवैं रामतन, नयन निमेष निवारि॥

प्रेमवश आँखों में जल भर आया। वे कुछ कह नहीं सकते। पलक भाँजना बन्दकर रामजी की ओर देखते हैं।

अतिशय प्रीति देखि रघुराई * लीन्हें सकल विमान चढ़ाई
मनमहँ विप्रचरण शिरनावा * उत्तर दिशा विमान चलावा

उनकी बड़ी प्रीति देख रघुनाथ ने सबको विमान पर चढ़ा लिया। फिर मन ही मन ब्राह्मणों के चरणों में शिर नवाकर विमान को उत्तर की ओर चलाया।

चलत विमान कोलाहल होई * जय रघुवीर कहै सब कोई
सिंहासन अतिऊँच मनोहर * श्रीसमेत बैठे ता ऊपर

विमान चलते बड़ा शब्द हो रहा है। 'रघुनायक की जय हो' सब कहते हैं। विमान में जो बड़ा ऊँचा सुन्दर सिंहासन था, उस पर जानकी-समेत रामजी बैठे।

राजत राम समेत भामिनी * मेरुशृंग जनु घन दामिनी
रुचिर विमान चलेउ अतिआतुर * कीन्हें सुमनवृष्टि हरषे सुर

श्रीराम-समेत जानकी महारानी ऐसे सोहती हैं, जैसे सुमेरु के शिखर पर बादलों के साथ बिजली। सुन्दर विमान बहुत शीघ्र चला। तब देवताओं ने प्रसन्न होकर फूल बरसाये।

परमसुखद चलि त्रिविधबयारी * सागर सर सरि निर्मलवारी
शकुन होहिं सुन्दर चहुँपासा * मनप्रसन्न निर्मलनभआसा

बहुत सुख देनेवाली शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चली और समुद्र, नदी, तालाब आदि का जल निर्मल हो गया। चारो ओर सुन्दर सगुन होते हैं। सबके मन प्रसन्न हैं। आकाश और सब दिशाएँ निर्मल हो गईं।

कह रघुवीर देखु रण सीता * लछ्मण इहाँ हत्यो इन्द्रजीता
हनूमान अंगद के मारे * रणमहँ परे निशाचर भारे
कुम्भकर्ण रावण दोउ भाई * इहाँ हत्यों सुरमुनि दुखदाई

रघुनाथ ने कहा—हे सीता, देखो, यही युद्धभूमि है। यहाँ लछमण ने मेघनाद को मारा था। युद्ध में हनुमान् और अंगद के मारे हुए ये बड़े-बड़े राक्षस पड़े हैं। देवताओं और मुनियों को दुःख देनेवाले कुम्भकर्ण और रावण, दोनों भाइयों को मैंने यहाँ मारा था।



दो० यह लखु सुन्दर सेतु जहँ, थापेउँ शिव सुखधाम।
सीता अनुज समेत प्रभु, शंभुहिं कीन्ह प्रणाम॥

यह सुन्दर पुल देखो, जहाँ मैंने सुख के धाम शिवजी की स्थापना की है। सीता और लक्ष्मण-समेत प्रभु ने शिवजी को प्रणाम किया।

जहँ जहँ करुणासिन्धु वन, कीन्ह वास विश्राम।
सकल देखायउ जानकिहिं, कहेउ सबन के नाम॥

वन में जहाँ-जहाँ करुणासागर ने निवास व विश्राम किया था, वे सब स्थान सीता को दिखाकर सबके नाम कहे।

सपदि विमान तहाँ चलि आवा * दण्डकवन जहँ परम सुहावा।
कुम्भजादि जे मुनिवर नाना * गये राम सबके अस्थाना॥

विमान शीघ्र चलकर वहाँ आया, जहाँ बहुत सुन्दर दण्डक वन था। वहाँ अगस्त्य आदि जो अनेक मुनिनायक थे, उन सबके स्थानों पर रामजी गये।

सकल ऋषिनसन पाइ असीसा * चित्रकूट आये जगदीसा।
तहँ करि मुनिन केर सन्तोखा * चला विमान तहाँते चोखा॥

ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगत् के स्वामी रामचन्द्रजी चित्रकूट में आये। वहाँ मुनियों को संतोष देकर विमान आगे चला।

बहुरि राम जानकी देखाई * यमुना कलिमलहरणि सुहाई।
पुनि देखहु सुरसरित पुनीता * राम कहा प्रणाम करु सीता॥

फिर रामजी ने कलियुग के पातकों को हरनेवाली सुहावनी यमुना नदी जानकी को दिखाई। फिर रामजी ने कहा—हे सीता, पवित्र गंगा को देखो और प्रणाम करो।

तीरथपति पुनि दीख प्रयागा * देखत जन्मकोटि अघ भागा।
देखु परमपावनि अति बेनी * हरणि शोक हरिलोकनसेनी॥

फिर तीर्थराज प्रयाग को देखा, जिसे देखते ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। रामजी ने कहा—अत्यन्त पवित्र, शोकहारिणी, श्रीविष्णुलोक की सीढ़ी त्रिवेणी को देखो।

दीन्ह असीश मुदित मन गङ्गा * सुन्दरि तव अहिवात अभङ्गा।
सुनतहिं गुह धायो प्रेमाकुल * आयो निकट परमसुखसंकुल॥

प्रसन्नमन होकर गंगाजी ने सीताजी को आशीर्वाद दिया—हे सुन्दरी, तुम्हारा अहिवात कभी न मिटे। निषाद इन्हें आते सुन प्रेमातुर हो दौड़ा और परम सुख से भरा हुआ समीप आया।

प्रभुहिं विलोकि सहित वैदेही * परेउ अवनि तनसुधि नहिं तेही।
परम प्रीति विलोकि रघुराई * हर्षि उठाय लियो उर लाई॥

जानकी-समेत श्रीरामजी को देखकर निषाद पृथ्वी में गिर पड़ा। उसे देह की सुध न रही। उसकी बड़ी प्रीति देख प्रसन्न हो रघुनाथ ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

छन्द

लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुशल सो करि बीनती॥
अब कुशल पदपंकज विलोकि विरञ्चि शङ्कर सेव्यते।
सुखधाम पूरणकाम राम नमामि राम नमामि ते॥

कृपानिधान, लक्ष्मीपति, चतुर रामजी ने निषाद को हृदय से लगा लिया और बहुत ही पास बिठाकर कुशल पूछी। वह विनती कर कहने लगा—ब्रह्मा और शिवजी जिनकी पूजा करते हैं, उन आपके चरणकमलों को देखकर अब मेरी सब कुशल ही है। हे सुखधाम, पूर्णकाम राम, आपको प्रणाम करता हूँ।

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उरलाइये।
मतिमन्द तुलसीदास सो प्रभु मोहवश विसराइये॥
यह रावणारि चरित्र पावन रामपदरतिप्रद सदा।
कामादिहर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

सब प्रकार नीच निषाद को रामजी ने भरत की नाईं हृदय से लगाया। तुलसीदासजी कहते हैं—हे मतिमन्द मन, तू मोहवश ऐसे प्रभु को भुलाता है! रावण के शत्रु रामचन्द्रजी का यह पवित्र चरित्र रघुनाथ के चरणों में प्रीति उत्पन्न करता, काम आदि दोष हरता और विज्ञान देता है। इसे देवता, सिद्ध, मुनि आनन्द से गाते हैं।



समरविजय रघुनाथ के, चरित जो सुनहिं सुजान।
विजय विवेकविभूतिनित, तिन्हहिं देहिं भगवान॥

जो सुजान रघुनाथजी के युद्धविजय का चरित्र सुनते हैं, उन्हें भगवान सदा विजय, ज्ञान और ऐश्वर्य देते हैं।

यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचार।
श्रीरघुनायक नाम तजि, कछु नहिं आन अधार॥

अरे मन, यह कलिकाल पाप का घर है। विचारकर देख, इसमें 'राम' नाम छोड़ दूसरा आधार नहीं।

लंकाकाण्ड समाप्त



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण उत्तरकाण्ड

बालबोधिनी टीकासहित



जाके कृपाकटाक्ष सों, द्वैत सकल मिटि जात।
कहि न सकत निजसुख बहुरि, जिमि गूँगो गुड़ खात॥
विश्वरूपिणी जनकजा, ताके पद धरि माथ।
करहुँ सरल भाषा रुचिर, तुलसी उत्तरगाथ॥

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

मोर के गले की आभा के समान नीले रंग के देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण के चरणारविन्द के चिह्न से युक्त, शोभा की खान, पीताम्बरधारी, कमलनयन, सदा प्रसन्न, हाथ में धनुष-बाण धारण किये, वानरी सेना साथ लिये, भाई से सेवित, स्तुति करने योग्य, पुष्पक विमान पर विराजमान, सीतापति, रघुवंशनायक रामचन्द्र को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ।

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥

ब्रह्मा, शिव आदि से वन्दित, जानकीजी के करकमलों से दुलराये (दाबे) गये, ध्यान करनेवालों का मन साथ रखनेवाले कोशलराज राम के कोमल सुन्दर चरणकमलों को मैं प्रणाम करता हूँ।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टमन्दिरम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्॥

कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौरवर्ण, पार्वतीपति, अभीष्ट के देनेवाले, करुणा की खान, सुन्दर नेत्रकमलोंवाले, काम के नाशक शङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ।



रहा एक दिन अवधि कर, अतिआरत पुरलोग।
जहँ तहँ शोचहिं नारि नर, कृशतन रामवियोग॥

रामचन्द्र के वनवास की अवधि का एक दिन रह गया। रामजी के वियोग के कारण बहुत दुखी और दुबले पुरवासी स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ सोचते हैं।

सगुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभुआगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँफेर॥

इसी समय सुन्दर सगुन होने लगे, जिनसे सबके मन प्रसन्न हुए। नगर चारों ओर सुहावना हो गया, मानो प्रभु के आने की सूचना दे रहा हो।

कौशल्यादिक मातु सब, मन अनन्द अस होइ।
आयो प्रभु सियअनुजयुत, कहन चहत अब कोइ॥

कौशल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा होता है कि मानो अब कोई कहना ही चाहता है कि सीता और लक्ष्मण-सहित रामजी आ गये।

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकहिं बारहिंबार।
जानि शकुन मन हर्ष अति, लागे करन विचार॥

भरतजी का दाहिना हाथ और नेत्र बार-बार फड़कते हैं। इसे सगुन जान भरतजी मन में बहुत प्रसन्न हुए और विचार करने लगे—

रहा एक दिन अवधि अधारा * समुझत मन दुख भयो अपारा
कारण कौन नाथ नहिं आयउ * जानिकुटिलप्रभुमोहिंबिसरायउ

मेरे जीवन का आधार अवधि का एक ही दिन रह गया। यह समझते ही उनके मन में बड़ा दुःख हुआ। क्या कारण है कि प्रभु नहीं आये? जान पड़ता है, प्रभु ने मुझे कुटिल जान भुला दिया।

अहह धन्य लछिमन बड़भागी * रामपदारविन्द अनुरागी
कपटी कुटिल नाथ मोहिं चीन्हा * ताते नाथ सङ्ग नहिं लीन्हा

अहा लक्ष्मण धन्य हैं! रामजी के चरणारविन्दों के प्रेमी होने के कारण वह बड़े भाग्यवान् हैं। प्रभु ने मुझे कपटी और कुटिल जाना है, इसी से साथ नहीं लिया।

जो करणी समुझै प्रभु मोरी * नहिं निस्तार कल्पशत कोरी
जनअवगुण प्रभु मान न काऊ * दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ

जो प्रभु मेरी करनी पर विचार करें तो करोड़ों कल्पों तक मेरा निस्तार न हो सके। प्रभु सेवक का कोई अवगुन या अपराध नहीं मानते। दीनबन्धु का स्वभाव बड़ा सरल और कोमल है।

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई * मिलिहहिं राम शकुन शुभ होई
बीते अवधि रहैं जो प्राना * अधम कौन जग मोहिं समाना

मेरे चित्त में दृढ़ भरोसा है कि रामजी मिलेंगे। सगुन भी अच्छे ही रहे हैं। अवधि बीतने पर जो मेरे प्राण रह जायँ तो संसार में मुझ-सा नीच कोई नहीं।

 राम बिरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।
बिप्ररूप धरि पवनसुत, आय गये जिमि पोत॥

रामजी के विरहसमुद्र में भरत का मन डूब रहा था। इतने में नाव के समान हनुमान्‌जी ब्राह्मण का वेष रखकर उनके पास आ गये।

बैठे देखि कुशासन, जटामुकुट कृश गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयनजलजात॥

हनुमान्‌जी ने देखा, जटाओं का मुकुट बनाये, दुबली देहवाले भरतजी कुशासन पर बैठे 'राम, राम, रघुपति' जप रहे हैं। उनके नेत्रकमलों से आँसू बह रहे हैं।

देखत हनूमान अति हर्षेउ * पुलकगात लोचन जल बर्षेउ
मनमहँ बहुत भाँति सुखमानी * बोलेउ श्रवणसुधा सम बानी

यह देख हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए, उनकी देह पुलकित हो गई और आँखों से आनन्द के आँसू गिरने लगे। मन में बहुत भाँति सुख मानकर हनुमान्‌जी कानों को अमृत के समान प्यारी वाणी बोले—

जासु बिरह शोचहु दिन राती * रटहु निरन्तर गुणगण पाँती
रघुकुलतिलक सुजनसुखदाता * आये कुशल देवमुनित्राता

आप जिनके विरह से दिन-रात सोचते और लगातार जिनके गुण रटते हैं, वही सज्जनों को सुखदायक, देवताओं और मुनियों के रक्षक, रघुवंशशिरोमणि रामचन्द्र कुशल-सहित आ गये।

रिपुरणजीति सुयश सुर गावत * सीता अनुज सहित प्रभु आवत
सुनत बचन बिसरे सब दूखा * तृषा मिटे जिमि पाय पियूषा

उन्होंने युद्ध में शत्रु को जीत लिया है और उनका यश देवता गाते हैं। प्रभु रामचन्द्रजी जानकी और लक्ष्मण-समेत आ रहे हैं। ये वचन सुनते ही भरत के दुःख मिट गये, जैसे अमृत पाने से प्यास जाती रहती है।

को तुम तात कहाँ ते आये * मोहिं परमप्रिय बचन सुनाये
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना * नाम मोर सुनु कृपानिधाना

भरत बोले—हे तात, तुम कौन हो और कहाँ से आये हो? तुमने मुझे परम प्रिय वचन सुनाये। हनुमान् बोले—हे दयानिधान, सुनिए। मेरा नाम हनुमान् है, मैं वायु का पुत्र, वानर,

दीनबन्धु रघुपति कर किंकर * सुनत भरत भेंटे उठि सादर
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता * नयन स्रवत जल पुलकितगाता

और दीनबन्धु रघुनाथ का दास हूँ। यह सुन भरत उठे और आदरसहित उन्हें छाती से लगा लिया। मिलने से उत्पन्न प्रेम हृदय में नहीं समाता, इससे आँखों से जल हो बहने लगा। उनके शरीर में रोमांच हो आया।

कपि तव दरश सकल दुख बीते ※ मिले आज मोहिं राम सप्रीते
बार बार पूछी कुशलाता ※ तो कहँ कहा देउँ सुनु भ्राता

भरतजी बोले—हे वानर, तुम्हारे दर्शन से मेरे सब दुःख चले गये, और ऐसा सुख हुआ कि मानो आज मुझे श्रीरामजी स्नेह के साथ मिले हों। फिर बार-बार कुशल पूछकर भरत ने कहा—भाई, मैं तुम्हें क्या दूँ?

यहि संदेश सरिस जगमाहीं ※ करि विचार देखेउँ कछु नाहीं
नाहिंन उरिन तात मैं तोहीं ※ अब प्रभुचरित सुनावहु मोहीं

मैंने विचारकर देख लिया कि इस संदेश के समान संसार में कुछ नहीं है। हे तात, मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ। अब मुझे स्वामी रामजी का चरित्र सुनाओ।

तब हनुमान नाय पद माथा ※ कही सकल रघुपति गुण गाथा
कहु कपि कबहुँ कृपालु गोसाईं ※ सुमिरत मोहिं दास की नाईं

तब हनुमान् ने चरणों में माथा नवाकर रघुनाथ के गुणों की सब गाथा कह सुनाई। भरत ने कहा—हे कपि, कृपालु स्वामी रामजी कभी मुझे भी दास की भाँति याद करते हैं।

छन्द

निज दास ज्यों रघुवंशभूषण कबहुँ मम सुमिरन कर्यो।
सुनि भरत वचन विनीत अति कपि पुलकि तनु चरणन पर्यो॥
रघुवीर निजमुख जासु गुणगण कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सद्गुणसिन्धु सो॥

रघुवंशभूषण ने अपने दास की भाँति मुझे भी कभी याद किया है? भरत के ऐसे विनीत वचन सुन हनुमान् की देह में रोमांच हो आया। वे चरणों पर गिरकर बोले—चराचर जगत् के स्वामी रामचन्द्र अपने मुँह जिनके गुण कहते हैं, वह आप विनीत क्यों न हों? आप तो अच्छे गुणों के सागर ही हैं।


रामप्राणप्रिय नाथ तुम, सत्य वचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सन, प्रेम न हृदय समात॥

हे नाथ, आप रामजी को प्राणों के समान प्रिय हैं, यह मेरा वचन सत्य है। हनुमान्‌जी यों कहकर बार-बार भरतजी से मिलते हैं; हृदय में प्रेम नहीं समाता।


भरत चरण शिरनाय, तुरत गयो कपि रामपहँ।
कही कुशल सब जाय, हर्षि चले प्रभु यान चढ़ि॥

फिर हनुमान्‌जी भरत के चरणों में सिर नवाकर रामजी के पास गये और जाकर भरत की सब कुशल कही। तब प्रभु प्रसन्न हो विमान पर चढ़कर चले।

हरषि भरत कोशलपुर आये * समाचार सब गुरुहिं सुनाये
पुनि मन्दिर महँ बात जनाई * आवत नगर कुशल रघुराई

प्रसन्न हो भरतजी नंदिग्राम से अयोध्यापुरी में आये और गुरु वशिष्ठ से सब हाल कहा। फिर राजमन्दिर में जनाया कि रघुनाथजी कुशल-सहित नगर में आते हैं

सुनत सकल जननी उठिधाईं * कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं
समाचार पुरवासिन पाये * नर अरु नारि हर्षि उठि धाये

सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं। भरतजी ने प्रभु की कुशल कहकर सबको समझाया। पुरवासी नर नारी यह खबर पाते ही प्रसन्न होकर उठ दौड़े।

दधि दूर्वा रोचन फल फूला * नव तुलसीदल मंगलमूला
भरि भरि हेमथार वर भामिनि * गावत चलीं सिन्धुरगामिनि

दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और नये तुलसीदल, ये मंगल की सब वस्तुएँ सोने के थालों में रखकर गजगामिनी अच्छी स्त्रियाँ गाती हुई चलीं।

जो जैसे तैसेहि उठि धावहिं * बाल वृद्ध कोउ संग न लावहिं
एक एकन्ह पूछहिं धाई * तुम देखे दयालु रघुराई

जो जैसे बैठे थे वैसे ही उठ दौड़े। जल्दी के मारे छोटे बच्चों और बूढ़ों को कोई साथ नहीं लेता। एक एक से दौड़कर पूछते हैं कि क्या तुमने दयालु रघुनाथ को देखा है ?

अवधपुरी प्रभु आवत जानी * भई सकल शोभा की खानी
भइ सरयू अति निर्मल नीरा * बहै सुहावन त्रिविध समीरा

प्रभु को आते जान अयोध्यापुरी सब शोभाओं की खान हो गई। उस समय सरयू का जल बहुत ही निर्मल हो गया और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी।


हर्षित गुरु परिजन अनुज, भूसुरवृन्द समेत।
चले भरत अति प्रेम मन, सन्मुख कृपानिकेत॥

मन में बड़े प्रेम से युक्त भरतजी गुरु वशिष्ठ, भाई शत्रुघ्न, परिजनों और ब्राह्मणों को साथ ले प्रसन्न हो कृपानिधि रघुनाथ से मिलने चले।

बहुतक चढ़ीं अटारिन, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर स्वर हर्षित, करहिं सुमंगल गान॥

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी आकाश में विमान खोजती हैं और उसे देख प्रसन्न हो मीठे स्वर से सुन्दर मंगलाचार गाती हैं।

राकाशशि रघुपतिपुरी, सिन्धु देखि हर्षान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान॥

रामरूप पूर्णिमा का चन्द्र देख समुद्र-सी अयोध्या उमड़ पड़ी, जिसका कोलाहल ही बाढ़ और स्त्रियाँ लहरें हैं।

रविकुलकमल दिवाकर आवत ※ नगर मनोहर कपिन देखावत
सुनु कपीश अंगद लंकेशा ※ पावन पुरी रुचिर यह देशा

रघुवंशरूप कमल के सूर्य रामजी अपना मनोहर नगर वानरों को दिखाते चले आते हैं। कहते हैं—हे सुग्रीव, हे अंगद, हे विभीषण, यह देश, जिसमें पवित्र अयोध्यापुरी है, बड़ा सुन्दर है।

यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना ※ वेद पुराण विदित जगजाना
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ ※ यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ

यद्यपि सबने वैकुण्ठ की बड़ाई की है, यह वेदों व पुराणों में प्रकट है और सारा संसार जानता है; परन्तु मुझे अयोध्या के समान वह वैकुण्ठ भी प्रिय नहीं है—यह कोई-कोई जानता है।

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि ※ उत्तरदिशि सरयू बह पावनि
जे मज्जहिं ते बिनहिं प्रयासा ※ मम समीप नर पावहिं वासा

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्मभूमि है, जिसके उत्तर में पवित्र सरयू नदी बहती है। जो इस नदी में स्नान करते हैं, वे बिना परिश्रम मेरे समीप वास करते हैं।

अति प्रिय मोहिं इहाँ के वासी ※ मम धामदा पुरी सुखरासी
हर्षे कपि सुनि प्रभु की बानी ※ धन्य अवध जोहि राम बखानी

मुझे यहाँ के रहनेवाले बहुत ही प्यारे हैं। यह पुरी मेरा धाम देनेवाली और सुख की राशि है। प्रभु की यह वाणी सुन वानर प्रसन्न हुए और बोले—'धन्य है अयोध्यापुरी, जिसकी प्रशंसा रामजी ने की।'


आवत देखे लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु आयऊ, उतरा भूमि विमान॥

कृपा के सागर भगवान् ने सबको आते देखा। नगर के पास आ जाने पर विमान पृथ्वी में उतरा।

उतरि कह्यो प्रभु पुष्पकहि, तुम कुबेर पहँ जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हर्ष विरह अति ताहु॥

उतरकर प्रभु ने पुष्पक से कहा—अब तुम कुबेरजी के पास चले जाओ। पुष्पक विमान रामजी के भेजने से चला तो, परन्तु प्रसन्नता (कैद से छूटने की) और दुःख (राम के बिछोह का) उसे भी हुआ।

आये भरत संग सब लोगा ※ कृशतनु श्रीरघुवीर वियोगा
वामदेव वशिष्ठ मुनिनायक ※ देखा प्रभु महि धरि धनुशायक

भरत-भेंट



प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मोपहँ जात नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिलत बर सुषमा लही ॥

भरतजी के साथ सब लोग आये। उनके शरीर रघुनाथ के विछोह से दुबले हो रहे थे। वामदेव और वशिष्ठ आदि मुनिवर आये, जिन्हें देख रामजी ने धनुष-बाण पृथ्वी में रख दिये।

धाइ धरे गुरुचरणसरोरुह * अनुज सहित अति पुलकतनोरुह
भेंटे कुशल पूछि मुनिराया * हमरे कुशल तुम्हारी दाया

फिर लक्ष्मण-सहित रामचन्द्र ने दौड़कर गुरु के चरणारविन्द छुए। उनके शरीर में रोमांच हो आया। मुनिराज वशिष्ठ ने कुशल पूछकर राम को गले लगाया। तब रामजी ने कहा—आपकी दया से मेरी सब कुशल ही है।

सकल द्विजन कहँ नायउ माथा * धर्मधुरन्धर रघुकुलनाथा
गहे भरत पुनि प्रभुपदपङ्कज * नमहिं जिनहिं शङ्करसुरमुनिअज

धर्मधुरंधर रघुवंशनाथ रामजी ने सब ब्राह्मणों को प्रणाम किया। फिर भरतजी ने रामजी के चरणारविन्द छुए, जिन्हें ब्रह्मा, शिव, देवता और मुनि नमस्कार करते हैं।

परे भूमि नहिं उठत उठाये * बलकरि कृपासिन्धु उरलाये
श्यामलगात रोम भे ठाढ़े * नव राजीवनयन जल बाढ़े

पृथ्वी पर पड़े भरतजी उठाये नहीं उठते। तब कृपासिन्धु रामजी ने जबरदस्ती उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। उनकी देह साँवली थी, रोयें खड़े थे, तथा नये कमल सरीखे नेत्र जल से भरे थे।

छन्द

राजीवलोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी।
अतिप्रेम हृदयलगाय अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवनधनी॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मोपहँजात नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिलत वर सुषमा लही॥

भरतजी के नेत्रकमलों से जल टपकता है और देह पुलकित हो उठी है। तीनों लोकों के प्रभु रामजी भरत को प्रेमपूर्वक हृदय से लगाकर मिले। तुलसीदासजी कहते हैं—भरत से मिलते रामचन्द्र ऐसे सोहते हैं कि उपमा मुझसे नहीं कही जाती। मानों प्रेम और शृंगाररस ने देह धरकर उत्तम शोभा पाई हो।

पूछत कृपानिधि कुशल भरतहि बचन वेगि न आवई।
सुनु शिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान न पावई॥
अब कुशल कोशलनाथ आरत जानि जनदर्शन दियो।
बूड़त विरहवारिधि कृपानिधि काढ़ि मोहिंकरगहि लियो॥

कृपानिधि भरत से कुशल पूछते हैं; परन्तु उनके मुख से उत्तर नहीं आता । हे पार्वती, वह सुख वाणी और मन से परे है । भरतजी कहते हैं—हे अयोध्यानाथ, मुझे दुखी जान दर्शन दिया, इससे अब कुशल ही है । हे कृपानिधि, अपने वियोग के समुद्र में डूबते हुए मुझे आपने हाथ पकड़कर उबार लिया ।



प्रभु पुनि हर्षित शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाय ।
लछमण भेंटे भरत पुनि, प्रेम न हृदय समाय ॥

फिर प्रभु रामचन्द्र शत्रुघ्न को छाती से लगाकर प्रसन्न होकर मिले । फिर लक्ष्मण भरत से ऐसे मिले कि प्रेम हृदय में नहीं समाता ।

भरत अनुज लछमण तब भेंटे ॥ दुसह विरहसम्भव दुख मेटे
सीताचरण भरत शिर नावा ॥ अनुज समेत परमसुख पावा

फिर लक्ष्मणजी भरत के छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले और वियोग से उत्पन्न कठिन दुःख दूर कर दिया । शत्रुघ्नसहित भरत ने जानकीजी के चरणों में प्रणाम किया और बहुत सुख पाया ।

प्रभु विलोकि हर्षे पुरवासी ॥ जनित वियोग विपतिसबनासी
प्रेमातुर सब लोग निहारी ॥ कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी

अयोध्यानिवासी प्रभु को देख प्रसन्न हुए । उनके वियोग से उत्पन्न विपत्ति जाती रही । खरारि कृपालु रघुनाथ ने सबको अपने प्रेम में आतुर देख यह कौतुक किया कि

अमित रूप प्रकटे तेहि काला ॥ यथायोग्य मिलि सबहिं कृपाला
कृपादृष्टि सब लोग विलोकी ॥ किये सकल नरनारि विशोकी

उस समय बहुत से रूप प्रकट किये और जिससे जैसे चाहिए, वैसे ही मिले । फिर कृपादृष्टि से देख-देख सब नर-नारियों को शोकहीन कर दिया ।

क्षणमहँ सबहिं मिले भगवाना ॥ उमा मर्म यह काहु न जाना
यहिविधि सबहिं सुखीकरिरामा ॥ आगे चले शीलगुणधामा
कौशल्यादि मातु सब धाईं ॥ निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, भगवान् क्षणमात्र में सबको मिल भेंट चुके, परन्तु यह हाल कोई न जान पाया । इस प्रकार सबको सुखी कर शील आदि गुणों के धाम रामजी आगे चले । कौशल्या आदि सब माताएँ ऐसे दौड़ीं, जैसे हाल की ब्याई गऊ बछड़े को देखकर दौड़ती है ।

छन्द

जनु धेनु बालक बत्स तजि गृह चरन बन परवश गईं ।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥

अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटीं वचन मृदु बहुविधि कहे।
गइ बिषमबिपति बियोगभव तिन हर्ष सुख अगणित लहे॥

मानो पराधीन गउएँ बछड़ों को घर में छोड़ चरने के लिए वन गई हों और दिन बीते नगर की ओर थनों से दूध टपकाती और हुंकारती हुई दौड़ें। प्रभु ने बड़े प्रेम से सब माताओं से मिल-भेंट मधुर वचन कहे, जिनसे प्रसन्न हो उन्होंने बड़ा सुख पाया। उनका बिछोह से उत्पन्न कठोर दुःख जाता रहा।



भेंटेउ तनय सुमित्रा, रामचरणरत जानि।
रामहिं मिलत कैकयी, हृदय बहुत सकुचानि॥

सुमित्रा ने पुत्र को रामजी के चरणों का भक्त जान छाती से लगा लिया। कैकेयी रामजी से मिलने में सकुचीं।

लछमण सब मातन मिले, हर्षे आशिष पाय।
कैकेयिहिं पुनि पुनि मिले, मनकर छोभ न जाय॥

लक्ष्मण सब माताओं से मिले और उनसे आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए। कैकेयी से बार-बार मिले, तो भी मन का क्षोभ न गया।

सासुन सबहिं मिली वैदेही * चरणन लागि हर्ष अति तेही
देहिं अशीश बूझि कुशलाता * होउ अचल तुम्हार अहिवाता

जानकीजी सब सासों से मिलीं और उनके चरण छूकर बड़ी प्रसन्न हुईं। सासें कुशल पूछ आशीर्वाद देती हैं कि तुम्हारा अहिवात सदा बना रहे।

सबरघुपतिपदकमलविलोकहिं * मंगल जानि नयनजल रोकहिं
कनकथार आरती उतारहिं * बार बार प्रभुगात निहारहिं

मातायें रघुनाथ के चरणारविन्द देखती हैं और मंगल का समय जान आनन्द के आँसुओं को रोकती हैं। सोने के थाल में आरती उतारती और बार-बार प्रभु की देह निहारती हैं।

नाना भाँति निछावरि करहीं * परमानन्द हर्ष उर भरहीं
कौशल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं * चितवति कृपासिन्धु रणधीरहिं

बहुत भाँति से न्योछावर करती और बड़े आनन्द की प्रसन्नता को हृदय में भरती हैं। कौशल्याजी रणधीर कृपासिन्धु श्रीरामजी को बार-बार देखती हैं।

हृदय विचारति बारहिं बारा * कौन भाँति लंकापति मारा
अतिसुकुमार युगल मम बारे * निशिचर सुभट महाबल भारे

मन में बार-बार सोचती हैं कि इन्होंने लङ्का के राजा रावण को कैसे मारा? मेरे दोनों बालक थोड़ी अवस्था के बड़े सुकुमार हैं और राक्षस अच्छे योद्धा और बड़े बली थे।



लक्ष्मण अरु सीता सहित, प्रभुहिं बिलोकहिं मात।
परमानन्द मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात॥

माताएँ लक्ष्मण व जानकी-समेत राम को देख आनन्द में मग्न हैं। उनकी देह में बार-बार रोमांच होता है।

लंकापति कपीश नल नीला ❋ जाम्बवन्त अंगद शुभशीला
हनुमदादि सब बानर बीरा ❋ धरे मनोहर मनुजशरीरा

सुशील विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवान्, अंगद, हनुमान् आदि वानर मनोहर मनुष्य की देह धरे हैं।

भरत सनेह शीलव्रत नेमा ❋ सादर सब बर्णहिं अति प्रेमा
देखि नगरबासिन के रीती ❋ सकल सराहहिं प्रभुपद प्रीती

सब भरतजी के स्नेह, नियम और शील को आदर के साथ बड़े प्रेम से वर्णन करते हैं। फिर अयोध्यावासियों की रीति देख रामजी के चरणों की भक्ति की बड़ाई करते हैं।

पुनि रघुपति निज सखा बुलाये ❋ मुनिपद लागहु सबन सिखाये
गुरु वशिष्ठ कुलपूज्य हमारे ❋ इनकी कृपा दनुज रण मारे

तब रघुनाथ ने अपने साथियों को बुलाकर सबको सिखाया कि मुनि के चरणों में प्रणाम करो। यही हमारे कुल के पूज्य गुरु वशिष्ठ हैं। इन्हीं की कृपा से युद्ध में राक्षस मारे गये हैं।

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे ❋ भये समरसागर महँ बेरे
मम हित लागि जन्म इन हारे ❋ भरतहु ते मोहिं अधिक पियारे
सुनि प्रभुबचन मगन सब भये ❋ निमिष निमिष उपजतसुख नये

रामचन्द्र वशिष्ठजी से कहते हैं—हे मुनिवर, ये सब हमारे मित्र हैं, जो युद्धरूप समुद्र में मेरे लिए जहाज हुए। इन्होंने मेरी भलाई के लिए अपने जीवन को भी अर्पण कर दिया है। ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं। प्रभु के वचन सुन सब मग्न हो गये। सबके मन में पल-पल में नया सुख उत्पन्न होता है।



कौशल्या के चरणन, पुनि तिन नायउ माथ।
आशिष दीन्हीं हर्षि हिय, तुम प्रिय जिमि रघुनाथ॥

फिर सुग्रीव आदि वानरों ने कौशल्याजी के चरणों में माथा नवाया। माता ने मन में प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया और कहा—तुम सब मुझे रामचन्द्र के ही समान प्यारे हो।

सुमन वृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकन्द।
चढ़े अटारिन देखहिं, नगर नारि नरवृन्द॥

फिर सुखकंद रामजी घर चले तो आकाश से फूलों की वर्षा हुई। नगर के सब स्त्री पुरुष अटारियों पर चढ़े इस उत्सव को देखते हैं।

कंचन कलश विचित्र सँवारे * सबन धरे सजि निज निज द्वारे
बन्दनवार पताका केतू * सबन बनाये मंगल हेतू

सबने सोने के कलश रंग-रंग के बनाये और साजकर अपने अपने द्वारों पर रक्खे। मंगल के लिए सबने ध्वजा, पताका और बन्दनवार बनाये।

वीथी सकल सुगन्ध सिंचाई * गजमणि रचि बहु चौक पुराई
नाना भाँति सुमंगल साजे * हर्षि निशान नगर बहु बाजे

सब सड़कें सुगन्धित वस्तुओं से सींची गई और गजमोतियों से बहुत-सी चौकें भली भाँति रचकर पुराई गई। भाँति-भाँति के मंगल साजे गये। नगर में चारों ओर प्रसन्नता के बाजे बजने लगे।

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं * देहिं अशीश हर्ष उर भरहीं
कञ्चनथार आरती नाना * युवती साजि करहिं कलगाना

जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ न्योछावर करती हैं। तब (न्योछावर लेनेवाले) लोग आशीश देते हैं, जिससे उनका हृदय प्रसन्नता से भर जाता है। स्त्रियाँ सोने के थालों में आरती साजकर मनोहर गान गाती हैं।

करहिं आरती आरतिहर की * रघुकुलकमल विपिनदिनकर की
पुर शोभा सम्पति कल्याना * निगम शेष शारदा बखाना
ते यह चरित देखि ठगि रहहीं * उमा तासु गुण नर किमि कहहीं

वे रघुकुलकमलवन के खिलानेवाले सूर्य और दुःख व पीड़ा के हरनेवाले रामजी की आरती करती हैं। यदि वेद, शेष या सरस्वती भी नगर की शोभा, सम्पत्ति और कल्याण का बखान करें तो वे भी चरित्र देख ठगे से रह जायँ। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती फिर साधारण मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं?



नारिकुमुदिनी अवधसर, रघुपति विरह दिनेश।
अस्त भये विकसित भईं, निरखि रामराकेश॥

अयोध्यारूप तालाब में स्त्रियाँ कोकाबेली सी थीं। रामचन्द्र का वियोग सूर्य था। उसके अस्त होने पर रामचन्द्ररूप चन्द्रमा को देखकर वे खिल उठीं।

होहिं सगुन शुभ विविधविधि, बाजहिं नाकनिशान।
पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान॥

भाँति-भाँति के शुभ सगुन होते और स्वर्ग में नगाड़े बजते हैं। इस प्रकार अयोध्या के स्त्री-पुरुषों को सनाथकर भगवान् अपने भवन को चले।

प्रभु जाना कैकयी लजानी * प्रथम तासु गृह गये भवानी
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा * पुनि निजभवनगवन प्रभु कीन्हा

शिवजी कहते हैं—हे भवानी, प्रभु ने जाना, कैकेयी लज्जा रही है, इसलिए आप पहले उन्हीं के घर गये। फिर प्रभु ने उन्हें समझाकर बहुत सुख दिया और अपने भवन को गये।

कृपासिन्धु जब मन्दिर गयऊ * पुर नर नारि सुखी सब भयऊ
गुरु वशिष्ठ द्विज लिये बुलाई * आजु सुघरी सुदिन सुखदाई

जब कृपा के सागर रामजी अपने घर गये, तब पुर के सब नर-नारी सुखी हुए। वशिष्ठ ने ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—आज अच्छा सुखदायक दिन और अच्छी घड़ी है।

सब द्विज देहु हर्षि अनुशासन * रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन
मुनि वशिष्ठ के वचन सुहाये * सुनत सकल विप्रन अति भाये

इससे आप सब लोग प्रसन्न होकर आज्ञा दें, रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें। मुनि वशिष्ठ के ये सुहावने वचन सब ब्राह्मणों को बहुत अच्छे लगे।

कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका * जग अभिराम राम अभिषेका
अब मुनिवर बिलम्ब नहिं कीजै * महाराज कहँ तिलक करीजै

यह सुन वे अनेक ब्राह्मण यह कोमल वचन कहने लगे कि रामजी का राजतिलक सारे संसार के लिए सुखदायक है। हे मुनीश्वर, अब देर न कीजिए, महाराज राम का तिलक करिए।

तब मुनि कहेउ सुमन्त्रसन, सुनत चले शिर नाय।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाय॥

तब वशिष्ठ मुनि ने सुमन्त्र को आज्ञा दी और वह आज्ञा सुनते ही शिर नवाकर चल दिये। उन्होंने शीघ्र ही बहुत से रथ, घोड़े व हाथी सजाये।

जहँ तहँ धावन पठै पुनि, मंगल द्रव्य मँगाय।
हर्ष समेत वशिष्ठ पद, पुनि शिरनायउ आय॥

जहाँ-तहाँ दूत भेज मंगल वस्तुएँ मँगाईं और फिर आकर प्रसन्नता से वशिष्ठजी के चरणों में प्रणाम किया।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई * देवन सुमनवृष्टि झरि लाई
राम कहा सेवकन बुलाई * प्रथम सखन अन्हवावहु जाई

उस समय अयोध्यापुरी बहुत सुन्दर ढंग से सजाई गई। देवता फूलों की वर्षा करने लगे। रामजी ने टहलुओं को बुलाकर कहा—पहले जाकर हमारे मित्रों को स्नान कराओ।

सुनत वचन जहँ तहँ जन धाये * सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये
पुनि करुणानिधि भरत हँकारे * निजकर जटा राम निरुवारे

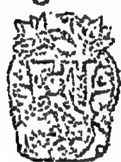
वे सेवक तुरन्त जहाँ-तहाँ दौड़े और सुग्रीव आदि को शीघ्र स्नान कराया। फिर करुणानिधान राम ने भरत को बुलाया और अपने हाथ से उनकी जटाएँ उतारीं।

अन्हवाये पुनि तीनिहु भाई ❋ भक्तबछल कृपालु रघुराई
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई ❋ शेष कोटिशत सकहिं न गाई

फिर भक्तवत्सल कृपालु रघुनाथ ने तीनों भाइयों को स्नान कराया। भरत का भाग्य और प्रभु की कोमलता सैकड़ों करोड़ शेष भी नहीं कह सकते।

पुनि निज जटा राम बिबराये ❋ गुरु अनुशासन माँगि अन्हाये
करि मज्जन भूषण प्रभु साजे ❋ अंग अनंगकोटि छबि लाजे

फिर रामजी ने अपनी जटाएँ कटाईं और गुरु से आज्ञा माँगकर स्नान किया। जब प्रभु ने स्नान करके आभूषण पहने, तब करोड़ों कामदेवों की शोभा लजा गई।



सासुन सादर जानकिहिं, मज्जन तुरत कराय।
दिव्य बसन मणिभूषण, साजे अंग बनाय॥

सासों ने जानकीजी को आदरसहित स्नान कराकर उनके अंगों में दिव्य कपड़े और रत्नों के आभूषण सजाकर पहनाये।

राम बामदिशि शोभित, रमारूप गुणखानि।
देखि मातु सब हर्षित, सफल जन्म निज जानि॥

राम की बाईं ओर गुणों की खान लक्ष्मीरूप जानकीजी को शोभित देख माताओं ने अपना जन्म सफल जाना और प्रसन्न हुईं।

सुनु खगेश तेहि अवसर, ब्रह्मा शिव मुनिवृन्द।
चढ़ि बिमान आये सबै, सुर देखन सुखकन्द॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे खगेश गरुड़, उसी समय ब्रह्मा, शिव, बहुत से मुनि और देवता विमानों पर चढ़-चढ़ आनन्दकन्द रामजी को देखने आये।

प्रभु बिलोकि मुनिमन अनुरागा ❋ तुरत दिव्य सिंहासन माँगा
रबिसम तेज बरणि नहिं जाई ❋ बैठे राम द्विजन शिर नाई

प्रभु को देख वशिष्ठजी का मन प्रेम से भर गया। उन्होंने तुरत दिव्य सिंहासन मँगाया, जिसका सूर्य का-सा तेज वर्णन नहीं किया जा सकता। उस पर रामजी ब्राह्मणों को प्रणाम कर बैठे।

जनकसुता समेत रघुराई ❋ देखि प्रहर्षे मुनि समुदाई
वेदमन्त्र तब द्विजन उचारे ❋ नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे

जानकीसहित रघुनाथजी को देख मुनि लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। ब्राह्मणों ने वेद के मन्त्र पढ़े और आकाश में देवता व मुनियों ने 'जय हो, जय हो' पुकारा।

प्रथमतिलकवशिष्ठमुनि कीन्हा * पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा
सुत विलोकि हरषीं महतारी * बार बार आरती उतारी

पहले वशिष्ठ मुनि ने तिलक किया। फिर सब ब्राह्मणों को तिलक करने की आज्ञा दी। माताएँ पुत्र को देख बार-बार आरती उतारकर प्रसन्न हुईं।

विप्रन दान विविध विधि दीन्हे * याचक सकल अयाचक कीन्हे
सिंहासन पर त्रिभुवन साईं * देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाईं

रामचन्द्र ने ब्राह्मणों को भाँति-भाँति के दान दिये और सब याचकों को इतना दिया कि वे अयाचक हो गये, अर्थात फिर उन्हें कुछ माँगने को नहीं रह गया। तीनों लोकों के स्वामी रामजी को सिंहासन पर देख देवताओं ने नगाड़े बजाये।

छन्द

नभ दुन्दुभी बाजहिं विपुल गन्धर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अप्सरावृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज विभीषणांगद हनुमदादि समेत जे।
गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म शक्ति विराजते॥

आकाश में बहुत से नगाड़े बजते, गन्धर्व व किन्नर गाते और अप्सराएँ नाचती हैं, जिससे देवता और मुनि बहुत आनन्द पाते हैं। विभीषण, अंगद, हनुमान आदि मित्रों समेत राम के भाई छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, खड्ग, ढाल और शक्ति लिए विराजते हैं।

सियसहित दिनकर वंश भूषण कामबहु छवि सोहहीं।
नवअम्बुधरवरगात अम्बरपीत मुनिमन मोहहीं॥
मुकुटांगदादि विचित्रभूषण अङ्ग अङ्गन प्रति सजे।
अम्भोजनयन विशालउरभुज धन्य नर निरखन्त जे॥

सीतासहित सूर्यवंशभूषण, बहुत से कामदेवों की सी शोभावाले रामजी विराजमान हैं। वे नये जलभरे मेघ के समान श्याम देह में पीताम्बर पहने हैं, जो मुनियों के भी मन को मोहता है। प्रति अंग में चित्र-विचित्र मुकुट, बजुला आदि गहने पहने हैं। उनके कमल से नेत्र, विशाल हृदय और लम्बी भुजाएँ हैं। वे मनुष्य धन्य हैं, जो प्रभु के ऐसे दर्शन करते हैं।



वह शोभा सुसमाज सुख, कहत न बनै खगेश।
बरणैं शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे खगेश, वह शोभा और आनन्द का समाज कहते नहीं बनता। सरस्वती, शेष और वेद उसका वर्णन करते हैं कि वह रस (आनन्द) शिव ही जानते हैं।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गे सुर निज निज धाम।
वन्दि वेष धरि वेद तब, आये जहँ श्रीराम॥

देवता लोग अलग-अलग स्तुति करके अपने-अपने लोक को गये। तब भाटों का वेश रखकर सब वेद, जहाँ राम थे, आये।

प्रभु सर्बज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहू मर्म कछु, लगे करन गुणगान॥

सब कुछ जाननेवाले कृपानिधान प्रभु ने उनका आदर किया; पर किसी ने यह भेद न जाना। वेद इस प्रकार भगवान् के गुण गाने लगे—

छन्द

जय सगुणनिर्गुणरूप राम अनूप भूपशिरोमने।
दशकन्धरादि प्रचण्डनिशिचर प्रबलखल भुजबलहने॥
अवतारनर संसारभार विभंजि दारुणदुख दहे।
जय प्रणतपाल दयालु प्रभु संयुक्तशक्ति नमामहे॥

हे राजशिरोमणि राम, आप सगुण और निर्गुण तथा अनुपम हैं। आपकी जय हो। हे शरणागतवत्सल, दयालु, स्वामी, जिन्होंने मनुष्य अवतार ले रावण आदि बलवान्, दुष्ट, घोर निशाचरों को भुजाओं के बल से मारा और संसार का भार हरकर संसार के कठिन दुःख भस्म कर डाले, उन शक्तिसहित आपकी जय हो।

तव विषम मायावश सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भवपंथभ्रमितसुअमित दिननिशि कालकर्मगुणन भरे॥
जेहि नाथ करि करुणा विलोकहु त्रिविधदुखते निर्वहे।
भवखेद छेदन दक्ष हमकहँ रक्ष राम नमामहे॥

हे हरि, आपकी प्रबल माया के वश में देवता, दैत्य, नाग, मनुष्य आदि चर-अचर सभी प्राणी हैं। सब दिन रात काल, कर्म और तीनों गुणों से भरे संसारमार्ग (जन्म-मरणादि) में घूमते-घूमते थक गये हैं। हे नाथ, जिनकी ओर आप करुणा करके देखते हैं, वे ही इन दुःखों से छूट जाते हैं। इससे हे राम, आपको हम प्रणाम करते हैं। हमारी रक्षा कीजिए। संसार के दुःख मिटाने में आप चतुर और समर्थ हैं।

जे ज्ञानमानविमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुरदुर्लभपदादपि परत हम देखत हरी॥
विश्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइरहे।
जपि नाम तव बिन श्रम तरहिं भवनाथ सो समरामहे॥

हे हरि, जो लोग ज्ञान के मद से मतवाले होकर भवभयहारी आपकी भक्ति का आदर नहीं करते, वे हमारे (वेदों के) देखते-देखते देवताओं को भी दुर्लभ पद पाकर भी फिर गिरते हैं। हे नाथ, जो सब आशा-भरोसा छोड़ विश्वास से आपके दास हैं, वे आपका नाम जपकर बिना परिश्रम के संसार को तर जाते हैं। हम आपका स्मरण करते हैं।

जे चरण शिव अज पूज्य रजशुभ परसि मुनिपत्नी तरी।
नखनिर्गता सुरवन्दिता त्रैलोक्यपावनि सुरसरी॥
ध्वजकुलिश अंकुश कंज युत बन फिरत कंटक किनलहे।
पदकंजद्वंद्व मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे॥

शिव, ब्रह्मा आदि से पूजे गये जिन चरणों की सुन्दर रज को छूते ही अहल्या तर गई, जिनके नखों से तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली व देवों के द्वारा वंदित गंगा निकली हैं, जिनमें ध्वजा, वज्र, अंकुश व कमल के चिह्न हैं, जिनमें वन में फिरते समय काँटे लगे, हे मुकुन्द, लक्ष्मीपति, उन आपके श्रीचरणों को हम सदा भजते हैं।

अव्यक्तमूलमनादितरु त्वचचारि निगमागम भने।
षट्कन्ध शाखापंचबिंश अनेकपर्ण सुमनघने॥
फलयुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवित फूलत नवल नित संसारविटप नमामहे॥

हे संसार-वृक्ष, आप अनादि वृक्ष हैं। आपकी जड़ छिपी हुई है। मन बुद्धि चित्त अहंकार आपकी छाल हैं, ऐसा वेद व शास्त्र कहते हैं। जन्म, बाढ़, रूप का बदलना, न्यूनता, स्थिति और मरण—ये छः आपकी जंघायें हैं। पाँचों तत्त्व, दसों इन्द्रियाँ व उनके कार्य, ये पचीस शाखायें हैं। वासना पत्ते, कामना फूल और वैराग्य (मीठे) और विषयों में प्रीति (कड़ुवे), ये दो मीठे और कड़ुवे आपके फल हैं। आपके सहारे परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीरूप एक बेलि है, जो सदा फूलों व पत्तों से नई बनी रहती है।

जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहिं जानहिं नाथ हम तव सगुणयश नितगावहीं॥
करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देव यह वर माँगहीं।
मन कर्म वचन विकार तजि तवचरण हम अनुरागहीं॥

जो जन्ममृत्युरहित, एक विचार से जानने योग्य, मन से परे, ऐसे ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे उस निर्गुणरूप का वर्णन करें और उसे जानें। हे नाथ! हम तो सदा आपके सगुणरूप का यश गाते हैं। हे दयाधाम, गुणों की खान, प्रभु, हम आपसे यह वरदान माँगते हैं कि माया के अच्छे-बुरे विकार छोड़ मन, वचन और कर्म से हम आपके चरणों में प्रेम करें। हमें यही वर दीजिये।


सबके देखत बेद सब, बिनती कीन्ह उदार।
अन्तरधान भये पुनि गये ब्रह्मआगार॥

सबके देखते ही सब वेदों ने इस प्रकार उत्तम बिनती की और फिर अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक को चले गये।

वैनतेय सुनु शम्भु तब, आये जहँ रघुबीर।
विनय करत गद्गद गिरा, पूरित पुलक शरीर॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, जहाँ रघुनाथ थे, वहाँ शिवजी आये और पुलकित हो गद्गद वाणी से इस प्रकार स्तुति करने लगे—

छन्द

जय राम रमारमणं शमनं * भवतापभयाकुल पाहि जनं
अवधेश सुरेश रमेश विभो * शरणागत माँगत पाहि प्रभो

हे लक्ष्मी के पति राम, संसार के सन्ताप और भय से व्याकुल जन की रक्षा कीजिए। हे अयोध्यानाथ, सुरराज, लक्ष्मीपति, विभु, प्रभु, मैं शरण में आना चाहता हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।

दशशीशविनाशनबीसभुजा * कृतदूरि महामहिभूरिरुजा
रजनीचरवृन्द पतङ्ग रहे * शरपावकतेजप्रचण्डदहे

आपने दश शिर और बीस भुजाओंवाले रावण को मारकर पृथ्वी का बड़ा भारी रोग दूर कर दिया। सब राक्षस पतंग की भाँति आपके बाणों की प्रचण्ड आग में भस्म हो गये।

महिमण्डलमण्डनचारुतरं * धृतशायकचापनिषंगवरं
मदमोहमहाममतारजनी * तमपुञ्जदिवाकरतेजअनी

उत्तम धनुष-बाण व तरकस लिये पृथ्वीमण्डल के संस्थापक, अहंकार व मोह से हुई ममतारूप रात्रि के अन्धकार को मिटानेवाले तेज की राशि सूर्य,

मनजातकिरातनिपातकिये * मृगलोगकुभोगशरेण हिये
हति नाथअनाथनिपाहिहरे * विषयावन पामर भूलिपरे

कामदेवरूप व्याध बुरे विषयों के सेवनरूप बाणों से मनुष्यरूप हरिणों के हृदय में प्रहार करता है। हे अनाथों के नाथ, हितैषी, हरि, मैं विषयरूप वन में भूलकर भटक रहा हूँ। मुझ पामर की रक्षा कीजिए।

बहुरोग वियोगन भूलि हये * भवदंघ्रिनिरादर के फल ये
भवसिन्धुअगाध परे नर ते * पदपंकज प्रेम न जे करते

आपके चरणों का निरादर करने का फल यह है कि लोग बहुत रोगों से और मृत्यु से मर जाते हैं। जो आपके चरणकमलों में प्रेम नहीं करते, वे मनुष्य अथाह संसारसमुद्र में पड़े हैं।

अतिदीनमलीनदुखीनितहीं * जिनके पदपंकज प्रीति नहीं
अवलम्ब भवन्तकथाजिनके * प्रियसन्तअनन्तसदातिनके

आपके चरणारविन्दों में जिन्हें प्रीति नहीं, वे सदैव दीन, मलिन और दुखी रहते हैं। हे अनन्त, जिनको आपकी कथा का सहारा है, उन्हें सदैव सज्जन प्यारे होते हैं।

नहिं राग न रोष न मान मदा * तिनके सम वैभव वा विपदा
यहि ते तव सेवक होत मुदा * मुनि त्यागहिं योग भरोस सदा

उन्हें किसी पर स्नेह या क्रोध नहीं, अभिमान व मद नहीं। ऐश्वर्य और विपत्ति दोनों उन्हें समान हैं। इसी से आपके सेवक प्रसन्न रहते हैं और मुनि योग का भरोसा छोड़ देते हैं।

करि नेम निरंतर प्रेम लिये * पदपंकज सेवत शुद्ध हिये
सनमान निरादर आदरही * सब सन्त सुखी विचरन्त मही

वे सज्जन शुद्ध मन लगाकर स्नेहपूर्वक लगातार नियम से आपके चरणारविन्दों की सेवा करते तथा सम्मान और निरादर दोनों का बराबर आदर करते हुए पृथ्वी में सुख से घूमते हैं।

मुनिमानसपंकजभृंग भजे * रघुबीर महारणधीर अजे
तव नामजपामि नमामि हरी * भवरोगमहामदमान अरी

हे रघुवीर, आप महारणधीर, अपराजित हैं। मुनियों के मन कमल के समान हैं और उनमें भौंरे की भाँति आप रमते हैं। मैं आपको भजता हूँ। संसार के जन्म-मृत्युरूप रोग व अहंकार के शत्रु हरि, मैं आपके नाम को जपता और आपको प्रणाम करता हूँ।

गुणशीलकृपापरमायतनं * प्रणमामि निरन्तर श्रीरमनं
रघुनन्द निकन्दन द्वन्द्वघनं * महिपाल विलोकिय दीनजनं

हे रमारमण, आप गुण, शील व कृपा के एकमात्र धाम हैं। पृथ्वी के पालक, वैर व प्रीति आदि घोर द्वन्द्वों के नाशक, रघुनन्दन, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। दीन दास की ओर देखिए।



बार बार बर मागहूँ, हर्षि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायिनी, भक्ति सदा सतसंग॥

हे श्रीरंग! मैं बार-बार यह वरदान माँगता हूँ, आपके चरणारविन्दों में कभी न मिटनेवाली भक्ति और सज्जनों का संग मुझे सदा प्राप्त हो। यही वर प्रसन्न होकर मुझे दीजिए।

बर्णि उमापति रामगुण, हर्षि गये कैलास।
तब प्रभु कपिन दिवायउ, सब बिधि सुखप्रद बास॥

शिवजी रामजी के गुण वर्णन करके प्रसन्न हो कैलास को चले गये। तब प्रभु ने वानरों को सब भाँति के आनन्द देनेवाले डेरे रहने के लिए दिलाये।

सुनु खगपति यह कथा सुहावनि * त्रिविध ताप भवदोष नशावनि
महाराज कर शुभ अभिषेका * सुनत लहहिं नर विरति विवेका

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, तीनों तरह के ताप और संसार के दोष मिटानेवाली सुन्दर कथा सुनो। महाराज रामजी का शुभ तिलक सुनते ही मनुष्य वैराग्य और ज्ञान पाते हैं।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं * सुख सम्पति नाना विधि पावहिं
सुरदुर्लभ सुख करि जगमाहीं * अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं

किसी भी कामना से जो मनुष्य इसे सुनते या कहते हैं, वे बहुत भाँति के सुख और ऐश्वर्य पाते हैं। फिर संसार में देवताओं को भी दुर्लभ सुख करके मरने के बाद वैकुण्ठ-लोक को जाते हैं।

सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषई * लहहिं भक्ति सुखसम्पति नितई
खगपति रामकथा मैं बरणी * सुमतिविलास त्रासदुखहरणी

परमहंस, विरक्त और विषयी लोग भी यह रामजी की कथा सुनने से नित्य भक्ति, सुख और सम्पत्ति पाते हैं। हे गरुड़, भय व दुःख हरने और सुबुद्धि उत्पन्न करनेवाली यह रामजी की कथा मैंने कही।

विरति विवेक भक्ति दृढ़ करणी * मोहनदी कहँ सुन्दर तरणी
नित नव मङ्गल कोशल पुरी * हर्षित रहहिं लोग सबकुरी

यह कथा वैराग्य, ज्ञान और भक्ति को पुष्ट करनेवाली और मोहरूप नदी के लिए अच्छी नाव के समान है। अयोध्यापुरी में नित्य नये मंगल होने लगे। सब जातियों के लोग प्रसन्न रहने लगे।

नितनव प्रीति रामपदपङ्कज * सेवत जेहि शङ्कर सुर मुनि अज
मङ्गन बहुप्रकार पहिराये * द्विजन दान नानाविधि पाये

जिनकी शिव, देवता, मुनि, ब्रह्मा आदि सेवा करते हैं, उन रामजी के चरणारविन्दों में उनकी नित्य नई प्रीति होती है। वे मँगतों को बहुत प्रकार के कपड़े पहनाते और ब्राह्मणों को भाँति-भाँति के दान देते हैं।



ब्रह्मानन्दमगन कपि, सबकहँ प्रभु पद प्रीति।
जातनजानहिंदिवसनिशि, गये मास षट बीति॥

वानर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। प्रभु के चरणों में ऐसा स्नेह है कि रात-दिन बीतते नहीं जानते। इसी प्रकार छः मास बीत गये।

बिसरे गृह सपनेउ सुधि नाहीं * जिमि परद्रोह सन्त मनमाहीं
तब रघुपति सब सखा बुलाये * आइ सबन सादर शिर नाये

वे घर को ऐसा भूल गये कि स्वप्न में भी उसकी सुध नहीं आती जैसे सज्जनों के मन में परद्रोह नहीं रहता। तब रघुनाथ ने सब वानर-सखाओं को बुलाया। सबने आकर आदरसहित प्रणाम किया।

प्रेम समेत निकट बैठारे * भक्तसुखद मृदु वचन उचारे
तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई * मुख पर केहि विधि करौं बड़ाई

फिर भक्तों को सुख देनेवाले रामजी ने स्नेह सहित सबको पास बिठाया और इस प्रकार मीठे वचन बोले—तुम लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की है। मुँह पर मैं कैसे बड़ाई करूँ।

ताते मोहि तुम अति प्रिय लागे ❀ मम हित लागि भवन सुख त्यागे
अनुज राज सम्पति बैदेही ❀ देह गेह परिवार सनेही

तुम मुझे प्यारे हो। तुमने मेरे लिए घर के सुख छोड़ दिये। भाई, राज्य, ऐश्वर्य, सीता, देह, घर, कुटुम्ब, स्नेही—

सब मोहि प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना ❀ मृषा न कहौं मोर यह बाना
सब कहँ प्रिय सेवक यह नीती ❀ मोरे अधिक दास पर प्रीती

ये सब मुझे ऐसे प्रिय नहीं, जैसे तुम लोग। झूठ नहीं कहता, मेरा यह स्वभाव ही है। नीति है कि सेवा करनेवाला सबको प्रिय होता है। फिर मुझे तो दास पर और भी अधिक प्रीति है।



अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम॥

अब सब घर जाकर मुझे दृढ़ नियम से भजो। मुझे सदा सर्वव्यापी, सबका हितैषी जान मुझसे प्रेम करो।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भयऊ ❀ को हम कहाँ बिसरि तनु गयऊ
इकटक रहे जोरि कर आगे ❀ सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे

प्रभु के वचन सुन सब मग्न हो गये—'हम कौन और कहाँ हैं?' यह देह की सुध भूल गये। हाथ जोड़ टकटकी लगाकर आगे खड़े हो रहे। इतना अधिक प्रेम हुआ कि कुछ कह नहीं सकते।

परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा ❀ कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा
प्रभु सन्मुख कछु कहै न पारहिं ❀ पुनि पुनि चरणसरोज निहारहिं

प्रभु ने उन सबमें बहुत अधिक प्रेम देख भाँति-भाँति से ज्ञान के उपदेश दिये। वानर लोग प्रभु के सामने कुछ कह नहीं सकते, इससे बार-बार उनके चरणारविन्द निहारते हैं।

तब प्रभु भूषण बसन मँगाये ❀ नाना रंग अनूप सुहाये
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराये ❀ भरत बसन निज हाथ बनाये

तब प्रभु ने गहने और कपड़े मँगाये, जो रंग बिरंगे, अनुपम और सुहावने थे। पहले भरत ने अपने हाथ से रचकर सुग्रीव को कपड़े पहनाये।

प्रभु प्रेरित लछमण पहिराये ❀ लंकापति रघुपति मन भाये
अंगद बैठि रहे नहिं डोले ❀ प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोले

फिर रामजी के कहने से लक्ष्मण ने विभीषण को पहनाये, जो रामजी के मन भाये। अंगद चुपके बैठे रहे, हिले तक नहीं। उनका प्रेम देख भगवान् उनसे नहीं बोले।



जाम्बवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हियधरि रामस्वरूप सब, चले नाइ पद माथ॥

जाम्बवन्त और नील आदि सबको रामजी ने बढ़िया वस्त्र पहनाये। फिर उन सबने रामजी का स्वरूप हृदय में रखकर चरणों में माथा नवाया और चले।

तब अंगद उठि नाइ शिर, सजलनयन करजोरि।
अति बिनीत बोले बचन, मनहु प्रेमरस बोरि॥

तब अंगद ने उठकर शिर नवाकर हाथ जोड़ आँखों में जल भरकर बहुत विनीत वचन कहे, जो मानो प्रेम के रस में डूबे हुए थे।

सुनु सर्बज्ञ कृपासुखसिन्धो * दीनदयाकर आरतबन्धो
मरती बार नाथ मोहिं बाली * गयो तुम्हारे पगतर घाली

अंगद बोले—हे सब कुछ जाननेवाले, कृपा व सुख के समुद्र, दीनों पर दया करनेवाले, दुःख के साथी, नाथ, मरने के समय मेरे पिता बालि मुझे आपके पैरोंतले छोड़ गये थे।

अशरणशरण बिरदसंभारी * मोहिं जनि तजहु भक्तभयहारी
मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता * जाउँ कहाँ तजि पदजलजाता

हे भक्तभयहारी! जिसका कोई नहीं, उसे शरण देने का अपना बाना सँभालकर मुझे न छोड़िए। मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता, माता, सब आप ही हैं। अब आपके चरणारविन्द छोड़कर कहाँ जाऊँ!

तुमहिं बिचारि कहहु नरनाहा * प्रभु तजि भवन काज मम काहा
बालक अबुध ज्ञान बल हीना * राखहु शरण जानि जन दीना

हे राजन्, आप ही विचारकर कहें, आपको छोड़ घर में मेरा क्या काम है? मुझ ज्ञान और बल से हीन अज्ञानी बालक को दीन जान शरण में रखिए।

नीच टहल गृह की सब करिहौं * पद बिलोकि भवसागर तरिहौं
असकहि चरण परेउ प्रभु पाही * अब जनि नाथ कहहु गृहजाही

घर की सब नीच टहल करूँगा और आपके चरण देख संसारसमुद्र तर जाऊँगा। ऐसा कह अंगद चरणों पर गिर पड़े और बोले—हे स्वामी, अब घर जाने को न कहिए।



अङ्गद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुणासींव।
प्रभु उठाय उर लायउ, सजलनयनराजीव॥

करुणानिधि रघुनाथ ने अंगद के नीतिभरे वचन सुन उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। प्रभु के कमल-सरीखे नेत्रों में जल भर आया।

निजउर माला बसन मणि, बालितनय पहिराय।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाय॥

फिर रामचन्द्र ने अपने हृदय की माला, वस्त्र और रत्न अंगद को पहनाये और बहुत भाँति समझाकर बिदा किया।

भरत अनुज सौमित्रि समेता * पठवन चले भक्तकुल चेता।
अङ्गद हृदय प्रेम नहिं थोरा * फिरिफिरि चितवतप्रभुकी ओरा।

भगवान् भक्त की ओर चित्त करके भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण-सहित उनको भेजने चले। अंगद के हृदय में भी थोड़ा प्रेम नहीं है। वे लौट-लौटकर प्रभु की ओर देखते हैं।

बार बार करि दण्डप्रणामा * मन असरहन कहहिं मोहिं रामा।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी * सुमिरिसुमिरिशोचतहँसिमिलनी।

बार-बार दण्डवत्-प्रणाम करते और चाहते हैं कि रामजी मुझसे रहने को कहें। रामजी का देखना, बोलना, चलना, हँसकर मिलना आदि याद कर-कर सोचते हैं।

प्रभुरुख देखि बिनय बहुभाखी * चलेउ हृदय पदपङ्कज राखी।
अति आदर सब कपि पहुँचाये * भाइन सहित राम पुनि आये।

परन्तु प्रभु का रुख देख बहुत बिनती करके हृदय में उनके चरणारविन्द रखकर चल दिये। सब वानरों को बड़े आदर से पहुँचाकर भाइयों-सहित रामजी लौट आये।

तब सुग्रीव चरण गहिं नाना * भाँति बिनय कीन्ही हनुमाना।
दिनदश करि रघुपतिपद सेवा * तब फिरि चरण देखिहौं देवा।

तब हनुमान् ने सुग्रीव के चरण पकड़कर बहुत प्रकार बिनय की कि हे देव, दश दिन और रघुनाथ के चरणों की सेवा करके फिर आपके चरणों के दर्शन करूँगा।

पुण्यपुञ्ज तुम पवनकुमारा * सेवहु जाय कृपाआगारा।
असकहि कपिपति चले तुरन्ता * अङ्गद कहेउ सुनहु हनुमन्ता।

सुग्रीव ने कहा—हे वायुपुत्र, तुम बड़े पुण्यात्मा हो; जाकर कृपा के धाम रामजी की सेवा करो। ऐसा कह वानरराज सुग्रीव तुरत चल दिये। फिर अंगद ने कहा—हे हनुमान्, सुनो।



कहेउ दण्डवत प्रभुसन, तुमहिं कहौं करजोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रभु से मेरी दण्डवत कहना और बार-बार मेरी याद दिलाना।

असकहिचलेउ बालिसुत, फिर आयउ हनुमन्त।
तासु प्रीति प्रभुसन कही, मगन भये भगवन्त॥

ऐसा कह अंगद चले। हनुमान् लौट आये व उनकी प्रीति प्रभु से कही। सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए।

कुलिशहुचाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेश रघुनाथ अस, समुझि परै कहु काहि॥

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़, रघुनाथ का मन वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल है। भला उसे कौन समझ सकता है?

पुनि कृपालु लिय बोलि निषादा * दीन्हेउ भूषण बसन प्रसादा
जाहु भवन मम सुमिरण करहू * मन क्रम वचन धर्म अनुसरहू

फिर कृपालु रामजी ने निषाद को बुलाया और प्रसाद के तौर पर उसे गहने और कपड़े दिये। फिर कहा—घर जाओ और मन, वचन, कर्म से धर्म के अनुसार चलते हुए मेरा ध्यान करो।

तुम मम सखा भरतसम भ्राता * सदा रहहु पुर आवत जाता
वचन सुनत उपजा सुख भारी * परेउ चरण लोचनभरिवारी

हे मित्र, तुम भरत के समान मेरे भाई और सखा हो। सदा पुर में आते-जाते रहना। यह वचन सुनते ही निषाद को बहुत सुख हुआ। वह आँखों में जल भरकर प्रभु के चरणों में गिर पड़ा।

चरणकमल उर धरि गृह आवा * प्रभुप्रभाव परिजनहिं सुनावा
रघुपति चरित देखि पुरवासी * पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी

निषाद प्रभु के चरणारविन्दों को हृदय में रखकर घर आया और प्रभु का प्रभाव अपने कुटुम्बियों को सुनाया। रघुनाथ के चरित्र देख अयोध्यावासी उसे बार-बार धन्य और सुख की राशि कहते हैं।

रामराज बैठे त्रयलोका * हर्षित भयो गयो सब शोका
वैर न करहिं काहुसन कोई * राम प्रताप विषमता खोई

रामजी के राज्य में तीनों लोक प्रसन्न हुए और सब दुःख जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। रामजी के प्रताप ने सब विषमता खोदी।



वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग॥

सब अपने वर्ण और आश्रम के धर्म में प्रीति करते व वेदमार्ग पर चलते हैं। इसी से सदा सुख पाते हैं। कहीं डर, शोक और रोग का नाम नहीं है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा * रामराज नहिं काहुहिं व्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती * चलहिं स्वधर्म निरतश्रुतिरीती

आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, तीनों तरह के ताप रामजी के राज्य में किसी को नहीं हुए। सब मनुष्य परस्पर स्नेह करते और वेदरीति से अपने धर्म में प्रीति रखते हैं।

चारिउ चरण धर्म जग माहीं ※ पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं
रामभक्तिरत नर अरु नारी ※ सकल परमगति के अधिकारी

संसार में धर्म चारों चरणों से पूर रहा है। स्वप्न में भी पाप नहीं। स्त्री पुरुष सभी रामजी की भक्ति में लगे हैं, इससे बहुत उत्तम गति के अधिकारी हैं।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ※ सब सुन्दर सब निरुज शरीरा
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ※ नहिं कोउ अबुध न लक्षणहीना

अल्पायु या अकाल मृत्यु नहीं होती। किसी को कोई पीड़ा नहीं है। सबकी देह नीरोग और सब सुन्दर हैं। कोई न दरिद्र है न दुखी ; न निर्धन न मूर्ख ; न लक्षणों से हीन है।

सब निर्दम्भ धर्मरत धरणी ※ नर अरु नारि चतुर शुभ करणी
सब गुणज्ञ सब पण्डित ज्ञानी ※ सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी

सब पृथ्वी पाखण्डहीन, धर्मात्मा, चतुर और सुकर्म करनेवाले स्त्री पुरुषों से भरी है। सब लोग गुणों के ज्ञाता, पण्डित, ज्ञानी और उपकार के जाननेवाले हैं—छल और कपट नहीं है।



रामराज्य खगेश सुनु, सचराचर जगमाहिं।
काल कर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहिं नाहिं॥

हे गरुड़, रामजी के राज्य में चर-अचर सारे संसार में अच्छे-बुरे समय, कर्म, स्वभाव या गुण से उत्पन्न दुःख किसी को नहीं होते।

भूमि सप्तसागरमेखला ※ एकभूप रघुपति कोशला
भुवन अनेक रोम प्रति जासू ※ यह प्रभुता कछु बहुत न तासू

मेखला (करधनी) की भाँति सात समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी के एक ही सम्राट् कोशलराज रघुनाथ हैं। पर जिसके प्रति रोम में बहुत से लोक हैं, उसकी यह प्रभुता कुछ बहुत नहीं।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी ※ यह वर्णत हीनता घनेरी
यह महिमा खगेश जिन जानी ※ फिरि यह चरित तिनहुँ रतिमानी

प्रभु की उस महिमा को समझते हुए यह वर्णन करते मुझे बहुत तुच्छ लगता है। फिर हे गरुड़, जिन्होंने वह महिमा जान रक्खा है, वे भी इस चरित्र से प्रीति करते हैं।

सो जानेकर फल यह लीला ※ कहहिं महामुनि सुमतिसुशीला
राम राज्यकर सुख सम्पदा ※ बरणि न सकहिं फणीश शारदा

अच्छी बुद्धिवाले, शीलवान् महामुनि कहते हैं कि यह लीला उस प्रभाव के जानने का फल है। रामजी के राज्य का सुख और ऐश्वर्य सरस्वती और शेष भी नहीं वर्णन कर सकते।

सब उदार सब पर-उपकारी * द्विज-सेवक सब नर अरु नारी
एकनारिब्रतरत नर झारी * ते मन बच क्रम पतिहितकारी

रामजी के राज्य में सब स्त्री-पुरुष दानी, परोपकारी और ब्राह्मणों के सेवक हैं। सब पुरुष एक ही स्त्री के व्रती हैं। स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से अपने पति की हितू पतिव्रता हैं।



दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज।
जीतहिं मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

रामजी के राज्य में कोई अपराध न होने के कारण दण्ड केवल सन्यासियों के पास, भेद (ताल स्वर का) केवल नचाने और नाचनेवालों के समाज में और जीतना केवल मन आदि इन्द्रियों का सुनाई देता है।

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन * रहहिं एक सँग गज पंचानन
खगमृग बैर सहज बिसराई * सबन परस्पर प्रीति बढ़ाई

वन के वृक्ष सदा फूलते फलते तथा सिंह और हाथी साथ-साथ रहते हैं। सब पक्षियों और हरिणों ने अपना स्वाभाविक वैर भुलाकर परस्पर स्नेह बढ़ाया।

कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा * अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा * गुंजत अलि लै चल मकरन्दा

वन में भाँति-भाँति के पक्षी बोलते हैं। हरिण निडर होकर चरते और आनन्द करते हैं। ठंडी, सुगन्धित और धीमी वायु बहती है और भौंरे गुंजारते व फूलों का पराग लेकर उड़ते हैं।

लता बिटप माँगे मधु स्रवहीं * मनभावते धेनु पय स्रवहीं
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी * त्रेता भइ सतजुग की करनी

माँगने से बेलें और वृक्ष फल चुआते, गौवें यथेष्ट दूध देतीं और पृथ्वी सदा अन्न से भरी-पुरी रहती है। त्रेतायुग में सत्ययुग की-सी सब बातें होने लगीं।

प्रगटे गिरि नानामनि खानी * जगदातमा भूप पहिचानी
सरिता सकल बहैं बरबारी * सीतल अमल स्वादु सुखकारी

भगवान् विश्वरूप को राजा हुआ जानकर पर्वतों ने भाँति-भाँति के रत्नों की खानें उपजाईं। नदियाँ ठंडा, निर्मल, स्वादिष्ट, सुखद और उत्तम जल बहाने लगीं।

सागर निज मरजादा रहहीं * डारहिं रतन तटन्ह नर लहहीं
सरसिजसंकुल सकल तड़ागा * अतिप्रसन्न दसदिसाबिभागा

समुद्र अपनी सीमा में रहते और किनारे रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य ले लिया करते हैं। सब तालाब कमलों से युक्त हैं और दसों दिशाएँ बहुत प्रसन्न हैं।



बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जितनहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

रामचन्द्रजी के राज्य में चन्द्रमा पृथ्वी को अमृतमयी किरणों से भरता है। जितनी आवश्यकता होती, उतना ही सूर्य तपते और माँगने पर सर्वदा मेघ जल देते हैं।

कोटिन बाजिमेध प्रभु कीन्हे * अमित दान विप्रन कहँ दीन्हे
स्रुतिपथपालक धर्मधुरन्धर * गुनातीत अरु भोगपुरन्दर

वेदमार्ग के रक्षक, धर्मधुरन्धर, तीनों गुणों से न्यारे और सब भोगों के स्वामी प्रभु ने करोड़ों अश्वमेध किये और ब्राह्मणों को बेशुमार दान दिये।

पति अनुकूल सदा रह सीता * सोभाखानि सुसील विनीता
जानति कृपासिन्धु प्रभुताई * सेवति चरन कमल मन लाई

शोभा की खान, सुशील, विनयभरी सीताजी सदा पति रामजी के मन के अनुसार रहती हैं। कृपा के सागर रामजी की प्रभुता जानतीं और मन लगाकर उनके चरणारविन्दों की सेवा किया करती थीं।

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी * सब प्रकार सेवा विधि लीनी
निजकर गृहपरिचर्जा करहीं * रामचन्द्र आयसु अनुसरहीं

यद्यपि घर में दास और दासियाँ सब प्रकार सेवा में लगी रहती थीं, तो भी सीताजी घर की टहल अपने हाथ करती और रामजी की आज्ञा बजा लाती थीं।

जेहिबिधिकृपासिन्धुसुखमानहिं * सोइ सिय सेवाविधिउरआनहिं
कौसल्यादि सासु गृह माहीं * सेवहिं सबै मान मद नाहीं
उमा रमा ब्रह्मानि वन्दिता * जगदम्बा सन्तत अनिन्दिता

जैसे कृपासिन्धु राम सुख मानते, वैसे ही सेवा करने का विचार सीताजी मन में लाती हैं। आदर और अहंकार छोड़ घर में कौशल्या आदि सासों की सेवा करती हैं। पार्वती, लक्ष्मी और सावित्री जिनकी वन्दना करती हैं, जो संसार की माता और सदा प्रशंसा के योग्य हैं,



जाके कृपाकटाच्छ सुर, चाहत चितवनि सोय।
राम पदारविन्द रति, करति सुभावहिं खोय॥

जिनके कृपाकटाक्ष की चितवन को देवता चाहते हैं, वही सीताजी अपना स्वभाव (लक्ष्मी का स्वभाव चंचल है) भुलाकर रामजी के चरणारविन्दों में प्रीति करती हैं।

सेवहिं सानुकूल सब भाई * रामचरनरत प्रीति सुहाई
प्रभुपदकमल बिलोकत रहहीं * कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं

सब भाई रामजी के चरणों में सुहावनी प्रीति करते और उनकी इच्छानुसार सेवा करते हैं। वे प्रभु के चरणकमल देखते रहते और कृपालु राम की आज्ञा चाहा करते हैं।

राम करहिं भ्रातन पर प्रीती * नानाभाँति सिखावहिं नीती

हर्षित रहहिं नगर के लोगा * करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा

रामजी भाइयों पर स्नेह करते और न्याय सिखाया करते हैं। नगर के सब लोग प्रसन्न रहते और देवताओं को भी दुर्लभ सुख भोगते हैं।

अहनिसिबिधिहिमनावतरहहीं * श्रीरघुबीर चरनरति चहहीं
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये * लव कुस बेद पुरानन गाये

दिन-रात विधाता को मनाते और रघुनाथ के चरणों की भक्ति चाहते हैं। जानकीजी ने दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम वेद-पुराण 'लव' और 'कुश' कहते हैं।

दोउबिजयी बिनयी अतिसुन्दर * हरिप्रतिबिम्ब मनहु गुनमन्दिर
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे * भये रूप गुन सील घनेरे

दोनों वीर विजेता नम्र बड़े सुन्दर और गुणों की खान थे, मानो रामजी के ही प्रतिबिंब हों। सब भाइयों के दो दो पुत्र हुए। वे भी बड़े सुन्दर, गुणी और सुशील थे।



ज्ञान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानन्द घन, कर नरचरित उदार॥

वाणी, इन्द्रिय और मन से परे, तीनों गुणों-सहित माया से न्यारे, ज्ञानस्वरूप, जन्म रहित, सत्-चित्-आनन्द-घन परमात्मा रामजी मनुष्यों के-से चरित्र करते हैं।

प्रातकाल सरजू करि मज्जन * बैठहिं सभा सन्त द्विज सज्जन
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं * सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं

रामजी सवेरे सरयू में स्नान कर साधुओं, ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते थे। वशिष्ठ वेद-पुराण कहते थे। सब जाननेवाले होकर भी रामजी उसे मन लगाकर सुनते हैं।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं * देखि सकल जननी सुख भरहीं
भरत सत्रुहन दोनों भाई * सहित पवनसुत उपबन जाई

रामचन्द्र को छोटे भाइयों समेत भोजन करते देख सब माताएँ सुख से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई हनुमान्-सहित फुलवाड़ी में जाते हैं—

बूझहिं बैठि रामगुन गाहा * कह हनुमान सुमति अवगाहा
सुनतबिमलगुनअतिसुखपावहिं * बार बार करि बिनय सुनावहिं

वहाँ बैठकर रामजी के गुणों की गाथा पूछते हैं और सुमतिधारण कर हनुमान् कहते हैं। निर्मल गुण सुन वे बहुत सुख पाते और बार-बार बिनती कर सुनते हैं।

सबके गृह गृह होइ पुराना * रामचरित सुन्दर बिधि नाना
नर अरु नारि रामगुन गानहिं * करहिं दिवसनिसि जात न जानहिं

जिनमें रामजी के सुन्दर चरित्र हैं, ऐसे पुराण घर-घर होते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ रामजी के गुणों का गान करते हैं। उनको रात-दिन जाते नहीं जान पड़ते।



अवधपुरीबासीन कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस सेस नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज॥

जहाँ राजा राम विराजमान हैं, उस अयोध्या के रहनेवालों के सुख और संपदा को हजार शेष भी नहीं कह सकते।

नारदादि सनकादि मुनीसा * दरसन लागि कोसलाधीसा
दिनप्रतिसकलअजोध्याआवहिं * देखि नगर बिराग बिसरावहिं

नारद, सनक, सनन्दन आदि मुनीश्वर कोशलाधीश रामजी के दर्शन करने नित्य अयोध्या में आते हैं। नगर देखकर उनका वैराग्य भूल जाता है।

जातरूप मनि जटित अटारी * नाना रंग रुचिर गच ढारी
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर * रचे कँगूरा रङ्ग रङ्ग बर

मणियों से जड़ी हुई सोने की अटारियाँ हैं, जिनमें रंग-रंग की चमकीली ढालू छतें बनी हैं। नगर के चारों कोनों पर बड़े सुन्दर कोट हैं, जिनमें उत्तम रंग-बिरंगे कँगूरे बने हैं।

नवग्रह सुन्दर निकर बनाई * मनहुँ घेरि अमरावति आई
महि बहुरङ्ग रचित गच काँचा * जो बिलोकि मुनिबर मन राँचा

कँगूरों में सुन्दर नवो ग्रह के समूह बनाये हैं, मानो इन्द्र की पुरी अमरावती अयोध्या के किनारे-किनारे बसी हो। अयोध्या की भूमि में बहुत रंगों के शीशों का फर्श बना है, जिसे देख मुनीश्वरों के मन लुभा जाते हैं।

धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत * कलसमनहुरबिससिदुतिनिन्दत
बहुमनिरचितझरोखा भ्राजहिं * गृहगृहप्रति मनिदीप बिराजहिं

सफेद महल आकाश को छूते हैं। उनके कलश मानों सूर्य और चन्द्रमा की धूप और चाँदनी को भी मात करते हैं। घर-घर बहुत-से मणियों के झरोखे हैं, जिनमें मणियों के दीपक जलते हैं।

छन्द

मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
सुन्दर मनोहर मन्दिरायत अजिर अति फटिकन खची॥
मनिखम्भ भीतिबिरञ्चि बिरचित कनकमनि मरकत रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाय बहु बज्रन खचे॥

मणियों के दीपक, मूँगों की देहलियाँ और बहुत-से स्फटिक मणियों से जड़ी लम्बी-चौड़ी

अँगनाइयों से शोभित ऐसे सुन्दर मन्दिर हैं कि मन को बरबस अपनी ओर खींचे लेते हैं। मणियों के खम्भे और दीवारें मानो ब्रह्मा ने बनाई हों। वे सोने और हरी मणियों से बनी हैं और हर एक द्वार में बहुत से हीरे-जड़े सोने के किवाड़े लगे हैं।



चारु चित्रसाला अमित, गृह गृह रची बनाइ।
रामधाम जो निरखत, मुनि मन लेत चुराइ॥

बहुत-सी सुन्दर चित्रशालाएँ घर-घर बनी हैं। रामजी का मन्दिर जो देखता है, वह मुनि भी हो तो, उसके मन को वह भवन चुरा लेता है।

सुमन बाटिका सबन लगाई * बिबिध भाँति करि जतन बनाई
लता ललित बहु भाँति सुहाई * फूलत सदा बसन्त कि नाई

सब ने भाँति-भाँति के फूलों के बगीचे लगाये हैं, और उन्हें भाँति-भाँति से यत्न करके सजाया है। बहुत भाँति की सुहावनी सुन्दर बेलें वसन्त ऋतु की नाईं सदा फूला करती हैं।

गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर * मारुत त्रिविध सदा बह सुन्दर
नाना खग बालकन जिआये * बोलत मधुर उड़ात सुहाये

मनोहर शब्दों से उनमें भौंरे गुंजार करते हैं और शीतल, मंद, सुगंध तीनों प्रकार की सुन्दर वायु सदा बहती है। बालकों ने भाँति-भाँति के पक्षी पाल रक्खे हैं, जो मीठे बोल बोलते और उड़ने में बड़े प्रिय लगते हैं।

मोर हंस सारस पारावत * भवनन पर सोभा अतिपावत
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं * बहुबिधि कूजहिं नृत्य कराहीं

मोर, हंस, सारस, कबूतर आदि पक्षी मन्दिरों पर बड़ी शोभा पाते हैं। जहाँ-तहाँ अपनी परछाहीं देख भाँति-भाँति से बोलते और नाचते हैं।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक * कहहु राम रघुपति जनपालक
राजद्वार सबही विधि चारू * बीथी चौहट रुचिर बजारू

लड़के तोतों और मैनाओं को पढ़ाते हैं कि 'राम' रघुराज, दीन की रक्षा करनेवाले' कहो। राजद्वार सभी प्रकार सुन्दर है। गलियाँ, चौराहे और बाजार भी बहुत सुन्दर हैं।

छन्द

बाजार चारु न बनै बरनत बस्तु बिन गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की सम्पदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर ते।
सब सुखी सब सुचरित्र सुन्दर नारि नर सिसु जरठ ते॥

बाजार ऐसे सुन्दर हैं कि प्रशंसा नहीं करते बनती। वहाँ बिना मोल तोल के ठीक भाव में सब वस्तुएँ मिल जाती हैं। जहाँ के राजा लक्ष्मीनिवास रामजी हैं, वहाँ की सम्पत्ति

कैसे कही जा सके ? बहुत-से कुबेरजी से भी अधिक धनी बजाज, सर्राफ और व्यापारी बैठे हैं। स्त्रियाँ, पुरुष, बालक, बूढ़े सब अच्छे चालचलनवाले, सुन्दर और सुखी हैं।

दो० उत्तर दिसि सरजू बहै, निर्मल जल गम्भीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पङ्क नहिं तीर॥

उत्तर ओर स्वच्छ जल से भरी गहरी सरयू नदी बहती है। किनारे थोड़ा भी कीचड़ नहीं; घाट मनोहर हैं।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा * जहँ जल पियहिं बाजिगजठाटा
पनिघट परम मनोहर नाना * तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना

वह लम्बा-चौड़ा सुन्दर घाट दूर है, जहाँ घोड़े और हाथी पानी पीते हैं। पनघट बहुत ही मनोहर बना है। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते; क्योंकि वहाँ स्त्रियाँ आती-जाती हैं।

राजघाट सबही बिधि सुन्दर * मज्जहिं तहाँ बरन चारिहु नर
तीर तीर देवन कर मन्दिर * चहुँदिसि तेहिके उपबन सुन्दर

राजघाट सभी प्रकार सुन्दर है। वहाँ चारों वर्णों के मनुष्य स्नान करते हैं। किनारे-किनारे देवताओं के मन्दिर हैं और उनके चारों ओर सुन्दर बगीचे लगे हैं।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी * बसहिं ज्ञानरत मुनि सन्यासी
जहँ तहँ तुलसीबृन्द सुहाये * बहुप्रकार सब मुनिन लगाये

नदी के किनारे कहीं-कहीं ज्ञान में लगे वैरागी, मुनि, सन्यासी आदि रहते हैं। सब मुनियों ने जहाँ-तहाँ सुहावने तुलसी के बहुत-से वृक्ष लगा रक्खे हैं।

पुरसोभा कछु बरनि न जाई * बाहर नगर परम रुचिराई
देखत पुरी अखिल अघ भागा * बन उपवन बापिका तड़ागा

पुर की शोभा तो कुछ कही ही नहीं जाती। नगर के बाहर भी बड़ी सुन्दरता है। वहाँ वन, बगीचे, बावलियाँ, तालाब आदि बने हैं। अयोध्या की शोभा देखते ही सब पाप भाग जाते हैं।

छन्द

बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप-गुंजारहीं।
आरामरम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हँकारहीं॥

सुन्दरता में अनुपम बावलियाँ, तालाब, कुएँ आदि लम्बे-चौड़े विराजते हैं, जिनकी सुन्दर सीढ़ियाँ और निर्मल जल देख देवता व मुनि मोहित हो जाते हैं। रंग-रंग के कमल

खिले हैं, जिनमें अनगिनत पक्षी बोलते और भौंरे गुंजारते हैं। बगीचे में कोयल आदि पक्षी बोलते, मानो बटोहियों को बुलाते हैं।



रमानाथ जहँ राज्यपति, सो पुर बरनि कि जाय।
अनिमादिकसुखसम्पदा, रहीं अवधपुर छाय॥

जिस राज्य के स्वामी लक्ष्मीपति रामजी हैं, उसका वर्णन कैसे हो? अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ और सभी सुख-सम्पत्तियाँ अयोध्यापुरी में फैल रही हैं।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं * बैठि परस्पर इहै सिखावहिं
भजहु प्रनत प्रतिपालकरामहिं * सोभा-सील रूप-गुन-धामहिं

जहाँ-तहाँ मनुष्य रघुनाथ के गुण गाते और बैठकर परस्पर यही कहते हैं कि प्रणतपाल और शोभा, शील, रूप आदि गुणों की खान रामजी को भजो।

जलजबिलोचनस्यामल गातहिं * पलक नयन इव सेवकत्रातहिं
धृतसर रुचिरचाप तूनीरहिं * सन्तकंजबनरबि रनधीरहिं

कमलनयन और साँवली देहवाले, जो सेवक की वैसे ही रक्षा करते हैं, जैसे पलकें आँखों की। सुन्दर धनुष-बाण व तरकस लिये, साधुरूप कमलवन के सूर्य, रणधीर,

कालकरालब्यालखगराजहिं * नमित राम अकाम ममता जहि
लोभमोहमृगजूथकिरातहि * मनसिजकरिहरिजनसुखदातहि

भयानक कालरूप सर्प के लिए गरुड़, इच्छारहित रामजी को मोह-ममता को मारकर नमस्कार करो। लोभ-मोहरूप हरिणों के लिए व्याध, कामदेवरूप हाथी के लिए सिंह अपने भक्तों को सुख देनेवाले,

संसयसोकनिबिड़तमभानुहि * दनुजगहनबनदहन कृसानुहि
जनकसुता समेत रघुबीरहि * कस न भजहु भञ्जनभवभीरहि

सन्देह और दुःखरूप घोर अन्धकार के मिटानेवाले सूर्य, राक्षसरूप सघनवन के भस्म करनेवाले अग्नि, संसार का भार मिटानेवाले जानकी समेत रघुनाथ को क्यों नहीं भजते?

बहुबासनामसकहिमरासिहि * सदाएकरसअज अबिनासिहि
मुनिरंजन भंजन महिभारहि * तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि

बहुत वासनारूप मच्छड़ों को मारने के लिए पाले के समान, सदा एकरस, जन्म-मृत्यु से रहित, मुनियों को प्रसन्न रखनेवाले, पृथ्वी के भार के नाशक और तुलसीदास के उदार प्रभु राम को क्यों नहीं भजते?



यहि बिधि नगर नारि नर, करहिं रामगुन गान॥
सानुकूल सन्तत रहत, सब पर कृपानिधान॥

नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार राम के गुण गाया करते हैं। कृपानिधान रघुनाथ भी सदा सब पर अनुकूल प्रसन्न रहते हैं।

जबते राम प्रताप खगेसा * उदितभयो अतिप्रबल दिनेसा
पूरि प्रकास रह्यो तिहुँ लोका * बहुतन सुख बहुतन मन सोका

हे गरुड़, जब रामजी का प्रतापरूप प्रबल सूर्य उदय हुआ और तीनों लोकों में उसका प्रकाश छा गया, तब बहुतों को तो सुख और बहुतों के मन में दुःख हुआ।

जिनहिं सोक तेहि कहौं बखानी * प्रथम अविद्यानिसा सिरानी
अघउलूक जहँ-तहाँ लुकाने * काम क्रोध कैरव सकुचाने

जिन्हें दुःख हुआ, उनका वर्णन करता हूँ। पहले तो अज्ञानरूपी रात दूर हो गई। जहाँ-तहाँ पापरूप उल्लू छिप रहे और काम-क्रोधरूप कोकाबेली सकुच गई।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ * ये चकोर सुख लहैं न काऊ
मत्सर मान मोह मद चोरा * इनकहँ सुख नहिं कौनिहु ओरा

भाँति-भाँति के कर्म, गुण, समय, स्वभाव*—ये चकोर के समान कहीं सुख नहीं पाते। ईर्ष्या, मान, मोह, अभिमान को चोरों की भाँति कहीं सुख नहीं रहा।

धर्मतड़ाग ग्यान बिज्ञाना * ये पंकज बिकसे बिधि नाना
सुख सन्तोष बिराग बिबेका * बिगत सोक ये कोक अनेका

धर्मरूप सरोवर में ज्ञान और विज्ञानरूप नाना भाँति के कमल खिल उठे। सुख, सन्तोष, वैराग्य और ज्ञान चकवा-चकई की भाँति सुखी हो गये।



यह प्रताप रबि जासु उर, जब प्रभु करहिं प्रकास।
पाछिल बाढ़हिं प्रथम से, कहे ते पावहिं नास॥

प्रभु अपने इस प्रताप-सूर्य का प्रकाश जिसके हृदय में करते हैं, उसके पहले कहे हुए पाप आदि नष्ट होते और पिछले सुख सन्तोष आदि बढ़ते हैं।

भ्रातन सहित राम इक बारा * संग परमप्रिय पवनकुमारा
सुन्दर उपबन देखन गयऊ * सब तरु कुसुमितपल्लवनयऊ

एक बार भाइयों समेत रामजी परमप्रिय हनुमान् को साथ ले सुन्दर बाग देखने गये, जिसमें सब वृक्ष फूलों और पत्तों के बोझ से झुके हुए थे।

जानि समय सनकादिक आये * तेजपुंज गुन सील सुहाये
ब्रह्मानन्द सदा लयलीना * देखत बालक बहुकालीना

उसी समय अवसर जान सुहावने गुण और शीलवाले, तेज की राशि, ब्रह्माजी के पुत्र सनक, सनन्दन आदि योगीश्वर परमहंस वहाँ आये। वे सदा ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं और यद्यपि बड़े प्राचीन हैं, तथापि देखने में बालक ही जान पड़ते हैं।

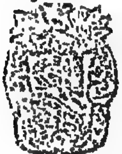
* रामराज्य का परमसुख इन सबकी गति से परे है।

मानो देह जनु चारिउ बेदा * समदरसी मुनि बिगत बिभेदा
आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं * रघुपति चरित होय तहँ सुनहीं

मानो देह धरकर चारों वेद आये हों। वे समदर्शी, मुनि, भेदभाव से रहित, दिगंबर (नंगे) रहते हैं और उनका यही काम है कि जहाँ रघुनाथजी के चरित्र होते हों, वहाँ जाकर उन्हें सुनते हैं।

तहाँ रहे सनकादि भवानी * जहँ घटसम्भव मुनिवर ज्ञानी
रामकथा मुनि बहुबिधि बरनी * ज्ञानयोग पावक जिमि अरनी

हे पार्वती, जहाँ मुनिवर, ज्ञानी अगस्त्यजी रहते थे, वहाँ सनकादिक भी थे। अगस्त्य मुनि ने ज्ञान और योगरूप अग्नि उत्पन्न करने में अरणी * के समान राम की कथा बहुत प्रकार से कही।



देखि राम मुनि आवत, हरषि दण्डवत कीन्ह।
स्वागत पूछी पीतपट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥

राम ने मुनियों को आते देख प्रसन्न हो दण्डवत् प्रणाम किया। फिर कुशल पूछ अपना पीताम्बर बैठने को दिया।

कीन्ह दण्डवत तीनों भाई * सहित पवनसुत सुख अधिकाई
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी * भये मगन मन सकत न रोकी

हनुमान्-सहित तीनों भाइयों ने भी दण्डवत् की और बहुत ही सुखी हुए। रघुनाथ की अतुल शोभा देख मुनि मन को न रोक सके—मगन हो गये।

श्यामल गात सरोरुह लोचन * सुन्दरता मन्दिर भवमोचन
एकटक रहे निमेष न लावहिं * प्रभु करजोरे शीश नवावहिं

साँवली देह, कमल-से नेत्र, सुन्दरता के मन्दिर, जन्म-मरणरूप संसार के छुड़ानेवाले प्रभु रामजी को मुनिगण एकटक देखते हैं, पलक नहीं लगती और प्रभु को हाथ जोड़ सिर झुकाते हैं।

तिन्हकी दशा देखि रघुबीरा * स्रवत नयन जल पुलक शरीरा
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे * परम मनोहर वचन उचारे

उनकी यह दशा देख रघुनाथ की आँखों से जल बहने लगा और देह पुलकित हो उठी। प्रभु ने हाथ पकड़कर मुनीश्वरों को बिठाया और मनोहर बातें कहीं।

आज धन्य मैं सुनहु मुनीशा * तुम्हरे दरश जाहिं अघखीशा
बड़े भाग्य पाइय सतसंगा * बिनहिं प्रयास होय भवभंगा

* यह लकड़ी, जिसको रगड़कर पहले ऋषि लोग आग पैदा किया करते थे।

राम ने कहा—हे मुनीश्वरो, आज मैं धन्य हूँ; क्योंकि आपके दर्शनों से पाप मिट जाते हैं। सज्जनों का संग बड़े भाग्य से मिलता है। उनसे बिना परिश्रम के जन्म-मरणरूप संसार का नाश हो जाता है।



सन्तपन्थ अपवर्ग कर, कामी भवकरपन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ॥

साधु मुक्ति का मार्ग और कामी जन्ममरणरूप संसार का मार्ग हैं, ऐसा साधु, कवि, पण्डित, वेद, पुराण और अच्छे-अच्छे ग्रन्थ कहते हैं।

सुनि प्रभुवचन हर्षि मुनि चारी * पुलकगात अस्तुति अनुसारी
जय भगवन्त अनन्त अनामय * अनघ अनेक एक करुणामय

प्रभु के वचन सुन चारों मुनि प्रसन्न हुए और पुलकित होकर स्तुति करने लगे—हे भगवन्, अनन्त, निर्विकार, पापहीन, करुणामय आपकी जय हो।

जय निर्गुण जयजय गुणसागर * सुखमन्दिर तिहुँलोकउजागर
जय इन्दिरारमण जय भूधर * अनुपम अजय अनादिशुभाकर

हे निर्गुण गुणों के सागर, सुख के धाम, तीनों लोकों में उजागर (श्रेष्ठ), आपकी जय हो। हे लक्ष्मी के पति और पृथ्वी को धारण करनेवाले, अनुपम, न जीते जाने योग्य, आदिरहित, मंगलों की खान,

ज्ञाननिधान अमान मानप्रद * पावनसुयश पुराण वेद वद
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन * नामअनेक अनाम निरंजन

ज्ञान के आधार, अपरिमित, दूसरों को मान देनेवाले, आपके पवित्र यश को वेद और पुराण कहते हैं। आप 'तत्' महावाक्य के ज्ञाता, कृतज्ञ, अज्ञान के नाशक, अवतारों में अनेक नामोंवाले, वाणी से परे होने के कारण नाम व रूप से हीन और निरंजन अर्थात् निर्लिप्त हैं।

सर्व सर्वगत सर्वउरालय * बसहु सदा हमकहँ परिपालय
द्वन्द्व विपति भवफंद विभंजन * हृदि बसु राम कामम्मदगंजन

आप सदा सबके हृदय में रहते, सबमें विद्यमान और सभी कुछ हैं। हमारी रक्षा कीजिए। हे द्वन्द्व दुःखरूप संसार-पाश तोड़नेवाले राम, कामदेव के मद के नाशक, आप हमारे हृदय में बसिए।



परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरण काम।
प्रेमभक्ति अनपायिनी, देहु हमहिं श्रीराम॥

हे राम, परम आनन्द स्वरूप, कृपा की खान, मन की भी कामना पूरी करनेवाले आप हमें अपनी प्रेम-भरी और कभी न नष्ट होनेवाली भक्ति दीजिए।

देहु भक्ति रघुपति अतिपावनि * त्रिविधताप भवदाप नशावनि
प्रणतपाल सुरधेनु कल्पतरु * है प्रसन्न प्रभु दीजे यह बरु

हे रघुपति, तीनों प्रकार के ताप और संसार के क्लेश दूर करनेवाली बहुत पवित्र भक्ति दीजिए । हे प्रभु, प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए । आप शरणागत के पालक, कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान भक्तों की कामना पूरी करनेवाले हैं ।

भववारिधिकुम्भज रघुनायक * सेवकसुलभ सकल सुखदायक
मनसम्भव दारुणदुख दारय * दीनबन्धु समता विस्तारय

हे संसार-समुद्र के सोखनेवाले अगस्त्य, रघुनाथ, आप सेवक को सहज ही सब सुख देनेवाले हैं । हे दीनबन्धु, मन से उत्पन्न दारुण दुखों को दूर कीजिए और समता * फैलाइए ।

आश त्रास ईर्षादि निवारक * विनय विवेक विरति विस्तारक
भूपमौलिमणि मण्डनधरणी * देहु भक्ति संसृतसरितरणी

आप आशा, भय और ईर्षा के नाशक हैं । नम्रता, ज्ञान और वैराग्य के बढ़ानेवाले हैं । हे राजशिरोमणि, पृथ्वी के पालक, जन्म-मरणरूप नदी को पार करने की नौका रामचन्द्र, हमें अपनी भक्ति दीजिए ।

मुनिमनमानसहंस निरन्तर * चरणकमल वन्दित अज शङ्कर
रघुकुलकेतु सेतुश्रुतिरक्षक * काल कर्म स्वभाव गुणभक्षक
तारणतरण हरण सबदूषण * तुलसिदास प्रभु त्रिभुवनभूषण

आप मुनियों के मनरूप मानसर के हंस हैं । ब्रह्मा और शिव आपके चरणारविन्दों की सदा वन्दना करते हैं । आप रघुकुलकेतु, वेदमार्ग के रक्षक तथा काल, कर्म, स्वभाव व गुण के नाशक हैं । आप त्रिलोक-भूषण, दोषहरण, तुलसीदासजी के प्रभु और तारने वालों के भी तारनेवाले हैं ।



बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित शिरनाय ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाय ॥

इस प्रकार स्तुति करके मनचाहा वर पाकर सनकादि ने बार-बार प्रेम से प्रणाम किया और ब्रह्मलोक को चले गये ।

सनकादिक विधिलोक सिधाये * भ्रातन रामचरण शिर नाये
पूछत प्रभुहिं सकल सकुचाहीं * चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं

जब सनकादि ऋषि ब्रह्मलोक को चले गये, तब सब भाइयों ने रामजी के चरणों में सिर नवाया । वे प्रभु से कुछ पूछना चाहते हैं ; परन्तु संकोच के कारण हनुमान्‌जी की ओर देखते हैं ।

* समता ही योग है—गीता में (समत्वं योग उच्यते.)

सुना चहहिं प्रभुमुख की बानी * जो सुनि होय सकल भ्रमहानी
अन्तरयामी प्रभु सब जाना * बूझत कहहु कहा हनुमाना

वे प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते हैं, जिसे सुनने से सब सन्देह और भ्रम जाते रहते हैं। अन्तर्यामी अर्थात् सबके मन की बात जाननेवाले प्रभु ने पूछा—कहो हनुमान, क्या बात है ?

जोरि पानि तब कह हनुमन्ता * सुनिये दीनबन्धु भगवन्ता
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं * प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं

हनुमान् ने हाथ जोड़कर कहा—हे दीनबन्धु भगवान्, भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, परन्तु सकुचाते हैं।

तुम जानहु कपि मोर सुभाऊ * भरतहिं मोहिं न कछू दुराऊ
सुनि प्रभुबचन भरत गहि चरणा * सुनहु नाथ प्रणतारतिहरणा

रामचन्द्र ने कहा—हनुमान्, तुम मेरा स्वभाव जानते हो कि भरत से मुझे कुछ भी दुराव नहीं है। प्रभु के ये वचन सुन भरत ने चरण छुए और कहा—हे नाथ, आप तो शरणागत के दुखों के हरनेवाले हैं।


नाथ न मोहिं सन्देह कछु, सपनेहु शोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारि प्रभु, चिदानन्द सन्दोह॥

हे स्वामी, मुझे स्वप्न में भी कुछ सन्देह, शोक या मोह नहीं है। हे प्रभु, यह चित्स्वरूप और आनन्द की राशि आपकी कृपा है।

करौं कृपानिधि एक ढिठाई * मैं सेवक तुम जनसुखदाई
सन्तन की महिमा रघुराई * बहु बिधि बेद पुराणन गाई

हे कृपानिधि, मैं सेवक एक ढिठाई करता हूँ; हे भक्तों को सुख देनेवाले आप मुझे क्षमा करें। हे रघुनाथ, साधुओं की महिमा वेदों और पुराणों ने बहुत प्रकार से कही है।

श्रीमुख तुम पुनि कीन्ह बड़ाई * तिनपर प्रभुहिं प्रीति अधिकाई
सुना चहौं प्रभु तिनकर लक्षण * कृपासिन्धु गुणज्ञानविचक्षण

आपने भी श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है। उन पर प्रभु का स्नेह भी अधिक है। हे स्वामी, मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। हे दयासागर, गुण और ज्ञान में चतुर।

सन्त असन्त भेद बिलगाई * प्रणतपाल मोहिं कहौ बुझाई
सन्तन के लक्षण सुनु ताता * अगणित श्रुति पुराण बिख्याता

शरणागत के रक्षक ! साधु और असाधुओं के भेद अलग-अलग समझाकर कहिए। रामजी ने कहा—भाई, वेदों और पुराणों में [illegible] सन्तों के लक्षण सुनो।

सन्त असन्तन की अस करणी * जिमि कुठार चन्दन आचरणी
काटै परसु मलय सुनु भाई * निज गुण देइ सुगन्ध बसाई

साधुओं और असाधुओं के ऐसे काम हैं, जैसे चन्दन और कुल्हाड़ी का व्यवहार होता है। भाई, कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है तो भी चन्दन उसे अपना गुण (सुगन्ध) ही देता है।


ताते सुरशीशन चढ़त, जगवल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशुबदन यह दण्ड॥

इसी से संसार भर का प्यारा चन्दन देवताओं के सिर में चढ़ता है और कुल्हाड़ी का मुख अग्नि में जलाकर घन से पीटा जाता है—यह उसे दण्ड मिलता है।

विषय अलम्पट शीलगुणाकर * परदुख दुख सुख सुख देखे पर
सम अभूतरिपु विमद विरागी * लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी

गुणों की खान साधु विषयों में आसक्त नहीं होते। वे पराये दुःख देख दुखी और सुख देख सुखी होते हैं। वे सदा एक से रहते हैं। उनके शत्रु नहीं होते। किसी बात का घमंड भी नहीं होता। वे विरक्त और लोभ, क्रोध, हर्ष तथा भय से रहित होते हैं।

कोमलचित दीनन पर दाया * मन बच क्रम मम भक्ति अमाया
सबहि मानप्रद आप अमानी * भरत प्राणसम मम ते प्रानी

चित्त के कोमल, दीनों पर दयालु, मन-वचन-कर्म से मेरे भक्त, छल-कपट से रहित, सबका आदर करनेवाले और आप अभिमान से रहित, ऐसे प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

बिगतकाम मम नामपरायन * शान्त विरक्त नीति मुदितायन
सीतलता सरलता मयित्री * द्विजपदप्रेम धर्मजनयित्री

वे कामनारहित, मेरे नाम में रत, शान्तस्वभाव, विषयों से अलग, न्याय और आनन्द के धाम होते हैं। वे समझते हैं कि शीतलता, सिधाई, मित्रता तथा ब्राह्मण के चरणों की प्रीति से धर्म की उत्पत्ति होती है।

यह सब लक्षण बसहिं जासु उर * जानहु तात सन्त सन्तत फुर
शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं * परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं

हे तात, जिसके हृदय में ये लक्षण हों, उसे सच्चा साधु जानना। साधु पुरुष शम, दम और नियम की नीति से नहीं डिगते और न कभी कठोर वचन बोलते हैं।


निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता ममपदकंज।
ते सज्जन मम प्राणप्रिय, गुणमन्दिर सुखपुंज॥

वे सज्जन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं, जो निन्दा या प्रशंसा का कुछ भी ध्यान न रखकर मेरे चरणारविन्दों में स्नेह करते हैं। वे ही गुणों के धाम और आनन्द की राशि हैं।

सुनहु असन्तन केर स्वभाऊ * भूलेहु संगति करिय न काऊ
तिनकर संग सदा दुखदाई * जिमि कपिलहि घालै हरहाई

अब दुष्टों का स्वभाव सुनो। भूल से भी कभी उनका संग न करना चाहिए। जैसे हरहँट गऊ कपिला को भी संकट में डालती है, मार खिलाती है, वैसे ही उनका भी संग सदा दुःख ही देता है।

खलन हृदय अतिताप विशेखी * जरहिं सदा परसम्पति देखी
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई * हर्षहिं मनहु परी निधि पाई

दुष्टों के हृदय में बड़ी उग्र जलन होती है। वे पराई सम्पत्ति देख जला करते हैं। जहाँ कहीं पराई निन्दा सुनते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो निधि पड़ी पा गये।

कामक्रोधमदलोभपरायन * निर्दय कपटी कुटिल मलायन
बैर अकारण सब काहू सों * जो कर हित अनहित ताहू सों

वे काम, क्रोध, अहंकार और लोभ में रत होते हैं। निर्दयी, कपटी, कुटिल और मन के मैले होते हैं। बिना कारण ही बैर करते हैं और जो भलाई करता है, उसका भी अहित करते हैं।

झूठै लेना झूठै देना * झूठै भोजन झूठ चबेना
बोलहिं मधुरवचन जिमि मोरा * खाहिं महाअहि हृदय कठोरा

वह झूठ ही लेते, देते, खाते, पीते हैं। झूठ ही उनका चबेना है। मोर की भाँति बोलते तो बहुत मीठा हैं, परन्तु वास्तव में ऐसे कठोर हैं कि मोर की भाँति बड़े-बड़े साँपों को भी खा डालते हैं अर्थात् भीतर जहर भरा होता है।


परद्रोही परदाररत, परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद॥

दूसरों के वैरी, पराई स्त्रियों के स्नेही, पराया धन लेने और पराई निन्दा करनेवाले वे नीच पापमय मनुष्य की देह ही धरे हैं, वास्तव में राक्षस हैं।

लोभै ओढ़न लोभै डासन * शिश्नोदरपर यमपुर त्रासन
काहू की जो सुनैं बड़ाई * स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई

उनका लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिछौना है। वे सदा खाने-पीने और मैथुन में लगे रहते हैं। यमपुर के भय को नहीं गिनते। यदि किसी की बड़ाई सुनते हैं तो ऐसी साँस लेते हैं, मानों जूड़ी आ गई हो

जब काहूके देखहिं विपती * सुखी होहिं मानहु जग नृपती
स्वारथरत परिवारविरोधी * लम्पट काम लोभ अतिक्रोधी

जब किसी के यहाँ विपत्ति देखते हैं तो ऐसे सुखी होते हैं, मानो संसार भर के राजा हो गये हों। वे मतलब के ही साथी और कुटुम्बियों के भी वैरी, कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं * आपु गये अरु घालहिं आनहिं
करहिं मोहवश द्रोह परावा * सतसंगति हरिभक्ति न भावा

वे माता, पिता, गुरु, ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो गये ही हैं, दूसरों को भी डुबाते हैं। अज्ञान के कारण दूसरों से वैर करते हैं; अच्छी संगति और भगवान् की भक्ति नहीं भाती।

अवगुणसिन्धु मन्दमति कामी * वेदविदूषक परधनस्वामी
विप्रद्रोह परद्रोह विशेषी * दम्भ कपट जिय धरे सुवेषी

अवगुणों के समुद्र, नीच बुद्धिवाले, कामी, वेद की निन्दा करनेवाले, पराये धन को हड़पकर उसके स्वामी बन बैठनेवाले, दूसरों से (अधिकतर ब्राह्मणों से) वैर करनेवाले, अच्छे वेष बनाकर पाखण्ड रचने और छल करनेवाले—



ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहैं कलियुग माहिं॥

ऐसे नीच दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में कुछ होते हैं और कलिकाल में तो झुण्ड के झुण्ड होंगे।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई * परपीड़ा सम नहिं अधमाई
निर्णय सकल पुराण वेदकर * कहेउँ तात जानहिं कोविदनर

भाई, पराई भलाई करने के समान दूसरा धर्म और दूसरों को दुःख देने के समान पाप नहीं है। यह पुराणों और वेदों का मत मैंने तुमसे कहा। पण्डित लोग इसे जानते हैं।

नरशरीर धरि जे परपीरा * करहिं ते सहहिं महाभवभीरा
करहिं मोहवश नर अघ नाना * स्वारथरत परलोक नशाना

मनुष्य की देह धारणकर जो औरों को पीड़ा पहुँचाते हैं वे संसार की अधिक यातनाओं को सहते हैं। अज्ञान के अधीन हो मनुष्य भाँति-भाँति के पाप करते और स्वार्थ में लगकर अपना परलोक बिगाड़ लेते हैं।

कालरूप मैं तिन कहँ ताता * शुभ अरु अशुभ कर्म फलदाता
अस विचारि जो परम सयाने * भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने

हे तात, कालरूप मैं उनको अच्छे और बुरे कर्मों का फल देता हूँ। ऐसा विचारकर जो बड़े चतुर हैं, वे संसार को दुःखों का घर जानकर मुझे भजते हैं।

त्यागहिं कर्म शुभाशुभदायक * भजहिं मोहिं सुरनरमुनिनायक

सन्त असन्तन के गुण भाखे * ते न परहिं भव जिन लखिराखे

अच्छे और बुरे फल देनेवाले कर्म छोड़कर मुक्त हो देवताओं, मनुष्यों और मुनियों के स्वामी को भजते हैं। साधुओं और असाधुओं के गुण मैंने तुमसे कहे। जिन्होंने इन्हें देख रक्खा है, वे संसार के बंधन में नहीं पड़ते।



सुनहु तात माया कृत, गुण अरु दोष अनेक।
गुण यह उभय न देखिये, देखिय सो अविवेक॥

हे तात, माया से उत्पन्न गुण और दोष बहुत हैं। इसमें गुण यही है कि गुण या दोष न देखे; क्योंकि वे माया के रचे होने से झूठे हैं। जो इन्हें सच देखे, वह मूर्ख है।

श्रीमुखवचन सुनत सब भाई * हर्ष प्रेम न हृदय समाई
करहिं विनय अति बारहिंबारा * हनूमान हिय हर्ष अपारा

रामजी के श्रीमुख से यह वचन सुनकर सब भाई प्रसन्न हुए। हृदय में प्रेम नहीं समाता। वे बार-बार बहुत बिनती करते हैं। हनुमान्‌जी के हृदय में तो अपार हर्ष है।

पुनि रघुपति निज मन्दिर गये * यहि विधि करत चरित नित नये
बार बार नारद मुनि आवहिं * चरित पुनीत रामकर गावहिं

फिर रघुनाथ अपने भवन में गये। इसी प्रकार नित्य नये चरित्र करते हैं। नारद मुनि बार-बार आते और रामजी के पवित्र यश गाते हैं।

नितनव चरित देखि मुनि जाहीं * ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं
सुनिविरंचिअतिशयसुखमानहिं * पुनिपुनि तात करहु गुणगानहिं

नारद मुनि नित्य नये चरित्र देख जाते और ब्रह्मलोक में सब कहते हैं। उन्हें सुन ब्रह्माजी बहुत सुख मानते और बार-बार कहते हैं कि हे तात, रामजी के गुण गाओ।

सनकादिक नारदहिं सराहहिं * यद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं
सुनि गुणगान समाधि बिसारी * सादर सुनहिं प्रेम अधिकारी

यद्यपि सनक, सनन्दन आदि मुनि ब्रह्म में मग्न परमहंस हैं, तो भी नारद की बड़ाई करते हैं। वे प्रेम के अधिकारी मुनि समाधि भुलाकर रामजी के गुणों को आदर सहित सुनते हैं।



जीवनमुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरिकथा न करहिं रति, तिनके हृदय पषान॥

देखो, सनक आदि मुनि जीवन्मुक्त और परब्रह्म में लीन हैं, तो भी निर्गुण का ध्यान छोड़कर सगुण हरि के चरित्र सुनते हैं। सच है, जो भगवान् की कथा में प्रीति नहीं करते उनके हृदय पत्थर के हैं।

एक बार रघुनाथ बुलाये * गुरु द्विज पुरबासी सब आये

बैठे गुरु द्विजवर मुनि सज्जन * बोले वचन भक्तभयभंजन

एक बार रघुनाथ ने बुलाया तो गुरु वशिष्ठ, ब्राह्मण और सब नगरनिवासी आये। जब गुरु वशिष्ठ और ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनि आदि बैठे, तब रामजी भक्तों का भय दूर करनेवाले ये वचन बोले—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी * कहौं न कछु ममता उर आनी
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई * सुनहु करहु जो तुम्हहिं सुहाई

हे पुरवासियो, मेरे वचन सुनो। मैं मन में ममता लाकर कुछ नहीं कहता। इसमें न कुछ अनीति है और न कुछ प्रभुता। मेरी बात सुन लो और जो तुमको अच्छा लगे तो करो।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई * मम अनुशासन मानै जोई
जो अनीति कछु भाषौं भाई * तो मोहिं बरजेहु भय बिसराई

वही सेवक और प्रिय है, जो मेरी आज्ञा माने। भाई, यदि मैं कुछ अनीति कहूँ तो भय छोड़कर मुझे रोक देना।

बड़े भाग्य मानुषतन पावा * सुरदुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा
साधनधाम मोक्ष कर द्वारा * पाइ न जेहिं परलोक सँवारा

देखो मनुष्य की देह बड़े भाग्य से पाई है। अच्छे ग्रन्थ वेद आदि कहते हैं कि नरदेह देवताओं को भी दुर्लभ है। नरदेह साधना का साधन और मुक्ति का द्वार है। इसे पाकर जिसने परलोक नहीं बनाया,

दोहा—सो परत्र दुख पावई, शिर धुनि धुनि पछिताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय॥

वह परलोक में दुःख पाता है तथा काल, कर्म और ईश्वर को झूठा दोष देकर सिर पीट-पीटकर पछताता है।

एहि तनु कर फल विषय न भाई * स्वर्गहु स्वल्प अन्तदुखदाई
नरतनु पाय विषय मन देहीं * पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं

भाई, इस देह का फल इन्द्रियों का सुख नहीं है। स्वर्ग भी थोड़ा सुख और अन्त में दुःख देनेवाला है। जो मनुष्य की देह पाकर विषयों में मन देते हैं, वे मूर्ख अमृत के बदले विष लेते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहै न कोई * गुंजा गहै परसमणि खोई
आकर चारि लाख चौरासी * योनिन भ्रमत जीव अविनासी

उसे कभी कोई भला नहीं कहता, जो पारसमणि खोकर घुँघची को ले। अविनाशी जीव चार आकरों (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज) और चौरासी लाख योनियों में फिरता है।

फिरत सदा माया के प्रेरे * काल कर्म स्वभाव गुण घेरे
कबहूँ करि करुणा नर देही * देत ईश बिनहेतु सनेही

माया की इच्छा से काल, कर्म (प्रारब्ध), स्वभाव और गुणों से घिरा हुआ सदा घूमता फिरता है। अकारण स्नेही परमेश्वर कभी दया करके मनुष्य की देह देता है।

नरतनु भववारिधि कहँ बेरे * सन्मुखमरुत अनुग्रह मेरे
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा * दुर्लभ साज सुलभ करि पावा

संसाररूप समुद्र के पार जाने में मनुष्य की देह नौका, मेरी दया सामने की हवा और अच्छा गुरु खेनेवाला है। मनुष्य ने यह दुर्लभ साज सरलता से पाया है।



जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाय।
सोकृतनिन्दकमन्दमति, आतमहनगति जाय॥

जो मनुष्य ऐसा समाज पाकर भी संसारसमुद्र से पार न हो, वह मन्दमति, कृतघ्न और आत्मघाती की गति को पाता है।

जो परलोक यहाँ सुख चहहू * सुनिमम वचन हृदय दृढ़ गहहू
सुलभ सुखद मारग यह भाई * भक्तिमोरि पुराण श्रुति गाई

यदि यहाँ और परलोक में सुख चाहो तो मेरे वचन सुनो और याद रक्खो। भाई, यह मार्ग सुख देनेवाला और सहज है। मेरी भक्ति ही यह सुखदायक मार्ग पुराणों और वेदों ने कहा है।

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका * साधन कठिन न मन कहँ टेका
करत कष्ट बहु पावै कोऊ * भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ

ज्ञान अथाह है, उसमें बहुत से विघ्न हैं, साधना भी कठिन है; क्योंकि उसमें मन टिकता नहीं। बहुत कष्ट से यदि कोई ज्ञान को पा भी जाय तो बिना भक्ति के मुझे प्रिय नहीं होता।

भक्ति स्वतंत्र सकल सुखखानी * बिन सतसंग न पावहिं प्रानी
पुण्यपुंज बिनु मिलहिं न सन्ता * सतसंगति संसृति कर अन्ता

भक्ति स्वतंत्र और सब सुखों की खान है; परन्तु बिना सत्संग के उसे प्राणी नहीं पाते। और बिना पुण्य के सज्जन नहीं मिलते। सत्संग से जन्ममरण का अन्त हो जाता है।

पुण्य एक जगमहँ नहिं दूजा * मन क्रम वचन विप्रपद पूजा
सानुकूल तेहिपर मुनि देवा * जो तजि कपट करै द्विजसेवा

संसार में इससे बढ़कर दूसरा पुण्य नहीं कि मन, वचन, कर्म से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करे। जो कपट छोड़ ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर देवता और मुनि प्रसन्न रहते हैं।



औरौ एक गुप्त मत, सबहिं कहौं करजोरि।
शंकरभजन बिना नर, भक्ति न पावै मोरि॥

और भी एक गुप्त मत हाथ जोड़कर सबसे कहता हूँ—शंकर का भजन किये बिना कोई मेरी भक्ति को नहीं पाता।

कहहु भक्तिपथ कौन प्रयासा * योग न मख जप तप उपवासा
सरलस्वभाव न मन कुटिलाई * यथालाभ सन्तोष सदाई

कहो, भक्तिमार्ग में कौन बड़ा परिश्रम है? उसमें तो योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत आदि कुछ नहीं है। सीधा स्वभाव हो, मन में छल-कपट या कुटिलता न हो। जो मिले, उसी में सदा सन्तोष करे।

मोर दास कहाइ नर आसा * करै तो कहहु कहा विश्वासा
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई * यहि आचरण वश्य मैं भाई

जो मनुष्य मेरा दास कहाकर दूसरे का भरोसा करे, उसे विश्वास कहाँ? बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ, भाई, इस आचरण से मैं अवश्य वश हो जाता हूँ।

बैर न विग्रह आस न त्रासा * सुखमय ताहि सदा सब आसा
अनारम्भ अनिकेत अमानी * अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी

बैर, लड़ाई, आशा और त्रास जिसे न हो, उसे सब प्रकार सुख है। कोई काम न छेड़े, घर में आसक्त न हो, मान न चाहे, पापी या क्रोधी न हो। शास्त्र और लोक की रीति में चतुर तथा आत्मज्ञानी हो।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा * तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा
भक्तिपक्षहठ नहिं शठताई * दुष्ट कर्म सब दूरि बिहाई

सदा सज्जनों से प्रीति व संग करे। संसारी विषयों के साथ ही स्वर्ग और मोक्ष को तृण के समान जाने। भक्तिपक्ष में डटा रहे। शठता न करे। सब बुरे कामों को दूर ही से छोड़ दे।



मम गुण ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानै, परानन्द सन्दोह॥

मेरे गुणों और नामों में लगा रहे। ममता, अभिमान व मोह छोड़ दे। इस सुख को वही जानता है; वही ब्रह्मानन्द है।

सुनत सुधा सम वचन राम के * सबन गहे पद कृपाधाम के
जननि जनक गुरु बन्धु हमारे * कृपानिधान प्राण ते प्यारे

रामजी के अमृतसरीखे वचन सुन सबने कृपा के धाम रघुनाथ के चरण छुए। उन्होंने कहा—हे कृपानिधान, हमारे माता, पिता, गुरु, भाई और प्राणों से भी प्यारे तुम्हीं हो।

तनु धन धाम राम हितकारी * सब विधि तुम प्रणतारतिहारी
अस सिख तुम बिन देइ न कोऊ * मात पिता स्वारथरत सोऊ

हे राम, आप देह, धन और धाम की भलाई करने और सब प्रकार शरणागत का दुःख हरनेवाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके सिवा कौन दे सकता है? माता-पिता भी स्वार्थ में लगे रहते हैं।

हेतुरहित युग युग हितकारी * तुम तुम्हार सेवक असुरारी
स्वारथमित्र सकल जग माहीं * सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीं

हे दैत्यों के शत्रु, आप और आपके भक्त ही बिना किसी स्वार्थ के युग-युग में उपकार करते हैं। संसार में और सभी तो अपने मतलब के साथी हैं। हे प्रभु, परमार्थ स्वप्न में भी कोई नहीं है।

सबके वचन प्रेम रस साने * सुनि रघुनाथ हृदय हर्षाने
निज निज गृह गे आयसु पाई * बरणत प्रभु बतकही सुहाई

स्नेहरूप रस से सने हुए सबके ये वचन सुनकर रघुनाथ मन में प्रसन्न हुए। फिर सब आज्ञा पा प्रभु की सुहावनी बातचीत कहते अपने-अपने घर गये।



उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्मसच्चिदानन्दघन, रघुनायक जहँ भूप॥

हे पार्वती, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म रघुनाथ जहाँ राजा हैं, उस अयोध्या के वासी कृतार्थ हैं।

एकबार वशिष्ठ मुनि आये * जहाँ राम सुखधाम सुहाये
अति आदर रघुनायक कीन्हा * पद पखारि चरणोदक लीन्हा

एक बार जहाँ आनन्द के धाम रामजी विराजमान थे, वहाँ वशिष्ठ मुनि आये। रघुनाथ ने उनका बड़ा आदर किया और पैर पखारकर चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी * कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी
देखि देखि आचरण तुम्हारा * होत मोह मम हृदय अपारा

मुनि ने हाथ जोड़कर कहा—हे कृपा के सागर राम, मेरी कुछ विनती सुनो। आपका आचरण देख-देख मेरे हृदय में बड़ा मोह होता है।

महिमा अमित वेद नहिं जाना * मैं केहि भाँति कहौं भगवाना
उपरोहिती कर्म अतिमन्दा * वेद स्मृति पुराण करु निन्दा

हे भगवान्, आपकी महिमा अथाह है। उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं कैसे कहूँ? पुरोहित का कर्म बड़ा नीच है। वेद, स्मृति और पुराण इसकी निन्दा करते हैं।

जब न लेउँ मैं तब विधि मोहीं * कहा लाभ आगे सुत तोहीं
परमातमा ब्रह्म नररूपा * होइहि रघुकुल भूषण भूपा

जब मैं इसे नहीं लेता था, तब ब्रह्माजी ने मुझसे कहा—पुत्र, तुम्हें आगे लाभ होगा। परब्रह्म परमात्मा मनुष्य का रूप रखकर रघुवंशभूषण महाराज होंगे।



तब मैं हृदय बिचार किय, योग यज्ञ जप दान।
जेहि लित करिय सो पाइय, धर्म न यहि सम आन॥

तब मैंने मन में विचार किया कि जिसके लिये लोग योग, यज्ञ, जप और दान नित्य करते हैं, वही मैं सुगमता से पा रहा हूँ। इसके समान दूसरा धर्म नहीं है।

जप तप नियम योग व्रत धर्मा * श्रुतिसम्भव नानाविधि कर्मा
ज्ञान दया दम तीरथमज्जन * जहँ लगि धर्म कहैं श्रुति सज्जन

जप, तप, नियम, योग, व्रत, धर्म आदि वेद के बताये हुए अनेक प्रकार के कर्म, आत्मज्ञान, दया की बुद्धि, तीर्थस्नान तथा और भी जो वेदों व सज्जनों ने धर्म बताये हैं।

आगम निगम पुराण अनेका * पढ़े सुनेकर फल प्रभु एका
तव पदपंकजप्रीति निरन्तर * सब साधन कर फल यह सुन्दर

हे स्वामी, उन सबके करने तथा स्मृतियों, वेदों और पुराणों के पढ़ने व सुनने का फल यही है कि सदा आपके चरणारविन्दों में प्रीति हो। ऊपर कहे गये सब साधनों का यही सुन्दर फल है।

छूटै मल कि मलहि के धोये * घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये
प्रेमभक्तिजल बिन रघुराई * अभ्यन्तरमल कबहुँ कि जाई

क्या मैल से धोने से मैल छूट सकता है? क्या जल को मथने से कोई घी पा सकता है? ऐसे ही हे रघुनाथ, हृदय के भीतर का मैल (अज्ञान) क्या प्रेमपराभक्तिरूप जल के बिना जा सकता है?

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पण्डित * सोइ गुणज्ञ विज्ञान अखण्डित
दक्ष सकल लक्षणयुत सोई * जाके पदसरोजरति होई

वही सब कुछ जाननेवाला, 'तत्' महावाक्य का ज्ञाता, पण्डित, गुणज्ञ, पूरा विज्ञानी, सब लक्षणों से युक्त और चतुर है, जो आपके चरणारविन्दों में प्रेम रखता हो।



नाथ एक बर माँगौं, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभुपदकमल, कबहुँ घटै जनि नेहु॥

हे स्वामी, हे राम, मैं आपसे एक यही वरदान माँगता हूँ कि जन्म-जन्म आप स्वामी के चरणारविन्दों का स्नेह कभी न घटे। कृपा करके यह वर मुझे दीजिए।

अस कहि मुनि वशिष्ठ गृह आये * कृपासिन्धु के मन अति भाये
हनूमान भरतादिक भ्राता * संग लिये सेवकसुखदाता

ऐसा कहकर वशिष्ठ मुनि घर को चले आये। मुनि के ये वचन कृपासिन्धु रामजी को

बहुत अच्छे लगे। फिर अपने सेवकों को सुख देनेवाले भगवान् ने हनुमान् और सब भाइयों को संग लिया।

पुनि कृपालु पुर बाहर गये * गज रथ तुरँग मँगावत भये
देखि कृपा करि सकल सराहे * दिये उचित जिन जिन जो चाहे

फिर कृपालु रामजी नगर के बाहर गये और हाथी, घोड़े, रथ मँगाये। सबको कृपादृष्टि से देखकर सराहना की। जिस जिसने जो कुछ चाहा, वही उचित समझकर उसे दिया।

हरण सकल श्रम प्रभु श्रम पाई * गये जहाँ शीतल अमराई
भरत दीन निज बसन डसाई * बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई

सब तरह के श्रम को दूर करनेवाले प्रभु थककर ठंडी अमराई (बाग) में गये। भरत ने अपना कपड़ा बिछा दिया। उस पर प्रभु बैठे। सब भाई उनकी सेवा करने लगे।

मारुतसुत तब मारुत करई * पुलकगात लोचन जल भरई
हनूमान सम को बड़ भागी * नहिं कोउ रामचरण अनुरागी
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई * बार बार प्रभु निजमुख गाई

हनुमान् पंखा डुलाते हैं। उनके शरीर में रोमांच हो आया और आँखों में आनन्द के आँसू छा गये। हनुमान् के समान भाग्यशाली कौन है? रामजी के चरणों का प्रेमी उनके समान कोई नहीं है। हे पार्वती, उनकी प्रीति और सेवा को बार-बार प्रभु ने अपने श्रीमुख से कहा या सराहा है।



तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन।
गावन लागे रामगुण, कीरति सदा नवीन॥

उसी समय नारद मुनि हाथ में वीणा लिये आये और रामचन्द्र के गुण और सदा नई कीर्ति गाने लगे।

मामवलोकय पंकजलोचन * कृपाविलोकन शोचविमोचन
नीलतामरसश्याम कामअरि * हृदयकंजमकरन्दमधुप हरि

नारदजी स्तुति करने लगे—हे कमलनयन, कृपादृष्टि रखनेवाले, शोक से छुड़ानेवाले, मेरी ओर देखिए। हे हरि, आपका यह नीले कमलों-सा शरीर शिवजी के हृदयकमल के मकरन्द में रमनेवाला भौंरा है।

यातुधानवरूथ बलभंजन * मुनिसज्जनरंजन अघगंजन
भूसुरससिनवबृन्दबलाहक * अशरणशरण दीनजनगाहक

हे राक्षसी सेना के बल को नष्ट करनेवाले, पापनाशक, मुनियों और सज्जनों को प्रसन्न करनेवाले, आप ब्राह्मणरूप खेती के लिए नये घनघोर बादल, अशरण की शरण और दीनजनों के ग्राहक या पालक हैं।

भुजबलविपुलभारमहिखण्डित * खरदूषण विराधवध पण्डित
रावणारि सुखरूप भूपवर * जय दशरथकुलकुमुदसुधाकर

हे भुजाओं के बल से पृथ्वी का भार उतारनेवाले, खरदूषण और विराध आदि राक्षसों के मारने में चतुर रावण के शत्रु, आनन्दस्वरूप, महाराज दशरथवंशरूप कोकावेली को खिलानेवाले चन्द्रमा, आपकी जय हो।

सुयशपुराणविदित निगमागम * गावत सुर मुनि सन्तसमागम
कारुणीक बालीमदखण्डन * सबविधिकुशल कोशलामण्डन
कलिमलमथन नाम ममताहन * तुलसिदास प्रभुपाहि प्रणतजन

आपका यश वेदों, शास्त्रों और पुराणों में विदित है। उसे देवता, मुनि और साधु मिलकर गाते हैं। हे करुणानिधान, बालि का अभिमान तोड़ने और अयोध्यावासियों को प्रसन्न रखने में सब प्रकार चतुर, कलियुग के पापों के नाशक, आपका नाम मोह-ममता को मिटानेवाला है। हे तुलसीदास के प्रभु, आर्त की रक्षा कीजिए।


प्रेमसहित मुनि नारद, बरणि रामगुणग्राम।
शोभासिन्धु हृदय धरि, गये जहाँ विधिधाम॥

प्रेमसहित नारदजी रामजी के गुण वर्णन कर व शोभाधाम रामजी को हृदय में रखकर ब्रह्मलोक गये।

गिरिजा सुनहु विशद यह कथा * मैं सब कही मोरि मति यथा
रामचरित शतकोटि अपारा * श्रुति शारदा न बरणै पारा

हे पार्वती, यह कथा तो बहुत बड़ी है, पर अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने कही है। रामजी के चरित्र तो सैकड़ों करोड़ अपार हैं। वेद और सरस्वती भी पूर्णरूप से उनका वर्णन करने में असमर्थ हैं।

राम अनन्त अनन्त गुणानी * जन्म कर्म अगणित नामानी
जल शीकर महिरज गनि जाहीं * रघुपतिचरित न बरणि सिराहीं

राम अनन्त हैं और उनके गुण भी अनन्त हैं। ऐसे ही उनके जन्मों, कर्मों और नामों की भी गिनती नहीं की जा सकती। जल की बूँदें और धूल के कण भले ही गिन लिये जायँ, परन्तु रामजी के चरित्र वर्णन करके नहीं चुकाये जा सकते।

विमल कथा यह हरिपददायिनि * भक्तिहोयसुनि अतिअनपायिनि
उमा कहेउँ सो कथा सुहाई * जो भुशुण्डि खगपतिहिं सुनाई

हे पार्वती, यह निर्मल और भगवान् का पद देनेवाली कथा, जिसे सुन कभी नष्ट न होनेवाली भक्ति होती है, मैंने कही, जो काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाई थी।

कछुक रामगुण कहेउँ बखानी * अब का कहौं सो कहहु भवानी

सुनि शुभ कथा उमा हर्षानी * बोली अतिविनीत मृदुबानी
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी * सुनेउँ रामगुण भवभयहारी

रामजी के कुछ गुण मैंने कहे। हे भवानी, अब कहो, क्या कहूँ? पार्वतीजी शुभ कथा सुनकर प्रसन्न हुईं और बहुत ही नम्र और कोमल वाणी से बोलीं—हे त्रिपुरारि, मैं धन्य, धन्य, धन्य हूँ। मैंने भव-भय के हरनेवाले श्रीरामजी के गुण सुने।



तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु, चिदानन्दसन्दोह ॥

हे कृपाधाम, मैं आपकी कृपा से कृतकृत्य हो गई; अब मोह नहीं रहा। हे स्वामी, सच्चिदानन्द रामजी का प्रताप मैंने जाना।

नाथ तवाननससि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर।
श्रवणपुटन मन पान करि, नहिं अघात मतिधीर ॥

हे धीरबुद्धिवाले नाथ, आपके मुखचन्द्र से रघुनाथकथारूप अमृत बहता है; उसे मेरा मन दोनों कानों से पीकर भी नहीं अघाता।

रामचरित जे सुनत अघाहीं * रस विशेष जाना तिन नाहीं
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ * हरिगुण सुनत निरन्तर तेऊ

जो रामजी का चरित्र सुनकर अघा जाते हैं, उन्होंने कथा का रस कुछ भी नहीं जाना। जीवन्मुक्त महामुनि भी सदा भगवान् के गुण सुनते हैं।

भवसागर चह पार जो पावा * रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा
विषयिन कहँ पुनि हरिगुणग्रामा * श्रवणसुखद अरु मन विश्रामा

जो संसारसमुद्र से पार जाना चाहता हो, उसके लिए रामजी की कथा दृढ़ नाव है। भगवान् के गुण माया में फँसे हुए विषयी लोगों के कानों को सुख और मन को आराम देनेवाले हैं।

श्रवणवन्त अस को जगमाहीं * जाहि न रघुपति कथा सुहाहीं
ते जड़जीव निजात्मघाती * जिनहिं न रघुपतिकथा सुहाती

संसार में ऐसा कौन कानवाला है, जिसे रघुनाथ की कथा अच्छी न लगती हो? वे आत्मघाती जड़ जीव हैं, जिन्हें रामजी की कथा नहीं अच्छी लगती।

हरिचरित्रमानस तुम गावा * सुनि मैं नाथ परमसुख पावा
तुम जो कहा यह कथा सुहाई * काकभुशुण्डि गरुड़ प्रति गाई

आपने रामचरितमानस कहा, उसे सुन मैंने बहुत सुख पाया। आपने कहा है कि यह सुहावनी कथा काकभुशुण्डि ने गरुड़ से कही है;



बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़, रामचरन अतिनेह।
बायसतन रघुपतिभगति, मोहिं परम सन्देह॥

सो मुझे बड़ा सन्देह है कि कौए को वैराग्य, ज्ञान, विज्ञान और रामजी के चरणों में दृढ़ स्नेह और भक्ति कैसे प्राप्त हुई।

नरसहस्र महँ सुनहु पुरारी * कोउ यक होय धर्मब्रतधारी
धर्मसील कोटिन महँ कोई * बिषय बिमुख बिरागरत होई

हे त्रिपुरारि, हज़ारों मनुष्यों में कहीं एक धर्मात्मा होता है। करोड़ों धर्मात्माओं में विरला ही विषयों से विमुख हो वैराग्य का अधिकारी होता है।

कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई * सम्यकज्ञान सुकृत कोउ लहई
ज्ञानवन्त कोटिन महँ कोई * जीवनमुक्त सुकृत जग सोई

वेद कहते हैं कि करोड़ों वैरागियों में कोई ही पुण्यात्मा पूर्ण और ठीक ज्ञान पाता है। फिर संसार में करोड़ों ज्ञानियों में भी वही पुण्यात्मा है, जो जीवन्मुक्त हो।

तिन सहस्र महँ सब सुखखानी * दुर्लभ ब्रह्म निरत बिज्ञानी
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी * जीवन्मुक्त ब्रह्मपर प्रानी

उन हज़ारों जीवन्मुक्तों में भी परमानन्द की खान परब्रह्म में मन लगानेवाला आत्मज्ञानी दुर्लभ है। धर्मात्मा, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्म-परायण में भी—

सब ते सो दुर्लभ सुरराया * रामभक्तिरत गत मद माया
सो हरिभक्ति काक किमि पाई * बिस्वनाथ मोहिं कहहु बुझाई

हे शंकर, वह दुर्लभ है, जो माया के अहंकार से छूटकर रामजी की भक्ति में लगा रहता हो। हे विश्वनाथ, वह भगवान् की भक्ति कौए ने कैसे पाई? मुझसे समझाकर कहिए।



रामपरायन ज्ञानरत, गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायउ कागसरीर॥

हे नाथ, यह भी कहिए कि राम के भक्त, ज्ञानी, गुणों की खान, धीरमति काकभुशुण्डि ने कौए की देह क्यों पाई?

यह प्रभुचरित पवित्र सुहावा * सुनहु कृपाल काक कहँ पावा
तुम केहि भाँति सुना मदनारी * कहहु मोहिं अतिकौतुक भारी

हे कृपालु, उसने यह भगवान् का सुहावना और पवित्र चरित्र कहाँ पाया? और हे काम के शत्रु, आपने कैसे सुना? मुझे बड़ा आश्चर्य है, कहिए।

गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी * हरिसेवक अतिनिकटनिबासी
तेहिं केहिहेतु कागसन जाई * सुनी कथा मुनिनिकर बिहाई

फिर गरुड़ तो महाज्ञानी, गुणों की राशि, भगवान् के सेवक और उनके बहुत ही निकट रहनेवाले हैं। उन्होंने मुनियों को छोड़ किसलिए जाकर कौए से कथा सुनी ?

कहहु कवन बिधि भा संवादा * दोउ हरिभक्त काग उरगादा
गौरिगिरा सुनि सरल सुहाई * बोले सिव सादर सुख पाई

कहिए, भगवान के दोनों भक्तों—कौए और गरुड़—का संवाद किस प्रकार हुआ ? पार्वतीजी की सरल और सुहावनी वाणी सुन शिवजी सुखी हुए और आदर-सहित बोले—

धन्य सती पावनि मति तोरी * रघुपतिचरनप्रीति नहिं थोरी
सुनहु परमपुनीत इतिहासा * जो सुनि होय सकल भ्रमनासा
उपजहि रामचरनबिस्वासा * भवनिधि तर नर बिनहि प्रयासा

हे पतिव्रते, धन्य है तुम्हारी पवित्र बुद्धि को। रघुनाथ के चरणों में तुम्हारी बड़ी प्रीति है। अब वह पवित्र कथा सुनो, जिससे सब सन्देह मिट जाते हैं, रामजी के चरणों में विश्वास होता है और मनुष्य संसारसमुद्र को बिना परिश्रम तर जाता है।



ऐसेइ प्रस्न बिहंगपति, कीन्ह कागसन जाय।
सो सब सादर कहहुँ मैं, सुनहु उमा चित लाय॥

हे पार्वती, ऐसे ही प्रश्न गरुड़ ने काकभुशुण्डि से जाकर किये थे। वह सब कथा मैं आदर-सहित कहता हूँ; चित्त लगाकर सुनो।

मैं जस कथा सुनी भवमोचनि * सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि
प्रथम दच्छगृह तव अवतारा * सती नाम तब रहा तुम्हारा

हे सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली, मैंने जिस प्रकार संसार से छुड़ानेवाली कथा सुनी है, वह प्रसंग सुनो। पहले दक्ष के घर तुम्हारा जन्म हुआ था। तब तुम्हारा नाम सती था।

दच्छयज्ञ मम भा अपमाना * तुम अतिक्रोध तजा तहँ प्राना
मम अनुचरन कीन्ह मखभंगा * जानहु सो तुम सकल प्रसंगा

दक्ष के यज्ञ में मेरा अपमान हुआ, इससे तुमने बड़ा क्रोध करके वहीं प्राण छोड़ दिये। तब मेरे वीरभद्र आदि दासों ने यज्ञ-विध्वंस कर दिया। वह सब हाल तो तुम जानती ही हो।

तब अतिसोच भयो मन मोरे * दुखित भयों बियोग प्रिय तोरे
सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा * कौतुक देखत फिरौं बिरागा

फिर मेरे मन में बड़ा सोच हुआ। हे प्रिये, तुम्हारे बिछोह से मैं बड़ा दुःखित हुआ। वैराग्य धारण किये मैं सुन्दर वन, पर्वत, नदी, तालाब आदि को देखता फिरने लगा।

गिरिसुमेरु उत्तर दिसि दूरी * नील सैल यक सुन्दर भूरी
तासु कनकमय सिखर सुहाये * चारि चारु मोरे मन भाये

सुमेरु के उत्तर में बहुत दूर नील पर्वत है। उसके सोने के चारों सुन्दर शिखर मेरे मन भाये।

तेहि पर इकइक बिटप बिसाला * बट पीपर पाकरी रसाला
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा * मनिसोपान देखि मन मोहा

शिखरों पर बहुत बड़े बरगद, पीपल, पाकर और आम के वृक्ष हैं। उस पर्वत पर एक सुन्दर सरोवर है, जिसकी रत्नों की सीढ़ियाँ देखते ही मन मोहित हो जाता है।



सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहुरंग।
कूजत कलरव हंसगन, गुंजत मंजुल भृंग॥

तालाब के ठंडे, साफ़ और मीठे जल में हंस बोलते और रंग-रंग के कमलों पर भौंरे गुंजारते हैं।

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई * जासु नास कल्पान्त न होई
मायाकृत गुन दोष अनेका * मोह मनोज आदि अबिबेका

उस सुन्दर पर्वत पर वही पक्षिराज भुशुण्डिजी रहते हैं, जिनका कल्पान्त में भी नाश नहीं होता। माया के बहुत-से गुण, दोष, मोह, काम, अज्ञान आदि—

रहे ब्यापि समस्त जगमाहीं * तेहि गिरिनिकट कबहुँ नहिंजाहीं
तहँबसिहरिहिभजै जिमि कागा * सो सुनु उमा सहित अनुरागा

जो सारे संसार में भरे पड़े हैं, उस पर्वत के निकट कभी नहीं जाते। हे पार्वती, वहाँ, रहकर जिस प्रकार भुशुण्डिजी भगवान् को भजते हैं, सो प्रेम के साथ सुनो।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई * जाप जज्ञ पाकरि तर करई
आम छाँह करि मानस पूजा * तजि हरिभजन काज नहिं दूजा

पीपल के नीचे वह ध्यान लगाते हैं, पाकर के नीचे जप और यज्ञ करते हैं और आम की छाँह में मानसी पूजा करते हैं। भगवान् का भजन छोड़ उनको दूसरा काम नहीं।

बटतर कह हरि कथा प्रसंगा * आवहिं सुनन अनेक बिहङ्गा
रामचरित बिचित्र बिधि नाना * प्रेम सहित करु सादर गाना

बरगद के नीचे भगवान् की कथा कहते हैं, जिसे सुनने के लिए बहुत-से पक्षी आते हैं। रामजी का विचित्र चरित्र बहुत प्रकार से प्रेम और आदर-सहित गाया करते हैं।

सुनहिंसकलमतिबिमलमराला * बसहिं निरन्तर जे तेहि काला
तब मैं जाइ सो कौतुक देखा * उर उपजा आनन्द बिसेखा

जिसे निर्मल बुद्धि के सब हंस, जो सदा वहाँ रहते हैं, उस समय सुनते हैं। मैंने जाकर यह कौतुक देखा तो मेरे हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।



तब कछुकाल मरालतन, धरि तहँ कीन्ह निबास।
सादर सुनि रघुपतिचरित, पुनि आयउँ कैलास॥

तब मैं हंस की देह रखकर वहाँ कुछ समय तक रहा और आदरसहित रघुनाथ के चरित्र सुनकर फिर कैलास को लौट आया।

गिरिजाकहेउँ सोसब इतिहासा * मैं जेहि समय गयों खगपासा
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू * गयो कागपहँ खगकुलकेतू

हे पार्वती, जिस समय मैं भुशुण्डि के पास गया था, सो सब कथा मैंने कही। अब वह कथा सुनो, जिस लिए गरुड़ काकभुशुण्डि के पास गये।

जब रघुनाथ कीन्ह रनक्रीड़ा * समुझत चरितहोतमोहिं व्रीड़ा
इन्द्रजीत कर आप बँधावा * तब नारदमुनि गरुड़ पठावा

जब रघुनाथ ने युद्ध में वह खेल किया, जो चरित्र समझने से मुझे लज्जा आती है, अर्थात् मेघनाद के हाथ अपने को बँधाया, तब नारद मुनि ने गरुड़ को भेजा।

बन्धन काटि गयो उरगादा * उपजा हृदय प्रचण्ड विषादा
प्रभु बन्धन समुझत बहुभाँती * करत विचार उरगआराती

गरुड़ बन्धन काटकर चले गये; परन्तु उनके हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभु के बन्धन के बारे में बहुत प्रकार सोचते हुए गरुड़ अपने मन में यह विचार करते हैं—

व्यापक ब्रह्म विरज बागीसा * मायामोहपार परमीसा
सो अवतार सुनेउँ जगमाहीं * देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं

कि जो सबमें व्याप्त, तीनों गुणों से न्यारा, वाणी का स्वामी, माया और मोह से परे परमेश्वर है, उसका संसार में अवतार तो सुना; परन्तु प्रभाव कुछ नहीं देखा।



भवबन्धन ते छूटहीं, नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बाँधेउ, नागपास सोइ राम॥

मनुष्य जिसका नाम जपकर संसारबन्धन से छूट जाते हैं, उन राम को एक छोटे राक्षस ने बाँध लिया!

नाना भाँति मनहिं समुझावा * प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रमछावा
खेदखिन्न मन तर्क बढ़ाई * भयो मोहवस तुम्हरिहि नाँई

हे पार्वती, मन को बहुत प्रकार से समझाया; परन्तु हृदय में ऐसा सन्देह छा गया कि ज्ञान न हुआ। तब खेद से खिन्न होकर वह मन में तर्क बढ़ाने लगे और तुम्हारी ही भाँति मोह के वश हुए।

व्याकुल गयो देवऋषि पाहीं * कहेसि जो संसय निज मनमाहीं
सुनिनारदहिलागिअति दाया * सुनु खग प्रबल राम की माया

तब गरुड़ व्याकुल होकर देवर्षि नारदजी के पास गये और जो कुछ मन में सन्देह था,

कहा। उसे सुन नारद को दया आई। वे बोले—हे गरुड़, रामजी की माया बड़ी बलवती है।

जो ज्ञानिनकर चित अपहरई * बरिआई बिमोहबस करई
जेहिं बहु बार नचावा मोहीं * सोइ ब्यापेउ बिहंगपति तोहीं

वह ज्ञानियों के भी मन को डाँवाडोल करके बरबस अज्ञान के वश कर देती है। नारदजी कहते हैं—हे पक्षिराज, जिस माया ने मुझे बहुत बार नचाया है, वही तुम्हारे भी व्यापी है।

महा मोह उपजा मन तोरे * मिटहि न बेगि कहे खग मोरे
चतुरानन पहँ जाहु खगेसा * सोइ करेहु जो देहिं निदेसा

हे गरुड़, तुम्हारे मन में ऐसा अधिक मोह आ गया है कि मेरे कहने पर भी शीघ्र दूर न होगा। इससे ब्रह्माजी के पास जाओ और जो कुछ वे आज्ञा दें, करो।



अस कहि चलेउ देवऋषि, करत राम गुन गान।
हरिमायाबल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान॥

ऐसा कह बड़े ज्ञानी नारदजी भगवान् के गुण गाते और उनकी माया का बल वर्णन करते चले गये।

तब खगपति बिरंचिपहँ गयऊ * निज सन्देह सुनावत भयऊ
सुनि बिरंचि रामहिं सिर नावा * समुझि प्रताप प्रेम उर छावा

तब गरुड़ ब्रह्माजी के पास गये और उनको अपना सन्देह सुनाया। इसे सुन ब्रह्माजी ने रामजी को शिर नवाया। फिर उनका प्रताप समझते ही उनके हृदय में प्रेम छा गया।

मन महँ करहिं बिचार बिधाता * मायाबस कबि कोबिद ज्ञाता
हरि मायाकर अमित प्रभावा * बिपुलबार जेहि मोहिं नचावा

ब्रह्माजी मन में सोचते हैं कि ज्ञानी, कवि और पण्डित भी माया के वश होते हैं। भगवान् की माया का प्रभाव अमित है। उसने बहुत बार मुझे भी तो नचाया है।

अगजगमय सबमम उपजाया * नहिं आचरज मोह खगराया
पुनि बोले बिधि गिरा सुहाई * जानु महेस राम प्रभुताई

हे गरुड़, चर अचरमय सारा संसार मेरा उत्पन्न किया हुआ है, इसमें मोह होना आश्चर्य नहीं। फिर ब्रह्माजी सुहावनी वाणी से बोले—रामजी की प्रभुता शिवजी जानते हैं।

बैनतेय संकर पहँ जाहू * तात अनत पूछेउ जनि काहू
तहँ होइहि तव संशय हानी * चले बिहँगपति सुनि बिधिबानी

इससे हे विनता के पुत्र गरुड़, शिवजी के पास जाओ, कहीं किसी दूसरे से न पूछना। तुम्हारे सन्देह का नाश वहीं होगा। ब्रह्माजी की वाणी सुनकर गरुड़जी चले।


परमातुर बिहङ्गपति, तब आयउ मम पास।
जात रहेउँ कुबेर गृह, रहिउ उमा कैलास॥

गरुड़ शीघ्र ही मेरे पास आये। मैं कुबेरजी के घर जाता था, और हे पार्वती, तुम कैलास में थीं।

तेहि मम पद सादर सिर नावा * पुनि आपन सन्देह सुनावा
सुनि ताकर बिनीत मृदु बानी * प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी

उसने मेरे पैरों में आदर के साथ सिर नवाया और अपना सन्देह सुनाया। हे भवानी, फिर उसकी विनय से भरी मीठी वाणी सुन मैंने भी स्नेह के साथ कहा—

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोहीं * कौन भाँति समुझावौं तोहीं
जब बहुकाल करिय सतसंगा * तब यह होय मोह भ्रम भंगा

हे गरुड़, तुम मुझे राह में मिले हो। तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ? जब बहुत समय तक सत्संग करोगे, तब यह तुम्हारा मोह और भ्रम दूर होगा।

सुनिय तहाँ हरि कथा सुहाई * नाना भाँति मुनिन जो गाई
जेहि महँ आदि मध्य अवसाना * प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना

वहाँ भगवान् की सुहावनी कथा सुनो, जिसे मुनियों ने बहुत प्रकार से कही है। उसके पहले, पीछे और बीच में प्रभु ही चरितनायक हों।

नित हरिकथा होत जहँ भाई * पठवौं तोहिं सुनहु तहँ जाई
जाइहि सुनत सकल सन्देहा * होइहि रामचरन दृढ़ नेहा

भाई, जहाँ नित्य भगवान् की कथा होती है, वहाँ तुम्हें भेजता हूँ। जाकर सुनो। सुनते ही सब सन्देह जाता रहेगा और रामजी के चरणों में दृढ़ स्नेह होगा।


बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिन मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद, होय न दृढ़ अनुराग॥

बिना सत्संग भगवान् की कथा नहीं। कथा के बिना अज्ञान नहीं जाता। बिना अज्ञान के गये रामजी के चरणों में दृढ़ प्रेम नहीं होता।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा * किये जोग जप ज्ञान बिरागा
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला * तहँ रह कागभुशुण्डि सुशीला

योग, जप, ज्ञान और वैराग्य होने पर भी बिना प्रेम के रघुनाथ नहीं मिलते। उत्तर ओर सुन्दर नील पर्वत है। वहाँ सुन्दर शीलवान् काकभुशुण्डि रहते हैं।

रामभक्तिपथ परमप्रबीना * ज्ञानी गुनगृह बहुकालीना
रामकथा सोइ कहै निरन्तर * सादर सुनहिं बिबिध बिहंगबर

वह रामजी के भक्तिमार्ग में बड़े चतुर, ज्ञानी, गुणों की खान और बहुत दिनों के हैं। वह नित्य रामजी की कथा कहते और भाँति-भाँति के उत्तम पक्षी आदरसहित उसे सुनते हैं।

जाय सुनहु तहँ हरिगुन भूरी * होइहि मोहजनित दुख दूरी
मैं सब जब तेहि कहा बुझाई * चलेउ हर्षि ममपद सिर नाई

वहाँ जाकर भगवान् के बहुत से गुण सुनो। मोह से उत्पन्न हुआ दुःख दूर होगा। जब मैंने उनसे सब समझाकर कहा, तब उन्होंने मेरे चरणों में सिर नवाया और प्रसन्न होकर चल दिये।

ताते उमा न मैं समुझावा * रघुपति कृपा मरम सब पावा
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना * सो खोवा चह कृपानिधाना

हे पार्वती, मैंने इसलिए नहीं समझाया कि रघुनाथ की कृपा से मुझे यह सब भीतरी हाल मिल गया था कि उन्होंने कभी अभिमान किया होगा और उसे कृपानिधान भगवान् दूर करना चाहते हैं।

कछु तेहिते पुनि मैं नहिं राखा * खग जानै खगही की भाखा
प्रभुमाया बलवन्त भवानी * जाहि न मोह कौन अस प्रानी

और कुछ इससे मैंने नहीं रक्खा कि पक्षी ही पक्षियों की बोली जानता है। हे भवानी, भगवान् की माया बड़ी बलवती है। ऐसा कौन जीवधारी है जिसे वह न मोह ले?



ज्ञानी भक्तसिरोमनि, त्रिभुवनपति कर यान।
ताहि मोह मायाप्रबल, पामर करहिं गुमान॥

ज्ञानी, भक्तश्रेष्ठ, त्रिलोकीनाथ के वाहन गरुड़ को भी माया ने मोह लिया। पामर अज्ञानी ही ज्ञान का गुमान करते हैं?

सिव बिरंचि कहँ मोहही, को है बपुरा आन।
असजियजानिभजहिंमुनि, मायापति भगवान॥

जब शिव और ब्रह्मा को भी माया मोह लेती है, तब दूसरा कौन देहधारी उससे बच सकता है? मन में ऐसा जानकर मुनि लोग माया के नाथ भगवान् को भजते हैं।

गयो गरुड़ जहँ बसै भुसुण्डी * मतिअकुण्ठहरिभक्ति अखण्डी
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ * माया मोह सोच भ्रम गयऊ

जहाँ तीक्ष्ण बुद्धि और भगवान् की पूरी भक्तिवाले भुशुण्डिजी रहते थे वहाँ गरुड़ गये। पर्वत देखते ही मन प्रसन्न हो गया। माया से उत्पन्न मोह, शोक और सन्देह जाता रहा।

करि तड़ाग मज्जन जलपाना * बटतर गयो हृदय हर्षाना
बृन्द बृन्द बिहंग तहँ आये * सुनै राम के चरित सुहाये

उन्होंने तालाब में स्नान करके जल पिया। बरगद के नीचे गये तो हृदय प्रसन्न हो गया। वहाँ राम के सुहावने चरित्र सुनने के लिए झुण्ड के झुण्ड पक्षी आये थे।

कथा अरम्भ करै सोइ चाहा * ताही समय गयो खगनाहा
आवत देखि सकल खगराजा * हर्षेउ बायस सहित समाजा

काकभुशुण्डि जैसे ही कथा प्रारम्भ करने को हुए कि उसी समय पक्षियों के राजा गरुड़ वहाँ जा पहुँचे। गरुड़ को आते देख सभासहित काकभुशुण्डिजी प्रसन्न हुए।

अति आदर खगपति करकीन्हा * स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा
करि पूजा समेत अनुरागा * मधुर बचन तब बोलेउ कागा

उन्होंने गरुड़ का बड़ा आदर किया और स्वागत कर कुशल पूछकर बैठने को सुन्दर आसन दिया। फिर प्रेमसहित पूजा करके भुशुण्डिजी मीठे वचन बोले—



नाथ कृतारथ भयों मैं, तव दर्सन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब, प्रभु आयहु केहि काज॥

हे पक्षिराज स्वामी, आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। अब आप जो आज्ञा दें उसे मैं करूँ। प्रभु, कैसे आये?

सदा कृतारथरूप तुम, कह मृदु बचन खगेस।
जाकी अस्तुति सादर, निज मुख कीन्ह महेस॥

तब गरुड़ कोमल वचनों से बोले—जिनकी बड़ाई शिवजी ने स्वयं की, वे आप सदा कृतार्थ हैं।

सुनहु तात जेहि कारज आयउँ * सो सब भयो दरस तव पायउँ
देखि परम पावन तव आस्रम * गये मोह नाना संसय भ्रम

हे तात, जिस काम के लिए मैं आया था, वह सब आपके दर्शन से ही पूरा हो गया। आपका बड़ा पवित्र स्थान देख भाँति-भाँति के मोह, संदेह और भ्रम चले गये।

अब श्रीरामकथा अति पावनि * सदा सुखद दुखपुंज नसावनि
सादर तात सुनावहु मोहीं * बार बार बिनवौं प्रभु तोहीं

अब रामजी की सदा सुख देने और दुःख मिटानेवाली बड़ी पवित्र कथा मुझे सुनाइए। हे तात, हे स्वामी, मैं आदर सहित बार-बार आपकी विनती करता हूँ।

सुनत गरुड़ की गिरा बिनीता * सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता
भयो तासु मन परम उछाहा * कहै लाग रघुपति गुन गाहा

गरुड़जी की न्याय से भरी, सीधी, प्रेमयुक्त, सुख देनेवाली, सुन्दर, पवित्र वाणी सुनते ही काकभुशुण्डि के मन में बड़ा उत्साह हुआ। वह रघुनाथ के गुणों की कथा कहने लगे।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी * रामचरित सब कहेसि बखानी
पुनि नारद कर मोह अपारा * कहेसि बहुरि रावन अवतारा

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई * पुनि सिसुचरित कहेसि मनलाई

हे पार्वती, पहले बड़े प्रेम से रामजी का सब चरित्र वर्णन किया। फिर नारद का बड़ा मोह और रावण की उत्पत्ति कही। फिर मन लगाकर प्रभु के अवतार की कथा और बालचरित्र कहा।



बालचरितकहि बिबिधबिधि, मनमहँ परम उछाह।
ऋषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह॥

भाँति-भाँति से बालचरित्र कहकर मन में बड़े उत्साह से ऋषि विश्वामित्रजी के आगमन और रघुनाथ के विवाह का वर्णन किया।

बहुरि रामअभिषेक प्रसंगा * पुनि नृपबचन राजरसभंगा
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा * कहेसि राम लछिमन संबादा

फिर रामजी के राजतिलक का प्रसङ्ग और राजा के वचनों से राज्य के रस का भंग होना कहा। फिर पुरवासियों का राम के विछोह से विषाद तथा राम और लक्ष्मण का संवाद कहा।

बिपिन गवन केवट अनुरागा * सुरसरि उतरि निबास प्रयागा
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना * चित्रकूट जिमि बस भगवाना

प्रभु का वनगमन, निषाद का प्रेम, गंगा उतरकर प्रयाग में टिकना, वाल्मीकि से मिलना और जिस प्रकार भगवान् चित्रकूट में रहे, वह सब वर्णन किया।

सचिवागमन नगर नृप मरना * भरतागमन प्रेम पुनि बरना
करि नृप क्रिया संग पुरवासी * भरत गये जहँ प्रभु सुखरासी

सुमंत्र का अयोध्या को लौटना, राजा दशरथ का मरना और भरत का आना कहकर उनका रामजी के प्रति प्रेम कहा। फिर राजा का क्रिया-कर्म कर भरत का पुरवासियों को साथ ले आनन्दराशि प्रभु के पास जाना कहा।

पुनिरघुपति बहुबिधि समुझाये * लै पादुका अवध फिरि आये
भरतरहनि सुरपति सुतकरनी * प्रभु अरु अत्रिभेंट पुनि बरनी

फिर रघुनाथ का बहुत प्रकार से भरत को समझाना और भरत का खड़ाऊँ लेकर अयोध्या को लौटना कहा। भरत का आचरण, जयन्त की कथा और अत्रिजी से प्रभु की भेंट का वर्णन किया।



कहि बिराध बध जाहि बिधि, देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीच्छन प्रेम पुनि, प्रभु अगस्त्यसतसंग॥

जिस प्रकार विराध मारा गया और शरभंग ऋषि ने देह छोड़ी, सो सब कहा। फिर सुतीक्ष्ण ऋषि का प्रेम तथा प्रभु और अगस्त्य का सत्संग वर्णन किया।

कहि दण्डकबन पावनताई * गृध्रमइत्री पुनि त्यहि गाई

पुनि प्रभु पंचबटीकृत बासा * भंजी सकल मुनिन की त्रासा

फिर उन्होंने दण्डकारण्य की पवित्रता कह गीध जटायु की मित्रता कही। फिर प्रभु का पंचवटी में रहना और मुनियों का दुःख दूर करना कहा।

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा * सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा
खरदूषन बध बहुरि बखाना * जिमि सब मर्म दसानन जाना

फिर लक्ष्मण को अनुपम शिक्षा देना और शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने का हाल कहा। फिर खर व दूषण का वध कहकर जिस प्रकार रावण ने सब हाल जाना, सो बताया।

दसकन्धर मारीच बतकही * जेहि बिधि भई सकल तेहिं कही
पुनि माया सीताकर हरना * श्रीरघुवीर बिरह कछु बरना

जिस प्रकार रावण और मारीच से बातचीत हुई, सब उन्होंने कही। उसके बाद माया की सीता का हरा जाना और रघुनाथ का कुछ बिरह वर्णन किया।

पुनि प्रभुगीधक्रियाजिमिकीन्हीं * बधि कबन्धसबरिहिंगतिदीन्हीं
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा * जेहिबिधि गये सरोवरतीरा

फिर जिस प्रकार प्रभु ने गीध जटायु की क्रिया की और कबन्ध को मारकर शबरी को मुक्ति दी, वह सब वर्णन किया। फिर जिस प्रकार रघुनाथ बिरह में बिलाप करते पम्पासर के किनारे गये, सो भी कहा।



प्रभु नारद संबाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई, बालि प्रानकर भंग॥

प्रभु और नारद का संवाद कहकर हनुमान् के मिलने का प्रसंग कहा। फिर सुग्रीव की मित्रता और बालि का वध कहा।

कपिहि तिलककरि प्रभुकृत, सैल प्रबर्षन बास।
बरनत बर्षा सरद ऋतु, रामरोष कपित्रास॥

वानर सुग्रीव का राजतिलक करके प्रभु प्रवर्षण पर्वत पर रहे, सो कहा। फिर वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन कर रामजी का क्रोध करना और सुग्रीव का डरना वर्णन किया।

जेहिबिधिकपिपतिकीस पठाये * सीता खोज सकल दिसि धाये
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती * कपिन बहोरि मिला संपाती

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीव ने वानर भेजे और वे सीताजी के ढूँढ़ने को सब ओर दौड़े तथा जिस प्रकार विवर (गड़े) में पैठे और कैसे वानरों को सम्पाति मिला, सो कह सुनाया।

सुनि सब कथा समीरकुमारा * लाँघत भयउ पयोधि अपारा
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा * पुनिसीतहिं धीरज जिमि दीन्हा

फिर जिस प्रकार उससे सब कथा सुनकर हनुमान् अपार समुद्र को नाँघ गये और लंका में बैठकर जिस प्रकार सीताजी को धीरज दिया।

बन उजारि रावनहिं प्रबोधी * पुर दहि लाँघेउ बहुरि पयोधी
आये कपि सब जहँ रघुराई * बैदेही की कुसल सुनाई

अशोकवाटिका उजाड़कर रावण को समझाया और लंका जलाकर समुद्र को फिर नाँघ आये, सो कहा। फिर जहाँ रामजी थे, वहाँ आकर सब वानरों ने जिस प्रकार जानकी की कुशल सुनाई, सो बताया।

सैन समेत जथा रघुबीरा * उतरे जाय बारिनिधि तीरा
मिलाबिभीषन जेहिबिधि आई * सागरनिग्रह कथा सुनाई

जिस प्रकार सेनासहित रामजी ने समुद्र के किनारे जाकर डेरा किया और जिस प्रकार विभीषण आकर मिले, सो सब कहा और समुद्र के दमन की कथा सुनाई।



सेतु बाँधि कपिसैन जिमि, उतरे सागर पार।
गयो बसीठी बीरबर, जेहिबिधिबालिकुमार॥

जिस प्रकार वानरों की सेना सेतु बाँधकर समुद्र के पार उतरी और जिस प्रकार वीर-श्रेष्ठ अंगद शत्रु का भेद लेने गये, सो बताया।

निसिचरकीसलराइ बहु, बरनेसि बिबिधप्रकार।
कुम्भकरन घननाद कर, बल पौरुष संहार॥

फिर राक्षसों और वानरों का भाँति-भाँति का घोर युद्ध वर्णन किया तथा कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल, पौरुष व मरण कहे।

निसिचरनिकरमरनबिधिनाना * रघुपतिरावनसमर बखाना
रावनबध मन्दोदरिसोका * राजबिभीषन देव असोका

भाँति-भाँति से राक्षसों का मरण और रघुनाथ व रावण का युद्ध वर्णन किया। फिर रावण का मरण, मन्दोदरी का शोक करना, विभीषण का राज्यतिलक और देवताओं का शोक से छूटना कहा।

सीता रघुपति मिलन बहोरी * सुरन कीन्ह अस्तुति करजोरी
पुनि पुष्पक चढ़ि सीयसमेता * अवध चले प्रभु कृपानिकेता

फिर रघुनाथ को जानकी का मिलना और देवताओं का हाथ जोड़कर स्तुति करना कहा। फिर सीतासहित पुष्पक विमान पर चढ़कर कृपा के धाम प्रभु का अयोध्या में आना सुनाया।

जेहि बिधि रामनगर नियराये * बायस बिसद चरित सब गाये
कहेसि बहोरि रामअभिषेका * पुरबर्नन नृपनीति अनेका

फिर जिस प्रकार रामजी अयोध्यापुरी के निकट आये, वे सब उज्ज्वल चरित्र काकभुशुण्डि ने कहे। फिर रामजी का राजतिलक, नगर का वर्णन और बहुत प्रकार की राजनीति कही।

कथा समस्त भुसुण्डि बखानी * जो मैं तुम सन कहा भवानी
सुनि सुभ रामकथा खगनाहा * बिगतमोह मनपरमउछाहा

हे पार्वती, जो मैंने तुमसे कही, वह सब कथा काकभुशुण्डि ने वर्णन की। रामजी की शुभ कथा सुन गरुड़ का मोह जाता रहा और मन में बड़ा उत्साह हुआ।



गयउ मोर सन्देह, सुनेउँ सकल रघुपतिचरित।
भयउ रामपद नेह, तव प्रसाद बायसतिलक॥

उन्होंने कहा—हे कौओं में श्रेष्ठ, मैंने रघुनाथ का सब चरित्र सुना, जिससे मेरा सन्देह जाता रहा। आपकी कृपा से रामजी के चरणों में स्नेह हुआ।

मोहिं भयउ अतिमोह, प्रभुबन्धन रनमहँ निरखि।
चिदानन्द सन्दोह, राम बिकल कारन कवन॥

युद्ध में प्रभु का बाँधा जाना देखकर मुझे बहुत मोह हुआ था कि सच्चिदानन्द रामजी के व्याकुल होने का क्या कारण है।

देखि चरित अति नर अनुहारी * भयउ हृदय मम संसयभारी
सो भ्रम अब मैं हित करि माना * कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना

मनुष्यों के से चरित्र देख मेरे हृदय में बड़ा सन्देह हुआ। उस भ्रम को अब मैंने हित समझा कि कृपानिधान ने कृपा की है।

जो अतिआतपब्याकुल होई * तरुछायासुख जानै सोई
जो नहिं होत मोह अति मोहीं * मिलतेउँ तात कवन बिधि तोहीं

हे तात, जो घाम से व्याकुल हो, वही वृक्ष की छाया का सुख जान सकता है। यदि मुझे मोह न होता तो तुमसे आकर काहे को मिलता।

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई * अतिबिचित्र बहुबिधि तुम गाई
निगमागम पुरान मत एहा * कहहिं सिद्ध मुनि नहिं सन्देहा

तुमने जो रामजी की बड़ी विचित्र सुहावनी कथा कही, उसे कैसे सुनता? वेदों, शास्त्रों और पुराणों का यही मत है और सिद्ध मुनि भी कहते हैं कि इसमें सन्देह नहीं।

... बिसुद्ध मिलहिं पुनि तेहीं * चितवहिं राम कृपा करि जेहीं
राम कृपा तव दर्शन भयऊ * तव प्रसाद मम संसय गयऊ

कि जिसे रामजी कृपा करके देखते हैं, उसी को शुद्ध साधु पुरुष मिलते हैं। रामजी की कृपा से तुम्हारे दर्शन हुए और तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा सन्देह दूर हुआ।



सुनि बिहंगपति बानी, सहित बिनय अनुराग।
पुलकगात लोचनसजल, मन हर्षेउ अति काग॥

पच्छिराज गरुड़जी की प्रेमभरी वाणी सुन काकभुशुण्डि मन में बहुत प्रसन्न हुए। उनकी देह में रोमांच हो आया और आँखों में आनन्द के आँसू भर आये।

स्रोता सुमति सुसील अति, कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा यह गोप्य मत, सज्जन करहिं प्रकास॥

हे पार्वती, अच्छी बुद्धिवाला, बड़ा सुशील, भगवान् की कथा में प्रेम करनेवाला भगवान् का भक्त, ऐसा श्रोता पाकर सज्जन लोग यह छिपा हुआ भी मत खोल देते हैं।

बोलेउ कागभुशुण्डि बहोरी * नभगनाथ पर प्रीति न थोरी
सब बिधि नाथ पूज्य तुम मेरे * कृपापात्र रघुनायक केरे

पच्छिराज गरुड़ पर बड़ा स्नेह कर काकभुशुण्डि फिर बोले—हे स्वामी, आप सब प्रकार मेरे पूज्य हैं। उस पर आप पर रघुनाथजी की कृपा है।

तुमहिं न संसय मोह न माया * मोपर नाथ कीन्ह तुम दाया
पठै मोह मिसु खगपति तोहीं * रघुपति दीन्ह बड़ाई मोहीं

हे नाथ, आपको सन्देह, मोह या माया कुछ भी न था। आपने यहाँ आकर मुझ पर कृपा की है। हे पच्छिराज, रामजी ने आपको मोह के बहाने भेजकर मुझे बड़ाई दी है।

तुम निज मोह कहा खग साईं * सो नहिं कछु आचरज गोसाईं
नारद सिव बिरञ्चि सनकादी * जे मुनिनायक आतमवादी

हे पच्छिराज, आपने जो अपना मोह कहा, सो हे स्वामी, इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। नारद, शिव, ब्रह्मा, सनक आदि मुनिराजों और आत्मज्ञानी लोगों में से—

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही * को जग काम नचाव न जेही
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा * केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा

किसे मोह ने अन्धा नहीं किया? संसार में ऐसा कौन है, जिसे कामदेव ने नहीं नचाया? तृष्णा ने किसे नहीं पागल बनाया और क्रोध ने किसका हृदय नहीं जलाया?



ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुनआगार।
केहिकै लोभ बिडम्बना, कीन्ह न यहि संसार॥

ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित, गुणधाम, किसकी संसार में लोभ ने दुर्दशा नहीं की?

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगनयनी के नयनसर, को अस लाग न जाहि॥

धन के अभिमान ने किसे नहीं बिगाड़ा ? प्रभुता ने किसे बहरा नहीं बना दिया ? ऐसा कौन है, जिसे हरिण के से नेत्रोंवाली स्त्री के नयनबाण न लगे हों ?

गुनकृत सन्निपात नहिं केही * को न मानमद व्यापेहु जेही
जौबनजुर केहि नहिं बलकावा * ममता केहिकर जस न नसावा

माया के तीनों गुणों से होनेवाला सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कौन है, जिसे अभिमान का नशा न चढ़ा हो ? जवानी के ज्वर ने किसे नहीं तोड़ा ? ममता ने किसका यश नहीं नष्ट किया ?

मत्सर काहि कलंक न लावा * काहि न सोकसमीर डोलावा
चिन्तासाँपिन काहि न खाया * को जग जाहि न व्यापी माया

ईर्षा-द्वेष ने किसे कलंक नहीं लगाया ? शोक के वायु ने किसे नहीं विचलित किया ? चिन्तारूप साँपिन ने किसे नहीं डँसा ? संसार में ऐसा कौन है जिसे माया न व्यापी हो ?

कीटमनोरथ दारुसरीरा * जेहि न लाग घुन को असधीरा
सुत बित नारि ईषना तीनी * केहिकीमतिइन कृत न मलीनी

ऐसा कौन धीर है, जिसकी लकड़ीरूप देह में मनोरथ का घुन न लगा हो ? पुत्र, धन और स्त्री, इन तीनों की चाह ने किसकी बुद्धि मैली नहीं की ?

यह सब मायाकर परिवारा * प्रबल अमित को बरनै पारा
सिव चतुरानन देखि डराहीं * अपर जीव केहि लेखे माहीं

इस माया के बड़े बलवान् परिवार को कौन कह सकता है ? शिव और ब्रह्मा भी इसे देख डर जाते हैं ; फिर दूसरे जीव किस गिनती में हैं ?



व्यापि रहेउ संसार महँ, मायाकटक प्रचण्ड ।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ॥

संसार में माया की बड़ी घोर सेना फैल रही है, जिसके कपट, छल, कामदेव और पाखण्ड आदि योद्धा सेनापति हैं ।

सो दासी रघुबीर की, समुझे मिथ्या सोपि ।
छुटै न राम कृपा बिन, नाथ कहौं पद रोपि ॥

हे नाथ, यद्यपि माया भगवान् की दासी है और समझो तो झूठी भी है, परन्तु मैं पाँव रोपकर अर्थात् प्रण करके कहता हूँ कि बिना रामजी की कृपा के वह नहीं छूटती ।

सो माया सब जगहिं नचावा * जासु चरित लखि काहु न पावा
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा * नाच नटी इव सहित समाजा

जिसका चरित्र किसी ने नहीं लख पाया, उस माया ने सारे संसार को नचाया है । हे गरुड़, वही माया भगवान् की भौंह के इशारे से अपने समाजसहित नटी की भाँति नाचती है ।

व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनन्ता * अखिल अमोघ एक भगवन्ता
सोइ सच्चिदानन्द घनस्यामा * अज बिज्ञान रूप गुनधामा

भगवान् व्यापक ब्रह्म, अखण्ड, अन्तरहित, सर्वत्र विद्यमान, सत्य और एक हैं। वही सच्चिदानन्द, जन्महीन, ज्ञानस्वरूप, गुणों के धाम, घनश्याम,

अगुन अदम्भ गिरा गोतीता * समदरसी अनवद्य अजीता
निर्गुन निराकार निर्मोहा * नित्य निरंजन सुखसन्दोहा

दंभ और गुणों से रहित, वाणी और इन्द्रियों से परे, समदर्शी, पवित्र, न जीते जाने योग्य, निर्गुण, निराकार, मोहरहित, नित्य, राग-द्वेष से रहित, निर्लिप्त, आनन्द के धाम,

प्रकृतिपार प्रभु सब उरबासी * ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी
इहाँ मोहकर कारन नाहीं * रबिसनमुख तम कबहुँकि जाहीं

माया से परे, प्रभु, सबके हृदय में रहनेवाले चेष्टाहीन गुणों से रहित और अविनाशी हैं। यहाँ ब्रह्म के निकट मोह का कारण नहीं है। क्या सूर्य के आगे अँधेरा रह सकता है?


भक्त हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनभूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृतनर अनुरूप॥

प्रभु ने भक्तों के लिए राजा की देह धरी और साधारण मनुष्य से परम पवित्र चरित्र किये।

जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
जोइ जोइ भाव दिखावै, आपुन होइ न सोइ॥

जैसे नट बहुत से वेष रखकर नाच करता है तो जो-जो भाव दिखाता है, वह स्वयं नहीं हो जाता,

अस रघुपति लीला उरगारी * दनुजबिमोहन जनसुखकारी
जे मतिमलिन बिषयबसकामी * प्रभुपर मोह धरहिं इमि स्वामी

हे गरुड़, वैसे ही रघुनाथ की लीला राक्षसों को मोह और भक्तों को सुख देनेवाली है। जो मैली बुद्धि के, कामी और विषयों के वश हैं, वे ही भगवान् के विषय में इस प्रकार का मोह रखते हैं।

नयनदोष जाकहँ जब होई * पीतबरन कह ससि कहँ सोई
जब जेहिदिसिभ्रमहोइखगेसा * सो कह पश्चिम उगेउ दिनेसा

जब किसी की आँखों में दोष होता है, तब वह चन्द्रमा को पीला कहता है। हे गरुड़ जब किसी को दिशा का भ्रम होता है, तब वह कहता है कि सूर्य पश्चिम में उदय हुए हैं।

नौकारूढ़ चलत जग देखा * चलत मोहबस आपुहि लेखा
बालकभ्रमहिं न भ्रमहिंगृहादी * कहहिं परस्पर मिथ्याबादी

जैसे नाव में चढ़ा हुआ पुरुष अज्ञान से संसार को चलता-सा देखता और अपने को अचल मानता है, जैसे बालकों के घूमने में घर नहीं घूमते, किन्तु लड़के ऐसा ही कहते हैं—

हरिबिषयक अस मोह बिहंगा * सपनेहु नहिं अज्ञान प्रसंगा
मायाबस मतिमन्द अभागी * हृदय जवनिका बहु बिधि लागी
ते सठ हठवस संसय करहीं * निज अज्ञान रामपर धरहीं

हे गरुड़, वैसे ही भगवान् के विषय में मोह होता है; परन्तु उनमें अज्ञान का लेश स्वप्न में भी नहीं है। मायावश थोड़ी बुद्धिवाले, अभागे, जिनके हृदयों में बहुत प्रकार की माया का पर्दा पड़ा है—ऐसे शठ हठवश सन्देह करते और अपना अज्ञान रामजी पर लगाते हैं।


काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तमकूप॥

काम, क्रोध, मद व लोभ में पड़े, घर में आसक्त, दुःखरूप संसारकूप में पड़े मूढ़जन रामजी को कैसे जानें?

निर्गुनरूप सुलभ अति, सगुन न जानै कोइ।
सुगम अगम नानाचरित, सुनिमुनि मन भ्रम होइ॥

निर्गुण सहज है; पर सगुण के रहस्य को कोई नहीं जानता; क्योंकि सगुण के सुगम और अगम चरित्र सुनकर मुनियों के मन में भी सन्देह होता है।

सुनु खगपति रघुपति प्रभुताई * कहौं जथामति कथासुहाई
जेहिबिधि मोह भयउ प्रभुमोहीं * सो सब चरित सुनावौं तोहीं

हे गरुड़, रामजी की प्रभुता सुनो। जैसी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सुन्दर कथा कहता हूँ। हे स्वामी, जिस प्रकार मुझे मोह हुआ, वह सब चरित्र तुम्हें सुनाता हूँ।

रामकृपाभाजन तुम ताता * हरिगुनप्रीति मोहिं सुखदाता
ताते नहिं कछु तुमहिं दुरावौं * परमरहस्य मनोहर गावौं

हे तात, आप पर रामजी की कृपा है। आप भगवान् के गुणों में प्रीति रखते और मुझे सुख देते हैं। इससे आपसे कुछ छिपाता नहीं। छिपी हुई मनोहर कथा कहता हूँ।

सुनहु रामकर सहज सुभाऊ * जन अभिमान न राखहिं काऊ
संसृतिमूल सूलप्रद नाना * सकलसोकदायक अभिमाना

रामजी का ऐसा सीधा स्वभाव है कि भक्त के अभिमान को कभी नहीं रहने देते; क्योंकि अभिमान ही जन्म-मरण की जड़ तथा नाना प्रकार के कष्ट और सब शोक देनेवाला है।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी * सेवक पर ममता अति भूरी
जिमि सिसुतनब्रनहोइगोसाईं * मातु चिराव कठिन की नाईं

इससे सेवक पर बहुत प्यार करनेवाले भगवान् कृपा करके अभिमान दूर कर देते हैं, जैसे बालक की देह का फोड़ा माता कठोर सी हो चिरा डालती है।



जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
व्याधिनासहित जननी, गनै न सो सिसुपीर॥

यद्यपि बालक पहिले दुःख पाता और अधीर होकर रोता है; परन्तु माता रोग नाश के लिए उस पीड़ा को नहीं गिनती।

तिमि रघुपति निजदासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजसि भ्रम त्यागि॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे ही रघुनाथ भलाई के लिए भक्त का अभिमान मिटाते हैं। ऐसे स्वामी को संसारी भ्रमजाल छोड़ क्यों नहीं भजते?

रामकृपा आपनि जड़ताई * कहहुँ खगेस सुनहु मन लाई
जब जब राम मनुजतन धरहीं * भक्तहेतु लीला बहु करहीं

हे गरुड़, मैं अपनी जड़ता और रामजी की कृपा कहता हूँ; मन लगाकर सुनो। जब-जब भक्तों के लिए रामजी मनुष्य-देह धरते और बहुत चरित्र करते हैं—

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ * बालचरित बिलोकि हर्षाऊँ
जन्म महोत्सव देखौं जाई * बर्ष पाँच तहँ रहौं लुभाई

तब तब मैं अयोध्या जाता और बालचरित्र देख सुखी होता हूँ। श्रीरामजन्म का बड़ा उत्सव जाकर देखता और उससे लुभाकर वहाँ पाँच वर्ष रहता हूँ—

इष्टदेव मम बालकरामा * सोभाबपुष कोटिसतकामा
निजप्रभुवदन निहारि निहारी * लोचन सफल करौं उरगारी
लघुवायसवपु धरि हरिसङ्गा * देखौं बालचरित बहुरङ्गा

हे गरुड़, करोड़ों कामों की सी शोभावाले बालरूप अपने इष्टदेव का मुख देख-देख नेत्र सफल करता हूँ। छोटे कौए की देह रखकर भगवान् के साथ उनके भाँति-भाँति के बालचरित देखता हूँ।



लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ सङ्ग उड़ाउँ।
जूठन परै अजिर महँ, सो उठाय करि खाउँ॥

लड़कपन में जहाँ-जहाँ भगवान् घूमते हैं, वहाँ-वहाँ उनके साथ उड़ता हूँ और अँगनाई में जो जूठन गिरती है, उसे उठाकर खाता हूँ।

एक बार अतिसयप्रबल, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोई, पुलकित भयो सरीर॥

एक बार रघुनाथ ने बहुत ही प्रबल चरित्र किये, जो याद आने से अब भी मेरे शरीर में रोएँ खड़े हो जाते हैं।

कहै भुसुण्डि सुनहु खगनायक * रामचरित सेवक सुखदायक
नृपमन्दिर सुन्दर सब भाँती * खचित कनकमनि नाना जाती

भुशुण्डिजी कहते हैं— हे गरुड़, रामजी के चरित्र भक्तों को सुख देनेवाले हैं। भाँति-भाँति के रत्नों से जड़े सोने के सुन्दर राजमन्दिर की—

बरनि न जाय रुचिर अँगनाई * जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई
बालबिनोद करत रघुराई * बिचरत अजिर जननि सुखदाई

उस सुन्दर अँगनाई का वर्णन नहीं किया जाता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माता को सुख देनेवाले रघुनाथ बालक्रीड़ा करते अँगनाई में घूमते हैं।

मरकतमृदुल कलेवर स्यामा * अङ्ग अङ्ग प्रति छबि बहु कामा
नवराजीवअरुन मृदुचरना * पदपङ्कजनख ससिदुतिहरना

नीलम-सी साँवली कोमल देह के एक-एक अङ्ग में बहुत से कामदेवों की शोभा है। कोमल नये लाल कमल से चरणों के नख चन्द्रमा की शोभा को भी मात करते हैं।

ललित अङ्कुलिसादिकचारी * नूपुर चारु मधुर रवकारी
चारु पुरट मनि रुचिर बनाई * कटिकिङ्किनि कलमुखर सुहाई

सुन्दर अङ्गों में वज्र, अंकुश, गदा और कमल के चार चिह्न हैं। नूपुर मधुर मनोहर शब्द से बजते हैं। सोने और मणियों की सुन्दर करधनी मनोहर शब्द करती है।


रेखात्रय सुन्दर उदर, नाभि रुचिर गम्भीर।
उरआयत भ्राजत बिबिध, बालबिभूषनचीर॥

सुन्दर पेट में तीन रेखाएँ पड़ी हैं। नाभि गहरी है। छाती लम्बी-चौड़ी है। बालकों के भाँति-भाँति के गहने व कपड़े पहने हैं।

अरुन पानि नख करजमनोहर * बाहु बिसाल बिभूषनसोहर
कन्धबालकेहरि दरग्रीवा * चारुचिबुक आनन छबिसीवा

लाल हाथ, उँगलियाँ और नख मन को हरते हैं। लम्बी भुजाओं में सुन्दर गहने पहने है। सिंह के बच्चे के से कन्धे, शंख-सी गर्दन और अच्छी ठोढ़ी है। मुख तो शोभा की सीमा ही है।

कलबलबचन अधर अरुनारे * दुइदुइ दसन बिसद बर बारे
ललितकपोल मनोहर नासा * सकल सुखद ससिकरसमहासा

तोतले बोल लाल होंठ, जिनमें सफेद छोटे-छोटे दो-दो दाँत निकल रहे हैं। सुन्दर गाल, मनोहर नाक और चन्द्रमा की किरणों के समान सबको सुख देनेवाला हँसना है।

नीलकञ्जलोचन भयमोचन * भ्राजतभालतिलक गोरोचन
बिकट भृकुटि समस्रवन सुहाये * कुंचित कच मेचक छवि छाये

भय के छुड़ानेवाले बालरूप प्रभु के नेत्र नील कमल से हैं। माथे में गोरोचन का तिलक लगा है। भौंहें टेढ़ी और कान बराबर हैं। घूँघरवाले काले बालों की शोभा छा रही है।

पीतझीनझँगुली तन सोही * किलकत चितवनि भावतिमोही
रूपरासि नृपअजिरबिहारी * नाचहिं निजप्रतिबिम्ब निहारी

पीली और महीन झँगुली देह में सोहती है। उनका किलकना और देखना मुझे भाता है। सुन्दरता की राशि रामजी राजा दशरथ के आँगन में खेलते और अपनी परछाहीं देख नाचते हैं।

मोहिंसनकरहिंबिबिधबिधिक्रीड़ा * बरनत चरित होत मन ब्रीड़ा
किलकत मोहिं धरन जब धावहिं * चलौं भाजि तब पूप दिखावहिं

मेरे साथ भाँति-भाँति के खेल करते हैं जो चरित्र कहते लज्जा लगती है। जब किलक-कर मुझे पकड़ने दौड़ते हैं और मैं भागता हूँ, तो मुझे पुआ दिखाते हैं।


आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरिफिरि चितै पराहिं॥

निकट जाने से प्रभु हँसते और भागने से रोते हैं। जब मैं चरण छूने के लिए पास जाता हूँ, तब घूम-घूमकर देखते और भागते हैं।

प्राकृत सिसुइव लीला, देखि भयउ मोहिं मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द संदोह॥

प्रभु की साधारण बच्चे की सी लीला देख मुझे मोह हुआ कि सच्चिदानन्दघन यह कौन सा चरित्र करते हैं।

इतना मन आनत खगराया * रघुपति प्रेरित ब्यापी माया
सो माया न दुखद मोहिं काहीं * आन जीव इव संसृति नाहीं

हे गरुड़, यह मन में लाते ही भगवान् की इच्छा से मुझमें माया समा गई। वह माया मुझे दुःख देनेवाली नहीं है और न और जीवों की भाँति मुझे जन्म-मरण का भय है।

नाथ इहाँ कछु कारन आना * सुनहु सो सावधान हरियाना
ज्ञान अखंड एक सीतावर * मायाबस्य जीव सचराचर

किन्तु हे स्वामी गरुड़जी, यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है, सावधान होकर सुनो। सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप एक राम ही हैं। सब चर और अचर जीव माया के वश हैं।

जो सबके रह ज्ञान एकरस * ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस

मायावस्य जीव अभिमानी * ईसवस्य माया गुनखानी

जो सबके बराबर एकसा ज्ञान रहे तो फिर जीव और ईश्वर में भेद ही कैसा ? अभिमानी जीव माया के वश है और गुणों की खान माया ईश्वर के वश है।

परबसजीव स्वबसभगवन्ता * जीव अनेक एक श्रीकन्ता
द्विविध भेद जद्यपि कृत माया * बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया

जीव परवश है और भगवान् अपने वश हैं। जीव अनेक और भगवान एक हैं। यद्यपि माया ने दो प्रकार के भेद कर दिये हैं, परन्तु राम की कृपा के बिना वह भेद-भावना करोड़ों यत्नों से भी नहीं जाती।



रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पदनिर्बान।
ज्ञानवन्तअपि सोपि नर, पशु बिन पूँछ बिषान॥

राम-भजन के बिना जो मुक्ति-पद चाहे, वह ज्ञानी भी बिना पूँछ और सींग का पशु है।

राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन दवलाइये, रवि बिनु राति न जाय॥

नक्षत्रों सहित सोलह कलाओं का चन्द्र उदय हो और सब पहाड़ों में आग लगा दी जाय, तो भी बिना सूर्य के रात नहीं जाती।

ऐसे बिनु हरि भजन खगेसा * मिटै न जीवनकेर कलेसा
हरिसेवकहिं न व्याप अविद्या * प्रभु प्रेरित तेहि व्यापै विद्या

हे गरुड़, ऐसे ही भगवान् के भजन के बिना जीवों के क्लेश नहीं मिट सकते। भगवान् के सेवक को माया नहीं व्यापती, भगवान् का दिया हुआ आत्मज्ञान ही व्यापता है।

ताते नास न होइ दासकर * भेदभक्ति बाढ़ै बिहंगवर
भ्रमते चकित राम मोहिं देखा * बिहँसे सो सुनु चरित बिसेखा

इसलिए सेवक का नाश नहीं होता। हे गरुड़, भेद (सेव्यसेवक भाव) से भक्ति बढ़ती है। रामजी ने मुझे सन्देह से चौकन्ना देख हँस दिया। हे गरुड़, अब वह चरित्र सुनो।

तेहि कौतुककर मर्म न काहू * जाना अनुज न मातु पिताहू
जानुपानि धाये मोहिं धरना * स्यामलगात अरुन करचरना

उस खेल का हाल भाई, माता, पिता, किसी ने भी नहीं जाना। साँवली देह और लाल हाथ-पैरोंवाले रामजी घुटनों के बल मुझे पकड़ने दौड़े।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी * राम गहन कहँ भुजा पसारी
जिमिजिमिदूरिउड़ाउँ अकासा * तिमि तिमिभुज देखौं निजपासा

हे गरुड़, तब मैं भागा। रामजी ने मुझे पकड़ने को हाथ फैलाया। ज्यों-ज्यों मैं आकाश में उड़ता जाता था, त्यों-त्यों भुजा को पास देखता था।



ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुलकर बीचरह, रामभुजहिं मोहिं तात॥

हे तात, मैं उड़ता-उड़ता ब्रह्मलोक तक गया। फिर देखा तो भुजा और मुझ में दो अंगुल का बीच था।

सप्तावरन भेद करि, जहँ लगि गतिरहि मोरि।
गयउँतहाँप्रभुभुजनिरखि, ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

माया के सात आवरण (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकार, बुद्धि) पार करके, जहाँ तक मेरी गति थी, गया; परन्तु वहाँ भी भुजा देखी। तब व्याकुल हो उठा।

मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ * पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ
मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं * बिहँसत तुरत गयउँ मुखमाहीं

जब प्यासा हुआ तो आँखें मूँद लीं; फिर आँख खोलते ही अयोध्यापुरी में पहुँच गया। रामजी मुझे देख मुस्कराये और मैं हँसते ही उनके मुख में चला गया।

उदर माँझ सुनु अण्डजराया * देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया
अतिबिचित्र तहँ लोक अनेका * रचना अधिक एकते एका

हे पक्षिराज, पेट के भीतर मैंने बहुत से ब्रह्माण्ड देखे। वहाँ बड़े-बड़े विचित्र बहुत से लोक देखे, जिनकी बनावट एक से एक बढ़कर थी।

कोटिन चतुरानन गौरीसा * अगनित उडुगन रबि रजनीसा
अगनित लोकपाल जम काला * अगनित भूधर भूमि बिसाला

अनगिनत ब्रह्मा, शिव, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, यमराज, मृत्यु, लोकपाल, पहाड़, लम्बी-चौड़ी पृथ्वी,

सागर सरिता बिपिन अपारा * नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर * चारि प्रकार जीव सचराचर

समुद्र, नदी, तालाब, वन आदि नाना प्रकार की अपार सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर और चारों प्रकार के चर-अचर जीव—



जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहू न समाय।
सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनिबिधिजाय॥

जो न कभी देखे, न सुने और न विचार में आये, वे सब आश्चर्यमय पदार्थ देखे, वे कैसे कहे जायँ?

एक एक ब्रह्माण्ड महँ, रहेउँ बर्ष सत एक।
यहि बिधि मैं देखत फिरेउँ, अण्डकटाह अनेक॥

एक-एक ब्रह्माण्ड में सौ-सौ वर्ष रहा। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा।

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता * भिन्नविष्णु सिवमुनिदिसित्राता
नर गन्धर्व भूत बैताला * किन्नर निसिचर पसु खग व्याला

हर लोक में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मुनि और दिक्पाल जुदे-जुदे थे। मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, नाग,

देव दनुज गन नाना जाती * सकल जीव तहँ आनहिं भाँती
महिसर सागर सरि गिरि नाना * सब प्रपंच तहँ आनै आना

देवता, दैत्य आदि भाँति भाँति के सब जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। पृथ्वी, तालाब, समुद्र, नदी, पर्वत ये सब सृष्टि के प्रपंच वहाँ और ही और थे।

अण्डकोस प्रति प्रति निजरूपा * देखेउँ जिनिस अनेक अनूपा
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी * सरजू भिन्न भिन्न नर नारी

हर एक ब्रह्माण्ड में अपना रूप और भाँति-भाँति की अनुपम सामग्री देखी। हर एक ब्रह्माण्ड में अयोध्यापुरी देखी, जिसमें सरयू नदी और स्त्री-पुरुष न्यारे-न्यारे थे।

दसरथ कौसल्यादिक माता * विविध रूप भरतादिक भ्राता
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा * देखेउँ बालविनोद अपारा

राजा दशरथ, कौशल्या आदि माताएँ और भरत आदि भाई नाना प्रकार के रूपों में थे। हर ब्रह्माण्ड में रामजी का अवतार और अपार बाललीला देखी।



भिन्न भिन्न मैं दीख सब, अति विचित्र हरियान।
अगनित भुवन फिरेउँ मैं, राम न देखेउँ आन॥

हे गरुड़, ब्रह्माण्डों में घूमकर सब तो विचित्र और जुदे-जुदे देखे; पर राम दूसरे नहीं देखे।

सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरौं, प्रेरित मोहसरीर॥

मोह की मारी देह से मैं वही रामचन्द्र का लड़कपन, वही शोभा और वही कृपालु रघुबीर को हर एक ब्रह्माण्ड में देखता फिरा।

भ्रमत मोहिं ब्रह्माण्ड अनेका * बीते मनहु कल्पसत एका
फिरतफिरतनिजआस्रमआयउँ * तहँ रहि पुनि कछुकाल गँवायउँ

अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मुझे सौ कल्प बीत गये। फिर मैं अपने स्थान में आया और वहाँ रहकर कुछ समय बिताया।

निजप्रभुजन्मअवधसुनिपायउँ * निर्भर प्रेम हर्ष उठि धायउँ

देखेउँ जन्म महोच्छव जाई * जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई

फिर प्रभु का अयोध्या में जन्म सुनते ही बड़े प्रेम से प्रसन्न हो उठ दौड़ा। वहाँ जाकर राम-जन्म का बड़ा उत्सव देखा, जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ।

राम उदर देखेउँ जग नाना * देखत बनै न जाय बखाना
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना * मायापति कृपाल भगवाना

रामजी के पेट में बहुत-से संसार देखे, जो कि देखते ही बनते हैं, कहे नहीं जा सकते। फिर वहाँ भी सुन्दर, ज्ञानस्वरूप, मायापति, कृपालु भगवान् को देखा।

करौं बिचार बहोरि बहोरी * मोहकलित ब्यापित मति मोरी
उभय घरी महँ मैं सब देखा * भयउँ भ्रमित मनमोह बिसेखा

बार-बार विचार करता था ; परन्तु मेरी बुद्धि मोह के वश थी। यह सब मैंने दो घड़ी में देखा, इससे भ्रम के कारण मन में मोह बढ़ गया।



देखि कृपाल बिकल मोहिं, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहर, आयउँ सुनु मतिधीर॥

हे मतिधीर गरुड़, मुझे व्याकुल देख कृपालु राम हँसने लगे। तब मैं चट उनके मुँह से बाहर निकल आया।

सोइ लरिकाईं मोसन, लगे करन पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावहुँ, मन न लहै बिसराम॥

रामजी मुझसे फिर वही बाललीला करने लगे। करोड़ों भाँति समझाता था ; पर मन को विश्राम नहीं मिलता था।

देखि चरित यह सो प्रभुताई * समुझत देह दसा बिसराई
धरनि परेउँ मुख आव न बाता * त्राहि त्राहि आरतजनत्राता

यह चरित्र देख और वह प्रभुता समझकर मैं देह की दशा भूलकर पृथ्वी में गिर पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी। फिर मैंने कहा—हे दीनों के रक्षक, रक्षा करो।

प्रेमाकुल प्रभु मोहिं बिलोकी * निजमायाप्रभुता तब रोकी
करसरोज प्रभु मम सिर धरेऊ * दीनदयाल सकल दुख हरेऊ

भगवान् ने मुझे प्रेम से व्याकुल देख अपनी माया का प्रभाव रोक दिया। फिर दीनदयालु रामजी ने मेरे सिर पर अपना कर कमल रखकर मेरा सारा दुःख हर लिया।

कीन्ह राम मोहिं बिगतबिमोहा * सेवकसुखद कृपासन्दोहा
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी * मन महँ होय हर्ष अतिभारी

सेवकों को सुख देनेवाले, कृपा के धाम रामजी ने मेरा सारा मोह दूर कर दिया। प्रभु की पहले की प्रभुता विचार-विचारकर मेरे मन में बहुत प्रसन्नता होती थी।

भक्तबछलता प्रभुकै देखी * उपजी मम उर प्रीति बिसेखी
सजलनयन पुलकित करजोरी * कीन्ह्यों बहुबिधि बिनय बहोरी

भगवान् का भक्तों पर प्यार देख मेरे हृदय में बहुत प्रीति (भक्ति) उपजी। फिर नेत्रों में जल भर रोमांचित देह से हाथ जोड़ मैंने बहुत भाँति विनती की।



सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गम्भीर मृदु, बोले रमानिवास।

मेरी प्रेमभरी वाणी सुन, मुझ दास को दुखी देख, लक्ष्मीपति राम इस प्रकार सुखदायक कोमल गम्भीर वचन बोले—

काकभुशुंडी माँगु बर, अतिप्रसन्न मोहिं जानि।
अनिमादिकसिधिअपरनिधि,मोच्छसकलसुखखानि॥

हे काकभुशुण्ड, मुझे बहुत प्रसन्न जानकर वरदान माँगो। अणिमा आदि सिद्धियाँ, नवों निधियाँ, सब सुखों की खान मुक्ति,

ज्ञान बिबेक बिरति बिज्ञाना * मुनिदुर्लभ गुन जे जगजाना
आजु देउँ सब संसय नाहीं * माँगु जो तोहिं भाव मनमाहीं

ज्ञान, बुद्धि, वैराग्य, आत्मज्ञान और वे गुण, जिन्हें संसार जानता है कि मुनियों को भी दुर्लभ हैं, जो मन भावे, मुझसे माँगो। आज तुम्हें सब दूँगा, सन्देह नहीं।

सुनिप्रभुबचनअधिकअनुरागेउँ * मन अनुमान करन अस लागेउँ
प्रभु कह देन सकल सुख सही * भक्ति आपनी देन न कही

भगवान् के वचन सुन मेरे मन में बड़ा प्रेम हुआ। मैं मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुख तो देने को कहे; परन्तु अपनी भक्ति देने को नहीं कहा।

भक्तिहीन गुन सबसुख कैसे * लवनबिना बहुब्यंजन जैसे
भक्तिहीन सुख कवने काजा * अस बिचारि बोलेउँ खगराजा

विना भक्ति के सब सुख वैसे ही हैं, जैसे नमक के विना बहुत-सी तरकारियाँ। हे गरुड़, विना भक्ति के सुख किस काम का? ऐसा विचार कर मैंने कहा—

जो प्रभु ह्वै प्रसन्न बर देहू * मोपर करहु कृपा अरु नेहू
मनभावत बर माँगौं स्वामी * तुम उदार उरअन्तरजामी

हे स्वामी, जो आप प्रसन्न होकर वरदान देते हैं और मुझ पर कृपा और स्नेह करते हैं तो मनभाया वरदान माँगता हूँ। आप उदार और हृदय की बात जाननेवाले हैं।



अबिरल भक्ति बिसुद्ध तव, स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीसमुनि, प्रभुप्रसाद कोउ पाव॥

आपकी पवित्र और घनी भक्ति को वेद व पुराण कहते और योगेश्वर व मुनि ढूँढ़ने पर भी आपकी प्रसन्नता से कोई-कोई ही पाते हैं।

भक्तकल्पतरु प्रनतहित, कृपासिन्धु सुखधाम।
सोइ निजभक्ति मोहिं प्रभु, देहु दया करि राम॥

हे भक्त के कल्पवृक्ष, शरणागतों के हितू, कृपा के सागर, आनन्द के धाम, प्रभु, वही अपनी भक्ति कृपा करके मुझे दीजिए।

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक * बोले बचन परमसुखदायक
सुनु बायस तैं परम सयाना * काहे न माँगेसि अस बरदाना

तब रघुवंशनाथ रामजी 'ऐसा ही हो' कहकर बहुत सुख देनेवाले वचन बोले—हे काक, तू बड़ा चतुर है। फिर ऐसा वरदान क्यों न माँगे?

सबसुखखानि भक्ति तैं माँगी * नहिंजगकोउतोहिंसमबड़भागी
जो मुनि कोटिजतन नहिं लहहीं * जे जप जोग अनल तन दहहीं

तूने सब सुखों की खान भक्ति माँगी है। इससे तुझसा भाग्यवान् संसार में कोई नहीं। इसे तो करोड़ों यत्नों से मुनि भी नहीं पाते, जो जप और योग की आग से अपनी देह जलाते हैं।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई * माँगेहु भक्ति मोहिं अतिभाई
सुनु खगपति प्रसाद अब मोरे * सब सुभगुन बसिहहिं उर तोरे

तेरी चतुरता देख मैं प्रसन्न हुआ। तूने भक्ति माँगी, यह मुझे बहुत अच्छा लगा। हे भुशुण्डि, अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सभी अच्छे गुण बसेंगे।

भक्ति ज्ञान बिज्ञान बिरागा * जोग चरित्र रहस्य बिभागा
जानब तैं सबही कर भेदा * मम प्रसाद नहिं साधन खेदा

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, चरित्र, सब रहस्य अर्थात् छिपी हुई बातें, मेरी कृपा से इन सबका भेद तू जानेगा। इनकी साधना में भी तुझको क्लेश नहीं होगा।

दो॰ मायासम्भव सकलभ्रम, अब नहिं ब्यापिहितोहिं।
जानेसु ब्रह्मअनादिअज, अगुन गुनाकर मोहिं॥

माया से उत्पन्न भ्रम अब तुझे नहीं होगा। मुझे जन्ममरण या आदिअंत से रहित, निर्गुण, गुणों की खान ब्रह्म जानना।

मोहिं भक्ति प्रिय सन्तत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन ममपद, करेसु अचल अनुराग॥

हे काक, मुझे भक्ति प्रिय है। यह विचार मन, वचन, कर्म से मेरे चरणों में अचल प्रीति करना।

अब सुनु परमबिमल मम बानी * सत्य सुगम निगमादि बखानी
निज सिद्धान्त सुनावौं तोहीं * सुनु मनधरु सबतजि भजु मोहीं

अब मेरी बहुत ही विमल वाणी सुन, जो सत्य, सुगम और वेद आदि में कही गई है। तुझे अपना सिद्धान्त सुनाता हूँ। सब छोड़ उसे सुन, मन में रख और मुझे भज।

ममसायासंभव संसारा * जीव चराचर बिबिध प्रकारा
सब ममप्रिय सब मम उपजाये * सबते अधिक मनुज मोहिं भाये

सारा संसार, जिसमें नाना प्रकार के चर-अचर जीव हैं, मेरी माया से उपजा है। यद्यपि सब मेरे उपजाये हैं और मुझे सभी प्यारे हैं, परन्तु उनमें मनुष्य मुझे सबसे अच्छे लगते हैं।

तिनमहँद्विज द्विजमहँस्रुतिधारी * तिनमहँ निगमधर्मअनुसारी
तिनमहँ पुनि बिरक्त पुनि ज्ञानी * ज्ञानिहुते अतिप्रिय बिज्ञानी

उनमें भी ब्राह्मण, ब्राह्मणों में वेद पढ़नेवाले, उनमें भी वेदमार्ग पर चलनेवाले, उनमें भी विरक्त, उनसे ज्ञानी, ज्ञानियों से अधिक आत्मज्ञानी,

तिनतेपुनि मोहिं प्रियनिजदासा * जेहि गति मोरि न दूसरि आसा
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहिं पाहीं * मोहिं सेवकसम प्रिय कोउनाहीं

और उनसे भी अधिक मुझे भक्त प्रिय हैं, जिन्हें मेरी शरण के सिवा दूसरा भरोसा नहीं। तुझसे बार-बार सत्य ही कहता हूँ, मुझे सेवक के समान कोई प्रिय नहीं।

भक्तिहीन बिरंचि किन होई * सब जीवनसम प्रिय मोहिं सोई
भक्तिवन्त अतिनीचहु प्रानी * मोहिंप्रानप्रिय अस मम बानी

बिना भक्ति के ब्रह्मा भी क्यों न हों, साधारण जीवों से अधिक मुझे प्रिय नहीं। नीच प्राणी भी यदि भक्त हो तो मुझे प्राणों के समान प्यारा है—यह मेरी वाणी है।



सुचिसुसीलसेवकसुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुतिपुरानकहनीति अस, सावधान सुनु काग॥

हे काग, वेद, पुराण और नीति कहती है कि पवित्र, सुशील और सुमति सेवक किसे प्रिय नहीं लगता?

एक पिता के बिपुल कुमारा * होहिं पृथक गुन सील अचारा
कोउ पण्डित कोउ तापसज्ञाता * कोउ धनवन्त सूर कोउ दाता

एक ही पिता के बहुत-से लड़के होते हैं, जिनमें गुण, शील और चाल-चलन न्यारे-न्यारे होते हैं। कोई पण्डित, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूर, कोई दानी,

कोउ सर्बज्ञ धर्मरत कोई * सब पर प्रीति पितहि सम होई
कोउ पितुभक्त बचनमन कर्मा * सपनेहु जान न दूसर धर्मा

कोई सभी कुछ जाननेवाला, और कोई धर्म का प्रेमी होता है; परन्तु इन सब पर पिता का स्नेह एक-सा होता है। इन पुत्रों में से कोई मन, वचन, कर्म से पिता की सेवा छोड़ स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता।

सोउसुत प्रिय पितु प्रानसमाना * जद्यपि सो सब भाँति अयाना
यहि विधि जीव चराचर जेते * त्रिजग देव नर असुर समेते

चाहे वह सब प्रकार अज्ञानी ही हो, परन्तु पिता को प्राणों के समान प्यारा होता है। इसी प्रकार तीनों लोकों में देवता, मनुष्य, दैत्य आदि सब चर-अचर जीव

अखिल बिस्व यह मम उपजाया * सब पर मोरि बराबरि दाया
तिनमहँ जो परिहरि मद माया * भजहिंमोहिं मनवच अरु काया

और सारा संसार मेरा उत्पन्न किया हुआ है। सब पर मेरी दया भी बराबर है। परन्तु उनमें से जो अहंकार और छल छोड़ मन, वचन, कर्म से मेरा भजन करते हैं,



पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ।
सर्बभाव भज कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोइ॥

वे स्त्री, पुरुष, नपुंसक, चर-अचर कोई भी हों, कपट छोड़ संपूर्ण भाव से भजने पर मुझे अति प्रिय होते हैं।



सत्य कहौं खग तोहिं, सुचिसेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहिं, परिहरि आसभरोस सब॥

हे भुशुण्डिजी, तुमसे मैं सत्य ही कहता हूँ। पवित्र सेवक मुझे प्राणों के समान प्रिय है। ऐसा विचारकर सब आशा भरोसा छोड़कर मुझे भज।

कबहुँ कालनहिं ब्यापिहि तोहीं * सुमिरेहु भजेहु निरन्तर मोहीं
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ * तनपुलकित मन अति हर्षाऊँ

सदा मेरा स्मरण और सेवा करना। काल तेरा कभी कुछ न बिगाड़ सकेगा। भगवान् के ये अमृत-से वचन सुन मैं अघाता नहीं। देह पुलकित हो रही थी और मन में बड़ी प्रसन्नता थी।

सो सुख जानैं मन अरु काना * नहिं रसना पहँ जाइ बखाना
प्रभुसोभा सुख जानैं नयना * किमिकहिसकैंतिनहिंनहिंबयना

वह सुख मन और कान जानते हैं; जीभ से उनकी बड़ाई नहीं हो सकती। भगवान् की शोभा भी नेत्र ही जान सकते हैं; पर वे कह नहीं सकते; क्योंकि वे बोल नहीं सकते।

बहु विधि राम मोहिं सिख देई * लगे करन सिसुकौतुक तेई
सजल नयनकछुमुख करिरूखा * चितै मातु तन लागी भूखा

रामजी मुझे बहुत भाँति शिक्षा देकर वही बाललीला करने लगे। नेत्रों में जल भर कुछ रूखा मुख करके माता की ओर देखने लगे ; मतलब यह कि भूख लगी है।

देखि मातु आतुर उठि धाई * कहि मृदुवचन लिये उर लाई
गोद राखि कराव पय पाना * रघुपतिचरित ललितकरिगाना

देखते ही माता शीघ्र उठ दौड़ीं और कोमल वचन कहकर प्रभु को छाती से लगा लिया। फिर भगवान् के सुन्दर चरित्र गाती हुई उन्हें गोद में लेकर दूध पिलाने लगीं।

जेहि सुख लागि पुरारि, असिवभेषकृतसिवसुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुख महँ संतत मगन॥

जिसके लिए त्रिपुरारि शंकर ने सुखदायक और कल्याणरूप होकर भी अशुभ वेप धारण किया, उसी सुख में अयोध्या के स्त्री-पुरुष डूबे हैं।

सोइ सुखकर लवलेस, जिन बारेक सपनेहु लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥

हे गरुड़, जिन्होंने स्वप्न में भी एक बार उस सुख का लवलेश पाया है, वे बुद्धिमान् सज्जन ब्रह्मानन्द को भी उसके आगे कुछ नहीं गिनते।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला * देखेउँ बालविनोद रसाला
रामप्रसाद भक्ति वर पायउँ * प्रभुपद वन्दि निजाश्रम आयउँ

फिर मैं कुछ समय तक अयोध्या में रहा और प्रभु की रसीली बाललीला देखी। रामजी की कृपा से भक्ति का वरदान पाया और भगवान् के चरणों की वन्दना करके अपने आश्रम को आया।

तबते मोहि न व्यापी माया * जबते रघुनायक अपनाया
यह सब गुप्त चरित मैं गावा * हरिमाया जिमि मोहिं नचावा

जब से रघुनाथ ने मुझे अपनाया, तब से मुझे माया नहीं व्यापती। मैंने यह सब प्रभु का गुप्त चरित्र तुमसे कहा, जिस प्रकार भगवान् की माया ने मुझे नचाया था।

निज अनुभव अब कहौं खगेसा * बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा
रामकृपा बिनु सुनु खगराई * जानि न जाइ रामप्रभुताई

हे गरुड़, अब अपना अनुभव कहता हूँ। बिना भगवान् का भजन किये क्लेश नहीं जाते। हे गरुड़, रामजी की कृपा के बिना उनका महात्म्य जाना नहीं जा सकता।

जाने बिन न होइ परतीती * बिन परतीति होइ नहिं प्रीती
प्रीति बिना नहिं भक्ति दढ़ाई * जिमि खगेस जल की चिकनाई

बिना जाने विश्वास नहीं होता, बिना विश्वास के प्रीति भी नहीं होती। हे गरुड़ बिना प्रीति के भक्ति दृढ़ नहीं होती, जैसे चिकनाहट में जल नहीं ठहरता।



बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिन।
गावहिं बेद पुरान, सुखकिलहहिंहरिभक्तिबिन ॥

वेद-पुराण कहते हैं कि जैसे बिना गुरु के और विना वैराग्य के ज्ञान नहीं होता, वैसे ही क्या बिना रामभक्ति के सुख मिल सकता है ?

कोउ बिसराम कि पाव, तात सहजसन्तोष बिन।
चलै कि जल बिन नाव, कोटिजतनकरिपचिमरिय ॥

हे तात, सहज सन्तोष के विना क्या विश्राम मिल सकता है ? करोड़ों यत्नों से भी क्या बिना जल के नाव चल सकती है ?

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं * काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं
रामभजनबिनुमिटिहिकि कामा * थलविहीन तरु कबहुँ कि जामा

बिना सन्तोष के इच्छा नहीं मिटती और कामना के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं होता। रामजी के भजन बिना कामना वैसे ही नहीं मिट सकती, जैसे पृथ्वी के बिना वृक्ष नहीं उगता।

बिनु बिज्ञान कि समता आवै * कोउ अवकास कि नभबिन पावै
स्रद्धा बिना धर्म नहिं होई * बिनु महि गन्ध कि पावै कोई

विना आत्मज्ञान के कहीं मन में सबको समान देखने की शक्ति आती है ? विना आकाश के कहीं किसी को स्थान मिल सकता है ? विना श्रद्धा के धर्म नहीं होता। पृथ्वी के विना गन्ध,

बिनु तप तेज कि करु बिस्तारा * जल बिनु रस कि होइ संसारा
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई * जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई

तप किये विना तेज, विना जल के रस, विना बुद्धिमानों की सेवा किये शील, विना तेज के रूप,

निजसुख बिनु मन होइ कि थीरा * परस कि होइ बिहीन समीरा
कवनिउँसिद्धिकिबिनु बिस्वासा * बिनु हरिभजन न भवभयनासा

विना आत्मसुख के मन की स्थिरता, विना वायु के स्पर्श, विना विश्वास के सिद्धि जैसे नहीं होती, वैसे ही विना हरिभजन के क्या संसार के भय का नाश हो सकता है ?



बिनु बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिसराम ॥

विना विश्वास के भक्ति नहीं होती, बिना भक्ति के रामजी नहीं प्रसन्न होते और बिना रामजी की कृपा के स्वप्न में भी जीव को विश्राम (शान्ति) नहीं मिलता।



अस बिचारि मतिधीर, तजिकुतर्कसंसयसकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद ॥

हे धीर बुद्धिवाले, ऐसा विचारकर सब सन्देह और बुरे विचार छोड़ दो और करुणा की खान, सुन्दर सुखदायक रघुवीर रामजी को भजो।

निज मति सरिस नाथ मैं गाई * प्रभुप्रतापमहिमा खगराई
कहेउँ न कछु करि जुक्ति बिसेखी * यह सब मैं निज नैनन देखी

हे पक्षियों के राजा गरुड़, मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के प्रताप की महिमा वर्णन की। कुछ युक्ति से बढ़ाकर नहीं कहा ; यह सब मैंने अपनी आँखों से देखा है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा * सकल अमितअनन्त रघुनाथा
निजनिजमतिमुनिहरिगुनगावहिं * निगम सेस सिव पार न पावहिं

रघुनाथ अनन्त हैं, इस कारण उनकी महिमा, नाम, रूप आदि गुणों की कथा भी अनन्त है। मुनि लोग बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुण कहते हैं। उनका अन्त तो वेद, शेष और शिव भी नहीं पाते।

तुमहिं आदिखगमसकप्रजन्ता * नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अन्ता
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा * तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा

हे तात, तुमसे लेकर मच्छड़ तक आकाश में उड़ते हैं ; परन्तु उसका अन्त नहीं पाते। इसी प्रकार भगवान् की अथाह महिमा की थाह क्या कोई कभी पा सकता है ?

राम कामसतकोटि सुभगतन * दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन
सक्र कोटिसतसरिस बिलासा * नभसत कोटिअमित अवकासा

रामजी सैकड़ों-करोड़ों कामदेवों की-सी सुन्दर देहवाले और करोड़ों दुर्गाओं के समान अनगिनत शत्रुओं के नाशक हैं। करोड़ों इन्द्रों के से भोगविलासवाले और करोड़ों आकाशों के-से अमित अवकाशवाले हैं।


मरुतकोटिसतबिपुलबल, रबिसतकोटि प्रकास।
ससिसतकोटिसुसीतल, समन सकल भवत्रास॥

संसार के भय के नाशक रामजी सैकड़ों-करोड़ों पवनों से भी बली, सैकड़ों-करोड़ों सूर्यों से भी अधिक उजाला करनेवाले और सैकड़ों-करोड़ों चन्द्रों से भी अधिक शीतल हैं।

कालकोटिसतसरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु सतकोटिसम, दुराधर्ष भगवन्त॥

सौ करोड़ कालों के समान कठिनता से पार जाने योग्य दुर्गम और दुरन्त हैं। वह शतकोटि अग्नियों के समान दुराधर्ष हैं।

प्रभु अगाध सतकोटि पताला * समनकोटिसतसरिस कराला
तीरथ अमितकोटि सतपावन * नाम अखिलअघपुंजनसावन

करोड़ों पातालों के समान अथाह, करोड़ों मृत्युओं के समान भयानक और करोड़ों तीर्थों के समान पावन हैं। उनका नाम सब पापों के पुंज को मिटानेवाला है।

हिमगिरिकोटि अचलरघुबीरा * सिन्धुकोटिसतसम गम्भीरा
कामधेनु सतकोटिसमाना * सकलकामदायक भगवाना

करोड़ों हिमाचलों के समान अचल, करोड़ों समुद्रों के समान गम्भीर, करोड़ों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं के देनेवाले,

सारदकोटिअमित चतुराई * बिधिसतकोटि सृष्टिनिपुनाई
बिष्णुकोटिसत पालनकर्त्ता * रुद्रकोटिसतसम संहर्त्ता

करोड़ों सरस्वतियों के समान चतुर, करोड़ों ब्रह्माओं के समान सृष्टि की रचना में निपुण, करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करनेवाले, करोड़ों शिवों के समान संहार करनेवाले,

धनदकोटिसतसम धनवाना * मायाकोटि प्रपंचनिधाना
धराधरनसतकोटिअहीसा * निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा

करोड़ों कुवेरों के समान धनी, करोड़ों मायाओं के समान प्रपंच की खान, करोड़ों शेषों के समान पृथ्वी को धारण करनेवाले, अवधिरहित, अनुपम, संसार के स्वामी भगवान् हैं।

छन्द

निरुपम न उपमा आन राम समान निगमागम कहैं।
जिमि कोटिसत खद्योत रविसम कहत अति लघुता लहैं॥
यहिभाँति निजनिजमतिबिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भावगाहक अतिकृपाल सुप्रेमते सुख मानहीं॥

वेद और पुराण कहते हैं कि रामजी की उपमा नहीं। जैसे करोड़ों जुगुनुओं को सूर्य के समान कहने में छोटाई होती है, वैसे ही अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मुनि भगवान् का भी बखान करते हैं। अति कृपालु भगवान् भाव के गाहक हैं, प्रेम से सुख मानते हैं।


राम अमितगुनसागर, थाह कि पावै कोइ।
सन्तन सन जस कछु सुनेउँ, तुमहिं सुनायउँ सोइ॥

रामजी के गुणों के महासमुद्र की थाह क्या कोई पा सकता है? मैंने जैसा सन्तों से सुना था, वैसा तुमको सुनाया।


भावबस्य भगवान, सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता मदमान, भजिय सदा सीतारमन॥

सुखनिधान और करुणा की खान भगवान् भाव के वश हैं। इससे ममता और अभिमान का नशा छोड़कर सदा सीतारमण रामजी को भजो।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुहाये * हर्षित खगपति पंख फुलाये
नयननीर मन अतिहर्षाना * श्रीरघुपतिप्रताप उर आना

भुशुण्डिजी के सुहावने वचन सुन गरुड़जी ने प्रसन्न होकर पंख फुलाये। उनकी आँखों में आनन्द के आँसू आ गये और रघुनाथ का प्रताप हृदय में लाकर मन में बहुत प्रसन्न हुए।

पाछिल मोहसमुझि पछिताना * ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना
पुनि पुनि काकचरन सिरनावा * जानि रामसम प्रेम बढ़ावा

पिछला मोह समझकर पछताने लगे कि हाय! मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य जाना। फिर बार-बार भुशुण्डि के चरणों में शीश नवाया और उनको रामजी के समान जानकर प्रेम बढ़ाया।

गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई * जो बिरञ्चि सङ्कर सम होई
संसयसर्प ग्रसेउ मोहिं ताता * दुखद लहरि कुतर्क बहुवाता

गरुड़ बोले—ब्रह्माजी और शिव के समान हो तो भी कोई बिना गुरु संसारसागर को नहीं तर सकता। हे तात, सन्देहरूप सर्प ने मुझे डस लिया था, जिससे कुतर्कवायु से दुःख देनेवाली लहरें आती थीं।

तवस्वरूपगारुड़ि रघुनायक * मोहिं जियायउ जनसुखदायक
तव प्रसाद मम मोह नसाना * राम रहस्य अनूपम जाना

परन्तु भक्तों को सुख देनेवाले रघुनाथ ने तुम्हारे स्वरूपरूप गारुड़िमन्त्र से मुझे जिला लिया। तुम्हारी कृपा से मेरा मोह मिट गया—रामजी का अनूप रहस्य मैं जान गया।



ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि, सीस नाइ करजोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोले गरुड़ बहोरि॥

इस प्रकार भाँति-भाँति उनकी बड़ाई कर हाथ जोड़ सिर नवाकर गरुड़जी फिर विनय से भरे ये कोमल वचन स्नेह से बोले—

प्रभु अपने अबिबेक ते, बूझौं स्वामी तोहिं।
कृपासिन्धु सादर कहहु, जानि दास निज मोहिं॥

हे प्रभु, हे कृपानिधि, अविवेक के कारण आदरसहित पूछता हूँ, मुझे सेवक जानकर कहिए।

तुम सर्बज्ञ तज्ञ तमपारा * सुमति सुसील सरलआचारा
ज्ञान बिरति बिज्ञाननिवासा * रघुनायक के तुम प्रिय दासा

आप सब कुछ जाननेवाले, ब्रह्मज्ञानी, प्रकाशरूप, सुबुद्धि और सुशील से संपन्न, सीधे स्वभाववाले, ज्ञान-वैराग्य व विज्ञान के निधान और रघुनाथ के प्यारे सेवक हैं।

कारन कवन देह यह पाई * तात सकल मोहिं कहहु बुझाई
रामचरितसर सुन्दर स्वामी * पायउ कहाँ कहहु नभगामी

फिर हे तात, क्या कारण है कि आपने यह देह पाई ? मुझे समझाकर कहिए। हे आकाश में विचरनेवाले स्वामी, यह रामचरितमानस तुमने कहाँ पाया ?

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं * नास महाप्रलयहु तुव नाहीं
मृषा बचन नहिं ईस्वर कहहीं * सो मोरे मन संसय अहहीं

हे स्वामी, मैंने शिवजी से सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता। शिवजी झूठ नहीं बोलते। इससे मेरे मन में सन्देह होता है।

अग जग जीव नाग नर देवा * नाथ सकल जग कालकलेवा
अण्डकटाह अमित लयकारी * काल महादुरितक्रम भारी

हे स्वामी, जगत् के देवता, मनुष्य, नाग, आदि सब चराचर जीवों को काल खा जाता है। वह अनगिनत ब्रह्माण्डों का नाशक है। काल को कोई टाल नहीं सकता।


तुमहिं न ब्यापत काल, अति कराल कारन कवन।
मोहिं सो कहहु कृपाल, ज्ञानप्रभाव कि जोगबल॥

हे कृपालु, काल का आप पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ता ? कहिए, यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल ?


प्रभु तुव आस्रम आयउँ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ अब, कहहु सहित अनुराग॥

प्रभु, मेरा मोह व सन्देह यहाँ आते ही भाग गया; इसका क्या कारण है ? स्नेह सहित कहिए।

गरुड़ गिरा सुनि हर्षेउ कागा * बोलेउ उमा सहित अनुरागा
धन्य धन्य तव मति उरगारी * प्रस्न तुम्हारि मोहिं अति प्यारी

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, गरुड़ की यह वाणी सुन भुशुण्डिजी प्रसन्न हुए और स्नेह के साथ बोले—हे गरुड़, तुम्हारी बुद्धि को धन्य है। मुझे तुम्हारा यह प्रश्न बहुत प्यारा लगा।

सुनि तुव प्रस्न सप्रेम सुहाई * बहुत जन्म कै सुधि मोहिं आई
सब निज कथा कहौं मैं गाई * तात सुनहु सादर मन लाई

तुम्हारा प्रेम से भरा सुहावना प्रश्न सुनकर मुझे बहुत जन्मों की याद आ गई। हे तात, अब सब कथा वर्णन करता हूँ; आदरसहित मन लगाकर सुनो।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना * बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना
सबकर फल रघुपतिपद प्रेमा * तेहि बिन कोउ न पाव सुख छेमा

जप, तप, यज्ञ, मन को वश में करना, इन्द्रियों को जीतना, व्रत, दान, वैराग्य ज्ञान,

योग, विज्ञान, इन सबका फल रघुनाथजी के चरणों में प्रेम है। उसके बिना कोई कुशल और सुख नहीं पाता।

यहि तन रामभक्ति मैं पाई * ताते मोहिं परमप्रिय भाई
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई * तेहि पर ममता कर सब कोई

भाई, मैंने इसी देह में रामजी की भक्ति पाई है, इससे यह मुझे बहुत प्यारी है; क्योंकि जिससे कुछ अपना काम निकले, उस पर सभी स्नेह करते हैं।



पन्नगारि सुनु नीति, श्रुतिसम्मत सज्जन कहहिं।
अतिनीचहु सन प्रीति, करियजानिनिजपरमहित॥

हे गरुड़, नीति, वेद और सज्जन कहते हैं कि जो अपना परमहित हो तो अत्यन्त नीच से भी प्रीति करे।

पाट कीट ते होइ, तेहिते पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परमअपावन प्रानसम॥

कीड़े से रेशम और उससे कपड़े बनते हैं, इससे अपवित्र कीड़े को भी लोग प्राणों के समान पालते हैं।

स्वारथ सर्वजीव कहँ एहा * मन क्रम वचन रामपद नेहा
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा * जो तन पाइ भजै रघुवीरा

और सब जीवों का स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से रामजी के चरणों में स्नेह करे। वही पावन और सुन्दर देह है, जिसे पाकर रघुनाथ का भजन हो सके।

रामविमुख लहि विधिसम देही * कवि कोविद न प्रसंसहि तेही
रामभक्ति यहि तन उर जामी * ताते मोहिं परमप्रिय स्वामी

यदि रामजी से विमुख पुरुष ब्रह्मा की-सी बड़ी आयु पा जाय तो भी कवि और पण्डित उसकी बड़ाई नहीं करते। हे स्वामी, इस देह के हृदय में रामजी की भक्ति जम गई, इससे यह मुझे बहुत प्यारी है।

तजौं न तन निजइच्छामरना * तन बिन वेद भजन नहिं वरना
प्रथम मोह मोहिं बहुत बिगोवा * रामविमुख सुख कबहुँ न सोवा

यद्यपि मैं इच्छा से जब चाहूँ तब मर सकता हूँ, फिर भी यह देह नहीं छोड़ता; क्योंकि वेदों ने विना देह के भजन नहीं कहा। पहले मुझे अज्ञान ने बहुत भटकाया और मैं रामजी से विमुख होने के कारण कभी सुख से नहीं सोया।

नाना जन्म कर्म पुनि नाना * किये जोग जप तप मख दाना
कवनि जोनि जन्मेउँ जहँ नाहीं * मैं खगपति भ्रमि भ्रमिजगमाहीं

नाना प्रकार के जन्म लेकर योग, जप, तप, यज्ञ, दान आदि अनेक कर्म मैंने किये। हे गरुड़, संसार में ऐसी कौन-सी योनि है, जिसमें मैं घूम-घूमकर नहीं उपजा।

देखेउँ करि सब कर्म गोसाईं * सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं
सुधि मोहिं नाथ जन्म बहुकेरी * सिवप्रसाद मति मोह न घेरी

हे स्वामी, सब कर्म करके मैंने देख लिया। अब का-सा सुखी कभी नहीं हुआ। हे नाथ, मुझे बहुत जन्मों का स्मरण है; क्योंकि शिवजी की कृपा से अज्ञान ने कभी मेरी बुद्धि को नहीं घेरा।


प्रथम जन्म के चरित अब, कहौं सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभुपद रति ऊपजै, जाते मिटै कलेस॥

हे गरुड़, अब मैं अपने पहले जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिससे प्रभु के चरणों में प्रीति होती और क्लेश मिटते हैं।

पूर्ब कल्पते एक प्रभु, जुग कलिजुग मलमूल।
नर अरु नारि अधर्मरत, सकल निगमप्रतिकूल॥

हे स्वामी, पहले कल्प में एक युग पाप की जड़ कलिकाल हुआ, जिसमें सब स्त्री-पुरुष अधर्म में लगकर वेद से उलटा चलते हैं।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई * जन्मत भयउँ सूद्रतनु पाई
सिवसेवक मन क्रम अरु बानी * आनदेवनिन्दक अभिमानी

उसी कलियुग में अयोध्यापुरी में जाकर शूद्र की देह मैंने पाई। मन, वचन और कर्म से मैं शिवजी का तो भक्त था, परन्तु दूसरे देवताओं की निन्दा करता था और अभिमानी भी था।

धनमदमत्त परम बाचाला * उग्रबुद्धि उरदम्भ बिसाला
जदपि रहेउँ रघुपतिरजधानी * तदपि न कछु महिमा उर आनी

मैं धन के मद से मतवाला, बड़ा बातूनी, उग्र बुद्धिवाला और पाखण्डी था। यद्यपि रघुनाथ की राजधानी अयोध्या में रहता था, तो भी उसकी महिमा मन में कुछ न लाया।

अब जाना मैं अवध प्रभावा * निगमागम पुरान अस गावा
कवनेउँ जन्म अवध बस जोई * रामपरायन सो नर होई

मैंने अयोध्या का प्रभाव अब जाना है कि वेदों, शास्त्रों और पुराणों में यह कहा है कि जो किसी भी जन्म में अयोध्या में रहता है, वह रामजी का प्रेमी अवश्य होता है।

अवधप्रभाव जान तब प्रानी * जब उर बसहिं राम धनुपानी
सो कलिकाल कठिन उरगारी * पापपरायन सब नर-नारी

अयोध्या की महिमा जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष लिये रामजी हृदय में बसते हैं। हे गरुड़, उस कठिन कलियुग में सब स्त्री-पुरुष पाप में लगे रहते हैं।


कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सदग्रन्थ।
दम्भिननिजमतकल्पिकरि, प्रगट किये बहु पन्थ॥

कलि के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, अच्छे ग्रन्थ वेद आदि छिप गये, और पाखण्डियों ने अपने-अपने मत कायम करके बहुत-से पन्थ (धर्म) प्रकट किये अर्थात् चला दिये।

भये लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरियान सुज्ञाननिधि, कहउँ कछुक कलिधर्म॥

लोग अज्ञान के वश हो गये। लोभ ने अच्छे कर्मों को मिटा दिया। हे अच्छे ज्ञान की खान गरुड़, अब मैं थोड़ा कलियुग के धर्म कहता हूँ।

बरनधर्म नहिं आस्रम चारी * स्रुतिबिरोधरत सब नर नारी
द्विज स्रुतिबंचक भूप प्रजासन * कोउनहिंमान निगमअनुसासन

चारों वर्णों और आश्रमों के धर्म नहीं रहते। सब स्त्री पुरुष वेद के विरोधी होते हैं। ब्राह्मण वेद से और राजा प्रजा से छल करते हैं। कोई वेद की आज्ञा नहीं मानता।

मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा * पंडित सो जो गाल बजावा
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई * ताकहँ सन्त कहैं सब कोई

जिसे जो अच्छा लगे, उसका वही पन्थ है। जो गाल बजावे, वही पण्डित है। जो झूठा पाखण्ड आरम्भ करके ढोंग रचकर उसी में लगा रहे, उसे सब साधु कहते हैं।

सोइ सयान जो परधनहारी * जो कर दम्भ सो बड़ आचारी
जो बहु झूठ मसखरी जाना * कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना

जो पराया धन हर ले, वही सयाना है। जो पाखण्ड करे, वही बड़ा आचारी है। जो बहुत झूठ और दिल्लगी जाने, वही कलियुग में गुणवान् कहा जाता है।

निराचार जो स्रुतिपथ त्यागी * कलिजुग सोइ ज्ञानी बैरागी
जाके नख अरु जटा बिसाला * सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला

जो वेदमार्ग को छोड़ देता है, कोई आचार नहीं करता, वही कलियुग में ज्ञानी और वैरागी माना जाता है। जिसके बड़े-बड़े नाखून और जटाएँ हों, वही कलियुग का प्रसिद्ध तपस्वी है।


असुभ बेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जो खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्धनर, पूजित कलिजुग माहिं॥

जो अशुभ वेष बनाये और खोपड़ी आदि पहने भक्ष्य (खाने लायक) और अभक्ष्य (न खाने लायक) सभी कुछ खाते हैं, वे ही कलियुग में योगी और सिद्ध हैं, वे ही पूजे जाते हैं।


जे अपकारीचार, तिनकर गौरव मान्यता।
मन क्रम बचन लबार, तेइ बक्ता कलिकाल महँ॥

जो पराया अहित करते हैं, उन्हीं का गौरव और मान होता है। मन, वचन, और कर्म से अन्याय करनेवाले ही कलियुग के कथक्कड़ हैं।

नारिबिबस नर सकल गोसाईं * नाचहिं नटमर्कट की नाईं
सूद्र द्विजन उपदेसहिं ज्ञाना * मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना

हे स्वामी, नट के अधीन बन्दर की तरह सब मनुष्य स्त्रियों के वश होकर नाचते हैं। शूद्र ब्राह्मणों को ज्ञान सिखाते हैं और जनेऊ पहनकर बुरे दान लेते हैं।

सब नर कामलोभरत क्रोधी * देव बिप्र गुरु सन्त बिरोधी
गुनमन्दिर सुन्दर पति त्यागी * भजहिं नारि परपुरुष अभागी

सभी मनुष्य कामी, क्रोधी और लोभी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, गुरु, और साधुओं के विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ अपने गुणी सुन्दर पति को छोड़कर पराये पुरुष की सेवा करती हैं।

सौभागिनी बिभूषनहीना * बिधवन कर सिंगार नबीना
गुरु सिष अन्धबधिर के लेखा * एक न सुनै एक नहिं देखा

अहिवाती स्त्रियाँ तो बिना आभूषण के रहती हैं, परन्तु विधवाएँ नित्य नये सिंगार करती हैं। अन्धे-बहिरों की-सी कथा गुरु और शिष्य की है कि एक सुनता नहीं और दूसरा देखता नहीं।

हरै सिष्यधन सोक न हरई * सो गुरु घोरनरक महँ परई
मात पिता बालकन्ह बोलावहिं * उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं

जो गुरु शिष्य का धन ले लेता और उसका दुःख नहीं दूर करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखाते हैं, जिससे पेट भरै।


ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारन मोहबस, करहिं बिप्र गुरु घात॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान को छोड़ दूसरी बात ही नहीं कहते, परन्तु अज्ञानी इतने हैं कि एक कौड़ी के लिए गुरु या ब्राह्मण को भी मार डालते हैं।

बाद सूद्रकर द्विजनसन, हम तुमते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि दिखावहिं डाँटि॥

ब्राह्मणों को शूद्र आँखें दिखाकर डाँटते और उनसे विवाद करते हैं कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जाने वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, इसलिए हम भी ब्राह्मण हैं।

परतियलम्पट कपट सयाने * मोह द्रोह ममता लपटाने

तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर * देखा मैं चरित्र कलिजुग कर

पराई स्त्रियों से भोग करनेवाले, लंपट, छली, अज्ञानी, परद्रोही, ममता में आसक्त लोग ही सोऽहम् कहकर ज्ञानी बनते हैं। मैंने कलियुग का यह चरित्र देखा है।

आपु गये अरु आनहिं घालहिं * जो कोइ स्रुतिमारगप्रतिपालहिं
कल्प कल्प भरि इकइकनरका * परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका

आप तो गये-बीते हैं ही, पर जो वेदमार्ग पर चलता है, उसे भी नष्ट करते हैं। जो तर्क करके वेद में दोष लगाते हैं, वे एक-एक नरक में कल्प-कल्प भर पड़ते हैं।

जो बर्नाधम तेलि कुम्हारा * स्वपच किरात कोल कलवारा
नारि मुई गृह सम्पति नासी * मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी

जो चारों वर्णों में नीच तेली, कुम्हार, डोम, बहेलिया, कोलभिल्ल, कलवार आदि हैं, वे सब स्त्री के मरने और घर की सम्पदा का नाश होने पर मूड़ मुड़ाकर सन्यासी बाबा बन जाते हैं।

ते बिप्रनसन पाँव पुजावहिं * उभयलोक निजहाथ नसावहिं
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी * निराचार सठ बृषली-स्वामी

वे ब्राह्मणों से पैर पुजाते और अपने हाथ से यह लोक और परलोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, सन्ध्या आदि आचार न करनेवाले, शठ होते हैं और नटिनी आदि शूद्र स्त्रियों को घर में डाल लेते हैं।

सूद्र करहिं जप तप ब्रत दाना * बैठि बरासन कहहिं पुराना
सब नर कल्पित करहिं अचारा * जाइ न बरनि अनीति अपारा

शूद्र नाना भाँति के जप, तप, व्रत, आदि करते और व्यासगद्दी पर बैठकर पुराण बाँचते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचार करते हैं। ऐसा अपार अन्याय होता है कि कहा नहीं जाता।


भये बर्नसंकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज सोक बियोग॥

कलियुग में सब लोग अपनी-अपनी मर्यादा को तोड़कर वर्णसंकर (वर्णों की खिचड़ी) हो जाते हैं और पाप करते हैं। इससे भय, रोग, शोक, बिछोह आदि के कारण दुःख पाते हैं।

स्रुतिसम्मत हरिभक्तिपथ, संजुत बिरति बिबेक।
ते न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पन्थ अनेक॥

वेद की सम्मति के अनुसार ज्ञान और वैराग्य-सहित भगवान् के भक्तिमार्ग पर वे मोह के कारण नहीं चलते, किन्तु मनमाने बहुत से पंथ गढ़ डालते हैं।

छन्द

बहु धाम सँवारहिं जोगि जती * बिषया हरिलीन गई बिरती
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही * कलिकौतुक तात न जात कही

विषय-भोगों ने जिनका वैराग्य हर लिया है, ऐसे योगी और सन्यासी अच्छे खासे महल उठाते हैं। तपस्वी धनवान् और गृहस्थ गरीब देख पड़ते हैं। हे तात, कलियुग का तमासा कहा नहीं जाता।

कुलवन्ति निकारहिं नारि सती * गृह आनहिं चेरि निबेरिगती
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं * अबलानन दीख नहीं जबलौं

लोग कुलीन पतिव्रता स्त्री को निकाल देते और लौंडी को मनाकर घर ले आते हैं। पुत्र माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुख नहीं देखते।

ससुरारि पियारि लगी जबते * रिपुरूप कुटुम्ब भये तबते
नृप पापपरायन धर्म नहीं * करु दण्ड बिदण्ड प्रजा नितहीं

जब से ससुराल प्यारी लगी, तब से कुटुम्ब के लोग शत्रु हो गये। राजा पाप के वश हैं। धर्म नाम को नहीं। वे नित्य प्रजा को कर और अनुचित दण्ड आदि से दुःख दिया करते हैं।

धनवन्त कुलीन मलीन अपी * द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी
नहिं मान पुरानहिं बेदहिं जो * हरिसेवक सन्त सही कलि सो

धनवान कलंकी भी कुलीन कहलाता है। केवल जनेऊ से ब्राह्मण और नंगी देह से तपस्वी जाने जाते हैं। कलियुग में वही भगवान् का सच्चा सेवक और साधु है, जो वेद और पुराण को न माने।

कबिबृन्द उदार धुनी न सुनी * गुनदूषक ब्रात न कोपि गुनी
कलि बारहिंबार दुकाल परैं * बिन अन्न दुखी सब लोग मरैं

कवियों में उदारता का शब्द तक नहीं सुनाई देता। वे गुणों में भी दोष लगाते हैं, पर हैं टंठन गोपाल। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। बिना अन्न के सब लोग दुखी होते और मरते हैं।



सुनु खगेस कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड।
काम क्रोध लोभादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मण्ड॥

हे गरुड़, कलियुग में छल, कपट, हठ, दम्भ, वैर, पाखण्ड, काम क्रोध, लोभ, मद आदि अवगुण सारे ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाते हैं।

तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरसै धरनि पर, बये न जामहिं धान॥

सब लोग तामस धर्म करते हैं। उनके जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान सब तामसी ही होते हैं, सात्विक नहीं हैं। पृथ्वी पर जल नहीं बरसता और न बोये हुये धान जमते हैं।

छन्द

अबला कच भूषन भूरि छुधा * धनहीन दुखी ममता बहुधा
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता * मति थोरि कठोर न कोमलता

स्त्रियों के गहने केवल केश होते हैं। उनके भूख बहुत होती है। लोग धनहीन और दुखी होते हैं। मोह-ममता भी अपार होती है। वे मूढ़ धर्म में तो प्रीति नहीं करते, किन्तु सुख चाहते हैं। उनकी बुद्धि थोड़ी है। स्वभाव कठोर है, कोमलता है ही नहीं।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं * अभिमान विरोध अकारनहीं
लघुजीवन संबत पंचदसा * कल्पांत न नास गुमान असा

मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं। भोग कहीं नहीं है। अभिमान भरा है। विना कारण ही विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्षों का तो जीवन है, पर समझते ऐसा हैं, मानो कल्पान्त में भी उनका नाश न होगा।

कलिकाल बिहाल किये मनुजा * नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा
नहिं तोष बिचार न सीतलता * सब जाति कुजाति भये मँगता

कलियुग ने मनुष्यों को बिहाल कर दिया, सारा विवेक हर लिया। कोई बहन-बेटी नहीं मानता। सन्तोष, विचार और शान्ति जाती रही। सब जाति और कुजाति मँगता बन बैठे।

इरषा परुषा छल लोलुपता * भरि पूरि रही समता बिगता
सब लोग बियोग बिसोक हये * बरनाश्रमधर्म अचार गये

सब ईर्ष्या, कठोरता, छल और लालच से भरपूर हैं। समता जाती रही। सब वियोग से दुखी हैं। वर्णों और आश्रमों के धर्म और आचार जाते रहे।

दम दान दया नहिं जानपुनी * जड़ता परपंचकताध सुनी
तनपोषक नारि नरा सगरे * परनिन्दक जो जगमें बगरे

इन्द्रियों का दमन, पुण्य, दान और दया जानते ही नहीं। जड़ता और पापों का ही प्रपंच सुनाई देता है। सब स्त्री-पुरुष केवल अपनी देह को पालते हैं और संसार में पराई निन्दा करनेवाले ही फैले हैं।



सुनु ब्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार।
गुनहु बहुत कलिकाल कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥

हे गरुड़, यद्यपि भयंकर कलियुग पापों और अवगुणों का घर है, तो भी उसमें यह एक गुण भी बहुत बड़ा है कि बिना परिश्रम के मुक्ति हो जाती है।

कृतजुग त्रेता द्वापरहु, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि हि हरि, नाम ते पावहिं लोग॥

सत्ययुग में योग, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा करने से जो गति होती है, उसी को लोग कलियुग में भगवान् का नाम लेने से ही पा जाते हैं।

कृतजुग सब जोगी बिज्ञानी * करि हरि-ध्यान तरहिं भव प्रानी
त्रेता विविध जज्ञ नर करहीं * प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं

सत्ययुग में सब मनुष्य योगी और आत्मज्ञानी होते हैं, इससे भगवान् का ध्यान करके संसार को तर जाते हैं। त्रेता में मनुष्य यज्ञ करते और कर्मों का फल भगवान् को सौंपकर संसार के पार होते हैं।

द्वापर करि रघुपति-पद-पूजा * नर भव तरहिं उपाय न दूजा
कलि केवल हरिगुन गन गाहा * गावत नर पावहिं भव थाहा

द्वापर में मनुष्य रघुनाथ के चरणों की पूजा करके संसार तरते हैं, दूसरा उपाय नहीं; पर कलियुग में केवल भगवान् के गुणों का सहारा है। मनुष्य हरि के गुण गाकर ही संसार की थाह पा जाते हैं।

कलिजुग जोग जज्ञ नहिं ज्ञाना * एक अधार रामगुनगाना
सब भरोस तजि जो भजु रामहिं * प्रेम समेत गाव गुन-ग्रामहिं

कलियुग में योग, यज्ञ और ज्ञान नहीं है, रामजी के गुणों का गान ही एक आधार है। जो सब भरोसा छोड़कर रामजी को भजता और प्रेम के साथ उनके गुण गाता है,

सो भव तरु कछु संसय नाहीं * नाम प्रताप प्रगट कलिमाहीं
कलिकर एक पुनीत प्रतापा * मानस पुन्य होय नहिं पापा

वह संसार को तर जाता है, इसमें सन्देह नहीं। नाम का प्रताप कलियुग में प्रकट है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप यह भी है कि मानस पुण्य तो होता है, परन्तु मानस पाप नहीं होता।



कलिजुगसम जुग आन नहिं, जो नर करि बिस्वास।
गाइ रामगुनगन बिमल, भव तरु बिनहिं प्रयास॥

इसलिए कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है। जो मनुष्य विश्वास के साथ निर्मल राम के गुण गाता है, वह बिना श्रम के संसार को तर जाता है।

प्रगट चारिपद धर्म के, कलिमहँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्हेहु, दान करै कल्यान॥

कलियुग में धर्म के चार चरणों (तप, ज्ञान, यज्ञ, दान) में से एक ही मुख्य है; चाहे जैसे हो, 'दान' देने से कल्याण होता है।

नित जुगधर्म होहिं सब केरे * हृदय राममाया के प्रेरे
सुद्धसत्त्व समता बिज्ञाना * कृतप्रभाव प्रसन्नमन जाना

रामजी की माया की प्रेरणा से सबके हृदयों में युगों के धर्म नित्य होते हैं। जब मन शुद्ध, सतोगुणी, समदर्शी, आत्मज्ञान से युक्त और प्रसन्न हो, तभी सत्ययुग का प्रभाव जानो।

सत्त्व बहुत कछु रज रतिकर्मा * सबबिधि सुख त्रेताकर धर्मा
बहुरजस्वल्पसत्त्व कछु तामस * द्वापर हर्ष शोक भय मानस

सतोगुण अधिक और रजोगुण कुछ हो, कर्म करने की रुचि और सब तरह से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। जिसमें रजोगुण अधिक और सतोगुण व तमोगुण कुछ-कुछ होते हैं, जब हर्ष, शोक और भय मन में होते हैं, उसे द्वापर जानो।

तामस बहुत रजोगुन थोरा * कलिप्रभाव बिरोध चहुँ ओरा
बुध जुगधर्म जानि मनमाहीं * तजि अधर्म रति धर्म कराहीं

जब सतोगुण बहुत और रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर विरोध फैला हो, तब कलियुग का प्रभाव समझो। बुद्धिमान् लोग मन में युग का धर्म जानकर अधर्म से प्रीति छोड़ धर्म ही करते हैं।

काल धर्म नहिं ब्यापहि ताही * रघुपतिचरनप्रीति अति जाही
नटकृत कपट बिकट खगराया * नटसेवकहिं न ब्यापै माया

हे गरुड़, रघुनाथ के चरणों में जिसकी बड़ी प्रीति है, उस पर वैसे ही युग के धर्मों का प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे नट की माया द्वारा किया हुआ भयंकर छल व कपट उसके सेवकों पर असर नहीं करता।



हरिमायाकृत दोषगुन, बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजियरामसबकामतजि, अस बिचारि मनमाहिं॥

भगवान् की माया के रचे दोष और गुण बिना हरि के भजन नहीं जाते, यह विचार कर सब कामनाएँ छोड़ो और मन में रामजी को भजो।

तेहि कलिकाल बर्ष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपत्तिबस, तब मैं गयउँ बिदेस॥

हे गरुड़, उसी कलि में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। फिर अकाल पड़ा तो विपत्तिवश परदेश चला गया।

गयउँ उजैन सुनहु उरगारी * दीन मलीन दरिद्र दुखारी
गये काल कछु सम्पति पाई * तहँ पुनि करौं सम्भु सेवकाई

हे गरुड़, दरिद्रता से दुखी, दीन और मलिन मैं उज्जैन को गया। कुछ समय बीतने पर कुछ धन मेरे हाथ लगा और मैं वहीं शिवजी की सेवा करने लगा।

बिप्र एक बैदिक सिवपूजा * करै सदा तेहि काज न दूजा
परमसाधु परमारथबिन्दक * सम्भुउपासक नहिं हरिनिन्दक

वहाँ एक ब्राह्मण वेद की विधि से शिवजी की पूजा किया करता था। उसे कोई दूसरा काम नहीं था। वह बड़ा साधु, आत्मज्ञानी और शिवजी का उपासक था। पर भगवान् विष्णु की भी निन्दा नहीं करता था।

तेहि सेवौं मैं कपट समेता * द्विज दयालु अतिनीतिनिकेता
बाहिर नम्र देखि मोहिं साईं * बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं

मैं तो छल से उसकी सेवा करता था; परन्तु वह दयालु, और नीति का घर ही था। हे स्वामी, ऊपर से नम्र देख, ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति पढ़ाता था।

सम्भुमन्त्र मोहिं द्विजबर दीन्हा * सुभउपदेसबिबिधबिधि कीन्हा
जपौं मन्त्र सिवमन्दिर जाई * हृदयदम्भ अहमिति अधिकाई

उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने मुझे शिवजी का मन्त्र बतलाया और भाँति-भाँति की अच्छी शिक्षाएँ दीं। मैं शिवजी के मन्दिर में जाकर मन्त्र जपता था; परन्तु मेरे मन में कपट और अहंकार बहुत था।


मैं खल मलसंकुलमति, नीचजाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखे जरौं, करौं बिष्णु कर द्रोह॥

मैं नीच जाति का तो था ही, अज्ञान के कारण दुष्ट और पापी भी था। भगवान् के भक्त ब्राह्मणों को देखकर जलता था और श्रीविष्णु से वैर करता था।


गुरु नित मोहिं प्रबोध, देखि देखि आचरन मम।
मोहिं उपजै अतिक्रोध, दम्भिहि नीति कि भावई॥

मेरे चालचलन देख गुरु मुझे नित्य समझाते थे, परन्तु उससे मुझे क्रोध ही होता था, क्योंकि घमंडी पाखण्डी को कहीं नीति अच्छी लगती है?

एक बार गुरु लीन्ह बुलाई * मोहिं नीति बहुभाँति सिखाई
सिव सेवाकर फल सुत सोई * अबिरलभक्ति रामपद होई

एक बार गुरु ने मुझे बुलाकर बहुत नीति सिखाई कि हे पुत्र, शिवजी की सेवा का फल यही है कि रामजी के चरणों में गहरी अटल भक्ति हो।

रामहिं भजहिं तात सिव धाता * नर पामर कै केतिक बाता
जासुचरन अजसिवअनुरागी * तासु द्रोह सुख चहसिअभागी

हे तात, मनुष्य की तो बात ही क्या, रामजी को शिव और ब्रह्मा भी भजते हैं। अरे अभागे, जिसके चरणों के प्रेमी ब्रह्मा और शिव हैं, उससे द्रोह करके तू सुख चाहता है?

हरकहँ हरिसेवक गुरु कहेऊ * सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ
अधमजाति मैं बिद्या पाये * भयउँ जथा अहि दूध पियाये

हे गरुड़, गुरु ने शिवजी को राम का सेवक कहा, यह सुनते ही मेरा हृदय जल गया। मैं नीच जातिवाला तो था ही, विद्या पाकर वैसा ही हो गया, जैसे दूध पिलाने से साँप।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती * गुरु सन द्रोह करौं दिन राती
अतिदयालुगुरुस्वल्प न क्रोधा * पुनि पुनि मोहिं सिखाव सुबोधा

मैं अभिमानी, कुटिल, अभागा दिन-रात गुरु से वैर करता था। गुरु तो बड़े दयालु थे, उन्हें कुछ भी क्रोध न होता, किन्तु वह बार-बार मुझे ज्ञान सिखाते थे।

जेहिते नीच बड़ाई पावा * सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा
धूम अनलसम्भव सुनु भाई * तेहि बुझाव घनपदवी पाई

नीच जिससे बड़ाई पाते हैं, उसी को पहले हठ करके नष्ट कर देते हैं। भाई, धुआँ अग्नि से उत्पन्न होता है और बादल बनकर उसी अग्नि को बुझाता है।

रज मग परी निरादर रहई * सबकर पदप्रहार नित सहई
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई * पुनि नृप नयन किरीटन परई

धूल राह में बिना आदर पड़ी रहती और नित्य सबके पैरों की चोटें सहती है। पर जब वायु ऊपर ले जाती है, तब वह पहले उसी को लिपटती है और फिर राजा के मुकुट और नेत्रों में गिरती है।

सुनुखगपतिअससमुझि प्रसंगा * बुध नहिंकरहिं अधमकर संगा
कबि कोबिद गावहिं अस नीती * खलसनकलहनहीं भल प्रीती

सुनो गरुड़, ऐसा समझकर बुद्धिमान् लोग नीच का संग नहीं करते। कवि और पण्डित ऐसा न्याय कहते हैं कि दुष्टों से झगड़ा या प्रीति, कुछ भी अच्छा नहीं होता।

उदासीन बरु रहिय गोसाईं * खल परिहरिय स्वान की नाईं
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई * गुरुहित कहहिं न मोहिं सोहाई

इससे हे स्वामी, चाहे सबसे अलग रहना पड़े, परन्तु दुष्टों को कुत्ते की भाँति अवश्य छोड़ दे। गुरु तो मुझे हृदय के कपटी दुष्ट की भलाई के लिए कहते और मुझे अच्छा न लगता।



एक बार हरमन्दिर, जपत रहेउँ सिवनाम।
गुरु आये अभिमान ते, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥

एक बार शिव के मन्दिर में बैठा मैं 'शिव' का नाम जप रहा था, इतने में गुरुजी आ गये। परन्तु मैंने अभिमान के कारण उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया।

सो दयाल नहिं कह्यो कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुरुअपमानता, सहि नहिं सके महेस ॥

गुरु तो दयालु थे, उनके हृदय में कुछ भी क्रोध न हुआ, उन्होंने कुछ न कहा, परन्तु गुरु के निरादररूप मेरे बड़े पाप को शिवजी न सह सके।

मन्दिर माँझ भई नभबानी * रे हतभाग्य अधम अभिमानी
जद्यपि तुव गुरु स्वल्प न क्रोधा * अतिकृपालु चितसम्यक्बोधा

उस समय मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि अरे अभागे, नीच, अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को थोड़ा भी क्रोध नहीं है; क्योंकि वे बड़े दयालु और पूरे ज्ञानी हैं,

तदपि साप देहौं सठ तोहीं * नीतिबिरोध सोहाइ न मोहीं
जो नहिं करौं दण्ड खल तोरा * भ्रष्ट होइ स्रुतिमारग मोरा

तो भी अरे शठ, मैं तुझे शाप दूँगा; क्योंकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। रे दुष्ट! यदि तुझे दण्ड न दूँगा तो मेरा वेदमार्ग भ्रष्ट हो जावेगा।

जे सठ गुरुसन ईर्षा करहीं * रौरवनरक कल्पसत परहीं
त्रियगजोनि पुनि धरहिं सरीरा * अयुत जन्मभरि पावहिं पीरा

जो मूर्ख गुरु से वैर करते हैं, वे सैकड़ों कल्पों तक 'रौरव' नरक में पड़ते हैं। फिर दस हजार जन्मों तक कीड़ों-पतिंगों आदि की नीच योनियों में जन्म लेकर क्लेश पाते हैं।

बैठ रहेसि अजगर इव पापी * सर्प होहु खलमलमति व्यापी
महाबिटप कोटर महँ जाई * रहुरे अधम अधोगति पाई

अरे पापी, दुष्ट, तेरी बुद्धि बहुत मलिन हो गई है। तू गुरु को देखकर भी अजगर की भाँति बैठा रहा, इससे सर्प ही हो जा। अरे अधम, एक बड़े वृक्ष के खोखले में नीच गति पाकर सर्प होकर रह।



हाहाकार कीन्ह गुरु, सुनि दारुन सिवसाप।
कंपितमोहिंबिलोकिअति, उर उपजा परिताप ॥

शिवजी का यह कठिन शाप सुनकर गुरु ने 'हा! हा!' कहा और मुझे भय से काँपता देख बड़े दुखी हुए।

करि दण्डवत सप्रेम गुरु, सिव सनमुख कर जोरि।
बिनय करत गद्गद गिरा, समुझि घोर गति मोरि ॥

मेरी भयंकर गति समझकर गुरु ने शिवजी के आगे प्रेम के साथ दण्डवत् किया और हाथ जोड़ गद्गद वाणी से विनती करने लगे—

छन्द

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं * विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं * चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥

हे ईशान, हे ईश, मोक्षस्वरूप, समर्थ, व्यापक, ब्रह्म, वेदस्वरूप, ईश्वर, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। आप जन्मरहित, निर्गुण, निर्विकल्प, चेष्टाहीन, चिदाकाश और आकाशवासी हैं। मैं आपको भजता हूँ।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं * गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशं ।
करालं महाकालकालं कृपालुं * गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥

आप निराकार हैं। 'ॐ' कार आपका मूल है। आप तुरीय तत्त्व हैं। आप वाणी और ज्ञानेन्द्रियों से परे, ईश, गिरीश, भयानक, काल के भी काल, कृपालु, गुणधाम, संसार से परे हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरं * मनोभूतकोटिप्रभा श्रीशरीरं ।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगंगा * लसद्भालबालेन्दुकंठेभुजंगा ॥

आप हिमवान्-सरीखे गौरशरीर, गम्भीर, करोड़ों कामदेवों के तेज से युक्त शरीरवाले हैं। आपके मस्तक पर तरल तरंगोंवाली गंगाजी विराजमान हैं। आपके मस्तक पर द्वितीया के चन्द्रमा की कला और कण्ठ में सर्प सोहते हैं,

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं * प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुं ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं * शिवं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥

हिलते हुए कुण्डलों और उज्ज्वल बड़े नेत्रोंवाले, प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ, कृपालु, बाघ की खाल ओढ़े, मुण्डमाल पहने, सबके स्वामी शिव को मैं भजता हूँ।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं * अखण्डंअजंभानुकोटिप्रकाशं ।
त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं * भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥

कठिन, अच्छे, तेजस्वी, बुद्धिदायक, ईश्वर, पूर्ण, जन्मरहित, करोड़ों सूर्यों के से प्रकाशवाले, तीनों तापों की जड़ उखाड़नेवाले, हाथ में शूल लिये, भक्ति से मिलने योग्य, पार्वतीपति को मैं भजता हूँ।

कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी * सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी
चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी * प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी

हे कला आदि समयविभागों से परे, कल्याणरूप, प्रलय करनेवाले, सदा सज्जनों को आनन्द देनेवाले, त्रिपुरारि, चिदानन्द की खान, अज्ञान के नाशक, कामदेव के शत्रु, स्वामी, मुझ पर प्रसन्न हूजिए।

न यावत् उमानाथपादारविंदम् * भजन्तीह लोके परे वा नराणाम्
न तावत्सुखंशान्तिसंतापनासम् * प्रसीद प्रभो सर्वभताधिवासम्

हे पार्वतीनाथ, जब तक आपके चरणारविन्दों को नहीं भजते तब तक मनुष्यों को इस लोक या परलोक में सन्ताप का नाश और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। हे सब प्राणियों में रहनेवाले, प्रभु मुझ पर प्रसन्न हूजिए।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां * नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानं * प्रभो पाहि शापान्नमामीश शंभो

हे शम्भु, मैं योग, जप, पूजा आदि नहीं जानता, केवल सदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे ईश, शंकर, बुढ़ापे और जन्म के दुःखों से तपे मुझ शरणागत की शाप से रक्षा कीजिए।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हर तुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

शिव की प्रसन्नता के लिए मेरे गुरु ब्राह्मण का कहा यह रुद्राष्टक जो भक्ति से पढ़ते हैं उन पर शिवजी प्रसन्न होते हैं।



सुनि बिनती सर्बज्ञ सिव, देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मन्दिर नभबानि भइ, हे द्विजबर बर माँगु॥

सब कुछ जाननेवाले शिवजी ने ब्राह्मण की प्रीति देख और विनती सुनकर कहा—मन्दिर में आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मण, वरदान माँगो।

जो प्रसन्न प्रभु मोहिं पर, नाथ दीनपर नेहु।
निज पदभक्ति देहु प्रभु, पुनि दूसर बर देहु॥

ब्राह्मण ने कहा—हे स्वामी, जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न और दीनों पर स्नेह करते हैं तो हे नाथ, हे प्रभु, अपने चरणों की भक्ति दीजिए। दूसरा बरदान यह दीजिए—

तव मायाबस जीव जड़, संतत फिरै भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिन्धु भगवान॥

कि हे स्वामी, कृपासिन्धु, भगवान्, आपकी माया के वश होने से यह जड़ जीव सदा भूला फिरता है, इसलिए इस पर क्रोध न करिए।

संकर दीनदयाल अब, यहिपर होहु कृपाल।
सापानुग्रह होय जेहि, नाथ थोरही काल॥

हे शंकर, दीनदयालु, नाथ, इस पर कृपा कीजिए, जिससे थोड़े ही समय में इसको शाप से छुटकारा मिल जाय।

यहिकर होइ परम कल्याना * सोइ करहु अब कृपानिधाना
बिप्रगिरा सुनि परहितसानी * एवमस्तु इति भइ नभ बानी

हे कृपानिधान, अब वही कीजिए, जिससे इसका कल्याण हो। परोपकार से भरी ब्राह्मण की यह वाणी सुन आकाशवाणी हुई कि ऐसा ही होगा।

जदपि कीन्ह यहि दारुनपापा * मैं पुनि दीन्ह क्रोधकरि सापा
तदपि तुम्हारि साधुता देखी * करिहौं यहिपर कृपा बिसेखी

यद्यपि इसने बहुत कठिन पाप किया था और मैंने क्रोध करके इसे शाप दिया, तो भी तुम्हारी साधुता देख मैं इस पर कृपा करूँगा।

छमासील जे परउपकारी * ते द्विज प्रिय मोहिं जथा खरारी
मोर साप द्विज व्यर्थ न जाइहि * जन्मसहस्र अवसि यह पाइहि

हे ब्राह्मण, क्षमा करना जिनका स्वभाव है, और जो परोपकार करते हैं, वे रामजी की भाँति मुझे प्यारे हैं। हे ब्राह्मण, परन्तु मेरा शाप वृथा नहीं जा सकता, इससे इसके हजार जन्म अवश्य होंगे।

जन्मत मरत दुसह दुख होई * यहिकहँ स्वल्प न व्यापिहि सोई
कवनेहु जन्म मिटै नहिं ज्ञाना * सुनहु सूद्र मम बचन प्रमाना

जन्म लेने और मरने में न सहे जाने योग्य दुःख होते हैं, परन्तु वे कुछ भी इसे न व्यापेंगे। हे शूद्र, किसी जन्म में तेरा ज्ञान नहीं मिटेगा, यह मेरा कहना सत्य है।

रघुपतिपुरी जन्म तव भयऊ * पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे * रामभक्ति उपजिहि उर तोरे

एक तो रघुनाथ की पुरी में तेरा जन्म हुआ और दूसरे तूने मेरी सेवा में मन लगाया, इससे पुरी के प्रभाव और मेरी कृपा के कारण तेरे हृदय में रामजी की भक्ति उपजेगी।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई * हरितोषनब्रत द्विजसेवकाई
अबजनिकरेसि बिप्र अपमाना * जानेसि सन्त अनन्त समाना

भाई, यह मेरा सच्चा वचन सुनकर ब्राह्मण की सेवा करना। भगवान् को प्रसन्न करने का व्रत यही है। अब ब्राह्मण का अपमान न करना। साधु को भगवान् ही के समान जानना।

इन्द्रकुलिस मम सूलबिसाला * कालदण्ड हरिचक्र कराला
जो इन कर मारा नहिं मरई * बिप्रद्रोह पावक सो जरई

जो प्राणी इन्द्र के वज्र, मेरे त्रिशूल, यमराज के दण्ड और श्रीविष्णु के भयंकर सुदर्शन चक्र के मारे नहीं मरता, वह भी ब्राह्मण के वैर की आग में जल जाता है—

अस बिबेक राखेहु मन माहीं * तुम कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं
औरौ एक आसिषा मोरी * अव्याहतगति होइहि तोरी

ऐसा ज्ञान मन में रखना, तुमको संसार में कुछ भी दुर्लभ न होगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तुम्हारी गति कहीं नहीं रुकेगी—तुम सब लोकों में जा सकोगे।



सुनि सिववचन सप्रेम गुरु, एवमस्तु इति भाखि।
मोहिं प्रबोधि गयो गृह, सम्भुचरन उर राखि॥

प्रेम-सहित शिवजी के वचन सुन 'ऐसा ही हो' कहकर गुरु ने मुझे समझाया और शिवजी के चरण हृदय में रखकर घर चले गये।



प्रेरित काल सुबिन्ध्यगिरि, जाइ भयों मैं ब्याल।
पुनि प्रयास बिन सो तन, तजेउँ गये कछुकाल॥

समय पाकर मैं विन्ध्याचल में सर्प हुआ। फिर कुछ समय बीते वह देह बिना किसी कष्ट के छोड़ दी।

जो तन धरौं तजौं पुनि, अनायास हरियान।
जिमि नूतन पट पहिरिकै, नर परिहरै पुरान॥

हे गरुड़, मैं जो देह पाता था, उसे अनायास छोड़ देता था, जैसे मनुष्य नया पहनकर पुराना वस्त्र छोड़ देता है।

सिव राखेउ स्रुतिनीति अरु, मैं नहिं पाव कलेस।
यहि बिधि धरेउँ बिबिधतन, ज्ञान न गयो खगेस॥

हे गरुड़, शिवजी ने वेद की बात रक्खी; मैंने भी क्लेश नहीं पाया—बहुत शरीर धारण किये, पर ज्ञान नहीं मिटा।

त्रिजगजोनि नर जो तन धरेऊँ * तहँ-तहँ राम भजन अनुसरेऊँ
एक सूल मोहिं बिसर न काऊ * गुरुकर कोमल सीलसुभाऊ

पशु-पक्षी आदि की या मनुष्य की जो देह धरी, उसमें रामजी का भजन अवश्य किया। मुझे एक शूल कभी नहीं भूला खटकता ही रहा—वह था गुरु का कोमल शील स्वभाव।

चरमदेह द्विजकर मैं पाई * सुरदुर्लभ पुरान स्रुति गाई
खेलौं तहाँ बालकन मीला * करौं सकल रघुनायक लीला

अन्त में मैंने ब्राह्मण की देह पाई, जिसे वेद और पुराण देवताओं के लिए भी दुर्लभ कहते हैं। वहाँ बालकों के साथ खेल में भी रघुनाथ की लीलाएँ ही करता था।

प्रौढ़ भये मोहिं पिता पढ़ावा * समुझौं सुनौं गुनौं नहिं भावा
मनते सकल बासना भागी * केवल रामचरनलय लागी

बड़े होने पर मुझे पिता ने पढ़ाया, परन्तु सुनने, समझने और विचार करने से वह कुछ भी मुझे अच्छा न लगा। पूर्वजन्म की सब वासना जाती रही; केवल रामजी के चरणों में लौ लग गई।

कहु खगेस अस कौन अभागी * खरी सेव सुरधेनुहिं त्यागी
प्रेममगन मोहिं कछु न सोहाई * हारेउ पिता पढ़ाइ-पढ़ाई

हे गरुड़, कहो, ऐसा कौन अभागा है, जो कामधेनु को छोड़ गधी की सेवा करे? प्रेम मग्न होने के कारण मुझे कुछ न अच्छा लगता। पिताजी पढ़ा-पढ़ाकर हार गये।

भये कालबस जब पितु माता * मैं बन गयौं भजन जनत्राता
जहँ जहँ बिपिन मुनीसुर पावौं * आस्रम जाइ-जाइ सिर नावौं

जब माता-पिता मर गये, तब मैं भगवान् का भजन करने के लिए वन चला गया। जहाँ जहाँ मुनीश्वरों को पाता, उनके आश्रमों में जा-जाकर प्रणाम करता था।

बूझौं तिनहिं रामगुन-गाहा * कहौं सुनौं हर्षित खगनाहा
सुनत फिरौं हरिगुन-अनुवादा * अव्याहतगति सम्भु प्रसादा

फिर हे गरुड़, उनसे रामजी के गुणों की गाथा पूछता और प्रसन्नतापूर्वक रामचरित कहता-सुनता था। शिवजी की प्रसन्नता से बे-रोकटोक सब कहीं जाता और भगवान् की गुणगाथा सुनता फिरता था।

छूटी त्रिबिध एषना गाढ़ी * एक लालसा उर अति बाढ़ी
रामचरनपंकज जब देखौं * तब निज जन्म सफल करि लेखौं

तीनों प्रकार की गहरी इच्छाएँ (पुत्र, धन, यश की) छूट गईं। मन में केवल एक या लालसा बहुत बढ़ी कि जब रामजी के चरणारविन्द देखता तो अपना जन्म सफल गिनता

जेहि पूछौं सो मुनि अस कहई * ईस्वर सर्बभूतमय अहः
निर्गुनमत नहिं मोहिं सोहाई * सगुन ब्रह्म रति उर अधिका

जिससे पूछता, वही मुनि कहता था कि ईश्वर सब प्राणियों में व्याप्त है। परन्तु निर्गुण मत मुझे न अच्छा लगता; क्योंकि मुझे तो सगुण ब्रह्म पर प्रीति थी।



गुरु के बचन सुरति करि, रामचरन मन लाग।
रघुपतिजस गावत फिरौं, छन छन नव अनुराग॥

गुरु के वचन याद आते ही रामजी के चरणों में मन लग गया। क्षण-क्षण नये प्रेम से रघुनाथ का यश गाता फिरता था।

मेरुसिखर बटछाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरनायउँ, बचन कहेउँ अति दीन॥

एक दिन सुमेरु की चोटी पर, बरगद की छाया में, बैठे हुए लोमश मुनि को देख मैंने उनके चरणों में सिर नवाया और बड़ी दीनता के साथ बोला।

सुनि मम बचन बिनीतमृदु, मुनि कृपाल खगराज।
मोहिं सादर पूछत भयो, द्विज आयो केहि काज॥

हे गरुड़, मेरे नम्र और कोमल वचन सुन कृपालु लोमश मुनि ने आदरसहित पूछा—हे ब्राह्मण! किस काम के लिए आये हो?

तब मैं कहेउँ कृपानिधि, तुम सर्बज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्मआराधना, मोहिं कहहु भगवान॥

तब मैंने कहा—हे कृपानिधि, सर्वज्ञ, सुन्दर, ज्ञानरूप, भगवन्, मुझे सगुण ब्रह्म की पूजा बतलाइए।

तब मुनीस रघुपति गुनगाथा * कहेउ कछुक सादर खगनाथा
ब्रह्मज्ञानरत मुनि बिज्ञानी * मोहिं परमअधिकारी जानी

हे गरुड़, तब मुनीश्वर ने आदर सहित रघुनाथ के कुछ गुणानुवाद कहे। मुझे बड़ा अधिकारी जान ब्रह्मज्ञान में प्रेम करनेवाले आत्मज्ञानी मुनि इस प्रकार—

लागे करन ब्रह्म उपदेसा * अज अद्वैत अगुन हृदयेसा
अकल अनीह अनाम अरूपा * अनुभवगम्य अखण्ड अनूपा

ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि जन्मरहित, अद्वैत, निर्गुण, सबके हृदयों का स्वामी, कलारहित, चेष्टाहीन, नाम व रूप से रहित, अनुपम, अखण्ड, अनुभव से जानने योग्य,

मनगोतीत अमल अबिनासी * निर्बिकार निरवधि सुखरासी
सो तैं तोहिं ताहि नहिं भेदा * बारि बीचि इव गावहिं बेदा

मन और इन्द्रियों से परे, अज्ञानरूप मल से रहित, अविनाशी, छहों विकारों से रहित, अवधि से परे, सुखराशि ब्रह्म तू है। तुझमें उसमें कोई भेद नहीं, जैसे जल और तरङ्गों में। यह वेद कहते हैं।

बिबिधभाँतिमोहिंमुनिसमुझावा * निर्गुनमत मम हृदय न आवा
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा * सगुन उपासन कहहु मुनीसा

मुनि ने मुझे बहुत प्रकार समझाया; परन्तु मेरे हृदय में यह निर्गुण मत न आया। फिर मैंने चरणों में सीस नवाकर कहा—हे मुनीश्वर, अब सगुण ब्रह्म की उपासना कहिए।

रामभक्तिजल मम मन मीना * किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना
सोइ उपदेस करहु करि दाया * निज नयनन्ह देखौं रघुराया

हे चतुर मुनीश्वर, जलरूप रामजी की भक्ति से मेरा मन मीन (मछली) कैसे अलग हो? कृपा करके वही उपदेश कीजिए, जिससे मैं अपनी आँखों से रघुनाथजी को देखूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा * तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा
पुनि पुनि कहि मुनि कथा अनूपा * खंडि सगुनमत निगुन निरूपा

पहले अयोध्यानाथ को आँखों भरकर देख लूँ तब निर्गुण ब्रह्म का उपदेश सुनूँगा। मुनि ने बार-बार अच्छी-अच्छी कथाएँ कहकर सगुण मत का खण्डन किया और निर्गुण का निरूपण करते रहे।

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी * सगुन निरूपौं करि हठ भूरी
उत्तर प्रत्युत्तर मैं कीन्हा * मुनितन भये क्रोधकर चीन्हा

तब मैं निर्गुण मत को दूर करता और बहुत हठ करके सगुण मत ही ठीक कहता। जब मैंने उत्तर के उत्तर दिये, तब मुनि के हृदय में क्रोध के चिह्न दिखाई दिये।

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये * उपज क्रोध ज्ञानिहु के हिये।
अतिसय रगर करै जो कोई * अनल प्रगट चन्दन ते होई॥

हे स्वामी, बहुत अनादर करने से ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई बहुत रगड़े तो चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न होती है।


बारम्बार सकोप मुनि, करहिं निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं बिविध अनुमान॥

जब मुनि बार-बार क्रोध से ज्ञान का निरूपण करते तो मैं बैठा भाँति-भाँति की बातें सोचा करता।

क्रोध कि द्वैतक बुद्धिबिन, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायाबस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥

मैं अपने मन में सोचने लगा—क्या बिना द्वैत बुद्धि के क्रोध और क्या बिना अज्ञान के द्वैत बुद्धि होती है? माया के वश में पड़ा और उससे ढका हुआ जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?

कबहुँ कि दुखसबकर हित ताके * तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके
कामी पुनि कि रहै अकलंका * परद्रोही किमि होइ निसङ्का

सबकी भलाई ताकने से क्या दुःख होता है? जिसके पारसमणि हो, उसके भी क्या दरिद्रता रहती है? क्या कामी के कलंक लगे बिना रह सकता है? दूसरों का द्रोही निडर कैसे हो सकता है?

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे * कर्म कि होहिं सरूपहि चीन्हे
काहुहि सुमतिकिखलसँगजामी * सुभगति पाव कि परतियगामी

ब्राह्मण का अहित करने से क्या वंश बना रह सकता है? आत्मा को जान लेने से फिर क्या कर्म होते हैं? दुष्ट के संग से क्या कभी अच्छी बुद्धि हुई है? पराई स्त्री से भोग करनेवाला क्या कभी अच्छी गति पाता है?

भव कि परहिं परमारथबिन्दक * सुखी कि होहिं कबहुँ परनिन्दक
राज कि रहै नीति बिनु जाने * अघकि रहहिं हरिचरित बखाने

क्या ईश्वर के जाननेवाले संसार में पड़ सकते हैं? क्या पराई निन्दा करनेवाले सुखी रह सकते हैं? क्या बिना नीति जाने राज्य रह सकता है? क्या भगवान् के चरित्र कहने से पाप रह सकते हैं?

पावन जस कि पुन्य बिन होई * बिनु अघ अजस कि पावै कोई
लाभकि कछु हरिभक्ति समाना * जेहि गावहिं स्रुति सन्त पुराना

क्या बिना पुण्य के पवित्र यश हो सकता है ? क्या बिना पाप किये कोई अपयश पा सकता है ? जिन्हें वेद-पुराण और साधु गाते हैं, उन भगवान् की भक्ति के समान क्या कोई और लाभ है ?

हानि कि जग यहि सम कछु भाई * भजिय न रामहिं नरतन पाई
अघ कि बिना तामस कछु आना * धर्म कि दया सरिस हरियाना

भाई, संसार में क्या इसके बराबर कोई हानि है कि मनुष्य की देह पाकर भी रामजी को न भजे ? क्या बिना तमोगुण के पाप हो सकता है ? हे गरुड़, क्या दया के समान कोई दूसरा धर्म है ?

यहिबिधिअमितजुगुतिमनगुनेऊँ * मुनिउपदेस न सादर सुनेऊँ
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा * तब मुनि बोले बचन सकोपा

इसी प्रकार बहुत-सी युक्तियाँ मैंने मन में सोचीं और मुनि की शिक्षा आदर-सहित नहीं सुनी। मैंने बार-बार सगुण ब्रह्म का पक्ष लिया। तब मुनि क्रोधसहित बोले—

मूढ़ परमसिख देउँ न मानसि * उत्तर प्रत्युत्तर बहु आनसि
सत्य बचन बिस्वास न करही * बायस इव सबही सन डरही

अरे मूर्ख, मैं उत्तम शिक्षा देता हूँ और तू नहीं मानता ; उत्तर का भी उत्तर देता चला जाता है। सच्ची बात पर विश्वास नहीं करता, किन्तु कौए की भाँति सभी से डरता है सबसे शंका करता है।

सठ सपच्छ तव हृदय बिसाला * सपदि होहु पंच्छी चंडाला
लीन्ह साप मैं सीस चढ़ाई * नहिं कछु भय न दीनता आई

अरे शठ, तेरा हृदय पक्षपात से भरा है, इससे शीघ्र पक्षियों में चाण्डाल (कौआ) हो जा। मैंने वह शाप शीश पर लिया—न कुछ डरा और न दुखी हुआ।


तुरत भयों मैं काग तब, पुनि मुनिपद सिरनाय।
सुमिरि राम रघुबंसमनि, हर्षित चलेउँ उड़ाय॥

मैंने कौआ होकर मुनि के चरणों में सीस नवाया और रामजी का स्मरण कर प्रसन्न हो उड़ गया।

उमा जे रामचरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, जो रामजी के चरणों के प्रेमी हैं वे काम, क्रोध और अहंकार से रहित हैं ; सारे संसार को रामरूप देखते हैं। फिर वे वैर किससे करें ?

सुनु खगेस नहिं कछु रिषिदूषन * उरप्रेरक रघुबंस-बिभूषन
कृपासिन्धु मुनि मतिकरि भोरी * लीन्हीं प्रेमपरिच्छा मोरी

सुनो गरुड़, ऋषिका भी इसमें कुछ दोष नहीं, क्योंकि रघुनाथजी ने वैसी ही प्रेरणा उनको की थी। कृपा के सागर रामजी ने मुनि की बुद्धि में भुलावा देकर मेरे प्रेम की परीक्षा ली थी।

मन क्रम बचन मोहिं जनजाना * मुनि मति फिरि फेरी भगवाना
ऋषि मम सहनसीलता देखी * रामचरन बिस्वास बिसेखी

भगवान् ने मुझे मन, वचन और कर्म से अपना भक्त जान मुनि की बुद्धि फेर दी। ऋषि मेरा सहने का स्वभाव और अधिकतर रामजी के चरणों में विश्वास देख—

अति बिस्मयपुनिपुनिपछिताई * सादर मुनि मोहिं लीन्ह बुलाई
ममपरितोष बिबिधबिधि कीन्हा * हर्षित राममन्त्र तब दीन्हा

आश्चर्य से बार-बार पछताये और आदर-सहित मुझे बुलाया। फिर बहुत प्रकार से मुझे समझाया और प्रसन्न होकर रामजी का मन्त्र दिया।

बालकरूप राम करु ध्याना * कहेउ मोहिं मुनि कृपानिधाना
सुन्दर सुखद मोहिं अति भावा * जो प्रथमहिं मैं तुमहिं सुनावा

कृपानिधान मुनि ने मुझसे ध्यान करने के लिए रामजी का बालरूप वर्णन किया। यह मुझे सुन्दर, सुख देनेवाला और बहुत अच्छा लगा, जैसा कि पहले मैं तुम्हें सुना चुका हूँ।

मुनि मोहिं कछुककालतहँ राखा * रामचरितमानस तब भाखा
सादर यह मोहिं कथा सुनाई * पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई

मुनि ने मुझे वहाँ कुछ समय तक रक्खा और रामचरितमानस सुनाया। फिर मुनि आदर-सहित यह कथा सुनाकर सुहावनी वाणी बोले—

रामचरितसर गुप्त सुहावा * सम्भुप्रसाद तात मैं पावा
तोहिं निज भक्त रामकर जानी * ताते मैं सब कहेउँ बखानी

हे तात, मैंने यह सुहावना और गूढ़ रामचरितमानस शिवजी की प्रसन्नता से पाया है। तुम्हें रामजी का मुख्य भक्त जानकर सब वर्णन किया।

रामभगति जिनके उर नाहीं * कबहुँ न तात कहिय तिनपाहीं
मुनिमोहिं बिबिधभाँतिसमुझावा * मैं सप्रेम मुनिपद सिर नावा

हे तात, जिनके हृदय में रामजी की भक्ति न हो, उन्हें इसे कभी न सुनाना। मुनि ने मुझे बहुत प्रकार से समझाया तो मैंने प्रेमसहित मुनि के चरणों में प्रणाम किया।

निजकर कमल परसि ममसीसा * हर्षित आसिष दीन्ह मुनीसा
रामभगति अबिरल उर तोरे * बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे

तब मुनीश्वर ने अपना करकमल मेरे सिर पर रखकर, प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि अब मेरीकृपा से सदा तुम्हारे हृदय में रामजी की दृढ़ भक्ति रहा करेगी।



सदा राम प्रिय होब तुम सुभ गुनभवन अमान।
कामरूप इच्छामरन, ज्ञान-बिराग-निधान॥

तुम सदा रामजी को प्रिय, अच्छे गुणों की खान, अभिमानहीन तथा ज्ञान और वैराग्य के अधिकारी होगे। मनमाना रूप रखने और जब चाहो तभी मरने की शक्ति तुमको प्राप्त होगी।

जेहि आस्रम तुम बसहु पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या, जोजन इक पर्जन्त॥

जिस आश्रम में भगवान् का ध्यान करते हुए रहोगे, उसके एक योजन आसपास तक अज्ञान नहीं रहेगा।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ * कछु दुख तुमहिं न ब्यापिहि काऊ
रामरहस्य ललित बिधि नाना * गुप्त प्रगट इतिहास पुराना

समय, कर्म और स्वभाव के गुण-दोष तुम्हें न व्यापेंगे और किसी दुःख का तुम पर प्रभाव न पड़ेगा। इतिहास, पुराण, भाँति-भाँति के ललित रामचरित्र, चाहे प्रकट हों, चाहे छिपे,

बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ * नित नव नेह रामपद होऊ
जो इच्छा करिहहु मनमाहीं * हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं

सब विना परिश्रम जान लोगे। रामजी के चरणों में नित्य नया स्नेह होगा। मन में जो इच्छा करोगे, वही पाओगे; भगवान् की प्रसन्नता से कुछ दुर्लभ न होगा।

सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा * ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा
एवमस्तु तव बच मुनि ज्ञानी * यह मम भक्त कर्म मन बानी

हे धीर बुद्धिवाले गरुड़, मुनि का आशीर्वाद सुन आकाश में यह गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—हे ज्ञानी मुनि, तुम्हारा वचन ऐसा ही हो। यह मन, वचन और कर्म से मेरा भक्त है।

सुनि नभ गिरा हर्ष मम भयऊ * प्रेममगन मन संसय गयऊ
करि बिनती मुनि आयसु पाई * पदसरोज पुनि पुनि सिर नाई

आकाशवाणी सुन मुझे सुख हुआ। मैं प्रेम में डूब गया। मेरे मन का सन्देह जाता रहा। मैंने विनती करके मुनि की आज्ञा ली और बार-बार उनके चरणारविन्दों में प्रणाम किया।

हर्षसहित यहि आस्रम आयउँ * प्रभुप्रसाद दुर्लभ बर पायउँ
इहाँ बसत मोहिं सुनु खगईसा * बीते कल्प सात अरु बीसा

भगवान् की कृपा से दुर्लभ वरदान पाकर मैं प्रसन्नतापूर्वक इस आश्रम में आया। हे गरुड़, यहाँ रहते मुझे सत्ताईस कल्प बीत चुके।

करौं सदा रघुपति गुनगाना * सादर सुनहिं बिहंग सुजाना

जब जब अवधपुरी रघुबीरा * धरहिं भक्तहित मनुजसरीरा

मैं सदा रघुनाथ के गुण गाया करता हूँ, जिन्हें चतुर ज्ञानी पक्षी आदर-सहित सुनते हैं। जब-जब भक्तों के लिए अयोध्यापुरी में रघुनाथजी मनुष्य की देह धारण करते हैं—

तब तब जाइ रामपुर रहऊँ * सिसुलीला बिलोकि सुखलहऊँ
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा * यहि आस्रम आवौं खगभूपा

तब-तब जाकर मैं रामजी की पुरी में रहता और उनकी बाललीला देख सुख पाता हूँ। फिर हे गरुड़, रामजी का बालस्वरूप हृदय में रखकर इसी आश्रम में चला आता हूँ।

कथा सकल मैं तुमहिं सुनाई * काग देह जेहि कारन पाई
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी * रामभगति महिमा अतिभारी

मैंने जिस कारण कौए की देह पाई, सो सब कथा आपको सुनाई। हे तात, मैंने आपका सब प्रश्न कहा (उत्तर दिया)। रामजी की भक्ति की महिमा बहुत ही अधिक है।



ताते यह तन मोहिं प्रिय, भयउ रामपद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ, गयउ सकल सन्देह॥

इसी शरीर में रामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह हुआ, स्वामी को देखा और सब सन्देह गया, इसलिए यह देह मुझे प्यारी है।

भगतिपच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महारिषि साप।
पुनि दुर्लभ बर पायउँ, देखहु भजन प्रताप॥

भजन का प्रताप तो देखो ; भक्ति-पक्ष के लिए मैं हठ करता रहा और महर्षि ने शाप भी दिया, परन्तु मुझे मुनियों को भी दुर्लभ वरदान मिला।

जे असि भगति जानि परिहरहीं * केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी * खोजत आक फिरहिं पय लागी

भक्ति को ऐसी जानकर भी जो उसे छोड़ देते हैं ; केवल ज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं, वे मूर्ख घर की कामधेनु छोड़ मानो दूध के लिए मदार का पेड़ ढूँढ़ते फिरते हैं।

सुनु खगेस हरिभगति बिहाई * जे सुख चाहहिं आन उपाई
ते जड़ महासिन्धु बिनु तरनी * पैरि पार चाहहिं जड़ करनी

हे गरुड़, जो भगवान् की भक्ति छोड़ दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं, वे जड़ मानो बिना नाव पैरकर महासमुद्र पार होना चाहते हैं।

सुनि भुसुण्डि के बचन भवानी * बोलेउ गरुड़ हरषि मृदुबानी
तुव प्रसाद प्रभु मम उरमाहीं * संसय सोक मोह भ्रम नाहीं

"शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, भुशुण्डि के वचन सुन गरुड़ प्रसन्न हुए और कोमल

वाणी से बोले—हे स्वामी, तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में अब सन्देह, दुःख, अज्ञान और भ्रम नहीं रहा।

सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा * तुम्हरी कृपा लहेउँ बिसरामा
एक बात प्रभु पूछौं तोहीं * कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं

तुम्हारी कृपा से रामजी के पवित्र गुणानुवाद सुने और शान्ति पाई। हे स्वामी, कृपा-निधान, मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, समझाकर कहिए।

कहहिं सन्त मुनि बेद पुराना * नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना
सोइमुनितुमसन कहेउ गोसाईं * नहिं आदरेउ भगति की नाईं

साधु, मुनि, वेद और पुराण कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ और कुछ नहीं है। हे स्वामी, वही मुनि ने भी आपसे कहा; परन्तु आपने उसका भक्ति के समान आदर नहीं किया।

ज्ञानहिं भक्तिहिं अन्तर केता * सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता
सुनि उरगारि बचन सुख माना * सादर बोलेउ काग सुजाना

तो हे स्वामी, कृपा के धाम, ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है? कहिए। गरुड़ के वचन सुन और सुख मानकर ज्ञानी भुशुण्डि आदर सहित बोले—

ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा * उभय हरहिं भवसंभव खेदा
नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर * सावधान होइ सुनु बिहङ्गवर

ज्ञान और भक्ति में कुछ भी भेद नहीं। ये दोनों संसार से उत्पन्न दुःख को हरते हैं। किन्तु हे पक्षियों में श्रेष्ठ नाथ, मुनि लोग कुछ अन्तर कहते हैं। वह भी सावधान होकर सुनिए।

ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना * ये सब पुरुष सुनहु हरियाना
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती * अबला अबल सहज जड़जाती

हे गरुड़, ज्ञान, वैराग्य, योग और आत्मज्ञान आदि पुरुष हैं। पुरुष का प्रताप सब प्रकार बलवान् है, और स्त्री सहज ही निर्बल और जड़ होती है।



पुरुष त्यागि सक नारि कहँ, जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी जो बिषयबस, बिमुख जे पद रघुबीर॥

जो पुरुष विरक्त और धीर हैं, वे ही स्त्री को छोड़ सकते हैं। विषयी, कामी और राम के चरणों से विमुख लोग नहीं छोड़ सकते।



सोइ मुनि ज्ञाननिधान, मृगनयनीबिधुमुखनिरखि।
बिकल होहिं हरियान, नारि बिस्वमाया प्रगट॥

हे गरुड़, वे ज्ञान के निधान मुनि भी हरिण की सी आँखों और चन्द्रमा के समान मुखवाली स्त्री को देख व्याकुल हो जाते हैं। स्त्री संसार में माया का रूप प्रकट है।

इहाँ न पच्छपात कछु राखौं * बेद पुरान सन्त मत भाखौं

मोह न नारि नारि के रूपा * पन्नगारि यह नीति अनूपा

यहाँ मैं कुछ भी पक्षपात नहीं रखता, किन्तु वेद, पुराण और साधुओं का मत कहता हूँ। स्त्री स्त्री के रूप से मोहित नहीं होती। हे गरुड़, यह उत्तम नीति है।

माया भगति सुनहु प्रभु दोऊ * नारिबर्ग जानै सब कोऊ
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी * माया खलु नर्तकी बिचारी

हे स्वामी, माया और भक्ति दोनों स्त्रियाँ हैं, यह सभी जानते हैं। परन्तु रघुनाथ को भक्ति ही प्रिय है। माया तो नाचनेवाली नटी है।

भगतिहिं सानुकूल रघुराया * ताते तेहिं डरपति अति माया
रामभगति निरुपम निरुपाधी * बसै जासु उर सदा अबाधी

रघुनाथजी भक्त पर कृपा करते हैं, इस कारण माया उससे बहुत डरती है। जिसके हृदय में रामजी की अनुपम, ऋद्धि आदि उपाधियों से रहित, भक्ति सदा बिना किसी बाधा के रहती है,

तेहि बिलोकि माया सकुचाई * करि न सकै कछु निज प्रभुताई
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी * जाचहिं भगति सकल गुनखानी

उसे देख माया लजाती है। उस पर अपनी प्रभुता कुछ नहीं दिखा सकती। ऐसा विचारकर ज्ञानी मुनि लोग गुणों की खान भक्ति ही माँगते हैं।


यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानै कोय।
जो जानै रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होय॥

रघुनाथजी का यह रहस्य कोई शीघ्र नहीं जानता। और जो रघुनाथजी की कृपा से जानता है, उसे स्वप्न में भी अज्ञान नहीं होता।

औरौ ज्ञानऽरु भगति कर, भेद सुनहु परबीन।
जो सुनि होय रामपद, प्रीति सदा अबछीन॥

हे चतुर, ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनो, जिससे रामजी के चरणों में अखंड भक्ति होती है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी * समुझत बनै न जाय बखानी
ईस्वर अंस जीव अबिनासी * चेतन अमल सहज सुखरासी

हे तात, यह अकथ कथा सुनो। इसे समझते ही बनता है, कहते नहीं। यह जीव अविनाशी, चैतन्य, निर्मल और आनन्द की राशि ईश्वर का अंश है।

सो मायाबस भयो गोसाईं * बँध्यो कीर मर्कट की नाईं
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परिगई * जदपि मृषा छूटत कठिनई

हे स्वामी, वह माया के अधीन होकर तोते या बन्दर की भाँति बन्धन में पड़ा है। चैतन्य जीव में जड़ माया की गाँठ (अहंभाव) पड़ गई है। यद्यपि वह झूठी है तो भी उसका छूटना कठिन है।

तबते जीव भयो संसारी * छूट न ग्रन्थि न होय सुखारी
स्त्रुति पुरान बहु कह्यो उपाई * छूट न अधिक अधिक अरुझाई

तभी से जीव संसारी हो गया। न गाँठ छूटती है और न जीव सुखी होता है। वेदों और पुराणों में बहुत से उपाय कहे हैं; परन्तु उनसे गाँठ छूटती नहीं, और भी उलझती है।

जीव हृदय तम मोह बिसेखी * ग्रन्थि न छूट परै नहिं देखी
अस संजोग ईस जब करई * तबहुँ कदाचित सो निरुअरई

जीव के हृदय में अज्ञानरूप अँधेरा बहुत है, इससे गाँठ दिखाई ही नहीं पड़ती। फिर छूटे कैसे ? यदि ईश्वर ऐसा (नीचे देखो) संयोग करे तो कदाचित् सुलझ जाय।

सात्विकस्रद्धा धेनु सुहाई * जो हरिकृपा हृदय बस आई
जपतप ब्रत यम नियम अपारा * जो स्त्रुतिकह सुभ धर्म अचारा

यदि भगवान् की कृपा से अच्छी सतोगुणी श्रद्धारूप गऊ हृदय में बसे और वेद के कहे जप, तप, व्रत, यम, नियम आदि बहुत-से धर्माचरणरूप—

सोइ तृन हरित चरै जब गाई * भावबच्छ सिसु पाय पन्हाई
नोइनिबृत्ति पात्रबिस्वासा * निर्मलमन अहीर निज दासा

हरी घास चरे और वत्सलताभाव (प्रेम से पिघल जाना) रूप बछड़ा पाकर पन्हाय तो स्वच्छ मनवाले दासरूप अहीर निवृत्तिरूप नोई (गौ के पैर बाँधने की रस्सी) से विश्वासरूप बर्तन में—

परम धर्ममय पय दुहि भाई * औटै अनल अकाम बनाई
तोषमरुत तब छमा जुड़ावै * धृतिसम जावन देइ जमावै

उत्तम धर्ममय दूध को दुहकर निष्कामनारूप अग्नि में खूब औटे। फिर संतोषरूप वायु से उसे ठंडा करे और समता की धारणारूप जावन देकर जमावे।

मुदिता मथै बिचार मथानी * दम अधार रजु सत्य सुबानी
तब मथि काढ़िलेय नवनीता * बिमल बिराग परम सुपुनीता

फिर जितेन्द्रियतारूप बर्तन में विचाररूप मथानी से सत्य और अच्छी वाणीरूप रस्सी लपेटकर मुदिता (आनन्दमय) को मथे। जब मथते-मथते सुलक्षण, पवित्र वैराग्य रूप मक्खन निकल आवे,



जोग अगिनि करि प्रगट तब, कर्म सुभासुभ लाय।
बुद्धि सिरावै ज्ञानघृत, ममतामल जरि जाय॥

तब जीव और ब्रह्म की योगरूप अग्नि प्रकट करे, जिससे शुभ और अशुभ कर्मों समेत ममतारूप मैल जल जाय। फिर बुद्धि या ज्ञानरूप घी को ठंढा कर ले।

तब बिज्ञाननिरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाय।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिवट बनाय॥

फिर आत्मज्ञानी बुद्धिरूप स्वच्छ घी चित्तरूप दीपक में दृढ़ता से भरकर समतारूप दीवट पर धरे।

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि।
तूलतुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि॥

तीनों अवस्था (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) और तीनों गुणरूप कपास से निकालकर 'तुरीय' ज्ञानावस्थारूप रुई की अच्छी मोटी बत्ती बनावे।



यहि बिधि लेसै दीप, तेजरासि बिज्ञानमय।
जातहि जासु समीप, जरहिंमदादिकसलभसब॥

इस भाँति तेजोराशि विज्ञानमय दीपक बनावे, जिसके पास जाते ही अहंकार आदि पाँखियाँ जल जायँ।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखण्डा * दीपसिखा सोइ परम प्रचण्डा
आतम अनुभव सुखसुप्रकासा * तब भवमूल भेदभ्रम नासा

सः अहम् अस्मि (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह न टूटनेवाली वृत्तिरूप तेज लौ है। जब आत्मा का अनुभव हो और आत्मानन्द का सुन्दर प्रकाश हो, तब संसार की जड़ भेदभ्रम का नाश हो जाता है।

प्रबल अबिद्याकर परिवारा * मोह आदि तम मिटै अपारा
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा * उरगृह बैठि ग्रन्थि निरुवारा

मोह आदि अविद्या का परिवाररूप अँधेरा दूर हो तो बुद्धि हृदयरूप घर में बैठ उजेले में गाँठ खोले।

छोरन ग्रन्थि पाव जब सोई * तब यह जीव कृतारथ होई
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया * बिघन अनेक करै तब माया

जब वह गाँठ छूट जाती है, तब जीव कृतार्थ हो जाता है। हे गरुड़, गाँठ का छूटना जानते ही माया बहुत से विघ्न करती है।

ऋद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई * बुद्धिहि लोभ दिखावै आई
कलबलछलकरि जायसमीपा * अंचलबात बुझावै दीपा

भाई माया ऋद्धि-सिद्धियों को भेजती है, जो आकर बुद्धि को ललचाती हैं। माया

मनोहरता के बल से कपट-पूर्वक पास जाकर अंचल की वायु से दीपक बुझा देती है—समाधि को छुड़ा देती है।

होय बुद्धि जो परम सयानी * तिनतनचितव न अनहित जानी
जो तेहिविघ्न बुद्धि नहिं बाधी * तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी

यदि बहुत ही चतुर बुद्धि हो और अपना अहित जान उन सिद्धियों की ओर न देखे अर्थात् उस बुद्धि में विघ्न-बाधाएँ न पड़ें, तब देवता उपद्रव खड़े करते हैं।

इन्द्रियद्वार झरोखा नाना * जहँ तहँ सुर बैठे करि थाना
आवत देखहिं विषयबयारी * ते हठि देहिं कपाट उघारी

इन्द्रियों के द्वाररूप झरोखों में बैठे देवता विषयरूप वायु को आते देख बलपूर्वक किवाड़े खोल देते हैं।

जब सुप्रभञ्जन उरगृह जाई * तबहिं दीप विज्ञान बुझाई
ग्रन्थि न छूटि मिटा सु प्रकासा * बुद्धि बिकल भइ विषयबतासा

जब विषयरूप वायु हृदयरूप घर में जाती है, तभी आत्मज्ञानरूप दीपक बुझता है। गाँठ छूटने नहीं पाई और उजेला (ज्ञान) मिट गया—विषयरूप हवा से बुद्धि व्याकुल है।

इन्द्रियसुरन न ज्ञान सुहाई * विषयभोग पर प्रीति सदाई
विषयसमीर बुद्धिकृत भोरी * तेहि बिनु दीप को बार बहोरी

इन्द्रियों के देवताओं को ज्ञान नहीं अच्छा लगता। उनका सदा विषयभोग पर स्नेह (रुचि) रहता है। जब विषयरूप वायु ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी, तब बिना बुद्धि आत्मज्ञानरूप दीपक को कौन जलावे?


तब फिर जीव बिबिधबिधि, पावै संसृति क्लेस।
हरिमाया अति दुस्तर, तरि न जाय बिहगेस॥

तब जीव जन्म-मरण आदि दुःख पाता है। हे गरुड़, प्रभु की माया बड़ी दुस्तर है; तरी नहीं जाती।

कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।
होय घुनाच्छर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

ज्ञान कहने, समझने और करने में कठिन है; जैसे घुन के काटने से लकड़ी में कोई अक्षर बनाना कठिन है, वैसे ही बिना भक्ति या ज्ञान के मोक्ष का मिलना कठिन है।

ज्ञानक पन्थ कृपान कि धारा * परत खगेस न लागै बारा
जो निर्विघ्न पन्थ निरबहई * तो कैवल्य परमपद लहई

हे गरुड़, ज्ञान का मार्ग खड्ग की धार है; इसमें पड़ते देर नहीं लगती। यदि वह मार्ग निर्विघ्न निबह जाय तो उत्तम पद (मोक्ष) मिल जाता है।

अतिदुर्लभ कैवल्य परमपद * सन्त पुरान निगम आगम बद
रामभजन सोइ मुक्ति गोसाईं * अनइच्छित आवै बरिआईं

सन्त, पुराण, वेद और धर्मशास्त्र कहते हैं कि कैवल्य परमपद मिलना बहुत दुर्लभ है। परन्तु हे स्वामी, वह मुक्ति रामजी के भजन से बिना इच्छा स्वयं ही मिलती है।

जिमिथल बिनुजलरहि न सकाई * कोटि भाँति कोइ करै उपाई
तथा मोच्छसुख सुनु खगराई * रहि न सकै हरिभगति बिहाई

जैसे स्थल के बिना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई कितने ही उपाय करे। हे गरुड़, इसी प्रकार भगवान् की भक्ति को छोड़कर मोक्ष का सुख अलग नहीं रह सकता।

अस बिचारि हरिभक्त सयाने * मुक्ति निरादरि भगति लुभाने
भगति करत बिनु जतन प्रयासा * संसृतिमूल अबिद्या नासा

ऐसा विचारकर भगवान् के चतुर भक्त मोक्ष का निरादर करके भक्ति की ही इच्छा करते हैं। भक्ति करने से बिना उपाय या परिश्रम के जन्ममरणरूप संसार की जड़ माया कट जाती है।

भोजनकरिय तृपितिहितलागी * जिमि सो असन पचै जठरागी
अस हरिभगति सुगम सुखदाई * को अस मूढ़ न जाहि सुहाई

तृप्ति के लिए ही भोजन किया जाता है। भोजन भी वैसा हो, जो पेट की अग्नि में पच जाय। भगवान् की सुखदायक और सहज भक्ति ऐसी ही है। कौन ऐसा मूर्ख है, जिसे वह अच्छी न लगे।



सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु रामपद पङ्कज, अस सिद्धान्त बिचारि॥

हे गरुड़, सेवक सेव्यभाव के बिना संसार नहीं तरा जाता। यह सिद्धान्त सोच रामजी को भजो।

जो चेतन कहँ जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिं जीव ते धन्य॥

जो चैतन्य को जड़ और जड़ को चैतन्य करनेवाले समर्थ रघुनाथ को भजते हैं, वे धन्य हैं।

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई * सुनहु भगति मनि की प्रभुताई
रामभगति चिन्तामनि सुन्दर * बसै गरुड़ जाके उर अन्तर

ज्ञान का सिद्धान्त तो समझाकर कह चुका, अब भक्तिमणि का प्रभाव सुनिए। हे गरुड़, रामजी की भक्तिरूप सुन्दर चिन्तामणि जिसके हृदय में बसती है,

परमप्रकासरूप दिन राती * नहिं कछु चहिय दिया घृतबाती

मोहदरिद्र निकट नहिं आवा * लोभवात नहिं ताहि बुझावा

उसके लिए रात-दिन उजेला है। उसे दिया, घी, बत्ती कुछ न चाहिए। मोहरूप दरिद्र कभी पास नहीं आता और लोभरूप वायु उस दीपक को नहीं बुझा सकता।

प्रबल अबिद्यातम मिटिजाई * हारहिं सकल सलभसमुदाई
खलकामादि निकट नहिं जाहीं * बसै भगति मनि जेहि उरमाहीं

बलवान् अज्ञानरूप अँधेरा मिट जाता और अहंकाररूप पाँखियों का झुण्ड हार जाता है। कामदेव आदि दुष्ट पास नहीं जाते। जिसके हृदय में भक्तिमणि रहती है—

गरल सुधासम अरि हित होई * तेहिमनि बिनु सुख पाव न कोई
ब्यापहिं मानसरोग न भारी * जेहि के बस सब जीव दुखारी

उसे विष अमृत और शत्रु मित्र सा हितू होता है। कोई उस भक्तिमणि के बिना सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मन के रोग, जिनके वश हो सब जीव दुखी हैं, नहीं व्यापते।

रामभगतिमनि उर बस जाके * दुखलवलेस न सपनेहु ताके
चतुरसिरोमनि ते जगमाहीं * जे मनिलागि सुजतन कराहीं

जिसके हृदय में रामजी की मणिरूप भक्ति रहती है, उसके स्वप्न में भी दुःख का लगाव नहीं रहता। संसार में वे ही श्रेष्ठ चतुर हैं, जो इस रत्न के लिए अच्छे-अच्छे उपाय करते हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जगअहई * रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई
सुगम उपाय पाइबे केरे * नर हतभाग्य देत भटभेरे

यद्यपि वह मणि संसार में प्रकट है, तथापि रामजी की कृपा के बिना उसे कोई नहीं पाता। इसे पाने के उपाय भी सहज हैं; परन्तु भाग्यहीन मनुष्य इधर-उधर भटकते हैं।

पावनपर्बत बेद पुराना * रामकथा रुचिराकर नाना
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी * ज्ञानबिरागनयन उरगारी

वेद-पुराण पवित्र पहाड़ हैं। रामजी की कथाएँ उनमें बहुत प्रकार की सुन्दर खानें हैं। हे गरुड़, उनका भेद जाननेवाला सज्जन अच्छी बुद्धिरूप कुदाली से ज्ञान व वैराग्य की आँखों से देखकर उनको—

भावसहित खोदै जो प्रानी * पाव भक्तिमनि सब सुखखानी
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा * राम ते अधिक राम कर दासा

भावसहित खोदे, तो सब सुखों की खान भक्ति को पावे। हे स्वामी, मेरे मन में विश्वास है कि रामजी के सेवक रामजी से बड़े हैं।

रामसिन्धु घन सज्जन धीरा * चन्दनतरु हरि सन्त समीरा
सबकर फल हरिभगति सुहाई * सो बिनु सन्त न काहुहिं पाई
असबिचारि जोइ कर सतसङ्गा * रामभक्ति तेहि सुलभ बिहङ्गा

रामरूप समुद्र या चन्दन से और सज्जन बादल या वायु की तरह क्रम से जल या सुगन्ध लेकर दूसरे स्थानों को पहुँचाते हैं। सबका फल सुहावनी रामभक्ति है और उसे साधुओं के सिवा किसी ने नहीं पाया। हे गरुड़, ऐसा विचारकर जो सत्संग करता है, उसे रामजी की भक्ति सहज है।



ब्रह्मपयोनिधि मन्दर, ज्ञान सन्त सुर आहि।
कथासुधा मथि काढ़हीं, भगति मधुरता जाहि॥

साधुरूप देवता परब्रह्मरूप समुद्र को ज्ञानरूप मन्दराचल के द्वारा मथकर अमृतरूप कथा निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूप मिठास भरी है।

बिरतिचर्म असिज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
बिजयपाय सोइ हरिभगति, देखु खगेस बिचारि॥

हे गरुड़, विचारकर देखो, वैराग्य की ढाल लेकर ज्ञान के खड्ग से अहंकार, लोभ, मोह आदि वैरियों को मारकर विजय पाना ही भगवान् की भक्ति है।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ * जो कृपाल मोहिं ऊपर भाऊ
नाथ मोहिं निज सेवक जानी * आठ प्रश्न मम कहहु बखानी

फिर प्रेमसहित गरुड़ बोले—हे कृपालु, हे स्वामी, जो तुम मुझ पर स्नेह रखते हो तो मुझे अपना सेवक जानकर मेरे इन आठ प्रश्नों का उत्तर दो।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा * सब ते दुर्लभ कौन सरीरा
बड़दुख कौन कौन सुखभारी * सो संछेपहि कहहु बिचारी

हे स्वामी मतिधीर, कौन देह सबसे दुर्लभ है? सबसे बड़ा दुःख कौन है? सबसे भारी सुख कौन है? यह विचार कर थोड़े ही में कहिए।

सन्त असन्त मर्म तुम जानहु * तिनकर सहज सुभाव बखानहु
कौनपुन्य- स्रुतिबिदितबिसाला * कहहु कौन अघ परमकराला

साधुओं और असाधुओं का हाल तुम जानते हो; उनका साधारण स्वभाव कहो। वेद में कौन सा बड़ा पुण्य प्रसिद्ध है और कौन सा पाप बहुत कठिन है?

मानसरोग कहहु समुझाई * तुम सर्बज्ञ कृपाअधिकाई
तात सुनहु सादर अतिप्रीती * मैं संछेप कहौं यह नीती

तुम तो सभी कुछ जानते हो, कृपापूर्वक मन के रोग समझाकर कहो। काकभुशुण्ड बोले—हे तात, आदरसहित सुनिए। मैं बड़े स्नेह से थोड़े में यह नीति कहता हूँ।

नरतन सम नहिं कौनिउ देही * जीव चराचर जाचत जेही
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी * ज्ञान बिराग भगति सुख देनी

मनुष्य-देह के समान कोई देह नहीं है। इसे सभी चराचर जीव माँगते हैं। यह

नरक, स्वर्ग या मोक्ष तक पहुँचने की सीढ़ी (द्वारा) है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के सुख देनेवाली है।

सो तन धरि हरि भजहिं न जे नर * होयँ विषयरत मन्दमन्दतर
कञ्चन काँच बदलि सठ लेहीं * कर ते डारि परसमनि देहीं

जो मनुष्य यह देह पाकर भगवान् को नहीं भजते, किन्तु विषय-भोगों में लगे रहते हैं, वे नीच से भी नीच हैं। वे मूर्ख सोने के बदले काँच लेते और हाथ आये हुए पारस-मणि को फेंक देते हैं।

नहिं दरिद्रसम दुख जग माहीं * सन्तमिलनसम सुख कछु नाहीं
पर उपकार बचन मन काया * सन्त सहज सुभाव खगराया

संसार में दरिद्रता के समान न तो कोई दुःख है और न साधु के मिलने के समान कोई सुख। हे गरुड़, मन, वचन और कर्म से पराया उपकार करना साधुओं का साधारण स्वभाव है।

सन्त सहहिं दुख परहित लागी * परदुख हेतु असन्त अभागी
भूरजतरुसम सन्त कृपाला * परहित नितसहबिपतिबिशाला

साधु तो पराये हित के लिए दुःख सहते और अभागे दुष्ट दूसरे के दुःख का कारण बनते हैं। साधु भोजपत्र के वृक्ष के समान दयालु होते हैं। वे परोपकार के लिए नित्य दुःख सहते हैं।

सन इव खल पर बन्धन करहीं * खाल कढ़ाय बिपति सहि मरहीं
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी * अहि मूषक इव सुनु उरगारी

दुष्ट लोग सन की भाँति अपनी खाल कढ़ाकर दूसरों को बाँधते हैं और विपत्ति सहकर मर भी जाते हैं। हे गरुड़, साँप और चूहे की भाँति दुष्ट बिना स्वार्थ के ही पराया अहित करते हैं।

परसम्पदा बिनासि नसाहीं *जिमिससिहतिहिमउपलबिलाहीं
दुष्टउदय जग अनरथहेतू * जथा प्रसिद्ध अधमग्रह केतू

जैसे पाला और ओले खेती का नाश कर गल जाते हैं, वैसे ही दुष्ट जन दूसरे को नष्ट कर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। अधम केतुग्रह दुष्ट प्रसिद्ध है ही; उसी के उदय की भाँति दुष्टों की बढ़ती भी बुराई ही करती है।

सन्तउदय सन्तत सुखकारी * बिस्वसुखद जिमि इन्दु तमारी
परमधर्म स्रुतिविदित अहिंसा * परनिन्दासम अघ न गरिसा

जैसे सूर्य व चन्द्रमा का उदय संसार को सुख देता है, वैसे ही साधु भी सदा सुख देते हैं। वेद में अहिंसा (दुःख न देना) को उत्तम धर्म कहा है। पराई निन्दा के समान बड़ा पाप दूसरा नहीं है।

हरि-गुरु-निन्दक दादुर होई * जन्म सहस्र पाव तन सोई

द्विजनिन्दक बहुनरकभोगकरि * जग जन्मै वायससरीर धरि

भगवान् या गुरु की निन्दा करनेवाला मेढक होता है और हजार जन्मों तक वही देह पाता है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाला बहुत से नरक भोगकर संसार में कौआ होता है।

सुरस्रुतिनिन्दक जे अभिमानी * रौरवनरक परहिं ते प्रानी
होहिं उलूक सन्तनिन्दारत * मोहनिसाप्रिय ज्ञानभानुगत

वेदों और देवताओं की निन्दा करनेवाले अभिमानी जीव 'रौरव' नरक में पड़ते हैं। साधुओं के निन्दक उल्लू होते हैं, जिन्हें मोहरूप रात प्यारी है, जिसमें ज्ञानरूप सूर्य नहीं होता।

सबकी निन्दा जे जड़ करहीं * ते चमगादुर ह्वै अवतरहीं
सुनहु तात अब मानस रोगा * जिनते दुख पावहिं सब लोगा

जो सबकी निन्दा करते हैं, वे चमगादड़ होते हैं। हे तात, अब मन के रोग सुनो, जिनसे सभी लोग दुःख पाते हैं।

मोह सकल व्याधिनकरमूला * तेहिते पुनि उपजैं बहु सूला
कामवात कफलोभ अपारा * क्रोधपित्त नित छाती जारा

सब रोगों की जड़ मोह (अज्ञान) है। उसी से सब क्लेश उपजते हैं। कामदेव वात, लोभ कफ और क्रोध पित्त है। ये नित्य छाती को जलाते रहते हैं।

प्रीति करैं जो तीनों भाई * उपजै सन्निपात दुखदाई
विषयमनोरथ दुर्गम नाना * ते सब सूल नाम को जाना

यदि ये तीनों मिल जायँ तो दुःखदायक सन्निपात पैदा हो जाय। नाना प्रकार के विषयों की इच्छा बहुत से शूल (दर्द) हैं। उनके नाम कौन जान सकता है?

ममता दाद कण्डु इर्षाई * हर्ष विषाद गहर बहुताई
परसुख देखि जरनि सो छई * कुष्ठ दुष्टता मनकुटिलई

ममता दाद, डाह खाज और इनके पहले का सुख और पीछे का दुःख ही इनका गहरापन है। पराया सुख देख जलना क्षयी और मन की कुटिलता व दुष्टता कोढ़ है।

अहङ्कार अतिदुखद डमरुवा * दम्भ कपट मद मान नहरुवा
तृष्णा उदरकृच्छ्र अतिभारी * त्रिविध एषना तरुन तिजारी
जुगविधि ज्वरमत्सर अविबेका * कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका

अभिमान बहुत ही दुःखदायक जलोदर, दम्भ, छल व अभिमान नासूर, इच्छा उदरकृच्छ्र (पेट का दर्द) तीनों प्रकार की इच्छा, (पुत्र, धन, यश) तिजारी और पराई बुराई चेतना व अज्ञान द्वंद्वज ज्वर हैं। कहाँ तक कहूँ, कुरोग बहुत हैं।



एकव्याधिबस नर मरहिं, ये असाधि बहुव्याधि।
सन्तत पीड़हिं जीवकहँ, सो किमि लहै समाधि॥

एक रोग से तो मनुष्य मर ही जाते हैं, फिर ये तो बहुत असाध्य रोग हैं, जो सदा जीव को पीड़ा दिया करते हैं, तो भला जीव कैसे समाधि को पा सके ?

नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन करहिं, रुज न जाहिं हरियान॥

हे गरुड़, लोग इन रोगों की नियम से तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि आचार-रूप दवा तो करते हैं, पर ये रोग नहीं जाते ; वे बार-बार तो होते रहते हैं।

यहि बिधिसकलजीवजगरोगी * सोक हर्ष भय प्रीति बियोगी
मानसरोग कछुक मैं गाये * हैं सबके लखि बिरले पाये

इस तरह संसार में सभी जीव रोगी हैं—उन्हें दुःख, सुख, डर, स्नेह, वियोग आदि रोग घेरे हैं। मैंने ये मन के कुछ रोग कहे हैं, जो हैं तो सबके, पर उन्हें बिरला ही जान पाता है।

जानेते छीजहिं कछु पापी * नास न पावहिं जनपरितापी
बिषयकुपथ्य पाइ अंकुरे * मुनिन हृदय का नर बापुरे

जीवों को दुःख देनेवाले ये पापी रोग जानने से (ज्ञान से) कुछ घट अवश्य जाते हैं; परन्तु उनका नाश नहीं होता। विषयरूप कुपथ्य के कारण ये रोग मुनियों के हृदय में उत्पन्न हो जाते हैं। फिर बेचारे मनुष्य क्या हैं !

रामकृपा नासहिं सब रोगा * जो यहि भाँति बनै संजोगा
सद्गुरु बेद बचन बिस्वासा * संजम यह न विषय की आसा

हाँ, जो ऐसा संयोग बन जाय, अच्छे गुरु और वेद के वचनों पर विश्वास हो और संयम के द्वारा विषयों की तृष्णा न रहे तो रामजी की कृपा से सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

रघुपतिभगति सजीवनमूरी * अनोपान स्रद्धाअतिरूरी
यहि बिधि भलेकुरोग नसाहीं * नाहिंत कोटि जतन नहिं जाहीं

जो दृढ़ श्रद्धारूप अनुपान के साथ रघुनाथ की भक्तिरूप सजीवनमूरि का सेवन करे तो ये सब रोग मिट जाते हैं। इस प्रकार भले ही ये बुरे रोग नष्ट हो सकते हैं, नहीं तो दूसरे करोड़ों यत्न करने से भी नहीं जाते।

जानिय तब मन निरुज गोसाँई * जब उरबलबिराग अधिकाई
सुमति छुधा बाढ़ै नित नई * बिषयआस दुर्बलता गई
बिमलज्ञानजल जब सो नहाई * तब रह रामभगति उर छाई

हे स्वामी, जब हृदय में वैराग्य का बल अधिक हो, अच्छी बुद्धिरूप भूख नित नई बढ़े, और विषय की आशारूप कमजोरी चली जाय, तब जान ले कि मन नीरोग (चंगा) है। जब वह निर्मल ज्ञानरूप जल में स्नान करता है, तब हृदय में रामजी की भक्ति छा जाती है।

सिवअजसुकसनकादिक नारद * जे मुनि ब्रह्मबिचारबिसारद

सबकर मत खगनायक एहा * करिय रामपद पङ्कजनेहा

हे गरुड़, जो शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनक, नारद आदि मुनि ब्रह्मविचार में चतुर हैं, उन सबका यही मत है कि रामजी के चरणारविन्दों में स्नेह करना चाहिए।

स्रुति पुरान सद्ग्रंथ कहाहीं * रघुपति भगति बिना सुख नाहीं
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा * बन्ध्यासुत बरु काहुहिं मारा

वेद-पुराण व अच्छे ग्रन्थ कहते हैं कि बिना रामजी की भक्ति के सुख नहीं मिलता। चाहे कछुए की पीठ में बाल जम आवें, चाहे किसी बाँझ का पुत्र किसी को मारे,

फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला * जीव न लह सुख प्रभु प्रतिकूला
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना * बरु जामहिं सससीस बिषाना

चाहे आकाश में तरह-तरह के फूल फूलें, परन्तु परमेश्वर से विमुख जीव कभी सुख नहीं पा सकता। चाहे मृगतृष्णा से प्यास चली जाय, चाहे खरगोश के सिर में सींग जम आवें,

अन्धकार बरु रबिहिं नसावै * रामबिमुख सुख जीव न पावै
हिम ते अनल प्रगट बरु होई * रामबिमुख सुख पाव न कोई

चाहे सूर्य को अँधेरा नष्ट कर दे; परन्तु रामजी से विमुख जीव सुख नहीं पा सकता। चाहे पाले से अग्नि उत्पन्न हो जाय; परन्तु रामजी से विमुख कोई भी सुख नहीं पा सकता।



बारि मथे बरु होय घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भवतरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

चाहे जल मथने से घी निकले, चाहे बालू से तेल निकले; परन्तु बिना हरिभजन किये कोई संसार को नहीं तर सकता, यह दृढ़ सिद्धान्त है।

मसकहिं करहिं बिरंचि प्रभु, अजहिं मसकते हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिं भजहिं प्रबीन॥

प्रभु चाहें तो मच्छड़ को ब्रह्मा या ब्रह्मा को मच्छड़ से भी नीच बना सकते हैं; ऐसा सोच चतुर लोग, सन्देह छोड़, रामजी को भजते हैं।

विनिश्चितं वदामि ते न चान्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥

मैं तुमसे निश्चय के साथ कहता हूँ—मेरे वचन झूठे नहीं; जो मनुष्य भगवान् को भजते हैं, वे बड़े दुस्तर संसार को तर जाते हैं।

कहेउँ नाथ हरिचरित अनूपा * ब्याससमास स्वमति अनुरूपा
स्रुतिसिद्धान्त यहै उरगारी * राम भजिय सब काम बिसारी

हे स्वामी, भगवान् के अनुपम चरित्रों को मैंने बुद्धि के अनुसार संक्षेप में और विस्तार

से भी कहा। हे गरुड़, वेद का यही सिद्धान्त है कि सब काम भूलकर रामजी को भजो।

प्रभु रघुपति तजि सेइय काही * मोहिं से सठ पर ममता जाही
तुम बिज्ञानरूप नहिं मोहा * कीन्ह नाथ मोपर अति छोहा

हे प्रभु, मुझ सरीखे मूर्ख पर भी जिनकी ममता है, उन रघुनाथ को छोड़ और किसकी सेवा की जाय ? आप तो ब्रह्मरूप हैं। आपमें मोह का नाम भी नहीं है। हे स्वामी, यहाँ आकर तो आपने मुझ पर दया की है।

पूछेउ रामकथा अतिपावनि * सुक सनकादि सम्भुमनभावनि
सतसंगति दुर्लभ संसारा * निमिष दण्ड भरि एकौ बारा

क्योंकि आपने शुकदेव, सनक, सनातन, शिव आदि के मन को भानेवाली पावनी रामजी की कथा पूछी। संसार में आधी घड़ी या पल भर के लिए एक बार भी सत्संग का होना दुर्लभ है।

देखु गरुड़ निज हृदय बिचारी * मैं रघुबीर भजन अधिकारी
सकुनअधमसब भाँति अपावन * प्रभुमोहिंकीन्हबिदितजगपावन

हे गरुड़, हृदय में विचारकर देखो ; मैं भी रघुनाथ के भजन का अधिकारी हुआ— पक्षियों में नीच और सब प्रकार अपवित्र मुझ कौए को भी भगवान् ने जगत्-प्रसिद्ध और जगत को पवित्र करनेवाला बना दिया।



आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब बिधि हीन।
निजजन जानिय नाथ मोहिं, सन्त समागम दीन ॥

मैं यद्यपि सब प्रकार हीन (अधम) हूँ, फिर भी मुझे प्रभु ने अपना जन जानकर आप-जैसे साधु का संग दिया। आज मैं धन्य, अतिधन्य हूँ।

नाथ जथामति भाख्यौं, राख्यौं नहिं कछु गोय।
चरितसिन्धु रघुनाथकर, पार कि पावै कोय ॥

हे स्वामी, मैंने बुद्धि के अनुसार सब कह दिया, कुछ भी नहीं छिपाया। पर क्या कोई रघुनाथ के चरित्रसागर का पार पा सकता है ?

सुमिरि राम के गुनगन नाना * पुनि पुनि हरष भुसुण्डि सुजाना
महिमा निगम नेति कहि गाई * अतुलित बल प्रताप रघुराई

ज्ञानी भुशुण्डिजी बार-बार रामजी के भाँति-भाँति के गुणों का स्मरण कर प्रसन्न हुए। रामजी के अतुलित बल और प्रताप की महिमा को वेद 'नेति-नेति' कहकर गाते हैं।

सिवअजपूज्यचरन रघुराई * मोपर कृपा परम मृदु लाई
अस सुभाव कहुँ सुनौं न देखौं * केहि खगेस रघुपतिसम लेखौं

रघुनाथ के चरणों को शिव और ब्रह्मा पूजते हैं। वह भगवान् मेरे ऊपर बड़ी कृपा करते

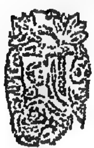
हैं, कोमल व्यवहार करते हैं। हे गरुड़, ऐसा स्वभाव तो मैंने कहीं देखा-सुना ही नहीं। फिर किसे रघुनाथ के बराबर बताऊँ?

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी * कवि कोबिद कृतज्ञ सन्यासी
जोगेसुर अरु तापस ज्ञानी * धर्मनिरत पण्डित बिज्ञानी

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, विरक्त, कवि, वेद व शास्त्रों के ज्ञाता, कृतज्ञ, सन्यासी, योगी, तपस्वी, ज्ञानी, धर्मात्मा, पंडित, विज्ञानी आदि—

तरहिं न बिन सेये मम स्वामी * राम नमामि नमामि नमामी
सरन गये मोसे अघरासी * होहिं सुद्ध नमामि अविनासी

सब विना मेरे स्वामी की सेवा किये नहीं तर सकते। रामजी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। मुझ सरीखे पापपुंज भी जिसकी शरण में जाने से पवित्र हो जाते हैं, ऐसे अविनाशी रामजी को प्रणाम करता हूँ।


जासु नाम भवभेषज, हरन घोर त्रयसूल।
सो कृपालु मोहिं तोहिं पर, सदा रहैं अनुकूल॥

जिनका नाम जन्म-मरणरूप संसार की दवा है और जो तीन गुणोंवाली माया के घोर शूल के हरनेवाले हैं, वही कृपालु रामजी तुम्हारे और मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहें।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुभ, देखि रामपद नेह।
प्रेम सहित बोले गिरा, गरुड़ बिगत सन्देह॥

भुशुण्डि के वचन सुन और रामजी के चरणों में उनका स्नेह देख गरुड़जी सन्देह रहित हो प्रेमपूर्वक बोले—

मैं कृतकृत्य भयों तव बानी * सुनि रघुबीर भगतिरससानी
रामचरननूतनरति भई * मायाजनित बिपति सब गई

रघुनाथ के भक्तिरस से सनी तुम्हारी वाणी सुनकर मैं कृतार्थ हो गया। रामजी के चरणों में नया प्रेम हुआ। मेरी माया से उत्पन्न सब विपत्ति जाती रही।

मोहजलधिबोहित तुम भयऊ * मोकहँ नाथ बिबिध सुख दयऊ
मोसन होय न प्रतिउपकारा * बन्दौं तव पद बारहिं बारा

हे स्वामी, अज्ञानसमुद्र के पार लगाने को आप जहाज हो गये। मुझे बहुत भाँति के सुख दिये। मुझसे इसके बदले में कोई उपकार नहीं हो सकता, मैं केवल बार-बार तुम्हारे चरणों की वंदना करता हूँ।

पूरनकाम रामअनुरागी * तुमसन तात न कोउ बड़भागी
सन्त बिटपसरितागिरि धरनी * परहित हेतु सबन्हकर करनी

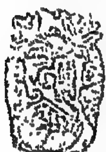
हे तात, तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी हैं। तुम रामजी के प्रेमी हो। तुमसा भाग्यवान् कोई नहीं। साधु, वृक्ष, नदी, पहाड़ और पृथ्वी—इनके सब काम दूसरों की भलाई के लिए ही होते हैं।

सन्तहृदय नवनीत समाना * कहा कबिन पै कहै न जाना
निजपरिताप द्रवै नवनीता * परदुखद्रवहिं सुसन्त पुनीता

कवियों ने 'साधुओं का हृदय मक्खन की भाँति कोमल होता है' कहा तो, परन्तु कहना न जाना। मक्खन अपनी आँच से और पवित्र साधु पराये दुःख से पिघलते हैं।

जीवन जन्म सफल मम भयऊ * तव प्रसाद सब संसय गयऊ
जानेहु सदा मोहिं निज किङ्कर * पुनि पुनि उमा कहइ बिहङ्गवर

मेरा जीना और जन्म लेना सफल हुआ। तुम्हारी कृपा से मेरा सब सन्देह चला गया। मुझको सदा अपना सेवक समझना। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, गरुड़जी ने बार-बार ऐसे कहा।



तासु चरन सिरनायकरि, प्रेमसहित मतिधीर।
गरुड़ गयो बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

फिर धीरबुद्धि गरुड़ ने प्रेम से काकभुशुण्डि के चरणों में प्रणाम किया और हृदय में प्रभु को बसाकर तब बैकुण्ठ को चले गये।

गिरिजा सन्तसमागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा न होय सो, गावहिं बेद पुरान॥

हे पार्वती, सत्संग के समान लाभ नहीं है और वह बिना प्रभु की कृपा के नहीं प्राप्त होता, ऐसा वेद-पुराण कहते हैं।

कहेउँ परमपुनीत इतिहासा * सुनत स्रवन छूटै भवफाँसा
प्रनतकल्पतरु करुनापुञ्जा * उपजै प्रीति रामपदकञ्जा

मैंने वह बड़ी पवित्र कथा कही, जिसे सुनते ही संसार का फन्दा छूट जाता और भक्तों के लिए कल्पवृक्ष कृपा की राशि रामजी के चरणारविन्दों में प्रेम होता है।

मनक्रम बचनजनित अघ जाई * सुनहिं जे कथा स्रवन मन लाई
तीर्थाटन साधन समुदाई * जोग बिराग ज्ञान निपुनाई

जो लोग मन लगाकर कानों से इस कथा को सुनते हैं, उनके मन, वचन या कर्म से उत्पन्न पाप मिट जाते हैं। तीर्थयात्रा, योग, वैराग्य, ज्ञान, चतुरता आदि साधन—

नाना कर्म धर्म तप दाना * संयम दम जप मख ब्रत नाना
भूतदया द्विजगुरुसेवकाई * बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई

अनेक प्रकार के कर्म, धर्म, तप, दान, संयम, इन्द्रियों को वश करना, जप, यज्ञ

अनेक प्रकार के व्रत, प्राणियों पर दया, ब्राह्मण व गुरु की सेवा, विद्या, विनय, विवेक बड़ाई आदि—

जहँलगि साधन बेद बखानी * सबकर फल हरिभगति भवानी
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई * रामकृपा काहू यक पाई

हे पार्वती, जहाँ तक वेद ने साधन कहे हैं, उन सबका फल भगवान् की भक्ति ही है। परन्तु वह भक्ति रामजी की कृपा से कोई विरला ही पाता है—ऐसा वेद कहते हैं।

दोहा— मुनिदुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं बिनुहिं प्रयास।
जे यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि बिस्वास॥

जो मनुष्य विश्वास से यह कथा नित्य सुनते हैं, वे मुनियों को भी दुर्लभ हरि की भक्ति को बिना प्रयास के पा जाते हैं।

सोइ सर्बज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता * सोइ महिमण्डितपण्डित ज्ञाता
धर्मपरायन सोइ कुलत्राता * रामचरन जाकर मन राता

वही सब कुछ जाननेवाला, गुणी, दानी, पृथ्वी में श्रेष्ठ ज्ञानी, पण्डित, धर्मात्मा और वंश का रक्षक है, जिसका मन रामजी के चरणों में लग गया हो।

नीतिनिपुन सोइ परमसयाना * श्रुतिसिद्धान्त नीक सोइ जाना
सोइ कबिकोबिद सोइ नर धीरा * जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा

वही नीति में निपुण, परम चतुर, वेद के सिद्धान्त को अच्छी तरह जाननेवाला, कवि-कोविद और मनुष्यों में वीर है, जो छल छोड़कर रघुनाथ की सेवा करे।

धन्य सो देस जहाँ सुरसरी * धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी
धन्य सो भूप नीति जो करई * धन्य सो द्विज निजधर्म न टरई

वह देश धन्य है, जहाँ गंगा हैं। पतिव्रता स्त्री धन्य है। जो न्याय करता हो, वह राजा धन्य है। जो अपने धर्म से न हटे, वह ब्राह्मण धन्य है।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी * धन्य पुन्यरत मति सो पाकी
धन्य घरी सो जब सतसंगा * जन्म धन्य द्विजभगति अभंगा

वह धन धन्य है, जिसकी पहिली गति (धर्म में खर्च) हो। वह पक्की बुद्धि धन्य है, जो पुण्य में लगी हो। वह घड़ी धन्य है, जब सत्संग हो। वह जन्म धन्य है, जिसमें ब्राह्मणों में पूरी भक्ति हो।

दोहा— सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीरपरायन, जेहि नर उपज बिनीत॥

हे पार्वती, वही संसार में पूज्य, पवित्र कुल धन्य है, जिसमें रघुनाथ का प्रेमी विनीत पुरुष जन्म ले।

मति अनुरूप कथा मैं भाखी * जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी
तव उर प्रीति देखि अधिकाई * तब मैं रघुपति कथा सुनाई

यद्यपि पहले मैंने छिपा रक्खी थी, परन्तु तुम्हारे हृदय में अधिक स्नेह देख मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह रामकथा कही।

यहनहिंकहियसठहिंहठसीलहि * जो मनलाय न सुनहरिलीलहि
कहियनलोभिहिक्रोधिहिकामिहि * जो न भजहिसचराचरस्वामिहिं

जो हठी हो, शठ हो, जो मन लगाकर भगवान् का चरित्र न सुनता हो, जो लोभी क्रोधी, कामी और चराचर के स्वामी रामजी को न भजता हो, उससे यह कथा कभी न कहना।

द्विजद्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ * सुरपति सरिस होय नृप जबहूँ
रामकथा के ते अधिकारी * जिनके सतसंगति अति प्यारी

ब्राह्मण के वैरी को कभी न सुनाना, चाहे वह इन्द्रसा राजा भी हो। रामजी की कथा के अधिकारी वे ही हैं, जिन्हें साधुओं की संगति बहुत प्रिय हो।

गुरुपदप्रीति नीतिरत जेई * द्विजसेवक अधिकारी तेई
ताकहँ यह बिसेष सुखदाई * जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई

गुरु के चरणों में जो प्रीति रखता हो, जो नीति के अनुसार चलता हो, जो ब्राह्मणों का सेवक हो, वही इस कथा के सुनने का अधिकारी है। उसे यह कथा बहुत ही सुख देती है, जिसे रघुनाथ प्राणों से प्यारे हों।

दो० रामचरनरति जो चहहि, अथवा पदनिरबान।
भावसहित सो यह कथा करै स्रवनपुट पान॥

जो राम के चरणों में प्रेम या मोक्ष चाहे, वह इस कथा को अर्थसहित कानरूप दोने से पिये।

रामकथा गिरिजा मैं बरनी * कलिमलसमनिमनोमलहरनी
संसृतिरोगसजीवनिमूरी * रामकथा गावहिं स्रुतिसूरी

हे पार्वती, मैंने कलियुग के पापों को नष्ट करनेवाली, मन का मैल हरनेवाली रामजी की कथा वर्णन की। संसार के जन्ममरणरूप रोग के लिए रामजी की कथा सजीवन-मूरि है, ऐसा वेदान्ती लोग कहते हैं।

यहि महँ रुचिर सात सोपाना * रघुपति भक्तिकेर पन्थाना
अति हरिकृपा जाहि पर होई * पाँव देय यहि मारग सोई

इसमें सुन्दर सात सीढ़ियाँ हैं, जो रामजी की भक्ति पाने की सड़कें हैं। जिस पर भगवान् की बहुत ही कृपा होती है, वही इस मार्ग में पाँव देता है।

मन कामना सिद्धि नर पावा * जो यह कथा कपट तजि गावा

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं * ते गोपद इव भवनिधि तरहीं

जो कपट छोड़कर यह कथा कहता है, वह मन की कामनाओं की सिद्धि पाता है। जो इसे कहते, सुनते या इसका अनुमोदन करते हैं, वे संसारसमुद्र को गऊ के खुर भर जल के समान अनायास नाँघ जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अतिभाई * गिरिजा बोलीं गिरा सुहाई
नाथ कृपा गत मम सन्देहा * रामचरन उपजा नवनेहा

सब कथा सुनने से मन को अच्छी लगी, तब पार्वतीजी सुहावनी वाणी बोलीं—हे स्वामी, आपकी कृपा से मेरा सन्देह जाता रहा और रामजी के चरणों में नया स्नेह उत्पन्न हुआ।



मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़, बीते सकल कलेस॥

हे संसार के स्वामी, आपकी कृपा से अब मैं कृतार्थ हुई, रामजी में दृढ़ प्रेम हुआ और सब दुःख गये।

यह सुभ सम्भुउमासंबादा * सुखसम्पादन समनविषादा
भवभञ्जन गञ्जनसन्देहा * जनरञ्जन सज्जनप्रिय येहा

शिव और पार्वती का यह शुभ संवाद सुख देनेवाला दुःख को मिटानेवाला सज्जनों को प्रिय, भक्तों का प्रेम बढ़ाने और संसार को छुड़ानेवाला तथा संदेहों का नाशक है।

रामउपासक जे जगमाहीं * यहिसमप्रियतिनकेकछु नाहीं
रघुपतिकृपा जथामति गावा * मैं यह पावन चरित सुहावा

संसार में जो रामजी की पूजा करनेवाले हैं, उन्हें इसके समान प्यारा कुछ भी नहीं। रघुनाथ की कृपा से मैंने यह सुहावना पवित्र चरित्र अपनी बुद्धि के अनुसार कहा।

यहि कलिकाल न साधन दूजा * जोग जज्ञ जप तप ब्रत पूजा
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं * सन्ततसुनिय रामगुनग्रामहिं

इस कलियुग में योग, यज्ञ, जप, व्रत, पूजा आदि दूसरा साधन नहीं है। सदा रामजी का ध्यान करे, राम ही को गावे और राम ही के गुणों की कथा सुने।

जासु पतितपावन बड़ बाना * गावहिं कबि स्रुतिसन्त पुराना
ताहि भजिय मनतजि कुटिलाई * राम भजे गति केहि नहिं पाई

वेद, पुराण, साधु और कवि कहते हैं कि पतित को पवित्र करना जिनका स्वभाव है, उन राम को मन की कुटिलता छोड़कर भजो। रामजी को भजने से किसने मुक्ति नहीं पाई?

छन्द

पाई न गति केहि पतितपावन रामभजि सुनु सठमना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥

आभीर जवन किरात खल स्वपचादि अतिअघरूप जे।
कहि नाम बारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते॥

रे शठ मन ! पतितपावन रामजी को भजकर किसने मुक्ति नहीं पाई ? वेश्या, अजामिल, व्याध, जटायु, गजराज आदि बहुत से नीच और दुष्ट तर गये। अहीर, भील, डोम आदि पाप-रूप नीच जन भी एक बार रामनाम कहने से पवित्र हो जाते हैं। रामजी को प्रणाम है।

रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं॥
सतपञ्च चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पञ्च जनित बिकार श्रीरघुपति हरैं॥

जो मनुष्य रघुवंशरत्न का यह चरित्र कहते, सुनते या गाते हैं, वे कलियुग के पाप और मन का मैल धोकर विना परिश्रम के रामजी के परमधाम को जाते हैं। जो इन पाँच हजार एक सौ चौपाइयों को मनोहर जान हृदय में रखते हैं, उनके पाँचों कठिन अविद्याओं से उत्पन्न विकारों को रघुनाथ हर लेते हैं।

सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकामहित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेसते मतिमन्द तुलसीदास हूँ।
पायो परम बिसराम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

रामचन्द्र सुन्दर, ज्ञानी, कृपाधाम, अनाथों पर कृपा करनेवाले और कामना दोनों के हितू हैं। उनके समान मोक्ष देनेवाला कौन है ? उनकी कृपा के लेशमात्र से मुझ मंदमति तुलसीदास ने भी परम विश्राम पाया। राम के समान स्वामी कहीं नहीं है।

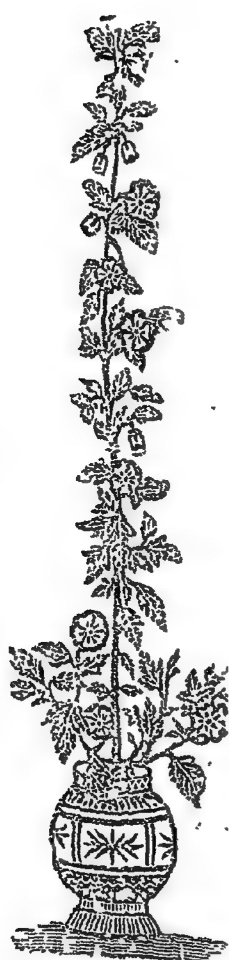
मोसम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवपीर॥

हे राम, मुझ-सा दीन और आप-सा दीनों का हितू दूसरा नहीं है, ऐसा विचारकर मेरी दारुण भव (जन्म-मरण) की पीड़ा को हरिए।

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥

जैसे कामी को स्त्री और लोभी को धन प्रिय होता है, वैसे ही हे रघुनाथ राम, मुझे सदा आप प्रिय लगें।

उत्तरकाण्ड समाप्त.



श्रीगणेशाय नमः

तुलसीदासकृत रामायण लवकुशकाण्ड

बालबोधिनीटीकासहित



ससिबदनी श्रीसारदा, बीनापुस्तकपानि।
मम हियपंकज में बसौ, कृपा करौ जन जानि॥
हंसवाहिनी सारदे, तुव भरोस हिय धारि।
अस्वमेध सुभकाण्ड की, टीका करौं विचारि॥



श्रीभुसुण्डि के सुनि बचन, देखि रामपद प्रीति।
ह्वै प्रसन्न बोले गरुड़, बानी परम पुनीत॥

श्रीभुशुण्डिजी के वचनों को सुनकर और रामचन्द्रजी के चरणों में उनकी प्रीति देखकर श्रीगरुड़जी हर्षित हो अति पवित्र वाणी बोले—

सुरसरिसम पावन भयो, नाथ हृदय अब मोर।
जन्म जन्म छूटै नहीं, नाथ पदाम्बुज तोर॥

हे नाथ, अब मेरा हृदय गङ्गाजी के सदृश शुद्ध हो गया। हे स्वामी, आपके चरणकमल किसी जन्म में मुझसे न छूटेंगे।

सुने अखिल गुनगन प्रभु केरे * पूरे नाथ मनोरथ मेरे
तुव प्रसाद वायसकुलनाथा * हृदय बसहिं अब प्रभुगुनगाथा

हे नाथ, मैंने भगवान् के सम्पूर्ण गुणों को सुना, जिससे मेरे सभी मनोरथ पूरे हो गये। हे काक-कुल-शिरोमणि काकभुशुण्डिजी, आपकी कृपा से अब मेरे अंतःकरण में भगवान् के गुणों की कथा सदा बसेगी।

मन सन्तोष न चित्त अघाहीं * जथा उदधि सरितासर जाहीं
पसु पच्छी जड़ जङ्गम जाती * चर अरु अचरबरनकिहिभाँती

मेरे मन में तो सन्तोष है, किन्तु चित्त नहीं अघाता; जैसे नदियों और तालाबों के मिलने से समुद्र नहीं भरता। पशु, पत्ती, स्थावर और जंगम, जड़, चर और अचर योनियों का वर्णन किस तरह हो सकता है?

जे जन अवध बसहिं सुखधामा * लिये संग सादर श्रीरामा
तजि सब अवध गये सह देहा * यह मोहिं नाथ परम सन्देहा

जो मनुष्य सुख की खान अयोध्यापुरी में बसते थे, उनको सादर साथ लेकर श्रीरामजी अयोध्यापुरी को छोड़ सदेह स्वर्ग को गये। हे प्रभु, इसे सुनकर मुझे अति विस्मय है।

अब प्रभु मोहिं सब कहहु बुझाई * पिता जानि मैं करौं ढिठाई
यह इतिहास पुनीत कृपाला * जिमि मख कीन्ह राम महिपाला

हे प्रभु, अब मुझसे सब समझाकर कहिए। मैं आपको पिता समझकर ऐसी ढिठाई करता हूँ। हे कृपालु, यह पवित्र इतिहास और जिस तरह से राजा श्रीरामचन्द्रजी ने यज्ञ किया, सब कथा कहिए।


अस कहि गदगद बचन मृदु, पुलकावली सरीर।
सुनि सप्रेम हर्षे बिहँग, बायसमतिअतिधीर॥

गरुड़जी इस प्रकार गद्गद कोमल वचन कहकर प्रसन्न हुए। उनके शरीर में रोमांच हो आया। अति बुद्धिमान् काकभुशुण्डिजी ये प्रेमभरे वचन सुन प्रसन्न होकर बोले—

धन्य धन्य तुम धनि खगराया * कीन्हीं अमित मोहिं पर दाया
रामकृपा तुम्हरे मन माहीं * संसय सोक मोह भ्रम नाहीं

हे गरुड़जी, आपको बारम्बार धन्यवाद है। आपने मुझ पर बड़ी दया की। रामचन्द्रजी की कृपा से आपके मन में संशय, शोक, मोह और भ्रम आदि नहीं होंगे।

अति प्रिय बचन रसज्ञ तुम्हारे * लागत नाथ मोहिं अति प्यारे
अब प्रभु कथा बिसद बिस्तारी * सकल सुनावहुँ प्रभु हितकारी

हे नाथ, आप भगवान् की कथा के रस को जानते हैं। आपके अतिप्रिय वचन मुझको बहुत प्यारे लगते हैं। हे परोपकारी प्रभु, अब रामचन्द्रजी की निर्मल कथा को विस्तार के साथ सुनाता हूँ।

तव मन प्रीति देखि खगराया * मिटे अमङ्गल कोटिहु माया
सुनु अब रामरहस्य अनूपा * चरित पुनीत अवधपुर भूपा

हे पक्षिराज, आपके मन की प्रीति को देखकर अनेक प्रकार के अमंगल और करोड़ों मायाएँ या व्याधियाँ मिट गईं। अब रामचन्द्रजी के उत्तम छिपे हुए विशुद्ध चरित्रों को सुनिए।

अज अद्वैत अमल अबिनासी * रहित सकल कलिमल कर फाँसी
नव सहस्र नव सत कम बासी * कृत चरित्र रह पुर जग दासी

श्रीरामचन्द्रजी द्वैतरहित, निर्मल, नाशरहित, जन्मरहित और कलिकाल के सम्पूर्ण पातकों के फन्दे से रहित हैं। नौ सौ कम नौ हजार वर्ष तक रामचन्द्रजी ने अयोध्यापुरी में निवास करके अनेक चरित्र किये।


बिधिबर बचन सँभारि उर, राजत करुनागार।
जुगल जोरिसोभा निरखि, लजत कोटिसत मार॥

श्रद्धा के उत्तम वचनों को हृदय में रखकर करुणासिंधु राम अयोध्या में विराजमान हैं। श्रीजानकी और रामचन्द्रजी की छवि को देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं।

अनुजसचिव प्रभु प्रजा बुलाये * गुरुगृह सादर तिन कहँ लाये
मकर मास रवि परब सुहावा * बिदा माँगि गुरुपद सिर नावा

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी ने छोटे भाइयों को, मंत्रियों को और प्रजा को बुलाया और उनको आदर के साथ गुरु वशिष्ठजी के आश्रम में ले गये। मकर की संक्रान्ति में सूर्य-ग्रहण समझकर गुरु के चरणों में प्रणाम कर राम ने (काशी-क्षेत्र जाने के लिए) उनसे विदा माँगी।

कासी क्षेत्र धर्ममय जाना * सकल सजायहु बाहन नाना
चतुरङ्गिनी अनी सब साथा * कहि बिधि गवन कीन्ह रघुनाथा

काशी-क्षेत्र को धर्म का स्थान समझकर, वहाँ के लिए अनेक प्रकार की सवारियाँ तैयार कराईं। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी चतुरङ्गिणी सेना को साथ लेकर चले।

बीच बास करि सिवपुर आये * सादर पुरिहि सीस तिन्ह नाये
आइ सुरसरिहि कीन्ह प्रनामा * अभय अनंत पाय बिसरामा

बीच-बीच में टिककर काशीपुरी में आये। सब लोगों ने आदरसहित पुरी को प्रणाम किया। फिर आकर श्रीगंगाजी को प्रणाम किया। सब अधिक आनन्द पाकर श्रमरहित व निर्भय हो गये।

महिसुर द्रविड जती सन्यासी * पूजेउ कृपासिन्धु सुखरासी
दीन्ह दान कछु बरनि न जाई * धनद कुबेर सुरेस लजाई

कृपासागर और सुख की राशि श्रीरामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों, द्रविडयों, यतियों और सन्यासियों का पूजन किया और इतना दान दिया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दान को देखकर धन के स्वामी कुबेर और देवताओं के स्वामी इन्द्र भी शरमा गये।

यहि बिधि रहि प्रभु बिपुल दिन, सुखी किये मुनिवृन्द।
आये पुनि निज नगर महँ, हर्षित करुनाकन्द॥

भगवान् ने इस प्रकार वहाँ बहुत दिनों तक रहकर मुनीश्वरों को सुखी किया। फिर करुणासिंधु श्रीरामजी प्रसन्नतापूर्वक अवधपुरी को लौट आये।

प्रतिदिन अवध अनन्द उछाहू * दान देहिं प्रतिदिन नरनाहू
दुःख प्रपंच सोच नहिं काऊ * ब्याप न कबहुँ सुना खगनाहू

अवधपुरी में प्रतिदिन आनन्द-मंगल होने लगा। राजा रामचन्द्र नित्य ही ब्राह्मण आदि को दान देने लगे। हे गरुड़, वहाँ पर ऐसा नहीं सुना कि किसी को दुःख, प्रपंच या शोक व्यापा हो।

सुनहिं जहाँ तहँ बेद पुराना * दूसर धर्म न काहू जाना
दिन दिन प्रीति देखि भगवाना * अमित अनन्द सकल पुर जाना

सभी जगह वेद, पुराण ही की चर्चा सुन पड़ती थी, दूसरे धर्म को कोई नहीं जानता था। रामचन्द्रजी ने प्रतिदिन स्नेह बढ़ते देखकर अयोध्यापुरी के मनुष्यों को हर्षित जाना।

सत संबत परिमान हमारा * भये सोच बस राम उदारा
अस्वमेध मख करौं सुहावन * गाइ तरहिं भवदुःख नसावन

उदार रामचन्द्रजी यह सोचकर कि हमारी अवधि सौ वर्ष की है, इससे अब हमें केवल सौ वर्ष रहना है, कुछ सोच में पड़ गये। उन्होंने सोचा, मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ, जिसे गाकर सब मनुष्य संसार के दुःखों से छूट जायँगे—तर जायँगे।

पुनिनिज धामहिं तुरत सिधावौं * बिधि के वचन बिलम्ब न लावौं
प्रात जाइ गुरु भवन सप्रीती * कहौं करौं सब सुन्दर रीती

फिर अपने परमधाम को शीघ्र ही चला जाऊँगा। ब्रह्माजी के वचनों को पूरा करने में देर नहीं करनी चाहिए। अतएव प्रातःकाल गुरुजी के घर जाकर प्रेमसहित उनके कथनानुसार उत्तम रीति से यज्ञ करूँगा।

दो० अस बिचार उर राखिकै, कृपासिन्धु मतिधीर।
किये चरित नाना अमित, हरन सोक भवभीर॥

कृपा के सागर मतिधीर रामचन्द्रजी ने ऐसा विचार हृदय में रखकर संसार के भय और शोक को निवारण करनेवाले नाना प्रकार के चरित्र किये।

कहौं सुनौं रघुपति प्रभुताई * जो पुरान ऋषि नारद गाई
रामचन्द्रमहिमा अति भूरी * सो बरनत कवि मन कदरूरी

महर्षि नारदजी ने श्रीरामचन्द्रजी की प्रभुता पुराणों में गाई है, उसे मैं कहता हूँ, सुनो। रामचन्द्रजी की महिमा बहुत ही बड़ी है। उसे वर्णन करने में कवियों के मन भी कचिया जाते हैं।

मैं मतिमन्द कहौं किहि भाँती * सोहत काग कि हंस सुपाँती
सुनियनपुहुँमिकतहुँ अघकाना * पढ़हिं चतुर नर वेद पुराना

उन्हें मैं मतिमन्द किस प्रकार कहूँ? क्या कौआ भी हंसों की पंक्ति में शोभा पा सकता है? राम-राज्य में कानों से पाप का नाम भी नहीं सुना जाता था। चतुर मनुष्य वेद, पुराण पढ़ते थे।

गावहिं प्रभुगुनगन भयहारी * निन्दहिं अमरलोक नर-नारी
आज्ञा मातु पिता गुरु करहीं * तप मख दान करहिं हरि भजहीं

संसार-भय को हरनेवाले भगवान् के गुणों को गाते हुए स्त्री-पुरुष देवलोक की भी

निन्दा करते थे, अर्थात् स्वर्ग को भी तुच्छ समझकर उसकी चाह नहीं करते थे। सब अपने माता, पिता और गुरु की आज्ञा का पालन करते और तप, यज्ञ, दान करते हुए रामचन्द्रजी का भजन करते थे।

प्रजा अनन्द राज प्रभु केरे * मानहु सक्र कुबेर घनेरे
राजत सब रनिवास अनन्दा * सुखी चकोर लखतजिमिचन्दा

श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में प्रजा ऐसी आनन्दित थी, मानो वे अनेक इन्द्र और कुबेर थे। सब रनिवास प्रसन्नचित्त शोभित था। जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर चकोर आनन्दित होता है, वैसे ही रानियाँ रामचन्द्र को देखकर सुखी होती थीं।


रघुबर राज बिराज अति, सकल अवनि अघ भाग।
बिचरहिं मुनि कानन बिपुल, बसहिं सहित अनुराग ॥

श्रीरामजी के राजा होते ही पृथ्वी का सब पाप भाग गया। मुनीश्वर लोग प्रेम और अनुराग से वन में विचरने और प्रीति से रहने लगे।

मही सुहावन कानन चारू * खग मृग इकसँगकरहिं बिहारू
बैर न सुनिय राम के राजा * मिलिबिचरहिंबनसकलसमाजा

पृथ्वी सुहावनी और वन सुन्दर हो गये। उनमें पशु, पक्षी और मृग एक साथ विहार करते थे। श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में पशु-पक्षियों में भी वैर का नाम नहीं सुनाई पड़ता था। सब एक साथ मिलकर वन में घूमते थे।

नाना ग्रंथ स्मृति समुदाई * सकहिं न गाय रामप्रभुताई
सादर कोटि कोटि अहिईसा * अगनित चतुरानन गौरीसा

बहुत-से ग्रन्थ और बहुत-सी स्मृतियाँ भी रामचन्द्रजी की प्रभुता को नहीं गा सकतीं, आदरसहित करोड़ों शेष, अनन्त ब्रह्मा व महादेव—

जहँ लगि जग कोविद कबिराई * रामराज गुन नहिं सक गाई
असित आदि कज्जलगिरिभूरी * पात्र समुद्र मसी भरि पूरी

और संसार में जितने पण्डित और कवि हैं, वे रामराज्य के गुणों का बखान नहीं कर सकते। अगर कज्जलगिरि आदि पहाड़ों की बहुत-सी स्याही बनाकर समुद्ररूपी दावात में भर दी जाय,

कर जु लेखनी सुरतरु डारी * सप्तद्वीप महि पत्र बिचारी
सरसुतिहरिहर बिधिअरुसेसा * सहस कल्पसत लिखैं बिसेसा

उसमें कल्पवृक्ष की डाली की कलम बनाकर सातों द्वीप पृथ्वी का कागज बनावे और सरस्वती, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा और शेषनाग सौ हजार कल्प तक शीघ्रतापूर्वक विशेष रूप से लिखें,



सो० - तदपि न पावहिं पार, रामराज कौतुक अमित।
सुनु अब चरित अपार, जस खगपति आगे भयउ॥

तो वे भी श्रीरामराज्य के अनगिनती कौतुकों का पार नहीं पा सकते। हे गरुड़जी, अब जिस प्रकार आगे अपार चरित्र हुए, सो सुनो।

राजत राम सभा सह भाई * तहँ आयो इक द्विज बिलखाई
परुष बचन मुख कहत पुकारा * हंस बंस बूड़यो संसारा

एक समय रामचन्द्रजी भाइयों सहित सभा में बैठे थे कि एक रोता हुआ ब्राह्मण आया। वह मुख से कठोर वचन पुकारकर कहता था कि संसार से सूर्यवंश डूब गया।

रघु दिलीप अरु सगर नरेसा * अतुल प्रभाव भये अवधेसा
पितु जीवत सुत त्याग्यो प्राना * अन्तरजामी सुनु प्रभु काना

रघु, दिलीप और राजा सगर ये अयोध्या के राजा बड़े-बड़े प्रभाववाले प्रतापी हुए, किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि पिता के जीते हुए पुत्र मर गया हो। यह बात अंतर्यामी भगवान् ने कानों से सुनी।

नरलीला कर राम कृपाला * लगे बिचार करन तेहि काला
कारन कवन मृतक सुत भयऊ * द्विजदुख देखि बिकलप्रभुभयऊ

उस समय कृपालु रामचन्द्रजी मनुष्यलीला करके विचारने लगे। क्या कारण है, जो इस ब्राह्मण का पुत्र मर गया? ब्राह्मण का दुःख देखकर श्रीरामचन्द्रजी विकल हुए।

प्रभुचित देख गगन भइ बानी * सूद्र तपै सुनु सारँगपानी
बिन्ध्याचल गहवर बन जाहा * द्विजसुत मरन हेतु नरनाहा

भगवान् का मन देखकर आकाशवाणी हुई—हे शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले, सुनिए, शूद्र तपस्या कर रहा है। विन्ध्याचल पर्वत में, जहाँ अति सघन वन है, वहीं पर वह शूद्र है। हे राजन्, ब्राह्मण-पुत्र के मरने का यही कारण है।

छन्द

यहि भाँति द्विजसुतमृतक सुनि रथसाजि प्रभु आतुरचले।
दुइ परम सैल बिलोकि पावन मुदित चित सनमुख भले॥
पुनि क्रोधसंजुत बिसिख छाँड्यो सूद्रको सिर कटि गिर्‌यो।
वर भगति पावन जानि तेहि दै आपु तीरथ-ब्रत कर्‌यो॥

इस प्रकार ब्राह्मण के पुत्र का मरण सुनकर श्रीरामचन्द्रजी रथ सजाकर तुरन्त ही चले। आगे दो बड़े पवित्र पर्वत देखकर हृदय में अति प्रसन्न हुए। फिर क्रोधयुक्त हो बाण छोड़ा, जिससे उस तपस्वी शूद्र का सिर कटकर गिर पड़ा। भगवान् ने उसे पवित्र समझकर भक्तिरूपी वरदान दिया और स्वयं उस हत्या के प्रायश्चित्त के लिए तीर्थ-यात्रा की।



द्विजवर बालक मृतक सो, उठि बैठ्यो हर्षाय।
आये पुर रघुपति भगत, दुखभञ्जन सुखदाय॥

उस ब्राह्मण का मरा हुआ बालक उसी समय हर्षित होकर उठ बैठा, और भक्तों के दुःखनाशक और सुख देनेवाले भगवान् नगर में आये।

उठि रघुवर किय सन्ध्यावन्दन * पूजे सम्भु भगत-उर-चन्दन
भोजन सयन जगतपति कीन्हा * आयसु पुनि सबही कहँ दीन्हा

भक्तों को सुख देनेवाले भगवान् ने उठकर प्रातःकाल की संध्या और शिवजी का पूजन किया। फिर संसार के स्वामी ने भोजन करके शयन किया, और सबको सोने की आज्ञा दी।

रह्यो दिवस जब घटिका चारी * सभा जुरी तब आय खरारी
सुनि पुरान प्रभु अनुज समेता * सन्ध्या भई दान सुभ देता

जब चार घड़ी दिन रह गया, तब श्रीरामचन्द्रजी की सभा लग गई। भगवान् ने छोटे भाइयों सहित पुराण सुने। जब सन्ध्या हो गई, तब उत्तम दान देना शुरू किया।

भवन चले प्रभु आयसु पाई * सबही सन्ध्या कीन्ह सुहाई
दूत अवध निसिबासर धावहिं * आय साँझ सब खबरि सुनावहिं
पृथक पृथक सुनि चरबर बानी * बोल न एक सो सुनहु भवानी

श्रीरघुनाथजी की आज्ञा पाकर सब लोग अपने-अपने घर को चले। सभी ने पवित्र सन्ध्या की उपासना की। अयोध्यापुरी में रात-दिन राजदूत घूमा करते और शाम को आकर सब हाल प्रभु को सुना देते थे। एक दिन सब चतुर दूतों के मुख से रामचन्द्रजी ने अलग-अलग समाचार सुने। हे पार्वती, सुनो, उनमें से एक दूत ने कुछ नहीं कहा।

छन्द

कछु कह्यो नाहिं तेहि पूछि सादर बचन बेगि न आवही।
इक रजक पत्निहिं कहत डाँटत व्यंग बचन सुनावही॥
सुनि बचन कृपानिधान चर के मध्य उर राखत भये।
निसि सपन देखत जगतपति उठि जागि दारुन दुख छये॥

उस दूत के न बोलने पर श्रीरामचन्द्रजी ने उससे आदर सहित पूछा; परन्तु फिर भी उसके मुख से जल्दी वचन नहीं निकलते थे। बहुत पूछने पर उसने कहा—एक धोबी अपनी स्त्री को कड़े वचनों * द्वारा डाँटकर कहता था—मैं राम नहीं हूँ, जिन्होंने रावण के घर में रही हुई सीता को फिर रख लिया। तू मेरे घर से चली जा। कृपालु भगवान् ने दूत के वचनों को अपने हृदय में रख लिया और रात में भी वही स्वप्न देखा। जब प्रातःकाल जागे, तब बहुत दुखी हुए।

* एक धोबी की स्त्री घर से रुठकर भाग गई थी। उसके फिर लौट आने पर धोबी ने कहा, मैं अब तुझे अपने घर में नहीं रख सकता।


बीती अवधि प्रमान जुग, कीन्ह बिचार कृपाल।
इक सहस्र पितुराज को, भोगहुँ मैं इहिकाल॥

इसी समय अयोध्या में रहते हुए रामचन्द्र को एक युग का समय बीत गया। तब भगवान् ने विचारा कि पिता के राज्य को मैं एक हज़ार वर्ष तक और भोगूँगा।

त्यागहुँ जनकसुता बनमाहीं * राखौं स्रुतिपथ धर्म न जाहीं
करि मन तुरत सीय पहँ आये * सादर बोले बचन सुहाये

भगवान् ने मन में विचारा कि अब श्रीजानकीजी को त्यागकर, वेद की मर्यादा रक्खूँ, जिससे धर्म का लोप न हो। ऐसा चित्त में निश्चय करके रामचन्द्र तुरंत ही सीताजी के समीप आये और आदरसहित सुहावने वचन बोले—

निज छाया धरि इहाँ बिनीता * रहहु जाइ निज धाम पुनीता
प्रभुपद बन्दि गई नभ सोई * जीव चराचर लखी न कोई

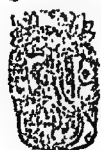
तुम अपनी विनीत छाया को पृथ्वी पर छोड़कर अपने पुनीत स्थान को चली जाओ। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को प्रणाम करके सीताजी आकाश को गईं जिसको चराचर जीवधारियों में से किसी ने नहीं देखा।

तेहि सन प्रभु अस कहा बुझाई * मनभावत माँगहु बर गाई
नाथ साथ मुनिधाम बिहाई * आयउँ तुव गृह मन सकुचाई

उस मायारूपी सीता से भगवान् ने समझाकर कहा कि तुम मनभाया वर माँगो। सीताजी ने कहा—हे नाथ, ऋषियों के स्थान को छोड़कर तुम्हारे घर आई हूँ, इससे फिर वहाँ जाने को कहते मन बहुत सकुचता है, अर्थात् उन्हें देखने की इच्छा होती है।

मुनितिय भूषन बसन सुहाये * पहिराये प्रभु जो मन भाये
हँसि कह कृपानिकेत सकारे * पूरैं मन अभिलाष तुम्हारे

तब श्रीरामचन्द्रजी ने मुनीश्वरों की स्त्रियों के उपयुक्त उत्तम वस्त्र और भूषण, जो सीता के मन को अच्छे लगे, वही उन्हें पहनाये। फिर दयानिधान ने हँसकर कहा—प्रातःकाल तुम्हारे मन की अभिलाषा पूरी होगी।


होत प्रात जब जगतपति, जागे रमानिवास।
जाचकगन गावत मुदित, लखि मुखकंजप्रकास॥

प्रातःकाल होते ही संसार के स्वामी लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी जागे। उस समय उनके मुखकमल के प्रकाश को देखकर याचकगण प्रसन्न होकर गुण गाने लगे।

भरत लषन रिपुदमन समेता * आये जहँ प्रभु कृपानिकेता
कीन्ह प्रनाम माथ महि लाई * बोले नहिं कछु श्रीरघुराई

फिर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न वहाँ आये, जहाँ कृपासागर थे। भूमि में सिर रखकर सबने प्रभु को प्रणाम किया; किन्तु श्रीरामचन्द्रजी कुछ नहीं बोले।

बदन बिलोकि ससंकितअङ्गा * श्रीहत देखि बपुष कर रङ्गा
थर थर काँपहिं तीनौं भाई * जानि न जाइ चरित रघुराई

उनकी देह को तेज से हीन और मुख को व्याकुल, शंकायुक्त देखकर तीनों भाई बहुत डरे। तीनों भाई थर-थर काँपने लगे। रामजी का चरित्र जाना नहीं जाता।

ऐंचि साँस अरु कुसमय जानी * बोले गूढ़ मनोहर बानी
सुनि लघु भाइ कहेउ रघुनाथा * लै बन जाहु जानकिहिं साथा

साँस चढ़ाकर और कुसमय जानकर रामचन्द्र गूढ़ और मन को हरनेवाली वाणी बोले। रघुनाथजी ने कहा—लक्ष्मण, सुनो; सीता को साथ लेकर वन को जाओ।

सूखि सहमि सुनि बचनकराला * जरेउ गात उपजी उर ज्वाला
हँसत कि साँच कहत रघुराई * असमंजस मन दुख अधिकाई

इस कराल वचन को सुनते ही सब भाई सकुचाकर सूख गये। उनकी देह जलने लगी और हृदय में ज्वाला उठने लगी। श्रीरघुनाथजी हँसी करते हैं या सच कहते हैं, इस दुविधा से उनके चित्त को बड़ा दुःख हुआ।

भरतादिक भ्राता बिकल, मुख आवत नहिं बैन।
जोरि जुगलकर सत्रुहन, भये नीर भरि नैन॥

भरत आदि भाई घबरा गये, उनके मुख से वचन नहीं निकलता। तब शत्रुघ्न ने दोनों हाथ जोड़े और उनकी आँखों में आँसू भर आये।

सुनिप्रभुबचनहृदय बिलखाना * जगतजननिसिय सब जग जाना
जगतपिता प्रभु सब उर बासी * जड़ चेतन घन आनँद रासी

श्रीरघुनाथजी के वचन सुनकर हृदय में घबराहट आ गई। शत्रुघ्न ने कहा—सीताजी तो जगत् की माता हैं, इस बात को सब संसार जानता है। प्रभु, आप संसार के पिता हैं और निरन्तर सबके हृदय में निवास करते हैं। जड़ और चैतन्य में व्याप्त सच्चिदानन्दघन और आनन्द की राशि हैं।

कारन कवन जानकी त्यागी * मन क्रमबचन चरन अनुरागी
सुनिप्रभु भ्रातनके मुख बानी * परम प्रीतिमय करुना सानी

क्या कारण है, जो इन्होंने मन, कर्म, वचन से चरणों की सेवा करनेवाली सीताजी को त्याग दिया? भगवान् ने भाइयों की परम प्रीतिमय और करुणा से भरी हुई वाणी सुनी।

पङ्कज नयन नीर भरि आये * कहिप्रियबचनअनुजसमुझाये
आयसु मम टारहिं जो ताता * रहइ न प्रान तात मम गाता

श्रीरामचन्द्रजी के कमल-समान नेत्रों में जल भर आया और उन्होंने मधुर वचन कहकर सब भाइयों को समझाया—हे भाई, जो तुम लोग मेरे वचन को टालोगे तो मेरे शरीर में प्राण न रहेगा।

विधि इच्छा भावी बलवाना * तुम कहँ तात सबै कल्याना
अस यह वचन पालु लघु भाई * प्रात जानकिहिं जाहु लिवाई

हे भाई, ब्रह्मा की इच्छा और होनहार बलवान् है। पर तुमको तो सदा सब तरह कल्याण ही है। हे छोटे भाई, मेरी इस आज्ञा का पालन करो और सवेरे जानकीजी को ले जाओ।



भरत कहेउ जुग जोरि कर, सुनि प्रभु वचन कठोर।
सुनि बिनती सर्बज्ञ प्रभु, नाथ हमहिं मति थोर॥

भरतजी प्रभु के ये कठोर वचन सुन दोनों हाथ जोड़कर बोले—हे सर्वज्ञ प्रभु, मेरी विनती सुनिए। हमारी बुद्धि बहुत थोड़ी है।

हंसबंस जग महँ बिख्याता * दसरथ पिता कौसिला माता
त्रिभुवनपति प्रभु सब जगजाना * गावहिं जाहि सेस स्रुति नाना

सूर्यवंश संसार में प्रसिद्ध है और आपके पिता दशरथ व माता कौशल्या हैं। तीनों लोकों के स्वामी आपको सारा संसार जानता है। आपके गुणों को शेषनाग और वेदों ने गाया है।

सत्य सक्ति तव प्रगट सुहाई * बरनि न सकहिं वेद अहिराई
सोभाखानि जगत की माता * रहित अमङ्गल मङ्गलदाता

आपकी सत्यशक्ति (तीनों लोकों में) प्रकट है, जिसका वेद और शेषनाग भी नहीं वर्णन कर सकते। शोभा की खान और संसार की माता सीताजी अमङ्गल-रहित और मंगल देनेवाली हैं।

छाया जेहि तिय पतिब्रत करहीं * तुमहिं बिहाय छनहु किमि भरहीं
बिनु जलमीन कि जियै कृपाला * कृषी कि रह बिनु बारिदमाला

जिनका अनुकरण करके स्त्रियाँ पतिव्रत धारण करती हैं, वे सीताजी आपके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकतीं। हे कृपालु, क्या जल के बिना मछली जी सकती है? या बादलों के बिना खेती रह सकती है?

जीवहिं छनतुमबिनुकिमि सीता * ज्ञानवन्ति अतिचतुर बिनीता
सुनि करुनामय वचन सप्रीती * कही भरत तुम सुन्दर नीती

बहुत ही चतुर ज्ञानवती और नीति जाननेवाली सीताजी आपके बिना क्षणभर भी कैसे जी सकती हैं? करुणा और प्रीति से भरे ये वचन सुनकर रामचन्द्र ने भरत से कहा—हे भरत, तुमने सुन्दर नीतिमय वचन कहे।



तदपि नृपहिं चाहिए सदा, राजनीति धन धर्म।
वसुधा पालहिं सोच तजि, वचन प्रीति सुचिकर्म॥

फिर भी राजा को सदा राजनीति, धन और धर्म की रक्षा करनी चाहिए और सोच को छोड़कर प्रेम के वचनों तथा पवित्र कामों के द्वारा पृथ्वी का पालन करना चाहिए।

दूतन कहा सो अपजस कहेऊ * कुलकलङ्क यह दारुन भयऊ
तरनिबंस नृप भये अनेका * एक एकतें निपुन बिबेका

फिर रामचन्द्र ने दूत के मुख से सुना हुआ समाचार कहकर कहा—भाई, यह हमारे कुल के लिए घोर कलंक हुआ है। इसे दूर ही करना चाहिए। देखो, सूर्यवंश में बहुत से राजा एक से एक ज्ञानी व बुद्धिमान् हो गये हैं।

स्वायम्भुवमनु रघु नृप जानौं * सगर भगीरथ बिरद बखानौं
दसरथ दीख सदा तुम नीके * वचन न टारेउ लालच जीके

स्वायम्भुव मनु, रघु, राजा सगर और भगीरथ की कीर्ति की प्रशंसा सब लोग करते हैं। राजा दशरथ को तो तुमने अच्छी तरह देखा है, जिन्होंने प्राणों के लोभ से भी वचन को न टाला।

तेहि कुल रञ्चक सुनत कलंकू * रहै जीव तौ अधम असंकू
सुनु सर्वज्ञ सकल अघहारी * बिनु कलङ्क हैं जनककुमारी

उस कुल में जरा भी कलंक सुनकर जो मेरे प्राण रह जायँ तो समझो कि मैं बड़ा ही नीच और शंकारहित हूँ। तब भरतजी ने कहा—हे सर्वज्ञ, आप तो अनेक पातकों को हरनेवाले हैं। सुनिए, यह जानकीजी कलंक से रहित परम पवित्र हैं।

बिधि हरि हरदिबिदेखि सुहाई * पावक प्रबिटि अनट सब भाई
जो सुर नर मुनि सपनेहु माहीं * यह चरित्र जग लखि हरषाहीं

भाई साहब, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवताओं ने अच्छी तरह से देखा और अग्नि के द्वारा आपने हर तरह से इनकी परीक्षा ले ली है। संसार में इस चरित्र को स्वप्न में भी देखकर देवता, मनुष्य और मुनीश्वर प्रसन्न होते हैं।



ते सठ रौरव नरक महँ, कोटि कल्प करि वास।
रहहिं कल्पसत रोगबस, भोगहिं नरक निवास॥

जो मूर्ख सीता को कलंक लगावेंगे, वे रौरव नरक में करोड़ कल्प तक वास करेंगे और सौ कल्प तक रोग से पीड़ित होकर नरक भोगेंगे।

रिस रुख देखि नयन करि तीछे * आयउ भरत लषन के पीछे
सुनु सौमित्र छाँड़ि हठ सोचू * जग भल कहै कहौ किन पोचू

रामजी के क्रोधभरे रुख को देखकर भरतजी नेत्र नीचे करके लक्ष्मणजी के पीछे चले गये। तब भगवान् ने कहा—हे सुमित्रानन्दन, हठ और शोच को छोड़कर सुनो। संसार चाहे भला कहे चाहे बुरा।

तजि आज्ञा प्रत्युत्तर करिहौ * मोहिं बिनुसोचजन्मभरि मरिहौ
जनकसुता रथ तुरत चढ़ाई * गङ्ग समीप फिरहु पहुँचाई

यदि आज्ञा को न मानकर कुछ जवाब दोगे तो मैं प्राण त्याग कर दूँगा और तुम मेरे न रहने पर जन्म भर सोच करोगे, इससे जनकनन्दिनी को जल्दी से रथ पर चढ़ाकर गङ्गाजी के निकट पहुँचाकर लौट आओ।

अति गहवर बन जहाँ न कोई * छाँड़हु तात जतन करि सोई
फेरहु तुम गति बचन उदासा * मरन ठानिकरि चलेउ निरासा

भाई, जानकीजी को बड़े सघन वन में, जहाँ कोई न हो, यत्न करके छोड़ आओ। तुम दुखी होकर मेरी बात को न टालो। तब लक्ष्मणजी अपना मरना ठान करके निराश होकर चले।

सुभग बिमान सीय बैठारी * भूषन पट बहु धरे सँभारी
अति अनन्दमन चली जानकी * अतिसयप्रिय करुनानिधानकी

लक्ष्मण ने जाकर सुन्दर रथ में सीताजी को बैठाया और बहुत-से गहने व कपड़े सँभालकर रक्खे। करुणानिधान रामचन्द्रजी की अत्यन्त प्यारी सीताजी मन में बहुत आनन्दित होकर चलीं।


बिबरन लषन निहारिकै, सोच बिकल भइ बाल।
हृदय बिचारनकहिसकति, मनिबिनुब्याकुलब्याल॥

पर लक्ष्मणजी को उदास देखकर वह सोच में ऐसी व्याकुल हो गईं, जैसे मणि के बिना साँप व्याकुल हो जाता है। वह मन में सोचती हैं; किन्तु कुछ कह नहीं सकतीं।

उतरि देवसरि यान सुहावा * देखत घन बन मन भय पावा
कारन अपर जानि भयभीता * बोलीं बचन मनोहर सीता

श्रीगङ्गाजी को उतरकर उत्तम रथ उस पार पहुँचा। तब घने वन को देखकर सीता के मन में भय पैदा हुआ। कोई दूसरा कारण समझकर सीताजी भय के साथ मन को हरनेवाली वाणी बोलीं—

दीखत नहीं मुनिन कर धामा * जात कहाँ प्रभु अनुज सकामा
खगमृग केहरि बिषधर ब्याला * करि बराह बृक बाघ कराला

हे स्वामी के छोटे भाई अर्थात् देवर, यहाँ मुनियों के आश्रम नहीं दिखाई पड़ते। तुम कहाँ और किस काम के लिए जा रहे हो? यहाँ तो पक्षी, हरिण, सिंह, विषधर, सर्प जंगली हाथी, सुअर, भेड़िए और भयावने बघेरे हैं।

सीता-परित्याग



(आकाशवाणी) सुनु सौमित्रि जाहु सिय त्यागी, जनकपुत्रिका जियहि सुभागी ।

कोउ मुनि मिलत न आवतजाता * निकसत प्रान तात मम गाता
सीयबिकललखिमनहिंअहीसा * कहन लगे कह कीन्ह बिधीसा

कोई मुनि आता-जाता नहीं दिखाई देता। हे तात, भय के मारे मेरी देह से प्राण निकलना चाहते हैं। जानकीजी को विकल देखकर लक्ष्मणजी मन में कहने लगे कि विधाता ने यह क्या किया!

मुर्च्छित रथ ते भे बिकराला * गिरत भूमि तब आप सँभाला
सिय बिलोकि मन धीरज आना * तृषा बिना अब निकसत प्राना

रथ में मूर्च्छा आ गई और वह दारुण दुःख के मारे पृथ्वी पर गिरने लगे; परन्तु आप ही सँभल गये। सीताजी को देखकर मन को धीरज हुआ और कहने लगे—प्यास के मारे अब प्राण निकले जाते हैं।



धरनिसुता ब्याकुल निरखि, प्रान कण्ठगत जानि।
तजन चहत तन सेस तब, धिकधिकजीवनमानि॥

लक्ष्मण के कंठगत प्राण जानकर सीताजी व्याकुल हो उठीं, बोलीं—(मेरे ही कारण) लक्ष्मण शरीर को छोड़ना चाहते हैं, मेरे जीवन को धिक्कार है!

देखि लषन सिय मुर्च्छा आई * गगनगिरा तब भई सुहाई
सुनु सौमित्रि जाहु सिय त्यागी * जनकपुत्रिका जियहि सुभागी

लक्ष्मणजी की दशा देखकर सीताजी को भी मूर्च्छा आ गई। उस समय सुहावनी आकाशवाणी हुई—हे सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, सुनो, सीताजी को छोड़ जाओ; सौभाग्य-शालिनी सीता जीती रहेंगी।

ब्रह्मगिरा सुनि धीरज कीन्हा * हाथ जोरि परदच्छिन दीन्हा
लै रथ चरन बन्दि सिय केरे * चले अवधपुर त्रास घनेरे

लक्ष्मणजी ने ब्रह्मवाणी को सुनकर धीरज धरा और हाथ जोड़कर सीता की परिक्रमा की। वह सीता के चरणों की वन्दना करके रथ लेकर बड़े भय के साथ अयोध्यापुरी को चले।

जागी सिया सकल दिसि देखा * नहिं रथ अस्व नहीं कहुँ लेखा
सहि दुख प्रथम रहे हैं प्राना * पुनि सोइ चहत न करनपयाना

(जब सीताजी जागीं तो चारों तरफ देखने लगीं। न वहाँ रथ था, न घोड़े, न कहीं लक्ष्मणजी। (तब दुःखित हो बोलीं—) ये प्राण पहले से ही दुःख सह रहे हैं, पर अब भी निकलना नहीं चाहते!

करुना करत बिपिन अतिभारी * बालमीकि आये बनचारी
पुत्री बालमीकि कह ज्ञानी * बन आवन निजचरित बखानी

जानकीजी वन में बहुत विलाप कर रही थीं, इतने में वाल्मीकि ऋषि घूमते हुए वहाँ आये। ज्ञानी वाल्मीकिजी ने कहा—हे पुत्री! वन में आने का अपना कारण कहो।



मुनि, पुत्री मैं जनक की, राम प्रिया जग जान।
त्यागन हेतु न जान कछु, विधिगति अति बलवान॥

सीताजी ने कहा—हे मुनि, मैं जनक की पुत्री और रामचन्द्रजी की पत्नी हूँ, जिनको संसार जानता है। परंतु मैं अपने छोड़े जाने का कारण कुछ नहीं जानती। विधाता की गति बहुत बलवान् है।

देवर लषन गये पहुँचाई * तब सब हेतु लख्यो मुनिराई
सुनु सीता मिथिलापति मोरा * परम सिष्य मम अरु पितु तोरा

मेरे देवर लक्ष्मणजी मुझे यहाँ पहुँचा गये हैं। तब मुनीश्वर (योग द्वारा) सब हाल जान गये (और बोले—) हे सीता, सुनो, तुम्हारे पिता जनक मेरे प्यारे शिष्य हैं।

चिन्ता अब जनि करसि कुमारी * मिलिहहिं तोहिं शेष हितकारी
सादर पर्नकुटी सिय आनी * करि मज्जन पुनि सब गति जानी

हे जनककुमारी, अब चिन्ता न करो। तुम्हें हितकारी लक्ष्मणजी मिलेंगे। आदरसहित सीताजी को अपने स्थान में ले आये और ध्यान धरकर फिर सब गति (हाल) जान ली।

बिबिध भाँति मुनि धीरज दीन्हा * सिय तब सुरसरिमज्जन कीन्हा
सुमिरि राम मूरति उर राखी * दीने फल मुनि आयसु भाखी

मुनिजी ने बहुत तरह से उन्हें धीरज दिया। तब सीताजी ने गङ्गाजी में स्नान किया। श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर उनकी मूर्ति को हृदय में धारण किया। तब मुनि ने भोजन के लिए उनको मीठे फल लाकर दिये और कहा—इन्हें खाओ।

मुनिवर कथा अनेक प्रसङ्गा * कहैं सुनैं सिय सङ्ग विहङ्गा
ज्ञान अनेक प्रकार दृढ़ाये * लछिमन अवधपुरी उत आये

मुनीश्वरजी बहुत तरह की कथाएँ कहकर सुनाते हैं और सीताजी पक्षियों के साथ (कथा) सुनती हैं। फिर मुनि ने बहुत तरह से उन्हें ज्ञान का उपदेश किया। उधर लक्ष्मणजी अवधपुरी में पहुँच गये।

छन्द

आये जो लछिमन त्यागि सीतहिं बिकल निज आस्रम गये।
बहु भाँति रोवत मातु सन कह सीय दारुन दुख दये॥
सुनिसहमिमुर्छितमातुबानी बिकल फनि जिमिमनिदये।
तिमि मातु बिलपति जानि व्याकुल कौसिलहि दुखनसमये॥

लक्ष्मणजी सीताजी को त्यागकर जब आये, तब व्याकुल होकर अपने घर को गये और माता के सामने बहुत तरह से रोने लगे कि सीताजी को बहुत भारी दुःख दिया गया है।

माता इस बात को सुनकर घबराकर ऐसी मूर्च्छित हो गईं, जैसे मणि के बिना सर्प हो जाता है। सब माताओं को इस तरह से व्याकुल और विलाप करती हुई जानकर रामचन्द्रजी दुखी हुए।

रोदति वदति बहु भाँति को कह बिपति यह दारुन अये।
सुनि सोर राउर सहित लछिमन राम निज मन्दिर गये॥
निज ज्ञान दिय समुझाय त्यहि तब खुले पट अन्तर नये।
हम जानि तुम सुत मान प्रभु जग भूलि भ्रम फंदन भये।

उनके विलाप को किस तरह कहें। सब लोग कह रहे थे कि बड़ा कठिन दुःख आ पड़ा है। इस कोलाहल को सुनकर रामचन्द्रजी लक्ष्मण को साथ लेकर अपने मन्दिर को गये और अपने ज्ञानोपदेश द्वारा माताओं को समझाया, जिससे उनके अन्तःकरण के किवाड़ खुल गये। वे कहने लगीं—हे प्रभु, हम तुमको अपना पुत्र समझकर भूल गईं, जिससे भ्रम के जाल में पड़ी हुई थीं।

अस कृपा करि जगदीस रघुवर देहु भगति सुहावनी।
जेहिं खोज मुनि जोगीस तापस परम अविचल पावनी॥
वर चहेउ सोइ सोइ दियो मातुहिं कारुनिक रघुपति तबै।
मन सोधकर निज जोग पावक तजो तनु सादर सबै॥

हे जगत के स्वामी रामचन्द्र, अब कृपा करके हमें अपनी अच्छी भक्ति दो, जिस अविचल पवित्र भक्ति को मुनि, योगी और तपस्वी ढूँढ़ते हैं। जो जो वर माताएँ चाहती थीं, वही वर करुणानिधान रामचन्द्रजी ने दिये। तब सब माताओं ने मन को शुद्ध करके योग की अग्नि में आदर सहित अपने-अपने शरीर को त्याग दिया।

जोग अगिनि तन भसम करि, सकल गईं पतिधाम।
भरत सत्रुसूदन लषन, सोकसवन भे राम॥

योग की अग्नि में शरीर को जलाकर सब पति के लोक को गईं। उस समय भरत शत्रुघ्न, लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्रजी शोक के वश हुए।

विधिवत कर्म किये स्तुति गाये * प्रभु ते गुरु सादर करवाये
दीन दान पुनि कोटि प्रकारा * को अस कवि जग बरनै पारा

गुरु ने श्रीरामचन्द्रजी से वेद के कथनानुसार माताओं का क्रिया-कर्म विधिपूर्वक आदर-सहित करवाया। फिर रामचन्द्र ने करोड़ों तरह के दान दिये। संसार में ऐसा कौन कवि है, जो कहकर उनका अन्त पा सकता है?

धेनु वसन हाटक मनि हीरा * जटि गजमोतिन्ह कोटिक चीरा
पुनि परलोक हेतु धन धामा * दिये किये द्विज पूरन कामा

गऊ, वस्त्र, सोना, मणि, हीरों और गजमोतियों से जड़े हुए बहुत तरह के कपड़े और परलोक के लिए धन और मकान देकर रघुनाथ ने ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया।

रही न चाह जाचकन केरी * रङ्क धनद पदवी जनु हेरी
बेद पढ़हिं द्विज देहिं असीसा * चिरजीवहु कोसलपुर ईसा

माँगनेवालों की चाहना जाती रही, मानो कंगाल को कुबेर की पदवी मिल गई हो। ब्राह्मण वेदध्वनि करते हुए आशीर्वाद दे रहे हैं कि अयोध्यापुरी के राजा चिरकाल तक जीवित रहें।

राम दान दै सब बिधि तोषे * भये निबृत्त काज करि चोषे
गृह द्विज जाचक सकल सिधाये * अमित प्रकार राम सुख पाये

श्रीरामजी ने दान करके ब्राह्मणों को सब तरह से सन्तुष्ट किया और अच्छी तरह से काम करके निवृत्त हुए। समस्त ब्राह्मण व माँगनेवाले अपने-अपने घर को गये। तब रामचन्द्रजी सब तरह से सुखी हुए।



करहु अजय मख एक मुनि, अस्वमेध जग जान।
कलुष सकल सन्ताप हर, जगत परम सुखदान॥

(श्रीरामजी ने विचार किया कि) एक दिग्विजय करनेवाला जगत्प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ करूँ, जो समस्त पाप और दुःखों को दूर करके संसार को परम कल्याण देनेवाला है।

एक बार गुरु गृह अवधेसा * गये अनुज सँग सचिव खगेसा
कीन्ह दण्डवत पद सिर नाई * सादर हर्षि मिले मुनिराई

हे गरुड़जी, एक बार श्रीरामजी छोटे भाई और मन्त्री-सहित गुरुजी के घर गये और उनके चरणों में माथा रखकर प्रणाम किया। तब मुनिराज प्रसन्न होकर आदर सहित उनसे मिले।

देखि कुसल पूछी मृदुगाता * कुसल देखि तव पद जलजाता
गुरुपद बन्दि द्विजन सिर नाई * बैठे अमित असीसहिं पाई

कोमल शरीर (श्रीरामचन्द्रजी) को देखकर कुशल पूछी। श्रीरामजी ने कहा—हे स्वामी, आपके चरण-कमलों को देखकर सब कुशल ही है। गुरु के चरणों को प्रणाम करके राम ने अन्य ब्राह्मणों को सीस नवाया और बहुत-से आशीर्वाद पाकर बैठे।

कहत पुरान नवल इतिहासा * सुनत कृपानिधि परम हुलासा
भाइन राम अमित सुख दीन्हा * मुनि तन लख्यो प्रेमकर चीन्हा

महर्षि वशिष्ठजी पुराण और नवीन इतिहास कहने और दयासागर (श्रीरामजी) बड़े आनन्द से सुनने लगे। श्रीरामजी ने भाइयों को बहुत सुख व उत्तम शिक्षा दी और बड़े प्रेम से गुरुजी की ओर देखने लगे।

दोउ कर जोरि सच्चिदानन्दा * बोले बचन भानुकुलचन्दा

नाथ चरन तव सकल प्रसादा * भइ जग विदित मोरि मरजादा

सूर्यवंश में चन्द्रमा के समान सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर बोले—हे नाथ, आपके चरणों की कृपा से संसार में मेरी मर्यादा विदित है।



समय समुझि करुनायतन, सादर बचन बहोरि।
प्रभु अन्तरजामी करहु, सफल कामना मोरि॥

करुणानिधान श्रीरामजी उत्तम समय जानकर आदरसहित वचन बोले—हे सर्वज्ञ प्रभु! अब आप मेरी कामना को पूरा करिए।

तव प्रसाद जग जज्ञ अनेका * कीन्हे अधिक एक ते एका
नाथ सकल पुरजन मन कहहीं * देखन अश्वमेध अब चहहीं

आपकी कृपा से मैंने संसार में एक से एक बढ़कर बहुत से यज्ञ किये हैं। तो भी हे नाथ, सब नगरनिवासी मन में कहते हैं और अब अश्वमेधयज्ञ देखना चाहते हैं।

जस कछु आयसु दीजिय नाथा * सो सब करौं नाय पद माथा
तन पुलके सुनि बचन सप्रीती * कस न कहहु तुम सुन्दर नीती

हे स्वामी, जैसी आप आज्ञा देंगे, उसे मैं आपके चरणों को सीस नवाकर करूँगा। प्रेम भरे वचनों को सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो उठा। वह बोले—हे मर्यादापुरुषोत्तम, तुम सुन्दर नीति क्यों न कहो।

पूजिहि मन अभिलाष तुम्हारी * उठहु भरत अब करहु तयारी
सुनि मुनि बचन भरत रिपुदमनू * हर्षि सचिव लछिमन गृह गवनू
विविध प्रकार चरन करि सेवा * चले भरत सँग सब महिदेवा

तुम्हारी कामना पूरी होगी। हे भरत, अब उठो और चलकर तैयारी करो। मुनि के वचन सुनकर भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और मन्त्री प्रसन्न होकर घर को चल दिये। बहुत तरह से मुनि के चरणों की सेवाकर सब ब्राह्मण भरतजी के साथ चले।



सेवक पुरजन सचिव सब, सादर तुरत बुलाय॥
हाट बाट पुर द्वार गृह, रचहु बितान बनाय॥

तब राम ने सेवक, नगरनिवासी और मंत्री आदि सब लोगों को आदर सहित शीघ्र बुलाया और कहा कि नगर के बाजार, रास्ता, नगर-द्वार (किले का फाटक) और घरों में शामियाने तानकर उन्हें खूब सजाओ।

चले सकल किङ्कर सुनि बानी * सुनत बचन हरषीं सब रानी
रचहिं बितान अनेक प्रकारा * देखि अवध निज मति अनुसारा

इस बात को सुनकर सब सेवक चले और रानियाँ भी यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुईं

बहुत तरह के मण्डप बन गये। उस समय अयोध्या की शोभा को देखकर ब्रह्मा की बुद्धि भी हार गई।

लगे सँवारन गजरथ बाजी * सुनि सुर मगन दुन्दुभी बाजी
तुरत सचिव चर बिपुल बुलाये * कहि जय जीव सीस तिन नाये

हाथियों, घोड़ों और रथों को सब लोग साजने लगे, जिसे सुनकर देवता प्रसन्न होकर नगाड़े बजाने लगे। मन्त्री ने बहुत से सेवकों को शीघ्र बुलाया। उन्होंने आकर 'जय हो' कहकर सिर नवाया।

जाहु मुनिन के आस्रम माहीं * सादर न्यौत देहु सब काहीं
उहाँ राम पूछेव गुरुदेवा * आज्ञा देव करौं सोइ सेवा

मन्त्री ने उनको आज्ञा दी कि वन में मुनियों के आश्रमों में जाओ और आदर-सहित सबको न्योता दे आओ। वहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने गुरुदेव से पूछा कि आपकी जो आज्ञा हो, वही करूँ।

प्रभुमन की गति मुनिबर जानी * बोले अति सनेह बर बानी
पठवहु दूत जनकपुर आजू * आवहिं जनक समेत समाजू

मुनिश्रेष्ठ, प्रभु के मन की बात जानकर, बड़े स्नेह से, मीठी वाणी बोले—आज जनकपुर को एक दूत भेजो, जिससे राजा जनक समाज-सहित आवें।

सुनहु राम रघुबंसमनि, न्यौति सकल पुर जाति।
बरुन कुबेरहिं इन्द्र जम, पुनि मुनिबर सब ज्ञाति॥

हे रघुवंशमणि रामचन्द्रजी, सुनो, समस्त नगर और जाति के लोगों को और वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम तथा श्रेष्ठ मुनिमंडली को न्योता दो।

गुरु समेत प्रभु अवधहिं आये * देखि बनाव अमित सुख पाये
जनक नगर चर तुरत पठाये * देस देस के नृपति बुलाये

श्रीरामजी गुरुसहित अवधपुरी में आये और नगर की सजावट को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय मिथिलापुरी को शीघ्र ही एक दूत भेजा और देश-देश के राजाओं को भी बुलाया।

जाम्बवन्त सुग्रीव बिभीषन * अङ्गद नील द्विविद कुलभूषन
आये सब जहँ राम कृपाला * बरुन कुबेर इन्द्र जम काला

जाम्बवान्, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील और द्विविद, जो अपने-अपने वंश के भूषण थे, उन्हें बुलाया। वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमराज और काल, ये सब देवता कृपानिधान रामचन्द्रजी के पास आये।

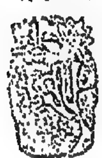
चढ़ि बिमान सुरनारि सिहाहीं * करहिं गान कलकंठ लजाहीं

आये मुनिवर जूथ घनेरे * देहिं कृपानिधि सुन्दर डेरे

विमान पर चढ़कर देवताओं की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर गाती हैं, जिसे सुनकर कोकिला भी शरमाती है। श्रेष्ठ मुनियों के बहुत-से समूह आये, जिन्हें श्रीरामजी ने (रहने के लिए) उत्तम स्थान दिये।

ससिहरहरिबिधिरबिसनकादी * आये सुर जे परम अनादी
बिस्वामित्र संग मुनि भारी * सहस सात ऋषि इच्छाचारी

चन्द्रमा, महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, सनकादिक और अनादि काल के सब देवता आये। विश्वामित्रजी के साथ सात हजार अपनी इच्छा से विचरनेवाले ऋषि आये।


पारासर भृगु अंगिरा, नारद ब्यास अगस्त्य।
नाना जूथप मुनि सकल, देवल सहित पुलस्त्य॥

पराशर, भृगु, अंगिरा, नारद, व्यास, अगस्त्य और सब मुनियों के समूह आये। देवल और पुलस्त्यजी भी आये।

मखथलवर अति दीख सुहाये * नाना भाँति देखि सुख पाये
मिथिलापुर जे दूत पठाये * देखि नगरबासिन मन भाये

यज्ञ का श्रेष्ठ स्थान बहुत सुहावना दिखाई दिया, जिसे देखकर बहुत तरह से राम ने सुख पाया। मिथिलापुर को जो दूत भेजा गया था, उसे देखकर वहाँ नगरवासियों के मन प्रसन्न हो गये।

द्वारपाल सब खबरि जनाई * अवध नगर सन पाती आई
सुनि बिदेह सहसा उठि धाये * तन मन पुलकि नयन जल छाये

द्वारपाल ने जाकर सब हाल राजा जनक से कह सुनाया कि अयोध्या से चिट्ठी आई है। यह सुनते ही राजा जनक तुरन्त उठकर चले। उनका शरीर पुलकित हो उठा और आँखों में आँसू भर आये।

भयो नृपति मन आनँद जेता * कहि न सकैं सारद अहि तेता
सिथिल अंग नृप द्वारे आये * देखि दूत अतिसय सुख पाये

राजा के मन को जितना आनन्द हुआ, उसे सरस्वती और शेषनाग भी नहीं कह सकते। राजा शिथिल अंग होकर आप ही द्वार पर आये और दूत को देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

कहहु कुसल रघुपति सब भाई * पत्रि देय सब कुसल सुनाई
हृदय राखि पुनि नयन लगाई * गद्गद कंठ न कछु कहि जाई

जनक बोले—श्रीरामजी अपने भाइयों-सहित आनन्द से तो हैं? दूत ने चिट्ठी देकर सब हाल कह सुनाया। जनक ने उस चिट्ठी को प्रेम से हृदय और नेत्रों में लगाया। प्रेम से उनका कंठ रुँध गया व मुख से कुछ कहा नहीं जाता।



भूप प्रेम तेहि समय जस, तस न कहहिं मतिधीर।
तुलसी भयउ उछाहबस, जय जय सबद गँभीर॥

उस समय राजा जनक को जैसा प्रेम था, उसका वर्णन कवि भी नहीं कर सकते। वह आनन्द में मग्न होकर ऊँचे स्वर से जय-जय शब्द कहने लगे।

बाँचत प्रीति न हृदय समानी * चर बर बोलि कही हँसि बानी
नगर गाँव पुर मंगल साजे * अमित अपार बाजने बाजे

चिट्ठी पढ़ते ही हृदय में प्रेम नहीं समाता। चतुर दूतों को राजा ने बुलाया और हँसकर कहा—नगर, गाँव और शहर में मंगल के साज सजाओ और बहुत तरह के बाजे बजवाओ।

सचिव बोलि नृप पाती दीन्हीं * उठि करजोरि विनय कर लीन्हीं
पढ़ी सचिव अति प्रेम अनन्दा * सुमिरि राम कोसलपुर चन्दा

फिर मंत्री को बुलाकर राजा ने वह चिट्ठी दी। उसने उठकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक चिट्ठी को ले लिया। मंत्री ने बड़े प्रेम और आनन्द से अयोध्या पुरी के चन्द्रमा-रूप श्रीरामजी का स्मरण करके उस चिट्ठी को पढ़ा।

घर घर खबरि ब्याप छनमाहीं * मंगलकलस साजि सब पाहीं
भयो अनन्द न जाय बखाना * कीन्हा विविध भाँति नृप दाना

बहुत जल्दी नगर-भर में यह खबर फैल गई। सब लोगों ने अपने-अपने घरों में मंगल के कलश सजाये। उस समय इतना आनन्द हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजा ने बहुत-सा दान दिया।

धरि तन देव अमित नभवासी * आये भूप नगर सुखरासी
कहहिं बचन नृप के हितकारी * चलो अवधसब काज बिसारी

बहुत-से स्वर्गवासी देवता मनुष्य की देह धारण करके सुख देनेवाले जनकपुर में आये। वे राजा से हितकारी वचन कहने लगे कि आप लोग सब काम छोड़कर अयोध्यापुरी को चलिए।



कहि कहि सुर सादर चले, बाहन रचे बनाय।
जोरि जुगलकर मुकुटमनि, अस्तुतिकरहिंसुभाय॥

ऐसा कहकर देवता लोग उत्तम विमान सजाकर आदर-सहित चले और राजाओं के सिरमौर जनकजी दोनों हाथ जोड़कर सुहावनी स्तुति करने लगे—

छन्द

सुमिरत चरन श्रीराम रघुकुलचंद सीतानायकं।
श्रीसहित अनुज समेत सुस्थिर बसहु ममउर लायकं॥

अम्भोजनयन बिसाल भाल कृपाल दसरथनन्दनं।
सत कोटि मार अपार सोभा अतुल बल महिमंडनं॥

हे रामचन्द्र, रघुकुलचन्द, सीतानाथ, हम आपके चरणों का स्मरण करते हैं। आप सीता और लक्ष्मण-सहित मेरे हृदय में सदैव निवास करिए। आपके नेत्र कमल के समान और मस्तक चौड़ा है। आप कृपा की खान और दशरथ-नन्दन हैं। आपकी अपार शोभा सौ करोड़ कामदेवों के समान है। आपके बल का अन्त नहीं है। आप पृथ्वी के आभूषण हैं।



पूजे बिबिध प्रकार नृप, सादर दूत हँकारि।
गुरुगृह गवनेउ मुकुटमनि, पाय पदारथ चारि॥

राजा ने दूतों को आदर-सहित बुलाया और बहुत तरह से उनका सम्मान किया। फिर राजाओं में शिरोमणि जनकीजी मानों चारो पदार्थों को पाकर (कृतार्थ होकर) अपने गुरु शतानन्द के घर गये।

सकल कथा महिपाल सुनाई * सतानन्द आनन्द अघाई
चलहु नृपति मख देखहिं जाई * साजहु जाय सकल कटकाई

राजा ने सब कथा (हाल) गुरुजी को सुनाई, जिससे शतानन्दजी आनन्द में मग्न होकर बोले—हे राजन्, चलो, यज्ञ को देखें। जाओ, सब सेना को सजाओ।

करि बिनती नृप मन्दिर आई * बाँचि पत्रिका सकल सुनाई
आनँदजुत सब करी बधाई * दिये दान महिदेव बुलाई

राजा (गुरु से) विनय करके राजमहल में आये और सबको चिट्ठी पढ़कर सुनाई। आनन्दसहित सबने धन्यवाद देकर ब्राह्मणों को बुलाकर दान दिया।

जाचक सकल अजाचक कीन्हे * सादर बोलि जुगल चर लीन्हे
बिलग बिलग सब पूछहिं बामा * सुने राम के पूरन कामा

राजा ने सब माँगनेवालों को बहुत-सा धन देकर संतुष्ट कर दिया, फिर आदरसहित दो दूत बुलाये। सब रानियाँ अलग-अलग पूछती हैं और श्रीरामजी के सब काम दूतों के मुख से सुनती हैं।

छन्द

सब काम पूरन राम के सुनि बिपुल बाजन बाजहीं।
पुर द्वार घर रखवार राखे सैन भट सब साजहीं॥
दस सहस सिंधुर षष्ठि सत रथ बाजि बरनत नहिं बनै।
जगमगत जीन जड़ाव रबिमनि देखि कबि कैसे भनै॥

चढ़ि सूर प्रबल प्रबीन जे असि चलत सब सादर भये ।
सुखपाल परम बिसाल दुइ चढ़ि गुरहिं लै आदर लये ॥
महि डोलि धसकत कमठ अहि दल देखि अमित बिदेह को ।
रथ जूथ पदचर अमित बरनहिं जगत अस कवि मूढ़ को ॥

श्रीरामजी के सब काम पूर्ण हुए सुनकर (नगर में) बहुत-से बाजे बजने लगे। नगर, द्वार और घर में रखवालों को रखकर योद्धा सब सेना को सजाने लगे। दस हजार हाथियों, छः सौ रथों और घोड़ों का वर्णन नहीं हो सकता। जगमगाती हुई जीन है, जिसमें सूर्यकान्तमणि जड़ी है। उसे देखकर कौन कवि वर्णन कर सकता है ? तलवार चलाने में कुशल योद्धा (घोड़ों पर) चढ़कर आदर-सहित चले। राजा जनक ने दो बड़े सुखपाल सजवाये और उन पर सादर गुरुजी-सहित चढ़कर चले। जनकजी की उस बड़ी सेना को देखकर पृथ्वी डोलने लगी, कच्छप और शेषजी घबराने लगे। रथ और पैदलों का समुदाय ऐसा अपार है, जिसे संसार में ऐसा कौन मूर्ख कवि है, जो वर्णन करने की चेष्टा करे ?


चल्यो राव मुनिगनसहित, बिपुल निसान बजाय ।
प्रात तीसरे पहर सों, अवध नगर नियराय ॥

राजा मुनियों-सहित बाजे बजवाकर चले और थोड़े ही दिनों में तीसरे पहर अयोध्या के निकट पहुँच गये।

पुर बाहर सरजू सुचि तीरा * बास दीन हर्षित रघुबीरा ॥
सौंपि अनुज कहँ राजसमाजू * आये प्रभु जहँ नृपमनिराजू ॥

प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी ने पुरी से बाहर पवित्र सरयू के किनारे रहने के लिए स्थान दिया। लक्ष्मणजी को राजसमाज सौंपकर रामचन्द्रजी राजाओं के शिरोमणि जनकजी के पास आये।

मिलि पुनि नृपति निकट बैठारे * गदगद ह्वै मृदु बचन उचारे ॥
बदनमयंक निरखि सब गाता * आनँद मगन न हृदय समाता ॥

फिर राजा ने मिलकर पास बिठा लिया और गद्गद वाणी से पुलकित होकर मीठे वचन बोले। चन्द्र-सा मुख और सब शरीर को देखकर प्रसन्न हो गये, हृदय में आनन्द नहीं समाता था।

प्रभु बिनीत सब करि सेवकाई * सचिव भरत पुनि लिये बुलाई ॥
नृपसेवा सब भरत सँभारी * सुनु खगपति जस कीन्ह खरारी ॥

फिर नीतिचतुर भगवान् ने सबकी विनती और सेवा कर मंत्री और भरत को बुलाया। हे पक्षिराज, राजा (जनक) की सब सेवा का कार्य भरत को सौंप दिया। फिर श्रीरामजी ने जो किया, सो सुनो।

आय गुरुहिं सादर सिर नाई * मनभावत आसिष तिन पाई

पुनि प्रभु सकल देव गुरु बन्दे * अभिमत आसिष पाय अनन्दे

आकर आदरसहित गुरु को शीश नवाया और मनचाहे आशीर्वाद पाये। फिर प्रभु ने सब देवताओं को और गुरुमंडली को प्रणाम किया और इच्छानुसार आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए।



दस सहस्र मुनिवरसहित, आये प्रभु मखधाम।
बोले बचन बिनीत गुरु, मंत्र सुनहु मम राम॥

दस हजार श्रेष्ठ मुनियों-सहित भगवान् यज्ञमण्डप में आये। तब गुरु वशिष्ठजी नीति-सहित वचन बोले—हे रामजी, मेरे वचन सुनो—

धर्म सकल जेहि बेद बखाने * संत पुरान लोक सब जाने
बिनु तिय नहिं फल होय खरारी * अब चहिए मिथिलेसकुमारी

जिस धर्म का वेदों ने वर्णन किया है, उसे संत, पुराण और सब लोग जानते हैं। हे रामचन्द्र, बिना स्त्री के यज्ञ का फल नहीं हो सकता, इसलिए अब जानकीजी का होना आवश्यक है।

सुनि मुनिबचन मौनगहि रहेऊ * सत्य असत्य न एकौ कहेऊ
मम प्रन बिरद जान मुनिराया * रहै सुकृत जेहि करहु सुदाया

रामजी मुनि के वचनों को सुनकर चुप रह गये; सच व झूठ कुछ भी न कहा। हे मुनिराज, कृपा करके ऐसा करिए—जिससे मेरी प्रतिज्ञा और यश न जाय।

द्वै गुरु मिलि नारद सनकादी * बचन कहेउ सुनु परम अनादी
कनक जटित मनि सुन्दरबाला * रचि सियरूप सुसील बिसाला

दोनों ओर के गुरु, नारद और सनकादि ने मिलकर ये वचन कहे कि हे परम अनादि पुरुष, सुनिए, सीताजी के समान रूपवती और सुशील मणिजटित स्वर्ण की सुन्दर स्त्री बनाओ।

अंग अंग सब भूषन साजे * तासु रूप लखि रतिपति लाजे
सहसा लखि न सकहिं नरनारी * सिय देखेउ सब अचरज भारी

उनके अंग-प्रत्यंग में उत्तम गहने इस तरह सजाओ कि उस रूप को देखकर रतिसहित कामदेव भी लज्जित हो। स्त्री-पुरुष कोई भी उस मूर्ति को जल्दी से पहिचान न सका कि यह नकली सीता है। सीताजी को देखकर सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।



तेहि अवसर सोभा अमित, को कबि बरनै पार।
जगदाधार कृपाल प्रभु, कीन्हे चरित अपार॥

उस अवसर की अपार शोभा को वर्णन करके कौन कवि पार पा सकता है? जगत् के पिता, कृपालु भगवान् ने अपार चरित्र किये।

जटित कनक सुन्दर मृगछाला * तेहि आसन आसीन कृपाला
सियासहित लखि सुर मुसुकाहीं * कीन्ह प्रनाम सबन हर्षाहीं

सोने के जड़े हुए आसन पर सुन्दर मृगछाला बिछा हुआ था और उस पर कृपा के धाम श्रीरामजी बैठे हुए थे। सीताजी-सहित भगवान् को देखकर देवता मुस्कराने लगे और प्रसन्न होकर सबने प्रणाम किया।

भीर अपार देखि गुरु ज्ञानी * ऋधिसिधिबोलिसकलसनमानी
कहा जाय जो उचित सो करहू * जो जेहि चाहिय सकल अनुसरहू

ज्ञानी गुरु ने बहुत बड़ी भीड़ देखकर ऋद्धि-सिद्धियों को आदर से बुलाकर कहा—जाकर जो उचित हो सो करो और जो वस्तु जिसे चाहिए उसे वह दो।

सुनि रजाय रघुपति रुख पाई * रचे कोटि गृह बिधिहु सिहाई
सुर सुरभी सुरतरु सुखखानी * सारद सेस न सकहिं बखानी

यह आज्ञा सुनकर और श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर वे कोटि और घर बनाने लगीं, जिन्हें देखकर ब्रह्मा भी सराहने लगे। देवताओं की गऊ कामधेनु और कल्पवृक्ष सबके घर में हो गये, जिनका वर्णन न सरस्वती और शेष भी कर नहीं सकते।

पुर गृह बाहर गली अटारी * भरि सुगन्ध सब रची सँवारी
रहे तहाँ दिसिपाल अनेका * जे परमारथ निपुन बिबेका

नगर, घर, बाहर, गली और अटारी, इनको सजाकर सुगन्ध से भर दिया। वहाँ पर बहुत-से दिशाओं के रक्षक नियत कर दिये, जो परोपकार के कामों में और ज्ञान में बहुत ही निपुण थे।

छन्द

जे निपुन परम बिबेक पावन भरत लै राखे तहीं।
निजभाग्य प्रबल सराह निदरहिं धनद की पदवीसही॥
आये त्रिलोकी नाग खग सुर असुर जे बिधिने रचे।
सनमानि सकल सनेह सादर रामसन कोउ नहिं बचे॥

जो ज्ञान में बड़े चतुर और पवित्र थे, उनको भरतजी ने वैसे ही स्थान पर रक्खा। वे अपने भाग्य की प्रबलता को सराहते थे, और कुबेर की पदवी को भी अपने वैभव से नीचा दिखाते थे। तीनों लोक के नाग, पक्षी, देवता, राक्षस और जो ब्रह्मा के बनाये जीव थे, उनमें से कोई ऐसा नहीं था, जिससे श्रीरामचन्द्रजी प्रेम और आदरसहित न मिले हों।

दोहा

जुग सहस्र जे बिप्रबर, सुन्दर परम प्रबीन।
जानहिं स्रुतिकर मत सकल, रहिमखसंग अधीन॥

दो हजार उत्तम ब्राह्मणों को, जो बड़े चतुर और वेद के मत को जानते थे, उस यज्ञ में वरण किया गया।

मकरमास ऋतु सिसिर सुहाई * मखमंडल बैठे रघुराई
तब बोले गुरु बचन सुहाये * आनहु बाजि जो बेद बताये

माघ मास की सुहावनी शिशिर ऋतु में श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ-मण्डप में बैठे। तब गुरुजी उत्तम वचन बोले कि एक सुलक्षण घोड़ा लाओ, जैसा कि वेद ने कहा है।

लछिमन सुनु गुरु बचन अनन्दे * बार बार पदपंकज बन्दे
हयसाला सादर चलि आये * बिबिध बिभूषन तेहिं पहिराये

लक्ष्मण गुरुजी के वचनों को सुनकर प्रसन्न हुए। बार-बार उनके चरणकमलों को नमस्कार कर शीघ्र ही घुड़साल में पहुँचे। बहुत-से आभूषण घोड़े को पहनाये।

स्वेत बरन सुन्दर स्रुतिकारी * रबिहय निदरि मनोज सँवारी
जीन जराव न जाय बखाना * चढ़ि रबिरथ आवत जगजाना

वह सफेद रङ्ग का उत्तम घोड़ा था, जिसके कान काले थे, जो सूर्य के घोड़ों को भी लज्जित करता था। ऐसा जान पड़ता था, मानो उसे कामदेव ने ही बनाया है। उसकी जड़ाऊ जीन का वर्णन नहीं हो सकता। संसार को ऐसा जान पड़ा, मानो स्वयं सूर्यदेव रथ पर चढ़े हुए आ रहे हैं।

माथे मोरपंख मनि लागे * सोइ नभ नखत देव अनुरागे
सेवक चारु पाटमय डोरी * दामिनि दमकि निपट अतिथोरी

मस्तक में मणियों-सहित मोर का पंख शोभायमान था। वही आकाश के तारे मालूम पड़ते थे, जिसे देखकर देवता प्रसन्न हो गये। सेवक के हाथ में उत्तम रेशम की डोरी थी, जिसके सामने बिजली की चमक भी बहुत ही तुच्छ मालूम होती थी।


साठि सहस दस बीरबर, रामानुज रनधीर।
मध्य ताहि आनेउ तहाँ, जहाँ राम रघुबीर॥

रणधीर लक्ष्मणजी साठ हजार वीरों के बीच उस घोड़े को श्रीरामचन्द्रजी के पास लाये।

पूजेहु हय प्रभु जय जग हेतू * जस कछु कहा गाधिकुलकेतू
दीन्ह बिबिधबिधि दान अनेका * लिखो पत्र सोइ करि अभिषेका

प्रभु ने संसारविजय करने के लिए, विश्वामित्रजी के कथनानुसार घोड़े का पूजन किया। बहुत तरह के दान दिये और घोड़े का तिलक करके एक पत्र लिखा—

एक बीर कोसलपुर माहीं * अरिदलदलन सुरेस सकाहीं
जेहि बल होइ गहे सोइ बाजी * दंड देहु बन जाहु कि भाजी

"अयोध्यापुरी में एक वीर शत्रुओं की सेना का नाश करनेवाला है, जिससे इन्द्र भी डरते हैं। जिसके बल हो, वह उसके इस घोड़े को पकड़े या दंड दे अथवा वन को भाग जाय।'

लिखि बाँधो हय सीस सँभारी * या सुन बचन चले मुनिचारी
भार्गव आदि सकल मुनिसंगा * रहे जहाँ रघुबंसपतंगा

ऐसा लिखकर घोड़े के मस्तक पर सँभारकर बाँध दिया। यह बात सुनकर बहुत-से मुनि चले। भृगु आदि मुनि इकट्ठे होकर रघुकुल-सूर्य श्रीरामचन्द्रजी के पास आये।

कथा सकल लवनासुर केरी * मुनिन त्रास जिन दीन घनेरी
सुनिऋषिवचन नयन जलछाये * बिहँसि राम निज त्रोन मँगाये

उन्होंने लवणासुर की सब कथा कही, जिसने मुनियों को बहुत दुःख दिया था। ऋषियों के वचन सुनकर श्रीरामजी के नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने हँसकर अपना तरकस मँगाया।

दीन्हे रिपुसूदनहि सोइ, बान अमोघ कराल।
मंत्र मोर पढ़ि ताहि हति, जीतहु सकल भुवाल॥

उससे बड़ी बाण शत्रुघ्नजी को दिया, जो अमोघ (निष्फल न जानेवाला) था। फिर कहा—मेरा मंत्र पढ़कर लवणासुर को मारना व सब राजाओं को जीतना।

बहुरि बिभीषन राम बुलाये * सादर आय माथ तिन नाये
लवनासुर के चरित अपारा * पूछेउ दिनमनिबंस उदारा

फिर श्रीरामजी ने विभीषण को बुलाया। उन्होंने आकर आदरसहित शीश नवाया। सूर्यवंश में उदार श्रीरामचन्द्रजी ने उनसे लवणासुर का हाल पूछा।

कर जुग जोरि निसाचरनाहा * सत्य कहौं अब सुनु अवगाहा
भगिनि बिमात्र नाथ सोइ मोरी * कुम्भनिसा तेहि नाम बहोरी

राक्षसों के राजा विभीषण ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—हे महाराज, सब सत्य कहता हूँ, सुनिए। हे नाथ, मेरी एक सौतेली बहन थी, जिसका नाम कुंभीनसी था।

मधु दानव कहँ रावन दीनी * बहु बिनीतिकर बिनय बसीनी
तनय तासु लवनासुर भयऊ * सिवसेवा सादर मन दयऊ

रावण ने मधु दानव को बहुत विनती और नम्रता के साथ उसे ब्याह दिया। उसी का पुत्र लवणासुर हुआ, जिसने आदर-सहित महादेवजी की सेवा में मन लगाया।

अगम तासु तप संकर जाना * दीन्ह त्रिसूल सुकृपानिधाना
जेहि कर रहै अस्त्र यह भारी * चौदहभुवन जीति सब झारी

हे कृपानिधान, शंकरजी ने उसका अपार तप देखकर उसे एक त्रिशूल दिया और कहा, जिसके हाथ में यह भारी शस्त्र रहेगा, वह चौदहों लोकों में सबको जीतेगा।



तेहि बल प्रभु सो नहिं गनहि, अमरदनुज नरनाग।
जीति सकल बस कीन्ह सोइ, हठ पथ सबके लाग॥

हे प्रभु, उसी के बल से वह देवता, राक्षस, मनुष्य और नाग किसी को नहीं गिनता। उसने इन सभी को जीतकर अपने वश में कर लिया है, और सबको दुःख देता है।

तासु चरित सुनि मन मुसुकाने * रिपुहंतहि बल दै सनमाने
सैन सुभग चतुरंग बनाई * लिये साथ दोउ तनय सुहाई

उसका चरित्र सुनकर श्रीरामजी मन में हँसे और शत्रुघ्न को बल देकर सम्मानित किया। शत्रुघ्न ने उत्तम चतुरंगिणी सेना को सजाया और दोनों पुत्रों को साथ ले लिया।

सुनि प्रभु बचन निसान अपारा * तीन सहस्र हने इकबारा
धसकै बसुधा कुंजर गाजे * दस सहस्र रथ रविरथ लाजे

श्रीरामजी के वचन सुनकर तीन हजार नगाड़े एक साथ बजाये गये। हाथियों के गर्जने से पृथ्वी धसकने लगी। दस हजार ऐसे रथ सजाये गये, जो सूर्य के रथ को भी लज्जित करते थे।

पूरो संख चलो दलसाजी * अमित अकास दुन्दुभी बाजी
पुर बाहर सब अनी सँभारी * तनय जुगल लखि परम सुखारी

शत्रुघ्नजी जिस समय सेना को सजाकर और शंख बजाकर चले, उस समय आकाश में बहुत से नगाड़े बजने लगे। शत्रुघ्नजी ने नगर के बाहर सब सेना को सँभाला। उसमें अपने दोनों पुत्रों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

द्वादस निसि बीते मगमाहीं * पहुँचे जाय जमुन तट पाहीं
दिन प्रति दान देहिं बहु भाँती * प्रभुपद पूजैं दिन औ राती

रास्ते में बारह रात टिककर यमुना के किनारे पहुँचे। वह प्रतिदिन बहुत तरह के दान देते और रात-दिन प्रभु के चरणों की पूजा करते थे।

रबितनया पद बन्दिकै, सादर पूजि पुरारि।
चलेउ सत्रुसूदन सुमिरि, स्वामिहिं राम खरारि॥

शत्रुघ्नजी ने यमुनाजी के चरणों की वन्दना करके आदर-सहित श्रीसदाशिवजी का पूजन किया और फिर अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके चले।

चमू चपल अति सुभट जुझारा * घेरेउ नगर बीर बरियारा
बिपुल निसान हने तेहि काला * सुनि निसिचरपति गर्ब बिसाला

चपल सेना और बली योद्धाओं ने जाकर वीर लवणासुर के नगर को घेर लिया। उस समय बहुत-से युद्ध के बाजे बजने लगे, जिनका शब्द सुनकर निशाचरों के राजा लवणासुर को बड़ा अभिमान हुआ।

साठि सहस दस सूर जुझारा * लवनासुर सँग अनी अपारा
सुभट प्रचारत गर्जत आवा * देखि कटक निज अति सुख पावा

लवणासुर के साथ साठ हजार जुझाऊ योद्धाओं की अपार सेना थी। वह योद्धाओं को ललकारता और गर्जता हुआ आया और अपनी सेना को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

मारहु खावहु नृप धरि बाँधहु * जेहि जय होय जतन सोइ साधहु
अस कहि सनमुख सैन चलाई * कज्जल गिरि जनु आँधी आई

वह कहने लगा—मारो, खाओ और राजा को पकड़कर बाँध लो। जिस तरह से विजय हो, वही उपाय करो। ऐसा कहकर उसने सेना को सामने चलाया, मानो कज्जल गिरि से आँधी आई हो!

मारू सब्द सुनहिं भट गाजहिं * बिपुल बाजने दुहुँ दिसि बाजहिं
निज प्रभु कहि जय जोरी जानी * हरषि भिरे भट मन हठ ठानी

मारू बाजों का शब्द सुनकर योद्धा गर्जने लगे। दोनों ओर बहुत-से बाजे बजने लगे। अपने-अपने स्वामी की जय बोलकर और अपने समान योद्धा चुनकर दोनों ओर के वीर प्रसन्नता से युद्ध करने लगे।

छन्द

हठ ठानि प्रबल प्रबीन जे असि भिरे अति रिपु प्रबल से।
इक मल्ल जुद्ध सराहि रोकहिं एक एकन कर खसे॥
सर सक्ति तोमर सूल परसु कृपान सूर चलावहीं।
कर चरन सिर हति तीर धारहिं भूमि जान न पावहीं॥

हठ ठानकर तलवार चलाने में चतुर योद्धा बलवान् शत्रुओं से भिड़ गये। कोई मल्ल-युद्ध की प्रशंसा करते एक दूसरे का हाथ पकड़कर रोकते हैं। वीर लोग बाण, शक्ति, तोमर, त्रिशूल, फरसा और तलवार चलाते हैं; हाथ, पैर, शिर काटकर बाण ही पर रोकते हैं, पृथ्वी पर नहीं गिरने पाते।

भटगिरहिंपुनिउठिभिरहिं धरुकहिकरहिंमाया अतिघनी।
प्रभुतनय सुन्दर बीर बाँके हनहिं रिपु निसिचर अनी॥
देखहिं परस्पर जुद्ध कौतुक सुभट एकहिं इक हनैं।
सजि कोटि रथ सुर आय नभपथ सुमनबर्षा करि भनैं॥

योद्धा गिरते हैं और फिर उठकर लड़ने लगते हैं। 'पकड़ो-पकड़ो' कहकर बड़ी माया करते हैं। शत्रुघ्नजी के बलवान बाँके पुत्र राक्षसों की बड़ी सेना का संहार करते हैं। योद्धा लोग आपस में युद्ध के कौतुक को देखते हुए एक दूसरे को मारने लगे। देवता करोड़ों विमान सजाकर आकाश-मार्ग में फूलों की वर्षा करके जय-जय कहने लगे।



बिचलत अनी बिलोकि निज, लवनासुर बरिबंड।
संग तनय मातंग भट, दूसर केत अखंड॥

बलवान् लवणासुर अपनी सेना को भागते देखकर वीर मतंग और अखंडकेतु नामक पुत्रों को अपने साथ लेकर आया।

अरिसुत जेठ सुबाहु बिसाला * भिरा मतंग हृदय जनु काला
जूपकेतु अरु केतु प्रचारी * लड़हिं सुखेन न मानहिं हारी

शत्रुघ्नजी के बड़े पुत्र सुबाहु के साथ मतंग काल के समान लड़ने लगा। दूसरे पुत्र यूपकेतु और केतु एक दूसरे को ललकारकर सुख से लड़ते हैं, हार नहीं मानते।

अनी समूह जानि निज जोरी * अस्त्र सस्त्र गहि भिरे बहोरी
बिषम जुद्ध लखि देव सकाने * पूछेउ सुरगुरु कहि मुसकाने

सेना के सब योद्धा अस्त्र-शस्त्र लेकर अपनी-अपनी जोड़ी से लड़ने लगे। इस बड़े युद्ध को देखकर देवता डर गये और बृहस्पतिजी से पूछने लगे कि किसकी विजय होगी? तब बृहस्पतिजी हँसकर कहने लगे।

जनि हिय सोच अमरपति करहू * रामप्रताप सुमिरि उर धरहू
जूपकेतु कर कोप अपारा * हन रिपुकेतु खंड महि डारा
इहाँ सुबाहु मत गहि मारा * कर पद काटि अवनि पर डारा

हे इन्द्र, मन में सोच मत करो। श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप को हृदय में स्मरण करो। यूपकेतु ने बहुत क्रोधित होकर रिपुकेतु को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। इधर सुबाहु ने भी मतंग को मार डाला और हाथ-पैर काटकर उसे पृथ्वी पर डाल दिया।

छन्द

महि डारि कर पद सीस आतुर तून सर प्रबिसत भये।
रबिबंस के अवतंस दूनों समर महि राजत भये॥
सुनि मरन जुग सुत बिकल निसिचर भूमि पर घुमित गिस्यो।
पुनि जागि सूल सँभारि प्रभु के समर सनमुख सो भिस्यो॥

वे बाण शत्रु के हाथ, पैर और शीश को काटकर पृथ्वी पर डालकर शीघ्रता से तरकस में प्रवेश कर गये और सूर्यवंश के भूषण दोनों बालक रणभूमि में शोभित हुए। लवणासुर अपने दोनों पुत्रों का मरना सुनकर व्याकुलता के साथ घूमकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर जागकर त्रिशूल लेकर युद्ध में शत्रुघ्नजी के सम्मुख लड़ने को चला।

दोउ प्रबल बीर प्रतापनिसिचर सैन दुहुँ दिसि मुरिचली।
सिर बाहु चरन उड़ात नभपथ जोगिनी आनँद भली॥
बहु रुधिर मज्जन करहिं सादर गहहिं नरसिरमालिका।
आनंद ह्वै मन मुदित गावहिं गीत खेचरबालिका॥

दोनों वीर बहुत बली व प्रतापी थे, इससे दोनों ओर की सेनाएँ घूम पड़ीं। शिर, हाथ, पैर कट-कटकर आकाशमार्ग में उड़ने लगे, जिससे योगिनियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उत्साह के साथ रुधिर की नदी में स्नान करके मनुष्यों के शिरों की मालाएँ गूथने लगीं। मन में आनन्द से मग्न होकर अप्सराएँ गीत गाने लगीं।

धुनि बढ़हिं संख मृदंग की सुनि सूर हर्ष बढ़ावहीं।
गति लेत निर्तत प्रेततिय सिरमाल हरहिं चढ़ावहीं॥
कहुँ करत पान प्रमान नर कहुँ भरी सोनित साकिनी।
सब मेद मांस अहार कर नभ मुदित डोलहिं डाकिनी॥

शंख और मृदंग की ध्वनि बढ़ने लगी, जिसे सुनकर वीर बहुत प्रसन्न होने लगे। प्रेतों की स्त्रियाँ गति के साथ नाचने लगीं और मुंडमालाएँ शिवजी के ऊपर चढ़ाने लगीं। कहीं शाकिनी मनुष्यों के रुधिर को पीने लगीं। कहीं डाकिनी सब चर्बी व मांस खाकर आकाश में प्रसन्नता से घूमने लगीं।


मारे रघुवर वीर बहु, परे समर रनधीर।
धनइक निसिचरवधनिरखि, अंतर हुव नखवीर॥

शत्रुघ्नजी ने बहुत-से रणधीर वीरों को मारा। वे सब युद्ध में गिर पड़े। राक्षसों का मरना देखकर बली राक्षस लवणासुर क्षण भर के लिए अंतर्द्धान हो गया।

करिछलप्रगटसोबिबिधबरूथा ❋ अस्त्र सस्त्र लै सब सुरजूथा
आये अज हरि सिव सनकादी ❋ जे मुनि अपर कहे स्रुतिवादी

और माया करके उसने अस्त्र-शस्त्रधारी देवताओं के बहुत-से समूह प्रगट किये। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सनकादि तथा अन्य मुनीश्वर, जो वेद के जाननेवाले थे, आये।

सक्ति सूल असि चर्म सुहाई ❋ गदा परसु धनु बान बनाई
धरु धरु मारु मारु सुर करहीं ❋ लरत न भट बिस्मित ह्वै रहहीं

शक्ति, त्रिशूल, तलवार, ढाल, गदा, कुल्हाड़ी और धनुष-बाण लेकर वे देवता "पकड़ो-पकड़ो", "मारो-मारो" ऐसा कहने लगे। यह सुनकर योद्धाओं ने लड़ना छोड़ दिया और चकित होकर इधर-उधर देखने लगे।

निसिचर प्रबल भये रघुनाथा ❋ केतिक धीर मलैं निज हाथा
सैनबिकल लखि नारद आये ❋ समाचार सब कहि समुझाये

जब राक्षस शत्रुघ्नजी की सेना से अधिक बली हो गये, तब कितने ही धीर योद्धा अपने हाथ मलने लगे। सेना को व्याकुल देखकर नारदजी आये। उन्होंने — —चार समझाकर कह दिया।

रिपुसूदनप्रभु बिसिख सँभारी * जोरि धनुष सुमिरे त्रिपुरारी
जिमि तम अँचै तरनि गो सोई * समर अमर नहिं दीसै कोई

शत्रुघ्नजी ने महादेवजी का स्मरण करके सावधानी से श्रीरामचन्द्रजी का दिया हुआ बाण धनुष पर चढ़ाया। जिस प्रकार सूर्य के निकलते ही अंधकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार युद्ध में कोई भी मायामय देवता नहीं दिखाई पड़ा।



मंत्र प्रेरि चल कोटि सर, रह जहँ तहँ नभ छाय।
मनहु बलाहक प्रबल बहु, मारुत देखि बिलाय॥

जब शत्रुघ्नजी ने मन्त्र को पढ़कर बाण चलाया, तब करोड़ों बाण निकलकर आकाश में इधर-उधर छा गये, (और माया इस तरह मिट गई) जैसे हवा के झोंकों से प्रबल बादलों का नाश हो जाता है।

सुरसमाज कतहूँ नहिं देखा * चलेउ सुबाहु काल जनु भेखा
खल सँभारु गहु सूल सुरारी * अस कहि गदा कोपि उर मारी

जब सुबाहु ने देवताओं का समूह कहीं नहीं देखा, तब वह काल के समान चला और बोला—अरे दुष्ट देवताओं के शत्रु, त्रिशूल को सँभालकर पकड़। ऐसा कहकर क्रोधित हो सुबाहु ने उसके हृदय में गदा का प्रहार किया।

सहि न सका सोइ तेज अपारा * मुर्च्छित अवनि परा बिकरारा
निजपति बिकल देखि भटभारी * धाये बहु कर सस्त्र सँभारी

वह उस गदा की कठिन चोट को न सह सका और व्याकुल तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने स्वामी को व्याकुल देखकर सब योद्धा हाथ में बहुत-से शस्त्र लेकर दौड़े।

कैटभ नाम बीर बलवाना * मुर्च्छित लवनासुर मन जाना
तीन सहस्र लिये रन गाढ़े * आइ सुबाहु सामुहे ठाढ़े

कैटभ-नामक वीर राक्षस अपने मन में लवणासुर को मूर्च्छित समझकर तीन हज़ार लड़ने में चतुर योद्धा साथ लिये सुबाहु के सामने जाकर खड़ा हुआ।

कटुक बचन कहि छाँड़ेसि बाना * तिन काटे सुबाहु बलवाना
तब खिसियान सूल लै धावा * जूपकेतु के सनमुख आवा

वह कटु वचन कहकर बाण छोड़ने लगा। उन बाणों को बलवान् सुबाहु ने काट डाला। तब राक्षस लज्जित हो त्रिशूल लेकर दौड़ा और यूपकेतु के सामने आया और—



मारेसि हृदय सँभारि, गिरे जपत करुनायतन।
मुर्च्छित बेर पुकारि, रामचन्द्र दिनमनितिलक॥

उस त्रिशूल को ताककर यूपकेतु की छाती में मारा, जिससे वे करुणासिन्धु सूर्यवंश के तिलक रामचन्द्रजी को स्मरण करते हुए मूर्च्छित हो गये।

मुर्च्छित बंधु सुबाहु बिलोकी * भे रिस अमित रहै नहिं रोकी
कठिन बान करि क्रोध अपारा * छाँड़ेउ तीनि सहस इकबारा

सुबाहु अपने भाई को मूर्च्छित देखकर बहुत क्रोधित हुए। उनका क्रोध रोके नहीं रुकता था। उन्होंने अपार क्रोध करके तीन हजार भयंकर बाण एक ही साथ छोड़े।

ताहि बिकल करि अनुजसमीपा * आतुर आये निजकुलदीपा
लाग्यो बान तासु उरमाहीं * पर्यो अवनितल सुधि कछु नाहीं

राक्षस को व्याकुल करके अपने कुल के दीपक छोटे भाई के पास जल्दी से आये। राक्षस के हृदय में ऐसे बाण लगे कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसे अपने तन की कुछ भी सुध न रही।

खैंचि सूल उर बाहर कीन्हा * राम नाम बर ओषधि दीन्हा
उठि सुचि अंग अनुज के संगा * लीन्ह बिहँसि धनु बान निषंगा

यूपकेतु ने सुबाहु के हृदय से त्रिशूल को निकाल लिया और रामनाम की श्रेष्ठ ओषधि दी। राम का नाम सुनते ही उनका शरीर पवित्र हो गया और वह उठकर धनुष-बाण व तरकस लेकर भाई के साथ हँसते हुए चल दिये।

आय समर महँ सुभट प्रचारा * बानते बिपुल देवअरि मारा
मुर्च्छा गत कैटभ बलवाना * रथ चढ़ाय तिहिं तुरत सिधाना

युद्धभूमि में आकर योद्धाओं को ललकारा और बाणों के द्वारा बहुत-से देवशत्रुओं को मारा। लवणासुर बलवान् कैटभ को मूर्च्छित देखकर उसे रथ पर चढ़ाकर शीघ्र ले गया।

दो०—कर उपाय रथ राखि तेहि, पठै भवन रनधीर।
आय समर गर्जत भयो, संग महाबल बीर॥

उधर लवणासुर ने उस योद्धा को रथ में चढ़ाकर बड़े यत्न के साथ घर को भेज दिया और अपने साथ बड़े पराक्रमी योद्धाओं को लेकर रणभूमि में गर्जने लगा।

जागा कैटभ पुनि घर जाई * आयो कुमक संग निज भाई
सूरबीर जेहि काल सकाई * हारेउ समर सुनहु खगराई

घर में जाकर कैटभ मूर्च्छा से जागा और अपने भाई की कुमक को साथ लेकर आया। वह इतना बलवान् योद्धा था कि उससे काल भी डरता था। हे गरुड़, सुनिए, वह भी इस लड़ाई में हार गया।

नायउ माथ आनि कर जोरी * तात समर रुचि पूजेउ मोरी
रावनरिपु लघु भ्राता जानू * तनय तासु बलरूपनिधानू

उसने जाकर हाथ जोड़कर लवणासुर को माथा नवाया और बोला—हे तात, आज युद्ध में मेरी इच्छा पूरी हुई। रावण के शत्रु रामचन्द्र के छोटे भाई और उनके पुत्र बल और रूप के सागर हैं।

कोटिन सूर समर हम मारे * बालक नृपति निरखि हिय हारे
रिपुगुन सुनि करिउर अति दापू * कह्यो करहु जनि हृदय बिलापू
रबितनया महँ सैनहि डारौं * तनय अनुज समेत रिपु मारौं

मैंने युद्धभूमि में करोड़ों वीर मारे हैं; परन्तु राजा के उन बालकों को देखकर मैं हृदय से हार गया। तब कैटभ शत्रु की प्रशंसा सुनकर और हृदय में बड़ा अहंकार करके बोला—तुम अपने मन में विलाप न करो। मैं सेना को यमुना में डाल दूँगा और भाई व पुत्र-सहित वैरी को मारूँगा।

छन्द

रिपु अनुज मारउँ सैन जमुनहि डारि नृप सिर नायऊ।
तजि सोच सैन सँभारि चलु भट बेगि जो अरि पायऊ॥
दोउ मत्त गर्ब बिसाल निसिचर आय रन गर्जत भये।
इत जूपकेतु सुबाहु सर धनु हाथ लै आतुर गये॥

शत्रुघ्न को मारकर और सेना को यमुना में डालकर राजा को शिर नवाऊँगा। वह सोच को छोड़कर सेना को सँभालकर शीघ्रता के साथ शत्रुओं के पास आया। दोनों बड़े अभिमानी और मतवाले राक्षस आकर लड़ाई में गर्जने लगे। इधर से यूपकेतु और सुबाहु हाथ में धनुष बाण लेकर शीघ्रता से आ गये।

भट भिरे निज निजजयति कहि निज जानजोरीसमर की।
सिर कटत खंडत चरन जोगिनि खात बालक बालकी॥
हठि गीध जंबुक काग सोनित पियहिं अति सुख पावहीं।
बहु दान देहिं अनेक मन महँ बिहँसि मंगल गावहीं॥

योद्धागण अपने-अपने स्वामियों की जय कहकर अपनी-अपनी जोड़ी के साथ युद्ध करने लगे। शिर और पैर कट-कटकर गिरते हैं, जिन्हें योगिनियों के लड़के व लड़कियाँ खाती हैं। गिद्ध, गीदड़, कौवे रुधिर को पीकर बहुत सुख पाते हैं और बहुत-सा रुधिर का दान देकर व मन में हँसकर मङ्गल-गान गाते हैं।



भिरे सूर सहरोष अति, फिरे आकरे क्रूर।
लागे लोहे रूप रह, समर धीर बर सूर॥

युद्धभूमि में दोनों ओर के वीर क्रोधसहित लड़ने लगे और कायर लोग भाग गये। लोहा बजने लगा और लड़ाई में धीर धरनेवाले पराक्रमी वीर लड़ने लगे।

कहहिं सूर किमि होत न ठाढ़े * फिरे लजाय क्रोध करि गाढ़े

भिरे प्रचारि सुभट समुदाई * भयो जुद्ध तेहि बरनि न जाई

भागे हुए वीरों से लड़नेवाले योद्धा कहते हैं कि तुम क्यों नहीं लड़ते ? तब वे शरमाकर, बहुत क्रोधित होकर लौट पड़े। योद्धाओं के झुंड ललकारकर लड़ने लगे। तब ऐसा घमासान युद्ध हुआ, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

बर्षहिं समर सूर सर कैसे * प्राविट समय जलद जल जैसे
हय पग उठे धूरि नभ छाई * भयो प्रदोष सुनहु खगराई

युद्ध-भूमि में इस प्रकार बाणों की वर्षा होती थी, जैसे बरसात में बादलों से जल बरसता है। हे पक्षिराज गरुड़, सुनिए। घोड़ों की टापों से धूल उड़कर आकाश में इस प्रकार छा गई कि अँधेरा हो गया।

समर देखि रिपु प्रबल प्रभाये * प्रभु समीप सादर सुत आये
देखि तनयबल बिपुलबिसाला * रिपुहन हर्ष मनुज सुर ब्याला

शत्रुघ्न के पुत्र लड़ाई में शत्रुओं का प्रबल प्रभाव देखकर शत्रुघ्नजी के पास आदरसहित आये। उन बालकों का अथाह बल देखकर शत्रुघ्न, देवता तथा नागों को प्रसन्नता हुई।

जातुधान बल बुद्धि गँवाई * निजपुर गये राज जस पाई
निसिनिसिचरसबबात बिचारी * होत प्रात पुनि लाग गुहारी

राक्षस लोग बल और बुद्धि को खोकर अपने नगर को गये और राजकुमारों ने यश पाया। रात में वे राक्षस सब बातों को समझकर सबेरा होते ही फिर युद्ध करने को चले।


साजि बाजि गज बाहनहिं, गहं गहं हने निसान।
आयो समर सकोप अति, लवनासुर बलवान॥

बलवान् लवणासुर ने बहुत क्रोध के साथ हाथी, घोड़े और सवारियों को सजाया तथा युद्ध के बाजों को बजाकर वह आप लड़ने को आया।

सिवहिं सुमिरि लै सूलबिसाला * रिपु बल धुस्यो मनहुँ जमकाला
छनक माहिं मारे बहु जोधा * चलो सकोप अनुज करि क्रोधा

लवणासुर महादेवजी का स्मरण करके बड़े त्रिशूल को लेकर शत्रुओं पर ऐसा झपटा, मानो काल के समान यमराज हो। क्षण-भर में बहुत-से योद्धाओं को उसने मार डाला और शत्रुघ्नजी की तरफ़ क्रोध करके चला।

आवत सूल हन्यो प्रभु छाती * गिरे घुमिरि अवनी रिपुघाती
मुर्छित देखि खड्ग लै धावा * निरखि सुबाहु क्रोध उर छावा

उसने आते ही शत्रुघ्नजी की छाती में त्रिशूल मारा, जिससे वे चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें मूर्छित देखकर वह तलवार लेकर दौड़ा। यह देखकर सुबाहु के हृदय में क्रोध छा गया।

प्रबल गदा रथ सारथि भंजा * बिहँसि महाबल रिपुदल गंजा
रथबिहीन व्याकुल मन माहीं * मुर्च्छित पर्यो अवनि सुधि नाहीं

सुबाहु ने अपनी विशाल गदा से लवणासुर का रथ तोड़कर सारथी को मार डाला। फिर पराक्रमी सुबाहु ने हँसकर बहुत-सी शत्रु-सेना का नाश किया। लवणासुर बिना रथ के व्याकुलता के साथ बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

पुनि उठि गर्जि सकोप सुरारी * अस्त्र सँभारि क्रोध करि भारी
उठे सत्रुहन मन अनुमाने * सादर सब हिय ते सनमाने
बिस्मित बिकल देव सब जाने * राम बान अति सादर ताने

फिर देवताओं का शत्रु लवणासुर उठकर क्रोध-सहित गर्जता हुआ अस्त्र को सँभालकर चला। शत्रुघ्नजी उठे और मन में विचार करके सबको प्रेम से सम्मानित किया। जब शत्रुघ्नजी ने अपनी सब सेना और देवताओं को व्याकुल देखा, तब बड़े आदर के साथ श्रीरामजी के दिये हुए बाण को धनुष पर चढ़ाया।



सुमिरि अवधपति चरन जुग, छाँड़े जुग नाराच।
परेउ अवनितन भिन्न ह्वै, व्याकुल बिकट पिसाच॥

अयोध्या के राजा श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का स्मरण करके उन्होंने दो बाण छोड़े जिससे उस बलवान् राक्षस का धड़ शिर से अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

तासु मरन सुनि सब सुरजूथा * चढ़ि बिमान नभ सकल बरूथा
बाजहिं दुंदुभि बर्षहिं फूला * आज नाथ बीते सब सूला

उसका मरना सुनकर बहुत-से देवताओं के वृंद विमानों पर चढ़कर आकाश में आये और नगाड़े बजाकर फूलों की वर्षा करके कहने लगे—हे नाथ, आज हमारे सब दुःख दूर हो गये।

जय जय धुनि सब देव सुकरहीं * बेद मंत्र पढ़ि आसिष बरहीं
जातुधानपति दीन बिलोकी * कैटभ पुनि रिस सक्यो न रोकी

तब देवता जय-जय कहकर, वेद के मंत्र पढ़कर आशीर्वाद देने लगे। राक्षसों के राजा लवणासुर को मरा हुआ देखकर कैटभ राक्षस अपने क्रोध को नहीं रोक सका।

करि किलकार गर्जि अतिघोरा * सिला एक लै आयहु जोरा
सर सत सैल सुबाहु प्रचारी * काटी दुष्ट भुजा महि डारी

वह क़िलकिलाकर बहुत ज़ोर से गर्जने लगा और एक बड़ी शिला को ले आया। सुबाहु ने ललकारकर सौ बाणों से उस दुष्ट की भुजाएँ काटकर पृथ्वी पर डाल दीं।

बदन पसारि ताहि तकि धावा * देव सुबाहु प्रबल पहँ आवा
खैंचि धनुष पुनि स्रवन प्रजंता * छोड़्यो बान सुबाहु तुरंता

तब वह राक्षस मुँह फैलाकर दौड़ा और पराक्रमी सुबाहु के समीप आया। फिर सुबाहु ने धनुष को कान तक खींचकर एक बाण छोड़ा,

काटि सीस तिहिं भूमि गिरावा * सुनासीर आतुर चलि आवा
जोरिजुगलकर अति अनुरागे * बोले वचन प्रेम रसपागे

जिसने उसका शिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय इन्द्र जल्दी से वहाँ आये और दोनों हाथ जोड़कर बड़े प्रेम के साथ ये वचन बोले—

हमहिं सहितसुर कीन्हसनाथा * अस्तुतिजोगि नाहिं हम ताता
अस्तुतिविनयसक्र पुनि कीन्हीं * बार बार बहु आसिष दीन्हीं

हे तात, आपने हम सब देवताओं का कष्ट दूर किया। हम आपकी स्तुति करने के योग्य नहीं हैं। फिर इन्द्र ने विनयपूर्वक स्तुति की और बहुत-से आशीर्वाद दिये।



देवन सहित सु देवगुरु, आये जहँ मख धाम।
समाचार सादर सकल, कहे सबन के नाम॥

उधर बृहस्पतिजी देवताओं के साथ रामचन्द्र के यज्ञ-मंडप में आये। उन्होंने आदर-सहित सब समाचार सुनाये और सबके नाम भी बताये।

तहँ जुग नगर रचे अति रूरे * राखे तनय जुगल बलपूरे
मथुरा नाम जगत जस जाना * दूसर बिस्व जो बेद बखाना

शत्रुघ्न ने वहाँ पर बहुत उत्तम दो नगर बसाये, जिनमें दोनों बलवान् पुत्रों को रक्खा। एक नगर का 'मथुरा' नाम है, जिसका यश संसार जानता है। दूसरे का नाम 'विश्व' रक्खा, जिसकी महिमा को वेद ने गाया है।

जेठ तनय बल-बुद्धि बिसाला * नाम सुबाहु विदित महिपाला
राखेउ जमुना तट बल भूरी * बिस्व नगर पच्छिम दिसि दूरी

सुबाहु नामक बड़ा पुत्र, जो बल और बुद्धि में भी बड़ा था, उसे यमुनातट पर मथुरा का राज्य दिया। बलवान् यूपकेतु को विश्व-नामक नगर का राज्य दिया, जो वहाँ से पश्चिम दिशा में दूर पर था।

जूपकेतु पुनि साथ रखावा * राजनीति दोउ सुत समुझावा
सौंपि नगर बहु आसिष दीनी * नृपमनिगवनविजयकहँ कीनी

शत्रुघ्न ने दोनों पुत्रों को राजनीति समझाकर यूपकेतु को अपने साथ लिया। शत्रुघ्नजी ने नगर सौंपकर आशीर्वाद दिया और विजय के लिए गमन किया।

चिरंजीव करि हन्यो निसाना * दच्छिन अस्व चला जग जाना
सचिव समेत राखि सुतसंगा * उतरे सब जल जमुन तरंगा

'चिरंजीव' कहकर बाजे बजाये। तब दक्षिण दिशा को घोड़ा चला, जिसको संसार जानता है। मंत्री-सहित पुत्र को रखकर सब सेना यमुना-जल की लहरों के पार हुई।



रवितनया कहँ बंदिकै, चली अनी हय संग।
हर्षित सूरसमूह अति, देखि सैन चतुरंग॥

यमुनाजी के चरणों की वंदना करके सेना घोड़े के साथ चली। वीरों के झुण्ड चतुरंगिनी सेना को देखकर बहुत प्रसन्न होकर चले।

बाल्मीकि थल सैन समेता * कानन घन गे कृपानिकेता
सिय सुत जुगल बीर बरबंडा * भुजबल अमित दिनेस प्रचण्डा

वे सेना-सहित उस घने वन में पहुँचे, जहाँ कृपानिधान वाल्मीकिजी का आश्रम था। वहाँ पर सीताजी के दोनों पराक्रमी पुत्र थे, जिनकी भुजाओं का अथाह बल सूर्य के समान प्रचण्ड था। उन बलवान् वीरों ने घोड़े को देखा।

बीर बली हय देख्यो आई * पत्र बँध्यो सिर बाँच्यो ताई
घोड़ा तिन तुरंत तरु बाँध्यो * नेकु विचार न उर में साध्यो

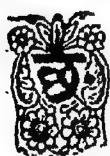
उन बलवान् वीरों ने घोड़े को आकर देखा और उसके शिर में बँधे हुए पत्र को पढ़ा। उन्होंने जल्दी से घोड़े को एक पेड़ में बाँध दिया, मन में तनिक भी विचार नहीं किया।

कटि कसि त्रोन हाथ धनु तीरा * समर हेतु उमँगे बलबीरा
सूर सहस्र साठि हय साथा * आय गये जहँ रघुकुलनाथा

तरकस को कमर में कसकर बाँधा और हाथ में धनुष-बाण लेकर वे बलवान् योद्धा लड़ाई के लिए तैयार हो गये। घोड़े के साथ साठ हजार योद्धा थे। वे भी उन राजकुमारों के पास आये।

तरु तर बाँध्यो बाजि बिलोकी * बालक जानि सकल रिस रोकी
देहु तुरग घर जाहु सुहाये * धन्य मातु पितु जिन तुम जाये
माँगहु भीख समर चढ़ि भाई * छत्रिय कुलहिं कलंक लगाई

घोड़े को पेड़ के नीचे बँधा हुआ देखकर उन कुमारों को बालक जानकर योद्धाओं ने क्रोध को रोक लिया और बोले—घोड़ा देकर कुशल से घर को जाओ। उन माता-पिताओं को धन्य है, जिन्होंने तुम्हें उत्पन्न किया है। कुमारों ने कहा—भाइयो, युद्धभूमि में आकर भीख माँगकर क्षत्रियों के वंश को क्यों कलंकित करते हो?



जनि छत्रिकुलहिं कलंक लावहु समरसूर सुहावने।
बलहीन तुरँग प्रबीन छाँड़यो धरा बिनु भट जानने॥
सुनि बचन कटुक कठोर बालक जानि भट धावत भये।
सर लागि एकहिं बार लव हँसि हने तन जर्जर भये॥

हे शोभायमान योद्धाओ, क्षत्रियों के कुल को कलंक मत लगाओ। यदि तुमने बिना बल के ही उत्तम घोड़ा छोड़ दिया तो क्या पृथ्वी को योद्धाओं से रहित समझा था? ऐसे

धन के अभिमान ने किसे नहीं बिगाड़ा ? प्रभुता ने किसे बहरा नहीं बना दिया ? ऐसा कौन है, जिसे हरिण के से नेत्रोंवाली स्त्री के नयनबाण न लगे हों ?

गुनकृत सन्निपात नहिं केही * को न मानमद ब्यापेहु जेही
जोबनजुर केहि नहिं बलकावा * ममता केहिकर जस न नसावा

माया के तीनों गुणों से होनेवाला सन्निपात किसे नहीं हुआ ? ऐसा कौन है, जिसे अभिमान का नशा न चढ़ा हो ? जवानी के ज्वर ने किसे नहीं तोड़ा ? ममता ने किसका यश नहीं नष्ट किया ?

मत्सर काहि कलंक न लावा * काहि न सोकसमीर डोलावा
चिन्तासाँपिन काहि न खाया * को जग जाहि न ब्यापी माया

ईर्षा-द्वेष ने किसे कलंक नहीं लगाया ? शोक के वायु ने किसे नहीं विचलित किया ? चिन्तारूप साँपिन ने किसे नहीं डँसा ? संसार में ऐसा कौन है जिसे माया न व्यापी हो ?

कीटमनोरथ दारुसरीरा * जेहि न लाग घुन को अस धीरा
सुत बित नारि ईषना तीनी * केहिकी मति इन कृत न मलीनी

ऐसा कौन धीर है, जिसकी लकड़ीरूप देह में मनोरथ का घुन न लगा हो ? पुत्र, धन और स्त्री, इन तीनों की चाह ने किसकी बुद्धि मैली नहीं की ?

यह सब मायाकर परिवारा * प्रबल अमित को बरनै पारा
सिव चतुरानन देखि डराहीं * अपर जीव केहि लेखे माहीं

इस माया के बड़े बलवान् परिवार को कौन कह सकता है ? शिव और ब्रह्मा भी इसे देख डर जाते हैं ; फिर दूसरे जीव किस गिनती में हैं ?



ब्यापि रहेउ संसार महँ, मायाकटक प्रचण्ड ।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ॥

संसार में माया की बड़ी घोर सेना फैल रही है, जिसके कपट, छल, कामदेव और पाखण्ड आदि योद्धा सेनापति हैं ।

सो दासी रघुबीर की, समुझे मिथ्या सोपि ।
छुटै न राम कृपा बिन, नाथ कहौं पद रोपि ॥

हे नाथ, यद्यपि माया भगवान् की दासी है और समझो तो झूठी भी है, परन्तु मैं पाँव रोपकर अर्थात् प्रण करके कहता हूँ कि बिना रामजी की कृपा के वह नहीं छूटती ।

सो माया सब जगहिं नचावा * जासु चरित लखि काहु न पावा
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा * नाच नटी इव सहित समाजा

जिसका चरित्र किसी ने नहीं लख पाया, उस माया ने सारे संसार को नचाया है । हे गरुड़, वही माया भगवान् की भौंह के इशारे से अपने समाजसहित नटी की भाँति नाचती है ।

फिर शत्रुघ्नजी के रथ, घोड़े और सारथी को मारकर उनके शरीर में करोड़ों बाण मारे। उनको मूर्च्छित करके राजा की सेना को मार डाला। तब बहुत-से गिद्ध मांस खाने लगे।



एकहि एक प्रचारिकै, हने सकल रन सूर।
आये तब रघुबीर पहँ, कायर करनी धूर॥

बालकों ने एक-एक को ललकारकर रण में सब वीरों को मार गिराया। तब डरपोक अपनी करनी को मिट्टी में मिलाकर रामचन्द्रजी के पास भागकर आये।

पूछेउ सकल भानुकुलनाथा * रिपु के सबन कहे गुनगाथा
मुनि बालक दोउ सैन सँहारा * रिपुहन आदि समर महँ डारा

श्रीरामजी ने उनसे सब कथा पूछी तो सभी ने शत्रु की प्रशंसा की। मुनि के दोनों बालकों ने सब सेना मार डाली और शत्रुघ्न आदि को युद्ध-भूमि में गिरा दिया।

रिपु बालकसुनि बिकलखरारी * बिकल होय पुनि कहेउ पुकारी
लछिमन संग जाउ दोउ भाई * मुनि बालक बाँध्यो बरियाई

श्रीरामचन्द्रजी शत्रुओं को बालक सुनकर व्याकुल होकर कहने लगे—हे लक्ष्मण, तुम दोनों भाई साथ जाओ और मुनिबालकों को बलपूर्वक बाँध लाओ।

मारेहु जनि आनेहु पुरमाहीं * ऋषिसुतबधन उचित नहिंकाहीं
चल्यो सेस सँग सैन अपारा * आयउ तुरत समर जेहि मारा

उन्हें मारना मत; किन्तु नगर में ले आओ। मुनि के बालकों को मारना उचित नहीं। लक्ष्मणजी बहुत बड़ी सेना लेकर चले और जल्दी से लड़ाई के मैदान में आकर कहने लगे—

लै घर जीव जाहु मुनिबालक * दिनकरबंस देव-द्विज-पालक
आँखिन ओट होहु अब ताता * लखि अति कोप बढ़त ममगाता

हे मुनि के बालको, तुम अपने शरीरों को बचाकर घर जाओ; क्योंकि सूर्यवंशी देवताओं और ब्राह्मणों का पालन करते हैं। हे तात, अब आँखों के सामने से हट जाओ; क्योंकि तुम्हें देखकर मेरे शरीर में बड़ा क्रोध होता है।



सुनि लछिमन के बचन तब, बिहँसे बालक बीर।
अनुज बिलोकहु जाय अब, प्रबल महारनधीर॥

वीर बालक लक्ष्मण के वचन सुनते ही हँसकर कहने लगे—हे महारणधीर, पहले भाई को जाकर देखो।

अनुज बिलोकि बचनसुनिकाना * धनुष चढ़ाय गहे कर बाना
बेस बिलोकि बाल मुनि जाना * निजकुल समुझि करों अनकाना

'भाई को देख आओ' ये वचन कानों से सुनते ही लक्ष्मण ने धनुष चढ़ाकर हाथ में

बाण लिया। परन्तु बालकों का वेश मुनियों का-सा देखकर वह सोचने लगे और अपने कुल की मर्यादा को विचारकर मन में सकुच गये।

निज सहाय सठ आन बुलाई * केवल तोहिं हते न भलाई
सुनि कुस कठिन बान संधाने * काँपी पुहुमि सेस अकुलाने

फिर बोले—हे शठ, अपने सहायकों को बुला लाओ; क्योंकि अकेले तुम्हें मारने से कोई भलाई नहीं है। यह सुनकर कुश ने तीव्र बाण धनुष पर चढ़ाया, जिससे पृथ्वी काँपने लगी और शेषजी घबरा उठे।

छूटे बिसिख रहे नभ छाई * भान भनु प्रतिबिंब छिपाई
रिपुहिं प्रबल लखि चल्यो स कोपी * डरा न मनहिं रहा रथ रोपी

उनके छोड़े हुए बाण आकाश में ऐसे छा गये कि बाणों से सूर्य का बिंब छिप गया। लक्ष्मणजी बड़े पराक्रमी शत्रु को देखकर क्रोध करके चले और निर्भयता से रथ को रोककर खड़े हो गये।

काटे बिसिख बिसिखसन भाई * कौतुक करहिं बिबिध खगराई
झपटि गदा लछिमन तब मारी * गिरयो भूमि कुस मुर्च्छित भारी

हे पक्षिराज गरुड़, बाण से बाण को काटकर वे अनेक प्रकार के कौतुक करने लगे। उस समय लक्ष्मणजी ने झपटकर एक गदा कुश के मारी, जिससे वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।



मुर्च्छित कुसहिं निहारि लखि, धाये लव करि सोर।
आवत ही सर उर हन्यो, गिरयो न महि बलजोर॥

कुश को मूर्च्छित देखकर लव गर्जते हुए दौड़े और आते ही लक्ष्मणजी की छाती में एक बाण मारा। परन्तु अधिक बली होने के कारण लक्ष्मणजी पृथ्वी पर नहीं गिरे।

मल्लजुद्ध दोउ भिरे प्रचारी * लरहिं सुखेन न मानत हारी
भिरहिं उपाय बिपुल बल करहीं * गिरतहिं धरनि बहुरि उठि लरहीं

दोनों वीर एक दूसरे को ललकारकर सुखपूर्वक मल्लयुद्ध करके लड़ते हैं, हार नहीं मानते। बहुत-से उपाय और बल करते हैं तथा पृथ्वी पर गिरते ही फिर उठकर लड़ने लगते हैं।

बिकल सैन सब मानु सँहारी * सुमिरि कोसलाधीस खरारी
मारयो बान लवहिं छिति डारा * मुर्च्छित होय गिरयो बिकरारा

सब सेना को व्याकुल और मरी हुई देखकर लक्ष्मणजी ने अयोध्यापति खरारि श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण किया और एक बाण मारकर लव को पृथ्वी पर गिरा दिया, जिससे वह विकलता के साथ मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

सुमिरि सीय मुनि चरन सुहाये * गत मुर्च्छा कुस आतुर आये

बिकल बिलोकि बन्धु लघुजानी * चल्यो बीर मन बहुत गलानी

सीता और मुनि के चरणों को स्मरण कर कुश मूर्च्छा से उठे और शीघ्रता से लक्ष्मण के सामने आये। अपने छोटे भाई को मूर्च्छित देखकर वह वीर मन में बड़ी ग्लानि मानकर चला।

लछिमन देखि बीरवर आये * धनुष बान धरि आगे आये
सत्रुजीत अरि जे सर मारयो * ते सब बालक काटि निवारयो

उस श्रेष्ठ वीर को आते हुए देखकर लक्ष्मणजी धनुष-बाण लेकर आगे आये। लक्ष्मण जी ने जितने बाण मारे, वे सब उस बालक ने काटकर अलग कर दिये।


रामानुज बिस्मित बिकल, देखि सबल आराति।
सीय त्याग उर सोच बड़, प्रान देन बर भाँति॥

शत्रु को बलवान् देखकर लक्ष्मणजी दुखी हुए और मन में सीताजी के त्यागने का बड़ा सोच हुआ, इससे प्राण छोड़ना ही अच्छा समझा।

कुस करि क्रोध बिसिख सो लीने * मंत्र प्रेरि मुनिवर जे दीने
नाक रसातल भूतल माहीं * यह सर छूटे बचै कोउ नाहीं

इतने में कुश ने क्रोध करके वह बाण लिया, जिसको श्रेष्ठ मुनि ने मन्त्र सहित दिया था, जिस बाण के छूटने से स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक में कोई भी नहीं बच सकता।

मोहन अस्त्र नाम तेहि जानो * बिष्णु महेस ब्रह्म जेहि मानो
मारेसि ताकि सेस उर माहीं * परे धरनितल सुधि कछु नाहीं

उस बाण का नाम मोहन था, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी मानते हैं। कुश ने उस बाण को ताककर लक्ष्मण के हृदय में मारा, जिससे वह बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चली सैन सब भागि अपारा * कोसलपुर महँ जाय पुकारा
करनी सकल जुद्ध की बरनी * लछिमन बीर परे जिमि धरनी

सब सेना भागकर अयोध्यापुरी में पहुँची और वहाँ पर युद्ध की करनी का वर्णन किया। जिस तरह वीर लक्ष्मण पृथ्वी पर गिरे थे, वह भी कह सुनाया।

जिहिबिधि कटक सकल संहारा * निज लोचन हम नाथ निहारा
वयकिसोर दोउ बाल अनूपा * तुव प्रतिबिंब मनहु सुरभूपा
काकपच्छ सिर धरे बनाई * बालक बीर बरनि नहिं जाई

उन लोगों ने कहा—हे नाथ, जिस तरह सब सेना मारी गई है, वह सब हमने अपनी आँखों से देखा है। हे देवाधिदेव, वे दोनों सुन्दर बालक थोड़ी अवस्था के हैं और रूप में आप ही के समान हैं। उनके शिर पर घुँघराले बाल शोभायमान हैं। उन बालकों की वीरता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो० भरत जोरि कर कह्यो तब, बचन अमित बिलखाय।
सीयत्यागफल दीन्ह बिधि, प्रभु कह देखहु जाय ॥

तब भरतजी बहुत बिलखकर हाथ जोड़कर बोले—विधाता ने हमें यह सीताजी को त्यागने का फल दिया है। तब भगवान् ने कहा—तुम जाकर देखो।

अनुज समर महँ तुम हिय हारे * साजहु हय गज रथ मतवारे
रहौ जज्ञ रिपु देखहु जाई * बालक रावन के दुखदाई

भाई, क्या तुम्हारा मन युद्ध से हार गया? मतवाले हाथियों, घोड़ों और रथों को सजाओ। चाहे यज्ञ रह जाय, परन्तु मैं जाकर शत्रुओं को अवश्य देखूँगा। संभव है, वे रावण के दुःखदायी बालक हों।

तीव्र वचन सुनि भरत लजाने * बहुत भाँति रघुपति मनमाने
जाम्बवन्त कपिराज बिभीषन * द्विविद मयंद नील नल भूषन

भरतजी ऐसे तीव्र वचन सुनकर लज्जित हो गये। तब रघुनाथजी ने उन्हें बहुत तरह से सम्मानित किया और जाम्बवन्त, सुग्रीव, विभीषण, द्विविद, मयंद, नील और नल, जो अपने वंश के भूषण थे,

प्रथम सखा सब लिये बुलाई * हनुमदादि अंगद समुदाई
रिपुहिं मारिकै समर भगाई * तात अनुज दोउ आनहु जाई

तथा पहले के हनुमान् और अंगद आदि सखाओं को बुलाकर कहा—हे तात, युद्धभूमि से वैरियों को मारकर भगा दो और दोनों भाइयों को ले आओ।

माथ नाय सँग कटक बिसाला * चले भरत उर उपजी ज्वाला
सोनित सरिता समर बिलोकी * डरप्यो बीर आस रन रोकी

भरतजी शिर नवाकर बड़ी सेना को साथ लेकर चले। उनके हृदय में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। योद्धाओं ने युद्धभूमि में रुधिर की नदी देखी, जिससे वे डरे और लड़ने की आशा त्याग दी।

दो० समर सीय दोउ बीरबर, आय गये बलवान।
देखि डरे कपि भालु सब, तब बोलेउ हनुमान ॥

इसी समय रण में सीताजी के दोनों बलवान् पुत्र आ गये, जिन्हें देखकर सब बन्दर व रीछ डरे। तब हनुमान् बोले—

धन्य मातु पितु जेहि तुम जाये * पुरुष जुगल घर जाहु सुहाये
समरबिमुख सुनि भट बिलखाने * हनुमत प्रति बोले रिस ठाने

वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने तुम्हें उत्पन्न किया है। तुम दोनों भाई अपने घर को लौट जाओ। 'रण से लौट जाओ' ये शब्द सुनकर वे क्रोध सहित हनुमान्जी से बोले—

नहिं बल होय जाहु घर भाई * हतौं न खेत जो रन कदराई
भाषे वचन भरत सुनि काना * लेहु सँभारि बाल धनु बाना

भाई, जो तुम्हारे शरीर में बल नहीं है तो घर चले जाओ। हम युद्ध में कायरों को नहीं मारते। भरत ने ये वचन सुनकर कहा—बालको, धनुष-बाण सँभालो।

कटकटाय कपिभालु समूहा * लीन्ह उपारि प्रबल तरुजूहा
एकहि बार सकल तिन मारा * लव काटहिं तिलसम करिडारा

सब रीछों व बन्दरों ने कटकटाकर बड़े वृक्षों के समूह उखाड़ लिए। सबने एक ही साथ वे वृक्ष लव के मारे; परन्तु लव ने उन्हें काटकर तिल-तिल कर डाला।

रिपुसर काटिनिमिष एक माहीं * जथा मनोरथ खल मिटि जाहीं
करि लव क्रोध बान फटकारे * मारे वीर भूमिं छन डारे

शत्रुओं के बाण एक पल में इस तरह काट डाले, जिस तरह दुष्टों के मनोरथ निष्फल हो जाते हैं। लव ने क्रोध करके बाण छोड़े, जिन्होंने वीरों को मारकर क्षणभर में पृथ्वी पर गिरा दिया।

छन्द

पलभषहिं कंककराल जहँ तहँ गीध सब प्रमुदित भये।
तहँ प्रेत सिद्ध समाज सोहत ब्याह प्रति मंगल ठये॥
तहँ डाकिनी मन मुदित डोलहिं साकिनी सोनित भरी।
दोउ करन खैंचहिं कालिका सिवगन करत क्रीड़ा खरी॥

जहाँ-तहाँ भयंकर गिद्ध और चील्ह मन में प्रसन्न होकर मांस खाने लगे। वहाँ पर भूतप्रेतों का समाज शोभायमान हो गया और वे सब विवाह के समान आनन्द मनाने लगे। डाकिनी मन में प्रसन्न होकर घूमने लगीं। शाकिनी रुधिर से शराबोर हो रही हैं और कालिका लोथों को दोनों हाथों से खींचती हैं, महादेवजी के गण मगन हो खेल कर रहे हैं।

अन्तावरी गहि उर लपेटहिं पियत सोनित आतुरे।
गज खाल खैंचहिं भूत संकर प्रेत संगर चातुरे॥
बैताल वीर कराल करवर करीकर डक्कर धरे।
वै मार रुधिर प्रवाह पूरन पान करत हरे हरे॥

वे आँतों को पकड़कर गले में लपेटकर जल्दी से रुधिर पीते हैं। युद्ध में चतुर महादेवजी के भूत-गण तमाम हाथियों की खाल खींचते हैं और वीर बैताल भयंकर हाथियों की सूँड को हाथ में लेकर खेल करते हैं, उनके रुधिर को पीकर तृप्त हो 'हर-हर' करते हैं।


विषम युद्ध दोउ बंधु करि, जीते कपि संग्राम।
आयउ पुनि तहँ नृप भरत, समर बिधाता नाम॥

दोनों भाइयों ने भयंकर युद्ध करके संग्रामभूमि में वन्दरों को जीत लिया। तब युद्ध में विधाता को अपने प्रतिकूल समझकर भरतजी वहाँ पर आये।

कपिभालुहिघायलसब आवहिं * बानत्रास मनअति दुख पावहिं
जाम्बवन्त कपिराज बुलाये * अंगद हनूमान सुनि आये

सब रीछ व बन्दर घायल हो गये थे और वाणों के भय से बड़ा दुःख पा रहे थे। भरतजी ने जाम्बवंत और सुग्रीव को बुलाया, जिसे सुनकर अंगद और हनुमान् भी आये। तब उन्होंने कहा—

सब मिलि सहितनिसाचरराजा * धरि आनहु दोउ बाल समाजा
आय जुटे कपि भालु भवानी * तिन कछु प्रभुमहिमानहिं जानी

विभीषण सहित सब लोग जाओ और दोनों भाइयों को पकड़ लाओ। शिवजी कहते हैं—हे पार्वती, भगवान् की महिमा को न जानकर रीछ और बन्दर आकर लड़ने लगे।

बोले कुस सुन बालिकुमारा * तुव बल विदित जान संसारा
पितहिं मराय मातु पर हेली * सकल लाज आये तुम पेली

तब कुश ने कहा—हे अंगद, सुनो, तुम्हारा बल सारा संसार जानता है। तुमने अपने पिता को मरवाकर माता दूसरे को दे दी और सब लाज छोड़कर यहाँ लड़ने आये हो।

सो फल लेहु समर महँ आजू * त्यागहु सकल कलंक समाजू
सुनत क्रोध अंगद उर छावा * गहि गिरि एक ताहि पर धावा

आज उसका फल युद्धभूमि में भोगो और सब कलंक को मिटाओ। यह सुनते ही अंगद के हृदय में क्रोध भर आया। वह एक पहाड़ लेकर कुश पर झपटे।

आवत सैल बिसाल लखि, तिलसम सर हति कीन।
जस अंगद बल गर्व अति, तस फल रघुपति दीन ॥

कुश ने उस बड़े पहाड़ को आता हुआ देखकर वाण से काटकर तिल-तिल कर डाला अंगद को जैसा अभिमान था, वैसा ही भगवान् ने उनको फल दिया।

तमकि ताहि कुस बान चलावा * अंगद नील अकास उड़ावा
आवत जानि पुहुमि कपि भारी * मारे बान प्रचारि प्रचारी

कुश ने एक ऐसा वाण चलाया, जिसके लगते ही अंगद और नील आकाश को उड़ गये। कुश ने फिर उन बड़े बंदरों को पृथ्वी पर आता हुआ देखा तो ललकारकर फिर वाण चलाया।

इत उत जान कतहुँ नहिं पावै * पवन वहै जिमि महि नहिं आवै
छन अकास छन भूतल ओरा * बोलेउ सरन नाथ अस तोरा

उन वाणों के लगने से वे पृथ्वी पर नहीं आ सके, जैसे हवा चलती है; परन्तु पृथ्वी

पर नहीं आती। इसी तरह वे क्षण में आकाश की ओर और क्षण में पृथ्वी की ओर आते थे। तब घबराकर वे बोले—हे प्रभु, रक्षा कीजिए। हम आपकी शरण हैं।

रहेउ गर्व हम कहँ भगवाना * अगजगनाथ न हम पहिचाना
पाँच बाण बेधेउ कपि दोऊ * दीन जानि त्यागेउ हँसि सोऊ

हे भगवन्, हम अभिमान के वश थे, इससे हमने सब संसार के स्वामी आपको नहीं पहचाना। तब कुश ने उन दोनों बन्दरों के पाँच बाण मारे। फिर दुखी जानकर उन्हें हँसकर छोड़ दिया।

भिरे भरत के सन्मुख जाई * दशा देखि कपि दिशा भुलाई
जाम्बवन्त हनुमान कपीशा * धाये तरु गिरि लै बहु कीशा

तब वे दोनों कुमार जाकर भरतजी से लड़ने लगे। यह देखकर बन्दरों को बड़ी व्याकुलता हुई। फिर जाम्बवन्त, हनुमान्, सुग्रीव तथा और बहुत-से बन्दर वृक्षों और पहाड़ों को लेकर दौड़े।

दो० हँसे कुँवर कुश देखि कपि, अनुजहिं कहेउ बुझाय।
आज समर जितिहहुँ भरत, भालु-कपिन बिलगाय॥

उन बन्दरों को आते देखकर कुश ने अपने छोटे भाई से हँसकर कहा—आज रीछों और बन्दरों को छोड़कर भरत को जीतूँगा।

प्रभुसुत समर कीन्ह जस करणी * निगम शेष शारद नहिं बरणी
चरित तासु सुनु शैलकुमारी * मारेउ समर शूर कपि भारी

युद्धभूमि में श्रीरघुनाथजी के पुत्रों ने जैसी करनी की है, उसका वर्णन वेद, सरस्वती और शेषजी भी नहीं कर सकते। हे पार्वतीजी, उनके चरित्र सुनो। उन्होंने युद्धभूमि में बड़े पराक्रमी बन्दरों को मारा।

समर धीर दोउ बाल बिराजे * निरखि भालुकपि मन अतिलाजे
ऐंचि धनुषगुण छाँड़ेउ सायक * कपिपति आदि हने कपिनायक

रण में दोनों धीर बालक आकर खड़े हुए, जिन्हें देखकर रीछ और वानर मन में बहुत लज्जित हुए। कुश ने जो बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा, उससे सुग्रीव आदि सभी वानर मूर्च्छित हो गये।

मूर्च्छित सैन परी महि माहीं * नहिं कोउ कपि घायल जो नाहीं
देखि भरत सब सैन निपाती * कोपि बाण मारेउ लव छाती

सब सेना मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। कोई भी ऐसा बन्दर न बचा, जो घायल न हुआ हो। भरतजी ने सब सेना को मूर्च्छित देखकर क्रोध-सहित एक बाण लव की छाती में मारा।

मूर्च्छित विकल परेउ महिमाहीं * अति अचेत तनु की सुधि नाहीं
दुखितदेखिकुशअमित रिसाना * चाप चढ़ाय बाण संधाना

तब वे व्याकुलता से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें अपने शरीर की सुध नहीं रही। कुश ने लव को मूर्च्छित देखकर बड़े क्रोध से बाण को धनुष पर चढ़ाया।

श्रवण प्रयंत खैंचि धनु वीरा * भरत हृदय मारेउ शत तीरा
भयो युद्ध तहँ विविध प्रकारा * वीर बाँकुरे सुभट अपारा

उस वीर ने धनुष को कान तक खींचकर भरत के हृदय में सौ बाण मारे। वहाँ पर दोनों वीरों में बहुत तरह से घनघोर युद्ध हुआ।

समरभूमि सोये भरत, लवहिं लीन उर लाय।
सुमिरि मातु गुरुचरणयुग, रहे समर जय पाय॥

युद्धभूमि में जब भरतजी मूर्च्छित हो गये, तब कुश ने लव को हृदय से लगा लिया और युद्ध को जीतकर मन में माता व गुरु के चरणों का स्मरण किया।

आये खबर लेन चर चारी * भरत सैन्य तिन सकल निहारी
शोणित सरिता देखि डराने * हय गज बहे जात रथ जाने

अयोध्या से चार दूत युद्ध की खबर लेने के लिए आये थे। उन्होंने भरतजी की सब सेना को मूर्च्छित देखा। उस रुधिर की नदी को देखकर वे डरे, जिसमें हाथी, घोड़े और रथ बहे जाते थे।

देखी सरित भयंकर भारी * कठिन कराल सुनहु उरगारी
बहुतक उछरि बूड़ि पुनि जाई * चर्म मनहु कच्छप की नाई

हे गरुड़, सुनिए, उन्होंने उस बड़ी डरावनी नदी को देखा, जिसमें कि बहती हुई ढालें कछुओं के समान उछलकर डूब जाती थीं।

महातरंग वीर बह जाहीं * घायल पैर तीर लपटाहीं
फिरे दूत कौशलपुर आये * समाचार सब राम सुनाये

उस रुधिर की नदी की बड़ी तरंगों में वीरों की लाशें बही जाती थीं और घायल पैरकर किनारे आ जाते थे। वे दूत लौटकर अयोध्यापुरी में आये और सब समाचार श्रीरामचन्द्रजी को सुनाया।

चरवर वचन सुनत दुख पावा * त्यागेउ मख निज कटक बनावा
चले सकोप कृपालु उदारा * आये जहँ प्रभु कटक सँहारा
मुनिवर बालक देख सुहाये * शिर नवाय प्रभु निकट बुलाये

श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ दूतों के वचन सुनकर बहुत दुःखित हुए। उन्होंने यज्ञ को छोड़कर अपनी सेना को सजाया। कृपालु भगवान् क्रोधित होकर चले, और जहाँ पर सब सेना

मूर्च्छित पड़ी थी, वहाँ आये। मुनि के श्रेष्ठ बालकों को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने शिर झुका लिया और उन्हें अपने पास बुलाया।



पूछेउ बाल बुलाय दोउ, कहहु मातु पितु नाम।
देश ग्राम निज कहहु सब, बड़ जीतेहु संग्राम॥

दोनों बालकों को बुलाकर पूछा—तुम अपने माता-पिता तथा देश का नाम बताओ। तुमने संग्राम में बड़े-बड़े वीरों को जीता है।

गहहु अस्त्र जनि कहहु कहानी * पूछेहु नाम गाँव कह जानी
समर बात बहु अति कदराई * छाँड़ि सोच अब करहु लराई

बालकों ने कहा—कहानी को छोड़कर शस्त्र धारण करिए। नाम और गाँव को जानकर क्या कीजिएगा? युद्धभूमि में अधिक बातचीत करना बड़ा ही कायरपन है। इससे सोच को छोड़कर अब युद्ध करिए।

वंश नाम बिनु पूछेहु ताता * हतौं न बाण मनोहर गाता
माता सीय जनक की जाता * वाल्मीकि पाल्यो मुनि ताता

राम ने कहा—हे तात, मैं विना वंश का नाम पूछे तुम्हारे कोमल शरीर में बाण न चलाऊँगा। तब बालकों ने कहा—हमारी माता का नाम सीता है। वह जनक की पुत्री हैं। वाल्मीकिजी ने हमारा पालन किया है।

पिता वंश नहिं जानहिं आजू * लव कुश नाम सुनहु रघुराजू
सुनि सब कथा राखि मनमाहीं * बाल विलोकि बधब भल नाहीं

हे रघुराज, हम पिता के वंश को नहीं जानते। हमारा नाम लव और कुश है। रामचन्द्रजी ने यह हाल सुनकर मन में विचारा कि इन बालकों को मारना उचित नहीं है।

आवत सुभट समूह हमारे * लरिहहिं तुमसन समर सुखारे
अस कहि अंगद नील उठावा * जाम्बवन्त कपिपतिहिं बुलावा

उन्होंने कहा—हमारे योद्धाओं के वृन्द आते हैं। वे तुम्हारे साथ सुखपूर्वक लड़ेंगे। यह कहकर अंगद, नील, जाम्बवन्त और सुग्रीव को बुलाया।



कपिराज अंगद जाम्बवानहिंबोलिनिशिचरनायकं।
हनुमान द्विविद मयंदनीलहि सुभटजे अतिलायकं॥
तब हरण शूलहि पापनाशन कह्यो हँसि रघुनंदनं।
भरतादिरिपुहनसहित लछमण पर खल मदगंजनं॥

पापों के नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त, विभीषण, हनुमान्, द्विविद, मयंद और नील को, जो लड़ने में बड़े निपुण योद्धा थे, बुलाया और हँसकर

कहा—दुष्टों का मान-मर्दन करनेवाले वीर भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण आदि लड़ाई में मूर्च्छित पड़े हैं।

लंकेश आदिक सुभट मारे वीर जे महिमंडनं।
ते आज बालक विप्र सों रण परे रिपुमदगंजनं॥
कुलकान अब निज जान बरहु सो शैल तरु बहु लै चले।
हैं जूह बानर जूह पर्वत डारि पुनि रण भुरि चले॥

जो समस्त पृथ्वी के वीरों में शिरोमणि थे और जिन्होंने रावण आदि वीरों को मारा, वही शत्रुओं के घमंड को चूर करनेवाले आज युद्ध में ब्राह्मण के बालकों से हार गये हैं, इससे अब तुम लोग लड़कर अपने कुल की लाज रक्खो। यह वचन सुनकर बन्दरों के समूह भागे हुए बहुत-से वृक्षों और पर्वतों को लेकर युद्धभूमि को फिर आ गये।



सावधान धनु बाण लै, आयउ लव बलवान।
सम्मुख आनि विभीषणहिं, बोलेउ बहुरि रिसान॥

बलवान् लव बड़ी सावधानी से धनुष-बाण लेकर रणभूमि में आये और विभीषण के सामने आकर क्रोधित होकर बोले—

सुनु शठ बंधुहि समर जुझाई ※ शत्रुहिं मिलेउ निपट कदराई
पिता समान बंधु बड़ तोरा ※ त्रिया तासु लै घर बरजोरा

अरे मूर्ख, सुन। तूने युद्धभूमि में अपने भाई का वध कराया और फिर कायरपन से शत्रु की ओर मिल गया। और बड़ा भाई जो तेरे पिता के समान था, उसकी स्त्री को बल से अपने घर में रख लिया।

पापी मातु कह्यो कइ बारा ※ सो पत्नी यह धर्म तुम्हारा
बूड़ि मरहु सागर महँ जाई ※ मरु गरु काटि अधम अन्याई

रे पापी! तूने कई बार उसको माता कहकर पुकारा है, उसी को स्त्री बना लिया। क्या यही तेरा धर्म है? रे नीच! तू समुद्र में डूबकर मर जा। रे अन्यायी! तू अपना गला काटकर मर जा।

समरभूमि मम सन्मुख आवा ※ लाज होत नहिं गाल बजावा
आँखिन आगे ते हटि जाई ※ नाहिं तो मृत्यु निकट चलि आई

तुझे हमारे सामने युद्धभूमि में गाल बजाते लाज नहीं आती? तू मेरी आँखों के सामने से हट जा, नहीं तो तुझे मरने में देर न लगेगी, अर्थात् शीघ्र ही मारा जायगा।

सुनि खिसियान गदा तेहि लीनी ※ शर हति खंड खंड लव कीनी
सत्त बाण मारेउ करि कोधा ※ गिरेउ धरणि शर लागत योधा
गिरत कोप करि शूल चलाया ※ लव तनु तड़ितसमान समाया

ये वचन सुनकर विभीषण ने लज्जित होकर हाथ में गदा ली, जिसको लव ने बाणों से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। फिर कोपित होकर लव ने सात बाण मारे, जिनके लगते ही वह वीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु गिरने के साथ ही विभीषण ने एक त्रिशूल ऐसा मारा, जो लव के शरीर में बिजली के समान घुस गया।



दूरि शूल करि बन्धु दोउ, शर मारेउ पुनि दाप।
जाम्बवन्त कपिराज नल, अंगद करहिं विलाप॥

त्रिशूल को निकालकर उन दोनों भाइयों ने फिर क्रोध के साथ बाण मारे, जिससे जाम्बवन्त, सुग्रीव, नल और अंगद विलाप करने लगे।

जो गिरि तरु कपि डारहिं आई * रज समान तेहि देहिं उड़ाई
निज बाणन कपि घायल कीने * जो जेहि उचित सो तसफल दीने

बन्दरों ने जितने वृक्षों और पर्वतों के प्रहार किये, उन्हें लव-कुश ने धूल के समान उड़ा दिया। लव ने अपने बाणों से बन्दरों को घायल किया। जिसको जैसा उचित था उसको वैसा ही फल दिया।

रघुकुलतिलक प्रचारति पाछे * वीर धुरीण हते सब आछे
अंगद हनूमान भट भारी * ते धाये तरु शैल उपारी

फिर वे रघुवंशियों में शिरोमणि लव और कुश धुरंधर वीरों को ललकारने लगे। बड़े योद्धा अंगद और हनुमान् वृक्षों और पर्वतों को लेकर दौड़े,

डारि शैल दोउ भिरे रिसाई * खड्ग हने वीर बरिआई
कपिन कोप करि उर हत तेहीं * जिमिखग मशक चोटगज देहीं

और उन शिलाओं को लव-कुश के ऊपर डालकर उनसे खड्ग लेकर क्रोध-सहित लड़ने लगे। फिर उन बन्दरों ने कुपित होकर उनके हृदय में चोट की; परन्तु उससे उन्हें उतनी ही पीड़ा हुई, जितनी कि मच्छर के प्रहार से हाथी को होती है।

हति दोनों कपि भूमि गिराये * जाम्बवन्त कपिपति पहँ आये
इहि तनु कोटिक समर लड़ाई * जीते लड़े बहुत हम भाई

जब उन्होंने उन दोनों बन्दरों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया, तब जाम्बवन्त सुग्रीव के पास आकर बोले—भाई, हमने इस शरीरसे करोड़ों संग्राम जीते हैं।



ये बालक त्रिभुवन बली, जीत सकै नहिं कोय।
चलहु प्राण दीजिय समर, अमर जगत नहिं कोय॥

परन्तु ये बालक ऐसे बलवान् हैं कि इनको तीनों लोकों में कोई नहीं जीत सकता। संसार में कोई अमर नहीं है, इससे चलकर लड़ाई में प्राण दीजिए।

आये भालु बली भट नाना * तानि शरासन शर संधाना

हृदय तानि लव मारेउ शायक * योजन सात गयो कपिनायक

लव ने बहुत-से बलवान रीछों और वानरों को आते हुए देखा तो बाण को लेकर धनुष पर चढ़ाया, और उसको खींचकर सुग्रीव के हृदय में ऐसा बाण मारा कि वह सात योजन पर जाकर गिरे।

धाय भालु कपि कोप बढ़ाई * मल्ल युद्ध कुश कीन्ह बनाई
निजबल भालुहि अवनि पछारा * दोउ कर चरण बाँधि विकरारा

तब जाम्बवन्त बहुत क्रोधित होकर दौड़े और कुश से मल्लयुद्ध करने लगे। कुश ने बलपूर्वक जाम्बवन्त को पृथ्वी पर पटक दिया और दोनों हाथ व पैर बाँधकर व्याकुल कर दिया।

हनुमन्तहिं बाँधेउ पुनि जाई * राखेउ निकट अश्व थल आई
रखवारी छाँड़ेउ लव बीरा * आप चल्यो रघुनायक तीरा

फिर जाकर हनुमान्‌जी को बाँध लिया और घोड़े के समीप लाकर रक्खा। उनकी देखभाल के लिए लव को वहाँ पर रखकर आप श्रीरामचन्द्रजी के पास चले।

देखेउ रथ पर श्रीपति सोये * फिरेउ बीर निज लाज बिगोये
सुभट अस्त्र पट भूषण नाना * चले अश्व धरि लै हनुमाना

परन्तु श्रीरामचन्द्रजी को रथ पर सोते हुए देखकर बलवान कुश लज्जित होकर लौट आये। फिर घोड़े पर उत्तमोत्तम अस्त्र, वस्त्र तथा आभूषण आदि को डालकर हनुमान्‌जी के साथ आश्रम को चले।

छन्द

शुभ अस्त्र पट भूषण सुमर्कट ऋच्छ सँग हय घर चले।
सिय निकट नायो माथ दोउ सुत भेंट भूषण जे भले॥
पहिचानि कपि दोउ निरखि भूषण सहमि सिय धरणी परी।
इहि बीच मुनिवर सदन आये सियहिं अति विनती करी॥

दोनों बालक उत्तम अस्त्र, कपड़े, गहने और रीछों व वानरों को घोड़े के साथ लेकर आश्रम को चले। दोनों पुत्रों ने सीताजी को प्रणाम करके उत्तम गहने भेंट किये। सीताजी उन गहनों को देख तथा दोनों बन्दरों को पहचानते ही घबराकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उसी समय मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी आये। उन्हें देखते ही सीताजी ने उनकी बड़ी विनती की,

हनुमान भालुहिं छोड़ि वेगहि त्यागि बहु समझायऊ।
रिपुदमन लछिमन सहित भरतहिं राम समर सुवायऊ॥
सुत कीन्ह कर्म कलंक कुल महँ मोहि विधि विधवा करी।
तजि सोच चंदन अगर आनहु जाउँ पिय सँग अब जरी॥

और अपने पुत्रों को समझाकर बोलीं—हे पुत्र, तुमने हनुमान, जाम्बवन्त, शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और श्रीरामचन्द्रजी को रण में मूर्च्छित कर दिया, जिससे तुमने अपने कुल को कलंकित किया। मुझे विधाता ने विधवा किया, इससे अब सोच छोड़कर चंदन और अगर की लकड़ियाँ ले आओ। मैं अपने पति के साथ सती हो जाऊँगी।

मुनि धीर जानकि देइ लव कुश संग लै सादर चले।
रण देखि बालक चरित देखत बिहँसि मन प्रमुदित भले॥
रथ देखि हय पहिंचानि प्रभु कहँ जाय मुनि आगे भये।
उठि बैठु कोशलनाथ आरत तनय तव आगे छये॥

फिर वाल्मीकिजी ने सीताजी को धीरज दिया तथा लव-कुश को आदर से अपने साथ लेकर रणभूमि में आये। उन बालकों के चरित्र को देखकर वह मन में बड़े प्रसन्न हुए। श्रीरामजी के रथ और घोड़ों को पहचानकर मुनिवर भगवान् के आगे जाकर बोले—हे कोशलपति भगवान्, उठिए, आपके दीन पुत्र आगे खड़े हैं।



सुनि मुनिवर वर बैन, जागे रघुपति भयहरन।
बिहँसि उघारे नैन, लीन्हें हृदय लगाय मुनि॥

मुनिश्रेष्ठ के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर भक्तों के भय को नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी जागे और हँसकर ज्यों ही आँख खोली, त्यों ही मुनि ने उनको हृदय से लगा लिया।

प्रभुहिं देखि मुनि अति हर्षाने * बार बार निज भाग्य बखाने
जेहि विधि शेष सीय वनआनी * मुनिवर सो सब कथा बखानी

श्रीरामचन्द्रजी को देखकर वाल्मीकिजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह बार-बार अपने भाग्य की सराहना करने लगे। जिस प्रकार लक्ष्मणजी सीताजी को वन में लाये थे, उस चरित्र को मुनिजी ने कह सुनाया।

लवकुश कथा सकल मुनिभाखी * शिव विरंचि सूरज करि साखी
मिले तनय दोउ हृदय लगाई * सुधावर्षि सुर सैन्य जियाई

वाल्मीकिजी ने ब्रह्मा, महादेव तथा सूर्य को साक्षी करके लव-कुश की कथा का वर्णन किया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने दोनों पुत्रों को हृदय से लगाया और देवताओं ने अमृत की वर्षा करके सेना को जीवित किया।

भरत आदि जागे सब भ्राता * लक्ष्मण चले जहाँ सिय माता
बहुरि राम लक्ष्मणहिं बुलाई * सुनहु तात अस वचन सुनाई

सब भाइयों-सहित भरतजी जागे। तब लक्ष्मणजी सीताजी के पास चले। फिर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को बुलाकर कहा—हे तात, मेरे वचन सुनो।

ऐसे वचन मानि मम भाई * सिय सन शपथ लेहु तुम जाई

लक्ष्मण जाय शीश सिय नावा * कुशल कही बहु विधि समुझावा
हरि इच्छा सियमन असआवा * शेष सहस फणि आनि दिखावा

भाई, तुम मेरी बात मानकर सीताजी से जाकर शपथ लो। लक्ष्मणजी ने जाकर उनको शीश नवाया और कुशल कहकर बहुत तरह से समझाया। ईश्वर की इच्छा से यह बात सीताजी के मन में आ गई। तब शेषजी ने आकर हजार फण दिखलाये,


जटित मणिन सिंहासनहिं, सादर सीय चढ़ाय।
भये अलोप पतालमहँ, महिमाकिमिकहिजाय॥

और मणियों से जड़े हुए सिंहासन पर आदरसहित सीताजी को चढ़ाकर पाताल को चले गये। उस महिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

लक्ष्मण चरित देख सब ठाढ़े * नयन प्रवाह चले अति गाढ़े
सकल चरित सुनि कृपानिधाना * चलन हमार सीय मन जाना

लक्ष्मणजी इस चरित्र को देखकर खड़े हो गये और उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। कृपालु भगवान् इन सब चरित्रों को सुनकर समझ गये कि सीता मन में यह समझ गई थीं कि हम अपने लोक को जायँगे।

तनय सहित निजपुर प्रभु आये * दान दीन शुभ यज्ञ कराये
जेहिं जेहि विधि सुरआयसु दीन्हे * कोटि कोटि विधि सोइ प्रभु कीन्हे

रामचन्द्रजी पुत्रों सहित अपने नगर को आये और दान देकर उस शुभ यज्ञ को पूर्ण किया। देवताओं ने जिस प्रकार आज्ञा दी उसे भगवान् ने विधिपूर्वक पूर्ण किया।

कोटिक धेनु धाम धन धरणी * दीन कृपानिधि सक को बरणी
भोजन विविध भाँति करवाये * विदा कीन्ह मुनिवृंद बुलाये

भगवान् ने करोड़ों गउएँ, धन, धाम और पृथ्वी का इतना अधिक दान दिया, जिसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। भगवान् ने मुनियों के वृंद बुलाये और उत्तम प्रकार के भोजन कराकर उन्हें विदा किया।

जनकहिं पूजि विदा प्रभु कीना * सुत प्रभु पूजि पदोदक लीना
आये जनक गुरुहिं पहुँचाई * बैठे प्रभु महिदेव बुलाई

भगवान् ने जनकजी की पूजा करके उन्हें विदा किया। उनके दोनों पुत्रों ने भी पूजन करके उनका चरणोदक लिया। श्रीरामजी गुरुजी सहित जनकजी को पहुँचाकर आये और ब्राह्मणों को बुलाकर बैठे।


लच्छ लच्छ वर धेनु धन, पूजि पूजि द्विज पाय।
एक एक विप्रन दई, हर्षित कौशलराय॥

श्रीरामजी ने प्रसन्नतापूर्वक हरएक ब्राह्मण की पूजा करके एक-एक लाख श्रेष्ठ गौवें और बहुत-सा द्रव्य उन्हें दिया,

गे सब मुनिसज्जन निज धामा * पायो अमितअमित सुखरामा
पुरवासी आये सब झारी * सुनहिं पुराण अनंद सुखारी

और सब सज्जन मुनीश्वर अपने-अपने घर को गये, जिससे रामचन्द्रजी को परम सुख हुआ। सब अयोध्यावासी भगवान् के दर्शन करने को आये और आनंददायक पुराण को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

जे जड़ चेतन जीव घनेरे * सचराचर कोशलपुर केरे
तिन सुख बढ़त सुनत सुरराया * करहिं विनोद विहाय अमाया

अयोध्यापुरी के जितने जड़, चेतन तथा चराचर जीव थे, उनके सुख को प्रतिदिन बढ़ता देखकर इन्द्र भी माया को छोड़कर आनंदित हो गये।

इहिविधिविपुलकालचलिगयऊ * निजपुरगमनसो अवसर भयऊ
बीती अवधि ब्रह्म तब जानी * नारद मुनिसन कहा बखानी

इसी प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हो गया, तब श्रीरामजी ने मन में विचार किया कि अब मेरे अपने लोक को जाने का समय आ गया। ब्रह्माजी ने 'भगवान् की पृथ्वी पर रहने की अवधि व्यतीत हो गई' यह जानकर नारदमुनि से समझाकर कहा—

निजपुर आवन चहहिं खरारी * धर्मराज कहँ करहु हँकारी
बिनती बहु विरंचि तब भाखी * चलेउ धर्म रघुपति उर राखी

भगवान् अपने धाम को आना चाहते हैं, इससे तुम धर्मराज को बुला लाओ। उनके आने पर ब्रह्माजी ने बड़ी प्रार्थना की। तब धर्मराज श्रीरामचन्द्रजी को हृदयमें रखकर चले।


आयउ यम रघुवीरपुर, मुनिवर वेष बनाय।
तेजपुंज सुंदर तरुण, कटि मृगत्वचा सुहाय॥

धर्मराजजी श्रेष्ठ मुनि का वेष धारण करके अयोध्यापुरी में आये। वह तेजस्वी और सुन्दर जवान थे। उनकी कमर में मृगचर्म सुशोभित था।

द्वारपाल लक्ष्मण कहँ जानी * बोलेउ तापस अति मृदु बानी
तुरत शेष तब खबर जनाई * सुनत वचन आये रघुराई

उस तपस्वी ने लक्ष्मणजी को द्वारपाल समझकर बहुत मधुर वाणी से अपना संदेश कहा। लक्ष्मणजी ने तुरंत ही जाकर सब समाचार श्रीरामचन्द्रजी से कह सुनाया। सुनकर वह द्वार पर आये।

मुनिहिंनिरखिप्रभुकीन्हप्रणामा * सादर उचित कहेउ श्रीरामा
अर्घ्य दीन्ह आसन बैठारी * मुनिवर सुंदर गिरा उचारी

भगवान् ने मुनि को देखकर प्रणाम किया और आदरसहित वचन कहे। आसन पर बिठाकर अर्घ्य दिया। तब श्रेष्ठ मुनि उत्तम वाणी से बोले—

सुनु सर्वज्ञ कृपालु दिनेशा * आयउँ मैं मुनिवर के वेशा
हम तुम रहैं और ना कोई * तिसरे सुनत नाश तेहि होई

हे सर्वज्ञ कृपालु, हे सूर्यवंश के शिरोमणि, सुनिए। मैं तपस्वी मुनिश्रेष्ठ का वेष धारण करके आया हूँ। इससे मेरे और आपके सिवा और कोई यहाँ पर न आवे; क्योंकि तीसरे मनुष्य के सुनने से उसका नाश हो जायगा।

सुनै शब्द तेहि देउँ शरापू * विधि हरि हर आवैं जो आपू
सुनहु लषण चलि बैठहु द्वारे * ना कोउ आव न गिरा उचारे
इतनेउ पर आवै पुनि कोई * मरहि सत्य यह वृथा न होई

जो कोई मेरे कहे हुए शब्दों को सुनेगा, उसे मैं शाप अवश्य दूँगा, चाहे वह साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महादेव ही क्यों न हों। तब श्रीरामजी ने कहा, सुनो लक्ष्मण, तुम द्वार पर जाकर बैठो। यहाँ पर कोई आने न पावे और न बोलने पावे। यह जानते हुए भी जो कोई यहाँ आवेगा तो वह निश्चय मृत्यु के वश होगा। यह बात झूठ नहीं हो सकती।


बोलेउ तापस वचन मृदु, पाहि पाहि रघुनाथ।
कहा सकल इतिहास मुनि, कहि पुनि नायो माथ॥

उस तपस्वी ने मीठे वचन से कहा—हे रामचन्द्रजी, रक्षा करो, रक्षा करो। फिर सब हाल कहकर शीश नवाया।

प्रभुइच्छा भावी बलवाना * दुर्वासा मुनि आय तुलाना
मुनिहिंदेखिलक्ष्मणचलि आगे * गये निकट विनती अनुरागे

भगवान् की इच्छा अति बलवान् है। उसी समय वहाँ पर दुर्वासा ऋषि आये। लक्ष्मणजी मुनि को देखकर अगवानी के लिए चले और पास जाकर विनती की।

पूछेउ मुनि कहँ रघुकुलईसा * जाउँ तहाँ मैं सुनहु अहीसा
जो प्रति उत्तर करिहौ आजू * भस्म करौं तव घर पुर राजू

तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मण! सुनो, मैं श्रीरामचन्द्रजी के पास जाना चाहता हूँ। जो कुछ जवाबदेही या रोकटोक करोगे तो मैं तुम्हारे घर, नगर और राज्य को भस्म कर दूँगा।

कँपेउ लषण सुनत मुनिबानी * निज वधजान सो चलेउ भवानी
दोउ करजोर कहे प्रभु पाहीं * दुर्वासा मुनि आवन चहहीं

शिवजी कहते हैं—हे पार्वतीजी, मुनि की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी काँपने लगे और अपना मरना निश्चय जानकर श्रीरामजी के पास चले। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा—महाराज, दुर्वासा ऋषि आना चाहते हैं।

बड़ अपराध कीन्ह तुम भारी * कालकर्मगति टरै न टारी
कीन्ह वचन दिनकरकुलकेतू * सुनहु खगेश कथा कर हेतू

यह वचन सुनकर श्रीरामजी बोले—भाई, यह तुमने बड़ा ही अपराध किया, जो यहाँ पर चले आये। सच है, कर्म की गति टाले नहीं टलती। भगवान् ने ये वचन अपने प्रण के अनुसार कहे। हे गरुड़जी, अब आगे का हाल सुनो।


तुरत कहेउ मुनि आनहू, सादर कृपानिधान।
चलहु वेगि मुनि तुरत अब, कहा राम भगवान॥

श्रीरामजी ने कहा—मुनि को तुरंत ले आओ। तब लक्ष्मणजी ने जाकर मुनि से कहा कि आप शीघ्र चलिए, भगवान् रामचन्द्रजी ने बुलाया है।

छन्द

अति तेजपुंज विलोकि प्रमुदित उचित उठि आसन दियो।
जल आनि सादर चरण धोये सुभग पादोदक लियो॥
जन जानि मुनिवर देहु आयसु वेगि सो सादर करौं।
बहु काल क्षुधित कृपायतन अब अशन बिन भूखो मरौं॥

श्रीरामचन्द्रजी ने बड़े तेजस्वी मुनि को आते देख प्रसन्नता से उठकर उचित आसन दिया। आदरसहित चरणों को धोकर चरणामृत लिया और बोले—हे मुनिश्रेष्ठ, मुझे अपना दास समझकर आज्ञा दीजिए, जिसे मैं आदरसहित शीघ्र पूरा करूँ। तब मुनि ने कहा—हे कृपायतन, मैं बहुत दिनों से भूखा हूँ; भोजन के बिना मर रहा हूँ।

मनभाव भोजन दीन रघुपति बहुत विधि बिनती करी।
संतोष पाय मुनीश अस्तुति करि बिनय आशिष भरी॥
करि बिदा मुनिवर देखि लक्ष्मण हृदय दारुण दुख भये।
भरतादि अनुज समेत पुरजन ताहि छिन देखत भये॥

श्रीरामजी ने इच्छा के अनुसार मुनि को भोजन कराया और बहुत प्रकार से बिनती की। तब मुनि ने संतुष्ट होकर प्रार्थना करके आशीर्वाद दिया। रामचन्द्रजी ने इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ को विदा किया। फिर लक्ष्मण को देखकर मन में बड़े दुःखित हुए। उस समय उनको भरत आदि भाइयोंसहित सब पुरवासी देखने को आये।

पद बंदि ठाढ़े जोरि दोउ कर बदन लखि अति कंपहीं।
भरि नयन पंकजनीर आरत भरत सन प्रभु सब कहीं॥
अब गुरुहिं आनहु वेगि सादर दुखित अति आतुर गये।
सब कथा गुरुहिं सुनाय आतुर यान चढ़ि आवत भये॥

सब प्रेम चरणों की वंदना करके दोनों हाथ जोड़कर खड़े हुए और उनके मुखमंडल को देखकर काँपने लगे। तब श्रीरामचन्द्रजी ने भरत को बुलाया और कमल के समान नेत्रों में जल भरकर बड़े दुःख से कहा—गुरुजी को आदर सहित शीघ्रता से बुला लाओ। तब भरतजी दुःखी होकर शीघ्र चले और सब हाल गुरुजी को सुनाकर, रथ पर चढ़ाकर, ले आये।

आये वशिष्ठ विलोकि रघुपति विकल उठि चरणन परे।
संवाद सुनि मुनि समय जान्यो त्यागिहैं हमको हरे॥
सुनि वचन शेष विचारि निज उर राम बिन धिक जीवना।
गहि चरण सरयूतीर आये देखि जल शुभ पीवना॥

श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजी को देखते ही घबराकर उनके चरणों पर गिर पड़े। वशिष्ठजी सब हाल सुनकर समझ गये कि श्रीरामजी हमको छोड़ जाना चाहते हैं। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने अपने मन में विचार किया कि श्रीरामचन्द्रजी के बिना जीवन को धिक्कार है। मन में ऐसा विचारते ही श्रीरामजी के चरणों को प्रणाम करके लक्ष्मणजी सरयू नदी के किनारे पर आये और उसके पवित्र जल से आचमन किया।



कटि प्रमाण जल मध्य में, कीनो ध्यान अखंड।
योग यत्नकरि राम कहि, फोर्‌यो निज ब्रह्मंड॥
राम धाम पहुँचे तुरत, लषण चतुर्थम भाग।
सुनि व्याकुल रघुपति भरत, मिटेउ सकल अनुराग॥

कमर के बराबर जल में खड़े होकर उन्होंने भगवान का अखंड ध्यान किया और 'राम' कहकर प्राणायाम के द्वारा अपने ब्रह्मांड को फोड़ दिया। इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के अंश लक्ष्मणजी उनके धाम को गये। यह सुनकर श्रीरामजी भरत के साथ बड़े व्याकुल हुए और जीवन का सब अनुराग जाता रहा।

मैं नाहिं तज्यों तज्यो मोहिं ताता * अब करु यत्न सो देखहुँ भ्राता
करहु भरत पुरजन्म सुखारी * सुनत गिरेउ महि व्याकुल भारी

श्रीरामजी ने कहा—भाई लक्ष्मण को मैंने नहीं छोड़ा; परन्तु उन्होंने स्वयं मुझे त्याग दिया। इसलिए अब वह उपाय करो, जिससे मैं अपने भाई को देखूँ। हे भरत, तुम राजगद्दी पर बैठकर पुरवासियों के जन्म को सुफल करो। इस बात को सुनकर भरतजी बड़ी व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर पड़े,

चलन चहत अब प्राण गुसाईं * प्रभु लक्ष्मण बिन रहि न सकाईं
तात चलहु कहि तनय बुलाये * कीन्ह तिलक बहु नीति सिखाये

और बोले—हे स्वामी, मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं। मैं लक्ष्मणजी के बिना जीवित नहीं रह सकता। श्रीरामजी ने कहा—हे तात, अच्छा, तुम भी चलो। यह कहकर अपने पुत्रों को बुलाया और राजतिलक करके बहुत-सी राजनीति सिखाई।

भरततनय सुतक्ष वैनामा * दक्षिण नगर दीन्ह तेहि रामा
दूसर पुष्कल जेहि जग जाना * पुहकर नगर दीन्ह भगवाना
चित्रकेतु अंगद रणधीरा * लक्ष्मणतनय सुभट गंभीरा

रामचन्द्रजी ने भरतजी के तक्ष नामक ज्येष्ठ पुत्र को दक्षिण नगर का राज्य दिया। दूसरे पुत्र पुष्कल को, जिसे सब संसार जानता है, भगवान् ने पुष्कर नगर का राज्य दिया। लक्ष्मणजी के चित्रकेतु और अंगद नाम के दो पुत्र थे, जो बड़े ही रणवीर योद्धा थे।


पश्चिम दिशा पिशाच बहु, जीति हते संग्राम।
तहँ राखे सुत सरिस दोउ, बिलग बिलग कहि नाम॥

उन्होंने पश्चिम दिशा के बहुत-से राक्षसों को रण में मारा था। श्रीरामचन्द्र ने वहाँ पर उन नगरों के अलग-अलग नाम रखकर वहाँ का राज्य अपने पुत्र के समान उन दोनों पुत्रों को दिया।

अवध नृपति कुश कीन्ह बहोरी * सिखय नीति पुनि कह्यो निहोरी
भ्रातन पर सुत दया करेहू * राजनीति उर माहिं धरेहू

फिर अयोध्या का राज्य अपने बड़े पुत्र कुश को दिया और उसे राजनीति सिखाकर कहा—हे पुत्र, अपने भाइयों पर दया रखना और हृदय में राजनीति को धारण करना।

उत्तर नगर सुउत्तर दूरी * सुख सम्पदा जहाँ अति रूरी
लव कहँ दीन्ह कृपानिधि सोई * पटतरि अवध नगर नहिं कोई

बहुत दूर उत्तर दिशा में, जहाँ पर सब सुख-सम्पदाओं की खान है, भगवान् ने लव को वहाँ का राज्य दिया। फिर भी अयोध्या के समान दूसरा नगर नहीं है।

आठ सहस रथ तुरँग पचासा * दश सहस्र गजमत्त विलासा
लजहिं इन्द्रगज तिनहिं विलोकी * दिगपालन निज प्रभुता रोकी

आठ हजार रथ, पचास हजार घोड़े और दस हजार मतवाले हाथी, जिन वाहनों को देखकर इन्द्र के हाथी भी लज्जित होते थे और जिन्होंने दिक्पालों की प्रभुता को भी तुच्छ कर दिया,

शक्र कुबेर देखि सकुचाने * तिनकी महिमा कौन बखाने
इक इक सुतन दीन रघुराया * बरणि को सकै सुनहु खगराया
धनद कोटि सम भरे भँडारा * यथायोग्य करि भाग उदारा

उस अतुल धन को देखकर इन्द्र और कुबेर भी लज्जित होते थे; फिर उनकी उपमा कौन वर्णन कर सकता है। यह सब रामचन्द्र ने लव को दिया। हे गरुड़जी, सुनिए, रामचन्द्रजी ने हरएक पुत्र को इतना द्रव्य दिया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उदार भगवान् ने करोड़ों कुबेरों के समान धन-भांडार को सब पुत्रों में यथायोग्य बाँट दिया।


सकल तनय परितोष करि, बिदा कीन्ह रघुबीर।
विप्रवृंद याचक सकल, लिये बोलि मतिधीर॥

श्रीरामचन्द्रजी ने सब पुत्रों को संतुष्ट करके विदा किया। फिर ब्राह्मणों के वृन्द तथा याचकों को बुलाया।

धेनु बसन धरती धन धामा * दिये द्विजन किय पूरन कामा
याचक सबै अवध के वासी * बोले प्रभु सुनु अज अविनासी

गऊ, वस्त्र, पृथ्वी, धन, धाम आदि ब्राह्मणों को देकर संतुष्ट किया। फिर अयोध्या-निवासी याचकों ने कहा—हे अज, अविनाशी प्रभु, सुनिए।

हम भरि जन्म चरण अनरागी * अंतकाल अब होत अभागी
जो जन जानि लेहु प्रभु साथा * करहु कृपानिधि सकल सनाथा

हमने जन्म भर आपके चरणों में प्रेम किया, परन्तु अंत समय में हम अभागे बन रहे हैं। इससे हे कृपासागर, जो आप हमको अपना दास समझकर साथ ले चलें तो हम सब लोग सनाथ हो जायँगे।

सुनि सनेहमय वचन सुहाये * चलहु कहेउ प्रभु अतिसुखपाये
समयजानि कपिपति तहँआवा * अंगद राज दीन सुख पावा

इन प्रेमभरे वचनों को सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न होकर बोले—चलो। समय जानकर सुग्रीव वहाँ आये और किष्किन्धा का राज्य अंगद को दे दिया।

जाम्बवंत लंकापति वीरा * नल अरु नील द्विविद रणधीरा
कोटिन कीश जो सुरअवतारी * आये जहाँ कृपालु खरारी

तब रणधीर जाम्बवन्त, विभीषण, नल, नील, द्विविद और करोड़ों बन्दर, जो देवताओं के अवतार थे, कृपालु भगवान् के पास आये।


कह प्रभु सुनु लंकेश, राज कल्पशत करहु तुम।
वचन अचल मम शेष, अंत अमरपुरगमन करु॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे विभीषण, सुनो। तुम सौ कल्प तक लंकापुरी का राज्य करो। यह मेरा वचन सत्य है। अंत में तुमको स्वर्गलोक प्राप्त होगा।

जाम्बवन्त सुनु मम मृदु बानी * रहु द्वापर भर अस जिय जानी
कृष्ण रूप धरि मिलिहौं तोहीं * समरभूमि तब जानेसि मोहीं

भगवान् ने जाम्बवन्त से कहा—तुम पृथ्वी पर द्वापर युग तक रहो। जब मैं कृष्णरूप धारण करके तुमसे लड़ूँगा, तब तुम मुझे युद्धभूमि में पहचानना।

सब कहँ सबविधि धीरज दीन्हा * आप गमन सरयू तट कीन्हा

दक्षिण भरत वाम रिपुदमनू * पुरवासी सब निजकुलतरनू

श्रीरामचन्द्र सबको सब तरह से धीरज देकर आप सरयू नदी के तट पर गये। दाहिनी ओर भरतजी, बाईं ओर शत्रुघ्नजी और पीछे सब अयोध्यावासी तथा कुटुम्बी लोग थे।

अग्नि वद गायत्री छन्दा * धरि निज रूप चले सुरवृंदा
पीताम्बर पट सुन्दर धारी * जड़ चेतन चर अचर सुखारी

अग्नि, वेद, गायत्री और छंद अपना-अपना रूप धारण करके ब्राह्मणों के साथ चले। सब जड़, चेतन, चर और अचर पीताम्बर पहनकर सुखपूर्वक चले।

अमर रूप धरि सुन्दर आई * जसकछु कीन्ह सो सुनु खगराई
समय जानि तब पवनकुमारा * बोले वचन कृपाआगारा

हे गरुड़जी, सुनो। सब देवता सुन्दर रूप रखकर आये। उस समय भगवान् ने जो चरित्र किये, उन्हें सुनो। कृपालु श्रीरामचन्द्रजी समय के अनुकूल हनुमान्जी से बोले—



चिरंजीव सुत रहहु तुम, जबलगिरविशशि शेष।
तुहिं सेवतमिटिहहिं सकल, दुस्तर कठिनकलेश॥

हे पुत्र, तुम तब तक चिरंजीव रहो, जब तक सूर्य, चन्द्रमा और शेषनाग रहें। जो मनुष्य तुम्हारी सेवा करेगा, उसके सब कठिन से कठिन कष्ट दूर हो जायँगे।

चतुरानन पहँ धर्म सिधाये * सरयू तीर जगतपति आये
चले देव अज भव सनकादी * जो मुनि परम अलौकि अनादी

उधर ब्रह्माजी के पास आकर धर्मराज ने कहा—श्रीरामचन्द्रजी अपने लोक की यात्रा के लिए सरयूजी के तट पर आ गये। यह सुनकर सब देवताओं के साथ ब्रह्मा, शिव, सनकादि और बहुत से ऋषीश्वर, जो कि संसार से परे और अनादि थे, आये।

कोटिनरथ वाहन विधि नाना * अरुण अकाश न जाय बखाना
नभ पर जयजयजय धुनि होई * पावहिं वर सुर याचहिं जोई

करोड़ों रथ और बहुत तरह के विमानों से आकाश भर गया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। देवता लोग आकाश से जय-जयकार करते हैं और इच्छानुसार वर पाते हैं।

देखि नाकरथ मग परछाईं * जिमि गिरि कृमिनभपंथउड़ाईं
करहिं परसि जल जो तनुधारी * पाय चतुर्भुज रूप सुखारी

रास्ते में आकाश के रथों की परछाईं टीड़ियों के समान मालूम पड़ती थी। उस समय ईश्वर की कृपा ऐसी थी कि जो मनुष्य सरयूजी के जल का स्पर्श करता था, वह सुखपूर्वक चतुर्भुज रूप हो जाता था।

चढ़ि विमान प्रभु धाम सिधाये * सकल अमरपति कहँसकुचाये
सुमन वृष्टि नभ होत अपारा * होइ नाद विधि वेद उचारा

उस समय श्रीरामचन्द्रजी विमान पर चढ़कर अपने परमधाम को चले गये, जिन्हें देखकर इन्द्र भी लज्जित हो गये। आकाश से अपार फूलों की वर्षा होने लगी तथा अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं और ब्रह्माजी वेदध्वनि करने लगे।

छन्द

उच्चरित वेद प्रसन्न भरत कृपालु हँसि सादर लयो।
जल परसिकर रिपुदमन सादर पद्म वन राजत भयो॥
कपि आदियूथप राखि उर प्रभुसकलनिजनिज घर गये।
सुग्रीव प्रभु पद वंदि बारहिंबार रविमंडल लये।

भरतजी प्रसन्नतापूर्वक वेद का उच्चारण करते हुए आदरसहित कृपालु श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप में लीन हो गये। शत्रुघ्नजी आदरसहित जल का स्पर्श कर पद्म के समान शोभायमान होकर ईश्वर में मिल गये। बंदर आदि के सेनापति भगवान् को हृदय में रखकर अपने-अपने लोक को गये। सुग्रीव बारम्बार भगवान् के चरणों की वन्दना करते हुए सूर्यमंडल में प्रवेश कर गये।

सुरसहित दिनकरवंशभूषण आय जलआश्रित रहे।
तेहि समय बोलि अनादि प्रभुजू वचन पावनमय कहे॥
इक मास रहु तुम तीर महँ ममपुरी जीव जु आवहीं।
तहु सुभग देहु विमान पदनिर्वान जो मम पावहीं॥

सूर्यवंश के शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी देवताओं के साथ जल के निकट आये और ब्रह्मा आदि देवताओं को बुलाकर कहा—तुम लोग एक मास तक सरयू के तट पर रहो। जो कोई भी जीव मेरी पुरी में आवें, उन्हें उत्तम विमान दो, जिससे वे मोक्ष पदवी को पावें।

अतिप्रीति सरयू सरित मज्जहिं ममचरण रतिकर सदा।
तरि जाय सुरपुर सकल सादर सुनहु मम वाणी मुदा॥
जे जन्म भरि मम संग कोशलपुर रहे निशिदिन सदा।
तिन तुरत आनौ धाम मम सादर सुनहु वाणी मुदा॥

जो कोई प्रीतिसहित सरयू नदी में स्नान करेंगे, वे आदरसहित मेरे चरणों में प्रेम रखते हुए संसार को तरकर वैकुण्ठधाम को चले जायँगे। भगवान् ने कहा—अयोध्यापुरी के उन मनुष्यों को, जो निरन्तर हमारे साथ रहते थे, आदरसहित शीघ्रता से हमारे परमधाम को ले आओ।

कहि वचन अंतरध्यान प्रभु जिमि दामिनी घन में धसै।
नभ जयति जय जयकार जयजयजयति करलै सुरलसै॥
इह भाँति रघुपति सह चराचर लै गये निज धाम को।
सो कह्यो उमहिं कृपायतन उर राखि सादर राम को॥

यह कहकर भगवान् ऐसे अन्तर्द्धान हो गये, जैसे बिजली बादल में प्रवेश करती है और आकाश में सब देवता जय-जयकार करने लगे। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी चराचर को साथ लेकर अपने लोक को गये। इस प्रसंग को महादेवजी ने कृपालु श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में धारण करके पार्वतीजी से कहा था।



गिरिजा संत समागमहिं, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होय सो, गावहिं वेद पुरान॥

हे पार्वती, महात्माओं के सत्संग के समान और कोई लाभ नहीं है। परन्तु वेद और पुराणों का मत है कि वह सत्संग बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिलता।

इहि विधि सब संवाद सुनि, प्रफुलित गरुड़ शरीर।
बार बार तेहि चरण गहि, जानि दास रघुवीर॥

इस प्रकार सब संवाद को सुनकर गरुड़जी का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा। उन्होंने काकभुशुण्डिजी को श्रीरामचन्द्रजी का सेवक जानकर बारम्बार उनके चरणों में प्रणाम किया।

तासु चरण शिरनाय करि, हृदय राखि रघुवीर।
गयउ गरुड़ वैकुंठ तब, प्रेम सहित मति धीर॥

परम बुद्धिमान् गरुड़जी ने प्रेमसहित काकभुशुण्डि के चरणों को शीश नवाया और हृदय में श्रीरामचन्द्रजी को धारण करके वैकुण्ठधाम को गये।

इति श्रीलवकुशकाण्डं समाप्तम्।

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यैव रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतस्स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

जिसे पहले अच्छे कवि स्वामी शिवजी ने बनाया, उसे कठिन जान रघुनाथ के नामों में लगे हुए तुलसीदासजी ने हृदय का अन्धकार (अज्ञान) दूर करने के लिए, जिसने मानो श्रीराम के चरणारविन्दों की भक्ति माँग ली है, ऐसी इस मानस रामायण को भाषा में रचा।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्याऽवगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

यह रामचरितमानस पुण्यरूप, पाप हरनेवाला, सदा कल्याणदायक, आत्मज्ञान व भक्ति का देनेवाला, माया-मोहरूप संसार का नाशक, निर्मल और भक्तिरूप जल से पूर्ण है। इस रामचरितमानस में जो भक्त गोता लगाते हैं, इसको जो भक्तजन पढ़ते हैं, वे मनुष्य संसाररूप सूर्य की घोर किरणों से नहीं जलते।

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्त्तिम्पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥

जो चिन्मय, अविनाशी ब्रह्म देवताओं के अच्छी तरह प्रार्थना करने पर पृथ्वी का भार दूर करने के लिए पृथ्वीतल पर रघुवंशियों में मायामय मनुष्यशरीर से उत्पन्न हुए और राक्षसों को मार, चक्रवर्ती राज्य कर, सदा रहनेवाली पापहारिणी कीर्त्ति संसार में फैला गये और फिर अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हुए, उन सीतापति को मैं भजता हूँ।

—:o:—

श्रीरामायणजी की आरती

आरति श्रीरामायणजी की। कीरति कलित ललित सिय-पी की॥

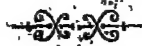
टेक

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद, बालमीकि विज्ञानविशारद।
शुक सनकादि शेष अरु शारद, बरणि पवनसुत कीरति नीकी॥१॥
गावत संतत शम्भु भवानी, औ' घटसंभव मुनिवर ज्ञानी।
व्यास आदि कविपुंज बखानी, कागभुशुण्डि गरुड़ के हिय की॥२॥
चारिउ वेद पुराण अष्टदश, छओ शास्त्र सब ग्रन्थन को रस।
मुनिजन धन सन्तन को सरवस, सार अंश सम्मति सबही की॥३॥
कलिमलहरणि विषयरस फीकी, सुभग सिंगार भक्ति युवती की।
हरनि रोग-भव मूरि अमी की, तात मात सब विधि तुलसी की॥४॥

इति।

—:o:—

॥ समदेवस्तुति ॥



॥ गणेशस्तुति आरती ॥

जय लम्बोदर ईशा । संकट दूर करो तुम मेरो जिमि रवितम खीशा ॥ (टेक)

विघननिवारन काजसँवारन तुम सबके सुखदाता । जनरंजन दुखभंजन हो शिव-गौरी ताता (१) एकदन्त करिवदन सुहावे मूषक असवारी । ऋद्धि सिद्धि दोउ सहित विराजे छवि अतुलित भारी (२) इन्द्रादिक सब देवन पूजे गरा नाचैं भीरा । तूर्य ढोल मृदंग बजावैं जय जय बज बीरा (३) तुम सम दीनदयाल न कोई वेगि कृपा करियो । रामगंग इक शरण तुम्हारी संकट सब हरियो (४) जय लम्बोदर ईशा ॥

॥ सूर्यस्तुति आरती ॥

जय रजनीतमहारी । जड़ चेतन के प्राणअधारा तीन लोकहितकारी ॥ (टेक)

नीलवर्ण वस्त्राजि विशाला रथ के राजि रहे । ज्योतिस्वरूप अनूप दिवाकर शोभा अमित लहे (१) कानन कुण्डल जगमग छाजे ज्योतिकला चहुँ ओरा । सुन्दर वदन सदन मुदमंगल मनसिज मन चोरा (२) गनपति शंभु करैं गुनगाना चन्दन धूप सजैं । अगर कपूर सुहावन बाती भेरी बीन बजैं (३) जगउजियार मोहनिशिघालक प्रकट प्रभाव खरो । रामगंग किरपा करि स्वामी हियतमनाश करो (४) जय रजनीतमहारी ॥

॥ दुर्गास्तुति आरती ॥

जय जननी सुखदैनी । मंगलकरणि अमंगलहरनी तीनहु तापनसैनी ॥ (टेक)

शुक्लवर्ण अरुण तन वस्त्र भूषण भूरि सजै । नयन विशाल लालसम वारिज मृगमन देख लजै (१) बेंदीभाल जाल मणिमाला नाक बुलाक लसे । नूपुर धुनि सुनि मुनिमन मोहे धीरज ध्यान नसे (२) सिंह चढ़ी कर गदा विराजे असुर सँहार करे । रक्तबीजसम नीच घनेरे क्षण में सकल दरे (३) सुरेश महेश अन्त नहिं पावैं महिमा अलखवनी । जग करणी इक क्षण में हरणी माया अमित घनी (४) जानु युगल करजोरि करत हूँ विनती तुम पाहीं । रामगंग की सुधि जनि भूलो निज हियबर माहीं (५) जय जननी सुखदैनी ॥

॥ शिवस्तुति आरती ॥

जय गिरिजाहितकारी । जटाजूट गलमुण्डनमाला गंगा शिरधारी ॥ (टेक) श्वेतवर्ण तन भस्म लसत है दिकअम्बरधारी । भूषण भूरि भुजग छविछाई सहित उमाप्यारी (१) नयन विशाल भाल शशि बालक आनन पाँच बने । भानुकोटि सम बदन सुहावन भृकुटी धनुष तने (२) करधर डमरू विषम त्रिशूला वाहन बरदतरे । भूत प्रेत सहित अपारा भयंकर भेष धरे (३) ब्रह्मादिकसुर असुरन नागा अस्तुति वेद करे । ढोलक डमरू डफ धुनि झाँझर जय भवईश हरे (४) हे जगदीश्वर ईश्वर स्वामी प्रभु तुम अन्तरयामी । रामगंग स्वप्ने जनि भूलेउ अति मूरख कामी (५) जय गिरिजाहितकारी ॥

॥ महावीरस्तुति आरती ॥

जय अंजनी सुत वीरा । बल प्रताप जगरेख तुम्हारी प्रथमे रणधीरा ॥ (टेक) रक्तवर्ण तरुण तन तेजा गिरिसम देह लसे । गमन दमन मद चलन खगेशा बलनिधि असुर धसे (१) रवि को फल भल जान्यो ताहि कियो भक्षा । देवन त्राहि करी तब छाँड्यो वेग करी रक्षा (२) लक्ष्मण मूर्च्छि परे रण माहीं रघुवर शोक भरे । लाय सजीवन जीवन कीनो देवन सुमन झरे (३) रावण दुष्ट हरी वैदेही चिन्ता राम भयी । लंकाजार सँभार सुधि सीता रघुवर आन दयी (४) बल अतुल तुव विपुल बड़ाई निजमुख राम कही । रामगंग तपतापन देखो तुम्हरी शरण लही (५) जय अंजनीसुत वीरा ॥

॥ आरती श्रीस्वामी श्रीरामचन्द्रजी की ॥

जय रघुवर धनुधारी । खरसे खलन दलन दलदूषन संतन हितकारी ॥ (टेक) श्याम शरीर चीरधर पीता भूषण छवि भारी । बाहु विशाल धनुप कर सोहे सहित सियाप्यारी (१) कटि मुकुट कर्णकलकुण्डल हार हरण मन विलसे । चरणचिह्न उर महिसुर राजे मस्तक तिलक लसे (२) सुन्दर बदन सदनमुदमंगल चितवन चितचोरा । लोचन ललितदलित मदखंजन श्याम सरोज किशोरा (३) गौतमनारि उद्धार हति निश्चर ऋषि का यज्ञ कीनो । चाप तोड़ तोड़ बड़ राजन जनकसुता वर लीनो (४) शबरी तार मार रण रावण धरणी भार हरा । रामगंग कलिमल को ग्रस्यो तुम्हरी शरण परा (५) जय रघुवर धनुधारी ॥

॥ आरती श्रीस्वामी श्रीकृष्णदेवजी की ॥

जय गोवर्द्धनधारी । सुरपति गर्व सर्वकर मोचन राखी ब्रजरारी ॥ (टेक) मोरमुकुट शिर गचक्कचकारे कुण्डल मनहारी । मोतिनहार चारुवनमाला नूपुर धुनि न्यारी (१) पीत वसन घन वरण तमाला मुरली अधर धरी । गौर वरण तरुण सँग राधे जोरी अमित छरी (२) कंसदूत बहु दुष्ट पठाये महिमा नहिं जानी । ताको मार पछार सब असुरन सुखी कियो रजधानी (३) कौरव अनीति करी बरजोरी द्रोपदि चीरखसे । भक्ताधीन वसन बहु कीनो उतारत हाथ थके (४) वेश्या विप्र सम नीच घनेरे क्षण में तार दियो । रामगंग शिरमौर पतित को काहे राखि लियो (५) जय गोवर्द्धनधारी ॥ समाप्तम् ।

यह सर्व आरती गणेश, सूर्य, दुर्गा, शिवजी, हनुमान्‌जी, श्रीस्वामी रामचन्द्रजी और श्रीकृष्णदेवजी की भक्तजनोद्धारक श्रीगुरुजी महाराज श्रीयुत पण्डित श्रीरामजी कपूरथला-निवासी की आज्ञानुसार श्रीमत्पण्डित मुरारीरामजी के पुत्र मिश्रगंगाराम संगर ब्राह्मण कपूरथला ने भक्तजनों व सज्जनों के वास्ते रचना की ।